મળવાનું ઠેકાણું :
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
ઠે. ગરેડિયા કૂવા રોડ,
રાજકોટ, (સૌરાષ્ટ્ર)

Published by :
Shri Akhil Bharat S. S.
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road RAJKOT,
(Saurashtra) W. Ry. India



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुलपृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

મૂલ્યઃ રૂ. ૨૫=૦૦

પ્રથમ આવૃત્તિ પ્રત ૧૨૦૦
વીર સંવત્ ૨૪૯૨
વિક્રમ સંવત્ ૨૦૨૨
ઇસવીસન ૧૯૬૫

: મુદ્રક :
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ,
ઘીકાંટા રોડ અમદાવાદ.

पंजाब संप्रदायके पू. सोहनलालजी म. सा. की आज्ञामें विचरनेवाले पू. मयारामजी म. के शिष्यानुशिष्य परम प्रतापी श्री

व्याख्यानवाचस्पति-स्वर्गीय मदनलालजी महाराजको

अष्टक—

(मालिनी छंद)

परिधृतगुणमाल शुद्धधर्मालवालं,
विमलगतिमरालं शुद्धभावैर्विशालम् ।
सकलमनसि दुःखान्मन्यते त्वां वियुक्तं—
सुमुनिमदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ १ ॥

हरिगीत छंद

हिन्दी

गुणगण विमल धारण किये, जो आलवाल सुधर्मके
थे हंस सम जो चाल चलते, मूल थे शुभ कर्मके ।
हम मानते हिय तापसे, दूरस्थ उन मतिमानको,
हे भव्य जन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥१॥

अमृतसरससारां शुद्धतत्त्वैकधारां—
प्रशमरसगभीरां भव्यलोका मयूराः ।
मधु-मधुरगिरंते पीतवन्तोऽत्यनृत्यन्,
सुमुनिमदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ २ ॥

हिन्दी

पीयूष सम अतिशय सरस, अरु शान्त रस गभीरकी ।
तात्त्विक मधुर मधुमय विमल वाणी परममति धीरकी ।
भविजन श्रवण कर नाचते, उन दिव्य सन्त सुजानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ २ ॥

त्वयि शशि निजगत्यां, निष्कलङ्केऽत्रलोका,
सुखिन इव यदाऽऽसन्, त्वं ह्यकस्मात्कथं हा ।
गत इत इति खेदै, र्दुःखिनस्ते जनास्तं—
सुमुनि मदनलालं, शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ३ ॥

हिन्दी—

अति निष्कलङ्क सदा उदित, परिपूर्णचन्द्र समानसे,
सुखिया सकल दुनियाँ हुई, पीयूष वाणी पानसे।
हैं आज दुखिया दीखती वे विरहमें श्रीमानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ३ ॥

यदि कमपि मदीयं, मन्तु मालोक्य विद्वन्—
त्यजसि सपदि हा-हा ! त्वय्यतां जीव कायाः।
पठपि निरपराधा, रक्षणीया त्वया च,—
सुमुनि मदनलालं शुद्धमालं भजध्वम् ॥ ४ ॥

हिन्दी—

मुनिवर ! हमारे कोई भी अपराधसे हा रूठकर
यदि त्याग हमको कर रहे, पर जीव षट्क निकाय पर।
करके दया रक्षा करो, करुणानिलय धीमानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ४ ॥

सकलकरुणधारी शुद्धता पूर्वचारी—
जिनवचनविहारी, सर्व पापापहारी।
निबिडतिमिरहारी ज्ञानदीपालयदा तं,
सुमुनि मदनलालं, शुद्धमालं भजध्वम् ॥ ५ ॥

हिन्दी -

जो शुद्धता पूर्वक विचरते, सम्यकरुणावान थे,
जो पापहारक सर्वदा, जिनवचनश्रद्धावान थे।
अज्ञानहारक ज्ञानसे, उन दिव्य सन्त सुजानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ५ ॥

सकलभुवनचिन्ता - हारि - चिन्तामणिर्यः—
पुनरपि मनवाञ्छा, पूरणे कल्पवृक्षः।
सुगतिसरणि नेता, सद्गुरु स्तत्त्वविच,—
सुमुनि मदनमालं शुद्धमालं भजध्वम् ॥ ६ ॥

हिन्दी—

सबके मनोरथ पूर्ण करते, कल्पवृक्ष समानजो,
चिन्ता हरणमें थे पुनः, चिन्तामणी परमान जो।

फिर मोक्ष पथ नेता गुरू उन दिव्य सन्त सुजानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ६ ॥

शमदम प्रशमाद्या, ये दुरापा गुणास्त्वां
श्रयितुमिह यतन्ते, नो स्थलं ते लभन्ते ।
कथय पुनरुपायं, नामतस्त्वं स्थितस्तं—
सुमुनि मदनलालं, शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ७ ॥

हिन्दी—

दुर्लभ प्रशम शमदमगुणादिक शुद्ध अति गुणवानको
निज वास हित पाते नहीं हैं, योग्य सुखमय धामको ।
कह दो मुने ! वे क्या करें हा छोड़ के श्रीमानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ७ ॥

तव मुनिवर ! शुद्धं दर्शनं स्वप्नमध्ये,—
भवतु करुणदृष्टि र्जायतां सर्व संघे— ।
इति भविजन शुद्धा प्रार्थना यत्कृते तं,
सुमुनि मदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ८ ॥

हिन्दी—

मुनिराज ! हमको स्वप्नमें भी, आपका दर्शन सदा,
होता रहे हो करुणदृष्टी, संघके ऊपर सदा ।
है भव्य जनकी प्रार्थना, जिनके लिये विद्वानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ८ ॥

घासीलालकृतं स्वेतदष्टकं भावतः पठेत् ।
यो नरः सततं भक्त्या सत्वरं स सुखी भवेत् ॥ ९ ॥

हिन्दी—

इस अष्टकको जो पढे, वरने मंगलमाल
सदाकाल सुखसे रहे, कहते घासीलाल ॥ ९ ॥

'ॐ अर्हन्'

प्रातः स्मरणीय, व्याख्यानवाचस्पति, चारित्रचूड़ामणी, परम प्रतापी पूज्यगुरुदेव श्री मदनलालजी महाराजकी

जीवनरेखाएँ

गुणमञ्जुमालासे हृदय शोभायमान विशाल था,
जिनका सुनिर्मल चरित पालनसे चमकता भाल था;
संयम अचल उन 'मदनमुनि' को हृदयपट पर मैं धरूं,
अघ पाप हर गुरु पद कमलको भावयुत वन्दन करूं

प्रातःस्मरणीय, चारित्र चूड़ामणी, पूज्य गुरुदेव व्याख्यान-वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज सिंह की भांति संयम मार्ग पर आए और सिंहकी वृत्तिसेही अंत तक उसका पालन करते रहे। उनके ज्ञान और चारित्रका प्रकाश आज भी मेरे अन्तर्मनको प्रकाशित करता है।

प्रज्वलित दीपक जब तेलसे परिपूर्ण होता है, तो स्वयंको प्रकाशित करते हुए बाहर भी प्रकाश फैलाता है, और अन्धकार पर विजय पाता है। व्या० वा० गुरुदेव श्री मदनलालजी महाराजका संयमी जीवन इसी प्रज्वलित दीपकके समान था—चारित्र रुपी तेलसे परिपूर्ण और ज्ञानसे प्रकाशित, सबको प्रकाशित करने वाला था।

रेखाचित्रः—

इन महात्माके दर्शन सन् १९५४में सर्व प्रथम हुए जब आपश्रीका सब्जी मंडी-दिल्लीमें वर्षावास-चातुर्मास था। आपके बारेमें सुन रखा था कि आप बहुत प्रभावशाली संत हैं, हरेक साधारण व्यक्तित्वमें तो आपके सामने जानेकी क्षमता ही नहीं। बालबुद्धिमें यह बात समा जानेसे आपश्रीके निकट जानेमें मन हिचकोले खा रहा था, डर लगता था कहीं डपट न दें। माताजीके आग्रहसे अन्तमें एक दिन मैं चरणोंमें पहुँच ही गया—और ठगा सा रह गया, उन महान व्यक्तित्वकी गरिमा देखकर। प्रभावशाली ललाट! चमकता, हंसता और पुर-जलाल चेहरा। मस्तक पर धवल केश-राशि। काले चश्मे में दूसरे व्यक्तिके मनकी थाह लेनेवाले नेत्र। धवल खादीके स्वच्छ वसन। मुख पर मुख-वस्त्रिका और बगल में रजोहरण। गज गामिनी, मस्तानी चाल। अद्भुत शांति और सौम्यता किन्तु प्रतिवादीके लिए सदा अजय व्यक्तित्व।

पावन संस्मरण—

गुरु मंत्र (सम्यक्त्व पाठ) देनेके बादकी उनके स्नेहाशीर्वादसे छलकते

संदेशके शब्द अब तक कानोंमें गूंज कर एक अनुपम रोमांच प्रस्फुटित कर देते हैं।

"धर्म पर जो अधिकार कर लेता है वह उसका जीवन भर साथ देता है। धर्मको अपनानेवाला चाहिये। धर्मको अपनानेमें कितना त्याग करना पड़ता है? पूर्व-पुरुषोंके उदाहरण समक्ष हैं। उन्होंने धर्म पर सब कुछ न्यौछावर कर डाला, उसीके लिये जिये, उसीके लिये मरे। यह छोटी बात नहीं बहुत बडी है। धर्म मिलना कठिन नहीं-पालन करना कठिन है। तुम समझदार हो, सुयोग्य हो, जो पाया है उसे संभाल कर रखोगे तो सब तरहसे समुन्नत बनोगे। ईमानदारीसे कदम बढाते रहो तो तुम्हारा जीवन चमकेगा, तब क्याही आनंद आयेगा?"

वास्तवमें उस कल्पवृक्षकी छाया असीम थी, कभी छोटी नहीं हुई, जो आया सभीको उसमें स्थान मिला तथा मिली अद्भुत शांति!

करुणाके सागर:—

गुरुदेवके मनमें करुणाका असीम सागर हिलोरे लेता था। उनके नेत्रोंमें आर्द्रता थी, वाणीमें सान्त्वनाका स्वर तथा हृदयमें दुःख दूर करनेकी लगन। सरल तथा शुद्ध हृदय लेकर जो भी उनके निकट आया, उसे आन्तरिक स्नेहसे सराबोर कर दिया।

जीवन-चित्रण:—

गुरुदेवका जन्म पंजाब प्रान्तके रोहतक जिल्हेके ग्राम 'राजपुर' में विक्रम सं० १९५२ में हुआ था। पिताश्री मुरारीलालजी व माता गेन्दोबाई-बडे तपोनिष्ठ धर्मात्मा एवं सरल स्वभावके थे।

प्रकृतिने जिस पुष्पको एक कोनेमें खिलाया, किसे पता था वह अपने सौरभसे संसारको सुरभित कर डालेगा।

उस नये फूलका नाम रखा मातापिताने "मौजीराम" चूंकि उनके आंगनमें मौज-खुशी फुट पडी थी। मौजीरामजीका बचपन धार्मिक संस्कारोंमें आगे बढा। ७ वर्षकी उम्रमें मां छोड़ गई। अब पिताही जीवन रक्षक थे, गांवमें कुछ पढाई शुरू की। ९ वर्षके होने पर देहली मौसीके (मासी) घर आ गये। पहाडी धीरज पर बहुत बडा प्रसिद्ध जैन घराना था, जहां मौजीरामजीकी शिक्षा सम्पन्न हुई। यौवनमें कदम रखा। मौसाजीकी दुकानका कार्य संभाल लिया। किंतु जिन्हे बहुत ऊंची आध्यात्मिक साधना करनी होती है, वे भौतिकताके रंगीन वातावरणमें घिरे नहीं रह सकते।

दीक्षा —

देहलीमें साधु सतोंका आगमन प्रायः सदैव रहा है। चान्दनी चौक, बारा दरीमें उस समय परम पूज्य, चारित्र चूड़ामणी, युग प्रधान मुनिवर श्री मयारामजी महाराजके परम प्रतापी शिष्य, श्रद्धेय, गणावच्छेदक, श्री छोटे लालजी महाराज विराजमान थे। उन्हीके श्री चरणोंका आश्रय श्री मौजीरामजीको मिला। विक्रम संवत् १९७१ भाद्रपद कृष्ण दशमीके दिन बामनौली, जिला मेरठ (उ० प्र०) में बड़ो धामधूमसे दीक्षा हुई। उन्हें श्री छोटेलालजी महाराजके शिष्य बहुश्रुत श्री नाथूलालजी महाराजका शिष्य बनाया गया। और उसी समय नाम परिवर्तनके साथ २ मौजीरामजीसे बदल कर आप श्री मदनलालजी महाराज बन गये।

विनय-भक्ति तथा बुद्धि-प्रतिभा—

विनय-भक्ति, तप-संयम, तथा स्वाध्याय-ध्यानमें प्राण पणसे जुटे रहते थे। बुद्धिप्रतिभा तथा धारणाशक्ति बड़ी प्रखर थी। ६० गाथाएँ (श्लोक) एक दिनमें याद कर लेते थे। आगमोंका ज्ञान प्राप्त करके बहुश्रुत बने। प्राकृत भाषा पर आपका प्रभुत्व था। मुखसे जो शब्दावली निकलती थी, वह बड़ी शुद्ध तथा प्रभावोत्पादक होती थी। उनकी वाणीमें ओज था, मनमें उत्साह तथा आत्मामें थी संयमकी लहर।

स्वाध्याय-संयमकी कुंजी —

लगभग तीन हजार गाथाओंकी स्वाध्याय वे प्रतिदिन किया करते थे। उनका यह विचार रहता था कि प्रतिवर्ष सब आगमोंका अर्थ सहित स्वाध्याय हो। आप कहा करते कि

> "यदि श्रमण स्वाध्याय-रत रहे तो बहुत सी व्यर्थ बातोंसे बचा रहेगा। उसकी साधुतामें रस पैदा होगा, तब संयममें रुचि बढ़ेगी।"

वाणीके जादूगर-व्याख्यानवाचस्पति

श्रुतसम्पन्नताके कारण वाचस्पतिजी की वाणीमें अनुभूतिकी स्निग्धता, तर्कका पैनापन और आस्थाकी गंभीरता थी। उनके व्यक्तित्वमें अद्भुत आकर्षण थे—वाणीकी सारगर्भिता, भाव-प्रवणता और भाषाका प्रबल प्रवाह। अपने श्रोताओंके तन और मन पर हुकूमत करना उन्हें खूब आता था। उनकी वाणीके वेगवान प्रवाहमें बहकर उनके श्रोता कभी करुण रसकी धारा फूटने पर बरबस रो उठते थे, और कभी हर्षकी सतह पर थिरकते थे। वाणीके इसी जादूने पंजाब संघकी ओरसे विक्रम सं० २००२ में उन्हें 'व्याख्यानवाचस्पति' पदसे अभिनन्दित कराया था।

समाजसुधारकः—

अपने युगके समाज सुधारकोंमें वाचस्पतिजी सबके अगुआ थे। युवकों और शिथिलाचारियोंको चेतावनी देनेवाले उनके तीक्ष्ण वचन-बाण, समाज-उत्थान, धर्मप्रचार एवं संयम रक्षाके हितार्थ बजाया गया उनका तेजस्वी बिगुल, अनुशासन और साधू समाचारीके गौरवके सार-संभाल करनेवाले उनके नेत्र-युगम आज एक स्मृतिमात्र बन कर रह गये है।

पदकी निर्लोभताः—

गुरुदेव जिस कार्यको हाथमें लेते थे उसके लिये अपनेको अर्पित कर देते थे। साथही आत्माके विरुद्ध दुनियांकी लाख खुशामदोंके बावजूद, उक्त कामको छोडनेमें भी नही हिचकते थे जिसको वे उपयुक्त न समझते। श्रमण संघके निर्माणमें जो कार्य उन्होंने किया, वही उनकी कर्मशीलता एक प्रमाण है। अमृतसरसे अर्थात् हिन्दुस्तानके एक छोरसे चले। मौसम सख्त, मार्ग कठिन, तथा शरीर अस्वस्थ। सादडी (मारवाड) पहुँचे। अथक प्रयत्नोंसे साध्यसिद्धिमें जुटे। जब तक मनमें उद्देश्य पूर्ति की आशा रही कभी पीछे न हटे। पर जब ढंग खराब देखा, सुधारकी आशा न रही तो जिस लगन और शानसे जुटे थे, उसी लगन और शानसे पीछे हट गये।

उनके व्यक्तित्व, अनुशासन निष्ठता, संयमकी कड़कता और आगम ज्ञानसे प्रभावित होकर, इन्कार करने पर भी भीनासर साधूसंमेलन के अवसर पर उन्हे प्रधान मंत्री पद दिया गया। किंतु उनकी योग्य देखरेख और यथार्थ पथ प्रदर्शनका लाभ संघ के भाग्यमें बंधा नहीं था। श्रमणसंघकी आन्तरिक स्थिति बिगडने लगी। आचार्य आचार्यके अधिकारों का स्पष्टीकरण न हो सका ध्वनियंत्र के मसला सुलझने की बजाय और अधिक उलझने लगा, मन्त्रीमंडलका असंतोषप्रद रुख व कार्य देखा तो उन्होंने प्रधान मत्री पदसे फौरन त्यागपत्र दे डाला। गुरुदेवका त्यागपत्र इन कार्योंको शीघ्र हल करनेकी प्रेरणा देता, यदि उसे उपेक्षित करके अन्धकारमें फेंक न दिया जाता।

गुरुदेव भी और मंत्रियोंकी तरह कागजीकार्यवाहियोंके बल पर अपने पदको बनाये रख सकते थे, किंतु ऊपरी लापापोती करना वे आत्महननके तुल्य समझते थे।

"संतका जीवन मंगल है वहां मरण भी "

गुरुदेवका जीवन जितना महान था उतनीही मृत्यु भी। एक वर्षसे उन्हे

" मार ये चार टके जो सयमके इकट्ठे किये हैं, इसे नाशवान् शरीरके लिए नहीं लुटाऊंगा "

सचमुच धन्य थे आप जिन्होंने सयमरूपी टकोंका समालमें इस बहुमूल्य शरीरका बलिदान कर दिया।

जडियाला गुरु (जिला अमृतसर) की पावन भूमि गुरुदेव विराजे थे। रोग बढ़ता जाता था, आहार घटता गया। मूर्छके अरुच बढ़ते गये। पानी पीना और सांस लेना कठिन हो गया। अंतिम दिनोंकी वेदना इतनी भयकर थी कि वर्णन करते कलमका दिल भी दहल उठता है। दर्शन करके हर आदमी का दिल भर आता था। किंतु बाहरे उनकी अपूर्व सहनशीलता, शांति और मृदु-सौम्यता। अन्तरात्मा पूर्णतया रोशन थी। उन्होंने अपनी शुधियों तथा वृत्तियोंको संक्षिप्त कर लिया था। हर समय आत्म समाधिका ही ध्यान रहता था। अन्तरात्माकी साक्षीसे चौरासी लाख जीवयानी और चतुर्विध श्री सघसे क्षमित-खमापना करके आत्मशुद्धिकी ओर अग्रसर हुए। फिर सलेखना और सथारे की ओर ध्यान गया। शिष्योंसे सथारा करानेको कहा। मौसमकी बढ़ी गरमी और रोगकी भयकरताको देख कर शिष्य साहस न कर सके। आखिरकार उस नरसिंहने अन्तिम दिन ता २७ जून १९५३ को स्वय सथारा धारण कर लिया और समाधि पूर्वक अपनी महायात्राको सम्पन्न किया।

गुरुदेवके स्मारकः—

गुरुदेवकी सुश-शिष्ट, सुविनीत शिष्य मडलीमें कितना त्याग-वैराग्य, कितना आपसी स्नेह-प्रेम, कितनी गुरुभक्ति और आदर है। वास्तवमें सब मुनिराज पूर्ण समर्थ हैं। सुयोग्य हैं। गुरुदेवश्रीके स्मारक स्वरूप हैं। उनकी जीवन्त संस्थाएँ हैं। उनकी अनुपम शक्ति है। उनके दर्शन कर हृदय उल्लसित हो जाता है।

श्रद्धा सुमन —

गुरुदेवके जीवनका महांस सागर कर्रे बयांस एक मृदु तथा मधुर झकार सी उठती है। शब्दोंमें किस प्रकार सजोयें? क्या अथाह सागर कभी बांधा गया है? फिर भी मनकी श्रद्धासे कुछ अकिंचन शब्द सुमनोंमें गुथनका प्रयत्न किया है।

कोटि २ वन्दनः—

ऐसा विरल विमल विभूति, ज्ञानी-ध्यानी त्यागी और तपस्वी महान आत्माको मेरे कोटि कोटि वदन हैं। उनके श्री चरणोंका शरणा जन्म जन्मान्तरों तक प्राप्त हो। —महतावचन्द्र बोरडिया दिल्ली

समाप्त

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्य श्री घासीलालव्रति-विरचितया सुधाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतम्

श्री-स्थानाङ्गसूत्रम्

(चतुर्थो भागः)

अथ पञ्चमस्थानस्य द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते—

उक्तः प्रथमोद्देशकः, सम्प्रति द्वितीयः प्रारभ्यते । अस्य उद्देशकस्य अनन्तरोक्तेन उद्देशकेन सह अयमभिसम्बन्धः–अनन्तरे जीववक्तव्यता प्रोक्ता अस्मिन्नपि सैव उच्यते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्योद्देशकस्येदमादिमं सूत्रम्—

तथा–प्रथमोद्देशकान्त्यसूत्रेण सहास्य द्वितीयोद्देशकप्रथमसूत्रस्यायमभिसम्बन्धः, तत् सूत्रं केवलिनिर्ग्रन्थापेक्षया प्रोक्तम्, इदं तु छद्मस्थनिर्ग्रन्थापेक्षया प्रोच्यते–तत्र निर्ग्रन्थनिर्ग्रन्थीनां विहारविषये कल्प्याकल्प्यविधिमुपदर्शयति—

पांचवें स्थानका दूसरा उद्देशा

प्रथम उद्देश कहा जा चुका है. अब इस पांचवें स्थानका यह द्वितीय उद्देश प्रारम्भ होता है, इस उद्देशेका गत प्रथम उद्देशेके साथ इस प्रकारसे सम्बन्ध है, कि प्रथम उद्देशेमें जीव वक्तव्यता कही गई है, सो इस उद्देशेमें भी वही कही जावेगी तथा प्रथम उद्देशेके अन्तिम सूत्रके साथ इस द्वितीय उद्देशेके प्रथम सूत्रका सम्बन्ध ऐसा है, कि वह सूत्र केवलीकी अपेक्षासे कहा गया है, और यह छद्मस्थ निर्ग्रन्थकी अपेक्षासे कहा जा रहा है, सो इसमें निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियोंके विहारके विषयमें कल्पाकल्प विधिको सूत्रकार प्रकट करते हैं—

પાંચમા સ્થાનનો બીજો ઉદ્દેશો

પહેલો ઉદ્દેશક પૂરો થયો હવે પાંચમાં સ્થાનનો બીજો ઉદ્દેશક શરૂ થાય છે આગલા ઉદ્દેશક સાથે આ ઉદ્દેશકનો આ પ્રકારનો સંબંધ છે પહેલા ઉદ્દેશામાં જીવવક્તવ્યતાનું કથન કરવામાં આવ્યું છે આ ઉદ્દેશામાં પણ એ જ વિષયનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવશે પહેલા ઉદ્દેશાના છેલ્લા સૂત્ર સાથે આ ઉદ્દેશાનો સંબંધ આ પ્રમાણે છે—

પહેલા ઉદ્દેશાના છેલ્લા સૂત્રમાં કેવલીના અનુત્તરોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, ત્યારે આ સૂત્રમાં છદ્મસ્થ નિર્ગ્રંથના વિહારના વિષયમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. તેમને (સાધુ અને સાધ્વીઓને) કેવો વિહાર કલ્પે છે અને કેવો વિહાર કલ્પતો નથી, તે સૂત્રકાર અહીં પ્રકટ કરે છે—

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ पञ्च महण्णवाओ महा णईओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा, तं जहा गंगा १ जउणा २ सरऊ ३ एरावई ४ मही ५। पञ्चहिं ठाणेहिं कप्पइ, त जहा—भयंसि वा १, दुब्भि क्खंसि वा २, पव्वहेज्ज वा णं कोई ३, दओघंसि वा एज्जमाणंसि महया ४ वा अणारिएहिं ५ ॥ सू० १ ॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमा उद्दिष्टा गणिता व्यञ्जिताः पञ्चमहार्णवा महानद्यः अन्तर्मासस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीतुं वा सन्तरीतुं वा, तद्यथा—गङ्गा १, यमुना २, सरयू ३, ऐरावती ४, मही ५। पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा—भये वा १, दुर्भिक्षे वा २, प्रव्यथते वा खलु कोऽपि ३, दकौघे वा एज्जमाने महति वा ४, अनार्येषु ५ ॥ सू० १ ॥

टीका—' नो कप्पइ ' इत्यादि—

निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमाः=इमे वक्ष्यमाणत्वेन आसन्नतया प्रत्यक्षा उद्दिष्टाः=' महानद्यः ' इति रूपेण सामान्यतोऽभिहिताः, गणिताः=पञ्चसंख्यक त्वेन गणनाविषयीकृताः, व्यञ्जिताः=गङ्गेत्यादि नाम्ना प्रकटीकृताः, पञ्च=पञ्चसं

'नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा' इत्यादि सूत्र १ ॥

टीकार्थ—निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियोंको ये उद्दिष्ट सामान्यतासे कही हुई गणित पांच संख्यासे गिन के कही हुई व्यञ्जित प्रगट की पांच महार्णववाली महानदियां एक मासके बीचमें दो बार या तीन बार उतरना या नाव आदिमें बैठकर पार करना कल्पित नहीं है, वे नदियां ये हैं—गंगा १ जमुना २ सरयू ३ ऐरावती ४ और मही ५ ।

' नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓને આ ઉદ્દિષ્ટ ગણિત, વ્યંજિત, અને પાંચ મહાર્ણવવાળી મહા નદીઓને એક માસમાં બે વાર કે ત્રણ વાર તેમાં ચાલીને અથવા હોડી આદિમાં બેસીને પાર કરવાનું કલ્પતું નથી. તે પાંચ નદીઓનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—

(૧) ગંગા, (૨) યમુના, (૩) સરયૂ, (૪) ઐરાવતી અને (૫) મહી.

व्यक्ताः महार्णवाः=बहूदकाः महानद्यः मासस्य अन्तः=मध्ये द्विःकृत्वो=वारद्वयं, त्रिःकृत्वो=वारत्रयं वा उत्तरीतु=बाहुजङ्घादिना लङ्घयितुं सन्तरीतुं=नावादिना सम्यक्तया लङ्घयितुं वा नो कल्पते। उत्तरणसन्तरणयोरकल्पनीयत्वम् आत्मसंयमयोर्विघातस्य शबलचारित्रस्य च संभवात्।

उक्तं च—" अंतोमासस्य तओ दगलेवे करेमाणे सबले "

छाया—अन्तर्मासस्य त्रीन् दकलेपान् कुर्वन् शबल इति। दकलेपः=जला-

---

पांच कारणोंसे इन महानदियोंके पार करना कल्पित भी है, जैसे—भयके समयमें १ दुर्भिक्षके समयमें २ कोई निरन्तर कष्ट देता हो तो ऐसी स्थितिमें ३ नदियोंका प्रचुर प्रवाह उन्मार्गगामी होनेके समयमें ४ और अनार्यों द्वारा आक्रमण होनेके समयमें ५ इन महानदियोंको जो उद्दिष्ट विशेषण दिया गया है, उसका कारण यह है, कि ये "महानदियां " हैं, इस रूपसे ये कही गई हैं, तथा ये पांच संख्यामें यहां प्रकट की गई है, इसलिये "गणिताः" इस विशेषणसे इन्हे विशेषित किया गया है, तथा " गंगा जमुना " इत्यादि नामों द्वारा इन्हें अभिहित किया गया है, इसलिये "व्यञ्जिता" इस पदसे इन्हें युक्त किया गया है, महार्णव शब्दसे यह समझाया गया है, कि ये महानदियां बहुत पानीवाली होती हैं, इनमें अगाध जल रहता है, इन महानदियोंमें उतरना या इन्हें नाव आदिमें बैठकर पार करना इसलिये निषिद्ध

નીચેના પાંચ કારણોને લીધે તેમને તે મહા નદીઓ પાર કરવાનું કલ્પે છે પણ ખરૂ—(૧) ભયના સમયમા, (૨) દુર્ભિક્ષ (દુષ્કાળના) સમયમા (૩) કેઈ નિરંતર કષ્ટ દેતું હોય એવી પરિસ્થિતિમાં, (૪) નદીઓનો પ્રચુર પ્રવાહ ઉન્માર્ગગામી થાય ત્યારે અને (૫) અનાર્યો દ્વારા આક્રમણ થાય ત્યારે

આ મહાનદીઓને " ઉદ્દિષ્ટ " વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યું છે, કારણ કે તેમને ઉદ્દેશીને એમ કહેવામા આવ્યું છે કે તે મહાનદીઓ છે તેમને પાંચની સંખ્યામાં અહીં પ્રકટ કરવામાં આવી છે, તેથી તેમને " गणिता " આ વિશેષણ લગાડવામા આવ્યું છે. તથા ' ગંગા, જમુના ' આદિ નામો દ્વારા તેમને અભિહિત કરવામાં આવેલ છે, તેથી તેમને " વ્યંજિતા " વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યું છે. " મહાર્ણવ " આ શબ્દ દ્વારા એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે તે મહાનદીઓ બહુ જ પાણીવાળી છે—તેમાં અગાધ જળ હોય છે. આ મહાનદીઓમાં ઉતરવાનો અને નાવ આદિ દ્વારા તેમને પાર કરવાનો, તે કારણે નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે કે એવું કાર્ય કરવાથી

वतरणम् । ता एव महानद्यः प्रोक्ता-तद्यथा-गङ्गा, यमुना इत्यादि । पञ्चस्थानकानुरोधाच्च प्रसिद्धा गङ्गादयो महानद्यः प्रोक्ता, तत इतोऽतिरिक्ता अपि बहूदका महानद्यो न कल्पन्ते उत्तरीतुं सन्तरीतुं वेति बोध्यम् । इत्थं निषेधमुक्त्वा सम्प्रति तदपवादमाह-' पञ्चहिं ठाणेहिं ' इत्यादि । पञ्चभिः स्थानैः साधूनां साध्वीनां वा इमा बहूदका महानद्यः उत्तरीतुं सन्तरीतुं वा कल्पते । यैः स्थानैः कल्पते तानि स्थानानि आह-तद्यथा-भये=शत्रुभूतराजादिजनिते धर्मोपकरणापहरणविषयके

कहा गया है, कि ऐसे कार्यसे आत्मा और संयमकी विराधना होती है, और चारित्रमें शबलता आती है। कहा भी है "बतो मासस्स तओ" इत्यादि

दकक्षेप शब्दका अर्थ जलमें उतरना जलको नाव आदिके द्वारा पार करना ऐसा है, यहां पञ्चस्थानकके अनुरोधसे प्रसिद्ध गंगा आदि महानदियांही प्रकट की गई हैं अतः इनसे भी अतिरिक्त जो बहूदकवाली महानदियां हैं, उनमें भी उतरना और उन्हें पार करना भी साधु साध्वीके लिये कल्प्य नहीं है।

इस प्रकारसे यह कथन निषेधमुखसे किया है, अब इस विषयमें जो अपवाद है, उसे प्रकट करनेके निमित्त सूत्रकार कहते हैं-"पंचहिं ठाणेहिं" इत्यादि-यहां इन पांच कारणोंके उपस्थित होने पर साधु और साध्वियोंको ये बहूदकवाली महानदियोंमें उतरना और उन्हें नाव आदि द्वारा पार करना पड़े तो वे कर सकते हैं-वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं-शत्रु भूत किसी राजा आदि द्वारा यदि ऐसा भय

આત્મા અને સંયમની વિરાધના થાય છે, અને ચારિત્રમાં શબલતા (કમજોરી) આવે છે કહ્યું પણ છે કે—" बतो मासस्स तओ " ઇત્યાદિ

"દકક્ષેપ" આ શબ્દનો અર્થ "જળમાં ઉતરવું અથવા જળને નાવ આદિ દ્વારા પાર કરવું" થાય છે અહીં પાંચ સ્થાનનું પ્રકરણ હોવાથી ગંગાદિ પાંચ પ્રખ્યાત મહાનદીઓ જ પ્રકટ કરવામાં આવી છે પણ તે સિવાયની બીજી ઘણા પાણીવાળી મહાનદીઓ છે, તેમાં ઉતરવાનું અને તેમને પાર કરવાનું પણ સાધુ સાધ્વીઓને કલ્પતું નથી, એમ સમજવું આ પ્રકારે તે પાંચ નદીઓને પાર કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે છતાં પણ તેના બે અપવાદો છે, તે હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

'पंचहिं ठाणेहिं " ઇત્યાદિ—નીચેના પાંચ કારણો ઉપસ્થિત થાય તો, તેઓ અગાધ જળવાળી અને ઉપર્યુક્ત નિષેધવાળી તે મહાનદીઓમાં ઉતરી શકે છે, અથવા તેમને નાવ આદિ વડે પાર કરી શકે છે—(૧) કોઇ શત્રુ રાજાને

भये सति २। दुर्भिक्षे वा=अथवा भिक्षाया अभावे सति ३। वा=अथवा कोऽपि शत्रुत्वमापन्नः पुरुषो निरन्तरं प्रव्यथते=अन्तर्भावितण्यर्थत्वाद् व्यथामुत्पादयति चेत्तदा; अथवा-' प्रवहेद् वा खलु कोऽपि ' इतिच्छाया, कोऽपि पुरुषो गङ्गायां प्रवहेत्-प्रवाहयेत्=प्रक्षिपेत् तदा ३। अत्रापि अन्तर्भावितण्यर्थता। वा=अथवा दकौघे-उन्मार्गगामितया प्रचुरे गङ्गादीनाम् जलसमूहे महता वेगेन एज्जमाने= आगच्छति सति ४। वा=अथवा अनार्येषु=म्लेच्छेषु आक्रामत्सु सत्सु-म्लेच्छेभ्यो जीवनचारित्रादीनामपहारसंभवात् तदाक्रमणे सति ५। एभिः पञ्चभिः कारणै-र्निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यो वा गङ्गाद्या महानदीरुत्तरीतुं संतरीतुं वा शक्नुवन्ति। तदुक्तम्-

" अवाहे दुब्भिक्खे, भए दओघंसि वा महंतंसि।
परिभवतालणं वा, जया परो वा करेज्जासि ॥ १ ॥

छाया—आबाधायाम् दुर्भिक्षे भये दकौघे वा महति।
परिभवताडन वा यदा परो वा करिष्यति ॥ १ ॥ इति ॥ सू० १ ॥

उपस्थित किया गया हो कि जिसमें धर्मोपकरणके अपहरण होनेकी बात हो, अथवा दुर्भिक्ष भिक्षाकी प्राप्ति जब नहीं रही हो अथवा-शत्रुताको धारण करनेवाला कोई पुरुष निरन्तर व्यथाको-कष्टको दे रहा हो-अथवा कोई पुरुष गङ्गा आदिमें बहा देता है, अथवा-उन्मार्गगामी हो जानेसे गंगा आदिका प्रचुर जलसमूह बडे वेगसे बढ रहा हो अथवा-जब म्लेच्छ अनार्यजन आक्रमण कर रहे हों और ऐसी स्थितिमें उनसे जीवनकी या चारित्रकी अपहृति(नाश) होनेकी संभावना हो तो ऐसे इन पांच कारणोंके होने पर निर्ग्रन्थ-साधु साध्वियोंको गंगा

કારણે એવો ભય ઉપસ્થિત થયો હોય છે કે જેને લીધે ધર્મોપકરણના અપહરણને ભય ઉત્પન્ન થયો હોય. (૨) દુર્ભિક્ષને કારણે જો ભિક્ષાની પ્રાપ્તિ અશક્ય બની ગઈ હોય, (૩) અથવા કોઇ શત્રુ નિરન્તર વ્યથા (કષ્ટ) પહોંચાડી રહ્યો હોય, અથવા (૪) ઉન્માર્ગગામી થવ ને કારણે ગંગા આદિને પ્રચુર જલસમૂહ ઘણા જ વેગથી વૃદ્ધિ પ મી રહ્યો હોય અથવા કોઇ વ્યક્તિ પોતાને પરાણે ગગા આદિમાં ડુબાડી દેશે એવો ભય ઉત્પન્ન થયો હોય, અથવા (૫) મ્લેચ્છોનુ જ્યારે આક્રમણ થઇ રહ્યું હોય અને તે કારણે જ્યારે જીવન નષ્ટ થવાને સભવ જણાતો હોય. આ પાંચ કારણો જ્યારે ઉપસ્થિત થાય, ત્યારે શ્રમણ નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓને ગંગાદિ મહાનદીઓમાં ઉતરવાનું અને નાવ આદિ દ્વારા તેમને પાર કરવાનું કલ્પે છે પણ પ્રાર•

मूलम्-णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढम पाउसंसि गामाणुगाम दूइज्जित्तए। पचहिं ठाणेहिं कप्पइ, त जहा-भयंसि वा दुब्भिक्खंसि वा जाव महया वा अणारिएहिं। वासावासं पज्जोसवियाणं णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा गामाणुगाम दूइज्जित्तए। पचहिं ठाणेहिं कप्पइ, त जहा णाणट्ठयाए १ दंसणट्ठयाए २ चरित्तट्ठयाए ३ आयरियउवज्झाया वा से विसुभेज्जा, ४ आयरियउवज्झायाण वा बहिया वेयावच्चकरणयाए ५॥ सू० २॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा प्रथमप्रावृषि ग्रामानुग्राम द्रोतुम्। पञ्चभि स्थानैः कल्पते, तद्यथा-भये वा दुर्भिक्षे वा यावत् महता, वा अनार्येषु। वर्षावासं पर्युषितानां नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा ग्रामानुग्राम द्रोतुम्। पञ्चभि स्थानैः कल्पते, तद्यथा-ज्ञानार्थतया १, दर्शनार्थतया २, चारित्रार्थतया ३, आचार्योपाध्याया वा तस्य विष्वग्भवेयुः ४, आचार्योपाध्यायानां वा बहिः वैयावृत्यकरणतया ५॥ सू० २॥

टीका—'णो कप्पइ' इत्यादि—

प्रथमप्रावृषि-प्रावृट्=वर्षाऋतुः सा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिविधा। तत्र-जघन्या चतुर्मासप्रमाणा-आषाढपूर्णिमायां चातुर्मासनिवासार्थं समागमनात् १,

आदि महानदियोंमें उतरना और नाव आदि द्वारा उन्हें पार करना कल्पित है। कहा भी है—"आबाहे दुब्भिक्खे" इत्यादि।

इस गाथाका अर्थ पूर्वोक्तानुसारही है॥सू०१॥

'णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि' इत्यादि २॥

टीकार्थ-वर्षा ऋतु जघन्य मध्यम और उत्तमके भेदसे तीन प्रकारकी कही गई है, इनमें चातुर्मास प्रमाण जो वर्षाऋतु है वह जघन्य वर्षाऋतु

કહ્યું પણ છે કે 'આબાહે દુબ્ભિક્ખે' ઇત્યાદિ—આ ગાથાનો અર્થ ઉપર લખ્યા અનુસાર જ સમજવો. ॥ સૂ ૧॥

"णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—વર્ષાઋતુને જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની કહી છે તેમાંથી ચાતુર્માસ પ્રમાણ જે વર્ષાઋતુ છે, તેને જઘન્ય વર્ષાઋતુ કહે છે.

मध्यमा पञ्चमासिकी–वृष्टि बाहुल्यादिकारणेनाषाढकृष्णप्रतिपदायामेव समागमनात् २, उत्कृष्टा–षण्मासप्रमाणा पूर्वोक्तकारणवशादाषाढकृष्णप्रतिपदात आरभ्याधिकमाससद्भावेन कार्त्तिकीं यावद् भवति। प्रथमा चासौ प्रावृट् चेति प्रथमप्रावृट्। प्रावृड्–हेमन्त–ग्रीष्मरूपाणां त्रयाणाम् ऋतूनां मध्ये प्रावृषः प्राथम्यात् प्रावृड् ऋतुः प्रथमप्रावृट् इत्युच्यते। तस्मिन् निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा ग्रामानुग्रामम्=ग्राममनुगतो ग्रामः–ग्रामानुग्रामस्तम् नो कल्पते द्रोतुं=गन्तुं

है, वह आषाढकी पूर्णिमासे लेकर चार मास तक निवासके लिये होती है १ मध्यम वर्षाऋतु पांच महिनेकी होती है, वृष्टिकी अधिकता होने पर यह आषाढ कृष्ण प्रतिपदासेही आ जाती है, उत्कृष्ट वर्षाऋतु छह महिनेकी होती है, पूर्वोक्त कारणके वशसे आषाढ कृष्ण प्रतिपदासे लेकर अधिक मासके सद्भाव हो जानेसे कार्तिक तक होती है, प्रथम जो वर्षाऋतु है, वह प्रावृट्–वर्षाऋतु है, इसे जो प्रथम प्रावृट् वर्षाऋतु कहा गया है, उसका तात्पर्य ऐसा है कि प्रावृट् हेमन्त एव ग्रीष्म इन तीनमें इन तीन ऋतुओंके मध्य में वर्षाऋतुको प्रथम गिना गया है, इसलिये यहां वर्षाऋतुको "प्रथम" विशेषणसे विशेषित किया गया है, तात्पर्य इसका यही है, कि जब वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जाती है, तब निर्ग्रन्थों एवं निर्ग्रन्थिनियोंको एक गांवसे दूसरे गांवमें विचरण करना

તે અષાઢી પૂનમથી શરૂ કરીને કાર્તકી પૂનમ સુધીના ચાર માસની હોય છે. મધ્યમ વર્ષાઋતુ પાંચ માસની હોય છે વૃષ્ટિની અધિકતા હોય ત્યારે તે અષાઢી કૃષ્ણ પ્રતિપાદથી શરૂ થઈ જાય છે (ગુજરાતમાં દરેક માસનો શુક્લ પક્ષ પહેલાં અને કૃષ્ણપક્ષ પછી આવે છે જ્યારે મારવાડ વગેરેમા કૃષ્ણપક્ષ પહેલા અને શુક્લપક્ષ પછી આવે છે. આ રીતે અષાઢ વદ એકમથી વર્ષાઋતુ શરૂ થાય તો પાચ માસની વર્ષાઋતુ થાય છે.) ઉત્કૃષ્ટ વર્ષાઋતુ છ માસની હોય છે. પૂર્વોક્ત કારણે અષાઢ વદી એકમથી વર્ષાઋતુ શરૂ થતી હોય અને વચ્ચે કોઇ અધિક માસ આવતો હોય ત્યારે વર્ષાઋતુ છ માસની થાય છે પ્રથમ જે વર્ષાઋતુ છે તેને પ્રાવૃટ્ વર્ષાઋતુ કહે છે પ્રાવૃટ્–વર્ષા, હેમન્ત અને ગ્રીષ્મ આ ત્રણે ઋતુઓમાં વર્ષાઋતુને પ્રથમ ગણવામાં આવી હોવાથી વર્ષાઋતુની આગળ "પ્રથમ" વિશેષણ વપરાયું છે. આ સૂત્રમાં એવું પ્રકટ કરવામાં આવ્યુ છે કે જ્યારે વર્ષાઋતુનો પ્રારંભ થાય છે, ત્યારે નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓને એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરવાનો નિષેધ કર્યો છે આગમમા "આ પ્રકારનો વિહાર સાધુઓને કલ્પતો નથી" એવું વિધાન

जीवैः भूमेर्व्याप्तत्वात् । इत्थं निर्गमननिषेधमुक्त्वा सम्प्रति तदपवादमाह–'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि । सूत्रोक्तैर्भयदुर्भिक्षादिभिः कारणैस्तु गन्तुं कल्पते एवेति । 'वासावास' इत्यादि–वर्षावासं=वर्षाकाले पर्युषितानां स्थितानां निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा ग्रामानुग्रामं गन्तुं न कल्पते । ज्ञानार्थतादिभिः पञ्चभिः स्थानैस्तु कल्पते एव । तदेवापदर्शयितुमाह–' पचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि । तथाहि–

निषिद्ध है, आगमसे वर्जित है, क्योंकि–उस समय द्वीन्द्रियादि जीवोंसे भूमि व्याप्त हो जाती है, इस तरहसे एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें जानेका निषेध प्रकट कर अब सूत्रकार इसमें जो अपवाद मार्ग है, उसका कथन करते हैं–"पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ" इत्यादि । यद्यपि वर्षाऋतुमें साधु साध्वियोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें आनाजाना शास्त्राज्ञानुसार निषिद्ध है, और ऐसाही यह उत्सर्ग मार्ग है, परन्तु फिर भी इस विषयमें अपवाद मार्ग ऐसा है, कि यदि सूत्रोक्त भय दुर्भिक्ष आदि कारण उपस्थित हो जाते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वर्षाऋतुमें भी साधु आदिको एक स्थानसे दूसरे स्थान ग्राममें जाना कल्पित कहा गया है । " वासावासं पज्जोसवियाणं णो कप्पइ० " इत्यादि–वर्षाकालमें एक स्थान पर ठहरे हुए साधु आदिको एक गांवसे दूसरे ग्राम विहार करना उचित नहीं है–शास्त्राज्ञासे विरुद्ध है, परन्तु– ' पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ तं जहा णाणट्ठयाए ? ' इत्यादि–इन कारणोंको लेकर वे वर्षाकालमें भी एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, इनमें सबसे पहिला प्रयोजन रूप कारण ऐसा है, कि यदि व ज्ञान

છે કારણ કે તે સમયે ભૂમિ દ્વીન્દ્રિયાદિ જીવોથી વ્યાપ્ત હોય છે આ રીતે વર્ષાકાળમાં એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરવાનો નિષેધ ફરમાવીને હવે સૂત્રકાર તેના જે અપવાદો છે તે પ્રકટ કરે છે

"પંચહિં ઠાણેહિં કપ્પઇ" ઇત્યાદિ—નીચેના પાંચ કારણો માંથી કોઇ પણ કારણ ઉપસ્થિત થાય તો એવા સંયોગોમાં વર્ષાઋતુમાં પણ સાધુ સાધ્વીને એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરવો કલ્પે છે 'वासावासं पज्जोसवियाणं णो कप्पइ' ઇત્યાદિ–વર્ષાકાળમાં કોઈ એક ગામમાં રહેલા સાધુ સાધ્વીને તે ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરવો તે ઉચિત નથી–એવું કરવું તે શાસ્ત્રાજ્ઞાથી વિરૂદ્ધ છે પરન્તુ ' पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ तं जहा णाणट्ठयाए " ઇત્યાદિ નીચે બતાવેલા પાંચ કારણોને લીધે તેઓ વર્ષાઋતુમાં પણ એક ગામથી બીજે

ज्ञानार्थतया-ज्ञानमेव अर्थः=प्रयोजनं यस्य स ज्ञानार्थः, तस्य भावस्तत्ता तया-ज्ञानप्रयोजनमुद्दिश्य गन्तुं कल्पते । अयं भावः-कश्चिदाचार्योऽपूर्वश्रुतस्कन्ध-धारको भक्तं प्रत्याख्यातुकामो भवेत् । यदि तत्सकाशादसावपूर्वश्रुतस्कन्धो न गृह्येत तदाऽसौ विच्छिद्येत, अतस्तद्ग्रहणार्थं गन्तुं कल्पते इति १ । एवं दर्शनार्थ-तया=भक्तं प्रत्याख्यातुकामात् कुतश्चिदाचार्याद् दर्शनप्रभावकशास्त्राध्ययनार्थं गन्तुं कल्पते इति २। तथा-चारित्रार्थतया=यत्र क्षेत्रे वर्षावासस्थितिः कल्पिता,

---

प्राप्त करनेके लिये अभिलाषी है, तो इस उद्देश्यको लेकर वे उस कालमें विहार कर सकतेहैं१ । तात्पर्य इसका ऐसाहै-कि अपूर्व श्रुतस्कन्धधारक कोई आचार्य हो, और वह भक्तप्रत्याख्यान(संथारा)करनेका अभिलाषी हो रहा तो ऐसी स्थितिमें यदि उसके पास जाकर वह अपूर्व श्रुतस्कन्ध ज्ञान प्राप्त नहीं किया जाता है, तो उसका विच्छेद हो जाता है, अतः वह अपूर्व श्रुतस्कन्ध विच्छिन्न हो जाये इस अभिलाषासे प्रेरित हुआ साधु उस ज्ञानको प्राप्त करनेको वर्षाकालमें भी विहार कर सकता है, दूसरा कारण है, ऐसा है कि दर्शन प्रभावक शास्त्रका ज्ञाता यदि कोई आचार्य भक्त प्रत्याख्यान करनेवाला हो रहा हो तो उससे उस दर्शन प्रभावक शास्त्रको अध्ययन करनेके लिये साधु वर्षाकालमें भी उसके पास जानेके लिये विहार कर सकता है २। तृतीय कारण ऐसा

---

(૧) જ્ઞાનાર્થે—કોઇ સાધુ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાની અભિલાષાવાળો હોય, તો તે ઉદ્દેશ્યને લીધે તે વર્ષાકાળમાં પણ વિહાર કરી શકે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

અપૂર્વ શ્રુતસ્કન્ધ ધારક કોઇ આચાર્ય હોય, અને તે આચાર્ય ભક્ત-પ્રત્યાખ્યાન (ચતુર્વિધ આહારના ત્યાગપૂર્વક સંથારો) કરવાની અભિલાષા સેવતો હોય તો એવી પરિસ્થિતિમાં જો તેની પાસે જઇને કોઈ જ્ઞાનપિપાસુ સાધુ તે અપૂર્વ શ્રુતસ્કન્ધ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી ન લે તો તેનો વિચ્છેદ થઈ જવાનો સંભવ રહે છે તેથી તે અપૂર્વ શ્રુતસ્કન્ધ જ્ઞાન વિછિન્ન ન થઇ જાય એવી શુભ અભિલાષાથી પ્રેરિત થયેલો સાધુ વર્ષાકાળમાં પણ તે જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરવા માટે વિહાર કરીને તે શ્રુતસ્કન્ધ ધારક સાધુ પાસે જઈ શકે છે

હવે બીજું કારણ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—દર્શન પ્રભાવક, શાસ્ત્રના જ્ઞાતા એવા કોઈ આચાર્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાન કરવાનો વિચાર કરી રહ્યો હોય તો તે દર્શનપ્રભાવક શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કરવા નિમિત્તે સાધુ વર્ષાકાળમાં પણ તેમની પાસે જવાને માટે વિહાર કરી શકે છે

तत्क्षेत्रं यदि अनेषणास्त्र्यादि दोषदुष्टं भवेत्तदा चारित्ररक्षणार्थं कल्पते गन्तु मिति ३। तथा-आचार्योपाध्याया वा 'से' इति तस्य साधोः अत्र जात्यैकवचनं, तेन तेषां साधूनामित्यर्थः, विष्वग्भवेयुः=शरीरात् पृथग्भवेयुः-म्रियेरन्, तत्र गच्छे चेदन्य आचार्य उपाध्यायो वा न भवेत् तदा तेषां साधूनां कल्पते गन्तुमिति। अथवा-' विसुंभेज्जा ' इत्यस्य विश्रम्भेयुरितिच्छाया। आचार्योपाध्यायाः तस्य=त साधु विश्रम्भेयुः-विश्वस्युः, तदाऽत्यन्तरहस्यकार्यं कर्तुं तस्य साधो र्गन्तु कल्पत इति ४। तथा-आचार्योपाध्यायानां यदि=वर्षाक्षेत्राद् बहिर्वर्तमानानां रोगादिग्रस्तानां वैयावृत्यकरणतया=वैयावृत्यकरणार्थं साधो र्गन्तुं कल्पते ॥ ५ ॥ इति ॥ सू० २ ॥

है, कि जिस स्थानमें वर्षावास किया है, वह क्षेत्र यदि अनेषणा स्त्री आदिक दोषसे दूषित है, तो अपने चारित्रकी रक्षाके लिये साधु वर्षाकालमें भी अन्यत्र जा सकता है, चतुर्थ कारण ऐसा है, वर्षावास करनेवाले साधुओंका यदि कोई आचार्य अथवा उपाध्याय शरीरसे पृथक् हो गया हो-मर गया हो और उस गच्छमें अन्य आचार्य या उपाध्याय न हो तो ऐसी स्थितिमें उन साधुओंका वर्षाकालमें भी अन्यत्र विहार करना कल्पित कहा गया है-अथवा-" विसुंभेज्जा " की संस्कृत छाया ' विश्रम्भेयुः " ऐसी भी होती है, तो इस पक्षमें इसका ऐसा अर्थ होताहै, कि वे आचार्य अथवा उपाध्याय यदि उस साधु का विश्वास करते हैं, तो अत्यन्त रहस्यमय (गुप्त) उस कार्यको करनेके लिये उस साधुका वर्षाकालमें भी विहार करना कल्पित कहा गया है

ત્રીજુ કારણ આ પ્રમાણે છે—જે સ્થળે ચાતુર્માસમાં વાસ કર્યો હોય, તે ક્ષેત્ર એ અનેષણા સ્ત્રી આદિના દોષથી દૂષિત હોય, તો પોતાના ચારિત્રની રક્ષા નિમિત્તે સાધુ ત્યાંથી અન્ય સ્થળે વિહાર કરી શકે છે

ચોથુ કારણ આ પ્રમાણે છે—કોઈ ક્ષેત્રમાં ચાતુર્માસ વર્ષાવાસ કર્યા બાદ જો તે સાધુઓના આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય કાળધર્મ પામી જાય, અને તે ગચ્છમાં અન્ય આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય ન હોય તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે સાધુઓને વર્ષાકાળ દરમિયાન પણ વિહાર કરવો કલ્પે છે અથવા " વિસુંભેજ્જા " આ પદની સંસ્કૃત છાયા ' વિશ્રમ્ભેયુ: " આ પ્રમાણે પણ થાય છે. તો તે સંસ્કૃત છાયાની અપેક્ષાએ આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે--" જો તે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય તે સાધુ ઉપર ખૂબ જ વિશ્વાસ ધરાવતા હોય તો કોઈ અત્યન્ત રહસ્યમય કામ કરવાને માટે તે સાધુને વર્ષાકાળમાં પણ વિહાર કરવો કલ્પે છે પાંચમુ કારણ નીચે પ્રમાણે છે—

छद्मस्था' केचित् अनुद्घातिका भवन्तीति अनुद्घातिकानां पञ्च स्थानानि प्राह–

मूलम्–पंच अणुग्घाइया पण्णत्ता, तं जहा-हत्थकम्मं करेमाणे १, मेहुणं पडिसेवमाणे २, राईभोयणं भुंजमाणे ३, सागारियं भुंजमाणे ४, रायपिंडं भुंजमाणे ५ ॥ सू० ३ ॥

छाया—पञ्च अनुद्घातिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–हस्तकर्मकुर्वाणः १ मैथुनं प्रतिसेवमानः २ रात्रिभोजनं भुञ्जानः ३ सागारिकपिण्डं भुञ्जानः ४, राजपिण्डं भुञ्जानः ५ ॥ सू० ३ ॥

टीका—' पंच अणुग्घाइया ' इत्यादि—

अनुद्घातिकाः–उद्घातः=लघूकरणं, स न विद्यते यस्य प्रायश्चित्तरूपतपोविशेषस्य तत् अनुद्घातं=गुरु प्रायश्चित्तम्, तदस्ति येषां प्रतिसेवनाविशेषवशात्तेऽनुद्घातिकाः ते च पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञप्ता'। तद्यथा–' हस्तकर्मकुर्वाणः ' इत्यादि।

पांचवां कारण ऐसा है, कि वर्षाक्षेत्रसे बाहर वर्तमान आचार्य या उपाध्याय हों और वे रोगग्रस्त हो गये हों तो ऐसी स्थितिमें उनकी वैयावृत्ति करनेके लिये साधुका बाहर जाना कल्पित कहा गया है ५।२।

कितनेक छद्मस्थ अनुद्घातिक होते हैं। अतः अब सूत्रकार उन अनुद्घातिकोंके पांच स्थानोंका निरूपण करते हैं—

'पंच अणुग्घाइया पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ३ ॥

टीकार्थ–उद्घात शब्दका अर्थ लघु करनाहै, यह लघुकरण रूप उद्घात जिस प्रायश्चित्त रूप तपविशेषका नहीं होता है, ऐसा वह गुरु प्रायश्चित्त प्रतिसेवना विशेषके वशसे जिनको होता है, वे अनुद्घातिकहैं। ये अनुद्घातिक पांच प्रकारके होतेहैं–एक हस्तकर्मको करनेवाले१ दूसरे

---

(૫) સાધુઓએ અમુક ક્ષેત્રમા વર્ષાવાસ કર્યો હોય, અને તે ક્ષેત્રની બહારના કોઈ ક્ષેત્રમા રહેલા આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય બીમાર થઇ જાય, તો એવી પરિસ્થિતિમા તેમનુ વૈયાવૃત્ય (સેવા) કરવા માટે સાધુને વિહાર કરવો કલ્પ્ય ગણાય છે ॥ સૂ ૨ ॥

કેટલાક છદ્મસ્થ અનુદ્ઘાતિક હોય છે. હવે સૂત્રકાર તે અનુદ્ઘાતિકોના પાંચ સ્થાનોનુ નિરૂપણ કરે છે—" પચ અણુગ્ઘાઇયા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–' ઉદ્ઘાત ' એટલે 'લઘુ કરવુ' આ લઘુકરણ રૂપ ઉદ્ઘાત જે પ્રાયશ્ચિત રૂપ તપવિશેષનો થતો નથી એવુ તે ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રતિસેવના વિશેષના પ્રભાવથી જેમને થાય છે, તેમને અનુદ્ઘાતિક કહે છે તે અનુદ્ઘાતિક નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકારના હોય છે—(૧) હસ્ત કર્મ કરનારા, (૨) મૈથુનનુ સેવન

थम-हस्तकर्म=समयपरिसिद्धम्, तद् कुर्वाणः १। मैथुनम्=अब्रह्म प्रतिसेवमानः २। रात्रिभोजनम्-भुज्यते इति भोजनं, रात्रौ भोजनं रात्रिभोजनं, तच्च द्रव्यतोऽशनादिकम् क्षेत्रतः समयक्षेत्रे, कालतः-दिवा गृहीतं (रात्रिमुल्लङ्घ्य) दिवा भुक्तं, दिवा गृहीतं रात्रौ भुक्तम्, रात्रौ गृहीतं रात्रौ भुक्तम्, रात्रौ गृहीतं दिवा भुक्तम्-इत्येवं चतुर्भङ्गात्मकम्, भावतो रागद्वेषाभ्याम्, तद् भुञ्जानः। रात्रिभोजनने दोषा भोक्ताः, उक्तञ्च—

मैथुनका सेवन करनेवाले २ तीसरे रात्रिभोजन करनेवाले ३ चौथे सागारिक (शय्यातर) पिण्ड खानेवाले ४ और पांचवे राजपिण्ड खानेवाले ५ इनमें हस्तकर्म प्रसिद्ध है, इसे हस्तक्रिया भी कहते हैं। मैथुनकर्म भी प्रसिद्ध है इसे सैद्धान्तिक परिभाषामें अब्रह्मका सेवन करना कहा गया है। रात्रि भोजन द्रव्य, क्षेत्र काल और भावकी अपेक्षासे चार प्रकारका कहा गया है, द्रव्यकी अपेक्षा रातमें अशन आदिका खाना यह द्रव्य रात्रि भोजन है, मनुष्य क्षेत्रके भीतर किसी भी स्थान पर बैठकर रातमें भोजन करना यह क्षेत्रकी अपेक्षा रात्रि भोजन है, दिवसमें लाये हुए भोजनको रातभर रखकर दूसरे दिन खाना दिनमें लाये हुए भोजनको रात्रिमें खाना, रात्रिमें गृहीत भोजनको रात्रिमें खाना और रात्रिमें गृहीत भोजनको दिनमें खाना इस तरहसे कालकी अपेक्षा रात्रि भोजन चार प्रकारका है, तथा-रागद्वेषसे युक्त होकर

કરનારા (૩) રાત્રિ ભોજન કરનારા (૪) સાગારિક પિંડ ખાનારા અને (૫) રાજપિંડ ખાનારા હવે આ પાંચેનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

"હસ્તકર્મ" આ શબ્દનો અર્થ હસ્તદોષ પણ થાય છે મૈથુન કર્મ એટલે અબ્રહ્મનું સેવન રાત્રિભોજન દ્રવ્ય ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે રાત્રે કોઈ પણ પ્રકારના અશન પાન આદિ ખાવા તેનું નામ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન છે મનુષ્ય ક્ષેત્રના કોઈ પણ સ્થાન પર બેસીને રાત્રે ભોજન કરવું તેને ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન કહે છે દિવસે વહોરી લાવેલા ભોજનને આખી રાત રાખી મૂકીને બીજે દિવસે ખાવું અથવા દિવસે વહોરી લાવેલા ભોજનને રાત્રે ખાવું અથવા રાત્રે લાવેલા ભોજનને રાત્રે ખાવું રાત્રે વહોરી લાવેલા ભોજનને દિવસે ખાવું, તેનું નામ રાત્રિભોજન છે આ રીતે કાળની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજનના ચાર પ્રકાર સમજવા રાગ દ્વેષથી યુક્ત થઈને જે ભોજનનો રાત્રે ઉપભોગ કરવામાં

"संति मे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा ।
जाओ राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ॥१॥
उदउल्लं बीयसंसत्तं, पाणा निवडिया महिं ।
दिया ताहिं विवज्जिज्जा, राओ तत्थ कह चरे ॥२॥
एयं च दोसं दट्ठूणं, नायपुत्तेण भासियं ।
सव्वाहारं न भुजंति, निग्गंथा राइभोयणं ॥३॥

छाया —सन्ती मे सूक्ष्माः प्राणाः त्रसा अथवा स्थावराः ।
यान् रात्रौ अपश्यन्, कथमेषणीयं चरेत् ॥१॥
उदकार्द्रा बीजसंसक्ताः प्राणा निपतिता महीम् ।
दिवा तान् विवर्जयेत्, रात्रौ तत्र कथं चरेत् ॥२॥
एतं च दोषं दृष्ट्वा ज्ञातपुत्रेण भाषितम् ।
सर्वाहारं न भुञ्जते निर्ग्रन्था रात्रिभोजनम् ॥३॥ इति ।

जो भोजन रात्रिमें किया जाता है, वह भावकी अपेक्षा रात्रि भोजन है, रात्रिभोजनमें दोष इस प्रकारसे कहे गये हैं—

"सतिमें सुहुमा पाणा" इत्यादि ।

रात्रिमें सूक्ष्म त्रस जीव और स्थावर जीव दृष्टिपथ नहीं होते हैं, अतः अहिंसा व्रतकी रक्षा करनेवाले मुनिजन उसमें भिक्षावृत्ति नहीं करते हैं । पानीसे आर्द्र हुई एवं बीजसे युक्त हुई भूमिमें प्राणी बहुतसे गिरते रहते हैं, अतः दिनमें तो उनका बचाव हो जाता है, परन्तु रात्रिमें इनका बचाव नहीं हो सकता है, इस प्रकारके इस दोषको देखकर ज्ञातपुत्र महावीरने रात्रिमें भिक्षावृत्तिका और रात्रिके भोजनका त्याग करना कहा है ।

આવે છે, તેને ભાવની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન કહે છે રાત્રિભોજનના આ પ્રમાણે દોષો કહ્યા છે—" सति मे सुहुमा पाणा " ઇત્યાદિ—

રાત્રે સૂક્ષ્મ ત્રસજીવો અને સ્થાવર જીવો દૃષ્ટિગોચર થતા નથી તેથી અહિંસા વ્રતની રક્ષા કરનારા મુનિજનો રાત્રે ભિક્ષાવૃત્તિ કરતા નથી પાણીથી ભીની થયેલી અને બીજથી યુક્ત બનેલી ભૂમિમાં ઘણા જીવો આવી પડતાં હોય છે દિવસે તો સાવધાનીપૂર્વક ચાલવાથી તેમની રક્ષા થઈ જાય છે, પણ રાત્રે તો તેઓ નજરે જ નહીં પડતા હોવાથી તેમની વિરાધના થઈ જાય છે. આ પ્રકારની પરિસ્થિતિનો વિચાર કરીને શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે રાત્રે ભિક્ષાવૃત્તિ માટે ફરવાનો અને રાત્રિભોજન કરવાનો નિષેધ કર્યો છે. તથા

तथा—

" जइवि हु फासुगदव्वं, कुन्थू पणगा तहावि दुप्पस्सा ।
पच्चक्खं नाणी विहु, राईभत्तं परिहरंति ॥१॥
जइ वि य पिवीलिगाई, दीसंति पईवजोइउज्जोए ।
तहवि खलु अणाइण्णं मूलवयविराहणा जेण " ॥२॥

छाया—यद्यपि खलु प्रासुकद्रव्यं कुन्थवः पनकास्तथापि दुर्दर्शाः ।
प्रत्यक्ष ज्ञानिनोऽपि खलु रात्रिभक्तं परिहरन्ति ॥१॥
यद्यपि च पिपीलिकादयो दृश्यन्ते प्रदीप ज्योतिरुद्योते ।
तथापि खलु अनाचीर्णं मूलव्रतविराधना येन ॥२॥ इति ।१।

तथा—सागारिकपिण्डम्—अगारेण सह वर्तते सागारः, स एव सागारिकः— शय्यातर तस्य पिण्डः=आहारः, तं भुञ्जान । सागारिकपिण्डभोजने हि दोषा भवन्ति । तदुक्तम्—

" तित्थयरपडिक्कुट्ठो, आणा अन्नाय उग्गमे न सुज्झे ।
अविमुत्ति अलाघवया दुल्लहसेज्जा य वोच्छेओ ॥१॥"

छाया—तीर्थकरप्रतिक्रुष्ट आज्ञा, अज्ञातं उद्गमश्च नो शुध्येत् ।
अविमुक्तिरलाघवता, दुर्लभशय्या च व्युच्छेदः ॥१॥ इति ।

अथ भावः—तीर्थकरैः प्रतिक्रुष्टो=निषिद्धः शय्यातरपिण्डः, अत स न

तथा—" जइविहु फासुगदव्वं " इत्यादि

इन गाथाओंका अर्थ स्पष्ट है, अगारसे जो युक्त होता है, वह सागार है, वह सागारही सागारिक है। इसे शय्यातर कहा गया है इनके घरका आहार जो है, वह सागारिक पिण्ड है, इस सागारिक पिण्डको इसलिये वर्जित कहा है, कि यह सदोष होता है। जैसे कहा है—

" तित्थयरपडिक्कुट्ठो " इत्यादि ।

शय्यातरपिण्डका लेना तीर्थकरोने निषिद्ध किया है अतः जो

जइ वि हु फासुगदव्वं इत्यादि—

આ ગાથાઓનો અર્થ સ્પષ્ટ છે અગાર (દોષ)થી યુક્ત જે હોય છે તેને સાગાર કહે છે તે સાગાર જ સાગારિક છે તેને શય્યાતર કહેવામાં આવેલ છે જે સાધુએ જે મકાનના ઘરમાં આશ્રય લીધો હોય તે ઘરના આહારને શય્યાતર પિંડ અથવા સાગારિક પિંડ કહે છે તે સાગારિક પિંડનો નિષેધ કરવાનું કારણ એ છે કે તે સદોષ હોય છે કહ્યું પણ છે કે—

" તિત્થયરપડિક્કુટ્ઠો ઇત્યાદિ—

શય્યાતર ગ્રહણ કરવાનો તીર્થકરોએ નિષેધ કર્યો છે, તેથી જે સાધુ

ग्राह्यः अथ तं साधु गृह्णीयात्, तदा तीर्थकृतामाज्ञा विराधिता भवेत्। शय्या-तरस्य गृहे निवासवशात्तद्भैक्षमज्ञातं न भवतीति तदज्ञातत्वं स्वरूपतया न शुध्येत्। तथा-प्रत्यासन्नतया भैक्षपानादिनिमित्तं भूयोभूयस्तद्गृहे प्रविशतः साधोरुद्गमोऽपि न शुध्येत्। तथा-साधोः अविमुक्तिः=लोभो भवेत्=स्वाध्यायश्रवणादिना आवर्जितः शय्यातरो दधिदुग्धादिकं प्रणीतं द्रव्यं साधवे दद्यात्। साधुश्च तद्ग्रहणलोलुपतया तद्गृहं न परित्यजेदिति। तथा-अलाघवता-प्रचुरविशिष्टान्नपानादि लाभेन शरीरालाघवता प्रचुरवस्त्रादिलाभेन उपकरणालाघवता च भवेत्। तथा-दुर्लभशय्या-" येन किल शय्या दीयते, तेन आहाराद्यपि देयम् "-इति भयाद् गृहिणः शय्या न प्रयच्छेयुः, ततश्च साधूनां दुर्लभा शय्या भवेत्। इत्थ

साधु इसे लेता है, वह तीर्थंकरोंकी आज्ञाका विराधक होता है१, दूसरा शय्यातरके गृहमें निवासके वशसे उसका भैक्ष अज्ञात नहीं रहता है, अतः उसकी अज्ञातता स्वरूपसे शुद्ध नहीं होतीहै२, तीसरे उसके प्रत्यासन्न (समीप)होनेसे भैक्ष पान आदिके निमित्त वार२ उसके घरमें प्रवेश करनेवाले साधुका उद्गम दोष भी शुद्ध नहीं होताहै३, चौथे साधुको ऐसा लोभ भी हो जाता है, कि स्वाध्याय श्रवण आदिसे आकृष्ट हुआ शय्यातर मेरे लिये प्रणीत पुष्टिकर दहि दुग्ध आदि द्रव्य देगा। इस प्रकारके लोभसे आकृष्ट हुआ साधु उसके घरको नहीं छोडता है, प्रचुर विशिष्ट अन्न पान आदिके लाभसे उसके शरीरमें अलाघवता एवं प्रचुर वस्त्रादिके लाभसे उपकरण सम्बन्धी अलाघवता हो सकती है४, तथा-दुर्लभशय्या-" जो शय्या स्थान देता है, वह आहार आदि

તેને લે છે, તે તીર્થંકરોની આજ્ઞાનો વિરાધક બને છે. વળી શય્યાતરના ઘરમા નિવાસને લીધે તેનો ભૈક્ષ (ભોજનની સામગ્રી) અજ્ઞાત રહેતો નથી, તેથી તેની અજ્ઞાતતા સ્વરૂપની અપેક્ષાએ શુદ્ધ હોતી નથી વળી તેની સમીપમાં જ રહેલા હોવાને કારણે આહારપાણી આદિને માટે વારવાર તેના ઘરમાં પ્રવેશ કરનાર સાધુનો ઉદ્ગમ પણ શુદ્ધ હોતો નથી વળી સાધુના મનમાં એવો લોભ થાય છે કે સ્વાધ્યાય શ્રવણ આદિ દ્વારા મારી તરફ આકર્ષિત થયેલો શય્યાતર મારે માટે ઘી, દૂધ, આદિ પુષ્ટિકર દ્રવ્યો આપશે. આ પ્રકારના લોભથી યુક્ત થયેલો સાધુ તેનુ ઘર છોડતો નથી પ્રચુર અન્ન આદિના લાભથી તેના શરીરમાં અલાઘવતા આવી જાય છે અને પ્રચુર વસ્ત્રાદિના લાભથી ઉપકરણ સંબંધી અલાઘવતા આવી જવાનો સભવ રહે છે તથા " દુર્લભશય્યા " " જે શય્યાસ્થાન દે છે તે આહારાદિ પણ દેશે, "

शय्यातरात् पिण्डदाने शय्याया एव व्युच्छेदो भवेदिति । तथा-शय्यातरात् तृण क्षारडगलशय्यासंस्तारपीठफलकादीनां सोपधिकस्य शिष्यस्य चादाने नास्ति दोष इति ४। तथा-राजपिण्ड-राज्ञः पिण्डो राजपिण्डस्तं भुञ्जानः । राजाऽत्र चक्रवर्तिबलदेववासुदेवादि गृह्यते । तदर्थं निष्पन्नं पिण्डं भुञ्जानः ५। एतेन पञ्चैते पञ्चमि प्रकारैः साधवो गुरुप्रायश्चित्तार्हा भवन्तीति ॥ सू० १ ॥

राज्ञोऽधिकाराद् सम्प्रति राजान्तःपुरमाश्रित्य सूत्रमाह—

मूलम्-पञ्चहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे नाइक्कमइ, तं जहा नगरे सिया सव्वओ समंता गुत्त

भी देगा ' इस भयसे गृहस्थजन शय्या भी नहीं देंगे अतः साधुजनोंको शय्या दुर्लभ हो सकती है, इस प्रकार शय्यातरसे पिण्डके लेनेमें शय्याहीका व्युच्छेद हो सकता है, शय्यातरसे तृण, क्षार डगल (?) शय्या संस्तार, पीठफलक एवं सोपधिक (वस्त्र पात्र आदि उपकरण सहित) शिष्य के लेने में (?) कोई दोष नहीं है। । राजपिण्डमें राजपद से चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव आदि गृहीत हुए हैं। इनके लिये निष्पन्न हुए पिण्डको जो लेता है-उसे अपने आहारके उपयोगमें लाताहै, वह राजपिण्ड भोक्ता है ५, इस प्रकार हस्तकर्म करनेवाला, मैथुनका प्रतिसेवन करनेवाला, रात्रिभोजन करनेवाला, सागारिक पिण्डका भोजन करनेवाला, और राजपिण्डका भोजन करनेवाला साधुजन गुरु प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं ॥ सू० १ ॥

આ પ્રકારની ભવના સાધુ સેવશ માટે, તો ગૃહસ્થ દ્વારા શય્યાસ્થાન દેવાનું પણ બંધ થઈ જાય, આ રીતે સાધુઓને માટે શય્યાસ્થાન પણ દુર્લભ થઈ જાય આ રીતે શય્યાતરની પાસેથી પિંડ લેવામાં શય્યાનો જ વ્યુચ્છેદ થવાનો ભય રહે છે શય્યાતર પાસેથી તૃણ ક્ષાર, શય્યાસંસ્તાર, પીઠ, ફલક અને સોપધિક (વસ્ત્ર પાત્ર આદિ ઉપધિ સાથે) શિષ્ય લેવામાં કોઈ દોષ લાગતો નથી.

રાજપિંડ એટલે રાજાને માટે તૈયાર થયેલ આહાર રાજપિંડ ગ્રહણ ગ્રહણ કરવામાં પણ સાધુને દોષ લાગે છે ' રાજા ' પદથી અહીં ચક્રવર્તી બળદેવ, વાસુદેવ આદિ ગૃહીત થયેલ છે

આ રીતે હસ્તકર્મ કરનાર મૈથુનનું પ્રતિસેવન કરનાર, રાત્રિભોજન કરનાર સાગારિક પિંડનો આહાર કરનાર અને રાજપિંડનો આહાર કરનાર સાધુ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્તને પાત્ર બને છે ॥ સૂ. ૧ ॥

गुत्तदुआरे, वहवे समणमाहणा णो संचाएंति भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, तेसिं विन्नवणट्ठयाए रायंतेउरमणुपविसिज्जा १, पाडिहारियं वा पीढफलगसेज्जासंथारगं पच्चप्पिणमाणे रायंतेउरमणुपविसिज्जा २, हयस्स वा गयस्स वा दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीए रायंतेउरमणुपविसिज्जा ३, परोव णं सहसा वा वलसा वा वाहाए गहाय अंतेउरमणुपवेसेज्जा ४, वहिया व णं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ता णं निवेसिज्जा ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे जाव णाइक्कमइ ॥ सू० ४ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो राजान्तःपुरमनुप्रविशन् नातिक्रामति, तद्यथा—नगरं स्यात् सर्वतः समन्ताद् गुप्तं गुप्तद्वारम्, वहवः श्रमणमाहना नो शक्नुवन्ति भक्ताय वा पानाय वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, तेषां विज्ञापनार्थाय राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् १, प्रातिहारिकं वा पीठफलकशय्यासंस्तारकं प्रत्यर्पयन् राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् २, हयाद् वा गजाद् वा दुष्टात् आगच्छतो भीतो राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् ३, परो वा खलु सहसा वा वलेन वा वाहौ गृहीत्वा अन्तःपुरमनुप्रवेशयेत् ४, वहिर्वा खलु आरामगतं वा उद्यानगतं वा राजान्तःपुरजनः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्य खलु निवेशयेत् ५. इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो यावत् नातिक्रामति ॥सू० ४॥

टीका—'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः कारणैः श्रमणो निर्ग्रन्थो राजान्तःपुरं अनुप्रविशन् नातिक्रामति=तीर्थकृताम् आज्ञाया उल्लङ्घको न भवति, तान्येव स्थानानि प्राह—तद्यथा—

राजाके अधिकारको लेकर अब सूत्रकार राजाके अन्तःपुरको आश्रित करके सूत्र कहते हैं—'पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे' इत्यादिसूत्र४॥

टीकार्थ—पांच कारणोंको लेकर राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश करता हुआ मुनिजन तीर्थंकरोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला नहीं होताहै, वे पांच

આગલા સૂત્રમાં રાજાનો ઉલ્લેખ થયો છે આ સંબધને લીધે સૂત્રકાર હવે રાજાના અંતઃપુર વિષેના સૂત્રનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ—" પંચહિં ઠાણેહિં સમણે ણિગ્ગંથે " ઇત્યાદિ—

નીચે દર્શાવવામા આવેલાં પાંચ કારણોને લીધે રાજાના અન્તઃપુરમાં

नगर सर्वतः समन्तात्=दिक्षु विदिक्षु गुप्तम्=रक्षित प्राकारपरिवेष्टितत्वात्, गुप्तद्वारम्-गुप्तानि=पिहितानि द्वाराणि यस्य तथा स्यात्=भवेत्, ततश्च किम्? इत्याह-तेन हेतुना बहवः श्रमणमाहना श्राम्यन्ति=तपस्यन्तीति श्रमणाः,'मा हन्या' मा मारय इत्युपदेशपराः माहनाः, श्रमणाश्च माहनाश्चेति कर्मधारयः, उत्तरगुणमूलगुणयुक्ता संयता इत्यर्थः, अथवा-श्रमणाः=शाक्याः माहनाः=ब्राह्मणाः, भक्ताय वा पानाय वा निर्गन्तु नगराद्बहिर्गन्तुं वा प्रवेष्टु वा नो प्रभवन्ति, तदा तेषां=श्रमण माहनानां विज्ञापनार्थाय=अन्त पुरस्थस्य राज्ञः प्रमाणभूतराज्ञ्या वा सन्निधौ प्रयोजन विज्ञापयितु राजान्त पुरम् अनुप्रविशेत्। इति प्रथम स्थानम् १। वा=अथवा साधुः प्रातिहारिक प्रतिहियते=प्रयोजनवशादानीय पुनरर्प्यते यत्प्रातिहारिकं पुनः

कारण इस प्रकारसे हैं, जैसे-कोई नगर प्राकारसे परिवेष्टित होनेसे गुप्त हो, रक्षित हो, गुप्तद्वारवाला हो-जिसके दरवाजे बन्द हो रहे हों ऐसा हो, अतः अनेक श्रमणमाहण-उत्तरगुण मूलगुण युक्त संयत अथवा-श्रमण-शाक्य और माहण दयाका उपदेश देनेवाला आहार पानके लिये नगरसे बाहर जानेके लिये या उसमें प्रवेश करनेके लिये समर्थ न हो रहे हों तो ऐसी स्थितिमें उन श्रमण माहनोंकी इस प्रकारकी खबर देनेके लिये-अन्तःपुरमें स्थित राजाके पास अथवा प्रमाण भूत रानीके पास उनके प्रयोजनको प्रकट करनेके लिये-श्रमण निर्ग्रन्थ राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकता है १। ऐसा यह प्रथम कारण है, द्वितीय कारण ऐसा है, कि प्रातिहारिक प्रयोजनवश लाकरके देनेके

પ્રવેશ કરતો શ્રમણ નિર્ગ્રંથ તીર્થંકરોની આજ્ઞાનો વિરાધક બનતો નથી કોઇ નગર કોટથી ઘેરાયેલું હોવાને લીધે ગુપ્ત હોય, રક્ષિત હોય, ગુપ્ત દ્વારવાળું હોય એટલે કે એના દરવાજા બંધ કરી દેવામાં આવ્યા હોય, અને તે કારણે એવી પરિસ્થિતિ પેદા થઈ હોય કે અનેક શ્રમણ અને માહણ (ઉત્તરગુણ મૂલગુણ) યુક્ત સંયત અથવા શ્રમણ એટલે શાક્ય મુનિઓ અને માહણ એટલે દયાનો ઉપદેશ આપનારા સાધુઓ) આહાર પાનની પ્રાપ્તિ માટે નગરની બહાર પણ જઈ શકતા ન હોય અને બહારથી નગરની અંદર પ્રવેશ પણ કરી શકતા ન હોય તો આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં તે શ્રમણ માહણોની તે પ્રકારની સ્થિતિનું રાજા પાસે નિવેદન કરવા માટે અથવા પ્રમાણભૂત રાણીની પાસે તેમના પ્રયોજનને પ્રકટ કરવા માટે કોઈ પણ શ્રમણ નિર્ગ્રંથ રાજાના અન્તઃપુરમાં પ્રવેશ કરે, તો તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી

समर्पणीयं पीठफलकशय्यासंस्तारकं-तत्र पीठं=चतुष्किकादिकम्, फलकः= पट्टादिकः, शय्या=शरीरप्रमाणा, संस्तारकः=अर्द्धतृतीयहस्तप्रमाणः, पीठादीनां द्वन्द्व एकवद्भावश्च, तत् प्रत्यर्पयन्=प्रत्यर्पयितुकामो राजान्तःपुरमनुप्रविशेत्। पीठादीनां प्रत्यर्पणं तदानयनं विना नोपपद्यते, अतस्तदानयनार्थमपि साधूना मन्तःपुरप्रवेशो न तीर्थकृदाज्ञाविराधको भवतीति बोध्यम्। इति द्वितीयम् २। तथा आगच्छतो दुष्टात्=उन्मत्ताद् हयाद् वा गजाद् वा भीतः साधू राजान्तःपुरम् अनुप्रविशेत्-इति तृतीयं स्थानम् ३। तथा-परः-स्वातिरिक्तः कश्चिज्जनः तस्करादिशङ्कया सहसा=अकस्मात् बलेन=बलपूर्वकं बाहौ गृहीत्वा राजान्तःपुरम् अनुप्रवेशयेत् इति चतुर्थं स्थानम् ४। तथा-बहिः=नगराद् बहिः आरा-

योग्य ऐसे जो पीठ, फलक शय्या, संस्तारक हैं, उन्हे वापिस करनेकी इच्छावाला मुनिजन अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकता है २। चौकी आदिका नाम पीठ है, पट्ट आदिका नाम फलक है, शरीर प्रमाण शय्या होती है, और अढाई हाथ प्रमाण संस्तारक होताहै, पीठादिकोंका प्रत्यर्पण उन्हें लाये विना तो होता नहीं है, अतः इन्हें लेनेके लिये भी साधुका अन्तःपुरमें प्रवेश करना तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, इस प्रकारका यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान इस प्रकारसे है, यदि कोई दुष्ट उन्मत्त-हय-घोडा अथवा-गज आ रहा हो तो उससे डरा हुआ साधु राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकताहै, ऐसा यह तृतीय कारण है, चौथा कारण ऐसा है, कि कोई मनुष्य तस्करादिकी शङ्कासे जब-

(૨) પીઠ, ફલક, શય્યા, સંસ્તારક આદિ જે ચીજો લાવ્યા હોય તે પાછી સોંપવાને માટે પણ સાધુ રાજાના અન્તપુરમાં પ્રવેશ કરી શકે છે. ચોકી (બાજોઠ) આદિને 'પીઠ' કહે છે, પટ્ટ આદિને 'ફલક' કહે છે. શરીરપ્રમાણ શય્યા હોય છે અને અઢી હાથપ્રમાણ સંસ્તારક હોય છે પીઠ આદિ પહેલાં લાવ્યા હોય તો જ પાછું આપવાનો પ્રશ્ન ઊભો થાય છે, તેથી પ્રયોજનવશ પીઠ, ફલક આદિ લેવા માટે રાજાના અંતપુરમાં પ્રવેશ કરનાર સાધુ પણ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી

ત્રીજું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—કોઈ મુનિ ભિક્ષાચર્યા આદિ કારણે નીકળ્યા હોય, ત્યારે કોઈ ઉન્મત ઘોડો હાથી આદિ માર્ગ ઉપર દોડી રહ્યા હોય, તો તેનાથી બચવા માટે તે સાધુ રાજાના અંતઃપુરમાં પ્રવેશ કરે, તો જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

ચોથું કારણ—કોઈ અમલદાર અથવા માણસ તેને ચોર માની લઈને

भगवम्–आरामः–विविधपुष्पजात्युपशोभितः स्थानविशेषः, तत्र गतं=स्थितं, वा= अथवा उद्यानगतम्–उद्यानम्=पुष्पफलोपेतवृक्षयुक्त स्थान, तत्र गत साधुं कौतूहला दिवशात् राजान्तःपुरजनः सर्वतः समन्तात्=चतुर्दिग्भ्यः सम्परिक्षिप्य=उत्पाट्य सह राजान्तःपुरं निवेशयेत् । इति पञ्चमं स्थानम् ५। निर्गन्थनाह–इत्येतैः पूर्वोक्तैः पञ्चभि स्थानैः राजान्तःपुरमनुप्रविशन् श्रमणो निर्ग्रन्थो नातिक्रामति तीर्थकृदाज्ञाया विराधको न भवतीति ॥सू० ४॥

अन्तःपुराधिकारात् सम्प्रति स्त्रीगत क्रिया विशेषमाह—

मूलम्–पञ्चहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असवसमाणीवि गब्भं धरेज्जा, त जहा–इत्थी दुवियडा दुन्निसण्णा सुक्कपोग्गले अधिट्ठिज्जा १, सुक्कपोग्गलसंसिट्ठेव सेवत्थे अंतोजोणीए अणुपवि सेज्जा २, सय वा सा सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ३, परोव से

हस्ती अकस्मात् हाथोंको पकड़कर राजाके अन्तःपुरमें डाल देता है, तो ऐसी स्थितिमें वह साधु तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, अथवा–नगरसे बाहर उद्यानमें स्थित हुए साधुको विविध पुष्पजातिसे उपशोभित स्थान विशेषमें स्थित मुनिको–अथवा उद्यानमें–पुष्पफलसे सुशोभित वृक्षोंसे युक्त स्थानमें–स्थित मुनिको योंही कौतूहल आदिके वशसे राजाके अन्तःपुरका जन कधा उठाकर उसमें रख दे तो ऐसी स्थितिमें वह साधु तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है। इस तरहके इन पांच कारणोंसे राजाके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ मुनिजन तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है ॥ सू० ४ ॥

પકડીને પકડીને તેને અંતઃપુરમાં રાજાની સમક્ષ ખડો કરે, તો એ પરિસ્થિતિમાં પણ તે સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી

પાંચમું કારણ—નગરની બહાર ઉદ્યાન આદિ સ્થાનમાં વિવિધ પુષ્પોથી સુશોભિત સ્થાનવિશેષમાં રહેલા કોઈ મુનિને અંતઃપુરનો કોઈ માણસ કુતૂહલથી પ્રેરાઈને અંતઃપુરમાં ઉપાડીને લઈ જાય તો એવી પરિસ્થિતિમાં પણ તે સાધુ જિનેશ્વર ભગવાનની આજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. આ પ્રકારના પાંચ કારણોમાંના કોઈ પણ કારણે રાજાના અંતઃપુરમાં પ્રવેશ કરનાર મુનિ તીર્થંકરની આજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી ॥ સૂ ૪ ॥

सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ४, सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गला अणुपविसेज्जा ५! एच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव धरेज्जा ॥ सू० ५ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धम् असंवसन्त्यपि गर्भं धरेत्, तद्यथा—स्त्री दुर्विवृत्ता दुर्निषण्णा शुक्रपुद्गलान् अधितिष्ठेत्१, शुक्र पुद्गलसंसृष्टं वा तस्या वस्त्रम् अन्तर्योनौ अनुप्रविशेत् २, स्वयं वा सा शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् ३, परो वा तस्याः शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् ४, शीतोदकविकटेन वा तस्या आचामन्त्याः शुक्रपुद्गला अनुप्रविशेयुः ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः यावद् धरेत्॥सू०५॥

टीका—पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

वक्ष्यमाणैः पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धम् असंवसन्ती अपि=पुरुषसंगताऽपि गर्भं धरेत्=धर्तुं शक्नुयात्। तान्येव स्थानान्याह—तद्यथा—स्त्री दुर्विवृता=विवृता=विगतावरणा, दुष्ठुविवृता, दुर्विवृता—विवृतात्वं तूत्तरीयापरिधानेनापि संभवतीति दुरिति विशेषणमुक्त, तेन सर्वथा नग्नेत्यर्थः। एतादृशी सती दुर्निषण्णा=दुष्ठु निषण्णा=उपविष्टा=वैरूप्येणोपविष्टेत्यर्थः एवंभूता सती शुक्रपुद्गलान्=कथंचित् पुरुषनिसृष्टान् वीर्यपुद्गलान् अधितिष्ठेत्=योन्याकथंचिदाकृष्य संगृह्णीयात्। इति प्रथमं स्थानम्। तथा—शुक्रपुद्गलसंसृष्टं=कथंचिच्छुक्रपुद्गलयुक्तं

अन्तःपुरके अधिकारसेही अब सूत्रकार स्त्रीगत क्रिया विशेषका कथन करते हैं—पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं इत्यादि सूत्र ५॥

टीकार्थ-पांच कारणोंसे पुरुषके साथ नहीं रहती हुई भी पुरुषके साथ संगम नहीं करती हुई भी स्त्री गर्भवती हो सकती है, वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं-कोई स्त्री बिलकुल नग्नावस्थामें योनिको प्रसार कर उस स्थान पर यदि बैठ जाती है, कि जहां पर पुरुषका वीर्य पहिलेसे निकला हुआ पड़ा हो तो ऐसी स्थितिमें वह अपनी योनि द्वारा किसी तरहसे उन वीर्य पुद्गलोंको खींचकर उसके भीतर लेजाकर गर्भ धारण

અન્તઃપુરના અધિકારની સાથે સુસંગત એવો સ્ત્રીગત ક્રિયાવિશેષોનો અધિકાર આપવામા આવે છે—" पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं "ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ–પુરુષની સાથે સંભોગ ન કરવા છતા પણ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે સ્ત્રી ગર્ભવતી બની શકે છે—(૧) કોઈ સ્ત્રી બિલકુલ નગ્નાવસ્થામાં યોનિને પ્રસારીને એવા સ્થાનપર બેસે કે જ્યાં પુરુષનું વીર્ય પહેલેથી જ પડેલું હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમા તે પોતાની યોનિ દ્વારા કોઈપણ રીતે તે વીર્યપુદ્ગલોને ખેંચીને તેની અંદર દાખલ કરી દેવાથી ગર્ભ ધારણ કરી શકે છે.

वस्त्रं तस्याः क्षिपा अन्तर्योनौ=योनिमध्ये मनुप्रविशेत। इह वस्त्रमित्युपलक्षणं, तेन अन्यदपि तथाविध केशादिकं बोध्यम्। यथा केशिमाता रोगविशेषनिवारणार्थं रक्तनिरोधनार्थं वा अज्ञातशुक्रपुद्गलसंयोगा केशा यानौ बद्धास्ततः एव गर्भो जातः। तस्मात् गर्भात् केशिमुनिरुत्पन्न इति। इति द्वितीयं स्थानम्। तथा-सा स्त्री स्वयं पुत्रकामनया शुक्रपुद्गलान् अन्तर्योनौ प्रवेशयेत्। अयं भावः-शील रक्षणार्थिनी सती परपुरुषसंगमनाकाङ्क्षन्ती काचित् पुत्रकामा स्त्री शुक्रपुद्गलान् स्वयमेव योनिमध्ये प्रवेशयेदिति। इति तृतीयं स्थानम्। तथा-परः=स्वातिरिक्तः

कर सकता है, ऐसा यह प्रथम कारण है, द्वितीय कारण ऐसा है, कि पुरुषके वीर्यसे गीला हुआ वस्त्र यदि स्त्रीकी योनिके भीतर घोंस दिया जाता है तो उससे भी वह गर्भ धारण कर सकती है, यहां "वस्त्र" यह उपलक्षणरूप है, इससे यह भी ग्रहण कर लेना चाहिये कि पुरुषके वीर्यसे गीले यदि लिङ्गादिके ऊपरके बाल आदि हों और वे वस्त्रादिमें बांधकर योनिके ऊपर बांध लिये जावे तो इस स्थितिमें भी स्त्रीको गर्भ रह सकता है, जैसे-केशीकी माताने रोग विशेषको दूर करनेके लिये या रक्तका निरोधन करने आदिके लिये शुक्र पुद्गल संयोगवाले केशोंको योनिके ऊपर बांध लिया था, सो उसीसे उसको गर्भ रह गया था, और इस गर्भसे केशिश्रमण उत्पन्न हुए थे, इस प्रकारका यह द्वितीय स्थान है, तृतीय कारण ऐसा है, कि कोई पुत्रकी कामनावाली स्त्री पुरुषके पतित वीर्यको योनिके भीतर धर लेतो ऐसी स्थितिसे भी

બીજુ કારણ આ પ્રમાણે છે—જે પુરુષના વીર્યથી ખરડાયેલા વસ્ત્રને કોઈ સ્ત્રી પોતાની યોનિમાં પ્રવેશાવે છે, તો તેના દ્વારા પણ તે સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરી શકે છે અહીં વસ્ત્ર તો ઉપલક્ષણ રૂપ છે અહીં એવું પણ ગ્રહણ કરવું જોઈએ કે પુરુષના લિંગાદિની ઉપરના અને આસપાસના વીર્યથી ખરડાયેલા વાળને કોઈ વસ્ત્રમાં બાંધીને યોનિની ઉપર બાંધી દેવામાં આવે, તો પણ સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરે છે જેમકે કેશી શ્રમણની માતાએ રોગવિશેષને દૂર કરવા માટે અથવા રક્તસ્રાવ અટકાવવા માટે શુક્ર પુદ્ગલ (વીર્ય પુદ્ગલ) ના સંયોગવાળા કેશોને યોનિની ઉપર બાંધી દીધા હતાં, અને તેના દ્વારા જ તેને ગર્ભ રહ્યો હતો, અને તે ગર્ભમાંથી કેશી શ્રમણ ઉત્પન્ન થયા હતા

ત્રીજુ કારણ નીચે પ્રમાણે છે—કોઈ પુત્રની કામનાવાળી સ્ત્રી કોઈ પુરુષના પતિત વીર્યને પોતાની યોનિમાં દાખલ કરી દે, તો એવી પરિસ્થિતિમાં પણ તે સ્ત્રીને ગર્ભ રહી શકે છે આ કથનનો

श्वश्रादिजनः तस्या योनौ शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् । इति चतुर्थं स्थानम् । तथा= शीतोदकविकटेन-शीतोदकरूपं यद् विकटं=समयपरिभाषया जलं तेन आचामन्त्याः=शौचं कुर्वन्त्या, तस्याः स्त्रियो योनिमध्ये तज्जलस्थिताः शुक्रपुद्गला अनुप्रविशेयुरिति पञ्चमं स्थानम् । इत्येतैरुपरिनिर्दिष्टैः पञ्चभिः कारणैः स्त्री पुरुषासंगताऽपि गर्भं धरेदिति ॥ सू० ५ ॥

यैः स्थानैः पुरुषेण संगताऽपि स्त्री गर्भं न धरेत्, तानि स्थानानि माह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणावि गब्भं नो धरेज्जा, तं जहा—अप्पत्तजोव्वणा १, अइकंतजो-

---

वह गर्भवती हो सकती है, इस तृतीय कारणका भाव ऐसा है, कि कोई शीलवती स्त्री अपने शीलकी तो रक्षा करना चाहती है, और पुत्रकी अभिलाषावाली भी बनी हुई है, तो वह पर पुरुषके साथ संगम नहीं करती हुई भी यदि शुक्र पुद्गलोंको अपने हाथसेही अपनी योनिके भीतर रख लेती है, तो ऐसी हालतमें वह गर्भवती हो सकती है, चतुर्थ कारण इस प्रकारसेहै, यदि उसकी सास आदि रूप स्त्रीजन उसकी योनिमें शुक्र पुद्गलोंको रख देती है. तो इससे भी वह गर्भवती हो सकती है, पांचवां कारण ऐसा है, कि शौचको करते समय उस स्त्रीके योनिके अन्दर पानी लेते समय उस जलमें पतित शुक्र पुद्गल यदि प्रविष्ट हो जाते हैं, तो इससे भी वह गर्भवती हो सकती है, इस तरहके इन निर्दिष्ट पांच कारणोंसे स्त्री पुरुषसे असुक्त होती हुई भी गर्भवती हो सकती है ॥ सू० ५ ॥

ભાવાર્થ એવો છે કે—કોઈ શીલવતી સ્ત્રી પુત્રની કામનાવાળી છે તે પોતાના શીલનુ રક્ષણ કરવા માગતી હોવાથી પરપુરુષ સાથે અબ્રહ્મનુ સેવન કરતી નથી પણ કોઈ પુરુષના પતિત વીર્ય પુદ્ગલોને પોતાના હાથમાં લઈને પોતાની યોનિમાં દાખલ કરી દે છે, આમ કરવાથી તે ગર્ભવતી થઈ શકે છે.

ચોથું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—જો તેની સાસુ આદિ કોઈ પણ વ્યક્તિ કોઈ પુરુષના શુક્ર પુદ્ગલોને તેની યોનિમાં નાખી દે તો પણ તે ગર્ભ ધારણ કરી શકે છે

પાંચમું કારણ—જાજરૂ ગયા બાદ પાણી લેતી વખતે જે જળનો ઉપયોગ કરવામાં આવે, તે જળમાં કોઈ પુરુષના શુક્ર પુદ્ગલો ભળેલાં હોય, તો તે શુક્ર પુદ્ગલો તે સ્ત્રીની યોનિમા દાખલ થઈ જાય તો તે સ્ત્રી ગર્ભવતી બની શકે છે. આ પ્રકારના પાંચ કારણોને લીધે પુરુષની સાથે મૈથુનસેવન કર્યો વિના પણ સ્ત્રી ગર્ભવતી થઈ શકે છે ॥ સૂ. ૫ ॥

घणा २, जाइजम्मा ३, गेलन्नपुट्ठा ४, दोमणंसिया ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव नो धरेज्जा। पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि नो गब्भं धरेज्जा, तं जहा–निच्चोउया १, अणोउया २, वावन्नसोया ३, वाविद्धसोया ४, अणंगपडिसेवणी ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं नो धरेज्जा, तं जहा–उउम्मि णो णिगामसेविणी यावि भवइ १, समागया वा से सुक्कपोग्गला पडिविद्धंसंति २, उदिण्णे वा से पित्तसोणिए ३, पुरा वा देवकम्मणा ४, पुत्तफले वा नो निदिट्ठे भवइ ५। इच्चेएहिं जाव नो धरेज्जा ॥ सू० ६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा-मप्राप्तयौवना १, अतिक्रान्तयौवना २, जातिवन्ध्या ३, ग्लानस्पृष्टा ४, दौर्मनस्यिका ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः यावद् नो धरेत्। पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि नो गर्भं धरेत्, तद्यथा-नित्यर्तुका १, अनृतुका २, व्यापन्नस्रोताः ३ व्याविद्धस्रोता ४ अनङ्गप्रतिसेविनी ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्। पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा-ऋतौ ना निकामसेविनी चापि भवति १ समागता वा तस्याः शुक्रपुद्गलाः प्रतिविध्वंसन्ते २, उदीर्णं वा तस्याः पित्तशोणितम् ३, पुरा वा देवकर्मणा ४ पुत्रफलं वा नो निर्दिष्टं भवेत् ५। इत्येतैः यावद् नो धरेत् ॥ सू० ६ ॥

टीका—'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः-कारणैः स्त्री पुरुष संगमाऽपि गर्भं नो धरेत्। येषु स्थानेषु सत्सु गर्भं न धरेत् तानि स्थानानि माह-तद्यथा-मप्राप्तयौवना-न प्राप्तं यौवनं

अब सूत्रकार उन पांच कारणोंको प्रकट करते हैं, कि जिनसे पुरुषसे संगत हुई भी स्त्री गर्भको धारण नहीं कर सकती है—

पुरुषनी साथे संयोग करवा छतां पण जे पांच कारणोने लीधे स्त्री गर्भ धारण करी शकती नथी, ते कारणो हवे सूत्रकार प्रकट करे छे

यथा सा १, अतिक्रान्तयौवना=अतिक्रान्तं यौवनं यस्याः सा-गतयौवना २, जातिवन्ध्या-जातेः=जन्मत आरभ्य वन्ध्या=निर्बीजा, ३ ग्लान्यस्पृष्टा-ग्लान्येन=रोगेण स्पृष्टा=ग्रस्ता ४, तथा-दौर्मनस्यिका-दौर्मनस्यं=शोकादिकमस्ति यस्याः सा, "दौर्मनस्यिता"-इति च्छायापक्षे तु दौर्मनस्यं संजातं यस्याः सा,-शोकादि संकुलेत्यर्थः ५, इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषसंगताऽपि गर्भं न धरेत्।

'पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं' इत्यादि सूत्र ६।

टीकार्थ-पुरुषके साथ संगम करती हुई भी स्त्री इन पांच कारणोंसे गर्भवती नहीं हो सकती है-वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं-यदि वह अप्राप्त यौवनवाली है, तो वह पुरुषके साथ रत होती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है १। इसी तरहसे वह यदि गत यौवनवाली है, यौवनावस्थासे वह रहित हो चुकी है, तो ऐसी स्थितिमें भी वह पुरुष द्वारा भुक्त होती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है २। तथा-यदि वह जातिसे जन्मसेही वन्ध्या है, निर्बीजा है, तो वह पुरुषसे रतिक्रिया करती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है३, यदि वह ग्लान्य स्पृष्टा है, रोगग्रस्त है, तो भी वह पुरुषके साथ संगम करती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकतीहै४, और यदि वह रतिक्रियामें रत होती हुई भी शोकादिसे युक्त मनवाली बनी रहती है-प्रसन्न चित्त नहीं रहती है, तब भी वह गर्भवती नहीं हो सकतीहै५, अथवा-"दोमणसिया" की छाया-"दौर्मनस्यिता" ऐसी भी होती है, इस पक्षमें यदि वह शोक आदिसे युक्त

ટીકાર્થ-"पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं"

પુરુષની સાથે સંભોગ કરવા છતાં પણ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી (૧) યુવાવસ્થામાં આવ્યા પહેલાં જો કોઈ કન્યા પુરુષ સાથે રતિક્રિયા કરે, તો તે ગર્ભવતી થતી નથી (૨) જે સ્ત્રી યૌવન વ્યતીત કરી ચુકી છે, એટલે કે પ્રૌઢા અથવા વૃદ્ધા બની ચુકી છે, તે પુરુષ સાથે સંભોગ કરવા છતાં પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી (૩) જો કોઈ સ્ત્રી જન્મથી જ વન્ધ્યા (નિર્બીજા) હોય, તો પુરુષ સાથે રતિક્રિયા કરવા છતા પણ ગર્ભવતી બની શકતી નથી. (૪) જો તે રોગગ્રસ્ત હોય, તો પણ પુરુષની સાથે સંભોગ કરવા છતાં ગર્ભવતી બની શકતી નથી (૫ પુરુષની સાથે રતિક્રિયા કરવા છતાં પણ જે સ્ત્રી શોકાકુલ હોય એટલે કે પ્રસન્નચિત્ત ન હોય, તો ગર્ભવતી બની શકતી નથી. "दो मणंसिया" આ પદની સંસ્કૃત છાયા "दौर्मनस्यिता" લેવામાં

भवाप्रेऽस्थान्तरमुपद्रवस्तापि उपक्रमोपसंहारयोरयमेव व्याख्येयम्। तत्र प्रथमा स्थानान्तरसूत्रोक्तानि पञ्चस्थानान्यपतानि, तथाहि-निरयर्तुका-नित्य=सर्वदा न तु दिनत्रयमेव ऋतु=रक्तप्रवृत्तिरूपो यस्याः सा १, तथा-अनृतुका-न विद्यते ऋतु यस्या सा २। तथा-व्यापन्नस्रोताः-व्यापन्नं=रोगादिना प्रतिहतं स्रोतः=गर्भाशयच्छिद्रं यस्याः सा ३, तथा-व्याविद्धस्रोता -व्याविद्ध=वातादिना व्याप्तत्वेन गर्भग्रहणशक्तिरहित स्रोतो यस्या सा ४, तथा-अनङ्गप्रतिसेविनी अङ्ग=मैथुनोपयोगि

है, तो भी गर्भवती नहीं हो सकती है ऐसा अर्थ होता है, अत इस तरहके इन पांच कारणोंसे पुरुषके साथ संगम करती हुई भी स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती है यह प्रकट किया, अब और भी गर्भ धारण नहीं करनेके जो कारण हैं, सूत्रकार उन्हे प्रकट करते हैं, इनमें प्रथम कारण निरयर्तुक है, जिसके तीन दिन तकही ऋतुधर्म नहीं रहता है-किन्तु सदाही रज प्रवाहित होता रहता है, ऐसी वह स्त्री गर्भवती नहीं हो सकती है, तथा जो अनृतुक है, ऋतुधर्मसे रहित है, वह भी गर्भवती नहीं हो सकती है, जो व्यापन्न स्रोता है, वह भी गर्भवती नहीं हो सकती है, अर्थात् रोगादिकसे जिसके गर्भाशयका छिद्र बन्द हो गया हो प्रतिहत हो गया हो ऐसी वह स्त्री भी गर्भ धारण करनेमें असमर्थ होती है। जिसका वातव्याधि आदिसे व्याप्त होनेके कारण गर्भाशयका छिद्र गर्भ धारण करनेकी शक्तिसे रहित कर दिया गया हो ऐसी वह भी स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती

આવે, તે તેનો અર્થ આ પ્રમાણે પણ થાય છે—એ તે યોગ્ય રીતે યુક્ત હોય તો પણ ગર્ભવતી બની શકતી નથી.

ગર્ભ ધારણ ન કરી શકવાના બીજા પણ કેટલાક કારણો છે, તે સૂત્ર કાર હવે પ્રકટ કરે છે—' निरयर्तुक " જે સ્ત્રીને મહિનામાં ત્રણ દિવસ સુધી જ રજસ્રાવ થતો નથી, પણ કાયમ રજસ્રાવ ચાલુ રહે છે તે સ્ત્રી ગર્ભવતી બની શકતી નથી (૨) अनृतुक ' જે સ્ત્રી ઋતુધર્મથી રહિત હોય છે તેને પણ ગર્ભ રહી શકતો નથી (૩) " व्यापन्नस्रोता " રોગાદિકને કારણે જે સ્ત્રીના ગર્ભાશયનું છિદ્ર બંધ થઈ ગયુ હોય છે, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. (૪) વાયુ આદિને કારણે (વાત વ્યાધિ આદિને કારણે) જેના ગર્ભાશયના છિદ્રને ગર્ભ ધારણ કરવાને અસમર્થ કરી નાખવામાં આવ્યુ હોય, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી (૫) જે સ્ત્રી મૈથુન સેવનના

मुख्यमङ्गं लिङ्गं भगश्च, तन्निषेधोऽनङ्गं तेन आहार्यलिङ्गादिना मैथुनं प्रतिसेवते या सा ५। एभिः पञ्चभिः कारणैः पुरुष संगताऽपि स्त्री गर्भं न दधातीति। तथा–ऋतौ=आर्त्तवकाले निकामसेविनी–निकामं=वीर्यपातावधि मैथुन सेवते या सा तथा नो भवति। इति प्रथमं स्थानम्। तथा–तस्या योनौ समागता वीर्यपुद्गलाः प्रतिविध्वस्यन्ते=योनिदोषाद् विनष्टशक्तिका भवन्ति। इति द्वितीयं स्थानम्। तथा–तस्याः पित्तशोणितं=पित्तप्रधानं शोणितम् उदीर्णम्=उद्गत भवेत्–उदीर्णे पित्तशोणिते बीजं न प्ररोहतीति भावः, इति तृतीयं स्थानम्। पुरा=गर्भधारणात् पूर्वं देवकर्मणा–देवक्रियया देवतानुभावेन शक्त्युपघातः स्यादिति शेषः, यद्वा–

है, तथा–जो मैथुनसेवनके अंग योनि और लिङ्गके सिवाय अनङ्गसे लिङ्गके सिवाय अनङ्गसे–आहार्य (?) लिङ्ग आदिसे काम सेवन करती है, ऐसी वह भी स्त्री गर्भ धारण नही कर सकती है, तात्पर्य यही है, कि पुरुष संगत हुई भी स्त्री इन पांच कारणोंके कारण गर्भवती नहीं हो सकती है, गर्भ धारण करनेमें बाधक और भी कारणान्तर हैं, जो इस प्रकारसे हैं–इनमें प्रथम कारण वह है, जो वीर्यपात हो जानेके बाद भी मैथुन सेवा क्रियामें रत रहती है १। तथा–योनिमें पतित वीर्य पुद्गल जिसकी योनिके दोषसे विनष्ट शक्तिवाले हो जाते हैं २। तथा जिसका पित्त शोणित निकल गया होता है, तब बीज अङ्कुरित नहीं होता है ॥ ३ ॥ तथा जिसकी गर्भ धारण शक्ति किसी देवताके प्रभावसे नष्टकर दी गई है, अथवा–गर्भ निरोधक

અંગ વડે મૈથુન સેવન કરતી નથી, એટલે કે પુરુષના લિંગ વડે મૈથુન સેવન કરતી નથી, પણ લિંગ સિવાયના અનંગ વડે–આહાર્ય લિંગ આદિ વડે કામસેવન કરે છે, તે સ્ત્રી પણ એ રીતે ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી.

ગર્ભ ધારણ કરવામા સ્ત્રી નીચેના અન્ય કારણોને લીધે પણ અસમર્થ બને છે—(૧) પુરુષના વીર્યનો સ્રાવ થઈ ગયા બાદ પણ પુરુષ સાથે રતિક્રિયા કરવાથી સ્ત્રીને ગર્ભ રહેતો નથી (૨) યોનિમા પ્રવિષ્ટ થયેલા વીર્યપુદ્ગલો જે સ્ત્રીની યોનિના કોઈ દોષને લીધે વિનષ્ટ શક્તિવાળા થઈ જતાં હોય તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી (૩) જે સ્ત્રીનુ પિત્તશોણિત નીકળી ગયુ હોય છે, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. (૪) જેની ગર્ભ ધારણ શક્તિ કોઈ દેવતાના પ્રભાવથી નષ્ટ થઈ ગઈ હોય, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ

'देवकार्मणात्' इतिच्छाया-तत्र देवश्च कार्मणं चेति-देवकार्मणम् इति समाहार द्वन्द्वः, तस्मात्-देववशात् तथाविधद्रव्यसंयोगाद् वा शुक्रपुद्गलपातः स्यात् । इति चतुर्थं स्थानम् । तथा-तस्याः स्त्रिया जन्मान्तरकर्मप्रभावेण पुत्रफलं नो निर्दिष्टं भवेत् ५। इति पञ्चमं स्थानम् । इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः पुरुषसंगताऽपि स्त्री गर्भं नो धरेदिति ॥ सू० ६ ॥

स्त्रीविषयकोऽधिकारः प्रस्तुत एव, तदधिकारादेव सम्प्रति साध्वी वक्तव्यता प्रतिबद्धं सूत्रत्रयात्मकमेकं सूत्रमाह—

मूलम्--पंचहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथिओ य एगयओ ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएमाणा णाइक्कमंति, तं जहा-अत्थेगइया निग्गंथा निग्गंथीओ य एगं महं आगामियं छिन्नावायं दीहमद्धमडविमणुपविट्ठा, तत्थेगयओ ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएमाणा णाइक्कमंति १, अत्थेगइया निग्गंथा निग्गंथीओ य गामंसि वा णयरंसि वा जाव रायहाणिंसि वा वासं उवागया एगइया जत्थ उवस्सयं लभंति एगइया णो लभंति, तत्थेगयओ ठाणं वा जाव नाइक्कमंति २, अत्थेगइया निग्गंथा निग्गंथीओ य नागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवागया तत्थेगयओ जाव णाइक्कमंति ३, आमो

औषधि आदिके द्वारा जिसकी गर्भ धारण शक्तिका निरोध कर दिया गया है ४। तथा जन्मान्तरमें पूर्वजन्ममें-कृत कर्मके प्रभावसे जिसे पुत्र फल प्राप्त होना नहीं पड़ाहै, ऐसी स्त्री भी गर्भवती नहीं हो सकतीहै सू६॥

ધારણ કરી શકતી નથી અથવા ગર્ભનિરોધક ઔષધિ દ્વારા જે સ્ત્રીની ગર્ભ ધારણ કરવાની શક્તિનો નિરોધ કરી નાખવામાં આવ્યો હોય, તે સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. (૫) પૂર્વજન્મના કુકર્મોને લીધે જેના નસીબમાં પુત્રફલ પ્રાપ્તિ લખાઈ જ ન હોય, એવી સ્ત્રી પણ ગર્ભ ધારણ કરી શકતી નથી. ॥ સૂ ૬ ॥

सगा दीसंति ते इच्छंति निग्गंथीओ चीवरपडियाए पडिगाहित्तए तत्थेगयओ ठाणं वा जाव णाइक्कमंति ४, जुवाणा दीसंति ते इच्छंति णिग्गंथीओ मेहुणपडियाए पडिगाहित्तए तत्थेगयओ ठाणं वा जाव णाइक्कमंति ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव नाइक्कमंति । पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे अचेलए सचेलियाहिं निग्गंथीहि सद्धिं संवसमाणे नाइक्कमइ, तं जहा--खित्तचित्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं निग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ १, एवमेएणं गमएणं दित्तचित्ते २, जक्खाइट्टे ३, उम्मायपत्ते ४, निग्गंथीपव्वावियए समणे निग्गंथे णिग्गंथेहि अविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं निग्गंथीहि सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ ५॥ सू०७ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकतः स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयन्तो नातिक्रामन्ति, तद्यथा—सन्त्येके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकां महतीम् अग्रामिकां छिन्नापातां दीर्घाध्वामटवीम् अनुप्रविष्टाः, तत्रैकतः स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयन्तो नातिक्रामन्ति १। सन्त्येके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च ग्रामे वा नगरे वा यावत् राजधान्यां वा वासम् उपागताः, एकके यत्र उपाश्रयं लभन्ते, एकके नो लभन्ते तत्रैकतः स्थानं वा यावद् नातिक्रामन्ति २। सन्त्येकके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नागकुमारावासे वा सुपर्णकुमारावासे वा वासम् उपागताः, तत्रैकतो यावद् नातिक्रामन्ति ३। आमोषका दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थिकाः चीवरप्रतिग्रहीतुं, तत्रैकतः स्थानं वा यावद् नातिक्रामन्ति ४। युवानो दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थिकाः मैथुनप्रतिज्ञया प्रतिग्रहीतुम्, तत्रैकतः स्थानं वा यावत् नातिक्रामन्ति ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः यावत् नातिक्रामन्ति । पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थः अचेलकः सचेलिकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धं संवसन् नातिक्रामति तद्यथा—क्षिप्तचित्तः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलिकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धं संवसन नातिक्रामति १। एवमेतेन गमकेन दृप्तचित्तो २ यक्षाविष्ट ३, उन्मादप्राप्तो ४, निर्ग्रन्थी प्रव्राजितः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलिकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धं संवसन् नातिक्रामति ५ ॥सू० ७॥

टीका—' पचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकत =एकस्मिन् स्थले स्थान= कायोत्सर्गम् उपवेशनं वा शय्यां=संस्तारकं वा नैषेधिकीं=स्वाध्यायभूमिं वा चेत यन्तः=कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति=नोल्लङ्घयन्ति जिनाज्ञाम्। तानि स्थानानि भव- सन्ति=भवन्ति। एके=केचित् नि न्था निर्ग्रन्थ्यश्च, च किल काञ्चित् एकां महतीं विशालाम् अग्रामिकाम्=ग्रामरहि म् छिन्नापाताम्–छिन्ना आपाता –जनानामा गमनानि, उपलक्षणाद् गमनानि वा यस्यां सा तां, दीर्घाध्वाम्=दीर्घं अध्वा=मार्गो यस्यां सा तां–महापथाम्, यद्वा–' दीर्घाद्धाम् ' इति च्छाया दीर्घं =महान् अद्धा= कालो निस्तरणे यस्याः सा तां–दीर्घकालकुतीयामुलङ्घनयोग्याम् अटवीम् अनुप

अब सूत्रकार इसी स्त्री विषयक अधिकारके सम्बन्धसे साध्वीकी षत्तव्यतासे प्रतिबद्ध सूत्रद्वयात्मक एक सूत्रका कथन करते हैं—

'पचहिं ठाणेहिं निग्गथा निग्गथीओ' इत्यादि सूत्र ७॥

टीकार्थ–निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियाँ–साधु और साध्वी–यदि इन पांच कारणोंको लेकर एकही जगह कायोत्सर्ग करते हैं, या बैठते हैं बिस्तर करते हैं, या स्वाध्याय करते हैं, तो वे जिनाज्ञाके विराधक नही होते हैं, वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं–जैसे–कितनेक निर्ग्रन्थ और निर्ग्र न्थनियाँ एक ऐसी अटवीमें पहुँच जाते हैं, कि जो बहुत विशाल है, जिसमें एक भी ग्राम नहीं है, मनुष्योंका भी आगमन जानाजाना जिसमें नही है, जो लम्बे रास्तावाली है, अथवा जिसे पार करना बहुत समय साध्य है, ऐसी भयंकर गहन अटवीमें पहुँच जाने पर

આગલા સૂત્રમાં સ્ત્રીવિષયક કથન કરવામાં આવ્યું છે સાધ્વીઓ પણ સ્ત્રીઓ જ હોય છે આ સબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર સાધ્વીઓની વક્તવ્યતાથી યુક્ત સૂત્ર દ્વયના સમૂહરૂપ એક સૂત્રનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ–' પચહિં ઠાણેહિં નિગ્ગથા નિગ્ગથીઓ '' ઇત્યાદિ—

નિગ્રન્થો (સાધુઓ) અને નિર્ગ્રન્થિનિઓ (સાધ્વીઓ) નીચે આ પાંચ કારણોને લીધે એક જ જગ્યાએ કાયોત્સર્ગ કરે, બેસે, સ્વાધ્યાય કરે, અથવા શયન કરે તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક થતાં નથી

(૧) કેટલાક નિગ્રન્થો અને નિગ્રન્થીઓ કોઈ એક એવી ગહન અને વિશાળ અટવીમાં આવી પહોંચ્યાં છે કે જેમા એક પણ ગામ નથી, મનુષ્યોનો અવરજવર પણ જ્યાં બનો નથી, જેને પાર કરીને કોઈ ગામમાં પહોંચવું પણ જ દુષ્કર છે, ઘણા જ લાંબા સમયે જેને પાર કરી શકાય એવી છે, તો

विधा' । तत्र=अटव्याम् एकत्र=एकस्मिन् स्थले स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयन्तः=कुर्वन्तो निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्ति=नोल्लङ्घयन्ति जिनाज्ञामिति प्रथमं स्थानम् । तथा–सन्ति एके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च, ये किल ग्रामे वा नगरे वा यावद् राजधान्यां वा वासं=निवासम् उपागताः=प्राप्ताः, तेषु मध्ये एके=निर्ग्रन्था वा निर्ग्रन्थ्यो वा अत्र–ग्रामादौ उपाश्रयं=गृहस्थेन निवासार्थं प्रदत्तं स्थानं लभन्ते=प्राप्नुवन्ति, एकके=अन्यतरे पुनर्नो लभन्ते, तत्र एकत्र स्थले स्थानादिकं कुर्वन्तो निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति द्वितीयं स्थानम् । तथा–सन्ति एके निर्ग्रन्था

यदि साधुजन एवं साध्वियां एकही स्थान पर ठहर जाते हैं बैठ जाते हैं, कायोत्सर्ग करते हैं, आदि २ क्रियाएँ करते हैं, तो ऐसे वे निर्ग्रन्थ साधु और साध्वियां तीर्थंकर प्रभुकी आज्ञाके विराधक नहीं होते हैं, ऐसा यह प्रथम कारणहै। द्वितीय स्थान–कारण ऐसा है–कितनेक साधु साध्वियां विहार करती हुई किसी एक ग्राममें या नगरमें आदि आ-जाती हैं–वहां वे गृहस्थके द्वारा प्रदत्त किसी उपाश्रयमें ठहर जाती हैं, परन्तु यदि और भी साधु साध्वियां ऐसी बची रहती हो कि जिन्हें ठहरनेके लिये स्थान न मिला हो तो ऐसी स्थितिमें वे सबके सब यदि एकही स्थानमें ठहर जाते हैं, वहीं पर अपनी २ धार्मिक क्रियाएँ करते हैं, तो वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं माने जाते हैं । तृतीय स्थान ऐसा

એવી પરિસ્થિતિમા સાધુઓ અને સાધ્વીઓ તે ગહન અટવીમા એક જ સ્થળે રોકાઈ જાય, બેસી જાય, અને કાયોત્સર્ગ આદિ ક્રિયાઓ કરે, તો તે પ્રમાણે કરવાથી તે સાધુઓ અને સાધ્વીઓ તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાની અવગણના કરનારા ગણાતાં નથી

બીજું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—કેટલાક સાધુઓ અને સાધ્વીઓ ગ્રામાનુગ્રામ વિચરતાં વિચરતા કોઈ એક ગામ, નગર આદિમાં આવી પહોંચે છે ધારો કે કેટલાક સાધુઓ અથવા સાધ્વીઓ ત્યા કોઈ ગૃહસ્થ દ્વારા આપવામા આવેલા કોઈ ઉપાશ્રયમા ઉતરે છે કેટલાક સાધુ અથવા સાધ્વીઓને તે ગામ આદિમાં ઉતરવાને માટે કોઈ અલગ સ્થાન મળી શકતું નથી તો એવી પરિસ્થિતિમા તે સાધુઓ અને સાધ્વીઓ તે એક જ સ્થાનમાં ઉતરે અને કાયોત્સર્ગ આદિ ક્રિયાઓ કરે, તો તેઓ જિનેશ્વર ભગવાનની આજ્ઞાના વિરાધક ગણાતાં નથી

ત્રીજુ કારણ આ પ્રમાણે છે—જો કોઈ સાધુઓ અને સાધ્વીઓ કોઈ નાગકુમારાવાસમાં અથવા સુપર્ણકુમારાવાસમા એક સાથે જ વાસ કરે, તો

निर्ग्रन्थ्यश्च, च क्वचित् नागकुमारावासे=नागकुमारगृहे वा सुवर्णकुमारावासे=सुपर्णकुमारगृहे वा वासम्=वसतिम् उपागताः, तस्य नागकुमारावासस्य सुपर्णकुमारावासस्य च अति शून्यत्वात्, अथवा-बहुजनाभयत्वात् अनायकत्वाच्च निर्ग्रन्थी शीलरक्षार्थं तत्र नागकुमारावासादौ स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्थ्या निर्ग्रन्थश्च नातिक्रामन्तीति तृतीयं स्थानम् । तथा-क्वचित् स्थले निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च उपागताः, तत्र आमोषका -आमुष्णन्ति=चोरयन्तीति आमोषकाः=चौरा दृश्यन्ते, ते चौरा इच्छन्ति चीवरप्रतिज्ञया=चीवरोद्देशेन-वस्त्रापहरणेच्छये

है—यदि कितनेक साधु साध्वियाँ किसी एक नागकुमारावासमें या सुपर्णकुमारावासमें आकर ठहर जाते हैं तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं माने गये हैं, क्योंकि निर्ग्रन्थों के साथ निर्ग्रन्थी के ठहरने का ऐसा अभिप्राय रहता है कि इनके सहारे से मेरे शील की रक्षा हो जावेगी, क्योंकि यह आवास अतिशून्य है।

अथवा—यह बहुजनाभय है या इसका कोई नायक नहीं है, अतः ऐसी स्थिति में यहां दुर्व्यसनी भी आ सकते हैं, इसलिये साधु महाराज के पास ठहरने से मेरे शीलकी रक्षा हो सकती है, इस अभिप्रायसे वह यदि उनके साथ ठहर जाती है, और वे उसे ठहरा लेते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञा के विराधक नहीं माने जाते हैं। चतुर्थ स्थान ऐसा है—किसी स्थान पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियाँ आये हों और वहां उन्हें चोर लुटेरे दिखलाई दिये हों और वे चोर यह चाहते हों कि हम इन निर्ग्रन्थिनियों को लूट लें ताकि हमे

તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી આવા સ્થાનોમાં સાધ્વીઓ એકલી રહે તો તેમના શીલની રક્ષા કરવાને તેઓ અસમર્થ બને છે, સાધુઓ પણ તે જગ્યાએ ઉતર્યા હોય, તો તેમના શીલની રક્ષા થઈ શકે છે, સાધુઓની હાજરીમાં ત્યાં કોઈ દુરાચારી આવવાની હિંમત કરી શકતો નથી. આવા આવાસો કાં તો નિર્જન હોય છે કાં તો બહુજનાશ્રિત હોય છે, અથવા તો ત્યાં કોઈ રક્ષક જ હોતો નથી. એવી જગ્યાએ દુરાચારીઓ પણ આવી શકે છે આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં ત્યાં કોઈ સાધુઓ ઉતર્યા હોય તો તેમની સાથે પોતાના શીલની રક્ષાના વિચારથી પ્રેરાઈને, સાધ્વીઓ પણ આવીને ઉતરે તો તેઓ જિનાજ્ઞાની વિરાધક ગણાતી નથી

ચોથું કારણ—કોઈ ગામ આદિમાં સાધુઓ અને સાધ્વીઓ અલગ અલગ ઉપાશ્રયમાં ઉતર્યા હોય, અને તે ગામ આદિમાં ચોર લૂંટારાનો

त्यर्थः, निर्ग्रन्थिकाः प्रतिग्रहीतुम्=अपहर्त्तुम्, तत्र सम्प्राप्येऽपि पृथक्स्थाने एकतः= एकस्मिन् आवासे स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति चतुर्थं स्थानम्। तथा–क्वचित् स्थाने निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च समुपागताः, तत्र युवानो दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति मैथुनप्रतिज्ञया=मैथुनोद्देशेन निर्ग्रन्थिकाः प्रतिग्रहीतुम्, तत्र शक्यायामपि पृथक्स्थितौ एकत्र स्थले स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति पञ्चमं स्थानम् ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकस्मिन् स्थले स्थानादिकं कुर्वन्तो जिनाज्ञा विराधका नो भव-

---

इनसे कपडे मिल जावेंगे तो ऐसी स्थिति में यदि उन्हें ठहरने के लिये दूसरा स्थान भी हो, पर यदि वे जहां निर्ग्रन्थ ठहरे हुए हैं वहां आकर ठहर जाती हैं और निर्ग्रन्थ उन्हें ठहरा लेते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञा के विराधक नहीं माने गये हैं। पांचवां कारण ऐसा है— यदि किसी स्थान पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियां आगई हो वहां जवान मनुष्य उन निर्ग्रन्थिनियों को देखकर उनके साथ मैथुनकर्म करने के लिये उतारु हो गये हों तो ऐसी स्थिति में वहां दूसरा स्थान उन्हें ठहरने योग्य भले ही हो, पर यदि वे साधुओंके साथ ठहर जाती हैं और साधुजन उन्हें अपने पास ठहरा लेते हैं, तो वे इस दशा में जिनाज्ञा के विराधक नहीं होते हैं। इस प्रकारके इन पांच कारणों के होने पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियां यदि एक ही स्थान पर ठहर जाते

ઉપદ્રવ ખૂબ જ વધી ગયો હોય તે ચોર લૂટારા પોતાનાં કપડાં આદિ ચોરી જશે એવો ડર સાધ્વીઓને લાગતો હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે સાધ્વીઓ પોતાનુ અલગ આશ્રયસ્થાન છોડીને તે સાધુઓની પાસે આવીને ઉતારો કરે અને સાધુઓ તેમને ત્યાં ઉતરવા પણ દે, તો એવા સંયોગોમાં તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી

પાંચમું કારણ—અમુક સાધ્વીઓ કોઇ સ્થળે આવીને ઉતરેલી હોય, હવે એવું બને કે ત્યાં રહેતા કોઇ દુષ્ટ યુવાનો તેમની સાથે મૈથુન સેવન કરવાને કૃતનિશ્ચયી થયા હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં પોતાના શીલની રક્ષા કરવા નિમિત્તે તે સાધ્વીઓ તે અલગ આશ્રયસ્થાનને છોડીને કોઇ સાધુઓની સાથે એક જ આશ્રયસ્થાનમા જઇને રહે અને તે સાધુઓ તેમને ત્યા રહેવા દે, તો આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતાં નથી. આ પ્રકારના પાચ કારણોમાના કોઈ પણ કારણને લીધે સાધુઓ અને સાધ્વીઓ

न्तीति। इदमपवादसूत्रम्। उपर्युक्तकारणेष्वेव एकत्रस्थितिं कुर्वन्तो निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च जिनाज्ञा विराधका न भवन्तीति। तथा–क्षिप्तचित्तत्वादिरूपे पञ्चभिः कारणैः अचेलकः=वस्त्ररहित अथवा निर्ग्रन्थ सचेलिकाभिर्निर्ग्रन्थीभिः सार्धम् संवसन्नपि नातिक्रामति तीर्थकृदाज्ञाम्। तानि स्थानानि प्राह–तद्यथा–क्षिप्तचित्तः= शोकादिना विक्षिप्तचित्तः अतएव अचेलो=विगतवस्त्रः श्रमणो निर्ग्रन्थ इतरेषु निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु सचेलिकाभि निर्ग्रन्थीभिः सह संवसन् तीर्थकृदाज्ञा विराधको न भवतीति प्रथम स्थानम्। एवम्=अनया रीत्या एतेन गमन–पाठन इत्

हैं, तो वे जिनाज्ञा के विराधक नहीं माने जाते हैं। यह अपवाद सूत्र है। इन उपर्युक्त पांच कारणों में निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थिनियों को एक जगह ठहरने पर जिनाज्ञा की अवहेलना करनेवाला नहीं कहा गया है, इसी प्रकार क्षिप्त चित्तता आदि रूप पांच कारणों से अचेल–वस्त्ररहित साधु श्रमण निर्ग्रन्थ–सचेलिका निर्ग्रन्थनियों के साथ रहता हुआ भी तीर्थंकर की आज्ञा का अतिक्रमण करनेवाला नहीं होता है। वे पांच कारण इस प्रकार से हैं–" खित्तचित्ते समणे निग्गंथे " इत्यादि–

शोकादि से जिसका चित्त अनवस्थित है, अस्तव्यस्त हो रहा है, सावधान नहीं है–अत एव जो अचेल विगतवस्त्र हो गया है, वस्त्र रहित बन गया है, ऐसा वह श्रमण निर्ग्रन्थ इतर निर्ग्रन्थों की अविद्य

કોઈ એક જ આશ્રયસ્થાનમાં સાથે જ ઉતારો કરે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતાં નથી

સામાન્ય રીતે તો સાધુઓ અને સાધ્વીઓને એક જ સ્થળે રહેવાનો નિષેધ છે પણ ઉપર બતાવેલા પાંચ કારણોને લીધે સાધુઓ અને સાધ્વીઓ એક જ સ્થળે ઉતરે અને સ્વાધ્યાય, કાયોત્સર્ગ આદિ કરે, તો તેઓ જિનેશ્વર ભગવાનની આજ્ઞાની અવહેલના કરનારા ગણાતાં નથી આ રીતનો અપવાદ અહીં પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે એ જ પ્રમાણે ક્ષિપ્ત–ચિત્તતા આદિ રૂપ પાંચ કારણોને લીધે કોઈ અચેલ (વસ્ત્રરહિત) સાધુ–શ્રમણ નિર્ગ્રંથ, સચેલિકા (વસ્ત્રયુક્ત) નિર્ગ્રંથિનીઓ સાથે રહેવા છતાં પણ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. તે પાંચ કારણો નીચે પ્રમાણે છે–

" ખિત્તચિત્તે સમણે ણિગ્ગંથે " ઇત્યાદિ–

શોકાદિથી જેનું ચિત્ત અસ્વસ્થ થઈ જવાને કારણે જે ભાન ગુમાવી બેઠા છે–કે આને વશ થઈને જે વસ્ત્રરહિત હાલતમાં (નગ્નાવસ્થામાં) રહેલા છે તેની સંભાળ લેનાર બીજા સાધુઓ ત્યાં હાજર ન હોય, તો સચેલક

चित्तः-हर्षादिना उन्मत्तः २, यक्षाविष्टः=यक्षगृहीतः ३, उन्मादप्राप्तः=वातादि क्षोभादुन्मादभावं गतः ४, अयं त्रिविधोऽपि निर्ग्रन्थो दृप्तचित्तत्वादिवशात् अचेलकः निर्ग्रन्थीभिः सह संवसन्नपि जिनाज्ञाविराधको न भवतीति स्थानत्रयमिति चतुर्थं स्थानम्। तथा-निर्ग्रन्थी प्रव्राजितः-निर्ग्रन्थ्या-दीक्षादायक-तद्रक्षकाभावात्-परमवैराग्यवशात्प्रवर्धमानपरिणामवत्त्वादिकारणवशात् साध्व्या प्रव्राजितः पुत्रादिः श्वशुरादिर्वा, स च बालत्वाद् अचेलः, महानपि वृद्धत्वादिना

मानता में सचेलक सवस्त्र निर्ग्रन्थनियों-साध्वियों के साथ रहता हुआ तीर्थंकर की आज्ञा का विराधक नहीं होता है, ऐसा यह प्रथम कारण है।

"एवमेतेन गमकेन दृप्तचित्तो" इत्यादि—

इसी रीति से इसी पाठ से हर्षादि आदि से उन्मत्त हुआ २ यक्ष से अवशिष्ट हुआ-ग्रहीत हुआ-३ उन्माद को प्राप्त हुआ-वात आदि के क्षोभसे उन्माद भाव को प्राप्त हुआ ४ भी श्रमण निर्ग्रन्थ यदि अचेलक वस्त्र रहित इन दृप्तचित्तता आदिके वशसे हो जाता है, और निर्ग्रन्थनियों के साथ रहता है, तो भी वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं, इस प्रकार के यहां तक ये ४ स्थान हैं, पांचवां स्थान इस प्रकारसे हैं—किसी निर्ग्रन्थी साध्वी के द्वारा ऐसी अवस्थामें कि जब दीक्षा देनेवाला दीक्षा रक्षक साधुका अभाव हो और दीक्षा लेनेवाला परम वैराग्य से वर्धित परिणामवाला हो रहा हो, दीक्षित किया गया पुत्र

(सवस्त्र) साध्वीओ तेमनी पासे रही शके छे. आ प्रमाणे करवामा ते साधु के साध्वी जिनाज्ञाना विराधक बनतां नथी.

"एवमेतेन गमेन दृप्तचित्तो" ईत्यादि—

એ જ પ્રમાણે (૨) હર્ષના અતિરેકને કારણે ઉન્મત બની ગયેલા, (૩) શરીરમા યક્ષાદિનો પ્રવેશ થવાને કારણે ઉન્માદાવસ્થા પામેલા, (૪) વાતાદિના પ્રકોપને કારણે ઉન્મત્ત થઇ ગયેલા, એવા કોઇ શ્રમણ નિર્ગ્રંથ નગ્નાવસ્થામા રહેલા હોય અને તેમની સાથે સચેલક સાધ્વીઓ રહે, તો એવી પરિસ્થિતિમા તે નિર્ગ્રંથ કે નિર્ગ્રંથિની જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

પાંચમુ કારણ નીચે પ્રમાણે છે—દીક્ષાદાયક અને દીક્ષારક્ષક સાધુનો અભાવ હોય, અને દીક્ષા લેનાર પુત્ર, સસરા આદિ પરમ વૈરાગ્યથી વર્ધિત પરિણામવાળો થઇ રહ્યો હોય, એવી પરિસ્થિતિમા તેમને કોઇ નિર્ગ્રંથી (સાધ્વી) દ્વારા દીક્ષા પ્રદાન કરવામાં આવે છે દીક્ષા લેનાર પુત્ર ધારો કે

मचेला, यदि अन्येषु निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु सत्सु सचेलिकाभिर्निर्ग्रन्थीभिः सह सवसन्नपि तीर्थकराज्ञाविराधको न भवतीति पञ्चम स्थानम् ॥सू० ७॥

अनन्तरसूत्रे जिनाज्ञानातिक्रामति इत्युक्त, तदतिक्रमणशीलश्च आज्ञाविराधको भवति, आज्ञाविराधना च आस्रवरूपा भवति, अतः आस्रवद्वाराणि, तत्र विपक्षत्वात् संवरद्वाराणि, पुनर्दण्डलक्षणान् आस्रवविशेषांश्च प्राह—

मूलम्—पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं १, अविरई २, पमाए ३, कसाया ४ जोगा ५। पंच संवरदारा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मत्तं १ विरई २ अपमाओ ३, अकसाइत्तं ४, अजोगित्तं ५। पंच दंडा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठादंडे १ अणट्ठादंडे २ हिंसादंडे ३ अकम्हादंडे ४ दिट्ठीविप्परियासियादंडे ५॥ सू० ८ ॥

छाया—पञ्च आस्रवद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मिथ्यात्वम् १ अविरतिः २ प्रमादः ३ कषायाः ४ योगाः ५। पञ्च संवरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सम्यक्त्वं १, विरतिः २ अप्रमादः ३ अकषायित्वम् ४ अयोगित्वम् ५। पञ्च दण्डाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—अर्थदण्डः १ अनर्थदण्डः २ हिंसादण्डः ३ अकस्माद्दण्डः ४ दृष्टिविपर्यासदण्डः ५ ॥सू० ८॥

आदि अथवा श्वशुर आदि यदि अचेलक हुआ—बालक होनेसे अचेलक हुआ पुत्र और पक्का होने पर भी वृद्धता आदि के कारणसे अचेलक हुआ श्वशुर आदि—अन्य निर्ग्रन्थों के अभावमें उनकी अविद्यमानता में सचेलक निर्ग्रन्थनियों के साथ यदि रहता है, तब भी वह तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, ऐसा यह पांचवां स्थान है ॥ सू० ७ ॥

બાલક છે તે અચેલક (નગ્ન) હોય તો પણ સાધ્વીઓ તેની પાસે રહી શકે છે દીક્ષા લેનાર સસરા આદિ પાકે કે વૃદ્ધ હોય અને વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે અચેલક (નગ્નાવસ્થાવાળા) થઈ ગયા હોય, અને અન્ય સાધુઓ ત્યાં વિદ્યમાન ન હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં સચેલક સાધ્વીઓ સાથે રહેતો શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ ભગવાનની આજ્ઞાનો વિરાધક થતો નથી ॥ સૂ ૭ ॥

टीका—' पंच आसवदारा ' इत्यादि—

आस्रवद्वाराणि—आस्रवणम्—आस्रवः—जीवरूपे तडागे कर्मरूपजलस्य प्रवेशः तस्य द्वाराणीव द्वाराणि=उपायाः, तानि हि पंच संख्यकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा मिथ्यात्वम्=अतत्त्वे तत्त्वाध्यवसानरूपं विपरीतश्रद्धानमित्यर्थ इति प्रथमं स्थानं १। अविरतिः=पापकर्मतोऽनिवृत्तिः निवृत्तेरभावः २। प्रमादः—अनवधानता—

अनन्तर सूत्रमें " जिनाज्ञा को माननेवाला जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है " ऐसा कहा गया है और जो जिनाज्ञा को नहीं मानता है वह जिनाज्ञाका विराधक होता है, जिनाज्ञाकी विराधना आस्रव रूप होती हैं । अतः अब सूत्रकार आस्रव द्वारों का और आस्रव द्वारों के रुकने रूप संवर द्वारों का तथा दण्ड रूप आस्रव विशेषोंका कथन करते हैं--" पंच आसवदारा पण्णत्ता " इत्यादि--

टीकार्थ—आस्रव द्वार पांच कहे गये हैं, जैसे—मिथ्यात्व १, अविरति २, प्रमाद ३, कषाय ४ और योग ५ । पांच संवर द्वार कहे गये हैं, जैसे—सम्यक्त्व १, विरति २, अप्रमाद ३, अकषायिता ४ और अयोगिता ५ दण्ड पांच कहे गये हैं, जैसे—अर्थदण्ड १, अनर्थदण्ड २, हिंसादण्ड ३, अकस्मात् दण्ड ४ और दृष्टिविपर्यास दण्ड ५.

जीवरूप तालाब में कर्मरूप जलका जो प्रवेश है वह आस्रव है, इस आस्रव के द्वार जैसे जो द्वार हैं वे आस्रवद्वार हैं । आस्रवके आनेके जो उपाय कारण हैं वे पांच हैं, जैसे—मिथ्यात्व आदि अतत्त्वमें

" જિનાજ્ઞાનુ પાલન કરનારો જિનાજ્ઞાનો વિરાધક થતો નથી, " એવુ' આગળ કહેવમા આવ્યું છે, જેઓ જિનાજ્ઞાને માનતા નથી તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાય છે. જિનાજ્ઞાની વિરાધના આસ્રવ રૂપ હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર આસ્રવદ્વારોનુ અને આસ્રવોનો નિરોધ કરનારા સંવરદ્વારોનું તથા દંડ રૂપ આસ્રવવિશેષોનુ કથન કરે છે.

'પચ આસવદારા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

પાંચ આસ્રવદ્વારો કહ્યા છે—(૧) મિથ્યાત્વ, (૨) અવિરતિ, (૩) પ્રમાદ (૪) કષાય, અને (૫) યોગ પાચ સવરદ્વાર કહ્યાં છે--(૧) સમ્યકત્વ, (૨) વિરતિ, (૩) અપ્રમાદ, (૪) અકષાયિતા અને (૫) અયોગિતા. દંડ પાચ કહ્યા છે—(૧) અર્થદંડ, (૨) અનર્થદંડ, (૩) હિંસાદંડ, (૪) અકસ્માત્ દંડ અને (૫) દૃષ્ટિ વિપર્યાસ દંડ

જીવ રૂપ તળાવમા કર્મ રૂપ જળનો જે પ્રવેશ થાય છે, તેનું નામ આસ્રવ છે તે આસ્રવના દ્વાર જેવા જે દ્વાર છે તેમને આસ્રવદ્વાર કહે છે. આસ્રવો (કર્મો) ના આગમના નીચે પ્રમાણે પાંચ કારણો છે—

कषायाः-कषकपयोरमनुविमपुविरूपा ३। कषायाः-क्रोधादिलक्षणाः ४। योगाः=मनोयोगादय ५। इत्येतानि पञ्च आस्रवद्वाराणि बोध्यानि। सम्प्रति एतत्प्रतिपक्षभूतानि संवरद्वाराणि माह-वयादि संवरद्वाराणि-संवरणं संवरः= समितिगुप्तिप्रभृतिभिरात्मतडागे आगच्छत्कर्मसलिलानां निरोधनम्। तस्य द्वारा णीव द्वाराणि। तानि पञ्चविधानि प्रज्ञप्तानि। तद्यथा-सम्यक्त्वम् १, विरति २ अप्रमादः ३ अकषायित्वम् ४ अयोगित्वम् ५ तथा-दण्डा-दण्ड्यते निःसारी क्रियते आत्मा यैस्ते दण्डाः=प्राणव्यपरोपणादिरूपाः। प्राणवियोजनादिरूपा' ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ता। पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-अर्थदण्ड-अर्थाय-त्रसानां

तत्त्वाध्यवसानरूप जो विपरीत श्रद्धान है, वह मिथ्यात्व है, पापकर्मसे विरक्ति नहीं होना इसका नाम अविरति है, अनवधानताका नाम प्रमाद है, यह प्रमाद कर्तव्यमें अप्रवृत्तिरूप और अकर्तव्यमें प्रवृत्तिरूप होता है, क्रोधादिरूप कषाय हैं, और मनोयोग आदिरूप योग हैं, इनसे कर्मोंका आना होता है, अतः इन्हे आस्रवद्वार कहा गयाहै, आस्रवका प्रतिपक्षी संवर होता है, इस संवरके द्वार उपायभी पांच कहे गये हैं, आत्मारूपी तालावमें आनेवाले कर्मरूप जलका जो समिति गुप्ति आदिकों द्वारा निरोध कर दिया जाता है, यही संवर है, इसके भी पांच द्वार कहे गये हैं, जैसे सम्यक्त्व आदि ये पांच द्वार आस्रव द्वारोंसे विपरीत होते हैं। आत्मा अथवा अन्य जीव जिनके द्वारा प्राणव्यप

મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ કારણો અહીં પ્રકટ કરવા જોઈએ અતત્ત્વમાં તત્ત્વ અધ્યવસાન રૂપ જે વિપરીત તત્ત્વોમાં શ્રદ્ધા છે, તેનું નામ મિથ્યાત્વ છે પાપકર્મથી નિવૃત્ત ન થવું તેમાં પ્રવૃત્ત જ રહેવું તેનું નામ અવિરતિ છે અનવધાનતાનું નામ પ્રમાદ છે કરવા યોગ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત ન થવું અને ન કરવા યોગ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત થવું તેનું નામ જ પ્રમાદ છે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ ચાર કષાય છે મનોયોગ, વાગ્યોગ અને કાયયોગ રૂપ ત્રણ યોગ છે તેમના દ્વારા કર્મોનું આગમન થાય છે તેથી તેમને આસ્રવદ્વાર રૂપ કહ્યા છે આસ્રવનો પ્રતિપક્ષી સંવર છે, તે સંવરના ઉપાય રૂપ જે પાંચ કારણો છે તેમને સંવરદ્વાર કહે છે આત્મા રૂપી જળાશયમાં પ્રવેશ કરતાં કર્મરૂપ જળને જે સમિતિ, ગુપ્તિ વગેરે દ્વારા રોકવામાં આવે છે, તેનું નામ જ સંવર છે તેના સમ્યક્ત્વ આદિ જે પાંચ દ્વાર કહ્યાં છે, તેઓ આસ્રવદ્વારો કરતાં વિપરીત હોય છે આત્મા અથવા અન્ય જીવ જેમના

स्थावराणां वा आत्मनः परस्य वा प्रयोजनाय दण्डो वधः १। अनर्थदण्ड—अनर्थो= निरर्थको यो दण्डः सः निष्प्रयोजनो दण्ड इत्यर्थः २। हिंसादण्डः—'अयं मम पुत्रादिकं हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यति वेति बुद्धया यः शत्रु प्रभृतीनां दण्डः स हिंसादण्डः ३ तथा—अकस्माद् दण्डः—अन्यवधार्थं प्रहारे कृते अकस्माद् योऽन्यस्य दण्डः—प्राणव्यपरोपणं सः ४। तथा—दृष्टिविपर्यासदण्डः—दृष्टिविपर्यासेन—दृष्टिवैपरीत्येन—मित्रस्याप्यमित्रधिया यो दण्डः सः ५। इत्येते पञ्च दण्डा त्रयोदशक्रियास्थानानां मध्ये वर्त्तन्ते। अत्र तु पंचस्थानानुरोधेन पञ्चैव स्थानानि गृहीतानि। तानि त्रयोदशक्रियास्थानानि यथा—

"अट्ठा १ णट्ठा २ हिंसा ३ ऽकम्हा ४ दिट्ठी ५ य मोसदिन्ने ६ य।
अज्झत्थ ८ माणा ९ मित्ते १० माया ११ लोभे १२ रियावहिया १३ ॥१॥"

रोपणादि रूप दण्डको पाता है, वे दण्ड हैं, ये दण्डभी अर्थदण्ड आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं, इनमें त्रस जीवोंका अथवा स्थावर जीवोंका तथा अपना तथा परका प्रयोजनवश वध करना वह अर्थदण्डहै, निष्प्रयोजन प्राणातिपात करना वह अनर्थदण्ड है, इसने मेरे पुत्रादिका वध किया था अथवा अब भी वध करता है, आगेभी यह ऐसाही करेगा इस अभिप्रायसे जो शत्रु आदिकोंका वध कर दिया जाता है, वह हिंसादण्ड है, अन्यको मारनेके लिये तैयार हुए व्यक्तिसे जो अकस्मात् बीचमें दूसरेकी हिंसा हो जाती है, वह अकस्मात् दण्ड है, दृष्टिके विपर्याससे जो प्राणातिपात हो जाता है, वह दृष्टि विपर्यास दण्ड है, जैसे—अमित्रकी बुद्धिसे मित्रका वध हो जाता है। ये पांच दण्ड १३

દ્વારા પ્રાણવ્યપરોપણ આદિ રૂપ દંડને પ્રાપ્ત કરે છે, તેમને દંડ કહે છે. તે દંડના પણ અર્થદંડ આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે ત્રસ જીવોનો, સ્થાવર જીવોનો પોતાનો કે પરનો કોઈ પ્રયોજનને લીધે વધ કરવો તેનુ નામ અર્થદંડ છે કોઈ પણ જાતના પ્રયોજન વિના જીવહિંસા કરવી તે અનર્થદંડ છે આ જીવે મારા પુત્ર આદિનો વધ કર્યો હતો, વધ કરે છે કે વધ કરશે, એવી માન્યતાથી પ્રેરાઈને શત્રુ આદિનો જે વધ કરવામા આવે છે તેનુ નામ હિંસાદંડ છે કોઈને મારવાને તૈયાર થયેલી વ્યક્તિ દ્વારા કોઈ અન્ય વ્યક્તિની અકસ્માત્ હત્યા થઈ જાય તો તેને અકસ્માત્ દંડ કહે છે દૃષ્ટિવિપર્યાસને કારણે જે પ્રાણાતિપાત થઈ જાય છે, તેને દૃષ્ટિવિપર્યાસ દંડ કહે છે જેમકે મિત્રને અમિત્ર માનીને તેનો વધ થઈ જાય તો તે દૃષ્ટિવિપર્યાસ દંડ કહેવાય છે આ પાચ દંડનો ૧૩ ક્રિયાસ્થાનોમાં સમાવેશ થઈ જાય છે, પરન્તુ અહીં

छाया-मर्थो १ ऽनर्थो २ हिंसा ३ ऽकस्माद् ४ दृष्टिश्च ५ मृषा ६ मदत्त ७ च।
अध्यात्मं ८ मानो ९ मित्रं १० माया ११ लोभ १२ ऐर्यापथिकी १३॥
इति। ॥ सू० ८ ॥

अथ आस्रवविशेषरूपाणि क्रियास्थानानि माह—

मूलम्-पञ्च किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—आरंभिया १, परिग्गहिया २, मायावत्तिया ३, अपच्चक्खाणवत्तिया ४, मिच्छा दंसणवत्तिया ५। मिच्छादिट्ठियाणं नेरइयाणं पच किरियाओ पण्णत्ताओ त जहा आरभिया जाव मिच्छादसणवत्तिया ५। एव सव्वेसिं निरतर जाव मिच्छादिट्ठियाणं वेमाणियाणं । नवर विगलिंदिया मिच्छादिट्ठी न भण्णति, सेस तहेव । १ । पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—काइया १ आहिगरणिया २ पाओसिया ३ पारितावणिया ४ पाणाइवायकिरिया ५। णेरइयाणं पच एव चेव जाव वेमाणियाणं २। पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—दिट्ठिया १ पुट्ठिया २ पाडुच्चिया ३ सामतो वणिवाइया ४ साहत्थिया ५। एव णेरइयाणं जाव वेमाणियाण

क्रिया स्थानोंके बीचमें हैं, परन्तु यहां पांच स्थानोंके अनुरोधसे पांचही स्थान गृहीत हुए हैं। ये १३ क्रियास्थान इस प्रकारसे हैं—

"अट्ठाणट्ठा हिंसा" इत्यादि।

इन १३ क्रिया स्थानोंमें अर्थ अनर्थ आदि ये पांच दण्ड आये हैं। इन १३ क्रिया स्थानोंसे जीव बध होता है ॥ सू० ८ ॥

पांच स्थानोनो अधिकार चालतो होवाथी पांच ज स्थान ग्रहण करवामां आव्यां छे ते १३ क्रियास्थान नीचे प्रमाणे छे—

"अट्ठाणट्ठा हिंसा" ईत्यादि ते तेर क्रियास्थानोमां अर्थ, अनर्थ आदि आ पांच दंडनो तो समावेश थयेलो ज छे ते तेर क्रियास्थानो वडे जीव वध थतो होय छे ॥ सू ८ ॥

३। पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–णेसत्थिया १ आणवणिया २ वेयारणिया ३ अणाभोगवत्तिया ४ अणवकंखवत्तिया ५, एवं जाव वेमाणियाणं ४। पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–पेज्जवत्तिया १ दोसवत्तिया २ पओगकिरिया ३ समुदाणकिरिया ४ इरियावहिया ५, एवं मणुस्साणवि। सेसाणं नत्थि ५ ॥ सू० ९ ॥

छाया—पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–आरम्भिकी १, पारिग्रहिकी २, माया प्रत्यया ३, अप्रत्याख्यानप्रत्यया ४ मिथ्यादर्शनप्रत्यया ५। मिथ्यादृष्टिकानां नैरयिकाणां पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा आरम्भिकी १ यावद् मिथ्यादर्शनप्रत्यया ५। एवं सर्वेषां निरन्तरं यावद् मिथ्यादृष्टिकानां वैमानिकानाम्। नवरं विकलेन्द्रिया मिथ्यादृष्टयो न भण्यन्ते, शेषं तथैव ॥ १॥ पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कायिकी १ आधिकरणिकी २, प्राद्वेषिकी ३ पारितापनिकी ४ प्राणातिपातक्रिया ५। नैरयिकाणां पञ्च, एवमेव निरन्तरं यावद् वैमानिकानाम् २। पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–दृष्टिका १ पृष्टिका २ प्रातीत्यिका ३ सामन्तोपनिपातिकी ४ स्वाहस्तिकी ५। एवं नैरयिकाणां यावद् वैमानिकानाम् ३। पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नैसृष्टिकी १ आज्ञापनिका २, वैदारणिका ३ अनाभोगप्रत्यया ४ अनवकाङ्क्षाप्रत्यया ५। एवं यावद् वैमानिकानाम् ४। पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–प्रेमप्रत्यया १ द्वेषप्रत्यया २ प्रयोगक्रिया ३ समुदानक्रिया ४ ऐर्यापथीकी ५। एवं मनुष्याणामपि। शेषाणां नास्ति ५॥ सू० ९ ॥

टीका—'पंच किरियाओ' इत्यादि—

क्रियाः करणानि क्रिया –कर्मबन्धकारणीभूतचेष्टा इत्यर्थ, ताहि पञ्च प्रज्ञप्ता। पञ्च संख्यकत्वमेवाह–'आरम्भिकी' इत्यादि। तत्र–आरम्भिकी–आ-

अब सूत्रकार आस्रव विशेषरूप क्रिया स्थानोंकी प्ररूपणा करते हैं–

'पंच किरियाओ पण्णत्ताओ इत्यादि सूत्र ९ ॥

टीकार्थ–कर्मबन्ध कारणभूत जो चेष्टा विशेष हैं, वे क्रियाएँ हैं, ये क्रियाएँ

હવે સૂત્રકાર આસ્રવવિશેષ રૂપ ક્રિયા સ્થાનોની પ્રરૂપણા કરે છે

ટીકાર્થ–" પંચ किरियाओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ—

કર્મબન્ધનમાં કારણભૂત જે ચેષ્ટાવિશેષો હોય છે, તેમને ક્રિયાઓ કહે

रम्भ –पृथीव्याद्युपमर्दनं, स प्रयोजनं, यस्याः सा–पृथीव्याद्युपमर्दनरूपा क्रिये त्यर्थः ।१। तथा–पारिग्रहिकी–परिग्रहः=धर्मोपकरणातिरिक्तवस्तुग्रहण धर्मोपकरणे मूर्च्छा वा, स प्रयोजनं यस्याः सा पारिग्रहिकी क्रियेत्यर्थः ।२। तथा–माया प्रत्यया माया=मनाऽऽर्जवम्, उपलक्षणत्वात् क्रोधादि रपि सा प्रत्यय =कारण यस्या सा, मायानिमित्तिनी क्रियेत्यर्थः ॥३॥

अप्रत्याख्यानप्रत्यया–अप्रत्याख्यानम्=अनिवृत्तिः, तद् प्रत्ययो यस्या सा, अप्रत्याख्यानप्रत्यया क्रियेत्यर्थः ॥४। तथा–मिथ्यादर्शनप्रत्यया-मिथ्या=विप रीतदर्शनं=श्रद्धानं, तदेव, प्रत्ययो हेतुर्यस्याः सा, मोहोदयजन्या क्रियेत्यर्थः

पांच कही गई हैं–आरम्भिकी १ पारिग्रहिकी २ मायाप्रत्यया ३ अप्रत्याख्यान प्रत्यया ४ और मिथ्यादर्शन प्रत्यया जिस क्रियाका प्रयोजन पृथिवी आदिका उपमर्दन करनेरूप होता है, वह आरम्भ क्रिया है, आरम्भ विना प्राणातिपात होता नहीं है, इसलिये आरम्भ क्रियाको पृथिवीकायिक आदिके उपमर्दनरूप कहा गया है, धर्मोपकरण से अतिरिक्त वस्तुओंका ग्रहण करना अथवा धर्मोपकरणोंमें मूर्च्छा रखना यह प्रयोजन जिस क्रियाका होता है वह पारिग्रहिकी क्रिया है, जिस क्रियाका कारण माया एवं उपलक्षणसे क्रोधादिक भी होते हैं, वह मायाप्रत्यया क्रिया है, अनिवृत्ति त्यागका अभाव अप्रत्याख्यान है, यह अप्रत्याख्यानभाव जिस क्रियाका कारण होता है, वह अप्रत्या ख्यानजन्य क्रिया अप्रत्याख्यान क्रिया है, विपरीत दर्शनका नाम मिथ्या दर्शन है यह मिथ्याश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शन जिस क्रियाका हेतु होता

છે એવી ક્રિયાઓ પાંચ કહી છે—(૧) આરમ્ભિકી, (૨) પારિગ્રહિકી, (૩) માયાપ્રત્યયા, (૪) અપ્રત્યાખ્યાનપ્રત્યયા અને મિથ્યાદર્શનપ્રત્યયા

જે ક્રિયાનું પ્રયોજન પૃથ્વીકાય આદિને ઉપમર્દન કરવા રૂપ હોય છે, તે 'આરમ્ભ ક્રિયા' છે આરમ્ભ વિના પ્રાણાતિપાત થતો નથી તેથી આરમ્ભ ક્રિયાને પૃથ્વીકાયિક આદિના ઉપમર્દન રૂપ કહેવામાં આવેલ છે ધર્મોપકરણ સિવાયની વધારાની વસ્તુઓને ગ્રહણ કરવી અથવા ધર્મોપકરણમાં મૂર્છાભાવ રાખવા રૂપ પ્રયોજન જે ક્રિયાનું હોય છે તે ક્રિયાને પારિગ્રહિકી ક્રિયા કહે છે જે ક્રિયાનું કારણ માયા હોય છે અને ઉપલક્ષણથી ક્રોધાદિક પણ હોય છે તે ક્રિયાને માયાપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે અનિવૃત્તિ (ત્યાગના અભાવ) ને અપ્રત્યાખ્યાન કહે છે તે અપ્રત્યાખ્યાન ભાવ જે ક્રિયાનું કારણ હોય છે, તે અપ્રત્યાખ્યાનજન્ય ક્રિયાને અપ્રત્યાખ્યાન પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે વિપરીત દર્શનનું નામ મિથ્યાદર્શન છે તે મિથ્યાશ્રદ્ધાન રૂપ મિથ્યાદર્શન જે ક્રિયાનું

॥५॥ इति। एता हि पञ्च क्रिया मिथ्यादृष्टिकनैरयिकादि–मिथ्यादृष्टिकवैमानिकान्तानां चतुर्विंशतिदण्डकोक्तानां भवन्ति। चतुर्विंशति दण्डके तु ये विकलेन्द्रियाः=एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सन्ति, ते हि मिथ्यादृष्टीति विशेषणेन न विशिष्यन्ते, तेषु सदैव सम्यग्दृष्टित्वाभावेन व्यवच्छेद्याभावात्। ननु तेष्वपि सासादना भवन्ति, ततश्च तेषामपि मिथ्यादृष्टीति विशेषणं योज्यमेवेतिचेन्न, तेषामल्पत्वेनेहाविवक्षणादिति। अमुमेवार्थमाह सूत्रकारः–' मिच्छादिट्ठियाणं नेर-

है, ऐसी वह मोहके उदयसे उत्पन्न हुई क्रिया मिथ्यादर्शन क्रिया है, ये पांच क्रियाएँ मिथ्यादृष्टि नैरयिकसे लेकर मिथ्यादृष्टिक वैमानिक तकके समस्त चौवीस दण्डकमें होती हैं, चौवीस दण्डकमें जो एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीव हैं वे "मिथ्यादृष्टि" इस विशेषणसे विशेषित नहीं होते हैं, क्योंकि इनमें सम्यग्दृष्टित्वके अभावसे व्यवच्छेद्य होनेका अभाव है, अर्थात् इनमें यदि सम्यग्दृष्टि कोई जीव पाया जाता तो उस दृष्टिके अभावसे यहां मिथ्यादृष्टित्व आता है, परन्तु यहां तो ऐसी हालत है नहीं–अत. ये मिथ्यादृष्टि विशेषतावाले नहीं कहे जाते हैं। यदि यहां पर ऐसी आशंका की जावे कि इनमें भी सासादन सम्यग्दृष्टि होते हैं, अतः यह दृष्टि जिनके नहीं हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं, इस तरह उनमें भी "मिथ्यादृष्टि" यह विशेषण लगाना चाहिये सो इसका समाधान ऐसा है, कि जिनमें सासादन सम्यग्दृष्टि

કારણુ હોય છે, એવી મોહના ઉદયથી ઉત્પન્ન થયેલી ક્રિયાને મિથ્યાદર્શન ક્રિયા કહે છે મિથ્યાદૃષ્ટિ નારકોથી લઇને વૈમાનિકો પર્યન્તના ૨૪ દંડકના સમસ્ત જીવોમાં આ પાચે ક્રિયાઓનો સદ્‌ભાવ હોય છે ચોવીસ દડકમા જે એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય જીવો છે તેમને "મિથ્યાદૃષ્ટિ" આ વિશેષણુ લગાડી શકાતું નથી, કારણુ કે તેઓમા સમ્યગ્દૃષ્ટિત્વના અભાવથી વ્યવચ્છેદ્ય હોવાનો અભાવ છે, એટલે કે તેઓમા જો સમ્યગ્દૃષ્ટિ કોઇ જીવનો સદ્‌ભાવ હોય, તો તે દૃષ્ટિના અભાવથી ત્યાં મિથ્યાદૃષ્ટિત્વ આવે છે. પણુ ત્યાં તો એવી હાલત નથી તેથી તેમને મિથ્યાદૃષ્ટિ વિશેષણુવાળા કહેવાતા નથી

જો અહીં એવી આશંકા કરવામાં આવે કે તેમનામા પણુ સાસાદન સમ્યગ્દૃષ્ટિ હોય છે, તેથી આ દૃષ્ટિનો જેમનામાં અભાવ છે, તેમને મિથ્યાદૃષ્ટિ જ ગણુવા જોઇએ. છતાં તેમને મિથ્યાદૃષ્ટિ વિશેષણુ લગાડવાની શા કારણે ના પાડવામા આવી છે? તો આ શકાનું સમાધાન નીચે પ્રમાણે છે—

इयाण' इत्यारभ्य 'सेस तहेव इत्यन्तेन सन्दर्भेणेति ॥१॥ पुनरपि कायिक्यादिभेदेन, पञ्च क्रियाः प्राह-उयादि-कायिकी=कायेभवा कायेन निर्वृत्ता वा, हस्तादिव्यापाररूपेत्यर्थ ॥१॥ आधिकरणिकी=अधिकरणं=खड्गादिकं तत्र भवा तेन वा निर्वृत्ता । इयं द्विविधा भवति-निर्वर्तनाधिकरणक्रियासंयोजनाधिकरणक्रिया च । तत्र या खड्गादीनां तन्मुष्टयादीनां च निर्वर्तनलक्षणा क्रिया सा प्रथमा । या तु निर्वृत्तानामेव तेषां संयोजनलक्षणा सा द्वितीयेति । २ । प्राद्वेषिकी-प्रद्वेषो-मात्सर्यम्-अन्य शुभद्वेष इत्यर्थः, तेन निर्वृत्ता या क्रिया सा-'मारयाम्येनम्'

पाये जाते हैं, ऐसे वे सासादन सम्यग्दृष्टि बहुतही कम होते हैं अतः उनकी यहां अविवक्षा है, विवक्षा नहींकी गई है, इसीका पुष्टि सूत्रकारने "मिच्छाद्दिट्ठियाणं नेरइयाण "यहांसे लेकर "सेसं तहेव" यहां तकके सन्दर्भसे प्रकटकी गई है १। पुनश्च—कायिकी आदिके-भेदसे क्रियाएं पांच होती हैं-इनमें जो क्रिया शरीरमें या शरीरके द्वारा होती है, वह-कायिकी क्रिया है, यह क्रिया हस्तादिके व्यापाररूप होती है १ आधिकरणिकी-खड्गादिरूप अधिकरणमें या खड्गादिरूप अधिकरणके द्वारा जो क्रिया होती है वह आधिकरणकी क्रिया है, यह क्रिया दो प्रकारकी होती है-एक निर्वर्तनाधिकरण क्रिया और दूसरी संयोजनाधिकरण क्रिया इनमें जो खड्गादिकोंका या उनकी मूठ आदिका बनाना है, वह निर्वर्तनाधिकरण क्रिया है, तथा जो खड्गादिकोंका और उनकी मूठ आदिका परस्परमें संयोजन है, वह संयोजनाधिकरण क्रिया है २ प्रद्वेष नाम मात्सर्यका है, अन्यके शुभके प्रति द्वेषरूप परिणतिका होना इसका

તેઓમાં સાસાદન સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવો ઘણાં જ ઓછાં હોય છે તેથી સૂત્રકારે અહીં તેમનો ઉલ્લેખ કર્યો નથી. સૂત્રકારે " मिच्छादिट्ठियाणं नेरइयाणं " થી લઈને "सेसं तहेव " આ સૂત્રપાઠ સુધીના કથન દ્વારા એ જ વાતની પુષ્ટિ કરી છે.

ક્રિયાના કાયિકી આદિ પાંચ ભેદ પણ કહ્યા છે જે ક્રિયા શરીરમાં અથવા શરીર દ્વારા થાય છે તે ક્રિયાને કાયિકી ક્રિયા કહે છે તે ક્રિયા હસ્તાદિની પ્રવૃત્તિ રૂપ હોય છે (૨) આધિકરણિકી ક્રિયા-તેના બે પ્રકાર કહ્યા છે-નિવર્તનાધિકરણ ક્રિયા અને સંયોજનાધિકરણ ક્રિયા તલવાર, તેની મૂઠ આદિ બનાવવાની ક્રિયાને નિવર્તનાધિકરણ ક્રિયા કહે છે તલવાર આદિ હોનું અને તેમની મૂઠ આદિનું પરસ્પરમાં જે સંયોજન કરવા રૂપ ક્રિયા છે તેને સંયોજનાધિકરણ ક્રિયા કહે છે (૩) પ્રદ્વેષિકી ક્રિયા-અન્યના લાભને જોઈને તેના પ્રત્યે દ્વેષ રૂપ પરિણતિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેનું નામ પ્રદ્વેષ છે

इत्यशुभमनः संकल्परूपा।३। पारितापनिकी–परितापनं नाम दुःखं तेन निर्वृत्ता–खड्गादिघातेन पीडाकरणरूपा ४। तथा प्राणातिपातक्रिया–प्राणाः=उच्छ्वासादयः तेषाम् अतिपातनं=प्राणवतःसकाशाद् वियोजनं, नाशनं, प्राणातिपातः, तद्रूपा क्रिया ५। एताः कायिक्यादयः क्रियाश्चतुर्विंशतिदण्डकोक्तनैरयिकादिवैमानिकान्तानां सर्वेषां बोध्याः ।२।

पुनरपि दृष्टिकादिभेदैः पञ्च क्रियाः प्राह–तथाहि–दृष्टिका–दृष्टं=दर्शनम्=अवलोकनं तद्विषयं वस्तु वा निमित्ततया यस्यामस्ति सा दृष्टिका–अश्वादि चित्र-

---

नाम मात्सर्य है, इस मात्सर्यरूप प्रद्वेषसे जो क्रिया होती है, वह प्राद्वेषिकी क्रिया है, यह प्राद्वेषिकी क्रिया "मैं इसे मारूं" इस प्रकारके मानसिक संकल्परूप होती है ३। परितापन नाम दुःख है इस दुःख रूप परितापनसे जो क्रिया होती है, वह पारितापनिकी क्रिया है, यह क्रिया खड्ग आदिके घातसे पीडा करनेरूप होती है ४। तथा उच्छ्वास आदि प्राणोंका प्राणवालेसे वियोजन करना इसका नाम प्राणातिपात है, और इस रूप जो क्रिया है, वह प्राणातिपात क्रिया है ५। ये कायिकी आदि क्रियाएँ चौबीस दण्डकोक्त नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके समस्त जीवोंको होती हैं २।

पुनश्च–दृष्टिक आदिके भेदसे क्रियाएँ पांच प्रकारकी होतीहैं, जैसे–दृष्टिका१ आदि इनमें दर्शनका नाम दृष्ट है, अथवा–अवलोकनका–देखनेका नाम दृष्ट है, अथवा–अवलोकनकी विषयभूत जो वस्तु है, वह दृष्ट है,

---

આ પ્રદ્વેષને કારણે જે ક્રિયા થાય છે તેને પ્રાદ્વેષિકી ક્રિયા કહે છે "હુ તેને મારું" આ પ્રકારના માનસિક સંકલ્પ રૂપ આ ક્રિયા હોય છે. (૪) પરિતાપનિકી ક્રિયા--પરિતાપન એટલે દુઃખ આ દુખરૂપ પરિતાપન વડે જે ક્રિયા થાય છે તેને પરિતાપનિકી ક્રિયા કહે છે લાકડી, તલવાર આદિના ઘા વડે પીડા કરવા રૂપ આ ક્રિયા હોય છે. (૫) પ્રાણાતિપાત ક્રિયા-ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણોને પ્રાણવાળા જીવોમાથી અલગ કરવા તેનું નામ પ્રાણાતિપાત છે તે પ્રાણાતિપાત રૂપ જે ક્રિયા હોય છે તેને પ્રાણાતિપાત ક્રિયા કહે છે કાયિકીથી લઇને પ્રાણાતિપાત પર્યંતની પાંચે ક્રિયાઓનો નારકોથી લઇને વૈમાનિકો પર્યન્તના ૨૪ દડકના સમસ્ત જીવોમા સદ્ભાવ હોય છે

દૃષ્ટિકા આદિના ભેદથી પણ ક્રિયાઓ પાચ પ્રકારની કહી છે-દર્શનનું નામ દૃષ્ટ છે અથવા અવલોકનનુ નામ દૃષ્ટ છે અથવા અવલોકનનાં વિષય

कर्मादिदर्शनार्थं गमनरूपेत्यर्थः । यद्वा-'दृष्टिजा' इतिच्छाया । दृष्टर्भावा-दृष्टिजा दर्शनजनिता क्रियेत्यर्थः । १। पृष्टिका-पृष्टं=प्रश्नः, तदस्ति निमित्त तया यस्यां सा-जीवादीन् रागादिना पृच्छतो या क्रिया सा सावद्यप्रश्नजनिता क्रियेत्यर्थः । 'स्पृष्टिका' इति वा च्छाया । स्पृष्ट=स्पर्शनं तदस्ति निमित्तत्वेन यस्यां सा-रागादिना स्पृशतो या क्रिया सा स्पर्शजन्या-क्रियेत्यर्थ । 'पृष्टिजा' इति वा च्छायापक्ष पूर्वोक्तप्रकारेण बोध्यः २।

यह दृष्ट निमित्त रूपसे जिस क्रियामें है वह दृष्टिका क्रिया है, यह दृष्टिका क्रिया अश्वादिके चित्र आदिको देखनेके लिये गमन करने रूप (जाने रूप) होती है, अथवा-"दिट्ठिया "की संस्कृत छाया "दृष्टिजा" ऐसी भी हो सकती है, इस पक्षमें देखनेसे जो क्रिया होती है, वह दृष्टिजा क्रिया है ऐसा अर्थ होता है १। पृष्टिका-पृष्ट नाम प्रश्नका है, यह प्रश्न जिस क्रियामें निमित्तरूपसे होता है वह पृष्टिका क्रिया है, ऐसी यह पृष्टिका क्रिया जीवादिकोंके विषयमें या रागादिकोंके विषयमें पूछनेवालेको होती है, अथवा-सावद्य प्रश्नसे जो क्रिया उत्पन्न होती है, वह पृष्टिका क्रिया है, अथवा-" पुट्ठिया "की संस्कृत छाया "स्पृष्टिका" ऐसी भी होती है, इसका अर्थ ऐसा होता है, कि जिस क्रियामें स्पर्शन निमित्त होता है, वह स्पृष्टिका क्रिया है, रागादिके

રૂપ જે વસ્તુ છે તેનું નામ દૃષ્ટ છે જે ક્રિયામાં આ દૃષ્ટ નિમિત્ત રૂપ હોય છે તે ક્રિયાને દૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે આ દૃષ્ટિકા ક્રિયા અશ્વાદિકોના ચિત્રો ને જોવાને માટે ગમન કરવા રૂપ હોય છે

અથવા "દિટ્ઠિયા" ની સંસ્કૃત છાયા 'દૃષ્ટિજા" લેવામાં આવે તો તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-'દેખવાથી જે ક્રિયા થાય છે, તેને દૃષ્ટિજા ક્રિયા કહે છે"

(૨) પૃષ્ટિકા ક્રિયા—પૃષ્ટ એટલે જે પૂછવામાં આવે તે પ્રશ્ન જે ક્રિયામાં તે નિમિત્ત રૂપ હોય છે, તે ક્રિયાને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે જીવા દિકોના વિષયમાં અથવા રાગાદિકોના વિષયમાં પ્રશ્ન પૂછનારને આ ક્રિયા લાગે છે અથવા-" સાવદ્ય પ્રશ્નથી જે ક્રિયા ઉત્પન્ન થાય છે તેને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે અથવા 'પુટ્ઠિયા" ની સંસ્કૃત છાયા "સ્પૃષ્ટિકા" પણ થાય' તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-" જે ક્રિયામાં સ્પર્શ નિમિત્ત રૂપ હોય છે તે ક્રિયાને સ્પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે "રાગાદિકને વશવર્તી બનીને સ્પર્શ કરનાર

प्रातीतिकी–बाह्यं वस्तु जीवाजीव प्रतीत्य=आश्रित्य या क्रिया भवति सा ३। सामन्तोपनिपातिकी–समन्तात्=सर्वत उपनिपातः=जनानां सम्मिलनं, तत्र–भवा क्रिया। अश्वादि रथादिकं लोकाः प्रशंसन्ति, तत्प्रशंसां श्रुत्वा प्रहृष्यतोऽश्वादिरथादिपतेरियं क्रिया भवति ४। तथा–स्वाहस्तिकी–स्वहस्तेन निर्वृत्ता क्रिया। स्वहस्तगृहीतजीवादिना जीवान् मारयतः क्रिया स्वाहस्तिकीत्युच्यते ५। एताः पञ्चापि क्रिया नैरयिकादि वैमानिकान्तानां भवन्तीति ॥३॥

वशवर्ती होकर छूनेवाले व्यक्तिकी जो स्पर्शजन्य क्रिया है, वह स्पृष्टिका क्रिया है अथवा–" पृष्टिजा स्पृष्टिजा " इस पक्षमें भी यही पूर्वोक्त अर्थ है २। प्रातीतिकी जीव अजीव रूप बाह्य वस्तुको प्रतीत करके आश्रित करके जो क्रिया होती है वह प्रातीतिकी क्रिया है ३। सामन्तोपनिपातिकी सब तरफसे मनुष्योंको जो सम्मिलन होता है, वह सामन्तोपनिपात है, इस सामन्तोपनिपातमें जो क्रिया होती है, वह सामन्तोपनिपातिकी क्रिया है, परस्पर सम्मेलनमें अश्वरथादिकी लोक जब प्रशंसा करते हैं तब इस प्रशंसाको सुनकर हर्षित होते हुए अश्वरथाधिपतिके यह क्रिया होती है ४। स्वाहस्तिकी–अपने हाथसे जो क्रिया निष्पन्न होतीहै वह स्वाहस्तिकी क्रियाहै, अपने हस्तसे गृहीत जीवादिकों द्वारा जीवोंको मारनेवाले प्राणीकी क्रिया स्वाहस्तिकी क्रिया कहलातीहै ५। ये पांच क्रियाएँ नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके जीवोंको होतीहैं ३।

વ્યક્તિની જે ક્રિયા હોય છે તેને સ્પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે અથવા " पुष्टिजा स्पृष्टिजा " આ સંસ્કૃત છાયા લેવામા આવે તો પણ તેનો ઉપર મુજબ જ અર્થ થાય છે.

(૩) પ્રાતીતિકી ક્રિયા—જીવ અજીવ રૂપ બાહ્ય વસ્તુને પ્રતીત કરીને આશ્રિત કરીને જે ક્રિયા થાય છે, તેને પ્રાતીતિકી ક્રિયા કહે છે

(૫) સામન્તોપનિપાતિકી ક્રિયા—ચોમેરથી આવીને માણુસોનુ જે સમ્મિલન થાય છે, તેને ' સામન્તોપનિપાત ' કહે છે આ સામન્તોપનિપાતમાં જે ક્રિયા થાય છે, તેને સામન્તોપનિપાતિકી ક્રિયા કહે છે આવા સમ્મેલનમા અશ્વ, રથ આદિની જ્યારે પ્રશસા થાય છે, ત્યારે તે પ્રશંસા સાંભળીને હર્ષિત થતા અશ્વપતિ રથપતિ આદિ આ પ્રકારની ક્રિયાવાળા હોય છે

(૫) સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા—પોતાના હાથથી જ જે ક્રિયા થાય છે તેને સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે. પોતાને હાથે પકડેલા જીવાદિકો દ્વારા જીવોને મારવાની જે ક્રિયા થાય છે તેને સ્વહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે. આ પાંચે ક્રિયાઓનો નારકોથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોમાં સદ્ભાવ હોય છે. ।૩।

पुनरपि पञ्च क्रिया आह—तथाहि—नैसृष्टिकी—निसृष्ट—विसर्जनं पाषाणादीनां प्रज्ञापनमिति यावत्, तत्र भवा क्रिया १। आज्ञापनिका—आज्ञापनस्य=आदेशनस्य इयम्, आज्ञापनमेव वा आज्ञापनी, सैवयम्—आज्ञापनिका:—आज्ञापनविषया क्रिया। जीवाजीवान् भनापयतः क्रियेत्यर्थः २। वैदारणी—विदारणमेव वैदारणी सा च जीवाजीवान् विदारयतः क्रिया ३। अनाभोगप्रत्यया—अनाभोग=अज्ञानादिक, स एव प्रत्ययः कारणं यस्याः सा—अज्ञानेन पात्रादि आददतो निक्षिपतो वा सम्भवन्ती क्रियेत्यर्थः ४। तथा—अनवकाङ्क्षाप्रत्यया—अनवकाङ्क्षा—स्वश

पुनश्च—क्रियाएँ पांच प्रकारकी हैं—जैसे—नैसृष्टिकी १ आज्ञापनिका २ वैदारणिका ३ अनाभोगप्रत्यया ४ एवं अनवकाङ्क्षा प्रत्यया ५ इनमें—जो नैसृष्टिकी क्रिया होती है, वह पाषाण आदिके फेंकने पर होती है, आज्ञापनिका क्रिया जीवोंको एवं अजीवोंको परकी प्रेरणासे मानेवालेके होती है, जो क्रिया आदेशसे सम्बन्ध रखती है, या स्वयं आज्ञापनरूप होती है, वह आज्ञापनी क्रिया है, यह आज्ञापनी क्रियाही आज्ञापनिका क्रिया है, यह क्रिया आज्ञापन विषयवाली होती है, जीवोंको एव अजीवोंको विदारण करनेवालेके वैदारणी क्रिया होती है, जिस क्रियाका कारण अज्ञान होताहै, वह अनाभोग प्रत्यया क्रिया है, अनाभोग नाम अज्ञान आदि का है वह अनाभोगही जिस क्रिया का कारण होता है, ऐसी वह क्रिया अनाभोग प्रत्यया क्रिया है, यह क्रिया अज्ञानसे पात्रादिको उठानेवाले के या अज्ञानसे पात्रादिकोंको धरनेवालेको होती है, अनवकाङ्क्षा प्रत्यया

નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકારની ક્રિયાઓ પણ હોય છે—(૧) નૈસૃષ્ટિકી, (૨) આજ્ઞાપનિકા (૩) વૈદારણિકા (૪) અનાભોગ પ્રત્યયા અને (૫) અનવકાંક્ષા પ્રત્યયા પથ્થર આદિને ફેંકવાથી નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયા થાય છે જે ક્રિયા આદેશ સાથે સંબંધ રાખતી હોય છે અથવા પોતે જ આજ્ઞાપન રૂપ હોય છે તેને આજ્ઞાપની અથવા આજ્ઞાપનિકા ક્રિયા કહે છે જીવો અને અજીવોને પરની પ્રેરણાથી મારનારને કે બીજા પહોંચાડનારને આ ક્રિયા લાગે છે જીવોનું અને અજીવોનું વિદારણ કરનાર વડે વૈદારણી ક્રિયા થતી હોય છે. જે ક્રિયા અજ્ઞાનને કારણે થાય છે, તે ક્રિયાને અનાભોગ પ્રત્યયા ક્રિયા કહેછે અનાભોગ એટલે અજ્ઞાન વગેરે આ અનાભોગ જ જે ક્રિયાનું કારણ હોય છે એવી ક્રિયાને અનાભોગ પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે અજ્ઞાનથી પાત્રાદિ ઉઠાવનાર કે મૂકનારને આ ક્રિયા લાગે છે પોતાના શરીર આદિ સંબંધી અનપેક્ષાને કારણે જે ક્રિયા થાય છે, તે ક્રિયાને અનવકાંક્ષા પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે

रीराद्यनपेक्षत्वं, सैव प्रत्ययं-कारणं यस्याः सा-इहलोका परलोकापायानपेक्षस्य क्रियेत्यर्थः ५। एता नैसृष्टिक्याद्यनवकाङ्क्षप्रत्ययान्ताः पञ्चापि क्रिया नैरयिकादि वैमानिकान्तानां चतुर्विंशतिदण्डकोक्तानां बोध्या । पुनरपि पञ्च क्रियाः प्राह- तथाहि-प्रेमप्रत्यया-प्रेम=रागः प्रत्ययो: हेतुर्यस्यां क्रियायां सा, रागजन्या क्रिया १। द्वेष प्रत्यया-द्वेषः=अप्रीतिः प्रत्ययो यस्यां सा-द्वेषजन्या क्रिया २। प्रयोग- क्रिया-वीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूतवीर्येण आत्मना प्रयुज्यते=व्यापार्यते इति प्रयोगः मनोवाक्कायलक्षणः, तस्य क्रिया=कारणं व्यापारः-मनोवाक्कायव्यापार-

क्रिया वह है, कि जिसका कारण स्वशरीरादिकी अनपेक्षा होती है, यह क्रिया उसको होती है कि जिसे इहलोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी उपायकी परवाहही नहीं होती है, ये पांचोंही क्रियाएँ नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके समस्त चौवीस दण्डकस्थ जीवोंको होती हैं ।

पुनश्च--क्रियाएँ पांच प्रकारकी हैं-जैसे-प्रेम प्रत्यया १ द्वेष प्रत्यया २ प्रयोग क्रिया ३ समुदान क्रिया ४ और ऐर्यापथिकी क्रिया ५ जिस क्रियामें प्रेम-राग हेतु होता है, वह प्रेमप्रत्यया क्रिया है, तात्पर्य यह है कि जो क्रिया रागसे जन्य होती है, वह प्रेमप्रत्यया क्रिया है १ जिस क्रियामें अप्रीति कारण होती है, अर्थात् जो क्रिया द्वेषजन्य होती है, वह द्वेषप्रत्यया क्रिया है, वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे आविर्भूत वीर्यसे युक्त आत्माके द्वारा जो व्यापार किया जाता है, उसका नाम प्रयोग है, यह प्रयोग मन वचन कायरूप होता है, अर्थात् मन वचन

આ ક્રિયા તેના દ્વારા થાય છે કે જેને આલોક અને પરલોક સબંધી ઉપાયની પરવા હોતી નથી નારકોથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના ૨૪ દડકના સમસ્ત જીવોમા આ પાચે ક્રિયાઓનો સદ્ભાવ હોય છે । ૪ ।

ક્રિયાના નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પ્રેમ પ્રત્યયા, (૨) દ્વેષ પ્રત્યયા, (૩) પ્રયોગ ક્રિયા, (૪) સમુદાન ક્રિયા અને (૫) ઐર્યાપથિકી ક્રિયા. જે ક્રિયામાં પ્રેમ-રાગ કારણરૂપ હોય છે તે ક્રિયાને પ્રેમ પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે એટલે કે રાગજન્ય જે ક્રિયા હોય છે તેને પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. જે ક્રિયામાં અપ્રીતિ કારણરૂપ હોય છે, અથવા જે ક્રિયા દ્વેષજન્ય હોય છે, તેને દ્વેષપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી આવિર્ભૂત વીર્યથી યુક્ત આત્મા દ્વારા જે વ્યાપાર કરાય છે, તેનુ નામ પ્રયોગ છે. તે પ્રયોગ મન, વચન અને કાયરૂપ હોય છે એટલે કે મન, વચન અને કાયની

इत्यर्थः १। समुदानक्रिया-प्रयोगक्रियैकरूपतया गृहीतानां कर्मवर्गणानां सम्यक् प्रकृतिबन्धादिभेदेन देश सर्वोपघातिरूपतया च आदानं=स्वीकरणं समुदानं, तद्रूपा क्रिया, यद्वा-समुदानम्=जनसमूहः, तस्य क्रिया २। तथा-ऐर्यापथिकी-ईरणं=गमनम्-ईर्या, तद्विशिष्ट पन्था ईर्यापथः तत्र भवा ऐर्यापथिकी उपशान्त

कायकी क्रियारूप जो आत्माका व्यापार है, वही प्रयोग है, और यही प्रयोग क्रिया है, समुदान क्रिया-प्रयोग क्रिया द्वारा एकरूपसे गृहीत हुई कर्मवर्गणाओंका जो प्रकृतिबन्ध आदिके भेदसे विभाग होता है, और उसमेंभी देशघाति एव सर्वघातिके अंशोंका पड़ना होता है, वह समुदान क्रिया है, जैसे किसी जीवने प्रयोग क्रिया द्वारा कार्मण वर्गणाओंका सामान्यरूपमें बन्ध किया, अब उनमें कितनिकवर्गणाओंका ज्ञानावरणीय आदि रूपसे प्रकृतिबन्ध हुआ उसमें भी मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण मन पर्यवज्ञानावरण इस रूपसे जो उसका परिणमन हुआ है, वह देशघातिरूपसे उसका प्रकृतिबन्ध है, और जो केवल ज्ञानावरण रूपसे उसका परिणमनहै, वह सर्वघातिरूपसे प्रकृतिबन्ध है, यही इस समुदान क्रियाका तात्पर्य है, अथवा-समुदान नाम जनसमूहका है, इसकी जो क्रिया है, वह भी समुदान क्रिया है २। ईरण नाम गमनका है वह ईरणही ईर्या है, इस ईर्यासे विशिष्ट जो मार्ग है, वह ईर्यापथ है, अर्थात् गमनका साधक जो मार्ग है, वह ईर्या

પ્રવૃત્તિરૂપ આત્માનો જે વ્યાપાર છે તેને પ્રયોગ કહે છે અને એજ પ્રયોગ ક્રિયા છે હવે સમુદાન ક્રિયાનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—

પ્રયોગક્રિયા દ્વારા એક રૂપે ગ્રહણ કરાયેલ કર્મવર્ગણાઓનો જે પ્રકૃતિ બન્ધ આદિ રૂપે વિભાગ થાય છે અને તેમાં પણ દેશઘાતિ અને સર્વઘાતિ રૂપ જે વિભાગો પડે છે તેનું નામ સમુદાન ક્રિયા કહે છે જેમકે-કોઈ જીવે પ્રયોગક્રિયા દ્વારા કાર્મણ વર્ગણાઓનો સામાન્ય રૂપે બન્ધ કર્યો તેમાંથી કેટલીક વર્ગણાઓનો જ્ઞાનાવરણીય આદિ રૂપે પ્રકૃતિબન્ધ થયો. હવે તેનું જે મતિજ્ઞાનાવરણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણ, અવધિજ્ઞાનાવરણ અને મન પર્યવજ્ઞાનાવરણ રૂપે જે જે પરિણમન થયું છે તે દેશઘાતિ રૂપે તેનો પ્રકૃતિબંધ છે અને જે કેવળજ્ઞાનાવરણ રૂપે તેનું પરિણમન છે, તે સર્વઘાતિ રૂપે પ્રકૃતિબન્ધ છે એજ આ સમુદાન ક્રિયાનો ભાવાર્થ છે અથવા સમુદાન એટલે જનસમૂહ તે જનસમૂહની જે ક્રિયા છે તેને સમુદાન ક્રિયા કહે છે

ઐર્યાપથિકી ક્રિયા—"ઈરણ" એટલે ગમન તે ઈરણને જ ઈર્યા કહે છે જે માર્ગે થઈને ગમન કરવાનું હોય તે માર્ગને 'ઈર્યાપથ' કહે છે તે

मोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिनां केवलयोगप्रत्ययासातावेदनीयकर्मबन्धरूपे-त्यर्थः ५। प्रेमप्रत्ययाधैर्यापथिक्यन्ताः पञ्चकृत्वेनोक्ताः क्रियाश्चतुर्विंशति दण्ड-केषु मनुष्याणामेव भवन्ति नत्वन्येषाम्, ऐर्यापथिकी क्रियाया उपशान्तमोहा-

पथ है, इस ईर्यापथमें जो क्रिया होती है, वह ऐर्यापथिकी क्रिया है, यह ऐर्यापथिकी क्रिया उपशान्त मोह क्षीणमोह और सयोगकेवलियोंको होती है, इसका कारण केवल योगही होता है, तात्पर्य इस कथनका ऐसा है, कि यद्यपि ईर्याका अर्थ गमन है, पर यह अर्थ केवल व्युत्पत्ति लभ्य है, क्योंकि ईर्यापथ जो क्रिया होती है, वह केवल योगसेही होती है, इसलिये ईर्याका अर्थ योग लेना चाहिये. जिस प्रकार कोरे घडे पर धूल मिट्टी नहीं जमती है, वह उस पर पड़ जाने पर भी तत्काल उससे दूर हो जाती है, वैसेही योगसे जायमान ईर्यापथ क्रिया द्वारा गृहीत कर्मपुद्गल कषायके अभावमें आत्मासे चिपकता नहीं है, आतेही वह उससे अलग हो जाता है, इसी लिये यह क्रिया ११ ग्यारहवे १२ बारहवे और १३ तेरहवें गुणस्थानवाले जीवोंको कही गईहै, ईर्यापथ क्रियासे जो कर्म होताहै, वह सातावेदनीय बंधरूप होताहै, और इसकी केवल एक समयकीही स्थिति होती है, अर्थात् पहले समय बन्ध होता है दूसरे समय इसका वेदन होता है और तीसरे समय निर्जरण हो जाता है ये पांच क्रियाएँ चौवीस

ઈર્યાપથમા જે ક્રિયા થાય છે, તેને ઐર્યાપથિકી ક્રિયા કહે છે આ ઐર્યાપથિકી ક્રિયા ઉપશાન્ત મોહ, ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલીઓ દ્વારાજ થાય છે. તેનું કારણ માત્ર યોગ જ હોય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જો કે ઈર્યાનો અર્થ ગમન છે, પણ આ અર્થ તો માત્ર વ્યુત્પત્તિ લભ્ય અર્થ જ છે, કારણ કે ઈર્યાપથ જે ક્રિયા હોય છે તે કેવળ યોગથી જ થાય છે, તેથી અહીં ઈર્યાનો અર્થ યોગ લેવો જોઈએ જેમ કોરા ઘડા ઉપર રજ આદિ જામતું નથી, કદાચ તેના પર રજ પડી હોય તો પણ તે પવન આદિ વડે ઊડી જાય છે, એ જ પ્રમાણે યોગજન્ય ઈર્યાપથ ક્રિયા દ્વારા ગૃહીત કર્મ પુદ્ગલ કષાયને અભાવે આત્મા સાથે ચોટી જતા નથી, આવતાં સાથે જ તેઓ આત્માથી અલગ થઈ જાય છે. તેથી ૧૧ માં, બારમાં અને તેરમા ગુણસ્થાન-વાળા જીવો આ ક્રિયા કરે છે, એમ કહેવામાં આવ્યું છે ઈર્યાપથ ક્રિયા દ્વારા આવેલું જે કર્મ હોય છે, તે સાતાવેદનીય બન્ધરૂપ હોય છે, અને તેની માત્ર એક સમયની જ સ્થિતિ હોય છે. આ પાચ ક્રિયાઓ ૨૪ દંડ-

दित्रयेष्वेव सद्भावात्। ममुमेवार्थमाह-' एव मणुस्साणवि, सेसाणं णत्थि' इति। क्रियापाविस्तृतव्याख्या अस्मिन्नेव सूत्रे द्विस्थानस्य प्रथमोद्देशकेऽवलोकनीयेति ॥सू० ९॥

अनन्तरं कर्मबन्धकारणीभूताः क्रिया उक्ता, सम्प्रति तस्यैव कर्मणो निर्जरोपायभूतां परिज्ञामाह—

मूलम्–पंचविहा परिन्ना पण्णत्ता, तं जहा–उवहिपरिन्ना १ उवस्सयपरिन्ना २ कसायपरिन्ना ३ जोगपरिन्ना ४ भत्तपाणपरिन्ना ५ ॥ सू० १० ॥

छाया—पञ्चविधा परिज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-उपधिपरिज्ञा १ उपाश्रयपरिज्ञा २, कषायपरिज्ञा ३ योगपरिज्ञा ४ भक्तपानपरिज्ञा ५ ॥सू० १०॥

वन्धकर्मे केवल मनुष्योंकोही होतीहै, अन्य जीवोंको नहीं होतीहै, तथा एर्यापथिकी जो क्रिया है, उपशान्त मोहनीय क्षीणमोह और सयोग केवली इन तीनकेही होती है, यही बात–' एवं मणुस्साणवि सेसाण णत्थि " इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है, क्रियाकी विस्तृत व्याख्या इसी सूत्रके द्विस्थानकके प्रथम उद्देशकमें देख लेनी चाहिये ॥सू० ९॥

इस तरहसे कर्मबन्धकी कारणभूत क्रियाएँ कहीं अब सूत्रकार उसी कर्मकी निर्जराके उपायभूत परिज्ञाका कथन करते हैं--

'पंचविहा परिन्ना पण्णत्ता इत्यादि सूत्र १० ॥

टीकार्थ–परिज्ञा पांच प्रकारकी कही गईहैं जैसे उपधि परिज्ञा१ उपाश्रय परिज्ञा २ कषायपरिज्ञा ३ योगपरिज्ञा ४ और भक्तपान परिज्ञा ५ जिसके

કોના બંધાં છેનો કરતાં નથી પણ માત્ર મનુષ્યો જ કરે છે મનુષ્યોમાં પણ ૧૧, ૧૨ અને ૧૩ માં ગુણસ્થાનવાળા મનુષ્યો એટલે કે ઉપશાન્ત મોહ ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલી, એ ત્રણ જ ઐર્યાપથિકી ક્રિયા કરતા હોય છે એ જ વાત 'एवं मणुस्साण वि सेसाणं णत्थि' આ સૂત્રપાઠ દ્વારા વ્યક્ત થઈ છે ક્રિયાની વિસ્તૃત વ્યાખ્યા આ સૂત્રના દ્વિસ્થાનકના પહેલા ઉદ્દેશામાં આપવામાં આવી છે તો જિજ્ઞાસુ પાઠકે એ સ્થાનેથી તે વાંચી લેવી. ॥ સૂ ૯ ॥

આ રીતે કર્મબંધના કારણભૂત ક્રિયાઓનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર એ જ કર્મની નિર્જરાના ઉપાયરૂપ પરિજ્ઞાનું કથન કરે છે

'पंचविहा परिन्ना पण्णत्ता' ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–પરિજ્ઞા પાંચ પ્રકારની કહી છે—(૧) ઉપધિ પરિજ્ઞા (૨) ઉપાશ્રયપરિજ્ઞા, (૩) કષાય પરિજ્ઞા, (૪) યોગ પરિજ્ઞા અને (૫) ભક્તપાન પરિજ્ઞા.

टीका—'पंचविहा' इत्यादि—

परिज्ञा–परिज्ञायते इति परिज्ञा–कल्पनीयाकल्पनीयवस्तुस्वरूपस्य ज्ञानं, तत्पूर्वकं प्रत्याख्यानं च । इयं द्रव्यतो भावतश्च भवति । तत्र द्रव्यतोऽनुपयुक्तस्य, भावतस्तूपयुक्तस्य भवति । तदुक्तम्—

"भावपरिण्णा जाणणं पच्चक्खाणं च भावेणं"

छाया—भावपरिज्ञाज्ञानं प्रत्याख्यानं च भावेन इति ।

तत्र द्रव्यपरिज्ञा सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिविधा भवति, भावपरिज्ञा तु ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानपरिज्ञाभेदेन द्विविधा भवति । द्रव्यभावभेदभिन्ना एषा परिज्ञा उपध्यादिभेदेन पञ्चविधा भवति । तथाहि–उपधि–परिज्ञा–उपधेः=रजोहरणमदोरकमुखवस्त्रिकादेः परिज्ञा १। उपाश्रय–परिज्ञा–उपाश्रयस्य–उपश्रीयते

द्वारा जाना जाता है वह परिज्ञा है, यह परिज्ञा कल्पनीय अकल्पनीय वस्तुके स्वरूपके ज्ञानरूप होती है, एवं इस ज्ञानपूर्वक जो प्रत्याख्यान होता है, तद्रूप होती है, यह परिज्ञा द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारसे होती है, अनुपयुक्त आत्माके जो परिज्ञा होती है, वह द्रव्यपरिज्ञा है, और उपयुक्त आत्माके जो परिज्ञा होतीहै, वह भाव परिज्ञाहै। कहाभीहै "भावपरिण्णा जाणणं" इत्यादि। क्योंकि प्रत्याख्यान भावसे होता है, इसलिये भावपरिज्ञा ज्ञानरूप होती है, द्रव्यपरिज्ञा सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारकी होती है और जो भावपरिज्ञा है, वह ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञाके भेदसे दो प्रकारकी होती है, द्रव्य और भावके भेदसे भेदवाली यह परिज्ञा उपधि आदिके भेदसे

જેના દ્વારા જાણવામા આવે છે તે પરિજ્ઞા છે. કલ્પનીય અને અકલ્પનીય વસ્તુના સ્વરૂપના જ્ઞાનરૂપ તે પરિજ્ઞા હોય છે, અને આ પ્રકારના જ્ઞાનપૂર્વક જે પ્રત્યાખ્યાન થાય છે, તે પ્રત્યાખ્યાન રૂપ તે હોય છે તે પરિજ્ઞા દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારની હોય છે અનુપયુક્ત આત્માની જે પરિજ્ઞા હોય છે તેને દ્રવ્યપરિજ્ઞા કહે છે, અને ઉપયુક્ત આત્માની જે પરિજ્ઞા હોય છે તેને ભાવપરિજ્ઞા કહે છે કહ્યુ પણ છે કે—

"ભાવપરિણ્ણા જાણણં" ઇત્યાદિ—

પ્રત્યાખ્યાન ભાવથી થાય છે, તે કારણે ભાવપરિજ્ઞા જ્ઞાનરૂપ હોય છે. દ્રવ્યપરિજ્ઞાના સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર એવાં ત્રણ ભેદ પડે છે, અને ભાવ પરિજ્ઞાના જ્ઞપરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞા નામના બે ભેદ પડે છે. દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ મુખ્ય બે ભેદોવાળી આ પરિજ્ઞા ઉપધિ આદિના ભેદથી

संयमयात्रानिर्वाहाय य स उपाश्रयः=वसतिरूपस्तस्य परिज्ञा २। कषायपरिज्ञा-कषायाः=मोहनीयकर्मपुद्गलोदयसम्पाद्यजीवपरिणामा क्रोधमानमाया लोभा तेषां परिज्ञा ३। योगपरिज्ञा-योगा =मनोयोगादय , तेषां परिज्ञा ४। तथा भक्तपानपरिज्ञा-भक्तम्=अशनमोदनादि पानं=पेयं प्रासुकजलादि, तयोः परिज्ञा ५। इति ॥सू० १०॥

परिज्ञा च व्यवहारवतां भवतीति व्यवहारं प्ररूपयति—

सूत्रम्—पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा आगमे १ सुए २ आणा ३ धारणा ४ जीए ५। जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा १, णो से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा २,[1] णो से तत्थ सुए सिया३, एवं जाव जहा से तत्थ जीए सिया४ जीएणं

पांच प्रकारकी होती है, इनमें रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका आदिकी जो परिज्ञा है वह उपधिपरिज्ञा है १। जो संयम यात्राके निर्वाहके लिये आश्रित किया जाता है वह उपाश्रय है, इस उपाश्रयकी जो परिज्ञा है, वह उपाश्रयपरिज्ञा है २। मोहनीय कर्मके पुद्गलोंके उदयसे उत्पन्न हुए जो क्रोध मान माया और लोभ रूप जीवके परिणाम हैं, ये कषाय हैं इन कषायोंकी जो परिज्ञा है, वह कषाय परिज्ञा है, मन वचन और कायरूप योगोंकी जो परिज्ञा है, वह योगपरिज्ञा है, तथा ओदनादिरूप अशनकी एवं प्रासुक जलादिरूप पेयकी जो परिज्ञा है, वह भक्तपान परिज्ञा है ॥ सू० १० ॥

પાંચ પ્રકારની કેમ છે તેમાં રજોહરણ, મુખવસ્ત્રિકા આદિની જે પરિજ્ઞા છે, તેને ઉપધિ પરિજ્ઞા કહે છે સંયમ યાત્રાના નિર્વાહને માટે જે સ્થાનનો આશ્રય લેવામાં આવે છે તે સ્થાનનું નામ ઉપાશ્રય છે તે ઉપાશ્રયની જે પરિજ્ઞા છે તેને ઉપાશ્રય પરિજ્ઞા કહે છે મોહનીય કર્મનાં પુદ્ગલોના ઉદયને લીધે ઉત્પન્ન થયેલ ક્રોધ માન, માયા અને લોભરૂપ જીવનું જે પરિણામ છે તેને કષાય કહે છે તે કષાયોની જે પરિજ્ઞા છે તેને કષાય પરિજ્ઞા કહે છે મન, વચન અને કાયરૂપ યોગોની જે પરિજ્ઞા છે તેને યોગ પરિજ્ઞા કહે છે તથા ભાત આદિ રૂપ અશનની અને પ્રાસુક જલાદિ રૂપ પાનની જે પરિજ્ઞા છે તેને ભક્તપાનપરિજ્ઞા કહે છે. ॥ સૂ ૧૦ ॥

ववहारं पट्ठवेज्जा ५। इच्चेएहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा, आगमेणं जाव जीएणं। जहा जहा से तत्थ आगमे जाव जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा। से किमाहु भंते? आगमबलिया समणा णिग्गंथा? इच्चेयं पंचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सिओवस्सियं सम्मं ववहरमाणे समणे णिग्गंथे आणाए आराहए भवइ ॥ सू० ११॥

छाया—पञ्चविधो व्यवहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगमः १ श्रुतम् २, आज्ञा ३ धारणा ४ जीतम् ५। यथा तस्य तत्र आगमः स्यात् आगमेन व्यवहार प्रस्थापयेत् १, नो तस्य तत्र आगमः स्यात्, यथा तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, श्रुतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् २, नो तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, एवं यावत् यथा तस्य तत्र जीतं स्यात, जीतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् ५' इत्येतैः पञ्चभिर्व्यवहारं प्रस्थापयेत्—आगमेन यावद् जीतेन। यथा यथा तस्य तत्र आगमो यावद् जीतं तथा तथा व्यवहारं प्रस्थापयेत्। अथ किमाहु भदन्त। आगमबलिकाः श्रमणा निर्ग्रन्थाः? इत्येवं पञ्चविधं व्यवहारं यदा यदा यत्र यत्र तदा तदा तत्र तत्र अनिश्रितोपाश्रितं सम्यग् व्यवहरमाणः श्रमणो निर्ग्रन्थ आज्ञाया आराधको भवति ॥सू०११॥

टीका—' पंचविहे ' इत्यादि—

व्यवहरणं—व्यवहारः—मोक्षार्थिप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः, तद्धेतुकत्वादत्र ज्ञान विशेषोऽपि व्यवहारः। स पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगम्यन्ते=परिच्छिद्यन्ते

यह परिज्ञा व्यवहारवालोंको होती है, इसलिये अब सूत्रकार व्यवहारका प्ररूपण करतेहैं—'पंचविहे ववहारे पण्णत्ते इत्यादि' सूत्र ११ ॥

टीकार्थ--व्यवहार पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—आगम १ श्रुत २ आज्ञा ३ धारणा ४ और जीत ५।

व्यवहार मोक्षाभिलाषियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप होता है;

આ પરિજ્ઞા વ્યવહારવાળામાં હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર વ્યવહારની પ્રરૂપણા કરે છે "પચવિહે વવહારે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ--

ટીકાર્થ—વ્યવહારના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) આગમ, (૨) શ્રુત (૩) આજ્ઞા (૪) ધારણા અને (૫) જીત.

अर्थो मननेति-आगमः, केवलज्ञान १ मनःपर्ययज्ञाना २ वधिज्ञान ३ चतुर्दश पूर्व ४ दशपूर्व ५ नवपूर्व ६ रूप षड्विधः ॥१॥ श्रुतम्-नवादि पूर्वेभ्योऽवशिष्टम् आचाराङ्गादिकम्। यद्यपि नवादिपूर्वाण्यपि श्रुतान्येव, तथाऽप्यतीन्द्रियार्थज्ञानहेतु त्वेन सातिशयत्वात् केवलवत् एषां आगम व्यपदेशः ।२। आज्ञा-अगीतार्थस्याग्रे गूढार्थपदैः देशान्तरस्थितं गीतार्थं निवेदयितुं यदतिचारालोचनम् गीतार्थमाधु नाऽपि तथैव शुद्धिदानं सा ॥३॥ धारणा-द्रव्याद्यपेक्षया यस्मिन्नपराधे गीतार्थ

इस व्यवहारका हेतु ज्ञान विशेष होता है, अतः यह ज्ञान विशेष भी व्यवहार रूप है यह व्यवहार आगम आदिके भेदसे पांच प्रकारका जो कहा गयाहै, सो उसका तात्पर्य ऐसाहै जिसके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं। वह आगम व्यवहारहै, ऐसा यह आगमव्यवहार केवलज्ञान १ मनःपर्यवज्ञान २ अवधिज्ञान ३ चतुर्दश पूर्व ४ दशपूर्व ५ और नवपूर्वके भेदसे ६ प्रकारका है १। इन नवादि पूर्वोंसे अवशिष्ट जो आचाराङ्ग आदि हैं वे श्रुत हैं यद्यपि नवादि पूर्व भी श्रुतही हैं परन्तु अतीन्द्रिय अर्थज्ञानके हेतु होनेके कारण सातिशय होनेसे केवलज्ञानकी तरह इनमें आगमका व्यपदेश होता है २। अगीतार्थके आगे गूढार्थ पदों द्वारा अन्य देशस्थित गीतार्थके पास निवेदनके निमित्त जो अतिचारोंका आलोचन है तथा गीतार्थ साधुके द्वारा भी उसी प्रकारसे जो शुद्धिका देना है वह आज्ञाहै ३, द्रव्यादिककी अपेक्षासे जिस अपराधमें गीतार्थ साधुद्वारा

વ્યવહાર મોક્ષાભિલાષીઓની પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ રૂપ હોય છે

આ વ્યવહારનો હેતુ જ્ઞાનવિશેષ હોય છે તેથી તે જ્ઞાનવિશેષ પણ વ્યવહાર રૂપ છે તેના આગમ વ્યવહાર આદિ જે પાંચ પ્રકાર કહેવામાં આવ્યા છે તેમનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

જેના દ્વારા પદાર્થોને જાણવામાં આવે છે, તે આગમ વ્યવહાર છે તે આગમ વ્યવહારના નીચે પ્રમાણે ૬ ભેદ પડે છે—(૧) કેવલજ્ઞાન (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાન (૩) અવધિજ્ઞાન (૪) ચૌદ પૂર્વ (૫) દસ પૂર્વ અને (૬) નવ પૂર્વ આ નવાદિ પૂર્વો સિવાયનાં જે આચારાંગ આદિ છે તેઓ શ્રુતરૂપ છે જો કે નવ દિ પૂર્વ પણ શ્રુતરૂપ જ છે પરન્તુ અતીન્દ્રિય અર્થ જ્ઞાનના હેતુ હોવાને કારણે સાતિશય હોવાથી કેવળજ્ઞાનની જેમ તેઓમાં આગમનો વ્યપદેશ થાય છે અગીતાર્થની આગળ ગૂઢાર્થ પદો દ્વારા અન્ય દેશસ્થિત ગીતાર્થની પાસે નિવેદનને નિમિત્તે જે અતિચારોનું આલોચન છે તથા ગીતાર્થ સાધુ દ્વારા પણ એજ પ્રકારે જે શુદ્ધિ અપાય છે તેનું નામ આજ્ઞા છે દ્રવ્યાદિકની

साधुना यथा विशुद्धिः कृता, तां संप्रधार्य तस्मिन्नेवापराधे यदन्यः साधुस्तथैव विशुद्धिं करोति सा धारणा । अथवा—गच्छोपग्राहिणो वैयावृत्त्यकर्तुरशेषानुचितस्य प्रदर्शितानाम् उचितप्रायश्चित्तपदानां यद् धारणं सा धारणा ।४। तथा—जीतम्—द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषप्रतिसेवाऽनुवृत्त्या संहननधृत्यादि परिहाणिमपेक्ष्य यत् प्रायश्चित्तदानं तत्, अथवा—यत्र गच्छे कारणवशाद् यः सूत्रातिरिक्तः प्रायश्चित्तव्यवहारः प्रवर्तितो बहुभिरन्यैश्चाप्यनुवर्तितः सः ॥५॥ इति । आगमादि व्यवहारप्रदर्शिका गाथा अपि अन्यत्रोक्ताः । तथाहि—

जैसी विशुद्धिकी गई हो उस विशुद्धिको हृदयमें धारणकर उसी अपराधमें जो अन्य साधुभी उसी प्रकारकी विशुद्धि करता है, वह धारणा है, अथवा—जो साधु गच्छका उपकार करता है; वैयावृत्त्य करता है परन्तु यदि उससे कोई ऐसा कार्य बन जाता है; कि जो समस्त साधुओंको अनुचित लगता है तो उसके निमित्त दिखलाये गये प्रायश्चित्त पदोंकी जो धारणा है वह धारणा है तथा—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एवं पुरुष प्रतिसेवाकी अनुवृत्तिसे संहनन धृति आदिकी हीनताकी अपेक्षा करके जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत व्यवहार अथवा—जिस गच्छमें कारणके वशसे जो सूत्रातिरिक्त प्रायश्चित्त व्यवहार चल रहा है तथा अनेकोंने भी उसकी सराहनाकी हो ऐसा वह व्यवहार जीत व्यवहार है, आगम आदिरूप व्यवहारको दिखलानेवाली जो गाथाएँ

અપેક્ષાએ જે અપરાધમા ગીતાર્થ સાધુ દ્વારા જેવી વિશુદ્ધિ કરવામાં આવી હોય તે વિશુદ્ધિને હૃદયમા ધારણ કરીને એ જ પ્રકારનો અપરાધ થઇ જતાં અન્ય સાધુ પણ એ જ પ્રકારે જે વિશુદ્ધિ કરે છે તેને ધારણા કહે છે.

અથવા જે સાધુ ગચ્છનો ઉપકાર કરે છે–વૈયાવૃત્ય આદિ કરે છે, પરન્તુ તેના દ્વારા કોઈ એવું કાર્ય થઈ જાય કે જે સમસ્ત સાધુઓને અનુચિત લાગે છે, તો તેની વિશુદ્ધિ નિમિત્તે બતાવવામા આવેલા પ્રાયશ્ચિત્ત પદોની જે ધારણા છે, તેનુ નામ ધારણા સમજવું દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ અને પુરુષ પ્રતિસેવાની અનુવૃત્તિની અપેક્ષાએ સહનન, ધતિ આદિની હીનતાનો વિચાર કરીને જે પ્રાયશ્ચિત્ત આપવામા આવે છે તેને જીતવ્યવહાર કહે છે અથવા જે ગચ્છમાં કોઇ કારણે સૂત્ર નિરિક્ત (સૂત્રોમાં જેનો આધાર ન મળતો હોય એવો) વ્યવહાર ચાલી રહ્યો હોય તથા અનેક સાધુ આદિ દ્વારા જે વ્યવહારની પ્રશસા કરાઇ હોય તેવા વ્યવહારને જીતવ્યવહાર કહે છે આગમ આદિ રૂપ વ્યવહારનુ સ્વરૂપ બતાવતી કેટલીક ગાથાઓ અન્ય શાસ્ત્રોમા આપેલી છે, તે ગાથાઓ હવે અહીં આપવામાં આવે છે—

गाथा—आगममुयववहारो, सुणह जहा धीरपुरिसपन्नत्तो ।
पच्चक्खो य परोक्खो, सो वि य दुविहो मुणेयव्वो ॥१॥

छाया—आगमश्रुतव्यवहारो, शृणुत यथा धीरपुरुषप्रज्ञप्तः ।
प्रत्यक्षश्च परोक्षः, सोऽपि च द्विविधो ज्ञातव्यः ॥१॥

गाथा—पच्चक्खोऽवि य दुविहो, इंदियजो चेव नो य इंदियजो ।
इंदियपच्चक्खो वि य, पंचसु विसएसु नेयव्वो ॥२॥

छाया—प्रत्यक्षोऽपि च द्विविधः, इन्द्रियजश्चैव नो च इन्द्रियजः ।
इन्द्रियप्रत्यक्षोऽपि च, पञ्चसु विषयेषु ज्ञातव्यः ॥२॥

अन्यत्र कही गई हैं वे इस प्रकारसे–' आगम सुयववहारो " इत्यादि ।

" जिस प्रकारसे धीरपुरुष तीर्थंकर गणधरादिकोंने आगम श्रुत व्यवहार आगम व्यवहार कहा है हे शिष्य ! उसे मैं तुम्हें समझाता हूं तुम उसे सुनो यहां आगमश्रुत ये दो पद अलग २ नहींहै, किन्तु आगमको ही यहां श्रुत माना गयाहै अतः आगमश्रुतरूप जो व्यवहारहै वह आगम श्रुत व्यवहार है, ऐसा जानना चाहिये। यह आगम व्यवहार प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है ॥१॥

" पच्चक्खोऽविय दुविहो " इत्यादि । इनमें प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष और नो इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षके भेदसे दो प्रकारका है, इन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष पांच इन्द्रियोंके अर्थको विषय करनेकी अपेक्षासे ५ प्रकारकाहै

आगमसुयववहारो " ઇત્યાદિ—

હે શિષ્ય ! ધીર પુરુષ તીર્થંકર ગણધરાદિકોએ જે પ્રકારે આગમશ્રુત વ્યવહારને આગમ વ્યવહાર કહ્યો છે તે હું તારી સમજાવું છું, તો તું ધ્યાન દઈને તે સાંભળ. અહીં ' આગમશ્રુત ' એક જ પદ છે આગમ અને શ્રુત અલગ અલગ પદો નથી. આગમને જ અહીં શ્રુત માનવામાં આવેલ છે તેથી આગમશ્રુત રૂપ જે વ્યવહાર છે તેને જ આગમશ્રુત વ્યવહાર સમજવો. એજ આગમ વ્યવહાર પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષના ભેદથી બે પ્રકારનો કહ્યો છે ।૧।

" पच्चक्खोऽविय दुविहो " ઇત્યાદિ—

પ્રત્યક્ષ આગમ વ્યવહારના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ પડે છે—(૧) ઇન્દ્રિય જન્ય પ્રત્યક્ષ અને (૨) નો ઇન્દ્રિય જન્ય પ્રત્યક્ષ ઇન્દ્રિય જન્ય પ્રત્યક્ષ પાંચ ઇન્દ્રિયોના અર્થને વિષય કરનારો હોવાથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે ।૨।

गाथा—नो इंदियपच्चक्खो ववहारो सो समासओ तिविहो ।
ओहिमणपज्जवे य केवलनाणे य पच्चक्खो ॥३॥

छाया—नो इन्द्रियप्रत्यक्षो व्यवहारः स समासतस्त्रिविधः ।
अवधिमनःपर्यवं च केवलज्ञानं च प्रत्यक्षः ॥३॥

गाथा—पच्चक्खागमसरिसो होइ परोक्खो वि आगमो जस्स ।
चंदमुहीव उ सो वि हु आगम ववहारवं होइ ॥४॥

छाया—प्रत्यक्षागमसदृशो भवति परोक्षोऽपि आगमो यस्य ।
चन्द्रमुखीव तु सोऽपि खलु आगमव्यवहारवान् भवति ॥४॥

गाथा—परोक्खं ववहारं आगमओ सुयहरा ववहरंति ।
चोद्दसदसपुव्वधरा नवपुव्विग गंध हत्थी य ॥ ५ ॥

छाया—पारोक्षं व्यवहारम् आगमतः श्रुतधराः व्यवहरन्ति ।
चतुर्दश दशपूर्वधरा नवपूर्विका गन्धहस्तिनः ॥५॥

"नोइंदियपच्चक्खो" इत्यादि ।

नो इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष संक्षेपसे तीन प्रकारका है-अवधिज्ञान १ मनःपर्यवज्ञान २ और केवलज्ञान ३ ॥३॥

"पच्चक्खागमसरिसो" इत्यादि

जिस प्रकार मुखमें चन्द्रमाका उपचार करके लोग स्त्री को चन्द्रमुखी कह देते हैं-इसी प्रकारसे जिस मुनिका परोक्ष भी आगम वस्तुस्वरूपका सम्यक् रूपसे निर्णायक होता है, तो वह मुनि भी उपचारसे आगम व्यवहारवाला कह दिया जाता है, क्योंकि उसका आगम भी प्रत्यक्षागमके जैसा मान लिया जाता है ॥४॥

"नो इंदिय पच्चक्खो" ઇત્યાદિ—નો ઇન્દ્રિય જન્ય પ્રત્યક્ષ સંક્ષિપ્તમાં ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧) અવધિજ્ઞાન, (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન । ૩ ।

"पच्चक्खागमसरिसो" ઇત્યાદિ—જેમ મુખમા ચન્દ્રમાનો ઉપચાર કરીને લોકો કોઈ સ્ત્રીને ચન્દ્રમુખી કહી દે છે, એ જ પ્રમાણે જે મુનિનો પરોક્ષ આગમ પણ વસ્તુ સ્વરૂપનો સામાન્ય રૂપે નિર્ણાયક હોય છે. તે મુનિને પણ ઉપચારથી આગમ વ્યવહારવાળા કહેવામાં આવે છે, કારણ કે તેમના આગમને પણ પ્રત્યક્ષ આગમ સમાન માની લેવામાં આવે છે. । ૪ ।

गाथा—ज जहमोल्ल रयणं त जाणइ रयणवाणिओ निउण ।
इय जाणइ पच्चक्खी जो सुज्झइ जेण दि नेण ॥६॥
छाया—यद् यथामूल्य रत्न, तद् जानाति रत्नवाणिजो निपुणम् ।
इति जानाति प्रत्यक्षी, यः शुध्यति येन दत्तेन ॥६॥
गाथा—कप्पस्स य निज्जुतिं ववहारस्स परमनिउणस्स ।
जो अत्थओ वियाणइ सो ववहारी अणुन्नाओ ॥७॥

"पारोक्खं ववहारं" इत्यादि ।

इस परोक्ष व्यवहारको परवादियोंको भगानेके लिये ग्रन्थ इसीके जैसे चतुर्दश पूर्वधर, दश पूर्वधर और नवपूर्वधर आगम रूपसे व्यव हृत करते हैं ॥ ५ ॥

"ज जहमोल्ल रयण" इत्यादि ।

जिस रत्नका जैसा मूल्य होता है, इस बातको जिस तरह जौहरी जन अच्छी तरह जानता है, उसी तरहसे प्रत्यक्ष ज्ञानी भी इस बातको भली प्रकारसे जानता है, कि कौन अतीचारवाला किस प्रायश्चित्तसे शुद्ध होता है, अतः वे उस अतिचारवालेकी उसी प्रायश्चित्तसे शुद्धि करते हैं ॥६॥

इस प्रकार जो मुनि केवलज्ञानसे मनःपर्ययज्ञानसे अवधिज्ञानसे अतिचारोंको जानकर चौदह पूर्वधारी होनेसे अतिचारोंकी विशुद्धिके जो प्रायश्चित्त देता है, वह प्रायश्चित्तदान आगम व्यवहाररूपसे कहा

'पारोक्खववहार' ઇત્યાદિ—પરમતવાદીઓને પરાસ્ત કરવાને માટે ગ્રન્થકર્તા સમાન ચૌદ પૂર્વધારી, દશ પૂર્વધારી અને નવ પૂર્વધારીઓ આ પરોક્ષ વ્યવહારનો આગમ રૂપે ઉપયોગ કરે છે. ૫.

'जं जहमोल्लं रयणं' ઇત્યાદિ—જેમ કયા રત્નનું કેટલું મૂલ્ય હોય છે તે ઝવેરી જ સારી રીતે જાણી શકે છે, એજ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષ જ્ઞાની પણ એ વાતને બરાબર જાણી શકે છે કે કયા અતિચારવાળો કયા પ્રાયશ્ચિત્ત દ્વારા શુદ્ધ થાય છે તેથી તેઓ યોગ્ય પ્રાયશ્ચિત્ત આપીને તે અતિચારવાળાની શુદ્ધિ કરાવી શકે છે. ૬.

આ રીતે જે મુનિ કેવળજ્ઞાન દ્વારા, મનઃપર્યવજ્ઞાન દ્વારા કે અવધિજ્ઞાન દ્વારા અતિચારોને જાણીને ચૌદપૂર્વધારી કે દસ પૂર્વધારી કે નવ પૂર્વધારી હોવાથી અતિચારોની વિશુદ્ધિને માટે જે પ્રાયશ્ચિત દે છે, તે પ્રાયશ્ચિત્તદાનને આગમ વ્યવહાર રૂપ માનવામાં આવે છે

छाया—कल्पस्य च निर्युक्तिं व्यवहारस्यैव परमनिपुणस्य ।
य. अर्थतो विजानाति, स व्यवहारी अनुज्ञातः ॥ ७ ॥

गाथा—तं चेवऽणुसज्जंते ववहारविहिं पउंजइ जहुत्तं ।
एसो सुयववहारो पन्नत्तो वीयरागेहिं ॥८॥

छाया—तमेव अनुषजन् व्यवहारविधिं प्रयुनक्ति यथोक्तम् ।
एष श्रुतव्यवहारः प्रज्ञप्तो वीतरागैः ॥ ८ ॥

गाथा—अपरक्कमो तवस्सी गंतु जो सो हिकारगसमीवे ।
न चएइ आगंतु मो सोहिकरोऽवि देसाओ ॥९॥

गया है, अब श्रुतनामक जो द्वितीय व्यवहार है, उसे सूत्रकार प्रकट करते हैं-" कप्पस्स य निज्जुत्ति " इत्यादि ।

जो मुनि बृहत्कल्प सूत्रकी तथा प्रायश्चित्तविधिमें स्फुट विचारयुक्त व्यवहार सूत्रकी तथा अपि शब्दके अर्थवाले जाव पदसे गृहीत निशीथ सूत्रकी एव दशाश्रुत सूत्रकी निर्युक्तिको अर्थरूपसे जानता है, वह मुनि व्यवहारी कहा गया है-" तंचेवाऽणुसज्जंते ' इत्यादि ।

उस व्यवहारीकाही अनुसरण करता हुआ जो मुनिजन अतिचारके प्राप्त होने पर श्रुतोक्तिका अनुसरण करके व्यवहारविधि प्रायश्चित्तको देता है, उस मुनिका श्रुतानुसारसे यह प्रायश्चित्त प्रदानरूप व्यवहार वीतरागियोंने श्रुतव्यवहार कहा है॥८॥

" अपरक्कमो तवस्सी " इत्यादि ।

आज्ञा नामका जो तृतीय व्यवहार है, वह इस प्रकारसे है-जो तपस्वी गमनशक्तिसे हीन हो गया है, ऐसा वह तपस्वी शोधिकारकके

હવે શ્રુત નામનો વ્યવહારનો જે બીજો ભેદ છે, તેનુ સ્વરૂપ સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે-" कप्पस्स य निज्जुत्ति " ઇત્યાદિ—જે મુનિ બૃહત્કલ્પ સૂત્રની તથા પ્રાયશ્ચિત્તવિધિમા સ્પષ્ટ વિચારયુક્ત વ્યવહાર સૂત્રની તથા ‘ અપિ ’ શબ્દના અર્થવાળા " ભાવ " પદથી ગૃહીત નિશીથ સૂત્રની અને દશાશ્રુત સૂત્રની નિર્યુક્તિને અર્થરૂપે જાણે છે, તે મુનિ વ્યવહારી કહેવાય છે. । ૭ ।

‘ त चेवाऽणुसज्जंते ’ ઇત્યાદિ—તે વ્યવહારીનુ જ અનુસરણ કરીને જે મુનિજન અતિચારોની વિશુદ્ધિને માટે શ્રુતોક્તિનુ અનુસરણ કરીને જે પ્રાયશ્ચિત્ત દે છે, તે પ્રાયશ્ચિત પ્રદાન રૂપ વ્યવહારને વીતરાગીઓએ શ્રુતવ્યવહાર કહ્યો છે. । ૮ ।

" अपरक्कमो तवस्सी " ઇત્યાદિ—હવે આજ્ઞા નામના ત્રીજા વ્યવહારનું સ્પષ્ટીકરણ આવે છે-કોઇ તપસ્વી ચાલવાને અશક્ત બની ગયો છે. તેથી તે

छाया—यद्यपराक्रमवान् तपस्वी गन्तुं यः शोधिकारकसमीपे ।
न शक्नोति आगन्तुं स शोधिकरोऽपि देशात् ॥९॥

गाथा—अह पट्ठवेइ सीसं देसंतरगमणनट्ठचेट्ठाओ ।
इच्छामऽज्जो ! काउं, सोहिं तुम्हं सगासम्मि ॥१०॥

छाया—अथ प्रस्थापयति शिष्यं देशान्तरगमननष्टचेष्टः ।
इच्छामि आर्य ! कर्तुं शोधिं तव सकाशे ॥१०॥

गाथा—सो ववहारविहिण्णू, अणुसज्जित्ता सुत्तोवएसेणं ।
सीसस्स देइ आणं, तस्स इमं देइ पच्छित्तं ॥११॥

पासमें प्रायश्चित्त देनेवालेके समीप जानेके लिये असमर्थ हो रहा है, तथा शोधिकारक भी अपने आश्रित स्थानसे उसके पासमें आनेके लिये असमर्थ हो रहा है ॥९॥

" अह पट्ठवेइ सीस " इत्यादि ।

ऐसी हालतमें वह तपस्वि उस शोधिकर प्रायश्चित्त प्रदाताके पास गूढार्थ पदोंसे युक्तकर अपने संदेशको देकर अपने शिष्यको भेजता है, उस संदेशमें वह शिष्यके मुखसे ऐसा कहलवाता है कि–हे आर्य ! मेरी अब देशान्तरमें आनेजानेकी शक्ति नहीं है, और आपके पास प्रायश्चित्त करना चाहता हूं ॥१०॥

" सो ववहारविहिण्णू इत्यादि ।

तब वह संदेशवाहक शिष्यके मुखसे ऐसा सुनकर शास्त्रोक्त पद्धतिके अनुसार विचार करता है, कि इस प्रकारके अतिचार सेवीके

શોધિકારકની પાસે પ્રાયશ્ચિત લેવાને જઈ શકે તેમ નથી તથા શોધિકારક (પ્રાયશ્ચિત દેનાર મુનિ) પણ પોતાના આશ્રય સ્થાનેથી ત્યાં જઈ શકવાને સમર્થ નથી. ૯ ।

'અહ પટ્ઠવેઇ સીસ' ઇત્યાદિ—આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં તે તપસ્વી તે શોધિકારની પાસે, ગૂઢાર્થ પદોથી યુક્ત એવો પોતાનો સંદેશ લઈને પોતાના શિષ્યને મોકલે છે તે સંદેશ દ્વાર તે શિષ્ય સાથે એવું કહેવરાવે છે કે "હે આર્ય ! હવે હું એક જગ્યાએથી બીજી જગ્યાએ ગમન કરી શકવાને સમર્થ નથી, તેથી હું આપની પાસે આવી શકું તેમ નથી, પણ હું આપની આજ્ઞાનુસાર પ્રાયશ્ચિત્ત લેવા માગું છું" । ૧૦ ।

'સો વવહારવિહિણ્ણૂ" ઇત્યાદિ—ત્યારે તે સંદેશવાહકને મુખે એવું સાંભળીને તે શોધિકારક (ગીતાર્થ સાધુ) શાસ્ત્રોક્ત પદ્ધતિ અનુસાર વિચાર કરે છે કે આ પ્રકારના અતિચારોનું સેવન કરનારને આ પ્રકારનું પ્રાયશ્ચિત્ત

छाया--स व्यवहारविधिज्ञः, अनुपज्य श्रुतोपदेशेन ।
शिष्याय ददाति आज्ञां, तस्मै इद देहि प्रायश्चित्तम् ॥११॥

गाथा--जेणऽन्नयाइ दिट्ठं सोहीकरणं परस्स कीरतं ।
तारिसयं चेव पुणो, उप्पण्णं कारणं तस्स ॥१२॥

छाया--येन अन्यदा दृष्टं, शोधिकरणं परस्य क्रियमाणम् ।
तादृशकं चैव पुनः, उत्पन्नं कारणं तस्य ॥१२॥

गाथा--सो तम्मि चेव दव्वे खेत्ते काले य कारणे पुरिसे ।
तारिसयं चेव पुणो करिंतु आराहओ होइ ॥१३॥

छाया--स तस्मिन्नेव द्रव्ये क्षेत्रे काले च कारणे पुरुषे ।
तादृशकं चैव पुनः, कारयन् आराधको भवति ॥१३॥

लिये यह प्रायश्चित्त देना चाहिये अतः वह गूढार्थ पदोंसे युक्त करके प्रायश्चित्तको शिष्यसे कह देता है, और आज्ञा देता है, कि तुम जाकर मेरी ओरसे इस प्रायश्चित्तको देना ॥ ११ ॥

" जेणऽन्नयाइ दिट्ठं " इत्यादि ।

धारणाका नाम चतुर्थ व्यवहार इस प्रकारसे है-जिस साधुने किसी एक समय अतिचारवाले साधुको अपने अतिचारोंकी शुद्धि करते हुए देख लिया हो और अब उसे देखनेवाले साधुको या उसी प्रायश्चित्तको किये हुए पहिलेवाले साधुको कारण उपस्थित हो गया है ॥१२॥ तो वह मुनि उसी द्रव्यके होने पर उसी कालके होने पर उसी क्षेत्रके होने पर उसी कारणके होने पर उसी पुरुषके होने पर वैसेही प्रायश्चित्तको करवाता है, तोही आराधक होता है ॥१३॥ वैयावृत्य

દેવુ જોઈએ. તેથી તે ગૂઢાર્થપદોથી યુક્ત કરીને શિષ્યને પ્રાયશ્ચિત વિધિ કહી દે છે, અને તેને એવી આજ્ઞા કરે છે કે તમે જઈને મારા તરફથી તેમને આ પ્રાયશ્ચિત દેજો. । ૧૧ ।

હવે વ્યવહારના ચોથા ભેદ રૂપ 'ધારણા'નુ સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે-" जेणऽन्नयाइ दिट्ठं " ઈત્યાદિ—કોઈ સાધુએ અતિચારથી યુક્ત એવા કોઈ સાધુને પોતાના અતિચારોની શુદ્ધિ કરતો જોયો હોય, ત્યારબાદ કયારેક તે (દેખનાર) સાધુને અથવા જેણે તે પ્રાયશ્ચિત્ત કરેલુ છે એવા સાધુને પ્રાયશ્ચિત્ત લેવુ પડે એવુ કારણ ઉપસ્થિત થયુ હોય, તો તે મુનિ એ જ દ્રવ્ય, એ જ કાળ, એજ ક્ષેત્ર એ જ કારણ અને એજ પુરુષ હોય ત્યારે એવું જ પ્રાયશ્ચિત્ત જો કરાવે છે, તો જ તેને આરાધક કહી શકાય છે. ૧૨-૧૩

गाथा—वेयावच्चकरो वा सीसो वा देसहिंडओ वावि ।
देस अवधारेंतो चउत्थओ होइ ववहारो ॥१४॥

छाया—वैयावृत्त्यकरो वा शिष्यो वा देशहिण्डको वापि ।
देशम् अवधारयन्, चतुर्थको भवति व्यवहारः ॥१४॥

गाथा—बहुसो बहुस्सुएहिं जो वत्तो नो निवारिओ होइ ।
वत्तणुवत्तपमाणं जीएण कयं हवइ एयं ॥१५॥

छाया—बहुशो बहुश्रुतैः, यो वृत्तो नो निवारितो भवति ।
वृत्तानुवृत्तप्रमाणं जीतेन कृतं भवति एतत् ॥१५॥ इति ।

अयमर्थः—धीरपुरुषप्रज्ञप्त' – धीरपुरुषस्तीर्थंकरगणधरादिभिः प्रज्ञप्तः=प्ररूपित आगमश्रुतव्यवहार आगमः एव श्रुतं तद्रूपो व्यवहारः–आगमव्यवहार इति यावत् यथा=येन प्रकारेण अस्ति, तं हे शिष्या ! यूयं मम सकाशाद् जानीत=

करनेवाला जो शिष्य होता है अथवा देश देश में भ्रमण करनेवाला जो शिष्य होता है वह देश देशके जैसे २ प्रायश्चित्तको देखता है, उसको जो धारण करता है प्रायश्चित्तके पदोंको जो अपने मनमें देश २ के अनुसार धारण करता है, वह धारणा नामका चतुर्थ व्यवहार है ॥१४॥ जीत नामका जो पांचवां व्यवहार है, वह इस प्रकारसे है–जो व्यवहार, बहुश्रुत साधुओं द्वारा अनेकबार आचरित हो चुका हो तथा दूसरों द्वारा भी वह व्यवहार निवारित नहीं किया गया हो इस तरह वृत्तानुवृत्त प्रवृत्त हुआ–परम्परासे आचरित हुआ वह व्यवहार जीत व्यवहार है, यह प्रायश्चित्त जीत व्यवहारसे किया गया होता है, अतः जीत व्यवहारसे निष्पन्न यह प्रायश्चित्त है ॥१५॥

વૈયાવૃત્ય જે કરનારો જે શિષ્ય હોય છે, અથવા દેશદેશમાં ભ્રમણ કરનારો જે શિષ્ય હોય છે તે દેશ દેશના વિવિધ પ્રાયશ્ચિત્તોને દેખે છે અને તેમને પોતાના હૃદયમાં ધારણ કરે છે આ રીતે પ્રાયશ્ચિત્તના પદોને જુદા જુદા દેશની પ્રાયશ્ચિત વિધિ અનુસાર પોતાના હૃદયમાં ધારણ કરવા તેનું નામ ધારણા છે । ૧૪ ।

હવે વ્યવહારનો જીત નામનો જે પાંચમો ભેદ છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—જે વ્યવહાર બહુશ્રુત સાધુઓ દ્વારા અનેકવાર આચરવામાં આવી ચુક્યો હોય અને અન્ય લોકો દ્વારા તે વ્યવહારનું ખંડન કરવામાં આવ્યું ન હોય એવો પરમ્પરાથી આચરિત થતો જે વ્યવહાર છે તેને જીતવ્યવહાર કહે છે જે પ્રાયશ્ચિત પરમ્પરાગત વ્યવહારને આધારે આપવામાં આવે છે, પ્રાયશ્ચિત્તને જિતવ્યવહાર જન્ય પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે । ૧૫ ।

अवधारयत । स आगमव्यवहारः प्रत्यक्षपरोक्षभेदेन द्विविधो ज्ञातव्यः ॥१॥ तत्र प्रत्यक्षः पुनरिन्द्रियज नोइन्द्रियजभेदेन द्विविधो बोध्यः । इन्द्रियज प्रत्यक्षस्तत्र पञ्चेन्द्रियार्थविषयकत्वेन पञ्चविधः ।२। नोइन्द्रियजन्यः प्रत्यक्षस्तु संक्षेपतः त्रिविधो भवति । त्रैविध्यं तस्य केवलज्ञानमनःपर्यवज्ञानावधिज्ञानभेदाद् बोध्यम् ॥३॥ यस्य मुनेः परोक्षोऽपि आगमः वस्तु स्वरूपस्य सम्यग् निर्णायकत्वात् प्रत्यक्षागमसदृशो भवति । चन्द्रमुखीव-मुखे चन्द्रत्वमुपचर्य यथा रमणी चन्द्रमुखीत्यभिधीयते तथैव उपचारात्-स मुनिरपि आगमव्यवहारवान् भवति ॥४॥ अमुं पारोक्षं व्यवहारं श्रुतधरा आगमतो व्यवहरन्ति ते श्रुतधरा के? इत्याह-ते हि परवादिविद्रावणे गन्धहस्तिसदृशाः चतुर्दशपूर्वधरा दशपूर्वधरा नवपूर्वधराश्च बोध्याः ॥५॥ सम्प्रति आगमव्यवहारिणः प्रशंसापरां गाथामाह-' जं जहमोल्लं ' इत्यादि । यद् रत्नं यथामूल्यं भवति तत् रत्नवाणिजो निपुण यथा स्यात्तथा जानाति, इति=अमुना प्रकारेणैव प्रत्यक्षी=प्रत्यक्षज्ञानी अपि जानाति यत् , योऽतीचारवान् येन प्रायश्चित्तेन दत्तेन शुद्धयति, स तथैव अतीचारवते प्रायश्चित्तमपि ददाति॥६॥ इत्थं यो मुनिः केवलज्ञानेन मनःपर्यवज्ञानेन अवधिज्ञानेन चतुर्दशपूर्वधरत्वेन दशपूर्वधरत्वेन नवपूर्वधरत्वेन वाऽतीचारविशुद्धये यत् प्रायश्चित्तं ददाति, तत् प्रायश्चित्तदानम् आगमव्यवहारइत्युच्यते । अथ श्रुतनामकं द्वितीयं व्यवहारमाह-यो मुनिः कल्पस्य=बृहत्कल्पसूत्रस्य तथा-परमनिपुणस्य-प्रायश्चित्तविधौ स्फुटविचारयुक्तस्य व्यवहारसूत्रस्य च, एवकारोऽप्यर्थकः, तेन निशीथदशाश्रुतयोः संग्रहः, निशीथस्य दशाश्रुतस्य च, निर्युक्तिम् अर्थतो विजानाति, स मुनिः व्यवहारी अनुज्ञातः=कथितः । ७। तम्=व्यवहारिणमेव अनुपजन्=अनुबध्नन् अनुसरन् यो मुनिः अतीचारे सम्प्राप्ते यथोक्तम्=श्रुतोक्तिमनुसृत्य व्यवहारविधिं=प्रायश्चित्तं प्रयुनक्ति=ददाति, तस्य मुनेः श्रुतानुसारेण प्रायश्चित्तप्रदानरूप एष व्यवहारो वीतरागैः श्रुतव्यवहारः=श्रुतव्यवहार इति नाम्ना प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः ॥८॥ अथ आज्ञानामकं तृतीय व्यवहारमाह-यः अपराक्रमः=गमनशक्तिवर्जितः तपस्वी शोधिकारक समीपे=प्रायश्चित्तदातु समीपे गन्तुं न शक्नोति, शोधिकारकोऽपि देशात्=आश्रितस्थलात् आगन्तु न शक्नोति ।९॥ अथ=अनन्तरं स तपस्वी तस्य शोधिकारकस्य समीपे शिष्य गूढार्थपदैः सन्दिश्य प्रस्थापयति=प्रेषयति, किं सन्दिश्य प्रेषयति? इत्याह-हे आर्य ! देशान्तरगमननष्टचेष्टा -अशक्त्या देशान्तरगमने नष्टाः चेष्टा येषां तादृशा वयम् सकाशे=त्वत्तः शोधिं=प्रायश्चित्तं कर्तुमिच्छामः, इति ॥१०॥ ततः सन्देशवाहकः शिष्यमुखात् स व्यवहारविधिज्ञः शोधिकारक श्रुतोपदेशेन=शास्त्रेण अनुपज्य=सन्देशं यथावद् विचार्य "तस्मै

अतीचारसविधे मुनय इदं प्रायश्चित्तं देहि" इति गूढार्थपदैः तस्मै शिष्याय आज्ञां ददाति तद् आज्ञानामकश्चतुर्थो व्यवहारः ॥११॥ इति । अथ-धारणा नामकं पञ्चमं व्यवहारमाह-येन साधुना अन्यदा=अन्यस्मिन् समये अतीचारस तोऽन्यस्य साधोः क्रियमाणं शोधिकरणं=प्रायश्चित्तं दृष्टं तस्य साधोरपि पुन तादृशमेव कार्यं=प्रायश्चित्तकारणं समुत्पन्नम् ।१२। स मुनिः तस्मिन्नेव द्रव्ये क्षेत्रे काले कारणे पुरुषे च सति तादृशमेव प्रायश्चित्तं कारयन् आराधको भवति ॥१३॥ अथवा वैयावृत्त्यकरो यः शिष्यो देशदेशकाको वापि यः शिष्यो भवति, स देशम् अवधारयन् यत् प्रायश्चित्तपदानां धारणं करोति, स धारणानामक-चतुर्थो व्यवहारो भवतीति ॥ १४ ॥ अथ जीतनामकं पञ्चमं व्यवहारमाह-यश्च व्यवहारो बहुभिः साधुभिः बहुशः=अनेकवारम् वृत्तः=आचरितः अन्यैश्च स व्यवहारो न निवारितः=न प्रतिषिद्धः । ततश्च स व्यवहारः वृत्तानुवृत्तपतुत= परम्परया प्रवृत्तिं प्राप्तो भवति । एतत् प्रायश्चित्तं जीतेन=जीतव्यवहारेण कृतं भवति । जीतनामकव्यवहारनिष्पन्नमिदं प्रायश्चित्तमिति भावः ॥ १५ ॥ इति ।

अथ आगमादीनाम् उत्सर्गापवादं प्राह—' जहा से ' इत्यादिना तस्य= व्यवहर्तुः-प्रायश्चित्तदातुः तत्र-तेषु आगमादिव्यवहारेषु मध्ये, यस्मिन् वा प्राय श्चित्तदानादि व्यवहारकाले, यस्मिन् वा व्यवहर्तव्ये वस्तुनि विषये यथा=यथा प्रकारः-केवलादीनां यतमः आगमः स्यात्, तदा आगमेन व्यवहारं प्रस्थाप येत्=प्रवर्तयेत् न तु श्रुतादिभिः, आगमापेक्षया तेषामप्राधान्यात् आगमेऽपि

अब सूत्रकार आगमादिकोंके उत्सर्ग और अपवादका कथन करते हैं-" जहा से " इत्यादि-प्रायश्चित्त दाताको उन आगमादि व्यवहारोंके बीचमें अथवा-प्रायश्चित्त देने आदिके समयमें अथवा व्यवहार करने योग्य वस्तुमें जिस प्रकारका केवल आदिकोंमेसे कोई एक आगम होता है, उस समय उसी आगमसे व्यवहार चलाना चाहिये श्रुतादिसे व्यव हार नहीं चलाना चाहिये क्योंकि आगम आदिकी अपेक्षासे उनमें

હવે સૂત્રકાર આગમ આદિકોના ઉત્સર્ગ અને અપવાદનું કથન કરે છે ' जहा से ' ઇત્યાદિ — પ્રાયશ્ચિત્તદાતાએ, આગમાદિ જે વ્યવહારો કહ્યા છે તેમાંથી આગમનો (કેવળ આદિ આગમનો) જે વ્યવ હાર સમયે શક્ય હોય તે સમયે આગમને આધારે જ વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ-શ્રુત આદિને આધારે વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ નહીં એટલે કે જ્યાં સુધી આગમને આધારે પ્રાયશ્ચિત્ત આપી શકાય તેમ હોય ત્યાં સુધી શ્રુતાદિને આધારે પ્રાયશ્ચિત્ત આપવું જોઇએ નહીં કારણ કે શ્રુતાદિ કરતા આગમમાં

केवलज्ञानादिपूर्वपर्यन्ते षड्विधे पूर्वस्मिन् सति परेण परेण व्यवहारो न प्रकल्पनीयः, उत्तरोत्तरापेक्षया पूर्वपूर्वस्य सातिशयत्वेन बलीयस्त्वादिति १। यदि तत्र आगमो न स्यात्, तर्हि तत्र यथाप्रकारकं श्रुतं भवेत्, तेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् २। यदि तत्र श्रुतं नो भवेत्तदा आज्ञया व्यवहारं प्रकल्पयेत् ३। आज्ञाया अभावे धारणया ४, तदभावे तु जीतेन व्यवहारं प्रकल्पयेत्। एतन्निगमयन्नाह—आगमेन यावद् जीतेन=आगमादि जीतान्तैरित्येतैः—पञ्चभिः व्यवहारं प्रस्थापयेदिति सामान्यतो निगमनम्। विशेषतस्तु—यथा यथा तस्य तत्र आगमो यावद् जीतं

अप्रधानता है, केवलज्ञानसे लेकर पूर्व पर्यन्तके छह आगममें भी पूर्व पूर्वके होने पर आगे २ के आगमसे व्यवहार नहीं चलाना चाहिये क्योंकि उत्तर उत्तरकी अपेक्षासे पूर्व २में सातिशयता होनेसे अधिक बलवत्ता है, यदि वहां आगम न हो तो फिर जिस प्रकारका वहां श्रुत हो उससे व्यवहार चलाना चाहिये यदि वहां श्रुत न हो तो फिर वहां आज्ञासे व्यवहार चलाना चाहिये आज्ञाके अभावमें धारणासे और धारणाके अभावमें जीतसे व्यवहार चलाना चाहिये। यही बात " आगमेन यावत् जीतेन " इस सूत्र द्वारा प्रकटकी गई है, कि आगमसे लेकर जीत तकके पांच व्यवहारोंसे व्यवहार करनेवाला अपना व्यवहार चलावे। इस प्रकारका यह कथन सामान्य उत्सर्ग रूपसे कहा गया है, परन्तु विशेष रूपसे अपवाद रूपसे यह कथन इस प्रकारसे भी कहा गया है, कि व्यवहार करनेवाला जैसा

પ્રધાનતા રહેલી છે કેવળજ્ઞાનથી લઇને પૂર્વ પર્યન્તના છ આગમોમાંથી પૂર્વ પૂર્વનો સદ્‌ભાવ હોય ત્યારે ઉત્તર ઉત્તરને આધારે વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ નહીં, કારણ કે પાછળના પ્રકારો કરતાં આગળના પ્રકારોમાં સાતિશયતા હોવાથી અધિક બલવત્તા છે જો આગમનો વ્યવહાર શક્ય ન હોય તો જે પ્રકારના શ્રુતનો સદ્‌ભાવ હોય તે પ્રકારના શ્રુત દ્વારા વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ આજ્ઞાના અભાવમાં ધારણા વડે અને ધારણાના અભાવમાં જીત વડે વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ એજ વાત " आगमेन यावत् जीतेन " આ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે એટલે કે વ્યવહારિકે આગમથી લઇને જીત પર્યન્તના પાંચ વ્યવહારો દ્વારા પોતાનો વ્યવહાર (અતિચારોની શુદ્ધિ કરાવવા રૂપ વ્યવહાર) ચલાવવો જોઇએ આ પ્રકારનું આ કથન સામાન્ય ઉત્સર્ગ રૂપે સમજવું, પરન્તુ અપવાદ રૂપે અહીં આ પ્રમાણે કહે-

र्यात् तथा तथा व्यवहारं प्रस्थापयेत्-न तु प्रवचनविरुद्धं व्यवहारं प्रस्थापयेदिति-निगमनम् ५ सम्प्रति एतैरागमादिभिः व्यवहर्तुः फलं प्रश्नद्वारेणाह-' से किमाहु ' इत्यादिना, ' से ' तत्=पञ्चविधं व्यवहारं किम्=किमर्थम् आहु:=कथयन्ति, एकेन आगमव्यवहारेणैवेष्टसिद्धेः, यतः श्रमणा निर्ग्रन्था आगमबलिका:=आगमबलसम्पन्ना एव भवन्ति ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति-इत्येतं पञ्चविधं=पञ्चप्रकारकं व्यवहारं-व्यवहारप्रमाणत्वप्रयोग सम्यक्त्वं यदा-यदा=यस्मिन् यस्मिन्

जहाँ आगमादि हो उससे वहां अपना व्यवहार चलावे अर्थात् आगम न हो तो श्रुतसे श्रुत न हो तो आज्ञासे आज्ञा न हो तो धारणासे और धारणा न हो तो जीतसे अपना व्यवहार चलावे, परन्तु यह प्रव- चनसे विरुद्ध व्यवहारोंसे अपना व्यवहार न चलावे ।

अब प्रश्नकर्ता ऐसा प्रश्न पूछता है, कि इन आगमादिकोंके अनु सार व्यवहारकर्त्ताको क्या फल होता है ? यही बात-" से किमाहु इस सूत्र द्वारा प्रश्न रूपमें प्रकट की गई है, अर्थात् यह जो पांच प्रकारका व्यवहार कहा गया है, सो किसलिये कहा गया है ? क्योंकि एक आगम व्यवहारसेही इष्ट फलकी सिद्धि हो जाती है, कारण जो श्रमण जन होते हैं वे आगमरूप बलसे सम्पन्नही होते हैं, अर्थात आगम रूप बलसे सम्पन्नही श्रमण जन होते हैं-इस शिष्यके प्रश्नके उत्तरमें प्रभु कहते हैं-" इच्चेतं " इत्यादि-इस प्रका रके पांच प्रकारके व्यवहारको जब २ जहां २ तब २ वहां २ अनिश्रि

વામાં આવ્યુ છે- જ્યાં આગમ આદિ જેનો સદ્ભાવ હોય તેના દ્વારા વ્યવ હારિકે વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ " એટલે આગમ ન હોય તો શ્રુત વડે, શ્રુત ન હોય તો આજ્ઞા વડે, આજ્ઞા ન હોય તો ધારણા વડે, અને ધારણા ન હોય તો જીત વડે તે પોતાનો વ્યવહાર ચલાવે, પરન્તુ પ્રવચનની વિરુ દ્ધનો વ્યવહાર તો તેણે ચલાવવો જોઇએ નહીં

પ્રશ્ન—' આગમાદિકો અનુસાર વ્યવહાર કરનારને કયા ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે ? ' એ જ વાત ' से किमाहु ' ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા પ્રશ્ન રૂપે પ્રકટ કરવામા આવી છે પ્રશ્નકર્તા એ વાત પૂછવા માગે છે કે " એક આગમ વ્યવહાર વડે જ ઇષ્ટફળની સિદ્ધિ થઇ જાય છે તો પાંચ પ્રકારના વ્યવહારનું શું પ્રયોજન છે ? શ્રમણો તો આગમરૂપ બળથી સંપન્ન જ હોય છે, તો આગમ વ્યવહાર સિવાયના વ્યવહારોની શી આવશ્યકતા છે ?

ઉત્તર—' इच्चेतं ઇત્યાદિ—આ પાંચ પ્રકારના વ્યવહારને જ્યારે જ્યારે અને જ્યાં જ્યાં ચલાવવાની આવશ્યકતા જણાય, ત્યારે ત્યારે અને ત્યાં ત્યાં

काले यत्र यत्र=यस्मिन् यस्मिन् प्रयोजने वा क्षेत्रे वा यो य उचितः, तदा तदा=तस्मिन्काले तत्र तत्र=तस्मिन् तस्मिन् प्रयोजने वा क्षेत्रे वा अनिश्रितोपाश्रितम्-अनिश्रितैः=सर्वाशंसादोषरहितैस्तीर्थकरगणधरादिभिः उपाश्रितः=स्वीकृतस्तम्, अथवा-'अनिश्रितोपाश्रितम्' इति क्रियाविशेषणम्। तत्र-निश्रितः=शिष्यत्वमुपागतः, उपाश्रितः=शिष्यएव वैयावृत्त्यकारकः, निश्रितश्च-उपाश्रित

तोपाश्रित होकर जो श्रमण निर्ग्रन्थ अच्छी तरहसे चलाता है, वह श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञाका आराधक होता है, तात्पर्य इसका ऐसा है-जो शिष्यने ऐसी आशंकाकी है कि श्रमण निर्ग्रन्थको एक आगम व्यवहारकाही आश्रय करना चाहिये और उससेही अपना व्यवहार चलाना चाहिये उस व्यवहारोंकी उसे क्या आवश्यकता है, सो इसका उत्तर यहां सूत्रकारने इस प्रकारसे दिया है-कि जिस २ कालमें जिस २ प्रयोजनमें अथवा जिस २ क्षेत्रमें जो २ व्यवहार उचित हो एवं उस उस कालमें उस २ प्रयोजनमें अथवा उस २ क्षेत्रमें जो २ व्यवहार सर्व प्रकारके आशंसा दोषोंसे विहीन हुए तीर्थंकरों द्वारा स्वीकृत हुआ हो उस २ व्यवहारसे अपने व्यवहारको करनेवाला चलानेवालाही श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञाका आराधक होता है। यहां "अनिश्रितोपाश्रितं" पदको "व्यवहारं" इस पदका विशेषण मानकर ऐसा अर्थ किया गया है, अथवा "अनिश्रितोपाश्रित" इस पदको जब क्रिया विशेषण

અનિશ્રિતોપાશ્રિત થઈને જે શ્રમણ નિર્ગ્રંથ સારી રીતે ચલાવે છે, તે શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જિનાજ્ઞાનો આરાધક ગણાય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જે શિષ્યે એવો સદેહ કર્યો છે કે શ્રમણ નિર્ગ્રંથે એક આગમ વ્યવહારનો જ આધાર લેવો જોઈએ અને તેની મદદથી જ પોતાનો વ્યવહાર ચલાવવો જોઈએ-અન્ય વ્યવહારોની આવશ્યકતા જ શી છે! તો તેનો ઉત્તર સૂત્રકારે અહીં આ પ્રમાણે દીધો છે--

"જે જે કાળે, જે જે પ્રયોજનમા અથવા જે જે ક્ષેત્રમાં જે જે વ્યવહાર ઉચિત હોય, અને તે તે કાળે, તે તે પ્રયોજનમાં અથવા તે તે ક્ષેત્રમા જે જે વ્યવહાર સર્વ પ્રકારના આશસા દોષોથી વિહીન બનેલા તીર્થંકરો દ્વારા સ્વીકૃત થયો હોય, તે તે વ્યવહાર પ્રમાણે પોતાનો વ્યવહાર ચલાવનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જ ભગવાનની આજ્ઞાનો આરાધક ગણાય છે અહીં "અનિશ્રિતોપાશ્રિત" આ પદને "व्यवहारं" આ પદનુ વિશેષણ માનીને આ પ્રમાણે અર્થ કરવામા આવ્યો છે પણ "अनिश्रितोपाश्रितं" આ પદને જો ક્રિયાવિશેષણ માનવામા આવે તો આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે--

अभि-निश्रितोपाश्रितौ, तौ न विद्येते यस्मिंस्तद् यथा स्यात्तथा—अभिग्रहविशेषमपेक्ष्य नवानशिष्यान् अदीक्षयन् पुरातनशिष्येभ्यो वैयावृत्त्यमकारयन्नित्यर्थः। यद्वा—निश्रितं रागश्च, उपाश्रितं—द्वेषश्च निश्रितोपाश्रिते, ते उभे न विद्येते यस्मिंस्तद् यथास्यात्तथा रागद्वेषरहितं सम्यगित्यर्थः। अथवा—निश्रितं च—आहारादिलाभेच्छा, उपाश्रितं च शिष्यप्रापककुलापेक्षा, एतद्द्वयं नास्ति यस्मिंस्तद् यथास्यात्तथा—आहारादिस्वार्थलाभेच्छारहितं, शिष्यप्रापककुलापेक्षारहितं चेत्यर्थः। सम्यक्=यथाकल्पं व्यवहरमाण=... श्रमणो निर्ग्रन्थः आज्ञाया=जिनाज्ञाया आराधको भवतीति। अनेन पञ्चविधव्यवहारेण व्यवहरन् मोक्षमवाप्नोतीति सू० ११

भगवतस्त्वाचार् संयतानां तत्प्रतिपक्षभूतानामसंयतानां च सुप्तजागरत्वरूपमाह—

मूलम्—संजतमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा जाव फासा। संजतमणुस्साणं जागराणं पंच सुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा जाव फासा। असंजयमणुस्साणं सुत्ताणं वा जागराणं वा पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा जाव फासा ॥ सू० १२ ॥

रखा जाता है, तब इस पक्षमें ऐसा अर्थ होता है, कि अभिग्रह विशेषकी अपेक्षा करके नवीन शिष्योंको दीक्षा न देते हुए और पुराने शिष्योंसे वैयावृत्य न कराते हुए अथवा रागद्वेषसे रहित होते हुए अथवा—आहारादिक लाभकी इच्छासे और उपाश्रित-शिष्यदायक कुलकी अपेक्षासे रहित होते हुए कल्पके अनुसार पूर्वोक्त व्यवहारको करनेवाला श्रमण निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका आराधक होता है, इस तरह पंचविध व्यवहारसे व्यवहार करना भगवान्ने कहा है ॥ सू० ११ ॥

અભિગ્રહ વિશેષની અપેક્ષાએ નવીન શિષ્યોને દીક્ષા ન દેનારા, અને જૂના શિષ્યો પાસે વૈયાવૃત્ય નહીં કરાવતા એવા અથવા રાગદ્વેષથી રહિત બનેલા એવા અથવા આહારાદિક લાભની ઇચ્છાથી અને ઉપાશ્રિત-શિષ્યદાયક કુળની અપેક્ષાથી રહિત બનતા એવા કલ્પ (નિયમ) અનુસાર પૂર્વોક્ત વ્યવહારને ચલાવનાર શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ જિનાજ્ઞાનો આરાધક ગણાય છે આ રીતે પંચ પ્રકારના વ્યવહાર વડે વ્યવહાર કરવાનું (ચલાવવાનું) ભગવાને કહ્યું છે ॥ સૂ ૧૧ ॥

छाया—संयतमनुष्याणां सुप्तानां पञ्च जागराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-शब्दा यावत् स्पर्शाः । संयतमनुष्याणां जागराणां पञ्च सुप्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-शब्दा यावत् स्पर्शाः । असंयतमनुष्याणां सुप्तानां वा जागराणां वा पञ्चजागराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-शब्दा यावत् स्पर्शाः ॥ सू० १२ ॥

टीका—'संजयमणुस्साणं' इत्यादि—

सुप्तानां=निद्रावतां संयतमनुष्याणां=साधूनां पञ्च जागराः-जाग्रतीति जागराः =जागर इव जागराः-असुप्तवत् प्रज्ञप्ता । ते के? इत्याह-तद्यथा-शब्दाः यावत् स्पर्शा इति । अय भावः-शब्दादयो हि सुप्तानां संयतानां प्रज्वलदनलवदप्रतिहतशक्तिमन्तो भवन्ति, तस्मिन् काले तेषां कर्मबन्धकारणस्य निद्रारूपप्रमादस्य सद्भावात्, ततश्च सुप्तावस्थाया प्रतिबुद्धास्ते शब्दादयः कर्मबन्धकारणं भवन्तीति । तथा—

श्रमणके प्रस्तावसेही अब सूत्रकार संयतोंके और इनके प्रतिपक्ष असंयतोंके सुप्त एवं जागर स्वरूपका कथन करते हैं—

टीकार्थ-'संजयमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र१२॥

जो संयत मनुष्य-साधुजन निद्रावालेहैं, उनके असुप्तकी तरहपांच जागरण कहे गये हैं वे इस प्रकारसेहैं शब्द यावत् स्पर्श इसका भाव ऐसाहै-जो संयतजन सुप्तहैं, उनको शब्दादिक प्रज्वलित अग्निकी तरह अप्रतिहत शक्तिवाले होते हैं, क्योंकि उस कालमें उनके कर्मबन्धका कारणभूत निद्रारूप प्रमादका सद्भाव होता है, इसलिये सुप्त अवस्थामें प्रतिबुद्ध हुए अप्रतिहत शक्तिवाले बने हुए वे शब्दादिक कर्मबन्धके कारण होते हैं। तथा जो संयतजन अनिद्रित हैं-सचेत हैं-उनके पांच जाग-

શ્રમણોનો પ્રસ્તાવ ચાલી રહ્યો છે, તેથી હવે સૂત્રકાર સંયતો અને અસંયતોના સુપ્ત અને જાગરણ સ્વરૂપનું કથન કરે છે--

ટીકાર્થ-" संजयमणुस्साणं सुत्ताणं पच जागरा पण्णत्ता " ઈત્યાદિ--

જે સયત મનુષ્યો (સાધુઓ) નિદ્રાવાળા (અસાવધાન) હોય છે, તેમના અસુપ્તના જેવા પાચ જાગરણ કહ્યા છે--તે પાચ જાગરણો શબ્દથી લઈને સ્પર્શ પર્યન્તના ગ્રહણ કરવા આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે--

જે સંયતજન સુપ્ત છે તેમને માટે શબ્દાદિક પ્રજ્વલિત અગ્નિની જેમ અપ્રતિહત શક્તિવાળા હોય છે, કારણ તે કાળે તેમનામા કર્મબન્ધના કારણભૂત નિદ્રારૂપ પ્રમાદનો સદ્ભાવ હોય છે તેથી સુપ્ત અવસ્થામા પ્રતિબુદ્ધ થયેલા અપ્રતિહિત શક્તિવાળા બનેલા તે શબ્દાદિક કર્મબન્ધના કારણભૂત બને છે. જે સંયતજન અનિદ્રિત (સાવધાન) છે, તેમના પાંચ જાગરણ સુપ્તના

जागराणाम्=अनिद्रितानां साधूनां पञ्च सुप्ता =सुप्तवत्-निद्रितवत्, भवन्ति। ते के? इत्याह-शब्दा यावत् स्पर्शाः। जागरितानां साधूनां शब्दादयः पञ्च भस्म-उच्छ्राग्निवत् प्रतिहतशक्तयो भवन्ति, तस्मिन् काले कर्मबन्धकारणीभूतस्य प्रमादस्याभावात्, ततश्च जाग्रदवस्थायां ते न तेषां कर्मबन्धकारणं भवन्तीति। अथ भावसंयतानाश्रित्य आह-' असंजय ' इत्यादिना। सुप्तानां वा जागराणां वा असंयतमनुष्याणाम्=असंयमिनां शब्दादयः पञ्च जागराः=अनिद्रिता भवन्ति। अयं भावः-असंयताहि प्रमादवन्तो भवन्ति, अतस्तेषां स्वप्नजाग्रदुभयावस्थायामपि शब्दादयोऽप्रतिहतशक्तिमत्त्वात् कर्मबन्धहेतुका भवन्तीति॥ सू० १२॥

रण सुप्तकी तरह कहे गये हैं-निद्रितकी तरह प्रकट किये गये हैं, ये पांच जागरण शब्दसे लेकर स्पर्श तक हैं, तात्पर्य ऐसा है, कि जो संयतजन जागरित होते हैं, उनके शब्दादिक पांच जागरण भस्मसे आच्छादित हुई-ढंकी हुई अग्निकी तरह प्रतिहत शक्तिवाले होते हैं, क्योंकि उस कालमें कर्मबन्धके कारणभूत प्रमादका अभाव रहता है, इसलिये वे जाग्रत अवस्थामें उनको कर्मबन्धके कारण नहीं होते हैं

" असंजय " इत्यादि-असंयत मनुष्य चाहे सुप्त हो चाहे जागरित हो उनके तो शब्दादिक पांच जागरण सदा अनिद्रितही होते हैं, इसका भाव ऐसा है, असंयत जीव प्रमादवाले होते हैं, इसलिये उन्हे स्वप्न अवस्थामें एवं जाग्रत अवस्थामें दोनों अवस्थाओंमें भी शब्दादिक अप्रतिहत शक्तिवाले होनेसे कर्मबन्धक हेतु होते हैं ॥सू० १२॥

સમાન કહ્યા છે-નિદ્રિત। જેના પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે શબ્દથી લઈને સ્પર્શ પર્યન્તના પાંચ જાગરણ સમજવા. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે સંયત મનુષ્યો જાગૃત હોય છે, તેમના શબ્દાદિક પાંચ જાગરણ જેના પર રાખ વળી ગઈ છે એવા અગ્નિના જેવા પ્રતિહત શક્તિવાળા હોય છે કારણ કે તે કાળે કર્મબંધના કારણભૂત પ્રમાદનો અભાવ રહે છે, તેથી જાગૃત અવસ્થામાં તેમને કર્મબંધ થવાના કારણોનો અભાવ રહે છે

" असंजय " ઇત્યાદિ—અસંયત મનુષ્યો ભલે સુપ્ત હોય કે ભલે જાગૃત હોય, પણ તેમને માટે તો શબ્દાદિક પાંચ જાગરણ સદા અનિદ્રિતસમ જ હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—અસંયત મનુષ્યો પ્રમાદવાળા હોય છે તેથી તેમને માટે તો સુપ્ત અને જાગૃત આ બન્ને અવસ્થામાં શબ્દાદિક અપ્રતિહત શક્તિવાળા હોવાથી કર્મબંધમાં કારણભૂત બને છે સૂ. १२

संयतासंयताधिकारात्तदुभयसंबद्धं सूत्रमाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति तं जहा—पाणाइवाएणं जाव परिग्गहेणं। पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं वमंति, तं जहा-पाणाइवायवेरमणेणं जाव परिग्गहवेरमणेणं ॥सू०१३॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः जीवा रज आददति, तद्यथा—प्राणातिपातेन यावत् परिग्रहेण। पञ्चभिः स्थानैः जीवा रजो वमन्ति, तद्यथा—प्राणातिपातविरमणेन यावत् परिग्रहविरमणेन ॥ सू० १३ ॥

टीका—'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः रजः—रज्यते=जीवस्य शुद्धस्वरूपं मलिनं क्रियतेऽनेनेति—रजः कर्म आददति=गृह्णन्ति बध्नन्तीति यावत्। तद्यथा—प्राणातिपातेन यावत् परिग्रहेण। प्राणातिपातादिपरिग्रहान्ताः पञ्च जीवस्य कर्मबन्धकारणानि भवन्तीति भावः। तथा—जीवाः पञ्चभिः—स्थानैः रजः=कर्म वमन्ति—उद्गिलन्ति क्षपयन्तीति यावत्। तद्यथा—प्राणातिपातविरमणेन यावत् परिग्रहविरमणेनेति ॥सू०१३॥

संयत और असंयतके अधिकारसे इन दोनोंसे संबद्ध सूत्रका कथन सूत्रकार करतेहैं—'पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति' इत्यादि

टीकार्थ—पांच कारणोंसे जीव रजको जीवके शुद्ध स्वरूपको मलिन करनेके कारणके कारण कर्मरजको बांधते हैं, वे पांच कारण ये हैं—प्राणातिपात यावत् परिग्रहका तात्पर्य यही है, कि प्राणातिपातसे लेकर परिग्रह तकके पांचोंही पाप जीवको कर्मबन्धके कारण होते हैं। तथा जीव पांच कारणोंसे कर्मोंका क्षय करते हैं, वे पांच कारण ये हैं प्राणातिपात विरमण यावत् परिग्रह विरमण ॥ सू० १३ ॥

સંયત અને અસંયતના અધિકાર સાથે સંબદ્ધ એવા કર્મરજ વિષયક સૂત્રનું હવે સૂત્રકાર કથન કરે છે. " पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—પાચ કારણોને લીધે જીવ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને મલિન કરનાર રજની (કર્મરજની) જમાવટ કરે છે તે પાંચ કારણો નીચે પ્રમાણે છે—

પ્રાણાતિપાતથી લઇને પરિગ્રહ પર્યન્તના કારણો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે પ્રાણાતિપાતથી લઇને પરિગ્રહ પર્યન્તના પાચે પાપ જીવને કર્મનો બન્ધ કરાવવામા કારણભૂત બને છે. તથા પ્રાણાતિપાત વિરમણથી લઇને પરિગ્રહ વિરમણ પર્યન્તના પાચ કારણોને લીધે જીવ કર્મોનો ક્ષય કરે છે. ॥ સૂ. ૧૩ ॥

संयतानेवाधिकृत्य सम्प्रति सूत्रद्वयमाह—

मूलम्—पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए पंच पाणगस्स ॥ सू० १४ ॥

छाया—पञ्चमासिकीं खलु भिक्षुप्रतिमां प्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते पञ्च दत्तयो भोजनस्य प्रतिग्रहीतुं पञ्च पानकस्य ॥ सू० १४ ॥

टीका—' पंचमासियं ' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० १४ ॥

मूलम्—पंचविहे उवघाए पण्णत्ते, तं जहा-उग्गमोवघाए १, उप्पायणोवघाए २ एसणोवघाए ३ परिकम्मोवघाए ४ परिहरणोवघाए ५। पंचविहा विसोही पण्णत्ता, तं जहा-उग्गमविसोही १ उप्पायणविसोही २ एसणाविसोही ३ परिकम्मविसोही ४ परिहरणविसोही ५ ॥ सू० १५ ॥

छाया—पञ्चविध उपघातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-उद्गमोपघातः १ उत्पादनोपघातः २ एषणोपघातः ३ परिकर्मोपघातः ४ परिहरणोपघातः ५। पञ्चविधा विशोधिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-उद्गमविशोधिः १ उत्पादनाविशोधिः २ एषणाविशोधिः ३ परिकर्मविशोधिः ४ परिहरणविशोधिः ५ ॥ सू० १५ ॥

टीका—' पंचविहे ' इत्यादि—

उपघातः=अशुद्धता, स पञ्चविधः प्रज्ञप्तः । पञ्चविधत्वमेवाह—तद्यथा—उद्गमोपघात -उद्गमः=उद्गमदोषैराधाकर्मादिभिः षोडशविधैर्भक्तपानोपकरणवसतीनाम्

संयतोंको लेकरही सूत्रकार अब ये दो सूत्र और कहते हैं—

'पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स इत्यादि १४॥

टीकार्थ-पंचमासिकी भिक्षुप्रतिमाको प्राप्त मुनिके लिये पांच दत्तियां भोजनकी और पांचही दत्तियां पानककी लेना शास्त्रविहीत हैं ॥सू० १४॥

સંયતોને અનુલક્ષીને જ હવે સૂત્રકાર નીચેના બે સૂત્રો કહે છે

ટીકાર્થ–" પંચમાસિયં ણં ભિક્ખુપડિમં પડિવન્નસ્સ અણગારસ્સ " ઇત્યાદિ—

પાંચ માસિક ભિક્ષુ પ્રતિમાની આરાધના કરનાર મુનિને પાંચ ભોજનની દત્તિઓ અને પાંચ પાનક (પેય)ની દત્તિઓ લેવી કલ્પે છે ॥ સૂ. ૧૪ ॥

उपघातः=अशुद्धता १। उत्पादनोपघातः—उत्पादनाभिः=धात्र्यादिभिः षोडशभिरुत्पादनादोषैर्भक्तपानादीनामशुद्धता २। एषणोपघातः—एषणया=शङ्कितादिभिर्दशभिरेषणादोषैरुपघातः ३। परिकर्मोपघातः—परिकर्म—वस्त्रपात्रादेः छेदनसीवनादि, तेन उपघातः=वस्त्रपात्रादेरकल्पनीयता। तत्र वस्त्रस्य परिकर्मोपघातो यथा—

'पंचविहे उवघाए पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र १५॥

टीकार्थ—उपघात शब्दका अर्थ अशुद्धताहै, यह अशुद्धता पांच प्रकारकी कही गई है—उदगमोपघात १ उत्पादनोपघात २ एषणोपघात ३ परिकर्मोपघात ४ और परिहरणोपघात ५ पांच प्रकारकी विशोधि कही गई है—जैसे—उद्गम विशोधि १ उत्पादनाविशोधि २ एषणाविशोधि ३ परिकर्मविशोधि ४ और परिहरण विशोधि ५।

आधाकर्म आदि १६ प्रकारके उदगम दोषोंसे भक्तपान उपकरण इनके आलयोंकी-स्थानोंकी अशुद्धता यह उद्गमोपघात है १। धात्री आदि १६ प्रकारके उत्पादना दोषोंसे भक्तपान आदिकोंकी अशुद्धता यह उत्पादनोपघात है २। शङ्कित आदि १० प्रकारके एषणा दोषोंसे भक्तपान आदिकोंकी अशुद्धता एषणोपघात है ३। वस्त्रपात्र आदिकोंका छेदना सीना आदि परिकर्म है, इससे जो वस्त्रपात्र आदिकी अकल्पनीयता है, वह परिकर्मोपघात है ४। वस्त्रका परिकर्मोपघात ऐसा है—

"पचविहे उवघाए पण्णत्ते" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ—ઉપઘાત એટલે અશુદ્ધતા તે અશુદ્ધતા રૂપ ઉપઘાતના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) ઉદ્ગમોપઘાત, (૨) ઉત્પાદનોપઘાત, (૩) એષણોપઘાત, (૪) પરિકર્મોપઘાત અને (૫) પરિહરણોપઘાત.

પાચ પ્રકારની વિશોધિ (વિશુદ્ધતા) કહી છે—(૧) ઉદ્ગમવિશોધિ, (૨) ઉત્પાદના વિશોધિ, (૩) એષણાવિશોધિ, (૪) પરિકર્મવિશોધિ અને (૫) પરિહરણ વિશોધિ.

આધાકર્મ દોષ આદિ ૧૬ પ્રકારના ઉદ્ગમ દોષો કહ્યા છે. આહાર, પાણી, અને ઉપકરણના સ્થાનોની અશુદ્ધતાનુ નામ ઉદ્ગમોપઘાત છે. ધાત્રીદોષ આદિ ૧૬ પ્રકારના ઉત્પાદના દોષોથી આહાર આદિકોમાં જે અશુદ્ધતા આવી જાય છે તેનું નામ ઉત્પાદનોપઘાત છે શકિત આદિ ૧૦ પ્રકારના દોષોથી આહાર આદિમાં જે અશુદ્ધતા આવી જાય છે તેને એષણોપઘાત કહે છે. વસ્ત્ર પાત્ર આદિકોનુ છેદન કરવુ અથવા સાધવુ, તેનુ નામ પરિકર્મ છે. તેને કારણે વસ્ત્રાદિમાં જે અકલ્પનીયતા આવ છે તેને પરિકર્મોપઘાત કહે છે. વસ્ત્રના પરિકર્મનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનુ હોય છે—"तिण्हुवारि फालियाणं" ઇત્યાદિ.

" तिण्हुवरिफालियाण, वत्थं जो फालियं तु ससीवे ।
पंचण्ह एगतरं, सो पावइ आणमाईणि ॥ १ ॥ "

छाया—त्रयाणामुपरि पाटितानां वस्त्रं यः पाटितं तु संसीव्येत् ।
पञ्चानामेकतमत् स माप्नोति आज्ञादीनि ॥ १ ॥ इति ।

अयं भावः—यः पञ्चानाम्=ऊर्णादि पञ्चविधानां वस्त्राणां मध्ये एकतमत्=अन्यतम वस्त्रं त्रयाणां पाटितानाम्=विस्रुमां विगलिकानाम् उपरि पाटितं तु=यदि ससीव्येत्, तदा स साधु आज्ञादीनि=आज्ञाविराधनादि दोषान् माप्नोतीति । पात्रस्य परिकर्मोपघातो यथा—

" अवलक्खणेगबंधे, दुगतिग अइरेगबंधणं वावि ।
जो पाय परियट्टइ, पर दिवड्डमो मासाओ ॥ १ ॥ "

छाया—अपलक्षणैकबन्ध द्विकत्रिकातिरेकबन्धनं वापि ।
य पात्रं परिवर्त्तयति पर द्व्यर्धात् मासात् ॥१॥ इति ।

" तिण्हुवरि फालियाणं " इत्यादि ।

जो साधु ऊर्णा आदि पांच प्रकारके वस्त्रोंमेंसे किसी एक वस्त्रको फटे हुए तीन थेगलीसे अधिक थेगली लगावे वह साधु आज्ञा विराधना आदि दोषोंको प्राप्त करता है, पात्रका परिकर्मोपघात इस प्रकारसे है—

" अवलक्खणेगबंधे " इत्यादि ।

जो पात्र स्वरूप रहित हो एवं एक बन्धनवाला हो ऐसे उस पात्रको जो साधु १॥ डेढ मासले अधिक समय तक रखता है, वह साधु आज्ञा विराधना आदि दोषवाला होता है, अच्छे लक्षणवाला पात्र एक बन्धनसे युक्त हुआ भी यदि १॥डेढ माहसे भी अधिक काममें ले लिया जाता है, तो उससे साधुको आज्ञा विराधना आदि दोष नहीं लगता है ।

જે સાધુ ઉર્ણા (ઉનના બનાવેલાં) આદિ પાંચ પ્રકારનાં વસ્ત્રોમાંથી કોઈ પણ એક પ્રકારના ફાટેલા વસ્ત્રને ત્રણ કરતાં વધારે થીગડાં લગાવે છે, તો તે સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાય છે. પાત્રનો પરિકર્મોપઘાત આ પ્રકારનો કહ્યો છે " અવલક્ખણેગબંધે " ઇત્યાદિ—

જે પાત્ર સ્વરૂપ રહિત હોય અને એક બંધનવાળું હોય, તે પાત્રને ૧॥ માસ કરતાં અધિક સમય સુધી પોતાની પાસે રાખનાર સાધુ આજ્ઞા વિરાધના આદિ દોષવાળો ગણાય છે જે પાત્ર સારાં લક્ષણોવાળું અને એક બન્ધનવાળું હોય, તેને ૧॥ માસથી અધિક સમય સુધી ઉપયોગમાં લેવામાં આવે તો તેથી સાધુને આજ્ઞાવિરાધના આદિ દોષ લાગતા નથી. મે અથવા

अयं भावः-यत् पात्रम् अपलक्षणैकबन्धनम्-अपगतं लक्षणं=स्वरूपं यस्य तत् एवंभूतं सत् एकबन्धम्=एकबन्धनयुक्तं भवेत्, तत् पात्रं यः साधुः द्व्यपार्धात्-द्वितीयम् अपार्द्धं यस्मिंस्तद् द्व्यपार्द्धं तस्मात्-सार्द्धात् मासात् परं परिवर्त्तयति=परिभुङ्क्ते स आज्ञाविराधनादिदोषभाग् भवति। सुलक्षणं पात्रमेकबन्धनयुक्तमपि सार्धमासात्परमपि परिभुञ्जानः साधुः आज्ञादिदोषभाग् नो भवति। तथा-द्विक-त्रिकातिरेकबन्धनं-द्वाभ्यां बन्धनाभ्यां, त्रिभ्यो बन्धनेभ्यश्चाधिकबन्धनयुक्तं=चतुर्बन्धनयुक्तं सुलक्षणमपि पात्रं सार्धमासात्परं परिभुञ्जानः साधुराज्ञादिदोषभाग् भवति। किंचिदूनचतुर्बन्धनयुक्तं पात्रं परिभुञ्जानः साधुस्तु आज्ञादिविराधको न भवतीति बोध्यम्। वसतेः परिकर्मोपघातस्तु—

" दूमिय धूमिय वासिय, उज्जोइय बलिकडा अवत्ता य।
सित्ता संमट्ठावि य, अकप्पणीया उ सा वसही ॥ १ ॥ "

छाया—धवलिता धूमिता वासिता उद्योतिता बलिकृता अव्यक्ता च।
सिक्ता सम्मृष्टाऽपि च अकल्पनीया तु सा वसतिः ॥१॥ इति।

अयं भावः-या वसतिः-धवलिता=शुभ्रीकृता, धूमिता = दंशमशकादीनां विनाशाय कृतधूमा, वासिता=सुगन्धिता, उद्द्योतिता=प्रदीपादिना प्रकाशिता,

---

तथा दो बन्धनोंसे या तीन बन्धनोंसे अधिकबन्धन युक्त-चार बन्धन-युक्त पात्र यदि सुलक्षणवाला भी है, तो उसे जो साधु १॥ डेढ माससे अधिक समय तक अपने काममें लेता है, वह साधु आज्ञा भंग आदि दोषोंका पात्र माना जाता है। परन्तु कुछ कम चार बन्धनयुक्त पात्रको अपने काममें लेनेवाला साधु आज्ञादिका विराधक नहीं होता है, वसतिका परिकर्मोपघात इस प्रकारसे है—

" दूमिय धूमिय वासिय " इत्यादि।

तात्पर्य यहहै कि जो वसति (उपाश्रय) धवलित हो चूनेसे पोत कर

ત્રણ કરતાં અધિક એટલે કે ચાર, પાચ આદિ બન્ધનોથી યુક્ત પાત્ર સુલક્ષણયુક્ત હોવા છતાં પણ તેનો ૧॥ માસથી અધિક સમય પર્યન્ત ઉપયોગ કરનાર સાધુ આજ્ઞાવિરાધના આદિ દોષોને પાત્ર ગણાય છે, પરન્તુ ચારથી ઓછા બન્ધનયુક્ત પાત્રનો ૧॥ માસથી અધિક સમય માટે ઉપયોગ કરનાર સાધુ આજ્ઞાદિનો વિરાધક ગણાતો નથી. વસતિ (રહેઠાણ) નો પરિકર્મોપઘાત આ પ્રકારનો છે. " દૂમિય ધૂમિય વાસિય " ઈત્યાદિ—

જે વસતિ (રહેઠાણ) ચૂના આદિ વડે ધોળેલી હોય, મચ્છર, માંકડ,

वलिछ्या-कूरादिना भूतार्थं वलिः कृतो यस्यां सा, अभ्यक्ता=गोमयादिना उपलिप्ता, सिक्ता=जलसेकयुक्ता, तथा-सम्मृष्टा=सम्मार्जिता चापि भवति, सा वसतिः अकल्पनीया बोध्येति १। तथा-परिहरणोपघात -परिहरणम्=आसेवन, तेन उपघातः=उपध्यादेरकल्पनीयत्वम् । तत्र-उपधेः परिहरणोपघातो यथा-एकाकिविहारकेन साधुना यदासेवितमुपकरणं तद् ग्रहीतु न कल्पते इति । परन्तु स गच्छनिर्गत साधुरेकाकी सन्नपि जागर्ति, दुग्धादिविकृतिषु च प्रतिबद्धो न भवति, तदा चिरेणापि गच्छे समागच्छतोऽस्य साधोरुपधिः ग्रहीतु कल्पते ।

सफेदकी गई हो दंशमशक आदिकोंके विनाशके लिये जिसमें धूम किया गया हो, धूप आदि जलाकर जिसे सुगंधित किया गया हो, प्रदीप आदिसे जिसे प्रकाशयुक्त किया हो, भूतके लिये जिसमें मान आदिसे बलि दी गई हो, गोबर आदिसे जो लीपी गई हो, जलका जिसमें छिड़काव किया गया हो और जिसको कूडाकचरा निकाल कर साफ कर दिया गया हो ऐसी वह वसति साधुजनोंको ठहरनेके लिये अकल्पनीय है, परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-परिहरण नाम आसेवनका है, इससे जो उपधि आदिकी अकल्पनीयता है, वह परिहरणोपघात है, इसमें उपधिका परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-एकाकी भ्रमण करनेवाले साधुके द्वारा आसेवित जो उपकरण हो वह लेना योग्य नहीं है, परन्तु गच्छसे निर्गत साधु अकेला होता हुआ भी यदि जागरित है-दुग्धादि विकृतियोंमें प्रतिबद्ध नहीं होता है, तो बहुत दिनोंके बाद भी गच्छमें आने पर उस साधुकी उपधि आदि लेना कल्प्य है तदुक्तम्-

આદિનો નાશ કરવા માટે ધૂમાડો કરવામાં આવ્યો હોય, ધૂપ આદિ વડે જેને સુગન્ધયુક્ત કરવામાં આવેલ હોય, પ્રદીપ વડે જેને પ્રકાશિત કરવામાં આવેલ હોય, જેમાં ભૂતને માટે બાકળા બાકળા વગેરે બાળી દેવામાં આવેલ હોય, છાણ આદિ વડે જેને લીંપવામાં આવેલ હોય, જેમાં પાણી છાંટવામાં આવ્યું હોય, જેમાંથી કચરો જે સાફ કરાવવામાં આવેલ હોય, એવી વસતિ (સ્થાન) સાધુને રહેવાને માટે અકલ્પનીય ગણાય છે

પરિહરણોપઘાતનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—પરિહરણ એટલે આસેવન. ઉપધિ આદિની જે અકલ્પનીયતા છે, તેને પરિહરણોપઘાત કહે છે તેમાંની ઉપધિનો પરિહરણોપઘાત આ પ્રકારનો છે—એકલા વિહારી સાધુ દ્વારા આસેવિત જે ઉપકરણ હોય, તે લેવા યોગ્ય નથી, પરન્તુ ગચ્છમાંથી નીકળી ગયેલો સાધુ એકલ વિહારી હોવા છતાં પણ જાગૃત હોય (દૂધ આદિ વિકૃતિઓમાં અપ્રતિબદ્ધ હોય) તો એવો સાધુ ઘણા દિવસો પછી પણ ગચ્છમાં પાછો

तदुक्तम्—

" जग्गण अप्पडिबज्झण, जइवि चिरेणं न उवहंमे । "

छाया—जागरणम् अप्रतिबन्धो यद्यपि चिरेण नोपहन्यते । इति ।

तथा-वसतेः परिहरणोपघातो यथा-यः कश्चित् साधुर्यत्र वसत्यां शेषकालस्य मासमेकं वर्षाकालस्य वा चातुर्मासीं स्थित्वा पुनस्तत्रैव तिष्ठति ततः सा वसतिः कालातिक्रान्तदोषदुष्टा भवति । यः साधुः यत्र वसत्यां शेषकालस्य मासमेकं तिष्ठति, वर्षाकालस्य वा चातुर्मासीं तिष्ठति, ततो विहृत्य तद्द्विगुणं कालमनतियाप्य यदि पुनस्तत्रैव वसतौ समायाति तदा सा वसतिरुपस्थानदोषदुष्टा भवति । तदुक्तम्—

" उउवासा समईया, कालातीया उ सा भवे सेज्जा ।
सा चेव उवट्ठाणा, दुगुण दुगुणं अवज्जित्ता ॥ १ ॥ "

" जग्गणअप्पडिबज्झण " इत्यादि ।

वसतिका (उपाश्रय)परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-जो कोई साधु जिस वसतिमें शेषकालके एक मास तक अथवा वर्षाकालके चार मास तक ठहर कर पुनः वहीं पर ठहर जाता है, वह वसति कालातिक्रान्त दोषसे दुष्ट होती है, जो साधु जिस वसतिमें शेष कालके एक महिना तक ठहरता है, अथवा वर्षाकालके चार मास तक ठहरता है फिर इसके बाद वहांसे विहार कर यदि उससे द्विगुणित कालको समाप्त नहीं करके उसी वसतिमें आ जाता है, तो वह वसति उपस्थान दोषसे दोषयुक्त होती है-कहा भी है-" उउवासा समईया " इत्यादि ।

આવી જાય, તો તે સાધુની ઉપધિ આદિ લેવા યોગ્ય (કલ્પનીય) ગણાય છે. કહ્યું પણ છે કે " जग्गण अप्पडिबज्झण " ઈત્યાદિ—

વસતિ (રહેઠાણ) નો પરિહરણોપઘાત આ પ્રકારનો છે—સાધુઓને શેષકાળમાં એક માસ સુધી અને ચોમાસામા ચાર માસ સુધી એક જ જગ્યાએ રહેવાનું કલ્પે છે જો એક જ જગ્યાએ તેથી વધારે સમય સુધી રહે તો તે વસતિ કાલાતિક્રાન્ત દોષથી દૂષિત થાય છે. જો કોઈ સાધુ અમુક વસતિ (સ્થાન) માં શેષકાળમાં એક માસ સુધી અને વર્ષાકાળમાં ચાર માસ સુધી રહીને ત્યાંથી વિહાર કરે છે, પણ તેના કરતાં બમણો સમય વ્યતીત થઈ ગયા પહેલાં તે વસતિમાં આવે, તો તે વસતિ ઉપસ્થાન દોષથી દૂષિત થાય છે. કહ્યું પણ છે કે—

" उउवासा समईया " ઈત્યાદિ—

छाया—चतुर्वर्षाः समतीता कालातीता तु सा भवेत् कल्प्या।
सा एव उपस्थाना द्विगुण द्विगुणम् अपमर्षयित्वा ॥१॥ इति।

तथा—भक्तस्य परिहरणोपघातः परिष्ठापकं प्रति भवति।

तदुक्तम्—" विहिगहियं विहिभुत्तं, अइरेगं भत्तपाणभोत्तव्वं।
विहिगहिए विहिभुत्ते, एत्थ य चउरो भवे भंगा ॥१॥
भत्तावि य विहिगहियं, विहिभुत्तं तं गुरूहिऽणुन्नायं।
सेसा नाणुन्नाया गहणे दिन्ने य निज्जुहणं " ॥२॥

छाया—विधिगृहीतं विधिभुक्तम् अतिरेकं भक्तपानं भोक्तव्यम्।
विधिगृहीते विधिभुक्ते, अत्र च चत्वारो भवेयुर्भङ्गाः ॥१॥
भक्तमपि च विधिगृहीतं विधिभुक्तं तद्गुरुभिरनुज्ञातम्।
शेषा नानुज्ञाता गृहीते दत्ते च निर्यूहणा ॥ २ ॥ इति।

निर्यूहणा—त्यागः। गुरुभिरशनादिकं परिष्ठापयितुमाज्ञप्तं शिष्यं प्रति परिष्ठाप्याशनादिविषयकः परिहरणोपघातो भवतीति बोध्यम्। तथा—विशोधि—विशोधनं विशोधिः—कल्प्यता, सा पञ्चविधा प्रज्ञप्ता। पञ्चविधत्वमाह—तद्यथा—उद्गमविशोधिरित्यादि। उद्गमादिदोषपरिहारेणैव भक्तादीनां विशोधिर्बोध्येति ॥सू० १५॥

भक्तका परिहरणोपघात इस प्रकारसे है—यह भक्तका परिहरणोपघात परिष्ठापकके (परिष्ठापना करनेवाले) प्रति होता है कहा भी है " विहिगहियं विहिभुत्तं " इत्यादि।

निर्यूहणा शब्दका अर्थ त्याग करना है, गुरुजनों द्वारा अशनादिकी परिष्ठापना करनेके लिये आज्ञापित हुए शिष्यके परिष्ठापना करने योग्य अशनादि सम्बन्धी परिहरणोपघात होता है, ऐसा जानना चाहिये। कल्प्यताका नाम विशोधि है, यह कल्प्यतारूप विशोधि पांच

ભક્ત (આહાર) નો પરિહરણોપઘાત આ પ્રકારનો છે—આ ભક્ત (આહાર) નો પરિહરણોપઘાત પરિષ્ઠાપકને દોષયુક્ત કરે છે કહ્યું પણ છે કે 'વિહિગહિયં વિહિભુત્તં " ઇત્યાદિ—

નિર્યૂહણા એટલે ત્યાગ કરવો. ગુરુજનો દ્વારા અશનાદિકની પરિષ્ઠાપના કરવાનો જેને આદેશ અપાયો હોય છે એવા શિષ્યને પરિષ્ઠાપના કરવા યોગ્ય અશનાદિ સંબંધી પરિહરણોપઘાત લાગે છે એમ સમજવું

કલ્પ્યતાને વિશોધિ કહે છે તે કલ્પ્યતા રૂપ વિશોધિ પાંચ પ્રકારની કહી છે-ઉદ્ગમ વિશોધિ આદિ પાંચ વિશોધિ અહીં ગ્રહણ કરવી. ઉદ્ગમ આદિ

उपघातवृत्तयो जीवा अधार्मिकत्वेन बोधेरप्राप्तिस्थानेषु प्रवर्त्तन्ते, विशुद्धिवृत्तयो जीवास्तु धार्मिकत्वेन बोधेः प्राप्तिस्थानेषु प्रवर्त्तन्ते इत्युपदर्शयितुमाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा--अरहंताणं अवन्नं वयमाणे १, अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवन्नं वयमाणे २, आयरियउवज्झायाणं अवन्नं वयमाणे ३, चाउवन्नस्स संघस्स अवन्नं वयमाणे ४, विवक्कतव बंभचेराणं देवाणं अवन्नं वयमाणे ५। पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोहियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा--अरहंताणं वन्नं वयमाणे जाव विवक्क तव बंभचेराणं देवाणं वन्नं वयमाणे ॥ सू० १६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः जीवा दुर्लभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—अर्हताम् अवर्णं वदन् १, अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्णं वदन् २, आचार्योपाध्यायानाम् अवर्णं वदन् ३, चातुर्वर्णस्य संघस्य अवर्णं वदन् ४, विपक्वतपोब्रह्मचर्याणां देवानाम् अवर्णं वदन् ५। पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुलभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—अर्हतां वर्णं वदन् यावत् विपक्वतपोब्रह्मचर्याणां देवानां वर्णं वदन्॥सू० १६॥

प्रकारकी होती है, जैसे-उद्गम विशोधि आदि उद्गमादि दोषोंके परिहारसेही भक्तोंकी विशोधि होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० १५॥

सूत्रार्थ—उपघात वृत्तिवाले जो जीव होतेहैं, वे अधार्मिक होनेसे बोधिके अप्राप्ति स्थानोंमें प्रवृत्ति करते हैं—और जो विशुद्ध वृत्तिवाले जीव होते हैं, वे धार्मिक होनेसे बोधिके प्राप्ति स्थानोंमें प्रवृत्ति करते हैं सो इसी

દોષોના પરિહારથી આહારાદિમાં વિશોધિ (વિશુદ્ધિ) જળવાય છે, એમ સમજવું ॥ સૂ. ૧૫ ॥

સૂત્રાર્થ—ઉપઘાત વૃત્તિવાળા જીવો અધાર્મિક હોવાને કારણે બોધિના અપ્રાપ્તિ સ્થાનોમાં પ્રવૃત્તિશીલ રહે છે, અને જેઓ વિશુદ્ધ વૃત્તિવાળા હોય છે તેઓ ધાર્મિક હોવાથી બોધિના પ્રાપ્તિ સ્થાનોમા પ્રવૃત્તિવાળા હોય છે, એજ વાત સૂત્રકાર આ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કરે છે.

टीका--'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि--

जीवाः=प्राणिनः पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः दुर्लभबोधिकतया दुर्लभा बोधिर्यस्य स दुर्लभबोधिकः, तस्य भावस्तत्ता तया-दुष्प्राप्यजिनधर्मकत्वेन कर्म=मोहनीयादि प्रकुर्वन्ति=बध्नन्ति। तान्येव स्थानान्याह-तद्यथा-अर्हताम् अवर्ण=निन्दां वदन्=कुर्वन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति। अर्हतामवर्णवादो यथा--

"नत्थी अरहंतत्ती, जाणं वा कीस भुंजए भोए?।
पाहुडियं उवजीवइ एमाइ जिणाण उ अवण्णो ॥१॥"

छाया-नास्ति अर्हन्निति, जानानो वा कथं भुङ्क्ते भोगान्।
प्राभृतिकां तूपजीवति, एवमादि जिनानां तु अवर्णः ॥१॥ इति।

अयमर्थः-'अर्हन्' इति नास्ति। अर्हन् यदि भवेत्, तर्हि जानानोऽपि=

घातको अब सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं--

'पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए' इत्यादि सूत्र १६॥

टीकार्थ इन पांच स्थानोंसे जीवोंको बोधिकी जिनधर्मकी प्राप्ति दुर्लभ होतीहै, अतः वे मोहनीय आदि कर्मोंका बन्ध करतेहैं। वे स्थान इस प्रकारसेहैं--जो जीव अर्हन्त प्रभुका अवर्णवाद करता है, उसे बोधिकी प्राप्ति दुर्लभ होती है १। अवर्णवादका अर्थ निन्दा करना है। तात्पर्य इस कथनका ऐसा है, कि जो प्राणी अर्हन्त प्रभुकी निन्दा करता है, ऐसा वह प्राणी दुर्लभ बोधिताके उत्पादक कर्मका बन्ध करता है। अर्हन्त प्रभुका अवर्णवाद इस प्रकारसे होता है--

"नत्थी अरहंतत्ती" इत्यादि। इसका ऐसा अर्थहै-अर्हन्त नामका कोई व्यक्तिहै ही नहीं यदि वहहै तो केवलज्ञानसे वह समस्त पदार्थोंको जानता

"पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए" ઇત્યાદિ--

આ પાંચ સ્થાનો (કારણો) ને લીધે જીવોને માટે બોધિની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની જાય છે તેથી તેઓ મોહનીય આદિ કર્મોનો બંધ કરે છે તે પાંચ કારણો નીચે પ્રમાણે છે--(૧) જે જીવ અર્હંત પ્રભુનો અવર્ણવાદ કરે છે, તેને બોધિની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની જાય છે અવર્ણવાદ એટલે નિંદા આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે જીવ અર્હંત પ્રભુની નિંદા કરે છે તે જીવ દુર્લભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બંધ કરે છે અર્હંત પ્રભુનો અવર્ણવાદ આ પ્રકારે થાય છે-- "નત્થી અરહંતત્તિ" ઇત્યાદિ--

'અર્હંતનું અસ્તિત્વ જ નથી. જો વિદ્યમાન કેવળજ્ઞાન વડે સમસ્ત

ज्ञानयुक्तः सन्नपि स कथं भोगान् भुङ्क्ते ? तु=पुनः स प्राभृतिकां=समवसरणादिरूपाम् ऋद्धिम् उपजीवति। यदि अर्हन् भवेत् न स एवं कुर्यात्। एवमादिरर्हतामवर्णवादो बोध्य इति। अत्रेदं बोध्यम् यदुच्यते अर्हन्तो नाभूवन्निति, तन्न, तत्प्रणीतवचनानामद्याप्युपलब्धेः। यच्च भोगान् भुक्तवन्तोऽतस्तेषामज्ञत्वं यत् साध्यते, तदप्यकिंचित्करमेव, निश्चयज्ञानित्वेन सातकर्मणस्तीर्थकरनामादि-कर्मणश्चाऽवश्यवेद्यत्वेन तदुपादानात्। यत्तूच्यते, ते प्राभृतिकामुपजीवन्तीति तदपि न समीचिनम्, वीतरागत्वेन तेषां तदतिशयवशाज्जायमानासु प्राभृतिकादिषु प्रति-

---

हुआ भी भोगोंका भोक्ता कैसे हो सकता है ? और कैसे वह समवसरणादिरूप ऋद्धिका भोक्ता हो सकता है ? यदि वास्तवमें वह अर्हन् होता तो वह ऐसा नहीं कर सकताहै, इत्यादि रूपसे ऐसा कथन करना अर्हन्त प्रभुका अवर्णवाद है। यहां ऐसा समझना चाहिये-जो लोग ऐसा कहते हैं कि अर्हन्त हुएही नहीं है, सो उनका ऐसा कहना ठीक नहीं है-क्योंकि उनके प्रणीत वचनरूप आगम अभी तकभी उपलब्ध हो रहे हैं। जो उन्होंने भोगोंको भोगा है-सो इससे उनमें अज्ञता साध्यकी जाती है, वह भी अकिञ्चितकरही है, क्योंकि वे निश्चय ज्ञानी थे सातावेदनीय कर्म और तीर्थ कर नाम आदि कर्म उनके द्वारा अवश्यमेव थे इसलिये उन्हें भोग भी भोगना पडे हैं। रही समवसरणादि रूप ऋद्धिकी बात सो यह भी उनमें दोषावह नहीं है, क्योंकि वे तो वीतरागी होते हैं, अतः उसमें उनका किसीभी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं होता है, वह तो केवल उनके अतिशयके वशसे उत्पन्न होती है, इस

પદાર્થોને જાણવા છતાં પણ તે ભોગોનો ભોક્તા કેવી રીતે હોઇ શકે છે, અને સમવસરણ આદિ રૂપ ઋદ્ધિનો ભોક્તા કેવી રીતે હોઇ શકે ? જો ખરેખર તેઓ અહંત હોત તો એવું કરત જ નહીં" આ પ્રકારના કથન દ્વારા અહંત પ્રભુનો અવર્ણવાદ થાય છે. અહંત થયાં જ નથી એવી માન્યતા સાચી નથી, કારણ કે તેમના પ્રણીત વચનરૂપ આગમો અત્યારે પણ મોજૂદ છે. તેમણે સમવસરણ આદિ રૂપ ઋદ્ધિ ભોગવી હોવાથી તેમનામાં અજ્ઞતા માન્ય કરવી એ વાત પણ માની શકાય તેમ નથી. કારણ કે તેઓ અવશ્ય જ્ઞાની જ હતા. સાતાવેદનીય કર્મ અને તીર્થંકર નામ આદિ કર્મ તેમના દ્વારા અવશ્ય વેદ્ય હતા તે કારણે તેમને ભોગો પણ ભોગવવા પડયા હતા સમવસરણ આદિ ઋદ્ધિની જે વાત કરવામા આવી છે, તે તો તેમના અતિશયને પ્રભાવે ઉત્પન્ન થઇ હતી, તેઓ તો વીતરાગ હોવાથી તેમાં તેમની કોઈ પણ પ્રકારની આસક્તિ

न्धाभावादिति । इति प्रथमं स्थानम् १। तथा-अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य=श्रुतचारित्रात्मकस्य अवर्णे=" प्राकृतभाषानिबद्धेन श्रुतेन किम् ? चारित्राद् दानमेव श्रेयः, किं चारित्राराधनेन " इत्यादि रूपेण निन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधिता सम्पादकं कर्म प्रकरोतीति । तदाक्षेपनिरासस्तु एवं बोध्यः, तथाहि-श्रुतस्य प्राकृतभाषा निबद्धत्वं स्त्रीबालकादीनामपि सुखेनावबोधार्थम् । निर्वाणं प्रति चारित्रस्य साक्षादुपकारित्वं दानस्य तु परम्परया, इत्थं च दानात् चारित्रमेव श्रेय इति । इति द्वितीयं

प्रकारका यह प्रथम स्थान है १। दूसरा स्थान ऐसा है कि अर्हन्त प्रज्ञप्त श्रुत चारित्र रूप धर्मका अवर्णवाद करना इससे भी जीव दुर्लभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, इस प्रकारका अवर्णवाद करने वाला जीव ऐसा कहता है, कि श्रुत तो प्राकृत भाषामें निबद्ध है, उससे हमें क्या लाभ है ? चारित्रकी अपेक्षा दान देनाही श्रेयस्कर है, चारित्राराधनसे क्या लाभ होता है, इस प्रकारसे केवलि प्रज्ञप्त श्रुत चारित्र रूप धर्मका अवर्णवाद करनेवाला जीव दर्शन मोहनीय कर्मका बन्ध करता है, यह दर्शनमोहनीय कर्मबोधिकी प्राप्तिको दुर्लभ बनाता है, इसके द्वारा कृत आक्षेपका निरास इस प्रकारसे समझना चाहिये-श्रुत जो प्राकृत भाषामें निबद्ध हुए हैं, सो उसका कारण ऐसा है, कि वे स्त्री और बालकों तकको भी अच्छी तरहसे समझमें आजावे इसलिये प्राकृत भाषामें निबद्ध किये गये हैं। निर्वाणके प्रति चारित्रमें साक्षात्

ન હતી. આ રીતે અર્હંત પ્રભુ થયા જ નથી એ માન્યતા ધરાવનાર તેમનો અવર્ણવાદ કરે છે

બીજું કારણ—અર્હંત પ્રજ્ઞપ્ત શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ દુર્લભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે આ પ્રકારનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ એવું કહે છે કે શ્રુત તો પ્રાકૃત ભાષામાં નિબદ્ધ છે એવા શ્રુતથી શો લાભ થવાનો છે ? ચારિત્ર કરતાં તો દાન દેવું જ વધારે શ્રેયસ્કર છે ચારિત્રની આરાધનાથી શો લાભ થવાનો છે ? આ પ્રકારે શ્રુત ચારિત્ર રૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરનારો જીવ દર્શન મોહનીય કર્મનો બંધ કરે છે તે દર્શન મોહનીય કર્મ બોધિની પ્રાપ્તિને દુર્લભ બનાવી નાખે છે તેમની આ દલીલનું નિરાકરણ આ પ્રમાણે કરી શકાય છે

શ્રુતને પ્રાકૃત ભાષામાં નિબદ્ધ કરવા પાછળનો આશય એ છે કે એમ કરવાથી સ્ત્રીઓ અને બાળકો પણ તેને સારી રીતે સમજી શકે છે નિર્વાણની

स्थानम् २। तथा-आचार्योपाध्यायानाम् अवर्णम्=' बालोऽयमित्यादिनिन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति, अतस्तेषां बालत्वादि निमित्तीकृत्य अवर्णवादो न कार्यः। न हि पलितशीर्षादिना वृद्धो, यस्तु बुद्धयादिना वृद्धः स एव यथार्थ वृद्धः।

" डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया "

छाया-दहरा अपि ये श्रुतबुद्ध्युपपेताः" इति। इति डहरा=बालकाः तृतीयम् ३। चातुर्वर्णस्य चत्वारो वर्णाः=श्रमणाः श्रमण्यः श्रावकाः श्राविकाश्चेति भेदा यस्मिन् स चतुर्वर्णः, स एव चातुर्वर्णस्तस्य तथाभूतस्य संघस्य=समुदायस्य अवर्णम्=

उपकारिता आती है, दानमें नहीं उसमें तो परम्परारूपसेही उपकारिता आती है, इस दानकी अपेक्षा चारित्रमेंही प्रधानताहै। इस प्रकारसे यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान ऐसा है, आचार्य उपाध्यायोंका अवर्णवाद करना यह जीव बाल है, इत्यादि रूपसे निन्दा करनेवाला जीव दुर्लभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, अर्थात् पापका उपार्जन करता है। इसलिये उनमें बालत्वादिको निमित्त बनाकर उनका अवर्णवाद नहीं करना चाहिये। अर्थात् ये आचार्य बाल हैं क्या समझते हैं इत्यादि कथन न करना। बालोंके सफेद हो जानेसेही कोई वृद्ध नहीं माना जाता है-असलीमें वृद्ध तो वही है, जो बुद्धि आदि गुणोंसे वृद्धहै " डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया " इस प्रकारका यह तृतीय स्थान है, चतुर्थ स्थान इस प्रकारसे है-चार वर्णरूप-मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकारूप संघकी समुदायकी-निन्दा करना यह चातुर्वर्ण संघका अवर्णवाद है, जैसे-"यह संघ कैसा है, जो

પ્રાપ્તિ માટે ચારિત્ર જ સાક્ષાત્ ઉપકારી થઇ પડે છે-દાનમાં સાક્ષાત્ ઉપકારિતાનો સદ્ભાવ નથી. તેમાં તો પરમ્પરા રૂપે જ ઉપકારિતા આવે છે. તેથી દાન કરતા ચારિત્ર જ શ્રેયસ્કર છે.

ત્રીજું કારણ--આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ દુર્લભ બોધિના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. આચાર્યને બાલ કહીને તેમનો અવર્ણવાદ કરવો જોઇએ નહી. વાળ સફેદ થઇ જવાથી જ માણુસ વૃદ્ધ થતો નથી. ખરી રીતે તો જે જ્ઞાન આદિમા વૃદ્ધિ પામ્યો હોય છે, એજ વૃદ્ધ છે કહ્યું પણ છે કે-" डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया "

ચોથું કારણ—સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધ સંઘની નિન્દા કરવી તે ચાતુર્વર્ણ્ય (ચતુર્વિધ) સંઘનો અવર્ણવાદ છે. " આ સંઘ

धर्माभावादिति । इति प्रथम स्थानम् १। तथा-अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य=श्रुतचारि त्रात्मकस्य अवर्णं=" प्राकृतभाषानिबद्धेन श्रुतेन किम् ? चारित्राद् दानमेव श्रेय, किं चारित्राराधनेने " त्यादि रूपेण निन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधिता सम्पादक कर्म प्रकरोतीति । तदाक्षपनिरासस्तु एवं बोध्यः, तथाहि-श्रुतस्य प्राकृतभाषा निबद्धत्व स्त्रीबालकादीनामपि सुखेनावबोधार्थम् । निर्वाणं प्रति चारित्रस्य साक्षा दुपकारित्वं दानस्य तु परम्परया, इत्य च दानात् चारित्रमेवश्रेय इति । इति द्वितीय

प्रकारका यह प्रथम स्थान है १। दूसरा स्थान ऐसा है कि अर्हन्त प्रज्ञप्त श्रुत चारित्र रूप धर्मका अवर्णवाद करना इससे भी जीव दुर्लभ बोधि ताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, इस प्रकारका अवर्णवाद करने वाला जीव ऐसा कहता है, कि श्रुत तो प्राकृत भाषामें निबद्ध है, उससे हमें क्या लाभ है ? चारित्रकी अपेक्षा दान देनाही श्रेयस्कर है, चारि त्राराधनसे क्या लाभ होता है, इस प्रकारसे केवलि प्रज्ञप्त श्रुत चारित्र रूप धर्मका अवर्णवाद करनेवाला जीव दर्शन मोहनीय कर्मका बन्ध करता है, यह दर्शनमोहनीय कर्मबोधिकी प्राप्तिको दुर्लभ बनाता है, इसके द्वारा कृत आक्षेपका निरास इस प्रकारसे समझना चाहिये-श्रुत जो प्राकृत भाषामें निबद्ध हुए हैं, सो उसका कारण ऐसा है, कि वे स्त्री और बालकों तकको भी अच्छी तरहसे समझमें आजावे इसलिये प्राकृत भाषामें निबद्ध किये गये हैं। निर्वाणके प्रति चारित्रमें साक्षात्

न હતી. આ રીતે અર્હંત પ્રભુ થયા જ નથી એ માન્યતા ધરાવનાર તેમનો અવર્ણવાદ કરે છે

બીજું કારણ—અર્હંત પ્રજ્ઞપ્ત શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ દુર્લભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે આ પ્રકારનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ એવું કહે છે કે શ્રુત તો પ્રાકૃત ભાષામાં નિબદ્ધ છે એવા શ્રુતથી શો લાભ થવાનો છે ? ચારિત્ર કરતાં તો દાન દેવું જ વધારે શ્રેયસ્કર છે ચારિત્રની આરાધનાથી શો લાભ થવાનો છે ? આ પ્રકારે શ્રુત ચારિત્ર રૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરનારો જીવ દર્શન મોહનીય કર્મનો બંધ કરે છે તે દર્શન મોહનીય કર્મ બોધિની પ્રાપ્તિને દુર્લભ બનાવી નાખે છે તેમની આ દલીલનું નિરાકરણ આ પ્રમાણે કરી શકાય છે

શ્રુતને પ્રાકૃત ભાષામાં નિબદ્ધ કરવા પાછળનો આશય એ છે કે એમ કરવાથી સ્ત્રીઓ અને બાળકો પણ તેને સારી રીતે સમજી શકે છે નિર્વાણની

स्थानम् २। तथा-आचार्योपाध्यायानाम् अवर्णम्=' बालोऽयमित्यादिनिन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति, अतस्तेषां बालत्वादि निमित्तीकृत्य अवर्णवादो न कार्यः। न हि पलितशीर्षादिना वृद्धो, यस्तु बुद्धयादिना वृद्धः स एव यथार्थ वृद्धः।

" डहरा वि य जे सुयवुद्धोववेया "

छाया-दहरा अपि ये श्रुतबुद्धयुपपेताः" इति। इति डहरा=बालकाः तृतीयम् ३। चातुर्वर्णस्य चत्वारो वर्णाः=श्रमणाः श्रमण्यः श्रावकाः श्राविकाश्चेति भेदा यस्मिन् स चतुर्वर्णः, स एव चातुर्वर्णस्तस्य तथाभूतस्य संघस्य=समुदायस्य अवर्णम्=

उपकारिता आती है, दानमें नहीं उसमें तो परम्परारूपसेही उपकारिता आती है, इस दानकी अपेक्षा चारित्रमेंही प्रधानताहै। इस प्रकारसे यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान ऐसा है, आचार्य उपाध्यायोंका अवर्ण-वाद करना यह जीव बाल है, इत्यादि रूपसे निन्दा करनेवाला जीव दुर्लभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, अर्थात् पापका उपार्जन करता है। इसलिये उनमें बालत्वादिको निमित्त बनाकर उनका अवर्णवाद नहीं करना चाहिये। अर्थात् ये आचार्य बाल हैं क्या समझते हैं इत्यादि कथन न करना। बालोंके सफेद हो जानेसेही कोई वृद्ध नहीं माना जाता है-असलीमें वृद्ध तो वही है, जो बुद्धि आदि गुणोंसे वृद्धहै "डहरा वि य जे सुयवुद्धोववेया" इस प्रकारका यह तृतीय स्थान है, चतुर्थ स्थान इस प्रकारसे है-चार वर्णरूप-मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकारूप संघकी समुदायकी-निन्दा करना यह चातुर्वर्ण संघका अवर्णवाद है, जैसे-"यह संघ कैसा है, जो

પ્રાપ્તિ માટે ચારિત્ર જ સાક્ષાત્ ઉપકારી થઇ પડે છે-દાનમાં સાક્ષાત્ ઉપકારિતાનો સદ્ભાવ નથી તેમાં તો પરમ્પરા રૂપે જ ઉપકારિતા આવે છે. તેથી દાન કરતા ચારિત્ર જ શ્રેયસ્કર છે.

ત્રીજું કારણ--આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ દુર્લભ બોધિના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. આચાર્યને બાલ કહીને તેમનો અવર્ણવાદ કરવો જોઇએ નહીં. વાળ સફેદ થઇ જવાથી જ માણસ વૃદ્ધ થતો નથી. ખરી રીતે તો જે જ્ઞાન આદિમા વૃદ્ધિ પામ્યો હોય છે, એ જ વૃદ્ધ છે કહ્યું પણ છે કે-" डहरा वि य जे सुयवुद्धोववेया "

ચોથું કારણ—સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધ સંઘની નિન્દા કરવી તે ચાતુર્વર્ણ (ચતુર્વિધ) સંઘનો અવર્ણવાદ છે. " આ સંઘ

"कीदृशोऽयं संघो, योऽमार्गमपि मार्गी करोति" इत्येवं निन्दां कुर्वन् दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति जीवः। वस्तुतस्तु चातुर्वर्णः संघो ज्ञानादिगुण-समुदायात्मकत्वान्न कदाचिदपि अमार्गं मार्गी करोति, अपि तु स तीर्थकरादि प्रवर्तित मार्गत्वेनाश्रयतीति निन्दकाक्षेपो मृषैवेति चतुर्थम् ४। तथा-विपक्वतपो ब्रह्मचर्याणां-विपक्वं=परिपाकावस्थामुपगत-प्रकर्षतां प्राप्तं तपो ब्रह्मचर्यं भवान्तरे येषां तेषाम्, यद्वा-विपक्वम्=उदयावस्थामागत तपो ब्रह्मचर्यं तद्धेतुकं देवायुष्कादि कर्म-येषां तेषां देवानाम् अवर्णम्="न सन्ति देवाः। यदि ते भवेयुस्तर्हि ते कदाचिदप्युपलभ्येरन्नपि। न च तेषां कदाचिदप्युपलब्धिर्भवति। सन्तु वा

अमार्गको भी मार्ग करता है, इस प्रकारसे संघकी निन्दा करनेवाला व्यक्ति दुर्लभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है वास्तवमें देखा जाय तो चातुर्वर्ण संघ ज्ञानादि गुणोंका समुदायरूपही होता है, अतः वह कभी भी अमार्गको मार्गरूप नहीं करता है, किन्तु तीर्थंकर आदि द्वारा प्रवर्तित मार्गकोही वह मार्ग रूपसे आश्रित करताहै, अतः इस तरहसे निन्दकका आक्षेप झूठाही है ४। पांचवां कारण ऐसा है, जो व्यक्ति विपक्व-तपो ब्रह्मचर्यवाले देवोंकी निन्दा करता है, वह दुर्लभबोधिता सम्पादक कर्मका बन्ध करता है-भवान्तरमें जिनका तप और ब्रह्मचर्य विपक्व विशेषरूपसे परिपाकको प्राप्त हुआ है, सर्वोत्कृष्ट हुआ है, यद्वा-परिपक्व उदय अवस्थामें आया है, तप एवं ब्रह्मचर्य हेतुक देवायुष्कादि कर्म जिन्होंके ऐसे देवोंका अवर्णवाद करना " अर्थात् देव नहीं हैं यदि वे होते तो कभी तो दिखाई देते, अतः कैसे

કહેવો છે કે જે અમાર્ગને પણ માર્ગ બનાવે છે!" આ પ્રકારના વચનો દ્વારા સંઘની નિન્દા કરનાર દુર્લભબોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બંધ કરે છે ખરી રીતે તો ચતુર્વિધ સંઘ જ્ઞાનાદિ ગુણોના સમુદાય રૂપ જ હોય છે તેથી તે કદી પણ અમાર્ગને માર્ગ રૂપે માનતો નથી તે તો તીર્થંકર આદિ દ્વારા પ્રવર્તિત માર્ગને જ માનતો હોય છે તેથી તેને અમાર્ગ બનાવે તે તેનો અવર્ણવાદ જ કરવા બરાબર છે

પાંચમું કારણ—જે માણસ વિપક્વ તપો બ્રહ્મચર્યવાળા દેવોની નિન્દા કરે છે, તે પણ દુર્લભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બંધ કરે છે ભવાન્તરમાં જેમનું તપ અને બ્રહ્મચર્ય વિપક્વ થયેલું છે (વિશેષ રૂપે પરિપક્વ થયેલું છે સર્વોત્કૃષ્ટ થયેલું છે) અથવા જે તપ અને બ્રહ્મચર્ય હેતુક દેવાયુષ્કાદિ કર્મનો જેમને ઉદય થયો છે એવા દેવોનો

ते, तथाऽपि कामासक्तमानसैर्विरतिवर्जितैः, निर्निमेषैश्चेष्टावर्जितै म्रियमाणैरिव प्रवचनकार्यानुपयोगिभिश्च तै र्न किंचित् प्रयोजनम्" इत्येवं निन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति। देवविषयकाक्षेपनिरासस्त्वेवम्-विद्यमानसत्त्वका देवाः, तत्कृतनिग्रहानुग्रहयोः साक्षादुपलम्भात्, कामासक्तिस्तु तेषां मोहसातकर्मोदयात्।

तदुक्तम्-" एत्थ पसिद्धी मोहणीयसायवेयणीयकम्मउदयाओ।
कामपसत्ता विरई कम्मोदयओ चिय न तेसिं ॥१॥

माना जावे कि देव हैं, अथवा मान भी लिया जावे कि वे हैं-तो भी उनसे लाभही क्या है, क्योंकि रातदिन वे कामसेवनमें आसक्त रहते हैं, विरतिका वे पालन नहीं करते हैं पलके उनकी झपकनी नहीं हैं, चेष्टावर्जित वे होते हैं, प्रवचनके किसी कार्यमें वे आते नहीं हैं, अतः मरे हुओंकी तरह उनसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है" इस प्रकारका अवर्णवाद करनेवाला जीव दुर्लभबोधिताका उपार्जन कर्मका बन्ध करता है, देवविषयक आक्षेपका निराकरण इस प्रकारसे है, देवोंकी सत्ता विद्यमान है, क्योंकि उनके द्वारा निग्रह और अनुग्रह हुआ साक्षात् देखा जाता है, काममें आसक्ति तो उनमें मोह एवं सात कर्मके उदयसे देखी जाती है, तदुक्तम्—

" एत्थ पसिद्धी मोहणीय " इत्यादि। देवोंको चारित्र मोहनीय

અવર્ણુવાદ કરનાર દુર્લભ બોધિના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. તેમનો અવર્ણુવાદ કરનાર આ પ્રમાણે કહે છે-" દેવોનું અસ્તિત્વ જ નથી. જો દેવો હોય તો કોઇ વાર પણ આપણી નજરે કેમ પડતાં નથી? કદાચ તેઓનુ અસ્તિત્વ માની લેવામાં આવે, તો તેમના દ્વારા આપણુને શા લાભની પ્રાપ્તિ થવાની છે? તેઓ રાતદિન કામભોગોનુ સેવન કર્યા કરે છે, વિરતિનુ પાલન તો કરતા જ નથી, તેમની આંખોની પાંપણો તો અનિમિષ હોય છે (પલકારા રહિત હોય છે), તેઓ ચેષ્ટાઓથી રહિત હોય છે, પ્રવચનના કોઇ પણ કાર્યમાં તેઓ આવતા નથી, તેથી મૃત આદમીની જેમ કોઈ પણ કામના નથી" દેવવિષયક આ આક્ષેપનુ હવે નિરાકરણ કરવામા આવે છે—

દેવોની સત્તા (પ્રભાવ) વિદ્યમાન છે, કારણ કે તેમના દ્વારા નિગ્રહ અને અનુગ્રહ થતો સાક્ષાત્ જોવામા આવે છે તેઓ કામભોગોમાં જે આસક્તિ ધરાવે છે, તે તો મોહનીય અને સાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી જોવામા આવે છે. કહ્યુ પણ છે કે " एत्थपसिद्धि मोहणीय " ઇત્યાદિ—

-अणिमिस देवसहावा, निच्चेट्ठाऽणुत्तरा उ कयकिच्चा ।
काळणुभावा तित्थुन्नइं पि अन्नत्थ कुव्वंति ॥२॥ "

छाया—अत्र मसिद्धि मोहनीय सातवेदनीय कर्मोदयात् ।
कामप्रसक्तिः, विरतिः कर्मोदयत एव न तेषाम् ॥१॥
अनिमेषा देवस्वभावाः निश्चेष्टा अनुत्तरास्तु कृतकृत्याः ।
कालानुभावात् तीर्थोन्नतिं मपि अन्यत्र कुर्वन्ति ॥२॥ इति ।

इति पञ्चमं स्थानम् ५। एभिः पञ्चभिः स्थानैर्जीवा दुर्लभबोधिका भवन्तीति बोध्यम् । अथ सुलभबोधितामाह–' पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि । पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुलभबोधिकतासम्पादकं कर्म प्रकुर्वन्ति । कानि तानि स्थानानि ? इत्याह–तद्यथा–अर्हतां वर्णम्–स्तुतिं वदन्–कुर्वन् जीवः सुलभबोधिकता सम्पादकं कर्म प्रकरोति । अर्हतो वर्णवादो यथा—

कर्मका उदय रहता है, अतः उनमें विरति नहीं होती है, देव स्वभावतः अनिमिष होते हैं, तथा अनुत्तरवासी जो देव हैं वे कृतकृत्य होनेसे निश्चेष्ट होते हैं । देव कालके प्रभावसे अन्यत्र तीर्थ की उन्नत भी करते हैं इस प्रकारका यह पांचवां कारण है, इन पूर्वोक्त पांच कारणोंसे जीव दुर्लभ बोधिवाले होते हैं । अब सुलभ बोधिवाले जीव कैसे होते हैं–इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं–

' पंचहिं ठाणेहिं " इत्यादि । जीव पांच कारणोंसे सुलभ बोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करते हैं वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं–अर्हन्तोंकी स्तुति करना १ क्योंकि अर्हन्तोंकी स्तुति करनेवाला जीव

દેવોને ચારિત્ર મોહનીય કર્મનો ઉદય રહે છે તેથી તેમનામાં વિરતિનો અભાવ રહે છે દેવો સ્વાભાવિક રીતે જ અનિમિષ હોય છે, તથા અનુત્તર વિમાનનિવાસી જે દેવો છે તેઓ કૃતકૃત્ય હોવાથી નિશ્ચેષ્ટ (ચેષ્ટા રહિત) હોય છે દેવ કાલના પ્રભાવથી અન્યત્ર તીર્થની ઉન્નતિ પણ કરે છે આ પ્રકારનું આ પાંચમું કારણ છે આ પાંચ કારણોથી જીવ દુર્લભ બોધિવાળો બને છે

હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે જીવ સુલભ બોધિવાળો કેવી રીતે બને છે " પંચહિં ઠાણેહિં " ઇત્યાદિ—

જીવ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે સુલભ બોધિતના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે—(૧) અર્હંતોનો વર્ણવાદ કરવાથી એટલે કે તેમની સ્તુતિ

" जियरागदोसमोहा, सव्वन्नू तिदसनाहकयमहिमा ।
अच्चंतसच्चवयणा, सिवगइगमणा जयंति जिणा " ॥१॥

छाया—जितरागद्वेषमोहाः, सर्वज्ञाः त्रिदशनाथकृतमहिमानः ।
अत्यन्तसत्यवचनाः, शिवगतिगमना जयन्ति जिना ॥१॥ इति ।

इति प्रथमं स्थानम् १। एवमेव अर्हत् प्ररूपितधर्मादि विपक्वतपो ब्रह्मचर्य-देवान्तानां चतुर्णां वर्णं वदन् जीवः सुलभबोधिकतासम्पादकं कर्म प्रकरोति। तत्र-अर्हत्प्ररूपितधर्मस्य वर्णवादो यथा—

" वत्थुपयासणसूरो, अइसयरयणाण सायरो जयइ ।
सव्वजगजीव बंधुरबंधू दुविहो वि जिणधम्मो ॥१॥"

छाया—वस्तुप्रकाशनसूर्यः, अतिशयरत्नानां सागरो जयति ।
सर्व जगज्जीव बन्धुरबन्धु द्विविधोऽपि जिनधर्मः ॥१॥ इति ।

इति द्वितीयं स्थानम् २। आचार्योपाध्यायवर्णवादो यथा—

सुलभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, अर्हन्तोंका वर्णवाद स्तुतिपाठ इस प्रकारसे कहा गया है, " जियरागदोसमोहा " इत्यादि ।

अर्हन्त प्रभु रागद्वेषको जीतनेवाले होते हैं, वे सर्वज्ञ होते हैं, उनकी महिमा इन्द्र करते हैं । उनके वचन अत्यन्त सत्य होते हैं, और नियमतः वे उसी भवसे मोक्षमें जाते हैं ऐसा यह प्रथम स्थान है, इसी तरहसे अर्हत् प्ररूपित धर्मका जो वर्णवाद करते हैं, यावत् परिपक्वतप और ब्रह्मचर्यवाले देवोंका जो वर्णवाद करते हैं, ऐसे जीव सुलभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करते हैं, अर्हत्प्ररूपित धर्मका वर्णवाद इस प्रकारसे है-" वत्थुपसायण सूरो " इत्यादि ।

अर्हत्प्ररूपित धर्म वस्तुओंको प्रकाशित करनेके लिये सूर्यके जैसा

કરવાથી જીવ સુલભ બોધિતાના સંપાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે અર્હંતોની સ્તુતિ જીવ આ પ્રમાણે કરે છે-' जियरागदोसमोहा " ઈત્યાદિ--અર્હંત પ્રભુ રાગદ્વેષને જીતનારા હોય છે, તેઓ સર્વજ્ઞ હોય છે, ઈન્દ્રો પણ તેમનો મહિમા ગાય છે. તેમના વચન સર્વથા સત્ય જ હોય છે, તેઓ એ જ ભવમા અવશ્ય મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે "

બીજું સ્થાન--અર્હંત પ્રરૂપિત ધર્મનો વર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ સુલભ બોધિતાના સંપાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે અર્હંત પ્રરૂપિત ધર્મનો વર્ણવાદ આ પ્રમાણે થાય છે " वत्थुपसायणसूरो " ઈત્યાદિ-અર્હંત પ્રરૂપિત ધર્મ વસ્તુઓનો પ્રકાશિત કરવામા સૂર્યના સમાન છે, તે અતિશય રૂપ રત્નોનો

" तेसिं नमो तेसिं नमो, भावेण पुणो तेसि चेव नमो।
अणुवकयपरहियरया, जे नाण देंति भव्वाण " ॥१॥
छाया—तेभ्यो नमः, तेभ्यो नमः, भावेन पुनस्तेभ्य एव नमः।
अनुपकृतपरहितरता ये ज्ञानं ददति भव्येभ्य ॥१॥ इति।
इति तृतीयं स्थानम् ३। चातुर्वर्णसङ्घस्य वर्णवादो यथा—
" तवनियमसच्चसंजमः विणयज्जवखंतिमुत्तिगुणजुत्तो।
सीलवसीकयलोओ, स जयइ सघो चाउवण्णो ॥ १ ॥
छाया—तपो नियमसत्यसंयम विनयार्जवक्षान्तिमुक्तिगुणयुक्तः।
शीलवशीकृतलोकः स जयति सङ्घश्चतुर्वर्णः ॥१॥ इति।
इति चतुर्थं स्थानम् ४। देववर्णवादो यथा—

है, अतिशय रूप रत्नोंका समुद्र है, समस्त जगजीवोंका अनोखा बन्धु है, यह गृहस्थ धर्म और मुनिधर्मके भेदसे दो प्रकारका है, इस प्रकारका यह द्वितीय स्थान है, आचार्य उपाध्यायका वर्णवाद इस प्रकारसे है–' तेसिं नमो तेसिं नमो " इत्यादि।

उन आचार्य उपाध्यायोंको मेरा मन वचन कायरूप भावसे वारवार नमस्कार हो जो बिना किसी चाहनाके परका हित करनेमें लगे रहते है, और निर्मल ज्ञानका दान देते हैं, ऐसा यह तृतीय स्थान है, चतुर्वर्ण संघका वर्णवाद इस प्रकारसे है—

" तप नियम सच्च सयम ' इत्यादि।

जो चतुर्विध सघ तप नियम सत्य, संयम, विनय, आर्जव क्षान्ति, मुक्ति आदि गुणोंसे युक्तहै, और जिसने शीलसे लोकको वशमें कियाहै, ऐसा यह चतुर्विध श्रीसघ सदा जयशील रहो इस प्रकारका यह चतुर्थ स्थान है,

---

સાગર છે તે સમસ્ત સંસારી જીવોનો અનોખો બંધુ છે, તે ગૃહસ્થ ધર્મ અને મુનિધર્મના ભેદથી બે પ્રકારનો છે

ત્રીજું સ્થાન—આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયનો વર્ણવાદ કરવાથી જીવ સુલભ બોધિ બાંધે છે તેમની સ્તુતિ આ પ્રમાણે કરી શકાય " તેસિં નમો તેસિં નમો " ઇત્યાદિ " જેઓ નિષ્કામ ભાવે પરહિતના કામમાં પ્રવૃત્ત રહે છે અને નિર્મળ જ્ઞાનના દાતા છે, એવા આચાર્યો અને ઉપાધ્યાયોને મન, વચન અને કાયથી મારાં વારંવાર નમસ્કાર હો "

ચોથું સ્થાન—ચતુર્વર્ણ સંઘનો વર્ણવાદ કરવાથી પણ જીવ સુલભ બોધિના સંપાદક કર્મનો બંધ કરે છે ચતુર્વિધ સંઘની આ પ્રમાણે સ્તુતિ કરવી જોઈએ–' જે ચતુર્વિધ સંઘ તપ નિયમ, સત્ય સંયમ વિનય, આર્જવ, ક્ષાન્તિ મુક્તિ, આદિ ગુણોથી યુક્ત છે અને જેણે શીલથી લોકને વશ કરેલ છે, એવા ચતુર્વિધ શ્રીસંઘનો સદા જય હો '

"धण्णा खलु ते देवा, विसयविमोहावि हंत जिणसन्निहे ।
धम्मं सुणंति सम्मं, तित्थपभावं च कुव्वंति" ॥१॥
छाया—धन्याः खलु ते देवाः विषयविमोहा अपि हन्त । जिनसविधे ।
धर्म श्रृण्वन्ति सम्यक्, तीर्थ प्रभावं च कुर्वन्ति ॥ इति ॥

इति पञ्चमं स्थानम् ५। एभिः पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुलभबोधिका भवन्तीति बोध्यम् । स्थानस्थानिनोरभेदोपचारात् स्थानी एव स्थानत्वेन निर्दिष्ट इति ॥ सू० १६ ॥

संयतासंयतसंवद्धमेव 'पंच पडिसंलीण इत्याद्यारभ्य आरोपणा पर्यन्तेन सूत्रसप्तकेन प्राह—

मूलम्—पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियपडिसंलीणे जाव फासिंदियपडिसंलीणे । पंच अप्पाडिसंलीणा, पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदिय अप्पाडिसंलीणे जाव फासिंदिय अप्पाडिसंलीणे । पंचविहे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियसंवरे जाव फासिंदियसंवरे । पंचविहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियअसंवरे जाव फासिंदिय असंवरे ॥ सू० १७ ॥

देववर्णवाद इस प्रकारसे है—"धण्णा खलु ते देवा" इत्यादि वे देव धन्य हैं, जो विषयोंसे विमुख रहते हैं और जिनेन्द्र भगवन्तके निकट श्रुतचारित्ररूप धर्मका श्रवण करते हैं, और तीर्थकी प्रभावना करते हैं । इस प्रकारका यह पांचवां स्थान हैं—इस प्रकारके इन पांच कारणोंसे जीव सुलभ बोधिवाले होते हैं—यहां स्थान और स्थानीमें अभेदके उपचारसे स्थानीही स्थान रूपसे निर्दिष्ट हुआ है ।सू० १६॥

પાચમું સ્થાન—દેવોનો વર્ણવાદ કરવાથી પણ જીવ સુલભ બોધિની પ્રાપ્તિ કરે છે. દેવોનો વર્ણવાદ આ પ્રમાણે કરવો જોઇએ, "ધણ્ણા ખલુ તે દેવા" ઈત્યાદિ. "ધન્ય છે તે દેવોને કે જેઓ વિષયોથી સદા વિમુખ રહે છે અને જિનેન્દ્ર ભગવાનની સમીપે શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનું શ્રવણ કરે છે, અને તીર્થની પ્રભાવના કરે છે" આ પ્રકારનું પાચમું સ્થાન છે. આ પ્રકારના આ પૂર્વોક્ત પાચ કારણોથી જીવ સુલભ બોધિવાળો થાય છે. અહીં સ્થાન અને સ્થાનીમાં અભેદ ગણીને સ્થાનીનો જ સ્થાન રૂપે નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. ॥ સૂ. ૧૬ ॥

छाया—पञ्च प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनो यावत् स्पर्शेन्द्रियप्रतिसंलीनः। पञ्च अप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनो यावत् स्पर्शेन्द्रियाप्रतिसंलीनाः। पञ्चविधः संवरः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रिय संवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंवरः। पञ्चविधोऽसंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रिया संवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंवरः ॥सू० १७॥

टीका—'पंच पडिसंलीणा' इत्यादि—

प्रतिसंलीनाः=कूर्मवदिन्द्रियगोपनाः श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च सम्पकाः। अप्रतिसंलीना अपि श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च संख्यका बोध्याः। संवरस्तु श्रोत्रेन्द्रियसंवरादिभेदैः पञ्चविधः। असंवरोऽपि श्रोत्रेन्द्रिया संवरादिभेदैः पञ्चविधो बोध्य। अत्र श्रोत्रेन्द्रियादिरूपेण यः क्रमो निर्दिष्ट स तत्तदिन्द्रियस्य क्षयोपशमप्राचुर्यक्रमतो बोध्यः। प्रतिसंलीनाप्रतिसंलीनत्वेन च धर्मी पुरुष उक्तः। संवरासंवरत्वेन तु धर्म एवेति ॥ सू० १७॥

अब सूत्रकार संयतासंयत सम्बद्ध ही "पंच पडिसंलीणा" यहांसे लेकर आरोपणा पर्यन्तके सात सूत्रों द्वारा कथन करते हैं—

पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता इत्यादि सूत्र १७॥

टीकार्थ-कूर्मकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेवाले श्रोत्रेन्द्रिय प्रति संलीना दिके भेदसे पांच कहे गये हैं तथा अप्रतिसंलीन भी श्रोत्रेन्द्रिय अप्र तिसंलीन आदिके भेदसे पांच कहे गये हैं संवर भी श्रोत्रेन्द्रिय संवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, तथा असंवर भी श्रोत्रेन्द्रिय असंवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, यहां जो श्रोत्रेन्द्रि यादि रूपसे क्रम कहा गया है वह उन २ इन्द्रियोंके क्षयोपशमकी-

હવે સૂત્રકાર સંયતાસંયત વિષયક "પંચ પડિસંલીણા" થી લઇને "આરોપણા" પર્યન્તના સાત સૂત્રોનું કથન કરે છે

"પંચ પડિસંલીણા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-કાચબાની જેમ ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરનારા શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રતિસંલીન આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે અપ્રતિ સંલીનના પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય અપ્રતિસંલીન આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે સંવરના પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય, સંવર આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે અસંવર પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંવર આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે અહીં જે શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિ રૂપે ક્રમ કહેવામાં આવ્યો છે તે ક્રમ તે તે ઇન્દ્રિયોના ક્ષયોપશમની બહુલતાને અનુસરીને કહ્યો છે.

मूलम्—पंचविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—सामाइयसंजमे १ छेदोवट्ठावणियसंजमे, २ परिहारविसुद्धियसंजमे, ३ सुहुमसंपरायसंजमे, ४ अहाक्खाय संजमे ५ ॥ सू० १८ ॥

छाया—पञ्चविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सामायिकसंयमः १, छेदोपस्थापनीयसंयमः २, परिहारविशुद्धिकसंयमः ३ सूक्ष्मसंपरायसंयमः ४ यथाख्यातसंयमः ५। ॥सू० १८॥

टीका—'पंचविहे' इत्यादि—

संयमः-संयमनं संयमः—सावद्यव्यापारविनिवृत्तिः। सच सामायिकसंयमादिभेदेन पञ्चविधः तत्र सामायिकसंयमः-समानां=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोरूपाणां रत्नानाम् आयो=लाभः। यद्वा=समानि=ज्ञानादीनि तेषु तैर्वा

बहुलताको लेकर कहा गया है, प्रतिसंलीन रूपसे और अप्रतिसंलीन रूपसे धर्मी पुरुष कहा गयाहै, और संवर रूपसे धर्म कहा गयाहै सू० १७॥

'पंचविहे संजमे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र १८॥

संयम पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे सामायिक संयम १ छेदोपस्थापनीय संयम २ परिहारविशुद्धिकसंयम ३ सूक्ष्म संपराय संयम ४ और यथाख्यातसंयम ५

सावद्य व्यापारसे निवृत्ति होना इसका नाम संयम है, यह संयम पूर्वोक्त रूपसे सामायिक आदिके भेदसे पांच प्रकार है, जिस संयममें सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र सम्यक्तप रूप रत्नोंका लाभ होता है, वह अथवा समरूप ज्ञानादिकोंमें अथवा समरूप ज्ञाना-

---

પ્રતિસલીન રૂપે અને અપ્રતિસલીન રૂપે ધર્મીપુરુષ કહ્યો છે અને સવર રૂપે અને અસંવર રૂપે ધર્મ કહ્યો છે. ॥ સૂ. ૧૭ ॥

"પંચવિહે સંજમે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—

સંયમના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સામાયિક સંયમ, (૨) છેદોપસ્થાપનીય સંયમ, (૩) પરિહાર વિશુદ્ધિક સંયમ, (૪) સૂક્ષ્મ સંપરાય સયમ અને (૫) યથાખ્યાત સયમ.

સાવદ્ય વ્યાપારોથી નિવૃત્ત થવું તેનુ નામ સંયમ છે. તે સંયમના સામાયિક આદિ પૂર્વોક્ત પાંચ ભેદ છે. જે સયમમાં સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યક્ તપ રૂપ રત્નોનો લાભ થાય છે, તે સંયમનું નામ

छाया—पञ्च प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनो यावत् स्पर्शेन्द्रियप्रतिसंलीनः। पञ्च अप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनो यावत् स्पर्शेन्द्रियाप्रतिसंलीनाः। पञ्चविधः संवरः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियसंवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंवरः। पञ्चविधोऽसंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियासंवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंवरः ॥सू० १७॥

टीका—'पंच पडिसंलीणा' इत्यादि—

प्रतिसंलीनाः=कूर्मवदिन्द्रियगोपनाः श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च संख्यकाः। अप्रतिसंलीना अपि श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च संख्यका बोध्याः। संवरस्तु श्रोत्रेन्द्रियसंवरादिभेदैः पञ्चविधः। असंवरोऽपि श्रोत्रेन्द्रियासंवरादिभेदैः पञ्चविधो बोध्य। अत्र श्रोत्रेन्द्रियादिरूपेण यः क्रमो निर्दिष्टः स तत्तदिन्द्रियस्य क्षयोपशमबाहुल्यकृतो बोध्यः। प्रतिसंलीनाप्रतिसंलीनत्वेन च धर्मी पुरुष उक्तः। संवरासंवरत्वेन तु धर्म एवेति ॥ सू० १७॥

अब सूत्रकार संयतासंयत संबद्ध ही "पंच पडिसंलीणा" यहांसे लेकर आरोपणा पर्यन्तके सात सूत्रों द्वारा कथन करते हैं—

पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता इत्यादि सूत्र १७॥

टीकार्थ—कूर्मकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेवाले श्रोत्रेन्द्रिय प्रति संलीना दिके भेदसे पांच कहे गये हैं तथा अप्रतिसंलीन भी श्रोत्रेन्द्रिय अप्रतिसंलीन आदिके भेदसे पांच कहे गये हैं संवर भी श्रोत्रेन्द्रिय संवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, तथा असंवर भी श्रोत्रेन्द्रिय असंवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, यहां जो श्रोत्रेन्द्रियादि रूपसे क्रम कहा गया है, वह उन २ इन्द्रियोंके क्षयोपशमकी

હવે સૂત્રકાર સયતાસયત વિષયક "પંચ પડિસંલીણા" થી લઈને 'આરોપણા' પર્યન્તના સાત સૂત્રોનું કથન કરે છે

"પંચ પડિસંલીણા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—કાચબાની જેમ ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરનારા શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રતિસંલીન આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે અપ્રતિ સંલીનના પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય અપ્રતિસંલીન આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે સંવરના પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય સંવર આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે અસંવર પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંવર આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે. અહીં જે શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિ રૂપે ક્રમ કહેવામાં આવ્યો છે તે ક્રમ તે તે ઇન્દ્રિયોના ક્ષયોપશમની બહુલતાને અનુલક્ષીને કહ્યો છે.

मूलम्—पंचविहे संजमे प०णत्ते, तं जहा-सामाइयसंजमे १ छेदोवट्ठावणियसंजमे, २ परिहारविसुद्धियसंजमे, ३ सुहुमसंपरायसंजमे, ४ अहाक्खाय संजमे ५ ॥ सू० १८ ॥

छाया—पञ्चविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सामायिकसंयमः १, छेदोपस्थापनीयसंयमः २, परिहारविशुद्धिकसंयमः ३ सूक्ष्मसंपरायसंयमः ४ यथाख्यातसंयमः ५। ॥सू० १८॥

टीका--' पंचविहे ' इत्यादि--

संयमः-संयमनं संयमः-सावद्यव्यापारविनिवृत्तिः। सच सामायिकसंयमादिभेदेन पञ्चविधः तत्र सामायिकसंयमः-समानां=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोरूपाणां रत्नानाम् आयो=लाभः। यद्वा=समानि=ज्ञानादीनि तेषु तैर्वा

बहुलताको लेकर कहा गया है, प्रतिसंलीन रूपसे और अप्रतिसंलीन रूपसे धर्मी पुरुष कहा गयाहै, और संवर रूपसे धर्म कहा गयाहै सू०१७॥

'पंचविहे संजमे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र १८॥

संयम पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे सामायिक संयम १ छेदोपस्थापनीय संयम २ परिहारविशुद्धिकसंयम ३ सूक्ष्म संपराय संयम ४ और यथाख्यातसंयम ५

सावद्य व्यापारसे निवृत्ति होना इसका नाम संयम है, यह संयम पूर्वोक्त रूपसे सामायिक आदिके भेदसे पांच प्रकार है, जिस संयममें सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र सम्यक्तप रूप रत्नोंका लाभ होता है, वह अथवा समरूप ज्ञानादिकोंमें अथवा समरूप ज्ञाना-

---

પ્રતિસંલીન રૂપે અને અપ્રતિસલીન રૂપે ધર્મીપુરુષ કહ્યો છે અને સવર રૂપે અને અસવર રૂપે ધર્મ કહ્યો છે. ॥ સૂ. ૧૭ ॥

"પંચવિહે સંજમે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ--

સંયમના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) સામાયિક સંયમ, (૨) છેદોપસ્થાપનીય સંયમ, (૩) પરિહાર વિશુદ્ધિક સયમ, (૪) સૂક્ષ્મ સંપરાય સયમ અને (૫) યથાખ્યાત સયમ.

સાવદ્ય વ્યાપારોથી નિવૃત્ત થવું તેનુ નામ સંયમ છે. તે સંયમના સામાયિક આદિ પૂર્વોક્ત પાંચ ભેદ છે. જે સયમમાં સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યક્ તપ રૂપ રત્નોનો લાભ થાય છે, તે સંયમનું નામ

छाया—पञ्च प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनो यावत् स्पर्शेन्द्रियप्रतिसंलीनः। पञ्च अप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनो यावत् स्पर्शेन्द्रियाप्रतिसंलीनाः। पञ्चविधः संवरः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रिय संवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंवरः। पञ्चविधोऽसंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रिया संवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंवर ॥सू० १७॥

टीका—'पंच पडिसंलीणा' इत्यादि—

प्रतिसंलीनाः=कूर्मवदिन्द्रियगोपना श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च संख्यकाः। अप्रतिसंलीना अपि श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च संख्यका बोध्याः। संवरस्तु श्रोत्रेन्द्रियसंवरादिभेदैः पञ्चविधः। असंवरोऽपि श्रोत्रेन्द्रिया संवरादिभेदैः पञ्चविधो बोध्य। अत्र श्रोत्रेन्द्रियादिरूपेण य क्रमो निर्दिष्टः स तदिन्द्रियस्य क्षयोपशमबाहुल्यकृतो बोध्यः। प्रतिसंलीनाप्रतिसंलीनत्वेन च धर्मी पुरुष उक्तः। संवरासंवरत्वेन तु धर्म एवेति ॥ सू० १७॥

अब सूत्रकार संयतासंयत संबद्ध ही "पंच पडिसंलीणा" यहांसे लेकर आरोपणा पर्यन्तके सात सूत्रों द्वारा कथन करते हैं—

पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता इत्यादि सूत्र १७॥

टीकार्थ-कूर्मकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेवाले श्रोत्रेन्द्रिय प्रति संलीना दिके भेदसे पांच कहे गये हैं तथा अप्रतिसंलीन भी श्रोत्रेन्द्रिय अप्र तिसंलीन आदिके भेदसे पांच कहे गये हैं संवर भी श्रोत्रेन्द्रिय संवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, तथा असंवर भी श्रोत्रेन्द्रिय असंवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, यहां जो श्रोत्रेन्द्रि यादि रूपसे क्रम कहा गया है वह उन २ इन्द्रियोंके क्षयोपशमकी

હવે સૂત્રકાર સંયતાસંયત વિષયક 'पंच पडिसंलीणा" થી લઈને 'आरोपणा' પર્યન્તના સાત સૂત્રોનું કથન કરે છે

"पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-કાચબાની જેમ ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરનારા શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રતિસંલીન આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે અપ્રતિ સંલીનના પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય અપ્રતિસંલીન આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે સંવરના પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય સંવર આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે અસંવર પણ શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંવર આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે અહીં જે શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિ રૂપે ક્રમ કહેવામાં આવ્યો છે તે ક્રમ તે તે ઇન્દ્રિયોના ક્ષયોપશમની બહુલતાને અનુલક્ષીને કહ્યો છે,

मूलम्—पंचविहे संजमे प०णत्ते, तं जहा—सामाइयसंजमे १ छेदोवट्ठावणियसंजमे, २ परिहारविसुद्धियसंजमे, ३ सुहुमसंपरायसंजमे, ४ अहाक्खाय संजमे ५ ॥ सू० १८ ॥

छाया—पञ्चविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सामायिकसंयमः १, छेदोपस्थापनीयसंयमः २, परिहारविशुद्धिकसंयमः ३ सूक्ष्मसंपरायसंयमः ४ यथाख्यातसंयमः ५। ॥सू० १८॥

टीका—'पंचविहे' इत्यादि—

संयमः-संयमनं संयमः—सावद्यव्यापारविनिवृत्तिः। सच सामायिकसंयमादिभेदेन पञ्चविधः तत्र सामायिकसंयमः-समानां=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोरूपाणां रत्नानाम् आयो=लाभः। यद्वा=समानि=ज्ञानादीनि तेषु तैर्वा

बहुलताको लेकर कहा गया है, प्रतिसलीन रूपसे और अप्रतिसंलीन रूपसे धर्मी पुरुष कहा गयाहै, और संवर रूपसे धर्म कहा गयाहै सू०१७॥

'पंचविहे संजमे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र १८॥

संयम पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे सामायिक संयम १ छेदोपस्थापनीय संयम २ परिहारविशुद्धिकसंयम ३ सूक्ष्म संपराय संयम ४ और यथाख्यातसंयम ५

सावद्य व्यापारसे निवृत्ति होना इसका नाम संयम है, यह संयम पूर्वोक्त रूपसे सामायिक आदिके भेदसे पांच प्रकार है, जिस संयममें सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र सम्यक्तप रूप रत्नोंका लाभ होता है, वह अथवा समरूप ज्ञानादिकोंमें अथवा समरूप ज्ञाना-

પ્રતિસલીન રૂપે અને અપ્રતિસલીન રૂપે ધર્મીપુરુષ કહ્યો છે અને સવર રૂપે અને અસંવર રૂપે ધર્મ કહ્યો છે. ॥ સૂ. ૧૭ ॥

"પંચવિહે સંજમે પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—

સંયમના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સામાયિક સંયમ, (૨) છેદોપસ્થાપનીય સંયમ, (૩) પરિહાર વિશુદ્ધિક સંયમ, (૪) સૂક્ષ્મ સંપરાય સંયમ અને (૫) યથાખ્યાત સયમ.

સાવદ્ય વ્યાપારોથી નિવૃત્ત થવું તેનુ નામ સંયમ છે. તે સંયમના સામાયિક આદિ પૂર્વો ક્તપાચ ભેદ છે. જે સયમમાં સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યક્ તપ રૂપ રત્નોનો લાભ થાય છે, તે સંયમનું નામ

मायो गमनम् । अपि वा समो=रागद्वेषाद्यस्पृष्टान्तःकरणः=स्वकान्तिविनिर्जित मृगदर्शी विशुद्ध आत्मा सुच्छितानल्पचिन्तामणिकल्पतरुकामधेनुर्गहनभव गहनपरिभ्रमणजन्यक्लेशनाशकैरपूर्वज्ञानदर्शनादिभिः सङ्गतत्वात् तस्य आयः=प्राप्तिः स्वात्मविशुद्धिकारणमिति यावत्, समायः, स एव सामायिकम् । सावद्ययोगविरमणात्मकश्चेपमपि चारित्रं सामान्यतः सामायिकमेवोच्यते । तदेव छेदादिविशेषणैर्विशिष्टं सत् शब्दार्थाभ्यामनेकविधत्वं लभते । तत्र तत्र प्रथमो भेदो निर्विशेषणं सामायिकमेव इत्वरकालिकयावत्कथिकेतिभेदेन

दिकों द्वारा जो गमन है, वह अथवा–रागद्वेष आदिसे अस्पृष्ट अन्तःकरणका जो लाभ है, वह समाय है, अर्थात्–जो कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि इनको भी तुच्छ फीका कर देते हैं, एव गहनकान्तारके जैसे इस भवके भ्रमणसे जन्य क्लेशोंका जो सर्वथा विनाश कर देते हैं, ऐसे अपूर्व ज्ञान दर्शनादिकोंसे सम्पृक्त होनेके कारण विशुद्ध बना हुआ जो आत्मा है, कि जो समस्त प्राणियोंको अपने समान देखता है, वह सम है, इस समका जो आय प्राप्ति है, वह समाय है, यह समाय आत्माकी विशुद्धि करने रूप होता है । ऐसा समायही सामायिक है । यह सामायिक जितना भी सावद्ययोग विरमणरूप चारित्र है, सामान्यतः तद्रूपही कहा जाता है, यह सामायिक चारित्रही छेदादिक विशेषणोंसे विशिष्ट हुआ शब्द और अर्थकी अपेक्षा अनेक प्रकारताको प्राप्त करता है । इनमें जो प्रथम भेद है, वह तो विना किसी विशेषणका है,

'समाय' छे अथवा समरूप ज्ञानादिकोमां अथवा समरूप ज्ञानादिको द्वारा जे गमन छे तेनुं नाम 'समाय' छे

अथवा–रागद्वेष आदि वडे अस्पृष्ट अतःकरणनो जे लाभ छे तेनुं नाम 'समाय' छे एटले के जे कामधेनु कल्पवृक्ष अने चिन्तामणिने पण फीकां पाडी दे छे, जे गहन अटवीना समान आ संसारना भ्रमणथी जनित क्लेशोनो सर्वथा विनाश करी नाखे छे एवो संसारना समस्त जीवो तरफ समभाव राखनारो जे आत्मा छे, अने जे ज्ञान दर्शनादि वडे संयुक्त होवाने लीधे विशुद्ध बनेलो छे तेने 'सम' कहे छे ते समनो जे आय (प्राप्ति), थवी तेनुं नाम 'समाय' छे ते समाय आत्मानी विशुद्धि करवा रूप होय छे एवा समायने ज सामायिक कहे छे तेने सावद्ययोग विरमणरूप जे चारित्र छे, ते चारित्ररूप सामान्यता गणवामां आवे छे ते सामायिक रूप चारित्र ज छेदादिक विशेषणोथी युक्त थयेला शब्द अने अर्थनी अपेक्षाए अनेक प्रकारताने प्राप्त करे छे. तेमांथी जे पहेलो भेद छे ते कोई प्रथ

द्विविधम् । तत्र–इत्वरकालिकं सामायिकं प्रथमान्तिमतीर्थकृतोस्तीर्थयोरनारोपितव्रतस्य भवति । यावज्जीवं तु मध्यमतीर्थकृतां महाविदेहवर्त्तितीर्थकृतां च तीर्थेषु उपस्थापनाभावाद् अनारोपितव्रतस्य भवतीति बोध्यम् । तदुक्तम्—

" सव्वमिणं सामाइयं, छेदादिविसेसओ पुण विभिन्नं ।
अविसेसियमादिमयं, ठियमिह सामन्नसन्नाए ॥१॥
सावज्जजोगविरइत्ति तत्थ सामाइयं दुहा तं च ।
इत्तरमावकहंति य, पढमं पढमंतिमजिणाणं ॥२॥
तित्थेसु अणारोवियवयस्स सेहस्स थोवकालीयं ।
सेसाणमावकहियं, तित्थेसु विदेहयाणं च ॥ ३ ॥

छाया—सर्वमिदं सामायिकं छेदादिविशेषतः पुनर्विभिन्नं ।
अविशेषितमादिमकं स्थितमिह सामान्यसंज्ञया ॥१॥

इसमें किसी भी प्रकारका विशेषण नहीं है, इस प्रकार निर्विशेषणरूप यह सामायिक इत्वर कालिक और यावज्जीव इस प्रकारसे दो प्रकारका कहा गया है, इनमें इत्वरकालिक जो सामायिक है, वह प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरके तीर्थके अनारोपित व्रतवाले प्राणीको होता है, तथा यावज्जीव जो सामायिक है. वह मध्यके शेष २२ तीर्थंकरोंके एवं महा विदेहवर्ती तीर्थकरोंके तीर्थमें उपस्थानके अभावसे अनारोपित व्रतवाले प्राणीको होताहै, कहा भी है–" सव्वमिणं सामाइयं " इत्यादि ।

यह समस्त सामायिक छेदादिके विशेषसे भिन्न २ हो जाता है, " सामायिक " ऐसी यह सामान्य संज्ञा है, सावद्य योगसे विरति होना इसका नाम सामायिकहै, यह सामायिक इत्वर और यावत्कथिकके

વિશેષણ વિનાનો છે આ પ્રકારે વિશેષણરહિત તે સામાયિકના બે પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) ઇત્વરકાલિક અને (૨) યાવજ્જીવ ઇત્વરકાલિક સામાયિકનો સદ્‌ભાવ પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરના તીર્થના અનારોપિત વ્રતવાળા જીવોમા હોય યાવજ્જીવ સામાયિકનો સદ્‌ભાવ વચ્ચેના ૨૨ તીર્થંકરોના અને મહાવિદેહવર્તી તીર્થંકરોના તીર્થમા ઉપસ્થાનના અભાવે અનારોપિત વ્રતવાળા જીવોમાં હોય છે. કહ્યુ પણ છે કે–" સવ્વમિણ સામાઇય " ઇત્યાદિ

આ સમસ્ત સામયિક છેદાદિના વિશેષથી રહિત હોય છે. " સામાયિક " એવી આ સામાન્ય સજ્ઞા છે સાવદ્ય યોગોમાથી વિરતિ થવુ તેનુ નામ સામાયિક છે. તેના ઇત્વર અને યાવત્કથિક નામના બે ભેદ છે. તેમાની ઇત્વર-

सावद्ययोगविरतिरिति तत्र सामायिकं द्विधा तच्च ।
इत्वरं यावत्कथिकमिति च प्रथम पश्चिमजिनयोः ॥२॥
तीर्थयोरनारोपितव्रतस्य शैक्षकस्य स्तोककालिकं ।
शेषाणां यावत्कथिकं तीर्थेषु विदेहकानां च ॥३॥ इति ।

सामायिकं च, तत् संयमश्चेति सामायिकसंयमः=सामायिकरूपः संयम इत्यर्थः । इति प्रथमं स्थानम् ।- तथा-छेदोपस्थानिकसंयमः-छेदः पूर्वपर्यायस्य छेदनम्, उपस्थापनं व्रतेषु आरोपणं, चेतद्द्वयं यत्र तच्छेदोपस्थापनं, तदेव छेदोपस्थापनिकम्, यद्वा-छेदश्च उपस्थापनं च छेदोपस्थापने, ते विद्येते यत्र तच्छेदोपस्थापनिकम्, अथवा-छेदेन=पूर्वपर्यायस्य छेदनेन उपस्थाप्यते=आरोप्यते यन्महाव्रतरूपं चारित्रं तच्छेदोपस्थापनीयम् । इदमप्यनतिचारसातिचा

भेदसे दो प्रकारका है, इनमें इत्वर सामायिक प्रथम और अन्तिम तीर्थकरके तीर्थमें अनारोपित व्रतवाले शैक्ष शिष्यके स्तोककालिक होताहै। तथा जो यावत्कथित सामायिक हैं, वह बाकीके २२ तीर्थकरोंकि और विदेहक्षेत्र सम्बन्धी तीर्थकरोंके तीर्थमें उपस्थानके अभावसे अनारोपित व्रतवाले जीव के शिष्य को होता है । सामायिकरूप जो संयम है वह सामायिक संयम है । पूर्वपर्याय के छेदनका नाम छेदहै, और व्रतोंमें आरोपण करनेका नाम उपस्थापनहै। यह दोनों जिस समयमें होतेहैं, वह छेदोपस्थानहै, यह छेदोपस्थानही छेदोपस्थानिक है, अथवा-जो महाव्रतरूप चारित्र पूर्वपर्यायके छेदनसे आरोपित किया जाता है, वह छेदोपस्थापनीय है, यह भी अनतिचार

કાલિક સામાયિકનો સદ્ભાવ પ્રથમ અને અન્તિમ તીર્થંકરોના તીર્થમાં અનારોપિત વ્રતવાળા શૈક્ષિમા શિષ્યોમાં હોય છે તે સ્તોકકાલિક હોય છે યાવત્કથિક સામાયિકનો સદ્ભાવ બાકીના બાવીસ તીર્થંકરોના અને વિદેહ ક્ષેત્રના તીર્થંકરોના તીર્થમાં ઉપસ્થાનને અભાવે અનારોપિત વ્રતવાળા જીવોના શિષ્યોમાં હોય છે સામાયિક રૂપ જે સંયમ છે તેનું નામ સામાયિક સંયમ છે આ પ્રકારનું સંયમના પ્રથમ ભેદનું સ્વરૂપ છે । ૧ ।

પૂર્વપર્યાયના છેદનનું નામ છેદ છે, અને વ્રતોમાં આરોપણ કરવાનું નામ ઉપસ્થાપન છે આ બન્નેનો જે સમયમાં સદ્ભાવ હોય છે, તે સમયનું નામ છેદોપસ્થાપન છે આ છેદોપસ્થાપન જ છેદોપસ્થાપનિક છે અથવા જે મહાવ્રત રૂપ ચારિત્ર પૂર્વપર્યાયના છેદન વડે આરોપિત કરાય છે, તેનું નામ છેદોપ

राभ्यां द्विविधम्। तत्र प्रथमम् इत्वरसामायिकस्य शैक्षकस्य पञ्चयामप्रतिपत्तुः पार्श्वनाथसाधोः केशिश्रमणादेर्वा। द्वितीयं तु मूलप्रायश्चित्तप्रतिपन्नस्य साधोरारोप्यते। तदुक्तम्—

"परियायस्स उ छेओ, जत्थोवट्ठावणं वएसुं च।
छेओवट्ठावणमिह, तमणइयारेतरं दुविहं ॥१॥
सेहस्स निरइयारं, तित्थंतरसंकमेव तं होज्जा।
मूलगुणघाइणो साइयारमुभयं च ठियकप्पे" ॥२॥

छाया—पर्यायस्य तु छेदो, यत्रोपस्थापनं व्रतेषु च।
छेदोपस्थापनमिह, तदनतिचारमितरद् द्विविधम् ॥१॥
शैक्षस्य निरतिचारं, तीर्थान्तरसंक्रमेवा तद् भवेत्।
मूलगुणघातिनः सातिचारम् उभयं स्थितकल्पे ॥२॥

स्थितकल्पे=प्रथमान्तिमतीर्थंकरयोरवस्थितसमाचारे इत्यर्थः। छेदोप-

---

और सातिचारके भेदसे दो प्रकारका होता है, इनमें प्रथम भेद इत्वर सामायिकवाले शिष्यको होता है, अथवा-तीर्थान्तरके संक्रममें होता है, जैसा कि पार्श्वनाथके साधु केशिश्रमण आदि को हुआ है और द्वितीय भेद मूल प्रायश्चित्त का स्वीकार करनेवाले साधुको होता है, कहा भी है-"परियायस्स उ छेदो" इत्यादि।

पूर्वपर्यायका छेद और व्रतोंमें उपस्थान जहां होताहै, वह छेदोपस्थापनीयहै, यह अनतिचार और सातिचारके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है, शैक्षको (नवीन) शिष्यको निरतिचार होताहै, अथवा-तीर्थान्तरके संक्रममें वह होताहै, और मूल गुणघाती साधुको वह सातिचार होताहै, एवं प्रथम तथा अन्तिम तीर्थंकरके अवस्थिति समाचाररूप स्थितकल्पमें दोनों प्रका-

---

સ્થાપનીય છે તે પણ અનતિચાર અને સાતિચારના ભેદથી બે પ્રકારનું કહ્યુ છે તેમાંના પ્રથમ ભેદનો સદ્‌ભાવ ઈત્વર સામાયિકવાળા શિષ્યમાં હોય છે, અથવા તીર્થાન્તરના સંક્રમમા તેનો સદ્‌ભાવ હોય છે. જેમકે પાર્શ્વનાથના સાધુઓ કેશિમુનિ આદિ અનતિચાર છેદોપસ્થાપનીય હતા. બીજા ભેદનો સદ્‌ભાવ મૂળ પ્રાયશ્ચિત્તનો સ્વીકાર કરનાર સાધુમાં હોય છે.

કહ્યુ પણ છે કે "પરિયાયસ્સ ઉ છેઓ" ઈત્યાદિ—

પૂર્વ પર્યાયનુ છેદન અને વ્રતોમાં ઉપસ્થાન જ્યાં થાય છે, તેનું નામ છેદોપસ્થાપનીય છે તે અનતિચાર સાતિચારના ભેદથી બે પ્રકારનું કહ્યુ છે શૈક્ષમાં નિરતિચારનો સદ્‌ભાવ હોય છે, અથવા તીર્થાન્તરના સંક્રમમાં તે હોય છે મૂલગુણઘાતી સાધુમા સાતિચારનો સદ્‌ભાવ હોય છે. પ્રથમ તથા અંતિમ તીર્થંકરના અવસ્થિત સમાચાર રૂપ સ્થિતકલ્પમા બન્ને પ્રકારના છેદોપસ્થાપનીય

स्थापनिक च यत् संयममेति छेदोपस्थापनिकसंयम, अयमपि प्रथमान्तिमतीर्थ कृत्तीर्थयोर्मवतीति बोध्यमिति । इति द्वितीयम् । तथा-परिहारविशुद्धिकसंयमः- परिहरणं परिहारः-तपोविशेषः, तेन विशुद्धं-परिहारविशुद्धम्, अथवा-परिहारो विशेषेण शुद्धो यस्मिस्तत् परिहारविशुद्धम्, तदस्ति यस्मिस्तत् परिहार विशुद्धिकम् । यद्वा-परिहारेण-तपोविशेषेण कर्म निर्जरारूपा विशुद्धि यस्मिस्तत् परिहारविशुद्धिकम् । एतच्च निर्विशमानकनिर्विष्टकायिकभेदेन द्विविधम् । तत्र इद चारित्र सेवमानाः साधवो निर्विशमानका उच्यन्ते, तैः सेव्यमानत्वादिद चारित्रमपि निर्विशमानकमुच्यते । ये तु इदं चारित्र निर्विष्टवन्तः-आसेवितवन्तः, ते निर्विष्टकायिका उच्यन्ते । तैरासेवितत्वादिद चारित्र निर्विष्टकायिकमित्युच्यते।

रका छेदोपस्थापनीय होता है, छेदोपस्थापनीय रूप जो संयम है, यह भी प्रथम तीर्थंकर और अन्तिम तीर्थंकरके तीर्थमें होता है । इस प्रकारसे यह द्वितीय संयम है । परिहार विशुद्धिक संयम-परिहरणका नाम परिहार है, यह परिहार तपो विशेषरूप होता है, इस परिहारसे जो विशुद्ध होता है, यह अथवा परिहारविशेषरूपसे शुद्ध जिसमें होता है, वह परिहार विशुद्ध है, यह परिहार विशुद्ध जिसमें है, वह परिहार विशुद्धिक है, अथवा-परिहाररूप तप विशेष कर्मकी निर्जरारूप विशुद्धि जिसमें होती है, यह परिहारविशुद्धिक है, यह निर्विशमानक और निर्विष्ट कायिकके भेदसे दो प्रकारका है, इस चारित्रको पालन करते हुए साधु निर्विशमानक कहलाते हैं, परन्तु उनके द्वारा सेव्यमान होनेसे

હોય છે છેદોપસ્થાપનિક રૂપ જે સંયમ છે તેને છેદોપસ્થાપનિક સંયમ કહે છે તેનો સદ્ભાવ પણ પહેલા તીર્થંકર અને છેલ્લા તીર્થંકરના તીર્થમાં હોય છે આ પ્રકારનું સંયમના બીજા ભેદનું સ્વરૂપ છે

પરિહાર વિશુદ્ધિ સંયમ—પરિહરણનું નામ પરિહાર છે તે પરિહાર તપો વિશેષરૂપ હોય છે આ પરિહારની અપેક્ષાએ જે વિશુદ્ધ હોય છે તેને અથવા જેમાં આ પરિહાર વિશેષ રૂપે વિશુદ્ધ હોય છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધ કહે છે આ પરિહાર વિશુદ્ધિ જેમાં હોય છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધિક કહે છે અથવા પરિહાર રૂપ તપવિશેષ કર્મોની નિર્જરા રૂપ વિશુદ્ધિ જેમાં થાય છે તે સંયમને પરિહાર વિશુદ્ધિક કહે છે તેના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ છે—(૧) નિર્વિશમાનક અને (૨) નિર્વિષ્ટકાયિક

આ ચારિત્રનું પાલન કરતા એવા સાધુઓને નિર્વિશમાનક કહેવાય છે, પરન્તુ તેમના દ્વારા સેવ્યમાન હોવાને કારણે તે ચારિત્રને પણ નિર્વિશમાનક

तदुक्तम्–" परिहारेण विसुद्धं, सुद्धोय तवो जहिं विसेसेणं ।
तं परिहारविसुद्धं, परिहारविसुद्धियं नाम ॥ १ ॥
तं दुविकप्पं निव्विसमाणनिव्विट्ठकाइयवसेणं ।
परिहारियाणुपरिहारियाणकप्पट्ठियस्सावि " ॥२॥

छाया—परिहारेण विशुद्धं, शुद्धं च तपो यत्र विशेषेण ।
तत् परिहारविशुद्धं परिहारविशुद्धिकं नाम ॥१॥
तद् द्विविकल्पं निर्विशमाननिर्विष्टकायिकवशेन ।
पारिहारिकानुपारिहारिकाणां कल्पस्थितस्यापि ॥२॥ इति

अत्रेदं बोध्यम्–इह हि नवसंख्यकः साधूनां गणो भवति । तत्र चत्वारः परिहारतपोविशेषं कुर्वन्ति, ते पारिहारिका उच्यन्ते, चत्वारस्तुतद्वैयावृत्त्यकारकाः अनुपारिहारिका भवन्ति, एकस्तु कल्पस्थितो वाचनाचार्यो गुरुकल्पो भवति । एतेषु निर्विशमानकानामयं परिहारो भवति । तथाहि–ग्रीष्मे जघन्यादीनि चतुर्थषष्ठाष्टमानि, शिशिरे तु षष्ठाष्टमदशमानि, वर्षास्वष्टमदशमद्वादशानि पारणके

यह चारित्र भी निर्विशमानक कहा गया है । जिन्होंने इस चारित्र का सेवन कर लिया है, वे निर्विष्टकायिक कहे जाते हैं कहा भी है—

" परिहारेण विसुद्धं " इत्यादि ।

यहां इस प्रकार समझना चाहिये–यहां नौ साधुओंका गण होता है, इनमें चार परिहार तपोविशेष करते हैं–इन्हें पारिहारिक कहा जाता है, और चार इनका वैयावृत्त्य करनेवाले होते हैं, इन्हें अनुपारिहारिक कहा जाता है, एक कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है, जो गुरुके जैसा होताहै, इनमें निर्विशमानकोंका यह परिहार होताहै, जैसे–ग्रीष्ममें जघन्यादि रूपसे चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, शिशिरमें (शियाळेमें) षष्ठ, अष्टम,

---

કહેવામા આવ્યુ છે જેમણે આ ચારિત્રનું સેવન કરી લીધું છે તેમને નિર્વિષ્ટ કાયિક કહેવામાં આવે છે.કહ્યું પણ છે કે " परिहारेण विसुद्धं " ઇત્યાદિ—

પરિહાર વિશુદ્ધિક રૂપ સયમનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ સમજવું—નવ સાધુઓનુ એક ગણુ હોય છે તેમાંથી ચાર સાધુઓ પરિહાર તપોવિશેષની આરાધના કરે છે તે ચાર સાધુને પારિહારિક કહેવામા આવે છે. બીજા ચાર સાધુઓ તેમનું વૈયાવૃત્ય કરે છે વૈયાવૃત્ય કરનારા તે સાધુઓને અનુ પારિહારિક કહેવાય છે બાકીનો એક સાધુ કલ્પસ્થિત વાચનાચાર્ય હોય છે. જે ગુરુના જેવો હોય છે તેમાના જે નિર્વિશમાનકો છે (પારિહારિકો છે) તેમનો આ પ્રકારનો પરિહાર હોય છે-ગ્રીષ્મમાં તેઓ એક, બે અને ત્રણ

चाचामाम्लम् । इतरेषां तु सर्वेषामाचामाम्लमेव । एवं चत्वारो निर्विशमानकाः षण्मासान् यावत् परिहारं कुर्वन्ति । तत एते निर्विशमानकाः सन्तस्तद्वैयावृत्यकारका भवन्ति, ये पूर्वं वैयावृत्यकरास्ते पारिहारिका भवन्ति । ते पारिहारिकाः षड् मासान् यावत् परिहारं कुर्वन्ति । ततस्तेऽपि निर्विष्टकायिका भवन्ति । ततो वाचनाचार्यः षड् मासान् यावत् परिहारं करोति । निर्विष्टकायिकेष्वष्टसु एको वाचनाचार्यो भवति, अन्ये तु वैयावृत्यकारका भवन्ति । इत्थम् अयं परिहारविशुद्धिकः कल्पः अष्टादशमासिको भवति । परिहारविशुद्धिकं च तत् संयमश्चेति परिहारविशुद्धिकसंयमः-परिहारतपः=सान्यविशुद्धियुक्तं संयम इत्यर्थः । इति तृतीयं स्थानम् ।

दशम और वर्षामें अष्टम दशम और द्वादश इन परिहारोंको करते हैं, एवं पारणाके दिन आचामाम्ल (आंबिल) करते हैं बाकी और सब मुनि जन (आंबिल) आचामाम्लही करते हैं । इस तरहसे चार निर्विशमानक छह महीने तक परिहार तप करतेहैं, इसके बादसे चार निर्विष्ट कायिक बन जाते हैं, और उनकी वैयावृत्ति करनेवाले होते हैं, और जो पहिले वैयावृत्यकारक थे वे पारिहारिक तप होतेहैं । वे पारिहारिक छह महीने तक परिहार तप करतेहैं, तब वे भी निर्विष्टकायिक हो जाते हैं, इसके बाद जो वाचनाचार्य है, वह छह महीने तक परिहार करता है, आठ निर्विष्टकायिकोंमें एक वाचनाचार्य हो जाता है, और दूसर वैयावृत्यकारक होते हैं । इस प्रकारका यह परिहारविशुद्धिक कल्प १८ मासका होता है, परिहार विशुद्धिक रूप जो संयम है, वह परिहार

ઉપવાસ, શિશિરમાં ત્રિચતુ અને ચાર ઉપવાસ અને વર્ષામાં ત્રણ ચાર અને પાંચ ઉપવાસ કરે છે પારણાને દિવસે તેઓ આયબીલ કરે છે બાકીના પાંચે સાધુઓ આયબીલ જ કરે છે આ રીતે છ માસ સુધી ચાર નિર્વિશમાનક પરિહાર કર્યા કરે છે, ત્યારબાદ તેઓ—નિર્વિષ્ટકાયિક બની જાય છે અને છ માસ સુધી તેમનુ વૈયાવૃત્ય કરનારા ચાર સાધુઓ પરિહારક થાય છે ત્યાર બાદ તેઓ પણ નિર્વિષ્ટકાયિક થઇ જાય છે ત્યારબાદ તેમના વાચનાચાર્ય છ માસ સુધી પરિહાર કરે છે તે સમય દરમિયાન આઠ નિર્વિષ્ટકાયિકોમાંથી એક વાચનાચાર્ય બને છે અને બાકીના સાધુઓ વૈયાવૃત્ય કરે છે આ રીતે આ પરિહાર વિશુદ્ધિક કલ્પ ૧૮ માસ સુધી ચાલે છે આ પ્રકારનો પરિહાર વિશુદ્ધિક રૂપ જે સંયમ છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધિક

तथा-सूक्ष्म संपरायसंयमः-सपरैति-पर्यटति संसारमेभिरिति संपरायाः= कषायाः, सूक्ष्माः=लोभांशाविशेषाः सम्परायाः यत्र स सूक्ष्मसम्परायः-लोभकिट्टिकारूपकषाययुक्त इत्यर्थः। स च विशुध्यमानकसंक्लिश्यमानकभेदेन द्विविधः। तत्र विशुध्यमानकक्षपकश्रेणिमुपशमश्रेणिचारोहतो भवति, सक्लिश्यमानकस्तु उपशमश्रेणितः प्रच्यमानस्य भवति। तदुक्तम्—

"कोहाइ संपराओ, तेणजओ संपरीइ संसारं।
तं सुहुमसंपरायं, सुहुमो जत्थावसेसो उ ॥१॥
सेढि विलग्गओ तं, विसुज्झमाणं तओचयं तस्स।
तह संकिलिस्समाणं परिणामवसेण विन्नेयं ॥२॥"

विशुद्धिक संयम है, अर्थात् परिहार तपसे साध्य जो विशुद्धि उस विशुद्धिसे युक्त जो संयम है, वह परिहार विशुद्धिक संयम है ३। सूक्ष्म संपराय संयम-जिनके कारण जीव संसारमें भटकता है, वे संपराय कषाय हैं। जिन संपरायोंमें सूक्ष्म लोभके अंशही अविशेष रहते हैं-अर्थात् केवल सूक्ष्म लोभ कषायका जो सद्भाव है, वह सूक्ष्म संपराय है, इस तरह जो संयम लोभ रूप कषायसे युक्त होता है, वह सूक्ष्म संपराय संयमहै, यह १० वे गुणस्थानवर्ती जीवको होता है, यह संयम विशुध्यमानक एवं संक्लिश्यमानकके भेदसे दो प्रकारका होता है, इनमें विशुध्यमानक क्षपकश्रेणि एवं उपशमश्रेणि पर आरोहण चढते हुवे करते हुए जीवको होताहै, और संक्लिश्यमानक उपशमश्रेणिसे गिरते हुए जीवको होता है, तदुक्तम्-" कोहाइ संपराओ " इत्यादि।

સંયમ કહે છે એટલે કે પરિહાર તપ વડે સાધ્ય જે વિશુદ્ધિ છે તે વિશુદ્ધિથી યુક્ત જે સંયમ છે તેનું નામ પરિહાર વિશુદ્ધિક સંયમ છે ૩।

સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ—જેમને કારણે જીવ સંસારમા ભટકે છે તે કષાયોને સંપરાય કહે છે જે સંપરાયોમા સૂક્ષ્મલોભનો અંશ જ બાકી રહી જાય છે-એટલે કે સૂક્ષ્મલોભ કષાયનો જ જેમાં સદ્ભાવ હોય છે, તે સંપરાયને સૂક્ષ્મસંપરાય કહે છે આ રીતે જે સંયમ લોભકિટ્ટિકા (સૂક્ષ્મલોભ) રૂપ કષાયથી યુક્ત હોય છે, તેને સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ કહે છે. ૧૦ માં ગુણસ્થાનવર્તી જીવમાં તેનો સદ્ભાવ હોય છે તેના વિશુધ્યમાનક અને સંક્લિશ્યમાનક નામના બે ભેદ પડે છે. ક્ષપક શ્રેણિ અને ઉપશમ શ્રેણિ પર આરોહણ કરતા જીવમા વિશુધ્યમાનક સૂક્ષ્મસંપરાયનો સદ્ભાવ હોય છે, પરન્તુ ઉપશમ શ્રેણિથી નીચે ઉતરતા જીવમા સંક્લિશ્યમાનકનો સદ્ભાવ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે " कोहाइ संपराओ " ઇત્યાદિ—

छाया—क्रोधादिः सपरायः, तेन यतः संपरैति संसारम्।
स सूक्ष्मसम्परायः, सूक्ष्मो यत्रावशेषस्तु ॥१॥
श्रेणिं विलगतः स विशुध्यमानः, ततश्च्यवमानस्य।
तथा संक्लिश्यमानः परिणामवशेन विज्ञेयः ॥२॥ इति।

अयमिदं बोध्यम्-सङ्ख्येयानां लोभखण्डानाम् उपशमनं बादरसपराय उच्यते चरमस्य तु सङ्ख्येयखण्डस्य असङ्ख्येयानि खण्डानि क्रियन्ते, तेषु प्रतिसमयमेकैकस्य खण्डस्य उपशमनं सूक्ष्मसंपराय उच्यते। तथा-बादरसम्परायोपशमयुक्तो बादरसम्परायः, सूक्ष्मसम्परायोपशमयुक्तस्तु सूक्ष्मसम्पराय उच्यते। इति। सूक्ष्मसम्परायश्च स संयमश्चेति सूक्ष्मसंपरायसंयमः—लोभांशरूपकषाययुक्तः संयम इत्यर्थः। इति चतुर्थं स्थानम्। तथा-यथाख्यातचारित्रसंयमः—

यहां ऐसा समझना चाहिये—सङ्ख्यातलोभ खण्डोंका उपशम बादर सपराय कहलाता है, इनमेंसे अन्तिम सङ्ख्यातवे खण्डके असङ्ख्यात टुकडे अपनी बुद्धिसे और करो इनमेंसे प्रति समयमें एक २ खण्डका जो उपशमनहै, वह सूक्ष्म संपरायहै, तथा बादर संपरायके उपशमसे युक्त जो बादर संपरायहै वह बादर सपरायहै। उपशम रूप जो सयणहै वह सूक्ष्म सपराय संयमहै, तात्पर्य इसका यहीहै, कि लोभ कषायवाला जो संयमहै वह सूक्ष्मसपराय संयम है, ऐसा यह चौथा संयम है ४, यथाख्यात संयम—भगवान्ने जो संयम यथार्थ रूपसे और विधिके अनुसार कहा है, वह यथाख्यातसंयम है अथवा सर्व जीव लोकमें जो प्रसिद्ध हो

અહીં એવું સમજવું જોઇએ કે સંખ્યાત લોભખંડોનું ઉપશમન બાદર સંપરાય કહેવાય છે તેમાંથી અન્તિમ સંખ્યાતમાં ખંડના બીજા અસંખ્યાત ટુકડા પોતાની કલ્પનાથી કરવામાં આવે તેમાંથી પ્રત્યેક સમયે એક એક ખંડનું જે ઉપશમન છે, તે સૂક્ષ્મસંપરાય છે તથા બાદર સંપરાયના ઉપશમથી યુક્ત જે બાદર સંપરાય છે, તે બાદર સંપરાય છે સૂક્ષ્મસંપરાય ઉપશમ રૂપ જે સંયમ છે તેનું નામ સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ છે આ કથનો ભાવાર્થ એ છે કે લોભકિટ્ટિકા (સૂક્ષ્મલોભ) રૂપ કષાયવાળો જે સંયમ છે તેનું નામ સૂક્ષ્મ સંપરાય સંયમ છે આ સંયમના ચોથા ભેદરૂપ છે ।૪।

યથાખ્યાત સંયમ—ભગવાને જે સંયમ યથાર્થ રૂપે અને વિધિ અનુસાર કહ્યો છે, તેને યથાખ્યાત સંયમ કહે છે અથવા સમસ્ત જીવલોકમાં જે પ્રસિદ્ધ છે તેનું નામ યથાખ્યાત છે યથાખ્યાત અકષાય રૂપ હોય છે યથાખ્યાત ચારિત્રરૂપ જે સંયમ છે, તે યથાખ્યાત ચારિત્ર સંયમ છે. આ

यथा=याथातथ्येन आङ्=अभिविधिना च यद् भगवता ख्यातं=कथितम्—यथाख्यातम्, यद्वा—सर्वस्मिन् जीवलोके ख्यात—प्रसिद्धं यथाख्यातम् अकषायमिति। यथाख्यातं च तत् चारित्रं चेति यथाख्यातचारित्रम्, तद्रूपः संयमः यथाख्यातचारित्रसंयमः। अयं च छद्मस्थस्य उपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य च भवति, तथा—सयोगस्यायोगस्य च केवलिनो भवति। इति पञ्चम स्थानम् ॥ सू० १८॥

संयमप्रस्तावात्संयमं, तत्प्रतिपक्षभूतमसंयमं च प्राह—

मूलम्—एगिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा—पुढविकाइयसंजमे जाव वणस्सइकाइयसंजमे। एगिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा—पुढविकाइयअसंजमे जाव वणस्सइकाइय असंजमे ॥ सू० १९ ॥

छाया—एकेन्द्रियान् खलु जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—पृथिवीकायिकसंयमो यावद् वनस्पतिकायिकसंयमः एकेन्द्रियान् खलु जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधः असंयमः क्रियते, तद्यथा—पृथिवीकायिकासंयमो यावद् वनस्पतिकायिकासंयमः ॥सू० १९॥

वह यथाख्यात अकषायरूप होता है, यथाख्यात चारित्ररूप जो संयम है, वह यथाख्यातचारित्रसंयम है, तात्पर्य इसका यह है, कि यथाख्यात चारित्र संयम अकषायवाले उपशान्तमोह और क्षीणमोहको होता है, ये दोनों छद्मस्थ वीतराग कहे गये हैं और सयोग केवली १३ वें गुणस्थानवालेको एवं अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवालेको होता है, ऐसा यह यथाख्यात चारित्रका कथन है ॥सू० १८॥

अब सूत्रकार इसी संयमके प्रस्तावको लेकर संयम और संयमके

કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે યથાખ્યાત ચારિત્રસંયમનો સદ્ભાવ અકષાયવાળા ઉપશાન્તમોહ ક્ષીણમોહવાળા જીવોમા હોય છે. તે બન્નેને છદ્મસ્થ વીતરાગ કહે છે સયોગી કેવલી—૧૩ માં ગુણસ્થાનવાળા અને અયોગી કેવળી ૧૪ ચૌદમાં ગુણસ્થાનવાળામાં તે સંયમનો સદ્ભાવ હોયછે આ પ્રકારનું સંયમના પાચમાં ભેદ રૂપ યથાખ્યાતચારિત્રનું કથન સમજવું. ॥ સૂ ૧૮ ॥

छाया—क्रोधादि सपरायः, तेन यतः संपरैति संसारम्।
स सूक्ष्मसम्परायः, सूक्ष्मो यत्रावशेषस्तु ॥१॥
श्रेणि विलगतः स विशुध्यमानः, तत्मवमानस्य।
तथा सक्लिश्यमानः परिणामवशेन विज्ञेय ॥२॥ इति।

अभेद बोध्यम्-सख्येयानां लोभखंडानाम् उपशमन बादरसपराय उच्यते चरमस्य तु सख्येयखण्डस्य असख्येयानि खडानि क्रियन्ते, तेषु प्रतिसमयमेकैकस्य खंडस्य उपशमनं सूक्ष्मसपराय उच्यते। तथा-बादरसम्परायोपशमयुक्तो बादरसम्परायः, सूक्ष्मसम्परायोपशमयुक्तस्तु सूक्ष्मसम्पराय उच्यते। इति। सूक्ष्मसम्परायम स सयमश्चेति सूक्ष्मसपरायसंयमः-लोभांशकषाय युक्तः संयम इत्यर्थः। इति चतुर्थं स्थानम्। तथा-यथाख्यातचारित्रसयमः-

यहां ऐसा समझना चाहिये-सख्यातलोभ खण्डोंका उपशम बादर सपराय कहलाता है, इनमेंसे अन्तिम सख्यातवे खण्डके असख्यात टुकडे अपनी बुद्धिसे और करो इनमेंसे प्रति समयमें एक २ खण्डका जो उपशमनहै, वह सूक्ष्म सपरायहै, तथा बादर संपरायके उपशमसे युक्त जो बादर संपरायहै वह बादर सपरायहै। उपशम रूप जो सयणहै वह सूक्ष्म सपराय संयमहै, तात्पर्य इसका यही है, कि लोभ कषायवाला जो सयमहै वह सूक्ष्मसपराय सयम है, ऐसा यह चौथा सयम है ४, यथाख्यात संयम-भगवान्ने जो सयम यथार्थ रूपसे और विधिके अनुसार कहा है, वह यथाख्यातसंयम है अथवा सब जीव लोकमें जो प्रसिद्ध हो

અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે સંખ્યાત લોભખંડોનું ઉપશમન બાદર સંપરાય કહેવાય છે તેમાંથી અન્તિમ સંખ્યાતમાં ખંડના બીજા અસંખ્યાત ટુકડા પોતાની કલ્પનાથી કરવામાં આવે તેમાંથી પ્રત્યેક સમયે એક એક ખંડનું જે ઉપશમન છે, તે સૂક્ષ્મસંપરાય છે તથા બાદર સંપરાયના ઉપશમથી યુક્ત જે બાદર સંપરાય છે, તે બાદર સંપરાય છે સૂક્ષ્મસંપરાય ઉપશમ રૂપ જે સંયમ છે તેનું નામ સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે લોભકિટ્ટિકા (સૂક્ષ્મલોભ) રૂપ કષાયવાળો જે સંયમ છે તેનું નામ સૂક્ષ્મ સંપરાય સંયમ છે આ સંયમનો ચોથો ભેદરૂપ છે ।૪।

યથાખ્યાત સંયમ—ભગવાને જે સંયમ યથાર્થ રૂપે અને વિધિ અનુસાર કહ્યો છે, તેને યથાખ્યાત સંયમ કહે છે અથવા સમસ્ત જીવલોકમાં જે પ્રસિદ્ધ છે તેનું નામ યથાખ્યાત છે યથાખ્યાત અકષાય રૂપ હોય છે યથાખ્યાત ચારિત્રરૂપ જે સંયમ છે, તે યથાખ્યાત ચારિત્ર સંયમ છે. આ

यथा=याथातथ्येन आङ्=अभिविधिना च यद् भगवता ख्यातं=कथितम्—यथाख्यातम्, यद्वा—सर्वस्मिन् जीवलोके ख्यात–प्रसिद्धं यथाख्यानम् अकषायमिति। यथाख्यातं च तत् चारित्रं चेति यथाख्यातचारित्रम्, तद्रूपः संयमः यथाख्यातचारित्रसंयमः। अयं च छद्मस्थस्य उपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य च भवति, तथा—सयोगस्यायोगस्य च केवलिनो भवति। इति पञ्चम स्थानम् ॥ सू० १८॥

संयमप्रस्तावात्संयमं, तत्प्रतिपक्षभूतमसंयमं च प्राह—

मूलम्—एगिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा—पुढविकाइयसंजमे जाव वणस्सइकाइयसंजमे। एगिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा—पुढविकाइयअसंजमे जाव वणस्सइकाइय असंजमे ॥ सू० १९ ॥

छाया—एकेन्द्रियान् खलु जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—पृथिवीकायिकसंयमो यावद् वनस्पतिकायिकसंयमः एकेन्द्रियान् खलु जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविध असंयमः क्रियते, तद्यथा—पृथिवीकायिकासंयमो यावद् वनस्पतिकायिकासंयमः ॥सू० १९॥

वह यथाख्यात अकषायरूप होता है, यथाख्यात चारित्ररूप जो संयम है, वह यथाख्यातचारित्रसंयम है, तात्पर्य इसका यह है, कि यथाख्यात चारित्र संयम अकषायवाले उपशान्तमोह और क्षीणमोहको होता है, ये दोनों छद्मस्थ वीतराग कहे गये हैं और सयोग केवली १३ वें गुणस्थानवालेको एवं अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवालेको होता है, ऐसा यह यथाख्यात चारित्रका कथन है ॥सू० १८॥

अब सूत्रकार इसी संयमके प्रस्तावको लेकर संयम और संयमके

કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે યથાખ્યાત ચારિત્રસંયમનો સદ્‌ભાવ અકષાયવાળા ઉપશાન્તમોહ ક્ષીણમોહવાળા જીવોમાં હોય છે તે બન્નેને છદ્મસ્થ વીતરાગ કહે છે સયોગી કેવલી–૧૩ મા ગુણસ્થાનવાળા અને અયોગી કેવળી ૧૪ ચૌદમાં ગુણસ્થાનવાળામાં તે સંયમનો સદ્‌ભાવ હોયછે આ પ્રકારનું સંયમના પાંચમા ભેદ રૂપ યથાખ્યાતચારિત્રનું કથન ॥ સૂ. ૧૮ ॥

टीका —' एगिंदियाणं ' इत्यादि—

एकेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य=संघट्टादिना अनुपमर्दयमानस्य साधोः सप्तदशप्रकारेषु संयमेषु मध्ये पञ्चविधः =पञ्चप्रकारकः संयमः क्रियते= भवति। कर्मणः संयमस्य कर्तृत्वेन विवक्षितत्वात् ' कृञ् ' धातुर्भवत्यर्थो भवतीति बोध्यम्। संयमस्य पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-पृथिवीकायिकसंयमः=संघट्टानुपरमः १। एवम्-अप्कायिकसंयमः २, तेजस्कायिकसंयमः ३, वायुकायिकसंयमो ४ वनस्पतिकायिकसंयमश्च ५ बोध्य। एतद्वैपरीत्येन पञ्चविधोऽसंयमो बोध्य इति ॥ सू० १९ ॥

प्रतिपक्ष असंयमका कथन करते हैं—

'एगिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स' इत्यादि सूत्र १९ ॥

संघट्ट आदि द्वारा एकेन्द्रिय जीवका उपमर्दन नहीं करते हुए साधुको १७ प्रकारके संयममेंसे पांच प्रकारका संयम होता है। यहां " कृञ् " धातु " भवति " अर्थमें लिया गया है। वह पांच प्रकारका संयम ऐसा है, पृथिवीकायिक संयम यावत् वनस्पतिकायिक संयम यहां यावत्पदसे " अप्कायिक संयम, तेजस्कायिक संयम वायुकायिक संयम " इन तीन संयमोंका ग्रहण हुआ है। इन पांच संयमोंसे विरुद्ध पांच प्रकारका असंयम होता है। पृथिवीकायिक जीवोंका संघट्ट आदि करनेका त्याग करना यह पृथिवीकायिक संयम है, इसी तरहसे यावत् वनस्पतिकायिक संयम तक कथन जानना चाहिये ॥ सू० १९॥

હવે સૂત્રકાર સંયમ અને સંયમના પ્રતિપક્ષ રૂપ અસંયમનું કથન કરે છે

' एगिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स " ઇત્યાદિ—

સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા એકેન્દ્રિય જીવોનું ઉપમર્દન (હત્યા) નહીં કરનારા સાધુ વડે ૧૭ પ્રકારના સંયમમાંથી પાંચ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય છે અહીં ' कृञ् ધાતુ भवति ના અર્થમાં વપરાયો છે સંયમના તે પાંચ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે સમજવા-(૧) પૃથ્વીકાયિક સંયમ (૨) અપ્કાયિક સંયમ (૩) તેજસ્કાયિક સંયમ (૪) વાયુકાયિક સંયમ અને (૫) વનસ્પતિકાયિક સંયમ આ પાંચ સંયમોથી વિરૂદ્ધ પાંચ પ્રકારના અસંયમ હોય છે પૃથ્વીકાયિક જીવોના સંઘટ્ટન આદિનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ પૃથ્વીકાયિક સંયમ છે એજ પ્રમાણે અપ્કાયથી લઈને વનસ્પતિકાયિક પર્યન્તના સંયમ વિષે પણ સમજવું ॥ સૂ ૧૯ ॥

मूलम्—पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा—सोइंदियसंजमे जाव फासिंदियसंजमे। पंचविया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा—सोइंदिय असंजमे जाव फासिंदिय असंजमे। सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा--एगिंदिय संजमे जाव पंचिंदियसंजमे। सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा--एगिंदियअसंजमे जाव पंचिंदिय असंजमे ॥ सू० २० ॥

छाया—पञ्चेन्द्रियान् खलु जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियसंयमो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंयमः। पञ्चेन्द्रियान् खलु जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधोऽसंयमः क्रियते, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियासंयमो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंयमः। सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वान् खलु असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः

'पंचिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स' इत्यादि सूत्र २० ॥

सूत्रार्थ—पञ्चेन्द्रिय जीवोंका संघट्टन आदि द्वारा उपमर्दन करनेका त्याग करनेरूप जो संयम है, वह पांच प्रकारका है जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय संयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय संयम इसी तरहसे संघट्ट आदि द्वारा पञ्चेन्द्रिय जीवोंका उपमर्दन करने रूप जो असंयम है, वह भी पांच प्रकारका है, जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय असंयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय असंयम समस्त प्राण, भूत जीव एवं सत्त्वोंके संघट्टन आदि द्वारा मर्दन करनेका त्याग करनेवाले

"પંચિંદિયાણ જીવા અસમારભમાણસ્સ" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—પંચેન્દ્રિય જીવોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા ઉપમર્દન નહીં કરવા રૂપ જે સંયમ છે, તેના પાંચ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે—શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમથી લઈને સ્પર્શેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના પાંચે ઇન્દ્રિયોના સંયમ અહીં ગ્રહણ કરવા જોઈએ. એ જ પ્રમાણે સંઘટ્ટન આદિ વડે પંચેન્દ્રિય જીવોનું ઉપમર્દન કરવા રૂપ અસંયમના પણ નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પડે છે—શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંયમથી લઈને સ્પર્શેન્દ્રિય અસંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઈએ. સમસ્ત પ્રાણ, ભૂત, જીવો અને સત્ત્વોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા મર્દન કરવાનો ત્યાગ કરનાર જીવ દ્વારા પાંચ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય

टीका —' एगिंदियाण ' इत्यादि—

एकेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य=सङ्घट्टादिना अनुपमर्दयमानस्य साधोः सप्तदशप्रकारेषु संयमेषु मध्ये पञ्चविध=पञ्चप्रकारकः संयमः क्रियते= भवति। कर्मणः संयमस्य कर्तृत्वेन विवक्षितत्वात् ' कृञ् ' धातुर्भवत्यर्थो भव तीति बोध्यम्। संयमस्य पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-पृथिवीकायिकसंयमः=सङ्घट्ट परिहारः १। एवम्-अप्कायिकसंयमः २, तेजस्कायिकसंयमः ३, वायुकायिक संयमो ४ वनस्पतिकायिकसंयमश्च ५ बोध्यः। एतद्वैपरीत्येन पञ्चविधोऽसंयमो बोध्य इति ॥ सू० १९ ॥

प्रतिपक्ष असंयमका कथन करते हैं—

'एगिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स' इत्यादि सूत्र १९ ॥

संघट्ट आदि द्वारा एकेन्द्रिय जीवका उपमर्दन नहीं करते हुए साधुको १७ प्रकारके संयममेंसे पांच प्रकारका संयम होता है। यहां " कृञ् " धातु " भवति " अर्थमें लिया गया है। यह पांच प्रकारका संयम ऐसा है, पृथिवीकायिक संयम यावत् वनस्पतिकायिक संयम यहां यावत्पदसे " अप्कायिक संयम, तेजस्कायिक संयम वायुकायिक संयम " इन तीन संयमोंका ग्रहण हुआ है। इन पांच संयमोंसे विरुद्ध पांच प्रकारका असंयम होता है। पृथिवीकायिक जीवोंका संघट्ट आदि करनेका त्याग करना यह पृथिवीकायिक संयम है, इसी तरहसे यावत् वनस्पतिका यिक संयम तक कथन जानना चाहिये ॥ सू० १९॥

હવે સૂત્રકાર સંયમ અને સંયમના પ્રતિપક્ષ રૂપ અસંયમનું કથન કરે છે

' एगिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स ' ઇત્યાદિ—

સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા એકેન્દ્રિય જીવોનું ઉપમર્દન (હત્યા) નહીં કર નારા સાધુ વડે ૧૭ પ્રકારના સંયમમાંથી પાંચ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય છે અહીં ' કૃઞ્ ધાતુ ' ભવતિ ' ના અર્થમાં વપરાયો છે. સંયમના તે પાંચ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે સમજવા-(૧) પૃથ્વીકાયિક સંયમ, (૨) અપ્કાયિક સંયમ (૩) તેજસ્કાયિક સંયમ (૪) વાયુકાયિક સંયમ અને (૫) વનસ્પતિકાયિક સંયમ. આ પાંચ સંયમોથી વિરુદ્ધ પાંચ પ્રકારના અસંયમ હોય છે પૃથ્વી કાયિક જીવોના સંઘટ્ટન આદિનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ પૃથ્વીકાયિક સંયમ છે એ જ પ્રમાણે અપ્કાયથી લઈને વનસ્પતિકાયિક પર્યન્તના સંયમ વિષે પણ સમજવું ॥ સૂ ૧૯ ॥

मूलम्—पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा—सोइंदियसंजमे जाव फासिंदियसंजमे। पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा—सोइंदिय असंजमे जाव फासिंदिय असंजमे। सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा--एगिंदिय संजमे जाव पंचिंदियसंजमे। सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा--एगिंदियअसंजमे जाव पंचिंदिय असंजमे ॥ सू० २० ॥

छाया—पञ्चेन्द्रियान् खलु जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियसंयमो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंयमः। पञ्चेन्द्रियान् खलु जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधोऽसंयमः क्रियते, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियासंयमो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंयमः। सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वान् खलु असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः

'पंचिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स' इत्यादि सूत्र २० ॥

सूत्रार्थ—पञ्चेन्द्रिय जीवोंका संघट्टन आदि द्वारा उपमर्दन करनेका त्याग करनेरूप जो संयम है, वह पांच प्रकारका है जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय संयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय संयम इसी तरहसे संघट्ट आदि द्वारा पञ्चेन्द्रिय जीवोंका उपमर्दन करने रूप जो असंयम है, वह भी पांच प्रकारका है, जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय असंयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय असंयम समस्त प्राण, भूत जीव एवं सत्त्वोंके संघट्टन आदि द्वारा मर्दन करनेका त्याग करनेवाले

"पंचिंदियाण जीवा असमारभमाणस्स" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—પંચેન્દ્રિય જીવોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા ઉપમર્દન નહીં કરવા રૂપ જે સંયમ છે, તેના પાંચ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે—શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમથી લઇને સ્પર્શેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના પાંચે ઇન્દ્રિયોના સંયમ અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. એ જ પ્રમાણે સંઘટ્ટન આદિ વડે પંચેન્દ્રિય જીવોનું ઉપમર્દન કરવા રૂપ અસંયમના પણ નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પડે છે—શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંયમથી લઇને સ્પર્શેન્દ્રિય અસંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. સમસ્ત પ્રાણ, ભૂત, જીવો અને સત્ત્વોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા મર્દન કરવાનો ત્યાગ કરનાર જીવ દ્વારા પાંચ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય

क्रियते, तद्यथा-एकेन्द्रियसंयमो यावत् पञ्चेन्द्रियसंयमः । सर्वप्राणभूतजीव सत्त्वान् खलु समारभमाणस्य पञ्चविधः असंयमः क्रियते, तद्यथा-एकेन्द्रियासंयमो यावत् पञ्चेन्द्रियासंयम ॥ सू० २० ॥

टीका—' पंचिंदिया ' इत्यादि—

" पुढविदगअगणिमारुय वणस्सइ बितिचउपणिंदियाजीवा । पेहुप्पेहपमज्जणपरिट्ठवणमणोवईकाए ॥ १ ॥ छाया-पृथिव्युदकाग्निमारुता वनस्पति द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रिया अजीवाः प्रेक्षोत्प्रेक्षा प्रमार्जनं परिष्ठापनं मनोवाक् कायाः ॥१॥ इत्येवं सप्तदशविधः संयमः प्रोक्तः तत्र तस्य संयमस्य नवमो भेदः पञ्चेन्द्रियसंयमः प्रोक्तः । स एवात्र श्रोत्रेन्द्रियसंयमादिभेदैः पञ्चविधत्वेनोच्यते। तथाहि-पञ्चेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य=पञ्चेन्द्रियजीवानां विराधनामकुर्वतो जीवस्य श्रोत्रेन्द्रियसंयमादिरूपः पञ्चविधः संयमो भवति तत्र श्रोत्रेन्द्रियस्य विराधनापरिवर्जनं श्रोत्रेन्द्रियसंयमः एवं चक्षुरिन्द्रियादि समादिन्द्रियस्य

जीवको पांच प्रकारका संयम होता है, जैसे-एकेन्द्रिय संयम यावत् पञ्चेन्द्रिय संयम समस्त प्राण भूत जीव एवं सत्त्वोंका संघट्टन आदि द्वारा मर्दनकरनेरूप असंयम पांच प्रकारका है, जैसे-एकेन्द्रिय असंयम यावत् पञ्चेन्द्रिय असंयम।

" पुढविदग अगणिमारुय " इत्यादि।

इस गाथा द्वारा जो १७ प्रकारका संयम कहा गया है, उसमें संयमका नौवां भेद जो पञ्चेन्द्रिय संयम कहा है, वही यहां सूत्रमें श्रोत्रेन्द्रिय संयम आदिके भेदों द्वारा पांच प्रकार से कहा गया है, जो जीव पञ्चेन्द्रिय जीवोंकी विराधना नहीं करता है, ऐसे जीवको श्रोत्रेन्द्रिय संयम आदि रूप पांच प्रकारका संयम होता है, इनमें श्रोत्रेन्द्रियकी विराधनाका त्याग करना वह श्रोत्रेन्द्रिय संयम है, इसी तरहसे चक्षु

છે તે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-એકેન્દ્રિય સંયમથી લઈને પંચેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકાર અહીં સમજી લેવા. સમસ્ત પ્રાણ, ભૂત, જીવો અને સત્વોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા મર્દન કરવા રૂપ અસંયમના પણ નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર છે-એકેન્દ્રિય અસંયમથી લઈને પંચેન્દ્રિય અસંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકારો અહીં સમજી લેવા.

' પુઢવિદગઅગણિમારુય " ઈત્યાદિ—

આ ગાથા દ્વારા સંયમના જે ૧૭ પ્રકાર બતાવવામાં આવ્યા છે તેમાં નવમાં ભેદ જે પંચેન્દ્રિય સંયમ કહ્યો છે તેને જ અહીં સૂત્રમાં શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે. જે જીવ પંચેન્દ્રિય જીવોની વિરાધના કરતો નથી, એવા જીવ દ્વારા શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ આદિ રૂપ પાંચ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય છે. તેમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો

विराधना परिवर्जनं तत्तदिन्द्रियसंयमो बोध्य इति। एतद्वैपरीत्येन पञ्चविध-इन्द्रियासंयमो बोध्य इति। पूर्वमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजीवाश्रयेण संयमसंयमा सर्वजीवाश्रयत्वेन तावुच्येते 'सव्वपाणभूय' -इत्यादिना। सर्वप्राणभूतजीव-सत्त्वान् सर्वे च ते प्राणाश्च भूताश्च जीवाश्च सत्त्वाश्चेति-सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वा-स्तान् असमारभमाणस्य=अविराधयतो जीवस्य एकेन्द्रियसंयमादिपञ्चेन्द्रिय-संयमान्तः पञ्चविधः संयमो भवति। प्राणादीनां भेदस्त्वेवं बोध्यः, तथाहि—

" प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः भूतास्तु तरवः स्मृताः।

जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वा इतीरिताः " ॥१॥ इति।

रिन्द्रिय आदि इन्द्रियोंकी विराधना करनेका त्याग करना वह इन्द्रिय संयम है, इन इन्द्रियोंके संयमसे विपरीत पांच प्रकारका इन्द्रिय असंयम होता है, संयम और असंयमका वह पूर्वोक्त कथन एकेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवोंके आश्रयको लेकर कहा है, अब समस्त जीवोंके आश्रयसे संयम असं-यमका कथन सूत्रकार करते हैं-" सव्वपाणभूय " इत्यादि-समस्त प्राणोंकी समस्त भूतोंकी समस्त जीवोंकी और समस्त सत्त्वोंकी विरा-धना करनेवाले जीवको एकेन्द्रिय संयम आदिसे लेकर पञ्चेन्द्रिय संयम तक पांचों प्रकारका संयम होता है, प्राणादिकोंमें भेद इस प्रकारसे कहा गया है—प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता " इत्यादि।

दो इन्द्रियवाले तेइन्द्रियवाले और चार इन्द्रियवाले जीव " प्राण "

તેનું નામ શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ છે, એ જ પ્રમાણે ચક્ષુરિન્દ્રિય, ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસ-નેન્દ્રિય અને સ્પર્શેન્દ્રિયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ અનુક્રમે ચક્ષુરિન્દ્રિય સંયમ, ઘ્રાણેન્દ્રિય સંયમ, રસનેન્દ્રિય સંયમ અને સ્પર્શેન્દ્રિય સંયમ છે. એ ઇન્દ્રિયોના સંયમથી વિપરીત પાંચ પ્રકારનો ઇન્દ્રિય અસંયમ હોય છે. સંયમ અને અસંયમનું આ કથન એકેન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય જીવોને આધારે કરવામાં આવ્યું છે હવે સમસ્ત જીવોને આધારે સંયમ અને અસંયમનું કથન સૂત્રકાર કરે છે-" सव्वपाणभूय " ઇત્યાદિ—સમસ્ત પ્રાણોની, સમસ્ત ભૂતોની, સમસ્ત જીવોની અને સમસ્ત સત્ત્વોની વિરાધના ન કરનાર જીવો એકેન્દ્રિય સંયમથી લઇને પંચેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના પાંચે પ્રકારના સંયમનું પાલન કરનારા ગણાય છે. પ્રાણાદિકોનો આ પ્રમાણે અર્થ સમજવો-" प्राणा द्वि त्रि चतु प्रोक्ता " ઇત્યાદિ—

દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય જીવોને 'પ્રાણ' કહે છે. વનસ્પતિ

क्रियते, तद्यथा-एकेन्द्रियसंयमो यावत् पञ्चेन्द्रियसंयमः । सर्वप्राणभूतजीव सत्त्वान् खलु समारभमाणस्य पञ्चविध असंयमः क्रियते, तद्यथा-एकेन्द्रिया संयमो यावत् पञ्चेन्द्रियासंयम ॥ सू० २० ॥

टीका—' पंचिंदिया ' इत्यादि—

" पुढविदगअगणिमारुय वणस्सइ बितिचउपणिंदियाजीवा । पेहुप्पेहपम णपरिट्ठवणमणोवईकाए ॥ १ ॥ छाया-पृथिव्युदकाग्निमारुता वनस्पति द्वित्रिचतुःपञ्चन्द्रिया अजीवा प्रेक्षोत्प्रेक्षा प्रमार्जन परिष्ठापनं मनोवाक् काया ॥१॥ इत्यत्र सप्तदशविध संयमः प्रोक्तः तत्र तस्य संयमस्य नवमो भेदः पञ्च न्द्रियसंयमः प्रोक्तः। स एवात्र श्रोत्रेन्द्रियसंयमादिभेदैः पञ्चविधत्वेनोच्यते। तथाहि- पञ्चेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य=पञ्चन्द्रियजीवानां विराधनामकुर्वतो जीवस्य श्रोत्रेन्द्रियसंयमादिरूप पञ्चविधः संयमो भवति तत्र श्रोत्रेन्द्रियस्य विराधनापरिवर्जनं श्रोत्रेन्द्रियसंयमः एवं चक्षुरिन्द्रियादि तत्तदिन्द्रियस्य

जीवको पांच प्रकारका संयम होता है, जैसे-एकेन्द्रिय संयम यावत् पचेन्द्रिय संयम समस्त प्राण भूत जीव एवं सत्त्वोंका संघट्टन आदि द्वारा मर्दनकरनेरूप असंयम पांच प्रकारका है, जैसे-एकेन्द्रिय असंयम यावत् पञ्चेन्द्रिय असंयम।

" पुढविदग अगणिमारुय " इत्यादि।

इस गाथा द्वारा जो १७ प्रकारका संयम कहा गया है, उसमें संय मका नौवां भेद जो पञ्चेन्द्रिय संयम कहा है, वही यहां सूत्रमें श्रोत्रे न्द्रिय संयम आदिके भेदों द्वारा पांच प्रकार से कहा गया है, जो जीव पञ्चेन्द्रिय जीवोंकी विराधना नहीं करता है, ऐसे जीवको श्रोत्रेन्द्रिय संयम आदि रूप पांच प्रकारका संयम होता है, इसमें श्रोत्रेन्द्रियकी विराधनाका त्याग करना यह श्रोत्रेन्द्रिय संयम है, इसी तरहसे चक्षु

છે તે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-એકેન્દ્રિય સંયમથી લઈને પંચેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકાર અહીં સમજી લેવા. સમસ્ત પ્રાણ, ભૂત, જીવો અને સત્ત્વોનું સંઘટ્ટન આદિ દ્વારા મર્દન કરવા રૂપ અસંયમના પણ નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર છે-એકેન્દ્રિય અસંયમથી લઈને પંચેન્દ્રિય અસંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકારો અહીં સમજી લેવા.

' पुढविदगअगणिमारुय " ઇત્યાદિ—

આ ગાથા દ્વારા સંયમના જે ૧૭ પ્રકાર બતાવવામાં આવ્યા છે તેમાં નવમો ભેદ જે પંચેન્દ્રિય સંયમ કહ્યો છે એજ અહીં સૂત્રમાં શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે. જે જીવ પંચેન્દ્રિય જીવોની વિરાધના કરતો નથી, એવા જીવ દ્વારા શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ આદિ રૂપ પાંચ પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય છે તેમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો

टीका—'पंचविहा' इत्यादि—

तृणवनस्पतिकायिकाः—तृणरूपाः=बादररूपा ये वनस्पतिकायिकाजीवाः सन्ति ते अग्रबीजादिभेदेन पञ्चविधा बोध्याः। तत्र—अग्रबीजाः=कोरण्टकादयः १, मूलबीजाः=कमलकन्दादयः २, पर्वबीजाः=इक्षुवंशादयः ३, स्कन्धबीजाः=शल्लक्यादयः ४ बीजरुहाः=वटादयः ५ इति ॥ सू० २१ ॥

पूर्वं वनस्पतिकायिकजीवाः प्रोक्ताः, तेषां रक्षणं त्वाचारेणैव भवतीत्यत आचारस्वरूपमाह—

मूलम्—पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणायारे १ दंसणायारे २ चरित्तायारे ३ तवायारे ४ वीरियायारे ५ ॥सू०२२॥

छाया—पञ्चविध आचारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानाचारः १ दर्शनाचारः २ चारित्राचारः ३ तप आचारः ४ वीर्याचारः ५ ॥ सू० २२ ॥

'पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता' इत्यादि सू० २१ ॥

तृणरूप जो बादर वनस्पतिकायिक जीव हैं, वे अग्रबीज आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं, जिनका अग्रभागही बीजरूप होता है, ऐसे कोरण्टक आदि अग्रबीज हैं १। जिनका मूलही बीजरूप होता है, ऐसे कमलकन्द आदि मूलबीज हैं २। जिनका पर्वही बीजरूप होता है, ऐसे इक्षु (गन्ना) वंश आदि पर्वबीजहैं, तथा जिनका स्कन्धही बीजरूप होता है, ऐसे शल्लकी आदि स्कन्धबीज हैं, और जो वनस्पति बीजसे उत्पन्न होते हैं ऐसे वे वड आदि बीजरूप वनस्पति बीज हैं ॥सू० २१॥

इन कथित वनस्पतिकायिक जीवोंका रक्षण आचारसेही होता है, अतः अब सूत्रकार आचारका स्वरूप कहते हैं—

" पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता " ઈત્યાદિ—

તૃણ રૂપ જે બાદર વનસ્પતિકાયિક જીવો છે, તેમના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પડે છે—(૧) અગ્રબીજ-જેમનો અગ્રભાગ જ બીજરૂપ હોય છે, એવા કોરંટક આદિને 'અગ્રબીજ' કહે છે (૨) જેમનું મૂળ જ બીજરૂપ હોય છે, એવા કમલકન્દ આદિને 'મૂળબીજ' કહે છે (૩) જેમના પર્વ જ (ગાંઠ) બીજરૂપ હોય છે, એવા શેરડીના સાંઠા આદિને 'પર્વબીજ' કહે છે. (૪) જેનું થડ બીજ રૂપ હોય છે, એવી શલ્લકી આદિને 'સ્કન્ધ બીજ' કહે છે (૫) જે વનસ્પતિ બીજમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે, એવા વડ આદિના બીજને 'બીજરૂપ વનસ્પતિ બીજ' કહે છે ॥ સૂ. ૨૧ ॥

ઉપર જે વનસ્પતિકાયિક આદિ જીવોની વાત કરી તેમનું રક્ષણ આચાર દ્વારા જ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર આચારનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે.

अत्र पृथिव्यादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ता नव संयमा बोध्या । यतः एकेन्द्रिय संयमेन पृथिव्यादयः पञ्च, द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रिया इति चत्वारः, इत्युभयेषां सङ्कलनया नव। सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वानां विराधनां कुर्वतस्तु एकेन्द्रियासंयमादि पञ्चेन्द्रियासंयमान्तः पञ्चविधासंयमो भवति ॥ सू० २० ॥

एकेन्द्रियभेदेनोक्तस्य वनस्पतेर्बादरभेदस्य पञ्चविधत्वमाह—

मूलम्—पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा-अग्गबीया १ मूलबीया २ पोरबीया ३ खंधबीया ४ बीयरुहा ५ ॥ सू० २१ ॥

छाया—पञ्चविधास्तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अग्रबीजाः १ मूलबीजाः २ पर्वबीजाः ३ स्कन्धबीजाः ४ बीजरुहाः ५ ॥ सू० २१ ॥

इस शब्दसे कहे गये हैं, वृक्ष " भूत " इस शब्दसे कहे गये हैं " पञ्चेन्द्रिय " जीव इस शब्दसे कहे गये हैं, इनसे अतिरिक्त एकेन्द्रिय जीव " सत्त्व " शब्दसे कहे गये हैं। यहां पृथिवी आदिसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके नौ संयम हैं, क्योंकि एकेन्द्रिय संयमसे पृथिव्यादिक पांच द्वीन्द्रिय तेइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय संयमसे चार इस प्रकारसे ये नौ संयम होते हैं। सर्व प्राण, भूत, जीव एवं सत्त्व इनकी विराधना करनेवाले जीवके एकेन्द्रिय असंयमसे लेकर पञ्चेन्द्रिय असंयम तक पांच प्रकारका असंयम होता है ॥ सू० २० ॥

एकेन्द्रियके भेदसे कथित हुए वनस्पतिका जो बादर भेद है, उसकी पंचविधताका कथन अब सूत्रकार करते हैं—

કાયિકોને 'ભૂત' કહે છે, પંચેન્દ્રિયોને 'જીવ' કહે છે તે સિવાયના એકેન્દ્રિય જીવોને 'સત્ત્વ' કહે છે અહીં પૃથ્વીકાયિક સંયમથી લઈને પંચેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના નવ પ્રકારના સંયમ કહ્યા છે 'એકેન્દ્રિય સંયમ' આ પદ દ્વારા પૃથ્વીકાયિક સંયમથી લઈને વનસ્પતિકાયિક સંયમ પર્યન્તના પાંચ ભેદ ગ્રહણ થયા છે આ સિવાયના ચાર ભેદ નીચે પ્રમાણે છે દ્વીન્દ્રિય સંયમ, ત્રીન્દ્રિય સંયમ, ચતુરિન્દ્રિય સંયમ અને પંચેન્દ્રિય સંયમ સમસ્ત પ્રાણો, ભૂતો, જીવો અને સત્ત્વોની વિરાધના કરનારે જીવો વડે એકેન્દ્રિય અસંયમથી લઈને પંચેન્દ્રિય અસંયમ પર્યંતના પાંચ પ્રકારના અસંયમ સેવાય છે ॥ સૂ ૨૦ ॥

એકેન્દ્રિયના ભેદરૂપ જે વનસ્પતિકાય છે તેના બાદર વનસ્પતિ રૂપ ભેદના પાંચ પ્રકારોનું સૂત્રકાર હવે કથન કરે છે

टीका—'पंचविहा' इत्यादि—

तृणवनस्पतिकायिकाः—तृणरूपाः=बादररूपा ये वनस्पतिकायिकाजीवाः सन्ति ते अग्रबीजादिभेदेन पञ्चविधा बोध्याः। तत्र—अग्रबीजाः=कोरण्टकादयः १, मूलबीजाः=कमलकन्दादयः २, पर्वबीजाः=इक्षुवंशादयः ३, स्कन्धबीजाः= शल्लक्यादयः ४ बीजरुहाः=वटादयः ५ इति ॥ सू० २१ ॥

पूर्व वनस्पतिकायिकजीवाः प्रोक्ताः, तेषां रक्षणं त्वाचारेणैव भवतीत्यत आचारस्वरूपमाह—

मूलम्—पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा–णाणायारे १ दंसणायारे २ चरित्तायारे ३ तवायारे ४ वीरियायारे ५ ॥सू०२२॥

छाया—पञ्चविध आचारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–ज्ञानाचारः १ दर्शनाचारः २ चारित्राचारः ३ तप आचारः ४ वीर्याचारः ५ ॥ सू० २२ ॥

'पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता' इत्यादि सू० २१ ॥

तृणरूप जो बादर वनस्पतिकायिक जीव हैं, वे अग्रबीज आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं, जिनका अग्रभागही बीजरूप होता है, ऐसे कोरण्टक आदि अग्रबीज हैं १। जिनका मूलही बीजरूप होता है, ऐसे कमलकन्द आदि मूलबीज हैं २। जिनका पर्वही बीजरूप होता है, ऐसे इक्षु (गन्ना) वंश आदि पर्वबीजहैं, तथा जिनका स्कन्धही बीजरूप होता है, ऐसे शल्लकी आदि स्कन्धबीज हैं, और जो वनस्पति बीजसे उत्पन्न होते हैं ऐसे वे वड आदि बीजरूप वनस्पति बीज हैं ॥सू० २१॥

इन कथित वनस्पतिकायिक जीवोंका रक्षण आचारसेही होता है, अतः अब सूत्रकार आचारका स्वरूप कहते हैं—

"पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता" ઈત્યાદિ—

તૃણ રૂપ જે બાદર વનસ્પતિકાયિક જીવો છે, તેમના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પડે છે—(૧) અગ્રબીજ-જેમનો અગ્રભાગ જ બીજરૂપ હોય છે, એવા કોરંટક આદિને 'અગ્રબીજ' કહે છે (૨) જેમનું મૂળ જ બીજરૂપ હોય છે, એવા કમલકન્દ આદિને 'મૂળબીજ' કહે છે (૩) જેમના પર્વ જ (ગાંઠ) બીજરૂપ હોય છે, એવા શેરડીના સાંઠા આદિને 'પર્વબીજ' કહે છે. (૪) જેનું થડ બીજ રૂપ હોય છે, એવી શલ્લકી આદિને 'સ્કન્ધ બીજ' કહે છે (૫) જે વનસ્પતિ બીજમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે, એવા વડ આદિના બીજને 'બીજરૂપ વનસ્પતિ બીજ' કહે છે ॥ સૂ ૨૧ ॥

ઉપર જે વનસ્પતિકાયિક આદિ જીવોની વાત કરી તેમનું રક્ષણ આચાર દ્વારા જ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર આચારનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે.

टीका—' पंचविहे ' इत्यादि—

आचरणम्-आचार –ज्ञानादिविषयकमनुष्ठानमित्यर्थः । स च ज्ञानाचारादिभेदेन पञ्चविध' । तत्र-ज्ञानाचार –ज्ञानं=श्रुतज्ञानं, तद्विषय आचार –श्रुतज्ञानरूपोऽष्टविध आचार इत्यर्थः ।

तदुक्तम्–" काले १, विणए २ बहुमाणे ३ उवहाणे ४ तहय अनिण्हवणे ५ ।
वंजण ६ अत्थ ७ तदुभए ८, अट्ठविहो नाणमायारो ॥१॥ "

छाया—कालो विनयो बहुमानम्, उपधानं तथा च अनिह्नवनम् ।
व्यञ्जनम् अर्थस्तदुभयम्, अष्टविधो ज्ञानाचार ॥१॥ इति १।

तथा-दर्शनाचार –दर्शनं=सम्यक्त्वं, तद्विषयआचारः-सम्यक्त्ववतां व्यवहार इत्यर्थः । अयमप्यष्टविध । तदुक्तम्—

'पंचविहे आयारे पण्णत्ते' इत्यादि सू० २२ ॥

टीकार्थ-आचार पांच प्रकारका कहा गयाहै जैसे-ज्ञानाचार१ दर्शनाचार २ चारित्राचार ३ तप आचार ४ और वीर्याचार ५

आचरणका नाम आचारहै, यह आचार ज्ञानादि विषयक अनुष्ठानरूप होता है यह पूर्वोक्तरूपसे पांच प्रकारका कहा गया है, इनमें श्रुतज्ञान सम्बधी जो आचार है, वह ज्ञानाचार है,यह ज्ञानाचार आठ प्रकारका है । कहा भी है—" काले विणए बहुमाणे " इत्यादि ।

काल १ विनय २ बहुमान ३ उपधान ४ अनिह्नव ५ व्यञ्जन ६ अर्थ ७ और तदुभय ८ दर्शननाम सम्यक्त्वका है, इस सम्बन्धी जो आचार है, वह दर्शनाचारहै, यह दर्शनाचार सम्यक्त्व सहित जीवोंको

ટીકાર્થ- પંચવિહે આયારે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

આચારના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) જ્ઞાનાચાર, (૨) દર્શનાચાર, (૩) ચારિત્રાચાર, (૪) તપ આચાર અને (૫) વીર્યાચાર.

આચરણને આચાર કહે છે તે આચારો જ્ઞાનાદિ વિષયક અનુષ્ઠાન રૂપ હોય છે તેના જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકાર છે શ્રુતજ્ઞાન સબંધી જે આચાર છે, તેને જ્ઞાનાચાર કહે છે તે જ્ઞાનાચારના નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર છે—

" કાલે વિણએ બહુમાણે ' ઇત્યાદિ—

(૧) કાળ (૨) વિનય, (૩) બહુમાન (૪) ઉપધાન, (૫) અનિહ્નવ, (૬) વ્યંજન (૭) અર્થ અને (૮) તદુભય

સમ્યક્ત્વને દર્શન કહે છે દર્શન સબંધી જે આચાર છે તેને દર્શનાચાર કહે છે. તે દર્શનાચાર સમ્યક્ત્વ યુક્ત જીવોના વ્યવહાર રૂપ હોય છે તેના

" निस्संकिय १ निक्कंखिय २, निव्वितिगिच्छा ३ अमूढदिट्ठी ४ य।
उववूह ५-थिरीकरणे ६, वच्छल्ल ७, पभावणे ८ अट्ठ ॥१॥ "

छाया--निश्शङ्कित निष्काङ्क्षितं, निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टिश्च ।
उपबृंहा-स्थिरीकरणे वात्सल्य-प्रभावने अष्ट ॥ १ ॥ इति ।

तथा--चारित्राचारः-चारित्रं-सर्वविरतिलक्षणं, तद्विषयआचारः, समित्यादिरूप चारित्र पालनात्मकोऽष्टविधो व्यवहारः ।

तदुक्तम्--पणिहाणजोगजुत्तो, पंचहिं समिईहिं तिहि य गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ णायव्वो ॥१॥ १ ॥ "

छाया-प्रणिधानयोगयुक्तः(प्रशस्तव्यापारवान्)पञ्चभिः समितिभिस्तिसृभिश्चगुप्तिभिः।
एष चारित्राचारः अष्टविधो भवति ज्ञातव्यः ॥१॥ इति ।

व्यवहाररूप होता है, यह भी आठ प्रकारका है, जैसे-" निस्संकिय निक्कंखिय " इत्यादि ।

निश्शंकित १ निष्कांक्षित २ निर्विचिकित्सा ३ अमूढदृष्टि ४ उपबृंहा ५ स्थिरीकरण ६ वात्सल्य ७ और प्रभावना ८

चारित्राचार-सर्वविरति रूप जो संयम है, वह चारित्र है, इस चारित्र सम्बन्धी जो आचार है, वह चारित्राचार है, यह चारित्राचार समिति आदिके पालने रूप होताहै, और यह भी अष्ठ प्रकारका है जैसे-
" पणिहाणजोगजुत्तो " इत्यादि ।

पांच समितियोंसे एवं तीन गुप्तियोंसे युक्त जो प्रशस्त व्यापारवाला होता है, वह चारित्राचार है, इस प्रकार यह चारित्राचार पांच समिति और तीन गुप्तिरूप होनेसे आठ प्रकारका है, तप आचार १२

પણ નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર છે

" निस्संकिय निक्कंखिय " ઈત્યાદિ—

(૧) નિ:શંકિત, (૨) નિષ્કાંક્ષિત, (૩) નિર્વિચિકિત્સા, (૪) અમૂઢ દૃષ્ટિ (૫) ઉપબૃંહા, (૬) સ્થિરીકરણુ, (૭) વાત્સલ્ય અને (૮) પ્રભાવના.

ચારિત્રાચાર—સર્વવિરતિ રૂપ જે સંયમ છે તેને ચારિત્ર કહે છે તે ચારિત્ર વિષયક જે આચાર છે તેને ચારિત્રાચાર કહે છે તે સમિતિ આદિના પાલન રૂપ હોય છે તેના પણ નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર કહ્યા છે

" पणिहाणजोगजुत्तो " ઈત્યાદિ—

પાંચ સમિતિઓ અને ત્રણ ગુપ્તિઓથી યુક્ત એવો જે સાધુનો પ્રશસ્ત વ્યાપાર છે, તેને ચારિત્રાચાર કહે છે. આ રીતે પાચ સમિતિ રૂપ પાંચ પ્રકાર

टीका—' पञ्चविहे ' इत्यादि—

आचरणम्-आचारः–ज्ञानादिविषयकमनुष्ठानमित्यर्थः । स च ज्ञानाचारादिभेदेन पञ्चविधः । तत्र-ज्ञानाचार –ज्ञानं=श्रुतज्ञान, तद्विषय आचारः–श्रुतज्ञानरूपोऽष्टविध आचार इत्यर्थः ।

तदुक्तम्–" काले १, विणए २ बहुमाणे ३ उवहाणे ४ तहय अनिण्हवणे ५ ।
वंजण ६ अत्थ ७ तदुभए ८, अट्ठविहो नाणमायारो ॥१॥ "

छाया—कालो विनयो बहुमानम्, उपधानं तथा च अनिह्नवनम् ।
व्यञ्जनम् अर्थस्तदुभयम्, अष्टविधो ज्ञानाचारः ॥१॥ इति १।

तथा-दर्शनाचारः–दर्शन=सम्यक्त्वं, तद्विषयआचारः–सम्यक्त्ववतां व्यवहार इत्यर्थं । अयमप्यष्टविधः । तदुक्तम्—

'पंचविहे आयारे पण्णत्ते' इत्यादि सू० २२ ॥

टीकार्थ–आचार पांच प्रकारका कहा गयाहै, जैसे–ज्ञानाचार १ दर्शनाचार २ चारित्राचार ३ तप आचार ४ और वीर्याचार ५

आचरणका नाम आचारहै, यह आचार ज्ञानादि विषयक अनुष्ठानरूप होता है, यह पूर्वोक्तरूपसे पांच प्रकारका कहा गया है, इनमें श्रुतज्ञान सम्बन्धी जो आचार है, वह ज्ञानाचार है,यह ज्ञानाचार आठ प्रकारका है । कहा भी है—" काले विणए बहुमाणे " इत्यादि ।

काल १ विनय २ बहुमान ३ उपधान ४ अनिह्नव ५ व्यञ्जन ६ अर्थ ७ और तदुभय ८ दर्शननाम सम्यक्त्वका है, इस सम्बन्धी जो आचार है, वह दर्शनाचारहै, यह दर्शनाचार सम्यक्त्व सहित जीवोंको

टीकार्थ– ' पंचविहे आयारे पण्णत्ते ' ઈત્યાદિ—

આચારના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) જ્ઞાનાચાર, (૨) દર્શનાચાર, (૩) ચારિત્રાચાર, (૪) તપ આચાર અને (૫) વીર્યાચાર.

આચરણને આચાર કહે છે તે આચાર જ્ઞાનાદિ વિષયક અનુષ્ઠાન રૂપ હોય છે તેના જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકાર છે શ્રુતજ્ઞાન સંબંધી જે આચાર છે, તેને જ્ઞાનાચાર કહે છે તે જ્ઞાનાચારના નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર છે—
" काले विणए बहुमाणे " ઈત્યાદિ—

(૧) કાળ (૨) વિનય, (૩) બહુમાન (૪) ઉપધાન, (૫) અનિહ્નવ, (૬) વ્યંજન (૭) અર્થ અને (૮) તદુભય

સમ્યક્ત્વને દર્શન કહે છે દર્શન સંબંધી જે આચાર છે તેને દર્શનાચાર કહે છે તે દર્શનાચાર સમ્યક્ત્વ યુક્ત જીવોના વ્યવહાર રૂપ હોય છે તેના

" निस्संकिय १ निक्कंखिय २, निव्वितिगिच्छा ३ अमूढदिट्ठी ४ य।
उववूह ५-थिरीकरणे ६, वच्छल्ल ७, पभावणे ८ अट्ठ ॥१॥ "

छाया--निशङ्कितं निष्काङ्क्षितं, निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टिश्च ।
उपबृंहा-स्थिरीकरणे वात्सल्य-प्रभावने अष्ट ॥ १ ॥ इति ।

तथा--चारित्राचारः-चारित्रं-सर्वविरतिलक्षणं, तद्विषयआचारः, समित्यादिरूप चारित्र पालनात्मकोऽष्टविधो व्यवहारः ।

तदुक्तम्--पणिहाणजोगजुत्तो, पंचहिं समिईहिं तिहिं य गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ णायव्वो ॥१॥ १ ॥ "

छाया-प्रणिधानयोगयुक्तः(प्रशस्तव्यापारवान्)पञ्चभिः समितिभिस्तिसृभिश्च गुप्तिभिः।
एष चारित्राचारः अष्टविधो भवति ज्ञातव्यः ॥१॥ इति ।

व्यवहाररूप होता है, यह भी आठ प्रकारका है, जैसे-" निस्संकिय निक्कंखिय " इत्यादि ।

निश्शंकित १ निष्कांक्षित २ निर्विचिकित्सा ३ अमूढदृष्टि ४ उपबृंहा ५ स्थिरीकरण ६ वात्सल्य ७ और प्रभावना ८

चारित्राचार-सर्वविरति रूप जो संयम है, वह चारित्र है, इस चारित्र सम्बन्धी जो आचार है, वह चारित्राचार है, यह चारित्राचार समिति आदिके पालने रूप होताहै, और यह भी अष्ठ प्रकारका है जैसे-
" पणिहाणजोगजुत्तो " इत्यादि ।

पांच समितियोंसे एवं तीन गुप्तियोंसे युक्त जो प्रशस्त व्यापारवाला होता है, वह चारित्राचार है, इस प्रकार यह चारित्राचार पांच समिति और तीन गुप्तिरूप होनेसे आठ प्रकारका है, तप आचार १२

પણ નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર છે
" निस्संकिय निक्कखिय " ઈત્યાદિ—

(૧) નિઃશક્તિ, (૨) નિષ્કાંક્ષિત, (૩) નિર્વિચિકિત્સા, (૪) અમૂઢ દૃષ્ટિ (૫) ઉપબૃંહા, (૬) સ્થિરીકરણ, (૭) વાત્સલ્ય અને (૮) પ્રભાવના.

ચારિત્રાચાર—સર્વવિરતિ રૂપ જે સંયમ છે તેને ચારિત્ર કહે છે. તે ચારિત્ર વિષયક જે આચાર છે તેને ચારિત્રાચાર કહે છે તે સમિતિ આદિના પાલન રૂપ હોય છે તેના પણ નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર કહ્યા છે
" पणिहाणजोगजुत्तो " ઈત્યાદિ—

પાચ સમિતિઓ અને ત્રણ ગુપ્તિઓથી યુક્ત એવો જે સાધુનો પ્રશસ્ત વ્યાપાર છે, તેને ચારિત્રાચાર કહે છે. આ રીતે પાચ સમિતિ રૂપ પાંચ ----

तथा-तप आचारो द्वादशविध तपोऽनुष्ठानात्मकस्तपस्वि नामाचारः।

तत्रमो द्वादशभेदास्तु बाह्याभ्यन्तरभेदात् बोध्याः। तत्र बाह्यभेदाः षट् तथा हि—

" अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
काय किलेसो पडिसंलीणया य, बज्झो तवो होइ॥ "

छाया--अनशनम् ऊनोदरिका भिक्षाचर्या च रसपरित्यागः।
कायक्लेशः प्रतिसंलीनता च बाह्यं तपो भवति॥ इति।

तथा-आभ्यन्तरभेदाः षट्, तथाहि—

" पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भिंतरो तवो॥

छाया--प्रायश्चित्तं विनयो वैयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः।
ध्यानं च व्युत्सर्गः, एतदाभ्यन्तरं तपः॥

प्रकारका होता है, तपस्वियोंका जो तपोंके अनुष्ठान करनेरूप आचार है, वह तप आचार है, तपके १२ भेद ६ बाह्य तप और ६ आभ्यन्तर तपके भेदसे होते हैं जैसे-" अणसणमूणोयरिया " इत्यादि।

अनशन १ ऊनोदरिका २ भिक्षाचर्या ३ रसपरित्याग ४ काय क्लेश ५ और प्रतिसंलीनता ६ ये बाह्य तप हैं, आभ्यन्तर तपके ये ६ भेद हैं-' पायच्छित्तं विणओ " इत्यादि।

प्रायश्चित्त १ विनय २ वैयावृत्त्य ३ स्वाध्याय ४ ध्यान ५ और व्युत्सर्ग ६ आत्मा एवं शरीरकी शक्तिका नाम वीर्य है, ज्ञानाचारका

અને ત્રણ ગુપ્તિરૂપ ત્રણ પ્રકાર મળીને તે કુલ આઠ પ્રકારનો હોય છે

તપ આચાર—તપસ્વીઓનો-તપનું અનુષ્ઠાન કરવા રૂપ જે આચાર હોય છે તેને તપ આચાર કહે છે તેના ૧૨ પ્રકાર છે ૬ બાહ્ય તપ અને ૬ આભ્યન્તર તપ બારે ભેદોના નામ નીચે પ્રમાણે છે

' अणसणमूणोयरिया " ઇત્યાદિ—

(૧) અનશન (૨) ઊણોદરિકા (૩) ભિક્ષાચર્યા (૪) રસપરિત્યાગ, (૫) કાયક્લેશ અને (૬) પ્રતિસંલીનતા આ ૬ બાહ્યતપ છે આભ્યન્તર તપના ૬ ભેદ નીચે પ્રમાણે છે ' पायच्छित्तं विणओ ' ઇત્યાદિ—

(૧) પ્રાયશ્ચિત્ત (૨) વિનય, (૩) વૈયાવૃત્ય (૪) સ્વાધ્યાય (૫) ધ્યાન અને (૬) વ્યુત્સર્ગ

વીર્યાચાર—આત્મા અને શરીરની શક્તિનું નામ વીર્ય છે જ્ઞાનાચારના

तथा-वीर्याचारः-वीर्यम्=आत्मशरीरसामर्थ्यं, तस्यानन्तरोक्तेषु षट्त्रिंशद्विधेषु ज्ञानाचारादिषु स्फोरणम् । इति । सू० २२ ॥

आचारस्य प्रस्तुतत्वात् सम्प्रति आचारप्रकल्पस्य भेदानाह--

मूलम्-पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते, तं जहा-मासिए उग्घाइए १, मासिए अणुग्घाइए २, चाउमासिए उग्घाइए ३, चाउम्मासिए अणुग्घाइए ४, आरोवणा ५। आरोवणा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-पट्ठविया १ ठविया २ कसिणा ३ अकसिणा ४ हाडहडा ५ ॥ सू० २३ ॥

छाया--पञ्चविध आचारप्रकल्पः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मासिकमुद्घातिकम् १, मासिकमनुद्घातिकम् २, चातुर्मासिकमुद्घातिकम् ३, चातुर्मासिकमनुद्घातिकम् ४, आरोपणा पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-प्रस्थापिता १, स्थापिता २, कृत्स्ना ३, अकृत्स्ना ४, हाडहडा ५ ॥ सू० २३ ॥

---

८ दर्शनाचारका ८ चारित्राचारका ८ तप आचारका १२ कुल ३६ प्रकारके ज्ञानाचार आदिकोंके परिपालनमें जो वीर्यरूप शक्तिका प्रकट करना है, वह वीर्याचार है ॥सू० २२॥

अब सूत्रकार आचार प्रकल्पके भेदोंका कथन करते हैं--

'पंचविहे आयारकप्पे पण्णत्ते' इत्यादि सू० २३ ॥

सूत्रार्थ-आचार प्रकल्प पांच प्रकारका कहा गयाहै, जैसे-मासिक उद्घातिक१ मासिक अनुद्घातिक२ चातुर्मासिक उद्घातिक३ चातुर्मासिक अनुद्घातिक४ और आरोपणा ५ इनमें आरोपणा पांच प्रकारकी कही गईहै-जैसे-प्रस्थापिता१ स्थापिता २ कृत्स्ना३ अकृत्स्ना४ और हाडहडा ५

८, દર્શનાચારના ૮, ચારિત્રાચારના ૮ અને તપાચારના ૧૨ એ રીતે કુલ ૩૬ પ્રકારના જ્ઞાનાચારાદિકોના પરિપાલનમાં જે વીર્યરૂપ શક્તિનું પ્રકાશન થાય છે, તેનું નામ વીર્યાચાર છે ॥ સૂ ૨૨ ॥

હવે સૂત્રકાર આચાર પ્રકલ્પના ભેદોનું કથન કરે છે.

સૂત્રાર્થ-" પંચવિહે આયારપકપ્પે પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

આચાર પ્રકલ્પના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) માસિક, ઉદ્ઘાતિક, (૨) માસિક અનુદ્ઘાતિક, (૩) ચાતુર્માસિક ઉદ્ઘાતિક, (૪) ચાતુર્માસિક અનુદ્ઘાતિક અને (૫) આરોપણા. તેમાંથી આરોપણા પાંચ પ્રકારની કહી છે જેમકે (૧) પ્રસ્થાપિતા, (૨) સ્થાપિતા, (૩) કૃત્સ્ના, (૪) અકૃત્સ્ના, અને (૫) હાડહડા.

टीका—' पंचविहे आयारपकप्पे ' इत्यादि—

आचारप्रकल्प—प्रकृष्टः कल्पः=प्रायश्चित्तरूपो यत्र सः प्रकल्पः, आचारस्य= आचाराङ्गस्य प्रकल्पः=निशीथाख्योऽध्ययनविशेष आचारप्रकल्पः, स च पञ्च विधप्रायश्चित्तरूपकत्वात् पञ्चविध । तथाहि–मासिकमुद्‌घातिकम्–मासेन नि र्वृत्तं मासिकम्, उद्‌घातः=भागपातः सान्तरदानं वा, तद् विद्यते यत्र तद् उद्‌घा तिकम् । सार्द्धसप्तविंशतिदिनप्रमाणं प्रायश्चित्तं मासिकमुद्‌घातिकमुच्यते । लघु मासप्रायश्चित्तमित्यर्थः । तदुक्तम्—

" अद्धेण छिन्नसेसं, पुव्वद्धेण तु संजुयं काउं ।
देज्जाइ लहुयदाणं, गुरुदाणं तत्तियं चेव ॥१॥"

छाया—अर्द्धेन छिन्नशेषं, पूर्वार्द्धेन तु संयुतं कृत्वा ।
दीयते लघुकदानं गुरुदानं तावदेव ॥ इति ।

मासिकतपोऽपेक्षया अस्या गाथाया आचार्ये एवं बोध्यः, तथाहि–मासे अर्द्धेन छिन्ने सति पञ्चदशदिनानि तिष्ठन्ति । मासापेक्षया पूर्वस्य पूर्वतपसः पञ्चविंशतिदिनात्मकस्य अर्द्धं सार्द्धद्वादशकम् उभयसङ्कलनया सार्द्धसप्तविंशति

प्रायश्चित्त रूप प्रकृष्टकल्प जहां होता है, वह प्रकल्प है, आचाराङ्गरूप आचारका जो प्रकल्प है, वह आचार प्रकल्प है, यह आ-चारप्रकल्प निशीथ नामक अध्ययन विशेष रूप है यह पूर्वोक्त रूपसे पांच प्रकारका है, क्योंकि यह प्रायश्चित्तका प्ररूपक होताहै, वह मासिक उद्घातिक कहलाताहै, इसे लघुमास प्रायश्चित्त कहा गयाहै । कहा भीहै—

' अद्धेण छिन्नसेसं ' इत्यादि ।

मासिक तपकी अपेक्षासे इस गाथाका ऐसा अर्थहै, मासके आधे दिन पन्द्रह दिन होतेहैं, मासकी अपेक्षासे २५ दिनात्मक पूर्वतपके आधे १२॥ दिन होतेहैं, १५ और १२॥ साढे बारहको परस्परमें जोडनेसे २७॥ साढेसत्ता ईस होतेहैं । लघु प्रायश्चित्त यदि एक मासका देना हो तो वह २७॥ दिनकाही

પ્રાયશ્ચિત્ત રૂપ પ્રકૃષ્ટ કલ્પ જ્યાં હોય છે, તે પ્રકલ્પ છે. આચારાંગ રૂપ આચારનો જે પ્રકલ્પ છે, તેનું નામ આચાર પ્રકલ્પ છે તે આચાર પ્રકલ્પ નિશીથ નામના અધ્યયન વિશેષરૂપ છે તેના પૂર્વોક્ત પાંચ પ્રકારો કહ્યાં છે તે પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રરૂપણા કરે છે માસિક ઉદ્ઘાતિકને લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્ત પણ કહે છે. કહ્યું પણ છે કે " અદ્ધેણ છિન્ન સેસ " ઇત્યાદિ—

માસિક તપની અપેક્ષાએ આ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે— માસથી અર્ધા દિવસ એટલે ૧૫ દિવસ થાય છે માસની અપેક્ષાએ ૨૫ દિનાત્મક પૂર્વતપન [illegible] છે ૧૫ અને ૧૨॥ નો સરવાળો

दिनानि भवन्ति । एतावद्दिनात्मकं मासिकं लघुप्रायश्चित्तं दातव्यम् । गुरु प्रायश्चित्तं तु मासावधिकमेव दातव्यमिति ॥१॥

तथा-मासिकम् अनुद्घातिकम् न उद्घातिकम् अनुद्घातिकम्-यथाश्रुतप्रायश्चित्तं गुरुप्रायश्चित्तमित्यर्थः । एतत् त्रिंशद्दिनप्रमाणं भवतीति ॥२॥

तथा-चातुर्मासिकम्-चतुर्भिर्मासैर्निर्वृत्तम् चातुर्मासिकं तद्रूपम् उद्घातिकम्-लघुचतुर्मासप्रायश्चित्तमित्यर्थः ॥३॥ तथा-चातुर्मासिकम् अनुद्घातिकम्=गुरु चतुर्मासप्रायश्चित्तमित्यर्थः ॥४॥ तथा-आरोपणा-आरोप्यते इत्यारोपणा-प्रायश्चित्तानामुपर्युपर्यारोपणं यावत् षण्मासान्, तत ऊर्ध्वं तु भगवतो महावीरस्वामिनस्तीर्थे आरोपणा न भवति ।

अयं भावः-" आरोवणाचडावणत्तिभाणियं होइ "

छाया-आरोपणा आरोहणेति भाणित भवति=इति । यो हि यथाप्रतिसेवित मालोचयति तस्य प्रतिसेवना-निष्पन्नमेव मासलघुमासगुरुप्रभृतिकं दीयते,

देना चाहिये और गुरु प्रायश्चित्त दिया जावे तो वह तो एक पूरे मास तककाही देना चाहिये १ तथा-मासिक अनुद्घातिक गुरु प्रायश्चित्त रूप होता है, और यह तीस दिनका होता है, जो प्रायश्चित्त चातुर्मासिक उद्घातिक होता है, वह ३ मास २७॥ दिनका होता है, इसे लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त भी कहा गया है, जो प्रायश्चित्त चातुर्मासिक अनुद्घातिक होता है, वह गुरु चातुर्मासिक होता है, अर्थात् पूरे चार मासका होता है, प्रायश्चित्तोंके ऊपर जो प्रायश्चित्त ६ मास तक लगातार दिये जाते हैं, वह आरोपणा है, इसके बाद महावीर स्वामीके शासनमें आरोपणा नहीं होती है, भाव यह है, " आरोवणा चडावणत्ति भाणियं होइ " आरोपणा आरोहणा कही गई है, जो प्राणी जैसे

२७॥ સાડીસત્યાવીસ આવે છે જો એક માસનું લઘુપ્રાયશ્ચિત્ત દેવું હોય તો પૂરા ૩૦ દિવસનું દેવાને બદલે ૨૭॥ સાડીસત્યાવીસ દિવસનુ દેવું જોઈએ, જો ગુરુપ્રાયશ્ચિત્ત દેવું હોય તો તે પૂરા ૩૦ દિવસનું હોવું જોઈએ. આ પ્રકારના ૩૦ દિવસના પ્રાયશ્ચિત્તને માસિક અનુદ્ઘાતિક કહે છે જે પ્રાયશ્ચિત્ત ૩ માસ ૨૭॥ દિવસનું દેવામાં આવે છે તેને લઘુચાતુર્માસિક અથવા ચાતુર્માસિક ઉદ્ઘાતિક કહે છે. પૂરા ચાર માસના પ્રાયશ્ચિત્તને ચાતુર્માસિક અનુદ્ઘાતિક અથવા ગુરુચાતુર્માસિક કહે છે. સતત છ માસ પર્યન્તનું જે પ્રાયશ્ચિત્ત દેવામાં આવે છે તેનુ નામ આરોપણા છે. મહાવીર પ્રભુના શાસનમાં તેટલા સમય કરતાં વધારે સમયની આરોપણા દેવામાં આવતી નથી. "આરોવણા ચડાવણત્તિભાણિય હોઇ" આરોપણાને આરોહણ કહેવામાં આવે

यस्तु न तथा तस्य तथाविध दीयत एव माया निष्पन्नं चान्यदारोप्यते इत्यारोपणेति। आचारप्रकल्पस्य केषुचिदुद्देशकेषु लघुमासप्रायश्चित्त प्ररूप्यते, केषुचित् गुरुमासप्रायश्चित्तम्, केषुचिद् लघुचतुर्मासप्रायश्चित्तं, केषुचिद् गुरु चतुर्मासप्रायश्चित्तम्, केषुचित् आरोपणा। इति पञ्चविधप्रायश्चित्तप्ररूपकत्वा दयमाचारप्रकल्पः पञ्चविधो बोध्य इति। अत्र आरोपणा आचारप्रकल्पस्य पञ्चम भेदत्वेनोक्ता। तस्या एव सम्प्रति पञ्चविधत्वमाह–' आरोवणा पंचविहा ' इत्या

दोषका सेवन करता है, वह उसकी आलोचना उसीके अनुसार करता है, तो उसे उस प्रतिसेवनाके अनुसारही मास लघु मासगुरु आदि प्रायश्चित दिये जाते हैं, और जो प्रतिसेवित दोषके अनुसार आलोचना नहीं करता है, उसे प्रायश्चित्त तो दियाही जाता है, परन्तु उस प्राय श्चित्तमें मायासे निष्पन्न हुए अन्य प्रायश्चित्तकी आरोपणा की जाती है, इस प्रकारसे यह आरोपणा होती है, आचार प्रकल्पके किन्हीं २ उद्देशकोंमें लघुमास प्रायश्चित्त प्ररूपित हुआ है, किन्हीं २ उद्देशकोंमें गुरुमास प्रायश्चित्त प्ररूपित हुआ है, और किन्हीं २ उद्देशकोंमें आरोपणा प्ररूपित हुई है, इस तरहसे पांच प्रकारके प्रायश्चित्तोंका प्ररूपक होनेसे यह आचारप्रकल्प पांच प्रकारका कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये यहां आरोपणा आचार-प्रकल्पके पञ्चम भेद रूपसे कही है, सो अब उसकेही सूत्रकार पांच भेद प्रकट करनेके लिये कहते हैं–

છે જે જીવ જેવા દોષનું સેવન કરે છે, તે દોષની તેના દ્વારા તેને અનુરૂપ આલોચના કરાય છે–તેને પ્રતિસેવનાને અનુરૂપ જ માસલઘુ માસગુરુ આદિ પ્રાયશ્ચિત્ત દેવામાં આવે છે જે માણસ પ્રતિસેવિત દોષને અનુરૂપ આલોચના કરતો નથી, તેને પ્રાયશ્ચિત્ત તો દેવામાં આવે જ છે, પરન્તુ તે પ્રાયશ્ચિત્તમાં માયાથી નિષ્પન્ન થયેલા અન્ય પ્રાયશ્ચિત્તની આરોપણા કરાય છે આ પ્રકારનું તે આરોપણાનું સ્વરૂપ હોય છે આચાર પ્રકલ્પના કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં ગુરુમાસ પ્રાયશ્ચિત્તની, કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં લઘુ ચાતુર્માસ પ્રાયશ્ચિત્તની, કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં ગુરુ ચાતુર્માસ પ્રાયશ્ચિત્તની અને કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં આરોપણાની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે આ રીતે પાંચ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તોનું પ્રરૂપક હોવાને કારણે આ આચાર પ્રકલ્પને પાંચ પ્રકારનો કહેવામાં આવેલ છે એમ સમજવું અહીં આરોપણાને આચાર પ્રકલ્પના પાંચમાં ભેદ રૂપ પ્રકટ કરવામાં આવી છે

હવે સૂત્રકાર તે આરોપણાના પાંચ ભેદો પ્રકટ કરે છે

दिना । आरोपणा हि प्रस्थापितादिभेदैः पञ्चविधा भवति । तत्र—प्रस्थापिता—आरोपणीयेषु बहुषु प्रायश्चित्तेषु सत्सु यद् लघुमासगुरुमासादिप्रायश्चित्तेषु कस्यचिदेकस्य प्रस्थापना सा प्रस्थापितेत्युच्यते ॥१॥ तथा—स्थापिता—यः कश्चित् मासगुर्वादिप्रायश्चित्तार्हो भवति, स गुरोर्वैयावृत्त्यं करोति, अतस्तस्य प्रायश्चित्त वैयावृत्त्यसमाप्तिं यावत् स्थापितम्, ततः पश्चात् स प्रायश्चित्तं करिष्यतीत्येषा स्थापितेत्युच्यते ॥२॥ तथा-कृत्स्ना—यत्र झोषो न क्रियते सा । झोषस्त्वयम्—भगवतो महावीरस्वामिनस्तीर्थे षण्मासान्तमेव तपो भवति षण्णां मासानामुपरि ये

"आरोवणा पंचविहा" इत्यादि ।

यह आरोपणा प्रस्थापित आदिके भेदसे पांच प्रकारकी होती है, इनमें जो आरोपणा आरोपणीय अनेक प्रायश्चित्तोंके होने पर लघुमास गुरुमास आदि प्रायश्चित्तोंमेंसे किसी एक प्रायश्चित्तके प्रस्थापनारूप होती है, वह आरोपणा "प्रस्थापिता" इस रूपसे कही गई है, तथा जो कोई मासगुरु आदि प्रायश्चित्तके योग्य होता है, वह पहिले गुरुकी वैयावृत्ति करता है, अतः जबतक वैयावृत्तिकी समाप्ति नहीं हो जाती है, तब तक उसका प्रायश्चित्त स्थापित रहता है, इसके बाद वह प्रायश्चित्त करता है, इस तरहसे यह आरोपणा स्थापितारूप कही गई है, तथा जिस आरोपणामें झोष नहीं किया जाता है, वह आरोपणा कृत्स्ना आरोपणा है, झोषका अभिप्राय ऐसा है, कि भगवान् महावीर स्वामीके तीर्थमें छह मास तकही तप होता है, छह मासके बाद जो मास अप-

---

"આરોવણા પંચવિહા" ઇત્યાદિ—

તે આરોપણાના પ્રસ્થાપિત આદિ પાચ ભેદ કહ્યાં છે જે આરોપણા, આરોપણીય અનેક પ્રાયશ્ચિત્તોનો સદ્ભાવ હોય ત્યારે લઘુમાસ, ગુરુમાસ આદિ પ્રાયશ્ચિત્તોમાંથી એક પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રસ્થાપના રૂપ હોય છે, તે આરોપણાને 'પ્રસ્થાપિતા' કહે છે. તથા જે કોઈ સાધુ માસગુરુ આદિ પ્રાયશ્ચિત્તને યોગ્ય હોય છે, તે પહેલાં ગુરુનું વૈયાવૃત્ય કરે છે, તેથી જ્યા સુધી વૈયાવૃત્તિની સમાપ્તિ થઇ જતી નથી, ત્યાં સુધી તેનું પ્રાયશ્ચિત્ત સ્થાપિત રહે છે, ત્યારબાદ તે પ્રાયશ્ચિત્ત કરે છે આ રીતે આ આરોપણાને 'સ્થાપિતા' રૂપ કહેવામાં આવી છે તથા જે આરોપણામા 'ઝોષ' કરાતો નથી તે આરોપણાને "કૃત્સ્ના આરોપણા" કહે છે ઝોષનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

મહાવીર પ્રભુના તીર્થમાં ૭ માસ સુધીનું જ પ્રાયશ્ચિત્ત આપી શકાર

मासा अपराधिनो भवन्ति, तेषां क्षपण भवति, अर्थात् षण्मासाधिकमासानां प्रायश्चित्तमपराधिषु नारोप्यते। किमिव? यथा प्रस्थे धान्ये मातव्य तदधिकधान्यस्यापन भवति तदिवेति। षण्मासाधिकमासानां यत्प्रायश्चित्तानारोपणं स एव झोषो बोध्यः। तस्याभावेन परिपूर्णत्वादियं कृत्स्नेत्युच्यते इति ॥३॥

तथा–अकृत्स्ना–यत्र षण्मासाधिकमासानां प्रायश्चित्तं नारोप्यते इति सा अपरिपूर्णत्वात् अकृत्स्नेत्युच्यते, इति ॥४॥ तथा–हाडहडा–यस्यापराधिनो लघुगुरुमासादिप्रायश्चित्तेषु यत् प्रायश्चित्तं प्राप्तं, तत् तस्मिन्नेव काले तस्मि

राधीके होतेहैं, उसकी क्षपणा हो जातीहै, अर्थात् अपराधियोंमें छह माससे अधिक मासोंका प्रायश्चित्त आरोपित नहीं होता है, जैसे–जिस प्रस्थमें (नापविशेष) जितना धान्य समानेके योग्य होताहै, उस प्रस्थमें उतनाही धान्य समाता है, अधिक धान्य वहांसे गिर जाता है, इस तरह छह माससे अधिक मासोंके प्रायश्चित्तकी जो अनारोपणा है, वही झोष है, इसके अभावसे छह माससे अधिक प्रायश्चित्त देनेके अभावसे यह आरोपणा पूर्ण होनेके कारण कृत्स्ना आरोपणा कही जाती है। जिसमें छ माससे अधिक मास का प्रायश्चित्त की आरोपणा नहीं की जातीहै यह अपरिपूर्ण होनेसे "अकृत्स्ना" आरोपणा कही जातीहै तथा हाडहडा जो आरोपणा है, वह ऐसी है कि जिस अपराधीके लघुमास गुरुमास आदि प्रायश्चित्तोंमेंसे जो प्रायश्चित्त हो वह उसी कालमें उसमें

છે. અપરાધીને છ માસથી વધારે માસનું પ્રાયશ્ચિત્ત આપી શકાતું નથી. ૬ માસ કરતા વધારે સમયનું પ્રાયશ્ચિત્ત આરોપિત કરી શકાતું નથી. જેમ કોઈ પાત્રમાં જેટલું ધાન્ય સમાઈ શકે તેમ હોય એટલું જ ધાન્ય તેમાં ભરી શકાય છે, પરન્તુ જો તેથી વધારે ધાન્ય તેમાં નાખવામાં આવે તો તે પાત્ર માંથી બહાર નીકળી જાય છે, એજ પ્રમાણે છ માસથી વધારે માસના પ્રાયશ્ચિત્તની જે અનારોપણા છે તેનું નામ જ "ઝોષ" છે છ માસથી અધિક સમયના પ્રાયશ્ચિત્તનો અભાવ હોવાને કારણે, તે આરોપણા (છ માસના પ્રાયશ્ચિત્ત રૂપ આરોપણા) પૂર્ણ હોવાને કારણે તેને 'કૃત્સ્ના આરોપણા' કહે છે 'જેમાં છ મહીનાથી વધારે અવધિનું પ્રાયશ્ચિત્તની આરોપણા કરવામાં આવતી નથી તે અપરિપૂર્ણ હોવાથી 'અકૃત્સ્ના આરોપણા કહેવાય છે હાડહડા આરોપણા' આ પ્રકારની છે—જે અપરાધીને લઘુમાસ, ગુરુમાસ આદિ પ્રાયશ્ચિત્તોમાંથી જે પ્રાયશ્ચિત્ત દેવાનું હોય તે પ્રાયશ્ચિત્ત એજ કાળે તે અપરાધીમાં આરોપિત કરવામાં આવે છે, તેથી તે આરોપણાને

न्नारोप्यते इति सा 'हाडहडा' इत्युच्यते । कृतापराधस्य सद्य एव यत्प्रायश्चित्तारोपणा सा 'हाडहडे'ति भावः ॥सू० २३॥

संयतासंयतसम्बन्धितया सूत्राणि प्रागभिहितानि, तत्र संयतासंयतगतवस्तुविशेषाः प्रोक्ताः, तेषां व्यतिकरस्तु मनुष्यक्षेत्र एव भवतीति मनुष्यक्षेत्रस्थान् पदार्थविशेषानाह—

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महानईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते, १ चित्तकूडे २ पम्हकूडे ३ णलिणकूडे ४ एगसेले ५ ॥१॥ जंबू मंदरस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महानईए दाहिणेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—तिकूडे १ वेसमणकूडे २ अंजणे ३ मायंजणे ४ सोमणसे ५ ॥२॥ जंबू मंदरस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए दाहिणेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—विज्जुप्पभे १ अंकावई २ पम्हावई ३ आसीविसे ४ सुहावहे ५ ॥ ३ ॥ जंबू मंदरस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चंदपव्वए १ सूरपव्वए २ णागपव्वए ३ देवपव्वए ४ गंधमायणे ५ ॥४॥ जंबूमंदरदाहिणेणं देवकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—निसहद्दहे १ देवकुरुद्दहे २ सूरद्दहे ३ सुल-

---

आरोपित किया जाता है, इसलिये यह "हाडहडा" कही गई है, तात्पर्य यह है, कि जिसने जो अपराध किया है, उस अपराधकी उसी समय जो प्रायश्चित्तकी आरोपणा है, वह हाडहडाआरोपणा है सू. २३॥

"હાડહડા" કહી છે એટલે કે જેણે જે અપરાધ કર્યો હોય તે અપરાધના પ્રાયશ્ચિત્તની એજ સમયે જે આરોપણા કરવામાં આવે છે તેને "હાડહડા આરોપણા" કહી છે ॥ સૂ ૨૩ ॥

सदहे ४ तिञ्जुप्पमदहे ५ ॥५॥ जंबू मंदरस्स उत्तरकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा-नीलवंतदहे १ उत्तरकुरुदहे २ चंददहे ३ एरावणदहे ४ मालवंतदहे ५॥६॥ सव्वे वि णं वक्खारपव्वया सीया सीओयाओ महाणईओ मंदर वा पव्वयतेणं पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं ॥७॥ धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा-मालवंते, एवं जहा-जंबूदीवे तहा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वक्खारा दहा य उच्चत्तं भाणियव्वं। समयखेत्ते णं पंच भरहाइं पंच एरवयाइं एवं जहा चउट्ठाणे बिइयउद्देसे तहा एत्थ वि भाणियव्वं जाव पंच मंदरा पंच मंदरचूलियाओ, णवरं उसुयारा णत्थि ॥सू० २४॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-माल्यवान्, १ चित्रकूटः, २ पद्मकूटः, ३ नलिनकूटः, ४ एकशैलः ५ ॥१॥

संयत असंयतके सम्बन्धके सूत्र सूत्रकारने पहिले कह दिये हैं, उनमें संयत असंयत गत जो वस्तुविशेष कहे गये हैं, उनका व्यतिकर सम्बन्ध या सद्भावतो मनुष्यक्षेत्रमेंही होता है, इस कारण अब सूत्रकार मनुष्यक्षेत्रस्थ पदार्थ विशेषोंका कथन करते हैं—

સંયત અને અસંયત વિષયક સૂત્રની પ્રરૂપણા સૂત્રકારે પહેલાં કરી છે તે સૂત્રોમાં સંયત અસંયત જે વસ્તુવિશેષ કહેવામાં આવેલ છે તેમનો વ્યતિકર સંબંધ અથવા સદ્ભાવ તો મનુષ્યક્ષેત્રમાં જ સંભવી શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર મનુષ્યક્ષેત્રમાં રહેલા કેટલાક પદાર્થવિશેષોનું કથન કરે છે—

जम्बू मन्दरस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या दक्षिणे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—त्रिकूटः १, वैश्रमणकूटः, २ अञ्जनः, ३ मायाञ्जनः, ४ सौमनसः ५ ॥२॥ जम्बूमन्दरस्य पाश्चात्ये सीतोदाया महानद्या दक्षिणे पञ्च वक्षस्कार पर्वताः प्रज्ञप्ताः तद्यथा विद्युत्प्रभः १, अङ्कावती, २ पद्मावती ३, आशीविषः ४, सुखावहः ५ ॥३॥ जम्बू मन्दरस्य पाश्चात्ये सीतोदाया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-चन्द्रपर्वत, १ सूरपर्वत, २ नागपर्वतः, ३ देवपर्वतः, ४ गन्धमादनः ५ ॥४॥

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स इत्यादि सू० २४ ॥

सूत्रार्थ–जंबूद्वीप नामके इस द्वीपमें मन्दर(मेरु) पर्वतकी पूर्वदिशामें सीता महानदीकी उत्तर दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकारसेहैं–माल्यवान्१ चित्रकूट २ पद्मकूट३ नलिनकूट४ और एकशैल५। जम्बूद्वीपस्थ मन्दर (मेरु) पर्वतकी पूर्व दिशामें सीता महानदीकी दक्षिण दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं–उनके नाम इस प्रकारसे हैं–त्रिकूट १ वैश्रमण कूट २ अञ्जन ३ मायाञ्जन ४ और सौमनस ५

जम्बूद्वीपस्थ महामन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीकी दक्षिण दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं–उनके नाम इस प्रकारसे हैं–विद्युत्प्रभ १ अङ्कावती २ पद्मावती ३ आशीविष ४ और सुखावह ५ जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीकी उत्तर दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे–चन्द्रपर्वत १ सूर पर्वत २ नाग पर्वत ३ देवपर्वत ४ और गन्धमादन पर्वत ५

"जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–જબૂદ્વીપ નામના આ દ્વીપમા મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં વહેતી સીતા મહાનદીની ઉત્તર દિશામા પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) માલ્યવાન્, (૨) ચિત્રકૂટ, (૩) પદ્મકૂટ, (૪) નલિનકૂટ અને (૫) એકશૈલ

જબૂદ્વીપમા આવેલા મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામા વહેતી સીતા મહાનદીની દક્ષિણ દિશામા પાચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે તેમના નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) ત્રિકૂટ, (૨) વૈશ્રમણકૂટ, (૩) અંજન, (૪) માયાજન અને (૫) સૌમનસ.

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામા આવેલી સીતોદા મહાનદીની દક્ષિણ દિશામા પાચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) વિદ્યુત્પ્રભ, (૨) અંકાવતી, (૩) પદ્માવતી, (૪) આશીવિષ અને (૫) સુખાવહ

सदहे ४ तिगुंछदहे ५ ॥५॥ जंबू मंदरस्स उत्तरकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा-नीलवंतदहे १ उत्तरकुरुदहे २ चंददहे ३ एरावणदहे ४ मालवंतदहे ५॥६॥ सव्वे वि णं वक्खारपव्वया सीया सीओयाओ महाणईओ मंदर वा पव्वयतेणं पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं ॥७॥ धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा-मालवंते, एवं जहा-जंबूदीवे तहा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वक्खारा दहा य उच्चत्तं भाणियव्वं। समयखेत्ते णं पंच भरहाइं पंच एरवयाइं एवं जहा चउट्ठाणे बिइयउद्देसे तहा एत्थ वि भाणियव्वं जाव पंच मंदरा पंच मंदरचूलियाओ, णवरं उसुयारा णत्थि ॥सू० २४॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-माल्यवान्, १ चित्रकूटः, २ पद्मकूटः, ३ नलिनकूटः, ४ एकशैलः ५ ॥१॥

संयत असंयतके सम्बन्धके सूत्र सूत्रकारने पहिले कह दिये हैं, उनमें संयत असंयत नाम जो वस्तुविशेष कहे गये हैं, उनका व्यतिकर सम्बन्ध या सद्भावको मनुष्यक्षेत्रमें ही होता है, इस कारण अब सूत्रकार मनुष्यक्षेत्रस्थ पदार्थ विशेषोंका कथन करते हैं—

સંયત અને અસંયત વિષયક સૂત્રની પ્રરૂપણા સૂત્રકારે પહેલાં કરેલી છે તે સૂત્રોમાં સંયત અસંયત જે વસ્તુવિશેષ કહેલ માં આવેલ છે તેમનો વ્યતિકર સંબંધ અથવા સદ્ભાવ તો મનુષ્યક્ષેત્રમાં જ સંભવી શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર મનુષ્યક્ષેત્રમાં રહેલા કેટલાક પદાર્થવિશેષોનું કથન કરે છે—

पर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—माल्यवान् एवं यथा जम्बूद्वीपे तथा यावत् पुष्करवर द्वीपार्द्धपाश्चात्यार्द्धे वक्षस्कारा ह्रदाश्च उच्चत्वं भणितव्यम् ॥८॥ समयक्षेत्रे खलु पञ्चभरतानि पञ्च ऐरावतानि। एवं यथा चतुःस्थाने द्वितीयोद्देशे तथा अत्राऽपि भणितव्यं यावत् पञ्च मन्दराः पञ्च मन्दरचूलिकाः। नवरम् इषुकारा न सन्ति॥सू०२४॥

टीका—' जंबुद्दीवे ' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा, तथापि किंचिदत्र लिख्यते-वक्षसि=मध्ये गोप्यं क्षेत्रं द्वौ संभूय कुर्वन्ति ये ते वक्षस्कारा गजदन्तापरपर्यायाः पर्वतविशेषाः। ते च माल्यवतो गजदन्तकाद् प्रदक्षिणया चतुर्दिक्षु वर्तमानाः चतुःसूत्रोक्ता विंशतिसंख्यकाः

प्रकारसे हैं—माल्यवान् इत्यादि इनका नाम जैसा जम्बूद्वीपके प्रकरणमें कहा गया है, वैसाही है, पुष्करवरद्वीपार्द्धमें और पाश्चात्यार्द्धमें वक्षस्कारों का ह्रदों का और इन की - वक्षस्कार पर्वतों की ऊंचाई का कथन पहिले की तरहसेही कहना चाहिये। समय-क्षेत्रमें पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्रहैं। चतुःस्थानमें द्वितीय उद्देशे में जैसा कहा गया है, वैसा यहां पर भी कह लेना चाहिये यावत् पांच मन्दर और पांच मन्दर चूलिकाएँ हैं, विशेषता केवल इतनीसीही है, कि इषुकार नहीं हैं।

टीकार्थ-इसकी व्याख्या सुगम है, तब भी कुछ इस विषयमें लिखा जाता है, वक्षस्कार पर्वतोंका दूसरा नाम गजदन्त भी है, यह विशेष पर्वत है। इनका वक्षस्कार ऐसा नाम इसलिये हुआ है कि ये दो एकत्रित होकर अपने मध्यमें क्षेत्रको गोप्य करते हैं। ये माल्यवान्

માલ્યવાન્ ઇત્યાદિ નામ જબૂદ્રીપના પ્રકરણમાં ઉપર કહ્યા અનુસાર સમજવા. પુષ્કરવરદ્વીપાર્ધમાં અને પશ્ચિમાર્ધમા વક્ષસ્કારોનુ, હ્રદોનુ અને વક્ષસ્કાર પર્વતની ઊંચાઇનુ કથન આગળના કથન પ્રમાણે જ સમજવું સમયક્ષેત્રમા પાંચ ભરત અને પાંચ ઐરવતક્ષેત્ર છે ચતુઃસ્થાનકના બીજા ઉદ્દેશામા તેમને વિષે જેવું કથન કરવામા આવ્યુ છે એવું જ કથન અહીં પણ કરવું જોઇએ.

આ રીતે "પાંચ મન્દર અને પાંચ મન્દર ચૂલિકાઓ છે," ત્યાં સુધીનું કથન ગ્રહણ કરવુ જોઇએ. અહી કેવળ એટલી જ વિશેષતા છે કે અહીં ઇષુકારનો સદ્ભાવ નથી

ટીકાર્થ–આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ હોવા છતા પણ અહી તેમનું થોડું સ્પષ્ટીકરણ કરવામા આવે છે વક્ષસ્કાર પર્વતોનું બીજુ નામ ગજદન્ત પણ છે. તે પર્વતોને વક્ષસ્કાર કહેવાનું કારણ એ છે કે તે બે પહાડો એકત્ર થઇને તેમની વચ્ચેના ક્ષેત્રને ગોપ્ય (અદૃશ્ય) કરે છે. તેઓ માલ્યવાન્

जम्बू मन्दरस्य दक्षिणे देवकुरौ कुरौ पञ्च महाह्रदा प्रज्ञप्ताः तद्यथा-निषध ह्रदः १, देवकुरुह्रद, २ सूरह्रद, ३ सुलसह्रदः ४ विद्युत्प्रभ ह्रद ५ ॥५॥ जम्बू मन्दरस्योत्तरकुरुषु कुरुषु पञ्च महाह्रदाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-नीलवद् ह्रदः, १ उत्तर-कुरुह्रदः, २ चन्द्रह्रद, ३ ऐरावणह्रदः, ४ माल्यवद् ह्रदः ५ ॥६॥ सर्वेऽपि खलु वक्षस्कारपर्वताः सीता सीतोदे महानद्यौ मन्दर वा पर्वत प्रति पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन पञ्च गव्यूतिशतानि उद्वेधेन ॥७॥ धातकीखण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्द्धे खलु मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कार

जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें देवकुरुमें पांच महाहृद कहे गयेहैं-इनके नाम इस प्रकारसेहैं-निषध हृद (ह्रद) १ देवकुरु ह्रद२ सूर ह्रद ३ सुलस हृद ४ और विद्युत्प्रभ ह्रद ५। जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्वतके उत्तर कुरुमें पांच महाहृद कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं नीलवत् हृद १ उत्तरकुरु हृद २ चन्द्र ह्रद ३ ऐरावण ह्रद ४ और माल्यवद् ह्रद ५ समस्त वक्षस्कार पर्वत सीता सीतोदा महानदियोंकी तरफ और मन्दर पवतकी तरफ पांचसौ योजन ऊंचे हैं और उद्वेधसे (भूमिके अन्दर गहराईमें) पांचसौ गव्यूति (दो कोस) प्रमाण हैं।

धातकी खण्ड द्वीपमें पौरस्त्यार्धमें मन्दर(मेरु)पर्वतके पूर्वदिशामें सीता महानदीके उत्तरमें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं उनके नाम इस

જબૂદ્વીપના મન્દર પવતની પશ્ચિમ દિશામાં આવેલી સીતોદા મહા નદીની ઉત્તર દિશામા પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ચન્દ્ર પર્વત (૨) સૂર પવત, (૩) નાગ પવત (૪) દેવ પર્વત અને (૫) ગ ધમાદન પર્વત.

જબૂદ્વીપમાં આવેલા મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં આવેલા દેવકુરુમાં પાંચ મહાહ્રદ છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) નિષધ હ્રદ (૨) દેવકુરુ હ્રદ, (૩) સૂર હ્રદ, (૪) સુલસ હ્રદ અને (૫) વિદ્યુત્પ્રભ હ્રદ

જબૂદ્વીપના મન્દર પવતની ઉત્તર દિશામાં આવેલા ઉત્તરકુરુમાં પણ નીચે પ્રમાણે પાંચ મહાહ્રદ છે—(૧) નીલવત્ હ્રદ (૨) ઉત્તરકુરુ હ્રદ (૩) ચન્દ્ર હ્રદ, (૪) ઐરાવણ હ્રદ અને (૫) માલ્યવત્ હ્રદ

સમસ્ત વક્ષસ્કાર પવતો સીતા અને સીતોદા મહાનદીઓની તરફ અને મન્દર પવતની તરફ ૫૦૦ યોજન ઊંચા છે, અને તેમનો ઉદ્વેધ (જમીનની અંદરની ઊડાઈ) ૫૦૦ ગ વ્યૂતિપ્રમાણ છે

ધાતકીખડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધમાં મન્દર પવતની પૂવ દિશામાં સીતા મહા નદીની ઉત્તરે પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે

विस्तीर्णो वेदिकावनषण्डद्वयवेष्टितो दश योजनानि भूमिमवगाढोऽर्द्धयोजन बाहल्यैकयोजनविष्कम्भात्मकेन नानामणिमयेन दशयोजननालेन अर्द्धयोजन-विस्तीर्णक्रोशोच्छ्रितकर्णिकायुक्तेन निषधनामकदेवनिवासभूतभवनविभूषित मध्येन तदर्द्धप्रमाणयुक्तैरष्टोत्तरशतसंख्यकैः पद्मैः तदितरैश्च सामानिकादि देवनिवासभूतैरनेकलक्षैः पद्मैः समन्तात् सपरिक्षिप्तेन महापद्मेन विराजन्मध्य-भागो निषधो नाम महाह्रदः। एवं देवकुरु ह्रदादयोऽपि तत्तद्ध्रदसमानदेव निवासभूता उक्तान्तर्ययुक्ता विज्ञेयाः । अत्रेदं बोध्यम्—नीलवन्महाह्रदः स्वस्वसमान नामकदेवनिवासभूताभ्यां विचित्रकूटचित्रकूटपर्वतवक्तव्यतासदृशवक्त-

---

विस्तारवाला वेदिका वनखण्डद्वयसे वेष्टित हुआ एवं १० योजन तक भूमिमें विस्तृत ऐसा निषध नामका महाह्रद है, यह महाह्रद आठ योजनके बाहल्यवाले एक योजनके विष्कंभवाले नाना मणियोंसे युक्त दश योजनके नालवाले आधे योजनकी विस्तारवाली एव एक कोशकी ऊंची ऐसी कर्णिकासे युक्त एवं जिसका मध्य भाग निषध नाम के देवके निवासभूत भवनसे विभूषित हैं, ऐसे एक महापद्मसे जिसका मध्यभाग विराजित हैं, ऐसा है। यह महापद्म अपने प्रमाणसे आधे प्रमाणवाले ऐसे १०८ पद्मोंसे (कमलों) एवं इनसे अतिरिक्त और भी अनेक लक्ष पद्मोंसे जो कि सामानिक आदि देवोंके निवासभूत हैं, चारों ओरसे घिरा हुआ है, इसी तरहसे देवकुरुह्रद आदि भी अपने २ समाननाम-वाले देवोंके निवासभूत हैं, और युक्त आन्तर्यवाले हैं, ऐसा जानना चाहिये। यहां ऐसा समझना—कि नीलवत् जो महाह्रदहै, वह अपने समान

પહોળાઈવાળુ વેદિકા અને વનખંડદ્વયથી વેષ્ટિત એવુ, અને ૧૦ યોજન સુધી ભૂમિમા વિસ્તૃત એવુ નિષધ નામનુ મહાહ્રદ છે તે મહાહ્રદ આઠ યોજન લાબા, એક યોજન પહોળા, વિવિધ મણિઓથી યુક્ત, ૧૦ યોજનની નાલ વાળા, અર્ધા યોજનની વિસ્તારવાળી અને એક કોશ ઊંચી એવી કર્ણિકાથી યુક્ત અને જેનો મધ્યભાગ નિષધ નામના દેવના નિવાસસ્થાન રૂપ ભવનથી વિભૂષિત છે એવા એક મહાપદ્મથી યુક્ત છે તે મહાપદ્મ, તેના કરતા અર્ધા પ્રમાણવાળા ૧૦૮ પદ્મોથી અને તે સિવાયના બીજા પણ અનેક લક્ષપદ્મોથી ઘેરાયેલુ છે તે પદ્મો સામાનિક આદિ દેવોના નિવાસસ્થાન રૂપ છે એ જ પ્રમાણે દેવકુરુ હ્રદ આદિ હ્રદો પણ તેમના જેવા જ નામવાળા દેવોના નિવાસ-સ્થાન રૂપ છે, અને ઉપર્યુક્ત આન્તર્યવાળા છે એમ સમજવું.

सन्ति। तथा-देवकुरुषु निषधवर्षधरपर्वतात् उत्तरस्यां दिशि सप्तभागविभिन्नस्यैकस्य योजनस्य चतुरो भागान् चतुस्त्रिंशदधिकानि अष्टशतयोजनानि गत्वा शीतोदाया महानद्या पूर्वापरतटवर्तिनौ विचित्रकूटचित्रकूटनामानौ पर्वतौ स्तः। तयोः प्रत्येकपर्वत-उच्चत्वेन योजनसहस्रप्रमाणः, मूले सहस्रयोजनायामविष्कम्भयुक्तः, उपरितनप्रदेशे च पञ्चशतयोजनायामविष्कम्भयुक्तः। तौ च पर्वतौ प्रासादपरिमण्डितौ स्व स्वनामसदृशविचित्रकूटचित्रकूटनामक देव निवासभूतौ विज्ञेयौ। ततस्ताभ्यां पर्वताभ्यां पूर्वोक्तान्तर्ययुक्तः शीतोदा महानदी मध्यभागवर्ती दक्षिणोत्तरत सहस्रयोजनान्यायतः पूर्वापरत पञ्चशतयोजनानि

गजदन्तसे प्रदक्षिणा करते हुए चारों दिशामें स्थित हैं। यहां चारों सूत्रों द्वारा ये बीस कहे गये हैं। तथा-देवकुरुओंमें निषध वर्षधर पर्वतसे उत्तर दिशामें एक योजनके सात भागमेंसे चार भाग अधिक ८३४ योजन तक आगे जाकर शीतोदा महानदीके पूर्व और पश्चिम तट पर स्थित विचित्रकूट और चित्रकूट नामके दो पर्वत हैं। इनमें प्रत्येक पर्वतकी ऊंचाई १ हजार योजनकी है, मूलमें प्रत्येक पर्वतका आयाम और विष्कंभ एक हजार योजनका है, और ऊपरका इनका प्रदेश पांचसौ योजनका लम्बा चौड़ा है, ये दोनों पर्वत प्रासादोंसे मण्डित हैं, और अपने २ नामके जैसे विचित्रकूट एवं चित्रकूट नामवाले देवोंके ये निवासस्थानरूप हैं। इन दोनों पर्वतोंसे आगे पूर्वोक्त आन्तर्यसे युक्त शीतोदा महानदीके मध्य भागमें रहा हुआ दक्षिणसे उत्तर तक एक हजार योजनका आयामवाला पूर्वसे पश्चिम तक पांचसौ योजनका

ગજદન્તની પ્રદક્ષિણા કરતા હોય એવી રીતે તેની ચારે દિશાઓમાં આવેલા છે અહીં ચાર સૂત્રો દ્વારા એવાં ૨૦ વક્ષસ્કાર પર્વતો પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં છે તથા દેવકુરુઓમાં નિષધ વર્ષધર પર્વતથી ઉત્તર દિશામાં ૮૩૪/૪/૭ યોજનપ્રમાણ અંતરે શીતોદા મહાનદીના પૂર્વ અને પશ્ચિમ તટપર વિચિત્રકૂટ અને ચિત્રકૂટ નામના બે પર્વતો છે તે પ્રત્યેક પર્વતની ઊંચાઈ ૧ હજાર યોજનની છે તેમના મૂળભાગની લંબાઈ-પહોળાઈ ૧૦૦૦ યોજનની અને શિરોભાગની લંબાઈ-પહોળાઈ ૫૦ યોજનની કહી છે તે બન્ને પર્વતો પ્રાસાદોથી મંડિત છે તે પર્વતો વિચિત્રકૂટ અને ચિત્રકૂટ નામના દેવોના નિવાસસ્થાન રૂપ છે આ બન્ને પર્વતોથી આગળ જતા પૂર્વોક્ત આન્તર્યથી યુક્ત શીતોદા મહાનદીના મધ્યભાગમાં રહેલુ દક્ષિણથી ઉત્તરમાં ૧૦૦૦ યોજનના આયામ (લંબાઈ) વાળુ અને પૂર્વથી પશ્ચિમમાં ૫૦ યોજનની

'सव्वे वि णं' इत्यादि। सर्वेऽपि जम्बूद्वीपादि सम्बन्धिनो वक्षस्कारपर्वताः सीता सीतोदे महानद्यौ पुनः मन्दरं पर्वतं च 'तेण' ते द्वे खलु नदी पर्वते लक्षणी कृत्य नदीद्वयं मन्दरपर्वतं च प्रतीत्यर्थः एतन्महानदीद्वयदिशि मन्दरपर्वतदिशि चेति भावः, पञ्चयोजनशतानि — ऊर्ध्वमुच्चत्वेन पञ्च गव्यूति शतानि च उद्वेधेन सन्ति। तत्र मन्दरपर्वतदिशि माल्यवत्सौमनस- विद्युत्प्रभगन्धमादननामानश्चत्वारो गजदन्ताकारपर्वताः यथोक्तस्वरूपाः सन्ति। इतोऽन्ये वक्षस्कारपर्वताः सीता सीतोदा महानदी दिशि वर्त्तन्ते, इति। यथा जम्बूद्वीपे यावत्प्रमाणा वक्षस्कारपर्वता महाह्रदाश्च प्रोक्तास्तथैव धातकीखण्डस्य पूर्वार्धेअपरार्द्धे, पुष्करार्द्धस्य पूर्वार्द्धेअपरार्द्धे च बोध्याः। अमुमेवार्थं दर्शयितुमाह सूत्रकारः 'धायइसंडे' इत्यादि 'वक्खारा दहाय उच्चत्तं भाणियव्वं'

लिये सूत्रकार कहते हैं "सव्वे वि णं" इत्यादि—

ये जम्बूद्वीपादि सम्बन्धी जो वक्षस्कार पर्वत हैं वे सब सीता सीतोदा नामकी जो महानदियांहैं, उनकी ओर और मेरुपर्वतकी ओरहैं, अर्थात् इन नदीद्वयकी एवं मन्दरकी दिशामेंहैं। इनकी ऊंचाई इस दिशामें पांचसौ योजन की है और उद्वेध गन्धमादन इनका पांचसौ गव्यूतिका है। मन्दर पर्वतकी दिशामें माल्यवत् सौमनस विद्युत्प्रभ और गन्धमादन नामके चार गजदंत के आकार जैसे पर्वत पूर्वोक्त स्वरूप- वाले हैं। इनसे अन्य वक्षस्कार पर्वत सीता सीतोदा महानदियोंकी दिशामें हैं। जिस प्रकारसे जम्बूद्वीपमें जितने प्रमाणोपेत ये वक्षस्कार पर्वत और महाह्रद कहे हैं, उसी प्रकारसे वे धातकीखण्डके पूर्वार्द्धमें और पश्चिमार्द्धमें पुष्करार्धके पूर्वार्धमें और पश्चिमार्द्धमें भी हैं, ऐसा जानना चाहिये। इसी बातको प्रकट करनेकेलिये सूत्रकारने "धायइ संडे" इत्यादि

"सव्वे वि णं" ઇત્યાદિ—તે વક્ષસ્કાર પર્વતો સીતા અને સીતોદા નામની મહાનદીઓ અને મન્દર પર્વતની દિશામા છે તેમની ઊંચાઈ તે દિશામાં ૫૦૦ યોજનની છે અને તેમનો ઉદ્વેધ (ભૂમિની અંદરનો વિસ્તાર) ૫૦૦ ગવ્યૂતિ પ્રમાણ છે મન્દર પર્વતની દિશામાં માલ્યવત્, સૌમનસ, વિદ્યુત્પ્રભ અને ગન્ધમાદન નામના ગજદન્તના આકાર જેવા પર્વતો પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા છે તે સિવાયના જે અન્ય વક્ષસ્કાર પર્વતો છે, તેઓ સીતા અને સીતોદા મહાનદીઓની દિશામા છે જબૂદ્વીપમા જેટલા પ્રમાણવાળા આ વક્ષસ્કાર પર્વતો અને મહાહ્રદો કહ્યાં છે, એટલા જ પ્રમાણવાળા વક્ષસ્કાર પર્વતો અને મહાહ્રદો ધાતકીખંડના પૂર્વાર્ધમાં, પશ્ચિમાર્ધમાં અને પુષ્કરાર્ધના પૂર્વાર્ધ અને પશ્ચિમાર્ધમા પણ આવેલા છે એ જ વાતને સૂત્રકારે "धायइ

व्यतायुक्ताभ्यां यमकाभिधानपर्वताभ्यामनन्तरं बोध्या । ततो दक्षिणत उत्तरकुरु इदादयश्चत्वारो इदा बोध्या इति । एतेषु सर्वेषु महाहृदेषु एकैको महाह्रदो दशभिर्दशभिः काञ्चनकनामकैः पर्वतैर्युक्तो विज्ञेयः । एते पर्वतास्तु शतयोजनो च्छ्रिता मूले शतयोजनविष्कम्भयुक्ता उपरि पञ्चाशद्योजनविस्तृता स्व समान नामकैर्देवैरधिष्ठिता प्रत्येकं पूर्वापरतो दशयोजनान्तरेण व्यवस्थिता बोध्याः। एते ये चित्रविचित्रकूटादिपर्वतहृदवासिनो देवाः सन्ति, तेषामसंख्येयतमजम्बूद्वीपे द्वादशयोजनसहस्रप्रमाणास्वनामिका नगर्यो भवन्तीति बोध्यम्। एते वक्षस्कारपर्वताः कस्यां दिशि वर्तन्ते ? इति प्ररूपयितुमाह–

नामवाले निवास भूत यमक नामके दो पर्वतोंके अन्तर पाइमें है, इन दोनों पर्वतोंके सम्बन्धकी वक्तव्यता चित्रविचित्रकूट और चित्रकूटकी वक्तव्यता जैसी है इससे दक्षिण दिशामें उत्तरकुरु हृदादि चार हृद हैं। इन समस्त महाहृदोंमें एक एक महाहृद दस दसका काञ्चन नामक पर्वतोंसे युक्त है। ये सब पर्वत १०० योजन हैं। मूलमें भी १०० योजनके ही विस्तारवाले हैं। तथा ऊपरमें इनका विस्तार पांचसौ योजनका है, और ये अपने २ जैसे नामवाले देवोंसे अधिष्ठित हैं, ये प्रत्येक पर्वत पूर्वसे पश्चिम तक १०-१० योजनके अन्तरसे व्यवस्थित हैं। ये चित्रविचित्रकूट आदि पर्वतवासी और हृदवासी जो देव हैं सो इनकी जम्बूद्वीपके असंख्यातवें भागमें १२ योजन प्रमाणवाली उनके नामवाली नगरियां हैं। ये वक्षस्कार पर्वत किस २ दिशामें हैं ? इस बातकी प्ररूपणा करनेके

જેમકે જે નીલવત્ મહાહ્રદ છે તે નીલવત્ નામના દેવના નિવાસ રૂપ છે તે મહાહ્રદ યમક નામના બે પર્વતો પછી આવે છે આ બન્ને પર્વતનુ વર્ણન વિચિત્રકૂટ અને ચિત્રકૂટના વર્ણન પ્રમાણે જ સમજવું તેની દક્ષિણ દિશામાં ઉત્તરકુરુ હ્રદ આદિ ચાર હ્રદ આવેલાં છે તે પ્રત્યેક મહાહ્રદ દસ દસ કાંચન નામના પર્વતોથી યુક્ત છે તે બધા પર્વતો ૧૦૦ યોજનના વિસ્તારવાળા છે તેમનો વિસ્તાર મૂળભાગમાં ૧૦૦ યોજનનો અને ઉપરના ભાગમાં ૫૦ યોજનનો છે, તે પર્વતો તેમના જેવાં જ નામવાળા દેવોથી અધિષ્ઠિત છે તે પ્રત્યેક પર્વત પૂર્વથી પશ્ચિમ સુધી ૧૦-૧૦ યોજનના અંતરે વ્યવસ્થિત છે તે વિચિત્રકૂટ આદિ પર્વતવાસી અને હ્રદવાસી જે દેવો છે તેમની જબૂદ્વીપના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં ૧૨ યોજન પ્રમાણવાળી નગરીઓ છે તે નગરીઓના નામો તે દેવોનાં નામ જેવાં જ છે તે વક્ષસ્કાર પર્વતો કઈ કઈ દિશામાં છે, તે સૂત્રકાર હવે પ્રકટ કરે છે

अनन्तर मनुष्यक्षेत्रस्थानि पर्वतादिरूपाणि वस्तूनि प्रोक्तानि, सम्प्रति तद-धिकारादेव भरतक्षेत्रस्य वर्तमानावसर्पिणीभूषणानाम् ऋषभादीनां सम्बधिकं किंचित् प्ररूपयति—

मूलम्—उसभेणं अरहा कोसालिए पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंच धणुसयाइं उड्ढंउच्चत्तेणं होत्था । बाहुबली णं अणगारे एवंचेव । बंभी णामं अज्जा एवं चेव । एवं सुंदरी वि ॥ सू० २५ ॥

छाया—ऋषभः खलु अर्हन् कौसलिकः पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेनाभवत् । भरतः खलु राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेनाभवत् । बाहुबली खलु अनगार एवमेव । ब्राह्मी नामार्या एवमेव । एवं सुन्दरी अपि २५॥

टीका—' उसभेण ' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरं कोसले भवः कौसलिकः=कोसलदेशोत्पन्नः। ऋषभः= आदिजिनः । भरतादयश्च तदपत्यानि बोध्यानि ॥सू० २५ ॥

चाहिये, इसीलिये वे " णवर उसुयारा नत्थि " इस सूत्रपाठसे वर्जित किये गये हैं ॥ सू० २४ ॥

इस प्रकारसे मनुष्यक्षेत्रस्थित पर्वतादिरूप वस्तुओंका कथन कर अब सूत्रकार इसी अधिकारको लेकर भरतक्षेत्रमें वर्तमान अवसर्पिणी कालके भूषणरूप जो ऋषभादि हुए हैं, उनसे सम्बन्धित थोडासा कथन करते हैं । " उसभेणं अरहा कोसलिए पंच " इत्यादि—

टीकार्थ—कोसल देशमें उत्पन्न हुए ऋषभदेव अर्हन्त पांचसौ धनुष ऊंचे थे भरत राजा जो कि चातुरन्त चक्रवर्ती थे। पांचसौ धनुष ऊंचे थे और

કરવુ જોઈએ નહી " णवर उसुयारा नत्थि " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા એ જ વાત પ્રકટ કરવામા આવી છે કે ઇષુકાર પર્વત ચાર જ હોવાથી તેમનુ કથન અહીં કરવુ જોઇએ નહીં ॥ સૂ ૨૪ ॥

આ પ્રકારે મનુષ્યક્ષેત્રના પર્વત આદિનુ કથન કરીને હવે સૂત્રકાર ભરતક્ષેત્રમાં વર્તમાન અવસર્પિણીકાળના ભૂષણ રૂપ જે ઋષભદેવ આદિ પુરુષો થયા હતા તેમને વિષે થોડુ કથન કરે છે

" उसमेण अरहा कोसलिए पच " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—કૌશલ દેશમાં ઉત્પન્ન થયેલા ઋષભદેવ જિનેશ્વરની ઊંચાઈ ૫૦૦ ધનુષપ્રમાણ હતી ચાતુરન્ત ચક્રવર્તી ભરત રાજા પણ ૫૦૦ ધનુષપ્રમાણ ઊંચા હતા બાહુબલી અણગાર, બ્રાહ્મી આર્યા અને સુંદરીની ઊંચાઈ પણ એટલી જ

इत्यन्तमिति। सम्प्रति भरतादीनि क्षेत्राणि, तत्रस्थितपर्वतादीश्च पश्चस्थानत्वेन प्ररूपयितुमाह—' समयक्खेत्तेणं ' इत्यादि समयक्षेत्रे समय =आदित्यगतिसम भिव्यज्यमानऋत्वयनादिकालः, तद्युक्तं क्षेत्रं समयक्षेत्रं, मनुष्यक्षेत्रमित्यर्थः, तस्मिन् पञ्च भरतानि पञ्च ऐरवतानि, यावत्करणात् पञ्च हैमवतानि पञ्च हैरण्य वतानि, एवमितोऽन्यान्यपि क्षेत्राणि भावनीयानि, तथा तत्र 'शब्दापातिन पर्व तानारभ्य पञ्च मन्दराः पञ्च मन्दरचूलिका ' इत्यन्तः सर्वोऽपि पाठश्चतुःस्थानक द्वितीयोद्देशकवद् वाच्य । परन्तु इषुकारपर्वताश्चत्वार एव सन्ति, अतस्तेऽत्र न वाच्याः। अत एवाह—' णवर उसुयारा नत्थि ' इति ॥सू० २१॥

सूत्रसे लेकर 'वक्खारा दहा य उक्स्स माणियव्वं" यहां तक सूत्र कहाहै।

अब सूत्रकार समयक्षेत्रमें अढाइद्वीप मनुष्यक्षेत्रमें भरतादि क्षेत्रोंकी और उसमें रहे हुए पर्वत आदिकोंकी प्ररूपणा पांचस्थानकसे करते हुए कहते हैं कि " समयक्खेत्तेणं " इत्यादि—

आदित्यकी गतिसे प्रकट होने योग्य ऋतु अयन आदि रूप समय से युक्त जो क्षेत्र है वह समयक्षेत्रहै, ऐसा समयक्षेत्र मनुष्यक्षेत्र ढाई द्वीप हैं। इन मनुष्यक्षेत्रमें पांच भरत पांच ऐरवत यावत्–पांच हैमवत पांच हैरण्यवत और इनसेभी अन्य औरभी क्षेत्र हैं, तथा शब्दापाती पर्वतोंसे लेकर पांच मन्दर और पांच मन्दर चूलिकाएँ हैं। इत्यादि यहां तकका सब पाठ चतुर्थ स्थानकके द्वितीय उद्देशककी तरहसे कह लेना चाहिये। परन्तु इषुकार पर्वत चारही हैं, अतः वे यहां नहीं कहना

सुधी " थी लधने " वक्खारा दहाय उक्कस माणियव्वं ' आ सूत्रपाठ पर्यन्तना सूत्रोनु कथन करी छे

हवे सूत्रकार समयक्षेत्रमां (मनुष्यक्षेत्रमां) रहेलां भरतादि क्षेत्रोनी अने तेमां आवेला पर्वतादिकोनी पांच स्थानकनी अपेक्षाए प्ररूपणा करे छे

' समयक्खेत्तेणं " इत्यादि—सूर्यनी गति वडे प्रकट थतां ऋतु अयन आदि रूप समयथी युक्त जे क्षेत्र छे तेने समयक्षेत्र कहे छे एवुं समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) अढी द्वीप छे आ मनुष्यक्षेत्रमां पांच भरत, पांच ऐरवत यावत् पांच हैमवत पांच हैरण्यवत अने ते सिवायना बीजा क्षेत्रो पण छे वळी त्यां शब्दापाती पर्वतोथी लईने पांच मन्दर अने पांच मन्दर चूलिकाओ पर्यन्तनु बधु छे चोथा स्थानकना बीजा उद्देशामां आ विषयने अनुलक्षीने जेवु कथन करवामां आव्युं छे तेवु कथन अहीं पण ग्रहण करवु जोईए, परन्तु ईषुकार पर्वत चार ज छे तेथी अहीं तेमनु कथन

अनन्तर मनुष्यक्षेत्रस्थानि पर्वतादिरूपाणि वस्तूनि प्रोक्तानि, सम्प्रति तद्धिकारादेव भरतक्षेत्रस्य वर्तमानावसर्पिणीभूषणानाम् ऋषभादीनां सम्बधिकं किंचित् प्ररूपयति—

मूलम्—उसभेणं अरहा कोसलिए पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंच धणुसयाइं उड्ढउच्चत्तेणं होत्था। बाहुबली णं अणगारे एवंचेव। बंभी णामं अज्जा एवं चेव। एवं सुंदरी वि॥ सू० २५॥

छाया—ऋषभः खलु अर्हन् कौसलिकः पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेनाभवत्। भरतः खलु राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेनाभवत्। बाहुबली खलु अनगार एवमेव। ब्राह्मी नामार्या एवमेव। एवं सुन्दरी अपि २५॥

टीका—'उसभेण' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा। नवरं कोसले भवः कौसलिकः=कोसलदेशोत्पन्नः। ऋषभः= आदिजिन। भरतादयश्च तदपत्यानि बोध्यानि॥सू० २५॥

चाहिये, इसीलिये वे "णवरं उसुयारा नत्थि" इस सूत्रपाठसे वर्जित किये गये हैं॥ सू० २४॥

इस प्रकारसे मनुष्यक्षेत्रस्थित पर्वतादिरूप वस्तुओंका कथन कर अब सूत्रकार इसी अधिकारको लेकर भरतक्षेत्रमें वर्तमान अवसर्पिणी कालके भूषणरूप जो ऋषभादि हुए हैं, उनसे सम्बन्धित थोडासा कथन करते हैं। "उसभेणं अरहा कोसलिए पंच" इत्यादि—

टीकार्थ—कोसल देशमें उत्पन्न हुए ऋषभदेव अर्हन्त पांचसौ धनुष ऊंचे थे भरत राजा जो कि चातुरन्त चक्रवर्ती थे। पांचसौ धनुष ऊंचे थे और

કરવું જોઈએ નહી "णवर उसुयारा नत्थि" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા એ જ વાત પ્રકટ કરવામા આવી છે કે ઈષુકાર પર્વત ચાર જ હોવાથી તેમનું કથન અહીં કરવુ જોઇએ નહીં ॥ સૂ. ૨૪ ॥

આ પ્રકારે મનુષ્યક્ષેત્રના પર્વત આદિનુ કથન કરીને હવે સૂત્રકાર ભરતક્ષેત્રમાં વર્તમાન અવસર્પિણીકાળના ભૂષણ રૂપ જે ઋષભદેવ આદિ પુરુષો થયા હતા તેમને વિષે થોડુ કથન કરે છે

"उसमेण अरहा कोसलिए पच" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ—કૌશલ દેશમાં ઉત્પન્ન થયેલા ઋષભદેવ જિનેશ્વરની ઊંચાઈ ૫૦૦ ધનુષપ્રમાણ હતી ચાતુરન્ત ચક્રવર્તી ભરત રાજા પણ ૫૦૦ ધનુષપ્રમાણ ઊંચા હતા બાહુબલી અણગાર, બ્રાહ્મી આર્યા અને સુંદરીની ઊંચાઇ પણ એટલી જ

उपरि निर्दिष्टाः सर्वेऽपि बुद्धाः । बुद्धश्च जीवो भावतो मोहक्षयाद्, द्रव्य तश्च निद्राक्षयात् भवतीति द्रव्यबोध कारणत उपदर्शयति—

मूलम्—पचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा, त जहा सद्देणं १ फासेणं २ भोयणपरिणामेणं ३ णिद्दक्खएणं ४ सुविणदसणेणं ५ ॥ सू० २६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः सुप्तो विबुध्येत, तद्यथा-शब्देन १ स्पर्शेन २ भोजनपरिणामेन ३ निद्राक्षयेण ४ स्वप्नदर्शनेन ५ ॥ सू० २६॥

टीका—' पचहिं ' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः सुप्तो जीवो विबुध्येत=जागरितो भवेत् । तद्यथा-तद्यथाहि-शब्देन=कस्यचित् शब्दं श्रुत्वा १, स्पर्शेन=कस्यचित् स्पर्शमुपलभ्य २,

बाहुबली अनगार ब्राह्मी भार्या एवं सुन्दरी भी इतनी ही ऋषी थीं, ऋषभदेव सर्व प्रथम तीर्थंकर हैं । भरत बाहुबली आदि सब इनकी सतान पुत्रपुत्री हैं ॥ सू० २५ ॥

ये ऊपरमें कहे गये ऋषभादिक सब बुद्ध थे, जीव बुद्ध जो होता है वह भावसे मोहके क्षयसे और द्रव्यसे निद्राके क्षयसे होता है। इसलिये सूत्रकार अब कारणको लेकर द्रव्यबोधका कथन करते हैं।

" पचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा " इत्यादि—

सुप्त जीव पांच कारणोंसे जागरित हो सकता है, वे पांच कारण ये हैं—शब्द १, स्पर्श २, भोजन परिणाम ३, निद्राक्षय ४ और स्वप्न दर्शन ५ । किसीके शब्दको सुनकर १ किसीके स्पर्शको उपलब्ध कर

હતી ઋષભદેવ સૌથી પહેલા તીર્થંકર થઈ ગયા અને ભરત, બાહુબલી, બ્રાહ્મી અને સુંદરી તેમનાં પુત્રપુત્રી હતાં. ॥ સૂ. ૨૫ ॥

ઉપર જેમનુ વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, તે ઋષભાદિ બુદ્ધ હતા ભાવની અપેક્ષાએ મોહના ક્ષયથી અને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ નિદ્રાના ક્ષયથી જ જીવ બુદ્ધ થઈ શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર દ્રવ્યબોધના કારણોનુ નિરૂપણ કરે છે

' પચહિં ઠાણેહિં સુત્તે વિબુજ્ઝેજ્જા ' ઇત્યાદિ—

સુપ્ત જીવ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે જાગૃત થઈ શકે છે—(૧) શબ્દ, (૨) સ્પર્શ (૩) ભોજનપરિણામ, નિદ્રાક્ષય અને (૫) સ્વપ્ન દર્શન

કોઈનો અવાજ સાંભળીને અથવા કોઈ વ્યક્તિ દ્વારા શરીરનો સ્પર્શ થવાથી સૂતેલો વ્યક્તિ જાગી જાય છે એ જ પ્રમાણે ભૂખને કારણે પણ તે

भोजनपरिणामेन=भोजनपरिपाकेन—वुभुक्षयेत्यर्थः ३, तथा निद्राक्षयेण=निद्राया अपगमेन ४, स्वप्नदर्शनेन चेति ५। जागरणस्य निद्राक्षयः साक्षात्कारणम्, निद्राक्षयस्य च शब्दस्पर्शभोजनपरिणामाः परम्परा कारणम्, अतो जागरणकारणस्य निद्राक्षयस्य हेतुत्वेन शब्दादीन्यपि जागरणकारणानि वोध्यानीति सू०२६॥

इत्थं कारणनिर्देशपुरस्सरं द्रव्यप्रवुद्धमुक्त्वा, सम्प्रति भावप्रवुद्धस्य कारणे सति जिनाज्ञानतिक्रमणतामाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंवमाणे वा णाइक्कमइ, तं जहा—निग्गंथिंच णं अन्नयरे पसुजाइए वा पक्खिजाइए वा ओहाएज्जा, एत्थ णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंवमाणे वा नाइक्कमइ ॥ १ ॥ णिग्गंथे णिग्गंथि दुग्गंसि वा विसमंसि वा पक्खलमाणिं वा पवडमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंवमाणे वा णाइक्कमइ ॥२॥ णिग्गंथे णिग्गंथिं सेयंसि वा पंकंसि वा पणगंसि वा उदगंसि वा उक्कसमाणिं वा उवुज्झमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंव-

सोता हुआ प्राणी जग जाता है, इस प्रकार वह भूखसे भी जग जाता है, तथा निद्राका अपगम हो जावे तो भी वह जग जाता है तथा सोती हुई अवस्थामें स्वप्नके देखनेसे भी जग जाताहै। जागरणका साक्षात्कारण निद्रा क्षयहै और निद्राक्षयके शब्द श्रवण, स्पर्शोपलब्धि एवं भोजन परिणाम—वुभुक्षा ये सब परम्परा कारण हैं। इसलिये जागरणके कारण निद्राक्षयके हेतु होनेसे शब्दादिकोंको भी जागरणकी कारण यहां कहा गया है ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० २६ ॥

જાગી જાય છે, ઊંઘ પૂરી થવાથી પણ તે જાગી જાય છે, અને ઊંઘમા સ્વપ્ન દેખવાથી પણ તે જાગી જાય છે. જાગરણનુ સાક્ષાત્કારણ નિદ્રા છે, અને શબ્દ શ્રવણ, સ્પર્શોપલબ્ધિ, ભૂખ અને સ્વપ્નદર્શન, આ બધાં નિદ્રાક્ષયના પરમ્પરા કારણો છે, તેથી તેઓ જાગૃતિના કરણભૂત નિદ્રાક્ષયમા હેતુરૂપ હોવાથી તેમને પણ જાગરણના કારણ રૂપે અહીં પ્રકટ કરવામા આવ્યા છે, એમ સમજવુ ॥ સૂ. ૨૬ ॥

उपरि निर्दिष्टाः सर्वेऽपि बुद्धा । बुद्धश्च जीवो भावतो मोहक्षयात्, द्रव्य तश्च निद्राक्षयात् भवतीति द्रव्यबोध कारणत उपदर्शयति—

मूलम्—पचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा, त जहा सद्देणं १ फासेणं २ भोयणपरिणामेणं ३ णिद्दक्खएणं ४ सुविणदसणेणं ५ ॥ सू० २६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः सुप्तो विबुध्येत, तद्यथा-शब्देन १ स्पर्शेन २ भोजनपरिणामेन ३ निद्राक्षयेण ४ स्वप्नदर्शनेन ५ ॥ सू० २६॥

टीका—' पचहिं ' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः सुप्तो जीवो विबुध्येत=जागरितो भवेत् । तद्यथा-तथाहि-शब्देन=कस्यचित् शब्दं श्रुत्वा १, स्पर्शनेन=कस्यचित् स्पर्शमुपलभ्य २,

---

बाहुबली अनगार ब्राह्मी आर्या एवं सुन्दरी भी इतनी ही कथी थीं, ऋषभदेव सब प्रथम तीर्थंकर हैं। भरत बाहुबली आदि सब इनकी सन्तान पुत्रपुत्री हैं ॥ सू० २५ ॥

ये ऊपरमें कहे गये ऋषभादिक सब बुद्ध थे, जीव बुद्ध जो होता है वह भावसे मोहके क्षयसे और द्रव्यसे निद्राके क्षयसे होता है। इसलिये सूत्रकार अब कारणको लेकर द्रव्यबोधका कथन करते हैं।

" पंचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा " इत्यादि—

सुप्त जीव पांच कारणोंसे जागरित हो सकता है, वे पांच कारण ये हैं—शब्द १, स्पर्श २, भोजन परिणाम ३, निद्राक्षय ४ और स्वप्न दर्शन ५। किसीके शब्दको सुनकर १ किसीके स्पर्शको उपलब्ध कर

હતી. ઋષભદેવ ચોથી પહેલા તીર્થંકર થઈ ગયા અને ભરત બાહુબલી, બ્રાહ્મી અને સુંદરી તેમનાં પુત્રપુત્રી હતાં ॥ સૂ ૨૫ ॥

ઉપર જેમનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે તે ઋષભાદિ બુદ્ધ હતા ભાવની અપેક્ષાએ મોહના ક્ષયથી અને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ નિદ્રાના ક્ષયથી જ જીવ બુદ્ધ થઈ શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર દ્રવ્યબોધના કારણોનું નિરૂપણ કરે છે

" પંચહિં ઠાણેહિં સુત્તે વિબુજ્ઝેજ્જા " ઇત્યાદિ—

સુપ્ત જીવ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે જાગૃત થઈ શકે છે—(૧) શબ્દ (૨) સ્પર્શ (૩) ભોજનપરિણામ, નિદ્રાક્ષય અને (૫) સ્વપ્ન દર્શન

કોઈનો અવાજ સાંભળીને અથવા કોઈ વ્યક્તિ દ્વારા શરીરનો સ્પર્શ થવાથી સૂતેલો વ્યક્તિ જાગી જાય છે એ જ પ્રમાણે ભૂખને કારણે પણ તે

भोजनपरिणामेन=भोजनपरिपाकेन–बुभुक्षयेत्यर्थः ३, तथा निद्राक्षयेण=निद्राया अपगमेन ४, स्वप्नदर्शनेन चेति ५। जागरणस्य निद्राक्षयः साक्षात्कारणम्, निद्राक्षयस्य च शब्दस्पर्शभोजनपरिणामाः परम्परा कारणम्, अतो जागरणकारणस्य निद्राक्षयस्य हेतुत्वेन शब्दादीन्यपि जागरणकारणानि बोध्यानीति सू०२६॥

इत्थं कारणनिर्देशपुरस्सरं द्रव्यप्रबुद्धमुक्त्वा, सम्प्रति भावप्रबुद्धस्य कारणे सति जिनाज्ञानतिक्रमणतामाह—

मूलम्–पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ, तं जहा–निग्गंथिंच णं अन्नयरे पसुजाइए वा पक्खिजाइए वा ओहाएज्जा, एत्थ णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा नाइक्कमइ ॥१॥ णिग्गंथे णिग्गंथि दुग्गंसि वा विसमंसि वा पक्खलमाणिं वा पवडमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ ॥२॥ णिग्गंथे णिग्गंथिं सेयंसि वा पंकंसि वा पणगंसि वा उदगंसि वा उक्कसमाणिं वा उवुज्झमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंब-

---

सोता हुआ प्राणी जग जाता है, इस प्रकार वह भूखसे भी जग जाता है, तथा निद्राका अपगम हो जावे तो भी वह जग जाता है तथा सोती हुई अवस्थामें स्वप्नके देखनेसे भी जग जाताहै। जागरणका साक्षात्कारण निद्रा क्षयहै और निद्राक्षयके शब्द श्रवण, स्पर्शोपलब्धि एवं भोजन परिणाम–बुभुक्षा ये सब परम्परा कारण हैं। इसलिये जागरणके कारण निद्राक्षयके हेतु होनेसे शब्दादिकोंको भी जागरणकी कारण यहां कहा गया है ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० २६ ॥

જાગી જાય છે, ઊંઘ પૂરી થવાથી પણ તે જાગી જાય છે, અને ઊંઘમાં સ્વપ્ન દેખવાથી પણ તે જાગી જાય છે. જાગરણનું સાક્ષાત્કારણ નિદ્રા છે, અને શબ્દ શ્રવણ, સ્પર્શોપલબ્ધિ, ભૂખ અને સ્વપ્નદર્શન, આ બધાં નિદ્રાક્ષયના પરમ્પરા કારણો છે, તેથી તેઓ જાગૃતિના કારણભૂત નિદ્રાક્ષયમાં હેતુરૂપ હોવાથી તેમને પણ જાગરણના કારણ રૂપે અહીં પ્રકટ કરવામા આવ્યા છે, એમ સમજવું ॥ સૂ. ૨૬ ॥

माणे वा णाइक्कमइ ॥ ३ ॥ णिग्गथे णिग्गथिं नाव आरोहमाणे वा ओरोहमाणे वा णाइक्कमइ ॥ ४॥ खित्तचित्त दित्तचित्त जक्खाइट्ठ उम्मायपत्त उवसग्गपत्त साहिगरणं सपायच्छित्त भत्तपाणपडियाइक्खिय अट्ठजाय वा निग्गथे निग्गथिं गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा णाइक्कमइ ॥ सू० २७॥

छाया:-पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति, तद्यथा-निर्ग्रन्थीं च अन्यतरः पशुजातिको वा पक्षिजातिको वा उपहन्यात्, तत्र निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ॥१॥ निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं दुर्गे वा विषमे वा प्रस्खलन्तीं वा प्रपतन्तीं वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ॥२॥ निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं सेके वा पङ्के वा पनके वा

इस प्रकार कारणके निर्देशपूर्वक द्रव्य प्रवुद्धका कथन करके अब सूत्रकार भाव प्रवुद्धमें कारणके होने पर जिनाज्ञाकी अनतिक्रमणता होती है ऐसा कथन करते हैं।

सूत्रार्थ-" पचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे " इत्यादि—

पांच कारणोंसे श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी साध्वीको सहाय देता हुआ जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है, वे पांच कारण ये हैं-जैसे-किसी साध्वी को कोई पशु-उद्धत हुआ बैल आदि या पक्षिजातिक-गीध आदि चोट पहुंचा देता है और वह गिर पडती है, उठ नहीं सकती है तो ऐसी स्थितिमें अन्य साध्वी जनके अभावमें वहां पर स्थित हुआ साधु

આ પ્રકારે કારણુના નિર્દેશપૂર્વક દ્રવ્યપ્રબુદ્ધનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર એ વાતનું પ્રતિપાદન કરે છે કે અમુક સંયોગોમાં ભાવપ્રબુદ્ધ અમુક પ્રકારે વર્તવાથી જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી.

સૂત્રાર્થ—' પંચહિં ઠાણહિં સમણે ણિગ્ગંથે ' ઇત્યાદિ—

નીચેના પાંચ કારણોમાંથી કોઈ પણ કારણુ ઉદ્ભવે ત્યારે કોઈ શ્રમણ નિગ્રંથ કોઈ નિર્ગ્રંથીને (સાધ્વીજીને) સહારો આપે તો તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી—(૧) કોઈ ઉન્મત્ત આખલો આદિ પશુ કે ગીધ આદિ પક્ષી કોઈ સાધ્વી પર ધસી જઈને તેમને ભૂમિ પર પછાડી નાખે અને તેઓ પોતાની જાતે ઊભાં થવાને સમર્થ ન હોય તથા તેમને ટેકો આપીને ઊભા કરનાર કોઈ અન્ય સાધ્વીજી પણ ત્યાં હાજર ન હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં

उदके वा अवकृष्यमाणां वा अपोह्यमानां वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ॥३॥ निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थी नावमारोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति ॥४॥ क्षिप्तचित्तां दृप्तचित्ता यक्षाविष्टाम् उन्मादप्राप्ताम् उपसर्गप्राप्ताम् साधिकरणां सप्रायश्चित्तां भक्तपानप्रत्याख्याताम् अर्थजातां वा निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ५ ॥सू० २७॥

टीका—' पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन्=बाह्वादौ ग्रहणं कुर्वन् वा अवलम्बमानः=बाह्वादौ गृहीत्वा धारयन् वा, अथवा–' सव्वंगिय तु गहण अवलंवणं तु देसम्मि "

छाया—' सार्वाङ्गिकं तु ग्रहणं करेण अवलम्बनं तु देशे ' इति, गृ न्=सर्वाङ्गे ग्रहणं कुर्वन्, अवलम्बमानः=हस्तादौ धरन् वा नातिक्रामति=नोल्लङ्घयति जिनाज्ञाम् । तान्येव स्थानान्याह–तद्यथा–काचित् निर्ग्रन्थी=साध्वीम् अन्यतरः=कश्चित् पशुजातिकः=उद्धतगवादि र्वा पक्षिजातिको गृध्रादि र्वा उपहन्यात्=उपघातं कुर्यात्, तत्र=उपघाते अन्यस्या निर्ग्रन्थिकाया अभावे तां निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा निर्ग्रन्थ आज्ञां नातिक्रामति सकारणत्वात् । निष्कारणं तु गृह्णन् अवलम्बमानो वा जिनाज्ञामतिक्रामत्येव, अतश्च तत्र दोषा भवन्त्येव । दोषाश्चात्रैवमुक्ताः, तथाहि—

" मिच्छत्त उड्डाहो, विराहणा फास भाव संवधो ।
पडिगमणाई दोसा, भुत्ताभुत्ते य नायव्वा ॥१॥"

उसे सहायता दे सकता है । इस स्थितिमें वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है,

टीकार्थ–बाहु आदि पकडकर उठाना इसका नाम ग्रहण है और उसे अपने दोनों हाथोंमें उठा लेना इसका नाम अवलम्बन है ।

अथवा—" सव्वंगियं तु गहणं करेण अवलंवण तु देसम्मि " उसे पूरा उठा लेना यह ग्रहण है और उसे अपने हाथका सहारा देकर उठाना यह अवलम्बन है । साधु जब विना किसी कारण ऐसा करता है तो अवश्यही वह जिनाज्ञाका विराधक होता है, क्योंकि ऐसा कर

કોઈ સાધુ તેમને મદદ કરે–તેમનો હાથ ઝાલીને તેમને ઊભાં કરે, તો તે સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી

ટીકાર્થ — હાથ આદિ પકડીને ઉઠાડવા તેનુ નામ ' ગ્રહણ ' છે અને પોતાના બન્ને હાથોમા ઉપાડી લેવાં તેનુ નામ ' અવલંબન ' છે અથવા–" सव्वंगिय तु गहण करेण अवलवण तु देसम्मि " તેમને પૂરેપૂરા ઉઠાવી લેવા તેનુ નામ ગ્રહણ છે, અને તેમને પોતાના હાથનો આધાર આપીને ઊભા કરવા તેનુ નામ અવલંબન છે કોઈ પણ કારણ વિના સાધુ એવું વર્તન કરે તો તે જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાય છે, કારણ કે એવું કરવામા તેને આ પ્રકારના દોષ લાગે છે " मिच्छत्त उड्डाहो " ઇત્યાદિ—

छाया—मिथ्यात्वमुद्ग्राहो विराधना स्पर्शे भाव सम्बन्ध ।
प्रतिगमनादयो दोषा भुक्ताऽभुक्ते (भोगे अभोगे च सति) ज्ञातव्याः॥ इति।

इति प्रथम स्थानम् । तथा–निर्ग्रन्थो दुर्गे–दुःखेन गम्यते इति दुर्गः, स च त्रिविधः–वृक्षदुर्गः श्वापददुर्गो म्लेच्छदुर्गश्च, तदुक्तम्—

तिविह च होइ दुग्ग, रुक्खे सावयमणुस्स दुग्गं च । "

छाया—त्रिविधश्च भवति दुर्गो वृक्ष श्वापदमनुष्यदुर्गश्च–इति । तस्मिन् तथोक्ते मार्गे वा, विषमे–गर्तपाषाणादि सङ्कुले पर्वते वा प्रस्खलन्तीं–गत्वा प्रस्खलितां

नेमें ऐसे दोष कहे गये हैं " मिच्छत्त उड्डाहो " इत्यादि—

मिथ्यात्व उड्डाह आदि ये दोष उसे लगते हैं, ऐसा यह प्रथम कारण है । दूसरा कारण ऐसा है–इस कारणमें जब साध्वी किसी दुर्गमें या किसी विषम स्थानमें रिपटकर गिर पड़ती है या चलते २ उसका पैर मोंच जाता है कि जिससे वह चलनेमें सर्वथा असमर्थ बन जाती है तो ऐसी स्थितिमें भी साधु उसे सहाय दे सकता है तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं माना गया है । जिस स्थान पर दुःखसे चला जाय वह दुर्ग है, यह दुर्ग तीन प्रकारका कहा गया है–एक वृक्ष दुर्ग, दूसरा श्वापद दुर्ग और तिसरा म्लेच्छ दुर्ग कहा भी है ।

" तिविह च होई दुग्ग " इत्यादि—

ऐसे दुर्गमें अथवा गर्त(खड्डा)पाषाण आदिसे सङ्कुल पर्वतके ऊपर चलती चलती साध्वी प्रस्खलित हो जाती है या भूमिमें गिर पड़तीहै तो ऐसी

કારણુ વિના એવું કરનારી સાધુને મિથ્યાત્વ ઉડ્ડાહ આદિ દોષ લાગે છે આ પ્રકારનું પહેલું કારણુ સમજવું

બીજું કારણુ આ પ્રમાણે છે—કોઈ સાધ્વી કોઈ દુર્ગમાં અથવા કોઈ વિષમ સ્થાનમાં ચાલતાં ચાલતાં લપસી જાય અથવા ચાલતાં ચાલતાં તેમનો પગ મચકોડાઈ જવાને લીધે તેઓ ચાલી શકે તેમ ન હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી દુર્ગ ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) વૃક્ષ દુર્ગ (૨) શ્વાપદ દુર્ગ અને (૩) મ્લેચ્છ દુર્ગ એવા સ્થાન પર ચાલવામાં મુશ્કેલી પડે છે કહ્યું પણ છે કે

તિવિહ ચ હોઇ દુગ્ગ ઇત્યાદિ—

એવા માર્ગ પર અથવા ગત, પાષાણુ આદિથી યુક્ત પર્વત ઉપર ચાલતાં ચાલતાં જો કોઈ સાધ્વીજી પ્રસ્ખલિત થઈ જાય–લપસી જાય અથવા

भवन्तीं वा प्रपतन्ती=भूमौ पतनं प्राप्नुवतीं वा, प्रस्खलन-प्रपतन लक्षण प्रद-र्शिका गाथा यथा—

" भूमीए असंपत्तं, पत्तं वा हत्थजाणुजाईहिं ।
पक्खलणं नायव्वं, पवडण भूमीए गत्तेहिं " ॥१॥

छाया—भूमौ असंप्राप्त प्राप्तं वा हस्तजानुकादिभिः।
प्रस्खलनं ज्ञातव्यं, प्रपतनभूमौ गात्रैः ॥१॥

इति गाथाऽनुसारेण भूमौ असंप्राप्तिः, हस्तजानुकादिषु केनचिदेकेनाङ्गेन वा प्राप्तिः प्रस्खलनं, सर्वगात्रैर्भूमौ प्राप्तिस्तु प्रपतनम् , तत् प्रस्खलन प्रपतनं वा प्राप्नुवतीं निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा आज्ञां नातिक्रामतीति द्वितीय स्थानम् । तथा-निर्ग्रन्थः सेके सीयते=वध्यते यस्मिन्नसौ सेकः=सजलकर्दम-

---

स्थितिमें साधु उसे सहायतादे सकता है । इसमें जिनाज्ञाके उल्लङ्घन करने जन्य दोषसे वह लिप्त नहीं हो सकता है, प्रस्खलन और प्रपतन का लक्षण इस प्रकारसे कहा गया है ।

" भूमीए असंपत्त " इत्यादि—

जिसमें चलते २ इस प्रकारकी स्थिति हो जाय कि भूमि पर गिरना तो हो नहीं किन्तु फिसलना हो जाय वह स्खलन है अथवा हाथ घुट-नोंके वलही जमीन पर गिरना हो जाय वह प्रस्खलन है । ऐसे प्रस्खलन में शरीर पशुके जैसा झुक जाता है, तथा उसमें भूमिका स्पर्श नहीं होता है, जमीन पर जो शरीरका पतन हो जाता है वह प्रपतन है । इस गाथाके अनुसार भूमि पर गिरना तो हो नहीं उस ओर केवल झुकना हो अथवा-हस्तजानुकादि अंगोमें से किसी एक अङ्ग द्वारा भूमिका स्पर्श हो वह प्रस्खलन है और समस्त अङ्गोंसे जिस पतनमें जमीनका स्पर्श हो जाय वह प्रपतन है । तृतीय कारण ऐसा है कि

જમીન પર પડી જાય, તો તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી પ્રસ્ખલન અને પ્રપતનનુ લક્ષણ આ પ્રમાણે છે

" भूमिए असंपत्त " ઈત્યાદિ—જ્યારે ચાલતાં ચાલતા જમીન પર આખું શરીર પડી જાય છે, ત્યારે પ્રપતન થયુ ગણાય છે, પણ લપસી જવાને કારણે શરીર એક બાજુ ઝૂકી જાય છે અને હાથ આદિ કોઇ એક જ અંગને આધારે જમીન પર ખડું રહે છે, ત્યારે તેનુ પ્રસ્ખલન થયું કહેવાય છે. પ્રપતન વખતે આખુ શરીર ભૂમિનો સ્પર્શ કરે છે, પણ પ્રસ્ખલન વખતે તો કોઇ એક જ અંગ ભૂમિનો સ્પર્શ કરે છે

एतस्मिन् वा, पङ्के=जलरहिते कर्दमे वा, पनके-पनक =शैवाल तत्र वा, उदके= जले वा अपकृष्यमाणाम्=परिपतन्तीं वा, अपोह्यमानां=जलधारामिः प्रवहमानां वा निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति जिनाज्ञाम् । इह पतन पङ्के पनके च बोध्यम् । अपवाहनं तु सेके उदके च बोध्यम् । इति तृतीय स्थानम् । तथा- निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थी नावम् आरोहयन्=नौकोपरि निर्ग्रन्थ्या आरोहण कारयन् वा, तथा-अवरोहयन्=नौकातोऽवतारयन् वा नातिक्रामतीति चतुर्थ स्थानम् । तथा- क्षिप्तचित्तां=क्षिप्तं=नष्टं चित्तं यस्याः सा ताम्, क्षिप्तचित्तता तु रागभयापमाना दिना भवति । तदुक्तम्—

अथ साध्वी सेकमें जल सहित कीचडमें फंस जाय, पङ्कमें जल रहित कीचडमें फस जाय पनक में शैवाल में फस जाय अथवा - जल में किसी प्रवाह में फस जाय, उसमें गिर पडे या उसमें बह जावे तो ऐसी स्थितिमें उसे सहायता करनेके अभि प्रायसे प्रेरित हुआ साधु सहारा देता है तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है । यहां पतन पङ्क और पनकमें समझना और अपवाहन सेक (सिंचन) एव उदकमें समझना । चतुर्थ कारण ऐसा है-निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं नावमारोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति " निर्ग्रन्थ जब निर्ग्रन्थीको नाव पर चढाता है या नावसे उसे नीचे उतारता है तो वह इस स्थितिमें जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है । पांचवां कारण ऐसा है-क्षिप्तचित्तां दृप्तचित्तां यक्षाविष्टाम्, उन्मादप्राप्ताम्, उपसर्गप्राप्ताम्, साधिकरणां, सप्रायश्चित्ता, भक्तपानप्रत्याख्याताम् अर्थजातां वा निर्ग्रन्थीं-निग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ' जब साध्वी

त्रीजु कारण आ प्रमाणे छे—ज्यारे कोई साध्वीजी कोई जलयुक्त खाडामां अथवा जलरहित कीचडमां फसाई जाय, लील, शेवाळ आदिमां फसाई जाय, पाणीना प्रवाहमां फसाई जाय अथवा तणातां होय, तो एवी परिस्थितिमां तेमने मदद करवाना आशयथी तेमनो सहारो देनार साधु जिनाज्ञानो विराधक गणातो नथी. अहीं पतन पङ्क अने पनकमां समजवुं अने अपवाहन पाणीना प्रवाहमां समजवुं

चोथु कारण- निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थी नावमारोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति कोई निर्ग्रन्थ कोई निर्ग्रन्थीने बेसाडवामां मदद करे अथवा नावमांथी उतारवामां मदद रूप बने तो एवी स्थितिमा ते जिनाज्ञानो विराधक गणातो नथी.

पांचमुं कारण—" क्षिप्तचित्तां, दृप्तचित्तां यक्षाविष्टाम् उन्मादप्राप्ताम्, उपसर्गप्राप्ताम् साधिकरणां सप्रायश्चित्तां भक्तपानप्रत्याख्याताम् अर्थजातां वा

" रागेण वा भएण वा, अहवा अवमाणिया महंतेणं ।
एएहिं खित्तचित्ता, होई भणियं जिणिंदेहिं ॥ "

छाया—रागेण वा भयेन वा, अथवा अपमानिता महता ।
एतैः क्षिप्तचित्ता भवति कथितं जिनेन्द्रैः ॥ इति ।

अथवा-दृप्तचित्ताम्—दृप्तम्=दर्पयुक्तं उद्धतमिति यावत् चित्तं यस्याः सा ताम्, उद्धतचित्तता तु सम्मानादिना भवति, तदुक्तम्—

" इह एस असंमाणाखित्तो संमणओ भवे दित्तो ।
अग्गीव इंधणेणं, दिप्पइ चित्तं इमेहिं तु ॥१॥
लाभमएण उ मत्तो, अहवा जेऊण दुज्जयं सत्तुं ॥ "

छाया—इत्येष असंमानात् क्षिप्तः सम्मानतो भवेद् दृप्तः ।
अग्निरिव इन्धने दृप्यति चित्तमेभिस्तु ॥१॥
लाभमदेन तु मत्तः अथवा जित्वा दुर्जयं शत्रुम् ॥ इति ।

क्षिप्त नष्ट चित्तवाली हो जाय क्योंकि क्षिप्तचित्तता तो राग, भय, अपमान आदिसे होही जातीहै। कहाभीहै-"रागेण वा भएण वा"इत्यादि।

ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है कि क्षिप्तचित्तता राग, भय अथवा अपमानसे हो जाती है अथवा जब वह साध्वी दृप्त दर्पयुक्त-उद्धत चित्तवाली हो जाय, क्योंकि उद्धत चित्तता तो सम्मान आदि से हो ही जाती है। कहा भी है-" इह एस असंमाणाखित्तो " इत्यादि।

मनुष्य असंमानसे क्षिप्त होता है और संमानसे दृप्त होता है। जिस प्रकार अग्नि इंधनसे दृप्त होती है। लाभसे या मदसे अथवा दुर्जय

निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति " જ્યારે કોઈ સાધ્વીજી ક્ષિપ્ત ચિત્તવાળા (ઉન્માદયુક્ત) થઈ જાય ત્યારે તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. ક્ષિપ્તચિત્તતા રાગ, ભય, અપમાન આદિ કારણોને લીધે થઇ જાય છે કહ્યુ પણ છે કે :

" रागेण वा भएण वा " ઈત્યાદિ—

જિનેન્દ્રદેવે એવું કહ્યું છે કે ક્ષિપ્તચિત્તત્તા (ચિત્તભ્રમ) રાગ, ભય, અથવા અપમાનથી થાય છે અથવા જ્યારે તે સાધ્વી દર્પયુક્ત ચિત્તવાળાં થઈ જાય છે, ત્યારે પણ એવું બને છે, કારણ કે સન્માન આદિને કારણે ઉદ્ધત ચિત્તતાનો સદ્ભાવ તો જોવા મળે જ છે. કહ્યુ પણ છે કે :

' इह एस असंमाणाखित्तो " ઈત્યાદિ—

જેમ અગ્નિ ઇધનથી પ્રજ્વલિત થાય છે, તેમ મનુષ્ય અસંમાનથી ક્ષિપ્ત થાય છે, અને સમાનથી દૃપ્ત (દર્પયુક્ત) થાય છે લાભ પ્રાપ્ત થવાથી, મદથી અથવા દુર્જય શત્રુને હરાવવાથી મનુષ્ય મત્ત થાય છે.

अथवा-यक्षाविष्टाम्-यक्षेण=देवविशेषेण आविष्टा=भास्थिता ताम्। यक्षा वेशस्तु पूर्वभववैरादिना भवति। तदुक्तम्--

" पुव्वभववेरिएण, अहवा रागेण रागिया सती।
एएहि जक्खइट्ठा, कहिया सिरि जिणवरिंदेहिं ॥१॥

छाया--पूर्वभववैरिकेण अथवा रागेण रागिता सती।
एताभ्यां यक्षाविष्टा कथिता श्री जिनवरेन्द्रैः ॥इति।

अथवा-उन्मादप्राप्ताम्=उन्मादः=चित्तानवस्थितिः, त प्राप्ता ताम्। उन्मादो यक्षावेशो मोहनीयमेति द्विविधो भवति। तत्र यक्षावेश' पूर्वमुक्तः। अथ मोह नीयो बोध्य। अयंच रूपाङ्गदर्शनेन पित्तमूर्च्छयात्रा भवति। तदुक्तम्--

शत्रुको जीतनेसे मनुष्य मत्त होता हैं अथवा वह साध्वी यक्षाविष्ट हो जाय, देवविशेषसे आस्थित हो जाय-यक्षावेश तो पूर्वभवके वैर आदि से हो ही जाती है। कहाभी है--" पुव्वभववेरिएणं " इत्यादि।

जिनेन्द्रदेवने इन दो कारणोंसे साध्वीको यक्षाविष्टा कहा है, या तो वह किसी पूर्वभवके वैरी देव आदिसे आक्रान्त हो जाय या किसी विशेष रागसे अनुरक्त हो जाय तो ऐसी स्थितिमें वह यक्षाविष्टा कही जाती है अथवा जब वह साध्वी उन्मादको प्राप्त हुई हो। चित्तकी अन वस्थितिका (विक्षेप) नाम उन्माद है, इस उन्मादको स्थितिमें वह आगई हो, उन्माद यक्षावेश और मोहनीयके भेदसे दो प्रकारका होता है, यक्षा वेश रूप उन्माद तो ऊपर प्रकट करही दिया गया है, यह मोहनीय रूप

અથવા તે સાધ્વી જ્યારે યક્ષાવિષ્ટ થઈ જાય એટલે કે તેમના શરીરમાં યક્ષ નામના દેવવિશેષનો પ્રવેશ થવાને કારણે તે સાધ્વી જ્યારે ઉન્મત્ત બની જાય ત્યારે તેને અવલંબન આદિ રૂપે સહારો આપનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. " पुव्वभववेरिएण " ઇત્યાદિ--

જિનેશ્વર ભગવાને એવું કહ્યું છે કે નીચેના બે કારણોને લીધે સાધ્વીને યક્ષાવિષ્ટા કહેવાય છે--(૧) કોઈ પૂર્વભવના વેરી દેવાદિનો શરીરમાં પ્રવેશ થવાથી અથવા (૨) કોઈ વિશેષ રાગ વડે અનુરક્ત થઈ જાય, તો એવી સ્થિતિમાં તેને યક્ષાવિષ્ટા કહેવામાં આવે છે

અથવા જ્યારે કોઈ સાધ્વી ઉન્માદાવસ્થામાં-ચિત્તભ્રમની હાલતમાં હોય ત્યારે પણ તેને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક બનતો નથી. ઉન્મા દના બે પ્રકાર કહ્યા છે--યક્ષાવેશ રૂપ ઉન્માદ-તેનું સ્વરૂપ ઉપર સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે (૨) મોહનીય રૂપ ઉન્માદ-ચિત્તભ્રમ રૂપ આ ઉન્માદ રૂપાંગ

" उम्माओ खलु दुविहो, जक्खाएसोयमोहणिज्जो य।
जक्खाएसो वुत्तो, मोहेण इमं तु वोच्छामि ॥१॥
रूवंगं दट्ठूणं, उम्माओ अहव पित्तमुच्छाए।
उम्मायस्स य भया, कहिया तित्थंकराईहिं ॥२॥ "

छाया–उन्मादः खलु द्विविधो यक्षावेशश्च मोहनीयश्च।
यक्षावेशउक्तो मोहेनैनं तु वक्ष्यामि ॥१॥
रूपमङ्गं च दृष्ट्वा उन्मादोऽथवा पित्तमूर्च्छया।
उन्मादस्य च भेदौ कथितौ तीर्थङ्करादिभिः ॥ २ ॥ इति।

अथवा–उपसर्गप्राप्ताम्–उपसर्गम्=उपद्रवं प्राप्ता ताम्। उपसर्गश्च दिव्यमानुषतिर्यक्कृतत्वात् त्रिविधो वोध्यः। तदुक्तम्—

उन्माद है, चित्तकी अनवस्थिति रूप यह उन्माद रूपाङ्ग दर्शनसे या पित्तकी मूर्च्छासे होता है। कहाभी है—

" उम्माओ खलु दुविहो " इत्यादि।

इस गाथाका अर्थ स्पष्ट है, अथवा जब वह साध्वी उपसर्ग प्राप्त हुई हो, उपद्रवको प्राप्त करनेकी स्थितिवाली हो गई हो, देवकृत उपसर्ग, मानुषकृत उपसर्ग, तिर्यक्कृत उपसर्ग, इस प्रकारसे उपसर्ग तीन प्रकारका होता है, जो उपसर्ग देव द्वारा कृत होता है वह दिव्य उपसर्ग है, जो उपसर्ग मनुष्य द्वारा किया गया होता है वह मानुष उपसर्ग होता है और जो उपसर्ग पशु द्वारा किया गया होता है वह तिर्यक् कृत उपसर्ग होता है। सो ही कहा गया है—

દર્શનથી અથવા પિત્તની મૂર્ચ્છાથી થાય છે કહ્યું પણ છે કે: "उम्माओ खलु दुविहो" ઇત્યાદિ. આ ગાથાનો અર્થ સ્પષ્ટ છે.

અથવા જ્યારે કોઇ સાધ્વીને ઉપસર્ગો અનુભવવા પડતાં હોય ત્યારે પણ તેને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. ઉપસર્ગના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર છે—દેવકૃત ઉપસર્ગ, મનુષ્યકૃત ઉપસર્ગ અને તિર્યંચકૃત ઉપસર્ગ. જે ઉપસર્ગો દેવ દ્વારા કરાય છે, તેમને દિવ્ય ઉપસર્ગો કહે છે, મનુષ્ય દ્વારા કરાતા ઉપસર્ગોને માનુષી ઉપસર્ગો કહે છે. અને તિર્યંચો દ્વારા કરાતા ઉપસર્ગોને તિર્યંચકૃત ઉપસર્ગો કહે છે. એ જ વાત " तिविहे य उवसग्गे " ઇત્યાદિ ગાથાઓ દ્વારા વ્યક્ત કરવામાં આવી છે.

" तिविहेय उवसग्गे, दिव्वे माणुसए तिरिक्खेय ।
दिव्वेय पुव्वभणिए माणुस्से अभिओगय ॥१॥
विज्जाए मंतेण य, चुन्नेण व जोइया अणप्पवसा ।
तेरिच्छो सीहसप्पाइएहिं तिरिमो मुणेयव्वो ॥२॥"

छाया–त्रिविधश्च उपसर्गो दिव्यो मानुष्यकः तैरश्च श्च ।
दिव्यश्च पूर्वभणितो मानुष्य आभियोगश्च ॥१॥
विद्यया मन्त्रेण च चूर्णेन वा योजिता अनात्मवशाः ॥
तैरश्च सिंहसर्पादिकैस्त्रिविधो ज्ञातव्यः ॥२॥ इति ।

अथवा–साधिकरणाम्–अधिकरणेन युद्धेन सह वर्तते या सा ताम्–केनापि कारणेन युद्धार्थमुपस्थिताम्, तथा–सप्रायश्चित्ताम्–प्रायश्चित्तेन सह वर्तते स प्रायश्चित्ता ताम्, अयं भाव –सेवितातिचारा–क्षपयितुमुपस्थिता, प्रायश्चित्तस्य प्राचुर्यात् तद् भयतः सी क्लान्ता भवति, भयेन वा क्लान्ता–ग्लाना भवति ताम् । अथवा–भक्तपानप्रत्याख्याताम्–भक्त च पान च प्रत्याख्यात यावज्जीव यया सा ताम्–प्रत्याख्यातभक्त-पानामित्यर्थः । उक्त चाम—

" अट्ठ या हेउं या, समणीण विरहयं करिंतस्स ।
मुच्छाए विवडियाए, कप्पइ गहण परिन्नाए ॥१॥"

" तिविहे य उपसग्गे " इत्यादि ।

इन गाथाओंका अर्थ सुगम है, इन उपसर्गोमेंसे किसीभी प्रकारके उपसर्गसे वह युक्त हो गई हो अथवा जब वह अधिकरण सहित हो, किसी कारणसे क्लेश करनेके लिये उपस्थित हुई हो अथवा–जब वह कृतअतिचारोंका प्रायश्चित्त लेनेके लिये उपस्थित हुई हो और प्रायश्चित्तकी प्रचुरताके कारण उसे धारण करती हुई क्लान्त बनी अथवा भयसे क्लान्त बनी हो अथवा जिसने यावज्जीव भक्तपानका प्रत्याख्यान कर दिया हो । कहा भी है—" अट्ठं या हेउं या ' इत्यादि ।

અથવા જ્યારે તે સાધ્વી અધિકરણ સહિત હોય–કોઈ કારણે કલેશ કરવાને તૈયાર થઈ હોય, અથવા તે સાધ્વીને કોઈ અતિચારોના નિવારણ નિમિત્તે પ્રાયશ્ચિત્ત લેવાનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થયો હોય અને પહેલી વખત જ આવો પ્રસંગ ઉદ્ભવવાને કારણે તે પ્રાયશ્ચિત્તને ધારણ કરતી એવી તે સાધ્વી ક્લાન્ત બની ગઈ હોય, અથવા ભયને કારણે આકુળવ્યાકુળ થઈ ગયેલ હોય તો તેને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી

' અટ્ઠં વા હેઉં વા ' ઇત્યાદિ

छाया—अर्थं वा हेतुं वा श्रमणीनां विरहिते कथयतः ।
मूर्च्छया विपतितायाः कल्पते ग्रहणं परिज्ञया ॥ इति ।

अयमर्थः—संस्तारकस्य अर्थम्=उद्देश्यं हेतुं=कारणं वा कथयतः=उपदिशतो निर्ग्रन्थस्य पुरतो मूर्च्छया निपतितायाः निर्ग्रन्थ्याः श्रमणीनां विरहिते सति परिज्ञायाम्=अनशने ग्रहणं कल्पते इति । अथवा—अर्थजाताम्—अर्थः=पतिचौरादेः कार्यं प्रयोजनमिति यावत् जातो यतः सा तथा ताम्—पतिचौरादिना संयमाच्चाल्यमानामित्यर्थः । उक्तंचात्र—

" अट्ठोत्तिजीए कज्जं, संजयं एस अट्ठजायाउ ।
तं पुण संजमभावा चालिज्जंतं समवलंबे ॥३॥"

छाया—अर्थ इति यस्याः कार्यं संजातम् एषा अर्थजाता तु ।
तां पुनः संयमभावाच्चाल्यमानां समवलम्बः ॥१॥ इति ।

इसका भाव ऐसा है—संस्तारकके (अनशन) प्रयोजनको अथवा कारणको कहते हुए, उपदेश देते हुए, निर्ग्रन्थके समक्ष यदि कोई यावज्जीव भक्तप्रत्याख्यानवाली साध्वी गिर पडी हो—और उस समय वहां अन्य साध्वियां न हो तो ऐसी अवस्थामें साधुका उसे सहारा देना दोषावह नहीं है अथवा—जब वह अर्थजाता हो, पति अथवा चोर आदि जिसे संयमसे चलायमान कर रहे हो । कहाभी है—

" अट्ठो त्ति जीए कज्जं " इत्यादि ।

जिसे पति अथवा चोर आदिका भय उपस्थित हो गया हो, इस स्थितिमें जो साध्वी आगई हो ऐसी वह अर्थजाता साध्वी है । इस तरह

અથવા કોઇ સાધ્વીએ આજીવન અનશનવ્રત અંગીકાર કર્યું હોય, અને શારીરિક અશક્તિને કારણે તેઓ પડી જાય તો ત્યાં અન્ય સાધ્વીઓ હાજર ન હોય એવી પરિસ્થિતિમાં તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. અથવા જ્યારે તે સાધ્વીજી અર્થજાતા હોય (જેને પતિ અથવા ચોર આદિ સંયમથી ચલાયમાન કરી રહ્યા હોય એવી સાધ્વીને અર્થજાતા કહે છે) ત્યારે તેને સહારો દેનાર સાધુ પણ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. કહ્યુ પણ છે કે " अट्ठो त्ति जीए कज्ज " ઈત્યાદિ—

જેને પતિ અને ચોર આદિનો ભય ઉપસ્થિત થયો હોય એવી પરિસ્થિતિમાં મૂકાયેલા સાધ્વીને અહીં અર્થજાતા સાધ્વી કહેવામાં આવેલ છે.

क्षिप्तचित्तायर्थजातापर्यन्तासु कामपि निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामतीति पञ्चमं स्थानम् ॥ सू० २७ ॥

अनन्तरं येषु कार्येषु वर्तमानो निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामति तान्युक्तानि, सम्प्रति निर्ग्रन्थविशेषा आचार्योपाध्याया येषु अतिशयेषु वर्तमाना जिनाज्ञां नातिक्रामन्ति तानाह—

मूलम्—आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंच अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा—आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए निगिज्झिय निगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णाइक्कमइ १। आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सयस्स उच्चारपासवणं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा णाइक्कमइ २। आयरियउवज्झाए पभू इच्छावेयावडियं करेज्जा इच्छा णो करेज्जा ३। आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगराय वा दुराय वा एगागी वसमाणे णाइक्कमइ ४। आयरियउवज्झाए बाहिं उवस्सयस्स एगराय वा दुराय वा वसमाणे णाइक्कमइ ५ ॥ सू० २८ ॥

क्षिप्तचित्तसे लेकर 'अर्थजाता पर्यन्त तककी किसी भी अवस्थामें पतित हुई किसीभी साध्वीको सहारा देनेवाला साधु निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका अतिक्रमण-उल्लंघन करनेवाला नहीं होता है, इस तरहसे यह पांचवां स्थान है ॥ सू० २७ ॥

इस तरहसे जिन कारणोंको लेकर निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला नहीं होता है, उनको प्रदर्शित कर अब सूत्रकार निर्ग्रन्थ विशेष जो आचार्य और उपाध्याय हैं, वे जिन अतिशयोंमें वर्तमान होकर जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हैं, उनका कथन करते हैं—

આ રીતે ક્ષિપ્તચિત્તથી લઈને અર્થજાતા પર્યન્તની કોઈ પણ પરિસ્થિતિમાં મૂકાયેલા સાધ્વીઓને સહારો દેનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી આ પ્રકારનું આ પાંચમું કારણ સમજવું ॥ સૂ. ૨૭ ॥

કયા પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં સાધ્વીઓને સહારો દેનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ જિનાજ્ઞાની વિરાધક ગણાતો નથી એ વાત પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય રૂપ નિર્ગ્રંથ વિશેષો કયા અતિશયોથી યુક્ત હોવા છતાં પણ જિનાજ્ઞાની અવગણના કરનારા ગણાતા નથી.

छाया—आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे पञ्च अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य पादौ निगृह्य निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्जयन् वा नातिक्रामति १। आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य उच्चारप्रस्रवणं विवेचयन् वा विशोधयन् वा नातिक्रामति २। आचार्योपाध्यायः प्रभुः इच्छा वैयावृत्त्यं कुर्यात् इच्छा न कुर्यात् ३। आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन् नातिक्रामति ४। आचार्योपाध्यायो बहिरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति ५ ॥सू० २८ ॥

टीका—'आयरियउवज्झायस्स' इत्यादि—

आचार्योपाध्यायस्य—आचार्यः—केषांचिदर्थप्रदातृत्वात्, स एव उपाध्यायः केषांचित् साधूनां सूत्रप्रदातृत्वात्, आचार्यश्चासौ उपाध्यायश्चेति आचार्योपाध्यायः, यद्वा—आचार्योऽन्यः, उपाध्यायश्चान्यः, उभयोः समाहारे—आचार्योपाध्यायं, तस्य—आचार्योपाध्यायस्य आचार्योपाध्याययोर्वा खलु=निश्चयेन गणे=साधुसमुदाये पञ्च अतिशेषाः=अतिशयाः अन्यसाध्वपेक्षया प्रज्ञप्ताः कथिताः। तद्यथा—आचार्योपाध्यायः—आचार्योपाध्यायपदविशिष्ट एकः साधुः आचार्यत्वोपाध्यायत्वविशिष्टं

"आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि" इत्यादि।

आचार्योपाध्यायके अथवा आचार्य और उपाध्यायके गणमें पांच अतिशेष अन्य साधुकी अपेक्षा अतिशय कहे गये हैं, वे इस प्रकारसे हैं—"आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स" इत्यादि।

जो आचार्योपाध्याय—आचार्यरूप उपाध्याय किन्हीं किन्हीं साधुओंको अर्थ और सूत्र प्रदाता होने से आचार्यरूप और उपाध्याय रूप हुआ ऐसा वह आचार्योपाध्याय अथवा स्वतंत्र उपाध्याय—उपाश्रयके भीतर शिष्यजनको इस अभिप्रायसे ऐसा कहकर "कि चरणों परकी धूलिको झटकारनेसे उडी हुई चरण रज अन्यके ऊपर पड जाती हैं, अतः वे न पड जायें इसलिये चरणोंको उपाश्रयके बाहरही झटकार लेना चाहिये, "उपाश्रयके भीतर

"आयरिय उवज्झायस्स ण गणंसि" ઈત્યાદિ—

આચાર્યોપાધ્યાયમા અથવા આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયમાં પાંચ અતિશેષ એટલે કે અન્ય સાધુઓની અપેક્ષાએ અતિશય કહ્યા છે. તે પાંચ અતિશયો નીચે પ્રમાણે છે—"आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सयस्स" ઈત્યાદિ—જે આચાર્યોપાધ્યાય-આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાય કોઈ કોઈ સાધુઓને અર્થના દાતા હોવાને કારણે આચાર્ય રૂપ ગણી શકાય છે અને કોઈ કોઈ સાધુઓને સૂત્રના પ્રદાતા હોવાથી તેઓ ઉપાધ્યાય રૂપ ગણાય છે, એવા તે આચાર્યોપાધ્યાય અથવા સ્વતંત્ર આચાર્ય અને સ્વતંત્ર ઉપાધ્યાય ઉપાશ્રયની અંદર શિષ્યોને આ

क्षिप्तचित्ताद्यर्थजातापर्यन्तासु कामपि निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामतीति पञ्चमं स्थानम् ॥ सू० २७ ॥

अनन्तरं येषु कारणेषु वर्तमानो निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामति तान्युक्तानि, सम्प्रति निर्ग्रन्थविशेषा आचार्योपाध्याया येषु अतिशयेषु वर्तमाना जिनाज्ञां नातिक्रामन्ति तानाह—

सूत्रम्–आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पञ्च अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा–आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए निगिज्झिय निगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णाइक्कमइ १। आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सयस्स उच्चारपासवणं विगिंच माणे वा विसोहेमाणे वा णाइक्कमइ २। आयारियउवज्झाए पभू इच्छावेयावडियं करेज्जा इच्छा णो करेज्जा ३। आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगराय वा दुराय वा एगागी वसमाणे णाइ क्कमइ ४। आयरियउवज्झाए बाहिं उवस्सयस्स एगराय वा दुराय वा वसमाणे णाइक्कमइ ५ ॥ सू० २८ ॥

क्षिप्तचित्तसे लेकर अर्थजाता पर्यन्त तककी किसीभी अवस्थामें पतित हुई किसीभी साध्वीको सहारा देनेवाला साधु निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका अतिक्रमण–उल्लंघन करनेवाला नहीं होता है, इस तरहसे यह पांचवां स्थान है ॥ सू० २७ ॥

इस तरहसे जिन कारणोंको लेकर निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला नहीं होता है, उनको प्रदर्शित कर अब सूत्रकार निर्ग्रन्थ विशेष जो आचार्य और उपाध्याय हैं, वे जिन अतिशयोंमें वर्तमान होकर जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हैं, उनका कथन करते हैं—

આ રીતે ક્ષિપ્તચિત્તથી લઈને અર્થજાતા પર્યન્તની કોઈ પણ પરિસ્થિતિમાં મુકાયેલા સાધ્વીજીને સહારો દેનાર શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી આ પ્રકારનું આ પાંચમું કારણ સમજવું ॥ સૂ. ૨૭ ॥

કયા પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં સાધ્વીજીને સહારો દેનાર શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી, એ વાત પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય રૂપ નિર્ગ્રન્થ વિશેષ કયા અતિશયોથી યુક્ત હોવા છતાં પણ જિનાજ્ઞાની અવગણના કરનાર ગણાતા નથી.

छाया—आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे पञ्च अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य पादौ निगृह्य निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्जयन् वा नातिक्रामति १। आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य उच्चारप्रस्रवणं विवेचयन् वा विशोधयन् वा नातिक्रामति २। आचार्योपाध्यायः प्रभुः इच्छा वैयावृत्त्यं कुर्यात् इच्छा न कुर्यात् ३। आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन् नातिक्रामति ४। आचार्योपाध्यायो बहिरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति ५ ॥सू० २८ ॥

टीका—' आयरियउवज्झायस्स ' इत्यादि—

आचार्योपाध्यायस्य—आचार्यः—केषांचिदर्थप्रदातृत्वात्, स एव उपाध्यायः केषांचित् साधूनां सूत्रप्रदातृत्वात्, आचार्यश्चासौ उपाध्यायश्चेति आचार्योपाध्यायः, यद्वा—आचार्योऽन्यः, उपाध्यायश्चान्यः, उभयोः समाहारे—आचार्योपाध्यायं, तस्य—आचार्योपाध्यायस्य आचार्योपाध्याययोर्वा खलु=निश्चयेन गणे=साधुसमुदाये पञ्च अतिशेषाः=अतिशयाः अन्यसाध्वपेक्षया प्रज्ञप्ताः कथिताः । तद्यथा—आचार्योपाध्यायः—आचार्योपाध्यायपदविशिष्ट एकः साधुः आचार्यत्वोपाध्यायत्वविशिष्टं

" आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि " इत्यादि ।

आचार्योपाध्यायके अथवा आचार्य और उपाध्यायके गणमें पांच अतिशेष अन्य साधुकी अपेक्षा अतिशय कहे गये हैं, वे इस प्रकारसे हैं—" आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स " इत्यादि ।

जो आचार्योपाध्याय—आचार्यरूप उपाध्याय किन्हीं किन्हीं साधुओंको अर्थ और सूत्र प्रदाता होने से आचार्यरूप और उपाध्याय रूप हुआ ऐसा वह आचार्योपाध्याय अथवा स्वतंत्र उपाध्याय—उपाश्रयके भीतर शिष्यजनको इस अभिप्रायसे ऐसा कहकर " कि चरणों परकी धूलिको झटकारनेसे उडी हुई चरण रज अन्यके ऊपर पड जाती हैं, अतः वे न पड जायें इसलिये चरणोंको उपाश्रयके बाहरही झटकार लेना चाहिये, " उपाश्रयके भीतर

" આયરિય ઉવજ્ઝાયસ્સ ણં ગણંસિ " ઇત્યાદિ—

આચાર્યોપાધ્યાયમા અથવા આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયમાં પાંચ અતિશેષ એટલે કે અન્ય સાધુઓની અપેક્ષાએ અતિશય કહ્યા છે. તે પાંચ અતિશયો નીચે પ્રમાણે છે—" આયરિયઉવજ્ઝાએ અંતો ઉવસ્સયસ્સ " ઇત્યાદિ—જે આચાર્યોપાધ્યાય—આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાય કોઈ કોઈ સાધુઓને અર્થના દાતા હોવાને કારણે આચાર્ય રૂપ ગણી શકાય છે અને કોઈ કોઈ સાધુઓને સૂત્રના પ્રદાતા હોવાથી તેઓ ઉપાધ્યાય રૂપ ગણાય છે, એવા તે આચાર્યોપાધ્યાય અથવા સ્વતંત્ર આચાર્ય અને સ્વતંત્ર

साधुर्द्वयं वा उपाश्रयस्य=वसतेः अन्तः=मध्ये निगृह्य निगृह्य=प्रस्फोटनेन उड्डीय मालिन्यरजोभिरन्यजीवविराधना मा भवेदिति यतनया शिष्य भूयो भूयो निवार्य पादौ प्रस्फोटयन्=आभिग्रहिकेण अन्येन वा साधुना स्वकीय रजोहरणादिना चरणयोः प्रस्फोटन कारयन् वा, प्रमार्जयन्=शनैः शोधयन् वा नातिक्रामति जिनाज्ञाम्। अयमत्राभिप्रायः—आचार्य उपाध्यायो वा कुलगणादिकार्येण निर्गत्य प्रत्यागत्य। तत्रोत्सर्गेण उपाश्रयाद् बहिरेव चरणौ प्रस्फोटयति, यदि तत्र कश्चिद् सागारिको भवति तदा स उपाश्रयमध्ये प्रस्फोटयति। प्रस्फोटन च प्रमार्जनविशेष एव,

नहीं" पैरोंके झटकारने से बार २ निषेध करता है और वह स्वयं अपने पैरोंको किसी आभिग्रहिकसे अथवा किसी अन्य साधुसे अपने रजोहरण आदिसे उपाश्रयके भीतर झटकारता है दूरकराता है या उनकी धीरे २ प्रमार्जना कराता है तो ऐसा कराता हुआ यह आचार्य या उपाध्याय जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है। तात्पर्य इस कथनका ऐसा है— आचार्य अथवा उपाध्याय कुलगण आदिके कार्यके निमित्त बाहर गये और उस कार्य करके वे फिर पीछे लौट आये तो उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि वे उपाश्रयके बाहर ही अपने दोनों पैरोंको प्रमार्जन कर ले पीछे उपाश्रयके भीतर प्रविष्ट होते हैं, परन्तु यदि वहां कोई सागारिक होता है तो वे उपाश्रयके भीतर अपने पैरोंको प्रमार्जन करवाते हैं, यह प्रस्फो

પ્રમાણે કરે છે પગ પર લાગેલી રજને ઝાપટવાથી તે રજ ઉડીને કોઈની ઉપર પડે છે તેથી તમારે ઉપાશ્રયની બહાર જ પગની રજને ઝાપટી નાખવી જોઈએ ઉપાશ્રયમાં ઝાપટવી જોઈએ નહીં"

આ પ્રમાણે તેઓ શિષ્યોને ઉપાશ્રયની અંદર પગની રજ ઝાપટી નાખવાનો વારવાર નિષેધ કરે છે પરન્તુ તેઓ પોતે કોઈ આભિગ્રહિક પાસે અથવા કોઈ અન્ય સાધુ પાસે પોતાના પગને રજોહરણ આદિ વડે ઉપાશ્રયની અંદર જ ઝપટાવે છે અથવા ધીરે ધીરે તેની પ્રમાજના કરાવે છે તો એવું કરનાર તે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—

આચાય અથવા ઉપાધ્યાયને કુલ, ગણ આદિના કાર્યને નિમિત્તે બહાર જવું પડયું હોય. ત્યારબાદ જ્યારે તેઓ પાછા ફરે, ત્યારે ઉત્સર્ગ વિધિ પ્રમાણે તો તેમણે ઉપાશ્રયની બહાર જ પોતાના બન્ને પગનું પ્રમાર્જન કરીને જ ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરવો જોઈએ, પરન્તુ જો ત્યાં કોઈ સાગારિક હાજર હોય તો તેઓ ઉપાશ્રયની અંદર દાખલ થયા બાદ પગનું પોતાના પગનું

तच्च प्रत्युपेक्षणपूर्वकमेव भवति। प्रत्युपेक्षणं च चक्षुर्व्यापार एवेति सप्तभङ्गा अत्र भवन्ति। तथाहि–न प्रत्युपेक्षते न च प्रमार्ष्टि–इति प्रथमो भङ्गः। न प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि चेति द्वितीयो भङ्गः। प्रत्युपेक्षते न च प्रमार्ष्टि–इति तृतीयो भङ्गः। प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि चेति चतुर्थो भङ्गः। प्रत्युपेक्षणं प्रमार्जनं च दुष्ठुतया सुष्ठुतया चापि भवतीति चतुर्थे भङ्गे चत्वारो भङ्गा बोध्याः। तत्र दुष्प्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि–इति प्रथमो भङ्गः। दुष्प्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि इति द्वितीयो भङ्गः। सुप्रत्यु-

---

टन रूप पैरोंका झटकारना प्रमार्जन विशेषरूप हीहै, यह प्रत्यु पेक्षणपूर्वकही होना है, और प्रत्युपेक्षण–पडिलेहण चक्षुर्व्यापार रूप होता है, अतः यहां सात भङ्ग होते हैं–जैसे–" न प्रत्युपेक्षते न प्रमार्ष्टि १ " न वह प्रत्युपेक्षा करताहै, और न प्रमार्जना करता है १ "न प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि च २ " प्रत्युपेक्षा तो नहीं करता है पर प्रमार्जना करता है २ " प्रत्युपेक्षते न च प्रमार्ष्टि ३ " प्रत्युपेक्षा तो करता है, पर प्रमार्जना नहीं करता है ३ " प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि च ४ " और प्रत्युपेक्षा भी करता है, और प्रमार्जना भी करता है ४ इस चतुर्थ भङ्गके भी चार भंग होते हैं, क्योंकि प्रत्युपेक्षण और प्रमार्जन दुष्ठुरूपसे विना उपयोगके और सुष्ठुरूपसे उपयोगसे भी होते हैं, वे चार भंग इस प्रकारसे हैं " दुष्प्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि १ " यदि वह असावधानीसे अच्छी तरहसे नहीं उपयोग दिये विना ही–प्रत्युपेक्षा करता है, और प्रमार्जना करता है, तो वह प्रथम भंगवाला है। " दुष्प्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि २ " यदि वह प्रत्यु-

---

પ્રમાર્જન કરાવી શકે છે રજોહરણ આદિ વડે બન્ને પગને કોઈ સાધુ પાસે ઝપટાવવા એ પણ પ્રમાર્જન વિશેષરૂપ જ હોય છે. તે ક્રિયા પ્રત્યુપેક્ષણપૂર્વક થાય છે, અને પ્રત્યુપેક્ષણ ચક્ષુવ્યાપાર રૂપ હોય છે, તેથી અહીં સાત ભાગા (વિકલ્પો) બને છે " न प्रत्युपेक्षते न प्रमार्ष्टि " (૧) તે પ્રત્યુપેક્ષા કરતો નથી અને પ્રમાર્જના પણ કરતો નથી (૨) " न प्रत्युपेक्षते न प्रमार्ष्टि च " પ્રત્યુપેક્ષા તો કરતો નથી પણ પ્રમાર્જના કરે છે (૩) प्रत्युपेक्षते न च प्रमार्ष्टि " પ્રત્યુપેક્ષા તો કરે છે, પણ પ્રમાર્જના કરતો નથી (૪) प्रत्युपेक्षते प्रमार्ष्टि च " પ્રત્યુપેક્ષા પણ કરે છે અને પ્રમાર્જના પણ કરે છે આ ચોથા ભાગાના પણ ચાર ભાંગા પડી શકે છે, કારણ કે પ્રત્યુપેક્ષણ અને પ્રમાર્જન દુષ્ઠ રૂપે (ઉપયોગ રહિત પણે) અને સુષ્ઠુ રૂપે (ઉપયોગ સહિત) પણ થાય છે તે ચાર ભાગા નીચે પ્રમાણે સમજવા " दुष्प्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि " જો તે અસાવધાનીથી પ્રત્યુપ્રેક્ષા કરે છે અને અસાવધાનીથી પ્રમાર્જના કરે છે તો

पेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि-इति तृतीयो भङ्गः । सुप्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि इति चतुर्थो भङ्गः। चतुर्थभङ्गस्य भङ्गचतुष्टयकरणेन शेषास्त्रय एवेति सप्तभङ्गा बोध्याः। भङ्गान्तिमः शुद्धः। अवशिष्टेषु सामाचारी न भवति । यदि तु सागारिकस्ततो गमनोन्मुखो भवेत्तदा यावता कालेन सप्तपदान्यवक्रम्य गच्छेत् तावन्तं कालम् उपाश्रयात् बहिस्तिष्ठेत्, गतेच तस्मिन् पादौ प्रस्फोटयेत् । आचार्यस्य पादप्रस्फोटनमाचार्या

पेक्षा तो अच्छी तरहसे नहीं करता है, पर प्रमार्जना अच्छी तरहसे करताहै, तो वह इस द्वितीय भगवालाहै । "सुप्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि ३" यदि वह प्रत्युपेक्षण अच्छी तरहसे करता है, और प्रमार्जन ठीक तरहसे नहीं करता है तो वह इस तृतीय भगवाला है ३ "सुप्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि ४" और यदि वह अच्छी तरहसे प्रत्युपेक्षण करता है, और अच्छी तरहसेही प्रमार्जन करता है, तो वह इस चतुर्थ भंगवाला है, चतुर्थ भगके चार भग करनेसे शेष भंग ३ही भंग है, इस प्रकार कुल ये ७ भंग होते हैं । चतुर्थ भंगका जो अन्तिम चौथा भग है वही शुद्ध है, अवशिष्ट भगोंमें सामाचारी नहीं होती है, यदि सागारिक वहासे गमनोन्मुख होता है, तो जितने समयमें वह सात पैर आगे चलता है, उतने काल तक उपाश्रयसे बाहर रहना चाहिये और फिर उसके चले जाने पर फिर चरणोंको प्रमार्जन करना चाहिये आचार्यका पादप्रस्फोटन

પહેલા ભાંગામાં (૨) दुष्प्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि " જો તે પ્રત્યુપ્રેક્ષા તો સારી રીતે કરતો નથી પણ પ્રમાજના સારી રીતે કરે છે, તો તેને બીજા ભાંગામાં મૂકી શકાય છે " सुप्रत्युपेक्षते दुष्प्रमार्ष्टि " (૩) જો તે પ્રત્યુપ્રેક્ષા તો સારી રીતે કરે છે પણ પ્રમાજના સારી રીતે કરતો નથી, તો તેને ત્રીજા ભાંગામાં મૂકી શકાય છે ' सुप्रत्युपेक्षते सुप्रमार्ष्टि ' જો તે પ્રત્યુપેક્ષા પણ સારી રીતે કરે છે અને પ્રમાજના પણ સારી રીતે કરે છે તો તેને ચોથા ભાગાવાળો કહે છે આ રીતે આગળના ત્રણ ભાંગા અને ચોથા ભગના જે ચાર ભાંગા બને છે, તે મળીને કુલ ૭ ભાગા થાય છે ચોથા ભાંગાના જે ચાર ભાંગા કહેવામાં આ યા છે તેમનો જે ચોથો ભાગો છે, એજ શુદ્ધ છે, બાકીના ભાંગાઓમાં સામાચારી થતી નથી. જો સાગારિક ત્યાંથી ગમન કરવા માટે, તો જેટલા સમયમા તે સાત ડગલાં આગળ વધે છે, તેટલા કાળ સુધી ઉપાશ્રયની બહાર રહેવું જોઇએ અને તે ચાલ્યા ગયા બાદ પગનું પ્રમાર્જન કરવું જોઇએ. આચાર્ય કરતાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ જે સાધુ નાનો હાય તેણે જ આચાયના પગનું સ્નેહરણ

पेक्षया पर्यायलघुनैव साधुना कर्तव्यं न तु पर्यायज्येष्ठेन। पर्यायज्येष्ठास्तु आचार्यस्य गुरुतुल्या एव। आचार्यः सागारिकस्य सत्तायामुपाश्रयान्तर्गत एव पादौ प्रस्फोटयतीत्युक्तम्। तत्र उपाश्रयो यदि विपुलो भवेत्तदाऽपरिभुक्तस्थाने उपविश्य पादौ तेन प्रस्फोटनीयौ। यदि उपाश्रयः सङ्कुचितः भवेत्तदा स्वसंस्तारकावकाशे एव समुपविष्टेन तेन पादौ प्रस्फोटनीयौ। अथ चेदाचार्योपाध्यायौ सहैव समागच्छतस्तदा तयोर्यः पर्यायज्येष्ठस्तस्य पूर्वं पादप्रस्फोटना कार्या। ततोऽन्यस्य। इति प्रथमोऽतिशेषः। तथा-आचार्योपाध्याय उपाश्रयस्य मध्ये

आचार्यकी अपेक्षा जो पर्यायमें लघु साधु हो ऐसेही साधुको करना चाहिये पर्यायकी अपेक्षा ज्येष्ठ साधुको नहीं करना चाहिये क्योंकि पर्याय ज्येष्ठ जो साधु हैं वे आचार्यके गुरुतुल्यही होते हैं। आचार्य सागारिककी सत्तामें मौजूदगीमें उपाश्रयके भीतरही दोनों पैरोंको पूंजता है, ऐसा कहा है, सो यदि उपाश्रय विपुल बडा हो तो उसे अपरि भुक्त स्थानमें बैठकर अपने दोनों पैरोंको शुद्ध करना चाहिये और यदि उपाश्रय छोटा है, तो उसे अपने संस्तारकके स्थान परही बैठकर पैरोंको पूंज लेना चाहिये यदि आचार्य और उपाध्याय साथही साथ आये हों तो उन दोनोंमें जो पर्यायसे जेष्ठ है, उसे पहिले चरणोंका प्रमार्जन करनी चाहिये उसके बाद दूसरेको करनी चाहिये इस प्रकारका यह प्रथम

આદિ વડે પ્રસ્ફોટન (રજ ઝાપટવાનું કાર્ય) કરવું જોઈએ, પરન્તુ આચાર્ય કરતાં જે સાધુ દીર્ઘ દીક્ષાપર્યાયવાળો હોય, તેણે આચાર્યનું પાદપ્રસ્ફોટન કરવું જોઈએ નહીં, કારણ કે પર્યાયજ્યેષ્ઠ જે સાધુઓ હોય છે તેઓ તો આચાર્યના ગુરુ સમાન ગણાય છે આચાર્ય સાગારિકની હાજરી હોય ત્યારે ઉપાશ્રયની અંદર જ બન્ને પગની પ્રમાર્જના કરે છે, એવું અહીં જે કહેવામાં આવ્યું છે તેનો ભાવાર્થ એ છે કે જો ઉપાશ્રય વિશાળ હોય તો તેમણે અપરિભુક્ત સ્થાનમાં બેસીને જ પોતાના બન્ને પગ ધોવા જોઈએ, પણ જો ઉપાશ્રય નાનો હોય તો તેમણે પોતાના સંસ્તારકના સ્થાન પર બેસીને જ પોતાના પગની પ્રમાર્જના કરવી જોઈએ. જો આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય બન્ને બહારથી સાથે આવ્યા હોય, તો તે બન્નેમાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ જ્યેષ્ઠ હોય તેમણે પોતાના પગની પ્રમાર્જના પહેલાં કરવી જોઈએ, અને ત્યાર બાદ લઘુ દીક્ષાપર્યાયવાળાએ પોતાના પગની પ્રમાર્જના કરવી જોઈએ. આ પ્રકારનું પહેલા અતિશેષનું સ્વરૂપ છે

उच्चारमस्रवर्णं विवेचयन्-परिष्ठापयन् वा विशोधयन् वा जिनाज्ञां नातिक्रामति। अत्रेदं बोध्यम्-आचार्य उपाध्यायो वा उत्सर्गतो विचारभूमिं न गच्छति दोषसम्भवात्, तथाहि-आचार्यादिः कदाचित् तिथिषु गच्छन् पूर्वं 'श्रुतादि गुणयुक्तोऽय'-मिति बुद्धया श्रावकादिभिरभ्युत्थानादिना सत्क्रियते, यदनेकशो विचारभूमिं गच्छति ततः श्रावकादय आलस्यवशात् न तथा कुर्वन्ति, ततोऽन्ये कदाचित् एव मन्यन्ते-यदेते श्रावकादयो गुणिनां पूजका भवन्ति, ते येन

अतिशेष है। द्वितीय अतिशेष ऐसा है-आचार्य और उपाध्याय उपाश्रयमें उच्चार और प्रस्रवणका निवारण करते हैं तो वे जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हैं, यहां ऐसा समझना चाहिये आचार्य अथवा उपाध्याय दोषोंकी संभावनासे विचारभूमिमें नहीं जाते हैं, इसका कारण ऐसा है, कि जब वे विचार भूमिमें जाते समय मार्ग से निकलते हैं, तो उस समय पहिले श्रावक लोग उन्हे इस बुद्धिसे कि ये श्रुतादि गुणोंसे युक्त हैं, अभ्युत्थान आदि द्वारा सत्कृत करते हैं, पर यदि वे बार२ विचार भूमिमें जानेके लिये मार्गसे होकर निकलने लगते हैं, तो श्रावक आदिजन आलस्यके वशसे बार २ ऐसा नहीं भी करते हैं तो ऐसी उनकी दशा देखकर अन्य जन कदाचित् ऐसा भी मानने लगते हैं, कि ये श्रावकजन तो गुणिजनोंके पूजक होते हैं, और फिर

દ્વિતીય અતિશેષ આ પ્રકારનો છે—આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય જો ઉપાશ્રયમાં ઉચ્ચાર અને પ્રસ્રવણની (મળમૂત્રની) પરિષ્ઠાપના અથવા વિશોધના કરે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાની વિરાધના કરનારા ગણાતા નથી. અહીં એમ સમજવું જોઈએ કે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય દોષોની સંભાવનાને લીધે વિચારભૂમિમાં (શૌચભૂમિમાં) જતા નથી. તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે સમજવું જ્યારે વિચારભૂમિમાં જવા માટે તેઓ નીકળે છે ત્યારે તેમના માર્ગમાં જે જે શ્રાવકો આવે છે, તેઓ તેમને શ્રુતાદિ ગુણોથી યુક્ત ગણીને ઉત્થાન આદિ દ્વારા તેમનો સત્કાર કરે છે પણ જો તેઓ વારંવાર વિચારભૂમિમાં જવાને માટે માર્ગ પરથી પસાર થાય છે, તો શ્રાવકો વગેરે આળસને આધીન થઈને અભ્યુત્થાન આદિ દ્વારા તેમનો સત્કાર કરવાનો કદાચ બંધ પણ કરી નાખે છે માર્ગેથી પસાર થતાં તે આચાર્ય આદિનો શ્રાવકો દ્વારા અભ્યુત્થાન આદિ દ્વારા સત્કાર ન થતો જોઈને બીજા લોકો કદાચ એવી પણ કલ્પના કરવા માંડે છે કે શ્રાવકો તો ગુણીજનોના પૂજક હોય છે, છતાં તેઓ આ

न सत्कुर्वन्ति, अतो नूनमयं पतित इति। तथा-अयं द्विर्भुङ्क्ते इत्यवर्णवादो भवति, मत्सरिकर्तृकमरणाद्याशङ्काऽपि च तस्य भवतीति। इति द्वितीयोऽतिशेषः।

तथा-आचार्य उपाध्यायो वा प्रभुः=स्वामी भवति गणनायकत्वात्, अत-स्तस्य यदि इच्छा भवेत् तदा स वैयावृत्त्यं=साधुभ्यो भक्तपानादिदानरूपं कुर्यात्, तस्य इच्छा न भवेत्तदा न कुर्यात्। आचार्यादिर्गणनायको भवति, अत स्तस्य वैयावृत्त्यकरणे कामचारः, स स्वेच्छया कुर्यादपि, नापि च कुर्यात्। नास्ति तस्मिन् प्रतिबन्ध इति भावः। इति तृतीयोऽतिशेषः। तथा-आचार्य उपाध्यायो

ये अब ऐसा क्यों नही करते हैं, जो इनके ये गुरुजन यहाँसे होकर निकलते हैं, और ये उनका अभ्युत्थान आदि द्वारा सत्कार आदि नहीं करते हैं, अतः नियमसे ये पतित हैं, इसलिये ये ऐसा करते हैं, तथा ये दो वार भोजन करते हैं, इसीलिये इन्हें अनेक बार विचारभूमिमें जाना पड़ता है, ऐसा अवर्णवाद भी होता है, तथा जो मात्सर्य भावसे युक्त होते है, ऐसे व्यक्तियों द्वारा उन्हे अपने मारे जाने आदिकी शङ्का भी हो सकती है, इसीलिये वे उच्चार प्रस्रवण आदि उपाश्रयके भीत-रही करते हैं, और उसकी विशोधना करते हैं, ऐसा यह द्वितीय अ-तिशेष है, तृतीय अतिशेष ऐसा है, गणनायक होनेसे आचार्य या उपाध्याय अपने गणका स्वामी होता है, अतः यदि उसकी इच्छा होती है, तो वह अन्य साधुजनोंकी भक्तपान आदिके देनेरूप उनकी वैया-वृत्ति करता है, और यदि उसकी इच्छा नही होती है, तो वह ऐसा नहीं भी करता है, आचार्य आदि गणनायक होते हैं, अत अन्य सा-

તેમના આચાર્યનો અભ્યુત્થાન આદિ દ્વારા સત્કાર શા માટે કરતા નથી? અવશ્ય આ સાધુનુ પતન થયુ હોવુ જોઈએ, અને તે કારણે શ્રાવકો તેમનો સત્કાર નહી કરતા હોય વળી લોકો એવી કલ્પના પણ કરે છે કે તેઓ બે વાર જમે છે, તેથી તેમને અનેકવાર વિચારભૂમિમાં જવું પડે છે, આ પ્રકારનો તેમનો અવર્ણવાદ (નિંદા) પણ થાય છે વળી માત્સર્યભાવ યુકત વિરોધીઓ વડે પોતાની હત્યા થઈ જવાની શંકા પણ તેમને રહે છે. તે કારણે તેઓ ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણ આદિ ઉપાશ્રયની અંદર જ કરે છે અને તેની વિશોધના કરે છે આ પ્રકારનો આ બીજો અતિશેષ છે.

ત્રીજો અતિશેષ આ પ્રકારનો છે—ગણનાયક હોવાને કારણે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય પોતાના ગણના સ્વામી હોય છે. અન્ય સાધુઓને ભક્તપાન આદિ દેવા રૂપ તેમનું વૈયાવૃત્ય તેઓ ઐચ્છિક રીતે કરે છે, એટલે કે તેમની

वा साधनादिरूप कारणवशात् उपाश्रयस्य मध्ये एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन् नातिक्रामति जिनाज्ञामिति चतुर्थोऽतिशेषः। तथा—आचार्य उपाध्यायो वा साधनादिरूपकारणवशात् उपाश्रयाद् बहिः एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन् जिनाज्ञां नातिक्रामतीति पञ्चमोऽतिशेषः। अत्रेदं बोध्यम् गणावच्छेदकस्यादितस्त्रयोऽतिशेषा न भवन्ति, अन्तिमौ द्वौ भवतः। तदुक्तम्—

"गणावच्छेययस्स गणंसि णं दो अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा—गणावच्छेयए अन्तो उवस्सयस्स एगराय वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ १, गणावच्छेयए

धुओंकी वैयावृत्ति करनेमें उसकी कामचारता है, उसकी इच्छा होती है, तो वह करता है और नहीं होती है तो नहीं करता है। अन्य साधुओंकी वैयावृत्ति करनेमें उसे प्रतिषेध नहीं है। चतुर्थ अतिशेष ऐसा है, आचार्य अथवा उपाध्याय साधनादि रूप कारणके वशसे उपाश्रयमें एक रात या दो रात तक अकेला रहता है, तो वह जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करता है, पांचवां अतिशेष ऐसा है, आचार्य अथवा उपाध्याय साधनादि रूप कारणके वशसे उपाश्रयके बाहर एक रात अथवा दो रात तक यदि बाहर रहता है, तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं बनता है, आदिके तीन अतिशेष गणावच्छेदकको नहीं होते हैं, अन्तिम दो अतिशेष होते हैं तदुक्तम्—

"गणावच्छेयगस्स गणंसि णं दो अइसेसा पण्णत्ता—तं जहा गणावच्छेयए बाहिं उवस्सयस्स एगराय वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्क

ઇચ્છા થાય તો કરે છે અને ઇચ્છા ન થાય તો કરતા નથી તેઓ અનુનાયક હોવાથી તેમને માટે વૈયાવૃત્ય કરવાનું ફરજિયાત નથી, અને વૈયાવૃત્ય કરવાનો નિષેધ પણ નથી

ચોથો અતિશેષ આ પ્રકારનો છે—આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય સાધના આદિ રૂપ કારણે ઉપાશ્રયમાં એકથી બે રાત સુધી એકલા રહે તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી.

પાંચમો અતિશેષ આ પ્રકારનો છે—આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય સાધના આદિ રૂપ કારણને લીધે ઉપાશ્રયની બહાર એક અથવા બે રાત સુધી રહે છે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી

પહેલાં ત્રણ અતિશેષનો ગણાવચ્છેદકમાં સદ્ભાવ હોતો નથી, છેલ્લા બે અતિશેષોનો જ તેમનામાં સદ્ભાવ હોય છે કહ્યું પણ છે કે—

"गणावच्छेयगस्स गणंसि णं दो अइसेसा पण्णत्ता—तं जहा गणावच्छेयए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ१। गणावच्छेयए

बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ २ ॥"

छाया—गणावच्छेदकस्य गणे खलु द्वौ अतिशेषौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—गणावच्छेदकः अन्तरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति १, गणावच्छेदको बहिरुपाश्रयात् एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति २। इति ।

यदि आचार्योपाध्यायगणावच्छेदकाः सहैव समागच्छेयुस्तत्र यदि गणावच्छेदः पर्यायज्येष्ठो भवति, तदा पर्यायज्येष्ठत्वाद् गणावच्छेदकस्य प्रथमं पादप्रस्फोटना, अनन्तरमाचार्योपाध्याययोः पर्यायक्रमानुसारेणेति ॥सू० २८॥

आचार्योपाध्याययोर्गणेऽतिशेषा उक्ताः, सम्प्रति तयोरतिशयविपरीतानि गणनिर्गमनकारणानि प्राह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं आयरियउवज्झायस्स गणावक्कमणे पण्णत्ते तं जहा—आयरियउवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा नो सम्मं पउंजित्ता भवइ १। आयरियउवज्झाए गणंसि आहारायणियाए किइकम्मं वेणइयं णो सम्मं पउंजित्ता भवइ २। आयरियउवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारेइ ते काले काले नो सम्ममणुप्पवाएत्ता भवइ ३। आयरियउवज्झाए

मइ १ गणावच्छेयए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ २" इसका अर्थ पूर्वोक्तानुसारही है—

यदि आचार्य उपाध्याय और गणावच्छेदक ये तीनों साथही आते हैं, तो उनमें यदि गणावच्छेदक पर्यायसे ज्येष्ठ है, तो उस गणावच्छेदककी पादप्रस्फोटना (प्रमार्जना) सबसे पहिले होतीहै, इसके बाद आचार्य और उपाध्यायकी पर्यायके क्रमानुसार होती है ॥सू० २८॥

बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ२"

આ સૂત્રપાઠનો ભાવાર્થ પૂર્વોક્ત કથન અનુસાર જ સમજવો. જો આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અને ગણાવચ્છેદક એ ત્રણે સાથે જ આવે, તો ગણાવચ્છેદક જો પર્યાયની અપેક્ષાએ જ્યેષ્ઠ હોય તો તે ગણાવચ્છેદકની પાદપ્રસ્ફોટના (પગની પ્રમાર્જના) સૌથી પહેલા થાય છે અને ત્યાર બાદ પર્યાયના ક્રમ અનુસાર આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયના પગની પ્રમાર્જના થાય છે ॥ ...

गणंसि सगणियाए वा परगणियाए वा निग्गंथीए बहिल्लेसे भवइ ४। मित्ते णाईगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा, तेसिं संगहोवग्गहट्ठयाए गणावक्कमणे पण्णत्ते ॥ सू० २९ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः आचार्योपाध्यायस्य गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति १, आचार्योपाध्यायो गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म वैनयिकं नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति २। आचार्योपाध्यायो गणे यानि श्रुतपर्यवजातानि धारयति तानि काले काले नो सम्यक् अनुप्रवाचयिता भवति ३। आचार्योपाध्यायो गणे स्वगणिकायां वा परगणिकायां वा निर्ग्रन्थ्यां बहिर्लेश्यो भवति ४। मित्रं ज्ञातिगणो वा तस्य गणात् अपक्रामेत् तेषां संग्रहोपग्रहार्थाय गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम् ५ ॥सू०२९॥

टीका – ' पञ्चहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः आचार्योपाध्यायस्य–आचार्योपाध्यायरूपविशिष्टस्यैकस्य साधोः आचार्यस्य उपाध्यायस्य च साधुद्वयस्य वा गणापक्रमणम्–गणात्=गच्छात् अपक्रमणं=निस्सरणं=बहिर्गमनम् प्रज्ञप्तम् । तद्यथा–तानि स्थानान्याह—आचार्योपाध्यायो गणे=गच्छे आज्ञां=' हे मुने ! भवतेदं विधेयम् ' इत्येवंरूपाम्,

---

आचार्य और उपाध्यायके गणमें इस प्रकारसे जो अतिशेष होते हैं वे प्रकट किये अब सूत्रकार इन दोनोंके गणसे निर्गमन होनेके कारणोंको जो अतिशयोंसे विपरीत होते हैं कहते हैं—

'पंचहिं ठाणेहिं आयरियउवज्झायस्स इत्यादि सूत्र २९ ॥

टीकार्थ–पांच कारणोंको लेकर आचार्य रूप उपाध्यायका अथवा आचार्य एवं उपाध्यायका गच्छसे निस्सरण होना कहा गया है–वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं–"आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा " इत्यादि

આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયના ગણમાં આ પ્રકારના જે અતિશયો હોય છે તે પ્રકટ કરવામાં આવ્યા હવે સૂત્રકાર તે બન્નેના ગણમાંથી નીકળી જવાના કારણોનું નિરૂપણ કરે છે અતિશયો કરતાં નિર્ગમન વિપરીત હોવાથી અતિશયોનું નિરૂપણ કરીને સૂત્રકાર નિર્ગમનના કારણો પ્રકટ કરે છે

ટીકાર્થ–" પંચહિં ઠાણેહિં આયરિયઉવજ્ઝાયસ્સ " ઇત્યાદિ—

નીચેનાં પાંચ કારણોને લીધે આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાયને અથવા આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયને ગચ્છમાંથી નીકળી જવું પડે છે તે કારણો આ પ્રમાણે છે

(૧) આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે આજ્ઞાં વા ધારણાં વા ઇત્યાદિ—જે આચાર્ય

धारणां=' नेदं विधेयम् ' इत्येवंरूपां वा नो सम्यग्=यथौचित्येन प्रयोक्ता=प्रवर्त्तको भवति। अयं भावः-गणस्य दुर्विनीतत्वात् आज्ञां धारणां वा गणे प्रवर्त्तयितुमशक्नुवन् आचार्य उपाध्यायो वा गणादपक्रामति कालकाचार्यवदिति। आज्ञाधारणयोर्विशिष्टव्याख्याऽस्यैव स्थानकस्य प्रथमोद्देशे त्रयोदशसूत्रे द्रष्टव्या। इति प्रथमं स्थानम्। तथा-आचार्योपाध्यायो गणे=गणविषये यथारात्निकतया=पर्यायज्येष्ठानुसारेण कृतिकर्म=वन्दनकं वैनयिकं=विनयं च नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति। अयं भावः-आचार्येणापि प्रतिक्रमणक्षामणादिषु पर्यायज्येष्ठानामुचितो

आचार्य या उपाध्याय गच्छमें आज्ञाका-" हे मुने ! आपको यह करना चाहिये " इस प्रकारका निषेधका औचित्यरूपसे यदि प्रवर्त्तक नहीं होता है, तथा आज्ञा और धारणा नहीं करा सकता है, तो उसे गणसे पृथक् हो जाना चाहिये ऐसा यह प्रथम कारण है। तात्पर्य इसका ऐसा है, कि अपना गण यदि दुर्विनीत हो गया है, और वह गणमें अपनी आज्ञा एवं धारणाको प्रवृत्त करानेमें अशक्य है, तो ऐसी स्थितिमें उसका कालकाचार्यकी तरह गणसे बाहर होना श्रेयस्कर है १ आज्ञा और धारणाकी विशिष्ट व्याख्या इसी स्थानके प्रथम उद्देशकमें १३ वें सूत्रमें देख लेनी चाहिये। द्वितीय स्थान ऐसा है-आचार्य एवं उपाध्याय यदि अपने गणमें पर्याय ज्येष्ठके अनुसार कृतिकर्म वन्दनक एवं वैनयिक विनय इनके प्रयोक्ता नहीं होते हैं, तो उन्हें गणसे पृथक् हो जाना चाहिये इसका भाव ऐसा है. आचार्यको भी प्रतिक्रमण क्षामणा आ-

---

અથવા ઉપાધ્યાય પોતાના ગણુમા આજ્ઞા અને ધારણાનું ઉચિત રીતે પાલન કરાવવાને સમર્થ ન હોય તો તેમણે ગણમાંથી નીકળી જવું જોઈએ. " હે મુનિ ! તમારે આ પ્રમાણે કરવું જોઈએ " આ પ્રકારના આદેશને આજ્ઞા કહે છે. " હે મુનિ ! તમારે આ પ્રમાણે ન કરવું જોઈએ " આ પ્રકારના નિષેધનું નામ ધારણા છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એવું છે કે પોતાનો શિષ્યસમુદાય દુર્વિનીત થઈ ગયો હોય અને તે કારણે પોતાની આજ્ઞા અને ધારણાનું તેમની પાસે પાલન કરાવવાનું અશકય બની ગયું હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમા કાલકાચાર્યની જેમ તેમણે ગણમાથી નીકળી જવું જોઈએ. આજ્ઞા અને ધારણાની વિસ્તૃત વ્યાખ્યા આજ સ્થાનના પહેલા ઉદ્દેશાના ૧૩ મા સૂત્રમાં આપવામા આવી છે, તો ત્યાંથી વાંચી લેવી જોઈએ.

બીજુ કારણ આ પ્રમાણે છે--જો આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય પોતાના ગણમાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ કૃતિકર્મ, વન્દણા અને વૈનયિકના પ્રયોક્તા ન હોય, તો તેમણે ગણમાથી અલગ થઈ જવું જોઈએ આ કથનનો ભાવાર્થ

गणंसि सगणियाए वा परगणियाए वा निग्गंथीए बहिल्लेसे भवइ ४। मित्ते णाईगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा, तेसिं संगहोवग्गहट्ठयाए गणावक्कमणे पण्णत्ते ॥ सू० २९ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः आचार्योपाध्यायस्य गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति १, आचार्योपाध्यायो गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म वैनयिकं नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति २। आचार्योपाध्यायो गणे यानि श्रुतपर्यवजातानि धारयति तानि काले काले नो सम्यक् अनुप्रवाचयिता भवति ३। आचार्योपाध्यायो गणे स्वगणिकायां वा परगणिकायां वा निर्ग्रन्थ्यां बहिर्लेश्यो भवति ४। मित्रं ज्ञातिगणो वा तस्य गणात् अपक्रामेत् तेषां संग्रहोपग्रहार्थाय गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम् ५ ॥सू०२९॥

टीका – 'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः आचार्योपाध्यायस्य-आचार्योपाध्यायरूपविशिष्टस्यैकस्य साधोः आचार्यस्य उपाध्यायस्य च साधुद्वयस्य वा गणापक्रमणम्-गणात्=गच्छात् अपक्रमणं=निस्सरणं=बहिर्गमनं प्रज्ञप्तम्। तद्यथा–तानि स्थानान्याह—आचार्योपाध्यायो गणे=गच्छे आज्ञां='हे मुने! भवतेदं विधेयम्' इत्येवंरूपाम्,

---

आचार्य और उपाध्यायके गणमें इस प्रकारसे जो अतिशेष होते हैं वे प्रकट किये अब सूत्रकार इन दोनोंके गणसे निर्गमन होनेके कारणोंको जो अतिशयोंसे विपरीत होते हैं कहते हैं—

'पंचहिं ठाणेहिं आयरियउवज्झायस्स इत्यादि सूत्र २९॥

टीकार्थ–पांच कारणोंको लेकर आचार्य रूप उपाध्यायका अथवा आचार्य एवं उपाध्यायका गच्छसे निस्सरण होना कहा गया है–वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं–"आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा" इत्यादि

આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયના ગણમાં આ પ્રકારના જે અતિશેષ હોય છે તે પ્રકટ કરવામાં આવ્યા. હવે સૂત્રકાર તે બન્નેના ગણમાંથી નીકળી જવાના કારણોનું નિરૂપણ કરે છે અતિશયો કરતાં નિર્ગમન વિપરીત હોવાથી અતિશયોનું નિરૂપણ કરીને સૂત્રકાર નિર્ગમનના કારણો પ્રકટ કરે છે

ટીકાર્થ–" પંચહિં ઠાણેહિં આયરિયઉવજ્ઝાયસ્સ ' ઇત્યાદિ—

નીચેનાં પાંચ કારણોને લીધે આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાયને અથવા આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયને ગચ્છમાંથી નીકળી જવું પડે છે તે કારણો આ પ્રમાણે છે

(૧) ' આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે આજ્ઞાં વા ધારણાં વા ઇત્યાદિ—જો આચાર્ય

संभाव्यते इति विचारणा न कार्या। यतः प्राक्तनाशुभघनचिक्कणगुरुवज्रसार-कर्मोदयाद् ज्ञानाढ्या अपि उत्पथप्रवृत्ता भवन्ति। तदुक्तम्—

" कम्माइं णूणं घणचिक्कणाइं गरुयाइं वज्जसाराइं।
नाणड्ढयंपि पुरिसं पंथाओ उप्पहं निंति॥१॥ "

छाया—कर्माणि नूनं घनचिक्कणानि गुरुकाणि वज्रसाराणि।
ज्ञानाढ्यमपि पुरुषं नूनं पथ उत्पथं नयन्ति॥ १ ॥ इति।

इति चतुर्थं स्थानम्।

तथा—तस्य=आचार्यस्य मित्रं=सुहृत् ज्ञातिगणः=स्वजनवर्गो वा कुतश्चित् कारणात् गणात् अपक्रामेत्=निर्गच्छेत्, तेषां=निर्गतानां सुहृत्स्वजनानां, संग्रहोपग्रहार्थम्—सङ्ग्रहः=स्वीकरणम् उपग्रहः=वस्त्रादिदानैरुपष्टम्भः, तदर्थं गणापक्रमणं=गच्छान्निर्गमनम् आचार्योपाध्यायस्य प्रज्ञप्तमिति पञ्चमं स्थानकम्॥सू० २९॥

चाहिये क्योंकि प्राक्तन अशुभ घन चिक्कण वज्रसार कर्मके उदयसे ज्ञानाढ्यजन भी उत्पथमें प्रवृत्त हो जाते हैं, जैसा कि कहा है—

" कम्माइं णूणं " इत्यादि

घनचिक्कण गुरु वज्रसार कर्म ज्ञानाढ्य पुरुषको भी उन्मार्गमें ले जाते हैं। पांचवां स्थान ऐसा है, यदि आचार्य एवं उपाध्यायके सुहृत्-जन अथवा ज्ञातिगण—स्वजनवर्ग गणसे बाहर हो गये हों तो उन निकले हुए सुहृत् जन एवं स्वजनोंके संग्रह एवं उपग्रहके लिये—स्वीकार एवं वस्त्रादिकोंसे उन्हे धर्ममें स्थिर करनेके लिये गच्छसे बाहर होना कहा गया है, ऐसा यह पांचवां स्थान है॥ सू० २९॥

પ્રકારનો ભાવ સંભવી શકતો નથી," એવી વિચારણા કરવી જોઈએ નહીં, કારણ કે પ્રાક્તન, અશુભ, ઘન, ચીકણા અને વજ્રસાર કર્મના ઉદયથી જ્ઞાનાઢ્ય પુરુષનું પણ પતન થઈ જાય છે અને તે અવળે માર્ગે ચડી જાય છે. કહ્યુ પણ છે કે " कम्माइं णूणं " ઈત્યાદિ–ઘન, ચીકણા, ગુરુ અને વજ્રસાર કર્મ જ્ઞાનાઢ્ય પુરુષને પણ ઉત્પથમાં (અવળે માર્ગે) લઈ જાય છે.

પાંચમુ કારણ—જો આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયના સુહૃદજનો અથવા જ્ઞાતિગણ (સ્વજનોનો સમૂહ) ગણમાંથી બહાર નીકળી ગયેલ હોય, તો તેમના (નીકળી ગયેલા તે લોકોના) સંગ્રહ અને ઉપગ્રહને માટે-સ્વીકાર અને વસ્ત્રાદિકો વડે તેમને ધર્મમાં સ્થિર કરવાને માટે તેમણે ગચ્છમાંથી નીકળી જવું જોઈએ. ॥ સૂ. ૨૯ ॥

विनयः कर्तव्य एव। स चेद् आचार्यसम्पदा साभिमानस्तया न करोति तदा तस्य गणान्निष्क्रमणं भवति। एवमुपाध्यायस्यापि योज्यमिति। इति द्वितीय स्थानम्। तथा-आचार्योपाध्यायौ यानि श्रुतपर्यवजातानि=सूत्रार्थप्रकारान् धारयतिः=अवगच्छति तानि काले काले=यथावसर नो सम्यक्=यथावद्ध्येन अनुप्र वाचयिता=पाठयिता भवतीति-गणादपक्रामतीति तृतीय स्थानम्। तथा-आचा र्योपाध्यायो गणे स्थितः सन् स्वगणिकायां=स्वगच्छस्थितायां परगणिकायां= परगणस्थितायां वा निर्ग्रन्थ्यां=साध्व्यां बहिर्लेश्यः-प्राक्तनाशुभकर्मोदयवशेन सकम्पकरणाणामध्यवसायस्थानमपमपागादद् बहिर्गतालेश्या=अन्तःकरण यस्य स तथाभूतः-आसक्तो भवतीति गणादपक्रान्तो भवति। गुणाढ्यस्याचार्यस्य नैवं

दिमें पर्यायसे ज्येष्ठ साधुजनोंका उचित विनय करना चाहिये यदि वह आचार्य सम्पदासे अभिमान सहित होता हुआ ऐसा नहीं करता है, तो उसका गणसे निष्क्रमण होता है, इसी प्रकारसे उपाध्यायके सम्ब न्धमें भी जानना चाहिये ऐसा यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान ऐसा है, आचार्य और उपाध्याय जिन सूत्रार्थ प्रकारोंको जानते हैं, उन्हें यथावसर वे यदि सम्यक् रूपसे शिष्योंको पढानेवाले नहीं होते हैं तो उन्हें गणसे पृथक् हो जाना चाहिये। चतुर्थ कारण ऐसा है, कि आचार्य एवं उपाध्याय गणमें स्थित होता हुआ अपने गच्छमें रही हुई या पर गच्छमें रही हुई निर्ग्रन्थीके ऊपर बहिर्लेश्यावाला मन जाता है-आसक्त हो जाता है, तो वह गणसे बाहर निकाला जाता है "गुणाढ्य आचा र्यके ऐसा भाव संभवित नहीं होता है" ऐसी विचारणा नहीं करनी

એવો છે કે આચાર્યે પણ પ્રતિક્રમણ, ખામણાં આદિમાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ પોતાના કરતાં જ્યેષ્ઠ જે સાધુઓ હોય તેમનો ઉચિત વિનય કરવો જોઈએ અને આ પ્રકારના પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુઓનો યોગ વિનય અન્ય સાધુઓ પાસે પણ કરાવવો જોઈએ જો આચાર્ય અભિમાનને કારણે પર્યાયજ્યેષ્ઠ સાધુઓનો વિનય ન કરે તો તેમને ગણમાંથી નીકળી જવું પડે છે ઉપા ધ્યાયને પણ એ જ પ્રકારના કારણને લીધે ગણમાંથી નીકળી જવું પડે છે

ત્રીજું કારણ—આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય જે સૂત્રાર્થ પ્રકારોને જાણતા હોય, તેમનું યોગ્ય અવસરે શિષ્યોને સમ્યક્ રીતે અધ્યયન ન કરાવે, તો તેમણે ગણમાંથી નીકળી જવું જોઈએ

ચોથું કારણ—જો આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય પોતાના ગચ્છની અથવા અન્ય ગચ્છની નિર્ગ્રંથીમાં આસક્ત થઈ જાય-તેના પ્રત્યે કુદૃષ્ટિ કરે તો, તેમને ગણમાંથી નીકળી જવું પડે છે. "ગુણાઢ્ય (ગુણસંપન્ન) આ આચાર્યમાં

संभाव्यते इति विचारणा न कार्या। यतः प्राक्तनाशुभघनचिक्कणगुरुवज्रसार-कर्मोदयाद् ज्ञानाढ्या अपि उत्पथप्रवृत्ता भवन्ति। तदुक्तम्—

"कम्माइं णूणं घणचिक्कणाइं गरुयाइं वज्जसाराइं।
णाणड्ढयंपि पुरिसं पंथाओ उप्पहं निंति ॥१॥"

छाया—कर्माणि नूनं घनचिक्कणानि गुरुकाणि वज्रसाराणि।
ज्ञानाढ्यमपि पुरुषं नूनं पथ उत्पथं नयन्ति ॥ १ ॥ इति।

इति चतुर्थं स्थानम्।

तथा—तस्य=आचार्यस्य मित्रं=सुहृत् ज्ञातिगणः=स्वजनवर्गो वा कुतश्चित् कारणात् गणात् अपक्रामेत्=निर्गच्छेत्, तेषां=निर्गतानां सुहृत्स्वजनानां, संग्रहोपग्रहार्थम्—सङ्ग्रहः=स्वीकरणम् उपग्रहः=वस्त्रादिदानैरुपष्टम्भः, तदर्थं गणापक्रमणं=गच्छान्निर्गमनम् आचार्योपाध्यायस्य प्रज्ञप्तमिति पञ्चमं स्थानकम् ॥सू० २९॥

चाहिये क्योंकि प्राक्तन अशुभ घन चिक्कण वज्रसार कर्मके उदयसे ज्ञानाढयजन भी उत्पथमें प्रवृत्त हो जाते हैं, जैसा कि कहा है—

"कम्माइं णूणं" इत्यादि

घनचिक्कण गुरु वज्रसार कर्म ज्ञानाढ्य पुरुषको भी उन्मार्गमें ले जाते हैं। पांचवां स्थान ऐसा है, यदि आचार्य एवं उपाध्यायके सुहृत्-जन अथवा ज्ञातिगण—स्वजनवर्ग गणसे बाहर हो गये हों तो उन निकले हुए सुहृत् जन एवं स्वजनोंके संग्रह एवं उपग्रहके लिये—स्वीकार एवं वस्त्रादिकोंसे उन्हे धर्ममें स्थिर करनेके लिये गच्छसे बाहर होना कहा गया है, ऐसा यह पांचवां स्थान है ॥ सू० २९॥

પ્રકારનો ભાવ સંભવી શકતો નથી," એવી વિચારણા કરવી જોઈએ નહીં, કારણ કે પ્રાક્તન, અશુભ, ઘન, ચીકણા અને વજ્રસાર કર્મના ઉદયથી જ્ઞાનાઢ્ય પુરુષનું પણ પતન થઈ જાય છે અને તે અવળે માર્ગે ચડી જાય છે. કહ્યું પણ છે કે "કમ્માઈં ણૂણં" ઈત્યાદિ–ઘન, ચીકણા, ગુરુ અને વજ્રસાર કર્મ જ્ઞાનાઢ્ય પુરુષને પણ ઉત્પથમાં (અવળે માર્ગે) લઈ જાય છે.

પાંચમું કારણ—જો આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયના સુહૃદજનો અથવા જ્ઞાતિગણ (સ્વજનોનો સમૂહ) ગણમાંથી બહાર નીકળી ગયેલ હોય, તો તેમના (નીકળી ગયેલા તે લોકોના) સંગ્રહ અને ઉપગ્રહને માટે–સ્વીકાર અને વસ્ત્રાદિકો વડે તેમને ધર્મમાં સ્થિર કરવાને માટે તેમણે ગચ્છમાંથી નીકળી જવું જોઈએ.

आचार्यस्य गणादपक्रमणमनन्तरसूत्रे प्रोक्तम् । आचार्यस्तु ऋद्धिमानेव भवतीति ऋद्धिमतो मनुष्यविशेषानाह—

मूलम्—पंचविहा इड्डिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा भावियप्पाणो अणगारा ॥ सू० ३० ॥

॥ इइ पंचमट्ठाणस्स बिइओ उद्देसो ॥

छाया—पञ्चविधा ऋद्धिमन्तो मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अर्हन्तः, चक्रवर्तिनः, बलदेवाः, वासुदेवाः, भावितात्मानोऽनगाराः ॥ सू० ३० ॥

॥ इति पञ्चमस्थानस्य द्वितीय उद्देशः ॥

टीका—'पंचविहा' इत्यादि—

ऋद्धिमन्तः—ऋद्धिः=लब्धिः, सा च—आमर्शौषधिः विप्रुडौषधिः, श्लेष्मौषधिः—१—जल्लौषधिः २ जल्लो=मलः, स एव ओषधिः, सर्वौषधिः, संभिन्नश्रो

आचार्यका गणसे अपक्रमण (निकलना) अनन्तर सूत्रमें कहा गया है, आचार्य तो ऋद्धिवालाही होता है, अतः अब सूत्रकार ऋद्धिवाले मनुष्य विशेषोंका कथन करते हैं—

'पंचविहा इड्डिमंता मणुस्सा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ३० ॥

टीकार्थ—ऋद्धिवाले मनुष्य पाँच प्रकारके कहे गये हैं जैसे—अर्हन्त १ चक्रवर्ती २ बलदेव ३ वासुदेव ४ और भावितात्मा अनगार ५ ऋद्धि नाम लब्धिका है, यह ऋद्धि अनेक प्रकारकी होती है, जैसे—आमर्शौषधि १ विप्रुडौषधि २ श्लेष्मौषधि ३ जल्लौषधि ४ सर्वौषधि ५

આગલા સૂત્રમાં આચાર્યના ગણમાંથી અપક્રમણ (નીકળી જવાની ક્રિયા) ના કારણો પ્રકટ કરવામાં આવ્યા. આચાર્યો તો ઋદ્ધિવાળા હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ઋદ્ધિસંપન્ન વિશિષ્ટ વ્યક્તિઓનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ—" પંચવિહા ઇડ્ડિમંતા મણુસ્સા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

ઋદ્ધિસંપન્ન મનુષ્યોના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અર્હંત, (૨) ચક્રવર્તી, (૩) બલદેવ, (૪) વાસુદેવ અને (૫) ભાવિતાત્મા અણગાર.

ઋદ્ધિ એટલે લબ્ધિ. તેના અનેક પ્રકારો કહ્યા છે જેમકે (૧) આમર્શૌષધિ, (૨) વિપ્રુડૌષધિ, (૩) શ્લેષ્મૌષધિ, (૪) જલ્લૌષધિ, (૫) સર્વૌષધિ,

त्वलब्धिः ६, संभिन्नश्रोतृत्वम्=युगपत्सर्वशब्दश्रवणशक्तिमत्ता अवधिलब्धिः ७ ऋजुमतित्वलब्धिः ८, विपुलमतित्वलब्धिः ९, चारणत्वलब्धिः १० आशीविषत्व लब्धिः ११, आशीविषत्व=शापानुग्रहसामर्थ्यम् केवलित्वलब्धिः १२, गणधरत्व-लब्धिः १३, पूर्वधरत्वलब्धिः १४, अर्हत्त्वलब्धिः १५, चक्रवर्तित्वलब्धिः १६, बलदेवत्वलब्धिः १७, वासुदेवत्वलब्धिः १८ क्षीरास्रवत्व, मध्वास्रवत्व, सर्पिरास्रवत्वलब्धिः १९, कोष्ठबुद्धित्वलब्धिः २०, पदानुसारित्वलब्धिः २१, बीजबुद्धित्वलब्धिः २२, तेजोलेश्यत्वलब्धिः २३, आहारकत्वलब्धिः २४, शीतलेश्यत्व-लब्धिः २५, वैक्रियत्वलब्धिः २६, अक्षीणमहानसत्वलब्धिः २७, पुलाकत्वलब्धिः २८, उक्त च-" उदयखयखओवसमोवसमसमुत्था बहुप्पगाराओ ।

एवं परिणामवसा, लद्धीओ होंति जीवाणं " ॥

छाया—उदय क्षय क्षयोपशमोपशम समुत्था बहुप्रकाराः ।

एवं परिणामवशाद् लब्धयो भवन्ति जीवानाम् ॥ इति ।

एवं प्रकारा ऋद्धिरस्ति प्राचुर्येण येषां ते तथाभूता मनुष्याः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-अर्हन्त इत्यादयः । तत्र-भावितात्मानः-

---

संभिन्नश्रोत्र लब्धि ६, अवधि लब्धि ७, ऋजुमति लब्धि ८, विपुल-मति लब्धि ९, चारण लब्धि १०, आशीविष लब्धि ११, केवलिलब्धि १२, गणधरलब्धि १३, पूर्वधर लब्धि १४, अर्हत्व लब्धि १५, चक्रव-र्तित्व लब्धि १६, बलदेव लब्धि १७, वासुदेव लब्धि १८, क्षीरास्रव, मध्वास्रव, सर्पिरास्रव लब्धि १९, कोष्ठबुद्धि लब्धि २०, पदानुसारि लब्धि २१, बीजबुद्धि लब्धि २२, तेजोलेश्या लब्धि २३, आहारक लब्धि २४, शीतलेश्या लब्धि २५, वैक्रिय लब्धि २६, अक्षीण महानस लब्धि २७, पुलाक लब्धि २८. सोही कहाहै-"उदयखय खओवसमो" इत्यादि।

शुभ कर्मोंके उदयसे कर्मोंके क्षयसे कर्मोंके क्षयोपशमसे कर्मोंके उपशमसे एवं शुभ परिणामोंके वशसे जीवोंको अनेक प्रकारकी लब्धियां उत्पन्न होती हैं । ऐसी ऋद्धि जिनके प्रचुर मात्रामें होती हैं वे ऋद्धि-

---

(६) સંભિન્નશ્રોત્રલબ્ધિ, (૭) અવધિલબ્ધિ, (૮) ઋજુમતિલબ્ધિ, (૯) વિપુલમતિ લબ્ધિ, (૧૦) ચારણલબ્ધિ, (૧૧) આશીવિષલબ્ધિ, (૧૨) કેવલીલબ્ધિ, (૧૩) ગણધરલબ્ધિ, (૧૪) પૂર્વધરલબ્ધિ, (૧૫) અર્હત્વલબ્ધિ, (૧૬) ચક્રવર્તિત્વલબ્ધિ, (૧૭) બળદેવલબ્ધિ, (૧૮) વાસુદેવલબ્ધિ, (૧૯) ક્ષીરાસ્રવ, મધ્વાસ્રવ, સર્પિરાસ્રવલબ્ધિ, (૨૦) કોષ્ઠબુદ્ધિલબ્ધિ, (૨૧) પદાનુસારીલબ્ધિ, (૨૨) બીજબુદ્ધિલબ્ધિ, (૨૩) તેજોલેશ્યાલબ્ધિ, (૨૪) આહારકલબ્ધિ, (૨૫) શીતલેશ્યાલબ્ધિ, (૨૬) વૈક્રિયલબ્ધિ, (૨૭) અક્ષીણમાનસલબ્ધિ, (૨૮) પુલાકલબ્ધિ વગેરે કહ્યુ પણ છે કે " उदय खय खओवसमो " ઈત્યાદિ —

શુભ કર્મોના ઉદયથી, કર્મોના ક્ષયથી, કર્મોના ક્ષયોપશમથી, કર્મોના ઉપશમથી અને શુભ પરિણામોના નિમિત્તથી જીવોને અનેક પ્રકારની લબ્ધિઓની પ્રાપ્તિ થાય છે. એવી લબ્ધિ અથવા ઋદ્ધિથી ખૂબ જ સંપન્ન પુરુષોને

आचार्यस्य गणादपक्रमणमनन्तरसूत्रे प्रोक्तम् । आचार्यस्तु ऋद्धिमानेव भवतीति ऋद्धिमतो मनुष्यविशेषानाह—

मूलम्—पंचविहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा भावियप्पाणो अणगारा ॥ सू० ३० ॥

॥ इइ पंचमट्ठाणस्स बिइओ उद्देसो ॥

छाया—पञ्चविधा ऋद्धिमन्तो मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अर्हन्तः, चक्रवर्तिनः, बलदेवाः, वासुदेवाः, भावितात्मानोऽनगाराः ॥ सू० ३० ॥

॥ इति पञ्चमस्थानस्य द्वितीय उद्देशः ॥

टीका—' पंचविहा ' इत्यादि—

ऋद्धिमन्तः—ऋद्धिः=लब्धिः, सा च—आमर्शौषधि विप्रुडौषधि, श्लेष्मौषधि —१—जल्लौषधिः २ जल्लो=मलः, स एव औषधिः, सर्वौषधि, संभिन्नश्रो

आचार्यका गणसे अपक्रमण (निकलना) अनन्तर सूत्रमें कहा गया है, आचार्य तो ऋद्धिवालाही होता है, अतः अब सूत्रकार ऋद्धिवाले मनुष्य विशेषोंका कथन करते हैं—

'पंचविहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ३० ॥

टीकार्थ—ऋद्धिवाले मनुष्य पांच प्रकारके कहे गये हैं जैसे—अर्हन्त १ चक्रवर्ती २ बलदेव ३ वासुदेव ४ और भावितात्मा अनगार ५ ऋद्धि नाम लब्धिका है, यह ऋद्धि अनेक प्रकारकी होती है, जैसे—आमर्शौषधि १ विप्रुडौषधि २ श्लेष्मौषधि ३ जल्लौषधि ४ सर्वौषधि ५

આગલા સૂત્રમાં આચાર્યના ગણમાંથી અપક્રમણુ (નીકળી જવાની ક્રિયા) ના પ્રકારો પ્રકટ કરવામાં આવ્યા. આચાર્યો તો ઋદ્ધિવાળા હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ઋદ્ધિસંપન્ન વિશિષ્ટ વ્યક્તિઓનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ—" પંચવિહા ઇડ્ઢિમંતા મણુસ્સા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

ઋદ્ધિસંપન્ન મનુષ્યોના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અર્હંત, (૨) ચક્રવર્તી, (૩) બલદેવ, (૪) વાસુદેવ અને (૫) ભાવિતાત્મા અણુગાર. ઋદ્ધિ એટલે લબ્ધિ તેના અનેક પ્રકારો કહ્યા છે જેમકે (૧) આમ ર્શૌષધિ, (૨) વિપ્રુડૌષધિ, (૩) શ્લેષ્મૌષધિ, (૪) જલ્લૌષધિ, (૫) સર્વૌષધિ,

अथ तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते

उक्तो द्वितीयोद्देशकः, सम्पति तृतीय आरभ्यते। अस्य च पूर्वोद्देशकेन सहायमभिसम्बन्धः। पूर्वस्मिन्नुद्देशके जीवधर्माः प्रायः प्ररूपिताः। अस्मिन्तृतीयोद्देशके अजीवजीवधर्माः प्ररूप्यन्ते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य तृतीयोद्देशकस्येदमादिमं सूत्रम्—

तथा—द्वितीयोद्देशकान्त्यसूत्रेण सहास्य तृतीयोद्देशकप्रथमसूत्रस्यायमभिसम्बन्धः—पूर्वोद्देशकान्त्यसूत्रे ऋद्धिमन्तो जीवास्तिकायविशेषा उक्ताः, इह तु असंख्येयानन्तप्रदेशलक्षणऋद्धिमन्तः समस्ता अस्तिकाया उच्यन्ते—

मूलम्-पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए १, अधम्मत्थिकाए २, आगासत्थिकाए ३, जीवत्थिकाए ४, पोग्गलत्थिकाए ५। धम्मत्थिकाए अवण्णे अगंधे अरसे अफासे

— पांचवे स्थानके तीसरा उद्देशेका प्रारम्भ —

पंचम स्थानका द्वितीय उद्देशा समाप्त हुआ अब सूत्रकार इसका तृतीय उद्देशक प्रारंभ करते हैं, पूर्व उद्देशकके साथ इसका ऐसा संबंध है, कि पूर्व उद्देशकमें प्रायः जीव धर्मोंकी प्ररूपणा हुई है, और अब इस तृतीय उद्देशकमें अजीव जीव धर्मोंकी प्ररूपणा होती है, तथा द्वितीय उद्देशकके अन्तिम सूत्रके साथ इस तृतीय उद्देशकके प्रथम सूत्रका संबध ऐसा है, कि पूर्व उद्देशकके अन्तिम सूत्रमें ऋद्धिमान् जीवास्तिकाय विशेष कहे गये हैं, परन्तु यहां असंख्यात प्रदेशरूप और अनन्तप्रदेशरूप ऋद्धिवाले समस्त अस्तिकाय कहे जा रहे हैं—

— પાંચમા સ્થાનનો ત્રીજો ઉદ્દેશો —

પાંચમાં સ્થાનનો બીજો ઉદ્દેશક પૂરો થયો હવે સૂત્રકાર ત્રીજા ઉદ્દેશકનો પ્રારંભ કરે છે. આ ઉદ્દેશકનો આગલા ઉદ્દેશક સાથે આ પ્રકારનો સંબંધ છે આગલા ઉદ્દેશકમાં જીવધર્મોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, હવે આ ત્રીજા ઉદ્દેશામા અજીવ અને જીવધર્મોની પ્રરૂપણા કરવાની છે બીજા ઉદ્દેશકના છેલ્લા સૂત્ર સાથે આ ઉદ્દેશકના પહેલા સૂત્રનો સબધ આ પ્રકારનો છે-બીજા ઉદ્દેશકના છેલ્લા સૂત્રમા ઋદ્ધિસંપન્ન જીવાસ્તિકાય વિશેષનું કથન કરવામા આવ્યુ હતું, પરન્તુ અહીં અસખ્યાત પ્રદેશ રૂપ અને અનત પ્રદેશ રૂપ ઋદ્ધિવાળા સમસ્ત અસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરવામા આવે છે.

भावित =सद्भावनया भावितः आत्मा यैस्ते तथा-शुभवासनावासितान्तःकरणा अनगाराः=साधवः । एतेषु पञ्चसु आदिचतुर्षु ऋद्धिमत्त्वम् अर्हत्त्वादिभिः, यथासम्भवमामर्शौषध्यादिभिश्च बोध्यम् । पञ्चमभेदस्य ऋद्धिमत्त्वं तु आमर्शौषध्यादिभिरेवेति ॥ सू० ३० ॥

इति श्री विश्वविख्यातजगद्वल्लभ प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापकप्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालव्रतिविरचितायां श्री स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां व्याख्यायां पञ्चमस्थानके द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥५-२॥

मान् कहे जाते हैं ये ऋद्धियां मनुष्योंको होती हैं, अत ये मनुष्य पांच प्रकारके पूर्वोक्त रूपसे प्रकट किये गये हैं । जल्ल नाम मलका है, यह मलही जब औषधिरूप हो जाता है, वह जल्लौषधि है, शाप एवं अनुग्रहकी जो सामर्थ्य है, वह आशीविष ऋद्धि है, एकही साथ समस्त शब्दोंको सुननेकी शक्तिका प्रकट होना सम्भिन्नश्रोतृत्व है, जो साधु जन सद्वासनासे वासित अन्तःकरणवाले होते हैं वे भावितात्मा अनगार हैं । इन पांचोंमेंसे जो आदिके चार मनुष्य हैं उनमें अर्हत्त्वादिसे एव यथासभव आमर्शौषधि आदिसे ऋद्धिमत्ता जानना चाहिये तथा जो पञ्चम भेद है उसमें आमर्शौषधि आदिसेही ऋद्धिमत्ता जानना चाहिये ॥ सू० ३० ॥

श्री जैनाचार्य श्री घासीलालजी महाराज रचित "स्थानाङ्गसूत्र" की सुधा नामकी व्याख्याके पांचवे स्थानका द्वितीय उद्देशा समाप्त ॥ ५-२ ॥

ऋद्धिमान् કહેવામાં આવે છે એવા ઋદ્ધિમાન પુરુષોના અર્હત આદિ પૂર્વોક્ત પાંચ પ્રકારો સમજવા 'જલ્લ' એટલે મળ' તે જલ્લ જ્યારે ઔષધિ રૂપ બની જાય છે, ત્યારે તેને જલ્લૌષધિ કહે છે શાપ અને અનુગ્રહનું જે સામર્થ્ય છે તેનું નામ આશીવિષ લબ્ધિ છે એકી સાથે સમસ્ત શબ્દોને શ્રવણ કરવાની શક્તિ જે ઋદ્ધિને લીધે પ્રાપ્ત થાય છે, તે ઋદ્ધિને સંભિન્નશ્રોતૃત્વ ઋદ્ધિ કહે છે જે મુનિ સદ્વાસનાથી યુક્ત અન્તઃકરણવાળા હોય છે તેમને ભાવિતાત્મા અણગાર કહે છે ઉપર્યુક્ત પાંચમાંથી જે શરૂઆતના ચાર મનુષ્યો છે તેમનામાં અર્હત્વાદિની અપેક્ષાએ અને યથા સંભવ આમર્શૌષધિ આદિની અપેક્ષાએ ઋદ્ધિમત્તા સમજવી જોઈએ અને જે પાંચમો પ્રકાર છે તેમાં આમર્શૌષધિ આદિની અપેક્ષાએ જ ઋદ્ધિમત્તા સમજવી સૂ ૩૦

॥ પાંચમાં સ્થાનકનો બીજો ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥

अथ तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते

उक्तो द्वितीयोद्देशकः, सम्प्रति तृतीय आरभ्यते। अस्य च पूर्वोद्देशकेन सहायमभिसम्बन्धः। पूर्वस्मिन्नुद्देशके जीवधर्माः प्रायः प्ररूपिताः। अस्मिंस्तृतीयोद्देशके अजीवजीवधर्माः प्ररूप्यन्ते, इत्यनेन संबन्धेनायातस्यास्य तृतीयोद्देशकस्येदमादिमं सूत्रम्—

तथा—द्वितीयोद्देशकान्त्यसूत्रेण सहास्य तृतीयोद्देशकप्रथमसूत्रस्यायमभिसम्बन्धः—पूर्वोद्देशकान्त्यसूत्रे ऋद्धिमन्तो जीवास्तिकायविशेषा उक्ताः, इह तु असंख्येयानन्तप्रदेशलक्षणऋद्धिमन्तः समस्ता अस्तिकाया उच्यन्ते—

मूलम्-पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए १, अधम्मत्थिकाए २, आगासत्थिकाए ३, जीवत्थिकाए ४, पोग्गलत्थिकाए ५। धम्मत्थिकाए अवन्ने अगंधे अरसे अफासे

— पांचवें स्थानके तीसरा उद्देशेका प्रारंभ —

पंचम स्थानका द्वितीय उद्देशा समाप्त हुआ अब सूत्रकार इसका तृतीय उद्देशक प्रारंभ करते हैं, पूर्व उद्देशकके साथ इसका ऐसा संबंध है, कि पूर्व उद्देशकमें प्रायः जीव धर्मोंकी प्ररूपणा हुई है, और अब इस तृतीय उद्देशकमें अजीव जीव धर्मोंकी प्ररूपणा होनी है, तथा द्वितीय उद्देशकके अन्तिम सूत्रके साथ इस तृतीय उद्देशकके प्रथम सूत्रका संबध ऐसा है, कि पूर्व उद्देशकके अन्तिम सूत्रमें ऋद्धिमान् जीवास्तिकाय विशेष कहे गये हैं, परन्तु यहां असंख्यात प्रदेशरूप और अनन्तप्रदेशरूप ऋद्धिवाले समस्त अस्तिकाय कहे जा रहे हैं—

— પાંચમા સ્થાનનો ત્રીજો ઉદ્દેશો —

પાચમાં સ્થાનનો બીજો ઉદ્દેશક પૂરો થયો હવે સૂત્રકાર ત્રીજા ઉદ્દેશકનો પ્રારંભ કરે છે. આ ઉદ્દેશકનો આગલા ઉદ્દેશક સાથે આ પ્રકારનો સંબંધ છે આગલા ઉદ્દેશકમા જીવધર્મોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, હવે આ ત્રીજા ઉદ્દેશામા અજીવ અને જીવધર્મોની પ્રરૂપણા કરવાની છે બીજા ઉદ્દેશકના છેલ્લા સૂત્ર સાથે આ ઉદ્દેશકના પહેલા સૂત્રનો સબધ આ પ્રકારનો છે-બીજા ઉદ્દેશકના છેલ્લા સૂત્રમા ઋદ્ધિસપન્ન જીવાસ્તિકાય વિશેષનું કથન કરવામાં આવ્યુ હતું, પરન્તુ અહીં અસખ્યાત પ્રદેશ રૂપ અને અનત પ્રદેશ રૂપ ઋદ્ધિવાળા સમસ્ત અસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરવામા આવે છે.

अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ गुणओ। दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते, कालओ ण कयाइ णासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइत्ति भुविं य भविस्सइ य, धुवे णियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, भावओ अवन्ने अगंधे अरसे अफासे गुणओ गमणगुणे य १। अधम्मत्थिकाए अवन्ने एवं चेव, णवरं गुणओ ठाणगुणे २। आगासत्थिकाए अवन्ने एवं चेव, खेत्तओ लोगालोगपमाणमित्ते, गुणओ अवगाहणा गुणे, सेसं तं चेव ३। जीवत्थिकाए णं अवन्ने एवं चेव, णवरं दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं अरूवी जीवे सासए, गुणओ उवओगगुणे, सेसं तं चेव ४। पोग्गलत्थिकाए पंचवन्ने पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे रूवी अजीवे सासए अवट्ठिए जाव दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते, कालओ ण कयाइ णासी जाव णिच्चे, भावओ वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमंते, गुणओ गहणगुणे ॥ सू०१ ॥

छाया–पञ्च अस्तिकायाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–धर्मास्तिकायः १, अधर्मास्तिकायः २ आकाशास्तिकायो ३ जीवास्तिकायः ४ पुद्गलास्तिकायः ५। धर्मास्तिकायः अवर्णः अगन्धः अरसः अस्पर्शः अरूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितः लोकद्रव्यम्। स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतः भावतः गुणतः। द्रव्यतः खलु धर्मास्तिकाय एकं द्रव्यम्, क्षेत्रतः लोकप्रमाणमात्रः, कालतो न कदापि नासीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यतीति अभूद् भवति भविष्यति च ध्रुवो नित्यः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः भावतः–अवर्णः अगन्धः

अरसः अस्पर्शः, गुणतो गमनगुणश्च १। अधर्मास्तिकायः अवर्णः एवमेव, नवरं गुणतः स्थानगुणः २। आकाशास्तिकायः अवर्ण एवमेव, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणमात्रः, गुणत -अवगाहनागुणः, शेषं तदेव ३। जीवास्तिकायः खलु अवर्णः एवमेव नवरं द्रव्यतः खलु जीवास्तिकायः अनन्तानि द्रव्याणि अरूपी जीवः शाश्वतः, गुणत उपयोगगुण शेष तदेव ४। पुद्गलास्तिकायः पञ्चवर्णः पञ्चरसो द्विगन्धः अष्टस्पर्श रूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितो यावद् द्रव्यतः खलु पुद्गलास्तिकाय अनन्तानि द्रव्याणि. क्षेत्रतो लोकप्रमाणमात्रः, कालतो न कदापि नासीत् यावद् नित्यः, भावतो वर्णवान् गन्धवान् रसवान् स्पर्शवान्, गुणतो ग्रहणगुणः ५ ॥ सू० १ ॥

टीका—' पच अत्थिकाया ' इत्यादि--

अस्तिकायाः-अस्ति शब्दः अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति चेति त्रिकालवाचकः, अस्ति च ते कायाः=प्रदेशानां राशयश्चेति, यद्वा-अस्तिशब्दः प्रदेशवाचकः, अस्तीनां=प्रदेशानां कायाः-राशयः । ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । पञ्चविधत्वमेवाह-

---

'पच अत्थिकाया पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र १ ॥'

टीकार्थ-पांच अस्तिकाय कहे गये हैं-जैसे-धर्मास्तिकाय १ अधर्मास्तिकाय २ आकाशास्तिकाय ३ जीवास्तिकाय ४ और पुद्गलास्तिकाय ५ यहां जो अस्ति शब्द है, वह त्रिकालका वाचक है, अर्थात् ये धर्मास्तिकाय आदि पहिले थे वर्तमानमें हैं, और आगे भी रहेगे । प्रदेशोंकी राशिका नाम काय है, इस तरह जो अस्तिरूप काय हैं, वे अस्तिकाय हैं। अथवा-अस्ति शब्द प्रदेशका वाचक है, इस तरह जो अस्तियोंकी प्रदेशोंकी राशियां हैं, वे अस्तिकाय हैं, ये अस्तिकाय धर्मास्तिकाय आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं. इन धर्मास्तिकायादिक की व्याख्या

" पच अत्थिकाया पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-પાંચ અસ્તિકાય કહ્યા છે—(૧) ધર્માસ્તિકાય, (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય, (૪) જીવાસ્તિકાય અને (૫) પુદ્ગલાસ્તિકાય

અહીં જે અસ્તિ પદ છે, તે ત્રિકાળનું વાચક છે એટલે કે આ ધર્માસ્તિકાય આદિ પહેલા હતા, હાલમા છે અને ભવિષ્યમા પણ હશે જ પ્રદેશોની રાશિને ' કાય ' કહે છે આ રીતે જે અસ્તિ રૂપ કાય છે, તેમને અસ્તિકાય કહે છે અથવા ' અસ્તિ ' શબ્દ પ્રદેશનો વાચક છે આ રીતે જે અસ્તિઓની (પ્રદેશોની) રાશિઓ છે, તેમને અસ્તિકાય કહે છે આ અસ્તિકાયના ધર્માસ્તિકાય આદિ પાચ પ્રકારો છે તેમની વ્યાખ્યા પ્રથમ સ્થાનમાં આપવામા આવી છે, તો ત્યાંથી વાચી લેવી.

अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ गुणओ। दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते, कालओ ण कयाइ णासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइत्ति भुविं च भवइ य भविस्सइ य, धुवे णियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे गुणओ गमणगुणे य १। अधम्मत्थिकाए अवण्णे एवं चेव, णवरं गुणओ ठाणगुणे २। आगासत्थिकाए अवण्णे एवं चेव, खेत्तओ लोगालोगपमाणमित्ते, गुणओ अवगाहणागुणे, सेसं तं चेव ३। जीवत्थिकाए णं अवण्णे एवं चेव, णवरं दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं अरूवी जीवे सासए, गुणओ उवओगगुणे, सेसं तं चेव ४। पोग्गलत्थिकाए पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे रूवी अजीवे सासए अवट्ठिए जाव दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते, कालओ ण कयाइ णासी जाव णिच्चे, भावओ वण्णमंते गंधमंते रसमंते फासमंते, गुणओ गहणगुणे ॥ सू० १ ॥

छाया—पञ्च अस्तिकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—धर्मास्तिकायः १, अधर्मास्तिकायः २ आकाशास्तिकायो ३ जीवास्तिकायः ४ पुद्गलास्तिकायः ५। धर्मास्तिकायः अवर्णः अगन्धः अरसः अस्पर्शः अरूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितो लोकद्रव्यम्। स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—द्रव्यतः कालतः भावतः गुणतः। द्रव्यतः खलु धर्मास्तिकाय एकं द्रव्यम्, क्षेत्रतो लोकप्रमाणमात्रः, कालतो न कदापि नासीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यतीति अभूद् भवति भविष्यति च ध्रुवो नियतः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितो नित्यः भावतः—अवर्णः अगन्धः

गन्धद्वयवर्जितः । अरसः=मधुरादिरसपञ्चकवर्जित । अस्पर्शः=मृदुकर्कशाद्यष्टविध स्पर्श वर्जितः । अरूपी–रूपम् आकारः–वर्णादिमत्त्व, तदस्यास्तीति रूपी, न रूपी–अरूपी=अमूर्त्तः । अजीव.–जीवः=उपयोगलक्षणं जीवद्रव्यम्, न जीवः–अजीवः=अचेतनः । शाश्वतः–प्रतिसमय तस्य सद्भावात् । अवस्थितः–धर्मास्तिकायस्य यत् स्वरूपं नित्यत्वात्तेनैव स्वरूपेण स सर्वदा स्थायी । तथा–लोकद्रव्यम्–लोकस्य अंशभूतं द्रव्यम् । लोकस्य सर्वात्मकं द्रव्य त्वयं नास्ति, पञ्चास्तिकायात्मकलोकस्यैकदेशत्वात् । तदुक्तम्—

'पंचत्थिकायमइये लोए अणाइनिहणे ।"

रहित है, मधुरादिके भेदसे पांचों प्रकारके रससे रहित है, एवं मृत्यु कर्कश आदि आठ प्रकारके स्पर्शसे रहित है । आकाशका नाम रूप है, रूप यह उपलक्षण है, इससे रूप रस आदि चारों गुणोंका ग्रहण हुआ है अतः यह अरूपी है, इसका तात्पर्य ऐसा है, कि यह रूप रस गन्ध आदिसे रहित होनेके कारण अरूपी है, अमूर्त है । उपयोग लक्षणवाला जो होता है, वह जीव है, यह धर्मास्तिकाय ऐसा नहीं है अतः अजीव है, प्रतिसमय इसका सद्भाव रहता है, अतः शाश्वत है, धर्मास्तिकायका जो अपना स्वरूप है, उस स्वरूपसे यह नित्य होनेके कारण सर्वदा स्थायी रहता है, अतः यह अवस्थित है, तथा यह लोकका अंशभूत द्रव्य है, इसलिये यह लोकद्रव्य है, यह लोक पंचास्तिकाय रूप है, केवल धर्मद्रव्यरूप नहीं है, अतः यह लोकका सर्वात्मक द्रव्य नहीं है, किन्तु उसका एक अंशभूत द्रव्य है । कहा भी है–

છે, મધુરાદિ પાંચે પ્રકારના રસથી રહિત છે અને મૃદુ, કર્કશ આદિ આઠ પ્રકારના સ્પર્શથી રહિત છે. આકાશનુ નામ રૂપ છે રૂપ તે ઉપલક્ષણ છે, તેના દ્વારા રૂપ, રસ, આદિ ચારે ગુણોનુ ગ્રહણ થયું છે. તેથી તે અરૂપી છે. આ કથનનુ તાત્પર્ય એ છે કે ધર્માસ્તિકાય રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શથી રહિત હોવાને લીધે અરૂપી છે–અમૂર્ત છે જીવની જેમ તે ઉપયોગ લક્ષણવાળું નથી, તે કારણે તે અજીવ છે પ્રતિસમય તેનો સદ્‌ભાવ રહે છે, તેથી તેને શાશ્વત કહ્યું છે. તેનુ પોતાનુ જે સ્વરૂપ છે તે સ્વરૂપે તે નિત્ય હોવાને લીધે સ્થાયી રહે છે, તેથી તેને અવસ્થિત કહ્યું છે. ધર્માસ્તિકાય આ લોકના અંશભૂત દ્રવ્ય હોવાથી તેને લોકદ્રવ્ય કહ્યુ છે આ લોક પંચાસ્તિકાય રૂપ છે, પરન્તુ માત્ર ધર્મદ્રવ્ય રૂપ નથી, તેથી તેને લોકના સર્વાત્મક દ્રવ્યરૂપ કહી શકાય નહિ, પણ તેના એક અંશભૂત દ્રવ્ય રૂપ જ કહી શકાય છે.

यथा-धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकाय इत्यादि। धर्मास्तिकायादीनां व्याख्या प्रथम स्थानतोऽवसेया। धर्मास्तिकायादिक्रमेण यो निर्देशः कृतस्तत्राय हेतुर्बोध्यः। धर्मशब्दो माङ्गलिक, अत पूर्व धर्मास्तिकायः प्रोक्तः। तदनु धर्मास्तिकाय-प्रतिपक्षत्वात् अधर्मास्तिकायः। धर्माधर्मास्तिकाययोराधारभूतत्वात्तदाकाशास्तिकायः। ततश्च तदाधेयो जीवास्तिकाय। तत्पश्चाद् जीवास्तिकायस्योपग्राहकः पुद्गलास्तिकायश्च प्रोक्तः। सम्प्रति धर्मास्तिकायादीनां स्वरूपं क्रमेणाह-'धम्मत्थिकाए' इत्यादिना तत्र धर्मास्तिकाय -अवर्ण -न विद्यते वर्णोऽशुक्लादिः पञ्चविधो यस्य स -शुक्लादि पञ्चविधवर्णरहितः, अगन्ध'=सुरभिदुरभि-

प्रथम स्थानसे जान लेना चाहिये। इन धर्मास्तिकायादिकोंका जो पूर्वोक्त रूपसे निर्देश किया गया है, उसमें ऐसा विचार है कि धर्मास्तिकायमें जो धर्म शब्द है, वह माङ्गलिक है, इसलिये सबसे पहिले अस्तिकायोंमें धर्मास्तिकायका कथन किया गया है, इस धर्मास्तिकायका प्रतिपक्ष होनेसे उसके बाद अधर्मास्तिकायका कथन किया गया है इन धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायका आधारभूत होनेसे इन दोनोंके बाद आकाशास्तिकायका कथन किया गया है, इस आकाशास्तिकायका आधेय जीवास्तिकाय है, और इस जीवास्तिकायका उपग्राहक पुद्गलास्तिकाय है इसलिये जीवास्तिकायके बाद पुद्गलास्तिकायका कथन किया गया है।

अब सूत्रकार धर्मास्तिकायादिकों के स्वरूप का कथन करते हैं-"धम्मत्थिकाए" इत्यादि-यह धर्मास्तिकाय शुक्लादिके भेदसे पांच प्रकारके वर्णसे रहित है, सुगन्ध और दुर्गन्ध इन दोनों गन्धसे

ધર્માસ્તિકાયમાં ધર્મ ' શબ્દ માંગલિક હોવાથી સમસ્ત અસ્તિકાયોમાં સૌથી પહેલા ધર્માસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે ધર્માસ્તિકાયના પ્રતિપક્ષ રૂપ હોવાને કારણે અધર્માસ્તિકાયની પ્રરૂપણા ત્યાર બાદ કરવામાં આવી છે ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાયના આધારભૂત આકાશાસ્તિકાય છે તે કારણે તે બન્નેની પ્રરૂપણા કર્યા બાદ આકાશાસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરી છે આ આકાશાસ્તિકાયનું આધેય જીવાસ્તિકાય છે અને જીવાસ્તિકાયનું ઉપગ્રાહક પુદ્ગલાસ્તિકાય છે, તે કારણે આકાશાસ્તિકાયનું કથન કર્યા બાદ અનુક્રમે જીવાસ્તિકાય અને પુદ્ગલાસ્તિકાયનું કથન કરવામાં આવ્યું છે હવે સૂત્રકાર ધર્માસ્તિકાય વગેરેના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે

"ધમ્મત્થિકાએ ઇત્યાદિ—ધર્માસ્તિકાય શુક્લ આદિ પાંચ પ્રકારના વર્ણથી રહિત છે સુગંધ અને દુર્ગંધ રૂપ બન્ને પ્રકારના ગંધથી રહિત

गन्धद्वयवर्जितः । अरसः=मधुरादिरसपञ्चकवर्जित । अस्पर्शः=मृदुकर्कशाद्यष्टविध स्पर्श वर्जितः । अरूपी–रूपम् आकारः–वर्णादिमत्त्व, तदस्यास्तीति रूपी, न रूपी–अरूपी=अमूर्त्तः । अजीव.–जीवः=उपयोगलक्षणं जीवद्रव्यम्, न जीवः–अजीवः=अचेतनः । शाश्वतः–प्रतिसमय तस्य सद्भावात् । अवस्थितः–धर्मास्तिकायस्य यत् स्वरूपं नित्यत्वात्तेनैव स्वरूपेण स सर्वदा स्थायी । तथा–लोकद्रव्यम्–लोकस्य अंशभूतं द्रव्यम् । लोकस्य सर्वात्मकं द्रव्य त्वयं नास्ति, पञ्चास्तिकायात्मकलोकस्यैकदेशत्वात् । तदुक्तम्—

' पंचत्थिकायमइये लोए अणाइनिहणे । "

रहित है, मधुरादिके भेदसे पांचों प्रकारके रससे रहित है, एवं मृत्यु कर्कश आदि आठ प्रकारके स्पर्शसे रहित है। आकाशका नाम रूप है, रूप यह उपलक्षण है, इससे रूप रस आदि चारों गुणोंका ग्रहण हुआ है अतः यह अरूपी है, इसका तात्पर्य ऐसा है, कि यह रूप रस गन्ध आदिसे रहित होनेके कारण अरूपी है, अमूर्त है। उपयोग लक्षणवाला जो होता है, वह जीव है, यह धर्मास्तिकाय ऐसा नहीं है अतः अजीव हैं, प्रतिसमय इसका सद्भाव रहता है, अतः शाश्वत है, धर्मास्तिकायका जो अपना स्वरूप है, उस स्वरूपसे यह नित्य होनेके कारण सर्वदा स्थायी रहता हैं, अतः यह अवस्थित है, तथा यह लोकका अंशभूत द्रव्य है, इसलिये यह लोकद्रव्य है, यह लोक पंचास्तिकाय रूप है, केवल धर्मद्रव्यरूप नहीं है, अतः यह लोकका सर्वात्मक द्रव्य नहीं है, किन्तु उसका एक अंशभूत द्रव्य है। कहा भी है–

છે, મધુરાદિ પાચે પ્રકારના રસથી રહિત છે અને મૃદુ, કર્કશ આદિ આઠ પ્રકારના સ્પર્શથી રહિત છે. આકાશનુ નામ રૂપ છે. રૂપ તે ઉપલક્ષણ છે, તેના દ્વારા રૂપ, રસ, આદિ ચારે ગુણોનુ ગ્રહણ થયુ છે. તેથી તે અરૂપી છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે ધર્માસ્તિકાય રૂપ, રસ, ગધ અને સ્પર્શથી રહિત હોવાને લીધે અરૂપી છે-અમૂર્ત છે જીવની જેમ તે ઉપયોગ લક્ષણવાળું નથી, તે કારણે તે અજીવ છે પ્રતિસમય તેનો સદ્ભાવ રહે છે, તેથી તેને શાશ્વત કહ્યુ છે તેનુ પોતાનુ જે સ્વરૂપ છે તે સ્વરૂપે તે નિત્ય હોવાને લીધે સ્થાયી રહે છે, તેથી તેને અવસ્થિત કહ્યું છે ધર્માસ્તિકાય આ લોકના અશભૂત દ્રવ્ય હોવાથી તેને લોકદ્રવ્ય કહ્યુ છે આ લોક પચાસ્તિકાય રૂપ છે, પરન્તુ માત્ર ધર્મદ્રવ્ય રૂપ નથી, તેથી તેને લોકના સર્વાત્મક દ્રવ્યરૂપ કહી શકાય નહિ, પણ તેના એક અશભૂત દ્રવ્ય રૂપ જ કહી શકાય છે.

छाया—पञ्चास्तिकायमयो लोकः अनादिनिधन —इति ।

तत्र विशदयति— 'से समासओ' इत्यादि । स धर्मास्तिकायो द्रव्यादिभेदेन संक्षेपतः पञ्चविधो बोध्यः । तत्र द्रव्यतः=द्रव्यत्वमाश्रित्य धर्मास्तिकाय एकं द्रव्यम्—तथाविधैकपरिणामस्य सत्त्वेनैकत्वसंख्याया एवेह सद्भावात् । क्षेत्रतः=क्षेत्रमाश्रित्य लोकप्रमाणमात्र —लोकस्य प्रमाणं—लोकप्रमाणम्=असंख्येयाः प्रदेशाः, तत्प्रमाणमस्येति । कालतः=कालमाश्रित्य अयं धर्मास्तिकाय त्रैकालिकः, त्रैकालिकत्वमेव विशदयति—न कदापि नासीत् अर्थात्—अस्य धर्मास्तिकायस्य भूतकालिकी सत्ता सर्वदा आसीदेव । तथा—अयं न कदापि न भवति—अस्य वर्तमानकालिकी सत्ता सर्वदा तिष्ठत्येव । तथा च—अयं न कदापि न भविष्यति—अस्य

'पंचत्थिकायमइये" इत्यादि । यह लोक पंचास्तिकाय मय है, और अनादि अनन्त है, इसी विषयको अब सूत्रकार विशद रूपसे प्रकट करते हैं—"से समासओ" इत्यादि—यह धर्मास्तिकाय द्रव्यादिके भेदसे संक्षेपतः पांच प्रकारका कहा गया है—जैसे—द्रव्यकी अपेक्षा धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है, क्योंकि तथाविध एक परिणामके सत्त्वसे एकत्व संख्याकाही इसमें सद्भाव पाया जाता है । क्षेत्रकी अपेक्षा यह धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण मात्र है अर्थात् लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं, असंख्यात प्रदेश हैं—उतनेही प्रमाणवाला यह धर्मास्तिकाय है, क्योंकि तिलमें तेलकी तरह यह पूरे लोकाकाशमें व्यापक है, कालकी अपेक्षा यह धर्मास्तिकाय त्रैकालिक है, ऐसा भूतकालका कोई समय नहीं था कि जिसमें यह न रहा हो वर्तमानकाल भी ऐसा नहीं है, कि

કહ્યું પણ છે કે 'પંચત્થિકાયમઇય" ઇત્યાદિ—

આ લોક પંચાસ્તિકાયમય છે અને અનાદિ અનંત છે એ જ વિષયનું હવે સૂત્રકાર વિસ્તૃત રૂપે નિરૂપણ કરે છે

'સે સમાસઓ' ઇત્યાદિ—તે ધર્માસ્તિકાયના દ્રવ્યાદિના ભેદથી પાંચ પ્રકાર પડે છે—દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ધર્માસ્તિકાય એક દ્રવ્ય છે કારણ કે તથાવિધ (તે પ્રકારના એક પરિણામના સત્ત્વ (સદ્ભાવ) થી એકત્વ સંખ્યાનો જ તેમાં સદ્ભાવ સંભવી શકે છે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આ ધર્માસ્તિકાય લોકપ્રમાણ માત્ર છે એટલે કે લોકાકાશના જેટલા પ્રદેશ છે (લોકાકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશ છે) એટલા જ પ્રમાણવાળું આ ધર્માસ્તિકાય છે જેમ તલમાં તેલ રહેલું હોય છે એ જ પ્રમાણે તે પૂરેપૂરા લોકાકાશમાં વ્યાપક છે કાળની અપેક્ષાએ ત્રણે કાળમાં તેનો સદ્ભાવ કહ્યો છે ભૂતકાળનો કોઈ પણ સમય એવો ન હતો કે જ્યારે તેનું અસ્તિત્વ ન હોય, વર્તમાનકાળે પણ તેનું અસ્તિત્વ ન હોય

भविष्यत्कालिकी सत्तापि सर्वदा स्थास्यत्येव। इति हेतोरयम् अभूत् भवति भविष्यति। इत्थं चायं धर्मास्तिकायस्त्रैकालिको बोध्यः। त्रैकालिकत्वादेव अयं धर्मास्तिकायो ध्रुव। ध्रौव्यं च एकसृष्टयापेक्षयाऽपि संभाव्यतेऽत आह—नियतः= सर्वदा एकरूपेण स्थित इति। नियतत्वमनेकसृष्टयपेक्षयाऽपि संभाव्यमत आह— शाश्वत इति, शाश्वतत्व तु प्रलयाभावात्। एवम् अक्षयः सर्वदा सद्भावित्वात्। तथा—अव्ययः=अविनाशी—केषांचित् पर्यायाणामपगमेऽप्यनन्तपर्यायत्वात्। अवस्थितः—अक्षयत्वेनाव्ययत्वेन च सर्वदा स्थितिशीलः। अनेन प्रकारेणाग- मोपगतो नित्यः।

अथवा यतोऽयं धर्मास्तिकायस्त्रैकालिकः, अतएवासौ ध्रुव। नियतः=एकरूप। शाश्वत=प्रतिक्षणं विद्यमानः। अतएव-अक्षयः=क्षयवर्जितः-

जिसमें यह नहीं रहा है, और भविष्यत् काल भी ऐसा नहीं होगा कि जिसमें इसका सद्भाव नहीं रहेगा अर्थात् भूतकालमें वर्तमानकालमें और भविष्यत् कालमें सर्वदा यह रहा है, रहता है और रहेगा त्रैका- लिक होनेसेही यह धर्मास्तिकाय ध्रुव है, ध्रुवता एक सृष्टिकी अपेक्षासे भी संभवित होती है, अतः इसके लिये कहा गया है, "नियतः" यह धर्मास्तिकाय सर्वदा एकरूपसे स्थित रहता है, नियतता अनेक सृष्टिकी अपेक्षासे भी संभवित हो सकती है, अतः इसके लिये कहा गया है— "शाश्वत" यह शाश्वत है, क्योंकि इसमें क्षयका अभाव है, इसी तरहसे यह अक्षय है, क्योंकि इसका सर्वदा सद्भाव रहता है, तथा यह धर्मास्तिकाय अव्यय है, अविनाशी है, क्योंकि कितनेक पर्यायोंके अपगम हो जाने पर भी यह अनन्तपर्यायवाला होनेसे कभी भी विनष्ट

એવુ નથી અને ભવિષ્યકાળમા પણ કોઈ સમય એવો નહી હોય કે જ્યારે તેનુ અસ્તિત્વ નહી હોય એટલે કે ભુત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાળમા તે અનુક્રમે હતુ, છે અને રહેવાનુ જ છે

આ રીતે ત્રણે કાળમા તેનુ અસ્તિત્વ હોય છે, તે કારણે તેને ધ્રુવ કહ્યુ છે ધ્રુવતા એક સૃષ્ટિની અપેક્ષાએ પણ સભવિત હોય છે, તેથી તેને 'નિયત' વિશેષણ લગાડયુ છે આ ધર્માસ્તિકાય સદા એક જ રૂપે સ્થિત છે. નિયતતા અનેક સૃષ્ટિની અપેક્ષાએ પણ સભવી શકે છે, તેથી તેને શાશ્વત વિશેષણ લગાડયુ છે તેનો ક્ષય થતો નથી તેથી તેને અક્ષય કહ્યુ છે. અથવા તેનો કાયમ સદ્ભાવ રહે છે તેથી તેને અક્ષય કહ્યુ છે આ ધર્માસ્તિકાય અવ્યય (અવિનાશી) છે, કારણ કે કેટલાક પર્યાયોનુ ગમન થઈ જવા છતા પણ તે અનન્ત પર્યાયોવાળુ હોવાથી કદી પણ વિનષ્ટ થતુ નથી. તથા આ

अवयविद्रव्यापेक्षया, अक्षत इतिच्छायापक्षतु अक्षत=परिपूर्णः। तथा-अव्यय-अवयवापेक्षया। तथा-अवस्थित-निश्चलत्वात्। यतोऽयं ध्रुवत्वादिविशिष्टोऽत एव नित्य इति। तथा-भावतोऽयं धर्मास्तिकायो वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित। तथा-गुणतः=कार्यतश्चायं गमनगुणः-गमन=गतिः गुणः=गतिपरिणामपरिणतानां जीवपुद्गलानां सहकारिकारणत्वात् कार्ये मत्स्यानां जलस्येव यस्यासौ, यद्वा-गतौ=गमने गुण उपकारो यस्मात् स -गमनोपकारक इत्यर्थः। इति अथ

नहीं होता है, तथा यह धर्मास्तिकाय अक्षय एवं अव्यय होनेसे सर्वदा स्थितिशील है, इसलिये यह अवस्थित है, इसी प्रकारसे यह सामान्य रूपसे नित्य है, अथवा-जिस कारण यह धर्मास्तिकाय त्रैकालिक है, इसी कारणसे यह ध्रुव है, नियत एक रूप है, शाश्वत है-प्रतिक्षण विद्यमान है, और इसीसे यह अक्षय है, अवयवि द्रव्यकी अपेक्षा क्षय रहित है, अथवा अक्षत है-परिपूर्ण है, तथा-अवयवकी अपेक्षा अव्यय है, निश्चल होनेसे अवस्थित है, जिस कारण यह ध्रुवत्व आदि विशेषणोंवाला है, इसीलिये यह नित्य है, तथा भावकी अपेक्षासे-यह धर्मास्तिकाय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शसे रहित है, तथा कार्यकी अपेक्षासे यह गमन है गुण जिसका ऐसा है, अर्थात् जिस प्रकार मत्स्योंके चल नेमें सहायक जल होता है, उसी प्रकार गति क्रिया परिणत जीव और पुद्गलोंको गमन करनेमें यह सहायक होता है, अतः गमन है, गुण कार्य जिसका ऐसा इसे कहा गया है, अथवा गमनमें है उपकार जिससे

ધર્માસ્તિકાય અક્ષય અને અવ્યય હોવાથી સર્વદા સ્થિતિશીલ હોવાને કારણે તેને અવસ્થિત કહ્યું છે આ પ્રકારે તે સામાન્ય રૂપે નિત્ય છે અથવા જે કારણે આ ધર્માસ્તિકાય ત્રૈકાલિક છે, એ જ કારણે તે ધ્રુવ છે, નિયત (એક રૂપ) છે, શાશ્વત (પ્રતિક્ષણ વિદ્યમાન) છે, અને તેથી જ તે અક્ષય છે, અવયવિ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે ક્ષયરહિત છે અથવા અક્ષત (પરિપૂર્ણ) છે, તથા અવયવની અપેક્ષાએ અવ્યય છે, નિશ્ચલ હોવાને કારણે તે અવસ્થિત છે તે કારણે તે ધ્રુવત્વ આદિ વિશેષણોવાળું છે, તે કારણે જ તે નિત્ય છે ભાવની અપેક્ષાએ આ ધર્માસ્તિકાય વર્ણ, રસ, ગન્ધ અને સ્પર્શથી રહિત છે

હવે આ ધર્માસ્તિકાયના ગુણનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—જેવી રીતે પાણીમાં ગતિ કરનારા માછલાઓને પાણીમાં ગતિ કરવામાં જળ સહાયક બને છે એ જ રીતે ગતિક્રિયા પરિણત જીવ અને પુદ્ગલોને ગમન કરવામાં આ ધર્માસ્તિકાય સહાયભૂત બને છે તેથી તેને ગમનરૂપ ગુણકાર્યવાળું કહ્યું છે અથવા ગમનમાં જેના દ્વારા ઉપકાર (સહાયતા) થાય છે તેને ગતિગુણ કહે

मोऽस्तिकायः। तथा-अधर्मास्तिकायोऽपि धर्मास्तिकायवदेव अवर्णादि स्वरूपो बोध्यः। द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्याऽप्ययं धर्मास्तिकायवदेव। विशेषस्त्वयम्-यदयं गुणतः स्थानगुणः-स्थानं=स्थितिः गुणः=कार्यं यस्य सः, अयहि स्थिति परिणतानां जीवपुद्गलानामपेक्षाकारणतया स्थितिरूपं कार्यं करोति। यद्वा-स्थाने=स्थितौ गुणः=उपकारो यस्मात् सः, जीवपुद्गलानां स्थितावुपकारक इत्यर्थः। इति द्वितीयोऽस्तिकायः। तथा-आकाशास्तिकायोऽपि धर्मास्तिकायवदेव अवर्णादिस्वरूपः। तथा-द्रव्यकालभावानाश्रित्यापि पूर्ववदेव। तथा-क्षेत्रमाश्रित्य

वह गतिगुण है, जीव और पुद्गलोंके अपनी २ गतिमें गमन करनेमें यह उपकारक होता है। इस प्रकारका यह प्रथम अस्तिकाय है। तथा अधर्मास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरहही अवर्णादि स्वरूपवाला है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा लेकर यह धर्मास्तिकायकी तरहही है, विशेषता केवल इतनीसी है, कि यह गुणकी कार्यकी अपेक्षा स्थिति है गुणकार्य जिसका ऐसा है, यह अस्तिकाय स्थितिमें ठहरनेमें परिणत हुए जीव और पुद्गलोंको अपेक्षा कारणरूप होनेसे स्थितिरूप कार्य करता है, जिस प्रकार ठहरनेमें मुसाफिरोंको छाया मदद करती है, उसी प्रकारसे यह भी ठहरनेमें उन्हे उदासीन रूपसे कारण होता है अथवा जीव और पुद्गलोंको अपनी स्थितिमें जिससे उपकार होताहै, वह स्थितिगुणहै, तात्पर्य इसका यहीहै, कि जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें उपकार होताहै इस प्रकारका यह द्वितीय अस्तिकायहै, तथा-आकाशास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरहही अवकाशदानअवर्णादि स्वरूपवाला है, एवं

છે જીવ અને પુદ્ગલોને પોતપોતાની ગતિ કરવામાં તે મદદ રૂપ બને છે આ પ્રકારનુ ધર્માસ્તિકાય નામના અસ્તિકાયના પહેલા ભેદનુ સ્વરૂપ છે.

અધર્માસ્તિકાય પણ ધર્માસ્તિકાયની જેમ અવર્ણાદિ સ્વરૂપવાળું છે દ્રવ્ય, કાળ, ક્ષેત્ર અને ભાવની અપેક્ષાએ તે ધર્માસ્તિકાયના જેવુ જ છે, પણ માત્ર ગુણની (કાર્યની) અપેક્ષાએ તેમાં તફાવત છે. ધર્માસ્તિકાય પુદ્ગલોને ગતિકાર્યમાં મદદ રૂપ બને છે, ત્યારે અધર્માસ્તિકાય તેમને સ્થિતિકાર્યમાં મદદ રૂપ બને છે એટલે કે ગતિપરિણત જીવો અને પુદ્ગલોને થોભવામાં મદદરૂપ થાય છે જેમ વૃક્ષની છાયા મુસાફરોને થોભવામા મદદરૂપ બને છે, તેમ ધર્માસ્તિકાય જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિ અટકાવીને તેમને થોભવામા સહાયભૂત બને છે આ રીતે ગતિને બદલે સ્થિતિમાં ઉપકારક બનવાનુ કાર્ય તેના દ્વારા થાય છે આ અસ્તિકાયના બીજા ભેદનુ સ્વરૂપ છે

मवयविद्रव्यापेक्षया, अक्षत इतिच्छायापक्षेतु अक्षत =परिपूर्णः । तथा-अव्यय - मवयवापेक्षया। तथा-अवस्थित -निश्चलत्वात्। यतोऽय ध्रुवत्वादिविशिष्टोऽत एव नित्य इति। तथा-भावतोऽय धर्मास्तिकायो वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित । तथा-गुणतः=कार्यतश्चायं गमनगुणः-गमनं=गति गुणः=गतिपरिणामपरिणतानां जीवपुद्गलानां सहकारिकारणत्वात् कार्यं मत्स्यानां जलस्येव यस्यासौ, यद्वा-गतौ=गमने गुण उपकारो यस्मात् स -गमनोपकारक इत्यर्थः। इति भय

नहीं होता है, तथा यह धर्मास्तिकाय अक्षय एव अव्यय होनेसे सर्वदा स्थितिशील है, इसलिये यह अवस्थित है, इसी प्रकारसे यह सामान्य रूपसे नित्य है, अथवा-जिस कारण यह धर्मास्तिकाय त्रैकालिक है, इसी कारणसे यह ध्रुव है, नियत एक रूप है, शाश्वत है-प्रतिक्षण विद्यमान है, और इसीसे यह अक्षय है, अवयवि द्रव्यकी अपेक्षा क्षय रहित है, अथवा अक्षत है-परिपूर्ण है, तथा-अवयवकी अपेक्षा अव्यय है, निश्चल होनेसे अवस्थित है, जिस कारण यह ध्रुवत्व आदि विशेषणोंवाला है इसीलिये यह नित्य है, तथा भावकी अपेक्षासे-यह धर्मास्तिकाय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शसे रहित है, तथा कार्यकी अपेक्षासे यह गमन है गुण जिसका ऐसा है, अर्थात् जिस प्रकार मत्स्योंके चलनेमें सहायक जल होता है, उसी प्रकार गति क्रिया परिणत जीव और पुद्गलोंको गमन करनेमें यह सहायक होता है, अतः गमन है, गुण कार्य जिसका ऐसा इसे कहा गया है, अथवा गमनमें है उपकार जिससे

ધર્માસ્તિકાય અક્ષય અને અવ્યય હોવાથી સર્વદા સ્થિતિશીલ હોવાને કારણે તેને અવસ્થિત કહ્યુ છે આ પ્રકારે તે સામાન્ય રૂપે નિત્ય છે અથવા જે કારણે આ ધર્માસ્તિકાય ત્રૈકાલિક છે, એ જ કારણે તે ધ્રુવ છે, નિયત (એક રૂપ) છે, શાશ્વત (પ્રતિક્ષણ વિદ્યમાન) છે અને તેથી જ તે અક્ષય છે, અવયવિ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે ક્ષયરહિત છે અથવા અક્ષત (પરિપૂર્ણ) છે, તથા અવયવની અપેક્ષાએ આ ધ્રુવ છે નિશ્ચલ હોવાને કારણે તે અવસ્થિત છે તે કારણે તે ધ્રુવત્વ આદિ વિશેષણોવાળુ છે, તે કારણે જ તે નિત્ય છે ભાવની અપેક્ષાએ આ ધર્માસ્તિકાય વર્ણ, રસ, ગન્ધ અને સ્પર્શથી રહિત છે

હવે આ ધર્માસ્તિકાયના કાર્યનુ નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—જેવી રીતે પાણીમાં ગતિ કરનારા માછલાઓને પાણીમા ગતિ કરવામાં જળ સહાયક બને છે એ જ રીતે ગતિક્રિયા પરિણત જીવ અને પુદ્ગલોને ગમન કરવામાં આ ધર્માસ્તિકાય સહાયભૂત બને છે તેથી તેને ગમનરૂપ ગુણકાર્યવાળુ કહ્યુ છે અથવા ગમનમાં જેના દ્વારા ઉપકાર (સહાયતા) થાય છે તેને ગતિગુણ કહે

मोऽस्तिकायः। तथा-अधर्मास्तिकायोऽपि धर्मास्तिकायवदेव अवर्णादि स्वरूपो वोध्यः। द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्याऽप्ययं धर्मास्तिकायवदेव। विशेषस्त्वयम्-यदयं गुणतः स्थानगुणः-स्थानं=स्थितिः गुणः=कार्यं यस्य सः, अयहि स्थिति परिणतानां जीवपुद्गलानामपेक्षाकारणतया स्थितिरूपं कार्यं करोति। यद्वा-स्थाने=स्थितौ गुणः=उपकारो यस्मात् सः, जीवपुद्गलानां स्थितावुपकारक इत्यर्थः। इति द्वितीयोऽस्तिकायः। तथा-आकाशास्तिकायोऽपि धर्मास्तिकायवदेव अवर्णादिस्वरूपः। तथा-द्रव्यकालभावानाश्रित्यापि पूर्ववदेव। तथा-क्षेत्रमाश्रित्य

वह गतिगुण है, जीव और पुद्गलोंके अपनी २ गतिमें गमन करनेमें यह उपकारक होता है। इस प्रकारका यह प्रथम अस्तिकाय है। तथा अधर्मास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरहही अवर्णादि स्वरूपवाला है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा लेकर यह धर्मास्तिकायकी तरहही है, विशेषता केवल इतनीसी है, कि यह गुणकी कार्यकी अपेक्षा स्थिति है गुणकार्य जिसका ऐसा है, यह अस्तिकाय स्थितिमें ठहरनेमें परिणत हुए जीव और पुद्गलोंको अपेक्षा कारणरूप होनेसे स्थितिरूप कार्य करता है, जिस प्रकार ठहरनेमें मुसाफिरोंको छाया मदद करती है, उसी प्रकारसे यह भी ठहरनेमें उन्हें उदासीन रूपसे कारण होता है अथवा जीव और पुद्गलोंको अपनी स्थितिमें जिससे उपकार होताहै, वह स्थिति-गुणहै, तात्पर्य इसका यहीहै, कि जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें उपकार होताहै इस प्रकारका यह द्वितीय अस्तिकायहै, तथा-आकाशास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरहही अवकाशदानअवर्णादि स्वरूपवाला है, एवं

છે જીવ અને પુદ્ગલોને પોતપોતાની ગતિ કરવામાં તે મદદ રૂપ બને છે આ પ્રકારનું ધર્માસ્તિકાય નામના અસ્તિકાયના પહેલા ભેદનુ સ્વરૂપ છે.

અધર્માસ્તિકાય પણ ધર્માસ્તિકાયની જેમ અવર્ણાદિ સ્વરૂપવાળું છે. દ્રવ્ય, કાળ, ક્ષેત્ર અને ભાવની અપેક્ષાએ તે ધર્માસ્તિકાયના જેવું જ છે, પણ માત્ર ગુણની (કાર્યની) અપેક્ષાએ તેમાં તફાવત છે. ધર્માસ્તિકાય પુદ્ગલોને ગતિકાર્યમાં મદદ રૂપ બને છે, ત્યારે અધર્માસ્તિકાય તેમને સ્થિતિકાર્યમાં મદદ રૂપ બને છે એટલે કે ગતિપરિણત જીવો અને પુદ્ગલોને થોભવામા મદદરૂપ થાય છે જેમ વૃક્ષની છાયા મુસાફરોને થોભવામા મદદરૂપ બને છે, તેમ ધર્માસ્તિકાય જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિ અટકાવીને તેમને થોભવામા સહાયભૂત બને છે આ રીતે ગતિને બદલે સ્થિતિમા ઉપકારક બનવાનુ કાર્ય તેના દ્વારા થાય છે આ અસ્તિકાયના બીજા ભેદનું સ્વરૂપ છે

लोकालोकप्रमाणमात्र=लोकालोकयोर्यत् अनन्तप्रदेशात्मकं प्रमाणं, तत्प्रमाणं यस्य स । लोकालोकसम्बन्धि यदनन्तप्रदेशात्मकं प्रमाणं, तत्प्रमाण आकाशास्तिकाय क्षेत्रतो बोध्य । तथा-गुणतः=गुणमाश्रित्य अवगाहनागुण -अवगाहना=जीवादीनामाश्रयो गुणः=कार्य यस्य स तथा । जीवाद्याश्रयप्रदानरूपकार्ययुक्त इत्यर्थः । अथवा-अवगाहनायाम् गुण उपकारो यस्मात् सः-अवगाहनाविषयकोपकारहेतुक इत्यर्थः । इति तृतीयोऽस्तिकायः । तथा-जीवास्तिकायोऽपि पूर्ववदेव अवर्णादि स्वरूप । विशेषस्त्वय यदय द्रव्यतः-अनन्तानि द्रव्याणि=अनन्तद्रव्यस्वरूपः । अस्यैतन्मी य प्र ये यान जीवानां भानन्त्यात् जीवास्तिकायस्य अनन्तद्रव्यात्मकत्व बोध्यम् । तथायं जीवास्तिकायः-अरूपी=अमूर्तः,

द्रव्यकाल और भावकी अपेक्षासे भी इस सम्बन्धमें कथन पूर्वके जैसा ही है क्षेत्रकी अपेक्षा यह लोकालोक प्रमाण मात्र है, अर्थात् आकाशके प्रदेश अनन्त हैं, क्योंकि लोक और अलोकमें सामान्य रूपसे आकाश रहता है, अतः इस अपेक्षा आकाशास्तिकायके इतने प्रदेश कहे गये हैं इसलिये लोकालोक सम्बन्धी जो अनन्त प्रदेश प्रमाणता है, वही प्रदेश प्रमाणता क्षेत्रकी अपेक्षासे आकाशास्तिकायमें कही गई है, ऐसा समझना चाहिये तथा गुणकार्यकी अपेक्षा यह आकाशास्तिकाय अवगाहना गुणवाला है, अर्थात जीवादिकोंको अपनेमें आश्रय देना यही इसका कार्य है, अथवा-अवगाहनामें है, गुण उपकार-जिससे वह अवगाहना गुणहै इस तरह अवगाहना विषयक उपकारमें यह हेतुवालाहै.

जीवास्तिकाय भी पूर्वकी तरहही अवर्णादिवालाहै, इसमें जो विशेषता है, वह इस प्रकारसे है यह द्रव्यकी अपेक्षा अनन्त द्रव्य स्वरूप

હવે આકાશાસ્તિકાયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે તે પણ ધર્માસ્તિકાય તથા અધર્માસ્તિકાયની જેમ વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શથી રહિત છે દ્રવ્ય કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ તે લોકાલોક પ્રમાણ માત્ર જ છે, કારણ કે આકાશના પ્રદેશ અનંત છે કારણ કે લોક તથા અલોકમાં સામાન્યતઃ આકાશ રહે છે તેથી તે દૃષ્ટિએ વિચાર કરતાં આકાશાસ્તિકાયના એટલા પ્રદેશ કહ્યા છે તેથી લોકાલોક સંબંધી જે અનંત પ્રદેશપ્રમાણતા છે, એજ પ્રદેશપ્રમાણતા ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આકાશાસ્તિકાયમાં કહી છે, એમ સમજવું ગુણકાર્ય (ઉપયોગીતા) ની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે અવગાહના ગુણવાળું છે કારણ કે જીવાદિકોને આશ્રય દેવાનું જ તેનું કાર્ય છે આ રીતે અવગાહના વિષયક ઉપકાર કરનારું હોવાથી તેને અવગાહના ગુણવાળું કહ્યું છે

जीवः=चेतनावान् शाश्वतः=अविनाशी च बोध्यः। गुणतस्त्वयम्-उपयोगगुणः-उपयोजनमुपयोगः, उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीवोऽनेनेति वा उपयोगः-बोधरूपो जीवस्य तत्त्वभूतो व्यापारः। स च साकारानाकारभेदाद् द्विविधः। यदा सचेतनेऽचेतने वा वस्तुनि उपयुञ्जान आत्मा सपर्यायमेव वस्तु परिच्छिनत्ति तदा स उपयोगः साकार इत्युच्यते। स च छद्मस्थानामन्तर्मुहूर्त्त

है, क्योंकि प्रत्येक जीव स्वतंत्र द्रव्य है, और जीव हैं अनन्त इसलिये यह जीवास्तिकाय द्रव्यकी अपेक्षा अनन्त कहा गया है, तथा यह जीवास्तिकाय अरूपी अमूर्त है, चेतनावाला होनेसे यह जीवरूप है, और शाश्वत अविनाशी है। गुणकी अपेक्षा यह उपयोग गुणवाला है क्योंकि पदार्थोंको जाननेकी तरफ यह उन्मुख होता है, पदार्थोंको जाननेकी तरफ उन्मुख होना इसीका नाम उपयोग है, इसीलिये-" इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपयोगः " ऐसा उपयोगका लक्षण किया गया है, अथवा-वस्तु परिच्छेद करनेके प्रति जीव जिसके द्वारा व्यापारयुक्त किया जाता है, वह उपयोग है, यह उपयोग जीवका तत्त्वभूत एक व्यापाररूप होता है। यह साकार उपयोग और अनाकार उपयोगके भेदसे दो प्रकारका कहा गयाहै, जिस समय पर्याय सहित सचेतन अथवा अचेतन वस्तुको जाननेके लिये आत्माका बोधरूप व्यापार होता है, वह साकार उपयोग है, यह साकार उपयोग छद्मस्थ जीवोंको अन्त-

જીવાસ્તિકાય પણ અવર્ણાદિવાળું છે તેમા એટલી જ વિશેષતા છે કે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે અનંત દ્રવ્યસ્વરૂપ છે, કારણ કે પ્રત્યેક જીવ સ્વતંત્ર દ્રવ્ય છે, અને જીવ અનંત છે, તેથી જીવાસ્તિકાયને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ અનંત કહ્યુ છે તથા તે જીવાસ્તિકાય અરૂપી અમૂર્ત છે, ચેતનાવાળુ હોવાથી તે જીવરૂપ છે અને શાશ્વત અવિનાશી છે ગુણની અપેક્ષાએ તે ઉપયોગ ગુણવાળુ છે, કારણ કે તે પદાર્થોને જાણવાની વૃત્તિવાળુ છે " પદાર્થોના વિષયમા જાણવાને તત્પર થવુ તેનુ નામ જ ઉપયોગ છે તેથી જ " इन्द्रिय प्रणालिकया शब्दादिनामुपलब्धिरुपयोग " આ પ્રકારનુ ઉપયોગનુ લક્ષણ કહ્યું છે અથવા વસ્તુ પરિચ્છેદ (વસ્તુ વિષયક બોધ) ને માટે જીવ જેના દ્વારા વ્યાપારયુક્ત કરાય છે તે ઉપયોગ છે આ ઉપયોગ જીવના તત્ત્વભૂત એક વ્યાપાર રૂપ હોય છે તે ઉપયોગના બે પ્રકાર છે—(૧) સાકાર ઉપયોગ અને (૨) અનાકાર ઉપયોગ પર્યાય સહિત સચેતન અથવા અચેતન વસ્તુને જાણવાને માટે આત્માનો બોધરૂપ જે વ્યાપાર ચાલે છે તેનુ નામ સાકાર ઉપયોગ છે આ

लोकालोकप्रमाणमात्र =लोकालोकयोर्यत् अनन्तप्रदेशात्मकं प्रमाणं, तत्प्रमाणं यस्य सः । लोकालोकसम्बन्धि यदनन्तप्रदेशात्मकं प्रमाणं, तत्प्रमाणं आकाशास्तिकाय क्षेत्रतो बोध्यः । तथा-गुणत =गुणमाश्रित्य अवगाहनागुण –अवगाहना=जीवादीनामाश्रयो गुणः=कार्यं यस्य स तथा । जीवाद्याश्रयप्रदानरूपकार्ययुक्त इत्यर्थः । अथवा-अवगाहनायाम् गुणः उपकारो यस्मात् स –अवगाहनाविषयोपकारहेतुक इत्यर्थः । इति तृतीयोऽस्तिकायः । तथा-जीवास्तिकायोऽपि पूर्ववदेव अवर्णादि स्वरूपः । विशेषस्त्वयं यदयं द्रव्यतः –अनन्तानि द्रव्याणि= अनन्तद्रव्यस्वरूपः । प्रत्येकजीवस्य द्रव्यत्वात् जीवानां चानन्तत्वात् जीवास्तिकायस्य अनन्तद्रव्यात्मकत्वं बोध्यम् । तथाच जीवास्तिकायः-अरूपी=अमूर्तः,

---

द्रव्य काल और भावकी अपेक्षासे भी इस सम्बन्धमें कथन पूर्वके जैसा ही है क्षेत्रकी अपेक्षा यह लोकालोक प्रमाण मात्र है, अर्थात् आकाशके प्रदेश अनन्त हैं, क्योंकि लोक और अलोकमें सामान्य रूपसे आकाश रहता है, अतः इस अपेक्षा आकाशास्तिकायके इतने प्रदेश कहे गये हैं इसलिये लोकालोक सम्बन्धी जो अनन्त प्रदेश प्रमाणता है, वही प्रदेश प्रमाणता क्षेत्रकी अपेक्षासे आकाशास्तिकायमें कही गई है, ऐसा समझना चाहिये तथा गुणकार्यकी अपेक्षा यह आकाशास्तिकाय अवगाहना गुणवाला है, अर्थात् जीवादिकोंको अपनेमें आश्रय देना यही इसका कार्य है, अथवा-अवगाहनामें है, गुण उपकार-जिससे वह अवगाहना गुणहै इस तरह अवगाहना विषयक उपकारमें यह हेतुवालाहै,

जीवास्तिकाय भी पूर्वकी तरहही अवर्णादिवालाहै, इसमें जो विशेषता है, वह इस प्रकारसे है, वह द्रव्यकी अपेक्षा अनन्त द्रव्य स्वरूप

હવે આકાશાસ્તિકાયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે તે પણ ધર્માસ્તિકાય તથા અધર્માસ્તિકાયની જેમ વર્ણ, ગન્ધ, રસ અને સ્પર્શથી રહિત છે દ્રવ્ય કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ તે લોકાલોક પ્રમાણ માત્ર જ છે, એટલે કે આકાશના પ્રદેશ અનંત છે કારણ કે લોક તથા અલોકમાં સામાન્યતઃ આકાશ રહે છે તેથી તે દૃષ્ટિએ વિચાર કરતાં આકાશાસ્તિકાયના એટલા પ્રદેશ કહ્યા છે તેથી લોકાલોક સંબંધી જે અનંત પ્રદેશપ્રમાણતા છે એ જ પ્રદેશપ્રમાણતા ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આકાશાસ્તિકાયમાં કહી છે એમ સમજવું ગુણકાર્ય (ઉપયોગીતા) ની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે અવગાહના ગુણવાળું છે એટલે કે જીવાદિકોને આશ્રય દેવાનું જ તેનું કાર્ય છે આ રીતે અવગાહના વિષયક ઉપકાર કરનારું હોવાથી તેને અવગાહના ગુણવાળું કહ્યું છે

जीवः=चेतनावान् शाश्वतः=अविनाशी च बोध्यः। गुणतस्त्वयम्-उपयोगगुणः-उपयोजनमुपयोगः, उपभुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीवोऽनेनेति वा उपयोगः-बोधरूपो जीवस्य तत्त्वभूतो व्यापारः। स च साकारानाकारभेदाद् द्विविधः। यदा सचेतनेऽचेतने वा वस्तुनि उपयुञ्जान आत्मा सपर्यायमेव वस्तु परिच्छिनत्ति तदा स उपयोगः साकार इत्युच्यते। स च छद्मस्थानामन्तर्मुहूर्त्त

है, क्योंकि प्रत्येक जीव स्वतंत्र द्रव्य है, और जीव हैं अनन्त इसलिये यह जीवास्तिकाय द्रव्यकी अपेक्षा अनन्त कहा गया है, तथा यह जीवास्तिकाय अरूपी अमूर्त है, चेतनावाला होनेसे यह जीवरूप है, और शाश्वत अविनाशी है। गुणकी अपेक्षा यह उपयोग गुणवाला है क्योंकि पदार्थोंको जाननेकी तरफ यह उन्मुख होता है, पदार्थोंको जाननेकी तरफ उन्मुख होना इसीका नाम उपयोग है, इसीलिये-" इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपयोगः " ऐसा उपयोगका लक्षण किया गया है, अथवा-वस्तु परिच्छेद करनेके प्रति जीव जिसके द्वारा व्यापारयुक्त किया जाता है, वह उपयोग है, यह उपयोग जीवका तत्त्वभूत एक व्यापाररूप होता है। यह साकार उपयोग और अनाकार उपयोगके भेदसे दो प्रकारका कहा गयाहै, जिस समय पर्याय सहित सचेतन अथवा अचेतन वस्तुको जाननेके लिये आत्माका बोधरूप व्यापार होता है, वह साकार उपयोग है, यह साकार उपयोग छद्मस्थ जीवोंको अन्त-

---

જીવાસ્તિકાય પણ અવર્ણાદિવાળું છે તેમા એટલી જ વિશેષતા છે કે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે અનત દ્રવ્યસ્વરૂપ છે, કારણ કે પ્રત્યેક જીવ સ્વતત્ર દ્રવ્ય છે, અને જીવ અનત છે, તેથી જીવાસ્તિકાયને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ અનંત કહ્યુ છે તથા તે જીવાસ્તિકાય અરૂપી અમૂર્ત છે, ચેતનાવાળું હોવાથી તે જીવરૂપ છે અને શ શ્વત અવિનાશી છે ગુણની અપેક્ષાએ તે ઉપયોગ ગુણવાળું છે, કારણ કે તે પદાર્થોને જાણવાની વૃત્તિવાળુ છે " પદાર્થોના વિષયમાં જાણવાને તત્પર થવુ તેનું નામ જ ઉપયોગ છે તેથી જ " इन्द्रिय प्रणालिकया शब्दादिनामुपलब्धिरुपयोग " આ પ્રકારનુ ઉપયોગનુ લક્ષણ કહ્યુ છે અથવા વસ્તુ પરિચ્છેદ (વસ્તુ વિષયક બોધ) ને માટે જીવ જેના દ્વારા વ્યાપારયુક્ત કરાય છે તે ઉપયોગ છે આ ઉપયોગ જીવના તત્ત્વભૂત એક વ્યાપાર રૂપ હોય છે તે ઉપયોગના બે પ્રકાર છે—(૧) સાકાર ઉપયોગ અને (૨) અનાકાર ઉપયોગ પર્યાય સહિત સચેતન અથવા અચેતન વસ્તુને જાણવાને માટે આત્માનો બોધરૂપ જે વ્યાપાર ચાલે છે તેનું નામ સાકાર ઉપયોગ છે આ

कालं तिष्ठति, केवलिनां तु एकं समयम् । यदा च वस्तुनः सामान्यतया परिच्छेदस्तदाऽनाकार उपयोगो भवति । अयमपि छद्मस्थानाम् अन्तर्मुहूर्तं तिष्ठति, केवलिनां तु एकं समयम् । अत्रेदं बोध्यम्-छद्मस्थानां साकारोपयोगकालोऽनाकारोपयोगकालादसंख्येयगुणः पर्यायपरिच्छेदकतया चिरकालगमनात्छद्मस्थानां तथा स्वाभाव्यात् । उपयोगो गुणो धर्मोयस्य स तथा, साकारानाकाररूपचैतन्यधर्मयुक्त इत्यर्थः । इति चतुर्थोऽस्तिकाय । तथा-पुद्गलास्तिकाय पञ्चवर्णः=शुक्लादिपञ्चवर्णयुक्तः पञ्चरस=मधुरादि पञ्चरसः, द्विगन्ध -सुरभिदुरभिगन्धद्वययुक्त, अष्टस्पर्श=मृदु कर्कशाद्यष्टविधस्पर्शसहितः, रूपी=मूर्त्तः, अजीव=अचेतनः। तथा-शाश्वतः अवस्थितो लोकद्रव्यं च । स पुनर्द्रव्यादिभेदैः पञ्चविधः । तत्र

मुहूर्त तक रहता है, और केवलियोंको एक समय तक रहता है, यहाँ ऐसा समझना चाहिये-छद्मस्थोंके साकारोपयोगका काल अनाकारोपयोगके कालसे असंख्यात गुणा है, क्योंकि पर्यायोंका जाननेके रूपमें इसका चिरकाल गत जाता है, क्योंकि छद्मस्थोंका ऐसाही स्वभाव होता है, उपयोग है, गुणधर्म जिसका ऐसा यह जीव है, अर्थात् यह जीव साकार अनाकाररूप चैतन्य धर्मसे युक्त है तथा-पुद्गलास्तिकाय शुक्लादि पांच वर्णोवाला है, मधुरादि पाच रसोंवाला है, सुरभि दुरभिरूप दोनों गन्धवाला है, और मृदु कर्कश आदि आठ प्रकारके स्पर्शवाला है, रूपी है, मूर्त है अजीव अचेतन है, तथा शाश्वत अवस्थित है, और लोकद्रव्य है, लोक भरमें यह व्यापक है, यह पुद्गलास्तिकाय द्रव्यादिके भेदसे पांच प्रकारका है, द्रव्यकी अपेक्षा यह पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्यात्मक है क्षेत्र की अपेक्षा यह लोकप्रमाण है,

સાકાર ઉપયોગનો સદ્ભાવ છદ્મસ્થ જીવોમાં એક અન્તર્મુહૂર્ત પર્યન્ત રહે છે અને કેવલીઓમાં એક સમય પર્યન્ત રહે છે અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે છદ્મસ્થોનો સાકારોપયોગનો કાળ અનાકારોપયોગના કાળ કરતાં અસંખ્યાત ગણો છે કારણ કે પર્યાયોને જાણવામાં તેનો ચિરકાળ વ્યતીત થઈ જાય છે કારણ કે છદ્મસ્થોનો એવો જ સ્વભાવ હોય છે આ જીવ ઉપયોગરૂપ ગુણધર્મવાળો છે એટલે કે આ જીવ સાકાર અનાકાર રૂપ ચૈતન્યધર્મથી યુક્ત છે

પુદ્ગલાસ્તિકાયનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—પુદ્ગલાસ્તિકાય શુક્લ આદિ પાંચ વર્ણોથી મધુર આદિ પાંચ રસોથી, સુરભિ અને દુરભિ રૂપ બે ગંધોથી અને મૃદુ કર્કશ આદિ આઠ પ્રકારના સ્પર્શોથી યુક્ત હોય છે તે રૂપી-મૂર્ત છે અજીવ-અચેતન છે, શાશ્વત અવસ્થિત છે અને લોકદ્રવ્ય છે એટલે કે સમસ્ત લોકમાં વ્યાપેલું છે દ્રવ્યાદિના ભેદથી તે પુદ્ગલાસ્તિકાયના પાંચ ભેદ

द्रव्यतः पुद्गलास्तिकायोऽनन्त द्रव्यात्मकः । क्षेत्रतो लोकप्रमाणः । कालतश्च त्रैकालिकत्वमेवाह–' ण कया विणासी ' इत्यादिना । भावतश्चायं वर्णगन्धरसस्पर्शवान् । गुणतश्चाय ग्रहणगुणः–ग्रहणम्=औदारिकशरीरादितया ग्राह्यत्वम्, इन्द्रियग्राह्यत्वं वा, अथवा–वर्णादिमत्त्वात् परस्परसम्बन्धो ग्रहणम्, तद्गुणो धर्मोयस्य स तथा । इति पञ्चमोऽस्तिकायः ॥ सू० १ ॥

पञ्चास्तिकायाः प्रोक्ताः । सम्प्रति तद्गत जीवास्तिकायसम्बन्धीनि वस्तूनि प्राह–अध्ययनसमाप्ति यावत् । तत्र प्रथमं गतिभेदानाह—

मूलम्—पंच गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा–निरयगई १, तिरियगई २, मणुयगई ३, देवगई ४, सिद्धिगई ५ ॥ सू० २ ॥

छाया—पञ्च गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–निरयगतिः १, तिर्यग्गतिः २, मनुष्यगतिः ३, देवगतिः ४, सिद्धिगतिः ५ ॥ सू० २ ॥

कालकी अपेक्षा यह त्रैकालिक है, इसी बातकी पुष्टिके लिये सूत्रकारने "न कदापि नासीत्" इत्यादि सूत्र कहा है, भावकी अपेक्षा यह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शवाला है, गुणकी अपेक्षा यह ग्रहण है, औदारिक शरीरादिरूप ग्राह्यता अथवा इन्द्रियों द्वारा ग्राह्यता अथवा–वर्णादिमत्व होनेसे परस्पर सम्बन्ध रूपता है, गुणधर्म जिसका ऐसा ग्रहण गुणवाला है । अर्थात् पडण पडन धर्मवाला है । इस प्रकारसे यह पचम अस्तिकाय है ॥ सू० १ ॥

इस प्रकार पांच अस्तिकाय कहे अब सूत्रकार तदगत जीवास्ति-

કહ્યા છે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પુદ્ગલાસ્તિકાય અનંત દ્રવ્યાત્મક છે, ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તે લોકપ્રમાણુ છે, કાળની અપેક્ષાએ તે ત્રૈકાલિક છે એટલે જ સૂત્રકારે "न कदापि नासीत्" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા તેનું ત્રણે કાળમાં અસ્તિત્વ હોવાનું પ્રતિપાદન કર્યું છે ભાવની અપેક્ષાએ તે વર્ણ, ગન્ધ, રસ અને સ્પર્શથી યુક્ત છે, અને ગુણુની અપેક્ષાએ તે ગ્રહણુ ગુણુવાળુ છે, એટલે કે ઔદારિક શરીરાદિ રૂપ ગ્રાહ્યતા અથવા ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રાહ્યતા અથવા વર્ણાદિથી યુક્ત હોવાને કારણે પરસ્પર સબંધ રૂપતા જ જેનો ગુણુધર્મ છે એવું ગ્રહણુ ગુણુવાળુ તે છે એટલે કે તે સડવુ, પડવુ વગેરે ધર્મવાળુ છે આ પ્રકારનું પુદ્ગલાસ્તિકાયનુ સ્વરૂપ કહ્યુ છે ॥ સૂ ૧ ॥

આ પ્રકારે પાંચ અસ્તિકાયોનું નિરૂપણુ કરવામાં આવ્યુ. હવે સૂત્રકાર

टीका—'पंच गईओ' इत्यादि—

गमनं-गतिः-गमनक्रिया १, गम्यते-प्राप्यते या सा गतिः-क्षेत्रविशेष रूपा २, गम्यते याऽनया कर्मपुद्गलसंहत्येति गतिः-नामकर्मोत्तरप्रकृतिरूपा, तत्कृता वा जीवावस्था ३। सद्भूतत्वे गतयः, सा पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः। पञ्चविध त्वमेवाह-तद्यथा-' निरयगइ ' इत्यादि । निरय-नरके गति -गमन-निरयगतिः १ निरयः-क्षेत्रविशेष स चासौ गतिश्च निरयगति २। गम्यतेऽनयेति गतिः-निरयप्रापिका गति र्निरयगति ३ रिति।१। तिर्यग्गतिः-तिर्यक्षु गति १, तिर्यक्-

कायसे सम्बन्ध रखनेवाली जो बातें हैं, उनका कथन अध्ययनकी समाप्ति तक करते हैं, इनमें प्रथम गति भेदोंको वे कहते हैं—

'पंच गईओ पण्णत्ताओ' इत्यादि सूत्र २ ॥

टीकार्थ–गमन क्रियाका नाम गति है अथवा जो जीव द्वारा प्राप्तकी जाती है वह गति है, ऐसी यह गति क्षेत्र विशेषरूप होती है, अथवा जिस कर्म पुद्गलोंकी संगतिसे जीवका गमन होता है, वह गति है, ऐसी यह गति नामकर्मकी उत्तर प्रकृतिरूप होती है, अथवा–जीवकी जो अवस्था नामकर्मकी उत्तर प्रकृतिरूप गति द्वारा की जाती है, वह गति है । य जीवकी अवस्थाएँ बहुत होती हैं ये गतियां पांच कही गई हैं जैसे–निरयगति १ तिर्यग्गति २ मनुष्यगति ३ देवगति ४ और सिद्ध गति ५ निरय (नरक में जो गमन करता है, वह निरयगति है, निरय क्षेत्र विशेषरूप है, इस क्षेत्र विशेषरूप जो गति है, वह निरयगति है,

જીવાસ્તિકાય સાથે સંબંધ ધરાવતી કેટલીક વાતોનું આ અધ્યયનની સમાપ્તિ સુધી પ્રતિપાદન કરશે. તેમાંથી પહેલાં તો સૂત્રકાર ગતિભેદોનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ– પંચ ગઈઓ પણ્ણત્તાઓ ' ઇત્યાદિ—

ગમનક્રિયાનું નામ ગતિ છે અથવા જે જીવ દ્વારા પ્રાપ્ત કરાય છે તે ગતિ છે, એવી તે ગતિ ક્ષેત્રવિશેષ રૂપ હોય છે અથવા જે કર્મપુદ્ગલોની પ્રાપ્તિને કારણે જીવનું ગમન થાય છે તે ગતિ છે એવી તે ગતિ નામકર્મની ઉત્તર પ્રકૃતિ રૂપ હોય છે અથવા નામકર્મની ઉત્તરપ્રકૃતિ રૂપ ગતિ દ્વારા જીવની જે અવસ્થા કરાય છે તે ગતિ છે જીવની એવી અવસ્થાઓ (ગતિઓ) પાંચ કહી છે—(૧) નિરયગતિ (૨) તિર્યગ્ગતિ (૩) મનુષ્યગતિ (૪) દેવગતિ અને (૫) સિદ્ધગતિ

જીવનું નરકમાં ગમન થવું તેનું નામ નિરયગતિ છે નિરય ક્ષેત્રવિશેષ રૂપ છે તે ક્ષેત્રવિશેષમાં ગમન કરાવનારી જે ગતિ છે તેને નિરયગતિ કહે

क्षेत्ररूपागतिः २, तिर्यक्त्वप्रापिका वा गतिः ३।२। एवं देवगति ३ मनुष्यगति- रपि ४ भावनीया ।४। सिद्धिगतिः-सिद्धौ गतिः १, सिद्धिरूपा गतिश्चेति वा, इह नामप्रकृति नास्तीति ५ ॥ सू० २ ॥

अनन्तरसूत्रे सिद्धिगतिः प्रोक्ता। सा च इन्द्रियार्थान् कषायादींश्च निमित्तीकृत्य मुण्डितत्वे सति भवतीतीन्द्रियार्थान् इन्द्रियकषायादिमुण्डांश्च प्राह—

मूलम्—पंच इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियत्थे जाव फासिंदियत्थे। पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियमुंडे जाव फासिंदियमुंडे। अहवा पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—कोहमुंडे १ माणमुंडे २ मायामुंडे ३ लोहमुंडे ४ सिरमुंडे ५ ॥सू० ३ ॥

छाया—पञ्च इन्द्रियार्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियार्थो यावत् स्पर्शेन्द्रियार्थः। पञ्च मुण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियमुण्डो यावत् स्पर्शेन्द्रियमुण्डः। अथवा-मुण्डाः पञ्च प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्रोधमुण्डो १ मानमुण्डो २ मायामुण्डो ३ लोभमुण्ड ४ शिरोमुण्डः ५ ॥ सू० ३ ॥

अथवा इस क्षेत्र विशेषरूप निरयको प्राप्त करानेवाली जो गति है, वह निरयगतिहै, तिर्यञ्चोंमें जो गति-गमन क्रिया जाताहै, वह तिर्यञ्च गतिहै, अथवा तिर्यक् क्षेत्र रूपवाली जो गति है, वह तिर्यञ्च गति है। इसी तरहका कथन देवगति और मनुष्यगतिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये सिद्धिमें जो जाता है, वह सिद्धिगति है, अथवा सिद्धिरूप जो गति है, वह सिद्धिगति है, यहां नामकर्मकी प्रकृति नहीं है ॥ सू० २ ॥

इस अनन्तर सूत्रमें जो सिद्धगति कही गई है, वह इन्द्रियार्थ और कषायोंको निमित्त करके मुण्डित होने पर होती है, अतः अब सूत्रकार

છે અથવા તે ક્ષેત્રવિશેષ રૂપ નિરયને પ્રાપ્ત કરાવનારી જે ગતિ છે તેનુ નામ નિરયગતિ છે. તિર્યચોમા જે ગમન થાય છે તેનુ નામ તિર્યંચગતિ છે. અથવા તિર્યક્ ક્ષેત્રરૂપ જે ગતિ છે તેને તિર્યગ્ગતિ કહે છે. અથવા તિર્યંચ દશાને પ્રાપ્ત કરાવનારી જે ગતિ છે તેને તિર્યંચગતિ કહે છે. એ જ પ્રકારનું કથન મનુષ્યગતિ અને દેવગતિ વિષે પણ સમજવુ. સિદ્ધિમા જે જાય છે તેનુ નામ સિદ્ધિગતિ છે અથવા સિદ્ધિરૂપ જે ગતિ છે તેનું નામ સિદ્ધિગતિ છે અહીં નામકર્મની પ્રકૃતિનો સદ્ભાવ હોતો નથી ॥ સૂ ૨ ॥

આગલા સૂત્રમાં સિદ્ધિગતિનો ઉલ્લેખ થયો છે ઇન્દ્રિયાર્થો અને કષાયોના ત્યાગપૂર્વક મુંડિત થઇને શ્રમણપર્યાય અંગીકાર કરવાથી તેની પ્રાપ્તિ

टीका—'पंच गईओ' इत्यादि—

गमन-गतिः-गमनक्रिया १, गम्यते-प्राप्यत या सा गतिः-क्षेत्रविशेष रूपा २, गम्यते प्राऽनया कर्मपुद्गलसहत्येति गति -नामकर्मोत्तरप्रकृतिरूपा, तत्कृता वा जीवावस्था ३। तद्भेदत्वे गतयः, ता पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः। पञ्चविध त्वमेवाह-तद्यथा-' निरयगई ' इत्यादि। निरय-नरके गति -गमन-निरयगतिः १ निरय -क्षेत्रविशेष स एवासौ गतिश्च निरयगतिः २। गम्यतेऽनयेति गतिः-निरयप्रापिका गति निरयगति ३ रिति।१। तिर्यग्गतिः-तिर्यक्षु गतिः १, तिर्यक्-

कायसे सम्बन्ध रखनेवाली जो बातेंहैं,उनका कथन अध्ययनकी समाप्ति तक करते हैं, इनमें प्रथम गति भेदोंको वे कहते हैं—

'पंच गईओ पण्णत्ताओ' इत्यादि सूत्र २ ॥

टीकार्थ-गमन क्रियाका नाम गतिहै अथवा जोजीव द्वारा प्राप्तकी जाती है वह गति है, ऐसी यह गति क्षेत्र विशेषरूप होती है, अथवा जिस कर्म पुद्गलोंको सगतिसे जीवका गमन होता है, वह गति है, ऐसी यह गति नामकर्मकी उत्तर प्रकृतिरूप होती है, अथवा-जीवकी जो अवस्था नामकर्मकी उत्तर प्रकृतिरूप गति द्वारा की जातीहै, वह गति है। ये जीवकी अवस्थाएँ बहुत होती हैं ये गतिया पांच कही गई हैं जैसे-निरयगति १ तिर्यग्गति २ मनुष्यगति ३ देवगति ४ और सिद्ध गति ५ निरय (नरक में जो गमन करता है, वह निरयगतिहै, निरय क्षेत्र विशेषरूप है, इस क्षेत्र विशेषरूप जो गति है, वह निरयगति है,

જીવાસ્તિકાય સાથે સબંધ ધરાવતી કેટલીક વાતોનું આ અધ્યયનની સમાપ્તિ સુધી પ્રતિપાદન કરશે. તેમાંથી પહેલાં તો સૂત્રકાર ગતિભેદોનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ—' પંચ ગઈઓ પણ્ણત્તાઓ ઇત્યાદિ—

ગમનક્રિયાનું નામ ગતિ છે અથવા જે જીવ દ્વારા પ્રાપ્ત કરાય છે તે ગતિ છે એવી તે ગતિ ક્ષેત્રવિશેષ રૂપ હોય છે અથવા જે કર્મપુદ્ગલોની પ્રાપ્તિને કારણે જીવનું ગમન થાય છે તે ગતિ છે એવી તે ગતિ નામકર્મની ઉત્તર પ્રકૃતિ રૂપ હોય છે અથવા નામકર્મની ઉત્તરપ્રકૃતિ રૂપ ગતિ દ્વારા જીવની જે અવસ્થા કરાય છે તે ગતિ છે જીવની એવી અવસ્થાઓ (ગતિઓ) પાંચ કહી છે—(૧) નિરયગતિ (૨) તિર્યગ્ગતિ (૩) મનુષ્યગતિ (૪) દેવગતિ અને (૫) સિદ્ધગતિ

જીવનું નરકમાં ગમન થવું તેનું નામ નિરયગતિ છે નિરય ક્ષેત્રવિશેષ રૂપ છે તે ક્ષેત્રવિશેષમાં ગમન કરાવનારી જે ગતિ છે તેને નિરયગતિ કહે

द्विविधा। तत्र बाह्या अनेकविधा आभ्यन्तरा निर्वृत्तिः श्रोत्रादीनां क्रमेण कदम्ब-पुष्पधान्यमसूरातिमुक्तकपुष्पचन्द्रिकाक्षुरप्रनानाकारसंस्थाना। उपकरणेन्द्रियं तु विषयग्रहणसामर्थ्यरूपम्। इदं छेद्यच्छेदने खड्गधारेव भवति। यथा धारायामुपहतायां खड्गश्छेद्यच्छेदने समर्थो न भवति तथैव उपकरणेन्द्रियासत्त्वे निर्वृत्तौ सत्यामपि इन्द्रियं विषयान्न गृह्णातीति। तथा भावेन्द्रियलब्ध्युपयोगभेदाद् द्विविधम्। तत्र लब्धीन्द्रियम्-तदावरणक्षयोपशमरूपम्। उपयोगेन्द्रियं च स्वविषये

इन्द्रिय भी बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारकी है। बाह्य निर्वृत्ति इन्द्रिय अनेक प्रकारकी है, आभ्यन्तर निर्वृत्ति श्रोत्रादिकके क्रमसे कदम्बपुष्प, धान्यमसूर अतिमुक्तकपुष्प चन्द्रिका क्षुरप तथा नाना प्रकारके संस्थानवाली है। अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति कदम्ब पुष्पके समान है, आंखकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति मसूरके दालके समान है, नाककी आभ्यन्तर निर्वृत्ति अतिमुक्तकपुष्प चन्द्रिकाके समान है, रसनेन्द्रियकी निर्वृत्ति क्षुरप्र (उस्तरा)के समान है, और स्पर्शन इन्द्रियकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति अनियमित आकारवाली है। विषयोंको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप उपकरण इन्द्रिय होती है यह छेद्य-को छेदनमें खड्गधाराके समान होती है, अर्थात् जिस प्रकारसे धारके उपहत हो जाने पर खड्ग तलवार छेदनेके योग्य पदार्थोंको छेदनेमें समर्थ नहीं होती है, उसी प्रकार उपकरण इन्द्रियके अभावमें निर्वृत्तिके होने पर भी इन्द्रिय विषयोंको ग्रहण नहीं करती है, तथा यह भावेन्द्रिय

આભ્યન્તરના ભેદથી બે પ્રકાર કહ્યા છે બાહ્યનિવૃત્તિ ઇન્દ્રિય અનેક પ્રકારની છે અને આભ્યન્તર નિવૃત્તિ અનુક્રમે શ્રોત્રેન્દ્રિયથી લઈએ તો કદમ્બપુષ્પ, ધાન્યમસુર, અતિમુક્તક પુષ્પ ચન્દ્રિકા, ક્ષુરપ્ર (અસ્રો) અને વિવિધ સંસ્થાન-વાળી છે એટલે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ (આકાર) કદમ્બપુષ્પ સમાન છે, આખની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ મસૂરની દાળ સમાન છે, નાકની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ અતિમુકતક પુષ્પચન્દ્રિકા સમાન છે, જીભની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ અસ્રા સમાન છે, અને સ્પર્શેન્દ્રિયની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ અનિયમિત આકારવાળી છે વિષયોને ગ્રહણ કરવાની શકિત રૂપ ઉપકરણ ઇન્દ્રિય હોય છે તે છેદ્યનું છેદન કરવામા તલવારની ધારસમાન હોય છે. એટલે કે જેમ ધાર વિનાની તરવાર-બૂઠી તલવાર છેદવા યોગ્ય પદાર્થને છેદવામા અસમર્થ નિવડે છે, એ જ પ્રમાણે ઉપકરણ ઇન્દ્રિયનો અભાવ હોય ત્યારે નિવૃત્તિનો સદ્ભાવ [illegible]

टीका— पंच इंदियत्था ' इत्यादि—

इन्द्रियार्थाः – इन्दनात्=सर्वविषयोपलब्धिभोगलक्षणपरमैश्वर्यसद्भावात्-इन्द्रो जीवः, तस्य लिङ्गं, तेन वा दृष्टं सृष्टं जुष्टं दत्तं दुर्जेयं वा इन्द्रियं श्रोत्रादिकम्, तच्च नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधम्। तत्र नामस्थापने सुगमे। द्रव्येन्द्रियं तु निर्वृत्युपकरणभेदात् द्विविधम्। तत्र निर्वृत्तिः=आकारः। सा च बाह्याभ्यन्तरभेदात्

इन्द्रियार्थों को और इन्द्रिय कषायोंसे मुण्डित हुए व्यक्तियोंको लेकर कथन करते हैं--'पंच इंदियत्था पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ३॥

टीकार्थ–इन्द्रियोंके अर्थ विषय पांच कहे गये हैं जैसे श्रोत्रेन्द्रियका अर्थ१ यावत् स्पर्शनेन्द्रियार्थ ५ इन्द्रका जो चिह्न है, वह इन्द्रिय है, इन्द्र शब्दसे यहा आत्मा लिया गया है क्योंकि वह सर्व विषयोंकी उपलब्धि एव उनके भोगरूप जो परमैश्वर्य अनुभव करनेवाला है, उस जीवका जो चिह्न है, वह इन्द्रिय है, अथवा उस जीवरूप इन्द्रसे जो दृष्ट है, सृष्ट है जुष्ट है दत्त है अथवा दुर्जेय है वह इन्द्रिय है, अथवा इन्द्रसे होने वाला है, ऐसी ये इन्द्रियां श्रोत्रादिक हैं। ये श्रोत्रादिक इन्द्रियां नाम स्थापना द्रव्य और भावके भेदसे चार प्रकारकी हैं, इनमें नाम और स्थापनारूप इन्द्रियां सुगम हैं। द्रव्येन्द्रिय निर्वृत्ति और उपकरणके भेदसे दो प्रकारकी है निर्वृत्तिका नाम आकार है, वह निर्वृत्तिरूप

થાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર ઇન્દ્રિયાર્થોનું અને ઇન્દ્રિય કષાયોથી રહિત થવા રૂપ મુંડિત અવસ્થા ધારણ કરનાર વ્યક્તિઓનું કથન કરે છે

ટીકાર્થ –" પંચ इंदियत्था पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

ઇન્દ્રિયોના વિષયરૂપ અર્થ પાંચ કહ્યા છે—(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયાર્થ (૨) નેત્રેન્દ્રિયાર્થ (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થ, (૪) રસનેન્દ્રિયાર્થ અને (૫) સ્પર્શેન્દ્રિયાર્થ ઇન્દ્રનું જે ચિહ્ન છે તે ઇન્દ્રિય છે ઇન્દ્ર શબ્દ દ્વારા અહીં આત્મા ગ્રહણ થયો છે કારણ કે સર્વ વિષયોની ઉપલબ્ધિ અને અનેક ભોગ રૂપ પરમૈશ્વર્યને અનુભવ તે કરે છે તેની જીવને પ્રાપ્તિ કરાવનાર જે બાહ્ય સાધનો છે તેને ઇન્દ્રિયો કહે છે અથવા તે જીવ રૂપ ઇન્દ્રથી જે દૃષ્ટ છે સૃષ્ટ છે, જુષ્ટ છે, દત્ત છે, અથવા દુર્જય છે તે ઇન્દ્રિય છે એવી ઇન્દ્રિયો શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિ પાંચ છે તે શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયો નામ, સ્થાપના દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે તેમાંથી નામ અને સ્થાપના રૂપ ઇન્દ્રિયો સુગમ હોવાથી અહીં તેમનુ વધુ વિવેચન કર્યું નથી દ્રવ્યેન્દ્રિયના નિવૃત્તિ અને ઉપકરણ નામના બે ભેદ કહ્યા છે નિવૃત્તિ એટલે આકાર તે નિવૃત્તિરૂપ ઇન્દ્રિયના પણ બાહ્ય અને

तत् नामादि चतुर्द्धा द्रव्यं निर्वृत्तिरुपकरण च ।
आकारो निर्वृत्तिः चित्रा बाह्या अन्तरिमा ॥ २ ॥
पुष्प कलम्बुकाया धान्यमसूरातिमुक्तचन्द्रं च ।
भवति क्षुरप्रो नानाकृतिश्च श्रोत्रेन्द्रियादीनाम् ॥ ३ ॥
विषयग्रहणसामर्थ्यम् , उपकरणम् इन्द्रियान्तरं तदपि ।
यन्नेह तदुपघाते गृह्णाति निर्वृत्तिभावेऽपि । ४ ॥
लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रिय तु लब्धिरिति यः क्षयोपशमः ।
भवति तदावरणानां तल्लाभे एव शेषमपि ॥ ५ ॥
यः स्वविषयव्यापारः स उपयोगः स चैककाले ।
एकेन एव तस्मात् उपयोगैकेन्द्रिय सर्वः ॥ ६ ॥
एकेन्द्रियादिभेदाः प्रतीत्य शेषेन्द्रियाणि जीवानाम् ।
अथवा प्रतीत्य लब्धीन्द्रियमपि पञ्चेन्द्रियाः सर्वे ॥ ७ ॥
यत्किल बकुलादीनां दृश्यते शेपेन्द्रियोपलम्भोऽपि ।
तेनास्ति तदावरण क्षयोपशमसंभवस्तेषाम् ॥ ८ ॥ इति ॥

सेया इन्द्रके द्वारा दृष्ट आदि होनेसे श्रोत्रादिकोंको इन्द्रिय कहा गयाहै। "इदि परमैश्वर्ये" के अनुसार इद् धातुसे इन्द्र शब्द बनताहै, समस्त पदार्थोंका ज्ञाता दृष्टा बन जाता है, ऐसा बन जानाही आत्माका परमैश्वर्य है, ऐसे परमैश्वर्यवाला यह आत्माही हो सकता है, और द्रव्य नहीं हो सकताहै, अतः इन्द्रकी तरह यह जीव परमैश्वर्यवाला हो सकनेके कारण इन्द्र कहा गया है, इस इन्द्रकाही यह चिह्न है, इस इन्द्रिय रूप चिह्नसेही आत्मा जीवकी पहिचान होती है, यहां ज्ञानेन्द्रियोंकी ही यह बात चल रही है इसलिये श्रोत्रादिक इन्द्रियां पांचही कही गई हैं, क्योंकि छद्मस्थ जीव इनकी सहायतासे ही इनके विषयोंका ज्ञाता हो सकता है ॥ १ ॥

અથવા ઈન્દ્રના દ્વારા દૃષ્ટ આદિ હોવાથી શ્રોત્રાદિકોને ઈન્દ્રિયો કહેવામાં આવેલ છે "इदि परमैश्वर्ये" ના અનુસાર "इद्" ધાતુમાંથી ઈન્દ્ર બન્યો છે સમસ્ત જ્ઞાનાવરણુ અને દર્શનાવરણુનો અભાવ થઈ જાય ત્યારે આત્મા સમસ્ત પદાર્થોનો જ્ઞાતા (દ્રષ્ટા) બની જાય છે એવો બની જવુ એજ આત્માનુ પરમૈશ્વર્ય છે એવા પરમૈશ્વર્યવાળો આ આત્મા જ હોઈ શકે છે–બીજું દ્રવ્ય હોઈ શકતુ નથી તેથી તે ઈન્દ્રની જેમ પરમૈશ્વર્યસ પન્ન હોઈ શકવાને કારણે તેને ઈન્દ્ર કહ્યો છે આ ઈન્દ્રનુ જ તે ચિહ્ન છે આ ઈન્દ્રિય રૂપ ચિહ્ન વડે જ આત્માને (જીવને) ઓળખી શકાય છે. અહી જ્ઞાનેન્દ્રિયોની જ વાત ચાલી રહી છે અહી શ્રોત્રાદિક પાંચ ઈન્દ્રિયો કહી છે, અને છદ્મસ્થ જીવો તેમની સહાયતાથી જ તેમના વિષયોને (તે પાચે ઈન્દ્રિયોના વિષયોને) જાણી શકે છે ।૧।

व्यापार । उक्तं च—

' इंदो जीवो सव्वोवलद्धिभोगपरमेसरत्तणओ ।
सोत्ताइ भेयमिंदियमिह तल्लिंगाइ भावाओ ॥ १ ॥
त नामादि चउद्धा, दव्वं निव्वत्तिओवकरणं च ।
आगारो निव्वत्ती, चित्ता बज्झा इमा अंतो ॥ २ ॥
पुप्फं कलंबुयाए, धन्नमसूरातिमुत्तचंदो य ।
होइ खुरुप्पो नाणागिई य सोइंदियाई णं ॥ ३ ॥
विसयग्गहणसमत्थं, उवगरणं इंदियंतरं तंपि ।
जं नेह तदुवघाए, गिण्हइ निव्वित्तिभावे वि ॥ ४ ॥
लध्धुवओगा भाविंदियं तु लद्धित्ति जो खओवसमो ।
होइ तयावरणाणं तल्लाभे चेव सेसंपि ॥ ५ ॥
जो सविसयवावारो सो उवओगो सचेयणाम्मि ।
एगेण चेव तम्हा, उवओगेगिंदिओ सव्वो ॥ ६ ॥
एगिंदियाइभेया, पडुच्च सेसिंदियाइं जीवाणं ।
अहवा पडुच्च लद्धिं दियंपि पंचिंदिया सव्वे ॥ ७ ॥
जं किर बउलाईणं दीसइ सेसिंदिओवलंभो वि ।
तेणत्थि तदावरणक्खओवसमसंभवो तेसिं ॥ ८ ॥

छाया—इन्द्रो जीवः सर्वोपलब्धिभोगपरमैश्वर्यात् ।
श्रोत्रादिभेदमिन्द्रियमिह तल्लिङ्गादिभावात् ॥ १ ॥

लब्धि और उपयोगके भेदसे दो प्रकारकी होती है। इनमें लब्धिरूप जो भावेन्द्रिय है, वह तदावरणक्षयोपशम रूप होती है, और उपयोग रूप जो भावेन्द्रिय होती है, वह अपने विषयमें व्यापाररूप होती है। कहा भी है— 'इंदो जीवो सव्वोवलद्धि" इत्यादि।

इन गाथाओंका भावार्थ ऐसा है—"इन्द्रस्य लिङ्गं इन्द्रियम् इन्द्रेण जुष्टं जीव इत्यादिस्यात् वा इन्द्रियम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार इन्द्रका चिह्न होने

તે ઉપકરણ ઇન્દ્રિયના બે ભેદ છે—(૧) ભાવેન્દ્રિય લબ્ધિ અને (૨) ભાવેન્દ્રિય ઉપયોગ તેમાંથી જે લબ્ધિરૂપ ભાવેન્દ્રિય છે તે તદાવરણક્ષયોપશમ રૂપ હોય છે અને ઉપયોગ રૂપ જે ભાવેન્દ્રિય હોય છે તે પોતાના વિષયમાં વ્યાપાર (પ્રવૃત્તિ) રૂપ હોય છે કહ્યું પણ છે કે :

' इंदो जीवो सव्वोवलद्धि ' ઇત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે— 'इन्द्रस्य लिङ्गं इन्द्रियम् इन्द्रेण दृष्टम् इत्यादि वा इन्द्रियम्' આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર ઇન્દ્રનું ચિહ્ન હોવાથી

तत् नामादि चतुर्द्वा द्रव्यं निर्वृत्तिरुपकरणं च ।
आकारो निर्वृत्तिः चित्रा बाह्या अन्तरिमा ॥ २ ॥
पुष्प कलम्बुकाया धान्यमसूरातिमुक्तचन्द्रं च ।
भवति क्षुरप्रो नानाकृतिश्च श्रोत्रेन्द्रियादीनाम् ॥ ३ ॥
विषयग्रहणसामर्थ्यम् , उपकरणम् इन्द्रियान्तरं तदपि ।
यन्नेह तदुपघाते गृह्णाति निर्वृत्तिभावेऽपि ॥ ४ ॥
लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियं तु लब्धिरिति यः क्षयोपशमः ।
भवति तदावरणानां तल्लाभे एव शेषमपि ॥ ५ ॥
यः स्वविषयव्यापारः स उपयोगः स चैककाले ।
एकेन एव तस्मात् उपयोगैकेन्द्रिय सर्वः ॥ ६ ॥
एकेन्द्रियादिभेदाः प्रतीत्य शेषेन्द्रियाणि जीवानाम् ।
अथवा प्रतीत्य लब्धीन्द्रियमपि पञ्चेन्द्रियाः सर्वे ॥ ७ ॥
यत्किल बकुलादीनां दृश्यते शेषेन्द्रियोपलम्भोऽपि ।
तेनास्ति तदावरण क्षयोपशमसंभवस्तेषाम् ॥ ८ ॥ इति ॥

सेया इन्द्रके द्वारा दृष्ट आदि होनेसे श्रोत्रादिकोंको इन्द्रिय कहा गयाहै। "इदि परमैश्वर्ये" के अनुसार इद् धातुसे इन्द्र शब्द बनताहै, समस्त पदार्थोंका ज्ञाता दृष्टा बन जाता है, ऐसा बन जानाही आत्माका परमैश्वर्य है, ऐसे परमैश्वर्यवाला यह आत्माही हो सकता है, और द्रव्य नहीं हो सकताहै, अतः इन्द्रकी तरह यह जीव परमैश्वर्यवाला हो सकनेके कारण इन्द्र कहा गया है, इस इन्द्रकाही यह चिह्न है, इस इन्द्रिय रूप चिह्नसेही आत्मा जीवकी पहिचान होती है, यहां ज्ञानेन्द्रियोंकी ही यह बात चल रही है इसलिये श्रोत्रादिक इन्द्रियां पांचही कही गई हैं, क्योंकि छद्मस्थ जीव इनकी सहायतासे ही इनके विषयोंका ज्ञाता हो सकता है ॥ १ ॥

અથવા ઈન્દ્રના દ્વારા દૃષ્ટ આદિ હોવાથી શ્રોત્રાદિકોને ઈન્દ્રિયો કહેવામાં આવેલ છે " इदि परमैश्वर्ये " ના અનુસાર " इद् " ધાતુમાંથી ઈન્દ્ર બન્યો છે સમસ્ત જ્ઞાનાવરણ અને દર્શનાવરણનો અભાવ થઈ જાય ત્યારે આત્મા સમસ્ત પદાર્થોનો જ્ઞાતા (દૃષ્ટા) બની જાય છે એવો બની જવું એજ આત્માનું પરમૈશ્વર્ય છે એવા પરમૈશ્વર્યવાળો આ આત્મા જ હોઈ શકે છે-બીજું દ્રવ્ય હોઈ શકતું નથી તેથી તે ઈન્દ્રની જેમ પરમૈશ્વર્યસંપન્ન હોઈ શકવાને કારણે તેને ઈન્દ્ર કહ્યો છે આ ઈન્દ્રનું જ તે ચિહ્ન છે આ ઈન્દ્રિય રૂપ ચિહ્ન વડે જ આત્માને (જીવને) ઓળખી શકાય છે અહીં જ્ઞાનેન્દ્રિયોની જ વાત ચાલી રહી છે અહીં શ્રોત્રાદિક પાંચ ઈન્દ્રિયો કહી છે, અને છદ્મસ્થ જીવો તેમની સહાયતાથી જ તેમના વિષયોને (તે પાંચે ઈન્દ્રિયોના વિષયોને) જાણી શકે છે ।૧।

भयवर्थः-इन्द्रो जीव उच्यते । कुतः ? सर्वोपलब्धिभोगपरमैश्वर्यात्-आव रणाभावे सर्वस्यापि वस्तुन उपलम्भ -प्राप्तिः, नानाभावेषु सर्वस्यापि भिन्नवस्तुनो भोगः-परिभोगश्च सर्वोपलब्धिभोग, तद्रूप परमैश्वर्यं, तस्मात् । तस्य इन्द्रस्य लिङ्गत्वात्, तेन इन्द्रेण दृष्टादित्वाद् वा । इदं श्रोत्रादिभेदम्-श्रोत्रनयनघ्राणरसनस्पर्शनभेदात् पञ्चविधमिन्द्रियं बोध्यम् ॥ १ ॥ एतानि इन्द्रियाणि नामस्थापनादिभेदाच्चतुर्विधानि-इत्याह-' त नामाइ ' इत्यादि । तत् इन्द्रियं नामेन्द्रिय-स्थापनेन्द्रिय-द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय-भेदाच्चतुर्विधम् । तत्र नामेन्द्रियस्थापनेन्द्रिये प्रसिद्धे । द्रव्येन्द्रियं तु निर्वृत्त्युपकरणभेदाद् द्विविधम् । तत्र निर्वृत्तिः=आकारप्रतिविशिष्टः संस्थानविशेषः, सा च बाह्याभ्यन्तरभेदाद् द्विविधा । तत्र बाह्या

यद्यपि अन्य सिद्धान्तकारोंने इनके अतिरिक्त वाक्, वचन पाणि हाथ, पाद, (चरण) पायु मलद्वार और उपस्थके गुप्तेन्द्रिय भेदसे और भी इन्द्रियां मानी हैं, पर वे यहां उपयोगी नहीं हैं, क्योंकि ये इन्द्रियां ज्ञानमें काम नहीं आती हैं। ये तो कर्मेन्द्रियां हैं, ये बोलने चालने आदि कामोंमें ही आती हैं, "त नामादि" इन श्रोत्रादिक पांच इन्द्रियोंको नाम स्थापना द्रव्य और भावके भेदसे चार विभागोंमें भी विभक्त किया गया है, पर यहां नाम स्थापना इन्द्रियका प्रकरण नहीं है, क्योंकि नाम इन्द्रिय और स्थापना इन्द्रिय ज्ञानमें साधक नहीं होती हैं। अब द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ये दो इन्द्रियां ही ऐसी हैं जो जीवको ज्ञान करानेमें साधक होती हैं, तथा ये दो ही ज्ञानेन्द्रिय हैं। अर्थात् श्रोत्रादि रूप पांच ज्ञानेन्द्रिय इन्द्रियां द्रव्येन्द्रिय रूप भी होती हैं और भावेन्द्रिय रूप भी होती हैं

જો કે અન્ય સિદ્ધાન્તકારોએ તે સિવાયની વાક્ (પાણિ) (હાથ) પગ પાયુ (મલદ્વાર) અને ઉપસ્થના ભેદથી બીજી પણ પાંચ ઇન્દ્રિયો કહી છે, પરન્તુ તેઓ જ્ઞાનપ્રાપ્તિમાં ઉપયોગી થતી નથી તે કારણે અહીં તેમની વાત કરી નથી. તેમને કર્મેન્દ્રિયો કહી શકાય છે, કારણ કે તે બોલવા, ચાલવા આદિ કાર્યોમાં કામ આવે છે ' त नामाइ ' તે શ્રોત્રાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોને નામ, સ્થાપના દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી ચાર વિભાગોમાં વિભક્ત કરવામાં આવી છે પરંતુ અહીં નામ ઇન્દ્રિય અને સ્થાપના ઇન્દ્રિયનો અધિકાર ચાલી રહ્યો નથી અહીં દ્રવ્ય ઇન્દ્રિય અને ભાવ ઇન્દ્રિયનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે કારણ કે નામ ઇન્દ્રિય અને સ્થાપના ઇન્દ્રિય જ્ઞાનની સાધક હોતી નથી પરન્તુ દ્રવ્યેન્દ્રિય અને ભાવેન્દ્રિય જ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરાવવામાં સાધનભૂત બને છે તેથી તે બે પ્રકારો જ જ્ઞાનેન્દ્રિય રૂપ છે એટલે કે શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિ પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિયો દ્રવ્યેન્દ્રિય રૂપ પણ હોય છે અને ભાવેન્દ્રિય રૂપ પણ હોય છે તેમની રચના

इनमें निर्वृत्ति नाम रचनाका है, यह इन्द्रियाकार रचना पुद्गलों में भी होती है और आत्मप्रदेशोंमें भी होती है। अर्थात् पुद्गलोंके प्रदेश भी इन्द्रियाकार रूपसे परिणमते हैं और आत्मप्रदेश भी इन्द्रियाकार रूपसे परिणमते हैं। श्रोत्रादिक इन्द्रियों के आकारमें जो पुद्गलके प्रदेश एवं आत्माके प्रदेश परिणमते हैं वे द्रव्येन्द्रिय हैं। एवं क्षयोपशम विशेषसे होनेवाला जो आत्मा का परिणाम है, ज्ञानदर्शन रूप वह भावेन्द्रिय है, द्रव्येन्द्रियके दो भेद हैं-निर्वृत्ति और उपकरण—निर्वृत्तिका अर्थ रचना है, इसलिये निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रियका अर्थ हुआ-इन्द्रियाकार रचना यह बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारकी है, बाह्य निर्वृत्ति से इन्द्रियाकार पुद्गल रचना ली गई है और आभ्यन्तर निर्वृत्ति से इन्द्रियाकार आत्मप्रदेशके लिये कहे गयेहैं। यद्यपि प्रतिनियत इन्द्रिय सम्बधी ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है, तथापि अंगोपाङ्ग नाम कर्मके उदयसे यहां पुद्गल प्रचय-समूहरूप जिस द्रव्येन्द्रियकी रचना होतीहै, वहीं के आत्मप्रदेशोंमें उस२ इन्द्रियको कार्य करनेकी क्षमता होती है। उपकरणका अर्थ है-उपकार का प्रयोजक साधन यह भी बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारका है, नेत्र इन्द्रिय में जो कृष्ण शुक्ल

નુ નામ નિવૃત્તિ છે આ ઇન્દ્રિયાકાર રચના પુદ્ગલોમા પણ થાય છે અને આત્મપ્રદેશોમા પણ થાય છે. એટલે કે પુદ્ગલોના પ્રદેશ પણ ઇન્દ્રિયાકાર રૂપે પરિણમે છે અને આત્મપ્રદેશો પણ ઇન્દ્રિયાકાર રૂપે પરિણમે છે શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયોના આકારમાં જે પુદ્ગલના પ્રદેશો અને આત્માના પ્રદેશો પરિણમે છે, દ્રવ્યેન્દ્રિયરૂપ છે, અને ક્ષયોપશમ વિશેષ દ્વારા ઉત્પન્ન થતું જે આત્માનુ પરિણામ છે, તે જ્ઞાનદર્શન રૂપ ભાવેન્દ્રિય છે

દ્રવ્યેન્દ્રિયના બે ભેદ છે—(૧) નિવૃત્તિ અને ઉપકરણ. નિવૃત્તિ એટલે રચના નિવૃત્તિ દ્રવ્યેન્દ્રિય એટલે ઇન્દ્રિયાકાર રચના તે નિવૃત્તિના બે ભેદ છે—(૧) બાહ્ય અને આભ્યન્તર બાહ્યનિવૃત્તિ દ્વારા ઇન્દ્રિયાકાર પુદ્ગલરચના ગ્રહણ કરવી જોઈએ જો કે પ્રતિનિયત ઇન્દ્રિય સબધી જ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ સર્વાંગી હોય છે, છતા પણ અગોપાંગ નામકરણના ઉદયથી જ્યાં પુદ્ગલ પ્રચયરૂપ જે દ્રવ્યેન્દ્રિયની રચના થય છે, ત્યાના આત્મપ્રદેશોમાં તે તે ઇન્દ્રિયના કાર્યો કરવાની ક્ષમતા હોય છે ઉપકરણ એટલે ઉપકારનુ પ્રયોજક સાધન તે પણ બાહ્ય અને આભ્યન્તરના ભેદથી બે પ્રકારનું છે નેત્રેન્દ્રિયમાં

निर्वृत्ति चित्रा=अनेकविधा। अथ भावा:—बाह्या निर्वृत्ति, पर्पटिकादिरूपा। सा च विविधा—प्रतिनियतरूपतया उपदेष्टुमशक्यत्वात्। तथाहि—मनुष्यकर्णौ नेत्रयोरुभयपार्श्वयोर्भवत, भ्रुवौ चोपरितनभवणपक्ष्मापेक्षया समे, तुरगस्य नेत्रयोरुपरि श्रवणे चाग्रभागे इत्यादि प्रकारा जातिभेदा नानाविधा बाह्या निर्वृत्तिरिति। अन्तरिमा=आभ्यन्तरा निर्वृत्तिस्तु सर्वेषां प्राणिनां समानैव। स्पर्शेन्द्रियनिर्वृत्तेस्तु बाह्याभ्यन्तरभेदा न भवन्ति, नानाकृतिकत्वात्। 'इमा अंतो' इत्यत्र प्राकृतत्वात् इमनिच् प्रत्यय प्रकृते पूर्वं निर्दिष्ट इति ॥ २ ॥ सम्प्रति—इन्द्रियाणाम् आभ्यन्तरसंस्थाना याह—'पुप्फ चन्नुयाए' इत्यादिना श्रोत्रेन्द्रि

मण्डल है वह आभ्यन्तर उपकरण है, और अक्षिपत्र आदि रूप जो है वह बाह्य उपकरण है। यही बात यहां 'बाह्या निवृत्ति चित्रा" इस कथन से प्रदर्शित की गई है। बाह्य निवृत्ति अनेक प्रकार की होती है, क्योंकि वह प्रतिनियत आकार रूपसे कही नहीं जा सकती है। जैसे—मनुष्यके कान नेत्रोंके दोनों पार्श्वभाग में होते हैं और उपरितन श्रवणपक्षकी अपेक्षा से दोनों भोहें समान होती हैं। तुरग—घोडा के दोनों नेत्रों के ऊपर तीक्ष्ण अग्रभाग होते हैं, इत्यादि प्रकार के जाति भेदसे नाना प्रकारकी बाह्य निवृत्ति होती है। परन्तु आभ्यन्तर जो निवृत्ति होती है वह समस्त जीवों के समान होती है। स्पर्शनेन्द्रिय निवृत्ति के तो बाह्य और आभ्यन्तर ऐसे दो भेद नहीं होते हैं क्योंकि वह नाना आकृतिवाली होती है ॥ २ ॥

જે પુષ્પ શુદ્ધ મંડળ છે તે આભ્યન્તર ઉપકરણ છે અને જે અક્ષિપત્ર (પાંપણ) આદિ રૂપ ઉપકરણ છે તે બાહ્ય ઉપકરણ છે એજ વાત અહીં 'બાહ્યા નિવૃત્તિ ચિત્રા આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે બાહ્ય નિવૃત્તિ (બાહ્યાકાર) અનેક પ્રકારની હોય છે કારણ કે તે પ્રતિનિયત આકારવાળી સંભવી શકતી નથી જેમકે માણસના કાન નેત્રોના બન્ને પાર્શ્વભાગોમાં હોય છે અને ઉપરીતન શ્રવણ પક્ષની અપેક્ષાએ બન્ને ભ્રમરો સમાન હોય છે ઘોડાના બન્ને નેત્રો ઉપર તીક્ષ્ણ અગ્રભાગ (બન્ને કાન) હોય છે ઇત્યાદિ પ્રકારે જાતિભેદ અનુસાર વિવિધ પ્રકારની બાહ્ય ઇન્દ્રિય નિવૃત્તિ હોય છે પરન્તુ સમસ્ત જીવોમાં જે આભ્યન્તર નિવૃત્તિ હોય છે તે તો સમાન જ હોય છે સ્પર્શેન્દ્રિય નિવૃત્તિના તો બાહ્ય અને આન્તરિક રૂપ બે ભેદો પડતાં જ નથી કારણ કે તે વિવિધ આકૃતિવાળી હોય છે ॥ ૨ ॥

णादीनां=श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियाणां क्रमेण कदम्बपुष्पादीनि संस्थानानि बोध्यानि। तत्र श्रोत्रेन्द्रियं कदम्बपुष्पसंस्थानम्-कदम्बपुष्पाकारमांसगोलकरूप मित्यर्थः। चक्षुरिन्द्रियं-मसूरधान्यसंस्थानम्। घ्राणेन्द्रियम्-अतिमुक्तककुसुम चन्द्रकसंस्थानम्। रसनेन्द्रियं क्षुरप्रसंस्थानम्। स्पर्शनेन्द्रियं तु नानासंस्थानम्। इति ॥ ३ ॥ अथ द्रव्येन्द्रियस्य द्वितीयभेदं निरूपयति-'विसयग्गहण' इत्यादि, उपकरणं विषयग्रहणसामर्थ्यं, तदपि इन्द्रियान्तरम्=निर्वृत्तीन्द्रियाद् अन्यदिन्द्रियं बोध्यम्। अयं भावः-कदम्बपुष्पाद्याकृतिमांसगोलकरूपायाः श्रोत्राद्यन्तर्निर्वृत्तेः

अब सूत्रकार इन्द्रियों के आभ्यन्तर संस्थान का कथन करते हैं—"पुप्फं कलंबुयाए" इत्यादि-श्रोत्र, चक्षु, घ्राण एवं रसन इन इन्द्रियों का संस्थान क्रमसे कदम्बपुष्प के जैसा मसूर धान्यकेजैसा अतिमुक्तक कुसुम के चन्द्रक जैसा एवं क्षुरप्र के जैसा है। एवं स्पर्शनेन्द्रिय का संस्थान नियमित नहीं होने से वह नाना संस्थानवाला है। अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय का संस्थान कदम्ब पुष्पके जैसा, चक्षु इन्द्रिय का संस्थान चंद्र मसूर की दाल जैसा, घ्राणेन्द्रियका संस्थान अतिमुक्तक कुसुमके चन्द्रक जैसा, रसनेन्द्रिय का संस्थान क्षुरप्र के जैसा है ॥ ३ ॥

"विसयग्गहणाइ" इत्यादि-द्रव्येन्द्रिय का द्वितीय भेद जो उपकरणेन्द्रिय है, वह विषयको ग्रहण करने की सामर्थ्यरूप है, इसलिये इसे इन्द्रियानर रूप-निर्वृत्ति इन्द्रिय से अन्य इन्द्रिय रूप कहा गयाहै। तात्पर्य इसका यह है कि कदम्ब पुष्प आदि की आकृतिरूप जो मांस गोलक है, इस मांसगोलक रूप जो श्रोत्र आदि की आभ्यन्तर निर्वृत्ति

હવે સૂત્રકાર ઇન્દ્રિયોના આભ્યન્તર સંસ્થાનનું કથન કરે છે—"पुप्फ कलंबुयाए" ઇત્યાદિ—શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ઘ્રાણ અને રસના ઇન્દ્રિયોનું સંસ્થાન અનુક્રમે કદમ્બ પુષ્પ જેવું, મસૂરની દાળ જેવું, અતિમુક્તક કુસુમના ચન્દ્રક જેવું અને ક્ષુરપ્ર (અસ્રા) જેવું છે સ્પર્શેન્દ્રિયનું સંસ્થાન નિયમિત નથી પણ વિવિધ આકારવાળું છે એટલે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયનો આકાર કદમ્બ પુષ્પ સમાન છે, ચક્ષુઇન્દ્રિયનો આકાર મસૂરની દાળ સમાન છે, ઘ્રાણેન્દ્રિયનો આકાર અતિમુક્તક કુસુમના ચન્દ્રક સમાન છે, અને રસનેન્દ્રિયનો આકાર અસ્રા સમાન છે ॥ ૩ ॥

"विसयग्गहणाइ" ઇત્યાદિ—દ્રવ્યેન્દ્રિયનો જે ઉપકરણેન્દ્રિય રૂપ બીજો ભેદ છે તે વિષયને ગ્રહણ કરવાના સામર્થ્ય રૂપ છે, તેથી તેને ઇન્દ્રિયાન્તર રૂપ-નિવૃત્તિ ઇન્દ્રિય કરતાં અન્ય ઇન્દ્રિય રૂપ કહેવામા આવેલ છે આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—કદમ્બપુષ્પ આદિની આકૃતિ રૂપ જે માંસગોલક છે, આ માંસગોલક રૂપ જે શ્રોત્ર આદિની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ છે, તે આભ્યન્તર

निर्वृत्तिः विचित्रा=अनेकविधा। अयं भावः—बाह्या निर्वृत्तिः, पर्पटिकादिरूपा। सा च विविधा—प्रतिनियतरूपतया उपदेष्टुमशक्यत्वात्। तथाहि—मनुष्यकर्णौ नेत्रयोरुभयपार्श्वतोभवतः, भ्रुवौ चोपरितनश्रवणबन्धापेक्षया समे, तुरगस्य नेत्रयोरुपरि तीक्ष्णे चाग्रभागे इत्यादि प्रकारा जातिभेदा नानाविधा बाह्या निर्वृत्तिरिति। अन्तरिमा=आभ्यन्तरा निर्वृत्तिस्तु सर्वेषां प्राणिनां समानैव। स्पर्शेन्द्रियनिर्वृत्तेस्तु बाह्याभ्यन्तरभेदा न भवन्ति, नानाकृतिकत्वात्। 'इमा अतो' इत्यत्र प्राकृतत्वात् इमनिच् प्रत्ययः प्रकृतेः पूर्वं निर्दिष्ट इति ॥ २ ॥ सम्प्रति-इन्द्रियाणाम् आभ्यन्तरसंस्थानमाह—'पुप्फ कलंबुयाए' इत्यादिना श्रोत्रेन्द्रि

मण्डल है वह आभ्यन्तर उपकरण है, और अक्षिपत्र आदि रूप जो है वह बाह्य उपकरण है। यही बात यहाँ 'बाह्या निर्वृत्ति विचित्रा" इस कथन से प्रदर्शित की गई है। बाह्य निर्वृत्ति अनेक प्रकार की होती है, क्योंकि वह प्रतिनियत आकार रूपसे कही नहीं जा सकती है। जैसे—मनुष्यके कान नत्रोंके दोनों पार्श्वभाग में होते हैं और उपरितन श्रवणबन्धकी अपेक्षा से दोनों भौंहे समान होती हैं। तुरग-घोडा के दोनों नेत्रों के ऊपर तीक्ष्ण अग्रभाग होते हैं, इत्यादि प्रकार के जाति भेदसे नाना प्रकारकी बाह्य निर्वृत्ति होती है। परन्तु आभ्यन्तर जो निर्वृत्ति होती है वह समस्त जीवों के समान होती है। स्पर्शनेन्द्रिय निर्वृत्ति के तो बाह्य और आभ्यन्तर ऐसे दो भेद नहीं होते हैं, क्योंकि वह नाना आकृतिवाली होती है ॥ २ ॥

જે પુષ્પ જેવું મંડળ છે, તે આભ્યન્તર ઉપકરણ છે અને જે અક્ષિપત્ર (પાંપણ) આદિ રૂપ ઉપકરણ છે તે બાહ્ય ઉપકરણ છે એજ વાત અહીં 'બાહ્યા નિવૃત્તિ વિચિત્રા' આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે બાહ્ય નિવૃત્તિ (બાહ્યાકાર) અનેક પ્રકારની હોય છે કારણ કે તે પ્રતિનિયત આકાર રૂપે કહી શકાતી નથી જેમકે માણસના કાન નેત્રના બન્ને પાર્શ્વભાગોમાં હોય છે અને ઉપરીતન શ્રવણબંધની અપેક્ષાએ બન્ને ભ્રમરો સમાન હોય છે ઘોડાના બન્ને નેત્રો ઉપર તીક્ષ્ણ અગ્રભાગ (બન્ને કાન) હોય છે ઇત્યાદિ પ્રકારે જાતિભેદ અનુસાર વિવિધ પ્રકારની બાહ્ય ઇન્દ્રિય નિવૃત્તિ હોય છે પરન્તુ સમસ્ત જીવોમાં જે આભ્યન્તર નિવૃત્તિ હોય છે તે તો સમાન જ હોય છે સ્પર્શેન્દ્રિય નિવૃત્તિના તો બાહ્ય અને આન્તરિક રૂપ બે ભેદો પડતાં જ નથી કારણ કે તે વિવિધ આકૃતિવાળી હોય છે ॥ ૨ ॥

यादीनां=श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियाणां क्रमेण कदम्बपुष्पादीनि संस्थानानि बोध्यानि। तत्र श्रोत्रेन्द्रियं कदम्बपुष्पसंस्थानम्-कदम्बपुष्पाकारमांसगोलकरूप मित्यर्थः। चक्षुरिन्द्रियं-मसूरधान्यसंस्थानम्। घ्राणेन्द्रियम्-अतिमुक्तककुसुम चन्द्रकसंस्थानम्। रसनेन्द्रियं क्षुरप्रसंस्थानम्। स्पर्शनेन्द्रियं तु नानासंस्थानम्। इति ॥ ३ ॥ अथ द्रव्येन्द्रियस्य द्वितीयभेदं निरूपयति-'विसयग्गहण' इत्यादि, उपकरणं विषयग्रहणसामर्थ्यं, तदपि इन्द्रियान्तरम्=निर्वृत्तीन्द्रियाद् अन्यदिन्द्रियं बोध्यम्। अयं भावः-कदम्बपुष्पाद्याकृतिमांसगोलकरूपायाः श्रोत्राद्यन्तर्निर्वृत्तेः

अब सूत्रकार इन्द्रियों के आभ्यन्तर संस्थान का कथन करते हैं—
"पुप्फं कलंबुयाए" इत्यादि-श्रोत्र, चक्षु, घ्राण एवं रसन इन इन्द्रियों का संस्थान क्रमसे कदम्बपुष्प के जैसा मसूर धान्यकेजैसा अतिमुक्तक कुसुम के चन्द्रक जैसा एवं क्षुरप्र के जैसा है। एव स्पर्शनेन्द्रिय का संस्थान नियमित नहीं होने से वह नाना संस्थानवाला है। अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय का संस्थान कदम्ब पुष्पके जैसा, चक्षु इन्द्रिय का संस्थान चंद्र मसूर की दाल जैसा, घ्राणेन्द्रियका संस्थान अतिमुक्तक कुसुमके चन्द्रक जैसा, रसनेन्द्रिय का संस्थान क्षुरप्र के जैसा है ॥ ३ ॥

"विसयग्गहणाइ" इत्यादि-द्रव्येन्द्रिय का द्वितीय भेद जो उप-करणेन्द्रिय है, वह विषयको ग्रहण करने की सामर्थ्यरूप है, इसलिये इसे इन्द्रियान्तर रूप-निर्वृत्ति इन्द्रिय से अन्य इन्द्रिय रूप कहा गयाहै। तात्पर्य इसका यह है कि कदम्ब पुष्प आदि की आकृतिरूप जो मांस गोलक है, इस मांसगोलक रूप जो श्रोत्र आदि की आभ्यन्तर निर्वृत्ति

હવે સૂત્રકાર ઇન્દ્રિયોના આભ્યન્તર સંસ્થાનનુ કથન કરે છે—
"પુષ્ફં કલંબુયાએ" ઇત્યાદિ—શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ઘ્રાણ અને રસના ઇન્દ્રિયોનુ સંસ્થાન અનુક્રમે કદમ્બ પુષ્પ જેવુ, મસૂરની દાળ જેવુ, અતિમુક્તક કુસુમના ચન્દ્રક જેવુ અને ક્ષુરપ્ર (અસ્રા) જેવુ છે સ્પર્શેન્દ્રિયનુ સંસ્થાન નિયમિત નથી પણ વિવિધ આકારવાળુ છે એટલે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયનો આકાર કદમ્બ પુષ્પ સમાન છે, ચક્ષુઇન્દ્રિયનો આકાર મસૂરની દાળ સમાન છે, ઘ્રાણેન્દ્રિયનો આકાર અતિમુક્તક કુસુમના ચન્દ્રક સમાન છે, અને રસનેન્દ્રિયનો આકાર અસ્રા સમાન છે ॥ ૩ ॥

"વિસયગ્ગહણાઇ" ઇત્યાદિ—દ્રવ્યેન્દ્રિયનો જે ઉપકરણેન્દ્રિય રૂપ બીજો ભેદ છે તે વિષયને ગ્રહણ કરવાના સામર્થ્ય રૂપ છે, તેથી તેને ઇન્દ્રિયાન્તર રૂપ-નિવૃત્તિ ઇન્દ્રિય કરતા અન્ય ઇન્દ્રિય રૂપ કહેવામા આવેલ છે આ કથનનુ તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—કદમ્બપુષ્પ આદિની આકૃતિ રૂપ જે માંસગોલક છે, આ માંસગોલક રૂપ જે શ્રોત્ર આદિની આભ્યન્તર નિવૃત્તિ છે, તે આભ્યન્તર

विषयग्रहणसामर्थ्यम् उपकरणद्रव्येन्द्रियमिति । यत्=यस्माद् हेतोः तदुपघाते=विषयग्रहणसामर्थ्यरूपोपकरणेन्द्रियस्य उपघाते=नाशे सति निर्वृत्तिसद्भावेऽपि=इन्द्रियस्य बाह्याभ्यन्तराकारसत्त्वेऽपि इन्द्रियं विषयान् न गृह्णाति, यथा धारायामुपहतायां । खड्ग किमपि वस्तु न छिनत्ति-इति ॥ ४ ॥ अथ भावेन्द्रियं प्ररूपयति-'लद्धुवओगो' इत्यादि । भावेन्द्रियं तु लब्ध्युपयोगभेदाद् द्विविधम् । तत्र यत्तदावरणानां क्षयोपशमस्तत् लब्धीन्द्रियम् । तल्लाभे=लब्धीन्द्रियस्य प्राप्तावेव शेषमपि=भवत्रिष्टमपि इन्द्रियम् भवति द्रव्येन्द्रियं भवतीति बोध्यम्

है, सो इस आभ्यन्तर निर्वृत्ति की जो विषय को ग्रहण करनेकी शक्ति है वह द्रव्येन्द्रिय है, क्योंकि विषय ग्रहण करने की सामर्थ्य रूप जो उपकरणेन्द्रिय है उसके नाश होने पर निर्वृत्तिके सद्भाव में भी बाह्य एव आभ्यन्तर के होने पर भी इन्द्रिय विषय को ग्रहण नहीं करती है, जैसे खड्गधारा के भोथरी हो जाने पर किसी भी वस्तुका छेदन नहीं कर पाता है ॥ ४ ॥

अब सूत्रकार भावेन्द्रिय की प्ररूपणा करते हैं—" लद्धुवओगो " इत्यादि । यह भावेन्द्रिय लब्धि एवं उपयोग के भेद से दो प्रकार की है तदावरणों का जो क्षयोपशम है वह लब्धीन्द्रिय है । अर्थात्-मतिज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण, और अचक्षुदर्शनावरण का क्षयोपशम होकर जो आत्मामें ज्ञान और दर्शन रूप शक्ति उत्पन्न होती है वह लब्धि इन्द्रिय है, यह लब्धि इन्द्रिय आत्माके सब प्रदेशों में पाई जाती है,

---

નિવૃત્તિની વિષયકને ગ્રહણ કરવાની જે શક્તિ છે, તે ઉપકરણ દ્રવ્યેન્દ્રિય છે કારણ કે વિષય ગ્રહણ કરવાના સામર્થ્ય રૂપ જે ઉપકરણેન્દ્રિય છે તેનો નાશ થાય તો નિવૃત્તિનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ એટલે કે બાહ્ય અને આભ્યન્તરનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ ઇન્દ્રિય વિષયને ગ્રહણ કરતી નથી જેમ તલવારની ધાર બૂઠી થઈ ગઈ હોય તો તલવાર કોઈ પણ વસ્તુનું છેદન કરી શકતી નથી, એ જ પ્રમાણે ઉપકરણેન્દ્રિયનો નાશ થવાથી ઇન્દ્રિય પણ વિષયને ગ્રહણ કરી શકતી નથી. ॥ ૪ ॥

હવે સૂત્રકાર ભાવેન્દ્રિયની પ્રરૂપણા કરે છે " લદ્ધુવઓગો " ઇત્યાદિ—આ ભાવેન્દ્રિય લબ્ધિ અને ઉપયોગના ભેદથી બે પ્રકારની કહી છે મતિજ્ઞાનાવરણ ચક્ષુદર્શનાવરણ અને અચક્ષુ દર્શનાવરણનો ક્ષયોપશમ થવાથી આત્મામાં જે જ્ઞાન અને દર્શન રૂપ શક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ લબ્ધિ ઇન્દ્રિય છે. તે લબ્ધિ ઇન્દ્રિયનો સદ્ભાવ આત્માના સઘળા પ્રદેશોમાં હોય છે કારણ

॥ ५ ॥ भावेन्द्रियस्य द्वितीयभेदमाह—' जो सविसय ' इत्यादिना। श्रोत्रादेरिन्द्रियस्य य. स्वविषयव्यापारः-स्वविषये=तत्तदिन्द्रियग्राह्ये शब्दादौ व्यापारः स उपयोगः-उपयोगेन्द्रियमित्यर्थः । स च एककाले=एकस्मिन् समये श्रोत्रादिषु एकेनैव केनचिदिन्द्रियेण भवति, तस्मात् हेतोः सर्वोऽपि जीव एकेन्द्रिय एव भवतीति ॥ ६ ॥ ननु सर्वोऽपि जीव एकेन्द्रियस्तर्हि एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादि जीवभेदो न सिध्यतीति चेदाह-' एगिंदियाइभेया ' इत्यादि। जीवानाम् एकेन्द्रियद्वीन्द्रि-

---

क्योंकि क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है। तथा-लब्धि निवृत्ति और उपकरण इन तीनों के होने पर जो विषयोंमें प्रवृत्ति होती है, उपयोगेन्द्रिय है, यहां कोई ऐसी आशंका कर सकता है कि उपयोग इन्द्रिय का कार्य है, पर यहां उपचारसे अर्थात् कार्यमें कारण का उपयोग को भी इन्द्रिय कहा है। अथवा इन्द्रियका मुख्य अर्थ उपयोग है, इसलिये भी उपयोग को इन्द्रिय कह दिया है ॥ ५ ॥

" जो सविसय " इत्यादि--श्रोत्रेन्द्रिय आदिका जो स्वविषय के प्रति व्यापार है, अर्थात् अपने २ ग्राह्य शब्दादिको ग्रहण करने रूप जो प्रवृत्ति है वह उपयोग है, उपयोगेन्द्रिय है। ऐसा यह उपयोग एक समयमें किसी एक इन्द्रिय से ही होता है ॥ ६ ॥

" एगिंदियाइभेया " इत्यादि।

इस कारण समस्त भी जीव एक इन्द्रियवाले ही होते हैं। यदि यहां पर ऐसी शंका की जावे कि यदि समस्त जीव एक इन्द्रियवाले

કે ક્ષયોપશમ સર્વાંગી હોય છે તથા લબ્ધિ, નિવૃત્તિ અને ઉપકરણ આ ત્રણેનો સદ્ભાવ હોય ત્યારે વિષયોમા જે પ્રવૃત્તિ થાય છે, તે ઉપયોગેન્દ્રિય રૂપ છે અહીં કોઈ એવી આશકા કરી શકે છે કે ઉપયોગ ઇન્દ્રિય નથી, પણ ઇન્દ્રિયનુ ફલ છે, છતાં તેને ઇન્દ્રિય રૂપ કેવી રીતે કહો છો ? તો તેની શંકાનુ સમાધાન આ પ્રમાણે કરી શકાય છે-જો કે ઉપયોગ ઇન્દ્રિયનું કાર્ય છે, પરન્તુ અહીં કાર્યમા કારણનુ આરોપણ કરીને ઉપયોગને પણ ઇન્દ્રિય કહેવામા આવેલ છે અથવા ઇન્દ્રિયનો મુખ્ય અર્થ (વિષય) ઉપયોગ છે, તેથી ઉપયોગને ઇન્દ્રિય કહેવામાં આવેલ છે ॥ ૫ ॥

" जो सविसय " ઇત્યાદિ—શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિની પોતપોતાના વિષયને એટલે કે શબ્દાદિકોને ગ્રહણ કરવા રૂપ જે પ્રવૃત્તિ છે, એ જ ઉપયોગ છે અને તે ઉપયોગ જ ઉપયોગેન્દ્રિય રૂપ છે એવો તે ઉપયોગ એક સમયમા ઇન્દ્રિય વડે જ થાય છે ॥ ૬ ॥

" एगिंदियाइभेया " ઇત્યાદિ—આ કારણે સમસ્ત જીવો એક ઇન્દ્રિયવાળા જ હોય છે.

यत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियभेदा शेषेन्द्रियाणि=निर्वृत्युपकरणलब्धिरूपाणि शिष्टेन्द्रियाणि प्रतीत्य=आश्रित्य प्रज्ञप्ता । अथवा-लब्धीन्द्रिय प्रतीत्य= आश्रित्य सर्वेऽपि जीवा पञ्चेन्द्रिया भवन्तीति ॥ ७ ॥ ननु कथ सर्वेऽपि जीवा पञ्चेन्द्रिया भवन्ति ? इत्याह-' जं किर ' इत्यादिना । यद् यस्माद् हेतो किल निश्चयेन बकुलादीना=बकुलवृक्षादीनां वनस्पतिविशेषाणां स्पर्शेन्द्रियोपलम्भोऽपि= स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तेन्द्रियलाभोऽपि दृश्यते तेन हेतुना ज्ञायते यत् तेषां बकुला दीनामपि तदावरणक्षयोपशमसंभवोऽस्ति । अन्यथा बकुलस्य कामिनीमुखार्पित मदिरागण्डूषेण चम्पकस्य अतिसुरभिगन्धोदकसेचनेन, तिलकस्य कामिनीकटा

हैं तो फिर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रूप जो जीवों के भेद हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते हैं । तो इसका उत्तर ऐसा है कि ऐसे जो ये भेद हुए हैं वे निवृत्ति उपकरण एवं लब्धि इन इन्द्रियों से भिन्न जो इन्द्रियाहै, उनकी प्रतीति करके आश्रित करके ही हुएहैं अथवा लब्धीन्द्रिय रूप भावेन्द्रिय को लेकर समस्त जीव पचेन्द्रिय होतेहैं ॥७॥

समस्त जीव पचेन्द्रिय कैसे होते हैं ? तो इसके लिये " जं किर ' इत्यादि द्वारा समझाया गया है कि बकुलवृक्ष आदि जो वनस्पति विशेष हैं उनके स्पर्शन इन्द्रिय से अतिरिक्त इन्द्रियों का लाभ भी देखा जाता है, कि बकुल आदिकों के भी तदावरण का क्षयोपशम संभव है नहीं तो बकुल को कामिनी के मुखसे अर्पित मदिरा के कुल्ले से चपक के अति सुरभि गन्धोदक के सिंचन से तिलक के कामिनीजनोंके

શંકા—જો સમસ્ત જીવો એક ઇન્દ્રિયવાળા હોય તો જીવોના એકે ન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય રૂપ ભેદો શા માટે પાડયા છે ?

ઉત્તર—આ જે ભેદો પાડવામાં આવ્યા છે તે નિવૃત્તિ ઉપકરણ અને લબ્ધિ આ ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન જે ઇન્દ્રિયો કહી છે તેમને આધારે જ પાડવામાં આવેલ છે અથવા લબ્ધીન્દ્રિય રૂપ ભાવેન્દ્રિયની અપેક્ષાએ સમસ્ત જીવ પંચેન્દ્રિય હોય છે ॥ ૭ ॥

સમસ્ત જીવો પંચેન્દ્રિય કેવી રીતે હોય છે ? આ વાત નીચેના સૂત્ર પાઠ દ્વારા સમજાવવામાં આવી છે " जं किर " ઇત્યાદિ—બકુલવૃક્ષ આદિ જે વનસ્પતિ વિશેષ છે તેમનામાં સ્પર્શેન્દ્રિય સિવાયની ઇન્દ્રિયોનો સદ્ભાવ જોવામાં આવે છે તે કારણે એવું માની શકાય છે કે બકુલ આદિકોમાં પણ તદાવરણીય કર્મોનો ક્ષયોપશમ સંભવિત છે જો આ વાત અસંભવિત હોત તો બકુલવૃક્ષને અતિ સુગ ધીદાર મન્વોદક છાંટવાથી, તિલકવૃક્ષને કોઈ

क्षविक्षेपेण, विरहकवृक्षस्य च पञ्चमस्वरश्रवणेन पुष्पपल्लवादि संभवो न स्यादिति ॥ ८ ॥ ननु बकुलादयो यदि पञ्चेन्द्रियास्तर्हि ते पञ्चेन्द्रियत्वेन कथं न व्यवह्रियन्ते ? इत्यत आह—

" पंचिंदियव्व बउलो, नरोव्व सव्वविसओवलंभाउ ।
तहवि न भण्णइ पंचिंदिओत्ति बज्झिंदिया भावा " ॥९॥
छाया—पञ्चेन्द्रिय एव बकुल, नर इव सर्वविषयोपलम्भात् ।
तथापि न भण्यते पञ्चेन्द्रिय इति बाह्येन्द्रियाभावात् ।।९॥

अयमर्थः—उपलक्षणत्वात् चम्पकादिश्च सर्वविषयोपलम्भात् नरइव पञ्चेन्द्रिय एव । तथापि स बाह्येन्द्रियाभावात् पञ्चेन्द्रिय इति न भण्यते इति ॥९॥

एवं भूतस्य इन्द्रियस्य अर्थाः=विषयाः शब्दादयः पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः,

---

कटाक्ष विक्षेप से एव विरहक वृक्षके पञ्चम स्वरके श्रवण से पुष्पपल्लव आदिका जो संभव होना है वह नहीं होना चाहिये ॥ ८ ॥

यदि यहां पर ऐसी शंका की जावे कि बकुल आदि पंचेन्द्रिय माने जाते हैं तो फिर इनमें पञ्चेन्द्रियत्व रूपका व्यवहार क्यों नहीं होता है ? तो इसके लिये ऐसा कहा गया है—

" पंचिंदियव्वबउलो " इत्यादि । बकुल चंपक आदि वृक्ष सर्व विषयके उपलंभक होने से मनुष्य की तरह पंचेन्द्रिय ही हैं, फिर भी बाह्येन्द्रियके अभावसे पचेन्द्रिय इस रूपसे नहीं कहे जाते हैं ॥ ९ ॥

इस प्रकार की इन्द्रिय के जो अर्थ हैं, विषय हैं वे इन्द्रियार्थ हैं, ऐसे ये इन्द्रियार्थ शब्दादिक रूप पांच होते हैं । जिससे सुना जाता है

કોઈ કામિનીના કટાક્ષ વિક્ષેપ સંભળાવવાથી અને વિરહકવૃક્ષને પંચમ સ્વરના સૂરનું શ્રવણ કરવવાથી પુષ્પપલ્લવ આદિ જે આવવા માંડે છે, તે આવવાનુ સંભવી શકત નહીં ॥ ૮ ॥

શંકા—જો બકુલ આદિને અહીં પંચેન્દ્રિય રૂપ બતાવવામા આવેલ છે, તો તેમનામા પંચેન્દ્રિયત્વ રૂપે વ્યવહાર કેમ થતો નથી. શા માટે તેમને એકેન્દ્રિય રૂપે માનવામાં આવે છે ?

આ શંકાના સમાધાન માટે એવું કહ્યુ છે કે " પંચિંદિયવ્વબઉસો " ઈત્યાદિ--બકુલ, ચંપક આદિ વૃક્ષો સર્વ વિષયના ઉપલંભક હોવાથી તેમને મનુષ્યની જેમ અહી પંચેન્દ્રિય રૂપ બતાવ્યા છે. છતાં પણ બાહ્યેન્દ્રિયના અભાવે કરીને તેમને એકેન્દ્રિય રૂપ જ ગણવામા આવે છે-પંચેન્દ્રિય રૂપ ગણાતાં નથી ॥ ૯ ॥

આ પ્રકારના ઇન્દ્રિયોના જે અર્થ (વિષય) છે, તેમને ઇન્દ્રિયાર્થ કહે

त्यानेवाह-तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थः-श्रूयतेऽनेनेति श्रोत्रम्, तच्च तदिन्द्रियं च श्रोत्रेन्द्रियं तस्य अर्थो विषयः शब्दः । यावत्-शब्दात्-चक्षुरिन्द्रियार्थः घ्राणेन्द्रियार्थः रसनेन्द्रियार्थश्च ग्राह्य । तत्र चक्षुरिन्द्रियार्थो रूपम्, घ्राणेन्द्रियार्थो गन्धः । रसनेन्द्रियार्थो रसः, स्पर्शनेन्द्रियार्थश्च स्पर्श इति ।

तथा—मुण्ड-मुण्डनम्-अपनयनम्-मुण्डः । स च द्विविधो-द्रव्यतो भावतश्च । तत्र-द्रव्यतः केशापनयनम् । भावतस्तु मनस इन्द्रियार्थनिष्ठ रागद्वेषयोः कषायाणां वाऽपनयनम् । द्रव्यभावरूपमुण्डयोगात् पुरुषोऽपि मुण्डः । स च पञ्चविधः प्रज्ञप्तः । पञ्चविधत्वमाह-तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड -श्रोत्रेन्द्रिये मुण्डः श्रोत्रेन्द्रियेण वा मुण्डः । श्रोत्रेन्द्रियविषयशब्दे रागापनयनात् पुरुषः श्रो

ऐसी जो इन्द्रिय है वह श्रोत्रेन्द्रिय है । इस इन्द्रिय का विषय शब्द है, यहां यावत् शब्दसे "चक्षुरिन्द्रियार्थः घ्राणेन्द्रियार्थः रसनेन्द्रियार्थः स्पर्शनेन्द्रियार्थ" इनका ग्रहण हुआ है । चक्षुइन्द्रिय का विषय रूप है घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध है, रसनेन्द्रिय का विषय रस है, और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श है । दूर करने का नाम मुण्ड है, यह मुण्ड दो प्रकार का होता है, एक द्रव्य से मुण्ड और दूसरा भाव से मुण्ड केशों का दूर करना, मस्तक से केशों का लुञ्चन आदि करना यह द्रव्य से मुण्ड है तथा मनसे इन्द्रिय के अर्थो में रागद्वेष करने का अथवा कषाय करने का त्याग करना यह भाव से मुण्ड है । इस द्रव्य और भावरूप मुण्ड के संयम से पुरुष भी मुण्ड होता है, यह मुण्ड पांच प्रकार कहा गया है । जैसे-श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड, जो श्रोत्रेन्द्रिय में मुण्ड अथवा श्रोत्र

છે એવાં તે ઇન્દ્રિયાર્થો શબ્દાદિ રૂપ પાંચ પ્રકારના હોય છે જેના દ્વારા સંભળાય છે તે ઇન્દ્રિયને શ્રોત્રેન્દ્રિય કહે છે તે ઇન્દ્રિયનો વિષય શબ્દ છે અહીં 'યાવત્' પદ વડે ચક્ષુરિન્દ્રિયાર્થ, ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થ, રસનેન્દ્રિયાર્થ અને સ્પર્શેન્દ્રિયાર્થ ગ્રહણ કરવા જોઇએ ચક્ષુઇન્દ્રિયનો વિષય રૂપ છે ઘ્રાણેન્દ્રિયનો વિષય ગંધ છે રસનાઇન્દ્રિયનો વિષય રસ છે અને સ્પર્શેન્દ્રિયનો વિષય સ્પર્શ છે દૂર કરવું તેનું નામ 'મુંડ' છે તે મુંડ (મુંડન) બે પ્રકારનું છે—(૧) દ્રવ્યની અપેક્ષાએ મુંડન અને (૨) ભાવની અપેક્ષાએ મુંડન મસ્તકના કેશનું લુંચન આદિ કરવું તેનું નામ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ મુંડન છે તથા મનથી ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં રાગદ્વેષ કરવાનો અથવા કષાય કરવાનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ ભાવની અપેક્ષાએ મુંડન છે આ દ્રવ્ય અને ભાવ રૂપ મુંડ

त्रेन्द्रियमुण्ड इत्युच्यते। एवं चक्षुरिन्द्रिय-मुण्डादिरपि बोध्य इति। प्रकारान्तरेण पुनरपि पञ्चविधान् मुण्डानाह-क्रोधमुण्ड -क्रोधस्य अपनयात् क्रोधे मुण्डः क्रोधेन वा मुण्ड इति १। एवं मानमुण्डो २ मायामुण्डो ३ लोभमुण्डः ४ शिरोमुण्डश्च ५ बोध्य इति ॥सू० ३॥

मुण्डनं च बादरजीवविशेषाणामेव भवतीति बादरजीव विशेषानाह-

मूलम्-अहेलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा-पुढविकाइया १ आउकाइया२ वाउकाइया३ वणस्सई काइया ४ ओराला तसा पाणा ५ ।१। उड्ढलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा-एवं तं चेव २। तिरियलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा-एगिंदिया जाव पंचिंदिया ३। पंचविहा बायरतेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा-इंगाले १ जाला २ मुम्मुरे ३ अच्ची ४

इन्द्रिय से मुण्ड होता है-अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय के विषयभूत शब्दमें राग द्वेष होने रूप भाव कोई २ करता है, वह पुरुष श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड कहा जाता है, इसी प्रकार से चक्षु इन्द्रिय मुण्ड आदि भी समझ लेना चाहिये। इस द्वितीय प्रकारान्तर से भी मुण्ड पांच प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-क्रोध मुण्ड, मान मुण्ड, माया मुण्ड, लोभ मुण्ड और शिरो मुण्ड है, जो क्रोध को हटा देताहै, क्रोध करने का त्याग कर देताहै, वह क्रोध मुण्डहै, इसी प्रकारसे मान मुण्डआदि भी समझ लेना चाहिये॥सू०३॥

નના સબંધથી પુરુષ પણ મુંડિત થાય છે તે મુંડ (મુંડિત) ના પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિય મુંડ, (૨) ચક્ષુરિન્દ્રિય મુંડ, (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિય મુંડ, (૪) રસનેન્દ્રિય મુંડ અને (૫) સ્પર્શેન્દ્રિય મુંડ

જે શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં મુંડ અથવા શ્રોત્રેન્દ્રિયની અપેક્ષાએ મુંડ અથવા શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષય રૂપ શબ્દમાં રાગદ્વેષથી રહિત હોય છે તેને શ્રોત્રેન્દ્રિય મુંડ કહે છે એ જ પ્રમાણે ચક્ષુરિન્દ્રિય મુંડ આદિ વિષે પણ સમજવુ બીજી રીતે પણ પાંચ પ્રકારના મુંડ કહ્યા છે—(૧) ક્રોધમુંડ, (૨) માનમુંડ, (૩) માયામુંડ, (૪) લોભમુંડ અને (૫) શિરોમુંડ જે માણસ ક્રોધને દૂર કરે છે-ક્રોધનો ત્યાગ કરે છે તેને ક્રોધમુંડ કહે છે. એ જ પ્રમાણે માનમુંડ આદિ વિષે પણ સમજવું. ॥ સૂ. ૩ ॥

स्तानेवाह-तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थः-शृणोत्यनेनेति श्रोत्रम्, तच्च तदिन्द्रियं च श्रोत्रेन्द्रियं तस्य अर्थो विषयः शब्दः। यावत्-शब्दात्-चक्षुरिन्द्रियार्थः घ्राणेन्द्रियार्थः रसनेन्द्रियार्थश्च ग्राह्य। तत्र चक्षुरिन्द्रियार्थो रूपम्, घ्राणेन्द्रियार्थो गन्धः। रसनेन्द्रियार्थो रसः, स्पर्शनेन्द्रियार्थश्च स्पर्श इति।

तथा—मुण्ड'-मुण्डनम्-अपनयनम्-मुण्डः। स च द्विविधो-द्रव्यतो भावश्च। तत्र-द्रव्यतः केशापनयनम्। भावतस्तु मनस इन्द्रियार्थनिष्ठ रागद्वेषयोः कषायाणां वाऽपनयनम्। द्रव्यभावरूपमुण्डयोगात् पुरुषोऽपि मुण्डः। स च पञ्चविधः प्रज्ञप्तः। पञ्चविधत्वमाह-तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड -श्रोत्रेन्द्रियं मुण्डः श्रोत्रेन्द्रियेण वा मुण्डः। श्रोत्रेन्द्रियविषयशब्दे रागाद्यपनयनात् पुरुषः श्रो

ऐसी जो इन्द्रिय है वह श्रोत्रेन्द्रिय है। इस इन्द्रिय का विषय शब्द है, यहां यावत् शब्दसे " चक्षुरिन्द्रियार्थः घ्राणेन्द्रियार्थः रसनेन्द्रियार्थः स्पर्शनेन्द्रियार्थः " इनका ग्रहण हुआ है। चक्षुइन्द्रिय का विषय रूप है घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध है, रसनेन्द्रिय का विषय रस है, और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श है। दूर करने का नाम मुण्ड है, यह मुण्ड दो प्रकार का होता है, एक द्रव्य से मुण्ड और दूसरा भाव से मुण्ड केशों का दूर करना, मस्तक से केशों का लुंचन आदि करना यह द्रव्य से मुण्ड है तथा मनसे इन्द्रिय के अर्थों में रागद्वेष करने का अथवा कषाय करने का त्याग करना यह भाव से मुण्ड है। इस द्रव्य और भावरूप मुण्ड के संबंध से पुरुष भी मुण्ड होता है, यह मुण्ड पांच प्रकार कहा गया है। जैसे-श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड, जो श्रोत्रेन्द्रिय में मुण्ड अथवा श्रोत्र

છે એવાં તે ઇન્દ્રિયાર્થો શબ્દાદિ રૂપ પાંચ પ્રકારના હોય છે જેના દ્વારા સંભળાય છે તે ઇન્દ્રિયને શ્રોત્રેન્દ્રિય કહે છે તે ઇન્દ્રિયનો વિષય શબ્દ છે અહીં 'યાવત્' પદ વડે ચક્ષુરિન્દ્રિયાર્થ, ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થ, રસનેન્દ્રિયાર્થ અને સ્પર્શેન્દ્રિયાર્થ ગ્રહણ કરવા જોઇએ ચક્ષુઇન્દ્રિયનો વિષય રૂપ છે, ઘ્રાણેન્દ્રિયનો વિષય ગંધ છે, રસનાઇન્દ્રિયનો વિષય રસ છે અને સ્પર્શેન્દ્રિયનો વિષય સ્પર્શ છે દૂર કરવું તેનું નામ "મુંડ" છે તે મુંડ (મુંડન) બે પ્રકારનું છે—(૧) દ્રવ્યની અપેક્ષાએ મુંડન અને (૨) ભાવની અપેક્ષાએ મુંડન મસ્તકના કેશનું લુંચન આદિ કરવું તેનું નામ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ મુંડન છે તથા મનથી ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં રાગદ્વેષ કરવાનો અથવા કષાય કરવાનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ ભાવની અપેક્ષાએ મુંડન છે આ દ્રવ્ય અને ભાવ રૂપ મુંડ

यथोलोकेऽत्रदेव ऊर्ध्वलोकेऽपि पञ्च बादरा बोध्याः। अधोलोकोर्ध्वलोकयोश्च तैजसा बादरा न सन्तीति पञ्च बादरा उक्ताः। ननु अधोलोके ऊर्ध्वकपाटद्वये चापि तैजसा बादराः सन्ति, तर्हि कथमुक्तम्-अधोलोकोर्ध्वलोकयोश्च तैजसा बादरा न सन्ति? इति चेदाह-यद्यपि सन्ति परन्तु तेऽल्पतया न विवक्षिताः। ये चोर्ध्वकपाटद्वये तेऽपि उत्पत्स्यमानत्वेन उत्पत्तिस्थान-स्थितत्वाद् न विवक्षिता इति। तिर्यग्लोकेऽपि एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्ताः पञ्च बादराः सन्ति। तत्र-एकेन्द्रियाः-एकं=स्पर्शनलक्षणम् इन्द्रियम्=एकेन्द्रियजातिनामकर्मोदयात्तदावर-

कहा है। एकेन्द्रियकी अपेक्षा से उदारता जाननी चाहिये, अधोलोक की तरह उर्ध्वलोक में भी इसी तरह से पांच बादर हैं। अधोलोक एवं उर्ध्वलोक में तैजस बादर नहीं हैं।

शंका--अधोलोक में एवं उर्ध्व कपाटद्वय में तैजस बादर हैं, तो फिर आप अधोलोक एवं उर्ध्वलोक में तैजस बादर नहीं है ऐसा कैसे कहते हैं?

उत्तर--यद्यपि ये वहां हैं परन्तु वे वहां बहुत थोडे हैं, इसलिये वहां वे विवक्षित नहीं हुए हैं। तथा जो ऊर्ध्वकपाटद्वय में तैजस बादर कहे गये हैं, वे भी उत्पत्स्यमान होने से उत्पत्तिस्थान के आश्रित होने रूपसे विवक्षित नहीं हुए हैं। तिर्यग्लोक में भी एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके पांच बादर हैं। जिनको एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदयसे और तदावरण के क्षयोपशम से एक स्पर्शन इन्द्रिय है वे

ત્રસ પ્રાણી. તેજસ્કાયિક અને વાયુકાયિક પણ ત્રસ હોય છે, તેથી સ્થૂલ ત્રસ પ્રાણીને 'ઉદાર' વિશેષણ લગાડવામા આવ્યું છે. આ ઉદારતા એકેન્દ્રિયોની અપેક્ષાએ સમજવી જોઇએ ઉર્ધ્વલોકમાં પણ એ જ પ્રકારના પાચ બાદરો છે. અધોલોક અને ઉર્ધ્વલોકમાં તૈજસ બાદર નથી.

શંકા—અધોલોકમાં અને ઉર્ધ્વકપાટ દ્વયમાં પણ તૈજસ બાદરનો સદ્ભાવ હોય છે, છતાં આપ શા કારણે એવું કહો છો કે ઉર્ધ્વલોક અને અધોલોકમા તૈજસ બાદરનો સદ્ભાવ નથી?

ઉત્તર—જો કે તેમનું ત્યા અસ્તિત્વ છે ખરૂ, પણ તેઓ ત્યા ઘણાં જ અલ્પ પ્રમાણમાં છે, તેથી અહીં તેમનો ઉલ્લેખ કરવામા આવ્યો નથી.

તથા જે ઉર્ધ્વકપાટદ્વયમાં તૈજસ બાદર કહ્યા છે, તેઓ પણ ઉત્પસ્યમાન હોવાથી ઉત્પત્તિ સ્થાનમાં આશ્રિત હોવા રૂપે વિવક્ષિત થયા નથી. તિર્યગ્લોકમાં પણ એકેન્દ્રિયથી લઇને પંચેન્દ્રિય પર્યન્તના પાંચ પ્રકારના બાદર

अलाए । पचविहा वायरवाउकाइया पण्णत्ता, त जहा-पाईण वाए १ पडीणवाए २ दाहिणवाए ३ उदीणवाए ४ विदिस वाए ५। पचविहा अचित्ता वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा-अक्कते १ धते २ पीलिए ३ सरीराणुगए ४ समुच्छिमे ५ ॥सू०४॥

छाया—अधोलोके खलु पञ्च बादरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पृथिवीकायिकाः १, अप्कायिकाः २, वायुकायिकाः ३, वनस्पतिकायिकाः ४ उदाराखसाः प्राणाः ५। १। ऊर्ध्वलोके खलु पञ्च बादरा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एवं तदेव। तिर्यग्लोके खलु पञ्च बादरा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एकेन्द्रिया यावत् पञ्चेन्द्रियाः। पञ्चविधा बादरतेजस्कायिका प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अङ्गारो १ ज्वाला २ मुर्मुरः ३ अर्चि ४ अलातम् ५। पञ्चविधा बादरवायुकायिका प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्राचीनवातः १, प्रतीचीन वात २, दक्षिणवातः ३, उदीचीनवातः ४ विदिग्वातः ५। पञ्चविधा अचित्ता वायुकायिकाः, प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आक्रान्त १ ध्मात २ पीडितः ३ शरीरानुगतः ४ संमूर्च्छिमः ५ ॥सू० ४॥

टीका—' अहेलोगे ' इत्यादि—

अधो लोके खलु=निश्चयेन पञ्च-पञ्च संख्यका बादराः सन्ति। ते च पृथिवी कायिकाः १, अप्कायिकाः २, वायुकायिकाः ३, वनस्पतिकायिकाः ४ तथा-उदारा =स्थूलाः त्रसाः प्राणा =प्राणिनः ५। तेजस्कायिका वायुकायिका अपि त्रसा भवन्तीति ' उदारा ' इति विशेषणमुक्तम्। उदारत्रसैकेन्द्रियापेक्षया बोध्यम्।

यह मुण्डित अवस्था जो विशेष बादरजीव होते हैं, उन्हीं को होती है। अब सूत्रकार बादरजीव विशेषों का कथन करते हैं—

" अहे लोगेण पच बायरा पण्णत्ता " इत्यादि।

टीकार्थ-अधोलोकमें पांच बादर हैं जैसे-पृथिवीकायिक १, अप्कायिक २ वायुकायिक ३ वनस्पतिकायिक ४ तथा उदार स्थूल त्रसप्राणी ५ तेजस्कायिक एव वायुकायिक भी त्रस होते हैं, इसलिये उदार ऐसा विशेषण

આ મુંડિત અવસ્થાનો સદ્ભાવ બાદર જીવ વિશેષોમાં હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર બાદર જીવ વિશેષનું કથન કરે છે

' अहे लोगेणं पच बायरा पण्णत्ता ' ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-અધોલોકમાં નીચે પ્રમાણે પાંચ બાદર જીવો હોય છે-(૧) પૃથ્વીકાયિક (૨) અપ્કાયિક, (૩) વાયુકાયિક, (૪) વનસ્પતિકાયિક અને (૫ ઉદાર સ્થૂલ

अधोलोकवदेव ऊर्ध्वलोकेऽपि पञ्च बादरा बोध्याः । अधोलोकोर्ध्वलोकयोश्च तैजसा बादरा न सन्तीति पञ्च बादरा उक्ताः । ननु अधोलोके ऊर्ध्वकपाटद्वये चापि तैजसा बादराः सन्ति, तर्हि कथमुक्तम्-अधोलोकोर्ध्वलोकयोश्च तैजसा बादरा न सन्ति ? इति चेदाह-यद्यपि सन्ति परन्तु तेऽल्पतया न विवक्षिताः । ये चोदूर्ध्वकपाटद्वये तेऽपि उत्पत्स्यमानत्वेन उत्पत्तिस्थान-स्थितत्वाद् न विवक्षिता इति । तिर्यग्लोकेऽपि एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्ताः पञ्च बादराः सन्ति । तत्र-एकेन्द्रियाः-एकं=स्पर्शनलक्षणम् इन्द्रियम्=एकेन्द्रियजातिनामकर्मोदयात्तदावर-

कहा है । एकेन्द्रियकी अपेक्षा से उदारता जाननी चाहिये, अधोलोक की तरह उर्ध्वलोक में भी इसी तरह से पांच बादर हैं । अधोलोक एवं उर्ध्वलोक में तैजस बादर नहीं हैं ।

शंका--अधोलोक में एवं उर्ध्व कपाटद्वय में तैजस बादर हैं, तो फिर आप अधोलोक एवं उर्ध्वलोक में तैजस बादर नहीं है ऐसा कैसे कहते हैं ?

उत्तर--यद्यपि ये वहां हैं परन्तु वे वहां बहुत थोडे हैं, इसलिये वहां वे विवक्षित नहीं हुए हैं । तथा जो ऊर्ध्वकपाटद्वय में तैजस बादर कहे गये हैं, वे भी उत्पत्स्यमान होने से उत्पत्तिस्थान के आश्रित होने रूपसे विवक्षित नहीं हुए हैं । तिर्यग्लोक में भी एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके पांच बादर हैं । जिनको एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदयसे और तदावरण के क्षयोपशम से एक स्पर्शन इन्द्रिय है वे

ત્રસ પ્રાણી. તેજસ્કાયિક અને વાયુકાયિક પણ ત્રસ હોય છે, તેથી સ્થૂલ ત્રસ પ્રાણીને 'ઉદાર' વિશેષણ લગાડવામાં આવ્યુ છે આ ઉદારતા એકેન્દ્રિયોની અપેક્ષાએ સમજવી જોઇએ. ઉર્ધ્વલોકમા પણ એ જ પ્રકારના પાંચ બાદરો છે. અધોલોક અને ઉર્ધ્વલોકમાં તૈજસ બાદર નથી.

શંકા—અધોલોકમાં અને ઉર્ધ્વકપાટ દ્વયમાં પણ તૈજસ બાદરનો સદ્ભાવ હોય છે, છતાં આપ શા કારણે એવું કહો છો કે ઉર્ધ્વલોક અને અધોલોકમાં તૈજસ બાદરનો સદ્ભાવ નથી ?

ઉત્તર—જો કે તેમનું ત્યા અસ્તિત્વ છે ખરૂ, પણ તેઓ ત્યા ઘણાં જ અલ્પ પ્રમાણમાં છે, તેથી અહીં તેમનો ઉલ્લેખ કરવામા આવ્યો નથી.

તથા જે ઉર્ધ્વકપાટદ્વયમા તૈજસ બાદર કહ્યા છે, તેઓ પણ ઉત્પસ્યમાન હોવાથી ઉત્પત્તિ સ્થાનમાં આશ્રિત હોવા રૂપે વિવક્ષિત થયા નથી. તિર્યગ્લોકમાં પણ એકેન્દ્રિયથી લઇને પંચેન્દ્રિય પર્યન્તના પાંચ પ્રકારના બાદર

पासपापशमाश्च पृथिव्यादय इत्यर्थः एवमेव द्वीन्द्रियप्रभृतीनामप्यर्थो बोध्यः। एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्तेषु पूर्वपूर्वापेक्षया उत्तरोत्तरम् इन्द्रियविशेषो जाति विशेषश्च वाच्य इति। सम्प्रति एकेन्द्रियानेव भिन्नरूपस्थानकत्वेनाह–'पंचविहा' इत्यादि। बादरतेजस्कायिका जीवाः पञ्चविधाः=पञ्चप्रकाराः प्रज्ञप्ताः=कथिताः। पञ्चविधत्वमेवाह–तद्यथा–अङ्गारः प्रसिद्धः १। ज्वाला=छिन्नमूलाऽग्निशिखा २। मुर्मुरः=भस्ममिश्राग्निकणरूपः ३। अर्चिः=अच्छिन्नमूलाऽग्निशिखा ४। अलातम्=उल्मुकम्–अर्द्धदग्धकाष्ठरूपम् ५। तथा–बादर–वायुकायिकाः पञ्चप्रकाराः सन्ति।

एकेन्द्रिय हैं, ऐसे ये एकेन्द्रिय पृथिवि आदि हैं। इसी तरह से दो इन्द्रिय आदिकोंका भी अर्थ समझ लेना चाहिये। एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तकमें पूर्व २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर में इन्द्रिय की विशेषता जाति नामकर्म की विशेषता कह लेनी चाहिये।

अब सूत्रकार एकेन्द्रियोंको ही तीन पांच स्थानकों से कहते हैं।

"पंचविहा" इत्यादि––बादर तेजस्कायिक जीव पांच प्रकारके कहे गये हैं, जैसे––अङ्गार १, ज्वाला २, मुर्मुर ३, अर्चि ४ और अलात ५। इनमें अङ्गार तो प्रसिद्ध है १ जो अग्निशिखा छिन्न मूलवाली होती है वह ज्वाला है जो भस्म सहित अग्निकण रूप होता है वह मुर्मुर है, जो अग्निशिखा अच्छिन्न मूलवाली होती है वह अर्चि है। एवं जो अर्धदग्ध काष्ठ रूप होता है वह उल्मुक अलात है। बादर वायुकायिक

જીવો છે એકેન્દ્રિય અને નામકર્મના ઉદયથી અને વડાવરણ (તેનું આવરણ કરનારા) ક્ષયોપશમથી જેમને એક સ્પર્શેન્દ્રિયનો જ સદ્ભાવ હોય છે, તેમને એકેન્દ્રિય જીવો કહે છે પૃથ્વીકાય આદિ જીવોને એકેન્દ્રિય કહે છે એ જ પ્રમાણે દ્વીન્દ્રિય આદિકોના વિષયમાં પણ સમજવું એકેન્દ્રિયથી લઈને પંચેન્દ્રિય પર્યન્તના જીવોમાં પૂર્વપૂર્વની અપેક્ષાએ ઉત્તરોત્તરમાં ઇન્દ્રિયની વિશેષતા અને જાતિનામકર્મની વિશેષતાનું કથન થવું જોઈએ.

હવે સૂત્રકાર જુદી જુદી ત્રણ રીતે એકેન્દ્રિયોના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે "પંચવિહા" ઇત્યાદિ—બાદર તેજસ્કાયિક જીવ પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) અંગાર (૨) જ્વાળા, (૩) મુર્મુર, (૪) અર્ચિ અને (૫) અલાત.

અંગાર એટલે દેવતાનો અંગારો. જે અગ્નિશિખા છિન્ન મૂળવાળી હોય છે તેને 'જ્વાળા' કહે છે, જેના ઉપર રાખ બાઝી ગઈ હોય એવા અગ્નિ કણને-અંગારાને 'મુર્મુર' કહે છે જે અગ્નિશિખા અછિન્ન મૂળવાળી હોય છે તેને 'અર્ચિ' કહે છે અર્ધ દગ્ધ કાષ્ઠ આદિ રૂપ જે અગ્નિ છે તેને 'અલાત' કહે છે

पञ्चसंख्यकत्वमेवाह–तद्यथा–प्राचीनवातः=पूर्वदिग्वातः १, प्रतीचीनवात=पश्चिमदिग्वातः, २ दक्षिणवातः=दक्षिणदिग्वातः ३, उदीचीनवातः=उत्तरदिग्वातः ४। एभ्यो भिन्नो वातो विदिग्वात इति ५।

तथा–अचित्ता वायुकायिकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–आक्रान्तः=चरणादिना आक्रान्ते भूतलादौ यो भवति स आक्रान्त इत्युच्यते १। ध्मातः–ध्माते शङ्खादौ वायुर्ध्मातः २। पीडितः=निष्पीडयमाने जलार्द्रवस्त्रे वायुः पीडितः३। शरीरानुगतः=उद्गारोच्छ्वासादिः ४। सम्मूर्च्छिमः=व्यजनादि जन्यः ५। एते आक्रान्तादयः पूर्वमचेतनाः पश्चात् सचेतना अपि भवन्तीति ॥सू० ४॥

पांच प्रकारके हैं, जैसे--प्राचीनवात, प्रतीचीनवात, दक्षिणवात, उदीचीनवात और विदिग्वात ५ इनमें पूर्व दिशाका जो वात है वह प्राचीन वात है, पश्चिम दिशाका जो वात है वह प्रतीचीन वात है, दक्षिण दिशाका जो वात है वह दक्षिणवात है, उत्तर दिशाका जो वात है वह उदीचीन वात है तथा इनसे भिन्न जो वात है वह विदिग्वात है। अचित्त जो वायुकायिक हैं वे पांच प्रकार के हैं, जैसे–आक्रान्त १, ध्मात २, पीडित ३, शरीरानुगत ४ और सम्मूर्च्छिम ५। चरणादि द्वारा आक्रान्त होने पर भूतल आदिमें जो वायु होता है वह ध्मात वायु है, जलार्द्र वस्त्र जब निष्पीडयमान होता है, तब जो वायु होता है वह पीडित वायु है, शरीर में जो उद्गार उच्छ्वास आदि रूप वायु होता है वह शरीरानुगत वायु है, एवं जो वायु व्यजन आदिसे जन्य होता

બાદર વાયુકાયિક પાચ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) પ્રાચીનવાત, (૨) પ્રતીચીનવાત, (૩) દક્ષિણવાત, (૪) ઉદીચીનવાત અને (૫) વિદિગ્વાત.

પૂર્વ દિશાના વાયુને પ્રાચીનવાત કહે છે, પશ્ચિમ દિશાના વાયુને પ્રતિચીનવાત કહે છે, દક્ષિણ દિશાના વાયુને દક્ષિણવાત કહે છે, ઉત્તર દિશાના વાયુને ઉદીચીનવાત કહે છે, અને એ સિવાયની દિશાઓના વાયુને વિદિગ્વાત કહે છે. અચિત્ત વાયુકાયિકના નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકાર છે—(૧) આક્રાન્ત, (૨) ધ્માત, (૩) પીડિત, (૪) શરીરાનુગત અને (૫) સમ્મૂર્ચ્છિમ ચરણાદિ દ્વારા આક્રાન્ત થતી વખતે ભૂતલ આદિમાંથી જે વાયુ નીકળે છે તેને આક્રાન્તવાયુ કહે છે શખ આદિને વગાડતી વખતે જે વાયુ છૂટે છે તેનુ નામ ધ્માતવાયુ છે ભીના વસ્ત્રને જ્યારે ફડફડાવવામાં આવે છે, ત્યારે જે વાયુ નીકળે છે તેને પીડિતવાયુ કહે છે શરીરમાથી ઉચ્છ્વાસ વખતે, વાછૂટ વખતે અને શબ્દના ઉચ્ચારણુ વખતે જે વાયુ નીકળે છે તેને શરીરાનુગત વાયુ કહે

पञ्चेन्द्रियाः पूर्वं सामान्येनोक्ताः, सम्प्रति तद्विशेषान् निर्ग्रन्थान्, यद्वा- पूर्वं सचेतनाचेतना वायवः प्रोक्ता, सम्प्रति याथातथ्येन सद्गुणवान् निर्ग्रन्थानाह

मूलम्—पंच निग्गंथा पण्णत्ता, तं जहा-पुलाए १ बउसे २ कुसीले ३ नियंठे ४ सिणाए ५। पुलाए पंचविहे पण्णत्ते तं जहा-णाणपुलाए १ दंसणपुलाए २ चरित्तपुलाए ३ लिंग पुलाए ४ अहासुहुमपुलाए ५ नाम पंचमे । बउसे पंचविहे पण्णत्ते तं जहा-आभोगबउसे १ अणाभोगबउसे २ संवुडब उसे ३ असंवुडबउसे ४ अहासुहुमबउसे ५ नाम पंचमे । कुसीले पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-णाणकुसीले १ दंसणकुसीले २ चरित्तकुसीले ३ लिंगकुसीले ४ अहासुहुमकुसीले ५ नाम पंचमे । नियंठे पंचविहे पण्णत्ते तं जहा-पढमसमयनियंठे अपढमसम यनियंठे २ चरिमसमयनियंठे ३ अचरिमसमयनियंठे ४ अहा सुहुमनियंठे ५। सिणाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-अच्छवी १, असबले २ अकम्मंसे ३, संसुद्धणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली ४, अपरिस्सावी सू० ५॥

छाया—पञ्च निर्ग्रन्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पुलाकः १ बकुशः २ कुशीलः ३ निर्ग्रन्थः ४ स्नातः ५। पुलाकः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-ज्ञानपुलाकः १ दर्शन पुलाकः २ चारित्रपुलाकः ३ लिङ्गपुलाकः ४ यथा सूक्ष्मपुलाको ५ नाम पञ्चमः। बकुशः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-आभोगबकुशः १ अनाभोगबकुशः २ संवृत बकुशः ३ असंवृत बकुशः ४ यथा सूक्ष्मबकुशो ५ नाम पञ्चमः। कुशीलः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा-ज्ञान कुशीलः १, दर्शनकुशीलः २, चारित्रकुशीलः ३, लिङ्ग

है यह सम्मूर्च्छिम वायु है। ये आक्रान्त आदि पहिले अचेतन होते हैं बादमें सचेतन भी हो जाते हैं॥ सू० ४॥

છે પંખા આદિથી જનિત વાયુને સમ્મૂર્ચ્છિમવાત કહે છે આ આક્રાન્ત આદિ વાત પહેલાં અચેતન હોય છે, પણ ત્યારબાદ સચેતન પણ થઈ જાય છે ॥ સૂ. ૪॥

कुशीलः ४, यथा सूक्ष्मकुशीलो ५ नाम पञ्चमः । निर्ग्रन्थः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रथमसमयनिर्ग्रन्थः, १ अप्रथमसमयनिर्ग्रन्थः, २ चरमसमयनिर्ग्रन्थः, ३ अचरमसमयनिर्ग्रन्थः, ४ यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थः, ५। स्नातः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः–तद्यथा–अच्छविः १, अशवल, २ अकर्मांश, ३ संशुद्धज्ञानदर्शनधरः ४ अर्हन् जिनः केवली, ४ अपरिस्रावी ५ ॥सू० ५॥

टीका—' पंच णिग्गंथा ' इत्यादि—

निर्ग्रन्थाः–श्रमणाः, ते पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । पञ्चविधत्वमेवाह–तद्यथा–पुलाकः–तन्दुलकणरहित पलञ्जिरूप निस्सारं धान्यं पुलाक इत्युच्यते, तत्सदृशचारित्रयुक्तः साधुरपि पुलाक इत्युच्यते ।

अय भावः–तपः–श्रुतसमुत्पन्नायाः संघादि प्रयोजने सति ससैन्यस्य

पहिले पञ्चेन्द्रिय सामान्य रूपसे कहे गये हैं। अब पञ्चेन्द्रियों में विशेषरूप जो निर्ग्रन्थ हैं उन्हें अथवा सचेतन अचेतन जो वायु कही गई है सो उसकी यथार्थ रूपसे रक्षा करनेवाले जो निर्ग्रन्थ हैं उन्हें अब सूत्रकार प्रकट करते हैं–" पंच णिग्गंथा पण्णत्ता " इत्यादि ।

टीकार्थ–निर्ग्रन्थ पांच प्रकारके कहे गयेहैं, वे ये हैं –पुलाक१ बकुश२ कुशील ३ निर्ग्रन्थ ४ और स्नात ५ । तन्दुलकणों से रहित पलञ्जिरूप जो पोचा निस्सार धान्य होता है उसे पुलाक कहा जाता है, इसके जैसे चारित्र से युक्त जो साधु होता है वह भी पुलाक कहलाता है । तात्पर्य यह है कि तप और श्रुत को आराधना से उत्पन्न हुई–तथा संघादिके प्रयोजन होने पर ससैन्य चक्रवर्ती आदिके विनाश करने में समर्थ

પહેલા પચેન્દ્રિયનુ સામાન્ય રૂપે કથન કરવામા આવ્યુ હવે પચેન્દ્રિય વિશેષરૂપ જે નિર્ગ્રથો છે તેમનુ સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે. તે નિર્ગ્રથો જ સચેતન અચેતન જે વાયુ કહ્યા છે, તેનુ યથાર્થ રૂપે રક્ષણ કરે છે આ પ્રકારના સબધને અનુલક્ષીને વાયુકાયિકોના પ્રકારોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર નિર્ગ્રથોનુ નિરૂપણ કરે છે " પચ નિગ્ગથા પણ્ણત્તા " ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ–નિર્ગ્રથોના નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પુલાક, (૨) બકુશ, (૩) કુશીલ, (૪) નિર્ગ્રથ અને (૫) સ્નાત

ચોખાના કણોથી રહિત જે પરાળ હોય છે તેને પુલાક કહે છે તેના જેવા ચારિત્રથી યુક્ત જે સાધુ હોય છે તેને પણ પુલાક કહેવાય છે એટલે કે તપ અને શ્રુતની આરાધનાથી ઉત્પન્ન થયેલી અને સઘાદિના રક્ષણનું પ્રયોજન ઉદ્ભવે ત્યારે સૈન્યયુક્ત ચક્રવર્તી આદિનો વિનાશ કરવાને સમર્થ

पक्कवरपौन्निरपि विनाशने समर्थायाः लब्धेरुपजीवनेन ज्ञानाद्यतिचारासेवनेन वा सकलसंयमसारगलनात् पलञ्जिवन्निस्सारो यः स पुलाक उच्यते इति।

उक्तंचात्र—

" जिन प्रणीतादागमात् सदैवाप्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिमुपजीवन्तो निर्ग्रन्था पुलाकाः भवन्ति " इति।

इत्थं चाय लब्धिपुलाकाऽऽसेवनापुलाकभेदेन द्विविधो ज्ञेयः १। तथा-बकुशः–बकुशसंयमयोगाद् बकुशः–शरीरोपकरणविभूषादिना शबलचारित्रः। अथ मोहनीयक्षय प्रत्युद्युक्त शरीरबकुशोपकरणबकुशभेदेन द्विविध। तत्र-

ऐसी लब्धिकी प्राप्तिसे अथवा ज्ञानादिकमें अतिचारके आसेवन से सकल संयम रूप सारके गल जानेके कारण जो पलञ्जि (पलाल) की तरह सारसे रहित होता है, ऐसा वह साधु पुलाक कहलाता है। कहा भी है—" जिनप्रणीतादागमात् सदैवाप्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिमुपजीवन्तो निर्ग्रन्थाः पुलाका भवन्ति" जो जिन प्रणीत आगम के अनुसार सदा अपनी क्रियाएँ करता है, एव उसीका जो श्रद्धालु होता है और जो लब्धिवाला होता है वह पुलाकमुनि है। यह पुलाक लब्धिपुलाक और आसेवना पुलाक के भेद से दो प्रकार का है, जो शरीर और उपकरणको विभूषा आदि से शबल चारित्रवाला होता है और इसीसे जिसका संयम बकुश होता है अतिचार सहित होता है, ऐसा साधु बकुश कहा गया है, यह बकुश शरीर बकुश और उपकरण बकुश के भेदसे दो प्रकारका है। इनमें जो कर चरण वा

એવી લબ્ધિની પ્રાપ્તિ વડે, અથવા જ્ઞાનાદિકમાં અતિચારનુ અસેવન કરવાથી સકલ સંયમ રૂપ સાર ઝરી જવાને કારણે પરાળની જેમ સારરહિત હોય છે, એવા સાધુને પુલાક કહે છે કહ્યું પણ છે કે ' जिनप्रणीतादागमात् सदैवाप्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिमुपजीवन्तो निर्ग्रन्थाः पुलाका भवन्ति " જે સાધુ સદા જિનપ્રણીત આગમ અનુસાર પોતાની ક્રિયાઓ કરે છે, અને તેના પ્રત્યે જે શ્રદ્ધાવાળા હોય છે, અને જે લબ્ધિવાળા હોય છે, તે સાધુને પુલાકમુનિ કહે છે તે પુલાકના લબ્ધિપુલાક અને આસેવના પુલાકના ભેદથી બે પ્રકારના હોય છે

જે સાધુ શરીર અને ઉપકરણને વિભૂષિત કરવાને કારણે શબલ (દૂષિત) ચારિત્રવાળા હોય છે અને તે કારણે જેનો સંયમ બકુશ હોય છે-અતિચાર સહિત હોય છે એવા સાધુને બકુશ કહે છે બકુશના બે પ્રકાર પડે છે— (૧) શરીર બકુશ અને (૨) ઉપકરણ બકુશ જે સાધુ હાથ, પગ આદિનુ

वकुशः–शिथिलाचारितया करचरणप्रक्षालनं नयनादिमलाद्यपनयनं च यः शरीरसौन्दर्यार्थं करोति सः। उपकरणवकुशश्च य. अकाल एव चोलपट्टादिकं प्रक्षाल्य पात्रादिकं च तैलेन चमत्कृत्य विभूषार्थं धारयति सः। उभयेऽप्येते प्रभूतवस्त्रपात्रादिरूपाम् ऋद्धिं 'एते गुणवन्तो विशिष्टाः साधवः' इत्यादि प्रवादरूपां ख्यातिं च कामयन्ते, सातगौरवयुक्ततयाऽहोरात्रानुष्ठेयक्रियासु नोद्युञ्जते, घृष्टजङ्घतैलाभ्यञ्जितशरीरत्वादिना एषां शिष्यपरिवारोऽसंयमयुक्तो भवति, तथा–सर्वदेशच्छेदार्हातिचारजनितशबलत्वेनैते बहुच्छेदशबलयुक्ताश्चापि भवन्तीति

प्रक्षालन एवं नयन आदि के मलादिक का अपनयन शारिरिक सौन्दर्य के निमित्त करता है वह शरीर बकुश है। तथा जो अकाल में ही चोलपट्टक आदि का प्रक्षालन करके एवं पात्रादिकों को तैलसे चिकना करके सौन्दर्य के निमित्त धारण करता है वह उपकरण बकुश है। ये दोनों भी वस्त्र पात्रादि रूप ऋद्धि को तथा ये "गुणशाली विशिष्ट साधुजन हैं" इत्यादि प्रवादरूप ख्याति को कामनावाले होते हैं, सात गौरव युक्त होने के कारण रातदिन की अनुष्ठेय क्रियाओंमें ये उपयोग पूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले नहीं होते हैं। जङ्घादिकों में तैल की मालिश करने से एव चिकनाचुपड़ा शरीर आदि रखनेसे इनका शिष्य परिवार असंयम युक्त होता है तथा सर्वदेश संयम को छेदने के योग्य जो अतिचार होते हैं अर्थात् समस्त रूपसे संयम को या देशरूपसे संयम को छेदने योग्य जो अतिचार हैं, उन अतिचारों को ये सेवन करते हैं,

વારંવાર પ્રક્ષાલન કરે છે, અને આંખ, કાન આદિનો મેલ વારંવાર કાઢયા કરે છે–આ બધું શરીર સૌંદર્ય નિમિત્તે કરનાર સાધુને શરીર બકુશ કહે છે. જે સાધુ અકાળે ચોલપટ્ટક આદિનું પ્રક્ષાલન કરીને અને પાત્રાદિકોને તેલ અથવા વાર્નિશ આદિ વડે મુલાયમ અને ચળકતા કરીને સૌંદર્યને નિમિત્તે ધારણ કરે છે, તે સાધુને ઉપકરણ બકુશ કહે છે. આ બન્ને પ્રકારના સાધુઓ વસ્ત્રપાત્રાદિ રૂપ ઋદ્ધિની અને "આ ગુણસંપન્ન વિશિષ્ટ સાધુજન છે" આ પ્રકારની ખ્યાતિની કામનાવાળો હોય છે

સાત ગૌરવયુક્ત હોવાને કારણે રાતદિનની અનુષ્ઠેય ક્રિયાઓમા તેઓ ઉપયોગપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરનારા હોતા નથી જાંઘ આદિપર તેલનું માલિશ કરવાથી અને સ્નિગ્ધ શરીરાદિ રાખવાને કારણે તેમનો શિષ્ય પરિવાર પણ અસંયમયુક્ત હોય છે તથા સમસ્ત રૂપે સયમનું છેદન કરનારા અથવા દેશ રૂપે સયમનું છેદન કરનારા જે અતિચારો છે તેમનું તેઓ સેવન કરતા હોય છે તેથી તેમનો સયમ અતિચારયુક્ત હોય છે

२। तथा-कुशीलः-उत्तरगुणप्रतिसेवनेन सञ्ज्वलनकषायोदयेन वा दूषितत्वात् कुत्सितं शीलम्=अष्टादशशीलाङ्ग सहस्रभेदं यस्य स तथा। अयं प्रतिसेवनाकुशील कषायकुशीलभेदाद् द्विविधः। तत्र ये नैर्ग्रन्थ्यमापन्ना अपि अनियतेन्द्रियत्वात् पिण्डविशुद्धिसमितिभावना तपः प्रतिमाभिग्रहादिषु उत्तरगुणेषु कथंचित् किंचि देव विराधना कुर्वन्तो जिनाज्ञामुल्लङ्घयन्ति ते प्रतिसेवनाकुशीलाः। ये तु संयता सन्तोऽपि कथंचिदुदीरितसञ्ज्वलनकषाया भवन्ति ते कषायकुशीला इति ३। तथा-निर्ग्रन्थः-निर्गतो ग्रन्थात्=मोहनीयाभिधात् यः सः। अयं च क्षीण कषायोपशान्तमोहभेदेन द्विविधः इति ४।

अतः इनका संयम अतिचार युक्त होता है। उत्तर गुणोंके प्रतिसेवन से अथवा सज्वलनकषाय के उदय से दूषित होने से १८००० शील के भेद जिसके कुत्सित हैं वह कुशील है, वह कुशील प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशीलके भेदसे दो प्रकारका है। जो निर्ग्रन्थभावको प्राप्त हुए भी अनियत इन्द्रियवाले होनेसे पिण्ड वि शुद्धि समिति भावना तप एवं अभिग्रह आदिरूप उत्तर गुणोंमें किसी तरहसे कुछ थोडी बहुत विराधना करते हुए जिनाज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं वे प्रतिसेवनाकुशील हैं, तथा जो संयत होते हुए भी कथञ्चित् उदय प्राप्त संज्वलन कषायवाले होते हैं वे कषायकुशील हैं। तथा जो मोहनीय रूप ग्रन्थसे निर्गत होता है, वह निर्ग्रन्थ है वह निर्ग्रन्थ क्षीण कषाय और उपशान्त मोहके भेदसे दो प्रकारका होता है।

ઉત્તરગુણોના પ્રતિસેવનથી અથવા સંજ્વલન કષાયના ઉદયથી દૂષિત થવાને કારણે જેના ૧૮૦૦૦ શીલના ભેદ કુત્સિત થયેલા છે એવા સાધુને કુશીલ કહે છે તેના બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) પ્રતિસેવનાકુશીલ અને (૨) કષાય કુશીલ

જે સાધુ અનિયત ઇન્દ્રિયવાળા (ઇન્દ્રિયો પર કાબૂ રાખવાને અસમર્થ) હોવાને કારણે પિંડવિશુદ્ધિ સમિતિ ભાવના તપ પ્રતિમા અને અભિગ્રહ આદિ રૂપ ઉત્તરગુણોમાં કોઈપણ પ્રકારે વધુ ઓછી વિરાધના કરતો હોવાથી જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરે છે, તે સાધુને પ્રતિસેવનાકુશીલ કહે છે સંયત હોવા છતાં પણ જેમનામાં સંજ્વલન કષાયનો વધુ ઓછો ઉદય હોય છે, એવા સાધુઓને કષાય કુશીલ કહે છે

જે સાધુ મોહનીય રૂપ ગ્રન્થ (બંધન) થી મુક્ત હોય છે તેને નિર્ગ્રંથ કહે છે તે નિર્ગ્રંથના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) ક્ષીણકષાય અને (૨) ઉપશાન્તમોહ.

स्नातकः -- शुक्लध्यानरूपजलक्षालितसकलघातिकर्ममलसमूहतया स्नात इव स्नातः, स एव स्नातकः। अयमपि सयोगकेवल्ययोगकेवलिभेदेन द्विविध इति ५। इत्थं निर्ग्रन्थभेदानुक्त्वा सम्प्रति तेषामेव एकैकस्य पञ्च पञ्चभेदानाह—

जो शुक्लध्यानरूप जलसे क्षालित हुए सकल घातिया कर्मरूप मलवाला होता है. अतएव जो स्नातकी तरह स्नात होता है, ऐसा वह साधु स्नातक कहा गया है। जिसमें सर्वज्ञता प्रकट हो चुकी है, वह स्नातक है। यह स्नातक सयोग केवली और अयोग केवलीके भेदसे दो प्रकारका होता है। तात्पर्य इस समस्त कथनका ऐसा है कि यहां निर्ग्रन्थके तरतम रूपसे होनेवाले भावोंकी अपेक्षा ये पांच भेद किये गयेहैं। मूलगुण तथा उत्तर गुणमें परिपूर्णता प्राप्त न करते भी वीतराग प्रणीत आगमसे कभी अस्थिर न होनेवाला पुलाक निर्ग्रन्थ है। पुलाक नाम पलालका है, वह जैसे सारभाग रहित होता है, वैसेही ये निर्ग्रन्थ होते हैं ये पुलाक उत्तर गुणोंको उत्तमतासे नहीं पालते हैं साथमें मूलगुणोंमे भी पूर्णताको प्राप्त नहीं होते हैं। जो व्रतोंको पूरी तरहसे पालते हैं किन्तु शरीर और उपकरणोको संस्कारित करते रहते हैं ऋद्धि और यशकी अभिलाषा रखतेहैं, शिष्यादि परिवारसे घिरे रहते हैं। एवं मोहजन्य दोषसे युक्तहैं वे बकुशहैं। कुशील निर्ग्रन्थ दो प्रकारके

શુકલધ્યાન રૂપ જલ વડે જેના ઘાતિયા કર્મરૂપ મળ (મેલ) ધોવાઈ જવાને કારણે જે સાધુ સ્નાત મનુષ્યના જેવો બની ગયો હોય છે તેને સ્નાતક કહે છે અથવા જેનામા સર્વજ્ઞતા પ્રકટ થઈ ચુકી છે તે સ્નાતક છે તે સ્નાતકના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે-(૧) સયોગ કેવલી, (૨) અયોગ કેવલી

આ સમસ્ત કથનને ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—અહી નિર્ગ્રંથના તરતમ રૂપે પ્રકટ થનારા ભાવોની અપેક્ષાએ પાચ પ્રકાર કહ્યા છે મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોમા પરિપૂર્ણતા પ્રાપ્ત ન કરવા છતા પણ વીતરાગ પ્રણીત આગમમાં સદા સ્થિર રહેનાર સાધુને અહી પુલાક નિર્ગ્રંથ કહ્યો છે પુલાક એટલે પરાળ પરાળ જેમ સારભાગ રહિત હોય છે, એજ પ્રમાણે આ પુલાક નિર્ગ્રંથ પણ સારરહિત હોય છે, કારણ કે તેઓ ઉત્તરગુણોનુ સપૂર્ણ રીતે પાલન કરતા નથી એટલુ જ નહિ પણ મૂળગુણોમા પણ પૂર્ણતા પ્રાપ્ત કરતા નથી જેઓ વ્રતોનુ સપૂર્ણત પાલન કરે છે, પરન્તુ શરીર અને ઉપકરણોને સસ્કારિત કરતા રહે છે, ઋદ્ધિ અને યશની અભિલાષા સેવે છે, પરિવારથી વીટળાયેલા રહે છે, અને મોહજન્ય દોષથી યુક્ત હોય છે, એવા સાધુઓને

२। तथा-कुशीलः-उत्तरगुणप्रतिसेवनेन संज्वलनकषायोदयेन वा दूषितत्वात् कुत्सितं शीलम्=अष्टादशशीलाङ्ग सहस्रभेदं यस्य स तथा। अयं प्रतिसेवनाकुशील कषायकुशीलभेदाद् द्विविध। तत्र ये नैर्ग्रन्थ्यमापन्ना अपि अनियतेन्द्रियत्वात् पिण्डविशुद्धिसमितिभावना तपः प्रतिमाभिग्रहादिषु उत्तरगुणेषु कथंचित् किंचि देव विराधना कुर्वन्तो जिनाज्ञामुल्लङ्घयन्ति ते प्रतिसेवनाकुशीलाः। ये तु संयता सन्तोऽपि कथंचिदुदीरितसंज्वलनकषाया भवन्ति ते कषायकुशीला इति ३। तथा-निर्ग्रन्थः-निर्गतो ग्रन्थात्=मोहनीयाभिधाद् यः स। अयं च क्षीण कषायोपशान्तमोहभेदेन द्विविध इति ४।

अतः इनका संयम अतिचार युक्त होता है। उत्तर गुणोंके प्रतिसेवन से अथवा संज्वलनकषाय के उदय से दूषित होने से १८००० शील के भेद जिसके कुत्सित हो गए हैं, वह कुशील है, यह कुशील प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशीलके भेदसे दो प्रकारका है। जो निर्ग्रन्थभावको प्राप्त हुए भी अनियत इन्द्रियवाले होनेसे पिण्ड वि शुद्धि समिति भावना तप एवं अभिग्रह आदिरूप उत्तर गुणोंमें किसी तरहसे कुछ थोडी बहुत विराधना करते हुए जिनाज्ञाका उल्ल ङ्घन करते हैं वे प्रतिसेवनाकुशील हैं, तथा जो संयत होते हुए भी कथञ्चित् उदय प्राप्त संज्वलन कषायवाले होते हैं वे कषायकुशील हैं। तथा जो मोहनीय रूप ग्रन्थसे निर्गत होता है, वह निर्ग्रन्थ है यह नि र्ग्रन्थ क्षीण कषाय और उपशान्त मोहके भेदसे दो प्रकारका होता है।

ઉત્તરગુણોના પ્રતિસેવનથી અથવા સંજ્વલન કષાયના ઉદયથી દૂષિત થવાને કારણે જેના ૧૮૦૦૦ શીલના ભેદ કુત્સિત થયેલા છે એવા સાધુને કુશીલ કહે છે તેના બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) પ્રતિસેવનાકુશીલ અને (૨) કષાય કુશીલ

જે સાધુ અનિયત ઇન્દ્રિયવાળો (ઇન્દ્રિયોપર કાબૂ રાખવાને અસમર્થ) હોવાને કારણે પિંડવિશુદ્ધિ, સમિતિ ભાવના, તપ, પ્રતિમા અને અભિગ્રહ આદિ રૂપ ઉત્તરગુણોમાં કોઇપણ પ્રકારે વધુ ઓછી વિરાધના કરતો હોવાથી જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરે છે તે સાધુને પ્રતિસેવનાકુશીલ કહે છે સંયત હોવા છતાં પણ જેમનામાં સંજ્વલન કાષયનો વધુ ઓછો ઉદય હોય છે, એવા સાધુઓને કષાય કુશીલ કહે છે

જે સાધુ મોહનીય રૂપ ગ્રંથ (બંધન) થી મુક્ત હોય છે તેને નિર્ગ્રંથ કહે છે તે નિર્ગ્રંથના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) ક્ષીણકષાય અને (૨) ઉપશાન્તમોહ

तथा–कुदृष्टि संस्तवादिना यो दर्शनं निस्सारं करोति स दर्शनपुलाकः २। तथा–मूलोत्तरगुणान् यः प्रतिसेवते स चरणपुलाकः ३। यः साधूनां यल्लिङ्गं, ततोऽधिकलिङ्गं गृह्णाति स लिङ्गपुलाकः ४। यस्तु किंचित् प्रमाद्यति मनसा वा अकल्प्यं गृह्णाति स यथासूक्ष्मपुलाको नाम पुलाकस्य पञ्चमो भेदः ५। लब्धिपुलाकश्च एकविध एवेति स नात्र विवक्षित इति। तथा–शरीरबकुशोपकरणबकुशभेदद्वयविशिष्टो बकुशोऽपि आभोगबकुशादिभेदेन पञ्चविधः। तत्र–यः शरीरविभूषामुपकरणविभूषां च चिन्तनपुरस्सरं करोति स आभोगबकुशः १। यः सहसा करोति सः अनाभोगबकुशः २। यः प्रच्छन्नतया करोति स संवृतबकुशः ३। यः प्रकटतया करोति सः असंवृत बकुशः ४। सद्

आदिसे जो दर्शनको निस्सार करता है, वह दर्शन पुलाक है २ मूलगुणों एवं उत्तर गुणोंकी जो प्रतिसेवना करता है, वह चरणपुलाक है ३ जो साधुओंका लिङ्ग है उससे अधिक लिङ्गको जो ग्रहण करता है, वह लिङ्ग पुलाक है, ४ जो कुछ २ प्रमाद पतित हो जाता है, अथवा मनसे अकल्प्यको ग्रहण करताहै, वह यथासूक्ष्म पुलाक है। यह पुलाकका पांचवां भेद है। लब्धिपुलाक एक प्रकारकाही होता है, अतः उसकी यहां विवक्षा नहीं हुई है। शरीर बकुश एवं उपकरण बकुशके भेदसे दो भेदवाला हुआ बकुश भी आभोगबकुश आदिके भेदसे पांच प्रकारका है, इनमें जो विचारपूर्वक शरीरकी विभूषा एवं उपकरणकी विभूषाको करता है, वह आभोगबकुश है १ और सहसा बिना विचारेही शरीरकी विभूषा एवं उपकरणकी विभूषाको करता है, वह अनाभोग बकुश है २। तथा जो गुप्त रूपसे शरीरादिकोंकी विभूषा

દર્શનને નિસ્સાર કરે છે, તેને દર્શનપુલાક કહે છે (૩) મૂલગુણો અને ઉત્તર ગુણોની જે પ્રતિસેવના કરે છે તેને ચરણપુલાક કહે છે (૨) રજોહરણ, મુહપત્તિ આદિ રૂપ સાધુઓના જે લિંગ છે, તેના કરતાં અધિક લિંગને ધારણ કરનાર સાધુને લિંગપુલાક કહે છે. (૫) જે સાધુ થોડા થોડા પ્રમાદી બની ગયો હોય છે તેને અથવા જે મનથી અકલ્પ્યને ગ્રહણ કરે છે તેને યથાસક્ષ્મ પુલાક કહે છે લબ્ધિપુલાક એક જ પ્રકારનો હોય છે તેથી અહી તેનુ વિવેચન કર્યું નથી

હવે સૂત્રકાર બકુશના ભેદોનુ નિરૂપણ કરે છે. બકુશના મુખ્ય બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) શરીર બકુશ અને (૨) ઉપકરણ બકુશ બકુશના નીચે પ્રમાણે પચ ભેદ પણ પડે છે—(૧) આભોગ બકુશ–જે સાધુ વિચારપૂર્વક શરીર અને ઉપકરણોની વિભૂષા કરે છે તેને આભોગ બકુશ કહે છે (૨) વિના વિચારે જ સહસા શરીર અને ઉપકરણોની વિભૂષા કરનાર સાધુને અનાભોગ બકુશ કહે

' पुलाए पंचविहे ' इत्यादिना ।

पुलाकः=आसेवनापुलाकः लब्धिपुलाकश्चेति द्विविधः प्रोक्तः तत्र-आसेवनापुलाक - ज्ञानपुलाकादिभेदेन पञ्चविधः । तत्र - यस्तु स्खलितमिलितादिभिराचारैः ज्ञानमाश्रित्यात्मानमसारं करोति स ज्ञानपुलाकः १।

होते हैं-प्रतिसेवनाकुशील और कषाय कुशील जिनको परिग्रहसे आसक्ति नहीं है जो मूलगुणों और उत्तरगुणोंको पालते हैं तो भी कदाचित् उत्तरगुणोंकी विराधना कर लेते हैं, वे प्रतिसेवनाकुशील हैं जो अन्य कषायों पर विजय पाकर भी सज्वलन कषायके आधीन हैं वे कषाय कुशील निर्ग्रन्थ हैं। जिन्होंने रागद्वेषका अभाव कर दिया है, और अन्तर्मुहूर्तमें जो केवलज्ञानको प्राप्त करते हैं वे निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ हैं। सर्वज्ञता प्राप्त जो निर्ग्रन्थ हैं वे स्नातक हैं।

इस प्रकार निर्ग्रन्थके भेदोंको कहकर अब सूत्रकार उनमेंसे एक एकके पांच २ भेदोंको कहते हैं-" पुलाए पंचविहे " इत्यादि-पुलाक आसेवना पुलाक एवं लब्धिपुलाकके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है-इनमें जो आसेवनापुलाक है, वह ज्ञानपुलाक आदिके भेदसे पांच प्रकारका है, जो स्खलना मिलित आदि आचारोंसे ज्ञानको आश्रित करके आत्माको असार करता है, वह ज्ञानपुलक है १ कुदृष्टिके संस्तव

બકુશ કહે છે કુશીલ નિગ્રંથના બે પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પ્રતિસેવનાકુશીલ અને (૨) કષાયકુશીલ

જેમને પરિગ્રહ પ્રત્યે આસક્તિ નથી, જેઓ મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોનું પાલન કરે છે, છતાં પણ જેઓ કયારેક ઉત્તરગુણોની વિરાધના કરી નાખે છે એવા સાધુઓને પ્રતિસેવનાકુશીલ કહે છે જે સાધુઓ અન્ય કષાયો પર વિજય પ્રાપ્ત કરવા છતાં સંજ્વલન કષાયને આધીન રહે છે, તે સાધુઓને કષાય કુશીલ કહે છે જેમણે રાગદ્વેષનો અભાવ કરી નાખ્યો છે અને અંતર્મુહૂર્તમાં જેઓ કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે તેમને નિર્ગ્રંથ કહે છે જેમણે સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત કરી છે એવા નિર્ગ્રંથને સ્નાતક કહે છે

નિગ્રંથના ભેદોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર તે પ્રત્યેક ભેદના જે પાંચ પાંચ ઉપભેદો પડે છે તેનું કથન કરે છે " પુલાએ પંચવિહે " ઇત્યાદિ પુલાકના આસેવનાપુલાક અને લબ્ધિપુલાક નામના બે ભેદ કહ્યા છે તેમાંથી જે આસેવનપુલાક છે તેમાંથી જ્ઞાનપુલાક આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે જે સ્ખલનામિલિત આદિ આચારો વડે જ્ઞાનને આશ્રિત કરીને આત્માને અસાર કરે છે, તે સાધુને જ્ઞાનપુલાક કહે છે (૨) કુદષ્ટિના સંસ્તવ આદિ વડે જે

तथा-कुदृष्टि संस्तवादिना यो दर्शनं निस्सारं करोति स दर्शनपुलाकः २। तथा-मूलोत्तरगुणान् यः प्रतिसेवते स चरणपुलाकः ३। यः साधूनां यल्लिङ्गं, ततोऽधिकलिङ्गं गृह्णाति स लिङ्गपुलाकः ४। यस्तु किंचित् प्रमाद्यति मनसा वा अकल्प्यं गृह्णाति स यथासूक्ष्मपुलाको नाम पुलाकस्य पञ्चमो भेदः ५। लब्धिपुलाकश्च एकविध एवेति स नात्र विवक्षित इति। तथा-शरीरबकुशोपकरणबकुशभेदद्वयविशिष्टो बकुशोऽपि आभोगबकुशादिभेदेन पञ्चविधः। तत्र-यः शरीरविभूषामुपकरणविभूषां च चिन्तनपुरस्सरं करोति स आभोगबकुशः १। यः सहसा करोति सः अनाभोगबकुशः २। यः प्रच्छन्नतया करोति स संवृतबकुश ३। यः प्रकटतया करोति सः असंवृत बकुशः ४। सह

आदिसे जो दर्शनको निस्सार करता है, वह दर्शन पुलाक है २ मूलगुणों एवं उत्तर गुणोंकी जो प्रतिसेवना करता है, वह चरणपुलाक है ३ जो साधुओंका लिङ्ग है उससे अधिक लिङ्गको जो ग्रहण करता है, वह लिङ्ग पुलाक है, ४ जो कुछ २ प्रमाद पतित हो जाता है, अथवा मनसे अकल्प्यको ग्रहण करताहै, वह यथासूक्ष्म पुलाक है। यह पुलाकका पांचवां भेद है। लब्धिपुलाक एक प्रकारकाही होता है, अतः उसकी यहां विवक्षा नहीं हुई है। शरीर बकुश एवं उपकरण बकुशके भेदसे दो भेदवाला हुआ बकुश भी आभोगबकुश आदिके भेदसे पांच प्रकारका है, इनमें जो विचारपूर्वक शरीरकी विभूषा एवं उपकरणकी विभूषाको करता है, वह आभोगबकुश है १ और सहसा विना विचारेही शरीरकी विभूषा एवं उपकरणकी विभूषाको करता है, वह अनाभोग बकुश है २। तथा जो गुप्त रूपसे शरीरादिकोंकी विभूषा

દર્શનને નિસ્સાર કરે છે, તેને દર્શનપુલાક કહે છે (૩) મૂલગુણો અને ઉત્તર ગુણોની જે પ્રતિસેવના કરે છે તેને ચરણપુલાક કહે છે (૨) રજોહરણ, મુહપત્તિ આદિ રૂપ સાધુઓના જે લિંગ છે, તેના કરતાં અધિક લિંગને ધારણ કરનાર સાધુને લિંગપુલાક કહે છે. (૫) જે સાધુ થોડા થોડા પ્રમાદી બની ગયો હોય છે તેને અથવા જે મનથી અકલ્પ્યને ગ્રહણ કરે છે તેને યથાસૂક્ષ્મ પુલાક કહે છે લબ્ધિપુલાક એક જ પ્રકારનો હોય છે તેથી અહીં તેનુ વિવેચન કર્યું નથી

હવે સૂત્રકાર બકુશના ભેદોનુ નિરૂપણ કરે છે. બકુશના મુખ્ય બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) શરીર બકુશ અને (૨) ઉપકરણ બકુશ બકુશના નીચે પ્રમાણે પાંચ ભેદ પણ પડે છે—(૧) આભોગ બકુશ—જે સાધુ વિચારપૂર્વક શરીર અને ઉપકરણોની વિભૂષા કરે છે તેને આભોગ બકુશ કહે છે (૨) વિના વિચારે જ સહસા શરીર અને ઉપકરણોની વિભૂષા કરનાર સાધુને અનાભોગ બકુશ કહે

तत्त्वमसंवृतत्वं च मूलोत्तरगुणाश्रितत्वं बोध्यम्। तथा यः किंचित् प्रमत्तोऽपि नेत्रमलापनयनं वा करोति स यथा सूक्ष्मबकुशो नाम पञ्चमबकुशभेदः ५। तथा- प्रतिसेवनाकुशीलकषायकुशीलभेदद्वयविशिष्टः कुशीलोऽपि ज्ञानकुशीलदर्शनकुशीलादिभेदेन पञ्चविधः। तत्र-यो ज्ञानमुपजीवन् पिण्डविशुद्ध्यादि स्खलनादिपूर्वकं पिण्डादिकं प्रतिसेवमानो जिनाज्ञाम् उल्लङ्घयति स ज्ञानकुशीलः १। एवं दर्शनचारित्रं लिङ्गं च उपजीवन् दर्शनकुशीलश्चारित्रकुशीलो २। लिङ्गकुशीलश्च बोध्यः। तथा-'अयं तपस्वी'त्येवं जनैः प्रशंसितो यो हृष्यति स यथासूक्ष्म

करता है, वह संवृत बकुश है ३। तथा जो प्रकट रूपमें शरीरादिकोंकी विभूषा करता है, वह असंवृत्त बकुश है ४। संवृतत्व और असंवृतत्व मूल गुण और उत्तर गुणोंके आश्रित जानना चाहिये। तथा जो कुछ प्रमाद सहित होता है, अथवा नेत्रके मैल आदिका अपनयन करता है, वह यथा सूक्ष्मबकुश नामका पांचवां भेद है, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील इन दोनों भेदोंसे विशिष्ट जो कुशील है, वह ज्ञान कुशील दर्शनकुशील आदिके भेदसे पांच प्रकारका है। इनमें जो ज्ञानसे युक्त होता भी पिण्ड विशुद्धि आदिमें स्खलना आदि पूर्वक पिण्डादिकका प्रतिसेवन करता है, वह जिनेन्द्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, ऐसा वह ज्ञानकुशील है १। इसी प्रकारसे दर्शन और चारित्र एवं लिङ्गको धारण करता हुआ अर्थात् इन्हें अपने निर्वाह करनेका साधन मानता है, ऐसा वह दर्शनकुशील और चारित्रकुशील लिङ्ग कुशील कहा गया है। तथा जो तपस्या करता है एसी जनोंद्वारा कृत प्रशं

છે (૩) જે ગુપ્ત રૂપે શરીરાદિકોની વિભૂષા કરે છે તેને સંવૃત બકુશ કહે છે (૪) જે પ્રકટ રીતે શરીરાદિકોની વિભૂષા કરે છે તેને અસંવૃત બકુશ કહે છે સંવૃતત્વ અને અસંવૃતત્વ મૂલગુણ અને ઉત્તરગુણોને આશ્રિત સમજવું (૫) જે સાધુ થોડો થોડો પ્રમાદી થઈ ગયો હોય છે તેને અથવા જે સાધુ નેત્ર આદિના મેલનુ અપનયન કરે છે તેને યથાસૂક્ષ્મબકુશ કહે છે

કુશીલના પ્રતિસેવનાકુશીલ અને કષાયકુશીલ નામના બે ભેદોનું પ્રતિપાદન તો આગળ કરવામાં આવ્યું છે તેના જ્ઞાનકુશીલ દર્શનકુશીલ આદિ પાંચ ભેદ પડે છે જે સાધુ જ્ઞાનયુક્ત હોવા છતાં પણ પિંડવિશુદ્ધિ આદિમાં સ્ખલન પૂર્વક પિંડાદિકનું પ્રતિસેવન કરે છે ને જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરે છે તેથી એવા સાધુને જ્ઞાનકુશીલ કહે છે એજ પ્રમાણે દર્શનકુશીલ ચારિત્રકુશીલ અને લિંગકુશીલ વિષે પણ સમજવું દર્શનને (સાધુવેશને) ધારણ

कुशील ५। इति। तथा कषायकुशीलस्य पञ्चविधत्वमेव बोध्यम्। तथाहि-यः क्रोधादिना विद्यादिज्ञानं प्रयुङ्क्ते स ज्ञानकुशीलः १। क्रोधादिकषायेण यो निश्शङ्कितत्वादिकं दर्शनाचारं विराधयति स दर्शनकुशीलः २। तथा यः क्रोधादिवशात् कमपि शपति स चारित्रकुशीलः ३। यश्च क्रोधादिना लिङ्गान्तरं गृह्णाति स लिङ्गकुशीलः ४। तथा यो मनसा क्रोधादिकषायान् करोति स यथासूक्ष्मकुशीलो नाम पञ्चमः कुशीलभेदः ५। तथा-क्षीणकषायोपशान्तमोहभेदद्वयविशिष्टो निर्ग्रन्थः प्रथमसमयनिर्ग्रन्थादिभेदेन पञ्चविधः। तत्र यः अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणाया निर्ग्रन्थाद्धायाः प्रथमसमये तिष्ठति स प्रथमसमयनिर्ग्रन्थः १। प्रथम समयातिरिक्तसमयेषु

सासे जो हर्षित होता है, वह यथासूक्ष्मकुशील है १। तथा कषाय कुशील पांच प्रकारका इस तरहसे है जो क्रोध आदिके वश होकर विद्यादिज्ञानको प्रयुक्त करता है वह ज्ञानकुशील है १ क्रोधादिक कषायसे जो निःशंकित आदि दर्शनाचारकी विराधना करता है, वह दर्शनकुशील है २। जो क्रोधादिकके वशसे किसीको शाप देता है; वह चारित्रकुशील है ३। क्रोधादिकके वश से जो अन्य लिङ्गको धारण करता है वह लिङ्गकुशील है ४। तथा जो अपने मनसे क्रोधादिक कषायोंको करता है वह यथासूक्ष्म कुशील है ५। क्षीणकषाय और उपशान्तमोह इन दो भेदोंवाला निर्ग्रन्थ प्रथम समयके निर्ग्रन्थादिकके भेदसे पांच प्रकारका है-इनमें जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले निर्ग्रन्थकालके प्रथम समयमें रहता है, वह प्रथमसमय निर्ग्रन्थ है १ जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले नि-

કરવા છતા તેને પોતાના નિર્વાહનું સાધન માનતા સાધુને લિંગકુશીલ કહે છે પોતાની તપસ્યાની લોકો દ્વારા પ્રશંસા થતી જોઇને હર્ષ પામતા સાધુને સૂક્ષ્મકુશીલ કહે છે કષાય કુશીલના પણ એવા જ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે (૧) જે ક્રોધાદિથી યુક્ત થઇને વિદ્યાદિજ્ઞાનને પ્રયુક્ત કરે છે તેને જ્ઞાનકુશીલ કહે છે (૨) ક્રોધાદિક કષાયને અધીન થઇને જે નિઃશંકિત આદિ દર્શનાચારની વિરાધના કરે છે તેને દર્શનકુશીલ કહે છે (૩) જે ક્રોધાદિકને આધીન થઇને કોઇને શાપ આપે છે તેને ચારિત્રકુશીલ કહે છે (૪) ક્રોધાદિકને આધીન થઇને જે અન્યલિંગને ધારણ કરે છે તેને લિંગકુશીલ કહે છે. (૫) જે પોતાના મનમાં જ ક્રોધાદિક કષાયો કરે છે તેને યથાસૂક્ષ્મકુશીલ કહે છે

ક્ષીણકષાય અને ઉપશાન્ત મોહ, આ બે ભેદોવાળા નિર્ગ્રંથોના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) પ્રથમ સમય નિર્ગ્રંથ-જે અન્તમુહૂર્ત પ્રમાણવાળા નિર્ગ્રંથકાળના પ્રથમ સમયમાં રહે છે, તેને પ્રથમ સમય નિર્ગ્રંથ કહે છે (૨) અપ્રથમસમય નિર્ગ્રંથ-જે અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાળા નિર્ગ્રંથ

पस्तिष्ठति सोऽप्रथमसमयनिर्ग्रन्थ २। तथा-योऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणाया निर्ग्रन्था द्धायाश्चरमसमये तिष्ठति स चरमसमयनिर्ग्रन्थः ३। तथा चरमसमयादन्यस्मिन् यावच्छैलेश्यवस्थायाश्चरमसमये तिष्ठति सोऽचरमसमयनिर्ग्रन्थ ४। यस्तु निर्ग्रन्था द्धाया अन्तर्मुहूर्तप्रमाणाया प्रथमसमयादारभ्य शैलेश्यवस्थायाश्चरमसमयपर्यन्तेषु सर्वेषु समयेषु तिष्ठतीति स यथासूक्ष्मनिर्ग्रन्थ इति ५ तथा-सयोगकेवल्ययोग केवलिभेदद्वयविशिष्ट स्नातक अच्छव्यादिभेदेन पञ्चविध । तत्र-काययोग निरोधेन यस्य छविः=शरीरं नास्ति सोऽच्छविः । अत्रेदं बोध्यम्-अयोगकेवलिनां काययोगनिरोधो भवत्येवेति तेषामच्छवित्वं सुगमम् । सयोगकेवलिनोऽपि यदा

र्ग्रन्थकालके प्रथम समयसे अतिरिक्त समयोंमें रहता है, वह अप्रथम समय निर्ग्रन्थ है २। जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले निर्ग्रन्थकालके चरम समयमें रहता है, वह चरम समय निर्ग्रन्थ है ३। जो चरम समयसे अन्य समयमें यावत् शैलेशी अवस्थाके चरम समयमें रहता है, वह अचरम समय निर्ग्रन्थ है ४। जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले निर्ग्रन्थकालके प्रथम समयसे लेकर शैलेशी अवस्थाके चरम समय पर्यन्त सब समयोंमें रहता है, वह यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ है ५। संयोग केवली और अयोग केवली रूप दो भेदोंसे विशिष्ट जो निर्ग्रन्थ है, वह अच्छवि आदिके भेदसे पाँच प्रकारका है, इनमें काययोगके निरोधसे जिसको शरीर नहीं होता है, वह अच्छवि है, यहाँ इस प्रकार समझना चाहिये-अयोग केवलियोंके काययोगका तो निरोध होताहै, इसलिये उनमें अ

કાળના પ્રથમ સમય સિવાયીના સમયમાં રહે છે તેને અપ્રથમસમય નિર્ગ્રન્થ કહે છે (૩) ચરમસમય નિર્ગ્રંથ-જે અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાળા નિર્ગ્રંથકાળના ચરમ (અન્તિમ) સમયમાં રહે છે તેને ચરમસમય નિર્ગ્રંથ કહે છે (૪) અચરમ સમય નિર્ગ્રંથ-જે ચરમ સમય કરતાં અન્ય સમયમાં શૈલેશી અવસ્થામાં ચરમ સમય પર્યન્તના સમયમાં રહે છે તેને અચરમસમય નિર્ગ્રંથ કહે છે (૫) યથાસૂક્ષ્મ નિર્ગ્રંથ-જે અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાળા નિર્ગ્રંથકાળના પ્રથમ સમયથી લઈને શૈલેશી અવસ્થામાં ચરમ સમય પર્યન્તના બધા સમયોમાં રહે છે તેને યથાસૂક્ષ્મ નિર્ગ્રંથ કહે છે

સયોગ કેવલી અને અયોગકેવલી રૂપ બે ભેદવાળા જે સ્નાતક નિર્ગ્રંથો છે તેમના અચ્છવી આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે

કાયયોગના નિરોધને કારણે જેમનો શરીરનો-કાયાના વ્યાપારનો અભાવ હોય છે તે નિર્ગ્રંથને અચ્છવિ કહે છે અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે અયોગ કેવલીના કાયયોગનો તો નિરોધ થઈ ગયેલો જ હોય છે, તેથી તેમનામાં

सूक्ष्मकाययोगेन बादरकाययोगं निरुन्धन्ति तदा तेषामपि अच्छवित्वं भवति। विरोधस्त्वेवं बोध्यः-भगवान् सयोगकेवली भवोपग्राहि कर्मक्षपणाय परमनिर्मल-मत्यन्ताप्रकम्पं परमनिर्जराकारणं ध्यानं प्रतिपत्तुकामो योगनिरोधार्थमुपक्रमते। तत्र प्रथमं बादरकाययोगेन बादरमनोयोगं निरुणद्धि, ततो बादरवाग्योगम्। ततः सूक्ष्मकाययोगेन बादरकाययोगं निरुणद्धि ततः सूक्ष्मकाययोगेनैव सूक्ष्ममनोयोगं सूक्ष्मवाग्योगं च। सूक्ष्मकाययोगं तु सूक्ष्मक्रियमनिवर्त्ति शुक्लध्यानं ध्यायन् स्वात्र-ष्टम्भेनैव निरुणद्धि, अन्यस्य अवष्टम्भनीयस्य योगस्य तस्मिन् काले अभावात्।

च्छविता तो सुस्पष्टही है, सयोग केवलीके भी जब सूक्ष्म कायके योगसे बादरकाय योगका निरोध करते हैं, तब उनके भी अच्छविता होती है, निरोध इस प्रकारसे होता है-भगवान् सयोग केवली भवोपग्राहि कर्मके क्षपणके लिये परम निर्मल अत्यन्त अप्रकम्प एवं परम निर्जराके कारणरूप ध्यान करनेके अभिलाषी होते हैं, तब वे योग निरोधके लिये उपक्रम करते हैं, उसमें वे प्रथम काययोगसे बादर मनोयोगका निरोध करते हैं, बादमें बादर वाग्योगका निरोध करते हैं। इसके बाद सूक्ष्म काययोगसे बादर काययोगका निरोध करते हैं, बादमें वे सूक्ष्म काययोगसेही सूक्ष्म मनोयोगका और सूक्ष्म वाग्योगका निरोध करते हैं। सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यानको ध्याते हुए वे केवली अपने अवष्टंभसेही सूक्ष्म कायका निरोध करते हैं। क्योंकि उस समय अन्य अवष्टंभनीय योगका अभाव होता है, उस ध्यानके सामर्थ्यसे वे

અચ્છવિતા સુસ્પષ્ટ જ છે. સયોગ કેવલી પણ જ્યારે સૂક્ષ્મ કાયના યોગથી બાદર કાયયોગનો નિરોધ કરે છે, ત્યારે તેમનામા પણ અચ્છવિતા જ હોય છે. નિરોધ આ પ્રમાણે થાય છે-ભગવાન સયોગ કેવલી ભવોપગ્રાહિ કર્મના ક્ષપણને માટે પરમ નિર્મળ અત્યન્ત અપ્રકમ્પ પરમનિર્જરાના કારણરૂપ ધ્યાન ધરવાની અભિલાષાવાળા થાય છે ત્યારે તેઓ યોગનિરોધને માટે ઉપક્રમ કરે છે. ત્યારે તેઓ પહેલા કાયયોગ દ્વારા બાદર મનોયોગનો નિરોધ કરે છે, ત્યાર બાદ બાદર વાગ્યોગનો નિરોધ કરે છે ત્યાર બાદ સૂક્ષ્મ કાયયોગ વડે બાદર કાયયોગનો નિરોધ કરે છે ત્યારબાદ તેઓ સૂક્ષ્મકાયયોગ વડે જ સૂક્ષ્મ મનોયોગનો અને સૂક્ષ્મ વાગ્યોગનો નિરોધ કરે છે સૂક્ષ્મ ક્રિયા નિવૃત્તિ શુક્લ ધ્યાન ધરતા ધરતા તે કેવલી પોતાના અવષ્ટભથી જ સૂક્ષ્મ કાયનો નિરોધ કરે છે, કારણ કે તે સમયે અન્ય અવષ્ટભનીય યોગનો અભાવ

तद्ध्यानसामर्थ्यात् स वदनोदरादिविवरपूरणेन सङ्कुचितदेहत्रिभागवर्ति प्रदेशो भवति। तदनन्तरं समुच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति शुक्लध्यानं ध्यायन् मध्यमप्रतिपत्त्या ह्रस्वपञ्चाक्षरोच्चारणमात्रकालं शैलेशीकरणं प्रविशति इति। बादरकाययोगनिरोधानन्तरं यावत् सूक्ष्मकाययोगं न निरुणद्धि तावत् सयोगिकेवली भवति। अस्यामवस्थायां बादरकाययोगाभावेन अच्छवित्वम्। सूक्ष्मकाययोगनिरोधानन्तरं तु अयोगिकेवली भवति। तत्र तु अच्छवित्वं सुस्थितमेवेति बोध्यमिति। इति स्नातकस्य प्रथमो भेदः। अतिचारेभ्यो निर्गतत्वादशबलो द्वितीयः। अकर्मांशः-नास्ति कर्मणः अंशः=लेशोऽपि क्षपितकर्मत्वाद्यस्य स इति तृतीयः। तथा-संशुद्धज्ञानदर्शनधरः-संशुद्ध-ज्ञानदर्शनान्तरमपरैरस्पृष्टत्वात् यद् ज्ञानदर्शनं तस्य धरः=धारकः, अर्हन्-नरामरनमस्कारार्हत्वात्, जिनो जितकषायत्वात् केवली-परिपूर्णरत्नत्रयत्वादिति चतुर्थः। अपरिस्रावी-सकलयोगनिरोधेन निष्क्रियत्वादिति पञ्चमः। इति ॥ सू० ५ ॥

वदन उदर आदि विवरके पूरण होनेसे सङ्कुचितदेह त्रिभागवर्ती प्रदेशवाले हो जाते हैं। इसके बाद समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती शुक्ल ध्यानको ध्याते हुए वे मध्यम प्रतिपत्तिसे ह्रस्व पञ्चाक्षरके उच्चारण मात्र कालतक शैलेशीकरणमें प्रवेश करते हैं। बादर काययोगके निरोधके बाद जब तक सूक्ष्म काययोगका निरोध नहीं कर लेते हैं, तब तक वे सयोग केवली होते हैं, इस अवस्थामें बादर काययोगके अभावसे उनमें अच्छविता सुस्थितही हो जाती है, इस प्रकारका यह स्नातकका प्रथम भेद है, अशबल यह इसका द्वितीय भेद है इस अवस्थामें वे अतिचारोंसे रहित हो जाते हैं। अकर्मांश यह तृतीय भेद है इस अवस्थामें क्षपित कर्मवाले हो जानेसे उनके कर्मोंका अंश तक भी नहीं रहता है। संशुद्ध ज्ञान दर्शनधर यह चतुर्थभेद है, इस अवस्थामें

હોય છે તે ધ્યાનના સામર્થ્યથી તેઓ વદન ઉદર આદિ વિવર પૂરણ થવાથી સંકુચિત દેહવાળા-ત્રિભાગવર્તી પ્રદેશવાળા થઈ જાય છે ત્યાર બાદ સમુચ્છિન્ન ક્રિયા અપ્રતિપાતી શુક્લધ્યાનને ધરતા થકાં તેઓ મધ્યમ પ્રતિપત્તિ વડે પાંચ હ્રસ્વાક્ષરોના ઉચ્ચારણ પ્રમાણકાળ સુધી જ શૈલેશીકરણમાં પ્રવેશ કરે છે બાદર કાયયોગનો નિરોધ કર્યા બાદ જ્યાં સુધી તેઓ સૂક્ષ્મ કાયયોગનો નિરોધ કરી લેતા નથી ત્યાં સુધી તેઓ સયોગ કેવલી જ ગણાય છે આ અવસ્થામાં તેઓ અતિચારોથી રહિત થઈ જાય છે (૩) અકર્માંશ નામનો ત્રીજો ભેદ છે આ અવસ્થામાં તેમના કર્મોનો ક્ષય થઈ જવાથી તેમના કર્મોના અંશ પણ

निर्ग्रन्थप्रस्तावात् सम्प्रति तेषामेव उपधिविशेषान् प्रदर्शयति—

मूलम्—कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच वत्थाइं धरित्तए वा परिहरित्तए वा तं जहा-जंगिए १ भंगिए २ साणए ३ पोत्तिए ४ तिरीडपट्टए ५ णामं पंचमए। कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पंच रयहरणाइं धरित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा--उण्णिए १ उट्टिए २ साणए ३ पच्चापिच्चियए ४ मुंजा-पिच्चिए ५ नामं पंचमए ॥ सू० ६ ॥

छाया—कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा पञ्चवस्त्राणि धर्तुं वा परिहर्तुं वा, तद्यथा-जाङ्गमिकम् १ भाङ्गिकम् २ शाणकम् ३ पौतिकं ४ तिरीटपट्टक ५ नाम पञ्चमकम्। कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा पञ्च रजोहरणानि धर्तुं वा परिहर्तुं वा, तद्यथा-औणिकम् १, औष्ट्रिकम् २, शाणकम् ३ वल्वजकुट्टितत्वङ्मयं ४ मुञ्जकुट्टितत्वङ्मयं ५ नाम पञ्चमकम् ॥ सू० ६ ॥

उनका ज्ञानान्तर और दर्शनान्तरके संपर्कसे ज्ञानदर्शन शून्य हो जाता है, इसलिये ऐसे ज्ञान और दर्शनके वे धारी हो जाते हैं। "अर्हन् जिन: केवली अपरिस्रावी ५" इस प्रकार नर और अमरसे नमस्कार करने योग्य हो जानेसे वे अर्हन्त हो जाते हैं जिन कषायवाले होनेसे वे जिन हो जाते हैं, और परिपूर्ण रत्नत्रयवाले हो जानेसे केवली हो जाते हैं ऐसा यह चतुर्थ भेद है, और अन्तमें सकल योगोंके निरोधसे वे निष्क्रिय बन जानेके कारण अपरिस्रावी हो जातेहैं ऐसा यह पांचवांभेदहै ॥सू०५॥

બાકી રહેતો નથી (૪) સશુદ્ધ જ્ઞાન દર્શનધર નામનો ચોથો ભેદ છે આ અવસ્થામા જ્ઞાનાન્તર અને દર્શનાન્તરના સપર્કથી તેમનું જ્ઞાન અને દર્શન વિહીન થઈ જાય છે, તે કારણે તેઓ જ્ઞાન અને દર્શનને ધારણ કરનારા બની જાય છે "अर्हन् जिन केवली अपरिस्रावि" આ પ્રકારે મનુષ્યો અને દેવો દ્વારા વન્દનીય થઈ જવાથી તેઓ અર્હંત બની જાય છે કષાયોને જીતનારા હોવાને કારણે તેઓ જિન કહેવાય છે અને પરિપૂર્ણ રત્નત્રયવાળા થઈ જવાને લીધે તેઓ કેવલી બની જાય છે, એવો આ ચોથો ભેદ છે અન્તે સકળ યોગોનો નિરોધ કરીને તેઓ નિષ્ક્રિય બની જવાને કારણે અપરિસ્રાવી

टीका—' कप्पइ ' इत्यादि—

निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा पञ्च=पञ्चविधानि वस्त्राणि धर्तुं=ग्रहीतुं वा परिहर्तुम्=आसेवितुं कल्पते । तान्येव वस्त्राण्याह-तद्यथा-जाङ्गमिकम्-जङ्गम = त्रसा मेषादयस्तल्लोमनिष्पन्न कम्बलादिकम् । माङ्गिकम्-भङ्गा=अतसी (अलसी) तत्त्वग्भिर्निष्पन्नम् । शाणकम्=शणसूत्रनिष्पन्नम् । पौतिकम्-पोत कार्पास वस्त्र तदेव । तिरीटपट्टकम्-तिरीटनामक वृक्षविशेषत्वचानिर्मितम् । उक्तं चात्र—

" जंगमजाय जंगियं, तं पुण विगलिंदियं च पंचिंदिं ।
एक्केक्कंपि य इत्तो, होइ विभागेण णेगविहं ॥ १ ॥

अब सूत्रकार निर्ग्रन्थके प्रकरणसेही उनकी विशेष उपधिका प्ररूपण करते हैं—'कप्पइ णिग्गंथाण वा' इत्यादि सूत्र ६ ॥

टीकार्थ-निर्ग्रन्थोंको अथवा निर्ग्रन्थनियोंको पांच प्रकारके वस्त्रोंका धारण करना और उनका आसेवन करना कल्प्य कहा गया है। वे पांच प्रकारके वस्त्र येहैं-जाङ्गमिक१ माङ्गिक२ शाणक३ पौतिक४ और तिरीटपट्टक ५ जो वस्त्र मेषादिक (भेडादि) जङ्गम जीवोंके रोमसे निष्पन्न होता है, वह जाङ्गमिक है जैसे-कम्बल आदि भङ्ग नाम अतसी अलसीका है, इस अलसीकी छालसे जो वस्त्र निर्मित होता है, वह भाङ्गिक है, शणके सूत्रोंसे जो वस्त्र बनता है, वह शाणक है, पोत नाम कपासका है, इस कपाससे जो वस्त्र निर्मित होता है, वह पौतिक वस्त्र है, और जो वस्त्र तिरीट नामक वृक्ष विशेषकी छालसे निर्मित होता है, वह तिरीटपट्टक

थई जाय छे, आ भावमा श्रेष्ठ समजवो ॥ सू ५ ॥

निग्रंथनो अधिकार चाली रह्यो छे तेथी हवे सूत्रकार तेमनी विशिष्ट उपधिनुं निरूपण करे छे " कप्पइ णिग्गंथाण वा " इत्यादि—

टीकार्थ-निग्रंथोने अने निग्रंथीओने नीचे बतावेला पांच प्रकारना वस्त्रो धारण करवा अने तेमनो उपयोग करवो कल्पे छे—(१) जांगमिक (२) भांगिक, (३) शाणक (४) पौतिक अने (५) तिरीट पट्टक

जे वस्त्रो घेटां आदि जंगम जीवोना वाळमांथी बने छे, ते वस्त्रोने जांगमिक कहे छे कम्बल आदिने आ प्रकारनां वस्त्र कही शकाय छे अलसीने भंग कहे छे अलसीनी छालमांथी जे वस्त्र बने छे, ते वस्त्रने भांगिक कहे छे शणना रेसामांथी जे वस्त्र बने छे तेने शाणक कहे छे कपासने पोत कहे छे ते कपासमांथी जे वस्त्र बने छे तेने पौतिकवस्त्र कहे छे जे वस्त्र तिरीट नामना वृक्षनी छालमांथी बने छे तेने तिरीटपट्टक कहे छे

पट्टसुवण्णे मलए, अंसुय चीणंसुए य विगलिंदी ।
उण्णोट्टियमियलोमे, कुतवे किट्टियपंचिंदी ॥ २ ॥
अयसी वंसीमाइय, भंगियं साणयं तु सणवक्को ।
पोत्तं कप्पासमयं, तिरीडरुक्खा तिरीडपट्टो ॥ ३ ॥

छाया—जङ्गमजातं जाङ्गमिकं तत् पुनर्विकलेन्द्रियं च पञ्चेन्द्रियम् ।
एकैकमपि च इतो भवति विभागेन पञ्चविधम् ॥ १ ॥
पट्टः सुवर्णं मलयम् अंशुकं चीनांशुकं च विकलेन्द्रियम् ।
औणम् औष्ट्रिकं मृगलोमकुतुपं किट्टिज पञ्चेन्द्रियम् ॥ २ ॥
अतसी वंश्यादिजं भाङ्गिकं शाणकं तु शणवल्कः ।
पोतं कार्पासमयं तिरीटवृक्षात् तिरीटपट्टः ॥ ३ ॥

अयमर्थः—जङ्गमाज्जातं वस्त्रं जाङ्गमिकं भवति । तत्पुनः विकलेन्द्रियजन्यत्वाद् विकलेन्द्रियं पञ्चेन्द्रिय जन्यत्वाच्च पञ्चेन्द्रियं भवति । इतः=अत्र भेदद्वयमध्ये एकैकमपि विभागेन=विकलेन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रियाणां च जीवानां भेदेन अनेकविधं भवति ॥ १ ॥ पट्टवस्त्रं प्रसिद्धम् सुवर्णं=सुवर्णवर्णसूत्रनिर्मितं कृमिज-

---

है । कहा भी है—"जंगमजायं जंगियं" इत्यादि ।

जो वस्त्र जङ्गमसे उत्पन्न होता है, वह जाङ्गमिक है, यह वस्त्र विकलेन्द्रियोंके रोमसे जन्य होनेसे विकलेन्द्रिय होता है, और पञ्चेन्द्रियके रोमसे जन्य होनेसे पञ्चेन्द्रिय होता है, इस तरह इन दो भेदोंके बीचमें एक वस्त्र भी विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवोंके भेदसे अनेक प्रकारका होताहै १ पट्टवस्त्र१ सुवर्णवस्त्र २ मलयवस्त्र३ अंशुक बारीक वस्त्र ४ और चीनांशुक वस्त्रके भेदसे वस्त्र पांच प्रकारका होता है, यह पांच प्रकारका वस्त्र विकलेन्द्रिय जीवोंके रोमसे उत्पन्न होताहै, इनमें पट्टवस्त्र प्रसिद्धहै । अच्छे वर्णवाले सूत्रसे जो वस्त्र निर्मित होता है, वह सुवर्णवस्त्र है, यह

કહ્યુ પણ છે કે " जंगमजायं जंगिय " ઇત્યાદિ—

જે વસ્ત્ર જંગમ જીવોના વાળમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે તેને જાંગમિક કહે છે તે વસ્ત્ર વિકલેન્દ્રિયોના રોમમાથી ઉત્પન્ન થતું હોવાથી વિકલેન્દ્રિય જન્ય પણ હોય છે અને પંચેન્દ્રિયોના રોમમાંથી ઉત્પન્ન થતું હોવાથી પંચેન્દ્રિયજન્ય પણ હોય છે વિકલેન્દ્રિયજન્ય વસ્ત્ર પણ પાંચ પ્રકારનું હોય છે—(૧) પટ્ટવસ્ત્ર (૨) સુવર્ણ વસ્ત્ર, (૩) મલય વસ્ત્ર, (૪) અંશુક વસ્ત્ર (૫) અને ચીનાંશુક વસ્ત્ર આ પાંચે પ્રકારના વસ્ત્ર વિકલેન્દ્રિય જીવોના રોમમાંથી બને છે પટ્ટ વસ્ત્ર જાણીતું હોવાથી અહીં તેનું વર્ણન કર્યું નથી. સુંદર વર્ણવાળા તતુમાંથી [illegible]

मित्यर्थः, मलय=मलयदेशोद्भवं वस्त्रम्, अंशुक=श्लक्ष्णवस्त्र, चीनांशुकम्=कौशेयम्,-चीनदेशोद्भवं वा श्लक्ष्णपट्टमयं वस्त्रम्, एतत् पञ्चविधं पञ्चमदर्शितं वस्त्रं विकलेन्द्रियजम्। तथा-और्णिकम्=ऊर्णामयम्, औष्ट्रिकम्=उष्ट्ररोमजम्, मृगरोम्णो जातत्वात् वस्त्रं मृगरोमजम्। उपलक्षणत्वात् शशरोमजं मूषकरोमजं चापि बोध्यम्। तथा-कुतुपम्-छागरोमजम्, किट्टिजम्=एतेषामेव निकृष्टरोमनिर्मितम् ॥ २ ॥ तथा-अतसीवल्कादिभिः भाङ्गिकं वस्त्रं भवति शणवल्कनिष्पन्नं तु शाणक

वस्त्र कृमिज (रेशमी) होता है, मलयवस्त्र-मलयदेशका बना हुआ होता है, जो वस्त्र चिकना होता है, वह अंशुक कहलाता है, जो वस्त्र चीन देशका बना होता है, अथवा रेशमका बना होता है, वह चीनांशुक कहलाता है, जो वस्त्र उष्ट्रके रोमोंका बना होता है, वह औष्ट्रिकवस्त्र है, जो वस्त्र ऊर्णाका बना होता है, वह और्णिक वस्त्र है, जो वस्त्र मृगके रोमका बना होता है, वह मृगरोम वस्त्र है, उपलक्षणसे " शशरोमज मूषकरोमज " इन वस्त्रोंका भी ग्रहण हुआ है, खरगोशके रोमोंका बना हुआ वस्त्र शशरोमज है, और चूहोंके रोमसे बना वस्त्र मूषकरोमज है, जो वस्त्र बकरेके रोमसे बनता है, वह कुतुप वस्त्र है, तथा इन्हींके निकृष्ट (हलके) रोमोंसे जो वस्त्र बनाया जाता है, वह किट्टिजवस्त्र है, तथा-अलसी आदिकी छालसे जो वस्त्र बनाया जाता है वह भाङ्गिक वस्त्र है। शणके रेशोंसे जो वस्त्र बनाया जाता है, वह शाणक है,

વસ્ત્ર કહે છે તે વસ્ત્ર રેશમના કીડાઓની લાળમાંથી બને છે મલય વસ્ત્ર મલય દેશમાં બને છે જે વસ્ત્ર બહુ જ મુલાયમ હોય છે તેને અંશુક વસ્ત્ર કહે છે જે વસ્ત્ર ચીન દેશમાં બને છે અથવા રેશમમાંથી બને છે તેને ચીનાંશુક કહે છે

પંચેન્દ્રિયજન્ય વસ્ત્રોના નીચે પ્રમાણે અનેક પ્રકાર પડે છે—જે વસ્ત્ર ઊંટની રૂંવાટીમાંથી બને છે તેને ઔષ્ટ્રિક કહે છે જે વસ્ત્ર ઊનમાંથી બને છે તેને ઔર્ણિક વસ્ત્ર કહે છે જે વસ્ત્ર મૃગની રૂંવાટીમાંથી બને છે તેને મૃગરોમ વસ્ત્ર કહે છે ઉપલક્ષણથી " શશરોમજ મૂષકરોમજ " સસલાની રૂંવાટીમાંથી બનેલું શશરોમજ વસ્ત્ર અને મૂષકોની રૂંવાટીમાંથી બનાવેલું મૂષકરોમજ વસ્ત્ર અહીં ગ્રહણ થવું જોઈએ. (૪) 'કુતુપવસ્ત્ર' જે વસ્ત્ર બકરાના વાળમાંથી બને છે તેને કુતુપવસ્ત્ર કહે છે (૫) 'કિટ્ટિજવસ્ત્ર' તેમની જ નિકૃષ્ટ રૂંવાટીમાંથી જે વસ્ત્ર બને છે તેને કિટ્ટિજવસ્ત્ર કહે છે

અળસી આદિની છાલમાંથી જે વસ્ત્ર બને છે, તેને ભાંગિકવસ્ત્ર કહે છે શણના રેસામાંથી જે વસ્ત્ર બનાવવામાં આવે છે, તેને શાણકવસ્ત્ર કહે છે કપાસ

भवति कर्पासनिर्मितं तु पोतमुच्यते, तथा–तिरीटवृक्षत्वचया यद् वस्त्रं निष्पद्यते तत् तिरीटपट्टकमुच्यते ॥ ३ ॥

यद्यपि साधुकल्पनीयं पञ्चविधं प्रोक्तं तथापि उत्सर्गतः साधुभिः कार्पासमौर्णिकं च द्विविधमेव वस्त्रं ग्राह्यम् । तदुक्तम्—

" कप्पासिया उ दोन्नी उन्निय एक्को य परिभोगो " ।

छाया—कार्पासिकस्य तु द्वे और्णिकमेकं च परिभोगः इति ।

तथा — " कप्पासियस्स असईवागयपट्टो य कोसियारो य ।

असई य उण्णियस्स वागयकोसेज्जपट्टो य ॥ १ ॥ "

छाया—कार्पासिकस्यासति वाल्कजपट्टश्च कौशिकाकारश्च ।

असति च और्णिके वाल्कजः कौशेयपट्टश्च ॥ १ ॥ इति ।

एतदप्यल्पमूल्यकमेव ग्राह्यं न तु बहुमूल्यकम् । दशमुद्रादिमूल्यकं वस्त्रं बहुमूल्यं बोध्यमिति । तथा–निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा पञ्चविधानि रजोहरणानि धर्तुं परिग्रहीतुं वा कल्पते । पञ्चविधत्वमेवाह–तद्यथा–और्णिकम्–मेषलो-

---

और कपासके डोरोंसे जो वस्त्र बनाया जाता है, वह पोतवस्त्र कहलाता है, तथा तिरीट वृक्षकी छालसे जो वस्त्र निष्पन्न होता है, वह तिरीटपट्टक है ३ । यद्यपि साधुजनोंको कल्पनीय पांच प्रकारका वस्त्र कहा गया है, तब भी उत्सर्गसे साधुजनोंको कार्पास और और्णिक ये दो वस्त्रही ग्रहण करना चाहिये । कहा भी है—

" कप्पासिया उ दोन्नी " इत्यादि ।

कार्पासिक आदि जो वस्त्र साधुजनोंको धारण करने योग्य कहे हैं, वे वस्त्र भी ऐसे धारण करना चाहिये जो अल्पमूल्यके हों बहुमूल्यवाला न हों । दशमुद्रा आदिके मूल्यवाला वस्त्र बहुमूल्य कहा गया है । तथा–निर्ग्रन्थोंको एवं निर्ग्रन्थनियोंको पांच प्रकारके रजोहरण

ના સૂતરમાંથી જે વસ્ત્ર વણવામાં આવે છે, તેને પોતવસ્ત્ર કહે છે. તિરીટવૃક્ષની છાલમાંથી જે વસ્ત્ર બનાવવામાં આવે છે, તેને તિરીટપટ્ટક કહે છે જો કે સાધુઓને માટે ઉપર્યુક્ત પાંચ પ્રકારના વસ્ત્રને કલ્પ્ય કહ્યાં છે, છતાં સાધુઓએ સુતરાઉ અને ઊનના બનાવેલા વસ્ત્રોજ ગ્રહણ કરવા તે વધારે ઉચિત છે કહ્યુ પણ છે કે " कप्पासिया उ दोन्नी " ઇત્યાદિ—

સૂતરાઉ આદિ જે વસ્ત્રો સાધુજનોને માટે ધારણ કરવા યોગ્ય કહ્યા છે, તે પણ બહુ મૂલ્યવાન હોવા જોઇએ નહીં, પણ સસ્તા હોવા જોઇએ દશ મુદ્રા આદિ ભાવના કપડાને બહુમૂલ્ય કહ્યા છે

સાધુ અને સાધ્વીઓને નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકારના રજોહરણ જ કલ્પે

मयम् । औष्ट्रिकम्=उष्ट्ररोमनिर्मितम् । शाणकम्=शणनिष्पन्नम् । 'पच्चापिच्चियए' 'पच्चा' इति वल्वजतृणवाचको देशीशब्द । 'चिप्पिय' इति कुट्टितम्-वल्वजस्य या कुट्टिता त्वक् तन्मयो निष्पन्नम् । तथा-मुञ्जकुट्टितत्वङ्मयम्, इति ॥ सू० ६ ॥

निर्ग्रन्थानां यथावस्त्रं रजोहरणं च धर्मोपकरणं भवति तथैव तदतिरिक्तानि कायादीन्यपि तेषां धर्मोपकरणानि भवन्तीति प्राह—

मूलम्—धम्मं चरमाणस्स पंच णिस्साठाणा पण्णत्ता, तं जहा-छक्काए १ गणे २ राया ३ गिहवई ४ सरीरं ५॥सू० ७॥

छाया—धर्मं चरतः पञ्च निश्रास्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-षट्कायो १ गणो २ राजा ३ गृहपतिः ४ शरीरम् ५ ॥ सू० ७ ॥

रचना और उनकाही आसेवन करना कल्पित कहा गया है, जो रजोहरण मेषके लोमोंसे बना होताहै, वह और्णिक रजोहरण है १ उष्ट्रके रोमोंसे जो रजोहरण बना होता है वह औष्ट्रिक रजोहरण है २, जो रजोहरण शणके सूत्रसे बना होता है, वह शाणक रजोहरण है ३, "पच्चापिच्चियए" यहां "पच्चा" यह शब्द वल्वज तृणका वाचक है, और देशीय है तात्पर्य यह है कि जो रजोहरण वल्वजकी कुट्टित छालसे बनाया जाता है वह वाल्वज रजोहरण है ४ और जो मूजकी कूटी हुई छालका बना होता है वह मौञ्जिक रजोहरण है ॥सू० ६॥

जिस प्रकार निर्ग्रन्थोंका वस्त्र और रजोहरण धर्मोपकरण होता है उसी प्रकारसे इनसे अतिरिक्त जो उनके काय आदि हैं वे भी उनके धर्मोपकरण हैं इस बातको अब सूत्रकार कहते हैं—

છ—(૧) ઘેટાની રુવાટીમાંથી બનાવેલો 'ઔર્ણિક રજોહરણ' (૨) ઊંટની રુવાટીમાંથી બનાવેલો 'ઔષ્ટ્રિક રજોહરણ' (૩) શણના રેસામાંથી બનાવેલો 'શાણક રજોહરણ' (૪) "પચ્ચાપિચ્ચિયએ" અહીં 'પચ્ચા' આ પદ બલ્વજ તૃણનું વાચક છે બલ્વજ નામની વનસ્પતિની છાલને કૂટી કૂટીને જે રજોહરણ બનાવવામાં આવે છે તેને બાલ્વજ રજોહરણ કહે છે (૫) મુંજને કૂટી કૂટીને જે રજોહરણ બનાવવામાં આવે છે તેને મૌંજિક રજોહરણ કહે છે ॥ સૂ. ૬ ॥

જેમ વસ્ત્ર રજોહરણ આદિ નિગ્રંથોના ધર્મોપકરણ હોય છે, એજ પ્રમાણે તે સિવાયના તેમના કાય આદિ છે તે પણ તેમના ધર્મોપકરણ છે એ જ વાત સૂત્રકાર હવે પ્રકટ કરે છે

टीका—' धम्मं चरमाणस्स ' इत्यादि—

धर्म=श्रुतचारित्ररूपं चरतः=आसेवमानस्य पञ्च निश्रास्थानानि=आलम्बनस्थानानि धर्मोपग्रहकारणानि प्रज्ञप्तानि, तान्येवाह—तद्यथा—षट्काय —षड्जीवनिकायः, संयमोपकारकत्वं शास्त्रे प्रसिद्धं, तथापि किञ्चिद्दर्श्यते—पृथिवीकायस्य संयमोपकारकत्वं स्थाननिषीदन त्वग्वर्त्तनादिना १। अप्कायस्य धावनादिजलपानादिना २। तेजस्कायस्य वायुप्रकोपादौ तप्तेष्टिका तापिकादिना ३। वायुकायस्य श्वासोच्छ्वा-

'धम्मं चरमाणस्स पंच निस्सा ठाणा पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ७ ॥

टीकार्थ-श्रुत चारित्ररूप धर्मको आसेवन करनेवाले श्रमण निर्ग्रन्थोंके धर्मोपग्रहमें कारणभूत पांच स्थान कहे गये हैं, जैसे-षड्जीवनिकायरूप षट्काय १ यह संयमका उपकारक होता है, यह बात यद्यपि शास्त्रमें प्रसिद्ध है, तब भी यहां उसे प्रकट किया जाता है-पृथिवीकायिक एक स्थान पर बैठनेमें और पार्श्व आदि परिवर्तन करनेमें सहायक होनेके कारण संयमका उपकारक होता है, अर्थात् पृथिवी पर संयमी जीव एक स्थान पर बैठता है, उस पर अपने पार्श्वभाग आदिको बदलता है, इस तरह पृथिवीकायिक जीव अपने ऊपर स्थान आदि देने रूपसे संयमके पालन करानेमें उपकारक होता है । अप्काय पान आदि क्रिया द्वारा संयमका उपकारक होता है, तेजस्कायिक वायुप्रकोप आदि के होने पर तप्त ईटसे सेंक आदि करानेरूपसे संयमका उपकारक होता

" धम्म चरमाणस्स पच निस्साठाणा पण्णत्ता " इत्यादि—

टीकार्थ-श्रुतचारित्र રૂપ ધર્મની આરાધના કરનારા શ્રમણ નિર્ગ્રંથોના ધર્મોપગ્રહમાં કારણભૂત નીચે પ્રમાણે પાંચ સ્થાન કહ્યા છે—

(૧) ષટ્જીવનિકાય રૂપ છકાય—તેઓ સંયમમાં ઉપકારક થઈ પડે છે, તે વાત તો શાસ્ત્રોમા પ્રસિદ્ધ છે તેઓ કેવી રીતે સયમમાં ઉપકારક થાય છે તે હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—પૃથ્વીકાયિક જીવો એક સ્થાન પર બેસવામા અને પડખુ ફેરવવા આદિમા સહાયક હોવાને લીધે સંયમની આરાધનામા ઉપકારક થઈ પડે છે એટલે કે સયમી જીવ એક સ્થાન પર બેસે છે અથવા તે સ્થાન પર પોતાના પાર્શ્વભાગ આદિને બદલે છે તે સ્થાન પૃથ્વીકાય રૂપ જ હોય છે આ રીતે પૃથ્વીકાયિક જીવ પોતાની ઉપર બેસવા, ઊઠવા આદિ રૂપ સ્થાન આપીને સયમના પાલનમાં સહાયક બને છે અપ્કાય પાન (પીવાની ક્રિયા) આદિ દ્વારા સયમના પાલનમા ઉપકારક બને છે, વાયુનો પ્રકોપ થાય ત્યારે તપ્ત ઇંટ વડે સેક આદિ કરાવવામા તૈજસ્કાયિક ઉપકારક

सादिना ४। वनस्पतिकायस्य पात्रपीठफलकौषधभैषज्यादिना ५। त्रसकायस्य कम्बलरजोहरणादिना मुनेः संयमोपकारकत्वमिति प्रथमनिश्रास्थानम् १। तथा गणः-गच्छोऽपि धर्मोपग्राहकः। तदुक्तम्—

" गुरुपरिवारो गच्छो, तत्थ वसंताण निज्जरा विउला।
विणयाउ तहा सारण, माईहिं न दोस पडिवत्ती ॥ १ ॥
अन्नोन्नावेक्खाए, जोगम्मि तहिं तहिं पयट्टंतो।
नियमेण गच्छवासी, असंगपयसाहगो णेओ ॥ २ ॥ "

छाया—गुरुपरिवारो गच्छ, तत्र वसतां निर्जरा विपुला।
विनयात्तथा सारणादिभिर्न दोषप्रतिपत्तिः ॥ १ ॥
अन्योन्यापेक्षया योगे तत्र तत्र पर्यटन्।
नियमेन गच्छवासी असङ्गपद् साधकोज्ञेयः ॥ २ ॥

है। वायुकाय श्वासोच्छ्वास रूपसे सहायक होनेसे संयमका उपकारक होता है, और वनस्पतिकाय पात्र पीठ, फलक आदि रूपसे एवं औषधि आदि रूपसे संयमका उपकारक होता है। तथा त्रसकाय संयमके उप कारक जो कम्बल रजोहरण आदि हैं उनके रूपसे संयमका उपकारक होता है। इस प्रकारका यह प्रथम निश्रास्थान है, तथा गणगच्छ भी धर्मो पग्राहक होता है। कहा भी है—' गुरु परिवारोगच्छो " इत्यादि।

गुरु परिवारका नाम गच्छ है, इस गच्छमें रहनेवाले मुनिजनोंके कर्मोंका विनय एवं सारण आदिसे निर्जरा अधिक होती है, तथा उसमें रहनेवालोंके चारित्रमें अतिचार आदिरूप दोष भी नहीं लगते हैं। अन्य अन्यकी अपेक्षासे उस उस योगमें विहार करता हुआ साधु

કાય પડે છે વાયુકાયિક શ્વાસોચ્છ્વાસની ક્રિયામાં સહાયક બનીને સંયમપાલનમાં સહાયભૂત બને છે વનસ્પતિકાયિક પાત્ર ફલક, પીઠ આદિ ઉપકરણો રૂપે તથા ઔષધિ આદિ રૂપે સંયમના પાલનમાં ઉપકારક બને છે ત્રસકાયની ક્ર્યાદીમાંથી સંયમીના વસ્ત્ર, રજોહરણ આદિ બને છે, તેથી તેઓ સંયમમાં ઉપકારક બને છે આ પ્રકારનું આ પ્રથમ નિશ્રાસ્થાન સમજવું

(૨) ગણ અથવા ગચ્છ સબંધું બીજુ નિશ્રાસ્થાન છે કહ્યું પણ છે કે " ગુરુપરિવારો ગચ્છો " ઇત્યાદિ—એક જ ગુરુના પરિવારને ગચ્છ કહે છે એવા ગચ્છમાં રહેનારા સાધુ દ્વારા વિનય અને સારણ આદિ વડે કર્મોની નિર્જરા અધિક થાય છે વળી ગચ્છમાં રહેનાર સાધુઓના ચારિત્રમાં અતિચાર આદિ રૂપ દોષો લાગવાનો સંભવ પણ ઓછો રહે છે અન્ય અન્યની

योगः-कुशलमनोवाक्कायोदीरणलक्षणः । असङ्गः=मोक्षः । इति द्वितीयं निश्रास्थानम् २।

तथा-राजाऽपि धर्मोपग्राहको भवति, दुष्टकृतोपद्रवतः साधूनां रक्षणात्। उक्तं चात्र—

" जिणुत्तं परमं धम्मं, पालिज्जासु कहं जणा ? ।
सिया णो धम्मिओ राया, तेयंसी पुहवीतले ॥ १ ॥ "

छाया—जिनोक्तं परम धर्मं, पालयेयुः कथं जनाः ।
स्यात् नो धार्मिको राजा, तेजस्वी पृथिवीतले ॥१॥ "

अन्यतीर्थिकैरप्युक्तम्—

" क्षुद्रलोकाकुले लोके, धर्मं कुर्युः कथं हि ते ।
क्षान्ता दान्ता अहन्तारश्चेद्राजा तान्न रक्षति ॥ १ ॥

गच्छवासी संयमी नियमसे असङ्ग पदका साधक होता है, ऐसा जानना चाहिये २। धार्मिक क्रियाओंमें कुशल मन वचन और कायका बना रहना यह यहां योग शब्दसे लिया गया है। अथवा सर्वदा मन वचन और कायकी शुद्धिका बना रहना यह योग शब्दसे गृहीत हुआ है। असङ्ग शब्दका अर्थ मोक्ष है। इस प्रकारका यह द्वितीय निश्रास्थान है २। तथा राजा भी धर्मोपकारक होता है, क्योंकि वह दुष्टजनकृत उपद्रवसे साधुओंकी रक्षा करता है। कहा भी है—

" जिणुत्तं परमं धम्मं " इत्यादि ।

इस भूमण्डल पर यदि तेजस्वी राजा न हो तो मनुष्य जिनोक्त धर्मकी आराधना कैसे कर सकते हैं। अन्य तीर्थिकोंने भी ऐसा कहा

અપેક્ષાએ તે તે યોગમાં વિચરતો ગચ્છવાસી સંયમી સાધુ નિયમથી જ અસંગ (મોક્ષ) પદનો સાધક બને છે

ધાર્મિક ક્રિયાઓમાં મન, વચન અને કાયને પ્રવૃત્ત કર્યા જ કરવા તેનું નામ યોગ છે. અથવા મન, વચન અને કાયને સર્વદા શુદ્ધ રાખવા તેનું નામ યોગ છે. 'અસંગ' એટલે 'મોક્ષ'. આ પ્રકારનું આ બીજું નિશ્રાસ્થાન છે

(૩) રાજા પણ સાધુઓને ધર્મસાધનામાં ઉપકારક થઈ શકે છે. કારણ કે દુષ્ટ લોકો દ્વારા કરાતા ઉપદ્રવોથી તે સાધુઓની રક્ષા કરે છે.

કહ્યું પણ છે કે " जिणुत्तं परमं धम्मं " ઇત્યાદિ—

આ પૃથ્વી પર જો રાજા ન હોત તો મનુષ્ય જિનોક્ત ધર્મનો આરાધના કેવી રીતે કરી શકત। અન્ય મતવાદીઓએ પણ એવું જ કહ્યું છે કે

अराजके हि लोकेऽस्मिन्, सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य, राजानमसृजत् प्रभुः ॥ २ ॥ इति। इति तृतीयं निश्रा स्थानम् ३।

तथा-गृहपति=वसत्याश्रयदाता धर्मोपकारको भवति आश्रयदायकत्वेन तस्यापि तथात्वात्। तदुक्तम्—

"धृतिर्मतिर्गतिस्तेन, दत्ता दृष्टं सुखं तथा।
गुणिभ्यः साधुवृषभ्यो, येन वास समर्पितः ॥ १ ॥" इति।

तथा—"जो देइ उवस्सयं मुणिवराण तवनियमजोगजुत्ताणं।
तेण दिण्णा वत्थन्नपाणसयणासणविगप्पा ॥ १ ॥"

है-"क्षुद्र लोकाकुले लोके" इत्यादि।

क्षुद्रलोकों से युक्त इस लोकमें अगर शांत दांत दयालु की रक्षा राजा नहीं करे तो धर्म की रक्षा कैसे किया जाय।

इन दोनों श्लोकोंका अर्थ स्पष्ट है। इस प्रकारका यह तृतीय स्थान है चतुर्थ निश्रास्थान गृहपति है, क्योंकि गृहपति शय्याशायक होता है, अतः यह धर्मोपकारक होता है, इसलिये निवासदायक होनेसे वह भी निश्रास्थान है। कहा भी है-"धृतिर्मतिर्गतिस्तेन" इत्यादि।

जिसने साधुजनोंके लिये वास प्रदान किया है उसने उनके लिये धृति मति ज्ञान और गति प्रदान की है, तथा सुख दिया है। तथा-"जो देइ उवस्सयं" इत्यादि।

जो तप नियम, योग युक्त साधुजनोंके लिये उपाश्रय देता है, वह उनके लिये शयन, आसन, वस्त्र, अन्न, पान आदि सब कुछ दिया

"क्षुद्र लोकाकुले लोके" ઇત્યાદિ આ બન્ને શ્લોકોનો અર્થ સ્પષ્ટ છે—

(૪) સાધુઓનુ ચોથુ નિશ્રાસ્થાન ગૃહપતિ (ગૃહસ્થ) છે કારણ કે ગૃહપતિ શય્યાદાયક હોય છે આ રીતે સાધુને નિવાસસ્થાન આપનાર હોવાને કારણે તેને પણ નિશ્રાસ્થાન રૂપ પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે

કહ્યું પણ છે કે "धृतिर्मतिर्गतिस्तेन" ઇત્યાદિ—

જેણે સાધુને નિવાસસ્થાન પ્રદાન કર્યું છે તેણે તેમને ધૃતિ મતિ, જ્ઞાન અને ગતિ પ્રદાન કરી છે તથા તેમને સુખ આપ્યું છે તથા "जो देइ उवस्सयं" ઇત્યાદિ—જે તપ નિયમ અને યોગયુક્ત સાધુઓને ઉપાશ્રય આપે છે, તેણે તેમને શયન, આસન, વસ્ત્ર અન્ન પાણિ આદિ સઘળું આપ્યું જ છે, એમ સમજવું આ પ્રકારનું આ ચોથુ નિશ્રાસ્થાન છે

छाया—यो ददात्युपाश्रयं यतिवरेभ्यस्तपो नियमयोगयुक्तेभ्यः।

तेन दत्ता वस्त्रान्नपानशयनासनविकल्पाः (प्रकाराः) ॥१॥ इति।

इति चतुर्थं निश्रास्थानम् ४।

तथा—शरीरमपि धर्मोपग्राहकम्। तथा चोक्तम्—

" शरीरं धर्मसंयुक्तं, रक्षणीयं प्रयत्नतः।

शरीरात् स्रवते धर्मः, पर्वतात् सलिलं यथा ॥ १ ॥ " इति।

इति पञ्चमं निश्रास्थानम् ५।

एतत्पञ्चविधनिश्रास्थानोपग्राहिका गाथा एवं निर्दिष्टा—

तथाहि—" धर्मं चरतः साधोर्लोके निश्रापदानि पञ्चैव।

राजा गृहपतिरपरः, षट्काया गणशरीरे च ॥१॥ इति। " ॥सू०७॥

समझना चाहिये इस प्रकारका यह चौथा निश्रास्थान है। तथा पांचवां निश्रास्थान धर्मोपग्राहक शरीर भी है। कहा भी है—

" शरीरं धर्मसंयुक्तं " इत्यादि।

धर्मसंयुक्त शरीरकी बडी सावधानीके साथ रक्षा करनी चाहिये क्योंकि जिस प्रकार पर्वतसे पानी झरता है, उसी प्रकार शरीरसे धर्मरूप पानी झरता है।

इन पांच प्रकारके निश्रास्थानोंमें धर्मोपग्राहिकता प्रकट करनेवाली एक यह गाथा भी है—" धर्म चरतः साधोर्लोके " इत्यादि।

धर्मका आचरण करनेवाले साधुके निश्रापद पांचही होते हैं। एक षट्काय दूसरा गण तीसरा राजा चौथा गृहपति और पांचवां शरीर है ७॥

---

(૫) સાધુઓનું પાંચમું નિશ્રાસ્થાન ધર્મોપગ્રાહક શરીર છે કહ્યું પણ છે કે " शरीरं धर्मसंयुक्तं " ઈત્યાદિ—ધર્મસંયુક્ત શરીરની ઘણી સાવધાની પૂર્વક રક્ષા કરવી જોઈએ, કારણ કે જેમ પર્વતપરથી પાણી ઝરે છે એ જ પ્રમાણે શરીરમાંથી ધર્મરૂપી પાણી ઝરે છે.

આ પાંચ પ્રકારના સ્થાનોમાં ધર્મોપગ્રાહિતા પ્રકટ કરનારી એક ગાથા નીચે પ્રમાણે છે. " धर्म चरत साधोर्लोके " ઈત્યાદિ—

ધર્મની આરાધના કરતા સાધુઓને માટે રાજા, ગૃહપતિ, છકાયના જીવો, ગણ અને શરીર એ પાંચ જ નિશ્રાસ્થાનો છે ॥ સૂ. ૭ ॥

साधु सम्बन्धीनि पञ्च निश्रास्थानान्युक्त्वा सम्प्रति निधिरूपाणि लौकिकानि पञ्च निश्रास्थानान्याह—

मूलम्--पंच णिही पण्णत्ता, तं जहा--पुत्तणिही १ मित्त णिही २ सिप्पणिही ३ धणणिही ४ धन्नणिही ५ ॥ सू० ८ ॥

छाया—पञ्च निधयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-पुत्रनिधिः १ मित्रनिधि २ शिल्प निधि ३, धननिधि ४, धान्यनिधि ५ ॥ सू० ८ ॥

टीका—' पंच णिही ' इत्यादि—

निधयः पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः, तानेवाह-तद्यथा-पुत्रनिधिः-निधीयते स्थाप्यते यत्र स निधिः=विशिष्टरत्न सुवर्णादि द्रव्यभाजन, निधिरिव निधिः, पुत्रश्चासौ निधिश्चेति । धनोपार्जनेन मातापित्रोः परितोषकतया पुत्रस्य निधित्वम् । अत एव पुत्रमुखावलोकनं पित्रोरानन्दजनकं भवति । तदुक्तम्—

" जन्मान्तरफलं पुण्यं, तपोदानसमुद्भवम् ।
सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥ १ ॥ इति ॥

इति प्रथमो निधिः १।

इस प्रकारसे साधु संबंधी पांच निश्रास्थानोंको कह कर अब सूत्रकार निधिरूप लौकिक पांच निश्रास्थानोंका कथन करते हैं—

'पंच णिही पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ८॥

निधि पांच कही गई हैं-जैसे-पुत्रनिधि १ मित्रनिधि २ शिल्प निधि ३ धननिधि ४ और धान्यनिधि ५।

विशिष्ट रत्न सुवर्णादि द्रव्यका जो भाजन होता है, वह निधि है, पुत्ररूप जो निधि है, वह पुत्रनिधि है पुत्रको जो निधिरूप कहा गया है, उसका कारण धनोपार्जन द्वारा मातापिताका परितोषक होनेसे कहा गया है, इसीलिये पुत्रके मुखका अवलोकन मातापिताको आनन्दका जनक होता है। कहा भी है—" जन्मान्तरं फलं पुण्यं ' इत्यादि।

આ રીતે સાધુઓના પાંચ નિશ્રાસ્થાનો પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર નિધિ રૂપ પાંચ લૌકિક નિશ્રાસ્થાનોનું નિરૂપણ કરે છે

'પંચ ણિહી પણ્ણત્તા' ઇત્યાદિ પાંચ પ્રકારના નિધિ કહ્યા છે-(૧) પુત્રનિધિ, (૨) મિત્રનિધિ (૩) શિલ્પનિધિ (૪) ધનનિધિ અને (૫) ધાન્યનિધિ.

વિશિષ્ટ રત્ન સુવર્ણાદિના ભાજનને નિધિ કહે છે પુત્ર રૂપ જે નિધિ છે તેને પુત્રનિધિ કહે છે પુત્રને નિધિરૂપ કહેવાનું કારણ એ છે કે તે ધનો પાર્જન કરીને માતાપિતાનું પાલન પોષણ કરે છે તેથી જ પુત્રનું દર્શન અથવા પુત્રપ્રાપ્તિ માતાપિતાને માટે આનંદજનક થઈ પડે છે કહ્યું પણ છે કે

" જન્માન્તર ફલં પુણ્યં " ઇત્યાદિ—

तथा-मित्रनिधिः-मेद्यति=स्निह्यतीति मित्रं=सुहृत्, तच्चतन्निधिश्चेति। अर्थादि साधने साहाय्यकरणेन मित्रस्यानन्दजनकत्वात् निधित्वम्। तदुक्तम्—

"कुतस्तस्यास्तु राज्यश्रीः, कुतस्तस्य मृगेक्षणाः।
यस्य शूरं विनीतं च, नास्ति मित्रं विचक्षणम्ः" ॥ १ ॥ इति।

इति द्वितीयो निधिः २।

तथा-शिल्पनिधिः-शिल्पं=चित्रादिविज्ञानं, तदेव निधिः-शिल्प-निधिः। शिल्पं च विद्याया उपलक्षणम्। तेन विद्यापि निधिरिव पुरुषार्थसाधकत्वाद् बोध्या।

तप और दानसे उत्पन्न हुआ पुण्य परलोकमें जीवोंको सुख देनेवाला होता है, परन्तु शुद्धवंशमें उत्पन्न हुई संतति परलोक एवं इहलोक दोनों लोकोंमें आनन्द देनेवाली होती है।

इस प्रकारकी यह पुत्ररूप निधि पहिली लौकिक निधि है। जो स्नेह करता है, वह मित्र सुहृत् है। सुहृत रूप जो निधि है, वह सुहृत् निधि है। मित्रको जो निधिरूप कहा गया है, उसका कारण यह है, कि वह अर्थादिके साधनमें सहायता करनेसे आनन्दजनक होता है। कहा भी है-" कुतस्तस्यास्तु राज्यश्रीः " इत्यादि।

जिसको शूर विनीत एवं विचक्षण मित्र नहीं है, उसको कहांसे तो राज्यश्री हो सकती है, और कहांसे मृगेक्षणा-मृगके जैसी नेत्रवाली प्राणप्यारी हो सकती है। इस प्रकारकी यह द्वितीय निधि है।

चित्रादिके विज्ञानका नाम शिल्प है, यह शिल्परूप जो निधि है, वह शिल्पनिधि है। शिल्प यह विद्याका उपलक्षण है, इससे पुरुषा

તપ અને દાન કરવાથી પ્રાપ્ત થતુ પુણ્ય તો જીવને પરલોકમાં જ સુખદાયી થાય છે, પણ સુપુત્ર તો આલોક અને પરલોક રૂપ બન્ને લોકમાં સુખદાયક થઇ પડે છે આ પ્રકારના આ પુત્રરૂપ નિધિને પહેલો લૌકિક નિધિ કહ્યો છે. (૨) મિત્રને બીજા લૌકિક નિધિરૂપ કહ્યો છે જે સ્નેહ કરે છે તે મિત્ર-સુહૃત્ છે. એવા મિત્રરૂપ નિધિને મિત્રનિધિ અથવા સુહૃતનિધિ કહે છે મિત્રને નિધિરૂપ કહેવાનુ કારણુ એ છે કે તે અર્થાદિની પ્રાપ્તિમાં સહાયક બનતો હોવાથી આનંદદાયક થઈ પડે છે કહ્યુ પણુ છે કે

" કુતસ્તસ્યાસ્તુ રાજ્યશ્રી ' ઈત્યાદિ—

જેને શૂર, વિનીત અને વિચક્ષણુ મિત્ર હોતો નથી તેને રાજ્યશ્રીની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે થઈ શકે અને મૃગના જેવા નયનવાળી પ્રાણુપ્યારી પણુ કેની રીતે સભવી શકે! આ પ્રકારનો આ બીજો લૌકિકનિધિ કહ્યો છે (૩) શિલ્પનિધિ—ચિત્રાદિના જ્ઞાનનુ નામ શિલ્પ છે આ પ્રકારના શિલ્પરૂપ જે નિધિ છે તેને શિલ્પનિધિ કહે છે. ' શિલ્પ ' પદ વિદ્યાનુ' ઉપલક્ષણુ

साधु सम्बन्धीनि पञ्च निश्रास्थानान्युक्त्वा सम्प्रति निधिरूपाणि लौकिकानि पञ्च निश्रास्थानान्याह—

मूलम्–पंच णिही पण्णत्ता, तं जहा–पुत्तणिही १ मित्त णिही २ सिप्पणिही ३ धणणिही ४ धन्नणिही ५॥ सू० ८॥

छाया–पञ्च निधयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–पुत्रनिधिः १ मित्रनिधि २ शिल्प निधिः ३, धननिधिः ४, धान्यनिधि ५ ॥ सू० ८ ॥

टीका—'पंच णिही' इत्यादि—

निधयः पञ्चसंख्यका प्रज्ञप्ताः, तानेवाह-तद्यथा-पुत्रनिधि –निधीयते=स्थाप्यते यत्र स निधिः=विशिष्टरत्न सुवर्णादि द्रव्यभाजनं, निधिरिव निधिः, पुत्रश्चासौ निधिश्चेति। धनोपार्जनेन मातापित्रोः परितोषकतया पुत्रस्य निधित्वम्। अत एव पुत्रमुखावलोकनं पित्रोरानन्दजनकं भवति। तदुक्तम्—

" जन्मान्तरफलं पुण्यं, तपोदानसमुद्भवम्।
सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥ १ ॥ इति ॥

इति प्रथमो निधिः १।

इस प्रकारसे साधु संबन्धी पांच निश्रास्थानोंको कह कर अब सूत्रकार निधिरूप लौकिक पांच निश्रास्थानोंका कथन करते हैं—

'पंच णिही पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र ८॥

निधि पांच कही गई हैं–जैसे–पुत्रनिधि १ मित्रनिधि २ शिल्प निधि ३ धननिधि ४ और धान्यनिधि ५।

विशिष्ट रत्न सुवर्णादि द्रव्यका जो भाजन होता है, वह निधि है, पुत्ररूप जो निधि है, वह पुत्रनिधि है पुत्रको जो निधिरूप कहा गया है, उसका कारण धनोपार्जन द्वारा मातापिताका परिपोषक होनेसे कहा गया है, इसीलिये पुत्रके मुखका अवलोकन मातापिताको आनन्दका जनक होता है। कहा भी है—" जन्मान्तरं फल पुण्य ' इत्यादि।

આ રીતે સાધુઓના પાંચ નિશ્રાસ્થાનો પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર નિધિ રૂપ પાંચ લૌકિક નિશ્રાસ્થાનોનું નિરૂપણ કરે છે

'પંચ ણિહી પણ્ણત્તા' ઇત્યાદિ પાંચ પ્રકારના નિધિ કહ્યા છે–(૧) પુત્રનિધિ, (૨) મિત્રનિધિ (૩) શિલ્પનિધિ (૪) ધનનિધિ અને (૫) ધાન્યનિધિ.

વિશિષ્ટ રત્ન સુવર્ણાદિના ભાજનને નિધિ કહે છે પુત્ર રૂપ જે નિધિ છે તેને પુત્રનિધિ કહે છે પુત્રને નિધિરૂપ કહેવાનું કારણ એ છે કે તે ધનો પાર્જન કરીને માતાપિતાનું પાલન પોષણ કરે છે તેથી જ પુત્રનું દર્શન અથવા પુત્રપ્રાપ્તિ માતાપિતાને માટે આનંદજનક થઈ પડે છે કહ્યું પણ છે કે

" જન્માન્તર ફલ પુણ્ય " ઇત્યાદિ—

टीका—'सोए' इत्यादि—

शुचिः=शुद्धिः सैव शौचम्। तच्च द्रव्यत चतुर्विधं भावत एकविधम्। पञ्च विधमपीदं शौचं तत्तन्नाम्ना व्यपदिशति, तद्यथा—पृथिवीशौचम्—पृथिव्या=मृत्तिकया शौच शुद्धिः—शरीरादिषु मृत्तिकाया घर्षणापलेपनेन ततो मलदुर्गन्धदूरीकरणमित्यर्थः। इति प्रथमं शौचम्। तथा=अप्शौचम्—अद्भिः=जलैः शौचम्=प्रक्षालनम् २। तेजः शौचम्—तेजसा=अग्निना तद्विकारेण भस्मना वा शौचम् ३। मन्त्र शौचम्—मन्त्रेण=शुचिविद्यया शौचम् ४। तथा—पञ्चम ब्रह्मशौचम्—ब्रह्म—ब्रह्मचर्यादि कुशलानुष्ठानं, तदेव शौचं ब्रह्मशौचम्। अनेन सत्यशौचं तपः शौचम् इन्द्रियनिग्रहशौच सर्वभूतदयाशौचम् चेति चतुर्विधमपि शौच गृहीतम्—

सोए पंचविहे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र ९॥

टीकार्थ—शौच पांच प्रकारका कहा गया है जैसे—पृथिवी शौच १ अप्शौच २ तेजः शौच ३ मन्त्र शौच ४ और ब्रह्मचर्य शौच ५ शुद्धिका नाम शौच है, यह द्रव्यकी अपेक्षा चार प्रकारका कहा गया है, और भावकी अपेक्षा एक प्रकारका कहा गया है, पाँच प्रकारके भी इस शौचको सूत्रकारने उस २ नामसे कहा है, जैसे पृथिवीशौच आदि—मृत्तिका द्वारा जो शुद्धि की जाती है वह पृथिवीशौच है, मिट्टीसे हाथोंको धोना शरीर पर मिट्टी लगाना इत्यादि लौकिक क्रियाएँ इस पृथिवी शौचमें आ जाती हैं। जलसे शुद्धि करना यह अप् शौच है। तेज अग्निसे या राखसे शुद्धि करना यह तेजः शौच है मंत्र से शुचि विद्यासे जो शुद्धि करता है यह मन्त्र शौच है, ब्रह्मचर्य आदि कुशल अनुष्ठान करना यह ब्रह्मशौच है। इससे सत्यशौच, तपः शौच, इन्द्रिय

શૌચોને પ્રકટ કરે છે 'सोए पचविहे पण्णत्ते" ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ–શૌચના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પૃથ્વીશૌચ, (૨) અપ્શૌચ, (૩) તેજઃશૌચ, (૪) મ ત્રશૌચ, અને (૫) બ્રહ્મચર્યશૌચ

શૌચ એટલે શુદ્ધિ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ શૌચના પૃથ્વીશૌચથી લઈને મ ત્રશૌચ પર્યન્તના ચાર પ્રકાર સમજવા અને ભાવની અપેક્ષાએ તેનો બ્રહ્મચર્યશૌચ નામનો એક જ પ્રકાર સમજવો.

માટી દ્વારા શરીરની જે શુદ્ધિ થાય છે તેનુ નામ પૃથ્વીશૌચ છે માટી વડે હાથની શુદ્ધિ કરવી, શરીર પર માટીનો લેપ કરવો આદિ લૌકિક ક્રિયાઓને આ પૃથ્વીશૌચ રૂપ કહી શકાય છે પાણી વડે શરીર આદિની શુદ્ધિ કરવી તેનું નામ અપ્શૌચ છે પ્રકાશ, અગ્નિ અથવા રાખ વડે શુદ્ધિ કરવી તે તેજઃશૌચ છે. મ ત્ર વડે (શુચિ વિદ્યા વડે) શુદ્ધિ કરવી તેનું નામ મંત્રશૌચ છે. બ્રહ્મચર્ય આદિ કુશલ અનુષ્ઠાન કરવા તેનું નામ બ્રહ્મશૌચ છે ...

उक्तञ्च—

" विद्यया राजपूज्यः स्यात्, विद्यया सर्वमान्यता ।
विद्या हि सर्वलोकस्य, वशीकरणकारणम् " ॥ १ ॥ इति ।

इति तृतीयो निधिः ३। तथा-धननिधिः=कोशः । धान्यनिधिश्च कोष्ठागार इति चतुर्थपञ्चमौ निधी । ४ । ५ ॥ सू० ८ ॥

इत्थं निधिः पञ्चविध मोक्तः, स च द्रव्यतः पुत्रादिः, भावतस्तु कुशलानुष्ठानरूपं ब्रह्मचर्यं, तदस्य शौचत्वेन विवक्षन् अन्यान्यपि शौचानि माह—

मूलम्—सोए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविसोए १ आउसोए २ तेउसोए ३ मंतसोए ४ बंभसोए ॥५॥ सू० ९ ॥

छाया—शौचं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथिवीशौचम्, १ अप्शौचम् २, तेजःशौचम् ३, मन्त्रशौचम् ४, ब्रह्मशौचम् ५ ॥ सू० ९ ॥

धनका साधनरूप होनेसे विद्या भी निधिकी तरह समझनी चाहिये। कहा भी है-" विद्यया राज्यपूज्यः स्यात् " इत्यादि ।

मनुष्य विद्यासे राज्यपूज्य हो सकता है, और विद्यासे वह सर्व मान्य भी हो सकता है, क्योंकि विद्या सर्वलोकको वशमें करनेका एक वशीकरण मन्त्र है इस प्रकारका यह तृतीय निधिस्थान है ।

इसी प्रकारसे कोश और धान्यागार रूप जो निधि है, वह चतुर्थ पंचम निधि है ४-५ ॥ सू० ८ ॥

इस प्रकारसे पांच निधियोंका कथन किया इनमें द्रव्यरूप निधि पुत्रादिक है और भावरूपनिधि कुशलानुष्ठानरूप ब्रह्मचर्य है इसको शौचरूपसे कहनेकी इच्छावाले आचार्य अब अन्य शौचोंका कथन करते हैं

કેમકે તે વિદ્યાને પણ નિધિરૂપ સમજવી વિદ્યા જ પુરુષાર્થમાં સાધનરૂપ બને છે કહ્યું પણ છે કે " विद्यया राज्यपूज्यः स्यात् " ઇત્યાદિ—

વિદ્યાને કારણે મનુષ્ય રાજા વડે પણ પૂજાય છે વિદ્યા વડે મનુષ્ય સમસ્ત લોકોમાં માનનીય બને છે કારણ કે વિદ્યા સમસ્ત મનુષ્યોને વશ કરવામાં વશીકરણ મંત્રની ગરજ સારે છે આ પ્રકારનો આ ત્રીજો નિધિ સમજવો. એ જ પ્રમાણે કોશ અને ધાન્યાગાર રૂપ જે ચોથી અને પાંચમી નિધિ છે, તેને વિષે પણ સમજવું ॥ સૂ. ૮ ॥

આ પ્રકારના પાંચ નિધિઓનું કથન કરવામાં આવ્યું તેમાંથી પુત્રાદિકને દ્રવ્ય રૂપ નિધિ સમજવા. કુશલાનુષ્ઠાન રૂપ બ્રહ્મચર્યને ભાવરૂપ નિધિ સમજવો તેને શૌચ રૂપે પ્રકટ કરવાની અભિલાષાવાળા સૂત્રકાર હવે અન્ય

सूर्यदृष्टं तु यद्दृष्टं, तद्दिव्यमृषयो विदुः ।

पार्थिवं च मृदा स्नानं, मनः शुद्धिस्तु मानसम् ॥ ४ ॥" इति ॥सू०९॥

पूर्वसूत्रे ब्रह्मशौचमुक्तम् तच्च जीवशुद्धिरूपम् । जीवं तु छद्मस्थो न विजानाति केवली तु विजानातीति सम्बन्धाच्छद्मस्थकेवलिनोरज्ञेयज्ञेयपदार्थान् पञ्चधा प्रतिपादयति—

मूलम्-पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ, ण पासइ, तं जहा-धम्मत्थिकायं १ अधम्मत्थिकायं २ आगासत्थिकायं ३ जीवं असरीरपडिबद्धं ४, परमाणुपोग्गलं ५। एयाणि चेव उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ धम्मत्थिकायं जाव परमाणुपोग्गलं ॥सू० १०॥

छाया—पञ्च स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा-धर्मास्तिकायम् १ अधर्मास्तिकायम् २ आकाशास्तिकायम् ३ जीवम् अशरीरप्रतिबद्धं ४ परमाणुपुद्गलम् ५। एतान्येव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति-धर्मास्तिकायं यावत् परमाणुपुद्गलम् ॥सू०१०॥

जो स्नान किया जाता है, वह वायव्य स्नान है, सूर्यका आताप लेना यह दिव्य स्नान है, मृत्तिका से जो स्नान है, वह पार्थिव स्नान है, और मनकी शुद्धि करना यह मानस स्नान है ॥ सू० ९ ॥

इस प्रकारसे यह शौच कहा है, यह शौच जीवकी शुद्धि रूप होता है, छद्मस्थ जीवको नहीं जानता है, केवलीही जीवको जानते हैं, सो इस सम्बन्धको लेकर अबसूत्रकार छद्मस्थ और केवलीके जो अज्ञेय ज्ञेय पदार्थ हैं, उनके पांच प्रकारोंका कथन करते हैं--

'पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ इत्यादि' सूत्र १० ॥

નામ વાયવ્યસ્નાન છે. સૂર્યના તડકા વડે જે આતાપના લેવાય છે, તેનું નામ દિવ્યસ્નાન છે. માટી વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ પાર્થિવસ્નાન છે. અને મનની શુદ્ધિ કરવા રૂપ માનસસ્નાન હોય છે ॥ સૂ. ૯ ॥

આ પ્રકારના આ શૌચ કહ્યાં છે તે શૌચ જીવની શુદ્ધિરૂપ હોય છે. છદ્મસ્થ મનુષ્ય જીવને જાણતો નથી, કેવલી જ જીવને જાણે છે. આ પ્રકારના સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર છદ્મસ્થ અને કેવલીને જે અજ્ઞેય અને જ્ઞેય પદાર્થો છે તેમના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

" सत्य शौच तपः शौच, शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया शौचं, जलशौच च पञ्चमम् ॥ १ ॥ " इति ।

अन्यतीर्थिकैः पुनरिद शौचं सप्तविध मोक्त तथाहि—

" सप्तस्नानानि प्रोक्तानि, स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
द्रव्यभावविशुद्धयर्थम्, ऋषीणां ब्रह्मचारिणाम् ॥ १ ॥
आग्नेय वारुणं ब्राह्म, वायव्य दिव्यमेव च ।
पार्थिवं मानस चैव स्नानं सप्तविधं स्मृतम् ॥ २ ॥
आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्यतु वारुणम् ।
आपोहिष्ठामयं ब्राह्म वायव्यं तु गवां रजः ॥ ३ ॥

निग्रह शौच और सर्वभूत दया शौच ये जो चार प्रकारके शौच हैं, वह भी गृहीत हो जाता है। कहा भी है—

" सत्यं शौच तपः शौच " इत्यादि ।

अन्य तीर्थिकोंने जो सात प्रकारका शौच कहा है वह इस प्रकारसे है–" सप्त स्नानानि प्रोक्तानि " इत्यादि ।

ऋषी ब्रह्मचारियोंका द्रव्य एवं भावकी शुद्धिके लिये स्वयंभूने ये सात स्नान कहे हैं–आग्नेय १ वारुण २ ब्राह्म ३ वायव्य ४ दिव्य ५ पार्थिव ६ और मानस स्नान ७ इनमें जो राखसे स्नान किया जाता है, वह आग्नेय स्नान है, जलसे जो स्नान किया जाता है, वह वारुण स्नान है मंत्रसे जो स्नान किया जाय वह ब्रह्मस्नान है, गोधूलिसे

શૌચમાં સત્યશૌચ, તપશૌચ, ઇન્દ્રિય નિગ્રહશૌચ અને સર્વભૂત દયાશૌચનો પણ સમાવેશ થઈ જાય છે કહ્યું પણ છે કે—

" સત્ય શૌચ તપઃ શૌચ " ઇત્યાદિ

અન્ય તીર્થિકોએ સાત પ્રકારના જે શૌચ કહ્યા છે, તે નીચે પ્રમાણે છે ' સપ્તસ્નાનાનિ પ્રોક્તાનિ " ઇત્યાદિ—

બ્રહ્મચારી ઋષિઓની દ્રવ્યશુદ્ધિ અને ભાવશુદ્ધિ નિમિત્તે સ્વયંભૂએ સાત સ્નાન કહ્યાં છે—(૧) આગ્નેય, (૨) વારુણ, (૩) બ્રહ્મ, (૪) વાયવ્ય, (૫) દિવ્ય, (૬) પાર્થિવ અને (૭) માનસ સ્નાન.

રાખથી જે સ્નાન કરાય છે તેનું નામ આગ્નેય સ્નાન છે પાણી વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ વારુણ સ્નાન છે મંત્ર વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ બ્રહ્મસ્નાન છે ગોધૂલિ વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું

सूर्यदृष्टं तु यद्दृष्टं, तद्दिव्यमृषयो विदुः ।

पार्थिवं च मृदा स्नानं, मनः शुद्धिस्तु मानसम् ॥ ४ ॥" इति ॥सू०९॥

पूर्वसूत्रे ब्रह्मशौचमुक्तम् तच्च जीवशुद्धिरूपम् । जीवं तु छद्मस्थो न विजानाति केवली तु विजानातीति सम्बन्धाच्छद्मस्थकेवलिनोरज्ञेयज्ञेयपदार्थान् पञ्चधा प्रतिपादयति—

मूलम्-पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ, ण पासइ, तं जहा-धम्मत्थिकायं १ अधम्मत्थिकायं २ आगासत्थिकायं ३ जीवं असरीरपडिबद्धं ४, परमाणुपोग्गलं ५। एयाणि चेव उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ धम्मत्थिकायं जाव परमाणुपोग्गलं ॥सू० १०॥

छाया—पञ्च स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा-धर्मास्तिकायम् १ अधर्मास्तिकायम् २ आकाशास्तिकायम् ३ जीवम् अशरीरप्रतिबद्धं ४ परमाणुपुद्गलम् ५। एतान्येव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति-धर्मास्तिकायं यावत् परमाणुपुद्गलम् ॥सू०१०॥

जो स्नान किया जाता है, वह वायव्य स्नान है, सूर्यका आताप लेना यह दिव्य स्नान है, मृत्तिका से जो स्नान है, वह पार्थिव स्नान है, और मनकी शुद्धि करना यह मानस स्नान है ॥ सू० ९ ॥

इस प्रकारसे यह शौच कहा है, यह शौच जीवकी शुद्धि रूप होता है, छद्मस्थ जीवको नहीं जानता है, केवलीही जीवको जानते हैं, सो इस सम्बन्धको लेकर अबसूत्रकार छद्मस्थ और केवलीके जो अज्ञेय ज्ञेय पदार्थ हैं, उनके पांच प्रकारोंका कथन करते हैं--

'पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ इत्यादि' सूत्र १० ॥

નામ વાયવ્યસ્નાન છે સૂર્યના તડકા વડે જે આતાપના લેવાય છે, તેનુ નામ દિવ્યસ્નાન છે. માટી વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ પાર્થિવસ્નાન છે. અને મનની શુદ્ધિ કરવા રૂપ માનસસ્નાન હોય છે. ॥ સૂ. ૯ ॥

આ પ્રકારના આ શૌચ કહ્યાં છે તે શૌચ જીવની શુદ્ધિરૂપ હોય છે. છદ્મસ્થ મનુષ્ય જીવને જાણતો નથી, કેવલી જ જીવને જાણે છે. આ પ્રકારના સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર છદ્મસ્થ અને કેવલીને જે અજ્ઞેય અને જ્ઞેય પદાર્થો છે તેમના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

टीका—' पंच ठाणाइं ' इत्यादि—

छद्मस्थः-अवधिज्ञानमनःपर्ययज्ञानवर्जितो मुनिः पञ्चस्थानानि सर्वभावेन=साक्षात्कारेण=प्रत्यक्षतयेत्यर्थः, न जानाति न पश्यति । तानि स्थानान्याह-तद्यथा-धर्मास्तिकायमित्यादि । तत्र=अशरीरप्रतिबद्धम्=शरीरवर्जितं जीवम् । परमाणुपुद्गलम्-परमाणुश्चासौ पुद्गलश्चेति तम् । इदं द्व्यणुकादीनामप्युपलक्षणम्, तेन द्व्यणुकादीनपि छद्मस्थः साक्षात्कारेण नो जानाति नो पश्यति । श्रुतज्ञानेन

टीकार्थ-अवधिज्ञान एवं मनः पर्ययज्ञानसे रहित मुनिरूप छद्मस्थ इन पांच स्थानोंको सर्वभावसे साक्षात् रूपसे प्रत्यक्षरूपसे नहीं जानता है, नहीं देखता है, ये पांच स्थान इस प्रकारसे हैं धर्मास्तिकाय १ अधर्मास्तिकाय २ आकाशास्तिकाय ३ अशरीरप्रतिबद्ध जीव ४ और परमाणु पुद्गल ५ । इन्हीं पांच स्थानोंको उत्पन्नज्ञानदर्शनधारी अर्हन्त जिन केवली सर्वभावसे साक्षात् रूपसे जानते हैं देखते हैं। ये पांच स्थान धर्मास्तिकाय यावत् परमाणु पुद्गल हैं । अवधिज्ञान एवं मन पर्यवज्ञान वाले जीव भी छद्मस्थ जीवमें गृहीत किये गये हैं, अतः वे यहां गृहीत न हों इसीलिये टीकाकारने उन्हें वर्जित किया है, अशरीर प्रतिबद्धका भाव है, शरीरसे रहित जीव परमाणु पुद्गल द्व्यणुक आदिका उप लक्षण है, अतः जैसा यह छद्मस्थ परमाणु पुद्गलको साक्षात् नहीं जानता है, उसी प्रकारसे यह द्व्यणुक आदिको भी साक्षात् रूपसे नहीं जानता

' पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ ' इत्यादि—

અવધિજ્ઞાન અને મન પર્યવજ્ઞાનથી રહિત એવા છદ્મસ્થ મુનિ આ પાંચ સ્થાનોને સર્વભાવે, સાક્ષાત્ રૂપે પ્રત્યક્ષ રૂપે જાણતો નથી. (૧) ધર્માસ્તિકાય (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય, (૪) અશરીર પ્રતિબદ્ધ જીવ અને (૫) પરમાણુ પુદ્ગલ

એ જ પાંચ સ્થાનોને ઉત્પન્ન જ્ઞાન દર્શનધારી અર્હંત જિન કેવલી સર્વભાવે-સાક્ષાત્ રૂપે જાણે છે અને દેખે છે એટલે કે ધર્માસ્તિકાયથી લઈને પરમાણુ પુદ્ગલ પર્યન્તના પાંચે સ્થાનોને કેવળજ્ઞાની જ પ્રત્યક્ષ રૂપે જાણી શકે છે અને દેખી શકે છે અવધિજ્ઞાની અને મનઃપર્યવજ્ઞાનવાળા જીવને પણ છદ્મસ્થ જ ગણવામાં આવે છે તેથી તેમને અહીં ગૃહીત કરવાના ન હોવાથી સૂત્રકારે તેમને અહીં વર્જિત કર્યા છે 'અશરીર પ્રતિબદ્ધ" એટલે શરીરથી રહિત જીવ પરમાણુ પુદ્ગલ દ્વ્યણુક આદિનું ઉપલક્ષણ છે તે છદ્મસ્થ જેમ પરમાણુ પુદ્ગલને સાક્ષાત્ રૂપે જાણતો નથી, એ જ પ્રમાણે તે દ્વ્યણુક આદિને પણ સાક્ષાત્ રૂપે જાણતો નથી. શ્રુતજ્ઞાનની સહાયતાથી જ

तु धर्मास्तिकायादीन् जानात्येवेति अत्रेदं बोध्यम्-अवधिज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी च यद्यपि छद्मस्थ एव तथापि स नेह विवक्षितः धर्मास्तिकायादीनां चतुर्णां साक्षात्कारेण ज्ञानाभावेऽपि परमाणुपुद्गलस्य साक्षात्कारेण ज्ञानात्। ननु सर्वभावेन इत्यस्य सर्वपर्यायेण इत्यर्थः, एव च अवधिज्ञानी मन'पर्ययज्ञानी च सर्वपर्यायेण परमाणुपुद्गलं न जानातीति छद्मस्थपदेन अवधिमन पर्ययज्ञानिनोरपि ग्रहणे

है, श्रुतज्ञानको सहायतासेही जानता है, तात्पर्य ऐसा है-यद्यपि अवधिज्ञानी मनः पर्ययज्ञानी छद्मस्थही हैं, परन्तु यहां उनकी विवक्षा नहीं हुई है, क्योंकि वे परमाणु पुद्गलको तो साक्षात् रूपसे जानते हैं, भलेही वे धर्मास्तिकायादिक चारको साक्षात् रूपसे नहीं जानते।

शंका—"सर्वभाव" इस पदका अर्थ है, सर्वपर्यायसे अतः अवधिज्ञानी एवं मनः पर्ययज्ञानी जो जीव है, वह सर्वभावसे सर्वपर्यायसे परमाणुपुद्गलको जानता नहीं है, इसलिये छद्मस्थ पदसे अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी इनका भी ग्रहण कर लिया जावे तो क्या हानि है?

उत्तर—"सर्वभावेन" इस पदका अर्थ यदि "सर्वपर्यायः" ऐसा माना जाय और ऐसा मानकर यह कहा जायकि अशरीर प्रतिबद्ध जीवको छद्मस्थ सर्व पर्यायरूपसे साक्षात् नहीं जानता है, साक्षात् नहीं देखता है, तो इसका भाव ऐसा होता है, कि वह शरीर प्रतिबद्ध

જાણે છે આ કથનનુ તાત્પર્ય એવુ છે કે અવધિજ્ઞાની અને મન પર્યયજ્ઞાની છદ્મસ્થ જ છે, છતાં પણ અહીં તેમની વિવક્ષા થઈ નથી કારણ કે તેઓ પરમાણુ પુદ્ગલને તો સાક્ષાત રૂપે જાણે જ છે, ભલે તેઓ ધર્માસ્તિકાય આદિ ચારને સાક્ષાત્ રૂપે જાણતા નથી

શંકા—"સર્વભાવ" આ પદનો અર્થ 'સર્વપર્યાયની અપેક્ષાએ' થાય છે તેથી અવધિજ્ઞાની અને મનઃપર્યયજ્ઞાની જે જીવો છે, તેઓ સર્વભાવે, સર્વપર્યાયની અપેક્ષાએ—પરમાણુ પુદ્ગલને જાણતા નથી, એવું સિદ્ધ થાય છે તો પછી છદ્મસ્થ પદ વડે અવધિજ્ઞાની અને મન પર્યયજ્ઞાનીને પણ ગ્રહણ કરવામાં શો વાંધો છે?

ઉત્તર—"સર્વભાવેન" આ પદનો અર્થ જો "સર્વ પર્યાય રૂપે" માનવામાં આવે, તો અને એ પ્રકારનો અર્થ માનીને જો એવું કહેવામાં આવે કે "અશરીર પ્રતિબદ્ધ જીવને છદ્મસ્થ સર્વ પર્યાય રૂપે સાક્ષાત્ જાણતો નથી અને સાક્ષાત્ દેખતો નથી," તો તેના દ્વારા એવો ભાવ પ્રકટ થાય છે

न चापि हानिरितिचेत्, अत्रोच्यते—यदि सर्वभावेन इत्यस्य सर्वपर्यायेण इत्यर्थः स्वीक्रियते, तर्हि 'अशरीरमतिबद्ध जीवं छद्मस्थः सर्वपर्यायेण न जानाति न पश्यतीत्युक्ते शरीरमतिबद्ध जीवं तु सर्वपर्यायेण जानाति पश्यतीत्यर्थो गम्यते। न च शरीरमतिबद्ध जीवम् अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी च सर्वपर्यायेण जानाति। अतः सर्वभावेन' इत्यस्य 'साक्षात्कारेण' इत्येवार्थो युक्तः। परमाणु पुद्गलं तु साक्षात्कारेण अवध्यादिज्ञानीजानात्येव, अतः—छद्मस्थपदेनात्र अवध्यादि रहित एव ग्राह्य इति। जिनस्तु एतानि पञ्च स्थानानि साक्षात्कारेण जानाति-इत्याह- एयाणि चेव' इत्यादि इति ॥सू० १०॥

पूर्वोक्त धर्मास्तिकायाद्यतिरिक्तानप्यतीन्द्रियभावान् जिनो जानातीत्यधोलोकोर्ध्वलोकवर्तीन् अतीन्द्रियान् भावान् पञ्च स्थानकत्वेनाह—

मूलम्—अहोलोएणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया पण्णत्ता, तं जहा—काले १ महाकाले २ रोरुए ३ महा

जीवको साक्षात जानता है, और साक्षात् देखता है, परन्तु ऐसा अर्थ मानना भी संगत नहीं होता है क्योंकि अवधिज्ञानी और मनःपर्यय ज्ञानी जीवको शरीर प्रतिबद्ध जीवको सर्वपर्याय सहित न जानता है, और न देखता है, इसलिये "सर्वभाव" पदका अर्थ "साक्षात्कार" ऐसाही यहां करना चाहिये "सर्वपर्याय" ऐसा नहीं करना चाहिये अतः ऐसी अर्थ संगतिमें कोई दोष नहीं आता है, क्योंकि अवधिज्ञान आदिवाले जीव परमाणु पुद्गलको साक्षात् रूपसे जानतेही हैं। इसलिये छद्मस्थ पदसे यहां अवधिज्ञान आदिसे वर्जित पुरुषही लेना चाहिये। जिन भगवान् तो इन पांच स्थानोंको साक्षात् रूपहीसे जानते हैं, यही बात "एयाणि चेव" इत्यादि सूत्र पाठ द्वारा प्रकटकी गई है।सू०१०॥

કે તે શરીર પ્રતિબદ્ધ જીવને સાક્ષાત જાણે છે અને સાક્ષાત દેખે છે પરન્તુ એવો અર્થ પણ સંગત લાગતો નથી કારણ કે અવધિજ્ઞાની અને મનઃપર્યવ જ્ઞાની મનુષ્ય શરીર પ્રતિબદ્ધ જીવને સર્વપર્યાય સહિત જાણતો નથી અને દેખતો નથી તેથી સર્વભાવ પદનો અર્થ અહીં 'સાક્ષાત્કાર' જ કરવો જોઈએ 'સર્વપર્યાય' એવો અર્થ અહીં કરવો જોઈએ નહીં તેથી એવી અર્થસંગતિમાં કોઈ દોષ રહેતો નથી કારણ કે અવધિજ્ઞાન આદિવાળો જીવ પરમાણુ પુદ્ગલને સાક્ષાત્ રૂપે જાણે જ છે તેથી છદ્મસ્થ પદ દ્વારા અહીં અવધિજ્ઞાન આદિથી રહિત પુરુષને જ ગ્રહણ કરવો જોઈએ જિનેન્દ્ર ભગવાન તો આ પાંચે સ્થાનને સાક્ષાત રૂપે જાણે છે એજ વાતને "એયાણિ ચેવ" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે ॥ સૂ. ૧૦ ॥

रोरुए ४ अप्पइट्ठाणे ५। उड्ढलोए णं पंच अणुत्तरा महइमहालया महाविमाणा पण्णत्ता, तं जहा-विजए १ वेजयंते २ जयंते ३ अपराजिए ४ सव्वट्ठसिद्धे ॥ सू० ११ ॥

छाया--अधोलोके खलु पञ्च अनुत्तरा महातिमहालयाः महानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कालो १ महाकालो २ रौरवो ३ महारौरवः ४ अप्रतिष्ठानः ५। ऊर्ध्वलोके खलु पञ्च अनुत्तरा महातिमहालया महाविमानाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-विजयो १ वैजयन्तो २ जयन्तः ३ अपराजित. ४ सर्वार्थसिद्ध ५ ॥सू० ११॥

इन पूर्वोक्त धर्मास्तिकाय आदिसे अतिरिक्त भी अतीन्द्रिय पदार्थोंको जिन भगवान् जानते हैं, यही बात प्रकट करनेके लिये अधोलोकवर्ती उर्ध्वलोकवर्ती अतीन्द्रिय भावोंकी प्ररूपणा अब सूत्रकार पांच स्थानोंसे करते हैं---'अहोलोएणं पंच अणुत्तरा' इत्यादि सूत्र ११॥

सूत्रार्थ--इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है-अधोलोकमें सात पृथिवी हैं उनमें जो सातवीं पृथिवी है, उसमें पांच अनुत्तर बहुत बड़े विशाल महानिरय कहे गये हैं, उनके नाम इस प्रकारसे हैं-काल १ महाकाल २, रौरव ३, महा रौरव ४, और अप्रतिष्ठान ५, उर्ध्वलोकमें पांच नाम अनुत्तर महाविमान जो कि बहुत बडे विशाल कहे गये हैं, उनके नाम इस प्रकारसेहैं-विजय१ वैजयन्त २ जयन्त ३ अपराजित ४ और सर्वार्थ सिद्ध ५।

આ પૂર્વોક્ત ધર્માસ્તિકાય આદિ સિવાયના અન્ય અતીન્દ્રિય પદાર્થોને પણ જિન ભગવાન જાણે છે એ જ વાતને પ્રકટ કરવા માટે સૂત્રકાર હવે અધોલોકવર્તી અને ઉર્ધ્વલોકવર્તી અતીન્દ્રિય ભાવોની પ્રરૂપણા પાંચ સ્થાનોની અપેક્ષાએ કરે છે " અહોલોએણ પંચ અણુત્તરા " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ છે અધોલોકમાં સાત પૃથ્વી (રત્નપ્રભા આદિ નરકો) છે તેમાંની જે સાતમી પૃથ્વી છે તેમાં પાંચ અનુત્તર (ઘણાજ વિશાળ) નરકવાસો આવેલા છે. તેમના નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) કાલ, (૨) મહાકાલ, (૩) રૌરવ, (૪) મહારૌરવ અને (૫) અપ્રતિષ્ઠાન.

ઉર્ધ્વલોકમાં પંચ અનુત્તર મહાવિમાનો છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) વિજય, (૨) વૈજયન્ત, (૩) જયન્ત, (૪) અપરાજિત અને (૫) સર્વાર્થસિદ્ધ.

टीका--' अधोलोए ' इत्यादि--

व्याख्या स्पष्टा । नवरम्-अधोलोके सप्तमपृथिव्याम् । अनुत्तरा'-नास्ति उत्तरः=उत्कृष्टो येभ्यस्ते-सर्वोत्कृष्टा इत्यर्थः । सर्वोत्कृष्टत्वं तु उत्कृष्टवेदनादिमत्त्वात्, ततः परं नरकाभावाद् वा बोध्यम् । महातिमहालयाः-अतिमहान्त-अतिविशाला इत्यर्थः । अति महत्त्वमादितश्चतुर्णां क्षेत्रतोऽप्यसङ्ख्यातयोजनत्वेन बोध्यम् । अप्रतिष्ठानो यद्यपि क्षेत्रतो योजनलक्षप्रमाण एव तथापि तत्रत्यानां नारकजीवानामायुषोऽतिमहत्त्वात्तस्य महत्त्वं बोध्यमिति । एवमूर्ध्वलोकेऽपि विज्ञेयम्, न वरम् ऊर्ध्वलोके सातावेदनादित्वं बोध्यम् ॥ सू० ११॥

टीकार्थ-इस सूत्रकी व्याख्या स्पष्टहै, जिनकी अपेक्षा कोई और उत्कृष्ट नहीं होता है, वे अनुत्तर हैं-सर्वोत्कृष्ट हैं । सर्वोत्कृष्टता इनमें उत्कृष्टवेदनावाले होनेसे आई है । अथवा-इनके बाद और नरक नहीं है, इस कारण भी इनमें उत्कृष्टता कही गई है, महातिमहालय शब्दका अर्थ अति विशाल है। इनमें अतिविशालता आदिके चारोंमें क्षेत्रकी अपेक्षा असख्यात योजनके होनेसे है । अप्रतिष्ठान यद्यपि क्षेत्रकी अपेक्षा १ लाख योजनकाही है । तब भी यहांके नारक जीवोंकी आयु अति महान् है, इसलिये इसमें इस अपेक्षा अति महत्ता कही गई है। इसी तरहका कथन उर्ध्वलोकमें भी जानना चाहिये। यहां पर जो महत्ता प्रकट की गई है वह " सातावेदनीयका तीव्र उदय रहता है, अतः उससे यहां सातवेदन आदिका प्रकृष्ट अनुभव होता रहता है " इस अपेक्षासे प्रकट की गई है ॥ सू० ११॥

टीकार्थ-જેના કરતાં કોઈ પણ ઉત્કૃષ્ટ ન હોય તેને અનુત્તર અથવા સર્વોત્કૃષ્ટ કહે છે કાલ, મહાકાલ આદિ પાંચ નરકવાસોમાં ઉત્કૃષ્ટ વેદનાવાળા નારકોને કારણે સર્વોત્કૃષ્ટતા સમજવી. અથવા તે નરકાવાસોની નીચે બીજો કોઈ પણ નરકો નહીં હોવાને કારણે પણ તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા સમજવી. 'મહાતિમહાલય' એટલે 'અતિ વિશાળ' પહેલા ચાર નરકાવાસો અસંખ્યાત યોજનપ્રમાણ હોવાને કારણે તેમનામાં ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અતિ વિશાળતા સમજવી. જો કે અપ્રતિષ્ઠાન નામનો પાંચમો નરકાવાસ એક લાખ યોજનપ્રમાણ જ છે, છતાં પણ તેમાં નારકોનું આયુષ્ય અતિ મહાન હોવાથી તે દૃષ્ટિએ તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે

એજ પ્રકારનું કથન ઉર્ધ્વલોકના પાંચ અનુત્તર વિમાનો વિષે પણ સમજવું. ત્યાં સાતાવેદનીયનો તીવ્ર ઉદય રહે છે તેથી તે અનુત્તર વિમાન નિવાસી દેવો સાતાવેદનીય આદિનો પ્રકૃષ્ટ અનુભવ કરે છે તે કારણે તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે ॥ સૂ ૧૧ ॥

अनुत्तरनरकेषु अनुत्तरविमानेषु च विशिष्टसत्त्वा एव पुरुषा गच्छन्तीति पञ्चविधान् पुरुषानाह—

मूलम्—पंच पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हिरिसत्ते १ हिरिमणसत्ते २ चलसत्ते ३ थिरसत्ते ४ उदयणसत्ते ५ ॥सू०१२॥

छाया—पञ्च पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ह्रीसत्त्वः १ ह्रीमनः सत्त्वः २ चलसत्त्वः ३ स्थिरसत्त्वः ४ उदयनसत्त्वः ५ ॥सू० १२॥

टीका—'पंच पुरिसजाया' इत्यादि—

पुरुषजातानि=पुरुष प्रकाराः पञ्च प्ररूपितानि। तान्येवह्—तद्यथा—ह्रीसत्त्वः—ह्रिया=लज्जया सत्त्वं=स्थितिः—अवष्टम्भः अविचलत्वमिति यावत् परीषहेषु यस्य संयतस्य संग्रामादिषु वा यस्य संयतेतरपुरुषस्य सः।१। तथा—ह्रीमनःसत्त्वः—ह्रिया=मनस्येव सत्त्वं न तु शरीरे, शीतादौ कम्पादि-विकारदर्शनाद् यस्य सः

अनुत्तर नारकोंमें और अनुत्तर विमानोंमें विशिष्ट शक्तिशाली पुरुषही जाते हैं, इसलिये अब सूत्रकार पांच प्रकार के पुरुष का कथन करते हैं—'पंच पुरिसजाया पण्णत्ता' इत्यादि सूत्र १२ ॥

टीकार्थ—पुरुष जात पांच कहे गये हैं जैसे—ह्रीसत्त्व १ ह्रीमनः सत्त्व २ चल सत्त्व ३ स्थिर सत्त्व ४ और उदयन सत्त्व ५ जिस संयतकी परीषहके आने पर लज्जावश अपने संयम भावसे अविचलता बनी रहती है, वह ह्रीसत्त्व है, अथवा संयतसे इतर जिस प्राणीकी संग्राम आदिकोंमें लज्जाके वशसे स्थिरता रहती है, वह ह्री सत्त्व है, लज्जासे स्थिति अविचलता जिसकीहै ऐसा वह प्राणी ह्री सत्त्वहै। लज्जाके वश जिसके

અનુત્તર નરકોમાં અને અનુત્તર વિમાનોમા વિશિષ્ટ શક્તિશાળી જીવો જ જાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર પ.ચ પ્રકારના પુરુષોનુ કથન કરે છે.

"પચ પુરિસજાયા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-પુરુષોના નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) હ્રી સત્ત્વ, (૨) હ્રીમન સત્ત્વ, (૩) ચલ સત્ત્વ, (૪) સ્થિર સત્ત્વ અને (૫) ઉદયન સત્ત્વ.

પરીષહો આવી પડે ત્યારે જે સંયત લજ્જાને કારણે પોતાના સયમ ભાવમાંથી ચલાયમાન થતો નથી—અવિચલ જ રહે છે તેને હ્રીસત્ત્વ કહે છે. અથવા સગ્રામ આદિમાં લજ્જાને કારણે જે માણુસ અવિચલ રહે છે તેને હ્રીસત્ત્વ કહે છે. આ રીતે લજ્જાને કારણે જ જેની અવિચલતા ટકી રહી છે એવા જીવને હ્રીસત્ત્વ કહે છે. લજ્જાને કારણે જેના મનમા જ માત્ર હ્રીસત્ત્વ

।२। चलसत्त्वः-चलम्=अस्थिरं सत्त्वं यस्य सः ।३। अचलसत्त्वः-अचलम्=स्थिरं सत्त्वं यस्य सः ।४। तथा-उद्यनसत्त्वः-उत्=ऊर्ध्वम् अयनं=गमनं यस्य तत् उदयनम्-उद्यगामि प्रवर्द्धमानमिति यावत् सत्त्वं यस्य स इति पञ्चम ५ ॥१२॥

अनन्तरं सत्त्ववान् पुरुषः पञ्चप्रकारत्वेन प्रोक्तः। सत्त्ववान् पुरुषः प्रायो भिक्षुरेवेति तत्स्वरूपं सदृष्टान्तमाह—

मूलम्—पंच मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोयचारी १, पडिसोयचारी २ अंतचारी ३ मज्झचारी ४। एवमेव पंच भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा अणुसोयचारी १ जाव सव्वचारी ५ ॥ सू० १३ ॥

छाया—पञ्च मत्स्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अनुस्रोतश्चारी १ प्रतिस्रोतश्चारी २ अन्तचारी ३ मध्यचारी ४ सर्वचारी ५। एवमेव पञ्च भिक्षाका प्रज्ञप्ताः तद्यथा-अनुस्रोतश्चारी १ यावत् सर्वचारी ५ ॥ सू० १३॥

केवल मनमेंही ह्रीमत्त्व स्थिरता रहती है, शरीरमें नहीं क्योंकि शीत आदिके समयमें शरीरमें कम्पादि विकार देखा जाता है, ऐसा वह प्राणी ह्रीमनाः सत्त्व है। जिसका सत्त्व अस्थिर होता है ऐसा वह प्राणी चल सत्त्व है, जिसका सत्त्व-चल स्थिर होता है, ऐसा वह प्राणी अचल सत्त्व है। और जिसका सत्त्व प्रवर्द्धमान होता है, ऐसा वह प्राणी उदयन सत्त्व है ॥ सू० १२ ॥

सत्त्ववान् पुरुष पांच प्रकारका कहा अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि सत्त्ववान् पुरुष प्रायः भिक्षुही होता है अतः भिक्षुका स्वरूप दृष्टान्त पूर्वक प्रगट किया जाता है-' पंच मच्छा पण्णत्ता ' इत्यादि सूत्र १३॥

સ્થિરતા રહે છે-શરીરમાં રહેતી નથી (કારણ કે શીતાદિને અવસરે તેના શરીરમાં કંપાદિ વિકાર નજરે પડે છે), એવા જીવને " હ્રીમના સત્ત્વ " કહે છે અસ્થિર સત્ત્વવાળા જીવને ' ચલસત્ત્વ " કહે છે જેનું સત્ત્વ (મનોબળ) સ્થિર હોય છે એવા જીવને ' અચલ સત્ત્વ " કહે છે જેનું સત્ત્વ પ્રવર્ધમાન હોય છે એવા જીવને " ઉદયન સત્ત્વ ' કહે છે ॥ સૂ ૧૨ ॥

સત્ત્વવાન્ પુરુષના પાંચ પ્રકાર પ્રકટ કરવામાં આવ્યા સામાન્ય રીતે ભિક્ષુ (સાધુ) જ સત્ત્વવાન્ હોઈ શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર દૃષ્ટાન્ત સહિત ભિક્ષુના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે " પંચ મચ્છા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

टीका--' पंच मच्छा ' इत्यादि--

मत्स्याः पञ्च संख्यका भवन्ति। तत्र प्रथमः-अनुस्रोतश्चारी-प्रवाहानुकूलचरणशीलः।१। प्रतिस्रोतश्चारी=प्रवाहसंमुखचरणशीलः २। अन्तचारी=पार्श्वचारी ३। मध्यचारी=मध्यभागे संचरणशीलः ४। तथा-सर्वचारी=अनुस्रोतः प्रतिस्रोतोऽन्तमध्येपु सर्वत्र सचरणशील ५। इति। इत्थं दृष्टान्तमुक्त्वा सम्प्रति दार्ष्टान्तिकमाह-' एवमेव ' इत्यादि। एवमेव=अनेनैव प्रकारेण पञ्च संख्यका भिक्षवोऽपि भवन्ति। तत्र कश्चित अनुस्रोतश्चारी=उपाश्रयसमीपात् क्रमेण भिक्षार्थं चरणशीलः

टीकार्थ—मत्स्य पांच प्रकारके कहे गये हैं-जैसे-अनुस्रोतश्चारी १ प्रतिस्रोतश्चारी २ अन्तचारी ३ मध्यचारी ४ और सर्वचारी ५ इसी प्रकारसे पांच भिक्षुक कहे गये हैं जैसे-अनुस्रोतश्चारी १ यावत् सर्वचारी ५।

जो मत्स्य प्रवाहके अनुकूल चलनेके स्वभाववाला होता है, वह अनुस्रोतश्चारी होता है जो प्रवाहके समुख चलनेके स्वभाववाला होता है, वह प्रतिस्रोतश्चारी होता है, जो पार्श्वमें चलनेके स्वभाववाला होता है, वह पार्श्वचारी होता है, जिसका स्वभाव मध्यभागमें संचरण करनेका होता है, वह मध्यचारी है, और जिसका स्वभाव प्रवाहके अनुकूल प्रवाहके प्रतिकूल चलनेका एवं अन्तमें और मध्यमें चलनेका होता है वह सर्वचारी है, इसी तरहसे भिक्षु भी पांच प्रकारके होते हैं, इनमें कोई एक भिक्षु ऐसा होता है, जो उपाश्रयके पाससेही क्रमशः भिक्षा करनेके स्वभाववाला होता है, ऐसा वह भिक्षु अनुस्रोतश्चारी

ટીકાર્થ–મત્સ્યના નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અનુસ્રોતચારી, (૨) પ્રતિસ્રોતચારી, (૩) અન્તચારી, (૪) મધ્યચારી અને (૫) સર્વચારી

એ જ પ્રમાણે ભિક્ષુકના પણ અનુસ્રોતચારી આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે

જે મત્સ્ય પ્રવાહના વહેણુની દિશામા જ ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે, તેને અનુસ્રોતચારી કહે છે જે મત્સ્ય પ્રવાહના વહેણુની વિરૂદ્ધની દિશામા ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે તેને પ્રતિસ્રોતચારી કહે છે જે પ્રવાહની બાજુમા ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે, તેને અન્તચારી કહે છે જે મત્સ્ય પ્રવાહના મધ્યભાગમા સચરણુ કરનારો હોય છે, તેને મધ્યચારી કહે છે જે મત્સ્ય પ્રવાહની દિશામા, પ્રવાહની સામે, પ્રવાહની પડખે અને પ્રવાહના મધ્યભાગમા સંચરણુ કરનારો હોય છે તેને સર્વચારી કહે છે. એ જ પ્રમાણે ભિક્ષુક પણુ પાચ પ્રકારનો હોય છે. જે ભિક્ષુક ઉપાશ્રયની નજીકના ઘરથી શરૂ કરીને ક્રમશ. અન્ય ઘરોમાથી ભિક્ષા પ્રાપ્ત કરનારો હોય છે તેને અનુ

१। प्रतिस्रोतश्चारी-दूरादारभ्य उपाश्रयसमीपं यावत् क्रमेण भिक्षार्थं संचरणशीलः २। अन्तचारी=पार्श्वक्षेत्रेषु भिक्षार्थं संचरणशीलः ३। मध्यचारी=ग्राममध्ये यो भिक्षार्थं चरति सः ४। तथा सर्वचारी-भिक्षार्थं सर्वत्र चरति च सः ५ इति १३॥

भिक्षोरधिकारात् सम्प्रति भिक्षुविशेषान् वनीपकानाह--

मूलम्-पंच वणीमगा पण्णत्ता, तं जहा-अतिहिवणीमए, १ किविणवणीमए २, माहणवणीमए ३, साणवणीमए ४, समणवणीमए ५ ॥ सू० १४ ॥

छाया—पञ्च वनीपकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अतिथिवनीपकः १, कृपण वनीपकः, २ ब्राह्मणवनीपकः ३ श्ववनीपकः ४ श्रमणवनीपकः ५ ॥सू० १४।

कहा गया है, जो भिक्षु दूरसे लेकर उपाश्रयके समीप तक क्रमशः भिक्षा करनेके स्वभाववाला होता है ऐसा वह भिक्षु प्रतिस्रोतश्चारी होता है, जो आजूबाजूके घरोंमें भिक्षा करनेके स्वभाववाला होता है, ऐसा वह भिक्षु मध्यचारी है, तथा जो भिक्षु भिक्षाके लिए सर्वत्र फिरता है, ऐसा वह भिक्षु सर्वचारी है ॥ सू० १३ ॥

भिक्षुके अधिकारको लेकर अब सूत्रकार भिक्षु विशेष जो वनीपक हैं, उनका कथन करते हैं-'पंच वणीमगा पण्णत्ता' इत्यादि

टीकार्थ-वनीपक शब्दका अर्थ याचकहै, ऐसे ये वनीपक पांच प्रकारके कहे गये हैं जैसे-अतिथि वनीपक १ कृपण वनीपक २ ब्राह्मण

स्रोतचारी कहे छे जे भिक्षु दूरना घरोथी शरू करीने क्रमशः उपाश्रयना समीपना घरोमांथी भिक्षा प्राप्त करनारो होय छे तेने प्रतिस्रोतचारी कहे छे जे भिक्षु उपाश्रयनी आसपासना घरोमांथी भिक्षाचर्या करनारो होय छे तेने अन्तचारी कहे छे, जे भिक्षु गामनी मध्यना घरोमां भिक्षाचर्या करनारो होय छे तेने मध्यचारी कहे छे जे भिक्षु भिक्षाप्राप्ति माटे सर्वत्र फरे छे तेने सर्वचारी कहे छे ॥ सू १३ ॥

आगला सूत्रमां भिक्षुना पांच प्रकारोनुं कथन करवामां आव्युं हवे सूत्रकार वनीपक (याचक) नामना भिक्षुविशेषनुं निरूपण करे छे

" पंच वणीमगा पण्णत्ता " इत्यादि—

" वनीपक " एटले याचक एवा वनीपकना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कह्या छे—(१) अतिथि वनीपक (२) कृपण वनीपक, (३) ब्राह्मण वनीपक, (४) श्ववनीपक अने (५ श्रमण वनीपक

टीका--' पंच वणीमगा ' इत्यादि--

वनीपकाः-वन्वते=याचन्ते ये ते-याचका इत्यर्थः । स्वभक्तान् प्रशंसादिभि र्दानाभिमुखकारका इत्यर्थः । ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । तानेवाह-तद्यथा-अतिथि वनीपकः-भोजनकाले उपतिष्ठमानोऽतिथिः-सोऽतिथिदानप्रशंसया स्वभक्ताद् दातुराहारादिकं याचतेऽतः सोऽतिथिवनीपक इत्युच्यते ।

अतिथिदानप्रशंसा यथा--

" पाएण देइ लोगो, उवगारिसु परिजिएसु जुसिएसु ।
जो पुण अद्धाखिन्नं अतिहिं पूएइ तं दाणं ॥१॥"

छाया-प्रायेण ददाति लोकः उपकारिभ्यः परिचितेभ्योजुष्टेभ्यः ।
यः पुनरध्वखिन्नमतिथिं पूजयति तद्दानमिति ॥१॥

वनीपक ३ श्ववनीपक ४ और श्रमण वनीपक ५ जो प्रशंसा आदि द्वारा अपने भक्तोंको दानके अभिमुख करनेवाले होते हैं वे वनीपक हैं। इनमें जो वनीपक भोजन कालमें आता है, और अतिथि दानकी प्रशंसासे अपने भक्त दातासे आहार आदिकी याचना करते हैं, ऐसा वह याचक अतिथिवनीपक है अतिथि दानकी प्रशंसा इस प्रकारसे है—

" पाएण देइ लोगो इत्यादि ।

लोक प्रायः उपकारीके लिये या परिचितजनके लिये या सेवा करनेवालेके लिये जो कुछ बनता है, वह देता है पर वह दान नहीं है, पर दान वही है जो मार्गसे चलकर आये हुए खिन्न अतिथिजनके लिये प्रत्युपकारकी आकाङ्क्षा किये विना आहारादि देता है, कृपणवनीपक

જેઓ પ્રશંસા આદિ દ્વારા પોતાના ભક્તોને દાન કરવાને પ્રેરે છે, તેમને 'વનીપક' કહે છે. જે વનીપક ભોજન કરવાને સમયે આવીને અતિથિદાનની પ્રશંસા કરીને દાતા પાસેથી આહારાદિની યાચના કરે છે, તે વનીપક (યાચક) ને 'અતિથિ વનીપક' કહે છે અતિથિદાનની પ્રશંસા આ પ્રમાણે કરવામાં આવી છે. " पाएण देइ लोगो " ઈત્યાદિ—

સામાન્ય રીતે તો લોકો ઉપકારીજનોને અથવા પરિચિતજનોને અથવા પોતાની સેવા કરનાર લોકોને કંઈને કંઈ આપે છે-યથાશક્તિ મદદ કરે છે, પરન્તુ આ પ્રકારની મદદને દાન કહી શકાય નહીં. દાન તો તેને જ કહી શકાય કે જે કોઈ પણ પ્રકારના પ્રત્યુપકારની આકાંક્ષા વિના આપવામાં આવે છે આગણે આવીને ઊભેલા કોઈ દુઃખી અને અજાણ્યા અતિથિને જે આહારાદિનું દાન કરાય છે તેને જ સાચું દાન કહે છે.

१। प्रतिस्रोतश्चारी-दूरादारभ्य उपाश्रयसमीपं यावत् क्रमेण भिक्षार्थं सेचरणशीलः २। अन्तचारी=पार्श्वक्षेत्रेषु भिक्षार्थं सचरणशीलः ३। मध्यचारी=ग्राममध्ये यो भिक्षार्थं चरति सः ४। तथा सर्वचारी-भिक्षार्थं सर्वत्र चरति यः सः ५ इति १३॥

भिक्षोरधिकारात् सम्प्रति भिक्षुविशेषान् वनीपकानाह--

मूलम्-पंच वणीमगा पण्णत्ता, तं जहा-अतिहिवणीमए, १ किविणवणीमए २, माहणवणीमए ३, साणवणीमए ४, समणवणीमए ५ ॥ सू० १४ ॥

छाया--पञ्च वनीपकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अतिथिवनीपकः १, कृपण वनीपकः, २ ब्राह्मणवनीपक ३ श्ववनीपकः ४ श्रमणवनीपकः ५ ॥सू० १४।

कहा गया है, जो भिक्षु दूरसे लेकर उपाश्रयके समीप तक क्रमशः भिक्षा करनेके स्वभाववाला होता है ऐसा वह भिक्षु प्रतिस्रोतश्चारी होता है, जो आजूबाजूके घरोंमें भिक्षा करनेके स्वभाववाला होता है, ऐसा वह भिक्षु मध्यचारी है, तथा जो भिक्षु भिक्षाके लिये सर्वत्र फिरता है, ऐसा वह भिक्षु सर्वचारी है ॥ सू० १३ ॥

भिक्षुके अधिकारको लेकर अब सूत्रकार भिक्षु विशेष जो वनीपक हैं, उनका कथन करते हैं-'पंच वणीमगा पण्णत्ता' इत्यादि

टीकार्थ-वनीपक शब्दका अर्थ याचक है, ऐसे ये वनीपक पांच प्रकारके कहे गये हैं जैसे-अतिथि वनीपक १ कृपण वनीपक २ ब्राह्मण

स्रोतश्चारी કહે છે જે ભિક્ષુ દૂરના ઘરથી શરૂ કરીને ક્રમશઃ ઉપાશ્રયના સમીપના ઘરોમાંથી ભિક્ષા પ્રાપ્ત કરનારો હોય છે તેને પ્રતિસ્રોતશ્ચારી કહે છે જે ભિક્ષુ ઉપાશ્રયની આસપાસના ઘરોમાંથી ભિક્ષાચર્યા કરનારો હોય છે તેને અન્તચારી કહે છે, જે ભિક્ષુ ગામની મધ્યના ઘરોમાં ભિક્ષાચર્યા કરનારો હોય છે તેને મધ્યચારી કહે છે જે ભિક્ષુ ભિક્ષાપ્રાપ્તિ માટે સર્વત્ર ફરે છે તેને સર્વચારી કહે છે ॥ સૂ ૧૩ ॥

આગલા સૂત્રમાં ભિક્ષુના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરવામાં આવ્યું હવે સૂત્રકાર વનીપક (યાચક) નામના ભિક્ષુવિશેષનું નિરૂપણ કરે છે

"પંચ વણીમગા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

'વનીપક" એટલે યાચક એવા વનીપકના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અતિથિ વનીપક, (૨) કૃપણ વનીપક, (૩) બ્રાહ્મણ વનીપક, (૪) શ્વવનીપક અને (૫ શ્રમણ વનીપક

टीका--' पंच वणीमगा ' इत्यादि--

वनीपकाः-वन्वते=याचन्ते ये ते-याचका इत्यर्थः । स्वभक्तान् प्रशंसादिभि र्दानाभिमुखकारका इत्यर्थः । ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ता । तानेवाह-तद्यथा-अतिथि वनीपकः-भोजनकाले उपतिष्ठमानोऽतिथिः-सोऽतिथिदानप्रशंसया स्वभक्ताद् दातुराहारादिकं याचतेऽतः सोऽतिथिवनीपक इत्युच्यते ।

अतिथिदानप्रशंसा यथा--

" पाएण देइ लोगो, उवगारिसु परिजिएसु जुसिएसु ।
जो पुण अद्धाखिन्नं अतिहिं पूएइ तं दाणं ॥१॥"

छाया-प्रायेण ददाति लोकः उपकारिभ्यः परिचितेभ्योजुष्टेभ्यः ।
यः पुनरध्वखिन्नमतिथि पूजयति तद्दानमिति ॥१॥

वनीपक ३ श्ववनीपक ४ और श्रमण वनीपक ५ जो प्रशंसा आदि द्वारा अपने भक्तोंको दानके अभिमुख करनेवाले होते हैं वे वनीपक हैं। इनमें जो वनीपक भोजन कालमें आता है, और अतिथि दानकी प्रशंसासे अपने भक्त दातासे आहार आदिकी याचना करते हैं, ऐसा वह याचक अतिथिवनीपक है अतिथि दानकी प्रशंसा इस प्रकारसे है—

" पाएण देइ लोगो इत्यादि ।

लोक प्रायः उपकारीके लिये या परिचितजनके लिये या सेवा करनेवालेके लिये जो कुछ बनता है, वह देता है पर वह दान नहीं है, पर दान वही है जो मार्गसे चलकर आये हुए खिन्न अतिथिजनके लिये प्रत्युपकारकी आकाङ्क्षा किये विना आहारादि देता है, कृपणवनीपक

જેઓ પ્રશંસા આદિ દ્વારા પોતાના ભક્તોને દાન કરવાને પ્રેરે છે, તેમને 'વનીપક' કહે છે. જે વનીપક ભોજન કરવાને સમયે આવીને અતિથિદાનની પ્રશંસા કરીને દાતા પાસેથી આહારાદિની યાચના કરે છે, તે વનીપક (યાચક) ને 'અતિથિ વનીપક' કહે છે અતિથિદાનની પ્રશંસા આ પ્રમાણે કરવામાં આવી છે. " પાएण देइ लोगो " ઈત્યાદિ—

સામાન્ય રીતે તો લોકો ઉપકારીજનોને અથવા પરિચિતજનોને અથવા પોતાની સેવા કરનાર લોકોને કંઈને કંઈ આપે છે-યથાશક્તિ મદદ કરે છે, પરન્તુ આ પ્રકારની મદદને દાન કહી શકાય નહીં દાન તો તેને જ કહી શકાય કે જે કોઈ પણ પ્રકારના પ્રત્યુપકારની આકાંક્ષા વિના આપવામાં આવે છે આંગણે આવીને ઊભેલા કોઇ દુઃખી અને અજાણ્યા અતિથિને જે આહારાદિનું દાન કરાય છે તેને જ સાચુ દાન કહે છે.

कृपणवनीपकः-कृपणो दरिद्रः, स एव वनीपकः। योहि स्वस्य दारिद्र्यप्रदर्शन पुरस्सर स्वस्मै दीयमान दान प्रशंसति स कृपणवनीपकः। कृपणदानप्रशंसा यथा-

" किविणेसु दुम्मणेसु य, अबंधवायंकि जुंगियंगेसु।
पूयाहिज्जेलोए, दाणपडागं हरइ देंतो ॥१॥

छाया--कृपणेभ्यो दुर्मनोभ्यश्च अबान्धवातङ्किजुङ्गिताङ्गेभ्यः।
पूजार्हे लोके दानपताकां हरति ददत् ॥१॥ इति।

ब्राह्मणवनीपकः यो हि ब्राह्मणाय दीयमानं दानं प्रशंसन् भिक्षार्थं चरति सः। ब्राह्मणदानप्रशंसा यथा—

" लोगाणुग्गहकारिसु, भूमीदेवेसु बहुफलं दाणं।
अविणाम पसबंधुसु, किं पुण छक्कम्मनिरयाणं ॥१॥"

ये हैं, जो अपनी दरिद्रताके प्रकाशनपूर्वक अपने लिये दिये जा रहे दानकी प्रशंसा करता है। कृपणदानकी प्रशंसा इस प्रकारसे है—

" किविणेसु दुम्मणेसु य " इत्यादि।

जिनका कोई बन्धु नहीं है, आतङ्कसे जो सदा युक्त बने रहते हैं, शरीर जिनका उपाङ्ग आदिसे रहित हो रहा है, ऐसे कृपण दुःखित जनोंके लिये जो देता है,वह अपनी दान पताकाको इस लोकमें फहराता है।

जो वनीपक ब्राह्मणके लिये दिये जाते दानकी प्रशंसा करता हुआ भिक्षाके लिये भ्रमण करता है, वह ब्राह्मण वनीपक है, ब्राह्मण दान प्रशंसा इस प्रकारसे है-" लोगाणुग्गहकारिसु " इत्यादि।

लोकका अनुग्रह करनेवाले भूमिदेवोंमें ब्राह्मणोंमें दिया गया दान

જે યાચક પોતાની ગરીબાઈ પ્રકટ કરીને દાતા પાસે દાન માગે છે અને પોતાને આપવામાં આવતા દાનની પ્રશંસા કરે છે તેને 'કૃપણ વનીપક' કહે છે. કૃપણદાનની પ્રશંસા આ પ્રમાણે કરી છે—'કિવિણેસુ દુમ્મણેસુ ય' ઇત્યાદિ જેમને કોઈ બંધુ નથી, જેઓ સદા આતંકથી યુક્ત જ રહ્યા કરે છે. જેમનું શરીર ઉપાંગ આદિથી રહિત હોય એવા કૃપણ દુઃખિત જનોને જે માણસ દાન આપે છે તે પોતાની યશપતાકાને આ લોકમાં ફરકાવે છે.

જે વનીપક (યાચક) બ્રાહ્મણને અપાતા દાનની પ્રશંસા કરી કરીને દાતા પાસેથી દાનની યાચના કરે છે તેને બ્રાહ્મણ વનીપક કહે છે. બ્રાહ્મણને અપાતા દાનની આ પ્રમાણે પ્રશંસા કરવામાં આવે છે.

' લોગાણુગ્ગહકા સુ " ઇત્યાદિ—

લોકોનું કલ્યાણ કરનાર ભૂદેવોને (બ્રાહ્મણોને) અપવામાં આવતું દાન

छाया—लोकानुग्रहकारिषु भूमिदेवेषु बहुफलं दानम् ।
अपि नाम ब्रह्मबन्धुषु किं पुनः षट्कर्मनिरतेषु ।१।। इति ।

ब्रह्मबन्धवः=जन्मना ब्राह्मणा न तु कर्मणा ।

तथा—श्ववनीपकः—श्वार्थं वनीपकः । श्वभ्यो दीयमानस्य दानस्य प्रशंसा यथा—

" अविणाम होज्ज सुलभो, गोणाईणं तणाइ आहारो ।
छिच्छिक्कारहयाणं, न हु सुलभो होज्ज सुणयाणं ।।१।।
केलासभवणा एए, गुज्झगा आगया महिं ।
चरंति जक्खरूवेणं, पूयाऽपूया हियाऽहिया ।।२।।"

छाया—अपि नाम भवेत् सुलभो गवादीनां तृणादिराहारः ।
छिच्छीकारहतानां न खलु सुलभो भवेत् शुनकानाम् ।।१।।
कैलासभवनादेते गुह्यका आगता महीम् ।
चरन्ति यक्षरूपेण पूजिता अपूजिता हिता अहिताः ।।२।। इति।

बहुत फलवाला होता है, जब ऐसी बातहै तो फिर षट्कर्म निरत ब्रह्मबन्धुओंमें दिये गये दानकी बातही क्या कहनी ? यहां ब्रह्मबन्धुसे जो जन्मसे ब्राह्मण है, कर्मसे नहीं ऐसा ब्राह्मण लिया गया है ।

जो कुत्तोंके लिये वनीपक होता है, वह श्ववनीपक है, वह कुत्तोंके लिये दिये गये दानकी प्रशंसा इस प्रकारसे करता है-" अविणाम होज्ज सुलभो " इत्यादि ।

गवादिकोंके लिये तो तृणादिका आहार सुलभ होता है, परन्तु छिछीकारसे हत हुए कुत्तोंको आहार सुलभ नहीं होता है, ये कुत्ते, कैलासभवनसे आये हुए गुह्यक-देव विशेष हैं। ये यक्षरूपसे पृथ्वी

ઘણું જ ફલદાયી ગણાય છે' તો પછી ષટ્કર્મ નિરત બ્રહ્મબન્ધુઓને અર્પણ કરાતા દાનના ફળની તો વાત જ શી કરવી ! અહીં ભૂદેવ પદ જન્મે બ્રાહ્મણ કર્મે બ્રાહ્મણ નહીં એવા બ્રાહ્મણનું વાચક છે. અને " બ્રહ્મબન્ધુ " પદ જન્મે પણ બ્રાહ્મણ અને કર્મે પણ બ્રાહ્મણનું વાચક છે.

જે વનીપક કૂતરાઓને નિમિત્તે અપાતાં દાનની પ્રશંસા કરે છે તેને ' શ્વવનીપક ' કહે છે કૂતરાને માટે અપાતાં દાનની આ પ્રમાણે પ્રશંસા કરવામાં આવે છે.

ગાયઆદિને તો ઘાસચારો આદિ આહાર સરળતાથી પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ જેના પ્રત્યે લોકો નફરતથી જુવે છે અને જેને લોકો હડધૂત કરે છે એવા કૂતરાઓને તો આહારપ્રાપ્તિ દુર્લભ થઇ પડે છે તે કૂતરાઓ કૈલાસ ભવનમાંથી આવેલા ગુહ્યકો (દેવવિશેષો) છે. તેઓ યક્ષ રૂપે ભૂમિપર સંચરણ

यक्षाः-देवविशेषाः। एते पूजिता-भोजनादिना सत्कृता हिताय, अपूजिता अहिताय भवन्तीति भाव। तथा-श्रमणवनीपकाः निर्ग्रन्थशाक्यतापसगैरिकाजीवकरूपः पञ्चविधः श्रमणाः। तत्र निर्ग्रन्थो वनीपको न भवति। शाक्यादय एव वनीपका उच्यन्ते। तत्र शाक्यश्रमणवनीपकदानप्रशंसा यथा—

" भुंजंति चित्तकम्मट्ठिया य कारुणिय दाणरुइणो य।
अविकामगद्दभेसु वि न नस्सए किंपुण जईसु ॥१॥

छाया—भुञ्जन्ति चित्रकर्मे स्थिता इव कारुणिका दानरुचयश्च।
अपि नाम कामगर्दभेषु अपि न नश्यति किं पुनर्यतिषु ॥१॥ इति।

कामगर्दभाः-विषयलोलुपास्तेषु दत्तं दानमपि न नश्यति किं पुनर्यतिषु दत्तम् एवमेव तापसवनीपकादि दानप्रशंसाऽपि अवगन्तव्येति। सू० १४॥

पर चलते रहते हैं। भोजनादिसे जो इनका सत्कार करता है, वह उसके हितके लिये होता है और जो इनका सत्कार नहीं करता है, वह उसके अहितके लिये होता है।

श्रमणवनीपक-निर्ग्रन्थ, शाक्य, तापस, गैरिक और आजीवकके भेदसे पांच प्रकारका है, इनमें जो निर्ग्रन्थ होता है, वह वनीपक नहीं होता है, किन्तु जो शाक्य आदि होते हैं, वे ही वनीपक कहलाते हैं। इनमें शाक्य श्रमण वनीपक दान प्रशंसा इस प्रकारसे है-" भुंजंति चित्तकम्मट्ठिया " इत्यादि।

जो प्राणी विषयोंमें लोलुप हैं उनमें दिया गया दान भी जब नष्ट नहीं होता है, तो फिर यति जनोंमें दिया गया दान निष्फल कैसे हो सकता है। इसी प्रकारसे दानकी प्रशंसा जानना चाहिये ॥सू० १४॥

કરતા રહે છે ભોજનાદિ વડે તેમનો સત્કાર કરનારનું કલ્યાણ થાય છે, અને તેમને [illegible] જનાદિ વડે તૃપ્ત નહીં કરનારનું અહિત થાય છે

[illegible]ના પાંચ પ્રકાર છે—(૧) નિર્ગ્રંથ, (૨) શાક્ય, (૩) તાપસ, (૪) [illegible] (૫) [illegible] જીવક તેમાંથી જે નિર્ગ્રંથ હોય છે, તેઓ વનીપક [illegible] આદિ જ વનીપક હોય છે શાક્યશ્રમણ વનીપકને [illegible] આ પ્રમાણે કરવામાં આવી છે [illegible] ' ઇત્યાદિ

[illegible] મનુષ્યને દેવામાં આવેલું દાન પણ જો નષ્ટ થતું નથી, તો [illegible] વાત જ શી કરવી! આ પ્રકારની દાનની [illegible]

अनन्तरसूत्रे पञ्चविधो वनीपकः प्रोक्तः । स च साध्वाभासो न तु साधुः । साधुश्च अचेल एव भवतीति अचेलत्वस्य पञ्च प्रशंसा स्थानानि प्राह--

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवइ, तं जहा-अप्पापडिलेहा १, लाघविए पसत्थे २, रूवे वेसासिए ३, तवे अणुण्णाए ४, विउले इंदियनिग्गहे ५ ॥ सू० १५ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैरचेलकः प्रशस्तो भवति, तद्यथा—अल्पा प्रतिलेखा १, लाघविकं प्रशस्तम् २, रूपं वैश्वासिकम् ३, तपः अनुज्ञातम् ४, विपुल इन्द्रिय निग्रहः ५।१५।

टीका--'पंचहिं ठाणेहिं' इत्यादि--

अचेलकः—न सन्ति चेलानि=वस्त्राणि यस्य सः । स च जिनकल्पिकस्थविरकल्पिकभेदेन द्विविधः । तत्र जिनकल्पिकस्याचेलत्वं चेलाभावादेव । स्थविर कल्पिकस्तु अत्यल्पमूल्यकपरिमितजीर्णमलिन–वस्त्रधारकः । अचेलकत्वं चास्य

अनन्तर सूत्रमें जो पांच प्रकारके वनीपक कहे गये हैं, सो वनीपक साध्वा भासरूप होते हैं, सच्चे साधु नहीं होते हैं । क्योंकि सत्य साधु जो होता है, वह तो अचेलही होता है, इसलिये अब सूत्रकार अचेलताके पांच प्रशंसा स्थानोंका कथन करते हैं—

पंचहिं ठाणेहिं अचेलए इत्यादि सूत्र १५ ॥

टीकार्थ--जिसको वस्त्र नहीं होते हैं, वह अचेलक है, यह अचेलक जिन कल्पिक और स्थविरकल्पिकके भेदसे दो प्रकारका होता है, इनमें चेलके अभावसे जिनकल्पिकमें अचेलता है । तथा जो स्थविरकल्पिक हैं, उनमें जो अचेलता आती है, वह अत्यल्प मूल्यवाले परि-

---

આગલા સૂત્રમા વનીપકના પાચ પ્રકારનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. તે વનીપક સાચા સાધુ હોતા નથી–તેઓ તો સાધુ હોવાનો ભાસ જ કરાવે છે સાચો સાધુ તો અચેલ (વસ્ત્રરહિત) જ હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર અચેલના પાચ પ્રશસાસ્થાનોનું કથન કરે છે.

" પંચહિં ઠાણેહિં અચેલર " ઇત્યાદિ—

જેમને વસ્ત્ર હોતાં નથી તેમને અચેલક કહે છે. તે અચેલકના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકર કહ્યા છે—(૧) જિનકલ્પિક અને (૨) સ્થવિર કલ્પિક. ચેલ (વસ્ત્ર) ના અભાવને લીધે જિનકલ્પિકમાં અચેલતા કહી છે. સ્થવિર કલ્પિકોમાં અલ્પમૂલ્યવાળાં, પરિમિત, જીર્ણશીર્ણ અને મલિન વસ્ત્રોને ધારણ કરવાને

तपोभिर्बहिष्करणमितिभाव, तद्योगात्साधुरपि पाराञ्चिक । स सक्षेपेण द्विविधः आशातना पाराञ्चिकः, प्रतिसेवनापाराञ्चिकश्च । तत्र स प्रत्येक स चारित्रा-चरित्रभेदेन द्विविध , तथाहि—सचरित्र आशातनापाराञ्चिकः, अचरित्र आशातना पाराञ्चिको वा । एवं सचरित्रः प्रतिसेवनापाराञ्चिकः, अचरित्र प्रतिसेवनापारा ञ्चिको वा । परिणाममपराधं चाश्रित्य क्वचित् केनाऽपि प्रतिसेवितेन पदेन सर्वं चारित्रं भ्रश्यति, क्वचिद्देशतो भ्रश्यति । एवं क्वचित्तुल्यऽपराधेऽपि परिणाम वशान्नानाप्रकारेण प्रायश्चित्तदानं भवति, क्वचित्तुल्ये परिणामेऽपि अपराधनानात्वे

पाराञ्चिक है, "पाराञ्चिक" यह दशवा प्रायश्चित्त है इसमें लिङ्ग क्षेत्र काल-तप इनसे पाराञ्ची को बाहर करना होता है इस कारण इस प्राय श्चित्त के सम्बन्ध से साधु को भी पाराञ्चिक कह दिया गया है, यह संक्षेप से दो प्रकार का होता है-एक आशातना पाराञ्चिक, और दूसरा -प्रतिसेवना पाराञ्चिक, इनमें प्रत्येक के भी दो दो भेद हैं, जैसे-सच रित्र आशातना पाराञ्चिक, और अचरित्र आशातना पाराञ्चिक, सचरित्र प्रतिसेवना पाराञ्चिक, और-अचरित्र प्रतिसेवना पाराञ्चिक, परिणाम और अपराध की अपेक्षा के अनुसार कहीं पर किसी भी प्रतिसेवित हुए पद से सम्पूर्ण चारित्र से भ्रष्ट हो जाता है और कहीं पर देशतः चारित्र भ्रष्ट होता है इसी तरह कहीं पर तुल्य अपराध के होने पर भी परिणाम के अनुसार नाना प्रकार से प्रायश्चित्त दिया जाता है तथा -कहीं पर तुल्य परिणाम के होने पर भी अपराध में भिन्नता अनेकता

અનુષ્ઠાન કહે છે "પારાંચિક" આ દશમું પ્રાયશ્ચિત્ત છે તેમાં લિંગ, ક્ષેત્ર, કાળ અને તપથી પારાંચિકને વાસ્વાનો હોય છે તે કારણે આ પ્રાયશ્ચિત્તના સબધને અનુલક્ષીને સાધુને પણ પારાંચિક કહી દેવામાં આવે છે તે પારાંચિકના બે પ્રકાર પડે છે-(૧) આશાતના પારાંચિક અને (૨) પ્રતિસેવના પારાંચિક આ દરેકના પણ બબ્બે ભેદ કહ્યા છે-સચરિત્ર આશાતના પારાંચિક અને અચરિત્ર આશાતના પારાંચિક આ બે ભેદો આશાતના પારાંચિકના સમજવા પ્રતિસેવના પારાંચિકના પણ નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે-(૧) સચરિત્ર પ્રતિસેવના પારાંચિક અને (૨) અચરિત્ર પ્રતિસેવના પારાંચિક

પરિણામ અને અપરાધની અપેક્ષાએ કયારેક કોઇપણ પ્રતિસેવિત થયેલા પદથી સંપૂર્ણ ચારિત્રભ્રષ્ટ થઈ જાય છે, અને કયારેક દેશતા (અશતઃ) ચારિત્ર ભ્રષ્ટ થઈ જાય છે આ રીતે કયારેક તુલ્ય અપરાધનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ પરિણામાનુસાર વિવિધ પ્રકારે પ્રાયશ્ચિત્ત આપવામાં આવે છે, તથા કયારેક તુલ્યપરિણામનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ અપરાધમાં ભિન્નતા દેખાવી

भवति। तीर्थंकर-प्रवचनश्रुता-ऽऽचार्य-गणधरमहर्द्धिकानामाशातनाकारक आशातनापाराञ्चिको भवति।

उक्तञ्च—" सव्वे आसायते पावइ पारंचियं ठाणं "

छाया—सर्वान् आशातयन् प्राप्नोति पाराञ्चिकं स्थानम्, इति।

प्रतिसेवनापाराञ्चिकस्त्रिविधः—दुष्टपाराञ्चिकः प्रमत्तपाराञ्चिकः, अन्योन्यपाराञ्चिकश्चेति, उक्तञ्च—

" पडिसेवणपारंची, तिविहो सो होइ आणुपुव्वीए।
दुट्ठे य पमत्ते य, नायव्वो अन्नमन्ने य॥ १॥

छाया—प्रतिसेवनापाराञ्चिकस्त्रिविधः स भवति आनुपूर्व्या।
दुष्टश्च प्रमत्तश्च, ज्ञातव्योऽन्योऽन्यश्चेति॥ १॥ इति।

पाराञ्चिकत्रैविध्यमाह—दुष्टपाराञ्चिकः, दुष्टो-दोषवान् पाराञ्चिकः। प्रमत्तपाराञ्चिकः, प्रमत्तः-पञ्चमनिद्राप्रमादवान्, स एव पाराञ्चिकः। अन्योन्यं कुर्वन् पाराञ्चिकः, अन्योन्यं-परस्परं मैथुनं पाराञ्चिकः पुरुषयुग्मरूप इत्यर्थः। तत्र-

आती है तीर्थंकर प्रवचन श्रुत-आचार्य गणधर और महर्द्धिक इनकी आशातना करने वाला जीव आशातना पाराञ्चिक होता है, कहा भी है-" सव्व आसायंते पावइ पारंचियं ठाणं-" प्रतिसेवना पाराञ्चिक तीन प्रकार का होता है, एक दुष्टपाराञ्चिक दूसरा प्रमत्तपाराञ्चिक, और तीसरा अन्योन्यपाराञ्चिक, कहा भी है-" पडिसेवणपारंची तिविहो-" इत्यादि, जो दुष्ट दोषवाला होता है वह दुष्टपारांचिक है, जो पांचवां निद्रारूप प्रमादवाला होता है वह प्रमत्तपाराञ्चिक है, तथा-परस्परमें मैथुन करता है वह-अन्योन्यपाराञ्चिक है। इनमें जो दुष्ट पाराञ्चिक है वह कषाय विषय की अपेक्षा से दो प्रकार का है, तथा-कषायदुष्टपाराञ्चिक

હોય છે તીર્થંકર-પ્રવચન, શ્રુત, ગણધર, આચાર્ય અને મહર્દ્ધિકની આશાતના કરનારો જીવ આશાતના પારાંચિક હોય છે કહ્યુ પણ છે કે—

" સવ્વ આસાયંતે પાવઇ પારંચિય ઠાણં " ઇત્યાદિ

પ્રતિસેવના પારાંચિક ત્રણ પ્રકારના હોય છે-(૧) દુષ્ટ પારાંચિક (૨) પ્રમત્ત પારાંચિક અને (૩) અન્યોન્ય પારાંચિક કહ્યુ પણ છે કે—

' પડિસેવણપારંચી તિવિહો " ઇત્યાદિ—

જે દુષ્ટ (દોષવાળો) હોય છે તેને દુષ્ટ પારાંચિક કહે છે જે પંચમ નિદ્રારૂપ પ્રમાદવાળો હોય છે તેને પ્રમત્ત પારાંચિક કહે છે, તથા જે પરસ્પરમા મૈથુન (અબ્રહ્મ) નુ સેવન કરે છે તેને અન્યોન્ય પારાંચિક કહે છે. આ ત્રણ પ્રકારના પારાંચિકોમાંથી જે દુષ્ટ પારાંચિક છે તે કષાય-વિષયની અપેક્ષાએ બે પ્રકારનો છે-(૧) કષાય દુષ્ટ પારાંચિક અને (૨) વિષય દુષ્ટ પારાંચિક.

दुष्टपाराश्चिको-कषायतो विषयतश्चेति द्विविध, पुनरेकैक सपक्षविपक्षभेदा द्विविधः, उक्तञ्च—

" दुविहो य होइ दुट्ठो, कसायदुट्ठो य विसयदुट्ठो य ।
दुविहो कसायदुट्ठो सपक्खपरपक्ख चउभगो ॥ १ ॥

छाया-द्विविधश्च भवति दुष्टः कषायदुष्टश्च विषयदुष्टश्च ।
द्विविधः कषायदुष्टः सपक्षपरपक्षयोश्चतुर्भङ्गी " ॥ इति ।

तत्र-स्वपक्षकषायदुष्टो यथा-सर्षपनालिकाशाकमर्गिकाग्रहणकुपितो मृता चार्यदन्तभञ्जको मुनिः । विषयदुष्टस्तु साध्वीगामी साध्व्या सह कामभोगाभि लाषुक इत्यर्थः, एकसाध्व्या आशातनाकारकेण मुनिना सर्वजिनानामार्याः आशा तिताः सङ्घोऽप्याशातितो भवति, तथा चोक्तम्—

" लिंगेण लिंगिणीए, संपत्ति जो णिगच्छई पावो ।
सव्वजिणाणऽज्जाओ सघो चाऽऽसाइओ तेणं ॥ १ ॥

छाया—लिङ्गेन (मुनिवेषेण सहितो मुनि) लिङ्गिन्या (मुनिवेषवत्याः

और विषयदुष्टपाराश्चिक, ये दोनों भी सपक्ष और विपक्ष के भेद से दो दो प्रकार के होते हैं। कहा भी है-' दुविहो होइ दुट्ठो-" इत्यादि, सर्षपनालिका की शाकभाजी को ग्रहण करने से कुपित हुआ ऐसा मृताचार्य के दांतों को उखाडनेवाला मुनि स्वपक्ष कषाय दुष्टपाराश्चिक कहा गया है तथा-विषयदुष्टपाराश्चिक वह है जो साध्वी के साथ भोग करने का अभिलाषी होता है जो एक साध्वी की आशातना करने वाला होता है ऐसा वह मुनि समस्त जिन भगवानों की आर्याओं की आशा तना कारक होता है और श्रीसंघ की भी आशातना कारक होता है। कहा भी है-" लिंगेण लिंगिणीए-" मुनिवेष सहित जो मुनि मुनिवेष

તે દરેકના પણ સપક્ષ અને વિપક્ષના ભેદથી બબ્બે પ્રકાર પડે છે કહ્યું પણ છે કે-" दुविहो होइ दुट्ठो " ઇત્યાદિ—

સર્ષપનાલિકાની શાકભાજી ગ્રહણ કરવાથી કોપાયમાન થયેલા મૃતા ચાર્યના દાંતને ઉખેડી નાખનાર મુનિને સ્વપક્ષ કષાય દુષ્ટ પારાંચિક કહે વામાં આવેલ છે

સાધ્વીની સાથે વિષયભોગ સેવવાની અભિલાષા કરનાર સાધુને વિષય દુષ્ટ પારાંચિક કહે છે એક સાધ્વીની આશાતના કરનાર મુનિ જિન ભગવાનની સમસ્ત આર્યાઓની (સાધ્વીઓની) અશાતના કરનારો હોય છે એટલું જ નહીં પણ શ્રીસંઘની પણ આશાતના કરનારો હોય છે કહ્યું પણ છે કે—

' लिंगेण लिंगिणीए ' ઇત્યાદિ—

साध्व्याः) संप्राप्नि यो निगच्छति पापः । सर्वजिनानामार्याः संघो वा आशातितस्तेन ॥१॥ इति । एतादृशो मुनिर्द्रष्टुमप्ययोग्यः अनन्तसंसारभ्रमणहेतुकर्मकारित्वात् , उक्तञ्च—

" पावाण पावयरो दिट्ठिप्फासेवि सो न कप्पइ उ ।
जो जिण पुंगववेसं नमिऊण तमेव धरिसेइ ॥ १ ॥
संसारमणवयग्गं, जाइजरामरणवेयणाय उर ।
पावमलपडलछन्ना, भमंति मुद्दाधरिसणेणं ॥

छाया—पापानां पापतरो दृष्टिस्पर्शेऽपि स न कल्पते तु ।
यो जिनपुङ्गववेषं, नत्वा तमेव धर्षति ॥ १ ॥
संसारमनवदग्र जातिजरामरणवेदनाप्रचुरम् ।
पापमलपटलच्छन्ना भ्रमन्ति मुद्रा (वेष) घर्षणेन ॥ २ ॥ इति ।

परपक्षकषायदुष्टः—राजमारकः, परपक्षविषयदुष्टः राजाग्रमहिषीगामी राजाग्रमहीष्या सह कामभोगाभिलाषुक इत्यर्थः । प्रमत्तपाराञ्चिको यथा—पञ्चमनिद्रा

वाली आर्या के साथ मैथुन करता है वह मुनि पापी है और—ऐसे उस मुनि के द्वारा सर्व जिनेन्द्रों की आर्याएँ आशातित की हुई मानी जाती हैं, तथा संघ भी उससे आशातित हुवा समझा जाता है ऐसा मुनि देखने के योग्य भी नहीं रहता है क्यों कि—अनन्त संसार में भ्रमण कराने वाले कर्म का वह कर्ता बन गया होता है। कहा भी है—"पावाण पावयरो—" इत्यादि, जो मुनि राज मारक होता है वह परपक्षकषाय दुष्ट है तथा—परपक्षविषय दुष्ट वह है जो राजा की पट्टरानी के साथ विषयभोग करने का अभिलाषी होता है, प्रमत्तपाराञ्चिक वह मुनि है जो स्त्यानर्द्धिनिद्रावाला मांसाशी होता है ऐसा वह मुनि सद्गुणोज्वल

મુનિવેષધારી જે મુનિ મુનિવેષધારી આર્યા (સાધ્વી) ની સાથે મૈથુન કરે છે, તે મુનિ પાપી છે. એવા મુનિ દ્વારા જિનેન્દ્રોની સઘળી આર્યાઓની આશાતના કરવામાં આવી છે, એવું માનવામાં આવે છે એટલું જ નહીં પણ તેના દ્વારા સંઘની પણ આશાતના થઇ ગણાય છે. એવે। મુનિ દર્શન કરવાને પાત્ર પણ ગણાતો નથી, કારણ કે અનંત સંસારમાં ભ્રમણ કરાવનાર કર્મને। કર્તા તે બની ગયો હોય છે કહ્યું પણ છે કે—" पावाण पावयरो " ઇત્યાદિ.

જે મુનિ રાજમારક હોય છે તેને પરપક્ષ કષાય દુષ્ટ કહે છે. જે મુનિ રાજાની પટ્ટરાણીની સાથે વિષયભોગ સેવવાને અભિલાષી હોય છે, તેને પરપક્ષ વિષય દુષ્ટ કહે છે

प्रमादवान् मांसाशिनमत्रजितमुनि, अयं च सद्गुणोऽपि त्याज्य एव। अन्योन्य कुर्वन् पाराञ्चिक- अन्योन्य पुरुष पुरुषेण सह मुखपायुप्रयोगत अनङ्गे वा मैथुन कुर्वन् पाराञ्चिको भवति। अस्य दीक्षादाने विवेक कार्यः, उक्तञ्च—

"आसयपोसयसेवी, केवि मणूसा दुवेयगा होंति।
तेसिं वेसविवेगो" छाया—आस्यकपोषकसेविनः केऽपि मनुष्या द्विवेदका भवन्ति तेषां वेषविवेकः (कार्यः) इति। ३। 'तओ अण वट्टप्पा' इत्यादि। त्रय अनवस्थाप्याः, अनवस्थापयितु महाव्रतेषु स्थापयितु योग्या अवस्थाप्या, न अवस्थाप्या अनवस्थाप्याः–आसेवितातिचारविशेषाः सन्तोऽनाचरिततपोविशेषास्तद्दोषोपरता अपि महाव्रतेषु नावस्थाप्यन्ते, आचरित

होने पर भी त्याज्यकोटि में ही कहा गया है, अन्योन्यपाराञ्चिक वह होता है जो दूसरे पुरुष के साथ मुख में पायु–गुदा में कामक्रीडा करता है, अथवा जो कामसेवन के अङ्ग नहीं हैं उनमें कामसेवन करता है ऐसे को भी दीक्षा देने मे विवेक कर्तव्य कहा गया है। कहा भी है–"आसयपोसय सेवी–" इत्यादि, "तओ अणवट्टप्पा–" इत्यादि, जो महाव्रतों में स्थापना के योग्य होते हैं वे अवस्थाप्य हैं, और जो ऐसे नहीं होते हैं–वे अनवस्थाप्य हैं, वे अनवस्थाप्य अतिचार विशेषों का आसेवन करते रहते हैं और तपोविशेष को आचरण करने की ओर ध्यान से रहित होते हैं ऐसे वे जीव यदि अतिचाररूप दोषों से उपरत हो भी जाये तो भी महाव्रतों में वे अवस्थापित नहीं किये जाते हैं,

પાંચમી નિદ્રા પ્રમત્ત માંસ ભક્ષી મુનિને પ્રમત્ત પારાંચિક કહે છે એવા મુનિ સદ્ગુણોવાળા હોવા છતાં પણ ત્યાજ્ય કોટિમાં જ મૂકી શકાય છે

કામસેવનના અંગો ન હોય એવાં અંગોમાં અન્ય પુરુષની સાથે કામસેવન કરનાર મુનિને અન્યોન્ય પારાંચિક કહે છે એવા મુનિને પણ દીક્ષા દેવામાં પણ વિવેક રાખવાનું કહ્યું છે કહ્યું પણ છે કે–"આસય પોસયસેવી" ઇત્યાદિ

"તઓ અણવટ્ટપ્પા" ઇત્યાદિ—

જે મુનિઓ મહાવ્રતોમાં સ્થાપનાને યોગ્ય હોય છે, તેમને અવસ્થાપ્ય કહે છે પરન્તુ જે મુનિઓ એવા હોતા નથી તેમને અનવસ્થાપ્ય કહે છે જે અનવસ્થાપ્ય મુનિઓ અતિચાર વિશેષોનું સેવન કરતા રહે છે અને તપો વિશેષનું આચરણ કરવા પ્રત્યે ધ્યાન રાખવાથી રહિત હોય છે એવા તે સાધુઓ અતિચાર રૂપ દોષોથી ઉપરત (તે પ્રકારના દોષોનું સેવન કરતા અટકી જાય તે) થઇ જાય તો પણ મહાવ્રતોમાં તેમને અવસ્થાપિત કરી

तपोविशेषास्तु पुनर्दीक्षायोग्या भवन्तीति भावः। तानेवाह–साधर्मिकाणां स्तैन्यं कुर्वन् साधर्मिकाः–एकमाण्डलिकाः साम्भोगिकामुनयः तेषां तत्सत्तकोत्कृष्टोपधेः शिष्यादेर्वाचौर्यं कुर्वन्, तान् प्रति प्रद्विष्टचित्तो वा। अन्यधार्मिकाणां स्तैन्यं कुर्वन् अन्यसाधर्मिका.–शाक्यादयो गृहस्था वा तेषां तत्सत्तकोपध्यादेश्चौर्यं कुर्वन्। तथा–हस्तातालं ददत्, हस्तेनाऽऽतालनमाताडनं हस्तातालस्तं ददत्–यष्टिमुष्टि-लकुटादिभिर्मरणादिनिरपेक्षः स्वस्य परस्य वा प्रहरन् घोरपरिणामइत्यर्थः अनव-स्थाप्यो भवतीति प्रक्रमः ४ ॥ सू० ६९ ॥

परन्तु जब ये तपोविशेष को आचरित करने लगते हैं तो ही ये पुनः दीक्षा के योग्य हो जाते हैं इसी बात को सूत्रकार ने इस प्रकार से कहा है जो एक माण्डलिक साम्भोगिक मुनि हैं, वे साधर्मिक कहे गये हैं–ऐसे साधर्मिक मुनिजनों की उत्कृष्ट उपधिकों अथवा–उनके शिष्या-दिकों को चुराने वाला अथवा उनके प्रति प्रद्विष्टचित्त रखने वाला मुनि साधर्मिकों की चोरी करने वाला अनवस्थाप्य कहा गया है। अन्य साधर्मिक से यहां शाक्य आदि अथवा–गृहस्थजन गृहीत हुवे हैं सो इनकी जिस वस्तु पर सत्ता है उस वस्तु को उपधि आदि को चुराने वाला मुनि अनवस्थाप्य के द्वितीय भेद में परिगणित हुवा है हस्तताल को देनेवाला, अर्थात्–यष्टि से मुष्टि से, लकुट (लकडी) आदि से अपने

શકાતા નથી પરંતુ જ્યારે તેઓ તપોવિશેષને આચરવા માંડે છે, ત્યારે જ તેમને ફરીથી દીક્ષા આપવાને યોગ્ય ગણી શકાય છે. એ જ વાતને સૂત્રકારે આ રીતે કહી છે

હવે અનવસ્થાપ્યના ત્રણ પ્રકારનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—જે સાધુઓ એક જ મંડળમાં (સમૂહમાં) સાંભોગિક મુનિરૂપે રહે છે તેમને સાધર્મિક કહે છે એવા સાધર્મિક મુનિજનોની ઉત્કૃષ્ટ ઉપધિ (પાત્ર, વસ્ત્ર આદિ) ની ચોરી કરનારા, અથવા તેમના શિષ્યાદિકોની ચોરી કરાવનારા, અથવા તેમના પ્રત્યે પ્રદ્વિષ્ટ ચિત્ત રાખનારા મુનિને સાધર્મિકોની ચોરી કર-નારો અનવસ્થાપ્ય કહ્યો છે

અન્ય સાધર્મિક પદથી અહીં શાક્ય આદિ અથવા ગૃહસ્થજન ગૃહીત થયેલ છે આ પ્રકારના અન્ય સાધર્મિકની માલિકીની જે વસ્તુ છે તેની ચોરી કરનાર સાધુને અહીં અનવસ્થાપ્યના બીજા ભેદ રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે

(૩) અનવસ્થાપ્યનો ત્રીજો ભેદ—હાથથી તાડન કરનાર, સોટી, લાકડી, મુઠી આદિ વડે–મરણની પરવા કર્યા વિના–પોતાની ઉપર કે અન્ય વ્યક્તિની

पूर्वोक्तानि प्रायश्चित्तानि प्रव्रज्यादायकानां भवन्ति। प्रव्रज्यादानं चायोग्यान् परिहृत्य योग्यानां विधेयमिति तदयोग्यान् सूत्रषट्केन निरूपयति—

मूलम्—तओ णो कप्पति पव्वावेत्तए, तं जहा पंडए, वाइए (वाहिए) कीवे १। एवं मुंडावित्तए २, सिक्खावित्तए ३, उवट्ठावित्तए ४, संभुंजित्तए ५, संवासित्तए ६ ॥ सू० ७० ॥

छाया—त्रयो नो कल्पन्ते प्रव्राजयितुं, तद्यथा—पण्डकः, वातिकः (व्याधितः) क्लीवः। १। एवं मुण्डयितुं २, शिक्षयितुं ३, उपस्थापयितुं ४, संभोजयितुं ५, संवासयितुम् ६ ॥ सू० ७० ॥

मरणकी परवाह नहीं करता हुआ अपने ऊपर या परके ऊपर प्रहार करने वाला अनवस्थाप्य के तृतीय भेद में परिगणित किया गया है ऐसा व्यक्ति घोर परिणामों वाला होता है ॥ सू० ६९॥

ये पूर्वोक्त प्रायश्चित्त प्रव्रज्यादायकों को होते हैं, अतः प्रव्रज्यादान अयोग्यों को छोड़कर योग्यों को दिया जाता है इसलिये सूत्रकार सूत्र षट्क से अयोग्यों का निरूपण करते हैं "तओ णो कप्पति पव्वावेत्तए—" इत्यादि

सूत्रार्थ—ये तीन प्रव्रज्या देने के योग्य नहीं होते हैं, जैसे—एक पण्डक द्वितीय वातिक और तृतीय व्याधित, इसी प्रकार से ये मुण्डित करने के लिये, शिक्षा ग्रहण करने के लिये, महाव्रतों में व्यवस्थापित करने के लिये, उपधि—आहार आदि से साथ में सम्भोग करने के लिये और —अपने पास रखने के लिये योग्य नहीं होते हैं।

ઉપર પ્રહાર કરનાર સાધુને અનવસ્થાપ્યના ત્રીજા ભેદમાં મૂકી શકાય છે, એવા સાધુ ઘોર પરિણામોવાળા હોય છે ॥ સૂ ૬૯ ॥

સૂત્રાર્થ—પ્રવ્રજ્યાદાયકોને આ પૂર્વોક્ત પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે તેથી અયોગ્ય વ્યક્તિઓને પ્રવ્રજ્યા અપાતી નથી પણ યોગ્ય વ્યક્તિઓને જ પ્રવ્રજ્યા અપાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર નીચેના ૬ સૂત્રો દ્વારા એવી અયોગ્ય વ્યક્તિઓનું નિરૂપણ કરે છે— 'तओ णो कप्पंति पव्वावेत्तए' ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—નીચે બતાવેલી ત્રણ પ્રકારની વ્યક્તિઓ પ્રવ્રજ્યા દેવાને પાત્ર ગણાતી નથી—(૧) પંડક, (૨) વાતિક (૩) વ્યાધીત. આ ત્રણે પ્રકારના મનુષ્યો મુંડિત કરવાને યોગ્ય ગણાતા નથી, શિક્ષાગ્રહણ કરવાને યોગ્ય ગણાતા નથી, મહાવ્રતોમાં સ્થાપિત કરવાને યોગ્ય ગણાતા નથી ઉપધિ—આહાર આદિની અપેક્ષાએ સાંભોગિક કરવાને યોગ્ય ગણાતા નથી અને પોતાની સાથે રાખવાને યોગ્ય પણ ગણાતા નથી.

टीका—'तओ' इत्यादि । सूत्रषट्कं सुगमं, नवरं–त्रयः प्रव्राजनयोग्या न भवन्ति । तानेवाह — पण्डकः — पण्डकलक्षणषट्कयुक्तो नपुंसकविशेषः, तल्लक्षणानि यथा—

"महिलासहावो १ सरवन्नभेओ २, मेंढ महंतं ३ मउई य वाया४ ।
ससद्दगं मुत्त ५ मफेणगं ६ य, एयाणि छप्पंडगलक्खणाणि ॥१॥

छाया–महिलास्वभावः १ स्वरवर्णभेदः२, मेढ्रं महत् ३ मृद्वी च वाचा ४ ।
सशब्दकं मूत्र ५ मफेनकं ६ च, एतानि षट् पण्डकलक्षणानि ॥ १ ॥ इति ।

इत्यादि लक्षणैर्विज्ञाय पण्डकः परिहर्त्तव्यः । वातोऽस्यास्तीति वातिकः– वातप्रकृतिकः, अयं स्वपररूपेण केनापि निमित्तेन वेदोदयं धर्त्तुं न शक्नोति

टीकार्थ-सूत्रकार ने "ये तीन प्रव्राजना प्रव्रज्या योग्य नहीं होते हैं" ऐसा जो कहा है इसी बात को यहां स्पष्ट किया गया है, पाण्डक–एक जाति का नपुंसकविशेष होता है इसके ६ लक्षण इस प्रकार से कहे गये हैं–"महिलासहावो" इत्यादि, इसका स्वभाव स्त्री के स्वभाव जैसा होता है स्वर में और वर्ण में इसको भेद होता है इसका लिङ्ग बडा होता है इसकी वाणी पतली होती है पेशाब करते समय इसकी पेशाब में से शब्द निकलता है, और–इसकी पेशाब में फेन नहीं उठता है ये पण्डक के ६ लक्षण हैं। इन लक्षणों से पण्डक को जानकर उसे दीक्षा नहीं देनी चाहिये ? वात जिसको होता है वह वातिक वात प्रकृतिवाला है, वह वातिक स्व पर रूप से किसी निमित्त से वेदोदय को धारण करने में समर्थ नहीं हो

ટીકાર્થ—"આ ત્રણ પ્રકારના મનુષ્યો પ્રવ્રજ્યા આપવા યોગ્ય ગણાતા નથી, એવું સૂત્રકારે જે વિધાન કર્યું છે, તેનુ હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—(૧) પંડકને પ્રવ્રજ્યા આપવા યોગ્ય ગણ્યો નથી પંડક એક જાતનો નપુસક વિશેષ હોય છે, તેના છ લક્ષણ નીચે પ્રમાણે કહ્યાં છે—

"મહિલા સહાવો" ઇત્યાદિ—

તેનો સ્વભાવ સ્ત્રી જેવો હોય છે, તેના સ્વરમાં અને વર્ણમા ભેદ હોય છે, તેનુ લિંગ મોટુ હોય છે, તેની વાણી પાતળી હોય છે, પેશાબ કરતી વખતે તેના પેશાબમાથી વિશિષ્ટ અવાજ નીકળે છે અને તેના પેશાબમા ફીણ વળતા નથી આ છ લક્ષણોથી પંડકને ઓળખી શકાય છે, અને આ લક્ષણોથી તેને ઓળખી લઇને તેને પ્રવ્રજ્યા આપવી જોઇએ નહીં.

(૨) વાતિકને પણ દીક્ષા આપવાનો નિષેધ ફરમાવ્યો છે વાત–વાયુથી પીડાતી વ્યક્તિને વાતિક કહે છે આ વાતપ્રકૃતિવાળો મનુષ્ય જ્યા સુધી તેની પ્રતિસેવા કરી લેતો નથી, ત્યા સુધી સ્વ–પર રૂપ કોઈ પણ નિમિત્તે

यावत्तस्य प्रतिलेखना कृता न स्यात्, निरुद्धवेदोऽसौ नपुंसकतया परिणमति, एता दृशः पुरुषो वातिक कथ्यते। यद्वा–'व्याधित' इति पक्षव्याधियुक्तः, चिरका लिक राजयक्ष्मादि व्याधिसम्पन्न इत्यर्थः, क्लीब –स्त्रिय सवितुमसमर्थः, स चतु र्विधः–दृष्टिक्लीब, शब्दक्लीबः, आदिग्धक्लीबः, निमन्त्रणक्लीबश्चेति। तत्र यो विवस्त्रावस्थां स्त्री दृष्ट्वैव स्खलति स दृष्टिक्लीब १। य कस्यापि युग्मस्य सुरतसमयसमुद्भूतसीत्कारादि शब्द–श्रवणमात्रेण स्खलति स शब्दक्लीबः २।

सकता है, जब तक कि वह उसकी प्रतिलेखना न करले यदि वह निरुद्ध वेदवाला हो जाता है तो वह नपुंसकरूप से परिणम जाता है ऐसा पुरुष वातिक कहा गया है, यह भी दीक्षा देने को योग्य नहीं माना गया है। यद्वा–"वाइए वाहिए" की संस्कृतछाया व्याधित भी हो सकती है, इस पक्ष में जो व्याधि से चिरकालिक राजयक्ष्मा आदि व्याधि से सम्पन्न होता है वह व्याधित है, ऐसा व्याधित भी दीक्षा देने योग्य नहीं माना गया है–२ जो स्त्री को सेवन करने में असमर्थ होता है वह क्लीब है यह क्लीब चार प्रकार का होता है, एक दृष्टिक्लीब, दूसरा शब्दक्लीब, तीसरा आदिग्धक्लीब, और चौथा निमन्त्रणक्लीब इनमें जो नग्न अवस्थावाली वस्त्र से रहित स्त्री को देखते ही स्खलित हो जाता है वह दृष्टिक्लीब है १ जो सुरतक्रिया में लवलीन स्त्री पुरुष के सुरत समय के सीत्कार आदि शब्द को सुनते ही स्खलित हो जाता है, वह शब्दक्लीब है २ जो स्त्री को आलिङ्गन करते ही स्खलित हो

કરીને વેદોદયને ધારણ કરવાને સમર્થ હોઈ શકતો નથી. જો તે નિરૂદ્ધ વેદ વાળો થઈ જાય છે તો તે નપુંસક રૂપે પરિણમી જાય છે એવા પુરુષને વાતિક કહ્યો છે અને તેને દીક્ષા દેવાને યોગ્ય ગણ્યો નથી

અથવા–"વાઇય-વાહિય" આ પદની સંસ્કૃત છાયા વ્યાધિત પણ થઈ શકે છે જે ચિરકાળથી ક્ષયરોગ આદિ જેમ બીમારી પીડાતો હોય તેને વ્યાધિત કહે છે, એવી વ્યાધિત વ્યક્તિને પણ દીક્ષા આપવાને પાત્ર ગણાવી નથી

ક્લીબને પણ દીક્ષા આપવાનો નિષેધ છે જે મનુષ્ય સ્ત્રીનું સેવન કર વાને અસમર્થ હોય છે તેને ક્લીબ કહે છે તે ક્લીબ ચાર પ્રકારના કહ્યા છે–(૧) દૃષ્ટિ ક્લીબ, (૨) શબ્દ ક્લીબ (૩) આદિગ્ધ ક્લીબ અને (૪) નિમ ન્ત્રિત ક્લીબ. નગ્ન અવસ્થાવાળી (વસ્ત્રરહિત) સ્ત્રીને દેખતાંની સાથે જ જેના વીર્યનું સ્ખલન થઈ જાય છે તેને દૃષ્ટિ ક્લીબ કહે છે કામક્રીડામાં રત થયેલા સ્ત્રી-પુરુષોના સીત્કાર આદિ શબ્દોને સાંભળતા જ જેના વીર્યનું સ્ખલન થઈ

यः स्त्रिया-आलिङ्गनमात्रेण स्खलति स आदिग्धक्लीवः ३ । यः स्त्रीजनस्य निमन्त्रणमात्रेण स्खलति स निमन्त्रितक्लीव इति ४ । चतुर्विधोऽप्ययं वेदनिरोधेन नपुंसकत्वं प्राप्नोतीत्यतः क्लीवत्वेन कथ्यते, वातिकक्लीवयोस्तु परिज्ञानं तन्मित्रादीनां समीपे श्रवणादेव भवतीति । किमर्थमेते प्रव्राजनयोग्या न सन्ति ? इति चेदाह-एते चोत्कटवेदवत्त्वात् निर्बलमनोवृत्तिकत्वाच्च व्रतपालनासमर्था भवन्ति, प्रव्रज्या प्रदातुरप्याज्ञाभङ्गदोषप्रसङ्ग इति प्रव्राजयितुं न कल्पन्ते, उक्तञ्च-

" जिणवयणे पडिकुट्ठं, जो पव्वावेइ लोभदोसेणं ।
चरणट्ठिओ तवस्सी, लोवेइ तमेव उ चरित्तं ॥ १ ॥ "

छाया-जिनवचने प्रतिक्रुष्टं (निषिद्धं) यः प्रव्राजयति लोभदोषेण ।
चरणस्थितस्तपस्वी, लोपयति तदेव चारित्रम् ॥ १ ॥ इति ।

जाता है, वह आदिग्धक्लीव है ३ तथा जो स्त्री के बुलाने मात्र से ही स्खलित हो जाता है, वह निमन्त्रितक्लीव है ४ चारों प्रकार के ये क्लीब वेदनिरोधन से नपुंसकता को प्राप्त हो जाते हैं। अतः ये क्लीब रूप से कह दिये गये हैं। वातिक और क्लीब का परिज्ञान उनके मित्रादिकों के पास में सुनने से ही हो जाता है तो फिर ये क्यों प्रव्रज्या के योग्य नहीं हैं ? तो इसका उत्तर ऐसा है कि ये उत्कटवेद वाले होते हैं अतः इनकी मनोवृत्ति निर्बल होने के कारण ये व्रतपालन करने में असमर्थ रहते हैं, तथा ऐसों को प्रव्रज्या देने की आज्ञा भी नहीं है, अतः जो इन्हें प्रव्रज्या देगा, उसे भी आज्ञाभंग करने का दोष लगेगा, इसीलिये ये प्रव्रज्या देने के योग्य नहीं कहे गये हैं। कहा भी है-" जिणवयणे पडिकुट्ठं " इत्यादि, तात्पर्य कहने का यह है कि जिन वचन में जिन्हें

જાય છે તેને શબ્દ ક્લીબ કહે છે સ્ત્રીને આલિંગન કરતાં જ જેના વીર્યનું સ્ખલન થઈ જાય છે તેને આદિગ્ધ ક્લીબ કહે છે કોઈ સ્ત્રીના નિમંત્રણ બોલાવવા માત્રથી જેનું સ્ખલન થઈ જાય છે તેને નિમંત્રિત ક્લીબ કહે છે ઉપર્યુક્ત ચારે પ્રકારના ક્લીબ વેદનિરોધનથી નપુસકતા પ્રાપ્ત કરી લે છે, તેથી તેમને ક્લીબરૂપે પ્રતિપાદિત કરવામાઆવ્યા છે

પ્રશ્ન—વાતિક અને ક્લીબનું પરિજ્ઞાન તેમના મિત્રાદિકો દ્વારા પણ થઈ શકે છે તેમને શા કારણે પ્રવ્રજ્યા આપવા યોગ્ય ગણ્યા નથી ?

ઉત્તર—તેઓ ઉત્કટ વેદવાળા હોય છે, તેથી તેમની મનોવૃત્તિ નિર્બળ હોય છે. નિર્બળ મનોવૃત્તિને કારણે તેઓ વ્રતપાલન કરવાને સમર્થ હોતા નથી તથા એવાં મનુષ્યોને પ્રવ્રજ્યા દેનારને પણ શાસ્ત્રાજ્ઞાનો ભંગ કરવાનો દોષ લાગે છે, તેથી તેમને પ્રવ્રજ્યા દેવી જોઈએ નહીં કહ્યું પણ છે કે—

" जिणवयणे पडिकुट्ठं

अत्र त्रिस्थानकानुरोधात्त्रय एव सूत्र्यन्ते, अन्यथा तु–विंशति–स संख्यका जना प्रव्राजयितुमयोग्या भवन्ति, तथाहि—

" बाले १ वुड्ढे२ नपुंसे ३ य, जड्डे४ कीवे ५ वाइए ६ (वाहिए)।
तेणे ७ रायावगारी ८ य, उम्मत्ते ९ य अदंसणे १० ॥ १ ॥
दासे ११ दुट्ठे १२ य मूढे १३ य, अणत्त १४ जुंगिए१५ इयं ।
उब्बद्धए १६ य १७, भयए सेहणिप्फेडिया १८ इयं ॥ २ ॥
गुव्विणी १९ बालवच्छा२० य, पव्वावेउं न कप्पइ ।

छाया-बालो वृद्धो नपुंसकश्च, जडः क्लीबश्च वातिकः (व्याधितः)।
स्तेनो राजापकारी च, उन्मत्तश्च अदर्शन ॥ १ ॥
दासो दुष्टश्च मूढश्च, ऋणार्तो जुङ्गित इति च ।
उदबद्धकश्च भृतकः शैक्ष निष्फेटित इति च ॥ २ ॥
गुर्विणी बालवत्सा च, प्रव्राजयितु न कल्पते ॥ इति ।

तत्र – बाल –अष्टवर्षोन्न्यूनः १ । वृद्ध षष्टिवर्षादधिकः २ । नपुंसका–प्रसिद्धः ३ । जड –स्थूलः स त्रिविधः, भाषा–शरीर–क्रिया भेदात् । भाषाजड

दीक्षा देना निषिद्ध किया गया है, उन्हें जो शिष्य बनाने के लोभ रूप दोष से दीक्षा देता है ऐसा वह चरणस्थित तपस्वी चारित्र धर्म का लोप करता है। यहां त्रिस्थानक के अनुरोध से ये तीन ही गृहीत हुवे हैं, नहीं तो प्रव्रज्या देने के लिये २० पुरुष अयोग्य कहे गये हैं, जैसे –" बाले वुड्ढे नपुंसे–" इत्यादि, आठ वर्ष से जो न्यून है वह बाल माना गया है–१, ६० वर्ष से जो अधिक है वह वृद्ध माना गया है २ नपुंसक प्रसिद्ध है, स्थूल का नाम जड है, वह तीन प्रकार का होता है भाषा

આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે–જિનેન્દ્ર ભગવાને જેમને દીક્ષા દેવાનો નિષેધ કર્યો છે તેમને શિષ્ય બનાવવાના લોભરૂપ દોષથી જે દીક્ષા આપે છે, એવો ચરણસ્થિત તપસ્વી ચારિત્રધર્મનો લોપ કરે છે અહીં ત્રિસ્થાનકનું પ્રકરણ ચાલુ હોવાથી આ ત્રણનું જ નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે બાકી તો નીચે જણાવેલા ૨૦ પ્રકારના પુરુષોને પ્રવ્રજ્યા આપવાને માટે અયોગ્ય ગણાવ્યા છે જેમકે— બાલે વુડ્ઢે નપુંસે " ઇત્યાદિ—

આઠ વર્ષથી ઓછી ઉમરવાળાને બાળક કહ્યો છે (૨) ૬૦ વર્ષથી વધુ ઉમરવાળાને વૃદ્ધ કહ્યો છે (૩) નપુંસક–આ શબ્દ જાણીતો હોવાથી તેનું વિવેચન કર્યું નથી. (૪) સ્થૂલ–જે માણસ જડ જેવો હોય છે તેને સ્થૂલ કહે છે તેના ત્રણ પ્રકાર છે–(૧) ભાષાની અપેક્ષાએ જડ, (૨) શરીરની અપેક્ષાએ જડ અને (૩) ક્રિયાની અપેક્ષાએ જડ.

श्चतुर्विधः–जलमूकः १, मन्मनमूकः २, एलकमूकः ३, दुर्मेधश्च ४। जलमग्न इव बुडबुडायमानो यो वक्ति स जलमूकः १। यस्य वदतः खच्यमानमिव वचनं स्खलति स मन्मनमूकः 'तोतला' 'बोबडा' इति प्रसिद्धः २। यश्चैलक इव मूकतया शब्दमात्रमेव करोति न तु व्यक्तवाचा वक्तुं शक्नोति स एलकमूकः ३। दुर्मेधः–धारणाविकलः, अस्य पुनः पुनः पाठनेऽपि न किञ्चिदपि स्मृतिपथे समायाति, विस्मरणस्वभावत्वात् ४ ।१। भाषाजडश्चतुर्विधोऽपि ज्ञानग्रहणेऽसमर्थत्वान्न प्रव्रज्यायोग्यः१। शरीरजड–शरीरेण स्थूलः, यो विहारे पथि, भिक्षाचर्यायामटने, वन्दनादिषु चातीवस्थूलतयाचाऽशक्तो भवति२। क्रियाजडः–करणं–

से शरीर से और क्रिया से, इनमें भाषाजड़ चार प्रकार का होता है– जलमूक १ मन्मनमूक २ एलकमूक ३ और दुर्मेध ४ जल में मग्न हुवे की तरह बुडबुड जैसा होकर बोलता है वह जलमूक है, बोलते समय जिसके वचन बीच २ में रुककर निकलते हैं वह मन्मनमूक है, इसे भाषा में "तोतला" तथा गुजरात में "बोवडा" कहते हैं। मूक होने के कारण एलक [बकरा] की तरह शब्दमात्र ही करता है बोलता है, स्पष्ट वाणी नहीं बोल सकता है वह एलकमूक है। धारणा से जो विकल होता है वह दुर्मेध है बार २ पढाने पर भी इनकी स्मृति में कुछ भी नहीं जमता है क्यों कि इसका स्वभाव विस्मरणवाला होता है–४ चार प्रकार का यह भाषाजड ज्ञान के ग्रहण में असमर्थ होने के कारण प्रव्रज्या के अयोग्य कहा गया है १। शरीरजड़ वह है जो शरीर से स्थूल होता है ऐसा शरीरजड विहारमार्ग में, भिक्षाचर्या करने में, और

ભાષાજડના પણ ચાર પ્રકાર પડે છે–(૧) જલમૂક, મન્મનમૂક, (૩) એલકમૂક અને (૪) દુર્મેધ. જળમા મગ્ન થયેલાની જેમ 'બુડબુડ' જેવો અવાજ કરનારને જલમૂક કહે છે બોલતી વખતે વચ્ચે વચ્ચે અટકીને જેના શબ્દો નીકળે છે તેને મન્મનમૂક અથવા બોબડો કહે છે. જે માણસ મૂંગો હોવાથી બકરાની જેમ "બે બેં" જેવી અસ્પષ્ટ વાણી જ બોલી શકે છે તેને એલકમૂક કહે છે (એલક એટલે બોકડો). ધારણાથી જે વિકલ (રહિત) હોય છે તેને દુર્મેધ કહે છે. વારવાર સમજાવવા છતાં પણ તેના મગજમાં કઇપણ ઉતરતું નથી, કારણ કે તેનો સ્વભાવ જ વિસ્મરણશીલ હોય છે. આ ચારે પ્રકારના ભાષાજડ માણસો જ્ઞાનને ગ્રહણ કરવામાં અસમર્થ હોય છે, તે કારણે તેમને પ્રવ્રજ્યા આપવા યોગ્ય ગણાવ્યા નથી.

જેનુ શરીર ખૂબ જ સ્થૂલ હોય છે તેને શરીરજડ કહે છે એવો માણસ વિહાર માર્ગમા, ભિક્ષાચર્યા કરવામાં અને વન્દણાદિ ક્રિયાઓ કરવામાં અસ-

क्रिया, तस्यां जड–अलस इत्यर्थः, समिति–गुप्ति–प्रतिलेखनादि क्रियां पुनः पुनरुपदिश्यमानामप्यतीवजडतया यः कर्तुं न शक्नोति सः ३। क्लीबः ५, वातिकः (व्याधित) प्रोक्तलक्षण ६। स्तेनः–चौर ७, राजापकारी–राजापराधी ८, उन्मत्त–प्रसिद्धः ९। अदर्शनः–दृष्टिहीनः, अन्ध इत्यर्थः १०। दास ११, दुष्टः १२, मूढः १३ एते प्रसिद्धा। ऋणार्तः–ऋणपीडितः १४, जुङ्गिकः व्यङ्गित हीन इत्यर्थः अयं जाति–कर्म–शिल्प–शरीरभेदा–च्चतुर्विधः। तत्र जाति जुङ्गिकाः–जात्या जुङ्गिकाः–हीना। ते चत्वारः–पाणाः, डोम्बाः किणिकाः श्वपाकाश्च। तत्र पाणा –ये ग्रामनगरादर्बहिराकाशेऽनावृतस्थाने वसन्ति, डोम्बाः–

वन्दनादिक्रिया में अतीतस्थूल होने के कारण अशक्त होता है २। जो क्रिया करने में अलस (आलसी) होता है वह क्रियाजड है, ऐसा यह क्रियाजड समिति गुप्ति प्रतिलेखना आदि क्रियाओं को बार बार समझाने पर भी अतीव जड होने के कारण यथावत् कर नहीं सकता है–३। क्लीब और वातिक (व्याधित) इनका लक्षण तो कह ही दिया गया है ६ स्तेन चोर ७ राजापकारी राजापराधी ८ उन्मत्त पागल ९ अदर्शन दृष्टिहीन (अन्धा) १०, दास ११ दुष्ट १२ मूढ १३ ऋणार्त ऋण से पीडित १४ एवम्–जुङ्गिक व्यङ्गित अङ्गहीन, ये सब दीक्षा देने के अयोग्य कहे गये हैं। यह जुङ्गिक–जाति, कर्म, शिल्प, और शरीर के भेद से चार प्रकार का कहा गया है जो जाति से हीन होता है वह जातिजुङ्गिक है। जातिजुङ्गिक भी चार प्रकार के होते हैं–पाण, डोम्ब,

---

અર્થ નિવડે છે માટે તેને પ્રવજ્યા દેવાને યોગ્ય કહ્યો નથી. જે માણસ ક્રિયા કરવામાં આળસ કરનારો હોય છે, તેને ક્રિયાજડ કહે છે એવો ક્રિયાજડ માણસ વારંવાર સમજાવવા છતાં પણ સમિતિ, ગુપ્તિ, પ્રતિલેખના આદિ ક્રિયાઓ પોતાની જડતાને કારણે યોગ્ય રીતે કરી શકતો નથી (૫) ક્લીબ અને (૬) વાતિક (વ્યાધિત), આ બન્નેનાં લક્ષણો તો આ સૂત્રમાં જ પહેલાં બતાવવામાં આવેલ છે (૭) સ્તેન (ચોર) (૮) રાજાપકારી એટલે કે રાજાપરાધી, (૯) ઉન્મત્ત(પાગલ ગાંડો), (૧૦) અદર્શન–દૃષ્ટિહીન–અંધ, (૧૧) દાસ, (૧૨) દુષ્ટ (૧૩) મૂઢ–મૂર્ખ (૧૪) (૧૫) ઋણાર્ત–દેવાદાર, તથા જુંગિક વ્યંગિત અને અંગહીનને પણ દીક્ષા દેવા યોગ્ય કહ્યા નથી

જુંગિક મનુષ્યના જાતિ, કર્મ શિલ્પ અને શરીરના ભેદથી ચાર પ્રકાર કહ્યા છે જે જાતિની અપેક્ષાએ હીન હોય છે, તેને જાતિજુંગિક કહે છે જાતિજુંગિક પણ ચાર પ્રકારના હોય છે–પાણ, ડોમ્બ કિણિક અને શ્વપચ.

ये गृहनिवासिनो गीतं च गायन्ति। किणिकाः-ये वादित्राणि परिणह्यन्ति-मण्डयन्तीत्यर्थः, श्वपचाश्चाण्डालाः । उपलक्षणादन्येऽप्येतादृशाधिग्जातीया वरुडादयो ग्राह्याः। एते जातिजुङ्गिकाः १ । कर्मजुङ्गिकाः-कर्मणा जुङ्गिकाः-हीनाः, तेऽष्टविधाः-पोषक-संवर-नट-लंख-व्याध-मत्स्यबन्ध-रजक-वागुरिकभेदात् । तत्र पोषकाः ये स्त्री कुक्कुट-मयूरान् जीविका निमित्त पोषयन्ति १, संवराः-तिरस्करणिकाकारकाः, ये तृणविशेषेण कुड्यादिकमाच्छादयन्ति २, नटाः-ये नाटकानि नर्त्तयन्ति ३। लंखाः-ये वंशादेरुपरिस्थित्वा स्वकलां दर्शयन्ति ४।

किणिक, और श्वपच, इनमें जो ग्राम नगर आदि के बाहर बिलकुल खुले हुवे मैदान में रहते हैं, वे पाणजातिजुङ्गिक हैं जो घर बना कर रहते हैं और गीत गाते हैं, वे डोम्ब हैं। जो वादित्रों को मढते हैं, वे किणिक हैं. और जो चाण्डाल हैं वे श्वपच हैं। उपलक्षण से और भी इसी तरह के नीच जाति के वरुड आदि जातिजुङ्गिक जानना चाहिये। जो कर्म से जुङ्गिक हीन होते हैं वे कर्मजुङ्गिक हैं, वे कर्मजुङ्गिक आठ प्रकार के होते हैं, पोषक १ संवर २ नट ३ लंख ४ व्याध ५ मत्स्यबन्ध ६ रजक धोबी ७ और वागुरिक ८। इनमें जो स्त्री, कुक्कुट, एवं मयूरों को अपनी आजीविका के निमित्त पालते हैं वे पोषक हैं १ जो तृण-विशेषों से दीवाल वगैरह को आच्छादित करते हैं, अर्थात् जो कनात वगैरह बनाते हैं वे संवर हैं २ जो नाटकों को करते हैं उनमें नाचते हैं वे नट हैं-३ जो वांस आदि के ऊपर खेलकर अपनी कला का प्रदर्शन

જેઓ ગામ, નગર આદિની બહાર તદ્દન ખુલ્લા મેદાનમાં રહે છે તેમને પણ જાતિજુંગિક કહે છે જેઓ ઘર બનાવીને રહે છે અને ગીત ગાવાનો ધંધો કરે છે, તેમને ડોમ્બ કહે છે જે લોકો વાજિંત્રોને મઢવાનો ધંધો કરે છે તેમને કિણિક કહે છે, અને ચાંડાલને શ્વપચ કહે છે ઉપલક્ષણની અપેક્ષાએ એ જ પ્રકારની વરુડ આદિ અન્ય નીચ જાતિના મનુષ્યોને પણ જાતિજુંગિક સમજવા જોઇએ જે લોકો કર્મની અપેક્ષાએ જુંગિક (હીન) હોય છે, તેમને કર્મજુંગિક કહે છે તે કર્મજુંગિક આઠ પ્રકારના હોય છે-(૧) પોષક, (૨) સંવર, (૩) નટ, (૪) લંખ, (૫) વ્યાધ, (૬) મત્સ્યબન્ધ, (૭) રજક (ધોબી) અને (૮) વાગુરિક જે લોકો કૂકડા, મરઘી, મોર, સ્ત્રી આદિને પોતાની આજીવિકાને નિમિત્તે પાળે છે, તેમને પોષક કહે છે (૨) જે લોકો તૃણવિશેષોથી દીવાલ વગેરેને આચ્છાદિત કરે છે અથવા જે લોકો કનાત વગેરે બનાવે છે તેમને સંવર કહે છે (૩) જે લોકો નાટકો ખેલે છે અને તેમા નાચે છે તેમને નટ કહે છે (૪) જે વાસ, દોરડા આદિ ઉપર ખેલ કરીને

व्याधाः-लुब्धका ५ । मत्स्यबन्धाः-धीवरा ६ । रजकाः-वस्त्रप्रक्षालकाः ७ । वागुरिकाः-मृगजालिकाः ८ । शिल्पेन जुङ्गिकाः-ये पटकाराः 'वणकर' इति प्रसिद्धाः नापितादयो वा ९ । शरीरजुङ्गिकाः-शरीरेण हीना -ये हस्तपादकर्ण नासिकोष्ठवर्जिताः, वामनकाः-लघुहस्तपादाद्यवयवाः, कुब्जाः-बहिर्निस्सृतपीठ हृदयास्थिकाः, कुष्ठव्याध्युपहता , काणाः, प्रसिद्धाः पङ्गवः-पादगमनशक्तिविकलाः

करते हैं वे लङ्क हैं ४ लुब्धक-शिकारी जो होते हैं वे व्याध हैं-५ मछलियों को पकडने वाले धीवर मत्स्यबन्ध हैं ६ कपडों को धोने वाले धोबी रजक हैं ७ मृगों को जालडालकर जो पकडते वे वागुरिक हैं ८। पटकार बुनकर, अथवा-नापित नाई आदि शिल्पजुङ्गिक हैं ९ शरीर से अङ्गोपाङ्ग से जो हीन होते हैं वे शरीरजुङ्गिक हैं, जैसे-कोई हाथसे हीन होता है, कोई चरण से हीन होता है, कोई कर्ण से तो कोई नासिका से हीन होता है और कोई ओष्ट से हीन होता है ऐसे ये सब शरीर जुङ्गिक कहे गये हैं, तथा वामनक वे होते है-जो शरीर से बौने होते हैं लघु हस्तपाद आदि अवयवों वाले होते हैं, वे कुब्जक-कूबडे होते हैं, जिसकी पीठ की, अथवा हृदय की हड्डी बाहर निकल आती है तथा -कुष्ठ से जिनके हाथ पग आदि अवयव गल जाते हैं, वे तथा-जो काने होते हैं वे, तथा जो पंगु होते हैं वे चलने फिरने में जो चरणों की शक्ति

પોતાની કલાનું પ્રદર્શન કરે છે તેમને લંખ (અજાણીયા) કહે છે (૫) શિકારીને વ્યાધ કહે છે (૬) માછલાં પકડવાનો ધંધો કરનાર ધીવરને (માછીમારને) મત્સ્યબંધ કહે છે (૭) કપડાં ધોવાનો ધંધો કરનારને રજક ધોબી કહે છે (૮) જાળ નાખીને મૃગોને પકડનાર માણસને વાગુરિક કહે છે

પટકાર (વણકર) અથવા નાઈ આદિને શિલ્પજુંગિક કહે છે જે લોકો શારીરિક ખોડ-ખાંપણવાળા હોય છે તેમને શરીરજુંગિક કહે છે જેમકે કોઈ લૂલા હોય છે તો કોઈ ઠુંઠા હોય છે તો કોઈ નકટા (નાક છેદાયેલા) હોય છે કોઈ કર્ણહીન હોય છે, તો કોઇ હોઠ વિનાના હોય છે, એ બધાં મનુષ્યોને શરીરજુંગિક કહ્યા છે.

તથા જેઓ વામનરૂપ (ઠીંગુજી) હોય છે,-લઘુ હાથપગ આદિ અવયવોવાળા હોય છે જે કૂબડા હોય છે જેના વાંસાના અથવા છાતીના હાડકાં બહાર નીકળી આવ્યાં હોય છે જેના હાથપગ આદિ અવયવો કોઢને લીધે ગળી ગયાં હોય છે તથા જે લોકો એક આંખે કાણા હોય છે તથા જે લૂલા હોય છે હાલવા ચાલવારૂપ ચરણોની શક્તિથી જે રહિત હોય છે, એવાં

इत्यादयः शरीरजुङ्गिकाः। एते सर्वे दीक्षयितुं न योग्याः १५॥ उद्बद्धक-–शिक्षणादि-निमित्तेन नियतकालं यावद् बद्धः सेवाभावेन–आयत्तीभूतः, यद्वा केनचित् मूल्य-ग्रहणेन नियतावधिं यावद् बद्धः–वचनबद्धः कृतः स्वाधीनीकृत इत्यर्थः, एताव-त्कालं यावद्भवत्पार्श्वे स्थास्यामि, यद्वा–त्वयैतावत्कालं यावन्ममपार्श्वेऽवश्यं स्था-तव्यमित्यादिरूपेण स्वपरतोवचनबद्धः–उद्बद्धः स एव–उद्बद्धः। स कर्म–शिल्प –विद्या–मन्त्रयोगभेदेन पञ्चविधः। तत्र कर्म–अनुपदेशपूर्वकं गृहकार्यक्षेत्रकर्षणा-दिकम् १। शिल्प–आचार्योपदेशपूर्वकचित्रकर्मादिरूप.२। एवं विद्या–लेखादिका शकुनरुतपर्यवसाना ३। मन्त्रः–विद्वेषणवशीकरणादिरूपः ४। योगः–चूर्णादि

से रहित होते हैं इत्यादि वे सब, ऐसे मनुष्य शरीरजुङ्गिक कहे गये हैं। ये सब दीक्षा के अयोग्य कहे गये हैं। शिक्षण आदि के निमित्त से जो नियमितकाल तक सेवाभाव से बद्ध हो, अथवा–मूल्य देकर किसीने जिसे नियत समयतक वचनबद्ध करलिया हो, अपने अधीन बना लिया हो कि इतने समयतक तुम्हे (झे) मेरे पास रहना होगा, अथवा इतने समयतक मैं तुम्हारे पास रहूंगा, इस प्रकार से जो स्व पर से वचनबद्ध हो गया हो वह उद्बद्ध है उद्बद्ध ही उद्बद्धक है यह उद्बद्धककर्म, शिल्प विद्या मन्त्र और योग के भेद से पांच प्रकार का होता है अनुपदेश पूर्वक गृहकार्य क्षेत्रकर्षण आदि से जो बद्ध होता है वह कर्म उद्बद्ध है आचार्योपदेश पूर्वक त्रिकर्म आदिरूप शिल्प से जो बद्ध होता है वह शिल्प उद्बद्ध है लेखनकला से लेकर पक्षी के

મનુષ્યોને શરીરજુંગિક કહે છે. તે દરેક પ્રકારના શરીરજુંગિકોને દીક્ષા આપવાને યોગ્ય ગણ્યા નથી

શિક્ષણ આદિને નિમિત્તે જે લોકો નિયમિત કાળપર્યન્ત સેવાભાવથી બંધાયેલા હોય, અથવા વેતન આપીને જેને કોઈએ નિયત સમય સુધી કામ કરવાને માટે વચનબદ્ધ કરી લીધા હોય–એટલે કે " આટલા સમય સુધી તમારે મારી પાસે રહેવું પડશે અથવા આટલા સમય સુધી હું તમારી સાથે રહીશ, " આ પ્રકારે જે પોતે અન્યની સાથે વચનથી બંધાયેલો હોય તેને ઉદ્દ્બદ્ધ કહે છે, એવા ઉદ્દ્બદ્ધને જ ઉદ્દ્બદ્ધક કહે છે આ ઉદ્દ્બદ્ધકના કર્મ, શિલ્પ, વિદ્યા, મંત્ર અને યોગના ભેદથી પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે–અનુપદેશપૂર્વક જે ગૃહકાર્ય, કૃષીકર્મ આદિ કરવાને બંધાય છે તેને કર્મઉદ્દ્બદ્ધક કહે છે. આચાર્યોપદેશ પૂર્વક જે ચિત્રકાર્ય આદિ રૂપ શિલ્પ કરવાને બંધાયેલો હોય છે તેને શિલ્પઉદ્દ્બદ્ધક કહે છે લેખનકલાથી લઈને પક્ષીની બોલીને જાણવા પર્યન્તની

प्रयोग ५ । पञ्चविधोऽप्येष दीक्षयितु न कल्पते । उक्तञ्च—

" कम्म १ सिप्पे २ विज्जा ३, मंते जोगे य होइ उवयरओ ।
उन्नद्धओ उ एसो, न कप्पए तारिसे दिक्खा ॥ १ ॥ "

छाया— कर्मणि १ शिल्पे २ विद्यायां ३ मन्त्रे ४ योगे ५ च भवत्युपचरकः ।
उन्नद्धकस्त्वेष न कल्पते तादृशे दीक्षा ॥ इति १६ ।

भृतक —भृत्य –प्रसिद्ध १७ । शैक्षनिष्फेटित –निष्फेटित शैक्ष इत्यर्थः, यो गृहकलहादिकारणमाश्रित्य मातापित्रोरननुज्ञात एव दीक्षां ग्रहीतुमिच्छति सः, यद्वा–अन्यतः कश्चिद्दीक्षाभिलाषी दीक्षितो वा पलाय्य समागतः सोऽपि दीक्ष यितु न कल्पत इति १८ । गुर्विणी–सगर्भा १९ । बालवत्सा–मधुबालमाता २०

शब्दों जानने तक की कलाओं में जो निपुण होता है वह विद्याउद्पद्ध है, विद्वेषण उच्चाटन मारण ताडन, एवं वशीकरणरूप मन्त्र विद्या में जो निपुण होता है, वह मन्त्र उद्पद्ध है, और चूर्णादिप्रयोग करने में जो चतुर होता है वह योग उद्पद्ध है ये पांचो प्रकार के उद्पद्ध भी दीक्षा देने के योग्य नहीं कहे गये हैं। कहा भी है–" कम्मे सिप्पे विज्जा " इत्यादि, जो दूसरों के यहां आजीविका के निमित्त नोकरी करता है वह भृतक है, वह तथा–गृहकलह आदिरूप कारण को लेकर जो मातापिताकी आज्ञा प्राप्त किये विना ही दीक्षा को उद्यत होताहै ऐसा वह निष्फेटित शैक्ष कहाते हैं। अथवा दीक्षाभिलाषी बना हुआ, या दीक्षित हुआ जो दूसरी जगह से भगकर आया हो, वह भी दीक्षा देने के योग्य नहीं कहा गया है १८, जो गर्भवती है ऐसी गुर्विणी स्त्री, तथा जिसका

કલાઓમાં જે નિપુણ હોય છે તેને વિદ્યાઉદ્બદ્ધ કહે છે વિદ્વેષણ–ઉચ્ચાટન, મારણ–તાડન અને વશીકરણ રૂપ મન્ત્રવિદ્યામાં જે નિપુણ હોય છે તેને મન્ત્ર ઉદ્બદ્ધ કહે છે અને ચૂર્ણાદિ પ્રયોગ–રસાયણ પ્રયોગ કરવામાં જે નિપુણ હોય છે તેને યોગઉદ્બદ્ધ કહે છે આ પાંચે પ્રકારના ઉદ્બદ્ધકને દીક્ષા આપવાને યોગ્ય કહ્યા નથી કહ્યું પણ છે કે–" કમ્મે સિપ્પે વિજ્જા " ઈત્યાદિ—

જે આજીવિકા નિમિત્તે બીજાને ત્યાં નોકરી કરે છે તેને ભૂતક કહે છે, તેને પણ દીક્ષા આપવા યોગ્ય કહ્યો નથી. ગૃહકલહ આદિ કારણોને લીધે માતાપિતાની આજ્ઞા લીધા વિના દીક્ષા લેવાને તૈયાર થયેલ વ્યક્તિને પણ દીક્ષા આપવા યોગ્ય ગણેલ નથી. એ પ્રકારના દીક્ષાર્થીને ' નિષ્ફેટિત શૈક્ષ " કહે છે અથવા દીક્ષાભિલાષી બનીને બીજી જગ્યાએથી ભાગી આવેલને, અને એક વાર દીક્ષા લઈને ત્યાંથી ભાગીને આવેલા માણસને પણ દીક્ષા આપવાને

'एव' मिति एवं – यथा पूर्वोक्ता एते प्रव्राजयितुं न कल्पन्ते तथैव एव कथञ्चिच्छलनादिना प्रव्राजिता अपि सन्तो मुण्डयितु–शिर केशान् लुञ्चयितुम्, शिक्षयितुं–ग्रहणासेवनी शिक्षां ग्राहयितुम् ३, उपस्थापयितु–महाव्रतेषु व्यवस्थापयितुम् ४, संभोक्तुम्–उपध्याहारादिना तेन सह सम्भोगं कर्त्तुम् ५, तथा यद्यनाभोगेन संभोगविषयीकृता भवेयुस्तदा संवासयितुम्–आत्मसमीपे स्थापयितुं न कल्पन्त एवेति ॥ सू० ७० ॥

पूर्वं प्रव्राजनाद्ययोग्या प्रोक्ताः, साम्प्रतं तत्प्रसङ्गाद् वाचनादिविषयेऽयोग्ययोग्यान् कथयन् सूत्रचतुष्टयमाह—

मूलम्–तओ आवायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहा–अविणीए, विगइपडिवद्धे, अविओसियपाहुडे । १ । तओ कप्पंति वाइत्तए, तं जहा-विणीए अविगइ पडिबद्धे, विओसिय पाहुडे।२। तओ दुस्सन्नप्पा पण्णत्ता, तं जहा–दुट्ठे मूढे वुग्गाहिए।३। तओ सुसन्नप्पा पण्णत्ता, तं जहा--अदुट्ठे, अमूढे, अवुग्गाहिए । ४ ॥ सू० ७१ ॥

बच्चा अभी छोटा है, ऐसी बालवत्सा स्त्री भी दीक्षा देने के योग्य नहीं कही गई है। तो जिस प्रकार से ये सब दीक्षा देने के योग्य नहीं कहे गये हैं उसी प्रकार से ये कथञ्चित् छलना आदि से प्रव्राजित हो जाने पर भी शिर के केशों का लुञ्चन करवाने योग्य तथा ग्रहण, शिक्षा और आसेविनी शिक्षा को ग्रहण कराने योग्य शिक्षित महाव्रतों में इन्हें व्यवस्थापित करना उपधि और आहारादि का इनके साथ संबन्ध रखना, और इन्हे अपने पास रखना ये सब बाते भी इनके साथ किसी भी तरह से (करनी) योग्य नहीं हैं ॥सू० ७०॥

યોગ્ય ગણાવેલ નથી ગર્ભવતી સ્ત્રી તથા બાલવત્સા સ્ત્રી-જેનું બાળક નાનું હોય એવી સ્ત્રીને પણ દીક્ષા આપવાને યોગ્ય કહી નથી.

ઉપર્યુક્ત ૨૦ પ્રકારના માણુસોને દીક્ષા આપવાને યોગ્ય કહ્યા નથી, એટલું જ નહીં પણ કોઈ પ્રકારના છળથી તેઓ દીક્ષિત થઈ ગયા હોય તો પણ તેમના શિરના કેશોનો લોચ કરવા તે યોગ્ય નથી, તથા ગ્રહણ-શિક્ષા આસેવિની શિક્ષાને ગ્રહણ કરાવવા યોગ્ય નથી મહાવ્રતોમાં સ્થાપિત કરવા યોગ્ય પણ નથી અને ઉપધિ-(આહારાદિ) નો તેમની સાથે સંબંધ રાખવા યોગ્ય પણ નથી, અને પોતાની સાથે રાખવા યોગ્ય પણ નથી. ॥ સૂ. ૭૦ ॥

छाया—त्रयः अवाचनीया प्रज्ञप्ता, तद्यथा–अविनीत, विकृतिप्रतिबद्ध, अव्यवसितप्राभृतः। १। त्रय कल्पन्ते वाचयितुं, तद्यथा–विनीतः, अविकृति प्रतिबद्ध, व्यवसितप्राभृत २। त्रयो दुस्संज्ञाप्या प्रज्ञप्ता तद्यथा–दुष्टः, मूढो, व्युद्ग्राहित ३। त्रय सुसंज्ञाप्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा — अदुष्टः, अमूढ, अव्युद्ग्राहितः ४। सू० ७१॥

टीका—' तओ अवायणिज्जा ' इत्यादि। त्रयः अवाचनीयाः–वाचयितु-सूत्र पाठयितु न योग्याः, अत एवार्थमपि श्रावयितु न योग्या, सूत्रार्थयस्य मह

इस प्रकार प्रव्राजना (प्रव्रज्या) आदि के अयोग्यों का कथन करके अब सूत्रकार उसी प्रसङ्ग से वाचना आदि के विषय में जो अयोग्य हैं उनके सम्बन्ध में और जो योग्य हैं उनके सम्बन्ध में कथन करने के लिये चार सूत्र कहते हैं–" तओ अवायणिज्जा पण्णत्ता " इत्यादि,।

सूत्रार्थ–ये तीन अवाचनीय (वाचना देनेके योग्य नहीं) कहे गये हैं, जैसे अविनीत, विकृतिप्रतिबद्ध, और अव्यवसितप्राभृत। ये तीन वाचना के योग्य कहे गये हैं, जैसे-विनीत अविकृतिप्रतिबद्ध और व्यवसितप्राभृत। ये तीन दुःसंज्ञाप्य कहे गये हैं, जैसे-दुष्ट मूढ और व्युद्ग्राहित ये तीन सुसंज्ञाप्य कहे गये हैं, जैसे–अदुष्ट अमूढ और अव्युद्ग्राहित, तात्पर्य इन सूत्रों का इस प्रकार से है जो सूत्र और अर्थ का अपने को अध्ययन कराने वाले हैं, या जो अपनी अपेक्षा सम्यग्दर्शन ज्ञान और

સૂત્રાર્થ–પ્રવ્રજ્યા આદિને માટે અયોગ્ય મનુષ્યોનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર વાચના આદિના વિષયમાં અયોગ્ય અને યોગ્ય મનુષ્યોનું નીચેના ચાર સૂત્રો દ્વારા કથન કરે છે–" तओ अवायणिज्जा पण्णत्ता ' ઈત્યાદિ—

નીચે દર્શાવેલા ત્રણ પ્રકારના માણસોને અવાચનીય (વિદ્યા આપવાને માટે અપાત્ર) કહ્યા છે–(૧) અવિનીત, (૨) વિકૃતિ પ્રતિબદ્ધ અને (૩) અવ્યવસિત પ્રાભૃત. નીચે દર્શાવેલા ત્રણ પ્રકારના માણસોને વાચનીય (વાચના દેવાને યોગ્ય) કહ્યા છે–(૧) વિનીત (૨) અવિકૃતિ પ્રતિબદ્ધ અને (૩) વ્યવસિતપ્રાભૃત. નીચે દર્શાવેલા ત્રણ પ્રકારના માણસોને દુઃસંજ્ઞાપ્ય કહ્યા છે–(૧) દુષ્ટ, (૨) મૂઢ અને (૩) વ્યુદ્ગ્રાહિત નીચે દર્શાવેલા ત્રણ પ્રકારના માણસોને સુસંજ્ઞાપ્ય કહ્યા છે–(૧) અદુષ્ટ (૨) અમૂઢ અને (૩) અવ્યુદ્ગ્રાહિત.

આ સૂત્રોનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે જે સૂત્ર અને અર્થનું અધ્યયન કરાવનાર હોય છે, તથા જેઓ પોતાના કરતા સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્ર

त्वात्। तानेवाह—अविनीत.–सूत्रार्थदायकस्य रत्नाधिकस्य वा वन्दनादिविनयविकलः तस्मैदत्ता विद्या न फलदा भवति।

यत उक्तम्—" विणया हीज्जाविज्जा देइफलं इह परे य लोगम्मि।
न फलंतऽविणयगहिया, सस्साणि व तोयहीणाइं ॥ १ ॥

छाया—विनयाधीता विद्या ददाति फलमिह परस्मिश्च लोके।
न फलन्त्यविनयगृहीताः सस्यानीवतोयहीनानि ॥ १ ॥

विकृतिप्रतिबद्धः–दुग्धादिरसगृद्धः, अयं हि–वाचनाग्रहणेऽसमर्थो भवति। रसास्वादैकदत्तचित्तत्वात्। अव्यवसितप्राभृतः, अव्यवसितम्–अनुपशान्तं (उपहार) प्राभृतमिव प्राभृतं–नरकपालकौशलिकं परमक्रोध–इत्यर्थः, यस्य सः अव्यवसित–अनन्तानुबन्धिक्रोधयुक्त इत्यर्थः, यः क्षामितोऽप्यक्षान्त इत्येव न प्रत्युत बहुशः

चारित्र रूपरत्न से अधिक हैं उनकी वन्दना आदि करने रूप विनय से जो रहित होते हैं, ऐसे जीव अविनीत कहे जाते हैं ऐसे अविनीतों को दी गई विद्या फलप्रद नहीं होती है। कहा भी है–" वियणाहीयाविज्जा " इत्यादि, जिस प्रकार जलहीन सस्य (अनाज) फलित नहीं होता है, उसी प्रकार अविनय संगृहीत विद्या भी फलित नहीं होती है। क्यों कि–विनयाधीन विद्या ही फलित होती कही गई है, जो दुग्धादिरसों में गृद्ध होता है वह विकृतिप्रतिबद्ध है यह विकृतिप्रतिबद्ध वाचना ग्रहण करने में असमर्थ होता है, क्यों कि–इसका चित्त रसास्वाद में ही मग्न बना रहता है तथा जो अनन्तानुबन्धी क्रोध से युक्त होता है वह अव्यवसित प्राभृत है। अव्यवसित शब्द का अर्थ अनुपशान्त है,

---

રૂપ ત્રિરત્નની અપેક્ષાએ ચડિયાતા છે, તેમને વંદણા આદિ કરવારૂપ વિનયથી જે જીવ રહિત હોય છે તેને અવિનીત કહે છે એવા અવિનીતોને જે વિદ્યાદાન દેવામા આવે છે તે વ્યર્થ જાય છે કહ્યુ પણ છે કે–" विणया हिया विज्जा " ઇત્યાદિ જેમ પાણી ન મળે તો અનાજ પાકતું નથી એ જ પ્રમાણે અવિનય સંગૃહીત વિદ્યા પણ ફળદાયી નિવડતી નથી, કારણ કે વિનયથી જ વિદ્યા શોભે છે–વિનયાધીન વિદ્યા જ ફલિત થાય છે, એવું આગમવાક્ય છે.

દૂધ આદિ રસોમાં જે લોલુપ (ગૃદ્ધ) હોય છે તેને વિકૃતિ પ્રતિબદ્ધ કહે છે એવા વિકૃતિ પ્રતિબદ્ધ જીવો વાચના ગ્રહણ કરવાને અસમર્થ હોય છે, કારણ કે તેમનું ચિત્ત રસાસ્વાદમા જ લીન રહ્યા કરે છે

જે મનુષ્ય અનન્તાનુબંધી ક્રોધથી યુક્ત હોય છે તેને અવ્યવસિત પ્રાભૃત કહે છે ' અવ્યવસિત ' એટલે " અનુપશાન્ત, " અને ' પ્રાભૃત " એટલે ' ઉપહાર ' તેથી પ્રાભતની જેમ (પરમાધાર્મિકની જેમ) જીવ અતિશય ક્રોધી

क्रोधमुदीरयति सः,

उक्तं च–" अप्पेवि पारमाणि अवराहे वयइ खामिय त च ।
वडुमो उदीरयंतो, अविओसिय पाहुडो स खलु ॥ १ ॥
छाया–अल्पेऽपि पारमाणि (परमक्रोध समुद्वात) अपराध प्रमति क्षामित तं च ।
वडुश उदीरयन् अव्यवसित प्राभृतः स खलु ॥ १ ॥ " इति ।

एतस्य वाचनादाने लोकद्वयहानि, तत्रेहलोकहानिस्तत्प्रेरणायां कलहसम्भवात् परलोकहानि –दत्तस्य श्रुतस्य ऊषरक्षितबीजवन्निष्फलत्वात् क्रोधावशेन भगवद्वचनस्यानादरकरणाच्चेति १ । एतद्विपरीतसूत्रमाह–' तओ कप्पंति ' इत्यादि ।

और प्राभृत शब्द का अर्थ उपहार है, अतः प्राभृत की तरह प्राभृत–परमार्मिक की तरह परमक्रोधी है यह अव्यवसित प्राभृत है, ऐसा अव्यवसित प्राभृतवाला जो अनन्तानुबंधी क्रोधवाला होता है वही होता है, क्यों कि–इससे क्षमा मांगने पर भी यह उल्टा अधिक अशांत ही बनता है, अधिक से अधिक क्रोध को प्रकट करता है। कहा भी है –' अप्पेविपारमाणि–" इत्यादि, इसको वाचना देने में उभयलोक की हानि होती है देनेवाले की इहलोक सम्बन्धी हानि उसे प्रेरणा करने पर कलह होने की सम्भावना सी होती है तथा परलोक की हानि दिये गये श्रुत को ऊपरभूमि में डाले गये बीज की तरह निष्फल हो जाने से होती है। क्यों कि–यह क्रोधावेश से भगवान के वचनों का आदर कारक नहीं होता है इसलिये ये सूत्र पढाने के योग्य नहीं कहे गये हैं, जब ये सूत्र पढाने के भी लायक नहीं कहे गये हैं, तो इन्हें अर्थ सुनाना

હેય છે તેને અવ્યવસિત પ્રાભૃત કહે છે એવો અવ્યવસિત પ્રાભૃત જીવ અનન્તાનુબંધી ક્રોધવાળો જીવ જ હોઈ શકે છે કારણ કે તેની પાસે ક્ષમા માગવા છતાં પણ તે ઉલટો અધિક અશાન્ત બને છે અને વધારેને વધારે ક્રોધ પ્રકટ કરે છે કહ્યું પણ છે કે–' अप्पेविपारमाणि ' ઇત્યાદિ—

તેને વાચના દેવાથી હાનિ થાય છે–તેને વાચના દેનારના આલોક સબંધી હાનિ આ રીતે થાય છે–તેને પ્રેરણા કરવાથી કલહ થવાનો સંભવ રહે છે, એ રીતે વાચના દેનારના આલોકની હાનિ થાય છે જેમ ઉષર (સારહીન) ભૂમિમાં બીજ વાવવાથી ફળની પ્રાપ્તિ થતી નથી તેમ એવા માણસને શ્રુતજ્ઞાન આપવાથી તેનું કોઈ સારૂં પરિણામ આવતું નથી આ રીતે તેના પરલોકની પણ હાનિ જ થાય છે કારણ કે એવો માણસ ક્રોધને વશ થઈને ભગવાનનાં વચનોનો પણ આદર કરતો નથી, તેથી તેને સૂત્રનો અભ્યાસ કરાવવો તે યોગ્ય નથી. જ્યારે તેમને સૂત્રનો અભ્યાસ કરાવવાને પણ યોગ્ય કહ્યા નથી,

त्रयः–एतद्विपरीता विनीतादयो वाचयितुं कल्पन्ते । शेषं स्पष्टम् । २ । पूर्वं श्रुतदानायोग्यावर्णिताः, साम्प्रतमयोग्यप्रस्तावात्सम्यक्त्वस्याप्ययोग्यान् वर्णयति–'तओ दुस्सन्नप्पा' इत्यादि । सुगमं, नवरं–दुःदुःखेन कष्टेन संज्ञाप्यन्ते=प्रज्ञाप्यन्ते बोधविषयी क्रियन्त इति दुस्संज्ञाप्याः – अप्रज्ञापनीया इत्यर्थः । ते त्रयः प्रज्ञप्ताः, तथाहि–दुष्टः, द्विष्टो वा तत्त्वं प्रति तत्त्वप्रज्ञापकं प्रति वा । अयं चा–प्रज्ञापनीयः यतोऽस्य द्वेषेण दुष्टत्वेन वोपदेशस्य सफलता न जायत इति १ । मूढः–मूर्खः–

कदापि योग्य नहीं है । क्यों कि सूत्र की अपेक्षा अर्थ का महत्त्व होता है इन पूर्वोक्त अविनीत आदिकोंसे जो विपरीत हैं वे विनीत आदिक सूत्र पढाने के और अर्थ सुनाने के योग्य होते हैं, यह बात अब सूत्रकार कहते हैं इसमें यह कहा गया है कि जो विनीत, अविकृतिप्रतिबद्ध और व्यवसितप्राभृत होते हैं ये वाचना देने के योग्य कहे गये हैं। अयोग्य का प्रकरण होने से जो सम्यक्त्व के भी अयोग्य हैं, उन्हें–सूत्रकार–" तओ दुस्सन्नप्पा पण्णत्ता " इत्यादि, इस सूत्र द्वारा कहते हैं–जो बडी मुश्किल से बोध के विषयभूत किये जाते हैं ऐसे वे दुःसञ्ज्ञाप्य अप्रज्ञापनीय तीन कहे गये हैं, एक दुष्ट, अथवा द्विष्ट, दूसरा मूढ, और तीसरा व्युद्ग्राहित, इनमें जो तत्त्व के प्रति अथवा–तत्त्वप्रज्ञापक के प्रति द्वेष रखता हो या दुष्टप्रकृति संपन्न बना रहता हो वह प्रथम नम्बर का अप्रज्ञापनीय है इसे अप्रज्ञापनीय इसलिये कहा गया

તો અર્થ સંભળાવવાનું તો કેવી રીતે યોગ્ય હોઈ શકે ! સૂત્ર કરતાં અર્થનું મહત્વ વિશેષ હોય છે, એટલે અર્થ સમજાવવાનું તો એથી પણ વધારે અયોગ્ય ગણી શકાય. પૂર્વોક્ત અવિનીત આદિથી વિપરીત એવા વિનીત આદિ ગુણોવાળા શિષ્યો જ સૂત્ર શીખવવાને અને અર્થ સંભળાવવાને યોગ્ય હોય છે, એ જ વાત હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે

વિનીત, અવિકૃતિ પ્રતિબદ્ધ અને વ્યવસિત પ્રાભૃત ક્રોધને વશ રાખનાર શિષ્યો જ વાચના દેવાને યોગ્ય કહ્યા છે. અયોગ્યનું પ્રકરણ હોવાથી હવે સૂત્રકાર સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ માટે જેઓ અયોગ્ય છે તેનું કથન કરે છે—

" तओ दुस्सन्नप्पा पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

જેઓ મહા મુશ્કેલીથી બોધને પ્રાપ્ત કરી શકે છે તેમને દુઃસંજ્ઞાપ્ય (અપ્રજ્ઞાપનીય) કહ્યા છે એવાં દુઃસંજ્ઞાપ્ય ત્રણ કહ્યા છે-(૧) દુષ્ટ અથવા દ્વિષ્ટ, (૨) મૂઢ અને (૩) વ્યુદ્ગ્રાહિત. જે તત્વ પ્રત્યે અથવા તત્વપ્રજ્ઞાપક પ્રત્યે દ્વેષ રાખે છે અથવા દુષ્ટ પ્રકૃતિસંપન્ન જ ચાલુ રહે છે તેને દુષ્ટ અપ્રજ્ઞાપનીય

अथ हेयोपादेयविवेकविकलत्वेन उपदेशग्रहणासमर्थत्वात् प्रज्ञापयितुं न यो
व्युद्ग्राहित'-विमोहितमतिकः-कुगुरु दृढीकृतविपर्यास इत्यर्थः । एषोऽप्युप
न योग्यः ३ । एतद्विपरीतादुष्टादिविशेषणविशिष्टा, सु-सुखेन-अनाया
सज्ञाप्य न्ते-बोध्यन्त इति सुसञ्ज्ञाप्या भवन्ति । शेषं स्पष्टम् । ४ ॥ सू० ७

पूर्वं प्रज्ञापनार्हा' पुरुषा वर्णिताः, सम्प्रति सत्प्रज्ञापनीयवस्तूनि त्रिस्थान
कावतारयोग्यान्याह—

मूलम्—तओ मंडलिया पव्वया, पण्णत्ता, तं जहा-माए
सुत्तरे, कुंडलवरे, रुयगवरे ॥ १ ॥ तओ महाइमहालया पण्ण
त्ता जहा-जंबुद्दीवे मंदरे मंदरेसु १, सयंभुरमणे समुद्दे समुद्देसु
बंभलोए कप्पे कप्पेसु ॥ सू० ७२ ॥

है कि दुष्ट होता है, अथवा द्वेष रखनेवाला होता है, इस लिये दि
गया तत्त्वोपदेश इसमें सफलताशाली नहीं होता है। मूढ-मूर्ख
होता है वह इसलिये अप्रज्ञापनीय कहा गया है कि वह हेयोपा
विवेक से विकल होता है, अतः-उपदेश ग्रहण करने में असमर्थ
रहता है तथा जो व्युद्ग्राहित होता है विमोहित मतिवाला होता
अर्थात् कुगुरु की शिक्षा से जिसका विपर्यास मजबूत कर दिया ग
होता है ऐसा यह व्युद्ग्राहित मतिवाला पुरुष भी उपदेश देने के यो
नहीं कहा गया है, किन्तु-इनसे विपरीत जो होते हैं अर्थात्-अदुष्टा
विशेषण से विशिष्ट जो मनुष्य होते हैं वे विना किसी आयास के सु
पूर्वक समझाये जा सकते हैं, इसलिये उन्हें सूत्रकारों ने सुसज्ञाप्य क
है अवशिष्ट स्पष्ट है-॥ सू०७१ ॥

કહે છે તેને અપ્રજ્ઞાપનીય કહેવાનું કારણ એ છે કે તે દુષ્ટ હોય છે, અથવ
દ્વેષ રાખનારો હોય છે તેથી તેને જે તત્ત્વોપદેશ આપવામાં આવે છે
મૂઢ (મૂર્ખને) અપ્રજ્ઞાપનીય કહેવાનું કારણ એ છે કે
હેયોપાદેયના વિવેકથી વિહીન હોય છે તેથી ઉપદેશ ગ્રહણ કરવાને અસમર્થ
હોય છે વિમોહિત મતિવાળાને વ્યુદ્ગ્રાહિત કહે છે એટલે કે કુગુરુના ઉપ
દેશથી જેનો વિપર્યાસ મજબૂત રીતે થઈ ગયો હોય છે એવા વ્યુદ્ગ્રાહિત
મતિવાળા પુરુષને પણ ઉપદેશ દેવાને પાત્ર કહ્યો નથી. પરંતુ તેના કરત
વિપરીત અદુષ્ટ અમૂઢ અને અવ્યુદ્ગ્રાહિત આદિ વિશેષણોવાળો મનુષ્ય સુસ
જ્ઞાપ્ય હોય છે કારણ કે તેને તત્ત્વોપદેશ સહેલાઈથી સમજાવી શકાય છે,
ત્યાં ઉપદેશ દાતાનો ઉપદેશ નિષ્ફળ જતો નથી. ॥ સૂ ૭૧ ॥

छाया—त्रयो माण्डलिका पर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–मानुषोत्तरः, कुण्डलवरः रुचकवरः ॥ १ ॥ त्रयो महातिमहालयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–जम्बूद्वीपे मन्दरो मन्दरेषु १, स्वयम्भूरमणः समुद्रः समुद्रेषु २, ब्रह्मलोकः कल्पः कल्पेषु ३ ।सू०७२॥

टीका—'तओ मंडलिया' इत्यादि । माण्डलिकाः, मण्डलं–चक्रवालं, तदस्ति येषां ते माण्डलिकाः प्राकारवलयवदवस्थिताः पर्वतास्त्रयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–ते यथा –मानुषोत्तरः, मानुषेभ्यो मानुषक्षेत्राद्वा उत्तरः परतोवर्त्ती यो मानुषलोकविभाजकः

इस प्रकार प्रज्ञापनार्ह पुरुषों का वर्णन करके अब सूत्रकार त्रिस्थानावतरण योग्य तत्त्वप्रज्ञापनीय वस्तुओं को कहते हैं "तओ मंडलिया पव्वया पण्णत्ता" इत्यादि,

सूत्रार्थ — तीन माण्डलिक पर्वत कहे गये हैं, जैसे–मानुषोत्तर १ कुण्डलवर २ और रुचकवर ३ ये तीन सब से बहुत बडे कहे गये हैं, जैसे जम्बूद्वीप अन्य मन्दरोंके बीचमें मन्दर पर्वत १ समुद्रों के बीच में स्वयम्भूरमण २ और कल्पों के बीच में ब्रह्मलोक कल्प ३

टीकार्थ–इस सूत्रका विस्तृत अर्थ ऐसा है–मण्डल नाम चक्रवाल का है यह चक्रवाल जिनको है वे माण्डलिक हैं, प्राकार की तरह जो गोल रूप में अवस्थित होते हैं वे माण्डलिक कहलाते हैं ऐसे माण्डलिक पर्वत तीन कहे गये हैं,–एक मानुषोत्तर पर्वत यह मानुषोत्तर पर्वत पुष्करवर द्वीप के बीच में हैं इसके आगे मनुष्य नहीं हैं इसके पहले २ मनुष्य हैं इसलिये इसका नाम मानुषोत्तर है । अथवा–मनुष्यक्षेत्र अढाई द्वीप

પ્રજ્ઞાપનીય પુરુષોનું પ્રતિપાદન કરીને હવે સૂત્રકાર ત્રિસ્થાનકનો આશ્રય લઈને પ્રજ્ઞાપનીય વસ્તુઓનું વર્ણન કરે છે—

" તઓ મંડલિયા પવ્વયા પણ્ણત્તા " ઈત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–ત્રણ મંડલિક પર્વત કહ્યા છે–(૧) માનુષોત્તર, (૨) કુંડલવર અને (૩) રુચકવર આ ત્રણેને સૌથી મોટા કહ્યા છે–બધા મન્દર પર્વતોમાંથી જંબૂદ્વીપમાં આવેલો મન્દર પર્વત સૌથી મોટો છે. (૨) સ્વયભૂરમણ સમુદ્ર બધા સમુદ્રો કરતાં મોટો છે. (૩) બ્રહ્મલોક કલ્પ બધા કલ્પોમાં સૌથી મોટું છે.

ટીકાર્થ–હવે આ સૂત્રનો વિશેષાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે–મંડલ એટલે ચક્રવાલ. આ ચક્રવાલ (ગોળાકાર) થી યુક્ત જે હોય છે તેને મંડલિક કહે છે. પ્રાકાર (કોટ) ની જેમ જે પર્વતો ગોળાકારે અવસ્થિત હોય છે તેમને મંડલિક પર્વતો કહે છે એવા મંડલિક પર્વત ત્રણ કહ્યા છે–(૧) માનુષોત્તર પર્વત. આ પર્વત પુષ્કરવર દ્વીપની મધ્યમા છે, ત્યાંથી આગળ જતાં મનુષ્યોનો સદ્‌ભાવ નથી, પરન્તુ તે પર્વતની પહેલા મનુષ્યોનો સદ્‌ભાવ છે, તેથી તેનું નામ માનુષોત્તર પર્વત છે. અથવા મનુષ્યક્ષેત્ર–અઢી દ્વીપનો તે વિભાગ કરે

स यथा। कुण्डलवर -एकादशे कुण्डलवरनाम्नि द्वीपे स्थित प्राकारकुण्डलाकृतिकः कुण्डलद्वीपं विभजमानः पर्वतः। रुचकवरः-त्रयोदशे रुचकवरे द्वीपे वर्तमानः कुण्डलाकृतिकः रुचकद्वीप विभजमान पर्वतविशेष। तत्र प्रथममानुषोत्तर पर्वतस्वरूप यथा—

"पुक्खरवर दीवड्ढं, परिक्खिवइ माणुसुत्तरो सेलो।
पायारसरिसरूवो, विभयंतो माणुस लोग॥ १॥
सत्तरस एगवीसाइं जोयण सयाइं सो समुव्विद्धो।
चत्तारि य तीसाइं मूले कोस च ओगाढो॥ २॥
दसबावीसाइं अहे, वित्थिन्नो होइ जोयणसयाइं।
सत्तय तेवीसाइं, वित्थिभो होइ मज्झम्मि॥ ३॥
चत्तारि य चउवीसे, वित्थारो होइ उवरि सेलस्स।
अड्ढाइज्जे दीवे, दो य समुद्दे अणुपरीइ॥ ४॥

छाया—पुष्करवरद्वीपार्धं परिक्षिपति मानुषोत्तरः शैलः।
प्राकारसदृशरूपो विभजमानो मानुषं लोकम्॥ १॥

सप्तदश एकविंशत्या (अधिकानि) योजनशतानि (एकविंशत्यधिकसप्तदश योजनशतानीत्यर्थः) समुद्विद्धाः। चत्वारि च त्रिंशत् (त्रिंशदधिकचतुश्शता नीत्यर्थः) क्रोशं चावगाढः॥ २॥

का यह विभाग करता है इसलिये भी इसका नाम मानुषोत्तर पर्वत है ११ वां द्वीप जो कुण्डलवर है उस द्वीप में यह पर्वत है और इसकी आकृति कुण्डल के जैसी गोल है यह पर्वत कुण्डलद्वीप का विभाग करता है। रुचकवर यह पर्वत तेरहवां जो रुचकवर द्वीप है उसमें वर्तमान है, यह भी कुण्डल की आकृति जैसा गोल है, और रुचकवर द्वीप का विभाग करता है इनमें मानुषोत्तर पर्वत का स्वरूप इस प्रकार से है-"पुक्खरवरदीवड्ढं" इत्यादि, तात्पर्य इन गाथाओं का इस ७

છે તેથી પણ તેનું નામ માનુષોત્તર પર્વત પડયું છે (२) કુંડલવર પર્વત કુંડલવર નામના અગિયારમાં દ્વીપમાં આવેલો છે તે કુંડલના જેવા ગોળ આકારવાળો છે અને તે પર્વત કુંડલદ્વીપનો વિભાગ કરે છે (૩) રુચકવર પર્વત ૧૩ માં રુચકવર દ્વીપમાં આવેલો છે, તેનો આકાર પણ કુંડલના જેવો ગોળ છે, આ પર્વત રુચકવર દ્વીપના વિભાગ કરે છે હવે માનુષોત્તર પર્વતના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે-"पुक्खरवरदीवड्ढं" ઈત્યાદિ—

दशद्वाविंशतिः अधो विस्तीर्णो भवति योजनशतानि (द्वाविंशत्यधिकदश-योजनशतानीत्यर्थः) सप्त च त्रयोविंशतिः (त्रयोविंशत्यधिकसप्तशतानीत्यर्थः) विस्तीर्णो भवति मध्ये ॥ ३ ॥

चत्वारि च चतुर्विंशतिः (चतुर्विंशत्यधिकचतुःशतानीत्यर्थः) विस्तारो भवति उपरि शैलस्य । सार्धद्वयद्वीपान् द्वौ समुद्रावनुपर्येति ॥ ४ ॥ इति ।

षोडशद्वीपेषु कुण्डलवरद्वीपस्यैकादशत्वे क्रममाह—

"जंबुद्दीवो १ धायइ २, पुक्खरदीवो ३ य वारुणिवरो ४ ।
खीरवरोऽवि ५ य दीवो, घयवरदीवो ६ य खोयवरो ७ ॥ १ ॥
नंदीसरो ८ य अरुणो ९, अरुणोवाओ १० य कुण्डलवरो ११ य ।
तह संख १२ रुयग १३ भुयवर १४ कुस १५ कुंचवरो १६ तओ दीवो" ॥ २ ॥

छाया—जम्बूद्वीपो १ धातकी २ पुष्करद्वीपश्च ३ वारुणीवरश्च ४ ।
क्षीरवरोऽपि ५ च द्वीपो, घृतवरद्वीपश्च ६ क्षोदवरः ७ ॥ १ ॥
नन्दीश्वरश्च ८ अरुणः ९ अरुणोपपातश्च १० कुण्डलवरश्च ११ ।

प्रकार से है–यह मानुषोत्तरपर्वत भीतर की ओर १७२१ योजन ऊंचा है ४३० कोशतक नीचे जमीन के भीतर ईसका अवगाढ (गहराई) है जमीन पर इसकी चौडाई १ हजार बाईस योजन की है मध्य में ७२३ योजन की है और ऊपर में ४२४ योजन की यह अढाई द्वीप का विभाग करता है सोलह द्वीपों में कुण्डलवर द्वीप को जो ११ वां द्वीप कहा गया है उसमें यह प्रमाण है "जंबुद्दीवो धायइ" इत्यादि, जम्बूद्वीप यह प्रथम द्वीप है धातकीखण्ड यह द्वितीय द्वीप है पुष्करवरद्वीप यह तृतीय द्वीप है वारुणिवर यह चौथा द्वीप है क्षीरवर यह पांचवां द्वीप है घृत-वरद्वीप यह छट्ठा द्वीप है क्षोदवर इक्षुरस यह सातवां द्वीप है नन्दीश्वर

આ ગાથાઓનુ તાત્પર્ય આ પ્રકારનુ છે–આ માનુષોત્તર પર્વત બાજુએ ૧૭૨૧ યોજન ઊંચો છે, જમીનની નીચે ૪૩૦ કોશ પર્યન્તની તેની ઊંડાઈ છે, જમીનપર તેની પહોળાઈ એક હજાર યોજનની છે, મધ્યમાં તેની પહોળાઈ ૭૨૩ યોજનની છે અને સૌથી ઉપરની બાજુએ તેની પહોળાઇ ૪૨૪ યોજનની છે. આ પર્વત અઢી દ્વીપનો વિભાગ કરે છે ૧૬ દ્વીપોમાં કુંડલવર દ્વીપને જે અગિયારમો દ્વીપ કહ્યો છે, તેનુ પ્રમાણુ નીચે મુજબ છે.

"जंबूद्दीवो–धायइ" ઇત્યાદિ

પહેલો દ્વીપ જમ્બૂદ્વીપ છે, બીજો દ્વીપ ધાતકીખંડ દ્વીપ છે, ત્રીજો પુષ્કરવર દ્વીપ, ચોથો વારુણિવર દ્વીપ છે, પાંચમો ક્ષીરવર દ્વીપ છે, છઠ્ઠો ઘૃતવર દ્વીપ છે, ક્ષોદવર–ઇક્ષુરસ સાતમો દ્વીપ છે, આઠમો નન્દીશ્વર દ્વીપ છે, નવમો

तथा अङ्क १२ रुचकः १३ भुजगवरः १४ कुश १५ क्रौञ्चवरः १६ स्वता द्वीपः ॥ २ ॥ इति । कुण्डलवरपर्वतस्वरूपं यथा—

" कुण्डलवरस्स मज्झे णगुत्तमो होइ कुण्डलो सेलो ।
पागारसरिसरूवो, विभयंतो कुण्डलं दीवं ॥ १ ॥
बायालीससहस्से, उव्विद्धो कुण्डलो हवइ सेलो ।
एगं चेव सहस्सं, धरणियलमहे समोगाढो ॥ २ ॥
दस चेव जोयणसए, बावीसे वित्थडो य मूलम्मि ।
सत्तेव जोयणसए, बावीसे वित्थडो मज्झे ॥ ३ ॥
चत्तारि जोयणसए, चउवीसे वित्थडो उवरितले ॥ "

छाया—कुण्डलवरस्य मध्ये, नगोत्तमो भवति कुण्डल शैलः ।
प्राकारसदृशरूपो विभजमानः कुण्डलं द्वीपम् ॥ १ ॥

द्विचत्वारिंशत्सहस्राणि (द्विचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानीत्यर्थः) उद्विद्धः कुण्डलो भवति शैल । एक चैव सहस्रं धरणितलमधः समवगाढः ॥ २ ॥

दश चैव योजनशतानि द्वाविंशतिः (द्वाविंशत्यधिकानीत्यर्थः) विस्तृतम मूले । सप्तैव योजनशतानि द्वाविंशतिः(द्वाविंशत्यधिकानीत्यर्थः) विस्तृतो मध्ये॥३॥

यह ८ वां द्वीप है अरुणवर यह नौवा द्वीप है अरुणोपपात यह १० वां द्वीप है कुण्डलवर यह ११ वां द्वीप है शङ्ख यह १२ वां द्वीप है रुचक यह तेरहवां द्वीप है भुजगवर यह १४ वा द्वीप है कुश यह १५,वां द्वीप है और क्रौंचवर यह १६ वां द्वीप है, कुण्डलवर पर्वत का स्वरूप इस प्रकार से है–" कुंडलवरस्स मज्झे–" इत्यादि, तात्पर्य इन गाथाओं का ऐसा है–कुण्डलवर पर्वत कुण्डलवर द्वीपके मध्य में है प्राकार कोट के जैसा इसका आकार है कुण्डलवर द्वीप का यह विभाग करता है इसका उद्वेग ऊंचाई ४२ हजार योजन का है पृथिवी के भीतर नीचे १ हजार योजन तक यह है १०२२ एक हजार बावीस योजन की जमीन

અરુણવર દ્વીપ છે, દસમે અરુણોપપાત દ્વીપ છે, ૧૧ મો કુંડલવર દ્વીપ છે, બારમો શંખ દ્વીપ છે તેરમો રુચક દ્વીપ છે, ૧૪ મો ભુજગવર દ્વીપ છે ૧૫ મો કુશ દ્વીપ છે, અને ૧૬ મો ક્રૌંચવર દ્વીપ છે કુંડલવર પર્વતનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે–"કુંડલવરસ્સ મજ્ઝે " ઇત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે–કુંડલવર પર્વત કુંડલવર દ્વીપની મધ્યમાં છે પ્રાકાર (કોટ) જેવો તેનો આકાર છે–આ પર્વત કુંડલવર દ્વીપનો વિભાગ કરે છે તેનો ઉદ્વેધ (ઉંચાઇ) ૪૨૦૦૦ બેતાલીસ હજાર યોજનની છે, જમીનની નીચે ૧૦૦૦ એક હજાર યોજનની ઊંડાઇ સુધી તે વ્યાપેલો છે જમીનપર તેની પહોળાઇ

चत्वारि योजनशतानि चतुर्विंशतिः (चतुर्विंशत्यधिकानीत्यर्थः) विस्तृतस्तु शिखरतले ॥ इति ।

त्रयोदशतमरुचकवरद्वीपस्थितस्य रुचकवरपर्वतस्य स्वरूपं ।

यथा—" रुयगवरस्स उ मज्झे, नगुत्तमो होइ पव्वओ रुयगो ।
पागारसरिसरूवो, रुयगं दीव विभयमाणो ॥ १ ॥
रुयगस्स उ उस्सेहो, चउरासीइं भवे सहस्साइं ।
एगं चेव सहस्सं, धरणियलमहे समोगाढो ॥ २ ॥
दस चेव सहस्सा खलु, बावीसा जोयणाण बोद्धव्वो ।
मूलम्मि उ विक्खंभो, साहिओ रुयगसेलस्स " ॥ ३ ॥

छाया—रुचकवरस्य तु मध्ये, नगोत्तमो भवति पर्वतो रुचकः ।
प्राकारसदृशरूपः, रुचकं द्वीपं विभजमानः ॥ १ ॥
रुचकस्य तु उत्सेधः, चतुरशीतिर्भवेत् सहस्राणि ।
एकं चैव सहस्रं धरणितलमधः समवगाढ ॥ २ ॥

दश चैव सहस्राणि खलु द्वाविंशतिः (द्वाविंशत्यधिक दशयोजनशतानीत्यर्थः) बोद्धव्यः । मूले तु विष्कम्भः साधिको रुचक शैलस्य ॥ ३ ॥ इति ।

अस्य रुचकवरपर्वतस्य मध्यविस्तारो द्वाविंशत्यधिकानि सप्तसहस्रयोजनानि, उपरिविस्तरतस्तु चतुर्विंशत्यधिकानि योजनसहस्राणीति ॥ १ ॥

पर इसकी चौडाई है, मध्य में ७२२ योजन विस्तीर्ण है और ४२४ योजन ऊपर है। तेरहवां जो रुचकद्वीप है उस द्वीप में स्थित जो रुचकवरपर्वत है उसका स्वरूप इस प्रकार से है—" रुचगवरस्स उ मज्झे " इत्यादि। यह पर्वतों में श्रेष्ठ रुचकवर पर्वत रुचकवर द्वीप के मध्य में है इसका आकार भी प्राकार–कोटके जैसा है यह रुचकवरद्वीपका विभाग करता है, इसका उत्सेध ऊंचाई ८४ हजार योजन की है तथा १ हजार योजन यह पृथिवी के अन्दर है दश हजार २२ योजन से कुछ अधिक इसकी मूल में चौडाई है मध्य में इसका विस्तार ७ हजार २२ योजन

१०२२ યોજનની છે, મધ્યમા ७२२ યોજનનો તેનો વિસ્તાર છે અને ઊંચે ४२४ યોજનનો વિસ્તાર છે ૧૩ માં રુચકવર દ્વીપમાં આવેલા રુચકવર પર્વતના સ્વરૂપનું હવે નિરૂપણ કરવામા આવે છે—" रुयगवरस्स उ मज्झे " ઈત્યાદિ— પર્વતોમાં શ્રેષ્ઠ એવો રુચકવર પર્વત રુચકવર દ્વીપની મધ્યમા છે. તેનો આકાર પ્રાકાર (કોટ) ના જેવો છે, તે રુચકવર દ્વીપનો વિભાગ કરે છે. તેનો ઉત્સેધ ઉંચાઇ ८४ હજાર યોજનની છે. તે પૃથ્વીની અંદર એક હજાર યોજન સુધી ફેલાયેલો છે, જમીનપરનો તેનો વિસ્તાર દસ હજાર બાવીસ યોજન કરતાં

मानुषोत्तराद्यो महान्त उक्ता इति महत्त्वप्रस्तावादति महतः पदार्थानाह— 'तमो महइ०' इत्यादि, अतिमहान्तश्च ते आलयाश्च आश्रया इति–अतिमहालया', महान्तश्च तेऽतिमहालयाश्चेति महातिमहालया । महच्छब्दस्य द्विरुच्चारण मन्दरादीनां सर्वगुरुत्वख्यापनार्थं, तेन–अन्येभ्य स्वस्वजातीयेभ्योऽपि महान्त इत्यर्थः, ते च पञ्च प्रज्ञप्ता , तानेवाह–मन्दरेषु–पञ्चानां मन्दरपर्वतानां मध्ये इत्यर्थः , जम्बूद्वीपे यो मन्दरः मध्यजम्बूद्वीपस्यमेरुपर्वतः स महान् यतस्ते यतोऽय लक्षयोजनपरिमितः, शेषाश्चत्वारो मन्दराः सातिरेकपञ्चाशीतियोजनसहस्रप्रमाणा

का है, और ऊपर में इसका विस्तार १ हजार २४ योजन का है। ये मानुषोत्तर पर्वत महान् हैं ऐसा कहा, अब सूत्रकार इनमें भी जो और अधिक महान् हैं उन्हें प्रगट करते हैं–" तमो महइ " इत्यादि, यहां जो 'महत्' शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है वह इस बात को ख्यापन करने के लिये किया गया है, कि ये मन्दरादि पदार्थ सब से महान् हैं, इनसे महान् और कोई नहीं हैं, अर्थात्–अपनी जाति के जो पदार्थ हैं उनमें ये अति महान् हैं, इन अति महानों के बीच में पांच मन्दर पर्वतों के बीच में जो जम्बूद्वीप में मन्दरपर्वत है वह महान् है क्यों कि–इसका विस्तार १ लाख योजन का कहा गया है और बाकी के जो चार मन्दर पर्वत हैं–धातकीखण्ड के दो, और पुष्करवर द्वीपार्ध के दो–इसका विस्तार केवल ८५ हजार योजन का ही

પણ વધારે છે મધ્યમાં તેનો વિસ્તાર ૭૦૨૨ યોજનનો છે અને સૌથી ઉપર તેનો વિસ્તાર ૧૦૨૪ યોજનનો છે

આ માનુષોત્તર પર્વતો મહાન છે એવું કહ્યું હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે સૌથી મહાન પર્વત કયો છે–" તમો મહઇ " ઇત્યાદિ

આ સૂત્રમાં જે " મહત્ મહાન ' શબ્દનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે તે એ વાતને પ્રતિપાદિત કરવાને માટે કરાયો છે કે—

આ મન્દરાદિ પદાર્થ સૌથી મહાન છે–તેમનાથી અધિક મહાન બીજો કોઇ પદાર્થ નથી. એટલે કે પોતાની જાતિના જે પદાર્થો છે તેમનામાં તે અતિ મહાન છે વળી તે પાંચ પર્વત અતિ મહાન મન્દર પર્વતોમાં પણ સૌથી મહાન પર્વત તો જંબૂદ્વીપમાં આવેલો મન્દર પર્વત જ છે ધાતકીખંડના બે મન્દર પર્વતોનો અને પુષ્કરવર દ્વીપાર્ધના બે મન્દર પર્વતોનો વિસ્તાર કેવલ ૮૫૦૦૦ યોજનનો જ કહ્યો છે પરન્તુ જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતનો વિસ્તાર તો એક લાખ યોજનનો કહ્યો છે

एव सन्तीति । समुद्रेषु–सर्वसमुद्राणां मध्ये इत्यर्थः, स्वयम्भूरमणः समुद्रो महान् वर्त्तते तस्य शेषसर्वद्वीपसमुद्रेभ्यः समधिकप्रमाणत्वात् । कल्पेषु–सर्वदेवलोकेषु मध्ये ब्रह्मलोकः कल्पः–पञ्चमदेवलोको महान् अस्ति, तत्प्रदेशे लोकविस्तरस्य पञ्चरज्जुप्रमाणत्वात्, तत्प्रमाणतया च ब्रह्मलोकस्य विवक्षितत्वादिति ॥सू०७२॥

अनन्तरं ब्रह्मलोककल्प उक्त इति कल्पशब्दसाधर्म्यात् कल्पस्थितिं सूत्रद्वयेनाह–

मूलम्–तिविहा कप्पट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा–सामाइयकप्पठिई, छेदोवट्ठावणियकप्पट्ठिई, निव्विसमाणकप्पट्ठिई ।१। अहवा तिविहा कप्पट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा-णिव्विट्ठकप्पट्ठिई, जिणकप्पट्ठिई, थेरकप्पट्ठिई । २ ॥ सू० ७३ ॥

छाया—त्रिविधा कल्पस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा सामायिककल्पस्थितिः, छेदोपस्थापनीयकल्पस्थितिः, निर्विशमानकल्पस्थितिः ।१। अथवा त्रिविधा कल्पस्थितिः

कहा गया है समुद्रों में स्वयम्भूरमण समुद्र है वह सब से बडा कहा गया है, क्यों कि–सब द्वीपों और समुद्रों से इसका प्रमाण अधिक है, कल्पों में ब्रह्मलोक कल्प हैं पांचवां देवलोक है–वह सब से बडा कल्प है, क्यों कि–इसके प्रदेश में लोक विस्तार पांच राजू का कहा गया है सो इतने ही बडे प्रमाणवाला यह ब्रह्मलोक भी कहा गया है ॥ सू०७२

ब्रह्मलोक कल्पगत कल्प शब्द के साधर्म्य को लेकर अब सूत्रकार कल्पस्थिति का कथन दो सूत्र से करते हैं–"तिविहा कप्पट्ठिई पण्णत्ता" इत्यादि,

सूत्रार्थ–कल्पस्थिति तीन प्रकारकी कही गई है जैसे–सामायिककल्प-

---

બધા સમુદ્રોમાં સૌથી મોટો સ્વયભૂરમણ સમુદ્ર છે, કારણ કે સઘળા દ્વીપો અને સમુદ્રો કરતાં તેનુ પ્રમાણ અધિક કહ્યુ છે.

બધાં કલ્પોમાં બ્રહ્મલોક કલ્પ સૌથી મોટું છે, બ્રહ્મલોક કલ્પ પાંચમું દેવલોક છે તેને સૌથી મોટુ કલ્પ કહ્યુ છે કારણ કે તેના પ્રદેશમાં લોકવિસ્તાર પાંચ રાજૂપ્રમાણ કહ્યો છે. આ બ્રહ્મલોક કલ્પ પણ પાંચ રાજુપ્રમાણ વિસ્તારવાળું કહ્યુ છે. ॥ સૂ. ૭૨ ॥

બ્રહ્મલોક કલ્પગત કલ્પ શબ્દના સાધર્મ્યને હવે સૂત્રકાર કલ્પસ્થિતિનું કથન કરવા નિમિત્તે બે સૂત્રો કહે છે—

"तिविहा कप्पट्ठिई पणत्ता" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–કલ્પસ્થિતિ ત્રણ પ્રકારની કહી છે–(૧) સામાયિક કલ્પસ્થિતિ, (૨) છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ, અને (૩) નિર્વિશમાન કલ્પસ્થિતિ.

महात्ता, तद्यथा–निविष्टकल्पस्थितिः, जिनकल्पस्थितिः, स्थविरकल्पस्थितिः ।२॥ सू० ७६ ॥

टीका—' त्रिविधा ' इत्यादि, सूत्रद्वयम् । कल्पः–करणमाचारः, तस्य तत्र वा स्थितिः–मर्यादाकल्पस्थिति । सा त्रिविधा, तद्यथा–तयाहि–सामायिककल्प स्थितिः, समानि–ज्ञानादीनि तेषामायो लाभ समाय, स एव सामायिक–संयम विशेषः, तस्य तदेव वा कल्प सामायिककल्पः अयं च प्रथमचरमतीर्थयोः साधूनां स्वल्पकालिकः, छेदोपस्थापनीयस्य सद्भावात्, मध्यवीर्येषु महाविदेहेषु च

स्थिति छेदोपस्थापनीयकल्पस्थिति, और निर्विशमानकल्पस्थिति, अथवा इस तरह से भी कल्पस्थिति तीन प्रकार की कही गई है जैसे–निर्वि ष्टकल्पस्थिति, जिनकल्पस्थिति और स्थविरकल्पस्थिति।

टीकार्थ–कल्प नाम–करण आचार का है उसमे, या उसकी जो स्थिति–मर्यादा है वह कल्पस्थिति है यह कल्पस्थिति जो तीन प्रकार की कही गई है, सो उसका तात्पर्य ऐसा है, अर्थात् सामायिक कल्प स्थिति में जो सामायिकपद है वह ज्ञानादिकों के लाभरूप है अर्थात् सम शब्द का अर्थ ज्ञानादिरूप है इस ज्ञानादिकों का जो लाभ है वह समाय है यह समाय ही सामायिक है सामायिक एक संयमविशेष कहा गया है इस सामायिक का जो कल्प है वह सामायिक कल्प है अथवा–सामायिक रूप जो कल्प है वह सामायिककल्प है, ऐसा इसका वाच्यार्थ होता है यह सामायिक कल्प प्रथम और चरम तीर्थंकर के साधुओं का अल्पकालिक है। क्यों कि–उस समय छेदोपस्थापनीयका सद्भाव है मध्य

અથવા આ પ્રમાણે પણ કલ્પસ્થિતિ ત્રણ પ્રકારની કહી છે-(૧) નિર્વિષ્ટ કલ્પસ્થિતિ (૨) જિન કલ્પસ્થિતિ અને (૩) સ્થવિર કલ્પસ્થિતિ.

ટીકાર્થ–કલ્પ નામ કરણ–આચારનું છે તેમાં અથવા તેની જે સ્થિતિ (મર્યાદા) હોય છે તેનુ નામ કલ્પસ્થિતિ છે તે કલ્પસ્થિતિ ત્રણ પ્રકારની કહી છે (૧) સામાયિક કલ્પસ્થિતિનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

સામાયિક કલ્પસ્થિતિમાં જે ' સામાયિક ' પદ છે તે જ્ઞાનાદિકોના લાભ રૂપ છે એટલે કે સમ શબ્દનો અર્થ જ્ઞાનાદિરૂપ છે આ જ્ઞાનાદિકોનો જે લાભ છે તેનું નામ ' સમાય ' છે તે સમાય જ સામાયિકરૂપ છે, સામાયિકને એક સંયમવિશેષ કહ્યો છે આ સામાયિકનો જે કલ્પ છે (આચાર છે) તેને સામાયિક કલ્પ કહે છે અથવા–સામાયિક રૂપ જે કલ્પ છે તેનું નામ સામાયિક કલ્પ છે એવો તેનો વાચ્યાર્થ થાય છે તે સામાયિક કલ્પ પ્રથમ અને ચરમ તીર્થંકરના સાધુઓનું કલ્પકાલિક છે, કારણ કે તે સમયે છેદોપ

यावत्कथिकः तत्र छेदोपस्थापनीयाभावात्, तस्य तत्र वा स्थितिः सामायिककल्पस्थितिः । सा च मध्यद्वाविंशतितीर्थसाधूनां महाविदेहस्थसाधूनां च शय्यातरपिण्डपरिहारे चतुर्यामपालने पुरुषज्येष्ठत्वे बृहत्पर्यायस्येतरेण वन्दनकदाने च नियमलक्षणा, शुक्लप्रमाणोपेतवस्त्रापेक्षया यदचेलत्वं तत्र १, तथा—औद्देशिकभक्तादिग्रहणे २, राजपिण्डग्रहणे ३, प्रतिक्रमणकरणे ४, मासकल्पकरणे ५, पर्युषणकल्पकरणे ६, चानियमलक्षणाचेति, उक्तं चात्र—

" सिज्जायरपिंडे य १, चाउज्जामे य २, पुरिसजेट्टे य ३ ।
किइकम्मस्स य करणे ४, चत्तारि अवट्ठिया कप्पा ॥ १ ॥
आचेलुक्कु १ द्देसिय २ सपडिकमणे ३ य रायपिंडे ४ य ।
मासं ५ पज्जोसवणा ६, छप्पे अणवट्ठिया कप्पा ॥ २ ॥ "

छाया—शय्यातरपिण्डे १ च, चातुर्यामे २ च पुरुषज्येष्ठे च ३ ।
कृतिकर्मणश्चकरणे ४ च चत्वारोऽवस्थिताः कल्पाः ॥ १ ॥
आचेलक्य १ मौद्देशिकं २ सप्रतिक्रमणश्च ३ राजपिण्डश्च ४ ।
मासः ५ पर्युषणा ६ षडप्येतेऽनवस्थिताः कल्पाः ॥ २ ॥

अचेलकत्वं चैवम्—

के तीर्थंकरों में और महाविदेहों में यह यावत्कथिक है, क्यों कि—वहां छेदोपस्थापनीय का अभाव है, उस सामायिककल्प की अथवा—सामायिक कल्प में जो स्थिति है वह सामायिककल्पस्थिति है यह मध्य के २२ तीर्थंकरों के साधुओं की और महाविदेहस्थ साधुओं की शय्यातर के पिण्ड परिहार में, चातुर्यामपालन में, और पुरुष के ज्येष्ठत्व में, उसकी वन्दना में विनयरूप है, और—शुक्लप्रमाणोपेत वस्त्र की अपेक्षा से जो अचेलकता है १ उसमें, तथा—औद्देशिकभक्तादि ग्रहण में २ राजपिण्ड-ग्रहण में ३ प्रतिक्रमण करने में ४ मासकल्प करने में ५ और पर्यूषण-कल्प करने में अनिवार्यरूप है। कहा भी है " सिज्जायरपिंडे य "

સ્થાપનીયનો સદ્ભાવ છે મધ્યના તિર્થંકરોમાં અને મહાવિદેહોમા તે યાવત્કથિક છે, કારણ કે ત્યાં છેદોપસ્થાપનીયનો અભાવ છે તે સામાયિક કલ્પની અથવા સામાયિક કલ્પમા જે સ્થિતિ છે, તેને સામાયિક કલ્પસ્થિતિ કહે છે. તે મધ્યના ૨૨ તિર્થંકરોના સાધુઓની અને મહાવિદેહસ્થ સાધુઓની શય્યાતરના પિંડના પરિહારમાં, ચતુર્યામ પાળવામાં અને પુરુષના જ્યેષ્ઠત્વમાં તેની વન્દનામાં વિનયરૂપ છે, અને શુકલ પ્રમાણોપેત વસ્ત્રની અપેક્ષાએ જે અચેલકતા છે તેમા ઔદ્દેશિક ભક્તાદિ ગ્રહણમાં, (૩) રાજપિંડ ગ્રહણમાં, (૪) પ્રતિક્રમણ કરવામાં, (૫) માસકલ્પ કરવામાં, અને (૬) પર્યુષણ કલ્પ

" दुविहो होइ अचेलो, असतचेलो य संतचेलो य।
तत्थ असंतेहिं जिणा, संतचेला भवे सेसा ॥ १ ॥
सीसावेढियपोत्तं, नइउत्तरणम्मि नग्गयं बेंति।
जुन्नेहिं नग्गियम्हि तुर सालिय ! देहि मे पोत्तिं ॥ २ ॥
जुन्नेहिं खंडिएहिं, असव्व तणुयाउएहिं ण य णिच्चं।
सतेहि वि णिग्गंथा अचेलया होंति चेलेहिं ॥ ३ ॥"

छाया—द्विविधो भवत्यचेलोऽसच्चेलश्च सच्चेलश्च।
तत्राऽसद्भिः (वस्त्रैः) जिनाः, सच्चेला भवन्ति शेषाः ॥१॥
शीर्षावेष्टितपोतं नद्युत्तरणे नग्नकं ब्रुवन्ति।
जीर्णैः (वस्त्रैः) नग्नकोऽस्मि त्वरितं शालिक ! देहि मे पोतीम्
(शाटिकां) ॥ २ ॥

जीर्णैः खण्डितैः असर्वतनुप्रावृतैर्न च नित्यम्।
सद्भिरपि (वस्त्रैः) निर्ग्रन्था अचेलका भवन्ति चेलैः ॥३॥" इति।

एवं जीर्णखण्डितप्रमाणोपेतवस्त्रेषु सत्स्वपि अचेलत्वेन लोके व्यवहारो दृश्यते १। छेदोपस्थापनीयकल्पस्थितिः छेदेन – पूर्वपर्यायच्छेदेन उपस्थापनीयम्-आरोपणीय छेदोपस्थापनीय व्यक्तितो महाव्रतारोपणमित्यर्थः, तच्च प्रथमचर

इत्यादि,। अचेलकता इस प्रकार से है "दुविहो होइ अचेलो" इत्यादि, इस तरह जीर्ण खण्डित एवं प्रमाणोपेत वस्त्रों के होने पर भी, रखने पर भी, अचेलतारूप से लोक में व्यवहार देखा जाता है १ छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति पूर्वपर्याय के छेद से जो पुनः आरोपणीय होता है वह छेदोपस्थापनीय है, वह अन्यव्यक्ति में जो आरोप की अपेक्षा महाव्रतारोपणरूप होता है। यह छेदोपस्थापनीय प्रथम तीर्थंकर और अन्तिम

કરવામાં અનિવાર્યરૂપ છે કહ્યું પણ છે કે–' સિગ્ગાયરપિંડે ય " ઇત્યાદિ. અચેલકતા આ પ્રકારે હોય છે–' દુવિહો હોઇ અચેલો " ઇત્યાદિ–

આ રીતે જીર્ણ-ખંડિત અને પ્રમાણોપેત વસ્ત્રો હોવા છતાં પણ, રાખવા છતાં પણ અચેલતારૂપ વ્યવહાર લોકમાં જોવામાં આવે છે

હવે છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે–પૂર્વ પર્યાયના છેદથી જે પુનઃ આરોપણીય થાય છે તેનુ નામ છેદોપસ્થાપનીય છે તે અન્ય વ્યક્તિમાં આરોપની અપેક્ષાએ મહાવ્રતારોપણરૂપ હોય છે આ છેદોપસ્થાપનીયનો સદ્ભાવ પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરના સમયમાં જ કહ્યો છે

मतीर्थयोरेव । तस्य तदेव वा कल्पः तस्य स्थितिः-मर्यादा सा तथोक्ता, इयं च दशसु स्थानकेष्ववश्यं पालनरूपेति । उक्तञ्च—

" दसठाणठिओ कप्पो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स जिणस्स ।
एसो धुयरयकप्पो, दसठाणपइट्ठिओ होइ ॥ १ ॥

छाया—दशस्थानस्थितः कल्पः पूर्वस्य पश्चिमस्य च जिनस्य ।
एष धूतरजःकल्पो दशस्थानप्रतिष्ठितो भवति ॥ १ ॥ इति ।

तानि दश स्थानानि यथा—

" आचेलक्कु १ देसिय २ सिज्जायर ३ रायपिंड४ किइकम्मे ५ ।
वय ६ जेट्ठ ७ पडिक्कमणे ८, मासं ९ पज्जोसवणकप्पे १० ॥१॥

छाया—आचेलक्यौ १ देशिक-शय्यातर-राजपिण्ड ३-४ कृतिकर्माणि ५ ।
व्रत६ ज्येष्ठ ७ प्रतिक्रमणानि ८ मास पर्युषणकल्पः ९-१० ॥ १ ॥

तत्र—आचेलक्यं असत्सद् भेदेन द्विविधम् , सर्वथा वस्त्राभावरूपमसदचेलत्वं

तीर्थंकर के समय में ही कहा गया है, इस छेदोपस्थापनीय का जो कल्प है वह छेदोपस्थापनीय कल्प है अथवा-छेदोपस्थापनीयरूप जो कल्प है वह छेदोपस्थापनीय कल्प है, इसकी जो स्थितिरूप मर्यादा है वह छेदोपस्थापनीय कल्प है, यह दश स्थानकों में अवश्य पालनरूप कही गई है। कहा भी है-" दसठाणठिओ कप्पो " इत्यादि, यह दश स्थान स्थितकल्प पूर्व और पश्चिम जिनमें की है यह पापरूप रजको नष्ट करने वाला कल्प दश स्थान प्रतिष्ठित होता है १ वे दश स्थान इस प्रकार से हैं-" आचेलक्कुदेसिय " इत्यादि, इनमें आचेलक्य असत् और सत् के भेद से दो प्रकार का कहा गया है सर्वथा-वस्त्राभावरूप असत् अचेलता जिन तीर्थंकरों को होती है और जीर्ण, खण्डित एव प्रमाणो-

---

આ છેદોપસ્થાપનીયનો જે કલ્પ છે (આચાર છે) તેનુ નામ છેદોપસ્થાપનીય કલ્પ છે. અથવા-છેદોપસ્થાપનીયરૂપ જે કલ્પ છે, તે છેદોપસ્થાપનીય કલ્પ છે, અને તેની જે સ્થિતિ (મર્યાદા) છે, તે છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ છે. તે દસ સ્થાનકોમાં અવશ્ય પાલનરૂપ કહી છે. કહ્યુ પણ છે કે—

" दसठाणठिओ कप्पो " ઈત્યાદિ.

આ દસ સ્થાનસ્થિતિનો કલ્પનો સદ્ભાવ પહેલા અને છેલ્લા જિનમાં કહ્યો છે-આ પાપરૂપ રજને નષ્ટ કરનાર કલ્પ જે દસ સ્થાન પ્રતિષ્ઠિત છે, તે દસ સ્થાન નીચે પ્રમાણે છે-" आचेलक्कुदेसिय " ઈત્યાદિ-તેમાથી (૧) આચેલક્ય સત્ અને અસત્ના ભેદથી બે પ્રકારનુ કહ્યું છે. સર્વથા વસ્ત્રાભાવરૂપ

जिनानां, जीर्णखण्डितप्रमाणोपेतवस्त्ररूपं सदचेलत्वं शेषमुनीनां भवति १। औद्दे
शिकपिण्ड–शय्यातरपिण्ड–राजपिण्डग्रहणस्य भय मसिद्धम् ४। कृतिकर्म–रत्ना
धिकमर्यादया वन्दनव्यवहारः ५। व्रतानि–पञ्चमहाव्रतानि६, ज्येष्ठः–पुरुषज्येष्ठो
धर्मः, प्रतिक्रमण सातिचारत्वे–निरतिचारत्वेऽपि प्रतिक्रमणकरणम् ८। मासः–मास
कल्पःशेषकाले मास यावदेकत्रवसनम् ९। पर्युषणकल्पः–पर्युषणपर्वाराधना१०। एते
दश कल्पा' प्रथमचरमतीर्थंकरयोस्तीर्थं भवन्ति न मध्यम द्वाविंशतितीर्थं-
कराणामिति २।

तथा निर्विशमानकल्पस्थितिः–निर्विशमानाः–परिहारविशुद्धितपोऽनुचारकाः
परिहारका इत्यर्थ, तेषां कल्प या स्थितिः सा तथोक्ता। स च कल्पो यथा–

वेत वस्त्र रखने रूप सत् अचेलता शेष मुनियों को होती है १ औद्दे
शिकपिण्ड, शय्यातरपिण्ड, राजपिण्ड इनको ग्रहण करने रूप ३ स्थान
प्रसिद्ध हैं ४ रत्नाधिक की मर्यादानुसार वन्दना करने का जो व्यवहार
है वह कृतिकर्म है ५ पांच महाव्रत ये व्रत हैं ज्येष्ठ पुरुषश्रेष्ठ धर्म है,
सातिचार अवस्था में और निरतिचार अवस्था में भी प्रतिक्रमण करना
यह प्रतिक्रमण है ८ मास से यहां मासकल्प लिया गया है शेषकाल
में एक मास तक एक जगह रहना ९ यह इसका तात्पर्य है, तथा–
पर्यूषण पर्व की आराधना करना लिया गया है १० ये १० कल्प प्रथम
और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में होते हैं, बीच के २२ तीर्थंकरों के
तीर्थ में नहीं होते हैं। निर्विशमानकल्पस्थिति परिहारविशुद्ध तप का

અસત્ અચેલતા જિનતીર્થંકરોમાં હોય છે, અને જીર્ણ, ખંડિત અને પ્રમા
ણોપેત વસ્ત્ર રાખવારૂપ સત્ અચેલતા બાકીના મુનિઓમાં હોય છે (૧)
ઔદ્દેશિક પિંડ, (૨) શય્યાતર પિંડ અને (૩) રાજપિંડ ગ્રહણ કરવા રૂપ ત્રણ
સ્થાન તો જાણીતા છે, તેથી અહીં તેમનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવ્યું
નથી (૪) રત્નાધિકની મર્યાદા અનુસાર વંદણા કરવાનો જે વ્યવહાર છે તેનું
નામ કૃતિકર્મ છે (૫) પાંચ મહાવ્રતને વ્રત શબ્દથી ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા
છે (૬) જ્યેષ્ઠ-પુરુષ શ્રેષ્ઠ ધર્મ છે (૭) સાતિચાર અવસ્થામાં અને નિરતિચાર
અવસ્થામાં પણ પ્રતિક્રમણ કરવું તેનું નામ પ્રતિક્રમણ છે. (૮) માસ પદથી
અહીં માસકલ્પ ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે શેષકાળમાં એક માસ સુધી એક
જગ્યાએ રહેવું તેનું નામ માસકલ્પ છે (૯) પર્યુષણ પર્વની આરાધના કરવી (૧૦)
આ દસ કલ્પ (આચાર) નો સદ્ભાવ પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરના તીર્થમાં
હોય છે–વચ્ચેના ૨૨ તીર્થંકરોના તીર્થમાં તેમનો સદ્ભાવ હોતો નથી.

ग्रीष्म-शीत-वर्षाकालेषु क्रमेण जघन्यमध्यमोत्कृष्टरूपं तपो भवति, तत्र ग्रीष्मकाले जघन्यं चतुर्थषष्ठाष्टमरूपम्, शीतकाले मध्यमं षष्ठाष्टमदशमरूपम्, वर्षाकाले उत्कृष्टमष्टमदशमद्वादशरूपमिति, पारणमाचामाम्लेनैव, पिण्डैपणासप्तके च प्रथमद्वितीययोरभिग्रह एव, शेपासु तृतीयादि पञ्चसु पिण्डैपणासु पुनरेकया भक्तमेकया च पानमित्येवं द्वयोरभिग्रह इति. उक्तञ्च—

" वारस १ दस २ अट्ठ ३ दस दस १ ट्ठ २ छट्ठ ३ अट्ठेव १ छट्ठ २ चउरो३ य।
उक्कोसमज्झिमजहन्नगा उ वासासिसिर गिम्हे १ ॥ १ ॥
पारणगे आयामं पचसु गहो दोसऽभिगाहो भिक्खा " इति ।

छाया—द्वादशं१ दशमं २ अष्टमं ३ दशमं १ अष्टमं २ षष्ठं ३ अष्टममेव१ षष्ठ—चतुर्थं च । उत्कृष्टमध्यमजघन्यकावर्षा शिशिरग्रीष्मेषु ॥ २ ॥
पारणके आचामाम्लं पञ्चसु ग्रहो द्वयोरभिग्रहो भिक्षायाम् ॥ इति ।

पालन करने वाले परिहारों का जो कल्प है उस कल्प में जो उनकी स्थिति है, वह निर्विश्यमान कल्पस्थिति है, उनका वह कल्प इस प्रकार से है ग्रीष्मऋतु मे, शीतऋतु में, और वर्षाऋतु में इनका क्रमशः जघन्य मध्यम और उत्कृष्टरूप तप होता है, ग्रीष्मकाल में जघन्यतप चतुर्थ षष्ट अष्टमरूप और शीतकाल मे षष्ट अष्टम और दशम रूप होता है तथा - वर्षाकाल में उत्कृष्ट तप अष्टम, दशम, और द्वादशरूप होता है, तथा—पारणा आयंबिल से ही होता है, पिण्डैपणा सप्तक में प्रथम द्वितीय पिण्डैपणाओं में अभिग्रह ही होता है, तथा—पिण्डैपणाओं में—तीसरी से लेकर सातवीं पिण्डैपणा तक में एक भक्त एक पान इस प्रकार से दो का अभिग्रह होता है। कहा भी है—" वारस दस अट्ठ—" इत्यादि,। अब सूत्रकार प्रकारान्तर से भी

હવે નિર્વિશમાન કલ્પસ્થિતિનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—પરિહાર વિશુદ્ધિ તપનું પાલન કરનાર પરિહારિકોના આચારરૂપ જે કલ્પ છે, અને તે કલ્પમાં તેની જે સ્થિતિ છે, તેનું નામ નિર્વિશ્યમાન કલ્પસ્થિતિ છે. તેનો તે કલ્પ (આચાર) આ પ્રમાણે હોય છે—તેઓ ગ્રીષ્મ ઋતુમાં, શીત ઋતુમાં અને વર્ષા ઋતુમાં અનુક્રમે જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટ તપ કરે છે. ગ્રીષ્મકાળમાં તપની જઘન્યતા ચતુર્થ ષષ્ઠ અને અષ્ઠમ રૂપે અને શીતકાલમા છઠ્ઠ (બે ઉપવાસ), અઠ્ઠમ (ત્રણ ઉપવાસ) અને દસ ઉપવાસરૂપ હોય છે વર્ષાકાળમા ઉત્કૃષ્ટ તપ અષ્ટમ દશમ અને દ્વાદશ રૂપ હોય છે, તથા આયંબિલથી જ તેના પારણા કરવામાં આવે છે પિંડૈષણા સપ્તકમાંની પહેલી અને બીજી પિંડૈષણાઓમા અભિગ્રહ જ કરાય છે. ત્રીજીથી લઈને સાતમી પર્યન્તની પાચ પિંડૈષણાઓમાં એક ભક્ત (આહાર) અને એક પાન (પીણુ), એમ બે વસ્તુનો જ અભિગ્રહ થાય છે. કહ્યુ પણ છે કે—" वारस दस अट्ठ " ઇત્યાદિ—

अथ प्रकारान्तरेण कल्पस्थितिमाह—' अहवा ' इत्यादि ।

अथवेति प्रकारान्तरेण कल्पस्थितिस्त्रिविधा, यथा निर्विष्टकल्पस्थितिः, जिनकल्पस्थितिः, स्थविरकल्पस्थितिश्चेति । तत्र–निर्विष्टा–आसेवितविवक्षित चारित्रा अनुपहारिका इत्यर्थः, तेषां कल्प'–आचारस्तस्य स्थितिः–मर्यादा निर्विष्ट कल्पस्थितिः, यथा प्रतिदिनमाचाम्लमात्र तपः, भिक्षा पूर्वोक्तप्रकारेणेति । उक्तञ्च

" कप्पट्ठियावि पइदिण, करंति एमेव चायाम " इति ।

छाया–कल्पस्थिता अपि प्रतिदिन कुर्वन्ति एवमेव चाचामाम्लम् ।

एते पूर्वसूत्रोक्ता निर्विशमानका निर्विष्टाश्च परिहारविशुद्धिका उच्यन्ते, तेषां च नवको गणो भवति, तेचैवं विधा भवन्ति—

" सव्वे चरित्तवंतो उ, दंसणे परिनिट्ठिया ।
नवपुव्विया जहन्नेण, उक्कोसा दसपुव्विया ॥ १ ॥
पंचविहे ववहारे, कप्पमि दुविहंमि य ।
दसविहेय पच्छित्ते, सव्वे ते परिनिट्ठिया ॥२॥ "

कल्पस्थिति का कथन करते हैं–" अहवा–" इत्यादि, अथवा कल्पस्थिति इस प्रकारान्तर से तीन प्रकार की है, जैसे–निर्विष्टकल्पस्थिति, जिन कल्पस्थिति और स्थविरकल्पस्थिति, निर्विष्टों का आसेवित विवक्षित चारित्रवालों का अनुपरिहारिकों का जो कल्प है आचार है, उस आचार की जो स्थिति है–मर्यादा है, वह निर्विष्ट कल्पस्थिति है, जैसे–प्रतिदिन आचाम्ल मात्र तप करना, और पूर्वोक्त प्रकार की ही भिक्षा करना, । कहा भी है–" कप्पट्ठिया वि पइदिण–" इत्यादि, पूर्वसूत्रोक्त निर्विश मानक, और ये निर्विष्ट दोनों परिहार विशुद्धिक कहलाते हैं, इनका गण ९ नौ का होता है ये इस प्रकार से होते हैं–" सव्वे चरित्तवंतो–"

હવે સૂત્રકાર બીજી રીતે કલ્પસ્થિતિની પ્રરૂપણા કરે છે–" अहवा " ઇત્યાદિ–અથવા કલ્પસ્થિતિના આ પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર પણ પડે છે–(૧) નિર્વિષ્ટ કલ્પસ્થિતિ (૨) જિન કલ્પસ્થિતિ અને (૩) સ્થવિરકલ્પસ્થિતિ.

નિર્વિષ્ટોનો–આસેવિત વિવક્ષિત ચારિત્રવાળાનો–અનુપરિહારિકોનો જે કલ્પ (આચાર) છે, તે આચારની જે સ્થિતિ છે, મર્યાદા છે તેને નિર્વિષ્ટ કલ્પસ્થિતિ કહે છે જેમકે પ્રતિદિન આચામ્લ માત્ર તપ કરવું, અને પૂર્વોક્ત પ્રકારની જ ભિક્ષા ગ્રહણ કરવી. કહ્યું પણ છે કે–" कप्पट्ठियावि पइदिणं " ઇત્યાદિ

પૂર્વ સૂત્રોક્ત નિર્વિશમાનક અને આ નિર્વિષ્ટ, બન્નેને પરિહાર વિશુદ્ધિક કહે છે તેમના ગણનાયક હોય છે તેઓ આ પ્રકારના હોય છે–' सव्वे चरित्तवंतो " ઇત્યાદિ–તેઓ ચારિત્રવાળી હોય છે, દર્શન પરનિષ્ઠિત (પરિપૂર્ણ)

छाया—सर्वे चारित्रवन्तस्तु, दर्शने परिनिष्ठिताः ।
नवपूर्विका जघन्येन, उत्कृष्टा दशपूर्विकाः ॥ १ ॥

पञ्चविधो व्यवहारः, कल्पे द्विविधे च (जिनकल्पे स्थविरकल्पेचेत्यर्थः) दशविधे च प्रायश्चित्ते, सर्वे ते परिनिष्ठिताः ॥२॥ इत्यादि १। जिनकल्पस्थितिः, जिनाः-गच्छनिर्गतसाधुविशेषाः, तेषां कल्पस्थितिः । जिनकल्पस्वरूपमुत्तराध्ययनसूत्रस्य मत्कृतायां प्रियदर्शिनीटीकायां द्वितीयेऽध्ययनेऽचेलपरीषहस्वरूपेऽवलोकनीयम् ।२।

स्थविरकल्पस्थितिः-स्थविराः-गच्छप्रतिबद्धा आचार्यादयः, तेषां कल्पस्थितिः । तत्स्वरूपं यथा —

" पव्वज्जा सिक्खावय अत्थग्गहणं च अनियओ वासो ।
निप्फत्तीय विहारो, समायारी ठिई चेव ॥१॥ इति ।

इत्यादि, । ये सब चारित्रशाली होते हैं दर्शन में परिनिष्ठित परिपूर्ण होते हैं कम से कम ये ९. नव पूर्वतक के पाठी होते हैं और उत्कृष्ट से १० पूर्वतक के पाठी होते हैं, इनका व्यवहार पांच प्रकार का होता है जिनकल्प और स्थविरकल्प में और दश प्रकार के प्रायश्चित्त में ये सब परिनिष्ठित होते हैं। जिनकल्पस्थिति-गच्छ से निर्गत जो साधु होते हैं वे जिन हैं, इन जिनो के कल्प की जो मर्यादा है वह जिनकल्पस्थिति है। जिनकल्प का स्वरूप उत्तराध्ययन सूत्र की प्रियदर्शिनी टीका में मैंने द्वितीय अध्ययन में अचेल परीषह के स्वरूप में चर्चित किया है, अतः वहां से देख लेना चाहिये। स्थविरकल्पस्थिति गच्छप्रतिबद्ध आचार्य आदि स्थविर है इनके कल्प की जो स्थितिरूप मर्यादा है वह स्थविर

હોય છે, ઓછામા ઓછા નવ પૂર્વના પાઠી હોય છે, અને વધારેમા વધારે દસ પૂર્વના પાઠી હોય છે તેમનો વ્યવહાર આગમાદિ પાંચ પ્રકારનો હોય છે તેઓ જિનકલ્પ અને સ્થવિરકલ્પમા અને દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તોમા પરિનિષ્ઠિત (પરિપૂર્ણ) હોય છે

હવે જિનકલ્પસ્થિતિનુ નિરૂપણ કરવામા આવે છે-ગચ્છમાથી નિર્ગત જે સાધુઓ હોય છે તેમને જિન કહે છે તે જિનોના કલ્પ (આચાર) ની જે મર્યાદા છે તેને જિનકલ્પસ્થિતિ કહે છે જિનકલ્પનુ સ્વરૂપ મેં ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રની પ્રિયદર્શિની ટીકાના બીજા અધ્યયનમાં અચેલપરીષહના સ્વરૂપનું વર્ણન કરતાં, સ્પષ્ટરૂપે પ્રકટ કર્યું છે, તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ તે ત્યાથી વાંચી લેવુ.

હવે સ્થવિર કલ્પસ્થિતિની પ્રરૂપણા કરવામા આવે છે-ગચ્છ પ્રતિબદ્ધ આચાર્ય આદિને સ્થવિર કહે છે તેમના કલ્પ (આચાર) ની સ્થિતિરૂપ જે મર્યાદા છે, તેને સ્થવિર કલ્પસ્થિતિ કહે છે તેનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—

छाया—प्रव्रज्या शिक्षाव्रतानि अर्थग्रहणं चानियतो वास ।
निष्पत्तिश्च विहारः, सामाचारी स्थितिश्चैव ॥१॥

इत्यादिरूपा स्थविरकल्पस्थितिरिति ३। इह सूत्रद्वयेऽयं क्रमोपन्यासः सामायिके सति छेदोपस्थापनीयं भवति, तस्मिंश्च सति परिहारविशुद्धिकभेदरूपं निर्विशमानकं, तदनन्तरं निर्विष्टकायिकं, ततश्चाजिनकल्पः स्थविरकल्पो वा भवतीति सामायिककल्पस्थित्यादीनां क्रम इति ॥ सू० ७३ ॥

पूर्वोक्तकल्पस्थितीनां व्यतिक्रमविपरीतविधायका नारकादि शरीरिणो भवन्तीति नारकादिशरीरनिरूपणमाह—

मूलम् नेरइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा-वेउव्विए तेयए, कम्मए । असुरकुमाराणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा एए चेव । एवं सव्वेसिं देवाणं । पुढवीकाइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा आरालिए तेयए कम्मए । एवं वाउकाइयवज्जाणं जाव चउरिंदियाणं ॥ सू० ७४ ॥

कल्पस्थिति है इसका स्वरूप इस प्रकार है–"पव्वज्जा सिक्खावय" इत्यादि, इत्यादिरूप यह स्थविरकल्पस्थिति है ३ यहां दो सूत्रों में यह क्रमोपन्यास है-सामायिक के होने पर छेदोपस्थापनीय होता है, छेदोपस्थापनीय के होने पर परिहार विशुद्धिक का भेदरूप निर्विशमानक होता है, बाद में-निर्विष्टकायिक होता है इसके बाद जिनकल्प होता है, अथवा स्थविरकल्प होता है, इस प्रकार से यह सामायिक कल्प स्थिति आदिकों का क्रम है। सू० ७३।

इन पूर्वोक्त कल्पस्थितियों का व्यतिक्रम विपरीत करनेवाले नारकादि शरीरवाले होते हैं, अतः अब सूत्रकार नारकादि शरीर का निरूपण करते हैं–

પવ્વજ્જા સિક્ખાવય ઈત્યાદિ રૂપ આ સ્થવિર કલ્પસ્થિતિ હોય છે અહીં બે સૂત્રોમાં ક્રમોપન્યાસ (કથનો ક્રમ) છે–સામાયિકના સદ્ભાવમાં છેદોપસ્થાપનીય થાય છે છેદોપસ્થાપનીયના સદ્ભાવમાં પરિહાર વિશુદ્ધિક ભેદરૂપ નિર્વિશમાનક થાય છે ત્યારબાદ નિર્વિષ્ટકાયિક થાય છે ત્યારબાદ જિનકલ્પ થાય છે અથવા સ્થવિરકલ્પ થાય છે આ પ્રમાણે આ સામાયિક સ્થિતિ આદિનો ક્રમ છે ॥ સૂ ૭૩ ॥

આ પૂર્વોક્ત કલ્પસ્થિતિયોના વ્યતિક્રમ (વિપરીતતા) કરનારા નારકાદિ શરીરવાળા હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર નારકાદિના શરીરનું નિરૂપણ કરે છે
તઓ સરીરગા પણ્ણત્તા " ઈત્યાદિ—

छाया—नैरयिकाणां त्रीणि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-वैक्रियं, तैजसं, कार्मणम् १। असुरकुमाराणां त्रीणि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-एवमेव २। एव सर्वेषां देवानाम् ३। पृथिवीकायिकानां त्रीणि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-औदारिकं, तैजसं, कार्मणम् ४। एवं वायुकायिकवर्जानां यावच्चतुरिन्द्रियाणाम् ५॥सू.७४॥

टीका—'नेरइयाण' इत्यादि सूत्रपञ्चकं सुगमं, नवरं-नैरयिकाणां वैक्रियतैजसकार्मणरूपाणि त्रीणि शरीराणि भवन्ति।१। असुरकुमाराणामपि 'एवं चेवे' ति एवमेव-एतान्येव पूर्वोक्तानि वैक्रियादीनि त्रीणि शरीराणि सन्तीति २। एवम्-यथा नैरयिकाणामसुरकुमाराणां च वैक्रियादीनि त्रीणि शरीराणि तथा सर्वेषां नाग-

---

टीकार्थ-"तओ सरीरगा पण्णत्ता-" इत्यादि, ये पांच सूत्र हैं-इनका अर्थ सुगम है, फिर भी सूत्रकार ने इनमें यह प्रकट किया है कि नैरयिकों के तीन शरीर होते हैं वैक्रिय तैजस और कार्मण तैजस कार्मण इन दो शरीरों का सम्बन्ध तो प्रत्येक जीव को होता ही है, उसके साथ नैरयिक जीवों को वैक्रिय शरीर होता है, असुरकुमारों को भी ये ही ३ शरीर होते हैं। इसी तरह से-नागकुमार आदि भवनपतियों को, व्यन्तर देवों को, ज्योतिष्क देवों को और वैमानिक देवों को, कल्पोपपन्न कल्पातीतों को भी ये ही ३ शरीर होते हैं। पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजसकायिक और वनस्पतिकायिक, इन एकेन्द्रिय स्थविर जीवों को औदारिक तैजस एवं कामर्ण शरीर होते हैं, दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों को भी ये ही तीन शरीर होते हैं। वायुकायिक,

---

ટીકાર્થ—પાંચ સૂત્રો દ્વારા નારકાદિ જીવોનાં શરીરોનુ સૂત્રકારે નિરૂપણ કર્યું છે. આ સૂત્રોનો અર્થ સુગમ છે, છતા અહીં સક્ષિપ્તમા તેમનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે-નારકોને ત્રણ શરીર હોય છે-(૧) વૈક્રિય, (૨) તૈજસ અને (૩) કાર્મણ તૈજસ અને કાર્મણ, આ બે શરીરનો સબધ તો પ્રત્યેક જીવને હોય છે, અસુરકુમારોમા પણ એ જ ત્રણ શરીરનો સદ્ભાવ હોય છ એ જ પ્રમાણે નાગકુમાર આદિ ભવનપતિ દેવોમાં, વ્યન્તર દેવોમા, વૈમાનિકોમાં કલ્પોપપન્ન અને કલ્પાતીતોમા પણ એ જ ત્રણ શરીરનો સદ્ભાવ હોય છે પૃથ્વીકાયિક, અપ્કાયિક, તૈજસકાયિક અને વનસ્પતિકાયિક, આ એકેન્દ્રિય સ્થવિર જીવોમા ઔદારિક, તૈજસ અને કાર્મણ શરીરનો સદ્ભાવ હોય છે. દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય જીવોમા પણ એ જ ત્રણ શરીરોનો સદ્-

कुमारादि भवनपति-व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकदेवानामपि विज्ञेयानि ३। पृथि वीकायिकानामौदारिक तैजसकार्मणरूपाणि त्रीणि शरीराणि भवन्ति ४। एव-यया-पृथिवीकायिकानामौदारिकादीनि शरीराणि भवन्ति तथा वायुकायिकव र्जानां वायुकायिकान् वर्जयित्वेत्यर्थः 'जाव' इति यावत्, यावच्छब्दन-'अप्काय-तेजस्काय - वनस्पतिकाय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रियाणाम्' इति ग्राह्यम्, चतुरिन्द्रियाणां चौदारिकतैजसकार्मणरूपाणि त्रीणि शरीराणि सन्ति। वायुका यिकानां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां चाहारकवर्जशरीरचतुष्टय मनुष्याणां तु शरीरपञ्चक भवतीति त्रिस्थानकानुरोधात्तानि नात्र दर्शितानि ॥ सू० ७४ ॥

कल्पस्थितिविप्रतिकामकाश्च प्रत्यनीका अपि भवन्तीति प्रत्यनीकसूत्रषट्कमाह-

मूलम्-गुरु पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा आयरिय पडिणीए, उवज्झायपडिणीए, थेरपडिणीए १। गइं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा इहलोगपडिणीए, परलोगपडिणीए दुहओ लोगपडिणीए२। समूहं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा-कुलपडिणीए, गणपडिणीए, संघपडिणीए ३। अणुकंप पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए, सेह पडिणीए४। भाव पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा-णाणपडिणीए, दसणपडिणीए, चरित्तपडिणीए ५। सुय पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा-सुत्तपडि णीए, अत्थपडिणीए, तदुभयपडिणीए ६ ॥ सू० ७५ ॥

और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इनको औदारिक, वैक्रिय तैजस और कार्मण ये चार शरीर तक भी हो सकते हैं, आहारक शरीर नहीं होता है तथा-मनुष्यों को तो पांच शरीर तक भी हो सकते हैं, परन्तु यहां पर त्रिस्थानक का प्रकरण होने से उन्हें यहां नहीं कहा गया है ॥सू०७४॥

આવ હોય છે વાયુકાયિક અને પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોમાં ઔદારિક, વૈક્રિય, તૈજસ અને કાર્મણ એ ચાર શરીરનો સદ્ભાવ હોઈ શકે છે-પણ આહારક શરીર હોતું નથી. મનુષ્યોમાં તો પાંચ શરીરોનો સદ્ભાવ પણ હોઈ શકે છે, પરન્તુ અહીં ત્રિસ્થાનકનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી તેમની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી નથી ॥ સૂ ૭૪ ॥

छाया—गुरुं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आचार्यप्रत्यनीकः, उपाध्यायप्रत्यनीकः, स्थविरप्रत्यनीकः ।१। गतिं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—इहलोकप्रत्यनीकः, परलोकप्रत्यनीकः, द्विधातोलोकप्रत्यनीकः ।२। समूहं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—कुलप्रत्यनीकः, गणप्रत्यनीकः, संघप्रत्यनीकः ।३। अनुकम्पां प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तपस्विप्रत्यनीकः, ग्लानप्रत्यनीकः, शैक्षप्रत्यनीकः ।४। भावं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा ज्ञानप्रत्यनीकः, दर्शनप्रत्यनीकः, चारित्रप्रत्यनीकः ।५। श्रुतं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सूत्रप्रत्यनीकः, अर्थप्रत्यनीकः, तदुभयप्रत्यनीकः ।६। सू० ७५॥

टीका—'गुरुं' इत्यादि सूत्रषट्कं सुगमं, नवरं—'गुरु'—मिति, गृणाति—अभिधत्ते तत्त्वमिति गुरुस्तं प्रतीत्य—आश्रित्य—प्रत्यनीकाः—प्रतिकूलाः ते आचार्योपाध्यायस्थविरभेदेन त्रयः प्रज्ञप्ताः । तत्राचार्योपाध्यायप्रत्यनीकौ तदवर्णवादिनौ । स्थविरो जात्यादिभिर्भवति तस्य प्रत्यनीकः—प्रतिकूलः । स्थविरप्रत्य-

---

कल्पस्थिति व्यतिक्रामक प्रत्यनीक (प्रतिकूल) भी होते हैं, अतः अब सूत्रकार प्रत्यनीक प्रतिकूल रहने वालों के छह सूत्रों का कथन करते हैं—"गुरुं पडुच्च तओ पडिणीया—" इत्यादि

टीकार्थ—ये ६ सूत्र हैं, इनका अर्थ सुगम है फिर भी सूत्रकार ने इनमें यह प्रकट किया है—गुरु को लेकर प्रत्यनीक तीन होते हैं, जो तत्त्व का कथन करता है वह "गृणाति तत्त्वमितिगुरुः" तत्त्व समझाने वालेको गुरु कहते है । इस व्युत्पत्तिके अनुसार गुरु कहा गयाहै प्रत्यनीक शब्द का अर्थ प्रतिकूल रहना है ऐसे गुरुप्रत्यनीक आचार्यप्रत्यनीक उपाध्यायप्रत्यनीक और स्थविरप्रत्यनीक के भेद से ३ तीन प्रकार के कहे गये हैं । आचार्य और उपाध्याय का जो अवर्णवाद करता है वह

કલ્પસ્થિતિ વ્યતિક્રામક પ્રત્યનીકો (પ્રતિકૂળ માણસો) પણ હોઇ શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રત્યનીક (પ્રતિકૂળ રહેનારા) ને અનુલક્ષીને ૭ સૂત્રોનુ કથન કરે છે—"गुरुं पडुच्च तओ पडिणीया" ઇત્યાદિ—

આ સૂત્રોનો અર્થ સુગમ છે, છતા અહીં આ સૂત્રોનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે-ગુરુની અપેક્ષાએ ત્રણ પ્રત્યનીક હોય છે "गृणाति तत्त्वमिति गुरुः" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર જે તત્ત્વનુ કથન કરે છે તેને ગુરુ કહે છે પ્રતિકૂળ રહેનારને પ્રત્યનીક કહે છે ગુરુ પ્રત્યનીકના નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભેદ કહ્યા છે-(૧) આચાર્ય પ્રત્યનીક, (૨) ઉપાધ્યાય પ્રત્યનીક અને (૩) સ્થવિર પ્રત્યનીક આચાર્યનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવને આચાર્ય પ્રત્યનીક કહે છે અને ઉપાધ્યાયનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવને ઉપાધ્યાય પ્રત્યનીક

नीक-यो जात्यादिकमाश्रित्य स्थविरस्यावर्णवादं वदति छिद्रान्वेषी च भवति सः । उक्तञ्च—

" जच्चाईहिं अवन्नं, विभासइ वट्टइ न यावि उववाए ।
अहिओ छिद्दप्पेही, पगासवाई अणणुलोमो ॥ १ ॥
अहवावि वए एवं, उवएस परस्स देंति एवं तु ।
दसविहवेयावच्चं, कायव्व सयं न कुव्वंति ॥२॥ " इति ।

छाया—जात्यादिभिरवर्णं विभाषते नोपपातेऽपि वर्तते ।
अहित छिद्रप्रेक्षी प्रकाशवादी अननुलोम ॥१॥
अथवाऽपि (स प्रत्यनीक,) वदेदेवं, (एते आचार्यादयः) परस्योप-
देशं ददति, एवमेव दशविध वैयावृत्यं कर्तव्यं परं स्वयं न कुर्वन्ति ॥ २ ॥
इत्यमवर्णवादकरणे गुरुप्रत्यनीकता भवति ॥१॥ गति मानुषत्वादिका, तां प्रतीत्य प्रत्यनीकः स त्रिविधः-इहलोकपरलोकोभयलोकभेदात् । तत्र-इहलोक

आचार्य प्रत्यनीक, और उपाध्यायप्रत्यनीक है जाति आदि की अपेक्षा स्थविर होता है, ऐसे स्थविर का जो प्रत्यनीक प्रतिकूल होता है वह स्थविरप्रत्यनीक है स्थविरप्रत्यनीक वह है जो जाति आदि को लेकर स्थविर का अवर्णवाद कहता है और उनके छिद्रों का अन्वेषी होता है। कहा भी है-"जच्चाई हिं अवन्नं-" इत्यादि, ये आचार्यादिक दश प्रकार के वैयावृत्य का उपदेश देते हैं, परन्तु-स्वयं आचरण नहीं करते हैं ऐसा बोलनेवाला अवर्णवादी है। इस प्रकार से अवर्णवाद करने पर गुरुप्रत्यनीकता होती है-१ मानुषत्वादिक जाति को आश्रित करके प्रत्यनीक तीन प्रकार का होता है, जैसे-इहलोकप्रत्यनीक परलोकप्रत्य नीक और उभयलोकप्रत्यनीक इनमें इहलोकप्रत्यनीक वह है जो मनु ष्यत्वरूप पर्यायका प्रत्यनीक है ऐसा वह जीव कृत्रिमनपुंसक आदि की

કહે છે જાતિ આદિની અપેક્ષાએ જેઓ સ્થવિર છે, તેમના પ્રત્યનીકને સ્થવિર પ્રત્યનીક કહે છે જે માણુસ જાતિ આદિની અપેક્ષાએ સ્થવિરનો અવર્ણવાદ કરે છે અને તેમના છિદ્રો શોધ્યા કરે છે તે માણુસને સ્થવિર પ્રત્યનીક કહે છે કહ્યું પણ છે કે- 'જચ્ચાઈ હિં અવન્નં' ઇત્યાદિ—

" આ આચાર્ય આદિ દસ પ્રકારના વૈયાવૃત્યનો ઉપદેશ આપે છે પરંતુ પોતે તો તે પ્રમાણે આચરણ કરતા નથી આ પ્રકારે બોલનાર અવર્ણવાદી ગણાય છે આ પ્રમાણે અવર્ણવાદ કરનારમાં ગુરુ પ્રત્યનીકતાનો સદ્ભાવ સમજવો ૧

મનુષ્ય આદિ ગતિને આધારે ત્રણ પ્રકારના પ્રત્યનીક સમજવા જેવા છે—
(૧) ઇહલોક પ્રત્યનીક (૨) પરલોક પ્રત્યનીક અને (૩) ઉભયલોક પ્રત્યનીક મનુષ્યત્વ રૂપ પર્યાયનો જે પ્રત્યનીક (પ્રતિકૂળ) હોય છે તેને ઇહલોક પ્રત્યનીક કહે છે એવો તે પ્રત્યનીક જીવ કૃત્રિમનપુંસક આદિની જેમ ઇન્દ્રિયાર્થ પ્રતિકૂળ

प्रत्यनीकः-इहलोकस्य-मनुष्यत्वरूपपर्यायस्य प्रत्यनीकः इन्द्रियार्थप्रतिकूलविधायकत्वात् कृत्रिमनपुंसकादिवत् । परलोकप्रत्यनीकः-जन्मान्तरप्रतिकूलइन्द्रियार्थतत्परत्वाच्चार्वाकवत् । द्विधातोलोकप्रत्यनीकः-उभयलोकप्रत्यनीकः-भोगसाधनतत्परत्वाद् द्रव्यलिङ्गिवत् । यद्वा-चौर्यादिभिरिन्द्रियार्थसाधनतत्परउभयलोकप्रत्यनीकः । इति गतिप्रत्यनीकता ॥ २ ॥ अथ समूहप्रत्यनीकमाह—

समूहः-कुलगणसंघरूपः, तं प्रतीत्य प्रत्यनीकः, तत्र कुलप्रत्यनीकः-कुलम्-एकगुरुकशिष्यसमुदायरूपम्, गणः-अनेककुलानां समूहरूपः, सङ्घः-अनेकगणानां समूहरूपः, एतेषामवर्णवादकः प्रत्यनीको भवति । इयं समूहप्रत्यनीकतेति ।३।

तरह इन्द्रियार्थ प्रतिकूल विधायक होता है। परलोकप्रत्यनीक वह है जो इन्द्रियार्थ में तत्पर होने के कारण चार्वाक आदि की तरह जन्मान्तर का प्रतिकूल होता है,। तथा-उभयलोक प्रत्यनीक वह है जो भोग सम्बन्ध में तत्पर होने के कारण द्रव्यलिङ्गी की तरह दोनों लोक का प्रतिकूल होता है, अथवा-चौर्य आदि कुकृत्यों द्वारा जो इन्द्रियार्थ के साधन में तत्परबना है वह-उभयलोक प्रत्यनीक है-२ यह गति की अपेक्षा प्रत्यनीकता प्रगट की है। समूह को लेकर कुल, गण, और संघ को आश्रित कर प्रत्यनीकता इस प्रकार से है-एक गुरु का जो शिष्य समुदाय होता है, वह कुल है अनेक कुलों का समुदाय गण है, और-अनेक गणों का समुदाय संघ है, इनका अवर्णवाद करनेवाला समूह प्रत्यनीक कहा गया है-३ अनुकंपा प्रत्यनीक इस प्रकार से कहा

વિધાયક હોય છે જે જીવ ઇન્દ્રિયોના સુખમા લીન થઇને-ચાર્વાકના મત પ્રમાણે ભોગવિલાસમય જીવન જીવ્યા કરે છે તેને પરલોક પ્રત્યનીક કહે છે. કારણ કે એવો જીવ પોતાના પરલોકને બગાડે છે તથા ઉભયલોક પ્રત્યનીક એ છે કે જે ભોગ સબધમાં પ્રવૃત્ત જ રહેવાને કારણે દ્રવ્યલિંગીની જેમ બન્ને લોકને માટે પ્રતિકૂળ એવું આચરણ કરે છે અથવા જે માણસ ચોરી આદિ કુકૃત્યો દ્વારા ઇન્દ્રિયાર્થના સાધનમા તત્પર રહ્યા કરે છે, તેને ઉભયલોક પ્રત્યનીક કહે છે આ રીતે ગતિની અપેક્ષએ ત્રણ પ્રકારની પ્રત્યનીકતાને પ્રકટ કરવામાં આવી છે । ૨ ।

સમૂહની અપેક્ષાએ ત્રણ પ્રકારના પ્રત્યનીક કહ્યા છે-(૧) કુલ પ્રત્યનીક, (૨) ગણ પ્રત્યનીક અને (૩) સઘ પ્રત્યનીક.

એક ગુરુના શિષ્ય સમુદાયને કુલ કહે છે, અને કુળોના સમુદાયને ગણ કહે છે અને અનેક ગણોના સમુદાયને સઘ કહે છે તેમનો અવર્ણવાદ કરનારને સમૂહ પ્રત્યનીક કહે છે. અનુકપા પ્રત્યનીક પણ ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે

अथानुकम्पामत्यनीकमाह-अनुकम्पां प्रतीत्य-आश्रित्य त्रयः प्रत्यनीका भवन्ति तथाहि-तपस्विप्रत्यनीकः, ग्लानप्रत्यनीकः, शैक्षप्रत्यनीकः । तत्र तपस्वी-द्वादशविधतपोविधायकः, ग्लानः-रोगादिकारणवशादशक्तः, शैक्षः-नवदीक्षितः। एते हि अनुकम्पायोग्या भवन्तीत्यतेषामनुकम्पाया अकरणेन, अन्यद्वाराऽनुकम्पाया अकरणेन च प्रत्यनीकता भवति । एवेऽनुकम्पामाश्रित्य तपस्व्यादीनां प्रत्यनीका भवन्तीति ।४। सम्प्रति भावप्रत्यनीकतामाह-भावः-जीवाजीवगतः पर्याय, तत्र जीवस्य प्रशस्तोऽप्रशस्तश्च भावो भवति । तत्र जीवस्य प्रशस्तो भावः क्षायिकादि, अप्रशस्तो विवक्षामाश्रित्यौदयिक । क्षायिकादिश्च ज्ञानादिरूपस्तान् भाव-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप प्रतीत्य प्रत्यक प्रत्यनीकाः ज्ञानदर्शनचारित्राणामन्यथा

गया है-जो अनुकम्पा को आश्रित करके अवर्णवाद होता है वह भी तीन प्रकार का होता है एक तपस्विप्रत्यनीक, दूसरा ग्लानप्रत्यनीक, और तीसरा शैक्षप्रत्यनीक इनमें अनशनादि १२ प्रकार के तपों का जो अनुष्ठान करनेवाला होता है वह तपस्वी होता है, रोगादि कारण के वश से जो अशक्त होता है वह ग्लान है, नये दीक्षित का नाम शैक्ष है, ये सब अनुकम्पा के योग्य होते हैं सो इनके प्रति अनुकम्पा नहीं करना अन्य द्वारा भी इनके प्रति अनुकम्पा नहीं करवाना यही उनकी ओर प्रत्यनीकता है, यही बात तपस्विप्रत्यनीक, ग्लानप्रत्यनीक, और शैक्षप्रत्यनीक इन पदों द्वारा प्रकट की गई है। भाव की अपेक्षा लेकर तीन प्रत्यनीक इस प्रकार से प्रकट किये गये हैं-एक ज्ञानप्रत्यनीक, १ दर्शनप्रत्यनीक २ और तीसरा चारित्रप्रत्यनीक ३ जीव और अजीव

અનુકંપા બતાવવા યોગ્ય છે. પ્રત્યે સ્વયં અનુકંપા (દયા) નહીં રાખનાર અને બીજાને અનુકંપા રાખવા નહીં દેનાર વ્યક્તિને અનુકંપા પ્રત્યનીક કહે છે તેના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) તપસ્વી પ્રત્યનીક, (૨) ગ્લાન પ્રત્યનીક, (૩) શૈક્ષ પ્રત્યનીક અનશનાદિ ૧૨ પ્રકારના તપનું અનુષ્ઠાન કરનારને તપસ્વી કહે છે રોગાદિ કારણોને લીધે જે સાધુ અશક્ત હોય છે, તેને ગ્લાન કહે છે નવદીક્ષિત સાધુને શૈક્ષ કહે છે તપસ્વી, ગ્લાન અને શૈક્ષ અનુકંપાને પાત્ર હોય છે તેમના પ્રત્યે અનુકંપા નહીં રાખનાર અને અનુકંપા રાખનારને પણ અનુકંપા નહીં રાખવાનું કહેનારને અનુકંપા પ્રત્યનીક કહે છે આ રીતે તપસ્વી પ્રત્યે અનુકંપા નહીં રાખનારને તપસ્વી પ્રત્યનીક, ગ્લાન પ્રત્યે અનુકંપા નહીં રાખનારને ગ્લાન પ્રત્યનીક અને નવદીક્ષિત પ્રત્યે અનુકંપા નહીં રાખનારને શૈક્ષ પ્રત્યનીક કહે છે ભાવની અપેક્ષાએ ત્રણ પ્રત્યનીક કહ્યા છે-(૧) જ્ઞાન પ્રત્યનીક, (૨) દર્શન પ્રત્યનીક અને (૩) ચારિત્ર પ્રત્યનીક

प्ररूपणतस्तद्दूपणतो वा भवन्ति, यथा-

"पाययसुत्तनिबद्धं, कोवा जाणइ पणीय केणेयं ?।
किंवा चरणेणं तु, दाणेण विणा उ किं हवइ ॥ १ ॥" इति।

छाया—प्राकृतसूत्रनिबद्धं को वा जानाति प्रणीतं केनेदम् ?।
किं वा चरणेन तु दानेन विना तु किं भवति ॥१॥

तत्र ज्ञानविषयाऽन्यथाप्ररूपणा यथा—सूत्रमिदं प्राकृतभाषानिबद्धं—न तु संस्कृतभाषानिबद्धमित्यादि। दर्शनविषयाऽन्यथाप्ररूपणा यथा—को जानातीदं शास्त्रं केन भगवताऽन्येन वा केनचित् प्रणीतमिति न श्रद्धेयमित्यादि। चारित्रविषया-

गत पर्याय का नाम भाव है जीव को प्रशस्त भाव, और अप्रशस्त भाव, दोनों प्रकार भी भाव होता है, क्षायिकादि का होना यह प्रशस्त भाव है तथा विवक्षा की अपेक्षा से औदयिक आदि भाव अप्रशस्त भाव है क्षायिकभाव सामादिरूप होता है इस कारण यहां ज्ञानदर्शन और चारित्ररूप अप्रशस्त भाव को लेकर ये प्रत्येक के प्रत्यनीक प्रकट किये गये हैं ज्ञानदर्शन और चारित्र में अन्यथा प्ररूपणा करने से, या उनमें दूषण लगाने से ये प्रत्यनीक होते हैं। जैसे—"पोवयसुत्तनिबद्धं" इत्यादि, यह सूत्र प्राकृत भाषा में निबद्ध है—संस्कृत में निबद्ध नहीं है इत्यादिरूप से गर्हित विचारधारा पूर्वक कहना यह ज्ञानविषयक अन्यथा प्ररूपणाहै कौन जानता है यह शास्त्र भगवानने उपदिष्टकिया है, या इसे अन्य दूसरे किसीने उपदिष्ट कियाहै ? भगवानने उपदिष्ट कियाहै रचाहै

જીવ અને અજીવગત પર્યાયનુ નામ ભાવ છે જીવમાં પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત, આ બન્ને પ્રકારના ભાવ હોય છે ક્ષાયિકાદિ ભાવને પ્રશસ્ત ભાવ કહે છે અને ઔદયિક આદિ ભાવને અપ્રશસ્ત ભાવ કહે છે ક્ષાયિક ભાવ સામાદિ (જ્ઞાનાદિ) રૂપ હોય છે, તે કારણે અહીં જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર રૂપ અપ્રશસ્ત ભાવની અપેક્ષાએ તે પ્રત્યેકના પ્રત્યનીક પ્રકટ કરવામા આવ્યા છે. જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર વિષયક વિપરીત પ્રરૂપણા કરવાથી અથવા તેમાં દૂષણનું આરોપણ કરવાથી, તેઓમા પ્રત્યનીકતા આવી જાય છે જેમકે—

પાવય સુત્તનિબદ્ધ" ઇત્યાદિ—

આ સૂત્ર પ્રાકૃત ભાષામા નિબદ્ધ છે, સંસ્કૃતમા નિબદ્ધ નથી" ઇત્યાદિ રૂપે ગર્હિત વિચારધારાપૂર્વક કહેવું તેને જ્ઞાનવિષયક વિપરીત પ્રરૂપણા કહેવાય છે. તથા "શી ખબર, આ શાસ્ત્ર ભગવાને રચ્યુ છે કે અન્ય કોઇએ રચ્યું છે !" ભગવાને જ રચ્યું છે તેનું પ્રમાણ શુ છે ? એવા કોઈ પ્રમાણને અભાવે તેમા

ऽन्यथा प्ररूपणा यथा—चारित्रेण—चारित्रग्रहणेन किम्—को लाभ , यत् चारित्री ज्ञान दातु न शक्नोति, ज्ञानेन विना किं भवति, लोके ज्ञान हि सर्वश्रेष्ठ सर्वत्र नान्यत्किमपाति ।-। श्रुतप्रत्यनीकता यथा—श्रुतम्—आगम प्रतीत्य सूत्रार्थ—तदुभय भेदेन त्रयः प्रत्यनीका भवन्ति । तत्र सूत्रम्—आचाराङ्गादिकम्, अर्थः—तद्व्याख्यान, तदुभय—सूत्रार्थरूपं द्वितयमपि । तेषां प्रत्यनीकता—दूषणोद्भावन यथा—

' जीवा य अजीवा य, वया पमाया तहा य अपमाया ।

एयाणि पसिद्धाणि य, किमेत्य सुत्तत्थमणणेण ॥१॥ ' इति ।

छाया—जीवाश्चाजीवाश्च व्रतानि प्रमादास्तथा चाप्रमादा ।

एतानि प्रसिद्धानि च, किमत्र सूत्रार्थपठनेन ॥१॥ इत्यादि ।६।।सू०७५॥

इसमें प्रमाण क्या है ? अत –यह श्रद्धेय नहीं है ऐसा कथन करना यह दर्शनविषयक अन्यथा प्ररूपणा है। चारित्र ग्रहण से क्या लाभ है ? क्यों कि–चारित्री ज्ञान तो दे नहीं सकता है, और ज्ञान के विना कुछ होता नहीं है, लोक में ज्ञान सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, और कुछ सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा गया है इस प्रकार का कथन चारित्रविषयक अन्यथा प्ररूपणा रूप होती है। श्रुत को आश्रित करके तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं, जैसे–सूत्रप्रत्यनीक अर्थप्रत्यनीक और तदुभयप्रत्यनीक, आचाराङ्ग आदि सूत्ररूप आगम है इनका व्याख्यान अर्थरूप आगम है, सूत्र और अर्थ यह उभयरूप आगम है इनमें दूषणों का उद्भावन करना यह उनकी प्रत्यनीकता है। जैसे " जीवा य अजीवा य " इत्यादि। जीव अजीवव्रत अप्रमाद ये तो प्रसिद्ध ही हैं फिर सूत्र अर्थ पढने से प्रयोजन क्या है, अर्थात् कुछ भी नहीं। सू० ७५ ॥

पहले जो कल्पस्थिति कही गई है वह गर्भज मनुष्यों को ही होती

શ્રદ્ધા શા માટે રાખવી જોઈએ ! ' આ પ્રકારનું કથન કરનારને દર્શન પ્રત્યનીક કહે છે " ચારિત્ર ગ્રહણ કરવામાં શો લાભ છે ? ચારિત્રશાળી જીવ જ્ઞાન તો આપી શકતો નથી, અને જ્ઞાન વિના કોઈ લાભ થતો જ નથી લોકમાં જ્ઞાન ને જ શ્રેષ્ઠ કહ્યું છે બીજું કંઈ પણ તેનાથી ઉત્તમ નથી આ પ્રકારની વિપરીત પ્રરૂપણા કરનારને ચારિત્ર પ્રત્યનીક કહે છે શ્રુતની અપેક્ષાએ પણ ત્રણ પ્રત્યનીક કહ્યા છે (૧) સૂત્ર પ્રત્યનીક (૨) અર્થ પ્રત્યનીક અને (૩) તદુભય પ્રત્યનીક આચારાંગ આદિ સૂત્રરૂપ આગમ છે તેનું વ્યાખ્યાન તે અર્થરૂપ આગમ છે સૂત્ર અને અર્થ એ બન્ને ઉભયરૂપ આગમ છે તેમાં દૂષણોનું આરોપણ કરવું એ જ તેમના પ્રત્યેની પ્રત્યનીકતા છે જેમકે– જીવા ય અજીવા ય " ઈત્યાદિ " જીવ, અજીવ વ્રત અપ્રમાદ આ તો જાણીતાં તત્ત્વો છે તો સૂત્ર, અર્થ આદિ વાંચવાની જરૂર જ શી છે ? " આ પ્રમાણે કહેનારને શ્રુત પ્રત્યનીક કહે છે ॥ સૂ. ૭૫ ॥

पूर्वं कल्पस्थितिरुक्ता, सा च गर्भजमनुष्याणामेव भवति, तेषां शरीरं च मातापितृहेतुकमिति तच्छरीरे, मातापित्रोरङ्गविभागं प्ररूपयन् सूत्रद्वयमाह—

मूलम्--तओ पिइयंगा पण्णत्ता, तं जहा-अट्ठी, अट्ठिमिंजा, केसमंसुरोमनहे १। तओ माउयंगा पण्णत्ता, तं जहा-मंसे, सोणिए, मत्थुलिंगे ॥ सू० ७६ ॥

छाया—त्रीणि पित्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-अस्थि, अस्थिमिञ्जा, केशश्मश्रुरोमनखम् ।१। त्रीणि मात्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-मांसं, शोणितं, मस्तुलिङ्गम् ।२ ॥ सू० ७६ ॥

टीका—'तओ पिइयगा' इत्यादि। त्रीणि-त्रिसंख्यकानि, पित्रङ्गानि-पितृसम्बन्धीनि-अङ्गानि प्राय शुक्रपरिणतानीत्यर्थः। तद्यथा-तान्येवाह अस्थि-प्रसिद्धम्, अस्थिमिञ्जा-अस्थिमध्यगतो रसः, केशश्मश्रुरोमनखम्, तत्र केशाः-प्रसिद्धाः, श्मश्रु-कूर्चः, दाढी इतिभाषा प्रसिद्धं रोमाणि-कक्षादिजातानि, नखा-श्चेति समाहारे केशश्मश्रुरोमनखम्, एतदेकाङ्गत्वेन विवक्षितं प्रायः समानत्वा-

---

है, तथा गर्भज मनुष्यों का शरीर मातापिताओं के संयोग से होता है अतः उनके शरीर में मातापिता के अङ्ग का विभाग सूत्रकार प्ररूपित करते हैं-' तओ पिइअंगा पण्णत्ता " इत्यादि,

टीकार्थ-पित्रङ्ग तीन कहे गये हैं जैसे अस्थि अस्थिमज्जा और केश श्मश्रु रोम नख, तीन माताके अङ्ग कहे गये हैं, जैसे-मांस शोणित मस्तुलिङ्ग। गर्भजन्मवालों के शरीर में पिता सम्बन्धी जो तीन अङ्ग कहे गये हैं, वे प्रायः शुक्र के परिणाम रूप होते हैं, अस्थि हड्डी अस्थिमिज्जा श्मश्रु दाढी के बाल, और कक्ष आदि के बाल तथा नख यह पद एकाङ्ग रूप

પહેલાં જે કલ્પસ્થિતિની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી, તેનો સદ્ભાવ મનુષ્યોમાં જ હોય છે. તથા ગર્ભજ મનુષ્યના શરીરનુ નિર્માણ માતાપિતાના સંયોગથી જ થાય છે તેથી તેના શરીરમાં માતાપિતાના કયા કયા અંગો હોય છે, તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે-" તઓ પિઇઅંગા પણ્ણત્તા " ઈત્યાદિ

ટીકાર્થ-તેના શરીરમાં ત્રણ પિતૃ અંગ હોય છે-(૧) અસ્થિ-અસ્થિમજ્જા, (૨) કેશ, શ્મશ્રુ, રોમ અને (૩) નખ તેના શરીરમા માતાના નીચે પ્રમાણે ત્રણ અંગ હોય છે(૧) માસ, (૨) શોણિત અને (૩) મગજ. ગર્ભજન્મવાળા મનુષ્યના શરીરમા પિતાના ત્રણ અંગોનો જે સદ્ભાવ કહ્યો છે તે પ્રાય' (સામાન્ય રીતે) શુક્રના પરિણામ રૂપ હોય છે

અસ્થિ એટલે હાડકા અને અસ્થિમજ્જા તથા ' શ્મશ્રુ ' એટલે દાઢી, બગલ આદિના વાળ. મનુષ્યના આ ત્રણ અંગો (અસ્થિ, શ્મશ્રુ અને નખ) સામાન્ય

दिति।१।'तओ माउयगा' इत्यादि-मात्रङ्गानि-मातृसम्बन्धीनि-मार्तवमायप रिणतानीत्यर्थ, मङ्गानि तानि श्रीणि यथा-मांस-प्रतीत, शोणितं-रक्त, मास्तु लिङ्ग-पिश्रद्रात्तशिष्ट सर्वमङ्ग मेदः किप्फिसादिकम्, यद्वा-कपालमध्यवर्ति भेज्ज कमिति।२। ॥ सू० ७६ ॥

पूर्व शरीरे मातापित्रोरङ्गानि प्रदर्शितानि, तदङ्गमातश्च कोऽपि पूर्वपुण्योदयेन श्रामण्य प्राप्नोतीति तत्पतिपन्नस्य विशिष्टनिर्जरा कारणानि निरूपयन् सूत्रद्वयमाह-

मूलम्- तीहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महानिज्जरे महापज्ज वसाणे भवइ, त जहा-कया ण अह अप्प वा बहुय वा सुय अहिज्जिस्सामि १, कया ण अह एकल्लविहारपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरिस्सामि २, कया णं अह अपच्छिममारणंतियसलेहणाझू सणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए काल अणवक खमाणे विहरिस्सामि३। एव समणसा सवयसा सकायसा पहारे माणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ॥ १ ॥

तीहि ठाणेहि समणोवासए महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ त जहा-कया णं अह अप्प वा बहुय वा परिग्गह परिच इस्सामि १, कया णं अह मुड भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्सामि २,कया णं अह अपच्छिममारणतियसलेहणाझूसणा

से प्रायः समान होने के कारण विवक्षित हुआ है-१ माता के अङ्ग कौन २ से उसमें होते हैं, इस बात को सूत्रकार ने-"तओ माउअगा-" इस सूत्र द्वारा प्रकट किया है ये अङ्ग आर्तव के परिणामरूप होते हैं, जैसे-मांस शोणित रक्त, और मस्तुलिङ्ग मस्तष्क=मगज। पित्रङ्ग विशिष्ट सर्व अङ्ग मेद फुफफुस आदि अथवा-कपाल के मध्यवर्ती भेजा-॥सू ७६॥

રીતે પિતાના તે અંગો જેવાં જ હોય છે તેથી અહીં તે અંગોમાં પિતૃઅંગ (પિત્રંગ) સાથે સમાનતા પ્રકટ કરી છે- 'तओ माउअंगा' આ સૂત્ર દ્વારા એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે ગર્ભજ મનુષ્યમાં માંસ, રક્ત અને મસ્તુલિંગ (મગજ) માતાના તે અંગો જેવા હોય છે, તે અંગ આર્તવના પરિણામરૂપ હોય છે ॥ સૂ ७६ ॥

झूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरिस्सामि ३ । एवं समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणोवासए महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ २॥सू० ७७॥

छाया— त्रिभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो महानिर्जरो महापर्यवसानो भवति, तद्यथा-कदा खलु अहम् अल्पं वा बहुकं वा श्रुतम् अध्येष्ये १, कदा खलु अहम् एकाकिविहार प्रतिमाम् उपसंपद्य खलु विहरिष्यामि २। कदा खलु अहम् अपश्चिममारणान्तिकसंलेखना जोषणा जोषितो भक्तपानप्रत्याख्यातः पादपोपगतः कालम् अनवकाङ्क्षन् विहरिष्यामि ३। एवं स्वमनसा स्ववचसा स्वकायेन प्रधारयत् श्रमणो निर्ग्रन्थो महानिर्जरो महापर्यवसानो भवति ।१॥

त्रिभिः स्थानैः श्रमणोपासको महानिर्जरः महापर्यवसानो भवति, तद्यथा-कदा खलु अहम् अल्पं वा बहुकं वा परिग्रहं परित्यक्ष्यामि ? १, कदा खलु अहं मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यामि ? २, कदा खलु अहम् अपश्चिममारणान्तिकसंलेखनाजोषणाजोषितो भक्तपानप्रत्याख्यातः पादपोपगतः कालम् अनवकाङ्क्षन् विहरिष्यामि ? ३। एवं स्वमनसा स्ववचसा स्वकायेन प्रकटयन् श्रमणोपासको महानिर्जरो महापर्यवसानो भवति ।२॥ सू० ७७ ॥

टीका—'तीहिं' इत्यादि। त्रिभिः स्थानैः-कारणैः श्रमणः-तपस्वी निर्ग्रन्थः-द्रव्यभावग्रन्थिरहितो मुनिः महानिर्जरः महती निर्जरा-कर्मक्षयरूपा यस्य स

इस प्रकारसे शरीर में मातापिता सम्बन्धी अङ्गोंको दिखाया उनके अङ्गों से उत्पन्न हुवा कोई भी पूर्वपुण्य के उदय से श्रामण्य को प्राप्त कर लेता है सो श्रामण्य पर्याय को प्राप्त हुवा वह जीव जिन जिन कारणों से विशिष्ठ निर्जरा करता है अब उन कारणों को सूत्रकार दो सूत्रों से प्रकट करते हैं-"तीहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे-" इत्यादि

टीकार्थ-तीन कारणोंसे श्रमण निर्ग्रन्थ कर्मक्षयरूप निर्जरावाला होता है और तद्भव से उसी भव में मोक्षगामी होता है जो द्रव्यग्रन्थि, और

ઉપરના સૂત્રમા ગર્ભજ મનુષ્યના શરીરમાં માતાપિતાના કયા કયા અંગો હોય છે તે પ્રકટ કરવામા આવ્યુ ગર્ભજ જન્મથી ઉત્પન્ન થયેલો કોઈ પણ મનુષ્ય પૂર્વ પુણ્યના ઉદયથી શ્રામણ્ય પર્યાયની પ્રાપ્તિ કરી શકે છે. આ રીતે જેણે શ્રામણ્ય પર્યાય પ્રાપ્ત કરી છે એવો જીવ જે જે કારણોને લીધે વિશિષ્ટ નિર્જરા કરે છે, તે તે કારણોનું હવે નિરૂપણ કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર નીચેના બે સૂત્રોનુ કથન કરે છે-" तीहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे " ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ—નીચેના ત્રણ કારણોના સદ્ભાવમા શ્રમણ નિર્ગ્રંથ કર્મક્ષપણરૂપ નિર્જરાવાળો હોય છે, અને એ જ ભવમાથી મોક્ષગામી થાય છે. તે દ્રવ્યગ્રંથિ અને

तथा-सर्वत कर्मक्षयकारीत्यर्थः, अतएव-महापर्यवसानः-महत्-मात्यन्तिकं पर्यवसानम्, अन्तो भवान्तो यस्य स तथा-तद्भवसिद्धिगामीत्यर्थः, भवति। तथा-तान्येव स्थानानि यथा-' कयाण ' अह इत्यादि, कदा खलु अहम् इत्यादि सुगमम्। ' अपच्छिम '-इत्यादि, अपश्चिममारणान्तिकसंलेखनाजोषणाजोषित, तत्र-न विद्यते पश्चिमो यस्या सा अपश्चिमा-सर्वान्तिमा, यद्वा-पश्चिमैवामङ्गलपरिहारार्थमपश्चिमा, मरण-सर्वायुष्कक्षयलक्षण मविक्षणजायमानाऽऽवीचीमरणाग्रहणात्, तदेवान्तः-मरणान्तः, तत्र भवा मारणान्तिकी, संलिख्यते-कृशीक्रियते शरीरकषायादि यया सा संलेखना-तपोविशेषलक्षणा, अपश्चिममारणान्तिकसंलेखना, तस्या जोषणा-सेवना अपश्चिममारणान्तिक-संलेखना जोषणा, तया जोषितः-सेवितः स तथा-अपश्चिममारणान्तिकसंलेखनाख्येन तपसा क्षीणीकृतदेह

भावग्रन्थि से रहित होता है वही तपस्वी निग्रन्थ होता है, ऐसा वह तपस्वी निर्ग्रन्थ मुनि सर्वतः कर्मक्षय करने वाला होता है इसीलिये वह आत्यन्तिकरूप से भव का अन्त करने वाला होता है अर्थात्-उसी भव में मोक्षगामी होता है वे तीन स्थान इस प्रकार से हैं-" कयाई अहं-" इत्यादि, मैं कब थोडे़ या बहुत श्रुत का अध्ययन करूंगा १ कब मैं एकाकी विहार प्रतिमा को प्राप्त कर विहार करूंगा २ और कब मैं सर्वान्तिम मारणान्तिक संलेखना से सेवित होता हुआ भक्तपान के प्रत्याख्यान से मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ पादपोपगमन संथारा को धारण करूंगा ३ इस प्रकार से अपने मन से अपने वचन से और अपने काय से विचार करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरावाल होकर महापर्यवसान होता है, इन तीन स्थानों द्वारा श्रमणोपासका महानिर्जे

ભાવગ્રંથિથી રહિત હોય છે, તેને જ તપસ્વી નિગ્રન્થ કહેવાય છે એવો તે તપસ્વી નિગ્રંથ સર્વ પ્રકારે કર્મક્ષય કરનારો હોય છે, તેથી તે આત્યતિક રૂપે ભવનો ક્ષય કરનારો-એટલે કે એ જ ભવમાંથી મોક્ષગમન કરનારો હોય છે તે ત્રણ સ્થાન (કારણો) નીચે પ્રમાણે છે-' कयाइ अहं ' ઇત્યાદિ-

" (૧) ક્યારે હું થોડા અથવા વધારે શ્રુતનું અધ્યયન કરનારો બનીશ ? (૨) ક્યારે હું એકાકી વિહાર પ્રતિમાને પ્રાપ્ત કરીને વિચરીશ ? ક્યારે હું સર્વાન્તિમ મારણાન્તિક સંલેખનાનું સેવન કરીને ભક્તપાનના પ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક મૃત્યુની આકાંક્ષા કર્યા વિના પાદપોપગમન સંથારો ધારણ કરીશ ? ' આ પ્રકારની મન વચન અને કાયાથી ભાવના ભાવતો શ્રમણ નિર્ગ્રંથ મહા નિર્જરાવાળો થઈને મહાપર્યવસાનવાળો થાય છે

इत्यर्थः, तथा भक्तपानप्रत्याख्यातः–भक्तं च पानं चेति भक्तपाने, ते प्रत्याख्यायेते येन स तथा–(क्तान्तस्य परनिपात) अनशनकारीत्यर्थः पादपोपगतः–पादपोपगमनसंस्तारकं प्राप्त: कालं–मृत्युम् अनवकाङ्क्षन्–अनशनकष्टेन–मरणमनिच्छन् कदाहं विहरिष्यामीति । एवं–अनेन प्रकारेण 'समणसा' इति स्वमनसा

रावाला होकर महापर्यवसानवाला होता है,। अर्थात् संसार का अंत करनेवाला होता है। वे तीन स्थान इस प्रकार से हैं–कब मैं थोडे, बहुत परिग्रह का परित्याग करूंगा १ कब मैं मुण्डित होकर अगारावस्था से अनगाराऽवस्था प्राप्त करूंगा २ तथा–कब मैं अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना के सेवन से सेवित हुवा भक्तपान के प्रत्याख्यान से काल–मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुवा पादपोपगमन को धारण करूंगा ३ इस प्रकार से अपने मन, अपने वचन, और अपने काय से प्रकट करता हुवा श्रमणोपासक महानिर्जरावाला होकर महापर्यवसानवाला होता है यहां जो–" अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना जोषणाजोषितषः–" ऐसा पद कहा है, उसका तात्पर्य इस प्रकार से है –जिसका पश्चिम नहीं वह अपश्चिम है, अर्थात्–जो सर्वान्तिम है वह अपश्चिम है, क्यों कि संलेखना मरण के अन्त में ही धारण की जाती है, अथवा यह अमङ्गल परिहार के लिये की जाती है इसलिये यह पश्चिम होकर भी अपश्चिम है प्रतिक्षण जायमान अवीचि मरण के अग्रहण से यहां मरण शब्द से सर्वायुष्क क्षयरूप मरण ही गृहीत हुवा है यह मरण ही मरणान्त है इस मरणान्त में जो होती है वह

હવે શ્રમણોપાસકની અપેક્ષાએ ત્રણ સ્થાનોની પ્રરૂપણા કરવામા આવે છે.
(૧) ક્યારે હુ થોડા કે વધારે પરિગ્રહનો ત્યાગ કરનારો બનીશ ? (૨) ક્યારે હુ મુડિત થઇને ગૃહસ્થાવસ્થાના પરિત્યાગપૂર્વક અણુગારાવસ્થા અંગીકાર કરીશ ? (૩) તથા ક્યારે હુ અપશ્ચિમ મારણાન્તિક સંલેખનાની આરાધના કરવાને તત્પર થઇને, આહારપાણીના પ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક, મૃત્યુની આકાક્ષા નહીં રાખતો થકો, પાદપોપગમન સંથારો ધારણ કરીશ ?" આ પ્રકારની ભાવના પોતાના મન, વચન અને કાયાથી પ્રકટ કરતો થકો શ્રમણોપાસક મહાનિર્જરાવાળો થઇને મહ પર્યવસાનવાળો થાય છે. અહીં જે " अपश्चिममारणान्तिक संलेखना जोषणाजोषित " આ સૂત્રપાઠ આપ્યો છે. તેનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે–જેના કરતા અન્ય કોઈ અન્તિમ હોય નહીં તેને અપશ્ચિમ કહે છે. એટલે કે સર્વાન્તિમને અપશ્ચિમ કહે છે, કારણ કે સલેખના મરણના અતે જ (અન્તકાળે જ) ધારણ કરવામા આવે છે, અથવા તે અમગલ પરિહાર નિમિત્તે જ કરવામા આવે છે, તેથી તે પશ્ચિમરૂપ હોવા છતાં પણ અપશ્ચિમ જ છે પ્રતિક્ષણ જાયમાન આવીચી મરણના અગ્રહણથી અહીં મરણ શબ્દ દ્વારા સર્વાયુષ્ક ક્ષયરૂપ મરણ જ ગૃહીત થયેલ છે, આ મરણને જ મરણાન્ત કહે છે. આ મરણાન્તમા જે આરાધિત થાય છે તેને મારણાન્તિકી કહે છે. જેના દ્વારા

मारणान्तिकी है जिसके द्वारा शरीर और कषाय आदि कृश किये जाते हैं वह सलेखना है यह सलेखना विशिष्ट तपोरूप होती है इस सलेखना का जो प्रीति पूर्वक सेवन किया जाता है वह अपश्चिम मारणांतिक सलेखना जोषणा है, इस जोषणा से जो सेवित होता है वह "अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना जोषणा जोषित" है अर्थात्-इस अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना नामके तप से जिसका देह क्षीण हो गया है ऐसा तपस्वी मुनि श्रमण निर्ग्रन्थ ही "अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना जोषणा जोषित–" पदवाला होता है इसका अर्थ "अनशनकारी" ऐसा है "पादपोपगतः" का तात्पर्य पादपोपगमन सस्तारक को प्राप्त हुवे सो है "काले अनवकाङ्क्षन्" 'मृत्यु की इच्छा किये विना' यह पद यह कहता है कि – जिसने सथारा धारण किया है वह अनशनकारी होकर अनशन के कष्ट से मरण की चाहना करे इस प्रकार से अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना जोषणा से जुषित होने का जो वह विचार करता है सो उस विचारमें किसी अन्य की प्रेरणा नहीं होनी चाहिये, यही बात "स्वमनसा"

શરીર અને કષાય આદિને કૃશ (દુખ સ) કરવામાં આવે છે તેનુ નામ સલેખના છે આ સલેખના વિશિષ્ટ તપોરૂપ હોય છે આ સંલેખનાનુ જે પ્રીતિપૂર્વક સેવન કરવામાં આવે છે તેને "અપશ્ચિમ મારણાન્તિક સલેખના જોષણા" કહે છે અથવા આ અપશ્ચિમ મારણાન્તિક સંલેખના નામના તપથી જેનો દેહ ક્ષીણ થઈ ગયો છે, એવો 'તપસ્વી શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ' "અપશ્ચિમ મારણાન્તિક સંલેખના જોષણા જોષિત" વિશેષણવાળો હોય છે તેનો "અનશનકારી" એવો અર્થ થાય છે 'પાદપોપગત" આ પદનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

પાદપોપગમન સથારો જેણે ધારણ કર્યો છે એવા જીવને "પાદપોપગત" કહે છે 'કાલ અનવકાઙ્ક્ષન્" આ પદનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે–જેણે સંલેખના ધારણ કરેલી છે એવા અનશનકારી જીવે અનશનના કષ્ટથી મુક્ત થવાને મરણની ઇચ્છા કરવી જોઇએ નહીં આ પ્રકારનો અપશ્ચિમ મારણાન્તિક સલેખના જોષણાથી જુષિત થવાનો જે વિચાર તેના દ્વારા કરાય છે તે વિચારમાં અન્ય કોઈની પ્રેરણા હોવી જોઇએ નહીં, એ જ વાતનું "સ્વમનસા'

स्ववचसा स्वकायेन तत्त्वन्यजनप्रेरणया प्रचारयन्-पर्यालोचयन् श्रमणो निर्ग्रन्थो महानिर्जरो महापर्यवसानो भवतीति ।१॥ अथ श्रावकविषयं सूत्रमाह—'तीहिं' इत्यादि, त्रिभिः स्थानैः श्रमणोपासको महानिर्जरो महापर्यवसानो भवति । तान्येवस्थानान्याह-' कयाणं ' इत्यादि, कदा खलु अहम् अल्पं वा बहुं वा परिग्रहं, परिगृह्यते-आदीयतेऽस्मादिति, परिग्रहणं वा परिग्रहः-धनधान्यद्विपद-चतुष्पदादि संग्रहः, तं परित्यक्ष्यामि-पृथक्करिष्यामि ।१। अन्यत् स्थानद्वयं सुगमम् ।सू०७७॥

अनन्तरं कर्मनिर्जरा प्रोक्ता, कर्माणि च पुद्गलरूपाणीति पुद्गलानां परिणामविशेषमभिधित्सुराह—

मूलम्—तिविहे पोग्गलपडिघाए पण्णत्ते, तं जहा-परमाणु पोग्गले परमाणुपोग्गलं पप्प पडिहन्निज्जा, लुक्खत्ताए वा पडिहन्निज्जा, लोगंते वा पडिहन्निज्जा ॥ सू० ७८ ॥

आदि पदों द्वारा समर्थित की गई है इस प्रकार की विचार धारा का यह परिणाम निकलता है कि वह विचार महती निर्जरा का अधिपति बनकर तद्भव सिद्धिगामी होता है इस प्रकार का भाव प्रथमसूत्र का है। इसी तरह से जो श्रमणोपासक श्रावक होता है वह भी जब पूर्वोक्त तीन कारणों वाला होता है, अर्थात्-वह ऐसा विचारता है कि मेरे जीवन में ऐसा वह समय कब आयेगा जब कि मैं थोडे बहुत रूप में परिग्रह का धनधान्य द्विपदचतुष्पद आदि का परित्याग कर दूंगा, इत्यादि, इस प्रकार की विचारधारा श्रमणोपासक श्रावक महानिर्जरा का पात्र बनकर महापर्यवसानवाला होता है ॥ सू०७७ ॥

"પોતાના મન, વચન અને કાયાથી" આ પદોના પ્રયોગ દ્વારા સમર્થન કરવામા આવ્યુ છે. આ પ્રકારની વિચારધારાનુ એ પરિણામ આવે છે કે આ વિચાર મહતી નિર્જરાનો અધિપતિ બનીને જીવને તદ્ભવ-સિદ્ધિગામી કરે છે, આ પ્રકારનો ભાવ પ્રથમ સૂત્રનો છે એ જ પ્રમાણે જે શ્રમણોપાસક શ્રાવક હોય છે, એવો જીવ પણ પૂર્વોક્ત ત્રણ કારણોને લીધે એ જ ભવમાથી મોક્ષગામી થાય છે-એટલે કે તે એવો વિચાર છે કરે કે મારા જીવનમાં એવો અવસર કયારે આવશે કે જ્યારે હુ પણ અલ્પ કે અધિકરૂપે પરિગ્રહનો ધન, ધાન્ય, દ્વિપદ, ચતુષ્પદ આદિનો પરિત્યાગ કરી નાખીશ. ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત વિચારધારાવાળો શ્રમણોપાસક શ્રાવક મહાનિર્જરાને પાત્ર બનીને મહાપર્યવસાનવાળો થાય છે ॥ સૂ ૭૭ ॥

तिविहे चक्खू पण्णत्ते त जहा–एगचक्खू बिचक्खू तिचक्खू छउमत्थे ण मणुस्से एगचक्खू , देव बिचक्खू , तहारूवे समणे वा माहणे वा उप्पन्ननाणदसणधरे से ण तिचक्खूत्ति वत्तव्व सिया॥ सू० ७९ ॥

तिविहे अभिसमागमे पण्णत्ते, त जहा–उड्ढ अह तिरिय। जया ण तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा आइसेसे नाण दसणे समुप्पज्जइ से णं तप्पढमयाए उड्ढ अभिसमेइ, तओ तिरिय, तओ पच्छा अहे अहोलोगे ण दुरभिगमे पण्णत्ते समणाउसो ॥सू० ८० ॥

छाया—त्रिविध पुद्गलप्रतिघात प्रज्ञप्तः, तद्यथा–परमाणुपुद्गलः, परमाणु पुद्गल प्राप्य प्रतिहन्यते रूक्षतया वा प्रतिहन्यते, लोकान्ते वा प्रतिहन्यते । ॥ सू० ७८ ॥

त्रिविधचक्षुः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–एकचक्षुः, द्विचक्षुः, त्रिचक्षुः । छद्मस्थः खलु मनुष्य एकचक्षुः, देवो द्विचक्षुः, तथारूपः श्रमणो वा माहनो वा उत्पन्नज्ञान दर्शनधरः, स खलु त्रिचक्षुरिति वक्तव्य स्यात् ॥ सू० ७९ ॥

इस प्रकार से कर्मनिर्जरा होने का कथन किया ये कर्म पुद्गलरूप होते हैं इसलिये अब सूत्रकार पुद्गलों के परिणाम विशेष का कथन करने की इच्छा से कहते हैं–" तिविहे पोग्गलपडिघाए पण्णत्ते–" इत्यादि, पुद्गल प्रतिघात तीन प्रकार का कहा गया है, जैसे–परमाणुपुद्गल, परमाणुपुद्गल को प्राप्त करके प्रतिघातवाला होता है रूक्षता से वह प्रतिघात वाला होता है लोकान्त में वह प्रतिघात वाला होता है ॥सू ७८॥

આ પ્રમાણે કર્મનિર્જરાનું કથન પૂરૂં થયું તે કર્મ પુદ્ગલરૂપ હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર પુદ્ગલોના પરિણામ વિશેષનું કથન કરવા નિમિત્તે નીચેના સૂત્રનું કથન કરે છે– તિવિહે પોગ્ગલપડિઘાએ પણ્ણત્તે " ઇત્યાદિ—

પુદ્ગલ પ્રતિઘાત ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧) પરમાણુ પુદ્ગલ, પરમાણુ પુદ્ગલને પ્રાપ્ત કરીને પ્રતિઘાતવાળું થાય છે (૨) રૂક્ષતાને લીધે તે પ્રતિઘાત વાળું થાય છે અને (૩) લોકાન્તમાં તે પ્રતિઘાતવાળું થાય છે ॥ સૂ ૭૮ ॥

त्रिविधः अभिसमागमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-ऊर्ध्वम्, अधः, तिर्यक्, यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अतिशेपे ज्ञानदर्शने समुत्पद्येते स खलु तत्प्रथमतायां ऊर्ध्वमभिसमेति, ततस्तिर्यक्, ततः पश्चाद् अधः अधोलोकः खलु दुरभिगमः प्रज्ञप्तः श्रमणायुष्मन् ! सू० ८० ॥

टीका—'तिविहे पोग्गल०' इत्यादि । पुद्गलानाम्-अण्वादीनां प्रतिघातः-गतिस्खलनं पुद्गलप्रतिघातः, स त्रिविधस्तथाहि-परमाणुभ्वासौ पुद्गलश्च पर-

---

चक्षुवाला तीन प्रकार का कहा गया है, एक चक्षुवाला १ दो चक्षुओंवाला २ तीन चक्षुओंवाला ३ । उनमें छद्मस्थ मनुष्य एक चक्षुवाला कहा गया है-१ देव द्विचक्षुवाला कहा गया है-२ तथा उत्पन्न ज्ञान दर्शन धारी श्रमण, अथवा-माहन तीन चक्षुवाला कहा गया है ॥ सू. ७९ ॥

अभिसमागम तीन प्रकार का कहा गया है, एक ऊर्ध्वाभिसमागम १ दूसरा-अधोऽभिसमागम २ और तीसरा-तिर्यगभिसमागम-३ जिस समय तथारूपवाले श्रमण को, या-माहन को अतिशय ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं वह तत्प्रथमता में उर्ध्वलोक के पदार्थों का परिच्छेद करता है, उसके बाद तिर्यग्लोक के पदार्थों का परिच्छेद करता है, बाद में अधोलोक के पदार्थों का परिच्छेद करता है, हे श्रमणायुष्मन् ! अधोलोक दुरभिगम कहा गया है ॥ सू ८० ॥

टीकार्थ-इन तीन सूत्रों का तात्पर्य ऐसा है, अणुआदिकोंकी गतिका जो स्खलन होता है वह पुद्गलप्रतिघात है, ऐसा यह पुद्गलप्रतिघात तीन

ચક્ષુવાળાના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) એક ચક્ષુવાળો, (૨) બે ચક્ષુવાળો અને (૩) ત્રણ ચક્ષુવાળો છદ્મસ્થ મનુષ્યને એક ચક્ષુવાળો કહ્યો છે, દેવોને બે ચક્ષુવાળા કહ્યા છે અને ઉત્પન્નજ્ઞાનદર્શનધારી શ્રમણ અથવા માહનને ત્રણ ચક્ષુવાળા કહ્યા છે. ॥ સૂ. ૭૯ ॥

અભિસમાગમ ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧) ઊર્ધ્વાભિસમાગમ, (૨) અધો અભિસમાગમ અને (૩) તિર્યગભિસમાગમ જ્યારે તથારૂપ (શાસ્ત્રોક્ત નિયમોનું પાલન કરનારા) શ્રમણ કે માહનને અતિશય જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થાય છે, ત્યારે પ્રથમ તો તે ઊર્ધ્વલોકના પદાર્થોનો પરિચ્છેદ કરે છે, ત્યારબાદ તિર્યગ્લોકના પદાર્થોનો પરિચ્છેદ કરે છે અને ત્યારબાદ અધોલોકના પદાર્થોનો પરિચ્છેદ કરે છે. હે શ્રમણાયુષ્મન્ ! અધોલોકને દુરભિગમ્ય કહ્યો છે ॥ સૂ. ૮૦ ॥

ટીકાર્થ-૭૮ થી ૮૦ સુધીના સૂત્રોનો ભાવાર્થ હવે પ્રકટ કરવામા આવે છે—પરમાણુ આદિકોની ગતિનું જે સ્ખલન (રુકાવટ) થાય છે, તેનુ નામ પુદ્ગલ પ્રતિઘાત છે એવા તે પુદ્ગલ પ્રતિઘાતને ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે...

माणुपुद्गल, सोऽयं परमाणुपुद्गलं प्राप्य प्रतिहन्यते-प्रतिस्खलति-गतेः प्रतिघातमापद्यते इत्यर्थः, रूक्षतया-स्नेहाभावेन तथाविधपरिणामान्तराद् गतिप्रतिघातो भवति लोकान्ते वा गत्वा प्रतिहन्यते तत्र गतिसहायकधर्मास्तिकायस्याभावादिति ॥ सू० ७८ ॥

पुद्गलप्रतिघातञ्च सचक्षुरेव जानातीति तदाह-' तिविहे चक्खू ' इत्यादि

प्रकार का कहा गया है। प्रथम प्रकार में परमाणुरूप पुद्गल अन्यपरमाणुरूप पुद्गल को प्राप्त करके गतिक्रियाके प्रतिघातको प्राप्त करताहै, अर्थात् रुकजाताहै द्वितीय प्रकारमें स्नेहके अभावसे वह तथाविध परिणामान्तर को लेकर गतिक्रियाके प्रतिघातको प्राप्त करताहै, तृतीय प्रकार में लोकान्त में आकर वह गतिक्रिया में सहायक धर्मास्ति के अभाव से गतिक्रिया के प्रतिघात को प्राप्त करता है एक पुद्गल परमाणु जब द्वितीय पुद्गल परमाणु के साथ टकराता है तब वह वहीं रुक जाता है आगे नहीं जाता है, गतिक्रिया में सहायक स्नेह गुण भी होता है-जब परमाणु स्नेहगुण से रहित होता है तब वह खुरदरा होने के कारण गतिक्रिया का प्रतिघातवाला हो जाता है, अर्थात् गतिक्रिया नहीं कर पाता है लोक के अन्त मे आकर वह आगे अलोक में जो नहीं जा पाता है उसका कारण आगे गतिसहायक धर्मद्रव्य का अभाव है, ७८

पुद्गलप्रतिघात को सचक्षु ही जानता है, अतः-अब चक्षु के विषय

પરમાણુ રૂપ પુદ્‌ગલ અન્ય પરમાણુ રૂપ પુદ્‌ગલને પ્રાપ્ત કરીને ગતિક્રિયાનો પ્રતિઘાત પ્રાપ્ત કરે છે બીજો પ્રકાર-સ્નેહના અભાવે કરીને (રૂક્ષતાના સદ્‌ભાવે કરીને) તે તથાવિધ પરિણામાન્તરની અપેક્ષાએ ગતિક્રિયાનો પ્રતિઘાત પ્રાપ્ત કરે છે ત્રીજો પ્રકાર-લોકાન્તમાં જઈને ગતિક્રિયામાં સહાયક એવા ધર્માસ્તિકાયને અભાવે તે ગતિક્રિયાના પ્રતિઘાતને પ્રાપ્ત કરે છે એક પુદ્‌ગલ પરમાણુ જ્યારે બીજા પુદ્‌ગલ પરમાણુ સાથે અથડાય છે, ત્યારે તે ત્યાં જ અટકી જાય છે-આગળ જતું નથી. સ્નેહ ગુણ (સ્નિગ્ધતા) પણ ગતિક્રિયામાં સહાયક બને છે જ્યારે પરમાણુ સ્નેહગુણથી રહિત બને છે ત્યારે તે ખરબચડું થઈ જવાને કારણે ગતિક્રિયા કરી શકતું નથી એટલે કે રૂક્ષતાને કારણે પરમાણુની ગતિ અટકી જાય છે લોકના અન્ત ભાગ સુધી પહોંચીને તે અલોકમાં ગતિ કરી શકતું નથી, કારણ કે ગતિમાં સહાયભૂત બનનારા ધર્માસ્તિકાયનો ત્યાં અભાવ હોય છે આ રીતે ૭૮ માં પ્રતિઘાત સૂત્રનો ભાવાર્થ સમજાવવામાં આવ્યો.

૭૯ માં સૂત્રનો ભાવાર્થ-પુદ્‌ગલ પ્રતિઘાતને સચક્ષુ જીવ જ જાણી શકે

त्रिविधः चक्षुः, चक्षुरिति द्रव्यतो लोचनं, भावतो ज्ञानं, तद् यस्यास्तीति तद्योगाच्चक्षुरिति चक्षुष्मानित्यर्थ, स च त्रिविधः-चक्षुः संख्याभेदात्। तत्रैकचक्षुः-एकचक्षुष्मान्। एवं द्वि चक्षुरिति द्विचक्षुष्मान्, त्रिचक्षुरिति त्रिचक्षुष्मानिति। तत्र-छादयतीति छद्म-ज्ञानावरणादि, तत्र तिष्ठतीति छद्मस्थः, एतादृशो यद्यपि-अनुत्पन्नकेवलज्ञानः सर्वएवोच्यते तथापीह सातिशयश्रुतज्ञानादिवर्जितो विवक्ष्यते इत्यत एकचक्षुश्चक्षुरिन्द्रियमपेक्ष्य बोद्धव्य। देवो द्विचक्षुः-चक्षुरिन्द्रियावधिज्ञाना-

में सूत्रकार कहते हैं कि-पुद्गलप्रतिघात को जाननेवाला चक्षु चक्षुवाला प्राणी-तीन प्रकार का होता है, एक एक चक्षुवाला दूसरा दो चक्षुओं वाला और तीसरा तीन चक्षुओंवाला। चक्षु द्रव्यचक्षु और भावचक्षु के भेद से दो प्रकार का कहा गया है, द्रव्यचक्षु लोचनरूप होता है, और भावचक्षु ज्ञानरूप होता है, वह चक्षु जिसको होता है वह उसके योग से चक्षु चक्षुवाला कहा गया है। जो ज्ञानादि गुणों का छादन करता है वह छद्म है इस छद्म में जो रहता है वह छद्मस्थ यद्यपि अनुत्पन्न ज्ञान-वाले जितने हैं वे सब ही प्राणी हैं परन्तु ऐसा छद्मस्थ यहां विवक्षित नहीं हुवा है, यहां तो ऐसा ही छद्मस्थ विवक्षित हुवा है जो सातिशय श्रुतज्ञानादि से रहित है इसलिये जिसकी चक्षुरिन्द्रिय है वह एक चक्षुवाला है, तथा-देवों के दो चक्षु होते हैं ऐसा जो कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है कि-देवों को चक्षु इन्द्रिय होती है और अवधिज्ञान

છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ચક્ષુના વિષયનું નિરૂપણ કરે છે. પુદ્ગલ પ્રતિઘાતને જાણનારા ચક્ષુયુક્ત જીવો ત્રણ પ્રકારના છે(૧) એક ચક્ષુવાળા, (૨) બે ચક્ષુ-વાળા અને (૩) ત્રણ ચક્ષુવાળા.

ચક્ષુના આમ તો બે પ્રકાર જ કહ્યા છે-(૧) દ્રવ્યચક્ષુ અને (૨) ભાવ-ચક્ષુ દ્રવ્યચક્ષુ લોચન (નેત્ર) રૂપ હોય છે અને ભાવચક્ષુ જ્ઞાનરૂપ હોય છે. આ ચક્ષુ જેને હોય છે તે તેના યોગથી ચક્ષુવાળો કહેવાય છે જે જ્ઞાનાદિ ગુણોનું છેદન કરનાર હોય છે તેને છદ્મ કહે છે. આ પ્રકારની છદ્મ અવસ્થા-વાળા જીવને છદ્મસ્થ કહે છે. જો કે અનુત્પન્ન જ્ઞાનવાળા જેટલા જીવો છે તેમને છદ્મસ્થ જ કહે છે, પરન્તુ અહીં એવા છદ્મસ્થની વાત કરવામા આવી નથી અહીં તો એવા છદ્મસ્થની વાત કરવામા આવી છે કે જે સાતિશય શ્રુતજ્ઞાનાદિથી રહિત છે તેથી જેને ચક્ષુરિન્દ્રિય (આંખો) નો સદ્ભાવ હોય છે, તેને એક ચક્ષુવાળો કહે છે. ‘દેવોને બે ચક્ષુ હોય છે’ આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-દેવોને ચક્ષુઇન્દ્રિય પણ હોય છે અને તેઓ અવધિ-

भ्याम्। त्रिचक्षुष-उत्पन्नज्ञानदर्शनधर, तत्र उत्पन्नम्-आवरणक्षयोपशमेन प्रकटी भूत ज्ञान-श्रुतावधिरूप, दर्शनम्-अवधिदर्शनरूप धारयति यहतीति तथा, एता दृशो यः श्रमणो वा माहनो वा भवति स खलु त्रिचक्षुः चक्षुरिन्द्रिय-परमश्रुत-परमावधिमत्त्वात् इति-पूर्वोक्तप्रकारेण वक्तव्य कथनीयं स्यात्। अयं हि हेयोपादेयानि समस्तवस्तूनि साक्षादिवावलोकयतीति त्रिचक्षुष्मत्त्वमस्य विवक्षितम्। ननु केवलिनश्चक्षुरिन्द्रिय-केवलज्ञान-केवलदर्शन वत्त्वात्त्रिचक्षुष्मत्त्वेनापि स किं न विवक्षित? इत्यत्राह-चक्षुरिन्द्रियलक्षणचक्षुष उपयोगाभावेन तस्य चक्षुरिन्द्रिया विवक्षणात्, द्रव्येन्द्रियापेक्षया तु सोऽपि न विरुध्यत इति॥ सू० ७१॥

होता है, तथा-जिनको आवरण के क्षयोपशम से श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और अवधिदर्शन ये प्रकट हो चुके हैं ऐसा जो श्रमण अथवा माहन है वह तीन चक्षुवाला कहा गया है क्यों कि-वह चक्षुरिन्द्रिय परमश्रुत और परमावधिवाला है। त्रिचक्षुवाला जीव हेय और उपादेयरूप समस्त वस्तुओं को साक्षात्-हुई की तरह देखता है यदि यहां पर ऐसी आशङ्का की जावे कि-यहा केवली भी त्रिचक्षुवालों के रूप में गृहीत होना चाहिये। क्यों कि उनके पास भी चक्षुरिन्द्रिय केवलज्ञान और केवलदर्शन रहता है, अर्थात्-केवली द्रव्येन्द्रियरूप चक्षु से तथा भावेन्द्रियरूप केवलज्ञान, और केवलदर्शन से सम्पन्न होते हैं तब इन्हें क्यों नहीं त्रिचक्षुष्मान् के रूप में गृहीत किया गया है? तो इसका उत्तर ऐसा है कि-उन्हें चक्षुरिन्द्रियवाला इसलिये नहीं कहा गया है कि-उनमें चक्षुरिन्द्रिय जन्य उपयोग का अभाव रहता है द्रव्येन्द्रिय की

જ્ઞાન સંપન્ન પણ હોય છે તથા જેમને આવરણના ક્ષયોપશમથી શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન અને અવધિદર્શન પ્રકટ થઈ ચુકયા હોય છે એવા શ્રમણ અથવા માહનને ત્રણ ચક્ષુવાળો કહ્યો છે, કારણ કે તે ચક્ષુરિન્દ્રિય પરમશ્રુત અને પરમાવધિવાળો હોય છે ત્રિચક્ષુવાળો જીવ હોય અને ઉપાદેયરૂપ સમસ્ત વસ્તુઓને સામે જ હોય એવી રીતે (પ્રત્યક્ષની જેમ) જોઈ શકે છે

પ્રશ્ન—કેવલીનો પણ ત્રણ ચક્ષુવાળામાં સમાવેશ થવો જોઈએ કારણ કે તેમની પાસે પણ ચક્ષુરિન્દ્રિય, કેવળજ્ઞાન અને કેવળ દર્શનનો સદ્ભાવ હોય છે એટલે કે કેવલી દ્રવ્યેન્દ્રિયરૂપ ચક્ષુ વડે અને ભાવેન્દ્રિયરૂપ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શનથી સંપન્ન હોય છે તો પછી ત્રણ ચક્ષુવાળા જીવોમાં તેમને કેમ ગણ્યા નથી?

ઉત્તર—કેવલીને ચક્ષુરિન્દ્રિયવાળા નહીં કહેવાનું કારણ એ છે કે તેમ

पूर्वं चक्षुष्मान् प्रोक्तः, तस्य चाभिसमागम इति वस्तुपरिच्छेदो भवतीति तं दिग्भेदेन विभजते-'तिविहे अभिसमागमे' इत्यादि। त्रिविधः-त्रिप्रकारः अभिसमागमः, 'अभि' इत्यर्थाभिमुख्येन न तु विपर्यासरूपतया 'सम्' इति सम्यक् न संशयतया, 'आ' इति मर्यादया गमनं ज्ञानं 'ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः' इति वचनात्, अभिसमागमः-पदार्थ-परिच्छेदः। स त्रिविधस्तद्यथा-ऊर्ध्वम्-

विवक्षा से तो वे भी तीन चक्षुष्मानों में गृहीत हो जावें तो इसमें कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार से चक्षुष्मान् का कथन करके अब सूत्रकार उसके अभिसमागम का दिग्भेद को लेकर कथन करते हैं-"तिविहे अभिसमागमे-" इत्यादि। अभिसमागम का अर्थ पदार्थ का परिच्छेद होना है, अर्थात् चक्षुष्मान् को जो पदार्थ का परिच्छेद होता है वह अभिसमागम है, अभिसमागम में "अभि" उपसर्ग है इसका अर्थ है विपर्यास (विपरीतता) से रहित होकर गम (ज्ञान का) होना वह अभिगम है साथ में "सम" और "आ" ये दो उपसर्ग और भी हैं, सो इनका अर्थ ऐसा है कि-जैसा वह ज्ञान विपरीतता रहित होता है उसी प्रकार से उसे "सम" सम्यक् रूप भी होना चाहिये, संशयरूप नहीं। और "आ" यह मर्यादा अर्थ में आया है "गम" यह गत्यर्थक गम् धातु से बना है, सो "ये गत्यर्था स्तेज्ञानार्थाः" इस कथन के अनुसार जो

નામાં ચક્ષુરિન્દ્રિય જન્ય ઉપયોગનો અભાવ રહે છે દ્રવ્યેન્દ્રિયની અપેક્ષાએ તેમને ત્રણ ચક્ષુવાળા કહેવામા આવે, તો એમાં કોઈ વાંધો નથી.

૮૦ મા સૂત્રના ભાવાર્થનું નિરૂપણ—ચક્ષુષ્માનનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર તેમના અભિસમાગમ (વિપરીતતાથી રહિત જ્ઞાન) નું દિગ્ભેદની અપેક્ષાએ કથન કરે છે-" तिविहे अभिसमागमे " ઈત્યાદિ—

અભિસમાગમ એટલે કે પદાર્થનો પરિચ્છેદ થવો તે. અભિસમાગમમાં 'અભિ' ઉપસર્ગ છે તેનો અર્થ 'વિપર્યાસ (વિપરીતતા) થી રહિત' થાય છે. અને 'ગમ' એટલે 'જ્ઞાન'. "વિપર્યાસથી રહિત એવા જ્ઞાનને 'અભિગમ' કહે છે" અભિગમ પદની સાથે "સમ" અને "આ" ઉપસર્ગો પણ આવેલા છે તેનો અર્થ આ પ્રમાણે છે-જેમ તે જ્ઞાન વિપરીતતાથી રહિત હોય છે, એ જ પ્રમાણે સમ્યક્રૂપ પણ હોવું જોઈએ-સંશયરૂપ હોવું જોઈએ નહીં "आ" ઉપસર્ગ મર્યાદા અર્થમાં પ્રયુક્ત થયો છે. "ગમ" આ પદ ગત્યર્થક 'गम्' ધાતુમાંથી બન્યુ છે. "ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः" આ

ऊर्ध्वाभिगमः, अध -अधोऽभिगमः, तिर्यक्-तिर्यगभिगम । अत्रैव ज्ञानभेद कथ यत्ति-' जया ण ' मित्यादि, यदा खलु तथारूपस्य तथाप्रकारस्य विशिष्टप्रकारस्य श्रमणस्य-तपस्विनः, वा-अथवा माहनस्य-हिंसादिनिवृत्तस्य अतिशेषे-शेषाणि-छद्मस्थज्ञानानि, तान्यतिक्रान्ते अतिशेषे तथाविधे रूपे समाख्येते, ते समुत्पद्येते, स खलु तत्प्रथमतायां केवलस्य न क्रमेणोपयोगो यत तत्प्रथमतये-त्यायुक्तमनवद्यस्यादिति, तस्य-ज्ञानादेरुत्पादस्य प्रथमता तस्याः तत्प्रथमसमय इत्यर्थ ऊर्ध्वम्-ऊर्ध्वलोकमभिसमेति-तत्रत्य पदार्थपरिच्छेदं करोति, तत -तत्पश्चात् तिर्यक्-तिर्यग्लोक, ततः पश्चाद् अधः-अध इत्यधोलोकमभिसमेति । अधोलोक

धातु गत्यर्थक होते हैं वे ज्ञानार्थक भी होते हैं, अत -विपयय और सशय दोष से रहित होकर जो ज्ञान मर्यादा के अनुसार होता है वह अभिसमागम है ऐसा इसका निष्कर्ष अर्थ है । यह अभिसमागम तीन प्रकार का कहा गया है जो इस प्रकार से है-एक ऊर्ध्वाभिसमागम, दूसरा अधोऽभिसमागम, और तीसरा तिर्यगभिसमागम, जब तथा प्रकार के विशिष्ट प्रकार के श्रमण के, अथवा माहन के हिंसादि क्रिया से निरस्त हुये के-अतिशेष छद्मस्थ के ज्ञानों को अतिक्रम करने वाले ऐसे ज्ञानदर्शन-समावना से परमावधिरूप ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं तब यह उनके ज्ञानादिकों के उत्पाद के प्रथम समय में ऊर्ध्वलोक का ऊर्ध्वलोक गतपदार्थों का परिच्छेद करता है बाद में तिर्यग्लोकगतपदार्थों का परिच्छेद करता है बाद में अधोलोकगतपदार्थों का परिच्छेद (निर्णय) करता है हे श्रमणायुष्मन् ? अधोलोक दुरभिगम कहा गया है । "ज्ञानद

કથન અનુસાર જે ધાતુ ગત્યર્થક હોય છે તે જ્ઞાનાર્થક પણ હોય છે તેથી ' વિપર્યય (વિપરીતતા) અને સંશય દોષથી રહિત એવું જે જ્ઞાન મર્યાદાનુસાર થાય છે તેને અભિસમાગમ કહે છે " આ પ્રકારનો તેનો અર્થ ફલિત થાય છે આ અભિસમાગમના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) ઊર્ધ્વાભિસમાગમ, (૨) અધો અભિસમાગમ અને (૩) તિર્યગ્‌અભિસમાગમ જ્યારે તથારૂપ (વિશિષ્ટ પ્રકારના) કોઇ શ્રમણને અથવા માહનને-હિંસાદિ ક્રિયાથી નિરત થયેલા શ્રમણ કે માહનને અતિશેષ-છદ્મસ્થના જ્ઞાનોને અતિક્રમ કરનારું એવું જ્ઞાનદર્શન સમાવનાની અપેક્ષાએ પરમાવધિરૂપ જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થાય છે, ત્યારે તે તેમના (જ્ઞાનાદિના) ઉત્પત્તિના પ્રથમ સમયમાં ઊર્ધ્વલોક ગત પદાર્થોનો પરિચ્છેદ કરે છે ત્યારબાદ તિર્યગ્લોક ગત પદાર્થોનો પરિચ્છેદ કરે છે અને ત્યારબાદ અધોલોક ગત પદાર્થોનો પરિચ્છેદ કરે છે " હે શ્રમણાયુષ્મન્ !

खलु दुरभिगमः प्रज्ञप्तः, एवं च सामर्थ्यात्प्राप्तं क्रमेण पर्यन्ताभिगम्यत्वात्, हे श्रमणायुष्मन् ! शिष्यामन्त्रणमेतदिति ॥ सू० ८० ॥

पूर्वमभिसमागमः प्रोक्तः, स च ज्ञानमेव ज्ञानं च ऋद्धिरूपमिति सभेदाम् ऋद्धिं प्ररूपयन् सप्तसूत्रीमाह—

मूलम्—तिविहा इड्ढी पण्णत्ता, तं जहा-देवड्ढी रायड्ढी गणिड्ढी ।१। देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-विमाणिड्ढी विउव्वणिड्ढी परियारणिड्ढी ।२। अहवा देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-सचित्ता अचित्ता मीसिया ।३। राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-रन्नो अइयाणिड्ढी, रन्नो निज्जाणिड्ढी, रण्णो बलवाहणकोसकोट्ठागारिड्ढी । ४ । अहवा राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-सचित्ता अचित्ता मीसिया ।५। गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-णाणड्ढी दंसणिड्ढी चरित्तिड्ढी । ६ । अहवा गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-सचित्ता अचित्ता मीसिया॥७॥सू०८१॥

र्शन" पद से यहां केवलज्ञान केवलदर्शन इन दो का ग्रहण नहीं हुवा है, क्यों कि–"तत्प्रथमतायां" इत्यादिरूप जो कथन है उससे यही सिद्ध होता है कि केवलज्ञान तथा केवलदर्शन के होने पर आत्मा में इस प्रकार से उपयोग क्रमता नहीं होती है कि पहले वह उर्ध्वलोक के पदार्थों को जाने–बाद में तिर्यग्लोक के पदार्थों को जाने और फिर बाद में अधोलोकगत पदार्थों को जाने, कारण कि उनसे युगपत् त्रिकालगत तीन लोकगत पदार्थों का बोध होता है ॥ सू ८० ॥

અધોલોક દુરભિગમ કહેલ છે " 'ज्ञानदर्शन' પદથી અહીં કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન ગ્રહણ કરાયેલ નથી, કારણ કે "तत्प्रथमतायां" ઇત્યાદિ—રૂપ જે કથન છે તેના દ્વારા એજ સિદ્ધ થાય છે કે કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન ઉત્પન્ન થાય ત્યારે આત્મામાં આ પ્રકારે ઉપયોગક્રમતા હોતી નથી. એટલે કે પહેલાં ઊર્ધ્વલોકના પદાર્થોને જાણે, ત્યારબાદ તિર્યગ્લોકના પદાર્થોને જાણે અને ત્યારબાદ અધોલોકના પદાર્થોને જાણે, એવું બનતું નથી. પરન્તુ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન સંપન્ન જીવ તો ત્રણે કાળગત અને ત્રણે લોકગત પદાર્થોને એક સાથે જાણી શકે છે અને દેખી શકે છે. ॥ સૂ. ૮૦ ॥

छाया—त्रिविधा ऋद्धिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—देवर्द्धिः, राजर्द्धिः, गणिऋद्धिः । १ । देवर्द्धिस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–विमानर्द्धिः, विकुर्वणर्द्धिः, परिचारणर्द्धिः । २ । अथवा देवर्द्धिस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–सचित्ता, अचित्ता मिश्रिता । ३ । राजर्द्धिस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–राज्ञोऽतियानर्द्धि, राज्ञो निर्याणर्द्धिः, राज्ञो बलवाहनकोपकोष्ठागारर्द्धिः । ४ । अथवा राजर्द्धिस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता–तद्यथा–सचित्ता अचित्ता मिश्रिता । ५ । गणिऋद्धिस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–ज्ञानर्द्धिः, दर्शनर्द्धिः, चारित्रर्द्धिः । ६ । अथवा गणिऋद्धिस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा — सचित्ता, अचित्ता मिश्रिता । ७ । सू० ८१ ॥

इस प्रकारसे अभिसमागमके सम्बन्धमें कथन किया यह अभिसमागम ज्ञानरूप ही होता है, और ज्ञान ऋद्धिरूप होता है, अतः अब सूत्रकार सभेद ऋद्धि की प्ररूपणा सात सूत्रों द्वारा करते हैं "तिविहा इड्ढी पण्णत्ता" इत्यादि ।

सूत्रार्थ — ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है जैसे–देवर्द्धि राजर्द्धि और गणिऋद्धि, इनमें भी जो देवर्द्धि है वह भी तीन प्रकार की कही गई है, जैसे–विमानर्द्धि विकुर्वणर्द्धि, और परिचारणर्द्धि, अथवा–इस तरहसे भी देवऋद्धि के तीन भेद हैं, सचित्त–अचित्त और मिश्रित २ राजर्द्धि के भी तीन भेद कहे गये हैं, जैसे–राजा की अतियानर्द्धि राजा की निर्याणर्द्धि, राजा की बलवाहन कोप कोष्ठागारर्द्धि ४ अथवा इस प्रकार से राजर्द्धि के तीन भेद कहे गये हैं, जैसे–सचित्त अचित्त और मिश्रित ५ गणिऋद्धि भी तीन प्रकार की कही गई है, जैसे ज्ञानर्द्धि दर्शनर्द्धि और चारित्रर्द्धि ६ अथवा इस प्रकार से भी

આ પ્રમાણે અભિસમાગમનું નિરૂપણ થયું તે અભિસમાગમ જ્ઞાન રૂપ જ હોય છે અને જ્ઞાન ઋદ્ધિરૂપ હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર સાત સૂત્રો દ્વારા ઋદ્ધિના ભેદોની પ્રરૂપણા કરે છે "तिविहा इड्ढी पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–ઋદ્ધિ ત્રણ પ્રકારની કહી છે–(૧) દેવર્દ્ધિ, રાજર્દ્ધિ અને (૩) ગણિઋદ્ધિ તેમાંની જે દેવર્દ્ધિ છે તેના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર પડે છે–(૧) વિમાનરૂપ ઋદ્ધિ, (૨) વિકુર્વણા ઋદ્ધિ અને (૩) પરિચારણા ઋદ્ધિ

દેવર્દ્ધિના આ પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર પણ પડે છે–(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્રિત.

રાજર્દ્ધિના પણ નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભેદ કહ્યા છે–(૧) રાજાની અતિયાનર્દ્ધિ (૨) રાજાની નિર્યાણર્દ્ધિ (૩) રાજાની બલવાહન કોષ્ઠાગારર્દ્ધિ અથવા રાજર્દ્ધિના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર પણ પડે છે–(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્રિત.

टीका—' तिविहा इड्ढी ' इत्यादि । ऋद्धिः-ऐश्वर्यम्, सा त्रिविधा तथाहि-देवस्य-इन्द्रादेः ऋद्धिः-ऐश्वर्यम् देवर्द्धिः, राज्ञः-चक्रवर्त्यादे ऋद्धिः राजर्द्धिः, गणिनः - गणाधिपतेराचार्यस्य ऋद्धिः-गणिऋद्धिः ।१। तत्र देवर्द्धिस्त्रिविधा, तथाहि-विमानानां विमानविषया वा ऋद्धिः-समृद्धिः विमानर्द्धिः । सा च द्वात्रिंशल्लक्षादिसंख्यारूपा, बाहुल्य-महत्त्वरत्नादिरमणीयत्वरूपा वा । सौधर्मादि देवलोकेषु विमानसंख्या यथा-सौधर्मदेवलोके द्वात्रिंशल्लक्षाणि विमानानि १, ईशानेऽष्टाविंशतिलक्षाणि २, सनत्कुमारे द्वादशलक्षाणि ३, माहेन्द्रेऽष्टलक्षाणि ४,

---

गणिऋद्धि के तीन भेद कहे गये हैं, जैसे-सचित अचित्त और मिश्रित

टीकार्थ-७ इस सूत्रोंका भावार्थ इस प्रकारसे है ऐश्वर्यका नाम ऋद्धि है यह जो तीन प्रकारकी कही गईहै, देवर्द्धि आदिके भेदसे-सो देव इन्द्र आदि की जो ऐश्वर्यरूप ऋद्धि है वह देवर्द्धि है, तथा-चक्रवर्ती आदि राजाओं की जो ऋद्धि है वह राजर्द्धि है, तथा गणी, गणाधिपति आचार्य की जो ऋद्धि है वह गणिऋद्धि १ इनमें जो देवर्द्धि है वह तीन प्रकार की जो कही गई है, उसमें जो विमानों की ऋद्धि है, अथवा विमान विषयक ऋद्धि है समृद्धि है वह विमानर्द्धि है यह विमानर्द्धि ३२ लाख की संख्यादि रूप होती है अथवा बाहुल्यरूप महत्त्वरूप या रत्नादिकों की रमणीयतारूप होती है सौधर्मादि देवलोकों में विमान संख्या इस प्रकार से प्रकट की गई है, सौधर्म देवलोक में ३२, लाख, ईशान देव-

---

ગણિઋદ્ધિ પણ ત્રણ પ્રકારની કહી છે-(૧) જ્ઞાનર્દ્ધિ, (૨) દર્શનર્દ્ધિ અને (૩) ચારિત્રર્દ્ધિ અથવા ગણિઋદ્ધિના આ પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્રિત

ટીકાર્થ-હવે આ સાત સૂત્રોનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે-ઐશ્વર્યનું નામ ઋદ્ધિ છે. તેના દેવર્દ્ધિ આદિ ત્રણ ભેદ કહ્યા છે. ઇન્દ્ર આદિના ઐશ્વર્યરૂપ જે ઋદ્ધિ હોય છે તેને દેવર્દ્ધિ કહે છે ચક્રવર્તી આદિ રાજાઓની જે ઋદ્ધિ હોય છે તેને રાજર્દ્ધિ કહે છે, તથા ગણીગણાધિપતિ-આચાર્યની જે ઋદ્ધિ હોય છે તેને ગણિઋદ્ધિ કહે છે.

હવે દેવર્દ્ધિના ત્રણ પ્રકારોનુ વિવેચન કરવામાં આવે છે-ઇન્દ્રાદિ દેવોની વિમાનોની જે ઋદ્ધિ છે, અથવા વિમાન વિષયક જે સમૃદ્ધિ છે, તેને વિમાનર્દ્ધિ કહે છે તે વિમાનર્દ્ધિ ૩૨ લાખની સખ્યાદિરૂપ હોય છે, અથવા બાહુલ્યરૂપ, મહત્વરૂપ કે રત્નાદિકોની રમણીયતા રૂપ હોય છે સૌધર્મ આદિ દેવલોકમા વિમાનોની સખ્યા આ પ્રમાણે કહી છે-સૌધર્મ દેવલોકમા ૩૨ લાખ, ઈશાન દેવલોકમાં ૨૮ લાખ, સનત્કુમાર દેવલોકમાં ૧૨ લાખ, માહેન્દ્ર દેવલોકમાં ૮

ब्रह्मलोके च चत्वारि लक्षाणि विमानानि सन्ति ५, लान्तके पञ्चाशत्सहस्राणि ६, शुक्रे चत्वारिंशत्सहस्राणि, ७ सहस्रारे षट् सहस्राणि-विमानानि सन्ति ८। आनतप्राणतपार्श्वदेवलोकयोः प्रत्येकं चत्वारि चत्वारि शतानि ९-१०, आरणाच्युतयोस्त्रीणि शतानि विमानानां विद्यन्ते ११-१२। नवग्रैवेयकेष्वधस्तने एकादशोत्तरं शतमेकं, मध्यमे सप्तोत्तरं शतम्, उपरितने चैकं शतं विमानानामस्ति १३। पञ्च चानुत्तरविमानानि सन्ति १४ इत्येवं सर्वाणि चतुरशीतिलक्षाणि सप्तनवति सहस्राणि त्रयोविंशत्यधिकसप्तशतानि च विमानानि भवन्तीति।

उक्तञ्च—" बत्तीस अट्ठवीसा, बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा।
आरेण बंभलोगा, विमाणसंखा भवे एसा ॥१॥
पंचास चत्त छच्चेव सहस्सा लंतसुक्क सहस्सारे।
सयचउरो आणय पाणएसु तिन्नारणच्चुयए ॥२॥
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तर च मज्झिमए।
सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा ॥३॥ इति।

लोक में २८ लाख, सनत्कुमार देवलोक में १२ लाख, महेन्द्र देवलोक में ८ लाख, ब्रह्मलोकदेवलोक में ४ लाख, लान्तकदेवलोक में ५० हजार, शुक्रदेवलोक में ४० हजार, सहस्रार देवलोक में ६ हजार, और आनत प्राणत देवलोक में ४-४ सो, तथा आरण और अच्युत में ३०० तीन सो विमान हैं, नव ग्रैवेयकों में अधस्तन में १११ विमान है, मध्यम ग्रैवेयक में १०७ और उपरितन ग्रैवेयक में १०० विमान हैं, तथा पांच अनुत्तरों में ५ अनुत्तर विमान हैं, इस तरह विमानों की कुल संख्या ८४ लाख ९७ वे हजार ७ सो २३ होती है। कहा भी है-" बत्तीस अट्ठ वीसा " इत्यादि,। देवर्द्धि पद भवन और नगरों का उपलक्षण है, अर्थात्-इस पद से भवन एवं नगररूप ऋद्धि का भी ग्रहण हुआ है।

લાખ, બ્રહ્મલોક દેવલોકમાં ૪ લાખ, લાન્તક દેવલોકમાં ૫૦ હજાર, શુક્ર દેવલોકમાં ૪૦ હજાર, સહસ્રાર દેવલોકમાં ૬ હજાર, આનત-પ્રાણત દેવલોકમાં ૪૦૦-૪૦૦ તથા આરણ અને અચ્યુતમાં ૩૦૦-૩૦૦ વિમાન છે નવ ગ્રૈવેયકોના અધસ્તનમાં ૧૧૧, મધ્યમમાં ૧૦૭ અને ઉપરિતન ગ્રૈવેયકોમાં ૧૦૦ વિમાન છે તથા પાંચ અનુત્તરોમાં પાંચ અનુત્તર વિમાનો છે આ રીતે વિમાનોની કુલ સંખ્યા ૮૪૯૭૦૨૩ (ચોર્યાસી લાખ, સત્તાણું હજાર સાતસો તેવીસ) થાય છે કહ્યું પણ છે કે-' બત્તીસ અટ્ઠવિસા " ઇત્યાદિ. દેવર્દ્ધિ પદ ભવન અને નગરોનું પણ ઉપલક્ષણ છે એટલે કે આ પદના પ્રયોગ દ્વારા ભવન અને નગરરૂપ ઋદ્ધિને પણ ગ્રહણ કરવી જોઇએ.

छाया—द्वात्रिंशदष्टाविंशतिर्द्वादशाष्ट च चत्वारि शतसहस्राणि ।
आराद् ब्रह्मलोकाद् विमानसंख्यैषा भवेत् ॥१॥
पञ्चाशच्चत्वारिंशत् षट् चैव सहस्राणि लान्तकशुक्रसहस्रारेषु ।
चत्वारि शतान्यानतप्राणतयो स्त्रीण्यारणाच्युतयोः ॥२॥
एकादशोत्तरमधस्तने, सप्तोत्तरं च मध्यमके ।
शतमेकमुपरितने पञ्चैवानुत्तरविमानानि ॥३॥

उपलक्षणं चैतद् भवननगराणामिति । विकुर्वणर्द्धिः—विकुर्वणलक्षणा ऋद्धिः । अस्या ऋद्धयाः प्रभावेण देवो वैक्रियशरीरैर्जम्बूद्वीपद्वयम् असंख्यातान् वा द्वीपसमुद्रान् पूरयति, उक्तं च व्याख्याप्रज्ञप्त्याम् —

" चमरे णं भंते ! के महिड्ढिए जाव केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ? गोयमा ! चमरेणं जाव पभू णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं वहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि य देवीहिय आइन्नं जाव करेत्तए, अदुत्तरं च णं गोयमा ! पभू चमरे जाव तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वहूहिं असुरकुमारेहिं आइन्ने जाव करित्तए, एस णं गोयमा ! चमरस्स देविंदस्स देवरायस्स अयमेयारूवे विसयमेत्ते वुइए, नो चेव णं संपत्तीए विउव्विसु ३। एवं सक्केऽवि दो केवलकप्पे जंबुदीवे दीवे जाव आइन्ने करेज्जा । " इति ।

विकुर्वणारूप जो ऋद्धि है वह विकुर्वणर्द्धि, इस ऋद्धि के प्रभाव से देव दो जम्बूद्वीपोंको अथवा असंख्यात द्वीपसमुद्रोंको भर सकताहै, अर्थात्—व्याप्त कर सकता है, व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) में ऐसा ही कहा गया है —" चरमे णं भंते ! महिड्ढिए जाव केवइ यं च णं पभू विउव्वित्तए ३ गोयमा ! चमरेणं जाव पभू णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं वहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिय देवीहिय आइन्नं जाव करे त्तइ अदुत्तरं च णं गोयमा ! पभू चमरे जाव तिरियमसंखेज्जे दीव समुद्दे वहूहिं असुरकुमारेहिं आइन्ने जाव करित्तए एसणं गोयमा ! चमरस्स ३ अयमेयारूवे विसयमेत्ते वुइए, नो चेवणं संपत्तीए विउव्विसु ३। एवं सक्के वि दो केवल

વિકુર્વણા રૂપ જે ઋદ્ધિ છે તેને વિકુર્વણુદ્ધિ કહે છે. આ ઋદ્ધિના પ્રભાવથી દેવ બે જમ્બૂદ્વીપોને અથવા અસંખ્યાત દ્વીપ સમુદ્રોને વ્યાપ્ત કરી શકે છે. વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞપ્તિ (ભગવતી) માં આ વિષયને અનુલક્ષીને એવું કહ્યું છે કે—

" चमरेणं भंते ! महिड्ढिए जाव केवइ यं च ण पभू विउव्वित्तए ? गोयमा ! चमरे णं जाव पभूर्णं केवलकप्प जवुद्दीव दीवं वहूहि असुरकुमारेहिं देवेहि य देवीहिय आइन्नं जाव करेत्तइ अदुत्तरं च ण गोयमा ! पभू चमरे जाव तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वहूहिं असुर[illegible] व करित्तए । एसणं गोयमा !

छाया—चमर खलु भदन्त ! कियन्महर्द्धिको यावत् कियच्च खलु प्रभुः विकुर्वितुम् ? गौतम ! चमर खलु यावत् प्रभुः खलु केवलकल्पं जम्बूद्वीपं द्वीप बहुभिरसुरकुमारैः देवैश्च देवीभिश्चाकीर्णं यावत् कर्तुम्, अथोत्तरं च खलु गौतम ! प्रभुश्चमरो यावत् तिर्यगसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् बहुभिरसुरकुमारैराकीर्णान् यावत् कर्तुम् । एष खलु गौतम ! चमरस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अयमेतद्रूपो विषयमात्र उक्तः, नो चैव खलु संपत्त्या व्यकार्षीत्, विकुर्वति, विकुर्विष्यति । एवं शक्रोऽपि द्वौ केवलकल्पौ जम्बूद्वीपौ द्वीपौ आकीर्णौ यावत् कुर्यात् ॥

परिचारणर्द्धिः, परिचारणा—कामसेवा, तद्विषया ऋद्धिः परिचारणर्द्धिः एत दर्द्धिमान् देवोऽन्याम् देवान्, अन्यसत्का देवीः, स्वकीया देवी, अभियुज्याऽऽत्मानं च विकुर्वित्वा परिचारयतीत्येवंरूपेति ।२। अथवा—प्रकारान्तरेण देवर्द्धिः, सचित्ताचित्तमिश्रितभेदात्त्रिविधा । तत्र सचित्ता—स्वशरीररूपा, स्वपरिवारभूताग्र महिष्यादि सचेतनवस्तुरूपा सपत्, अचित्ता—वस्त्राभरणादिरूपा मिश्रिता—वस्त्रा

कप्पे जंबुद्दीवे जाव आइन्ने करेज्जा" इति, परिचारणा का अर्थ विषय सेवन है इस विषयवाली जो ऋद्धि है वह परिचारणर्द्धि है। इस ऋद्धिवाला देव अन्यदेवों को, अन्यदेवों की देवियों को अपनी देवियों को पकड कर बलात् ग्रहण कर और स्वयं विकुर्वणा कर उनके साथ कामसेवा करता है इस प्रकार की यह परिचारणर्द्धि होती है अथवा—सचित्त अचित्त और मिश्रित के भेद से देवर्द्धि तीन प्रकार की होती है। इनमें अपने शरीररूप तथा—स्वपरिवारभूत जो अग्रमहिषी आदि सचेतन वस्तु रूप संपत् है वह सब सम्पत्ति सचित्त देवर्द्धि है। वस्त्राभरणादिरूप जो

चमरस्स देविंदस्स—देवरायस्स अयमेयारूवे विसयमेत्तेवुइए नो चेव णं संपत्तिए विउ व्विसु। एवं सक्के वि दो केवलकप्पे जंबुद्दीवे जाव आइन्ने करेज्जा" इत्यादि—

આ સૂત્રપાઠ દ્વારા ચમરેન્દ્ર, શક્ર આદિની પૂર્વ કથિત વિકુર્વણા શક્તિનુ જ સમર્થન કરવામાં આવ્યુ છે

પરિચારણા ઋદ્ધિ—પરિચારણા એટલે વિષય સેવન. આ વિષયવાળી જે ઋદ્ધિ છે તેને પરિચારણર્દ્ધિ કહે છે આ ઋદ્ધિવાળો દેવ અન્ય દેવોને, અન્ય દેવોની દેવીઓને અને પોતાની દેવીઓને પકડીને પકડીને, બળજબરીથી પકડી લાવીને અને પોતે વિકુર્વણા કરીને તેમની સાથે વિષયસેવન કરે છે

દેવર્દ્ધિના સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્રિત એવા ત્રણ ભેદ પણ કહ્યા છે હવે આ ત્રણ ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—શરીરરૂપ, સ્વપરિવારભૂત અગ્રમહિષીઓ આદિ સચેતન વસ્તુરૂપ જે સંપત્તિ છે તે સંપત્તિને સચિત્ત દેવર્દ્ધિ કહે છે

भरणादि समलङ्कृतदेव्यादिरूपा।३। अथ देवर्द्धिवर्णनानन्तरं राजर्द्धिमाह- 'राइड्डी' इत्यादि, राजर्द्धिस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-राजः अतियानर्द्धिः अतियानं-नगरप्रवेशः, तत्र ऋद्धिः-नगरशोभाजनकतोरणहट्टसमलंकरणजनसंमर्दादिरूपा। राज्ञो निर्याणर्द्धिः, निर्याणं-नगरान्निर्गमनं, तत्र ऋद्धिः-हस्त्यश्वसामन्तपरिवारादिरूपा। राज्ञो वलवाहनकोशकोष्ठागारर्द्धिः, तत्र-वलं-चतुरङ्गसैन्यरूपं,

---

देवर्द्धि है वह अचेतन देवर्द्धि है, तथा-वस्त्रभरणादि से समलंकृत जो देवी आदिरूप देवर्द्धि है वह मिश्रित देवर्द्धि है ३। "राइड्ढि" इत्यादि राजा की अतियानर्द्धि आदि के भेद से राजर्द्धि तीन प्रकार की जो कही गई है सो उसका अभिप्राय ऐसा है-अतियान नाम राजा के नगर में प्रवेश करने का है इस समय जो उसकी शोभा करने के लिये उसमें तोरण बनाये जाते हैं, छोटी तोरण ध्वजाएँ लटकाई जाती हैं, दूसरों को विविध उपकरणों से सज्जित किया जाता है, बाजार को सुशोभित हो जाता है, मनुष्यों की मेदिनी एकत्रित हो जाती है सो यह सब राजा की अतियानर्द्धि है। राजा का नगर से निकलना इसका नाम राजा की निर्याणर्द्धि है जब राजा नगर से बाहर निकलता है तब जो उसके साथ हस्ति-अश्व सामन्त इत्यादिकों का परिवार होता है वह सब निर्याणर्द्धि है। तृतीयऋद्धि जो राजा की बल बाहन आदिरूप कही

વસ્ત્ર, આભૂષણુ આદિ રૂપ જે દેવઋદ્ધિ છે તેને અચેતન દેવર્દ્ધિ કહે છે. વસ્ત્રાભરણુ આદિથી વિભૂષિત દેવી આદિ રૂપ જે દેવર્દ્ધિ છે, તેને મિશ્રિત દેવર્દ્ધિ કહે છે "રાઇડ્ઢી" ઇત્યાદિ—

હવે રાજાની ત્રણુ પ્રકારની ઋદ્ધિનું નિરૂપણુ કરવામાં આવે છે— પહેલો પ્રકાર અતિયાનર્દ્ધિ છે રાજાના નગરપ્રવેશનું નામ અતિયાન છે. તે વખતે નગરની શોભા વધારવા માટે તેમાં તોરણો લટકાવવામાં આવે છે, ધજા પતાકાઓ વડે રસ્તા શણુગારવામાં આવે છે, બજારોને શણુગારવામાં આવે છે, રાજસેવકો આદિને વિવિધ ઉપકરણોથી સુસજ્જિત કરવામાં આવે છે, મનુષ્યોની ખાસ્સી ભીડ એક ચિત્ત થઇને રાજાના આગમનની પ્રતીક્ષા કરે છે. આ બધી સામગ્રીને રાજાની અતિયાન ઋદ્ધિરૂપે અહીં પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે (૨) રાજાની નિર્યાણુર્દ્ધિ રાજાનુ નગરમાંથી બહાર જે પ્રયાણુ થાય છે તેને 'નિર્યાણુ' કહે છે રાજા જ્યારે નગરની બહાર પ્રયાણુ કરે છે, ત્યારે તેની સાથે જે હાથી, ઘોડા, રથ, પાયદળ સામંતો આદિનો પરિવાર હોય છે તેને જ રાજાની

वाहनानि - वेसरादीनि, खच्चर इतिभाषा प्रसिद्धानि कोश-भाण्डागारं, कोष्ठागारं - धान्यगृहम्, तद्रूपा ऋद्धिर्या सा तथा । ४ । प्रकारान्तरेण राजर्द्धिमाह - 'अहवा' इत्यादि, अथवा - पुनरप्यन्यप्रकारेण राजर्द्धि स्त्रिविधा, सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्, तत्र सचित्ता-हस्त्यश्वपदातिरूपा, अचित्ता प्रासादखड्गतोमरवन्दूक्यादिरूपा, मिश्रिता-सालङ्कारराज्ञमहिष्यादिरूपा सन्नद्धसैन्यादिरूपा वा ५। गणिऋद्धिस्त्रिविधा, तदेवदर्शयति-ज्ञानर्द्धि:-विशिष्टश्रुतरूपा, दर्शनर्द्धि -प्रवचनविषये निश्शङ्कितादित्वरूपा, प्रवचनप्रभावनाप्रतिपादकशास्त्रसम्पद्रूपा वा, चारित्रर्द्धि:-चारित्रविषयकनिरतिचारतारूपा ।६।

गई है, सो-चतुरङ्ग सैन्यरूप, बल, वेसरादिरूप (खच्चर) वाहन भाण्डादिरूपकोष और धान्यागाररूप कोष्ठागार ये सब इस ऋद्धि में गृहीत हुवे हैं। प्रकारान्तर से भी राजऋद्धि तीन प्रकार की होती है वे उसके प्रकारान्तर सचित्त, अचित्त, और मिश्रित हैं, हस्ति अश्व और पदाति ये सब सचित्त राजर्द्धि में परिणत हुवे हैं, प्रासाद खड्ग तोमर-बन्दूक आदि अस्त्र अचित्त राजर्द्धि में परिणत हुवे हैं, तथा अलङ्कारों से विभूषित पट्टरानियाँ वगैरह, अथवा-सशस्त्र सैन्य वगैरह ये सब मिश्रित राजर्द्धि में परिगणित हुवे हैं। ज्ञानर्द्धि आदि के भेद से जो गणिऋद्धि के भेद कहे गये हैं उसका तात्पर्य ऐसा है कि विशिष्ट श्रुतरूप ज्ञानर्द्धि है। प्रवचन के विषय में निःशङ्कित आदि रूप होना यह दर्शनर्द्धि है, अथवा -प्रवचन की प्रभावना प्रकट करने वाले जो शास्त्र हैं उनका संग्रह करना

નિર્યાણર્દ્ધિ' કહે છે (૩) રાજાની બલવાહન આદિ રૂપ ઋદ્ધિનુ હવે નિરૂપણ કરવામા આવે છે-ચતુરંગ સેનારૂપ બલ, હાથી ઘોડાં, રથ આદિરૂપ વાહન, ભાંડાદિ (પાત્રાદિ) રૂપ કોષ, ધાન્યાગાર રૂપ કોઠાર, ઇત્યાદિ વસ્તુઓને આ પ્રકારની ઋદ્ધિમાં ગણાવી શકાય છે

હવે રાજર્દ્ધિના જે સચિત્ત અચિત્ત અને મિશ્રિતરૂપ અન્ય ત્રણ પ્રકારો કહ્યા છે, તેનુ નિરૂપણ કરવામાં આવે છે હાથી ઘોડા, પાયદળ આદિને રાજાની સચિત્ત ઋદ્ધિમાં ગણાવી શકાય છે પ્રાસાદ, તલવાર, ભાલા બાણુ આદિને રાજાની અચિત્ત ઋદ્ધિ કહેવાય છે તથા અલંકારોથી વિભૂષિત રાણીઓ, સશસ્ત્ર સૈનિકો વગેરેને રાજાની મિશ્રિત ઋદ્ધિમાં ગણાવી શકાય છે

હવે ગણિઋદ્ધિના જ્ઞાનર્દ્ધિ આદિ ભેદોને સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે— વિશિષ્ટ શ્રુતરૂપ જ્ઞાનર્દ્ધિ કહી છે પ્રવચનના વિષયમાં શંકા આદિથી રહિત હોવું તેનુ નામ દર્શનર્દ્ધિ છે અથવા પ્રવચનની પ્રભાવના પ્રકટ કરનારા જે શાસ્ત્રો છે તેમનું અધ્યયન કરવું-તે શાસ્ત્રાનુસાર પ્રવચનની પ્રભાવના કરવી,

प्रकारान्तरेण गणिऋद्धिस्त्रिविधा सचित्तादिरूपा, तत्र सचित्ता - शिष्यादिरूपा, अचित्ता - वस्त्रादिरूपा, मिश्रा - वस्त्राद्यलङ्कृतशिष्यादिरूपेति । ७ । एताश्च विकुर्वणादिरूपा ऋद्धयोऽन्येपामपि भवितुमर्हन्ति, तथापि यद् देवादीनामेव ऋद्धित्वेन प्रोक्ताः ताः केवलं देवादीनां विशेपवत्यो भवन्तीति तेपामेवोक्ता इति । ॥ सू० ८१ ॥

ऋद्धौ सत्यां गौरवं भवतीति गौरवभेदानाह —

मूलम्—तओ गारवा पण्णत्ता, तं जहा-इड्ढीगारवे, रसगारवे, सायागारवे ॥ सू० ८२ ॥

अध्ययन करना उनके अनुसार प्रवचन की प्रभावना करना, यह दर्शनर्द्धि है। तथा चारित्र की आराधना अतिचार रहित करना यह चारित्रर्द्धि है, अथवा-सचित्त अचित्त मिश्रित रूप से भी गणि ऋद्धि तीन प्रकार की जो कही गई है सो उसमें शिष्यादिरूप सचित्त गणिऋद्धि है। वस्त्रादिरूप धर्म के साधन भूत वस्त्रादिकों का रखना यह अचित्तगणिऋद्धि है, और वस्त्रादिकों से सहित शिष्यादिरूप मिश्रित गणिऋद्धि है यद्यपि ये विकुर्वणादि रूप ऋद्धियां अन्य को भी हो सकती है फिर भी यहां जो देवादिकों को ही ऋद्धिमत्त्व रूप से कहा गया है, सो उसका कारण ऐसा है कि ये देवादिकों में विशिष्टरूप से होती है ऐसी विशेषणता लिये हुवे ये ऋद्धियां वहां होती है वैसी अन्यत्र नहीं होती है इसलिये ये उनकी ही कही गई हैं ॥ सू०८१ ॥

તેનું નામ દર્શનર્દ્ધિ છે. નિરતિચારપૂર્વક ચારિત્રની આરાધના કરવી તેનુ નામ ચારિત્રર્દ્ધિ છે. ગણિઋદ્ધિના સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્રિત, આ ત્રણ પ્રકાર પણ કહ્યા છે શિષ્યાદિ રૂપ સચિત્ત ગણિઋદ્ધિ સમજવી, ધર્મના સાધનો રૂપ વસ્ત્રાદિકોને અચિત્ત ગણિઋદ્ધિ કહે છે. અને વસ્ત્રાદિ સહિત શિષ્યાદિને મિશ્રિત ગણિઋદ્ધિ રૂપ ગ્રહણ કરવા જોઈએ.

જો કે આ વિકુર્વણાદિ રૂપ ઋદ્ધિઓનો અન્ય જીવોમાં પણ સદ્ભાવ હોઇ શકે છે, છતા પણ અહીં દેવાદિકોને જ ઋદ્ધિસપન્ન કહ્યા છે તેનું કારણ એ છે કે દેવાદિકોમાં તે વિશિષ્ટરૂપે હોય છે જેવી વિશિષ્ટતાપૂર્વક આ ઋદ્ધિઓનો દેવાદિકોમાં સદ્ભાવ હોય છે, એવી વિશિષ્ટતા પૂર્વક અન્ય જીવોમાં તેમનો સદ્ભાવ હોતો નથી. તેથી અહીં દેવાદિકોને જ આ ઋદ્ધિઓથી સંપન્ન કહ્યા છે. ॥ સૂ. ૮૧ ॥

तिविहे करणे पण्णत्ते, त जहा धम्मिए करणे, अधम्मिए करणे, धम्मियाधम्मिए करणे ॥ सू० ८३ ॥

तिविहे भगवया धम्मे पण्णत्ते, त जहा-सुअहिज्जिए, सुज्झाइए, सुतवस्सिए। जया सुअहिज्जिय भवइ तया सुज्झाइय भवइ, जया सुज्झाइय भवइ तया सुतवस्सिय भवइ, से सुअहिज्जिए सुज्झाइए सुतवस्सिए सुअक्खाए ण भगवया धम्मे पण्णत्ते ॥ सू० ८४ ॥

छाया—त्रीणि गौरवाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा – ऋद्धिगौरवं, रसगौरव, सातगौरवम् ॥ सू० ८२ ॥

त्रिविध करणं प्रज्ञप्त, तद्यथा–धार्मिक करण, अधार्मिक करण, धार्मिकाधार्मिक करणम् ॥ सू० ८३ ॥

त्रिविधो भगवता धर्मः प्रज्ञप्त, तद्यथा–स्वधीतः, सुध्यातः, सुतपस्वितः। यदा (श्रुतं) स्वधीत भवति तदा सुध्यातं भवति, यदा सुध्यातं भवति तदा सुतपस्वितं भवति। स स्वधीतः सुध्यातः सुतपस्वितः स्वाख्यातः खलु भगवता धर्मः प्रज्ञप्तः ॥ सू० ८४ ॥

ऋद्धि के होने पर गौरव होता है इसलिये सूत्रकार गौरव के भेदों का कथन करते हैं–तओ गारवा पण्णत्ता–इत्यादि,

सूत्रार्थ–गौरव तीन कहे गये हैं जैसे–ऋद्धिगौरव, रसगौरव, और साता गौरव, करण तीन कहे गये हैं, जैसे–धार्मिककरण, अधार्मिककरण, और धार्मिकाधार्मिककरण। भगवान् ने धर्म तीन प्रकार का कहा है जैसे–स्वधीतधर्म, सुध्यातधर्म, और सुतपस्वितधर्म है जब श्रुत स्वधीत होता है तब वह सुध्यात होता है और जब वह सुध्यात होता

ऋद्धिना सद्भावमां ज गौरवनो सद्भाव होय छे, तेथी हवे सूत्रकार गौरवनुं निरूपण करे छे–" तओ गारवा पण्णत्ता " इत्यादि–

सूत्रार्थ–गौरव त्रण प्रकारनुं कह्युं छे–(१) ऋद्धि गौरव (२) रसगौरव, अने (३) सात गौरव. करण (क्रियानुं साधन) पण त्रण कह्यां छे–धार्मिक करण, अधार्मिक करण अने धार्मिकाधार्मिक करण भगवाने धर्म त्रण प्रकारनो कह्यो छे–(१) स्वधीत धर्म, (२) सुध्यात धर्म, अने (३) सुतपस्वित धर्म ज्यारे श्रुत स्वधीत होय छे, त्यारे ते सुध्यात होय छे, अने ज्यारे ते सुध्यात होय छे, त्यारे

टीका—'तओ गारवा' इत्यादि। त्रीणि गौरवाणि प्रज्ञप्तानि, गुरोर्भावः कर्मवेति गौरवं, तद् द्रव्यभावभेदाद् द्विविध, तत्र द्रव्यतो वज्रादेर्गौरवं, भावत आत्मनोऽभिमानलोभादिलक्षणाशुभभाववत्त्वं, तत्र-गौरवाणि भावगौरवाणि त्रीणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ऋद्धिगौरवं, ऋद्धया-नरेन्द्रादि लक्षणया आचार्यत्वादि लक्षणया वाऽभिमानादिद्वारेण गौरवम्, ऋद्धिप्राप्त्यभिमानाप्राप्ततत्प्रार्थनाद्वारेणाऽशुभभावो भावगौरवमित्यर्थः, रसो-रसनेन्द्रियार्थो मधुरादिः, तत्प्राप्त्यभिमानाप्राप्तप्रार्थनादिनाऽऽत्मनोऽशुभभावः, एवं सातगौरवमिति ॥ सू० ८२ ॥

है तब वह सुतपस्यित होता है, वह स्वधीत सुध्यात और सुतपस्यित धर्म सम्यग्ज्ञान क्रियारूप होने से सत्यधर्म कहा गया है, और यह धर्म भगवान् महावीर ने कहा है।

टीकार्थ — गुरु का भाव, अथवा-कर्म, गौरव है (अहंकार) वह गौरव द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है वज्रादिकों में जो गुरुता-भारिपन है वह द्रव्य गौरव है। तथा-आत्मा में अभिमानरूप, लोभादिकषायरूप, अशुभ भावोंसे युक्तताहै वह भावगौरव है। यह भावगौरव ही ऋद्धि गौरवादिके भेदसे तीन प्रकारका कहा गया है, नरेन्द्रादिरूप अथवा आचार्यादिरूप ऋद्धि के प्राप्ति से आत्मा में जो अभिमान की मात्रा आ जाती है, और इस अभिमान की मात्रा द्वारा जो अशुभ भाव होता है, वह भावगौरव है तात्पर्य यह है कि जब नरेन्द्रादिरूप, या आचार्य आदिरूप विशिष्टपद जीव को प्राप्त हो जाता है, तब उसकी प्राप्ति से उसे एक प्रकार का अहंकार आदिरूप अशुभ भाव आ जाता है उस भाव के आ जाने पर वह अप्राप्त वस्तु की चाहना आदि करने लगता है, सो यह सब इस प्रकार का भाव ही भावगौरव है। क्यों कि-आत्मा में इस प्रकार के अशुभ

તે સુતપસ્યિત હોય છે. તે સ્વધીન, સુધ્યાત અને સુતપસ્યિત ધર્મ સમ્યગ્જ્ઞાન ક્રિયા રૂપ હોવાથી તેને સાચો ધર્મ કહ્યો છે, અને આ ધર્મ ભગવાન મહાવીરે કહ્યો છે.

ટીકાર્થ—ગુરુનો ભાવ અથવા કર્મ ગૌરવ છે તે ગૌરવ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારનુ કહ્યુ છે. વજ્રાદિકોમા જે ગુરુતા છે, તે દ્રવ્ય ગૌરવ રૂપ છે, તથા આત્મામા અભિમાનરૂપ, લોભાદિ કષાયરૂપ, અશુભ ભાવોથી યુક્તતા હોવા રૂપ, જે ગૌરવ છે તેને ભાવગૌરવ કહે છે. તે ભાવ ગૌરવને જ ઋદ્ધિ આદિના ભેદથી ત્રણ પ્રકારનું કહ્યુ છે નરેન્દ્રાદિ રૂપ અથવા આચાર્યાદિ રૂપ ઋદ્ધિની પ્રાપ્તિ થવાથી આત્મામાં જે અભિમાનની માત્રા આવી જાય છે અને તે અભિમાનની માત્રા દ્વારા જે અશુભ ભાવ પેદા થાય છે તેનુ નામ જ ભાવગૌરવ છે. આ કથનનુ તાત્પર્ય એ છે કે નરેન્દ્રાદિ રૂપ અથવા આચાર્યાદિ

अनन्तरं चारित्रविषया ऋद्धिः प्रोक्ता, चारित्रं च करणेन भवतीति करण भेदानाह—' विविहे करणे ' इत्यादि ।

क्रियते चरणस्य पुष्टिरनेनेति करणम्-उत्तरगुणरूपम्, यद्वा-करणं-पिण्ड विशुद्ध्यादि एतदपि सप्ततिसङ्ख्यकम् । उक्तञ्च—

" पिण्डविसोही समिई, भावण पडिमा य इंदियनिरोहो ।
पडिलेहण गुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणे तु ॥ १ ॥
छाया—पिण्डविशुद्धिः समितिः, भावना प्रतिमा च इन्द्रियनिरोधः ।
प्रतिलेखना गुप्तयः अभिग्रहाश्चैव करणे तु ॥ १ ॥ इति ॥

भाव से कर्मबन्धजन्यगुरुता ही है लघुता नहीं आती है, रसनेन्द्रिय का जो विषय है वह रस है । यह रस मधुर रस आदि के भेद से ५ प्रकार का होता है इस रस की प्राप्ति से जो आत्मा में अभिमान आता है और फिर उसी प्रकार के रस को प्राप्त करने की पुनः चाहना जगती है वह चाहनारूप अशुभ भाव रसगौरव है इसी प्रकार का सातागौरव है, चारित्रऋद्धि कही गई है-सो चारित्र करण द्वारा होता है इसी बात को लेकर सूत्रकार ने चरण के भेदों का कथन किया है-" तिविहे करणे " इत्यादि । करण की जिस से पुष्टि की जाती है वह करण है, यह करण उत्तरगुणरूप होता है अथवा-पिण्डविशुद्धि आदि का नाम करण है, यह विशुद्धि आदिरूप करण ७०प्रकार का है । कहा भी है

રૂપ વિશિષ્ટ પાની જ્યારે પ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે તેની પ્રાપ્તિને લીધે જીવમાં અહંકાર આદિ રૂપ અશુભ ભાવો ઉત્પન્ન થાય છે, તે ભાવ ઉત્પન્ન થવાને લીધે તે અપ્રાપ્ત વસ્તુની અભિલાષા કરવા લાગી જાય છે તેના આ પ્રકારના ભાવને જ ભાવગૌરવ કહે છે, કારણ કે આત્મામાં આ પ્રકારના અશુભ ભાવ આવવાથી કર્મબંધ જન્ય ગુરુતા જ ઉત્પન્ન થાય છે-લઘુતા ઉત્પન્ન થતી નથી.

રસનેન્દ્રિયનો જે વિષય છે તેનું નામ રસ છે તે રસ મધુર આદિ પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે આ રસની પ્રાપ્તિથી આત્મામાં જે અભિમાન આવે છે, અને એ જ પ્રકારનો રસ ફરી પ્રાપ્ત કરવાની જે તૃષ્ણા જાગે છે તે તૃષ્ણા (ભાવના) રૂપ અશુભ ભાવનું નામ રસગૌરવ છે, એ જ પ્રકારનું સાતગૌરવ પણ સમજવું જે ચારિત્રઋદ્ધિની વાત કરી છે તેની હવે પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે-ચારિત્રકરણ દ્વારા સધાય છે, તેથી સૂત્રકાર હવે કરણના ભેદોનું કથન કરે છે " તિવિહે કરણે " ઇત્યાદિ—

ચરણની જેના દ્વારા પુષ્ટિ કરાય છે તે કરણ છે તે કરણ ઉત્તરગુણ રૂપ હોય છે અથવા પિંડ વિશુદ્ધિ આદિનું નામ કરણ છે તે વિશુદ્ધિ આદિ રૂપ

करणमित्यनुष्ठान, तच्च धार्मिकादि स्वामिभेदेन त्रिविधं, तत्र धार्मिकस्य-संयतस्येदं धार्मिकं करणमनुष्ठानमिति, तद्विपरीतमधार्मिकम् असंयतसम्बन्धि करणमिति, तृतीयं धार्मिकाधार्मिकं-देशसंयतसम्बन्धि करणमिति ॥ सू. ८५ ॥

अनन्तरं धार्मिककरणमुक्तं, तच्चधर्म एवेति धर्मभेदानाह-' तिविहे धम्मे ' इत्यादि, धर्मः-श्रुतचारित्ररूपः, स भगवता त्रिविधः प्रज्ञप्तः, न तु मयेति श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्रति प्राहेति । तानेव दर्शयति—स्वधीतः, सुध्यातः सुतपस्यितः । त्रयाणामप्येषामुत्तरोत्तरतोऽविनाभावं दर्शयति-' जया ' इत्यादि,

---

" पिंड विसोही सेसई " इत्यादि, आहार, वस्त्र, पात्र वसति रूप पिंड विशुद्धि ४ समिति ५ भावना १२ और १२ प्रतिमा इन्द्रियनिरोधके ५ और प्रतिलेखनारूप गुप्ति ३ अभिग्रह ४ करण यह अनुष्ठानरूप होताहै यह धार्मिक आदि स्वामि भेदसे तीन प्रकारका होताहै । संयतका जो अनुष्ठान है वह धार्मिक करण है, तथा असंयत सम्बन्धी जो अनुष्ठान है वह अधार्मिक करण है तथा देशसंयत सम्बन्धी जो अनुष्ठान है वह धार्मिकाधार्मिक करण है । धार्मिक करण धर्मरूप ही होता है इस भाव को लेकर ही यहां सूत्रकार ने धर्मभेद कहा है-" तिविहे धम्मे " इत्यादि, धर्म श्रुतचारित्र रूप होता है भगवान् ने यह धर्म तीन प्रकार का कहा है, सुधर्मास्वामी ने ऐसा यह जम्बूस्वामी से कहा ही है कि, मैंने ऐसा ही कहा है कि धर्म तीन प्रकार का है, ऐसा कथन तो भगवान् ने किया है कि धर्म तीन प्रकार का होता है धर्म के वे तीन प्रकार ये हैं स्वधीत, सुध्यात, और सुतपस्यित ३ इन तीनों का सूत्रकार

કરણના ૭૦ પ્રકાર છે. કહ્યુ પણ છે કે-" पिंडविसोही सेसई " ઇત્યાદિ—કરણ અનુષ્ઠાનરૂપ હોય છે, તે ધાર્મિક આદિ સ્વામિભેદની અપેક્ષાએ ત્રણ પ્રકારનું કહ્યું છે સંયતનું જે અનુષ્ઠાન હોય છે તેને ધાર્મિક કરણ કહે છે, અસંયતના અનુષ્ઠાનને અધાર્મિક કરણ કહે છે, તથા દેશસંયતના અનુષ્ઠાનને ધાર્મિકાધાર્મિક કરણ કહે છે. ધાર્મિક કરણ ધર્મરૂપ જ હોય છે, તે ભાવને અનુલક્ષીને જ સૂત્રકારે અહીં ધર્મભેદનું કથન કર્યું છે-" तिविहे धम्मे " ઇત્યાદિ ધર્મ શ્રુત ચારિત્રરૂપ હોય છે. ભગવાને આ ધર્મ ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે—સુધર્મા સ્વામીએ જંબૂ સ્વામીને એવું કહ્યું છે કે-" ધર્મ ત્રણ પ્રકારના હોય છે એવું સ્વયં મહાવીર ભગવાને કહ્યુ છે-હુ ધર્મના જે ત્રણ પ્રકાર કહુ છું તે મારૂ પોતાનું કથન નથી પણ ભગવાન મહાવીરનું જ કથન છે. "

ધર્મના તે ત્રણ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે-(૧) સ્વધીત, (૨) સુધ્યાત અને (૩) સુતપસ્યિત આ ત્રણેનો ઉત્તરોત્તર અવિનાભાવી એકવાર બીજાનું નહોવાપણું સંબંધ

अत्र श्रुतमितिगम्यं तेन यदा श्रुतं स्वधीतं, सु-सुष्ठु कालविनयाद्याराधनयाऽधीतं गुरुसकाशात्सूत्रतः पठितं तदा, तदा सुध्यातं, सु-सुष्ठु विधिना गुरुसकाशादेव व्याख्यानेनार्थतः श्रुत्वा ध्यातम्-अनुप्रेक्षितम्, अनुप्रेक्षणाया अभावे तत्त्वानव गमेनाध्ययनश्रवणयो मायोऽकृतार्थत्वादिति। अनेन भेदद्वयेन श्रुतधर्मो विवक्षित तथा सुतपस्थितं, सु-सुष्ठु इहलोकाद्याशंसारहितत्वेन तपस्थित-तपस्यानुष्ठानम्। अनेन च चारित्रधर्मः मोक्त इति। एवं यदा श्रुतं स्वधीतं भवति तदा सुध्यातं भवति, निर्दोषाध्ययनं विना श्रुतार्थप्रतीतेः सुध्यातस्याऽसद्भावात्, यदा सुध्यातं

उत्तरोत्तर अविनाभाव सम्बन्ध दिखाने के निमित्त-" जया " इत्यादि, सूत्र का कथन करते हैं-यहाँ श्रुत ऐसा पद लगा लेना चाहिये। अतः जब श्रुत कालविनय आदि की आराधना पूर्वक गुरु से सूत्र के रूप में अधीत होता है तब वह श्रुत स्वधीत कहा जाता है और जब वह गुरु से व्याख्या द्वारा सार्थक हुवा सुनकर बार २ विचारित होता है तब वह श्रुत सुध्यात होता है। क्यों कि अनुपेक्षा बार बार विचार किये विना तत्त्व का अवगम नहीं होता है इन दो भेदों से श्रुतधर्म विवक्षित हुवा है, और सुतपस्थित पद से चारित्र धर्म कहा गया है। इस लोक आदि की आशंसा से रहित होकर जो तपस्या का अनुष्ठान है वह सुतपस्थित है। इस तरह श्रुत जब स्वधीत होता है तब वह सुध्यात होता है, क्यों कि-निर्दोष अध्ययन किये विना जीव को श्रुतार्थ की प्रतीति नहीं होती है उसकी प्रतीति के अभाव में वह सुध्यात नहीं

બતાવવાને માટે સૂત્રકાર "જયા ઈત્યાદિ સૂત્રોનું કથન કરે છે-ત્યાં "શ્રુત' એવું પદ લગાવી લેવું જોઈએ. જ્યારે શ્રુત કાલવિનય આદિની આરાધનાપૂર્વક ગુરુ પાસેથી સૂત્રના રૂપમાં અધીત થાય છે ત્યારે તે શ્રુતને સ્વધીત શ્રુત કહે છે અને જ્યારે ગુરુની સમીપે વ્યાખ્યાન દ્વારા સાર્થક શ્રવણ કરીને જ્યારે તેના પર વારંવાર વિચાર કરવામાં આવે છે, ત્યારે તે શ્રુત સુધ્યાત થાય છે, કારણ કે વારંવાર વિચાર કર્યા વિના તત્ત્વનો અવગમ (બોધ) થતો નથી. આ બે ભેદોની અપેક્ષાએ અહીં શ્રુતધર્મનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, અને 'સુતપસ્થિત' પદથી ચારિત્ર ધર્મનું કથન કરાયું છે આલોક આદિની આશંસા (કામના) થી રહિત થઈને જે તપસ્યાનું અનુષ્ઠાન કરવામાં આવે છે તેને 'સુતપસ્થિત' કહે છે આ રીતે શ્રુત જ્યારે સ્વધીત હોય છે, ત્યારે જ સુધ્યાત હોઈ શકે છે કારણ કે નિર્દોષ અધ્યયન કર્યા વિના જીવને શ્રુતાર્થની પ્રતીતિ થતી નથી, અને તેની પ્રતીતિના અભાવમાં તે સુધ્યાત થઈ શકતું

भवति तदा सुतपस्थितं भवति, तदभावे च ज्ञानविकलतया सुतपस्थितस्याभावा दिति । 'से' इति सः स्वधीतादित्रयरूपो धर्मः । स्वाख्यातः-सुष्ठूक्तः सम्यग्ज्ञान-क्रियारूपत्वात्, ज्ञानक्रिययोश्चैकान्तिकात्यन्तिकसुखावन्ध्योपायत्वेन निरुपचरितधर्मत्वात्, प्रज्ञप्तः-प्ररूपितः, केनेत्याह—भगवता श्रीमहावीरेणेति । सुगतिधारणाद्धि धर्मः, उक्तञ्च—

"नाणं पयासयं सोहओ तवो संजमो य गुत्तिकरो ।
तिण्हंपि समाओगे, मोक्खो जिणसासणे भणिओ ॥ १ ॥"

छाया—ज्ञानं प्रकाशकं शोधकं तपः संयमश्च गुप्तिकरः ।
त्रयाणामपि समायोगे मोक्षो जिनशासने भणितः ॥ १ ॥ इति । सू. ८४॥

हो सकता है, जब वह सुध्यात होता है तब वह सुतस्थित होता है, सुध्यात के अभाव में ज्ञान विकल होने के कारण उसमें सुतपस्थित का अभाव आता है। इस प्रकार स्वधीतादि त्रयरूप धर्म सम्यग्ज्ञान क्रियारूप होने से स्वाख्यात हुवा है अच्छी तरह से कथित हुवा है। अर्थात् ज्ञान एवं क्रिया में ऐकान्तिक एवं आध्यात्मिक सुख का सकल उपाय होने से वह श्रुत चारित्ररूप धर्म निरुपचारित धर्मरूप से वास्तविक सच्चे धर्मरूप से कहा गया है ऐसा कथन भगवान् महावीर ने किया है तात्पर्य इसका ऐसा है कि जीव को जो संसारिक दुःखों से छुडाकर सुगति में प्राप्त करा देता है वही सच्चा धर्म है, ऐसा सच्चा धर्म श्रुतचारित्र रूप ही हो सकता है अन्य नहीं। कहा भी है-"नाणं पयासयं-" इत्यादि, ज्ञान प्रकाशक होता है तप शोधक होता है और संयम

નથી. જ્યારે તે સુધ્યાત થાય છે, ત્યારે જ સુતપસ્થિત પણ થઈ શકે છે. સુધ્યાતના અભાવમાં જ્ઞાનવિકલ હોવાને કારણે તેનામાં સુતપસ્થિતતાનો અભાવ રહે છે આ પ્રકારનો સ્વધીતાદિત્રય રૂપ (સ્વધીત, સુધ્યાત, સુતપસ્થિત) ધર્મ સમ્યગ્જ્ઞાન ક્રિયા રૂપ હોવાથી તેને સાચા ધર્મ રૂપે પ્રતિપાદિત કરવામા આવ્યો છે. એટલે કે "જ્ઞાન અને ક્રિયામા એકાન્તિક અને આધ્યાત્મિક સુખનો સફલ ઉપાય હોવાથી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને નિરુપચરિત ધર્મ રૂપે વાસ્તવિક સાચા ધર્મ રૂપે પ્રતિપાદિત કરાયો છે." આ પ્રકારનુ કથન મહાવીર ભગવાને જ કરેલુ છે. આ કથનનુ તાત્પર્ય એ છે કે જીવને જે સાંસારિક દુઃખોમાંથી છોડાવીને સુગતિ પ્રાપ્ત કરાવે છે, એ જ સાચો ધર્મ છે એવો સાચો ધર્મ શ્રુતચારિત્ર રૂપ જ હોઇ શકે છે-અન્ય નહીં. કહ્યુ પણ છે કે—

"नाणं पयासयं" ઈત્યાદિ—

एवं श्रुततपस्थितमित्यनेन चारित्रं प्रोक्तं, तच्च प्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपमिति तस्या भेदानाह—

मूलम्—तिविहा वावत्ती पण्णत्ता, तं जहा-जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा, एवं अज्झोववज्जणा परियावज्जणा ॥ सू०८५ ॥

तिविहे अंते पण्णत्ते, तं जहा-लोयंते, वेयंते, समयंते सू०८६॥

तओ जिणा पण्णत्ता, तं जहा—ओहिणाणजिणे, मणपज्जवणाणजिणे, केवलणाणजिणे १ । तओ केवली पण्णत्ता, तं जहा-ओहिणाणकेवली, मणपज्जवणाणकेवली, केवलणाणकेवली २ । तओ अरहा पण्णत्ता, तं जहा ओहिनाणअरहा, मणपज्जवनाण अरहा, केवलनाण अरहा ३ ॥ सू० ८७ ॥

छाया-त्रिविधा व्यापृत्तिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-ज्ञायिका, अज्ञायिका, विचिकित्सा। एवम् अध्युपपादना, पर्यापादना ॥ सू० ८५ ॥

रक्षक होता है, और जब इन तीनों का एक ही आत्मा में योग मिल जाता है-तब उस आत्मा की मुक्ति हो जाती है ऐसा जिन शासन में कहा गया है ॥ सू०८४ ॥

"श्रुततपस्थित" इस पद से चारित्र कथन हुआ है यह चारित्र प्राणातिपात आदि की निवृत्तिरूप होता है, अतः अब सूत्रकार उस निवृत्ति के भेदों का कथन करते हैं— 'तिविहा वावत्ती पण्णत्ता" इत्यादि,

व्यापृत्ति तीन प्रकारकी कही गई है जैसे—ज्ञायिका १ अज्ञायिका २

"જ્ઞાન પ્રકાશક હોય છે, તપ શોધક હોય છે અને સંયમ રક્ષક હોય છે, અને જ્યારે આ ત્રણેનો એક જ આત્મામાં સમ ન્વય (યોગ) થઈ જાય છે, ત્યારે તે આત્માની મુક્તિ થઈ જાય છે" એવું જિનશાસનમાં કહ્યું છે સૂ. ૮૨ થી ૮૪ ॥

'શ્રુતતપસ્થિત" આ પદ દ્વારા ચારિત્રની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. તે ચારિત્ર પ્રાણાતિપાત આદિની નિવૃત્તિ રૂપ હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર આ નિવૃત્તિના ભેદોનું કથન કરે છે– 'તિવિહા વાવત્તિ પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

વ્યાવૃત્તિ ત્રણ પ્રકારની કહી છે જેમકે (૧) જ્ઞાયિકા, (૨) અજ્ઞાયિકા

त्रिविधः अन्तः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–लोकान्तः, वेदान्तः, समयान्तः ॥सू०८६॥

त्रयो जिनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अवधिज्ञानजिनः, मनःपर्यवज्ञानजिनः, केवलज्ञानजिनः १। त्रयः केवलिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अवधिज्ञानकेवली, मनःपर्यवज्ञानकेवली, केवलज्ञानकेवली २। त्रयः अर्हन्तः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अवधिज्ञानार्हन् मनः पर्यवज्ञानार्हन्, केवलज्ञानार्हन् ३ ॥ सू० ८७ ॥

टीका—' तिविहा वावत्ती ' इत्यादि।

व्यावर्त्तनं-व्यावृत्तिः हिंसादेः कियदवधिनिवर्त्तनं, सा त्रिविधा तथाहि–ज्ञायिका-ज्ञस्य हिंसादीनां हेतुस्वरूपफलज्ञायकस्य ज्ञानपूर्विका व्यावृत्तिः, साऽपि

और विचिकित्सा ३। इस प्रकार अध्युपपादना और पर्यापादना भी तीन तीन प्रकार की कही गई है ॥ सू०८५ ॥

अन्त तीन प्रकार का कहा गया है जैसे लोकान्त वेदान्त और समयान्त ॥ सू०८६ ।

जिन तीन प्रकार के कहे गये हैं, जैसे अवधिज्ञानजिन मनःपर्यवज्ञानजिन और केवलज्ञानजिन। १ केवली तीन प्रकार के कहे गये हैं, जैसे–अवधिज्ञानकेवली मनः पर्यवज्ञानकेवली और केवलज्ञानकेवली। २ अर्हन्त तीन प्रकार के कहे गये है, जैसे–अवधिज्ञानार्हन्त, मनः पर्यवज्ञानोर्हन्त और केवलज्ञानार्हन्त ३

भावार्थ — इन ८५ – ८६ और ८७ सूत्रों का भावार्थ इस प्रकार से है हिंसादि पापों का कितनी अवधि तक निवर्तन होना इसका नाम व्यावर्तन है, तात्पर्य इसका यह है कि हिंसादिक पापों से एकदेश निवर्तन होना इसका नाम देशनिवर्तन है। और

અને (૩) વિચિકિત્સા એ જ પ્રમાણે અધ્યુપપાદના અને પર્યાપાદના પણ ત્રણ ત્રણ પ્રકારની કહી છે ॥ સૂ. ૮૫ ॥

અન્ત ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) લોકાન્ત, વેદાન્ત અને (૩) સમયાન્ત. ॥ સૂ. ૮૬ ॥

જિન ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) અવધિજ્ઞાન જિન, (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાન જિન અને (૩) કેવલજ્ઞાન જિન । ૧ ।

કેવલી ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) અવધિજ્ઞાન કેવલી, (૨) મન.પર્યવજ્ઞાન કેવલી અને (૩) કેવળજ્ઞાન કેવલી । ૨ ।

અર્હંત ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) અવધિજ્ઞાનાર્હન્ત, (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાનાર્હન્ત અને (૩) કેવળજ્ઞાનાર્હન્ત । ૩ । ॥ સૂ. ૮૭ ॥

હવે ૮૫, ૮૬ અને ૮૭ માં સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—હિંસાદિ પાપોનું અમુક મર્યાદામા નિવર્તન થવુ તેનુ નામ વ્યાવર્તન છે.

पूर्वं सुतपस्वित्वमित्यनेन चारित्रं प्रोक्तं, तच्च प्राणातिपातादिनिवृत्तिरूप मिति तस्या भेदानाह—

मूलम्--तिविहा वावत्ती पण्णत्ता, तं जहा-जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा, एवं अज्झोववज्जणा परियावज्जणा ॥ सू०८५ ॥
तिविहे अंते पण्णत्ते, तं जहा लोयंते, वेयंते, समयंते सू०८६॥

तओ जिणा पण्णत्ता, तं जहा—ओहिणाणजिणे, मणपज्जवणाणजिणे, केवलणाणजिणे १। तओ केवली पण्णत्ता, तं जहा-ओहिणाणकेवली, मणपज्जवणाणकेवली, केवलणाणकेवली २। तओ अरहा पण्णत्ता, तं जहा ओहिनाणअरहा, मणपज्जवनाण अरहा, केवलनाण अरहा ३ ॥ सू० ८७ ॥

छाया-त्रिविधा व्यावृत्तिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञायिका, आज्ञायिका, विचिकित्सा। एवम् अध्युपपादना, पर्यापादना ॥ सू० ८५ ॥

रक्षक होता है, और जब इन तीनों का एक ही आत्मा में योग मिल जाता है-तब उस आत्मा की मुक्ति हो जाती है ऐसा जिन शासन में कहा गया है ॥ सू०८४ ॥

"श्रुततपस्वित" इस पद से चारित्र कथन हुआ है यह चारित्र प्राणाऽतिपात आदि की निवृत्तिरूप होता है, अतः अब सूत्रकार उस निवृत्ति के भेदों का कथन करते हैं—"तिविहा वावत्ती पण्णत्ता" इत्यादि

व्यावृत्ति तीन प्रकारकी कही गईहै जैसे—ज्ञायिका १ अज्ञायिका २

"જ્ઞાન પ્રકાશક હોય છે, તપ શોધક હોય છે અને સંયમ રક્ષક હોય છે, અને જ્યારે આ ત્રણેનો એક જ આત્મામાં સમ ન્વય (યોગ) થઈ જાય છે, ત્યારે તે આત્માની મુક્તિ થઈ જાય છે ' એવું જિનશાસનમાં કહ્યું છે સૂ. ૮૨ થી ૮૪ ॥

" શ્રુતતપસ્વિન " આ પદ દ્વારા ચારિત્રની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી તે ચારિત્ર પ્રાણાતિપાત આદિની નિવૃત્તિ રૂપ હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર આ નિવૃત્તિના ભેદોનું કથન કરે છે–" તિવિહા વાવત્તિ પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

વ્યાવૃત્તિ ત્રણ પ્રકારની કહી છે જેમકે (૧) જ્ઞાયિકા, (૨) અજ્ઞાયિકા

त्रिविधः अन्तः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—लोकान्तः, वेदान्तः, समयान्तः ॥सू०८६॥

त्रयो जिनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अवधिज्ञानजिनः, मनःपर्यवज्ञानजिनः, केवलज्ञानजिनः १ । त्रयः केवलिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अवधिज्ञानकेवली, मनःपर्यवज्ञानकेवली, केवलज्ञानकेवली २ । त्रयः अर्हन्तः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अवधिज्ञानार्हन् मनः पर्यवज्ञानार्हन्, केवलज्ञानार्हन् ३ ॥ सू० ८७ ॥

टीका—' तिविहा वावत्ती ' इत्यादि ।

व्यावर्त्तनं-व्यावृत्तिः हिंसादेः कियदवधिनिवर्त्तनं, सा त्रिविधा तथाहि—ज्ञायिका-ज्ञस्य हिंसादीनां हेतुस्वरूपफलज्ञायकस्य ज्ञानपूर्विका व्यावृत्तिः, साऽपि

और विचिकित्सा ३ । इस प्रकार अध्युपपादना और पर्यापादना भी तीन तीन प्रकार की कही गई है ॥ सू०८५ ॥

अन्त तीन प्रकार का कहा गया है जैसे लोकान्त वेदान्त और समयान्त ॥ सू०८६ ।

जिन तीन प्रकार के कहे गये हैं, जैसे अवधिज्ञानजिन मनःपर्यवज्ञानजिन और केवलज्ञानजिन । १ केवली तीन प्रकार के कहे गये हैं, जैसे-अवधिज्ञानकेवली मनः पर्यवज्ञानकेवली और केवलज्ञानकेवली । २ अर्हन्त तीन प्रकार के कहे गये है, जैसे-अवधिज्ञानार्हन्त, मनः पर्यवज्ञानार्हन्त और केवलज्ञानार्हन्त ३

भावार्थ — इन ८५ - ८६ और ८७ सूत्रों का भावार्थ इस प्रकार से है हिंसादि पापों का कितनी अवधि तक निवर्तन होना इसका नाम व्यावर्तन है, तात्पर्य इसका यह है कि हिंसादिक पापों से एकदेश निवर्तन होना इसका नाम देशनिवर्तन है। और

અને (૩) વિચિકિત્સા એ જ પ્રમાણે અધ્યુપપાદના અને પર્યાપાદના પણ ત્રણ ત્રણ પ્રકારની કહી છે ॥ સૂ. ૮૫ ॥

અન્ત ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) લોકાન્ત, વેદાન્ત અને (૩) સમયાન્ત. ॥ સૂ. ૮૬ ॥

જિન ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) અવધિજ્ઞાન જિન, (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાન જિન અને (૩) કેવલજ્ઞાન જિન । ૧ ।

કેવલી ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) અવધિજ્ઞાન કેવલી, (૨) મન પર્યવજ્ઞાન કેવલી અને (૩) કેવળજ્ઞાન કેવલી । ૨ ।

અર્હંત ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) અવધિજ્ઞાનાર્હન્ત, (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાનાર્હન્ત અને (૩) કેવળજ્ઞાનાર્હન્ત । ૩ । ॥ સૂ. ૮૭ ॥

હવે ૮૫, ૮૬ અને ૮૭ માં સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—હિંસાદિ પાપોનું અમુક મર્યાદામાં નિવર્તન થવુ તેનું નામ વ્યાવર્તન છે.

तदभेदात् ज्ञायिका मोच्यते । अज्ञायिका तद्विपरीता । या तु विचिकित्सातः-संशयात् निमित्तनिमित्तिनोरभेदात् विचिकित्सेत्यभिहिता । व्यावृत्तिरित्यनेन पूर्व

मन वचन काय से हिंसादिक पापों का सर्वदेश से त्याग करना उस से निवर्तन होना, इसका नाम सर्वदेश निवर्तन है। यह निवर्तनरूप व्यावृत्ति तीन प्रकार की कही गई है। उसमें प्रथम प्रकार में जो हिंसादिकों के हेतु का, उनके स्वरूप का, और उनके फल का ज्ञाता होकर उनका निवर्तन करता है सो यह निवर्तनरूप व्यावर्तन उसका ज्ञान पूर्वक होनेके कारण "ज्ञायिका व्यावृत्ति' हिंसादिकर्मसे निवृत्तहोना इसका नाम व्यावृत्ति है ये तीन प्रकारकी हैं ऐसा कहा जाताहै "ज्ञस्य व्यावृत्ति" "ज्ञायिका व्यावृत्तिः" इसके अनुसार ज्ञायक (ज्ञाता) की जो आवृत्ति है वह ज्ञायिका आवृत्ति है,। इस तरह से जो यहां व्यावृत्ति को ज्ञायिका कहा गया है वह अभेद सम्बन्ध से कहा गया है,। अर्थात्-ज्ञायक ने जो पापादिकों की व्यावृत्ति की है वह अपने ज्ञान से की है, अतः-यह ज्ञायक के ज्ञान का कार्य है, परन्तु इस कार्य को जो "ज्ञायिका" पद से कहा गया है वह उसकी व्यावृत्ति करने वाले आत्मा में और की गई उस व्यावृत्ति में अभेद मानकर कहा गया

આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-હિંસાદિક પાપોમાંથી દેશતઃ (અંશતઃ) નિવર્તન થવું તેનું નામ દેશનિવર્તન છે અને મન, વચન અને કાયાથી હિંસાદિક પાપોનો સર્વદેશથી (સંપૂર્ણતઃ) ત્યાગ કરવો તે પાપોમાંથી નિવૃત્ત થવું તેનું નામ સર્વદેશ નિવર્તન છે તે નિવર્તન રૂપ વ્યાવૃત્તિ ત્રણ પ્રકારની કહી છે જે હિંસાદિકોના હેતુનો, તેમના સ્વરૂપનો, અને તેમના ફલનો જ્ઞાતા થઈને જ્યારે જીવ તેમનો ત્યાગ કરે છે, ત્યારે જીવના તે ત્યાગ (નિવર્ત) રૂપ વ્યાવર્તન જ્ઞાનપૂર્વક થતું હોવાને કારણે તેને "જ્ઞાયિકા વ્યાવૃત્તિ" કહે છે ' જ્ઞસ્ય વ્યાવૃત્તિ જ્ઞાયિકા વ્યાવૃત્તિઃ" આ કથન અનુસાર જ્ઞાયક (જ્ઞાતા) ની જે વ્યાવૃત્તિ છે તેનું નામ જ 'જ્ઞાયિકા વ્યાવૃત્તિ" છે આ રીતે અહીં જે વ્યાવૃત્તિને જ્ઞાયિકા કહેવામાં આવેલ છે, તે અભેદ સબંધની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવેલ છે એટલે કે જ્ઞાયકે (જ્ઞાતાએ) જે પાપાદિકોની વ્યાવૃત્તિ (નિવૃત્તિ) કરી છે, તે પોતાના જ્ઞાનથી જ કરી છે, તેથી તે જ્ઞાયકના જ્ઞાનના કાર્યરૂપ છે, પરન્તુ તે કાર્યને જે "જ્ઞાયિકા" પદથી પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે, તે તેની વ્યાવૃત્તિ કરનારા આત્મામાં અને કરવામાં આવેલી તે વ્યાવૃત્તિમાં અભેદ માનીને કહેવામાં આવ્યું છે

चारित्रं मोक्तं, तद्विपक्षभूते चाशुभाध्यवसायानुष्ठाने इति तयोर्भेदानतिदेशेनाह- 'एव'-मित्यादि। एवं-व्यावृत्तिवत् अध्युपपादना पर्यापादनाऽपि विज्ञेया, तत्र-अध्युपपादनम् अध्युपपादना इन्द्रियार्थेष्वासक्तिः, तत्र विषयजन्यमनर्थं जानतोऽपि तत्राध्युपपत्तिः सा 'जाणू' इति, ज्ञायिकाऽध्युपपादना। या त्वजानतस्तत्राध्युपपत्तिः सा 'अजाणू' इति अज्ञायिका। या तु संशयवतो विषयेष्वध्युपपत्तिः सा विचिकित्साध्युपपादना। एवं पर्यापादन पर्यापादना-पर्यापादना-पर्यापत्तिरासे

है। तथा-अज्ञानी आत्मा की जो इनके स्वरूप फल और हेतु को जाने विना इनसे व्यावृत्ति होती है वह अज्ञानिका व्यावृत्ति है। तथा जो हिंसादिक से व्यावृत्ति संशय से होती है वह व्यावृत्ति विचिकित्सा व्यावृत्ति है यहां निमित्त और निमित्ती में अभेद सम्बन्ध मानकर विचिकित्साको "व्यावृत्ति" कहा गया है। इन्द्रियोंके अर्थोंमें जो आसक्ति है वह अध्युपपादना है यह अध्युपपादना आसक्ति भी व्यावृत्तिकी तरह ज्ञायिका अज्ञायिका और विचिकित्सा के भेद से तीन प्रकार की है इनमें विषयजन्य अनर्थ को जानते हुवे भी जो उनमें आत्मा की आसक्ति है वह ज्ञायिकी अध्युपपादना है। तथा-जो अज्ञान से विषयादिकों में आसक्ति होती है वह अज्ञायिकी अध्युपपादना है। तथा जो संशयवाले आत्मा की विषयों में आसक्ति है, वह विचिकित्सा अध्युपपादना है,

અજ્ઞાની આત્મામા, તેમના સ્વરૂપ (હિંસાદિકોનું સ્વરૂપ), તેમનુ ફલ અને તેમના હેતુઓને જાણ્યા વિના, તે હિંસાદિક પાપોમાથી જે વ્યાવૃત્તિ (નિવર્તન) થાય છે તેને અજ્ઞાનિકા વ્યાવૃત્તિ કહે છે. તથા સંશયથી આત્મા હિંસાદિકોનો જે ત્યાગ કરે છે, તે ત્યાગરૂપ વ્યાવૃત્તિને 'વિચિકિત્સા વ્યાવૃત્તિ' કહે છે. અહીં નિમિત્ત અને નિમિત્તીમાં અભેદ સબંધ માનીને વિચિકિત્સાને 'વ્યાવૃત્તિ' કહેવામા આવેલ છે

ઇન્દ્રિયોના વિષયમા જે આસક્તિ હોય છે તેને અધ્યુપપાદના કહે છે. તે અધ્યુપપાદનાના પણ વ્યાવૃત્તિની જેમ જ્ઞાયિકા, અજ્ઞાયિકા અને વિચિકિત્સા રૂપ ત્રણ ભેદ કહ્યા છે. વિષયજન્ય(વિષયોથી થનારા) અનર્થને જાણવા છતાં પણ તેમા આત્માની જે આસક્તિ હોય છે તેને 'જ્ઞાયિકા અધ્યુપપાદના' કહે છે, તથા અજ્ઞાનને કારણે વિષયાદિકોમાં આત્માની જે આસક્તિ હોય છે તેને 'અજ્ઞાયિકા અધ્યુપપાદના' કહે છે સંશયવાળા આત્માની વિષયોમાં જે આસક્તિ હોય છે તેને 'વિચિકિત્સા અધ્યુપપાદના' કહે છે.

આસેવનાને પર્યાપાદના કહે છે. તે પર્યાપાદના પણ જ્ઞાયિકા, અજ્ઞાયિકા અને વિચિકિત્સાના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. વિષયજન્ય અનર્થને જાણવા

यनेत्यर्थः, साऽपि ज्ञायिकाऽज्ञायिका – विचिकित्सा भेदेन त्रिविधा पूर्ववद् व्याख्येया ॥ सू० ८५ ॥

'जाणू'-त्ति ज्ञः-विज्ञान्, स च ज्ञानाद् भवतीत्युक्तं, ज्ञानं चातीन्द्रियार्थेषु प्रायः शास्त्राद् भवतीति शास्त्रभेदेन तद् भेदानाह-'तिविहे अंते' इत्यादि, अन्तः-निर्णयः स त्रिविधः प्रज्ञप्त, तथाहि-लोकान्तः १, वेदान्त २, समयान्तः ३ । तत्र-लोकान्तः, अत्र लोकशब्देन लोकशास्त्रं गृह्यते, तच-अर्थशास्त्रादि, तस्मात् अन्तः-मर्यादिरूपो निर्णय इति लोकान्तः । एवं वेदान्तः समयान्तश्च विज्ञेयः,

---

आसेवना का नाम पर्यापादना है यह आसेवना भी ज्ञायिका अज्ञायिका और विचिकित्सा के भेद से तीन प्रकार की होती है इनमें जो विषयजन्य अनर्थ को जानकर भी उनका सेवन करता है वह ज्ञायिका पर्यापादना है। तथा-अज्ञान से जो उनका सेवन करता है वह अज्ञायिका पर्यापादना है, और-जो संशयवालों की विषयों में सेवन रूप पर्यापादना है वह विचिकित्सा पर्यापादना है ॥ ८५ ॥

"जाणु" त्ति" ज्ञ नाम विज्ञान का है आत्मा ज्ञ ज्ञान से होता है यह पहले कहा जा चुका है अतीन्द्रिय पदार्थों में ज्ञान प्रायः शास्त्र से होता है अतः-अब सूत्रकार शास्त्र भेदसे उसके भेदों का कथन करते हैं-"तिविहे अंतो" अन्त नाम निर्णय का है यह निर्णय लोकान्त वेदान्त और समयान्त के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है यहां लोकान्त शब्द से लोक शास्त्र गृहीत हुआ है वह लोकशास्त्र अर्थशा

छतां पण तेनुं जे सेवन करवामां आवतुं होय तो एवा सेवनने 'ज्ञायिका पर्यापादना' कहे छे, जे अज्ञानथी तेनुं सेवन करातुं होय तो तेने 'अज्ञायिका पर्यापादना कहे छे संशयवाळा जीवोनी विषयोना सेवन रूप जे पर्यापादना छे तेनुं नाम "विचिकित्सा पर्यापादना" छे ॥ सू ८५ ॥

८६ मां सूत्रनो भावार्थ—' जाणु त्ति " 'ज्ञ' एटले जाणनार अथवा विद्वान. ज्ञाननी प्राप्तिथी ज आत्मा 'ज्ञ' (विद्वान) थाय छे, आ वात पहेलां प्रकट थई चुकी छे अतीन्द्रिय पदार्थोमां ज्ञान प्रायः शास्त्रो द्वारा ज प्राप्त थाय छे तेथी हवे सूत्रकार शास्त्रना भेदोनी अपेक्षाए तेनुं कथन करे छे.

' तिविहे अंतो " इत्यादि—

'अन्त' एटले निर्णय आ निर्णयना त्रण भेद कह्या छे-" लोकान्त, वेदान्त, अने समयान्त." अहीं " लोकान्त " पदथी लोकशास्त्र गृहीत थयेल छे अर्थशास्त्र आदिने लोकशास्त्र कहे छे ते लोकशास्त्रने आधारे जे मर्यादि

तत्र—वेदा ऋग्यजुः सामाथर्वरूपाश्चत्वारः। समयाः—जैनसिद्धान्ता आचाराङ्गादयः ॥ सू० ८६ ॥

पूर्वं समयान्तः प्रोक्तः, समयश्च जिनकेवल्यर्हच्छब्दवाच्यैराप्तपुरुषैः प्ररूपितः एव सम्यग् भवतीति जिनादिशब्दवाच्यभेदान् प्ररूपयितुं सूत्रत्रयमाह—तत्र प्रथमजिनसूत्रमाह—'तओ जिणा इत्यादि, रागद्वेष मोहान जयन्तीति जिनाः—सर्वज्ञाः

उक्तञ्च—" रागो द्वेषस्तथा मोहो, जितो येन जिनो ह्यसौ।
अस्त्रीशस्त्राक्षमालत्वादर्हन्नेवानुमीयते " ॥ १ ॥ इति।

स्त्रादिरूप कहा गया है इससे जो अर्थादिरूप निर्णय होता है वह लोकान्त है इसी प्रकार से ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद ४ इस चार वेदों से जो अर्थादि निर्णय होता है वह वेदान्न है, तथा जैन सिद्धान्तरूप आचाराङ्गादिकोंसे जो अर्थादिरूप निर्णय होता है वह समयांन है ॥सू ८६॥

समयान्त का जो कथन किया जाता है सो वह समय जिन केवली अर्हन्त शब्दवाच्य आप्त पुरुषों द्वारा प्रणीत होने पर ही सम्यक् सत्य होता है इसलिये सूत्रकार अब जिनादि शब्दवाच्य भेदों की प्ररूपणा करने के लिये तीन सूत्र कहते हैं-" तओ जिणा " इत्यादि, जो राग द्वेष एवं मोहरूपी शत्रुओं को जीत लेते हैं वे जिन हैं सर्वज्ञ है। कहा भी है " रागो द्वेषस्तथा मोहः " इत्यादि, इन्द्रियरूपी शस्त्रों के मोजूद होने पर भी जो अस्त्री विषयवासना रहित हैं वे अर्हन्त हैं। ये जिन तीन होते हैं, जैसे-अवधिजिन-अवधिज्ञान की प्रधानतावाले जिन,

---

રૂપ નિર્ણય થાય છે તેને લોકાન્ત કહે છે એ જ પ્રમાણે ઋગ્વેદ, સામવેદ, યજુર્વેદ અને અથર્વવેદને આધારે જે અર્થાદિ રૂપ નિર્ણય થાય છે તેને વેદાન્ત કહે છે આચારાંગાદિ રૂપ જૈન સિદ્ધાન્તને આધારે જે અર્થાદિ રૂપ નિર્ણય થાય છે તેને સમયાન્ત કહે છે ॥ સૂ ૮૬ ॥

૮૭ માં સૂત્રનો ભાવાર્થ—સમયાન્તનું કથન પહેલાના સૂત્રમાં કરવામાં આવ્યુ. તે સમય જિન, કેવલી, અર્હન્ત, શબ્દવાચ્ય આપ્તપુરુષો દ્વારા પ્રણીત હોવાથી સમ્યક્ સત્ય હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર જિનાદિ શબ્દવાચ્ય ભેદોનું નિરૂપણ કરવા નિમિત્તે ત્રણ સૂત્રો કહે છે-" तओ जिणा " ઇત્યાદિ—

જેમણે રાગ, દ્વેષ અને મોહરૂપી શત્રુઓને જીતી લીધાં છે, તેમને જિન-સર્વજ્ઞ કહે છે. કહ્યું પણ છે કે-" रागो द्वेषस्तथा मोहः " ઇત્યાદિ—

ઇન્દ્રિયો રૂપી શસ્ત્રો મોજૂદ હોવા છતાં પણ જેઓ વિષયવાસનાથી રહિત હોય છે તેમને અર્હન્ત કહે છે.

ते त्रयो यथा अवधिज्ञानप्रधानो जिनोऽवधिज्ञानजिनः, मनःपर्यवज्ञानप्रधानो जिनो मनःपर्यवज्ञानजिनः, एतौ द्वौ निश्चयप्रत्यक्ष-ज्ञानवत्त्वात् तथा जिनाविव जिनौ इत्युपचारगम्यौ स्तः। तृतीयः केवलज्ञानजिनः, एष निरुपचारः सर्वज्ञत्वात्—

मनःपर्यवज्ञानजिन–मनःपर्यवज्ञानप्रधानतावाले जिन, और केवलज्ञानजिन–केवलज्ञान की प्रधानतावाले जिन, इनमें अवधिज्ञानजिन और मनःपर्यवज्ञानजिन ये दो यथार्थ में केवलज्ञानजिन की तरह जिन नहीं हैं। क्यों कि इनका जो ज्ञान है वह विकल देशप्रत्यक्ष है जब कि-केवलज्ञानजिन का प्रत्यक्ष सकल प्रत्यक्ष है परन्तु–फिर भी केवलज्ञान जिन का प्रत्यक्ष जैसा अपने विषय में पूर्णरूप से विशद होता है उसी प्रकार से इन दोनों जिनों का ज्ञान भी अपने अपने विषय में पूर्णरूप से विशद होता है। जैसा उनका प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय होता है उसी प्रकार से ये दोनों ज्ञान भी अतिन्द्रिय होते हैं। इनके उनके प्रत्यक्ष में सकलता और विकलता यह विषयोपाधिजन्य है, इसलिये निश्चय प्रत्यक्ष ज्ञानवाले होने से ये दोनों जिनके भगवान् जैसे जिन माने गये हैं, यह कथन उपचार से किया गया जानना चाहिये। वास्तव में जिन तो केवलज्ञानवाला जो होता है वही है। केवलज्ञान वालों में "जिन" ऐसा

જિન ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે-(૧) અવધિજિન-અવધિજ્ઞાનની પ્રધાનતા વાળો જિન, (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાન જિન-એટલે કે મનઃપર્યવજ્ઞાનની પ્રધાનતા વાળો જિન, અને (૩) કેવળજ્ઞાન જિન-એટલે કે કેવળજ્ઞાનની પ્રધાનતાવાળો જિન. આ ત્રણ પ્રકારના જે જિન કહ્યા છે તેમાંના અવધિજ્ઞાન જિન અને મનઃપર્યવજ્ઞાન જિન, આ બે કેવળજ્ઞાન જિનની જેમ યથાર્થ રૂપે જિન નથી, કારણ કે તેમનું જે જ્ઞાન હોય છે તે વિકલ (દેશપ્રત્યક્ષ) હોય છે, પરન્તુ કેવળજ્ઞાન જિનનું જ્ઞાન સકલ પ્રત્યક્ષ હોય છે, છતાં પણ કેવળજ્ઞાન જિનનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન જેમ પોતાના વિષયમાં પૂર્ણરૂપે વિશદ હોય છે એ જ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાન જિન અને મનઃપર્યવજ્ઞાન જિનોનાં જ્ઞાન પણ પોતપોતાના વિષયમાં પૂર્ણરૂપે વિશદ હોય છે જેવી રીતે તેમનું પ્રત્યક્ષ અતીન્દ્રિય હોય છે, એ જ પ્રમાણે તે બન્ને જ્ઞાન પણ અતીન્દ્રિય હોય છે તેમના પ્રત્યક્ષમાં સકલતા અને વિકલતા તે વિષયોપાધિજન્ય છે તેથી નિશ્ચય પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનવાળા હોવાથી તે બન્ને જિનને ભગવાન જેવાં જ જિન માનવામાં આવ્યા છે, આ કથનને ઔપચારિક કથન જ સમજવું જોઈએ વાસ્તવમાં કેવળજ્ઞાની જીવને જ ખરા જિન કહી શકાય છે કેવળજ્ઞાની જીવોને "જિન" કહેવાનું કારણ એ

अथ केवलिसूत्रमाह-'तओ केवली' इत्यादि, केवलम्-एकमनन्तं पूर्णं वा ज्ञानादिकं येषामस्तीति केवलिनः, उक्तञ्च—

"कसिणं केवलकप्पं, लोगं जाणंति तह य पासंति।
केवलचरित्तणाणी, तम्हा ते केवली होंति ॥ १ ॥"

छाया-कृत्स्नं केवलकल्पं, लोकं जानन्ति तथा च पश्यन्ति।
केवलचारित्रज्ञानिनः, तस्मात्ते केवलिनो भवन्ति ॥ १ ॥

ते - अवधिमनःपर्यवकेवलज्ञानभेदात्रयः। तत्रावधिज्ञानकेवलीमनः-पर्यवज्ञानकेवलीत्येतौ द्वौ जिनवन्निश्चयप्रत्यक्षज्ञानवत्त्वादुपचारात्केवलिपदवाच्यौ स्तः, तृतीयः केवलज्ञानकेवली निरुपचारः सर्वभावानां साक्षाद्दर्शकत्वात् ।२।

व्यवहार उनको सर्वज्ञ होने से निरुपचरित है। केवल शब्द का अर्थ एक अनन्त, अथवा पूर्ण है जिनको ज्ञानादिक एक अथवा अनन्त, या पूर्ण होता है वह केवली है। कहा भी है-"कसिणं केवलकप्पं" इत्यादि, ये केवली भी अवधिज्ञानी मनः पर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी के भेद से तीन प्रकार के कहे गये हैं। इनमें अवधिज्ञानी केवली, और मनः पर्यवज्ञानी केवली ये दो, जिनकी तरह निश्चय प्रत्यक्षज्ञानवाले होने के कारण उपचार से केवली कहे गये हैं। और तीसरा जो केवलज्ञानी केवली है वह निरुपचरित केवली कहा गया है। क्यों कि वह रूपी और अरूपी समस्त भावों का साक्षात् देखने वाला होता है, तात्पर्य यह है कि-अवधिज्ञानी, और मनः पर्यवज्ञानी केवली रूपीमात्र पदार्थ को ही

છે કે તેઓ સર્વજ્ઞ હોય છે કેવળ પદનો અર્થ એક, અનન્ત અથવા પૂર્ણ થાય છે જેમના જ્ઞાનાદિક એક અથવા અનન્ત અથવા પૂર્ણ હોય છે તેમને કેવલી કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે-"कसिणं केवलकप्पं" ઇત્યાદિ—

તે કેવલીના પણ અવધિજ્ઞાની, મન પર્યવજ્ઞાની અને કેવળજ્ઞાની, એ ત્રણ ભેદ કહ્યા છે. અવધિજ્ઞાની કેવલી અને મન પર્યવજ્ઞાની કેવલિ, આ બન્ને જિનની જેમ નિશ્ચય (નિયત) પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનવાળા હોય છે, તેથી તેમને ઔપચારિક રીતે જ કેવલી કહેવામા આવેલ છે, અને ત્રીજા જે કેવળજ્ઞાની કેવળી છે તેમને નિરુપચરિત કેવળી કહેવામાં આવ્યા છે, કારણ કે તેઓ રૂપી, અરૂપી સમસ્ત ભાવોને સાક્ષાત્ જોઈ શકનારા હોય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે—

અવધિજ્ઞાની અને મન.પર્યવજ્ઞાની કેવળી માત્ર રૂપી પદાર્થોને જ દ્રવ્ય ક્ષેત્રાદિની મર્યાદામાં રહીને સાક્ષાત્ જાણી દેખી શકે છે-તેઓ અરૂપી પદાર્થોને

अथ तृतीयमर्हत्सूत्रमाह–' तओ अरहा ' इत्यादि, अर्हन्तिदेवकृताष्टमहाप्रातिहार्यरूपमतिशयमित्यर्हन्त । ते त्रयः शेष व्याख्या जिनवद् विज्ञेया ३॥सू०८७॥

एते च सलेश्या अपि भवन्तीति चतुर्दशसूत्रैर्लेश्या प्रकरणमाह—

मूलम्—तओ लेसाओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, त जहा कण्हलेसा, णीललेसा काउलेसा ।१। तओ लेसाओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ त जहा–तेऊलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा ।२। एव दोग्गइगामिणीओ ३, सोग्गइगामिणीओ४, सकिलिट्ठाओ ५, असकिलिट्ठाओ ६, अमणुण्णाओ ७, मणुण्णाओ

द्रव्यक्षेत्रादि की मर्यादा लेकर साक्षात् जानते है, अरूपी पदार्थों को नहीं। परन्तु–जो केवलज्ञान से केवली होता है केवलज्ञानवाला होता है वह रूपी अरूपी समस्त पदार्थों को जानता है, परन्तु अपने विषय को जानने में इन तीनों केवलियों को ज्ञान में वैशद्य का अन्तर नहीं है यही कथन निश्चय प्रत्यक्ष ज्ञानवान् निश्चय प्रत्यक्ष से कहा गया है। अर्हन्त सूत्र की प्ररूपणा करते हुये सूत्रकार अब कहते हैं–जो देवकृत अष्ट महाप्रातिहार्यरूप अतिशयवाले होते हैं ऐसे अर्हन्त अवधिज्ञानअर्हन्त आदि के भेद से तीन प्रकार के जो कहे गये हैं सो इन पदों की व्याख्या जिन व्याख्या की तरह जाननी चाहिये ॥ सू०८७

જાણી–દેખી શકતા નથી પરન્તુ જે કેવળજ્ઞાનવાળા કેવળી હોય છે, તેઓ રૂપી અરૂપી સમસ્ત પદાર્થોને જાણી દેખી શકે છે અમુક મર્યાદામાં રહેલા પદાર્થોને જ તેઓ જોઈ શકે છે, એવું નથી, પરન્તુ ત્રિકાળવર્તી અને ત્રણે લોકમાં રહેલા સમસ્ત દ્રવ્યોને "હાથમાં રહેલા આમળાની જેમ" જાણી–દેખી શકે છે પરન્તુ પોતપોતાના વિષયમાં તે ત્રણે કેવલીઓના જ્ઞાનમાં પૂર્ણરૂપે વિશદતા જ હોય છે એ જ વાત નિશ્ચય પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનવાન્ નિશ્ચય પ્રત્યક્ષથી પ્રકટ કરવામાં આવી છે

હવે સૂત્રકાર અર્હંત સૂત્રની પ્રરૂપણા કરે છે–જેઓ દેવકૃત અષ્ટ મહા પ્રાતિહાર્યરૂપ અતિશયવાળા હોય છે એવા અર્હંતોના પણ ત્રણ પ્રકાર છે– (૧) અવધિજ્ઞાન અર્હંત (૨) મનઃપર્યવજ્ઞાન અર્હંત અને કેવળજ્ઞાન અર્હંત. અવધિજ્ઞાન જિન આદિ પદોના જેવી જ આ પદોની વ્યાખ્યા સમજવી. ॥સૂ. ૮૭॥

८, अविसुद्धाओ ९, विसुद्धाओ १०, अप्पसत्थाओ ११, पसत्थाओ १२, सीयलुक्खाओ १३, णिद्धुण्हाओ १४ ॥ सू०८८॥

छाया-तिस्रो लेश्या दुरभिगन्धाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या । १ । तिस्रोलेश्याः सुरभिगन्धाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या ।२। एव दुर्गतिगामिन्यः३, सुगतिगामिन्यः ४, संक्लिष्टाः ५, असंक्लिष्टाः ६, अमनोज्ञाः ७, मनोज्ञा ८, अविशुद्धाः ९, विशुद्धाः १०, अप्रशस्ताः ११, प्रशस्ता १२, शीतरूक्षाः १३, स्निग्धोष्णाः १४ ॥ सू० ८८॥

ये लेश्या सहित भी होते हैं, अतः अब सूत्रकार १४ सूत्रों द्वारा लेश्या प्रकरण कहते हैं-" तओ लेस्साओ दुब्भिगंधाओ इत्यादि ।

सूत्रार्थ-तीन लेश्याएँ दुर्गन्धवाली कही गईहैं, जैसे कृष्णलेश्या १ नीललेश्या २ और कापोतलेश्या ३।१। तीन लेश्याएँ सुभिगन्धवाली कही गईहैं, जैसे-तेजोलेश्या १ पद्मलेश्या २ और शुक्ललेश्या ३ । २ । इसी प्रकार से तीन लेश्याएँ जीव को दुर्गति में ले जानेवाली कही गई हैं ३ और तीन लेश्याएँ जीव को सुगति में ले जानेवाली कही गई हैं ४ इसी प्रकार से तीन लेश्याएँ संक्लिष्ट (अशुभ) परिणामों का हेतु होने से संक्लिष्ट कही गई हैं ५ और तीन लेश्याएँ संक्लिष्ट परिणामों का हेतु नहीं होने से असंक्लिष्ट कही गई है ६ इसी प्रकार से तीन लेश्याएँ अमनोज्ञ कही गई हैं ७ और तीन लेश्याएँ मनोज्ञ कही गई हैं ८ इसी प्रकार से तीन लेश्याएँ अविशुद्ध ९ और तीन लेश्याएँ विशुद्ध १०

તેઓ લેશ્યાસહિત પણ હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર ૧૪ સૂત્રો દ્વારા લેશ્યાઓનું કથન કરે છે-" तओ लेस्साओ दुब्भिगंधाओ " ઇત્યાદિ—

(૧) ત્રણ લેશ્યાઓને દુર્ગંધવાળી કહી છે-કૃષ્ણ લેશ્યા, નીલ લેશ્યા અને કાપોત લેશ્યા (૨) ત્રણ લેશ્યાઓને સુરભિ ગંધવાળી કહી છે-તેજો લેશ્યા પદ્મ લેશ્યા અને શુકલ લેશ્યા (૩) એ જ પ્રમાણે ત્રણ લેશ્યાઓને જીવને દુર્ગતિ અપાવનારી કહી છે (૪) એ જ પ્રમાણે ત્રણ લેશ્યાઓને જીવને સુગતિમાં લઇ જનારી કહી છે (૫ એ જ પ્રમાણે ત્રણ લેશ્યાઓ સંકિલષ્ટ (મલીન) પરિણામોના હેતુ (કારણ) રૂપ હોવાથી તેમને સંકિલષ્ટ કહી છે, અને (૬) ત્રણ લેશ્યાઓ સંકલિષ્ટ પરિણામોના કારણરૂપ નહી હોવાથી તેમને અસંકિલષ્ટ કહી છે (૭) એ જ પ્રમાણે ત્રણ લેશ્યાઓને અમનોજ્ઞ કહી છે, અને (૮) ત્રણ લેશ્યાઓને મનોજ્ઞ કહી છે (૯) એ જ પ્રમાણે ત્રણ લેશ્યાઓને અવિશુદ્ધ કહી

टीका—' तओ लेसाओ ' इत्यादि । तिस्र षट्सु मिसस्यका: लेश्या' दुरभिगन्धा: दुर्गन्धवत्यः अप्रसा:, दुरभिगन्धत्व च तासां पुद्गलात्मकत्वात्, पुद्गलेषु च गन्धादीनामवश्यम्भावात्, उक्तञ्च—

" जह गोमडस्स गंधो, सुणगमडस्स य जहा अहिमडस्स ।
एत्तो वि अणतगुणो, लेसाण अप्पसत्थाण ॥ १ ॥ "

छाया—यथा गोमृतस्य गन्ध, शुनकमृतस्य यथाऽहिमृतस्य ।
इतोऽप्यनन्तगुणो लेश्यानामप्रशस्तानाम् ॥ १ ॥

ता दर्शयति-कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या । वर्णश्चासां नामानुसारी विज्ञेयस्तेन कृष्णलेश्या-कृष्णवर्णा, नीललेश्या-नीलवर्णा कापोतलेश्या-

---

कही गई हैं। इसी प्रकार से तीन लेश्याएँ प्रशस्त कही गई हैं ११ और तीन लेश्याएँ अप्रशस्त कहीं गई हैं-१२। इसी प्रकार से तीन लेश्याएँ शीत-रूक्ष कही गईहैं-१३ और-तीन लेश्याएँ स्निग्ध उष्ण कही गईहैं १४।

इन सूत्रों का तात्पर्यार्थ इस प्रकार से है-लेश्या-६ प्रकार की कही गई हैं कृष्णलेश्या-नीललेश्या-कापोतलेश्या-तेजोलेश्या-पद्मलेश्या-और-शुक्ललेश्या-६। इन में आदि की जो ३ लेश्याएँ हैं-कृष्णलेश्या नीललेश्या, और-कापोतलेश्या-३ ये दुरभिगन्धवाली इसलिये कही गई हैं कि-ये दुरभिगन्धवाले पुद्गलों वाली होती हैं, क्यों कि-पुद्गलों में गन्धादिक गुण अवश्य होते हैं। कहा भी है-" जहगोमडस्स गंधो " इत्यादि-जैसीगोके मृतक शरीर की, कुत्ते के मरे शरीर की, अथवा-जैसी सर्पके मरे शरीर की, दुर्गन्ध होती है इस से भी अनन्तगुणें

છે, અને (૧૦) ત્રણ લેશ્યાઓને વિશુદ્ધ કહી છે (૧૧) એ જ પ્રમાણે ત્રણ લેશ્યાઓને અપ્રશસ્ત કહી છે અને (૧૨) ત્રણ લેશ્યાઓને પ્રશસ્ત કહી છે (૧૩) એ જ પ્રમાણે ત્રણ લેશ્યાઓને શીત-રૂક્ષ કહી છે, અને (૧૪) ત્રણ લેશ્યાઓને સ્નિગ્ધ-ઉષ્ણ કહી છે

હવે આ ૧૪ સૂત્રોનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે-લેશ્યાના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) કૃષ્ણ લેશ્યા, (૨) નીલ લેશ્યા, (૩) કાપોત લેશ્યા (૪) તેજો લેશ્યા, (૫) પદ્મ લેશ્યા અને (૬) શુકલ લેશ્યા આ ૬ લેશ્યાઓ માંથી પહેલી ત્રણ લેશ્યાઓને દુરભિ ગન્ધવાળી કહેવાનું કારણ એ છે કે તે ત્રણે લેશ્યાઓ દુરભિ ગન્ધવાળા પુદ્ગલોવાળી હોય છે, કારણ કે પુદ્ગલોમાં ગન્ધાદિ ગુણ અવશ્ય હોય છે કહ્યું પણ છે કે-" जह गोमडस्स गधो " ઇત્યાદિ ' ગાયના મૃત કલેવરની કૂતરાના મૃત કલેવરની અને સાપના મૃત શરીરની

कपोतवर्णा धूम्रवर्णेत्यर्थः । १ । 'तओ' इत्यादि, तिस्रोलेश्याः सुरभिगन्धाः-सुगन्धवत्यः प्रज्ञप्ताः आह चात्रार्थे--

"जह सुरभिकुसुमगंधो, गन्धोवासाण पिस्समाणाण ।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हंवि ॥ १ ॥

छाया-यथा सुरभिकुसुमगन्धः, गन्धोवासानां पिष्यमाणानाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणः (गन्धः) प्रशस्तलेश्यानां तिसृणामपि ॥ १ ॥

ता एवाह—तेजो-वह्निः, तद्वर्णालेश्या तेजोलेश्या लोहितवर्णेत्यर्थः, पद्म-

---

अधिकगन्ध कृष्ण-नील-एवं-कापोत इन तीन अप्रशस्त लेश्याओं की होती है [उत्त. अ. ३४ गा. १६] । "जह सुरहि कुसुमगंधो-" इत्यादि । जैसी सुगन्धित फूलों की सुगन्ध होती है, अथवा-जैसे-सुगन्ध पीसे जाते हुवे सुगन्धित द्रव्यों से आती है, इन से भी अनन्तगुण अधिक सुगन्धि पीत-पद्म-एवं शुक्ल, इन तीन प्रशस्त लेश्याओं की होती है [उत्तर-अ ३४ गा. १७] इन में वर्ण इन के नामानुसार होता है-इसलिये-कृष्णलेश्या कृष्णवर्ण वाली होती है, नीललेश्या नीलवर्णवाली होती है, एवम्-कापोतलेश्या धूम्रवर्णवाली होती है-१ "तओ-" इत्यादि, तीन लेश्याएँ-तेज, पद्म, और-शुक्ल, ये तीन लेश्याएँ जो-सुरभिगन्धि वाली कही गई हैं सो ये-सुरभिगन्धवाले पुद्गलोंवाली होती हैं । कहा भी है-" जह सुरभि कुसुमगंधो-" इत्यादि, वर्ण इन

જેવી દુર્ગંધ હોય છે, તેના કરતા પણ અનન્તગણી અધિક દુર્ગંધ કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત, આ ત્રણ અપ્રશસ્ત લેશ્યાઓની હોય છે. ' ઉ સૂ. ના ૩૪ માં અધ્યયનની ૧૬ મી ગાથામાં આ વાતનુ પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યુ છે.

"जह सुरहिकुसुमगन्धो" ઇત્યાદિ—

જેવી સુગંધીદાર ફૂલોની સુગંધ હોય છે, જેવી લસોટેલા સુગંધી દ્રવ્યોની સુગંધ હોય છે, તેના કરતાં પણ અનતગણી સુગન્ધ તેજોલેશ્યા, પદ્મલેશ્યા અને શુકલ લેશ્યાની હોય છે. (ઉત્તર અ ૩૪ ગાથા ૧૭)

આ છએ લેશ્યાઓના વર્ણ તેમના નામાનુસાર હોય છે. જેમકે કૃષ્ણ લેશ્યા શ્યામ વર્ણવાળી, નીલલેશ્યા નીલ વર્ણવાળી, કાપોત લેશ્યા ધૂમ્ર વર્ણવાળી હોય છે "तओ" ઇત્યાદિ—

તેજોલેશ્યા, પદ્મલેશ્યા અને શુકલ લેશ્યાને સુરભિ ગંધવાળી કહી છે કારણ કે તેઓ સુરભિ ગંધવાળા પુદ્ગલોવાળી હોય છે કહ્યુ પણ છે કે—

"जह सुरभि कुसुमगंधो" ઇત્યાદિ—

लेश्या-पद्मगर्भवर्णा कमलगर्भसदृशपीतवर्णेत्यर्थः, शुक्लवर्णालेश्या शुक्ललेश्या । २ । एवं-प्रथम-द्वितीयसूत्रवत् तिस्त्रस्तिस्रो लेश्याः अशुभशुभरूपा दुर्गतिगामिनी सुगतिगामिन्यादि विशेषणविशिष्टाश्चतुर्दशसूत्रे व्याख्येयाः । तत्र दुर्गति-नरकतिर्यग्रूपा गमयन्ति प्राणिनमिति दुर्गतिगामिन्यः ३, सुगति-मनुष्यदेवग तिरूपां गमयन्ति प्राणिनमिति सुगतिगामिन्यः ४ । एवं संक्लिष्टा संक्लेश-हेतुत्वात् ५, एतद्विपरीता असंक्लिष्टाः । एवं विपर्ययः सर्वत्र विज्ञेय, स तु

में इनके नामानुसार होता है, जैसे-तेजोलेश्या लोहितवर्णवाली होती है क्यों कि-तेज नाम अग्निका है-अग्निका वर्ण लोहित होता है, अतः-यह लेश्या भी उसी के वर्ण जैसी कही गई है । पद्मलेश्या-पीतवर्णवाली होती है, क्यों कि-पद्मगर्भ पीतवर्णवाला होता है । पद्मशब्द से यहां पद्म का गर्भ लिया गया है । शुक्लवर्णवाली शुक्ललेश्या होती है प्रथम द्वितीय सूत्र के प्रतिपादन की तरह तीन-२ लेश्याएँ अशुभरूप और शुभरूप, दुर्गति में लेजानेवाली-और सुगति में लेजानेवाली-संक्लिष्ट हेतुवाली-और असंक्लिष्ट हेतुवाली तथा-अमनोज्ञ एवं-मनोज्ञ आदि विशेषणोंवाली होती है । ऐसा-प्रतिपादन इन दो सूत्रों से आगे के १२ सूत्रों द्वारा प्रतिपादन किया गया है-जो प्राणी को मनुष्य गतिरूप और देवगतिरूप शुभगतिमें लेजातीहैं, वे लेश्याएँ सुगतिगामिनी और-जो जीव को नरक एवं-तिर्यग्गति में लेजाती हैं वे दुर्गतिगामिनी है । अशुभ-

આ ત્રણ લેશ્યાઓનાં વર્ણ પણ તેમનાં નામાનુસાર જ હોય છે જેમકે તેજ નામ અગ્નિનું છે અગ્નિનો વર્ણ લોહિત (લાલ) હોય છે તેથી આ લેશ્યાને પણ લોહિત વર્ણવાળી કહી છે પદ્મલેશ્યા પીળા વર્ણની હોય છે, પદ્મગર્ભ (કમળનો ગર્ભ) પીળા વર્ણવાળો હોય છે "પદ્મ" પદથી અહીં પદ્મનો ગર્ભ ગૃહીત થયો છે શુકલ લેશ્યા સફેદ (શુકલ) વર્ણવાળી હોય છે પહેલી ત્રણ લેશ્યાઓ અશુભ રૂપ દુર્ગતિમાં લઈ જનારી છે અને છેલ્લી ત્રણ લેશ્યાઓ શુભરૂપ સુગતિમાં લઈ જનારી છે જે લેશ્યાઓ જીવને નરક અને તિર્યંચ ગતિમાં લઈ જાય છે, તે લેશ્યાઓને દુર્ગતિ ગામિની કહે છે અને જે લેશ્યાઓ જીવને મનુષ્યગતિ અને દેવગતિ રૂપ શુભગતિમાં લઈ જાય છે, તે લેશ્યાઓને સુગતિ ગામિની કહે છે પહેલી ત્રણ અશુભ લેશ્યાઓ જીવના સંક્લિષ્ટ પરિણામના હેતુભૂત થાય છે તેથી તેમને સંક્લિષ્ટ લેશ્યાઓ કહી છે અને છેલ્લી ત્રણ શુભ લેશ્યાઓ (તેજો પદ્મ અને શુકલ લેશ્યાઓ) જીવના સંક્લિષ્ટ પરિણામના હેતુભૂત થતી નથી, તેથી તેમને અસંક્લિષ્ટ લેશ્યાઓ કહે છે.

सुबोध एव ६, अमनोज्ञाः-अमनोज्ञरसोपेतपुद्गलमयत्वात् ७-८। अति शुद्धा वर्णतः-९-१०। अप्रशस्ताः-अश्रेयस्योऽनादेया इत्यर्थः ११-१२। तथा-शीत रूक्षा. १३, स्निग्धोष्णाः १४, एते द्वे अपि स्पर्शत एवेति ॥ सू० ८८ ॥

पूर्वं लेश्यावर्णिताः, साम्प्रतं लेश्या विशिष्टमेव मरणं भवतीति मरणनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमाह-

मूलम्--तिविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा-बालमरणे, पंडियमरणे, बालपंडियमरणे १। बालमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा

लेश्याएँ जीवको संक्लिष्ट परिणाम का हेतुभूत होती है और-शुभलेश्याएँ असंक्लिष्ट परिणाम का हेतुभूत नहीं होती है। अमनोज्ञ और मनोज्ञ इन्हें इस कारण कहा गया है-कि अमनोज्ञ रसोपेत पुद्गलमय होती हैं और ये मनोज्ञ रसोपेत पुद्गलमय होती है। अविशुद्धता-और-विशुद्धता, इनमें वर्ण की अपेक्षा जाननी चाहिये। अप्रशस्तता-और-प्रशस्तता-इनमें-अश्रेयसी और-श्रेयसी होने के कारण हैं। अर्थात्-पूर्व की कृष्णादि ३ अनादेय-[त्याज्य] हैं, और उत्तर की तीन तेजोलेश्या आदि आदेय उपादेय हैं। शीतरूक्षता और स्निग्धउष्णता इनमें स्पर्श की अपेक्षा से कही गई जाननी चाहिये ॥ सू०८८ ॥

એ જ પ્રમાણે પહેલી ત્રણ અશુભ લેશ્યાઓ અમનોજ્ઞ, અવિશુદ્ધ અને અપ્રશસ્ત હોય છે જ્યારે છેલ્લી ત્રણ લેશ્યાઓ મનોજ્ઞ, વિશુદ્ધ અને પ્રશસ્ત હોય છે. પહેલી ત્રણ અશુભ લેશ્યાઓને અમનોજ્ઞ કહેવાનુ કારણ એ છે કે તે ત્રણે લેશ્યાઓ અમનોજ્ઞ રસોપેત પુદ્ગલમય હોય છે, અને છેલ્લી ત્રણ શુભ લેશ્યાઓ મનોજ્ઞ રસોપેત પુદ્ગલમય હોવાને કારણે તેમને મનોજ્ઞ કહી છે.

પહેલી ત્રણ અશુભ લેશ્યાઓમા વર્ણની અપેક્ષાએ અવિશુદ્ધતા સમજવી અને છેલ્લી ત્રણ શુભ લેશ્યાઓમાં વર્ણની અપેક્ષાએ વિશુદ્ધતા સમજવી. પહેલી ત્રણ લેશ્યાઓમા અપ્રશસ્તા કહી છે અને છેલ્લી ત્રણ લેશ્યાઓમાં પ્રશસ્તતા કહી છે પહેલી ત્રણ લેશ્યાઓ એ શ્રેયસી હોવાથી એટલે કે કૃષ્ણાદિ ત્રણ લેશ્યાઓ અનાદેય (ત્યાજય) હોવાથી તેમને અપ્રશસ્ત કહી છે અને તેજો લેશ્યા, પદ્મ લેશ્યા અને શુકલ લેશ્યા આદિ લેશ્યાઓ આદેય-ઉપાદેય હોવાથી તેમને પ્રશસ્ત કહેવામાં આવેલ છે.

પહેલી ત્રણ લેશ્યાઓમા શીત રૂક્ષતા અને છેલ્લી ત્રણ લેશ્યાઓમાં સ્નિગ્ધ ઉષ્ણતા સ્પર્શની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવેલ છે ॥ સૂ. ૮૮ ॥

ठियलेसे, सकिलिट्ठलेसे पज्जवजायलेसे ।२। पंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा ठियलेसे, असकिलिट्ठलेसे, पज्जवजायलेसे ।३। बालपंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, त जहा ठियलेसे, असकिलिट्ठलेसे अपज्जवजायलेसे। ४ ॥ सू० ८९ ॥

छाया–त्रिविधं मरणं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–बालमरणं, पण्डितमरणं, बालपण्डितमरणम् । १ । बालमरणं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–स्थितलेश्यं संक्लिष्टलेश्यं, पर्यवजातलेश्यम् । २ । पण्डितमरणं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–स्थितलेश्यं, असंक्लिष्टलेश्यम् पर्यवजातलेश्यम् । ३ । बालपण्डितमरणं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–स्थितलेश्यं, असंक्लिष्टलेश्यं, अपर्यवजातलेश्यम् ४ ॥ सू० ८९ ॥

अब सूत्रकार लेश्या वर्णनके बाद मरण का निरूपण करते हैं। क्यों कि–मरण लेश्या विशिष्ट ही होता है " तिविहे मरणे पण्णत्ते " इत्यादि,

सूत्रार्थ–मरण तीन प्रकारका कहा गयाहै जैसे बाल मरण, पण्डित मरण, और बालपण्डित मरण, १ इनमें बालमरण भी तीन प्रकार का कहा गया है, जैसे स्थितिलेश्य, संक्लिष्टलेश्य, और पर्यवजातलेश्य २ पण्डितमरण भी तीन प्रकार का होता है, जैसे स्थितिलेश्य, असंक्लिष्ट लेश्य, और पर्यवजातलेश्य। बालपण्डित मरण भी तीन प्रकार का कहा गया है, स्थितिलेश्य असंक्लिष्टलेश्य और अपर्यवजातलेश्य।

લેશ્યાઓનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર મરણનું નિરૂપણ કરે છે મરણ લેશ્યાવિશિષ્ટ જ હોય છે આ સંબંધને અનુલક્ષીને લેશ્યાનું નિરૂપણ કર્યા બાદ હવે મરણનું નિરૂપણ ચાર સૂત્રો દ્વારા કરવામાં આવે છે

" तिविहे मरणे पण्णत्ते " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–મરણ ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) બાલ મરણ (૨) પંડિત મરણ અને (૩) બાલ પંડિત મરણ

બાલ મરણના પણ ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સ્થિતિ લેશ્ય, (૨) સંક્લિષ્ટ લેશ્ય અને (૩) પર્યવજાત લેશ્ય

પંડિત મરણના પણ ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સ્થિતિ લેશ્ય, (૨) અસંક્લિષ્ટ લેશ્ય અને (૩) પર્યવજાત લેશ્ય.

બાલ પંડિત મરણના પણ ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સ્થિતિ લેશ્ય, (૨) અસંક્લિષ્ટ લેશ્ય અને (૩) અપર્યવજાત લેશ્ય

टीका--' तिविहे मरणे ' इत्यादि। मरणं, त्रिविधं, तदेवाह-वालमरणं, वालः-अज्ञस्तद्वद् यो वर्त्तते विरतिसाधकविवेकविकलत्वात् स वालः असंयत इत्यर्थः, तस्य मरणं वालमरण अस्मिन् मरणे व्रतप्रत्याख्यानादिकं न भवति। पण्डितमरणं, पण्डितः-सदसद्विवेकवान् विरतिफलेन फलवद्विज्ञानवत्त्वात् ज्ञाततत्त्वः संयत इत्यर्थः, तस्य मरणं पण्डितमरणम्, इदं व्रतप्रत्याख्यानादि सद्भावाच्छद्मस्थ-यतीनां भवति। वालपण्डितमरणं, वालः-अविरतः, पण्डितः-विरतः, उभयरूप-

---

टीकार्थ इस मरणके प्रतिपादक ४ सूत्रहैं, बाल शब्दसे यहां अज्ञानी लिया गयाहै इस अज्ञानी जैसा जो होताहै वह मरणहै। अर्थात् जीव जबतक विरति साधक विवेकसे रहित बना रहताहै तब तक बाल असंयत रहताहै और इसीसे उसे अज्ञानी कहा गया है। इस अज्ञ अवस्था का बाल-दशा का जो मरण है वह बालमरण है, इस मरण में अज्ञानी जीव के व्रत प्रत्याख्यान आदि नहीं होते हैं। विरतिरूप फल से फलवाला होता है पण्डितमरण सत् असत् का विवेक जिसे होता है वह पण्डित है इसका ज्ञान पण्डित का ज्ञान विरतिरूप फल से सफल होता है, तत्त्वों का इसे ज्ञान हो जाता है अतः-यह संयतावस्था से युक्त हो जाता है ऐसे संयतरूप पण्डित का जो मरण है वह पण्डित मरण है। यह पण्डित मरण व्रत, प्रत्याख्यान आदि के सद्भाव से छद्मस्थ मुनियों को होता है तथा-वालपण्डित मरण देशविरति श्रावक को होता है,

---

ટીકાર્થ-મરણનુ પ્રતિપાદન કરતાં ચાર સૂત્રો અહીં આપ્યા છે બાલ શબ્દથી અજ્ઞાની જીવ ગૃહીત થયો છે આ અજ્ઞાન અવસ્થા યુક્ત જીવના મરણને બાલ-મરણ કહે છે આ કથનનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે—

જીવ જ્યાં સુધી વિરતિસાધક વિવેકથી રહિત જ રહે છે, ત્યાંસુધી તે બાલ (અસંયત)જ રહે છે, અને તે કારણે જ તેને અજ્ઞાની કહ્યો છે આ અજ્ઞ (જ્ઞાન રહિત) અવસ્થા રૂપ બાલદશા સંપન્ન જીવનુ જે મરણ છે તેને બાલમરણ કહે છે. આ મરણથી મોતને ભેટતા એવા અજ્ઞાની જીવ દ્વારા વ્રત, પ્રત્યાખ્યાન આદિની આરાધના થતી નથી. વિરતિ રૂપ ફલ દ્વારા જે મરણ થાય છે, તે મરણને પંડિત મરણ કહે છે જે માણસમાં સારાં નરસાંનો વિવેક હોય છે, તેને પંડિત કહે છે તે પંડિતનુ જ્ઞાન વિરતિરૂપ ફળથી સફળ બને છે તે તત્વોનુ જ્ઞાન થઈ જાય છે, તેથી તે સંયતાવસ્થાથી યુક્ત થઇ જાય છે એવા સંયતરૂપ પંડિતનુ જે મરણ છે તેને પંડિત મરણ કહે છે. વ્રત, પ્રત્યાખ્યાન આદિના સદ્ભાવમા છદ્મસ્થ મુનિઓ આ પ્રકારનુ પંડિત મરણ પ્રાપ્ત કરે છે. દેશવિરત શ્રાવકના મરણને બાલ પંડિત મરણ કહે છે. તે દેશવિરત

त्वाद् बालपण्डितः-संयतासंयतः देशविरतिश्रावक इत्यर्थः तस्य मरणं बालपण्डितमरणम्। यद्वा-बालं सर्वविरतिपरिणामाभावात्, पण्डितं स्थूलप्राणातिपातादिविरमणात्, बालं च तत् पण्डितं चेति बालपण्डितं तद् योगात् मरणं बालपण्डितमरणम्। इदं देशविरतिमतः श्रावकस्य भवतीति ।१।

अथ बालमरणं कथयति 'बालमरणे इत्यादि, बालमरणं त्रिविधं, तदेवाह स्थितलेश्यम्, स्थिता अवस्थिता अविशुध्यमाना असंक्लिश्यमाना च लेश्या कृष्णादिर्यस्मिन् तत्तथोक्तम्।२। स संक्लिष्टलेश्यं स क्लिष्टा-संक्लिश्यमाना संक्लेशमागच्छन्ती लेश्या यस्मिन् मरणे तत्तथोक्तम्।२। पर्यवजातलेश्यं पर्यवाः परिच्छेदास्तु विशुद्धिविशेषा जाता

देशविरत श्रावक स्थावर हिंसा से अविरत होता है और त्रसहिंसा से विरत होता है। इसीलिये विरताविरत की अपेक्षा लेकर देशविरत श्रावक का मरण बालपण्डित मरण कहा गया है, अथवा-देशविरति श्रावक में सर्व विरति का अभाव रहता है, अतः इस अपेक्षा वह बाल है तथा-स्थूलप्राणातिपात आदि से विरमण रहता है इसलिये-वह पण्डित है बाल होकर भी इस तरह वह पण्डित है, इस बाल पण्डित के योग से मरण को भी बालपण्डित मरण कह दिया गया है १ बालमरण के प्रकारों को दिखाते हुये सूत्रकार कहते हैं कि-स्थिति लेश्य आदि जो तीन भेद बालमरण के कहे गये हैं उनका तात्पर्य इस प्रकार से है-जिस मरण में कृष्णादिलेश्या अविशुध्यमान और असंक्लिश्यमान होती है ऐसा वह मरण स्थितलेश्य बालमरण है २ जिस मरण में लेश्यासंक्लेश भाव को प्राप्त करती रहती है ऐसा वह मरण

શ્રાવક સ્થાવર હિંસાથી અવિરત હોય છે અને ત્રસહિંસાથી વિરત હોય છે, તે કારણે વિરતાવિરતની અપેક્ષાએ દેશવિરત શ્રાવકના મરણને બાલપંડિત મરણ કહે છે અથવા દેશવિરતિ યુક્ત શ્રાવકમાં સર્વ વિરતિનો અભાવ રહે છે તેથી આ અપેક્ષાએ વિચારવામાં આવે તો તે બાલ જ છે પરન્તુ સ્થૂલ પ્રાણાતિપાત આદિ તે કરતો નથી, તેથી તે પંડિત છે-બાલ હોવા છતાં પણ આ રીતે તે પંડિત છે આ બાલ-પંડિતના યોગથી તેના મરણને પણ બાલ પંડિત મરણ કહ્યું છે ।૧।

હવે બાલ મરણના સ્થિતિ લેશ્ય આદિ ત્રણ ભેદોનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે જે મરણમાં કૃષ્ણાદિ લેશ્યા અવિશુધ્યમાન અને અસંક્લિશ્યમાન હોય છે તે મરણને ' સ્થિતિ લેશ્ય બાલમરણ " કહે છે ।૨।

જે મરણમાં લેશ્યા સંક્લેશ ભાવને પ્રાપ્ત કરતી રહે છે, એવા મરણને " સંક્લિષ્ટ લેશ્ય બાલમરણ ' કહે છે જે મરણમાં પ્રતિ સમય લેશ્યાની

प्रतिसमयमुत्पन्ना यस्यां सा पर्यवजाता विशुद्धचा वर्धमानेत्यर्थः, तथाविधा लेश्या यस्मिंस्तत्तथोक्तम् ३। अत्रायं भावः—कृष्णादिलेश्यः सन् यदा कृष्णादिलेश्येव नारकादिषूत्पद्यते तदा प्रथमं स्थितलेश्याभिधं बालमरणं भवति १। यदा नीलादिलेश्यः सन् कृष्णादिलेश्येषूत्पद्यते तदा द्वितीयं संक्लिष्टलेश्याभिधं बालमरणं भवति २। यदा पुनः कृष्णलेश्यादिः सन् नीलकापोतलेश्येषूत्पद्यते तदा तृतीयं पर्यवजातलेश्याभिधं बालमरणं भवति, उक्तं चान्त्यद्वयसंवादि भगवत्याम्, यदुत—

संक्लिष्टलेश्या बालमरण है २ जिस मरण में प्रतिसमय विशुद्ध विशेष उत्पन्न हुवे हों ऐसा वह मरण पर्यवज्ञानलेश्य बालमरण है यह पर्यव शब्द से विशुद्धि विशेष गृहीत हुवे हैं। तात्पर्य ऐसा है कि जिस मरण में तथाविधलेश्या विशुद्धि से वर्धमान है, ऐसा वह मरण पर्यवसान बालमरण है ३ यहां भाव ऐसा है–कृष्णादि लेश्यावाला हुवा कोई जीव जब कृष्णादि लेश्यावाले ही नारकादिकों में उत्पन्न होता है, तब उसका वह मरण प्रथम स्थितलेश्य नामवाला बालमरण कहलाता है १–जब नीलादि लेश्या वाला हुवा कोई जीव कृष्णादिलेश्यावालों में उत्पन्न होता है तब उसका वह मरण द्वितीय संक्लिष्ट लेश्य नाम का बालमरण कहलाता है २ और जब पुनः कृष्णादि लेश्यावाला हुवा नील एवम् कापोत लेश्यावालों में उत्पन्न होता है, तब उसका वह मरण तृतीय पर्यवजातलेश्य नामक बालमरण कहलाता है। भगवती में ऐसा

વિશુદ્ધિ વિશેષ ઉત્પન્ન થતી રહે છે, એવા મરણને "પર્યવજ્ઞાન લેશ્ય બાલ મરણ" કહે છે. આ પર્યવ શબ્દથી વિશુદ્ધિ વિશેષ ગૃહીત થયેલ છે આ કથનનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે–જે મરણમા તથાવિધ લેશ્યા વિશુદ્ધિની તરફ વર્ધમાન થતી જ રહે છે, એવા મરણને 'પર્યવસાન બાલમરણ" કહે છે ।૩।

આ વાતને સૂત્રકાર હવે દૃષ્ટાન્તો દ્વારા સમજાવે છે–(૧) કૃષ્ણાદિ લેશ્યાથી યુક્ત એવો કોઈ જીવ જ્યારે કૃષ્ણાદિ લેશ્યાવાળા નારકાદિકોમા ઉત્પન્ન થાય છે, ત્યારે તેના તે મરણને "સ્થિતિ લેશ્ય બાલમરણ" કહે છે. (૨) જ્યારે નીલાદિ લેશ્યાથી યુક્ત થયેલો કોઈ જીવ કૃષ્ણાદિ લેશ્યાવાળાઓમાં ઉત્પન્ન થાય છે, ત્યારે તેના મરણને 'સંક્લિષ્ટ લેશ્ય બાલમરણ' કહે છે. (૩) જ્યારે કૃષ્ણાદિ લેશ્યાથી યુક્ત થયેલો જીવ નીલ અને કાપોત લેશ્યાઓવાળામા ઉત્પન્ન થાય છે, ત્યારે તેના તે મરણને 'પર્યવજાત લેશ્ય બાલમરણ' કહે છે.

ભગવતી સૂત્રમા આ વિષયને અનુલક્ષીને એવું જ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યુ છે સૂત્રકાર અહીં સંવાદ રૂપે તે વાત પ્રકટ કરે છે—

"से णूणं भंते ! कण्हलेसे नीललेसे जाव सुक्कलेसे भवित्ता काउलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ ? हंता गोयमा ! से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! लेसा ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु वा काउलेस्सं परिणमइ, परिणमित्ता काउलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जइ" इति ।

छाया—अथ नूनं भदन्त ! कृष्णलेश्यो नीललेश्यो यावत् शुक्ललेश्यो भूत्वा कापोतलेश्येषु नैरयिकेषूत्पद्यते ? हन्त ! गौतम ! तत् केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते ? गौतम ! लेश्यास्थानेषु संक्लिश्यमानेषु वा विशुध्यमानेषु वा कापोतलेश्यं (मरणं) परिणमति, परिणम्य कापोतलेश्येषु नैरयिकेषूत्पद्यते ॥ एतदनुसारेण पण्डितमरण-बालपण्डितमरणरूपसूत्रयोरपि स्थितलेश्यादिविभागो विज्ञेय इति । तत्र पण्डितमरणे लेश्यायाः संक्लिश्यमानता नास्ति संयतत्वादेवेत्यय बालमरणात् पण्डितमरणे विशेषः । बालपण्डितमरणे तु लेश्यायाः संक्लिश्यमानता विशुध्यमानता च नास्ति मिश्रत्वादेवेत्ययं मरणद्वयाद्विशेष । किञ्च

ही कहा है—"से णूण भंते ! कण्हलेसे नीललेसे जाव सुक्कलेसे भवित्ता काउलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ हंता ! गोयमा ? से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ ? गोयमा ! लेसाठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु वा काउलेसम परिणमइ परिणमित्ता काउलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जइ" इति । इस कथन के अनुसार पण्डितमरण और बालमरण एव पण्डितमरण के सूत्रों में स्थितलेश्य आदि विभाग किया गया जानना चाहिये बालमरण की अपेक्षा पण्डितमरण में लेश्या की संक्लिश्यमानता नहीं है। क्यों कि यह मरण संयत को ही होता है, अत बालमरण से पण्डितमरण में विशेषता है। बालपण्डितमरण में तो लेश्या की संक्लिश्यमानता और-विशुध्यमानता नहीं है, क्यों कि-यह

"सेणूण भंते ! कण्हलेसे नीललेसे जाव सुक्कलेसे भवित्ता काउलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ ? हंता, गोयमा ! से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! लेसाठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु वा काउलेसं परिणमइ परिणमित्ता काउलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ" ॥

આ કથન અનુસાર પંડિત મરણ અને બાલમરણ અને પંડિતમરણ (બાલ પંડિત મરણ) ના સૂત્રોમાં સ્થિતલેશ્ય આદિ પ્રકારે નું કથન પણ સમજવું બાલમરણમાં લેશ્યાની સંક્લિશ્યમાનતા કહી છે પરન્તુ પંડિતમરણમાં લેશ્યાની સંક્લિશ્યમાનતા નથી કારણ કે સંયત જીવ જ પંડિત મરણ પ્રાપ્ત કરે છે, તેથી બાલમરણ કરતા પંડિત મરણમાં આ પ્રકારની વિશિષ્ટતા કહી છે

બાલપંડિત મરણમાં તો લેશ્યાની સંક્લિશ્યમાનતા અને વિશુધ્યમાનતા હોતી નથી કારણ કે તે મરણ મિશ્રરૂપ હોય છે તેનું કહ્યું એ મરણ કર્તા

भवति । वालपण्डितमरणं तु संयतासंयतस्य श्रावकस्य भवति, तेन तस्मिन् देश संयतत्वेन संक्लिश्यमानलेश्याया अभावः, असंयतत्वेन च विशुध्यमानलेश्याया अभावो भवति मिश्रत्वादित्ययं वालमरणात् पण्डितमरणाच्चात्र विशेष इति४॥सू.८९॥

पूर्वं मरणं प्रोक्तं, मृतस्य त्वपरजन्मनि यादृशस्य यद्वस्तुत्रिकं यस्मै निष्पद्यते तस्य तद्वस्तुत्रयं तस्मै तदर्थं सम्पद्यमानं दर्शयितुं सूत्रद्वयमाह—

मूलम्--तओ ठाणा अव्ववसियस्स अहियाए असुहाए अक्खमाए अणिस्सेयसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा --से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेयसमावन्ने कलुससमावन्ने निग्गंथं पावयणं णो सद्दहइ णो पत्तियइ णो रोएइ तं परिस्सहा अभिजुंजिय२ अभिभवंति, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय २ अभिभवइ १ । से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए पंचहिं महव्वएहिं संकिए जाव कलुससमावन्ने पंचमहव्वयाइं नो सद्दहइ जाव णो से परिस्सहे अभिजुंजिय २

मरण मिश्ररूप होता है यही इसमें दो मरणों से विशेषता है। तात्पर्य कहने का ऐसा है कि यह वालपण्डितमरण संयतासंयत (श्रावक) को होता है, इसलिये-इस मरण में देशसंयत के होने के कारण संक्लिश्यमान लेश्या का अभाव रहता है, और असंयत होने के कारण विशुध्यमान लेश्या का अभाव रहता है अतः मिश्ररूप होने से इसमें बालमरण और पण्डितमरण से विशेषता है-॥ ४ ॥ सू०८९ ॥

આ મરણમાં એટલી જ વિશેષતા છે આ કથનનુ તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે— સંયતાસંયત શ્રાવકનુ મરણ જ બાલપંડિત મરણરૂપ હોય છે આ મરણથી મરનાર વ્યક્તિમા દેશસંયતતા હોવાને લીધે સંક્લિશ્યમાન લેશ્યાનો અભાવ રહે છે અને અસંયતતા હોવાને કારણે વિશુધ્યમાન લેશ્યાનો અભાવ રહે છે આ રીતે તે મિશ્રરૂપ હોવાથી તેમા બાલમરણ અને પંડિતમરણ કરતાં વિશેષતા હોય છે. ॥ સૂ. ૮૯ ॥

अभिभवइ । से ण मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवनिकाएहिं जाव अभिभवइ ३ ॥१॥

तओ ठाणा विवसियस्स हियाए जाव आणुगामियत्ताए भवति, तं जहा-से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिए णिक्कंखिए जाव नो कलुससमावन्ने णिग्गंथं पावयणं सद्दहइ पत्तियइ रोएइ से परिस्सहे अभिजुंजिय २ अभिभवइ, नो तं परिस्सहा अभिजुंजिय २ अभिभवति १ । से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचहिं महव्वएहिं णिस्संकिए णिक्कंखिए जाव परिस्सहे अभिजुंजिय २ अभिभवइ, नो तं परिस्सहा अभिजुंजिय २ अभिभवति २ से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवनिकाएहिं णिस्संकिए जाव परिस्सहे अभिजुंजिय २ अभिभवइ, नो तं परिस्सहा अभिजुंजिय २ अभिभवति ३ ॥ सू० ९० ॥

छाया—त्रीणि स्थानानि अव्यवसितस्य अहिताय असुखाय अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकतायै भवन्ति, तद्यथा स खलु मुण्डो भूत्वा अगारात् अन

इस प्रकार से मरण के सम्बन्ध में कथन किया अब सूत्रकार इस नब्बे ९० सूत्र में कथित तीन स्थान किनके लिये अहित कर आदि विशेषणोंवाले होते हैं और किनकेलिये हितकर आदि विशेषणों वाले होते हैं ऐसा कथन करते हैं 'तओ ठाणा अव्यवसियस्स अहियाए असुहाए" इत्यादि ।

सूत्रार्थ-तीन स्थान अव्यवसित - उद्यमहीन जीव को अहित

મરણનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું આ નેવુંમાં સૂત્રમાં પ્રતિપાદિત ત્રણ સ્થાનો કોને માટે અહિતકર હોય છે અને કોને માટે હિતકર હોય છે તેનું કથન કરે છે-' तओ ठाणा अव्ववसियस्स अहियाए असुहाए ' ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—નીચે જેનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે એવાં ત્રણ સ્થાન (કારણો) અવ્યવસિત (ઉદ્યમહીન) જીવનું અહિત કરનારા અસુખ કરનારા, અક્ષમ

गारितां प्रव्रजितो नैर्ग्रन्थे प्रावचने शङ्कितः काङ्क्षितः विचिकित्सितः । भेदसमापन्नः कलुषसमापन्नः नैर्ग्रन्थं प्रवचनं नो श्रद्दधाति नो प्रत्येति नो रोचयति तं परीपहा अभियुज्य२ अभिवन्ति, (किन्तु) नो स परीपहान् अभियुज्य २ अभिभवति १। स खलु मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजितः पञ्चसु महाव्रतेषु शङ्कितो यावत् कलुपसमापन्नः पञ्चमहाव्रतानि नो श्रद्दधाति यावत् नो स परीपहान् अभियुज्य२ अभिभवति २। स खलु मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः षट्सु जीवनिकायेषु यावद् अभिभवति ३ । १ ।

के लिये, असुख के लिये, असमर्थता के लिये और - अशुभानुबन्ध के लिये होते है । वे तीन स्थान इस प्रकार से हैं-जैसे कोई पुरुष मुण्डित हो करके-अगारावस्था से अनगारावस्था को धारण कर लेता है, परन्तु-वह नैर्ग्रन्थ प्रवचन में शङ्कित है, काङ्क्षित है, विचिकित्सित है, भेदसमापन्न है और निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा नहीं करता है-उसी प्रतीति में नहीं लाता है-अपनी रुचि का विषय उसे नहीं बनाता है, तो ऐसे अनगार को द्रव्यलिङ्गीसाधु को परीषह उसे आकरके आकुल व्याकुल कर देते हैं ॥ १ ॥ यदि कोई पुरुष मुण्डित होकर अगारावस्था से अनगारावस्था को धारण कर लेता है, परन्तु यदि वह पांच महाव्रतों में शङ्कित यावत् कलुषसमापन्न है और पांच महाव्रतों को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता है यावत् उन्हें अपनी रुचिका विषय नहीं बनाता है, तो ऐसे उस अनगार को द्रव्यलिङ्गी साधुको परीषह आ आ करके आकुलव्याकुल कर देते है २ उसी प्रकार से मुण्डित अगारावस्था से अनगारावस्था में प्रव्रजित हुवा कोई पुरुष षट् जीव निकाय के विषयमें शङ्कित यावत्-कलुष समापन्न है और उस निकाय

र्थता उत्पन्न करनारा अने अशुभानुबंध करनारा थई पडे छे. ते त्रण स्थान आ प्रमाणे छे—

કોઈ પુરુષ મુંડિત થઈને અગારાવસ્થાનો પરિત્યાગ કરીને અણગારાવસ્થા ધારણ કરે છે, પરન્તુ નિર્ગ્રંથ પ્રવચન પ્રત્યે શંકિત, કાંક્ષિત, વિચિકિત્સિત, ભેદ સમાપન્ન અને કલુષ સમાપન્ન છે, અને નિર્ગ્રંથ પ્રવચન પ્રત્યે શ્રદ્ધા નથી, તેને પોતાની પ્રતીતિમાં લાવતો નથી અને તેમાં રુચિ રાખતો નથી, તો એવો અણગાર-દ્રવ્યલિંગી સાધુ આવી પડેલા પરીષહોથી આકુલવ્યાકુલ થઈ જાય છે

(૨) કોઈ પુરુષ મુંડિત થઈને-ગૃહસ્થાવસ્થાના ત્યાગપૂર્વક અણગારાવસ્થા ધારણ કરવા છતા પણ પાચ મહાવ્રતોમા શંકિત, કાંક્ષિત, વિચિકિત્સિત ભેદ સમાપન્ન અને કલુષ સમાપન્ન થાય છે, તથા પાચ મહાવ્રતો પ્રત્યે શ્રદ્ધાની નજરે જોતો નથી, તેમને પોતાની પ્રતીતિનો વિષય બનાવતો નથી અને તેમા રુચિ રાખતો નથી, તો તે અણગાર દ્રવ્યલિંગી સાધુ તેના ઉપર આવી પડતા પરીષહોથી આકુલવ્યાકુલ થઈ જાય છે

એ જ પ્રકારે ગૃહસ્થાવસ્થાના પરિત્યાગપૂર્વક અણગારાવસ્થામાં પ્રવ્રજિત થયેલ કોઈ સાધુ જ્યારે છકાયના જીવોના વિષયમા શંકિત, કાંક્ષિત આદિ

त्रीणि स्थानानि व्यवसितस्य हिताय यावत् आनुगामिकतायै भवन्ति, तद्यथा —स खलु मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितो नैर्ग्रन्थे प्रावचने निश्शङ्कितः निष्काङ्क्षितः यावत् नो कलुषसमापन्नः नैर्ग्रन्थं प्रावचनं श्रद्दधाति प्रत्येति रोच यति स परीषहान् अभियुज्य २ अभिभवति, (किन्तु) नो तं परीषहा अभियुज्य २ अभिभवन्ति १। स खलु मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः सन् पञ्चसु महाव्रतेषु निश्शङ्कितः निष्काङ्क्षित यावत् परीषहान् अभियुज्य२ अभि भवति, नो तं परीषहा अभियुज्य २ अभिभवन्ति२। स खलु मुण्डो भूत्वा अगारात्

को यदि वह श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता है, यावत्–उसे अपनी रुचि का विषय नहीं बनाता है, तो ऐसे उस द्रव्यलिङ्गिसाधु को परीषह आआ करके आकुल–व्याकुल कर देते हैं–३–१

तीन स्थान व्यवसित (उद्यमवाले) जीवको हितके लिये यावत्–अनु गामिताके लिये होते हैं, वे तीन स्थान इस प्रकारसे हैं–जैसे कोई मनुष्य मुण्डित हो करके अगारावस्था से अनगारावस्था में प्रव्रजित हो जाता है और–निःशङ्कित आदि विशेषणों से युक्त हुआ निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा रखता है, उस पर प्रतीति करता है, उसे अपनी रुचि का विषय बनाता है, तो ऐसे–उस अनगार के पास परीषह आते तो हैं, और उसे आकुल व्याकुल करने की चेष्टा भी करते हैं परन्तु–वह उनसे आकुल व्याकुल नहीं होता है–१ यदि कोई पुरुष मुण्डित हो करके अगारावस्था से अनगारावस्था को धारण करलेता है और–पांच महाव्रतों में निःशङ्कित एवं निष्काङ्क्षित आदि विशेषणोंवाला होकर यावत् उन के विषय में वह कलुष समापन्न नहीं होता है, और उन्हें–श्रद्धा की दृष्टि से देखता है, यावत्–उन्हें वह अपनी रुचि का विषय बनाता

કલુષ સમાપન્ન પર્યન્તના ભાવોથી યુક્ત થય છે, અને તે પદ્જીવનિકાયને જે તે શ્રદ્ધાની નજરે જોતો નથી, તેને પોતાની પ્રતીતિનો વિષય બનાવતો નથી તેમાં રુચિ રાખતો નથી, તો એવા દ્રવ્યલિંગી સાધુને–પરીષહો આવી આવીને આકુલ–વ્યાકુલ કરી નાખે છે

હવે એ વાતનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે કે કયા ત્રણ સ્થાન વ્યવ સિત (ઉદ્યમી) જીવને માટે હિતકારી, સુખકારી, સમર્થતા ઉત્પન્ન કરનારા અને અનુગામિતા (શુભાનુબંધ) કારી હોય છે તે ત્રણ સ્થાન નીચે પ્રમાણે છે—

(૧) કોઈ મનુષ્ય મુંડિત થઈને અગારાવસ્થાના પરિત્યાગપૂર્વક અણ ગારાવસ્થા ધારણ કરે છે તે નિઃશંકિત આદિ ભાવોથી નિર્ગ્રંથ પ્રવચન પર શ્રદ્ધા રાખે છે, તેની પ્રતીતિ કરે છે અને તેને પોતાની રુચિનો વિષય બનાવે

अनगारितां प्रव्रजितः षट्सु जीवनिकायेषु निश्शङ्कितो यावत् परीषहान् अभियुज्य २ अभिभवति, (किन्तु) नो त परीषहा अभिभवन्ति ३ ।२। सू० ९०॥

टीका—' तओ ' इत्यादि । त्रीणि स्थानानि—अनुपदं वक्ष्यमाणानि प्रवचन-महाव्रत-जीवनिकायरूपाणि अव्यवसितस्य-व्यवसितः-निश्चयवान् पराक्रमवान् वा, तन्निषेधाद् अव्यवसितः-अनिश्चयवान् अपराक्रमवानित्यर्थः, तस्य अहिताय-अपथ्याय, असुखाय-दुःखाय, अक्षमाय-असमर्थतत्वाय, अनिःश्रेयसाय-अमोक्षाय

है तो ऐसे उस अनगार को परीषह आने पर भी आकुल व्याकुल नहीं करते हैं इसी तरह मुण्डित होकर जो पुरुष अगारावस्था से अनगारावस्था को धारण करता है और-षड्जीवनिकाय के विषय में निश्शङ्कित आदि विशेषणों वाला घना होकर उसपर श्रद्धा करता है और यावत्-उसे अपनी रुचि का विषय बनाता है तो ऐसे उस अनगारको परीषह बार-२ आकरके भी आकुल व्याकुल नहीं करपातेहैं-३

इन तीन सूत्रों का भावार्थ ऐसा है व्यवसित शब्द का अर्थ निश्चयवाला या " पराक्रमवाला " ऐसा है जो ऐसा नहीं है वह मनुष्य अव्यवसित है। अर्थात् जो निश्चयवाला नहीं है, या-पराक्रमवाला नहीं है उस के लिये ये प्रवचनरूप महाव्रत और-जीवनिकायरूप तीन

છે, તો તે અણગારને પરીષહનો સામનો કરવો પડે છે. તે પરીષહો તેને આકુલ-વ્યાકુલ કરવાની ચેષ્ટા પણ કરે છે, પરન્તુ તે તેમનાથી આકુલ-વ્યાકુલ થતો નથી. (૨) કોઇ મનુષ્ય મુંડિત થઇને ગૃહસ્થાવસ્થાના ત્યાગપૂર્વક અણગારાવસ્થા ધારણ કરે છે ત્યારબાદ તે નિઃશંકિત નિ કાંક્ષિત આદિ ભાવોથી પાંચ મહાવ્રતોમાં શ્રદ્ધા રાખે છે, તે મહાવ્રતોની પ્રતીતિ કરે છે અને તેમાં પોતાની રુચિ રાખે છે, તો એવો તે અણગાર ગમે તેવા પરીષહો આવી પડે તો પણ આકુલવ્યાકુલ થતો નથી (૩) કોઇ મનુષ્ય મુંડિત થઇને ગૃહસ્થાવસ્થાના પરિત્યાગપૂર્વક અણગારાવસ્થા ધારણ કરે છે ત્યારબાદ તે નિઃશંકિત આદિ વિશેષણોથી યુક્ત થઇને ષટ્ જીવનિકાય પ્રત્યે શ્રદ્ધાની દૃષ્ટિએ દેખે છે, તેને પોતાની પ્રતીતિનો વિષય બનાવે છે અને તેને પોતાની રુચિનો વિષય બનાવે છે તો એવો તે અણગાર ગમે તેવા પરીષહો આવી પડવા છતાં પણ આકુલ-વ્યાકુલ થતો નથી

હવે આ ત્રણે સૂત્રોનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—" વ્યવસિત " એટલે નિશ્ચયવાળો અથવા પરાક્રમવાળો જે જીવ નિશ્ચયવાળો હોતો નથી અથવા જે જીવમાં પરાક્રમનો અભાવ હોય છે, એવા જીવને ' અવ્યવસિત ' કહે છે. એવા અવ્યવસિત મનુષ્યને માટે પ્રવચન, મહાવ્રત અને જીવનિકાય

अनानुगामिकतायै-अशुभानुबन्धाय भवन्ति, तद्यथा-तानि त्रीणि स्थानानि यथा -'से ण ' इत्यादि यस्य त्रीणि स्थानानि अहितादित्वाय-भवन्ति स मुण्डो भूत्वा अगारात्-गृहस्थधर्मात् अनगारितां-साधुतां प्रव्रजितः-प्राप्तः सन् नैर्ग्रन्थे निर्ग्रन्थानामिदं नैर्ग्रन्थ्यम्-आर्हतं, तस्मिन् प्रावचने-प्र-प्रकर्षेण आ-अभिविधिना उच्यन्ते जीवादय पदार्था यस्मिन् तत् प्रावचनं जैनेन्द्रशासनमागमो वा तस्मिन् शङ्कितः-देशतः सर्वतो वा संशयवान् , कांक्षित -यो देशतः सर्वतो वा मतान्तरमपि साधुत्वेन मन्यते सः, विचिकित्सित-फल प्रति शङ्कोपेत, अतएव भेद समापन्नः-द्वैधीभावं प्राप्तः ' इदमेव किन्तु नैवदेवम् ' इति मतिसम्पन्नः, कलुष समापन्न -' एवदेवं नें'-ति प्रतिपत्तिमान् सन् नैर्ग्रन्थ्य प्रावचा न प्रत्येति—

स्थान अहित के लिये, अपथ्य के लिये, असुख-दुःख के लिये, और अक्षम-असमर्थता के लिये, अनिःश्रेयस-अमोक्ष के लिये और अशु भानुबन्धरूप अननुगामिकता के लिये होते हैं " णिग्गथपावयणे " निर्ग्रन्थों के द्वारा जो कहा गया होता है वह नैर्ग्रन्थ है और-अच्छी तरह अभिविधि पूर्वक जीवादिक पदार्थ जिस में कहे गये हैं वह प्रव चन है ऐसा वह प्रवचन जैनेन्द्रशासन-अथवा-आगमरूप होता है, ' शंकित " जिनेन्द्र प्रवचन में देशतः-या सर्वतः जो संशयशील होता है उसका नाम शङ्कित है। काङ्क्षित-देशतः या-सर्वत जो सर्वज्ञ प्रणीत मतान्तरों को भी साधुरूप-सचाईरूप में मानता है वह कांक्षित है। फलके प्रति शङ्का वाला जो होता है, वह विचिकित्स है। भेदसमापन्न द्वैधीभावको जो प्राप्त होता है वह भेदसमापन्न है यह ऐसा नहीं है इस

રૂપ ત્રણ સ્થાન અહિતકારી અપથ્યકારી, અસુખકારી (દુઃખકારી), અક્ષમ (અસમર્થતા) કારી, અનિઃશ્રેયસ (અમોક્ષ) કારી અને અશુભાનુબન્ધ રૂપ અનનુગામિકતાકારી થઈ પડે છે

' णिग्गथपावयणे " નિર્ગ્રન્થો (તીર્થંકર) દ્વારા જે કહેવામાં આવ્યું છે તેને નૈર્ગ્રન્થ કહે છે અને સારી રીતે, અભિવિધિપૂર્વક જીવાદિક પદાર્થોની જેમાં પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, તેને પ્રવચન કહે છે એવું તે પ્રવચન જૈનેન્દ્ર શાસનરૂપ અથવા આગમ રૂપ હોય છે

" शङ्कित ' જિનેન્દ્ર પ્રવચનમાં જે દેશતઃ અથવા સર્વતઃ સંશયશીલ હોય છે તેને શંકિત કહે છે कांक्षित " જે અસર્વજ્ઞ (સર્વજ્ઞ ન હોય એવી વ્યક્તિ) પ્રણીત મતાન્તરોને પણ દેશતઃ અથવા સર્વતઃ સાચા માને છે તેને કાંક્ષિત કહે છે. ફળની બાબતમાં શંકા રાખનારને વિચિકિત્સિત કહે છે " भेद समापन्न " દ્વિધા ભાવથી યુક્ત વ્યક્તિને ભેદ સમાપન્ન કહે છે " આ

सामान्यतो न तत्र श्रद्धां करोति, नो प्रत्येति-न सर्वथा प्रीतिविषयी करोति, नो रोचयति-न तदाराधनेच्छाविषयी करोति, तमिति य एवम्भूतो भवति तं साध्वाभासं परिषह्यन्ते निर्जरार्थमिति परीषहाः-क्षुधादयो द्वाविंशतिसंख्यकाः अभियुज्य २ सम्बन्धमुपगत्य प्रतिस्पर्ध्य अभिभवन्ति-व्याकुलीकुर्वन्ति किन्तु स-पूर्वोक्तः साध्वाभासस्तान् परीषहान्-अभियुज्य२ नो अभिभवति न जयतीत्यर्थः, आर्हतवचने शङ्कादीनां सद्भावेन श्रद्धादीनामसद्भावात्स तान् जेतुं न शक्नोतीति भावः

तरहकी प्रतिपत्ति (श्रद्धा) वाला जो होताहै वह कलुषसमापन्न है, " न श्रद्धाति " पद से यह प्रकट किया गया है कि-वह सामान्यरूप से भी यहां श्रद्धाशील नहीं होता है " नो पत्येति " उसे अपनी प्रतीति में भी वह सर्वथा नहीं लेता है और-न वह उस के आराधन की इच्छा ही करता है-यह वात " नो रोचति " क्रियापद से प्रकट की गई है जो निर्जरा के लिये सहन की जाती है उस का नाम परीषह है ये परीषह क्षुधा आदि के भेद से २२-बाइस होते हैं। अर्थात्-जो साधु के लक्षण से रहित होता है और-साधु जैसा प्रतीत होता है वह द्रव्यलिङ्गीसाधु है द्रव्यलिङ्गीसाधु परीषहों द्वारा इसलिये पराजित हो जाता है कि आर्हत वचन में शङ्कादिकों के सद्भाव से उस में श्रद्धादिक का अभाव रहता है अतः-वह उनपर विजय नहीं पासकता है-इसी तरह से पंच

વાત આ પ્રમાણે નથી," આ પ્રકારની પ્રતિપત્તિવાળા જીવને કલુષ સમાપન્ન કહે છે. " न श्रद्दधाति " પદ દ્વારા એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે તે સામાન્ય રૂપે પણ નિર્ગ્રંથ પ્રવચન આદિ પ્રત્યે શ્રદ્ધાશીલ હોતો નથી " नो प्रत्येति " આ પદ દ્વારા એ પ્રકટ કરવામા આવ્યુ છે કે તે નિર્ગ્રંથ પ્રવચન આદિને પોતાની પ્રતીતિનો વિષય પણ બનાવતો નથી ' नो रोचति " આ ક્રિયાપદના પ્રયોગ દ્વારા એ પ્રકટ કરવામા આવ્યુ છે કે તે નિર્ગ્રંથ પ્રવચન આદિની આરાધનાની ઇચ્છા પણ કરતો નથી.

નિર્જરા નિમિત્તે જે સહન કરવામાં આવે છે. તેનુ નામ પરીષહ છે ક્ષુધા આદિના ભેદથી પરીષહ ૨૨ પ્રકારના કહ્યા છે

" દ્રવ્યલિંગી સાધુ "—સાધુના લક્ષણોથી રહિત હોવા છતા પણ જે વેષ આદિને કારણે સાધુ જેવો લાગે છે. તેને દ્રવ્યલિંગી સાધુ કહે છે એવો દ્રવ્યલિંગી સાધુ પરીષહો દ્વારા પરાજિત થઇ જાય છે તેનુ કારણ નીચે પ્રમાણે છે-એવો સાધુ આર્હંત પ્રવચનમાં શંકાદિકોથી યુક્ત બને છે અને તે કારણે તે પ્રવચનાદિ પ્રત્યે તે સાધુ શ્રદ્ધા રાખી શકતો નથી તે કારણે તે પરીષહો પર વિજય પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી.

१। एवमेव पञ्चमहाव्रतविषयं षड्जीवनिकायविषयं चेति स्थानद्वयमपि विज्ञेयम् ।३।

'तओ ठाणा' इत्यादि । पूर्वोक्तविपर्ययं व्यवसितसूत्रं विपर्ययेण व्याख्येयं, नवरं–हितम्–अदोषकरमिहपरलोके च, आत्मनः परेषां च पथ्याशनभोजनवत् १, सुखम्–आनन्दं घर्मार्त्तस्य तृषाकुलस्य पानकरसपानवत् २, क्षमम्–उचितं यथाविषव्याधिनिवारकौषधपानवत् ३, निःश्रेयसं–निश्चितं श्रेयः–प्रशस्तं भावतः पञ्चनमस्कारकरणमिव, आनुगामिकम्–अनुगमनशीलं, भास्वरद्रव्यसन्निधा-पेवेति । शेषं सुगमम् । व्यवसितः पुरुषः प्रव्रजितः सन् परीषहान् अभियुञ्ज्य अभिभवति किन्तु परीषहास्तं नाभिभवितुं प्रभवन्तीति सूत्रभावः २ ॥सू० १०॥

महाव्रतरूप और–षड्जीवनिकायरूप स्थान भी इस को होते हैं ऐसा समझ लेना चाहिये। 'तओ ठाणा" इत्यादि जो व्यवसित सूत्र है, वह अव्यवसित सूत्र से विपरीत व्याख्यान हुआ है अतः–इस की व्याख्या अव्यवसित सूत्र से भिन्न ही जाननी चाहिये। तात्पर्य यह है कि–अव्यवसित की जो निर्ग्रन्थ प्रवचन में पञ्चमहाव्रतों में एवं षट् जीवनिकाय में पूर्वोक्तरूप से शङ्का–काङ्क्षा आदि वाली वृत्ति होती है और–इसी कारण वह श्रद्धा आदि भावना से रहित बना रहता है तब कि वह व्यवसित जीव निर्ग्रन्थ प्रवचन में पञ्चमहाव्रतों में एवं षट् जीव निकाय में पूर्वोक्तरूप निःशङ्कित आदि वृत्तिवाला बनकर श्रद्धा आदि भावना से सम्पन्न बना रहता है इसीलिये अव्यवसित को परीषह आकुल व्याकुल बनादेते हैं और–व्यवसित को वे आकुल व्याकुल न बनाकर स्वयंही पराजित हो जाते हैं।

અવ્યવસિતને અનુલક્ષીને નિર્ગ્રંથ પ્રવચન રૂપ પ્રથમ સ્થાનની જેવી પ્રરૂપણા કરવામાં આવી એવી જ પ્રરૂપણા પાંચ મહાવ્રત રૂપ દ્વિતીય અને ષટ્ જીવ નિકાય રૂપ તૃતીય સ્થાનના વિષે પણ સમજી લેવી "તઓ ઠાણા" ઈત્યાદિ

વ્યવસિત સૂત્રની વ્યાખ્યા અવ્યવસિત સૂત્ર કરતાં વિપરીત સમજવી. એટલે કે અવ્યવસિતને નિર્ગ્રંથ પ્રવચન પાંચ મહાવ્રતો અને ષટ્ જીવ નિકાય પ્રત્યે શંકા, કાંક્ષા આદિવાળી વૃત્તિ હોય છે અને એ જ કારણે તે આ ત્રણેમાં શ્રદ્ધા આદિ ભાવોથી રહિત જ હોય છે પરન્તુ આ વ્યવસિત જીવ નિર્ગ્રંથ પ્રવચન, પાંચ મહાવ્રત અને ષડ્જીવનિકાયમાં પૂર્વોક્ત રૂપ નિઃશંકિત, નિઃકાંક્ષિત આદિ વૃત્તિવાળો હોય છે અને તે કારણે તે જીવ તેમાં શ્રદ્ધા, રુચિ આદિ ભાવોથી યુક્ત રહે છે

આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં અવ્યવસિત દ્રવ્યલિંગી સાધુને પરીષહો આકુળવ્યાકુળ કરી નાખે છે પરન્તુ વ્યવસિત અણગારને પરીષહો આકુળ

पूर्वोक्त प्रकारो मुनिरिह पृथिव्यां विचरतीत्यनेन सम्बन्धेन पृथिवीस्वरूपं निरूपयति—

मूलम्—एगमेगा णं पुढवी तोहिं वलएहिं सव्वओ समंता

इस तरह अव्यवसित सूत्र की व्याख्या से व्यवसित सूत्र की व्याख्या विपरीत है । निर्ग्रन्थ प्रवचनादि तीन स्थान व्यवसित के लिये हितकर होते हैं, अर्थात् पथ्यान्न भोजन की तरह अदोप कर होते हैं, इस लोक में और परलोक में वे उस के लिये और पर के लिये हितकर होते हैं। "सुखं" आनन्ददायक होते हैं, । जैसे-धूप में तृषार्त्तको पानकरस का (शरवत) पान आनन्ददायक होता है, । "क्षमं" उचित रूप होते हैं, जैसे-व्याधि से पीडित हुवे को औषधि का पान उचित होना है। निःश्रेयसरूप होते हैं निश्चिनश्रेयस्कार-प्रशस्त होते हैं जैसे भाव पूर्वक किया गया पञ्च नमस्कार श्रेयस्कारक होना है, । आनुगामिक होते हैं जैसे-भास्वर द्रव्य से जनित छाया अनुगमनशील होती है बाकी का और सब कथन सुगम है व्यवसित पुरुष प्रव्रजित होकर परीषहों को ही जीत लेता है परीषह उसे नहीं जीत पाते हैं। ऐसा भाव इस सूत्र का है-॥ ॥ सू०९० ॥

વ્યાકુલ કરી શકતા નથી એવા સાધુ આગળ તે પરીષહો પોતે જ પરાજિત થઈ જાય છે આ રીતે અવ્યવસિત સૂત્રની વ્યાખ્યા કરતાં વ્યવસિત સૂત્રની વ્યાખ્યા વિપરીત છે

નિર્ગ્રંથ પ્રવચનાદિ ત્રણ સ્થાન વ્યવસિત જીવને માટે હિતકર હોય છે, એટલે કે પથ્યાન્ન ભોજનની જેમ અદોષકર હોય છે, આલોકમાં અને પરલોકમા તે તેના માટે તથા અન્યને માટે હિતકર હોય છે, "सुख" સુખકર અથવા આનંદદાયક હોય છે, જેમ તટસ્થાને સરબતનુ પાન આનંદદાયક થઈ પડે છે, તેમ તેને તે આનંદદાયક થઇ પડે છે "क्षमं" જેમ રોગથી પીડાતા જીવને ઔષધિનુ પાન ઉચિત થઇ પડે છે, તેમ તેને ઉચિતરૂપ થઇ પડે છે તે તેને માટે નિઃશ્રેયસરૂપ-નિશ્ચિતરૂપે શ્રેયસ્કારક નિવડે છે જેમ ભાવપૂર્વક કરાયેલા પંચ નમસ્કાર શ્રેયસ્કારક હોય છે, એમ તે જીવને માટે શ્રેયસ્કારક અને પ્રશસ્ત નિવડે છે જેમ ભાસ્વર (અપારદર્શક) દ્રવ્યથી જનિત છાયા અનુગમનશીલ હોય છે, તેમ તે તેને માટે આનુગામિક નિવડે છે બાકીનું સમસ્ત કથન સુગમ છે વ્યવસિત પુરુષ પ્રવ્રજિત થઈને પરીષહોને જીતી લે છે-પરિષહો તેને પરાજિત કરી શકતા નથી, એવો આ સૂત્રનો ભાવ છે. ॥ સૂ ૯૦ ॥

सपरिक्खित्ता, त जहा–घणोदहिवलएण, घणवायवलएण तणु वायवलएण ॥ सू० ९१ ॥

छाया—एकैका खलु पृथिवी भिभिर्वलयैः सर्वत समन्तात् सपरिक्षिप्ता, तद्यथा–घनोदधिवलयन, घनवातवलयेन, तनुवातवलयन ॥ सू० ९१ ॥

टीका—' एगमेगा ' इत्यादि। एकैका–प्रत्येक पृथिवी रत्नप्रभादिका त्रिभिः–त्रिसख्यकैः वलयै –वष्टनैः सर्वतः समन्तात्–सर्वासु दिक्षु विदिक्षु चेत्यर्थ, सपरिक्षिप्ता–सम्यग् वेष्टिता प्रज्ञप्ता, तद्यथा–घनोदधिवलयेन, घन –स्त्यानो हिमशिला सदृश, उदधिः–जलनिचय–घनोदधि, स एव वलयमिववलयं–वेष्टनं घनोदधिवलय, तेन १, एव घनवातवलयेन, तथाविधघनपरिणामोपेतो वातः,

---

पूर्वोक्त प्रकारवाला मुनि यहीं पर विचरण करता है इसी सम्बन्ध को लेकर अब सूत्रकार पृथिवी के स्वरूप का निरूपण करते हैं " एग मेगाण पुढवी " इत्यादि–

सूत्रार्थ — प्रत्येक पृथिवी तीन वलयों से चारों दिशाओं में और विदिशाओं में अच्छी तरह से वेष्टित हुई कही गई है। वे वलय इस प्रकार से हैं घनोदधिवलय १ घनवातवलय २ और तनुवातवलय ३।

टीकार्थ-इस सूत्र का विस्तृत अर्थ इस प्रकारसे है –प्रत्येक रत्नप्रभा आदि पृथिवी समस्त दिशा और विदिशाओं में अच्छी तरह से पूर्वोक्त घनोदधि आदि तीन वातवलयों से वेष्टित है जिसमें उदधि जल

પહેલાના પ્રકરણમાં જેવા અણુગારની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી, એવા અણુગારો આ પૃથ્વી પર જ વિચરતા હોય છે આ સબધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર પૃથ્વીના સ્વરૂપનુ નિરૂપણ કરે છે—

एगमेगाणं पुढवी ' ઇત્યાદિ—

પ્રત્યેક પૃથ્વી ત્રણ વલયેથી ચારે દિશાઓમા અને વિદિશાઓમા સારી રીતે વેષ્ટિત થયેલી કહી છે તે ત્રણ વલયના નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) ઘનોદધિ વલય (૨) ઘનવાત વલય અને (૩) તનુવાત વલય. આ સૂત્રનો વિસ્તૃત અર્થ આ પ્રમાણે છે—

રત્નપ્રભા આદિ પૃથ્વી સમસ્ત દિશાઓ અને વિદિશાઓમાં પૂર્વોક્ત ઘનોદધિ આદિ ત્રણ વાતવલયેથી સારી રીતે વેષ્ટિત (વીંટળાયેલી) છે એમાં હિમશિલાના જેવો ઉદધિ (જલસમૂહ) ઘન રૂપે જમા થયેલો રહે છે, તને ઘનોદધિ કહે છે એજ વલયના જેવુ વલય વેષ્ટન + છે તેથી તેને

तद्रूपेण वलयेन २, तनुवातवलयेन, तनुवातः-तथाविधतनुपरिणामो वात एव, तद्रूपेण वलयेन वेष्टिता पृथिवी प्रज्ञप्तेति प्रक्रमः। आभ्यन्तरं घनोदधिवलयं, तत्परितः घनवातवलयं, तत्परितश्च तनुवातवलयमिति भावः भवन्ति चात्र गाथाः-

" नवि अ फुसंति अलोगं चउसुंपि दिसासु सव्वपुढवीओ।
संगहिया वलएहिं, विक्खंभं तेसि वोच्छामि ॥१॥
छच्चेव१ अद्धपंचम२ जोयणमद्धं च होइ रयणाए।
उदही१ घण२ तणुवाया३, जहासंखेण निद्दिट्ठा ॥२॥
ति भागो१ गाउयं चेव२, तिभागो गाउयस्स य ३।
आइधुवे पक्खेवो, अहो अहो जाव सत्तमियं ॥३॥"

छाया—नापि च स्पृशन्ति अलोकं चतसृष्वपि दिक्षु सर्वाः पृथिव्यः।
संगृहीता वलयैर्विष्कम्भं तेषां वक्ष्ये ॥ १ ॥
षट्चैव१ अर्धपञ्चमानि२ योजनं सार्धं च भवति रत्नायाम्। उदधि१ घन२ तनुवाताः३, यथासंख्येन निर्दिष्टाः ॥ २ ॥
त्रिभागः१ (योजनस्य) गव्यूतं चैव२ त्रिभागो गव्यूतस्य च ३।
आदि ध्रुवे प्रक्षेपः, अधः अधः यावत् सप्तमिकाम् ॥३॥ इति।

असां संक्षेपार्थः-सर्वाः पृथिव्यः चतसृष्वपि दिक्षु अलोकं न स्पृशन्ति, सर्वा अपि वलयैः संगृहीताः-वेष्टिताः सन्ति, तेषां-घनोदधिघनवाततनुवातानां

निचय-हिमशिला के जैसा घन जमा हुआ रहता है वह घनोदधि है, वही वलय के जैसा वलय वेष्टित है इसलिये-इसे घनोदधिवलय कहा है। घनवात वलय में तथाविध घनपरिणामोपेत वात रहता है तनुवात वलय में तथाविध तनुपरिणामोपेत वात रहता है अतः-घनोदधिरूप वलय, घनवातरूप वलय से और तनुवातरूप वलय से वेष्टित प्रत्येक पृथिवी कही गई है। इनमें आभ्यन्तर घनोदधिवलय है, इसके बाद चारों ओर घनवात वलय है इसके बाद चारों ओर तनुवात वलय है। कहा भी है " नविअ फुसंति अलोगं-" इत्यादि इन गाथाओं का संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार से है-समस्त पृथिवियां चारों भी दिशाओं में अलोक

ઘનોદધિ વલય કહેવામાં આવેલ છે ઘનવાતવલયમાં તથાવિધ (તે પ્રકારનો) ઘન-પરિણામોપેત વાત રહે છે તનુવાત વલયમાં તથાવિધ તનુ-પરિણામોપેત વાત રહે છે, તેથી પ્રત્યેક પૃથ્વીને ઘનોદધિરૂપ વલય, ઘનવાતરૂપ વલય અને તનુવાતરૂપ વલયથી વેષ્ટિત કહી છે આ ત્રણે વલયોમાં આભ્યન્તર ઘનોદધિ-વલય છે, ત્યારબાદ ચારે તરફ ઘનવાત વલય છે અને ત્યારબાદ ચારે તરફ તનુવાત વલય છે કહ્યું પણ છે કે-" नवि अफुसंति अलोगं " ઇત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો સંક્ષિપ્ત અર્થ આ પ્રમાણે છે-સમસ્ત પૃથ્વીઓ ચારે દિશાઓમાં અલોકનો સ્પર્શ કરતી નથી, સમસ્ત પૃથ્વીઓ વલયોથી

विष्कम्भ-विष्कम्भपरिमाण वक्ष्ये, इति गाथाकार कथयति ॥१॥ यथासंख्येनेति यथाक्रम, तथाहि घनोदधिवलयस्य विष्कम्भपरिमाण षड्योजनानि, घनवातवलयस्य सार्धचतुर्योजनानि तनुवातस्य सार्धयोजनमेक विष्कम्भपरिमाणम् । एतद् रत्नप्रभापृथिवीमाश्रित्योक्तम् । आदिभुवे-आदिवलय घनोदधिलक्षणे योजनस्य त्रिभागः प्रक्षेपणीयः, द्वितीये वलय-घनवातरूपे गव्यूत प्रक्षेपणीय, तृतीये वलये तनुवात लक्षणे गव्यूतस्य त्रिभाग प्रक्षेपणीय । एव करणेन द्वितीय-पृथिव्या वलयत्रय संपद्यते, एव यावत्सप्तमिकां-सप्तमीतमस्तमापृथिवीपर्यन्त प्रक्षेपणेन सर्वासां पृथिवीनां घनोदधिघनवात-तनुवातरूपस्य वलयत्रिकस्य विष्कम्भपरिमाणं भवतीति गाथात्रयस्य निष्कर्षार्थ ॥ सू० ०१ ॥

को स्पर्श नहीं करती है, समस्तपृथिवियां वलयसे वेष्टित हैं । घनोदधि का विष्कम्भ परिमाण ६ योजनका है घनवातवलयका विष्कम्भ साढे चार योजन का है तनुवात वलय का विष्कम्भ परिणाम १॥ योजन का है घनोदधिरूप प्रथम वलय में योजन के तीन भाग प्रक्षिप्त करने से, घनवातरूप द्वितीय वलय में गव्यूत प्रक्षिप्त करने से तथा-तृतीय तनु वातवलय में गव्यूत के तीन भाग प्रक्षिप्त करने से द्वितीयपृथिवी के तीन वातवलयों का विष्कम्भ परिमाण निकल आता है इसी तरह से सप्तमी तमस्तमा पृथिवी तक प्रक्षेपण करने से बाकी समस्त पृथिवियों के घनोदधि घनवात और तनुवातरूप वलयत्रिक विष्कम्भ परिणाम निकलता है यह तीन गाथाओं का निष्कर्षार्थ है सू००२॥

વેષ્ટિત છે પહેલી પૃથ્વીને વીંટળાયેલા ઘનોદધિનો વિષ્કંભ (વિસ્તાર) ૬ યોજનનો છે ઘનવાત વલયનો વિષ્કંભ ૪॥ (સાડા ચાર) યોજનનો છે અને તનુવાત વલયનો વિષ્કંભ ૧॥ (દોઢ) યોજનનો છે

ઘનોદધિ રૂપ પ્રથમ વલયના વિષ્કંભ પ્રમાણમા યોજનનો ત્રીજો ભાગ ઉમેરવાથી ઘનવાત રૂપ બીજા વલયના વિષ્કંભ પ્રમાણમા ગવ્યૂતિ ઉમેરવાથી અને તનુવાત રૂપ ત્રીજા વલયના વિષ્કંભ પરિમાણમાં ગવ્યૂતિનો ત્રીજો ભાગ ઉમેરવાથી બીજી પૃથ્વીના ત્રણે વાતવલયોના વિષ્કંભનુ પરિમાણ આવી જાય છે એજ પ્રમાણે સાતમી તમસ્તમા પર્યન્તની પૃથ્વીઓમાં ઉપર્યુક્ત પ્રમાણનો વધારો કરવા જવાથી બાકીની બાકી પૃથ્વીઓના ઘનોદધિ વલય ઘનવાત વલય અને તનુવાત વલયનો વિષ્કંભ આવી જાય છે આ પ્રકારનો ત્રણ ગાથાઓનો ભાવાર્થ સમજવો ॥ સૂ ૯૧ ॥

पूर्वं रत्नप्रभादि पृथिवीनां प्ररूपणा कृताः, एतासु च नारका एवोत्पद्यन्त इति तेषामुत्पत्तिविधिमभिधातुमाह—

मूलम्—नेरइया णं उक्कोसेणं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जंति, एगिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं ॥ सू० ९२ ॥

छाया— नैरयिकाः खलु उत्कर्षेण त्रिसामयिकेन विग्रहेण उपपद्यन्ते, एकेन्द्रियवर्जं यावद् वैमानिकानाम् ॥ सू० ९२ ॥

टीका—' नेरइयाणं ' इत्यादि सुगमं, नवरं-नैरयिका-उत्कर्षेण त्रिसामयिकेन त्रयाणां समयानां समाहारस्त्रिसमय तत् मासं यस्य स त्रिसामयिकस्तेन तादृशेन विग्रहेण-वक्रगमनेन उपपद्यन्ते । उत्कर्षेणेति त्रसानां हि त्रसनाड्यन्तरुत्पादाद् वक्रद्वयं भवति, तत्र च त्रय एव समयास्तथाहि-जीव आग्नेयदिशातो नैर्ऋतदिशमेकेन समयेन गच्छति, ततो द्वितीयेन समयेन समश्रेण्याऽधो गच्छति,

---

इस प्रकार रत्नप्रभा आदि पृथिवियों की अब इन पृथिवियों में नारक ही उत्पन्न होते हैं इस बात को कहने के लिये उनकी उत्पत्ति विधि को सूत्रकार कहते हैं-" नेरइयाणं उक्कोसे० " इत्यादि,

टीकार्थ नैरयिक जीव जिसमें उत्कृष्टसे तीन समय प्राप्त हैं ऐसे विग्रहसे वक्रगमनसे उत्पन्न होतेहैं जिसमें एकघुमाव-एकवक्रगति हों उसका काल मान दो समयका, जिसमें दोघुमाव हों उसका कालमान तीन समय का होना है और जिसमे तीन घुमाव हों उसमें कालमान चार समयका है। इस नियम के अनुसार त्रस जीवों का त्रस नाडी के भीतर उत्पाद होने से घुमाव होते हैं अतः वहां तीन ही समय लगते हैं, जैसे-जीव अग्नेय दिशा से नैर्ऋत दिशा तक एक समय में जाना है फिर द्वितीय समय में

રત્નપ્રભા આદિ પૃથ્વીઓને વીંટળાયેલા ત્રણ વાતવલયોનુ નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર તે નરક પૃથ્વીઓમાં ઉત્પન્ન થતા નારકોની ઉત્પત્તિવિધિનું કથન કરે છે-' नेरइयाण उक्कोसे " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-જેમાં વધારેમાં વધારે ત્રણ સમય લાગે છે એવા વિગ્રહથી-વક્રગમનથી નારક જીવો નરકોમાં ઉત્પન્ન થાય છે જે વિગ્રહગતિમાં એક ઘુમાવ (વળાંક) નો સદ્‌ભાવ હોય છે, તે વિગ્રહનુ કાળમાન બે સમયનુ હોય છે જેમા બે ઘુમાવ હોય તેનુ કાલમાન ચાર સમયનુ હોય છે આ નિયમ અનુસાર ત્રસ નાડીની અંદર ત્રસ જીવોનો ઉત્પાદ હોવાથી તે જીવોમાં બે ઘુમાવનો સદ્‌ભાવ હોય છે, તેથી ત્યા ત્રણ જ સમય લાગે છે. જેમકે જીવ અગ્નિ દિશાથી નૈઋત્ય દિશા સુધી એક સમયમાં જાય છે, ત્યારબાદ દ્વિતીય સમયમાં સમશ્રેણીથી

ततस्तृतीयेन समयेन वायव्यदिशि समश्रेण्यैव गच्छतीति त्रय समया उक्ताः। एवंविध उत्कर्षेण विग्रहस्त्रसानामेव त्रसोत्पत्तौ भवतीत्यत एवाह—' एगिंदिय वज्ज ' इत्यादि, एकेन्द्रियान् वर्जयित्वेत्यर्थः। एकेन्द्रियास्तु एकेन्द्रियेषु पञ्चसमयिकेन विग्रहेणाप्युत्पद्यन्ते, तेषां बहिस्त्वात् त्रसनाडीतो बहिष्ठत्पद्यमानत्वात्, उक्तञ्च —

" विदिसाउ दिसं पढमे, बीए पइसरइ लोयनाडीए।
तइए उप्पिं धावइ, चउत्थए नीइ बाहिं तु ॥१॥
पंचमए विदिसीए गतु उप्पज्जए उ एगिंदी। " इति।

छाया—विदिशातो दिशं प्रथमे, द्वितीये प्रविशति लोकनाडयाम्।
तृतीये उपरि धावति, चतुर्थके नयति बहिस्तु ॥१॥
पञ्चमके विदिशायां गत्वोत्पद्यते तु एकेन्द्रियः ॥

सम्भवोऽप्ययम्। भवति तु चतुः सामयिक एव व्याख्याप्रज्ञप्त्यां तथा मति पादितत्वात्, उक्तञ्च—

समश्रेणी से नीचे जाता है उसके बाद तृतीय समय में वायव्य दिशा में समश्रेणी से जाता है इस प्रकार दो घुमावों में ये तीन समय लगते हैं ऐसा कहा गया है। ऐसा उत्कृष्ट से मोडा-विग्रह त्रसों का त्रसोत्पत्ति में होता है इसीलिये यहां " एगिंदियवज्ज " इत्यादि सूत्रकार ने कहा है। क्यों कि-एकेन्द्रिय एकेन्द्रियों में पांच समयवाले विग्रह से भी उत्पन्न होते हैं, क्यों कि-इसका उत्पाद त्रस नाडी से बाहर होता है। कहा भी है-" विदिसाउदिस पढमे " इत्यादि एकेन्द्रिय जीव का यह पांच समयवाला उत्पाद सम्भव भी होता है परन्तु-व्याख्याप्रज्ञप्ति में चार समयवाला ही इसका उत्पाद कहा है। कहा भी है-

---

નીચે જાય છે ત્યારબાદ તૃતીય સમયમાં વાયવ્ય દિશામાં સમશ્રેણીથી જાય છે આ પ્રકારે બે ઘુમાવમાં ત્રણ સમય લાગે છે એ કથન સિદ્ધ થાય છે આ પ્રકારનો ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ ત્રસોનો મોડો વિગ્રહ ત્રસોત્પત્તિમાં થાય છે તેથી જ અહીં એગિંદિયવજ્જ ઇત્યાદિ કથન સૂત્રકારે કર્યું છે, કારણ કે એકેન્દ્રિયની એકેન્દ્રિયોમાં પાંચ સમયવાળા વિગ્રહથી પણ ઉત્પત્તિ થાય છે, કારણ કે તેનો ઉપાદ ત્રસ નાડીની બહાર થાય છે કહ્યું પણ છે કે—

" વિદિસાઉદિસ પઢમે " ઇત્યાદિ—

એકેન્દ્રિય જીવનો આ પાંચ સમયવાળો ઉત્પાદ સંભવી શકે છે પરંતુ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞપ્તિમાં ચાર સમયવાળો જ તેનો ઉપાદ કહ્યો છે એવું પણ

"अपज्जत्तगसुहुमपुढवीकाइएणं भंते ! अहोलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए समोहणित्ता जे भविए (गच्छइ) उड्ढलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमपुढवीकाइयत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? गोयमा ! तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेण उववज्जेज्जा" इत्यादि ।

छाया—अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथिवीकायिकेन ! भदन्त ! अधोलोकक्षेत्रनाड्या-बाह्ये क्षेत्रे समवहतः, समवहत्य यो भविकः (गच्छति) ऊर्ध्वलोकक्षेत्रनाड्या बाह्ये क्षेत्रे अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथिवी कायिकतया उपपत्तुं स खलु भदन्त ! कति सामयिकेन विग्रहेण उपपद्यते ? गौतम ! त्रिसामयिकेन वा चतुः सामयिकेन वा विग्रहेण उपपद्यते, इत्यादि । अत एवोक्तम्-'एगिंदियवज्जं'-इति, एकेन्द्रियान् वर्जयित्वा यावद् वैमानिकानां—वैमानिकपर्यन्तानां जीवानामुत्कर्षेण त्रिसामयिको विग्रहो भवतीति भावः ॥ सू० ९२ ॥

पूर्वं मोहवतां त्रिस्थानकमुक्त्वा, साम्पतं क्षीणमोहस्य तदाह—

मूलम्—खीणमोहस्स णं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा—नाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, अंतराइयं॥९३॥

"अपज्जत्तग सुहुम पुढवी काइएणं भंते ? अहोलोग खेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए समोहणित्ता जे भविए (गच्छइ) उड्ढलोयखेत्त नालीए बाहिल्ले खेत्ते अपज्जत्तग सुहुमपुढवीकाइत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ? कइ समइएण विग्गहेणं उववज्जेज्जा गोयमा ? तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा" इत्यादि इसीलिये ऐसा कहा गया है-"एगिंदियवज्जं" इति नारक जीवों की तरह ही एकेन्द्रिय को छोडकर यावत्-वैमानिक तक के समस्त जीवों का उत्कृष्ट से तीन समयवाला विग्रह होता है ॥ ९२

છે કે-"अपज्जत्तगसुहुमपुढवीकाइएण भंते ! अहोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए । समोहणित्ता जे भविए (गच्छइ) उड्ढलोयखेत्तनालिए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तगसुहुमपुढवीकाइत्ताए उववज्जित्तए से णं भते ! कइ समइएण विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? गोयमा ! तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा" ઇત્યાદિ તે કારણે જ ઉપરોક્ત કથન કરવામાં આવ્યું છે "एगिंदियवज्जं" ઇત્યાદિ-એકેન્દ્રિયો સિવાયના વૈમાનિક પર્યન્તના સમસ્ત જીવોનો નારક જીવોની જેમ ત્રણ સમયવાળો ઉત્કૃષ્ટ વિગ્રહ (વક્રગમન) હોય છે, એમ સમજવું ॥ સૂ. ૯૨ ॥

अभिईणक्खत्ते तितारे पण्णत्ते १ । एव सवणा२ अस्सिणी ३, भरणी४, मगसिरे ५, पूसे ६, जेट्ठा७ ॥सू०९४॥

धम्माओ णं अरहाओ सती अरहा तीहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भागपलिओवमऊणएहिं वीतिक्कतेहिं समुप्पन्ने ॥सू०९५॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिस जुगाओ जुगतकरभूमी ॥ सू० ९६ ॥

मल्ली णं अरहा तीहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए १ । एव पासे वि २ ॥ सू० ९७ ॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिन्निसया चउद्दस पुव्वीण अजिणाणं जिणसकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईण जिण इव अवितहवागरमाणाण उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसपया हुत्था ॥ सू० ९८ ॥

तओ तित्थयरो चक्कवट्टी होत्था, त जहा सती १ कुंथू२ अरो ३ ॥ सू० ९९ ॥

छाया-क्षीणमोहस्य खलु अर्हतस्त्रयः कर्मांशा युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा-ज्ञानावरणीयं१, दर्शनावरणीयं२, आन्तरायिकम्३ ॥ सू० ९३ ॥

पहले मोहवाले जीवों के तीन स्थान कहे हैं, अब सूत्रकार क्षीण मोहवाले जीव के तीन स्थान को कहते हैं-खीणमोहस्स ण अरहओ तओ-इत्यादि

सूत्रार्थ-क्षीणमोहवाले अर्हन्त के तीन कर्मांश युगपत् क्षीण होते हैं, जैसे-ज्ञानावरणीय-१ दर्शनावरणीय-२ और अन्तराय ३-॥ ९१

પહેલા મોહવાળા જીવોનાં ત્રણ સ્થાનનું કથન થયું હવે સૂત્રકાર ક્ષીણ મોહવાળા જીવનાં ત્રણ સ્થાનનુંકથન કરે છે—

' ખીણમોહસ્સ ણં અરહઓ તઓ " ઈત્યાદિ—

ક્ષીણ મોહવાળા અર્હંતના ત્રણ કર્માંશો એકી સાથે ક્ષીણ થાય છે જેમકે (૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય, (૩) અન્તરાય. ।૯૩।

अभिजिन्नक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तम् १, एवं श्रवणः२, अश्विनी३, भरणी४, मृगशिरः ५, पुष्यम् ६, ज्येष्ठा ७ ॥ सू० ९४ ॥

धर्मात् खलु अर्हत शान्तिरर्हन् त्रिषु सागरोपमेषु, त्रिचतुर्भागपल्योपमोनेषु व्यतिक्रान्तेषु समुत्पन्नः ॥ सू० ९५ ॥

श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य यावत्तृतीयं पुरुषयुगं युगान्तकरभूमिः॥९६

अभिजित् नक्षत्र तीन तारो वाला कहा गया है, इसी प्रकार से श्रवणनक्षत्र, अश्विनीनक्षत्र, भरणीनक्षत्र, मृगशिरानक्षत्र, पुष्यनक्षत्र और ज्येष्ठानक्षत्र भी तीन तारों वाले कहे गये हैं ॥ ९४

धर्मनाथ अर्हन्त के बाद शान्तिनाथ अर्हन्त तीन चौथाई भाग पल्योपम से न्यून ३ सागरोपम निकल जाने पर उत्पन्न हुवे अर्थात् पूर्ण तीन सागरोपम और पौन पल वीतनेके बाद-॥ ९५

भगवान महावीर स्वामी के तीर्थ में उनसे लगाकर यावत् जम्बू स्वामी तक निर्माण की प्रवृत्ति रही-वाद में वह प्रवृत्ति विच्छेद हो गई—॥९६

मल्लिनाथ भगवान तीन सौ पुरुष के साथ मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित हुवे हैं उसी प्रकार से पार्श्वनाथ भी ३०० पुरुषों के साथ प्रव्रजित हुवे हैं—॥ ९७

અભિજિત નક્ષત્ર ત્રણ તારાઓવાળું કહ્યું છે એ જ પ્રમાણે શ્રવણ નક્ષત્ર, અશ્વિની નક્ષત્ર, ભરણી નક્ષત્ર, મૃગશીર્ષ નક્ષત્ર, પુષ્ય નક્ષત્ર અને જયેષ્ઠા નક્ષત્ર પણ ત્રણ ત્રણ તારાઓવાળાં છે ।૯૪।

ધર્મનાથ અર્હંત થયા પછી ત્રણ સાગરોપમ કરતા ૩/૪ પલ્યોપમ (અર્થાત ત્રણ સાગરોપમ અને પોણા પલ્યોપમ કાલ પછી) પ્રમાણ ન્યૂન કાળ વ્યતીત થયા બાદ શાન્તિનાથ અર્હંત ઉત્પન્ન થયા હતા ।૯૫।

ભગવાન મહાવીર સ્વામીના તીર્થમા તેમનાથી શરૂ કરીને જંબૂસ્વામી પર્યન્ત નિર્વાણની પ્રવૃત્તિ ચાલુ રહી હતી ત્યાર બાદ તે પ્રવૃત્તિ વિચ્છેદ (બંધ) થઈ ગઈ ॥૯૬॥

મલ્લીનાથભગવાન ૩૦૦ પુરુષોની સાથે મુંડિત થઈને ગૃહસ્થાવસ્થાના પરિત્યાગપૂર્વક પ્રવ્રજિત થયા હતા એ જ પ્રમાણે પાર્શ્વનાથ ભગવાને પણ ૩૦૦ પુરુષોની સાથે પ્રવ્રજ્યા અંગીકાર હતી ।૯૭।

अभिईणक्खत्ते तितारे पण्णत्ते १। एवं सवणार अस्सिणी ३, भरणी४, मगसिरे ५, पूसे ६, जेट्ठा७ ॥सू०९४॥

धम्माओ णं अरहाओ संती अरहा तीहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भागपलिओवमऊणएहिं वीतिक्कतेहिं समुप्पन्ने ॥सू०९५॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिस जुगाओ जुगंतकरभूमी ॥ सू० ९६ ॥

मल्ली णं अरहा तीहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए १। एवं पासे वि २ ॥ सू० ९७ ॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिन्निसया चउद्दस पुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिण इव अवितहवागरमाणाण उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था ॥ सू० ९८ ॥

तओ तित्थयरो चक्कवट्टी होत्था, तं जहा -संती १ कुंथू२ अरो ३ ॥ सू० ९९ ॥

छाया-क्षीणमोहस्य खलु अर्हतस्त्रयः कर्मांशा युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा-ज्ञानावरणीय१, दर्शनावरणीयं२, आन्तरायिकम्३ ॥ सू० ९३ ॥

पहले मोहवाले जीवों के तीन स्थान कहे हैं, अब सूत्रकार क्षीण मोहवाले जीव के तीन स्थान को कहते हैं-खीणमोहस्स ण अरहओ तओ-इत्यादि

सूत्रार्थ-क्षीणमोहवाले अर्हन्त के तीन कर्मांश युगपत् क्षीणहोते हैं, जैसे-ज्ञानावरणीय-१ दर्शनावरणीय-२और अन्तराय ३-॥ ९३

પહેલા મોહવાળા જીવોનાં ત્રણ સ્થાનનું કથન થયું હવે સૂત્રકાર ક્ષીણ મોહવાળા જીવનાં ત્રણ સ્થાનનું કથન કરે છે—

'खीणमोहस्स णं अरहओ तओ" ઇત્યાદિ—

ક્ષીણ મોહવાળા અર્હંતના ત્રણ કર્માંશો એકી સાથે ક્ષીણ થાય છે જેમકે (૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય, (૩) અન્તરાય. ।૯૩।

जम्बूस्वामिनं यावदित्यर्थ युगान्तकरभूमिः, युगं-पुरुषयुगं-तदपेक्षया अन्तकराणां -भवान्तकारिणां निर्वाणगामिनामित्यर्थः भूमिः-कालः युगान्तकरभूमिरासीदिति। इदमत्र तात्पर्यम्-भगवत श्रीमहावीरस्वामिनस्तीर्थे तस्मादारभ्य तृतीयं पुरुषं जम्बूस्वामिनं यावन्निर्वाणमभूत्, तदुत्तरकाले तद्व्यवच्छेदादिति ॥ सू० ९६ ॥

'मल्ली'-त्यादि सूत्रद्वयम्, मल्ली-मल्लीनाथस्वामी खलु अर्हन् त्रिभिः पुरुषशतैः—त्रिशतसंख्यकपुरुषैः सार्धं मुण्डो भूत्वा 'यावत्' इति अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः-प्राप्तः। 'एवं पासेवि' इति एवं-मल्लीनाथस्वामिवत् पार्श्वोऽपि पार्श्वनाथस्वाम्यर्हन्नपि त्रिशतपुरुषैः सह प्रव्रजितोऽभूदिति भावः ॥ सू० ९७ ॥

त्रिस्थानकत्वाद् भगवतो महावीरस्य चतुर्दशपूर्विसंपत्सूत्रमाह—'समणस्स' इत्यादि, श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य चतुर्दशपूर्विणां-चतुर्दशपूर्वधराणाम्, कीदृशानाम्? इति विशेषणकलापमाह—'अजिणाणं' इत्यादि, अजिनानाम्-असर्वज्ञत्वेन, जिन सकाशानां-जिनसदृशानां सकलसंशयच्छेदकत्वेन, सर्वाक्षरसंनिपातिनां, सर्वे-सकलाः अक्षरसंनिपाताः-अकारादिसंयोगाः-सर्वाक्षरसंनिपाताः, ते विद्यन्ते येषां ते तथोक्ताः, तेषां विदितसकलवाङ्मयानामित्यर्थः पुनश्च जिन इव अर्हद्वत्, अवितथव्यागृणताम्, अवितथं-यथावस्थितं व्यागृणतां - व्याकुर्वतां, तीर्थकरवत्तथ्यभाषिणामित्यर्थः, एतद्विशेषणविशिष्टानां चतुर्दशपूर्विणाम् उत्कर्षिका-उत्कृष्टा चतुर्दशपूर्विसम्पत् - एतदभिधानासम्पत् 'होत्था' इति-आसीत् ॥ सू० ९८ ॥

'तओ' इत्यादि. त्रयस्तीर्थकराः चक्रवर्त्तिन आसन, तानेवाह-शान्तिः-शान्तिनाथः १, कुन्थुः-कुन्थुनाथः २, अरः-अरनाथः ३ इति ॥ सू० ९९ ॥

पूर्वं तीर्थकरा वर्णिताः, ते च विमानेभ्य आगता भवन्तीति विमानवक्तव्यतां सूत्रचतुष्टयेनाऽऽह—

मूलम्-तओ गेविज्जविमाणपत्थडा पण्णत्ता, तं जहा-हिट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे १, मज्झिमगेविज्जविमाणपत्थडे२, उवरिमगेविज्जविमाणपत्थडे ३। १। हिट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-हेट्ठिमहट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे १,हेट्ठि-

ये तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती हुवे हैं-शान्तिनाथ-कुन्थु-अमरनाथ ९९

આ ત્રણ તીર્થંકરોએ ચક્રવર્તીપદ ભોગવ્યુ હતું-(૧) શાન્તિનાથ, (૨) કુન્થુનાથ અને (૩) અરનાથ । ૯૯ ।

मल्ली खलु अर्हन् त्रिभिः पुरुषशतैः सार्धं मुण्डो भूत्वा यावत् प्रव्रजितः १। एवं पार्श्वोऽपि ॥ सू० ९७ ॥

श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य त्रीणि शतानि चतुर्दशपूर्वीणाम् अजिनानां जिनसंकाशानां सर्वाक्षरसन्निपातिनां जिन इवाऽवितथव्याकुर्वताम् उत्कर्षिका चतुर्दशपूर्वी सम्पदाऽऽसीत् ॥ सू० ९८ ॥

त्रयस्तीर्थकराश्चक्रवर्तिन आसन्, तद्यथा-शान्ति १, कुन्थु २, अरः॥सू०९९

टीका—'खीणमोहस्स' इत्यादि । क्षीणमोहस्य-क्षीणमोहनीयकर्मणा अर्हतः-जिनस्य त्रयः-कर्मांशा-कर्मभेदाः युगपत्-समकं क्षीयन्ते। तद्यथा-ज्ञानावरणीय १, दर्शनावरणीयम् २, आन्तरायिकम् ३॥सू० ९३॥

पूर्वमसावधानां त्रिस्थानकमुक्तं, साम्प्रतं साम्वतानां तदाह- अभीई —इत्यादि, अभिजिन्मश्रवणं त्रितारं-तारकत्रयमयं नक्षत्रम्। शेषं सुगमम् ॥सू०९४॥

परम्परसूत्रे क्षीणमोहस्य त्रिस्थानकमुक्तं, साम्प्रतं प्रसङ्गात्तद्विशेषाणां तीर्थकराणां तदाह—'धम्माओ' इत्यादि, धर्मात्-धर्मनामाभिधानात् अर्हतः-धर्माहतोऽनन्तरमित्यर्थः, त्रिचतुर्भागपल्योपमोनेषु-त्रिभि-त्रिसंख्यकैः चतुर्भागैः-पादैः पल्योपमसम्बन्धिभिरूनानि त्रिचतुर्भागपल्योपमोनानि, तेषु तादृशेषु पल्योपमचतुर्थभागत्रयरहितेषु त्रिषु सागरोपमेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु शान्ति-शान्तिनाथोऽर्हन् समुत्पन्न ॥ सू० ९५ ॥

'समणस्से'-त्यादि, श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य यावत्तृतीय पुरुषयुगम्, युगानि पञ्चवर्ष प्रमितानि कालविशेषा, तानि च क्रमव्यवस्थितानि भवन्तीत्यतः पुरुषाः-गुरुशिष्यक्रमवन्तः पितापुत्रक्रमवन्तो वा, अत्र पुरुष' गुरुशिष्य क्रमवान्, स युगमिव पुरुषयुग पुरुषसिंहवत्समासः, ततश्च तृतीय पुरुषयुगं यावत्-

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ३०० चतुर्दश पूर्वधारियों चौदह पूर्व धारियों की उत्कृष्ट चतुर्दश पूर्वी सम्पदायों थे चतुर्दश पूर्व धारी अजिन थे-असर्वज्ञ थे-जिनके जैसे थे। क्यों कि-वे सकलशास्त्र के भेदक थे सकलवाङ्मय के सकलशास्त्र के ज्ञाता थे, एवं तीर्थकर की तरह तथ्यभाषी थे। ९८

શ્રમણ ભગવાન મહાવીરની ઉત્કૃષ્ટ ચતુર્દશપૂર્વ સંપદા ૩૦૦ ની હતી. એટલે કે તેમના શિષ્ય સમુદાયમાં ૩૦૦ શ્રમણો ચૌદ પૂર્વધારી હતા. તે ચૌદ પૂર્વધારી અજિન હતા, અસર્વજ્ઞ હતા અને જિનના સમાન હતા, કારણ કે તેઓ સકલ અક્ષરના ભેદક ના સકલ વાઙ્મયના (સકલ શાસ્ત્રોના) જ્ઞાતા હતા અને તીર્થંકરની જેમ તથ્યભાષી હતા ।૯૮।

मध्यमाधस्तनग्रैवेयकविमानप्रस्तटः १, मध्यममध्यम - ग्रैवेयकविमानप्रस्तटः २, मध्यमोपरितनग्रैवेयकविमानप्रस्तटः ३ ।३। उपरितनग्रैवेयकविमानप्रस्तटस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा- उपरितनाधस्तनग्रैवेयकविमानप्रस्तटः १, उपरितनमध्यमग्रैवेयकविमानप्रस्तटः २, उपरितनोपरितनग्रैवेयकविमानप्रस्तटः ३ । ४ ॥ सू० १०० ॥

टीका—'तओ गेविज्ज०' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं सुगमं, नवरम्-लोकपुरुषस्य ग्रीवास्थाने भवानि ग्रैवेयकाणि, तानि च तानि विमानानीति ग्रैवेयकविमानानि, तेषां प्रस्तटाः-रचनाविशेषवन्तः समूहा इति ग्रैवेयकविमानप्रस्तटाः-ते त्रयः-त्रिसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः-अधस्तन-मध्यमो-परितन ग्रैवेयकप्रस्तटभेदात्, तद्यथा-तानेवाह—'हिट्ठिमगेविज्ज०' इत्यादि । सर्वं स्पष्टम् ॥ सू० १०० ॥

इदं च ग्रैवेयकादिविमानवासित्वं यद् भवति तत् कर्मणः सकाशाद् भवतीति कर्मणस्त्रिस्थानकमाह—

मूलम्—जीवा णं तिट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा-इत्थिणि-

---

है-मध्यमाधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तर-१ मध्यम मध्यम ग्रैवेयक विमानप्रस्तर-२ मध्यमोपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तर-३। उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तर भी तीन प्रकार का है, उपरितनाधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तर-१ उपरितन मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर-२ उपरितनोपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तर-३। लोक पुरुष की ग्रीवा के स्थान में होने के कारण ये ग्रैवेयक विमान कहलाते हैं, इनके रचना विशेष से युक्त जो समूह हैं वे प्रस्तर कहलाते हैं। इन के तीन प्रकार, और प्रकारों के भी प्रकार, ये सब ऊपर प्रकट कर दिये गये हैं। १००

---

૧ મધ્યમાધસ્તન ગ્રૈવેયક વિમાનપ્રસ્તર, ૨ મધ્યમમધ્યમ ગ્રૈવેયક-વિમાન પ્રસ્તર અને ૩ મધ્યમોપરિતન ગ્રૈવેયક વિમાનપ્રસ્તર.

ઉપરિતન ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તરના પણ ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે—

૧ ઉપરિતનાધસ્તન ગ્રૈવેયક વિમાનપ્રસ્તર, ૨ ઉપરિતન મધ્યમ ગ્રૈવેયક વિમાનપ્રસ્તર અને ૩ ઉપરિતનોપરિતન ગ્રૈવેયક વિમાનપ્રસ્તર લોકપુરુષની ગ્રીવાના સ્થાનમાં હોવાને કારણે આ વિમાનોને ગ્રૈવેયક વિમાનો કહે છે. રચના વિશેષથી યુક્ત એવા તેમના જે સમૂહ છે તેમને પ્રસ્તર કહે છે. તેના મુખ્ય ત્રણ પ્રકારોનું અને પ્રત્યેક પ્રકારના ત્રણ ત્રણ પ્રકારોનું આ સૂત્રમાં કથન કરવામાં આવ્યું છે ॥ સૂ૦ ૧૦૦ ॥

ममज्झिमगेविज्जविमाणपत्थडे २, हेट्ठिमउवरिमगेविज्जविमाणपत्थडे ३।२। मज्झिमगेविज्जविमाणपत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—मज्झिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे१, मज्झिममज्झिमगेविज्जविमाणपत्थडे२, मज्झिमउवरिमगेविज्जविमाणपत्थडे ३।३। उवरिमगेविज्जविमाणपत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—उवरिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे१, उवरिममज्झिमगेविज्जविमाणपत्थडे२, उवरिमउवरिमगेविज्जविमाणपत्थडे ३ । ४॥ सू० १००॥

छाया—त्रयः ग्रैवेयकविमानप्रस्तटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अधस्तनग्रैवेयकविमानप्रस्तटः १ मध्यमग्रैवेयकविमानप्रस्तटः २ उपरितनग्रैवेयकविमानप्रस्तटः ३ । १ । अधस्तनग्रैवेयकविमानप्रस्तटस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा-अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकविमानप्रस्तटः १ अधस्तनमध्यमग्रैवेयकविमानप्रस्तटः २, अधस्तनोपरितनग्रैवेयकविमानप्रस्तटः ३ । २ । मध्यमग्रैवेयकविमानप्रस्तटस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा

तीर्थंकर विमानोंसे आकर होते हैं, अतः अब विमान संबंधी प्ररूपणा सूत्रकार चार सूत्रोंसे करते हैं "तओ गेविज्जविमाणपत्थडा पण्णत्ता" इत्यादि,

टीकार्थ—तीन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट कहे गये हैं, जैसे—अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट-१ मध्यमग्रैवेयकविमान प्रस्तट-२ उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट-३ इनमें-अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट भी तीन प्रकार के कहे गये हैं, अधस्तनाधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट-१ अधस्तनमध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट २ अधस्तनोपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट-३ । मध्यम ग्रैवेयक विमानप्रस्तट भी तीन प्रकार का कहा गया

ટીકાર્થ—તીર્થંકરો વિમાનોમાંથી આવીને આ મનુષ્યલોકમાં જન્મ ધારણ કરે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ચાર સૂત્રો દ્વારા વિમાનોનું કથન કરે છે—

"તઓ ગેવિજ્જવિમાણપત્થડા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

ત્રણ ગ્રૈવેયક વિમાનોના પ્રસ્તટ કહ્યા છે—(૧) અધસ્તન ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તટ (૨) મધ્યમ ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તટ અને (૩) ઉપરિતન ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તટ. અધસ્તન ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તટના પણ નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અધસ્તનાધસ્તન ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તટ (૨) અધસ્તન મધ્યમ ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તટ અને (૩) અધસ્તન ઉપરિતન ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તટ.

મધ્યમ ગ્રૈવેયક વિમાન પ્રસ્તટના પણ ત્રણ ભેદ આ પ્રમાણે છે—

नाऽर्जितान्, नपुंसकनिर्वर्त्तितान् नपुंसकवेदत्वेनाऽर्जितान् पुद्गलान् जीवाः कालत्रयेऽपि अचिन्वन्–चिन्वन्ति चेष्यन्तीति प्रक्रम । १ । 'एव' इत्यनेनाकाङ्क्षा वाक्येन चयसंगादुपचयाद्यालापकपञ्चकमपि विज्ञेयम् । एवं चयालापकवत् उपाचिन्वन्–परिपोषणत एव २, अबध्नन्–निर्मापणतः ३, उदैरयन्–अध्यवसाय विशे-

पापकर्मरूप से पहले एकत्रित किया है, वर्तमान में वे जिन्हें एकत्रित कर रहे हैं और–भविष्यत् काल मे जिन्हें वे एकत्रित करेंगे वे पुरुषवेद निर्वर्तित पुद्गल हैं। इसी प्रकार से नपुंसक वेद मे रहकर जीवने जिन पुद्गलों को उपार्जित कर पापकर्मरूप से पहले एकत्रित किया है वर्तमान मे वे जिन्हे एकत्रित कर रहे हैं और–भविष्यत् काल मे वे जिन्हें एकत्रित करेंगे वे नपुंसक वेदनिवर्तित पुद्गल हैं। अर्थात्–स्त्री वेदरूप से अर्जित पुद्गलों को पुरुष वेद रूप से अर्जित पुद्गलों को तथा–नपुंसकवेदरूप से अर्जितपुद्गलों को जीवोंने कालत्रय में अर्जित किया है, अब भी वे करते हैं और–भविष्यत् मे भी वे अर्जित करेंगे "एवम्" यह आकांक्षा वाक्य है–इस आकांक्षावाक्य से चय के सम्बन्ध से उपचयबन्ध, उदीरणा आदि बीच के आलापक भी जाननी चाहिये इस तरह इस चय के आलापक की तरह जीव ने उनके परिपोषण से भूत काल से उनका उपचय कियाहै वर्तमान में वे

એ જ પ્રમાણે પુરુષવેદમા રહીને જીવે જે પુદ્ગલોને ઉપાર્જિત કરીને અશુભ કર્મરૂપે પહેલા એકત્રિત કર્યા છે, વર્તમાનમા તે જેમને ઉપાર્જિત કરી રહ્યો છે અને ભવિષ્યકાળમા તે જેમને એકત્રિત કરવાનો છે, તે પુદ્ગલોને પુરુષવેદ નિવર્તિત પુદ્ગલો કહે છે

એ જ પ્રમાણે નપુસકવેદમા રહીને જીવે જે પુદ્ગલોને ઉપાર્જિત કરીને પહેલા અશુભ કર્મરૂપે એકત્રિત કર્યા છે વર્તમાનમા તે જેમને એકત્રિત કરી રહ્યો છે અને ભવિષ્યમા પણ તે જેમને એકત્રિત કરવાનો છે, તે પુદ્ગલોને નપુસકવેદ નિવર્તિત પુદ્ગલો કહે છે એટલે કે સ્રીવેદરૂપે ઉપાર્જિત પુદ્ગલોને પુરુષવેદરૂપે ઉપાર્જિત પુદ્ગલોને તથા નપુસકવેદરૂપે ઉપાર્જિત પુદ્ગલોને જીવ ત્રણે કાળમા એકત્રિત કરે છે – ભૂતકાળમા પણ ઉપાર્જિત કર્યા છે, વર્તમાનમાં પણ ઉપાર્જિત કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ ઉપાર્જિત કરશે

"एवम्" ઇત્યાદિ-આ આકાક્ષા વાકય છે આ આકાક્ષા વાકય દ્વારા ચયના સબધથી ઉપચય બન્ધ, ઉદીરણા આદિ વચ્ચેના આલાપક પણ સમજી લેવા જોઇએ આ રીતે આ ચયના આલાપકની જેમ જીવે પરિપોષણની

न्वत्तिए, पुरिसणिव्वत्तिए, णपुंसगणिव्वत्तिए १। एवं "चिण उवचिण-बंध उदीरण वेद तह निज्जराचेव" ॥ सू० १०१ ॥

छाया—जीवा खलु त्रिस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचिन्वन् वा, चिन्वन्ति वा, चेष्यन्ति वा, तद्यथा-स्त्रीनिर्वर्तितान्, पुरुषनिर्वर्तितान्, नपुंसक निर्वर्तितान् ।१। एवं चयोपचयबन्धोदीरणवेदास्तथानिर्जरा चैव ॥ सू० १०१ ॥

टीका—' जीवा ' इत्यादि सूत्रषट्कम् । जीवाः खलु त्रिस्थाननिर्वर्तितान्-त्रिभिःस्थानैर्निर्वर्तिताः-उपार्जिताः त्रिस्थाननिर्वर्तितास्तान् पुद्गलान् पापकर्म तया-अशुभकर्मत्वेन उत्तरोत्तराशुभाध्यवसायवशात् अचिन्वन्-एकत्रीकृतवन्तो भूत-काले, चिन्वन्ति वर्तमानकाले, चेष्यन्ति-अनागतकाले। तान्येव त्रिस्थानानि दर्श यति—स्त्री निर्वर्तितान्- स्त्रीवेदत्वेनार्जितान्, पुरुषनिर्वर्तितान्-पुरुषवेदत्वे

ग्रैवेयक आदि विमानों में जीव की निवासिता कर्मोदय से होती है-इस लिये-अब सूत्रकार कर्म के तीन स्थान प्रकट करते हैं-" जीवा णं तिट्ठाण " इत्यादि

टीकार्थ-जीवोंने तीन स्थानों द्वारा उपार्जित पुद्गलों को उत्तरोत्तर अशुभ अध्यवसाय के वशमें होकर पापकर्मरूप से भूतकाल में संगृहीत किया है वर्तमान में संगृहीत करते हैं और-भविष्यत् काल में संगृहीत करेंगे। वे तीन स्थान इस प्रकार से हैं-स्त्री वेद, पुरुष वेद, और नपुंसकवेद इनमें रहकर जीवने जिन पुद्गलों को उपार्जित कर पापकर्म से पहिले एकत्रित किया है वर्तमान में एकत्रित कर रहे हैं और-भविष्यत् काल मे जिन्हें वे एकत्रित करेंगे वे स्त्री वेद निवर्तित पुद्गल हैं। इसी प्रकार पुरुष वेद में रहकर जीव ने जिन पुद्गलों को उपार्जित कर

ग्रैवेयक आदि विमानोमां જીवनी उत्पत्ति (ઉપપાત) કર્મોદયથી થાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર કર્મના ત્રણ સ્થાન પ્રકટ કરે છે—

" जीवाणं तिट्ठाण " ઈત્યાદિ।

ટીકાર્થ-જીવે એ ત્રણ સ્થાનો દ્વારા ઉપાર્જિત પુદ્ગલોને ઉત્તરોત્તર અશુભ અધ્યવસાયને અધીન થઈને અશુભ કર્મરૂપે ભૂતકાળમાં સંગૃહીત કર્યાં છે વર્તમાનમાં સંગૃહીત કરે છે અને ભવિષ્યમાં સંગૃહીત કરશે તે ત્રણ સ્થાન આ પ્રમાણે છે—સ્ત્રીવેદ, પુરુષવેદ અને નપુંસકવેદ સ્ત્રીવેદમાં રહીને જીવે જે પુદ્ગલોને ઉપાર્જિત કરીને અશુભકર્મરૂપે પહેલાં (ભૂતકાળમાં) એકત્રિત કર્યાં છે વર્તમાનમાં એકત્રિત કરી રહ્યો છે અને ભવિષ્યકાળમાં પણ જેને તે એકત્રિત કરવાનો છે તે પુદ્ગલોને સ્ત્રીવેદ નિવર્તિત પુદ્ગલો કહે છે

नाऽर्जितान्, नपुंसकनिर्वर्तितान् नपुंसकवेदत्वेनाऽर्जितान् पुद्गलान् जीवाः कालत्रयेऽपि अचिन्वन्–चिन्वन्ति चेष्यन्तीति प्रक्रमः । १ । 'एव' मित्यनेनाकाङ्क्षा वाक्येन चयसंगादुपचयाद्यालापकपञ्चकमपि विज्ञेयम् । एवं चयालापकवत् उपाचिन्वन्–परिपोषणत एव २, अबध्नन्–निर्मापणतः ३, उदैरयन्–अध्यवसाय विशे-

पापकर्मरूप से पहले एकत्रित किया है, वर्तमान में वे जिन्हें एकत्रित कर रहे हैं और–भविष्यत् काल में जिन्हें वे एकत्रित करेंगे वे पुरुषवेद निर्वर्तित पुद्गल हैं। इसी प्रकार से नपुंसक वेद में रहकर जीवने जिन पुद्गलों को उपार्जित कर पापकर्मरूप से पहले एकत्रित किया है वर्तमान में वे जिन्हें एकत्रित कर रहे हैं और–भविष्यत् काल में वे जिन्हें एकत्रित करेंगे वे नपुंसक वेदनिवर्तित पुद्गल हैं। अर्थात्–स्त्री वेदरूप से अर्जित पुद्गलों को पुरुष वेद रूप से अर्जित पुद्गलों को तथा–नपुंसकवेदरूप से अर्जितपुद्गलों को जीवोंने कालत्रय में अर्जित किया है, अब भी वे करते हैं और–भविष्यत् में भी वे अर्जित करेंगे "एवम्" यह आकांक्षा वाक्य है–इस आकांक्षावाक्य से चय के सम्बन्ध से उपचयबन्ध, उदीरणा आदि बीच के आलापक भी जानने चाहिये इस तरह इस चय के आलापक की तरह जीव ने उनके परिपोषण से भूत काल में उनका उपचय किया है वर्तमान में वे

એ જ પ્રમાણે પુરુષવેદમા રહીને જીવે જે પુદ્ગલોને ઉપાર્જિત કરીને અશુભ કર્મરૂપે પહેલા એકત્રિત કર્યા છે વર્તમાનમા તે જેમને ઉપાર્જિત કરી રહ્યો છે અને ભવિષ્યકાળમા તે જેમને એકત્રિત કરવાનો છે, તે પુદ્ગલોને પુરુષવેદ નિવર્તિત પુદ્ગલો કહે છે

એ જ પ્રમાણે નપુસકવેદમા રહીને જીવે જે પુદ્ગલોને ઉપાર્જિત કરીને પહેલા અશુભ કર્મરૂપે એકત્રિત કર્યા છે વર્તમાનમા તે જેમને એકત્રિત કરી રહ્યો છે અને ભવિષ્યમા પણ તે જેમને એકત્રિત કરવાનો છે, તે પુદ્ગલોને નપુંસકવેદ નિવર્તિત પુદ્ગલો કહે છે એટલે કે સ્રીવેદરૂપે ઉપાર્જિત પુદ્ગલોને પુરુષવેદરૂપે ઉપાર્જિત પુદ્ગલોને તથા નપુસકવેદરૂપે ઉપાર્જિત પુદ્ગલોને જીવ ત્રણે કાળમાં એકત્રિત કરે છે – ભૂતકાળમા પણ ઉપાર્જિત કર્યાં છે, વર્તમાનમાં પણ ઉપાર્જિત કરે છે અને ભવિષ્યમા પણ ઉપાર્જિત કરશે

"एवम्" ઇત્યાદિ–આ આકાક્ષા વાકય છે આ આકાક્ષા વાકય દ્વારા ચયના સબંધથી ઉપચય બન્ધ, ઉદીરણા આદિ વચ્ચેના આલાપક પણ સમજી લેવા જોઇએ આ રીતે આ ચયના આલાપકની જેમ જીવે પરિપોષણની

वेषानुदीर्णोदयप्रवेशनता, ४ अवेदयन्–अनुभवकरणता ५, निरजरयन्–आत्मप्रदेशपरिशाटनत ६। एव वर्तमाना–नागतकालयोरपि बोध्यम्। चयादीनाश्रित्य गाथार्धमत्र, तथाहि–"चिण उवचिण०" इत्यादि। अस्यार्थो व्याख्यातपूर्व एवेति ॥ सू० १०१ ॥

उपचय करते हैं और–भविष्यत् में भी वे उनका उपचय करेंगे। इसी प्रकार से अपने भावों के अनुसार उनका निर्माण करने से उनका भूत काल में बन्ध किया है, वर्तमानकाल में वे उनका बन्ध करते हैं, आगे भी वे उनका बन्ध करेंगे। इसी तरह अध्यवसाय विशेष से अनुदीर्ण को उदय में प्रवेश कराने से जीव ने भूतकाल में उनकी उदीरणा की है वर्तमान में वे उनकी उदीरणा करते हैं और भविष्यत् में वे उनकी उदीरणा करेंगे। इसी तरह से जीव ने उनका अनुभवन करण से उनका भूतकाल में वेदन किया है वर्तमान मे वे उनका वेदन करते हैं और भविष्यत् मे वे उनका वेदन करेंगे। इसी प्रकार आत्मप्रदेश से उन्हें हटाने से जीव ने भूतकाल में उनकी निर्जरा की है वर्तमान में वे उनकी निर्जरा करते हैं और भविष्यत् मे वे उनकी निर्जरा करेंगे। चयादि को आश्रित करके यह आधी गाथा सूत्रकार ने "एवं चिण उवचिण

અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં પણ તેમનો ઉપચય કર્યો છે, વર્તમાનમાં તે તેમનો ઉપચય કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તેમનો ઉપચય કરશે

એ જ પ્રમાણે પોતાના ભાવો અનુસાર તેમનુ નિર્માણ કરવાની અપેક્ષાએ જીવે ભૂતકાળમાં તેમનો બ ધ કર્યો છે વત માનકાળમાં પણ તે તેમનો બ ધ કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તે બ ધ કરશે એ જ પ્રમાણે અધ્યવસાય વિશેષથી અનુદીર્ણ ને તેમના ઉદયમાં પ્રવેશ કરાવવાની અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં તેમની ઉદીરણા કરી છે વત માનકાળમાં પણ જીવ તેમની ઉદીરણા કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ જીવ તેની ઉદીરણા કરશે.

એ જ પ્રમાણે જીવે તેમના અનુભવનકરણની અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં તેમનું વેદન કર્યુ છે વર્તમાનકાળમાં પણ જીવ તેમનું વેદન કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તે તેમનુ વેદન કરશે

એ જ પ્રમાણે આત્મપ્રદેશમાંથી તેમને અલગ કરવાની અપેક્ષાએ જીવે ભૂતકાળમાં તેમની નિર્જરા કરી છે વર્તમાનકાળમાં પણ જીવ તેમની નિર્જરા કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ જીવ તેમની નિર્જરા કરશે

ચયાદિને આશ્રિત કરીને આ અર્ધી ગાથા સૂત્રકારે "एव चिण–उवचिण–बंध–उदीरण–वेद तह निज्जरा चेव" આ પ્રમાણે કહી છે તેનો અર્થ

कर्म च पुद्गलात्मकमिति त्रिस्थानकेन पुद्गलस्कन्धानाह—

मूलम्—तिपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता । एवं जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ॥ सू० १०२ ॥

॥ तिट्ठाणस्स चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥ ३-४ ॥

तिट्ठाणं समत्तं ॥ ३ ॥

छाया—त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धा अनन्ताः प्रज्ञप्ताः एवं यावत् त्रिगुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० १०२ ॥

॥ तृतीयस्थानस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ३-४ ॥

टीका-'तिपएसिया' इत्यादि सुगमम् ॥ सू० १०२ ॥

इतिश्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलित-ललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्रीशाहूछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'पद-भूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि जैनाचार्य-जैनधर्म-दिवाकर-पूज्यश्री--घासीलालव्रतिविरचितायां स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां व्याख्यायां चतुरुद्देशात्मकं तृतीयं स्थानं संपूर्णम् ॥ ३-४ ॥

बंध उदीरण वेद तह निज्जरा चेव" इस प्रकार से कही है इसका अर्थ ही यह पूर्वोक्तरूप से प्रकट किया है। तात्पर्य कहने का यही है कि-चय की तरह ही स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदरूप से अर्जित पुद्गलों का अशुभ रूप से उपचय किया है, बन्ध किया है, उदीरण किया है, वेदन किया है और निर्जरा भी की है इसी तरह का कथन वर्तमान काल और-भविष्यकाल सम्बन्धी उपचयादिकों के आलापकों मे भी कर लेना चाहिये ॥ सू ०१०१ ॥

પૂર્વોક્તરૂપે ઉપર પ્રકટ કરવામા આવ્યો છે. આ કથનનુ તાત્પર્ય એ છે કે-ચયની જેમ જ સ્ત્રીવેદ, પુરુષવેદ, અને નપુંસકવેદરૂપે અર્જિત પુદ્ગલોનો જીવે અશુભરૂપે ઉપચય કર્યો છે, બન્ધ કર્યો છે, ઉદીરણ કર્યું છે અને નિર્જરા પણ કરી છે. એ જ પ્રકારનુ કથન વર્તમાનકાળ અને ભૂતકાળ સંબંધી ઉપચયાદિકોના આલાપકોમા પણ સમજી લેવુ જોઈએ ॥ ૧૦૧ ॥

येणानुदीर्णोदयप्रवेशनत, ४ अवेदयन्-अनुभवकरणत ५, निर्जरयन्-आत्मप्रदेशपरिशाटनत ६। एवं वर्तमाना-नागतकालयोरपि बोध्यम्। यथाश्रित्य गाथार्धमत्र, तथाहि—" चिण उवचिण० " इत्यादि। अस्यार्थो व्याख्यातपूर्व एवेति ॥ सू० १०१ ॥

उपचय करते हैं और-भविष्यत् में भी वे उनका उपचय करेंगे। इसी प्रकार से अपने भावों के अनुसार उनका निर्माण करने से उनका भूतकाल में बन्ध किया है, वर्तमानकाल में वे उनका बन्ध करते हैं, आगे भी वे उनका बन्ध करेंगे। इसी तरह अध्यवसाय विशेष से अनुदीर्ण को उदय में प्रवेश कराने से जीव ने भूतकाल में उनकी उदीरणा की है वर्तमान में वे उनकी उदीरणा करते हैं और भविष्यत् में वे उनकी उदीरणा करेंगे। इसी तरह से जीव ने उनका अनुभवन करण से उनका भूतकाल में वेदन किया है वर्तमान मे वे उनका वेदन करते हैं और भविष्यत् मे वे उनका वेदन करेंगे। इसी प्रकार आत्मप्रदेश से उन्हें हटाने से जीव ने भूतकाल में उनकी निर्जरा की है वर्तमान में वे उनकी निर्जरा करते हैं और भविष्यत् मे वे उनकी निर्जरा करेंगे। यथादि को आश्रित करके यह आधी गाथा सूत्रकार ने " एव चिण उवचिण

અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં પણ તેમનો ઉપચય કર્યો છે, વર્તમાનમાં તે તેમનો ઉપચય કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તેમનો ઉપચય કરશે

એ જ પ્રમાણે પોતાના ભાવો અનુસાર તેમનુ નિર્માણ કરવાની અપેક્ષાએ જીવે ભૂતકાળમાં તેમનો બંધ કર્યો છે વર્તમાનકાળમાં પણ તે તેમનો બંધ કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તે બંધ કરશે એ જ પ્રમાણે અધ્યવસાય વિશેષથી અનુદીર્ણને તેમના ઉદયમાં પ્રવેશ કરાવવાની અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં તેમની ઉદીરણા કરી છે વર્તમાનકાળમાં પણ જીવ તેમની ઉદીરણા કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ જીવ તેની ઉદીરણા કરશે

એ જ પ્રમાણે જીવે તેમના અનુભવનકરણની અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં તેમનું વેદન કર્યુ છે વર્તમાનકાળમાં પણ જીવ તેમનું વેદન કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તે તેમનુ વેદન કરશે

એ જ પ્રમાણે આત્મપ્રદેશમાંથી તેમને અલગ કરવાની અપેક્ષાએ જીવે ભૂતકાળમાં તેમની નિર્જરા કરી છે, વર્તમાનકાળમાં પણ જીવ તેમની નિર્જરા કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ જીવ તેમની નિર્જરા કરશે

યથાદિને આશ્રિત કરીને આ અર્ધી ગાથા સૂત્રકારે "એવ ચિણ-ઉવચિણ-બંધ-ઉદીરણ-વેદ તહ ણિજ્જરા ચેવ" આ પ્રમાણે કહી છે તેનો અર્થ

कर्म च पुद्गलात्मकमिति त्रिस्थानकेन पुद्गलस्कन्धानाह—

मूलम्—तिपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता । एवं जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ॥ सू० १०२ ॥

॥ तिट्ठाणस्स चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥ ३-४ ॥

तिट्ठाणं समत्तं ॥ ३ ॥

छाया—त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धा अनन्ताः प्रज्ञप्ताः एवं यावत् त्रिगुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० १०२ ॥

॥ तृतीयस्थानस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ३-४ ॥

टीका—' तिपएसिया' इत्यादि सुगमम् ॥ सू० १०२ ॥

इतिश्री विश्वविख्यात—जगद्वल्लभ—प्रसिद्धवाचक—पञ्चदशभाषाकलित-ललितकलापालापक—प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक—वादिमानमर्दक श्रीशाहूछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'पद-भूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य—जैनधर्म—दिवाकर—पूज्यश्री--घासीलालव्रतिविरचितायां स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां व्याख्यायां चतुरुद्देशात्मकं तृतीयं स्थानं संपूर्णम् ॥ ३-४ ॥

बंध उदीरण वेद तह निज्जरा चेव" इस प्रकार से कही है इसका अर्थ ही यह पूर्वोक्तरूप से प्रकट किया है। तात्पर्य कहने का यही है कि-चय की तरह ही स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदरूप से अर्जित पुद्गलों का अशुभ रूप से उपचय किया है, बन्ध किया है, उदीरण किया है, वेदन किया है और निर्जरा भी की है इसी तरह का कथन वर्तमान काल और-भविष्यकाल सम्बन्धी उपचयादिकों के आलापकों में भी कर लेना चाहिये ॥ सू ०१०१ ॥

પૂર્વોક્તરૂપે ઉપર પ્રકટ કરવામા આવ્યો છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે-

ચયની જેમજ સ્ત્રીવેદ, પુરુષવેદ, અને નપુંસકવેદરૂપે અર્જિત પુદ્ગલોને જીવે અશુભરૂપે ઉપચય કર્યો છે, બન્ધ કર્યો છે, ઉદીરણ કર્યું છે અને નિર્જરા પણ કરી છે એજ પ્રકારનું કથન વર્તમાનકાળ અને ભૂતકાળ સંબધી ઉપચયાદિકોના આલાપકોમા પણ સમજી લેવું જોઇએ ॥ ૧૦૧ ॥

येणानुदीर्णोदयमवेशनतः, ४ अवेदयन्-अनुभवकरणात ५, निरजरयन्-आत्म प्रदेशपरिशाटनत ६। एव वर्त्तमाना-नागतकालयोरपि बोध्यम्। चयाद्याश्रित्य गाथार्धमत्र, तथाहि—"चिण उवचिण०" इत्यादि। अस्यार्थो व्याख्यात-पूर्व एवति ॥ सू० १०१ ॥

उपचय करते हैं और-भविष्यत् में भी ये उनका उपचय करेंगे। इसी प्रकार से अपने भावों के अनुसार उनका निर्माण करने से उनका भूत काल में बन्ध किया है, वर्तमानकाल में वे उनका बन्ध करते हैं, आगे भी वे उनका बन्ध करेंगे। इसी तरह अध्यवसाय विशेष से अनुदीर्ण को उदय में प्रवेश कराने से जीव ने भूतकाल में उनकी उदीरणा की है वर्तमान में वे उनकी उदीरणा करते हैं और भविष्यत् में वे उनकी उदीरणा करेंगे। इसी तरह से जीव ने उनका अनुभवन करण से उनका भूतकाल में वेदन किया है वर्तमान मे वे उनका वेदन करते हैं और भविष्यत् मे वे उनका वेदन करेंगे। इसी प्रकार आत्मप्रदेश से उन्हें हटाने से जीव ने भूतकाल में उनकी निर्जरा की है वर्तमान में वे उनकी निर्जरा करते हैं और भविष्यत् मे वे उनकी निर्जरा करेंगे। चयादि को आश्रित करके यह आधी गाथा सूत्रकार ने "एवं चिण उवचिण

અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં પણ તેમનો ઉપચય કર્યો છે, વર્તમાનમાં તે તેમનો ઉપચય કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તેમનો ઉપચય કરશે

એ જ પ્રમાણે પોતાના ભાવો અનુસાર તેમનુ નિર્માણ કરવાની અપેક્ષાએ જીવે ભૂતકાળમાં તેમનો બ ધ કર્યો છે વત માનકાળમાં પણ તે તેમનો બન્ધ કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તે બ ધ કરશે એ જ પ્રમાણે અધ્યવસાય વિશેષથી અનુદીર્ણને તેમના ઉદયમાં પ્રવેશ કરાવવાની અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં તેમની ઉદીરણા કરી છે વત માનકાળમાં પણ જીવ તેમની ઉદીરણા કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ જીવ તેની ઉદીરણા કરશે

એ જ પ્રમાણે જીવે તેમના અનુભવનકરણની અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં તેમનું વેદન કર્યુ છે વત માનકાળમાં પણ જીવ તેમનું વેદન કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તે તેમનુ વેદન કરશે.

એ જ પ્રમાણે આત્મપ્રદેશમાંથી તેમને અલગ કરવાની અપેક્ષાએ જીવે ભૂતકાળમાં તેમની નિર્જરા કરી છે વર્તમાનકાળમાં પણ જીવ તેમની નિર્જરા કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ જીવ તેમની નિર્જરા કરશે

ચયાદિને આશ્રિત કરીને આ અર્ધી ગાથા સૂત્રકારે "एव चिण-उवचिण -बंध-उदीरण-वेद तह निज्जरा चेव' આ પ્રમાણે કહી છે તેનો અર્થ

कर्म च पुद्गलात्मकमिति त्रिस्थानकेन पुद्गलस्कन्धानाह—

मूलम्—तिपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता । एवं जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ॥ सू० १०२ ॥

॥ तिट्ठाणस्स चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥ ३-४ ॥

तिट्ठाणं समत्त ॥ ३ ॥

छाया—त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धा अनन्ताः प्रज्ञप्ताः एवं यावत् त्रिगुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० १०२ ॥

॥ तृतीयस्थानस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ३-४ ॥

टीका—' तिपएसिया' इत्यादि सुगमम् ॥ सू० १०२ ॥

इतिश्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलित-
ललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमा-
नमर्दक श्रीशाहूछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'पद-
भूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्म-
दिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालव्रतिविरचितायां
स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां व्याख्यायां
चतुरुद्देशात्मकं तृतीयं स्थानं संपूर्णम् ॥ ३-४ ॥

बंध उदीरण वेद तह निज्जरा चेव " इस प्रकार से कही है इसका अर्थ ही यह पूर्वोक्तरूप से प्रकट किया है। तात्पर्य कहने का यही है कि— चय की तरह ही स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदरूप से अर्जित पुद्गलों का अशुभ रूप से उपचय किया है, बन्ध किया है, उदीरण किया है, वेदन किया है और निर्जरा भी की है इसी तरह का कथन वर्तमान काल और-भविष्यकाल सम्बन्धी उपचयादिकों के आलापकों में भी कर लेना चाहिये ॥ सू ०१०१ ॥

પૂર્વોક્તરૂપે ઉપર પ્રકટ કરવામા આવ્યો છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે-

ચયની જેમ જ સ્ત્રીવેદ, પુરુષવેદ, અને નપુંસકવેદરૂપે અર્જિત પુદ્ગલોનો જીવે અશુભરૂપે ઉપચય કર્યો છે, બન્ધ કર્યો છે, ઉદીરણ કર્યું છે અને નિર્જરા પણ કરી છે. એજ પ્રકારનું કથન વર્તમાનકાળ અને ભૂતકાળ સંબંધી ઉપચયાદિકોના આલાપકોમા પણ સમજી લેવું જોઈએ ॥ ૧૦૧ ॥

कर्म पुद्गल स्कन्धरूप होते हैं, अब -सूत्रकार त्रिस्थान को लेकर पुद्गलस्कन्धों का कथन करते हैं—

" तिपएसिया खंधा अणंता-" इत्यादि। त्रिप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं इसी तरह से यावत् त्रिगुणरूक्ष पुद्गल भी अनन्त कहे गये हैं ॥ १०२ ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलाल प्रतिविरचित स्थानाङ्गसूत्रकी सुधारूप टीका के चार उद्देशक युक्त तीसरे स्थानक समाप्त ॥ ३-४ ॥

કર્મ પુદ્ગલ સ્કન્ધરૂપ હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર ત્રિસ્થાનકોની અપેક્ષાએ પુદ્ગલ સ્કંધોનું કથન કરે છે—

" तिपएसिया खंधा अणंता " ઇત્યાદિ ।

ત્રિપ્રદેશિક સ્કન્ધ અનન્ત કહ્યાં છે એ પ્રમાણે ત્રિગુણરૂક્ષ પર્યન્તના પુદ્ગલો પણ અનંત કહ્યા છે ॥ ૧૦૨ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મદિવાકર-પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલ મુનિવિરચિત સ્થાનાંગસૂત્રની સુધા નામની ટીકાના ચાર ઉદ્દેશક વાળું ત્રીજું સ્થાનક સમાપ્ત ॥ ૩-૪ ॥

ॐ

श्रीवीतरागाय नमः ।

अथ चतुर्थं स्थानं प्रारभ्यते

चतुर्थस्थानस्य प्रथमोद्देशः ॥१॥

महावीरं धीरं जितमदनवीरं प्रभुवरं,
कृपापारावारं दलितभवभारं जिनवरम् ॥
त्रिधा वन्दे वन्देलिमपदसरोजं सुरवरै-
स्ततस्तूर्यं स्थानं विवरणपथं प्रापय इदम् ॥१॥

चौथा स्थानक के पहेला उद्देशक प्रारंभ

मङ्गलाचरणम्—

" महावीरं वीरं " इत्यादि १ ॥

इस श्लोक का संक्षेप में अर्थ इस प्रकार से है–जिनके वन्दनीय पद कमलों की वन्दना देवेन्द्र करते हैं, जो कृपा के अपार पारावार हैं, जिन्हों ने अपना भव भार उतार दिया है, ऐसे धीर वीर प्रभुवर महावीर को कि जिन्हों ने मदन–काम जैसे श्रेष्ठ वीर के मद को चूर कर दिया है मैं मन वचन और कायरूप त्रिकरण त्रिभागसे नमस्कार करता हूं, स्थानाङ्ग सूत्र का यह चतुर्थ स्थान अब विवरण युक्त किया जाता है —

ચોથા સ્થાનનો પહેલો ઉદ્દેશક પ્રારંભ

— મંગલાચરણ —

" महावीर वीरं " ઇત્યાદિ—

આ શ્લોકનો ભાવાર્થ સંક્ષિપ્તમા પ્રકટ કરવામાં આવે છે–જેમના વન્દનીય ચરણકમલોની વંદણા દેવેન્દ્રો પણ કરે છે, જેમની કૃપા પારાવાર છે, જેમણે પોતાનો ભવભાર ઉતારી નાખ્યો છે, જેમણે મદન (કામ) જેવા મહાવીરના મદને–અહંકારને સર્વથા શકય કરી નાખ્યો છે એવા ધીર વીર પ્રભુવર મહાવીરને હું મન, વચન અને કાયથી નમન કરું છું.

गत तृतीयं स्थानं, सम्प्रति क्रममाप्तं चतुर्थस्थान मारभ्यते, अस्य च पूर्वेण सहायमभिसम्बन्ध-" तृतीयस्थाने जीवाजीवादिद्रव्यपर्यायाणां वैचित्र्यमभिहितमत्रापि तदेवाभिधीयते " इत्यमुनासम्बन्धेनाऽऽयातस्य चतुरुद्देशकात्मकस्य चतुर्थस्थानस्य प्रथमोद्देशकस्याऽऽद्य सूत्रमाह—

सूत्रम्-चत्तारि अंतकिरियाओ पण्णत्ताओ त जहा-तत्थ खलु पढमा इमा अंतकिरिया अप्पकम्मपच्चायाए यावि हवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संयमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी तस्स णं णो तहप्पगारे तवे हवइ, णो तहप्पगारा वेयणा हवइ तहप्पगारे पुरिसजाए दीहेणं परियाएणं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वाइ सव्व दुक्खाणमंतं करेइ, जहा-से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी, पढमा अंतकिरिया १, अहावरा दोच्चा अंतकिरिया महाकम्मपच्चायाए यावि भवइ,

तृतीय स्थान समाप्त हो चुका, अब क्रम प्राप्त चतुर्थ स्थान प्रारम्भ होता है इस स्थान का पूर्वस्थान के साथ ऐसा सम्बन्ध है-" तृतीय स्थान मे जीवाजीवादि द्रव्यों की पर्यायों का वैचित्र्य विविध प्रकार कहा गया है,-सो यहां पर भी वही कहा जावेगा ' इसी सम्बन्ध से आये हुये इस चार उद्देशात्मक चतुर्थ स्थानके प्रथम उद्देशकका यह आद्य सूत्र कहा जा रहा है-"चत्तारि अंत किरियाओ पण्णत्ताओ-" इत्यादि

હવે સ્થાનાંગ સૂત્રના ચોથા સ્થાનનું વિવેચન કરવામાં આવે છે—
ત્રીજા સ્થાનનું વિવરણ પૂરૂં થયું હવે અનુક્રમ પ્રમાણે ચોથા સ્થાનની પ્રરૂપણા શરૂ થાય છે આ સ્થાનનો પૂર્વ સ્થાન સાથે આ પ્રકારનો સંબંધ છે— ત્રીજા સ્થાનમાં જીવ, અજીવાદિ દ્રવ્યોની પર્યાયોનું વૈચિત્ર્ય વિવિધ પ્રકારે પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે, અહીં પણ એ જ વિષયને અનુલક્ષીને ચાર સ્થાનની અપેક્ષાએ નિરૂપણ કરવામાં આવશે. ચતુર્થ સ્થાનનું પ્રતિપાદન કરતાં ચાર ઉદ્દેશકો છે, તેમાંથી પહેલા ઉદ્દેશાનું પહેલું સૂત્ર આ પ્રમાણે છે—

" ચત્તારિ અંતકિરિયાઓ પણ્ણત્તાઓ ' ઇત્યાદિ—

से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संयमबहुले संवरबहुले जाव उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी तस्स णं तहप्पगारे तवे भवइ, तहप्पगारा वेयणा भवइ, तहप्पगारे पुरिसजाए निरुद्धेणं परियाएणं सिज्झइ, जाव अंतं करेइ, जहा-से गयसूमाले अणगारे, दोच्चा अंतकिरिया २, अहावरा तच्चा अंतकिरिया-महाकम्मपच्चायाए यावि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए जहा दोच्चा, नवरं दीहेणं परियाएणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, जहा-से सणंकुमारे राया चाउरंतचक्कवट्टी, तच्चा अंतकिरिया ३, अहावरा चउत्था अंतकिरिया-अप्पकम्मपच्चायाए यावि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए संयमबहुले जाव तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवइ, णो तहप्पगारा वेयणा भवइ, तहप्पगारे पुरिसजाए णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झइ, जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, जहा-सा मरुदेवा भगवई, चउत्था अंतकिरिया ४ ॥ सू० १ ॥

छाया—चतस्रोऽन्तक्रियाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-तत्र खलु प्रथमा इयम् अन्तक्रिया-अल्पकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति, असौ खलु मुण्डो भूत्वा अगारतोऽनगारितां प्रव्रजितः संयमबहुलः संवरबहुलः, समाधिबहुलः रूक्षः (वा) तीरार्थी तीरस्थायी तीरस्थितिर्वा उपधानवान् दुःखक्षपः तपस्वी, तस्य खलु नो तथाप्रकारं तपो भवति, नो तथाप्रकारा वेदना भवति, तथाप्रकारं पुरुषजातं दीर्घेण पर्यायेण सिध्यति बुध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानामन्तं करोति, यथा ऽसौ भरतो राजा चातुरन्तचक्रवर्ती, प्रथमाऽन्तक्रिया १, अथापरा द्वितीया अन्तक्रिया-महाकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति, असौ खलु मुण्डो भूत्वा अगारतोऽनगारितां प्रव्रजितः संयमबहुलः संवरबहुलः यावत् उपधानवान् दुःखक्षपः तपस्वी, तस्य खलु तथाप्रकारं तपो भवति, तथाप्रकारा वेदना भवति, तथाप्रकारं पुरुष-

गत तृतीयं स्थानं, सम्प्रति क्रमप्राप्तं चतुर्थस्थान मारभ्यते, अस्य च पूर्वेण सहायमभिसम्बन्धः –" तृतीयस्थाने जीवाजीवादिद्रव्यपर्यायाणां वैचित्र्यमभिहितमत्रापि तदेवाभिधीयते " इत्यमुनासम्बन्धेनाऽऽयातस्य चतुरुद्देशकात्मकस्य चतुर्थस्थानस्य प्रथमोद्देशकस्याऽऽद्य सूत्रमाह—

सूत्र–चत्तारि अंतकिरियाओ पण्णत्ताओ त जहा–तत्थ खलु पढमा इमा अतकिरिया अप्पकम्मपच्चायाए यावि हवइ, से णं मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए सयमबहुले सवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणव दुक्खक्खवे तवस्सी तस्स णं णो तहप्पगारे तवे हवइ, णो तहप्पगारा वेयणा हवइ तहप्पगारे पुरिसजाए दीहेण परियाएणं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वाइ सव्व दुक्खाणमत करेइ, जहा–से भरहे राया चाउरतचक्कवट्टी, पढमा अतकिरिया १, अहावरा दोच्चा अतकिरिया महाकम्मपच्चायाए यावि भवइ,

तृतीय स्थान समाप्त हो चुका, अब क्रम प्राप्त चतुर्थ स्थान प्रारम्भ होता है इस स्थान का पूर्वस्थान के साथ ऐसा सम्बन्ध है–"तृतीय स्थान मे जीवाजीवादि द्रव्यों की पर्यायों का वैचित्र्य विविध प्रकार कहा गया है,–सो यहां पर भी यही कहा जावेगा' इसी सम्बन्ध से आये हुवे इस चार उद्देशात्मक चतुर्थ स्थानके प्रथम उद्देशकका यह आद्य सूत्र कहा जा रहा है–"चत्तारि अंत किरियाओ पण्णत्ताओ–" इत्यादि

हवे स्थानांग सूत्रना चोथा स्थाननुं विवेचन करवामां आवे छे—
त्रीजा स्थाननुं विवरण पूरुं थयुं हवे अनुक्रम प्रमाणे चोथा स्थाननी शरूआत थाय छे आ स्थाननो पूर्व स्थान साथे आ प्रकारनो सबंध छे— त्रीजा स्थानमां जीव, अजीवादि द्रव्योनी पर्यायोनुं वैचित्र्य विविध प्रकारे प्रकट करवामां आव्युं छे, अहीं पण एज विषयने अनुलक्षीने चार स्थाननी अपेक्षाए निरूपण करवामां आवशे चतुर्थ स्थाननुं प्रतिपादन करतां चार उद्देशा छे तेमांथी पहेला उद्देशानुं पहेलुं सूत्र आ प्रमाणे छे—
' चत्तारि अंतकिरियाओ पण्णत्ताओ " इत्यादि—

क्रया-अल्पकर्मप्रत्यायातः=अल्पकर्मा-पूर्वकृतशुभकर्मप्रभावाल्लघुकर्मा सन् प्रत्यायातः=देवलोकादितः समायातो भवति तस्य भवान्तभवन प्रगमाऽन्तक्रिया भवति, तमेव पुरुष वर्णयति-' से ' इत्यादि, स=लघुकर्मा खलु मुण्डः=द्रव्यतो लुञ्चितकेशो भावतो दूरीकृतकषायो भूत्वा अगारतः=द्रव्यतो गृहात्, भावतोऽविवेकसदनात्, अनगारिताम्=अगारं-गृहमस्यास्तीत्यगारी-गृही-असंयतः, नागारीत्यनगारी-संयत', तस्य भावोऽनगारिता, तां=साधुतां, प्रव्रजितः=प्राप्तः, यद्वा-" अनगारियं ' इत्यत्र विभक्ति विपरिणामेनानगारितया, प्रव्रजितः=दीक्षितः। पुनः कीदृशः ? संयमबहुलः=संयमेन-पृथिव्यादिषड्जीवनिकायरक्षणरूपेण सप्तदशविधेन बहुलः=प्रचुरः पुनः कीदृशः ? संवरबहुलः=संवरेण-आस्रवनिरोधेन,

---

यह प्रथम अन्तक्रिया जिस पुरुष को होती है अब उसके विषय में सूत्रकार कथन करते हैं-लघुकर्मा पुरुष द्रव्य से लुंचित केशवाला होकर और भाव से कषायों से रहित होकर अनगारावस्था से-गृहस्थावस्था से द्रव्य की अपेक्षा घर से, और भाव की अपेक्षा अविवेक रूप से निकल कर अनगारावस्था को संयतावस्था को साधुता को प्राप्त हो जाता है। अथवा-" अनगारियं " पदका ऐसा भी अर्थ हो सकता है-कि यह अनगारीरूप से दीक्षित हो जाता है। संयम बहुलः-पृथिव्यादि षड् जीवनिकाय की रक्षा करने रूप १७ प्रकार के संयम से प्रचुर हो जाता है। संवर बहुलः आस्रव निरोधरूप संवर से, यद्वा इन्द्रिय कषाय निग्रहादिरूप संवर से प्रचुर हो जाता है, अर्थात्

પહેલા પ્રકારની અન્તક્રિયા કરનાર પુરુષના વિષયમાં અહીં સૂત્રકાર નીચે પ્રમાણે કથન કરે છે-લઘુકર્મા પુરુષ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ લુંચિત કેશવાળો થઇને અને ભાવની અપેક્ષાએ કષાયોથી રહિત થઇને અગારાવસ્થાના (ગૃહસ્થાવસ્થાના) પરિત્યાગપૂર્વક અણગારાવસ્થા-સંયતાવસ્થાને (સાધુતાને) પ્રાપ્ત કરે છે આ પ્રમાણે અણગારાવસ્થા ધારણ કરવામાં તે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ સાંસારિક ઘરમાંથી અને ભાવની અપેક્ષાએ અવિવેક રૂપ ઘરમાંથી બહાર નીકળીને સંયતાવસ્થાસંપન્ન બને છે અથવા-" અનગારિયં " આ પદનો વિભક્તિ એવો અર્થ પણ થઈ શકે છે કે " તે અણગારી રૂપે થઈ જાય છે " " સંયમબહુલ " તે પૃથ્વીકાય આદિ છ જીવનિકાયની રક્ષા કરવા રૂપ ૧૭ પ્રકારના સંયમથી પ્રચુર (ખૂબ જ યુક્ત) થઈ જાય છે " સંવર-બહુલ " તે આસ્રવના નિરોધ રૂપ સંવરથી અથવા ઇન્દ્રિય કષાય નિગ્રહાદિ રૂપ સંવરમાં પ્રચુર થઇ જાય છે-એટલે કે કષાય અને ઇન્દ્રિયજય રૂપ સંવૃત

भावं निरुद्धेन पर्यायेण सिध्यति यावत् अन्तं करोति, यथा ऽसौ गजसुकुमारः अनगारः, द्वितीयाऽन्तक्रिया २, अथापरा तृतीयाऽन्तक्रिया-महाकर्म-प्रत्यायात श्चापि भवति, असौ खलु मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजित, यथा द्वितीया, नवरं दीर्घेण पर्यायेण सिध्यति यावत् सर्वदुःखानामन्तं करोति, यथा ऽसौ सनत्कुमारो राजा चातुरन्तचक्रवर्ती, तृतीयाऽन्तक्रिया ३, अथापरा चतुर्थी अन्तक्रिया-अल्पकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति, असौ खलु मुण्डो भूत्वा यावत् प्रव्रजितः संयमबहुल यावत् तस्य खलु नो तथाप्रकारं तपो भवति, नो तथाप्रकारा वेदना भवति, तथाप्रकारं पुरुषजातं निरुद्धेन पर्यायेण सिध्यति यावत् सर्वदुःखानामन्तं करोति, यथा-सा मरुदेवी भगवती, चतुर्थी अन्तक्रिया ४ ॥ सू० १ ॥

टीका—" चत्तारि " इत्यादि-एतदव्यवहितपूर्वप्रतिपादितोद्देशकस्योपान्त्य सूत्रे कर्मणश्चयादि प्रतिपादितम्, अत्र तु कर्मणस्तत्कार्यस्य भवस्य चाऽन्तक्रिया प्रतिपाद्यते, चतस्रः=चतुः संख्यकाः, अन्तक्रिया=भवस्यान्तकरणरूपा, प्रज्ञप्ताः= प्रतिपादिता, तत्र=चतुर्विधान्तक्रियासु, प्रथमा इयम्=अनुपदं वक्ष्यमाणा, अन्त

टीकार्थ-अन्त क्रियाएँ चार कही गई हैं, इनमें-प्रथम अन्तक्रिया यह है " अल्पकर्म प्रत्यायातश्चापि भवति " पूर्वकृत शुभकर्म के प्रभाव से लघुकर्मा हुवा जो जीव देवलोक से यहां आया हुवा होता है इसके भव का अन्त होना यह प्रथम अन्तक्रिया है अन्तक्रिया वर्णन करने का भाव इस प्रकार से है कि तृतीयस्थान के उपान्त्य सूत्र मे जो कर्म के समूह चयादिकोंका कथन किया गया है सो यहां पर कर्मकी और-उसके कार्यभूत भव की अन्तक्रिया कहना है, अतः-उसका यहां प्रतिपादन किया जा रहा है। यह अन्तक्रिया चार प्रकार की कही गई है-उसमें

ટીકાર્થ-અન્તક્રિયાઓ ચાર કહી છે તેમાં પ્રથમ અન્તક્રિયા આ છે—" अल्पकर्म प्रत्यायातश्चापि भवति " પૂર્વકૃત શુભકર્મના પ્રભાવથી લઘુકર્મા (હલુકર્મી) બનેલો જે જીવ દેવલોકમાંથી અહીં આવ્યો હોય છે તેના ભવનો અન્ત થવો તે પ્રથમ અન્તક્રિયા છે

અહીં અન્તક્રિયાનું કથન કરવાનો હેતુ આ પ્રમાણે છે-ત્રીજા સ્થાનના ઉપાન્ત્ય (છેલ્લા સૂત્ર પહેલાનું સૂત્ર) સૂત્રમાં કર્મના ચયાદિકોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, ત્યારે અહીં કર્મની અને તેના કાર્યભૂત ભવની અન્ત ક્રિયાનું કથન કરવાનું છે આ સંબંધને અનુસરીને અહીં અન્તક્રિયાનું પ્રતિ પાદન કરવામાં આવે છે તે અન્તક્રિયા ચાર પ્રકારની કહી છે તેમાં આ

क्रिया-अल्पकर्मप्रत्यायातः=अल्पकर्मा-पूर्वकृतशुभकर्मप्रभावाल्लघुकर्मा सन् प्रत्यायातः=देवलोकादितः समायातो भवति तस्य भवान्तभवन प्रथमाऽन्तक्रिया भवति, तमेव पुरुषं वर्णयति-' से ' इत्यादि, स=लघुकर्मा खलु मुण्डः=द्रव्यतो लुञ्चितकेशो भावतो दूरीकृतकषायो भूत्वा अगारतः=द्रव्यतो गृहात्, भावतोऽविवेकसदनात्, अनगारिताम्=अगारं-गृहमस्यास्तीत्यगारी-गृही-असंयतः, नागारीत्यनगारी-संयत', तस्य भावोऽनगारिता, तां=साधुतां, प्रव्रजितः=प्राप्तः, यद्वा-" अनगारिय ' इत्यत्र विभक्ति विपरिणामेनानगारितया, प्रव्रजितः=दीक्षितः। पुनः कीदृशः ? संयमबहुलः=संयमेन-पृथिव्यादिषड्जीवनिकायरक्षणरूपेण सप्तदशविधेन बहुलः=प्रचुरः. पुनः कीदृशः ? संवरबहुलः=संवरेण-आस्रवनिरोधेन,

---

यह प्रथम अन्तक्रिया जिस पुरुष की होती है अब उसके विषय में सूत्रकार कथन करते हैं-लघुकर्मा पुरुष द्रव्य से लुंचित केशवाला होकर और भाव से कषायों से रहित होकर अनगारावस्था से-गृहस्थावस्था से द्रव्य की अपेक्षा घर से, और भाव की अपेक्षा अविवेक रूप से निकल कर अनगारावस्था को संयतावस्था को साधुता को प्राप्त हो जाता है। अथवा-" अनगारियं " पदका ऐसा भी अर्थ हो सकता है-कि यह अनगारीरूप से दीक्षित हो जाता है। संयम बहुलः-पृथिव्यादि षड् जीवनिकाय की रक्षा करने रूप १७ प्रकार के संयम से प्रचुर हो जाता है। संवर बहुलः आस्रव निरोधरूप संवर से, यद्वा इन्द्रिय कषाय निग्रहादिरूप संवर से प्रचुर हो जाता है, अर्थात्

પહેલા પ્રકારની અન્તક્રિયા કરનાર પુરુષના વિષયમા અહીં સૂત્રકાર નીચે પ્રમાણે કથન કરે છે-લઘુકર્મા પુરુષ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ લુંચિત કેશવાળો થઇને અને ભાવની અપેક્ષાએ કષાયોથી રહિત થઇને અગારાવસ્થાના (ગૃહસ્થાવસ્થાના) પરિત્યાગપૂર્વક અણગારાવસ્થા-સંયતાવસ્થાને (સાધુતાને) પ્રાપ્ત કરે છે આ પ્રમાણે અણગારાવસ્થા ધારણ કરવામા તે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ સાંસારિક ઘરમાંથી અને ભાવની અપેક્ષાએ અવિવેક રૂપ ઘરમાથી બહાર નીકળીને સંયતાવસ્થાસંપન્ન બને છે અથવા-" અનગારિયં " આ પદનો વિભક્તિ એવો અર્થ પણ થઈ શકે છે કે " તે અણગારી રૂપે થઈ જાય છે " " સંયમબહુલ " તે પૃથ્વીકાય આદિ છ જીવનિકાયની રક્ષા કરવા રૂપ ૧૭ પ્રકારના સંયમથી પ્રચુર (ખૂબ જ યુક્ત) થઈ જાય છે " સંવર-બહુલ " તે આસ્રવના નિરોધ રૂપ સંવરથી અથવા ઇન્દ્રિય કષાય નિગ્રહાદિ રૂપ સંવરમાં પ્રચુર થઇ જાય ...

यदेन्द्रियकषायनिग्रहादिना, बहुला, तत्र संयमबहुलत्वविशेषणोपादानं षड्जीवनिकायविराधनाविरमणमुख्यता सूचनार्थं, यत —

" एक्कंचिय एत्थ वयं निदिट्ठं जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
पाणाइवायविरमणमवसेसा तस्स रक्खट्ठा " ॥१॥ इति,

छाया—" एकमेवात्र व्रतं निर्दिष्टं जिनवरैः सर्वैः ।
प्राणातिपातविरमणमवशेषाणि तस्य रक्षार्थम् ॥१॥ " इति,

एतत्संयमबहुलत्व – संवरबहुलत्वद्वयं रागादिरहितचित्तवृत्तेः पुरुषसिंहस्य जायते, अत आह–" समाधिबहुलः " इति, समाधि –चित्तस्वास्थ्य, तेन बहुलः, समाधिः तथा गगररहितस्यैव भवतीत्याह–" रुक्ष " द्रव्यतः शरीरे तैलाभ्यङ्गवर्जितत्वेन, भावतः कामादिरहितत्वेन । कथमसौ संयमबहुलत्वादिविशिष्टो भव

कषाय और इन्द्रियजयरूप संवृत जिसका प्रचुर है ऐसा हो जाता है, यहां–" संयमबहुल " इस विशेषण का जो उपादान हुआ है वह षड् जीवनिकाय की विराधना से विरमण होने की मुख्यता सूचना के लिये हुआ है। क्यों कि–" एक्कंचिय एत्थवयं " इत्यादि ऐसा कहा है कि समस्त जिनवरों ने प्राणातिपात विरमणरूप एक ही व्रत कहा है बाकी के जो और और व्रत हैं वे सब इसी की रक्षा के लिये कहे गये हैं। संयम बहुलता और संवर बहुलता ये दो रागादि रहित चित्तवृत्तिवाले पुरुषसिंह को होते हैं। इसीलिये " समाधिबहुल "ऐसा कहा है समाधि चित्तस्वास्थ्य से जो बहुल हो जाता है रुक्ष हो जाता है द्रव्य से शरीर में तैलाभ्यङ्ग से वर्जित होने के कारण तथा भाव से कामादि रहित

જેના થયા છે એવો થઈ જાય છે અહીં ' સંયમ બહુલ " આ વિશેષણનો જે પ્રયોગ થયો છે તે ષડ્જીવનિકાયની વિરાધનાથી વિરમણ થવાની મુખ્યતાને પ્રકટ કરવા નિમિત્તે થયો છે, કારણ કે " एक्क चिय एत्थ वयं " ઇત્યાદિ.

સમસ્ત જિનવરોએ પ્રાણાતિપાત વિરમણરૂપ એક જ વ્રત કહ્યું છે, બાકીનાં જે વ્રતો છે તે તો આ વ્રતની રક્ષા નિમિત્તે જ કહ્યા છે સંયમ બહુલતા અને સંવર બહુલતા આ બન્નેનો સદ્ભાવ રાગાદિ રહિત ચિત્ત વૃત્તિવાળા પુરુષસિંહમાં જ હોઈ શકે છે તેથી જ ' સમાધિ બહુલ " આ વિશેષણનો પણ પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે જેનું ચિત્ત પ્રચુર સ્વાસ્થ્યમાં લીન થઈ જાય છે તેને સમાધિ બહુલ કહે છે એવો જીવ રૂક્ષ થઈ જાય છે, તેલ-માલિશ આદિના અભાવે તે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ રૂક્ષ થઈ જાય છે, અને

तीत्याह-" तीरट्ठी " " तीरार्थी, तीरस्थायी, तीरस्थितिर्वेति च्छाया। तत्र ' तीरार्थी ' तीरं=पारं भवसागरस्यार्थयत इत्येवंशीलः=संसार समुद्रपाराभिलाषी, तीरस्थायी-भवार्णवतटमधिष्ठायो, तीरस्थिति'-तीरे=भवसागरतटे स्थितिरवस्थानं यस्य स संसारसिन्धुतटे स्थित इत्यर्थः, अत एव " उपधानवान् " प्रशस्तमनोवाक्काययोगवान्, अत एव दुःखक्षपः=दुःखं-दुःखजनकत्वात् कर्म, तत् क्षपयतीति दु खक्षपः, कर्मक्षपणं च तपोजन्यमित्यत आह-" तपस्वी "-ति, तप आभ्यन्तरिकं कर्मवनभस्मसात्करणहुताशायमानमनशनादिरूप द्वादशविधमस्यास्तीति तप·

होने के कारण रूखा हो जाता, क्यों कि-" तीरट्ठी-" यह तीरार्थी या तीरस्थायी होता है। अथवा तीरस्थितिवाला होता है, भवसागर का पार जाने की कामनावाला होता है, इसलिये तो तीरार्थी या भवसागर के तट पर आकर वह बिलकुल खडा हो जाता है। अतः-जब तीरस्थायी होता है, या भवसागर के तट पर इसकी स्थिति अवस्थान हो जाती है, इसीलिये यह तीरस्थितिवालो हो जाता है। इसी से यह " उपधानवान् " प्रशस्त मन वचन और कायवाला हो जाता है अत एव यह " दुःखक्षयः-" दुःख को दुःखजनक कर्म का क्षय करने लगता है क्यों कि-यह तपस्वी होता है बाह्य तप अनशनादि वाला और-आभ्यन्तर तप प्रायश्चित्त आदिवाला होता है। कारण कि-यह इस बात को अच्छी तरह से समझ चुका होता है कि-बाह्य और आभ्यन्तर तप ही कर्मरूपी वन को भस्मसात् करने मे अग्नि का काम देते हैं।

ભાવની અપેક્ષાએ કામાદિથી રહિત થવાને કારણે તે રૂક્ષ થઈ જાય છે, કારણ કે તે " तीरट्ठी " તીરાર્થી અથવા તીરસ્થાયી હોય છે, અથવા તીર સ્થિતિવાળો હોય છે, ભવસાગરને પાર કરવાની કામનાવાળો હોય છે, તેથી તેને તીરર્થી કહ્યો છે. અથવા ભવસાગરને કિનારે આવીને તે ઊભો જ રહી જાય છે તેથી તેને તીરસ્થાયી કહે છે. જ્યારે તે ભવસાગરને કિનારે આવીને ઊભો રહી જાય છે અથવા ભવસાગરના તટપર તેની સ્થિતિ (અવસ્થાન) થઈ જાય છે ત્યારે તે તીર સ્થિતિવાળો થઇ જાય છે તે કારણે જ તે " ઉપધાનવાન્ " એટલે કે પ્રશસ્ત મન, વચન અને કાયવાળો થઈ જાય છે. તેથી જ તે " दुखःक्षयः " દુઃખનો દુઃખજનક કર્મનો ક્ષય કરવા માંડે છે કેવી રીતે તે કર્મનો ક્ષય કરે છે તે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—

તે તપસ્વી હોય છે, અનશનાદિ બાહ્ય તપ અને પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ આભ્યન્તર તપનો આરાધક હોય છે. તે એ વાતને સંપૂર્ણ રીતે સમજી ગયો હોય છે કે બાહ્ય અને આભ્યન્તર તપ જ કર્મરૂપી વનને ભસ્મ કરવાને અગ્નિની

स्यो, यः पूर्वोक्तप्रकारकः, तस्य=प्राक्तनविशेषणविशिष्टस्य, ' ण ' वाक्यालङ्कारे, तथाप्रकारं=तादृशम् अत्यन्तघोरमिति तदर्थः, श्रीवर्द्धमानजिनस्येव, तपो= ऽनशनादिरूपं, नो=न, भवति, एवं तथाप्रकारा=अतिघोरोपसर्गादिजन्या, वेदना= पीडा, नो=न, भवति, यतोऽसावल्पकर्मप्रत्यायातो भवतीति, ततश्च तथाप्रकारम्= तथा-पूर्वोक्ता', प्रकारा -अल्पकर्मप्रत्यायातत्वादिरूपा यस्य तादृशं=कश्चित्पुरुष इत्यर्थः, दीर्घेण=चिरकालिकेन, पर्यायेण=प्रव्रज्यारूपेण करणेन सिध्यति= अणिमादियोगेन निष्ठितार्थो वा विशेषतः सिद्धिगमनार्हो वा जायते, सर्वकर्मप्रधा नमोहनीयक्षयात्, बुध्यते-घातिकर्मचतुष्टयापगमेन केवली, भवति, मुच्यते= भवोपग्राहिकर्मकलापान्मुक्तो भवति, परिनिर्वाति=सर्वकर्मजन्यविकारसमुदायद्

यद्यपि-इस प्रकार के इन पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट अनगार के बाह्य और आभ्यन्तर तप, तथाप्रकार के श्री वर्द्धमान जिनेश्वर के तप की तरह अत्यन्त घोर नहीं होते हैं ' एव तथा प्रकारा वेदना नो भवति " अति घोरोपसर्गजन्य वेदना पीडा भी उसे नहीं होती है। क्यों कि- यह अल्प कर्म प्रत्यायात हलुकर्मा होता है, अतः-ऐसा अल्प कर्म प्रत्यायातत्वादि प्रकारवाला यह पुरुष चिरकालिक प्रव्रज्यारूप करण द्वारा " सिध्यति " अणिमादियोग से निष्ठित प्रयोजनवाला हो जाता है। अथवा-सिद्धिगति में जाने का योग्य हो जाता है, क्यों कि-इसका सर्व कर्म प्रधान मोहनीय कर्म नष्ट हो जाता है " बुध्यते " चार घातिका (घातिया) कर्मों के अपगम से यह केवली हो जाता है " मुच्यते " भवोपग्राही कर्मकलाप से चार अघातिया कर्मों से मुक्त हो जाता है।

જોકે ચારે છે એ કે સંયમ વગેરે આદિ વિશેષણોવાળા તે અણગારના બાહ્ય અને આભ્યન્તર તપ શ્રી વર્ધમાન જિનેશ્વરના બાહ્ય અને આભ્યન્તર તપ સમાન અત્યન્ત ઘોર હોતા નથી. एव तथा प्रकारा वेदना नो भवति " તથા અતિ ઘોર ઉપસર્ગજન્ય વેદના પણ તેમને સહન કરવી પડતી નથી, કારણ કે તે અલ્પ કર્મ પ્રત્યયાત (અલ્પ કર્મોને કારણે) હલુકર્મા (લઘુકર્મા) હોય છે તેથી તે લઘુકર્મા પુરુષ ચિરકાલિક પ્રવ્રજ્યા રૂપ કરણ દ્વારા ' सिध्यति " અણિમાદિ યોગથી નિષ્ઠિત પ્રયોજનવાળો થઈ જાય છે, અથવા સિદ્ધિગતિમાં જવાને પાત્ર થઈ જાય છે કારણ કે સર્વ કર્મોમાં મુખ્ય એવા મોહનીય કર્મનો તે ક્ષય કરી નાખે છે " बुज्झइ ' ચાર ઘાતિયા કર્મોનો ક્ષય કરીને તે કેવલી થઈ જાય છે ' मुच्चइ ભવોપગ્રાહી કર્મકલાપથી-ચાર અઘાતિયા કર્મોથી મુક્ત થઈ જાય છે, ' परिनिव्वाइ ' સર્વ કર્મજન્ય વિકાર સમૂહ દૂર

रीकरणेन शीतलीभवति, सर्वदुःखानाम्=कायिकमानसानाम् , अन्तं=क्षय, करोति, तथाविधतपोवेदनाद्यभावतो दीर्घेणापि पर्यायेण कोऽपि सिद्धो भवति नवेति संशयं निराकर्तुमाह-" यथाऽसौ भरतो राजा " यथा-येन प्रकारेण असौ भरतः -तदाख्य ऋषभदेवज्येष्ठपुत्रो राजा, कीदृश इत्याह-' चातुरन्तचक्रवर्ती '-चत्वारोऽन्ताः-पर्यन्ताः पूर्वदक्षिणपश्चिमसागरहिमवद्रूपा यस्याः सा चतुरन्ता पृथिवी, चतुरन्ताया अयं (स्वामी) चातुरन्तः, स चासौ चक्रवर्ती च चातुरन्तचक्रवर्ती, स हि पूर्वभवे लघूकृतकर्मा सर्वार्थसिद्धविमानाच्च्युत्वा चक्रवर्त्तित्वेन समुत्पद्य राज्यावस्थामेव केवलज्ञानमुपार्ज्य परिपालितपूर्वलक्षदीक्षोऽतथाविधतपोवेदन एव सिद्धिं प्राप्त इति प्रथमाऽन्तक्रिया ॥ सू० १ ॥

" परिनिर्वाति " सर्व कर्मजन्य विकार समूह के दूर हो जाने से शीतलीभूत हो जाता है, और कायिक एवं मानसिक दुःख बिलकुल नष्ट हो जाते हैं। यदि कोई यहां पर ऐसी शङ्का करे कि-तथाविध तप, और वेदना आदि के अभाव से दीर्घपर्याय का पालन करने से भी कोई सिद्ध होता है ? या नहीं होता है ? तो इस संशय मूलक शङ्का को दूर करने के लिये सूत्रकार ने कहा है कि ऐसी बात नहीं है, देखो-" जहा से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी " ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र राजा भरत जो कि-पूर्व दक्षिण पश्चिम सागर और हिमवान् पर्वतरूप चार पर्यन्तवाली भूमि का स्वामी थे चक्रवर्ती थे, अर्थात्-पूर्वभवमें लघुकृत कर्मा होकर जो सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर चक्रवर्तीरूप से उत्पन्न हुवे थे। उन्हों ने राज्यावस्था में ही केवलज्ञान उत्पन्न करके एक

થઇ જવાને લીધે શીતલીભૂત થઇ જાય છે, અને કાયિક અને માનસિક દુઃખ બિલકુલ નષ્ટ થઈ જાય છે.

શંકા—તે પ્રકારનાં તપ અને તે પ્રકારની વેદના આદિના અભાવમાં પણ દીર્ઘ પર્યાયનુ (શ્રામણ્ય પર્યાયનું) પાલન કરીને કેટલાક જીવો સિદ્ધ થાય છે પણ ખરાં અને કેટલાક સિદ્ધ નથી પણ થતા, તેનું કારણ શું ?

સમાધાન—" जहा से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी " ઋષભદેવના જ્યેષ્ઠ પુત્ર રાજા ભરત, કે જે " ચાતુરન્ત ચક્રવર્તી હતા " (પૂર્વ, દક્ષિણ અને પશ્ચિમ સાગર તથા હિમવાન પર્વત રૂપ ચાર અન્તવાળી ભૂમિના સ્વામી હતા) એટલે કે પૂર્વભવમા લઘુકર્મા થઇને જેઓ સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાનમાંથી ચ્યવીને ચક્રવર્તી રૂપે ઉત્પન્ન થયા હતા, તેમણે રાજ્યાવસ્થામાં જ કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન કરીને એક લાખ પૂર્વ પર્યન્ત દીક્ષા પર્યાયનુ પાલન કર્યું હતું અને

अथ द्वितीयाऽन्तक्रिया-२

" महावरे "-त्ति-अथ-तदनन्तरम्, अपरा-अन्या पूर्वापेक्षया, द्वितीयाऽन्तक्रिया-महाकर्मेत्यादि-महाकर्मभिर्महाकर्मा सहितेत्यर्थः, प्रत्यायात =देवलोकात्प्रत्यायातो यः स तथाभूत, तस्येति-तस्य=पूर्वोक्तस्य, महाकर्मप्रत्यायातत्वेन सतः पयाय तथाप्रकार घोर तपो भवति, एवं वेदनाऽपि देवाद्युपसर्गोत्था तथाप्रकारा तथारूपा दुस्सहेत्यर्थः भवति। तथाप्रकार=तादृश पुरुषजात कोऽपि पुरुषः, "निरुद्धेने "-त्ति-अल्पेन पर्यायेण यथाऽसौ गजसुकुमार=देवलोकाच्च्युतो वेपनथा

लाख पूर्वतक दीक्षा पर्याय का पालन, तथाविध तप और-वेदना के अभाव में ही सिद्धिको प्राप्त कियाहै ॥ यह प्रथमान्त क्रिया है ॥सू०१॥

द्वितीया अन्तक्रिया-२

" अहावरे " त्ति द्वितीय अन्तक्रिया इस प्रकार से है-महाकर्मों से महाकर्मा कोई जीव देवलोक से यहां उत्पन्न हुवा अब वह जीव उन महाकर्मों का क्षपण करने के लिये तथाप्रकार के घोर तप का अनुष्ठान करता है उसमें उसे देवादिकृत उपसर्गजन्य तथारूप दुस्सह वेदना भी होती है ऐसा वह पुरुष निरुद्ध अल्प पर्याय से गजसुकुमार मुनि की तरह सिद्धिगत हो जाता है यहां पर प्रथम अन्तक्रिया में कथित "असौ खलु मुण्डो भूत्वा-" से लेकर " दुःखक्षयः तपस्वी " ये सब विशेषण लगा लेना चाहिये, इसकी व्याख्या पूर्वोक्त जैसी ही है, गजसुकुमार

તે પ્રકારનાં તપ અને વેદનાનો અભાવ હોવા છતાં પણ સિદ્ધિ પામ્યા હતા એટલે આ બાબતમાં જીવનું લઘુકર્માપણું અને ગુરુકર્માપણું પણ વિચારવું પડે છે પ્રથમ અન્તક્રિયાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે ॥ સૂ. ૧ ॥

— બીજી અન્તક્રિયા —

' મહાવરે ત્તિ " બીજી અન્તક્રિયાનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—મહાકર્મો કોઈ જીવ દેવલોકમાંથી ચ્યવીને અહીં ઉત્પન્ન થયો છે હવે તે જીવ તે મહાકર્મોનું ક્ષપણ કરવાને માટે ઉચિત એવાં ઘોર તપનું અનુષ્ઠાન કરે છે આ ઘોર તપની આરાધના કરતી વખતે તેને દેવાદિ કૃત ઉપસર્ગજન્ય તથારૂપ દુઃસહ વેદના પણ સહન કરવી પડે છે એવો તે પુરુષ અલ્પકાળ પર્યન્ત શ્રામણ્ય પર્યાયનું પાલન કરીને, ગજસુકુમાર મુનિની જેમ સિદ્ધગતિમાં પહોંચી જાય છે અહીં પણ પહેલી અન્તક્રિયામાં કથિત " અસૌ ખલુ મુણ્ડો ભૂત્વા " થી શરૂ કરીને " દુઃખક્ષયઃ તપસ્વી " આ સૂત્રપાઠ પર્યન્તના આ બધાં વિશેષણો લગાડવા જોઈએ. તેમની વ્યાખ્યા પહેલાં કહ્યા પ્રમાણે જ સમજવી.

अङ्गजातः कृष्णलघुभ्राता, स हि भगवतः श्रीमतोऽरिष्टनेमिजिनस्य पार्श्वे दीक्षां गृहीत्वा श्मशानभुवि कृतकायोत्सर्गात्मकमहातपा मस्तकन्यस्तजाज्वल्यमानवह्निजन्यातिवेदनो लक्षोनकोटिभवसंचितकठोरकर्माणि विशुद्धाध्यवसायेन क्षपयित्वाऽल्पीयसैव पर्यायेण सिद्धिं गत इति, शेषं स्पष्टम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाऽन्तक्रिया ॥ २ ॥

अथ तृतीयाऽन्तक्रिया-३

" अहावरा " इत्यादि-तृतीया महाकर्मविषयाऽन्तक्रिया स्पष्टा । यदिऽसौ सनत्कुमार इति, चतुर्थचक्रवर्ती, स हि महातपाः सप्तशतवर्षाणि यावत् पोडशरो-

मुनि देवलोक से च्युत हुवे थे और देव की कुक्षि से जन्मे थे, ये कृष्ण के लघुभ्राता थे। इन्हों ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास जिन दीक्षा धारण की थी श्मशानभूमि में कायोत्सर्गात्मक महातप इन्हों ने किया था इनके मस्तक ऊपर जलती हुई खैर की अंगारें रखी गई थी उससे इन्हें अतिघोर वेदना हुई थी इससे इन्हों ने एक लाख कम करोड भव के संचित कठोर कर्मों का विशुद्ध अध्यवसाय से क्षय कर दिया था इससे वे अल्प ही पर्याय से सिद्धिगति का स्वामी वन गये, इस प्रकार से यह द्वितीय अन्तक्रिया-२

तृतीय अन्तक्रिया—३

"अहावरा" इत्यादि पूर्वभव के महाकर्मों से महाकर्मवाला बना हुवा कोई जीव देवलोक से यहां उत्पन्न हुवा अब यह मुण्डित होकर

ગજસુકુમાર મુનિની કથા આ પ્રમાણે છે-દેવલોકમાંથી ચ્યવીને તેઓ દેવકીની કૂંખે જન્મ્યા હતા તેઓ કૃષ્ણના નાના ભાઈ હતા. તેમણે ભગવાન અરિષ્ટ નેમિની પાસે જિન દીક્ષા અંગીકાર કરી હતી શ્મશાનભૂમિમાં તેમણે કાયોત્સર્ગાત્મક મહાતપ કર્યું હતું તેમના સંસારી સસરા સોમીલ બ્રાહ્મણે તેમના મસ્તક પર સળગતા ખેરના અંગારા મૂક્યા હતા તે કારણે તેમને અતિઘોર વેદના થઈ હતી સમભાવપૂર્વક તે વેદના સહન કરીને તેમણે ૯૯ લાખ ભવના સંચિત કર્મોનો વિશુદ્ધ અધ્યવસાયથી ક્ષય કરી નાખ્યો હતો આ રીતે અલ્પ સમયની શ્રામણ્ય પર્યાયનું પાલન કરીને તેઓ સિદ્ધિગતિના સ્વામી બની ગયા હતા બીજી અન્તક્રિયાનુ આ પ્રકારનું સ્વરૂપ સમજવું. । ૨ ।

— ત્રીજી અન્તક્રિયા —

" અહાવરા " ઈત્યાદિ—પૂર્વભવના મહાકર્મોથી મહાકર્મવાળો બનેલો કોઈ જીવ દેવલોકમાથી ચ્યવીને આ મનુષ્યલોકમાં ઉત્પન્ન થાય છે તે મુંડિત

अथ द्वितीयाऽन्तक्रिया-२

" अहावरे "-त्ति-अथ-तदनन्तरम्, अपरा-अन्या पूर्वापेक्षया, द्वितीयाऽन्त क्रिया-महाकर्मेत्यादि-महाकर्मभिर्महाकर्मा सन्नित्यर्थः, प्रत्यायातः=देवलोकात्प्र मायातो यः स तथाभूतः, तस्येति-तस्य=पूर्वोक्तस्य, महाकर्मप्रत्यायातत्वेन तस्य पर्याय तथाप्रकारं घोरं तपो भवति, एवं वेदनाऽपि देवाद्युपसर्गाणां तथाप्रकारा तथारूपा दुस्सहेत्यर्थः भवति। तथाप्रकारं=तादृशं पुरुषमात्रं कोऽपि पुरुषः, "निरुद्धेने "-ति-अल्पेन पर्यायेण यथाऽसौ गजसुकुमारः=देवलोकच्युतो देवकया

लम्ब पूर्वतक दीक्षा पर्याय का पालन, तथाविध तप और-वेदना के अभाव में ही सिद्धिको प्राप्त कियाहै ॥ यह प्रथमान्त क्रिया है ।सू०१॥

द्वितीया अन्तक्रिया-२

" अहावरे " त्ति द्वितीय अन्तक्रिया इस प्रकार से है-महाकर्मों से महाकर्मा कोई जीव देवलोक से यहां उत्पन्न हुआ अब वह जीव उन महाकर्मों का क्षपण करने के लिये तथाप्रकार के घोर तप का अनुष्ठान करता है उसमें उसे देवादिकृत उपसर्गजन्य तथारूप दुःसह वेदना भी होती है ऐसा वह पुरुष निरुद्ध अल्प पर्याय से गजसुकुमार मुनि की तरह सिद्धिगत हो जाता है यहां पर प्रथम अन्तक्रिया में कथित "असौ खलु मुण्डो भूत्वा-" से लेकर " दुःखक्षयः तपस्वी " ये सब विशेषण लगा लेना चाहिये, इनकी व्याख्या पूर्वोक्त जैसी ही है, गजसुकुमार

ते प्रકારનાં તપ અને વેદનાનો અભાવ હોવા છતાં પણ સિદ્ધિ પામ્યા હતા, એટલે આ બાબતમાં જીવનું લઘુકર્મપણું અને ગુરુકર્મપણું પણ વિચારવું પડે છે પ્રથમ અન્તક્રિયાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે ॥ સૂ ૧ ॥

— બીજી અન્તક્રિયા —

' અહાવરે ત્તિ " બીજી અન્તક્રિયાનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—મહાકર્મો કોઈ જીવ દેવલોકમાંથી ચ્યવીને અહીં ઉત્પન્ન થયો છે હવે તે જીવ તે મહાકર્મોનું ક્ષપણ કરવાને માટે ઉચિત એવાં ઘોર તપનું અનુષ્ઠાન કરે છે આ ઘોર તપની આરાધના કરતી વખતે તેને દેવાદિ કૃત ઉપસર્ગજન્ય તથારૂપ દુઃસહ વેદના પણ સહન કરવી પડે છે એવો તે પુરુષ અલ્પકાળ પર્યન્ત શ્રામણ્ય પર્યાયનું પાલન કરીને, ગજસુકુમાર મુનિની જેમ સિદ્ધગતિમાં પહોંચી જાય છે અહીં પણ પહેલી અન્તક્રિયામાં કથિત ' અસૌ ખલુ મુણ્ડો ભૂત્વા " થી શરૂ કરીને " દુઃખક્ષયઃ તપસ્વી " આ સૂત્રપાઠ પર્યન્તના આ બધાં વિશેષણો લગાડવા જોઈએ. તેમની વ્યાખ્યા પહેલાં કહ્યા પ્રમાણે જ સમજવી.

अङ्गजातः कृष्णलघुभ्राता, स हि भगवतः श्रीमतोऽरिष्टनेमिजिनस्य पार्श्वे दीक्षां गृहीत्वा श्मशानभुवि कृतकायोत्सर्गात्मकमहातपा मस्तकन्यस्तजाज्वल्यमानवह्निजन्यातिवेदनो लक्षोनकोटिभवसंचितकठोरकर्माणि विशुद्धाध्यवसायेन क्षपयित्वा ऽल्पीयसैव पर्यायेण सिद्धिं गत इति, शेषं स्पष्टम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाऽन्तक्रिया ॥ २ ॥

अथ तृतीयाऽन्तक्रिया-३

" अहावरा " इत्यादि-तृतीया महाकर्मविषयाऽन्तक्रिया स्पष्टा । यदिऽसौ सनत्कुमार इति, चतुर्थचक्रवर्ती, स हि महातपाः सप्तशतवर्षाणि यावत् षोडशरो-

मुनि देवलोक से च्युत हुवे थे और देव की कुक्षि से जन्मे थे, ये कृष्ण के लघुभ्राता थे। इन्हों ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास जिन दीक्षा धारण की थी श्मशानभूमि में कायोत्सर्गात्मक महातप इन्हों ने किया था इनके मस्तक ऊपर जलती हुई खैर की अगारें रखी गई थी उससे इन्हें अतिघोर वेदना हुई थी इससे इन्हों ने एक लाख कम करोड भव के संचित कठोर कर्मों का विशुद्ध अध्यवसाय से क्षय कर दिया था इससे वे अल्प ही पर्याय से सिद्धिगति का स्वामी बन गये, इस प्रकार से यह द्वितीय अन्तक्रिया-२

तृतीय अन्तक्रिया—३

"अहावरा" इत्यादि पूर्वभव के महाकर्मों से महाकर्मवाला बना हुवा कोई जीव देवलोक से यहां उत्पन्न हुवा अब यह मुण्डित होकर

ગજસુકુમાર મુનિની કથા આ પ્રમાણે છે-દેવલોકમાંથી ચ્યવીને તેઓ દેવકીની કૂંખે જન્મ્યા હતા તેઓ કૃષ્ણના નાના ભાઈ હતા. તેમણે ભગવાન અરિષ્ટનેમિની પાસે જિન દીક્ષા અંગીકાર કરી હતી શ્મશાનભૂમિમાં તેમણે કાયોત્સર્ગાત્મક મહાતપ કર્યું હતું તેમના સંસારી સસરા સોમીલ બ્રાહ્મણે તેમના મસ્તક પર સળગતા ખેરના અંગારા મૂકયા હતા તે કારણે તેમને અતિઘોર વેદના થઈ હતી સમભાવપૂર્વક તે વેદના સહન કરીને તેમણે ૯૯ લાખ ભવના સંચિત કર્મોનો વિશુદ્ધ અધ્યવસાયથી ક્ષય કરી નાખ્યો હતો આ રીતે અલ્પ સમયની શ્રામણ્ય પર્યાયનું પાલન કરીને તેઓ સિદ્ધિગતિના સ્વામી બની ગયા હતા બીજી અન્તક્રિયાનુ આ પ્રકારનુ સ્વરૂપ સમજવું । ૨ ।

— ત્રીજી અન્તક્રિયા —

" અહાવરા " ઇત્યાદિ—પૂર્વભવના મહાકર્મોથી મહાકર્મવાળો બનેલો કોઇ જીવ દેવલોકમાથી ચ્યવીને આ મનુષ્યલોકમાં ઉત્પન્ન થાય છે તે મુંડિત

गातङ्कवत्त्वेन महावेदनश्च दीर्घेण=दीर्घतरण पर्यायेण सिद्धो जाव, तद्भवे सिद्धय भावेन तृतीयदेवलोकाच्च्युत्वा महाविदेहक्षेत्रे सेत्स्यत्यादिति ॥ ३ ॥

इति तृतीयाऽन्तक्रिया ३।

अथ चतुर्थ्यन्तक्रिया-४-

"अथापरा" इत्यादि-चतुर्थ्यन्तक्रियाऽल्पकर्मप्रत्यायातविषया, स्पष्टा, यथाऽसौ भगवती मरुदेवी प्रथमजिनमाता, सा हि स्थविरावस्थायामपि क्षीणा

अगारावस्था से अनगारावस्था में प्रव्रजित हुवा, यहां से आगे का और सब कथन पूर्वोक्तरूप से समझ लेना चाहिये। ऐसा महाकर्मी जीव महातपों का अनुष्ठान करता है, फिर भी सनत्कुमार चतुर्थ चक्र वर्ती की तरह यह दीर्घतर पर्याय से सिद्धिगति को प्राप्त करता है, सनत्कुमार चक्रवर्ती ने ७०० सात सौ वर्षतक महातपों का पालन किया इन्हें सोलह १६ रोगातङ्क हो गये इससे इन्हें महावेदना का सामना करना पडा तद्भव में इन्हें सिद्धिगति प्राप्त नहीं हुई अब ये देवलोक से च्युत होकर महाविदेहक्षेत्र में उत्पन्न होंगे और-वहीं सिद्धिगति को प्राप्त करेंगे इस प्रकार की यह तृतीय अन्तक्रिया है॥ ३

चतुर्थ अन्तक्रिया—४

"अथापरा" इत्यादि-यह चतुर्थ अन्तक्रिया अल्प कर्म प्रत्यायात विषयवाली होती है इसके विषय का और सब कथन स्पष्ट है यह

થઈને અગારાવસ્થાના પરિત્યાગપૂર્વક અણગારાવસ્થા ધારણ કરે છે ત્યારપછીનું સમસ્ત કથન પૂર્વોક્ત કથન અનુસાર સમજવું એવો મહાકર્મા જીવ મહાતપોનું અનુષ્ઠાન કરે છે, છતાં પણ ચોથા ચક્રવર્તી સનત્કુમારની જેમ અતિ દીર્ઘ કાળ પર્યન્ત શ્રામણ્ય પર્યાયનું પાલન કરીને સિદ્ધિગતિ પ્રાપ્ત કરે છે સનત્કુમાર ચક્રવર્તીએ ૭૦૦ વર્ષ સુધી મહાતપનું પાલન કર્યું હતું. તેમને ૧૬ રોગાતંકોનું વેદન કરવું પડયું હતું છતાં પણ તેમને એ જ ભવમાં સિદ્ધિગતિની પ્રાપ્તિ થઈ નહીં. તેઓ ત્રીજા દેવલોકમાંથી ચ્યવીને મહાવિદેહ ક્ષેત્રમાં ઉત્પન્ન થશે અને ત્યાંથી જ સિદ્ધિગતિ પ્રાપ્ત કરશે. આ પ્રકારની આ ત્રીજી અન્તક્રિયા છે। ૩।

— ચોથી અન્તક્રિયા —

"અથાપરા" ઇત્યાદિ—આ ચોથી અન્તક્રિયા અલ્પકર્મ પ્રત્યાયાત વિષયવાળી હોય છે એટલે કે અલ્પ કર્મના ભારથી અલ્પકર્મા બનેલા જીવની આ અન્તક્રિયા સમજવી તેના વિષેનું બાકીનું બધું કથન સ્પષ્ટ છે, તેથી અહીં તેનું અધિક વિવેચન કર્યું નથી. આ ક્રિયા પહેલા જિનની માતા

यकर्मतयाऽल्पकर्मा निस्तपोवेदना च सिद्धिं गता, तस्या गजवराऽऽरूढाया एवाऽऽयुः समाप्तौ सिद्धत्वात् ॥ ४ ॥

एतेषां दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकानामर्थानां सर्वथा साधर्म्यं नान्वेषणीयम्, दृष्टान्तानामेकदेशवर्तित्वात्, यतो मरुदेव्या कतिपयानि 'मुंडे भवित्ता' इत्यादि विशेषणानि न घटन्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थ्यन्तक्रिया ॥ ४ ॥ सू० १ ॥

इतः पूर्वं पुरुषविशेषाणामन्तक्रिया प्रतिपादिता, सम्प्रति तेषामेव स्वरूपदर्शनार्थं षड्विंशतिं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकसूत्राण्याह—

क्रिया प्रथम जिनकी माता मरुदेवी को प्राप्त हुई है, ये स्थविराऽवस्था में भी क्षीणप्राय कर्मवाली होने के कारण अल्प कर्मवाली थी एवं-तप और वेदना से रहित थी फिर भी सिद्धिगति में गई। जब ये श्रेष्ठ हाथी पर चढी जा रही थीं तभी इनकी आयु समाप्त हो गई और ये सिद्ध हो गई ४

इन दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिकों के अर्थों का सर्वथा साधर्म्य नहीं खोजना चाहिये, क्यों कि-दृष्टान्त एकदेशवर्ती होते हैं। इसीलिये मरुदेवी में 'मुंडे भवित्ता-" इत्यादि कइं विशेषण घटित नहीं होते हैं इस प्रकार से यह चतुर्थ अन्तक्रिया है ॥ १ ॥

इस प्रकार से पुरुष विशेषों की अन्तक्रिया का प्रतिपादन करके अब सूत्रकार उन्हीं का स्वरूप दिखलाने के लिये २६ दृष्टान्त दृष्टान्तिक सूत्रों से कहते हैं—" चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता-" इत्यादि—२ सूत्र

મરુદેવીને પ્રાપ્ત થયેલી છે. તેઓ સ્થવિરાવસ્થામાં પણ સામાન્યત ક્ષીણ કર્મવાળા હોવાને લીધે અલ્પ કર્મવાળા હતાં તપ અને વેદનાથી રહિત હોવા છતાં તેઓ સિદ્ધગતિમાં ગયા છે જ્યારે તેઓ શ્રેષ્ઠ હાથીપર આરોહણ કરી રહ્યાં હતા, ત્યારે તેમનું આયુષ્ય પૂરૂ થઇ ગયું અને તેઓ સિદ્ધ થઈ ગયાં. ।૪।

આ દૃષ્ટાન્તો અને દાર્ષ્ટાન્તિકોના અર્થોમાં સર્વથા સાધર્મ્ય શોધવું જોઇએ નહીં, કારણ કે દૃષ્ટાન્ત એકદેશવર્તી હોય છે તેથી મરુદેવીમાં "મુંડે ભવિત્તા" "મુંડિત થઇને" ઈત્યાદિ પૂર્વોક્ત વિશેષણો ઘટાવી શકાતાં નથી. આ પ્રકારની આ ચોથી અન્તક્રિયા છે ॥ સૂ ૧ ॥

આ પ્રમાણે પુરુષ વિશેષોની અન્તક્રિયાનું પ્રતિપાદન કરીને હવે સૂત્રકાર તેમનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવા નિમિત્તે ૨૬ દૃષ્ટાન્ત-દાર્ષ્ટાન્તિક સૂત્રોનું નિરૂપણ કરે છે—

"ચત્તારિ રુક્ખા પણ્ણત્તા" ઈત્યાદિ—(સૂ. ૨)

मूलम्—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णए १ उण्णए नामेगे पणए २, पणए नामेगे उण्णए ३, पणए नामेगे पणए ४, १। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णए १, तहेव जाव पणए नामेगे पणए २। चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णयपरिणए १, उण्णए नामेगे पणयपरिणए २, पणए नामेगे उण्णयपरिणए ३, पणए नामेगे पणयपरिणए ४, ३। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णए परिणए चउभगो४,४। चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णयरूवे तहेव चउभगो ४, ५। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णय रूवे १, उण्णयनामेगे पणयरूवे २, पणए नामेगे उण्णयरूवे ३, पणए नामेगे पणयरूवे ४, ६। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णयमणे १, उण्णए नामेगे पणयमणे २, पणए नामेगे उण्णयमणे ३, पणए नामेगे पणयमणे ४, ७। एव सकप्पे ८, पन्ने ९, दिट्ठी १०, सीलायारे ११, ववहारे १२, परक्कमे १३, एगे पुरिसजाए पडिवक्खो नत्थि। चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा उज्जू नामेगे उज्जू उज्जू नामेगे वके, चउभगो ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा –उज्जू नामेगे ४, एव जहा–उण्णयपरिणएहिं गमो जहा उज्जुवकेहिं वि भाणियव्वो, जाव परक्कमे।२६। ॥ सू० २ ॥

छाया—चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-उन्नतो नामैक उन्नतः १, उन्नतो नामैकः प्रणतः २, प्रणतो नामैक उन्नतः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतः ४, १। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-उन्नतो नामैक उन्नतः, तथैव यावत् प्रणतो नामैकः प्रणतः ४, २। चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-उन्नतो नामैकः उन्नतपरिणतः १, उन्नतो नामैकः प्रणतपरिणतः २, प्रणतो नामैक उन्नतपरिणतः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतपरिणतः ४, ३। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-उन्नतो नामैक उन्नतपरिणतः चतुर्भङ्गी ४, ४। चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-उन्नतो नामैक उन्नतरूपः तथैव चतुर्भङ्गी ४, ५। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-उन्नतो नामैक० ४, ६। चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-उन्नतो नामैक उन्नतमनाः १, उन्नतो नामैकः प्रणतमनाः २, प्रणतो नामैकः उन्नतमनाः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतमनाः ४, ७। एवं संकल्पः ८, प्रज्ञा ९, दृष्टि. १०, शीलाऽऽचारः ११, व्यवहारः १२, पराक्रमः १३। एकं पुरुषजातं प्रतिपक्षो नास्ति। चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ऋजुर्नामैक ऋजुः, ऋजुर्नामैको वक्रः चतुर्भङ्गी ४। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा ऋजुर्नामैकः ४, एवं यथा-उन्नत-परिणताभ्यां गमः, तथा ऋजु-वक्राभ्यामपि भणितव्यः, यावत् पराक्रमः ॥२६॥ सू० २ ॥

टीका—"चत्तारि" इत्यादि-चत्वारः=चतुः संख्याकाः, वृक्षा वृक्षन्ति-समाच्छादयन्ति रक्षन्ति च्छायादिना प्राणिन इति वृक्षाः, प्रज्ञप्ताः तद्यथा-उन्नत

टीकार्थ-चार प्रकारके वृक्ष कहे गये हैं-एक वह जो द्रव्यसे उत्पन्न होता हुवा जात्यादि से उत्पन्न होता है-१ दूसरा वह जो द्रव्य से ही उत्पन्न होता है, परन्तु-जात्यादि से प्रणत हीन होता है-२ तीसरा वह जो प्रणत होता है, परन्तु-जात्यादि से उत्पन्न होता है-३ चौथा वह जो द्रव्य से प्रणत-हीन होता है और-जात्यादि से भी प्रणत हीन होता है इसी तरह पुरुष प्रकार भी चार कहे गये हैं, इस कथन का तात्पर्य ऐसा

ટીકાર્થ—ચાર પ્રકારના વૃક્ષ કહ્યા છે—એક પ્રકાર એવો છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ ઉન્નત હોય છે અને જાતિની અપેક્ષાએ પણ ઉન્નત હોય છે બીજો પ્રકાર એવો છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઉન્નત હોય છે, પણ જાતિની અપેક્ષાએ પ્રણુત (હીન) હોય છે. ત્રીજો પ્રકાર એવો છે કે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પ્રણુત હોય છે, પણ જાતિની અપેક્ષાએ ઉન્નત હોય છે, અને ચોથો પ્રકાર એવો છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ પ્રણુત હોય છે અને જાતિની અપેક્ષાએ પણ પ્રણુત હોય છે એ જ પ્રમાણે પુરુષોના પ્રકારો પણ ચાર કહ્યા છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

मूलम्—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णए १ उण्णए नामेगे पणए २, पणए नामेगे उण्णए ३, पणए नामेगे पणए ४, १ । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णए १, तहेव जाव पणए नामेगे पणए २ । चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णयपरिणए १, उण्णए नामेगे पणयपरिणए २, पणए नामेगे उण्णयपरिणए ३, पणए नामेगे पणयपरिणए ४, ३ । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णए परिणए चउभगो ४,४। चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णयरूवे तहेव चउभगो ४, ५। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णय रूवे १, उण्णयनामेगे पणयरूवे २, पणए नामेगे उण्णयरूवे ३, पणए नामेगे पणयरूवे ४, ६। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–उण्णए नामेगे उण्णयमणे १, उण्णए नामेगे पणयमणे २, पणए नामेगे उण्णयमणे ३, पणए नामगे पणयमणे ४, ७ । एव संकप्पे ८, पन्ने ९, दिट्ठी १०, सीलायारे ११, ववहारे १२, परक्कमे १३, एगे पुरिसजाए पडिवक्खो नत्थि । चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा उज्जू नामेगे उज्जू उज्जू नामेगे वके, चउभगो ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा –उज्जू नामेगे ४, एव जहा–उण्णयपरिणएहिं गमो जहा उज्जुवकेहिं वि भाणियव्वो, जाव परक्कमे ।२६। ॥ सू० २ ॥

छाया—चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उन्नतो नामैक उन्नतः १, उन्नतो नामैकः प्रणतः २, प्रणतो नामैक उन्नतः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतः ४, १। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—उन्नतो नामैक उन्नतः, तथैव यावत् प्रणतो नामैकः प्रणतः ४, २। चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उन्नतो नामैकः उन्नतपरिणतः १, उन्नतो नामैकः प्रणतपरिणतः २, प्रणतो नामैक उन्नतपरिणतः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतपरिणतः ४, ३। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—उन्नतो नामैक उन्नतपरिणतः चतुर्भङ्गी ४, ४। चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उन्नतो नामैक उन्नतरूपः तथैव चतुर्भङ्गी ४, ५। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—उन्नतो नामैक.० ४, ६। चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—उन्नतो नामैक उन्नतमनाः १, उन्नतो नामैकः प्रणतमनाः २, प्रणतो नामैक उन्नतमनाः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतमनाः ४, ७। एवं संकल्पः ८, प्रज्ञा ९, दृष्टिः १०, शीलाऽऽचारः ११, व्यवहारः १२, पराक्रमः १३। एकं पुरुषजातं प्रतिपक्षो नास्ति। चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ऋजुर्नामैक ऋजुः, ऋजुर्नामैको वक्रः चतुर्भङ्गी ४। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा ऋजुर्नामैकः ४, एवं यथा—उन्नत—परिणताभ्यां गमः, तथा ऋजु—वक्राभ्यामपि भणितव्यः, यावत् पराक्रमः ॥२६॥ सू० २ ॥

टीका—"चत्तारि" इत्यादि—चत्वारः=चतुः संख्याकाः, वृक्षा वृक्षन्ति—समाच्छादयन्ति रक्षन्ति च्छायादिना प्राणिन इति वृक्षाः, प्रज्ञप्ताः तद्यथा—उन्नत

टीकार्थ—चार प्रकारके वृक्ष कहे गये हैं—एक वह जो द्रव्यसे उत्पन्न होता हुवा जात्यादि से उत्पन्न होता है—१ दूसरा वह जो द्रव्य से ही उत्पन्न होता है, परन्तु—जात्यादि से प्रणत हीन होता है—२ तीसरा वह जो प्रणत होता हैं, परन्तु—जात्यादि से उत्पन्न होता हैं—३ चौथा वह जो द्रव्य से प्रणत—हीन होता है और—जात्यादि से भी प्रणत हीन होता है इसी तरह पुरुष प्रकार भी चार कहे गये हैं, इस कथन का तात्पर्य ऐसा

ટીકાર્થ—ચાર પ્રકારના વૃક્ષ કહ્યા છે—એક પ્રકાર એવો છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ ઉન્નત હોય છે અને જાતિની અપેક્ષાએ પણ ઉન્નત હોય છે બીજો પ્રકાર એવો છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઉન્નત હોય છે, પણ જાતિની અપેક્ષાએ પ્રણુત (હીન) હોય છે ત્રીજો પ્રકાર એવો છે કે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પ્રણુત હોય છે, પણ જાતિની અપેક્ષાએ ઉન્નત હોય છે, અને ચોથો પ્રકાર એવો છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ પ્રણુત હોય છે અને જાતિની અપેક્ષાએ પણ પ્રણુત હોય છે. એ જ પ્રમાણે પુરુષોના પ્રકારો પણ ચાર કહ્યા છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

उच्चो द्रव्यत्वेन, 'नाम' ति संभावने 'वा' वाक्यालङ्कारे, एकः=कोऽपि वृक्षः, स एव पुनरुन्नतः=तुङ्गो जात्यादिनोऽशोकादि, इति प्रथमो भङ्ग १।

उन्नतः=उच्चो द्रव्यत एव एकः=इतरः, प्रणतः=प्रकर्षेण नतः=जात्यादिभि र्हीनो निम्बादि, इति द्वितीयो भङ्गः २॥

प्रणत=प्रागुक्तलक्षणः, एक कश्चिद् वृक्षो द्रव्यतो ह्रस्वः, स एव पुनरुन्नतो जात्यादिनाऽशोकादिः, इति तृतीयो भङ्गः ॥ ३॥

प्रणतः=द्रव्यत्वेन ह्रस्वः, स एव प्रणतः=जात्यादिना हीनः निम्बादिः, इति चतुर्थो भङ्ग ॥ ४॥

है–"वृक्षन्ति समाच्छादयन्ति रक्षन्ति छायादिना प्राणिनः इति वृक्षा" जो प्राणियों की छाया आदि से रक्षा करते हैं वे वृक्ष हैं ये वृक्ष पूर्वोक्तरूप से चार प्रकार के कहे गये हैं। यहां "नाम" सम्भावना में और "वा" वाक्यालङ्कार में प्रयुक्त हुये हैं। प्रथम प्रकार में कोई एक ऐसा वृक्ष होता है, जो द्रव्यत्व से भी ऊंचा होता है और अपनी जाति से भी उन्नत ऊंचा होता है–१ जैसे अशोकादिवृक्ष। द्वितीय प्रकार में वह वृक्ष लिया गया है जो केवल द्रव्य से ही उन्नत ऊंचा होता है परन्तु–अपनी जाति से प्रणत–हीन होता है २ जैसे–निम्बादि वृक्ष। तृतीय प्रकार में वह वृक्ष लिया गया है जो द्रव्य से ह्रस्व होता है परन्तु–जात्यादि से उन्नत ऊंचा होता है जैसे–अशोक आदिवृक्ष ३ चतुर्थ प्रकार में वह वृक्ष लिया गया है जो द्रव्य से भी ह्रस्व होता है और जाति से भी हीन होता है ४ जैसे–निम्बादि वृक्ष, यथा–काल की

'वृक्षन्ति–समाच्छादयन्ति–रक्षन्ति–छायादिना प्राणिनः इति वृक्षाः" જે પ્રાણીઓનું છાયા વગેરે વડે રક્ષણ કરે છે, તેનું નામ વૃક્ષ છે તે વૃક્ષોના પૂર્વોક્ત ચાર પ્રકાર કહ્યા છે અહીં "नाम" સંભાવનાર્થે અને "वा" વાક્યાલંકાર રૂપે પ્રયુક્ત થયેલ છે (૧) પ્રથમ પ્રકારમાં એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે કોઈક વૃક્ષ એવું હોય છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ ઊંચું હોય છે અને જાતિની અપેક્ષાએ પણ ઊંચું હોય છે જેમકે અશોકવૃક્ષ (૨) બીજા પ્રકારમાં એવા વૃક્ષનો દાખલો આપવામાં આવ્યો છે કે જે કેવળ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઊંચું હોય છે પરન્તુ જાતિની અપેક્ષાએ પ્રણત (હીન) હોય છે જેમકે લીમડા વગેરે. (૩) ત્રીજા પ્રકારમાં એવા વૃક્ષનું દૃષ્ટાન્ત આપવામાં આવ્યું છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પ્રણત (હીન નીચું) હોય છે પણ જાતિની અપેક્ષાએ ઉન્નત હોય છે જેમકે અશોકાદિ વૃક્ષ (૪) ચોથા પ્રકારમા એવા વૃક્ષનું દૃષ્ટાન્ત આપ્યું છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ હીન હોય છે અને જાતિની અપેક્ષાએ પણ હીન હોય છે જેમકે લીમડા વગેરે વૃક્ષો

यद्वा कालापेक्षया चतुर्भङ्गीमाह उन्नत उन्नतः द्विधा उन्नतः यथा अशोकत्वा-दिजात्या कालक्रमेण विशालकायत्वेन च १, उन्नतः प्रणतः=अशोकत्वादिजात्या उन्नतः, ह्रस्वकायत्वेन प्रणतः २, प्रणत उन्नतः=निम्बत्वादिजात्या प्रणत', विशाल कायत्वेन चोन्नतः३, प्रणतऽप्रणतः–द्विधा प्रणतः–निम्बत्वादिजात्या प्रणतः ह्रस्व कायत्वेन चेति ४। इति दृष्टान्तसूत्रम्।

अथ दार्ष्टान्तिक सूत्रमाह–

"एवामेव" इत्यादि–एवमेव=अनेनैव प्रकारेण वृक्षवदेवेत्यर्थः, चत्वारि पुरुषजातानि=पुरुषप्रकाराः साधवो गृहिणो वा, प्रज्ञप्तानि. तद्यथा–उन्नतःकुलैश्वर्य-प्रभृतिभिर्लौकिकैर्गुणै गृहस्थपर्याये, स एव पुनरुन्नतो लोकोत्तरैर्ज्ञानक्रियादिभि-

---

अपेक्षा लेकर सूत्रकार ने "द्विधा उन्नतः" इत्यादिरूप से चतुर्भङ्गी को कहा है, जैसे उन्नत उन्नत, अशोकत्व आदि जाति से उन्नत एवं काल-क्रम को लेकर विशाल कायरूप से भी उन्नत–१ उन्नत प्रणत, अशो-कत्वादि जाति से उन्नत, और–ह्रस्व कायरूप से प्रणत–२ प्रणत उन्नत निम्बत्वादि जाति से प्रणत और विशाल कायरूप से उन्नत–३ प्रणत प्रणत निम्बत्वादि जाति से प्रणत और ह्रस्व कायरूप से प्रणत ४ इस प्रकार से यह दृष्टान्त सूत्र है।

दार्ष्टान्तिक सूत्र—

"एवामेव" इत्यादि वृक्ष की तरह ही पुरुष के चार प्रकार के साधु अथवा–गृहीत जन के चार प्रकार कहे गये हैं, जैसे उन्नत उन्नत जो गृहस्थ पर्याय में कुल ऐश्वर्य आदि लौकिक गुणों से उन्नत रहता हो ३

. અથવા કાળની અપેક્ષાએ સૂત્રકારે "द्विधा उन्नत" કાળ સમય અને કામ શરીર "બન્ને પ્રકારે ઉન્નત" ઈત્યાદિ રૂપ ચાર ભાંગા કહ્યા છે. જેમકે.. (૧) ઉન્નત–ઉન્નત, અશોકત્વ આદિ જાતિની દૃષ્ટિએ ઉન્નત અને કાલ-ક્રમની અપેક્ષાએ વિશાલ કાયરૂપે પણ ઉન્નત. (૧) ઉન્નત–પ્રણત–અશોકત્વ આદિ જાતિની અપેક્ષાએ ઉન્નત અને હ્રસ્વકાય રૂપે પ્રણત, (૩) પ્રણત–ઉન્નત. નિમ્બત્વ આદિ જાતિની અપેક્ષાએ પ્રણત અને વિશાળ કાયરૂપે ઉન્નત. (૪) પ્રણત–પ્રણત–નિમ્બત્વ આદિ જાતિની અપેક્ષાએ પણ હીન અને લઘુકાય રૂપે પણ પ્રણત (હીન) આ પ્રકારનુ આ દૃષ્ટાન્તસૂત્ર છે. આ દૃષ્ટાન્ત જેને લાગુ પડે છે તેનું નામ "દાર્ષ્ટાન્તિક" છે

— દાર્ષ્ટાન્તિક સૂત્ર —

"एवामेव" ઈત્યાદિ–જેમ વૃક્ષના ચાર પ્રકાર પડે છે, તેમ સાધુ અથવા ગૃહસ્થજનના પણ ચાર પ્રકાર પડે છે–(૧) 'ઉન્નત–ઉન્નત' જે મનુષ્ય ગૃહસ્થ પર્યાયમા કુળ, ઐશ્વર્ય આદિ લૌકિક ગુણોથી ઉન્નત રહ્યો હોય, એજ મનુષ્ય

उच्चो द्रव्यत्वेन, 'नामे' ति सम्भावने 'वा' वाक्यालङ्कारे, एकः=कोऽपि वृक्षः, स एव पुनरुन्नत =उच्चो जात्यादितोऽशोकादि, इति प्रथमो भङ्गः १।

उन्नत =उच्चो द्रव्यत एव एकः=इतर, प्रणत =प्रकर्षेण नतः=जात्यादिभि र्हीनो निम्बादि, इति द्वितीयो भङ्गः २॥

प्रणत =प्रागुक्तलक्षण, एकःकश्चिद् वृक्षो द्रव्यतो ह्रस्वः, स एव पुनरुन्नतो जात्यादिनाऽशोकादिः, इति तृतीयो भङ्गः ॥ ३ ॥

प्रणत =द्रव्यत्वेन ह्रस्वः, स एव प्रणत =जात्यादिना हीनः निम्बादिः, इति चतुर्थो भङ्ग ॥ ४ ॥

है-" वृक्षन्ति समाच्छादयन्ति रक्षन्ति छायादिना प्राणिनः इति वृक्षाः " जो प्राणियों की छाया आदि से रक्षा करते हैं वे वृक्ष हैं ये वृक्ष पूर्वोक्तरूप से चार प्रकार के कहे गये हैं। यहां "नाम" सम्भावना में और "वा" वाक्यालङ्कार में प्रयुक्त हुये हैं। प्रथम प्रकार में कोई एक ऐसा वृक्ष होता है, जो द्रव्यत्व से भी ऊंचा होता है और अपनी जाति से भी उन्नत ऊंचा होता है-१ जैसे अशोकादिवृक्ष। द्वितीय प्रकार में वह वृक्ष लिया गया है जो केवल द्रव्य से ही उन्नत ऊंचा होता है परन्तु-अपनी जाति से प्रणत-हीन होता है २ जैसे-निम्बादि वृक्ष। तृतीय प्रकार में वह वृक्ष लिया गया है जो द्रव्य से ह्रस्व होता है परन्तु-जात्यादि से उन्नत ऊंचा होता है जैसे-अशोक आदिवृक्ष ३ चतुर्थ प्रकार में वह वृक्ष लिया गया है जो द्रव्य से भी ह्रस्व होता है और जाति से भी हीन होता है ४ जैसे-निम्बादि वृक्ष, यथा-काल की

वृक्षन्ति-समाच्छादयन्ति-रक्षन्ति-छायादिना प्राणिन इति वृक्षाः " જે પ્રાણીઓનું છાયા વગેરે વડે રક્ષણ કરે છે, તેનું નામ વૃક્ષ છે તે વૃક્ષોના પૂર્વોક્ત ચાર પ્રકાર કહ્યા છે અહીં ' नाम ' સંભાવનાર્થે અને ' वा " વાક્યાલંકાર રૂપે પ્રયુક્ત થયેલ છે (૧) પ્રથમ પ્રકારમાં એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે કોઈક વૃક્ષ એવું હોય છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ ઊંચુ હોય છે અને જાતિની અપેક્ષાએ પણ ઊંચુ હોય છે જેમકે અશોકવૃક્ષ (૨) બીજા પ્રકારમાં એવા વૃક્ષનો દાખલો આપવામાં આવ્યો છે કે જે કેવળ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઊંચુ હોય છે પરન્તુ જાતિની અપેક્ષાએ પ્રણત (હીન) હોય છે જેમકે લીમડો વગેરે (૩) ત્રીજા પ્રકારમાં એવા વૃક્ષનું દૃષ્ટાન્ત આપવામાં આવ્યું છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પ્રણત (હીન નીચુ) હોય છે પણ જાતિની અપેક્ષાએ ઉન્નત હોય છે જેમકે અશોકાદિ વૃક્ષ (૪) ચોથા પ્રકારમાં એવા વૃક્ષનું દૃષ્ટાન્ત આપ્યું છે કે જે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ હીન હોય છે અને જાતિની અપેક્ષાએ પણ હીન હોય છે જેમકે લીમડો વગેરે વૃક્ષો.

यद्वा कालापेक्षया चतुर्भङ्गीमाह उन्नत उन्नतः द्विधा उन्नतः यथा अशोकत्वादिजात्या कालक्रमेण विशालकायत्वेन च १, उन्नतः प्रणतः=अशोकत्वादिजात्या उन्नतः, ह्रस्वकायत्वेन प्रणतः २, प्रणत उन्नतः=निम्बत्वादिजात्या प्रणतः, विशाल कायत्वेन चोन्नतः३, प्रणतऽप्रणतः–द्विधा प्रणतः–निम्बत्वादिजात्या प्रणतः ह्रस्व कायत्वेन चेति ४। इति दृष्टान्तसूत्रम्।

अथ दार्ष्टान्तिक सूत्रमाह–

"एवामेव" इत्यादि–एवमेव=अनेनैव प्रकारेण वृक्षवदेवेत्यर्थः, चत्वारि पुरुषजातानि=पुरुषप्रकाराः साधवो गृहिणो वा, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–उन्नतःकुलैश्वर्य प्रभृतिभिर्लौकिकैर्गुणै गृहस्थपर्याये, स एव पुनरुन्नतो लोकोत्तरैर्ज्ञानक्रियादिभि-

---

अपेक्षा लेकर सूत्रकार ने "द्विधा उन्नतः" इत्यादिरूप से चतुर्भङ्गी को कहा है, जैसे उन्नत उन्नत, अशोकत्व आदि जाति से उन्नत एवं कालक्रम को लेकर विशाल कायरूप से भी उन्नत–१ उन्नत प्रणत, अशोकत्वादि जाति से उन्नत, और–हूस्व कायरूप से प्रणत–२ प्रणत उन्नत निम्बत्वादि जाति से प्रणत और विशाल कायरूप से उन्नत–३ प्रणत प्रणत निम्बत्वादि जाति से प्रणत और हूस्व कायरूप से प्रणत ४ इस प्रकार से यह दृष्टान्त सूत्र है।

दार्ष्टान्तिक सूत्र—

"एवामेव" इत्यादि वृक्ष की तरह ही पुरुष के चार प्रकार के साधु अथवा–गृहीत जन के चार प्रकार कहे गये हैं, जैसे उन्नत उन्नत जो गृहस्थ पर्याय में कुल ऐश्वर्य आदि लौकिक गुणों से उन्नत रहता हो २

અથવા કાળની અપેક્ષાએ સૂત્રકારે "द्विधा उन्नत." કાળ સમય અને કામ શરીર "બન્ને પ્રકારે ઉન્નત" ઈત્યાદિ રૂપ ચાર ભાંગા કહ્યા છે. જેમકે.. (૧) ઉન્નત–ઉન્નત, અશોકત્વ આદિ જાતિની દૃષ્ટિએ ઉન્નત અને કાલક્રમની અપેક્ષાએ વિશાલ કાયરૂપે પણ ઉન્નત. (૧) ઉન્નત–પ્રણુત–અશોકત્વ આદિ જાતિની અપેક્ષાએ ઉન્નત અને હ્રસ્વકાય રૂપે પ્રણુત, (૩) પ્રણુત–ઉન્નત. નિમ્બત્વ આદિ જાતિની અપેક્ષાએ પ્રણુત અને વિશાળ કાયરૂપે ઉન્નત. (૪) પ્રણુત–પ્રણુત–નિમ્બત્વ આદિ જાતિની અપેક્ષાએ પણ હીન અને લઘુકાય રૂપે પણ પ્રણત (હીન) આ પ્રકારનુ આ દૃષ્ટાન્તસૂત્ર છે આ દૃષ્ટાન્ત જેને લાગુ પડે છે તેનું નામ 'દાર્ષ્ટાન્તિક" છે

— દાર્ષ્ટાન્તિક સૂત્ર —

"एवामेव" ઈત્યાદિ–જેમ વૃક્ષના ચાર પ્રકાર પડે છે, તેમ સાધુ અથવા ગૃહસ્થજનના પણ ચાર પ્રકાર પડે છે–(૧) 'ઉન્નત–ઉન્નત' જે મનુષ્ય ગૃહસ્થ પર્યાયમાં કુળ ઐશ્વર્ય આદિ લૌકિક ગુણોથી ઉન્નત રહ્યો હોય, એજ મનુષ્ય

गुणैरुन्नतः प्रव्रज्यापर्याये भरतचक्रिवत्, यद्वा—उन्नत'—उत्तमभवत्वेन पुनरप्युन्नतः शुभगतिप्राप्त्या आनन्द—कामदेवादिवदित्येकः=प्रथमो भङ्गः ॥ १ ॥

तथैव=पूर्वसूत्रवदिह पुरुषजातसूत्रम्, यावत्=" प्रणतो नामैकः प्रणतः " इति पर्यन्तं बोध्यम्। अथ भावः—उन्नतः प्रणत —यथा—पूर्वमुन्नत ऋद्धयादिना, पश्चात् प्रणत —दुर्गतिगमनादिना सुभूमचक्रिवदिति द्वितीयो भङ्गः। २।

प्रणत उन्नतः—यथा—पूर्वं जात्या ऋद्धयादिना वा प्रणत =हीन, पश्चाद् उन्नतः—शुभगतिगमनादिना हरिकेशि—मेतार्यवदिति तृतीयो भङ्गः ॥ ३ ॥

वही यदि प्रव्रज्या पर्याय में भरत चक्रवर्ती की तरह लोकोत्तर ज्ञान क्रिया आदि गुणों से उन्नत रहता है, तो यह उन्नत उन्नत पुरुष प्रकार है। अथवा—उत्तम भववाला होने से जो उन्नत हो वही आगे शुभगति की प्राप्ति से आनन्द कामदेव की तरह उन्नत रहता है तो ऐसा वह जीव उन्नत उन्नत प्रथम भङ्गवाला कहा गया है १ उन्नत प्रणत, इस द्वितीय भङ्गवाला यह पुरुष कहा गया है, जो पहिले ऋद्धि आदि से उन्नत रहा हो, पश्चात्—दुर्गतिगमनादि से सुभूम चक्रवर्ती की तरह प्रणत हो गया हो—२ प्रणत उन्नत, इस तृतीय भंगवाला वह पुरुष कहा गया है, जो पूर्व में जाति से अथवा—ऋद्धि आदि से प्रणत—हीन रहा हो, पश्चात्—शुभगति में गमनादि में जो हरिकेशी मेतार्य की तरह उन्नत हो गया हो—३ प्रणत प्रणत इस चतुर्थ भङ्ग में वह पुरुष कहा गया है

જો શ્રામણ્ય પર્યાયમાં ભરત ચક્રવર્તિની જેમ લોકોત્તર જ્ઞાન, ક્રિયા આદિ ગુણોની અપેક્ષાએ પણ ઉન્નત રહે તો તેને "ઉન્નત-ઉન્નત" રૂપ પહેલા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે અથવા-ઉન્નત ભવવાળો હોવાથી જે ઉન્નત હોય અને ત્યારબાદ શુભગતિની પ્રાપ્તિથી આનંદ-કામદેવની જેમ ઉન્નત રહ્યો હોય એવા જીવને પણ "ઉન્નત-ઉન્નત" રૂપ પ્રથમ વિકલ્પમાં મૂકી શકાય છે

(૨) 'ઉન્નત-પ્રણત" જે પુરુષ પહેલાં ઋદ્ધિ આદિની અપેક્ષાએ ઉન્નત રહ્યો હોય, પણ જે પાછળથી દુર્ગતિગમન આદિની અપેક્ષાએ પ્રણત થઈ ગયો હોય એવો સુભૂમચક્રવર્તી જેવો જીવ આ બીજા ભાંગામાં સમાવી શકાય છે

(૩) 'પ્રણત-ઉન્નત" જે પુરુષ પહેલાં જાતિની અપેક્ષાએ અથવા ઋદ્ધિ આદિની અપેક્ષાએ પ્રણત રહ્યો હોય પણ પાછળથી શુભગતિમાં ગમન થવાને કારણે જે હરિકેશી મેતાર્યની જેમ ઉન્નત થઈ ગયો હોય આ પ્રકારના પુરુષનો આ ત્રીજા ભાંગામાં સમાવેશ થાય છે

प्रणतः प्रणतः-यथा पूर्वं प्रणतो जात्यादिना, पश्चादपि प्रणतो नरकगमनादिना कालशौकरिकवदिति चतुर्थो भङ्गः ॥ ४ ॥

इति दार्ष्टान्तिकसूत्रम् ।

एवं दृष्टान्तसूत्रं दार्ष्टान्तिकसूत्रं च सामान्यत उपन्यस्य तद्विशेषसूत्राणि दर्शयति-"चत्तारि रुक्खा" इत्यादि-उन्नतः-जात्यादिना स एव उन्नतपरिणतः उन्नतत्वेन-उत्तमरसत्वेन परिणतः=परिणामं प्राप्त उन्नतपणित, यथाऽऽम्रादिकः

"उण्णए" इति-उन्नतो जात्यादिना, एकः=कश्चित् स एव प्रणतपरिणतः= उन्नतत्वावस्थां विहाय प्रणतत्वेनाऽवनतत्वेन-पूतिगन्धिफलादिमत्त्वेन परिणामं प्राप्तः, यथा शीताऽऽतपादिजनितरोगग्रस्ताऽऽम्रादिका इति द्वितीयो भङ्गः ।२।

जो पहिले जात्यादि से प्रणत-हीन हो, और पश्चात्-भी कालशौकरिक की तरह नरक गमनादि से हीन ही बना रहा हो—४

इस प्रकार से दृष्टान्त सूत्र और दार्ष्टान्तिक सूत्र को सामान्य रूप से कह करके अब सूत्रकार इनके विशेष सूत्रों को दिखलाने के अभिप्राय से ऐसा कहते हैं-कि-"चत्तारि रुक्खा-" इ० वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं,। एक प्रकार वह है-जो जाति आदि से पहले उन्नत होता है और-आगे चलकर भी वही उत्तम रसरूप से परिणाम को प्राप्त होता है, जैसे-आम्र आदिवृक्ष "उन्नतप्रणतपरिणतः" इस प्रकार में वे वृक्ष आते हैं जो जात्यादिक से उन्नत होने पर भी कारण वश उन्नत अवस्था का परित्याग कर देते हैं-प्रणत परिणाम हो जाते

---

(४) "પ્રણુત-પ્રણુત" જે પુરુષ પહેલાં જાતિ આદિની અપેક્ષાએ પ્રણુત રહ્યો હોય, અને પછી પણ કાલશૌકરિકની જેમ નરકગમનાદિથી હીન જ રહ્યો હોય આ પ્રકારના પુરુષને આ ચોથા ભાંગામા મૂકી શકાય છે. આ પ્રકારે દૃષ્ટાન્ત સૂત્ર અને દાર્ષ્ટાન્તિક સૂત્રનુ સામાન્ય રૂપે કથન કરીને હવે સૂત્રકાર તેમના (તે વૃક્ષોનાં) વિશેષ સૂત્રોને પ્રકટ કરવા નિમિત્તે આ પ્રમાણે કહે છે-" चत्तारि रुक्खा " ઈત્યાદિ—

વૃક્ષ ચાર પ્રકારનાં કહ્યા છે-(૧) "ઉન્નત-ઉન્નત પરિણુત" એક પ્રકાર એવો છે કે જે જાતિ આદિની અપેક્ષાએ પહેલાં ઉન્નત હોય છે અને આગળ જતા એક વૃક્ષ ઉત્તમ રસ રૂપ પરિણામને પ્રાપ્ત થાય છે. જેમકે આમ્રાદિ વૃક્ષ.

(૨) "ઉન્નત-પ્રણુત પરિણુત" આ પ્રકારમા એ વૃક્ષોને મૂકી શકાય છે કે જે જાતિ આદિની અપેક્ષાએ ઉન્નત હોવા છતા પણ કારણવશ ઉન્નત અવસ્થાનો પરિત્યાગ કરી દે છે અને પ્રણુત રૂપે પરિણુત થઈ જાય છે

"पणए" इत्यादि-प्रणत=जात्यादिहीन कश्चित् स एव उन्नतपरिणत=उन्नतत्वेन परिणाम प्राप्तः, यथा-योजिताऽऽम्रशालमधूकादिक इति तृतीयो भङ्गः ॥ ३ ॥

"पणए नामेगे" इत्यादि प्रणतः=जात्यादि हीनः, प्रणतपरिणत=प्रणतत्वे नैव परिणत, यथाऽर्कादिवृक्षः, इति चतुर्थो भङ्गः १४।

इति दृष्टान्तसूत्रम्।

अथ दार्ष्टान्तिकसूत्रमाह —

"एवामेव" इत्यादि-एवमेव=वृक्षवदेव, चत्वारि पुरुषजातानि बोध्यानि४,४

हैं, जैसे यही आम्रवृक्ष जब शीत आतपआदि जनित रोग से ग्रस्त हो जाता तब वह पूति (दुर्गन्धित) गन्ध फल आदि सहित हो जाता है। तृतीय प्रकार में-प्रणत उन्नत वृक्ष आते हैं, जैसे-कोई २ वृक्ष ऐसे होते हैं जो पहले जात्यादिक से हीन होते हैं और-बाद में निमित्त मिलने से वे उन्नत रूप से परिणाम को प्राप्त हो जाते हैं, जैसे-मधूक वृक्ष के साथ आम्र की शाखा योजित कर लिया जाय तो वह उन्नत परिणाम को प्राप्त कर लेता है। चतुर्थ प्रकार में प्रणत होकर जो प्रणत ही रहते हैं ऐसे वृक्ष आते हैं, जैसे-अर्कादिवृक्ष "एवामेव" इत्यादि जैसे ये चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं वैसे ही पुरुष प्रकार भी चार होते हैं-न पुनः दृष्टान्त—

જેમકે એજ આંબા જ્યારે શીત-ગરમી આદિ જનિત રોગથી ગ્રસ્ત થાય છે ત્યારે દુર્ગંધ સડેલાં ફળ આદિથી યુક્ત થઈ જાય છે (૩) "પ્રણત-ઉન્નત પરિણત' આ પ્રકારમાં એ વૃક્ષોને મૂકી શકાય છે કે જે પહેલાં જાતિ આદિની અપેક્ષાએ હીન હોય છે પણ ત્યારબાદ યોગ્ય નિમિત્ત મળવાથી ઉન્નત રૂપે પરિણમે છે જેમકે કોઈ મીઠા આંબાના થડમાં ડાળો રોપવામાં આવે (આ પ્રકારની ક્રિયાને ખૂટી કરવાની ક્રિયા કહે છે) તો તે ઉન્નત પરિણામને પ્રાપ્ત કરે છે (૪) 'પ્રણત-પ્રણત' જે વૃક્ષ પહેલાં પણ જાતિ આદિની અપેક્ષાએ પ્રણત હોય છે અને કાયમ પ્રણત જ રહે છે એવા આકડા આદિને આ ચોથા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે "એવામેવ' ઇત્યાદિ—

આ ચાર પ્રકારના વૃક્ષોનું જેવું કથન કર્યુ છે, એવું જ કથન ચાર પ્રકારના મનુષ્યો વિષે પણ સમજવું હવે સૂત્રકાર વિશેષ દૃષ્ટાન્ત આપે છે—

अथ पुनर्दृष्टान्तसूत्र दर्शयति-

" चत्तारि रुक्खा " इत्यादि-चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः स्पष्टार्थी एते शब्दाः तद्यथा-उन्नतः=उन्नतिं प्राप्तः, उन्नतरूपः=उन्नतं रूप यस्य स उन्नतरूपः सुन्दरसंस्थानावयव', आकारबोधक्रियापरिणामेष्वाकारमाश्रित्य रूपघटित-सूत्रमिति । तथैव=पूर्ववदेव चतुर्भङ्गी ॥ ५ ॥

" एवमेव " इत्यादि-एवमेव=वृक्षवदेव, "चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि" इमानि प्रागिव व्याख्येयानि । ६ ।

" चत्तारिरुक्खा " चार वृक्ष कहे गये हैं जैसे उन्नत उन्नतरूप-१ उन्नत प्रणतरूप-२ प्रणत उन्नतरूप-३ और प्रणत प्रणतरूप-४ इनके प्रथम प्रकार में वह वृक्ष आता है जो उन्नति को प्राप्त हों और सुन्दर संस्थानवाला हो, इसी तरह से आकार बोध क्रिया और परिणाम, इनमें -आकार को आश्रित करके रूप घटित यह सूत्र योजित कर लेना चाहिये। द्वितीय प्रकार में-वह वृक्ष आता है जो उन्नति को प्राप्त हो और आकार आदि में हीन हो। तृतीय प्रकार में वह वृक्ष आता है जो आकार आदि से सुन्दर हो, पर-रूप में उन्नतिवाला हो। तथा चतुर्थ प्रकार में वह वृक्ष आता है जो उन्नति को भी प्राप्त न हो, और संस्थान में भी सुन्दर न हो इस प्रकार से यह चतुर्भङ्गी है-५। इसी वृक्ष गदित चतुर्भङ्गी की तरह पुरुष प्रकार भी चार कहे गये हैं-६

" चत्तारि रुक्खा " વૃક્ષ ચાર પ્રકારનાં કહ્યાં છે-(૧) ઉન્નત-ઉન્નતરૂપ, (૨) ઉન્નત-પ્રણતરૂપ, (૩) પ્રણત-ઉન્નતરૂપ અને (૪) પ્રણત-પ્રણતરૂપ.

વૃક્ષોના પહેલા પ્રકારમા એવા વૃક્ષને ગણાવી શકાય કે જે ઉન્નતિ પામેલું હોય અને સુંદર સંસ્થાન (આકારવાળું) હોય. આ રીતે આકાર, બોધ, ક્રિયા અને પરિણામ, આ ચારમાંથી આકારને આધારે રૂપઘટિત આ સૂત્ર યોજવું જોઇએ. (૨) બીજા પ્રકારમા એવા વૃક્ષને ગણાવી શકાય કે જે ઉન્નત હોય પણ આકાર આદિની અપેક્ષાએ હીન હોય (૩) ત્રીજા પ્રકારમાં એ વૃક્ષને ગણાવી શકાય કે જે ઉન્નત ન હોય પણ જેનો દેખાવ સુંદર હોય. (૪) ચોથા પ્રકારમાં એવા વૃક્ષોને ગણાવી શકાય કે જે ઉન્નત પણ ન હોય અને સંસ્થાનમા પણ સુંદર ન હોય આ પ્રકારની આ ચતુર્ભંગી છે

વૃક્ષની અપેક્ષાએ જેવા ચાર ભાંગા (વિકલ્પ) પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે, એવા જ ચાર ભાગા મનુષ્યની અપેક્ષાએ પણ સમજવા

अथ बोधिपरिणामापेक्षयाश्चत्वारो भङ्गा प्रोच्यन्ते-

"चत्तारि" इत्यादि-चत्वारि=चतुःसङ्ख्यानि, पुरुषजातानि=पुरुषप्रकाराः, भङ्गरूपाणि तद्यथा-उन्नतो=जात्यादि गुणैरभ्युदितः, एक=प्रथमः, उन्नतमनाः, स्वाभाविकौदार्यप्रभृतिगुणयुक्तहृदयो भवति ॥१॥ इति प्रथमो भङ्ग ॥१॥

अवशिष्टास्त्रयो भङ्गा यथा-उन्नतो नामैकः प्रणतमना २, प्रणतो नामैक उन्नतमनाः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतमना ४, इति चतुर्भङ्गी ।७।

अब सूत्रकार बोधि परिणामकी अपेक्षा लेकर चार भङ्ग कहते हैं पुरुष प्रकार चार सख्यावाले कहे गयेहैं, जैसे-उन्नत उन्नत मनवाला १ उन्नत प्रणत मनवाला २ प्रणत उन्नत मनवाला ३ और प्रणत प्रणत मनवाला-४ इनमें-प्रथम प्रकार का ऐसा तात्पर्य है, जो जाति आदि गुणों से उन्नत होता है-और स्वाभाविक औदार्यादि गुणों से भी युक्त हृदयवाला होता है-१ द्वितीय प्रकार में वह पुरुष आता है जाति आदि गुणों से तो उन्नत होता है, पर-स्वाभाविक औदार्य आदि गुणों से युक्त हृदय वाला नहीं होता है २ तृतीय प्रकार में वह पुरुष आता है, जो स्वाभाविक औदार्य आदि गुणोंसे युक्त हृदयवाला तो होतानहीं है पर उसका मन उन्नत होता है-३ तथा चतुर्थ प्रकार में वह पुरुष आता है जो नतो जाति आदि गुणों से ही उन्नत होता है और न औदार्य आदि गुणों से ही युक्त हृदयवाला होता है-४ इस प्रकार से ये चतुर्भङ्ग हैं ॥ सू०७ ॥

હવે સૂત્રકાર બોધપરિણામની અપેક્ષાએ ચાર ભાંગાનું કથન કરે છે—

પુરુષોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ પડે છે-(૧) ઉન્નત ઉન્નત મનવાળો (૨) ઉન્નત પ્રણત મનવાળો, (૩) પ્રણત ઉન્નત મનવાળો અને (૪) પ્રણત પ્રણત મનવાળો

પહેલા પ્રકારમાં એ મનુષ્યને મૂકી શકાય કે જે જાતિ આદિની અપેક્ષાએ પણ ઉન્નત હોય છે, અને સ્વાભાવિક ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી પણ સંપન્ન હૃદયવાળો હોય છે બીજા પ્રકારમાં એ મનુષ્યને મૂકી શકાય કે જે જાતિ આદિ ગુણોની અપેક્ષાએ તો ઉત્તમ હોય છે, પણ સ્વાભાવિક ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી યુક્ત હૃદયવાળો હોતો નથી. ત્રીજા પ્રકારમાં એવા પુરુષને મૂકી શકાય કે જે જાતિ આદિ ગુણોથી ઉન્નત હોતો નથી પણ સ્વાભાવિક ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી યુક્ત હૃદયવાળો હોય છે ચોથા પ્રકારમાં એ મનુષ્યને મૂકી શકાય છે કે જે જાતિ આદિ ગુણોની અપેક્ષાએ પણ ઉન્નત હોતો નથી અને ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી યુક્ત હૃદયવાળો પણ હોતો નથી

"एवं संकप्पे" इति-एवम्=पूर्ववत्, संकल्प =संकल्पघटितस्तच्चतुर्भङ्गो मनोघटितभङ्गवद् बोध्यः। तथाहि-उन्नतो नामैक उन्नतसंकल्पः १, उन्नतो नामैकः प्रणतसंकल्पः २, प्रणतो नामैक उन्नतसंकल्पः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतसंकल्पः ४। तत्र संकल्पो-मानसं कर्म विचार इत्यर्थः, एवं चोन्नतसंकल्पः' इत्यस्योन्नत-मानसविचार इत्यर्थः। विचारे औन्नत्यं चौदार्यादिगुणयुक्तत्वेन समीचीनार्थविषयत्वेन वा बोध्यम्, तद्वान् पुरुषोऽप्युन्नतोऽभिधीयते। ८।

"पन्ने" इति-प्रज्ञा-ज्ञान-ज्ञा, प्रकृष्टा चासौ ज्ञा=प्रज्ञा, तद्घटिता अपि भङ्गा मनोघटितभङ्गवद् बोध्या। तथाहि-उन्नतो नामैक उन्नतप्रज्ञः १, उन्नतो नामैकः प्रणत प्रज्ञः २, प्रणतो नामैक उन्नतः प्रज्ञः ३, प्रणतो नामैकः प्रणत-प्रज्ञः ४,९॥

इसी प्रकार से सङ्कल्प को घटित करके भी चतुर्भङ्गी बना लेना चाहिये, जैसे-कि उन्नत उन्नत सङ्कल्पवाला-१ उन्नत प्रणत सङ्कल्पवाला -२ प्रणत उन्नत सङ्कल्पवाला-३ और प्रणत प्रणत सङ्कल्पवाला-४ सङ्कल्प नाम मानसिक विचार का है, विचार में औन्नत्य औदार्य आदि गुणों से युक्त होने से अथवा-समीचीन अर्थ को विषय करने से जानना चाहिये, ऐसे उन्नत मानसिक विचारों से युक्त हुवा पुरुष भी उन्नत कहलाते हैं इस चतुर्थभङ्गी का अर्थ स्पष्ट है ८

"पन्ने" प्रज्ञा नाम ज्ञान का है प्रकृष्ट ज्ञा का नाम प्रज्ञा है इसको लेकर भी चार भङ्ग इस प्रकार से बने हैं-उन्नत उन्नत प्रज्ञावाला -उन्नत प्रणत प्रज्ञावाला-प्रणत उन्नत प्रज्ञावाला-और प्रणत प्रणत प्रज्ञावाला, यह चतुर्भङ्गी भी सरलता से समझी जा सके ऐसी है

એજ પ્રમાણે સંકલ્પને આધારે પણ ચાર ભાંગા બને છે-જેમકે.... (૧) ઉન્નત ઉન્નત સંકલ્પવાળો, (૨) ઉન્નત પ્રણત સંકલ્પવાળો, (૩) પ્રણત ઉન્નત સંકલ્પવાળો અને (૪) પ્રણત પ્રણત સંકલ્પવાળો. 'સંકલ્પ' એટલે "માનસિક વિચાર". વિચારમા ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી યુક્તતા હોવાને કારણે ઉન્નતતા સંભવી શકે છે અથવા સમીચીન અર્થને વિષય કરવાની અપેક્ષાએ પણ સંકલ્પમાં ઉન્નતતા સમજવી જોઈએ એવા માનસિક ઉન્નત વિચારોથી યુક્ત હોય એવા પુરુષને પણ ઉન્નત કહે છે. આ ચતુર્ભંગીનો અર્થ સ્પષ્ટ છે.

"પન્ને" પ્રજ્ઞા એટલે જ્ઞાન-પ્રકૃષ્ટ જ્ઞાનનુ નામ પ્રજ્ઞા છે. તે પ્રજ્ઞાની અપેક્ષાએ પણ નીચે પ્રમાણે ચાર ભાંગા બને છે-(૧) ઉન્નત ઉન્નત પ્રજ્ઞાવાળો, (૨) ઉન્નત પ્રણત પ્રજ્ઞાવાળો, (૩) પ્રણત ઉન્નત પ્રજ્ઞાવાળો અને (૪) પ્રણત પ્રણત પ્રજ્ઞાવાળો આ ચતુર્ભંગી પણ સરળતાથી સમજી શકાય એવી છે.

"दिट्ठी" इति-दृष्टि-दर्शनं दृष्टि-चाक्षुषज्ञान, यद्वा-दृष्टिः-नयमतं, तद्दृष्टिमाश्रित्यापि भङ्गा बोध्याः। तथाहि-उन्नतो नामैक उन्नतदृष्टिः १ उन्नतो नामैकः प्रणतदृष्टिः २, प्रणतोनामैक उन्नतदृष्टि ३, प्रणतोनामैकः प्रणतदृष्टिः ४। १०।

अथ क्रियाऽपेक्षाणि त्रीणि सूत्राण्याह-

"सीलायारे" इति-शीलाऽऽचारः=शीलं-समाधिश्चित्तस्वास्थ्यमित्यर्थः, यद्वा-सद्वृत्त स्वभावो वा तस्याऽऽचारः=आचरणमनुष्ठानमित्यर्थः, यद्वा-'शी-

"दिट्ठी" दर्शन का नाम दृष्टि है अर्थात् चक्षु की सहायता से जो ज्ञान होता है वह दृष्टि है। अथवा नयों का जो मत है वह दृष्टि है, इस दृष्टि को लेकर भी चार भङ्ग इस प्रकार से बनते हैं। उन्नत उन्नत दृष्टिवाला १ उन्नत प्रणत दृष्टिवाला-२ प्रणत उन्नत दृष्टिवाला-३ और प्रणत प्रणत दृष्टिवाला-४ इनका तात्पर्य ऐसा है कि-एक उन्नत होकर भी उन्नत दृष्टिवाला-१ एक उन्नत होकर भी प्रणत दृष्टिवाला होता है-२ एक प्रणत होकर भी उन्नत दृष्टिवाला होता है और एक प्रणत होकर भी प्रणत दृष्टिवाला ही होता है—

क्रियापेक्ष तीन सूत्र इस प्रकार से हैं—

"सीलायर" इति-शील नाम समाधि का है समाधि चित्त स्वास्थ्यरूप होती है, अथवा-सद्वृत्त, या स्वभाव का नाम भी शील है इस शील का जो आचार अनुष्ठान है, वह शीलाचार है। अथवा

'दिट्ठी' દર્શનનું નામ દૃષ્ટિ છે એટલે કે ચક્ષુની સહાયતાથી જે જ્ઞાન થાય છે તેનું નામ દૃષ્ટિ છે અથવા જુદા જુદા નયનો જે મત હોય છે તેને દૃષ્ટિ કહે છે આ દૃષ્ટિને અનુલક્ષીને પણ નીચે પ્રમાણે ચાર ભાંગા બને છે (૧) ઉન્નત ઉન્નત દૃષ્ટિવાળો, (૨) ઉન્નત પ્રણત દૃષ્ટિવાળો, (૩) પ્રણત ઉન્નત દૃષ્ટિવાળો અને (૪) પ્રણત પ્રણત દૃષ્ટિવાળો આ ચાર પ્રકારનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે—(૧) કોઈ પુરુષ જાતિ આદિની અપેક્ષાએ પણ ઉન્નત હોય છે અને ઉન્નત દૃષ્ટિવાળો પણ હોય છે (૨) કોઈ પુરુષ ઉન્નત હોવા છતાં પ્રણત દૃષ્ટિવાળો હોય છે (૩) કોઈ પુરુષ પ્રણત હોવા છતાં ઉન્નત દૃષ્ટિવાળો હોય છે (૪) કોઈ પ્રણત પણ હોય છે અને પ્રણત દૃષ્ટિવાળો પણ હોય છે

ક્રિયાની અપેક્ષાએ ત્રણ સૂત્ર આ પ્રમાણે છે—

'સીલાયારે' ઇત્યાદિ—શીલ એટલે સમાધિ સમાધિ ચિત્તની સ્વસ્થતા રૂપ પણ હોય છે અથવા-સદ્‌વૃત્તિ અથવા સ્વભાવનું નામ પણ શીલ છે તે

लेनाऽऽचारः शीलाऽऽचारः" इति तृतीयातत्पुरुषः, तेन स्वभावेनाऽऽचार इत्यर्थः एवं च शीलाऽऽचारघटिताअपि चत्वारो भङ्गा बोध्याः। तथाहि-उन्नतो नामैक उन्नतशीलाऽऽचारः १, उन्नतोनामैकः प्रणतशीलाऽऽचारः २, प्रणतो नामैक उन्नतशीलाऽऽचारः ३, प्रणतो नामैकः प्रणतशीलाऽऽचारः ४। ११।

"ववहार" इति-व्यवहारः=वर्तनमाचरणं वा, स चानेकविधः, तद्घटिता अपि चत्वारो भङ्गाः कर्तव्याः, तथाहि-उन्नतो नामैक उन्नतव्यवहारः १, उन्नतो नामैकः प्रणतव्यवहारः २, प्रणतो नामैक उन्नतव्यवहारः ३, प्रणतो नामैकः प्रण-

---

-"शीलेन आचारः" शीलाचार इस तृतीयातत्पुरुष समास को लेकर ऐसा शीलाचार का अर्थ होता है, कि-स्वभाव से जो आचार है वह शीलाचार है, इस शीलाचार को लेकर भी चार भङ्ग बनते हैं-वे इस प्रकार से है-कोई उन्नत होकर भी उन्नत शीलाचारवाला होता है-१ कोई उन्नत होकर भी प्रणत शीलाचारवाला होता है-२ कोई प्रणत होकर भी उन्नत शीलाचारवाला होता है-३ और कोई प्रणत होकर भी प्रणत शीलाचारवाला ही होता है-११

"ववहार" इति व्यवहार अथवा वर्तमान आचरण का नाम व्यवहार है यह व्यवहार अनेक प्रकार का होता है। इस व्यवहार को लेकर चार भङ्ग इस प्रकार से बनते है, एक कोई उन्नत होकर भी उन्नत व्यवहारवाला होता है-१ कोई उन्नत होकर भी प्रणत व्यवहारवाला होता है-२ कोई प्रणत होकर भी उन्नत व्यवहारवाला होता है-३

શીલનો જે આચાર (અનુષ્ઠાન) છે, તેનુ નામ શીલાચાર છે અથવા "શીલેન આચારઃ" આ પ્રમાણે તૃતીયા તત્પુરુષ સમાસ ગણીને શીલાચારનો આ પ્રમાણે પણ અર્થ થાય છે—"સ્વભાવતઃ" જે આચાર છે તેને શીલાચાર કહે છે" આ શીલાચારની અપેક્ષાએ પણ નીચે પ્રમાણે ચાર ભાંગા બને છે. (૧) કોઈ પુરુષ ઉન્નત પણ હોય છે અને ઉન્નત શીલાચારવાળો પણ હોય છે (૨) કોઇ પુરુષ ઉન્નત હોવા છતાં પણ પ્રણત શીલાચારવાળો હોય છે. (૩) કોઇ પ્રણત હોવા છતાં પણ ઉન્નત પ્રણત શીલાચારવાળો હોય છે. (૪) કોઇ પ્રણત પણ હોય છે અને પ્રણત શીલાચારવાળો પણ હોય છે.। ૧૧।

"વવહાર" ઇત્યાદિ—વર્તમાન આચરણનું નામ વ્યવહાર છે તે વ્યવહાર અનેક પ્રકારનો હોય છે તે વ્યવહારની અપેક્ષાએ પણ નીચે પ્રમાણે ચાર ભાંગા બને છે-(૧) કોઇ જીવ ઉન્નત પણ હોય છે અને ઉન્નત વ્યવહારવાળો પણ હોય છે (૨) કોઈ પુરુષ ઉન્નત હોવા છતાં પણ પ્રણત વ્યવહારવાળો હોય છે. (૩) કોઇ પ્રણત હોવા છતા પણ ઉન્નત વ્યવહારવાળો

तव्यवहारः ४ । तत्र व्यवहारे उन्नतत्वं प्रणतत्वं च प्रशंसनीयत्वाप्रशंसनीयत्वा भ्यां बोध्यम् । १२ ।

" परक्कमे " पराक्रम –उत्साह, तद्घटिता अपि चत्वारो भङ्गा बोध्याः। तथाहि–उन्नतो नामैक उन्नतपराक्रमः १, उन्नतो नामैकः प्रणतपराक्रम २, प्रणतो नामैक उन्नतपराक्रमः ३, प्रणतो नामैक प्रणतपराक्रम ४ । तत्र पराक्रमे उन्नतत्वं चाप्रतिहतत्व–समीचीन विषयत्वाभ्यां बोध्यम् । १३ । एषु सर्वेषु भङ्गेषु प्रणतत्वमुन्नतत्वविपरीतं बोध्यम् ।

और–कोई प्रणत होकर भी प्रणत व्यवहारवाला ही होता है–४ व्यवहार में औन्नत्य और प्रणतता प्रशंसनीयता और अप्रशंसनीयता से आती है ऐसा जानना चाहिये—१२

" परक्कमे " उत्साह का नाम पराक्रम है इस पराक्रम के जो चार भङ्ग बनते हैं–वे इस प्रकार से हैं, कोई उन्नत होकर भी उन्नत पराक्रमवाला होता–१ कोइ उन्नत होकर भी प्रणत पराक्रमवाला होता है–२ कोइ प्रणत होकर भी उन्नत पराक्रमवाला होता है–३ और कोई प्रणत होकर प्रणत पराक्रमवाला ही होता है ४ पराक्रम में औन्नत्य अप्रतिहतता और–समीचीनता को लेकर ही होता है ऐसा जानना चाहिये, इन समस्त भङ्गों में प्रणतता औन्नत्य से विपरीत होती है ऐसा समझना चाहिये ।

હોય છે (૪) કોઈ પુરુષ પ્રણત પણ હોય છે અને પ્રણત વ્યવહારવાળો પણ હોય છે વ્યવહારમાં ઉન્નતતા અને પ્રણતતા પ્રશંસનીયતાથી અને અપ્રશંસનીયતાથી આવે છે, એમ સમજવું । ૧૨ ।

" परक्कमे " ઇત્યાદિ—ઉત્સાહને પરાક્રમ કહે છે તે પરાક્રમની અપેક્ષાએ નીચે પ્રમાણે ચાર ભાંગા બને છે–(૧) કોઈ પુરુષ ઉન્નત પણ હોય છે અને ઉન્નત પરાક્રમવાળો પણ હોય છે (૨) કોઈ પુરુષ ઉન્નત હોવા છતાં પણ પ્રણત પરાક્રમવાળો હોય છે (૩) કોઈ પુરુષ પ્રણત હોવા છતાં પણ ઉન્નત પરાક્રમવાળો હોય છે (૪) કોઈ પુરુષ પ્રણત પણ હોય છે અને પ્રણત પરાક્રમવાળો પણ હોય છે પરાક્રમમાં ઉન્નતતા અપ્રતિહતતા અને સમીચીનતાની અપેક્ષાએ જ હોય છે એમ સમજવું આ ચારે ભાંગાઓમાં પ્રણતતા ઉન્નતતાથી વિપરીત હોય છે એમ સમજવું

" एगे पुरिसजाए " इत्यादि-एषु मन आदि पराक्रमान्तघटितसप्तचतुर्भङ्गीसूत्रेषु मध्ये एकं=केवलं पुरुषजातं= पुरुषजातपदं योजयित्वा सप्त चतुर्भङ्गीसूत्रपठनं कार्यम् , यतः प्रतिपक्षः=द्वितीयपक्षो दृष्टान्तभूतं वृक्षसूत्रं नास्तीति दृष्टान्ततया वृक्षसूत्रं न पठनीयमिति, यतोऽत्र दृष्टान्तभूतवृक्षेषु मनःप्रभृतयो दार्ष्टान्तिकपुरुषधर्मा न घटन्ते, तेषामसंज्ञित्वात् ।

पुनर्दृष्टान्तसूत्रमाह—

" चत्तारि " इत्यादि-चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ऋजुः=सरलः, एकः=कश्चिद् वृक्षः वृक्षे आर्जवं चाविपरीतस्वभावेन समुचितफलपुष्पादिनिष्पादनहेतुत्वाद् बोध्यम् , स एव पूर्वमृजुरधुनाऽपिऋजुः=सरल इति प्रथमो भङ्गः १।

" एगे पुरिसजाए " इत्यादि-मनसे लेकर पराक्रम तक की जो चतुर्भङ्गी के ये सात सूत्र हैं उनमे केवल पुरुषजात पद को योजित करके ही सप्त चतुर्भङ्गी सूत्रों का पठन करना चाहिये। क्यों कि-दृष्टान्तभूत जो वृक्ष सूत्र है वह यहां नहीं पढना चाहिये कारण इसका ऐसा है कि-दृष्टान्तभूत वृक्षों में मन आदि जो दार्ष्टान्तिक पुरुष धर्म हैं वे घटित नहीं होते हैं, क्यों कि-असंगी होते हैं

"" पुनः दृष्टान्त सूत्र का कथन-"

" चत्तारि " इत्यादि-चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं, ऋजु-१ सरल -२ ऋजु-३ सरल-४ इस भंङ्ग में कोई ऐसा होता है, जो पहिले भी

" एगे पुरिसजाए " ઈત્યાદિ—મનથી લઈને પરાક્રમ સુધીના ચાર ભાંગાવાળા સાત સૂત્રોનું પૂર્વોકત પ્રકારે પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યુ. તે સાતે સૂત્રોના ચાર-ચાર ભાગાઓનું કથન કરતી વખતે દરેક ભાંગામા માત્ર પુરુષ પદનો પ્રયોગ કરીને સમસ્ત કથન થવું જોઇએ. એટલે કે દૃષ્ટાન્તરૂપ વૃક્ષ પદનો આ ભાગાઓમા પ્રયોગ કરવો જોઇએ નહીં. ત્યાં વૃક્ષપદનો પ્રયોગ શા માટે થવો ન જોઇએ ? તો તેનો ખુલાસો આ પ્રમાણે સમજવો— દૃષ્ટાન્તભૂત વૃક્ષોમા મન આદિનો સદ્ભાવ હોતો નથી. એટલે કે જે દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષધર્મો છે તેમને વૃક્ષની સાથે ઘટાવી શકાતા નથી, તે કારણે આ સાત સૂત્રોમાં વૃક્ષપદનો પ્રયોગ અસંગત લાગે છે તેથી દૃષ્ટાન્તભૂત વૃક્ષોને બદલે દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષનો જ આ ભાગાઓમાં પ્રયોગ કરવામા આવ્યો છે

દૃષ્ટાન્ત સૂત્રનુ વિશેષ કથન—

" चत्तारि " ઈત્યાદિ-વૃક્ષોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે— (૧) ઋજુ-ઋજુ, (૨) ઋજુ-વક્ર, (૩) વક્ર-ઋજુ અને (૪) વક્ર-વક્ર.

ऋजुर्नामैको वक्र =पूर्वमृजुः पश्चात्, फलपुष्पादि विषये विपरीतः। इति द्वितीयो भङ्गः ।२।

वक्रो नामैक ऋजुः-वक्रः=कुटिलः, ऋजुः=सरल । इति तृतीयो भङ्गः ।३।

वक्रो नामैको वक्र-पूर्वं वक्रः पश्चादपि वक्र एव भवेत्। इति चतुर्थो भङ्गः । ४ ।

इति दृष्टान्तभूतवृक्षसूत्रम् ।

अथ दार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रोपन्यास:—

" एवामेव " इत्यादि-एवमेव=दृष्टान्तभूतवृक्षसूत्रवदेव, चत्वारि=चतुःसंख्यानि

ऋजु होता है-और बाद में भी ऋजु बना रहता है, वृक्ष में ऋजुता अविपरीत स्वभाव को लेकर, या समुचित फल पुष्पादि को उत्पन्न करने के कारण को लेकर जाननी चाहिये, ऐसा यह ऋजु ऋजु नाम का प्रथम भङ्ग है १ ऋजु वक्र, यह द्वितीय भङ्ग है-२ इसमें पहले ऋजु होकर भी कोई वृक्ष वक्र हो जाता है ऐसा कहा गया है, फल पुष्प आदि के विषय में विपरीत होना इसीका नाम यहां वक्र है। वक्र ऋजु-यह तृतीय भंग है, इसमें पहले वक्र कुटिल हुवा कोई वृक्ष पश्चात् ऋजु सरल हो जाता है यह बतलाया गया है। वक्र वक्र यह चतुर्थ भंग है, इसमें पहिले से भी कोई वृक्ष वक्र रहता है और बाद में भी वह वक्र ही बना रहता है इस प्रकार से ये चार भंग हैं

दार्ष्टान्तिक पुरुषजात

" एवामेव " इत्यादि-दृष्टान्त स्वरूप वृक्ष की तरह चार संख्यावाले

હવે આ ચારે ભાંગાનુ સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે-(૧) કોઈ વૃક્ષ એવું હોય છે કે જે પહેલાં પણ ઋજુ હોય છે અને પછી પણ ઋજુ જ રહે છે વૃક્ષમાં ઋજુતા (સરળતા) અવિપરીત સ્વભાવની અપેક્ષાએ અથવા સમુચિત ફલ, પુષ્પાદિને ઉત્પન્ન કરવાને કારણે સમજવી (૨) 'ઋજુ-વક્ર' કોઈ વૃક્ષ પહેલાં ઋજુ હોવા છતા પાછળથી વક્ર થઈ જાય છે ફલ-પુષ્પાદિ આપનારૂં વૃક્ષ જ્યારે ફલ-પુષ્પાદિ આપતું બંધ થઈ જાય છે ત્યારે તેમાં વક્રતા આવી ગણાય છે (૩) વક્ર-ઋજુ' કોઈ વૃક્ષ એવું હોય છે કે જે પહેલાં વક્ર હોય છે પણ પાછળથી ઋજુ બની જાય છે (૪) 'વક્ર-વક્ર' કોઈ વૃક્ષ પહેલાં પણ વક્ર હોય છે અને પાછળથી પણ વક્ર જ રહે છે આ પ્રકારના ચાર ભાંગા અહીં બને છે

દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષ જાત—

" एवामेव ઇત્યાદિ—દૃષ્ટાન્તભૂત વૃક્ષની જેમ પુરુષોના પણ ચાર પ્રકાર

पुरुषजातानि=पुरुषप्रकाराः, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ऋजुर्नामैक ऋजुः १-ऋजुः= सरलः शरीर-गति-भाषित - चेष्टाप्रभृतिभिर्बहिस्तात्, अन्तरप्येवमृजु=निश्चलः सुसाधुवदिति प्रथमो भङ्गः ॥ १ ॥

ऋजुर्नामैको वक्रः २-ऋजुः, एकः=कश्चित्, वक्रः=अन्तर्मायावित्वेन कुटिलः कारणवशात् सरलताधारिदुर्जनवत्, इति द्वितीयोभङ्गः ।२।

वक्रो नामैक ऋजुः ३-वक्रः-कुटिलः शिक्षादिकारणवशादर्शितबहिरुग्रस्वभावः, ऋजुः=अन्तश्छलरहितः प्रवचन-गुप्ति त्रयादिरक्षकमुनिवत्। इति तृतीयो भङ्गः । ३ ।

वक्रो नामैको वक्रः ४-वक्रः=कुटिलो वहिस्तात्कायचेष्टादिना, स एव वक्रः= अभ्यन्तरेऽपि कुटिलः, कपटजालयुक्तशठवदिति चतुर्थो भङ्गः ४

इति दार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रोपन्यासः ।

पुरुष प्रकार कहे गये हैं, इनमें कोई पुरुष सुसाधु की तरह ऐसा होता है जो शरीर गति भाषित एवं चेष्टा आदि में सरल होता है और- भीतर में भी निश्चल होता है, अर्थात्-ऐसा पुरुष बाहर में और भीतर सरलतावाला होता है, यह प्रथम भंग है-१ कोई पुरुष ऐसा होता है जो-पहले तो सरल होता है, वाद में कारण वश वह कुटिल-मायावी हो जाने से सरलताधारी दुर्जन की तरह वक्र हो जाता है यह द्वितीय भग है-कोई पुरुष ऐसा होता है जो पहले वक्र होता है शिक्षादि कारण के वश से बाहर में उग्रस्वभाव का प्रदर्शन करनेवाला होता है, बाद में वह वचन गुप्तित्रय आदि की रक्षा करनेवाले मुनि की तरह भीतर में छलविहीन बन जाता है यह तृतीय भंग है-३ कोई पुरुष ऐसा होता

કહ્યા છે-પહેલો ભાગો-કોઈ પુરુષ સુસાધુની જેમ શરીર, ગતિ, ભાષા, ચેષ્ટા આદિની અપેક્ષાએ પણ સરલ હોય છે અને તેનુ અંતઃકરણ પણ નિશ્ચલ હોય છે. એટલે કે તે બહારથી પણ સરલ હોય છે અને અંદરથી પણ સરલ હોય છે અથવા પહેલાં પણ સરળ હોય છે અને પાછળથી પણ સરલ જ રહે છે. બીજો ભ.ગો-કોઈ પુરુષ પહેલાં સરલ હોય છે, પરન્તુ પ.છળથી કોઈ કારણુને લીધે તે માયાવી થઈ જવાથી દુર્જનના જેવો વક્ર (કુટિલ) થઈ જાય છે ત્રીજો ભાંગો-કોઇ પુરુપ પહેલાં વક્ર (કુટિલ) હોય છે, પરન્તુ શિક્ષાદિ કારણોને લીધે પાછળથી સરલ સ્વભાવનો બની જાય છે. અથવા કોઇ માણુસ ઉગ્ર સ્વભાવ આદિનુ પ્રદર્શન કરનારો હોવા છતાં પણ ગુપ્તિત્રય આદિની રક્ષા કરનારા મુનિની જેમ અંદરથી છલરહિત બની ગયેલો હોય છે ચોથો ભાગો-કોઈ પુરુપ શારીરિક ચેષ્ટા આદિની અપેક્ષાએ બહારથી પણ કુટિલ

"एवं जहा" इत्यादि–एवम्=इत्थम् "ऋजुनामेकं ऋजुः" इत्यादिनाऽनन्तरोपदर्शितक्रमेण, यथा=येन प्रकारेण परिणतरूपस्तादि नव विशेषण-दानेने त्यर्थः, उन्नत-परिणताभ्याम योऽन्यं प्रतिपक्षभूताभ्यां, गमः=सदृशपाठयपद विरूपः पाठो विहितः तथा=तेन प्रकारेण अर्थात् परिणत-रूप-मन-सङ्कल्प-प्रज्ञा-दृष्टि - शीलाऽऽचार - व्यवहार - पराक्रमरूपनवविशेषणयोगिताभ्याम्, ऋजु-वक्राभ्यामपि=ऋजुरु देन वक्रशब्देन चापि भणितव्य =गम पठनीयः, स गम' कियान् भणितव्य ? इत्यवधिं प्रदर्शयितुमाह-" जाव परकमे " इति, ऋजुवक्रदक्षसूत्रादारभ्य त्रयोदशं सूत्रं यावद् गमो भणितव्य इत्यर्थ ।-तम च ऋजु २ ऋजु परिणत २ ऋजुरूप २ लक्षणानि षट् सूत्राणि वृक्षदृष्टान्त पुरुषदार्ष्टान्तिकरूपाणि योध्यानि, तदतिरिक्तानि सप्त मन प्रभृतिपदितानि दृष्टान्तरहि

है जो बाहर से शारीरिक चेष्टादि द्वारा कुटिल होता है और-भीतर से भी कपट जाल युक्त शठ की तरह कुटिल होता है यह चतुर्थभग है-४

"एवं जहा" इत्यादि-इस सूत्र द्वारा अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि-जिस प्रकार उन्नत और प्रणत सम्बन्धी सूत्रों के साथ उन्नत प्रणत परिणतरूप जोडकर दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक सम्बन्धी छह ६ सूत्र बनाये हैं, तथा-इनकी उन्नत प्रणत शब्दों के साथ मन सङ्कल्प प्रज्ञा दृष्टि शीलाचार व्यवहार शब्द जोडकर ७ सूत्र वृक्ष दृष्टान्त रहित करके और बनाये गये हैं, इस प्रकार से ये तेरह सूत्र बनाये गये हैं। जैसे-उन्नत उन्नत-१ उन्नत प्रणत-२ प्रणत उन्नत-३ और प्रणत प्रणत ४ ये चार भग वृक्ष सम्बन्धी हैं, यह प्रथम १ सूत्र है, और इसी सूत्र को दार्ष्टान्तिक में उन्नत प्रणत को योजित करके द्वितीय सूत्र पुरुष

હોય છે અને અંદરથી પણ કપટ જાળયુક્ત દુર્જનના જેવો કુટિલ જ હોય છે, અથવા તે પહેલાં પણ કુટિલ હોય છે અને પછી પણ કુટિલ જ રહે છે

' एवं जहा " ઇત્યાદિ—આ સૂત્ર દ્વારા હવે સૂત્રકાર એ પ્રકટ કરે છે કે-જેમ ઉન્નત અને પ્રણત વિષયક સૂત્રોની સાથે ઉન્નત પ્રણત પરિણત રૂપ જોડીને દૃષ્ટાન્ત દાર્ષ્ટાન્તિક સબધી ૬ સૂત્રો બનાવવામાં આવ્યા છે, એ જ પ્રમાણે ' ઉન્નત પ્રણત ' શબ્દોની સાથે મન સંકલ્પ, પ્રજ્ઞા, દૃષ્ટિ, શીલાચાર, વ્યવહાર અને પરાક્રમ, આ સાત પદ જોડીને વૃક્ષના દૃષ્ટાન્ત રહિત બીજાં સાત સૂત્રો પણ બનાવવામાં આવ્યાં છે આ પ્રમાણે કુલ ૧૩ સૂત્રો બનાવવામાં આવ્યાં છે જેમકે (૧) ઉન્નત-ઉન્નત, (૨) ઉન્નત-પ્રણત, (૩) પ્રણત ઉન્નત અને (૪) પ્રણત-પ્રણત આ ચાર ભાંગા વૃક્ષને અનુલક્ષીને બનાવ્યા છે. આ રીતે વૃક્ષના દૃષ્ટાન્તવાળું આ પ્રથમ સૂત્ર છે

तानि मनःप्रभृतीनां धर्माणामसंज्ञिनि वृक्षेऽसम्भवादिति संकलनया त्रयोदश सूत्राणि १३। प्रागपि त्रयोदशेति योजयित्वा २६ षड्विंशतिः सूत्राणि भवन्ति ।

तत्र ऋजुवक्रादिघटितत्रयोदशसूत्री यथा—

अथ ऋजुवक्रघटितदृष्टान्तभूतवृक्षसूत्रम्-१

चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ऋजुर्नामैक ऋजुः १, ऋजुर्नामैको वक्रः २, वक्रो नामैको ऋजुः ३, वक्रो नामैको वक्रः ४ । ॥१॥ इति

अथ ऋजुवक्रघटितदार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रम्-२

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ऋजुर्नामैक ऋजुः १, ऋजुर्नामैको वक्रः २, वक्रो नामैक ऋजु ३, वक्रो नामैको वक्रः ४, २

इति ऋजुवक्र घटितदार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रम् । २ ।

सम्बन्धी बनाया गया है-। उन्नत उन्नत परिणत-१ उन्नत प्रणत परिणत २ प्रणत उन्नत परिणत-३ और प्रणत प्रणत परिणत-४ ये चार भंग उन्नत प्रणत के साथ परिणत को योजित कर तृतीय वृक्ष सम्बन्धी हैं। यह सूत्र है, और-इसी सूत्र को दृष्टान्त में योजित करके चतुर्थ सूत्र बनाया गया है उन्नत उन्नत १ उन्नत प्रणतरूप-२ प्रणत उन्नतरूप-३ और-प्रणत प्रणतरूप ४ ये चार भंग रूप को लेकर वृक्ष सम्बन्धी बनाये गये हैं, यह पांचवां सूत्र है, और-इसी सूत्र को दार्ष्टान्तिक में योजित करके छट्ठां ६ सूत्र बनाया गया है इस तरह से यहां तक तो दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक सम्बन्धी ६ सूत्र बनाये गये हैं। परन्तु इनके साथ उन्नत

અને એ જ પ્રમાણે દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષની સાથે ઉન્નત-ઉન્નત, આદિ ચાર ભાંગાને યોજિત કરીને પુરુષ વિષયક બીજું સૂત્ર બનાવ્યું છે. (૧) ઉન્નત ઉન્નત પરિણત (૨) ઉન્નતપ્રણતપરિણત, (૩) પ્રણતઉન્નતપરિણત અને (૪) પ્રણત પ્રણત પરિણત, આ ચાર ભાંગા ઉન્નત-પ્રણતની સાથે પરિણતને યોજિત કરીને વૃક્ષને અનુલક્ષીને કહ્યા છે. આ રીતે વૃક્ષ વિષયક ત્રીજુ સૂત્ર બનાવ્યુ છે અને આ સૂત્રને દૃષ્ટાન્તમાં (દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષમાં) યોજિત કરીને પુરુષ વિષયક ચોથું સૂત્ર બનાવ્યુ છે. પાંચમું સૂત્ર આ પ્રમાણે બનાવ્યુ છે-(૧) ઉન્નત ઉન્નતરૂપ, (૨) ઉન્નત પ્રણતરૂપ, (૩) પ્રણત ઉન્નત રૂપ અને (૪) પ્રણત પ્રણતરૂપ આ ચાર ભાગા સસ્થાન (આકાર) ની અપેક્ષાએ વૃક્ષને અનુલક્ષીને કહ્યા છે. આ ચારે ભાગાને દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષને અનુલક્ષીને યોજિત કરવાથી છઠ્ઠું સૂત્ર બન્યુ છે.

अथ ऋजुवक्रपूर्वकपरिणतघटितदृष्टान्तभूतवृक्षसूत्रम्-३

चत्वारो वृक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-ऋजुर्नामैक ऋजुपरिणतः १, ऋजुर्नामैको वक्रपरिणतः २, वक्रो नामैक ऋजुपरिणतः ३, वक्रो नामैको वक्रपरिणतः॥ ४॥ ३॥ इति॥

अथ ऋजुवक्रपूर्वकपरिणतघटितदार्ष्टान्तिकपुरुषसूत्रम्-४

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ऋजुर्नामैक ऋजुपरिणतः १, ऋजुर्नामैको वक्रपरिणतः २, वक्रो नामैक ऋजुपरिणत ३, वक्रो नामैको वक्रप रिणतः ४। इति ऋजुवक्रपूर्वकपरिणतघटितदार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रम् ।४।

अथ ऋजुवक्रपूर्वकरूपघटितदृष्टान्तभूतवृक्षसूत्रम्-५

चत्वारो वृक्षाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-ऋजुर्नामैक ऋजुरूपः १, ऋजुर्नामैको वक्र रूप २, वक्रो नामैक ऋजुरूप ३, वक्रो नामैको वक्ररूपः ४ इति ५

अथ ऋजुवक्रपूर्वकरूपघटितदार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रम्-६

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ऋजुर्नामैक ऋजुरूपः १, ऋजुर्नामैको वक्ररूपः २, वक्रो नामैक ऋजुरूपः ३, वक्रो नामैको वक्ररूपः ४। ६॥ इति प्रणोदसूत्र्याम् सदृष्टान्तिकषट्सूत्री

प्रणत के साथ मन को लेकर सङ्कल्प को लेकर प्रज्ञा को लेकर दृष्टि को लेकर शीलाचार को लेकर व्यवहार को लेकर, एवं-पराक्रम को लेकर जो चतुर्भङ्गी के सात सूत्र बनाये गये हैं, वे-बिना दृष्टान्त के ही बनाये गये हैं। क्यों कि-मन आदि धर्म असञ्ज्ञी वृक्षों में सम्भावित (सम्बद्ध) नहीं होते हैं, बिना दृष्टान्त के चतुर्भङ्गी सम्बन्धी वे सात सूत्र इस

આ રીતે પહેલેથી ૭ સુધીના સૂત્રો તો અનુક્રમે દૃષ્ટાંત અને દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષની અપેક્ષાએ બતાવવામાં આવ્યા છે પરંતુ ઉન્નત પ્રણતની સાથે (૧) મન, (૨) સંકલ્પ, (૩) પ્રજ્ઞા, (૪) દૃષ્ટિ, (૫) શીલાચાર, (૬) વ્યવહાર અને (૭) પરાક્રમ, આ સાતને યોજિત કરીને જે ચાર ચાર ભાંગાવાળા સાત સૂત્રો બતાવવામાં આવ્યાં છે, તે વિના દૃષ્ટાંત જ બતાવવામાં આવ્યાં છે, કારણ કે મન આદિ ઉપયુક્ત સાત ધર્મોનો અસંજ્ઞી વૃક્ષોમાં સદ્ભાવ હોઈ શકતો નથી.

આ રીતે દૃષ્ટાંત વિના (એટલે કે માત્ર પુરુષને અનુલક્ષીને) ચાર ચાર ભાંગાવાળા જે સાત સૂત્રો બતાવ્યાં છે, તે નીચે પ્રમાણે સમજવા— એટલે કે સાતમાંથી લઈને ૧૩ માં સુધીના સૂત્રોના ભાંગાનું સ્વરૂપ અહીં પ્રકટ કરવામાં આવે છે.

अथ ऋजुवक्रपूर्वकमनोघटितचतुर्भङ्गी-७

ऋजुर्नामैक ऋजुमनाः १, ऋजुर्नामैको वक्रमनाः २, वक्रो नामैक ऋजुमनाः ३, वक्रो नामैको वक्रमनाः ४। ७॥

अथ ऋजुवक्रपूर्वकसंकल्पघटितचतुर्भङ्गी-८

ऋजुर्नामैक ऋजु संकल्पः १, ऋजुर्नामैको वक्र संकल्पः २, वक्रो नामैक ऋजु संकल्पः ३, वक्रो नामैको वक्रसंकल्पः ४। ८॥

अथ ऋजुवक्रपूर्वक प्रज्ञाघटितचतुर्भङ्गी-९

ऋजुर्नामैक ऋजुप्रज्ञः १, ऋजुर्नामैको वक्रप्रज्ञः २, वक्रो नामैक ऋजुप्रज्ञः ३, वक्रो नामैको वक्रप्रज्ञः ४। ९॥

अथ ऋजुवक्र पूर्वकदृष्टिघटितचतुर्भङ्गी-१०

ऋजुर्नामैक ऋजुदृष्टिः १, ऋजुर्नामैको वक्रदृष्टिः २, वक्रो नामैक ऋजुदृष्टिः ३:, वक्रो नामैको वक्रदृष्टिः । १०॥

प्रकार से हैं-उन्नत उन्नत मन-१ उन्नत प्रणत मन-२ प्रणत उन्नत मन ३ और प्रणत प्रणत मन-४ यह सातवां सूत्र है। ८-आठवां सूत्र इस प्रकार से हैं-उन्नत उन्नत सङ्कल्प-१ उन्नत प्रणत सङ्कल्प-२ प्रणत उन्नत सङ्कल्प-३ और-प्रणत प्रणत सङ्कल्प-४ ९ नवमां चतुर्भङ्गी का सूत्र इस प्रकार से हैं-उन्नत उन्नत प्रज्ञा-१ उन्नत प्रणत प्रज्ञा-२ प्रणत उन्नत प्रज्ञा ३ और प्रणत प्रणत प्रज्ञा-४ १० दशवां चतुर्भङ्गी का सूत्र इस प्रकार से है उन्नत उन्नत दृष्टि-१ उन्नत प्रणत दृष्टि-२ प्रणत उन्नत दृष्टि ३ प्रणत प्रणत दृष्टि-४। ग्यारहवां ११ चतुर्भङ्गी का सूत्र इस प्रकार है-उन्नत उन्नत शीलाचार-१ उन्नत प्रणत शीलाचार-२ प्रणत उन्नत

સાતમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઉન્નત ઉન્નત મન, (૨) ઉન્નત-પ્રણુત મન, (૩) પ્રણુત-ઉન્નત મન અને (૪) પ્રણુત-પ્રણુત મન.

આઠમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઉન્નત-ઉન્નત સંકલ્પ, (૨) ઉન્નત-પ્રણુત સંકલ્પ, (૩) પ્રણુત-ઉન્નત સંકલ્પ અને (૪) પ્રણુત-પ્રણુત સંકલ્પ

નવમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઉન્નત-ઉન્નત પ્રજ્ઞા, (૨) ઉન્નત-પ્રણુત પ્રજ્ઞા, (૩) પ્રણુત-ઉન્નત પ્રજ્ઞા અને (૪) પ્રણુત-પ્રણુત પ્રજ્ઞા.

દસમા સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઉન્નત-ઉન્નત દૃષ્ટિ, (૨) ઉન્નત-પ્રણુત દૃષ્ટિ, (૩) પ્રણુત-ઉન્નત દૃષ્ટિ અને (૪) પ્રણુત-પ્રણુત દૃષ્ટિ.

અગિયારમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઉન્નત-ઉન્નત શીલાચાર, (૨) ઉન્નત

अथ ऋजुवक्रपूर्वकशीलाऽऽचारघटितचतुर्भङ्गी-११

ऋजुर्नामैक ऋजुशीलाऽऽचारः १, ऋजुर्नामैको वक्रशीलाऽऽचार -२, वक्रो नामैक ऋजुशीलाऽऽचारः ३, वक्रो नामैको वक्रशीलाऽऽचारः ४। ११॥

अथ ऋजुवक्रपूर्वकव्यवहारघटितचतुर्भङ्गी-१२

ऋजुर्नामैक ऋजुव्यवहार १, ऋजुर्नामैको वक्रव्यवहारः २, वक्रो नामैक ऋजुव्यवहारः ३, वक्रो नामैको वक्रव्यवहारः ४। १२॥

अथ ऋजुवक्रपूर्वक पराक्रमघटितचतुर्भङ्गी-१३

ऋजुर्नामैक ऋजुपराक्रम १, ऋजुर्नामैको वक्रपराक्रमः २, वक्रो नामैक ऋजुपराक्रमः ३, वक्रो नामैको वक्रपराक्रमः ४। १३॥

इति ऋजुवक्रादिघटितत्रयोदश सूत्री १३॥

शीलाचार-३ प्रणत प्रणत शीलाचार-४। १२ वां चतुर्भङ्गी का सूत्र इस प्रकार से है-उन्नत उन्नत व्यवहार १ उन्नत प्रणत व्यवहार-२ प्रणत उन्नत व्यवहार-३ और प्रणत प्रणत व्यवहार-४। १३ वां चतुर्भङ्गी का सूत्र इस प्रकार से है उन्नत उन्नत पराक्रम-१ उन्नत प्रणत पराक्रम-२ प्रणत उन्नत पराक्रम-३ प्रणत प्रणत पराक्रम-४ इस प्रकार से उन्नत प्रणत शब्दों के साथ मन आदि ७ पदों को जोडकर ७ चतुर्भङ्गी के सूत्र बने हैं। अब ऋजु और वक्र पदों के साथ ऋजु वक्र परिणत और रूप पदों को योजित करके दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक सम्बन्धी पहले की तरह ६ सूत्र, और चतुर्भङ्गीवाले ७ सूत्र विना दृष्टान्त के बनाये गये हैं, वे इस प्रकार से हैं-ऋजु ऋजु-१ ऋजु वक्र २ वक्र ऋजु ३ और

પ્રણત શીલાચાર, (૩) પ્રણત ઉન્નત શીલાચાર અને (૪) પ્રણત પ્રણત શીલાચાર

બારમા સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઉન્નત-ઉન્નત વ્યવહાર, (૨) ઉન્નત-પ્રણત વ્યવહાર, (૩) પ્રણત-ઉન્નત વ્યવહાર, અને (૪) પ્રણત-પ્રણત, વ્યવહાર

તેરમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઉન્નત-ઉન્નત પરાક્રમ, (૨) ઉન્નત-પ્રણત પરાક્રમ, (૩) પ્રણત-ઉન્નત પરાક્રમ અને (૪) પ્રણત-પ્રણત પરાક્રમ.

આ પ્રમાણે ઉન્નત પ્રણત શબ્દોની સાથે મન આદિ ૭ પદોને લઈને ચાર ચાર ભાંગાવાળા સાત સૂત્ર બન્યાં છે હવે ઋજુ (સરળ) અને વક્ર, આ બે પદો સાથે ઋજુ વક્ર પરિણત અને રૂપ (સંસ્થાન) પદોને યોજિત કરીને દૃષ્ટાન્ત અને દાર્ષ્ટાન્તિક સંબંધી બીજાં ૬ સૂત્રો બને છે (જેનું સ્વરૂપ પહેલાં ૭ સૂત્રો જેવું સમજવું) અને ચાર ભંગ યુક્ત ૭ સૂત્રો વિના દૃષ્ટાન્તના બનાવી શકાય છે (એટલે કે માત્ર પુરુષને જ અનુલક્ષીને બનાવી શકાય છે) તે સૂત્રોના ભાંગાઓનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-

वक्र वक्र ४। यह चतुर्भङ्गी का प्रथम सूत्र वृक्ष दृष्टान्त सम्बन्धी है १ इस चतुर्भङ्गी को जब दार्ष्टान्तिक के साथ योजित करते हैं, तब यह द्वितीय सूत्र बन जाता है-२। ऋजु ऋजु परिणत १ ऋजु वक्र परिणत २ वक्र ऋजु परिणत-३ और वक्र वक्र परिणत यह चतुर्भङ्गी का तृतीय सूत्र वृक्ष दृष्टान्त सम्बन्धी है और-जब इसी चतुर्भङ्गी को दार्ष्टान्तिक के साथ घटित करते हैं तब यह चतुर्थ सूत्र बन जाता है। ऋजु ऋजु रूप १ ऋजु वक्ररूप २ वक्र ऋजुरूप ३ वक्र वक्ररूप ४ यह वृक्ष दृष्टान्त सम्बन्धी ५ वां सूत्र है, जब इसकी योजना दार्ष्टान्तिक के साथ करते हैं—तब यह ६ छट्ठा सूत्र बन जाता है। विना दार्ष्टान्त के जो सात सूत्र ऋजु-वक्रपद के साथ मन-सङ्कल्प प्रज्ञा दृष्टि-शीलाचार व्यवहार और पराक्रम पदों को जोड कर चतुर्भङ्गीके बनते हैं वे इस प्रकारसे हैं।

ऋजुऋजुमन १, ऋजुवक्रमन २, वक्र ऋजुमन ३ वक्रवक्र मन ४। ७ ऋजुऋजु सङ्कल्प १ ऋजुवक्रसंकल्प २ वक्रऋजु सङ्कल्प ३ वक्रवक्र सङ्कल्प ४।८।

વૃક્ષ દૃષ્ટાન્ત સંબંધી પહેલા સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઋજુ-ઋજુ, (૨) ઋજુ-વક્ર, (૩) વક્ર-ઋજુ અને (૪) વક્ર-વક્ર આ ચતુર્ભંગીને જ્યારે દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષ સાથે યોજિત કરવામા આવે છે ત્યારે બીજુ સૂત્ર બની જાય છે.

વૃક્ષ દૃષ્ટાન્ત સંબંધી ત્રીજા સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઋજુ-ઋજુ પરિણત (૨) ઋજુ વક્ર પરિણત, (૩) વક્ર-ઋજુ પરિણત અને (૪) વક્ર-વક્ર પરિણત. ત્રીજા સૂત્રના ચાર ભાંગાને જ્યારે દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષ સાથે યોજિત કરવામાં આવે છે ત્યારે ચોથુ સૂત્ર બની જાય છે.

વૃક્ષ દૃષ્ટાંત સંબંધી પાંચમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઋજુ-ઋજુ રૂપ, (૨) ઋજુ-વક્ર રૂપ, (૩) વક્ર-ઋજુ રૂપ અને (૪) વક્ર-વક્ર રૂપ.

પાચમાં સૂત્રના ચાર ભાગને જ્યારે દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષ સાથે યોજિત કરવામાં આવે છે, ત્યારે છઠ્ઠું સૂત્ર બની જાય છે.

વિના દૃષ્ટાન્તના (એટલે કે માત્ર પુરુષને અનુલક્ષીને જ) ઋજુ-વક્ર પદની સાથે મન, સંકલ્પ, પ્રજ્ઞા, દૃષ્ટિ, શીલાચાર, વ્યવહાર અને પરાક્રમ, આ સાત પદોને અનુક્રમે જોડીને ચાર ચાર ભાંગાવાળા સાત સૂત્ર નીચે પ્રમાણે બને છે—

સૂત્ર ૭ માંના ચાર ભાગા-(૧) ઋજુ ઋજુ મન, (૨) ઋજુ-વક્ર મન, (૩) વક્ર-ઋજુ મન, અને (૪) વક્ર-વક્ર મન, હવે આઠમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા પ્રકટ કરવામા આવે છે-(૧) ઋજુ ઋજુ સંકલ્પ, (૨) ઋજુ વક્ર સંકલ્પ, (૩) વક્ર ઋજુ સંકલ્પ અને (૪) વક્ર વક્ર સંકલ્પ.

प्रतिमाप्रतिपन्नपुरुषस्य कल्पनीयभाषाविकं माह—

मूलम्—पडिमापडिवन्नस्स णं अणगारस्स कप्पति चत्तारि भासाओ भासित्तए, तं जहा—जायणी १, पुच्छणी २, अणुन्नवणी ३, पुट्ठस्स वागरणी ४। चत्तारि भासाजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चमेगं भासज्जायं १, बीयं मोसं २, तइयं सच्चमोसं ३, चउत्थं असच्चमोसं ४ ॥ सू०३ ॥

ऋजु ऋजु प्रज्ञ १, ऋजुवक्रप्रज्ञ २, वक्रऋजुप्रज्ञ ३ और ४ वक्रवक्र प्रज्ञ। ९। ऋजुऋजुदृष्टि १ ऋजुवक्रदृष्टि २ वक्रऋजुदृष्टि ३ और वक्रवक्र-दृष्टि ४। १० ऋजु शीलाचार—१ ऋजुवक्रशीलाचार २ वक्रऋजु शीलाचार ३ और वक्र वक्रशीलाचार ४। ११ ऋजुऋजु व्यवहार १ ऋजुवक्र व्यवहार २ वक्रऋजु व्यवहार ३ वक्रवक्रव्यवहार ४। १२ और ऋजुऋजु पराक्रम १ ऋजुवक्रपराक्रम २। वक्रऋजुपराक्रम ३ वक्रवक्रपराक्रम४, १३ इस प्रकारसे ये ऋजुवक्र पदों के साथ विना दृष्टान्त के मन आदि पदों की योजना से ७ सूत्र बने हैं।

पूर्व के ६, और ७ दोनों मिलकर १३ सूत्र हो जाते हैं। १३ ये, और—पूर्व के उन्नत प्रणत सम्बन्धी १३, सब मिल कर २६ छब्बीस सूत्र हुये हैं ॥ २ ॥ सूत्र समाप्तम् ॥

નવમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઋજુ ઋજુ પ્રજ્ઞ, (૨) ઋજુ વક્ર પ્રજ્ઞ, (૩) વક્ર ઋજુ પ્રજ્ઞ અને (૪) વક્ર વક્ર પ્રજ્ઞ

દસમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઋજુ ઋજુ દૃષ્ટિ, (૨) ઋજુ વક્ર દૃષ્ટિ, (૩) વક્ર ઋજુ દૃષ્ટિ અને (૪) વક્ર વક્ર દૃષ્ટિ. અગિયારમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા (૧) ઋજુ ઋજુ શીલાચાર, (૨) ઋજુ વક્ર શીલાચાર, (૩) વક્ર ઋજુ શીલાચાર અને (૪) વક્ર વક્ર શીલાચાર બારમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઋજુ ઋજુ વ્યવહાર, (૨) ઋજુ વક્ર વ્યવહાર, (૩) વક્ર ઋજુ વ્યવહાર અને (૪) વક્ર વક્ર વ્યવહાર. તેરમાં સૂત્રના ચાર ભાંગા-(૧) ઋજુ ઋજુ પરાક્રમ, (૨) ઋજુ વક્ર પરાક્રમ, (૩) વક્ર ઋજુ પરાક્રમ અને (૪) વક્ર વક્ર પરાક્રમ. આ રીતે ઋજુ વક્ર પદોની સાથે વિના દૃષ્ટાંતના મન આદિ પદો યોજવાથી ૭ સૂત્ર બને છે

આ ૧૩ સૂત્રોમાં ઉન્નત-પ્રણત સંબંધી આગલા ૬+૭ એટલે કે ૧૩ સૂત્રો ઉમેરવાથી કુલ ૨૬ સૂત્ર થઈ જાય છે ॥ સૂ ૨ સમાપ્ત ॥

छाया—प्रतिमाप्रतिपन्नस्य खलु अनागारस्य कल्पन्ते चतस्रो भाषा भाषितुम्, तद्यथा–याचनी १, प्रच्छनी २, अनुज्ञापनी ३, पृष्टस्य व्याकरणी ४। चत्वारि भाषाजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–सत्यमेकं भाषाजातम् १, द्वितीयं मृषा २, तृतीयं सत्यमृषा ३, चतुर्थमसत्यमृषा ४। (सू० ३)

टीका—" पडिमापडिवन्नस्स " इत्यादि-प्रतिमाः=द्वादशविधा भिक्षुप्रतिमाः, ताः प्रतिपन्नस्य प्रतिमाप्रतिपन्नस्य, अनगारस्य चतस्रः=चतुःसंख्याः, भाषाः भाषितुं कल्पन्ते, तद्यथा–" याचनी "–याच्यते कल्पनीयवस्तु यया–इति याचनी १, " प्रच्छनी "–पृच्छ्यतेऽनयेति प्रच्छनी=मार्गादीनां प्रयोजनवशात् सूत्रार्थयोर्वा प्रश्नसाधनीभूता २, " अनुज्ञापनी " अनुज्ञाप्यते–बोध्यतेऽन-

---

अब सूत्रकार प्रतिमापन्न पुरुषके कल्पनीय भाषादिकका कथन करते हैं।

" पडिमा पडिवन्नस्स णं अणगारस्स " इत्यादि–३

टीकार्थ–प्रतिमा प्रतिपन्न अनगारको ये चार प्रकारकी भाषाएं बोलना योग्य है, वे चार भाषाएं ये हैं याचनी १ प्रच्छनी २ अनुज्ञापनी ३ और पृष्ट व्याकरणी ४। भाषा चार प्रकार की कही गई है, एक सत्यभाषा द्वितीया मृषाभाषा २ तीसरी सत्यमृषा ३ चौथी असत्यमृषा ४। भिक्षु प्रतिमाएं १२ कही गई है, इन प्रतिमाओं को जो प्रतिपन्न है–पालन कर रहा है–ऐसे उस अनगार को चार भाषाएं बोलना कल्पित है। कल्पनीय वस्तु जिस भाषा के सहारे मांगी जा सके वह याचनी भाषा है। जिस भाषासे मार्गादिकों का, अथवा–प्रयाजनवश सूत्र, और अर्थ का पूछना होता है वह प्रच्छनी भाषा है। जिस भाषा के द्वारा अनु-

---

પ્રતિમાપન્ન પુરુષે (સાધુએ) કેવી ભાષા બોલવી જોઈએ તે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે–" पडिमापडिवन्नस्स णं अणगारस्स " ઈત્યાદિ–

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન (પ્રતિમાઓની આરાધના કરતા) અણગારને માટે આ ચાર ભાષાઓ બોલવા યોગ્ય કહી છે–(૧) યાચની, (૨) પ્રચ્છની, (૩) અનુજ્ઞાપની અને (૪) પૃષ્ટ વ્યાકરણી. ભાષા ચાર પ્રકારની કહી છે–સત્ય ભાષા, (૨) મૃષા ભાષા, (૩) સત્ય મૃષા અને (૪) અસત્ય મૃષા.

ભિક્ષુ પ્રતિમા ૧૨ કહી છે. તે પ્રતિમાઓનુ પાલન કરી રહ્યો હોય એવા અણુગારને આ ચાર પ્રકારની ભાષા બોલવી કલ્પે છે—કલ્પનીય વસ્તુ જે ભાષાને સહારે માંગી શકાય છે, તે ભાષાને 'યાચની ભાષા' કહે છે. જે ભાષાને સહારે માર્ગાદિકોની પૃચ્છા કરવામા આવે છે, અથવા પ્રયોજનવશ સૂત્ર અને અર્થ પૂછવામાં આવે છે, તે ભાષાને 'પ્રચ્છની ભાષા' કહે છે.

येत्यनुज्ञापनी-वसत्यादेरवग्रहग्रहणरूपा ३, " पृष्टस्य व्याकरणी "-पृष्टार्थो त्तरप्रतिपादनी ४।

" चत्वारि भाषाजातानि " इति-भाषाजातानि=भाषाप्रकाराः, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-सत्य=सन्तः-मुनयः, गुणाः पदार्था वा, तेभ्यो हितं सत्यम्, एक=प्रथम भाषाजातम्, ' अस्त्यात्मे '-त्यादिवत् १, द्वितीयं-मृषा=मिथ्या, ' नास्त्यात्मे ' -त्यादिवत् २, तृतीय-सत्यमृषा=सत्यमिथ्यास्वभावम् ' आत्माऽस्त्यकर्ते '-त्यादि वत् ३, चतुर्थम्-असत्यमृषा=उभयस्वभावरहितं ' ग्राम गच्छ ' इत्यादिवत् ४। इति। (सू० ३)

ज्ञापन किया जाता है-वसति आदि का अवग्रह ग्रहण किया जाता है ऐसी वह भाषा अनुज्ञापनी है। पूछी गई बातका उत्तर देनेरूप जो भाषा है वह पृष्टव्याकरणी है। भाषा के जो चार प्रभेद कहे गये हैं-उनका तात्पर्य ऐसा है सन्त मुनिजनों को, गुणों को अथवा-पदार्थो को हित करनेवाली जो भाषा होती है वह सत्यभाषा है। जैसे-" आत्मा है " ऐसा प्रतिपादन करनेवाली भाषा सत्य है। विद्यमान अर्थ का उत्थापन निषेध करनेवाली जो भाषा है वह मृषाभाषा है, जैसे " आत्मा नहीं है " ऐसा कहनेवाला वचन असत्यवचन है। जो भाषा सत्य मिथ्या स्वभाववाली होती है वह सत्य मृषा है, जैसे आत्मा है और वह अकर्ता है। यहां आत्मा है इतने अंश मे तो भाषा में सत्यता है और " वह

જે ભાષા દ્વારા અનુજ્ઞાપના કરવામાં આવે છે-એટલે કે ઉદ્યાન આદિના માલિ કની અનુજ્ઞા લેવામાં આવે છે, તે ભાષાને ' અનુજ્ઞાપની ભાષા ' કહે છે પૂછવામા આવેલી વાતનો જે ભાષા દ્વારા ઉત્તર દેવામાં આવે છે તે ભાષાને પૃષ્ટવ્યાકરણી ભાષા ' કહે છે

ભાષાના જે ચાર પ્રકારો કહેવામાં આવ્યા છે, તેનો ભાવાર્થ હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે-સંતોને (મુનિજનોને), ગુણોને અને જીવોને માટે જે હિતકારી ભાષા છે, તેને સત્ય ભાષા કહે છે જેમકે ' આત્મા છે, " આ પ્રકારનું પ્રતિપાદન કરનારી ભાષા સત્યભાષા ગણાય છે વિદ્યમાન અર્થનું ઉત્થા પન (નિષેધ) કરનારી જે ભાષા છે, તેને મૃષા ભાષા કહે છે જેમકે... " આત્મા નથી ", આ પ્રકારનુ પ્રતિપાદન કરનારી ભાષાને મૃષા ભાષા કહે છે

જે ભાષા અંશતઃ સત્ય હોય અને અંશતઃ અસત્ય હોય, એવી ભાષાને સત્ય મૃષા ભાષા કહે છે જેમકે " આત્મા છે અને તે અકર્તા છે " અહીં " આત્મા છે " આટલું કથન તો સત્ય જ છે, પણ ' તે અકર્તા છે " આ

मूलम्—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धे१, सुद्धे णामं एगे असुद्धे२, असुद्धे णामं एगे सुद्धे३, असुद्धे णामं एगे असुद्धे ४।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धे चउभंगो४। एवं परिणयरूवे, वत्था सपडिवक्खा, चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धमणे चउभंगो ४। एवं संकप्पे जाव परक्कमे ॥ सू०४॥

छाया—चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुद्धं नामैकं शुद्धम् १, शुद्धं नामैकमशुद्धम् २, अशुद्धं नामैकं शुद्धम् ३, अशुद्धं नामैकमशुद्धम् ४। एवमेव

अकर्ता है" इतने अंश में असत्यता है, क्यों कि-वह कर्ता है। जो भाषा असत्य मृषा स्वभाववाली होती है अर्थात्-उभय स्वभाव से रहित होती है वह भाषा असत्य मृषा है, जैसे-"ग्रामं आगतः" गांव आ गया इत्यादि वचन ऐसा वचन न तो सत्य है और न असत्य, अर्थात् व्यवहार भाषा है ॥ ३ ॥

"चत्तारि वत्था पण्णत्ता" इत्यादि ४

सूत्रार्थ–वस्त्र चार प्रकार के गये हैं, जैसे शुद्ध शुद्ध१ शुद्ध अशुद्ध२ अशुद्ध शुद्ध ३ और–अशुद्ध अशुद्ध। इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष

કથન અસત્ય છે, કારણ કે "આત્મા કર્તા છે," એ વાત જ સત્ય છે. તેથી આ કથન અંશતઃ સત્ય અને અંશત અસત્ય હોવાથી, આ પ્રકારની ભાષાને 'સત્ય મૃષા ભાષા' કહે છે. જે ભાષા અસત્ય મૃષા સ્વભાવવાળી હોય છે, એટલે કે બન્ને સ્વભાવથી રહિત હોય છે, તે ભાષાને અસત્ય મૃષા કહે છે. જેમકે "ग्राम आगत" "ગામ આવી ગયુ" ઇત્યાદિ વચન. આ પ્રકારનાં વચન સત્ય પણ નથી અને અસત્ય પણ નથી, કારણ કે ગામ તો જડ વસ્તુ છે–ગામ આવતું નથી પણ આપણે ગામ પાસે જઇએ છીએ છતાં આ પ્રકારનો ભાષા પ્રયોગ થાય છે. આ અસત્ય મૃષાને વ્યવહાર ભાષા પણ કહે છે ॥ સૂ. ૩ ॥

"चत्तारि वत्था पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–વસ્ત્ર ચાર પ્રકારનાં કહ્યાં છે–(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ. એ જ પ્રમાણે પુરુષો પણ ચાર પ્રકા-

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुद्धो नामैकः शुद्धः १, चतुर्भङ्गी ४। एवं परिणतरूपे, वस्त्राणि सप्रतिपक्षाणि। चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुद्धो नामैकः शुद्धमनाः, चतुर्भङ्गी ४, एवं सङ्कल्पः यावत् पराक्रमः। (सू० ४)

टीका—अथ पुरुषभेदनिरूपणाय प्रयोदशसूत्रीमाह-"चत्तारि वत्था" इत्यादि-शुद्धं=निर्मलतन्त्वादिरचितत्वात् स्फीतं वस्त्रं तदेव पुनरागन्तुक मलाभावाच्छुद्धमिति, यद्वा-पूर्वं शुद्धमासीदधुनाऽपि शुद्धमेव, इति प्रथमो भङ्गः १।

कहे गये हैं, शुद्ध शुद्ध १ शुद्ध अशुद्ध २ अशुद्ध शुद्ध ३ और अशुद्ध अशुद्ध ४। इसी प्रकार से शुद्ध अशुद्ध पदों के साथ परिणत और रूप शब्द को जोड़कर वस्त्रों में चतुर्विधता कहनी चाहिये। इसी दृष्टान्त के अनुसार पुरुष के भी चार प्रकार होते हैं ऐसा जानना चाहिये। इसी प्रकार शुद्ध और अशुद्ध पदों के साथ मन पद को जोड़कर चार भङ्ग करना चाहिये। इसी तरह से सङ्कल्प प्रज्ञा दृष्टि शीलाचार व्यवहार और पराक्रम इन पदों को भी जोड़कर चतुर्भङ्गी बनाना चाहिये।

इस सूत्र का विस्तृत अर्थ इस प्रकार से है—

टीकार्थ-'चत्तारि वत्था' इत्यादि यहां जो शुद्ध शुद्ध१ शुद्ध अशुद्ध२ अशुद्ध शुद्ध ३ और अशुद्ध अशुद्ध ४ ऐसे चार भङ्ग कहे गये हैं सो उसका अभिप्राय ऐसा है जो वस्त्र शुद्ध निर्मल तन्तु आदिकों से रचित निर्मित होने से शुद्ध होता है, और पुनः आगन्तुक मल के अभाव से मैला होने नहीं पाता है ऐसा यह वस्त्र प्रथम भङ्ग के भीतर परिगणित हुआ है। अथवा-जो वस्त्र पहले शुद्ध था, अब भी शुद्ध है ऐसा वस्त्र

રના કહ્યાં છે-(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ એજ પ્રમાણે શુદ્ધ-અશુદ્ધ પદોની સાથે પરિણત અને રૂપ, આ બે પદોને અનુક્રમે યોજિત કરીને વસ્ત્રોમાં ચતુર્વિધતાનું કથન થવું જોઈએ આ દૃષ્ટાન્ત અનુસાર પુરુષોના પણ ચાર પ્રકાર પડે છે, એમ સમજવું એજ પ્રમાણે શુદ્ધ અને અશુદ્ધ પદોની સાથે મન, સંકલ્પ, પ્રજ્ઞા, દૃષ્ટિ, શીલાચાર, વ્યવહાર અને પરાક્રમ, આ સાત પદોને યોજિત કરીને ચાર ચાર ભાંગાનું કથન કરવું જોઈએ

હવે આ સૂત્રનો અર્થ વિસ્તારપૂર્વક સમજાવવામાં આવે છે—વસ્ત્રની અપેક્ષાએ જે ચાર ભાંગા કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ—(૧) 'શુદ્ધ શુદ્ધ' જે વસ્ત્ર નિર્મળ તન્તુ આદિકો વડે નિર્મિત હોય છે, અને જેમાં મેલના માત્ર મનનો અભાવ હોય છે, એવાં વસ્ત્રને શુદ્ધ શુદ્ધ નામના પહેલા ભાંગામાં

"शुद्धे" इति-शुद्धं=प्राक् शुद्धं, पश्चान्मलादि सम्पर्कादशुद्धं-मलिनम्, इति द्वितीयो भङ्गः। २॥

"अशुद्धम्" इति-प्रागमलिनम् पश्चाच्छुद्धमिति तृतीयो भङ्गः।३॥

"अशुद्धे" इति-अशुद्धम्=जीर्णशटित तन्त्वादिरचितत्वात्प्रागशुद्धं पश्चादपि मलमलिनत्वादशुद्धम् ॥ इति चतुर्थो भङ्गः ॥४॥

अथ दार्ष्टान्तिकसूत्रमाह —

"एवामेव" इत्यादि-एवमेव=वस्त्रवदेव, चत्वारि पुरुषजातानि, तथाहि-शुद्धः=जात्यादिना, स एव पुनः शुद्धो=निर्मलज्ञानादिगुणतया, यद्वा-जातिकाला-

---

प्रथम भंग में लिया गया है। जो वस्त्र पहले शुद्ध था, पश्चात् वही वस्त्र मैल आदि के सम्पर्क से अशुद्ध मलिन हो गया हो ऐसा वह वस्त्र द्वितीय भंग में लिया गया है। "अशुद्ध शुद्ध" इस तृतीय भंग में वह वस्त्र लिया गया है जो पहले मलिन हो और बाद में शुद्ध साफ हो गया हो। "अशुद्ध अशुद्ध" इस चतुर्थ भंग में वह वस्त्र गृहीत हुवा है जो जीर्ण शीर्ण तन्तु आदिकों से बनाने के कारण पहले भी अशुद्ध हो, और पीछे भी मैल आदि से मलिन हो गया हो इस प्रकारकी यह चतुर्भङ्गी वस्त्रकी शुद्धता और अशुद्धताको लेकर प्रगट की गई है।

तो जिस प्रकार से चतुर्भङ्गी वस्त्रों में योजित की गई है, उसी प्रकार से यही चतुर्भङ्गी पुरुष के साथ भी घटित की गई है, अर्थात्-

---

મૂકી શકાય છે અથવા જે વસ્ત્ર પહેલા શુદ્ધ હતું અને હાલમા પણ શુદ્ધ છે, એવાં વસ્ત્રને શુદ્ધ શુદ્ધ કહે છે (૨) "શુદ્ધ અશુદ્ધ" જે વસ્ત્ર પહેલાં શુદ્ધ હતુ, પણ પછી મેલ આદિના સંપર્કથી અશુદ્ધ થયેલું હોય છે, એવા વસ્ત્રને આ બીજા ભાંગામા મૂકી શકાય છે. (૩) "અશુદ્ધ શુદ્ધ" જે વસ્ત્ર પહેલાં મલિન હોય, પણ ત્યારબાદ શુદ્ધ (નિર્મળ) થઈ ગયુ હોય, એવા વસ્ત્રને આ ત્રીજા ભાગામાં મૂકી શકાય છે (૪) "અશુદ્ધ અશુદ્ધ" જે વસ્ત્ર જીર્ણ શીર્ણ તન્તુ આદિકોમાથી બનાવેલુ હોવાને કારણે પહેલાં પણ અશુદ્ધ હોય અને ત્યારબાદ મેલ આદિના સંપર્કને લીધે અધિક અશુદ્ધ બનેલુ હોય, એવા વસ્ત્રને આ ચોથા ભાંગાના દૃષ્ટાન્ત રૂપે ગણાવી શકાય છે. આ પ્રકારની આ ચતુર્ભંગી (ચાર ભાંગા) વસ્ત્રની શુદ્ધતા અને અશુદ્ધતાની અપેક્ષાએ પ્રકટ કરવામાં આવી છે

જે રીતે વસ્ત્રોની સાથે આ ચતુર્ભંગીને યોજિત કરવામાં આવી છે, એ જ પ્રમાણે પુરુષોની સાથે પણ આ ચતુર્ભંગીને યોજિત કરીને ચાર પ્રકારના પુરુષોનું હવે પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે—

पेक्षया दूषणरहित १। भवन्निष्टाश्रयी महा पक्षम्-शुद्धो नामैकोऽशुद्धः २, अशुद्धो नामैकः शुद्ध ३ अशुद्धो नामैकोऽशुद्धः ४। इति चतुर्भङ्गी ॥

"एवम्" इत्यादि-एवम्=अनेन प्रकारेण, अर्थात् यथा शुद्धशब्दानन्तर शुद्धपद पठित्वा चतुर्भङ्गानि दार्ष्टान्तिकरहितानि दृष्टान्तभूतवस्त्राणि कृतानि तथा शुद्धपदपूर्वपदे परिणतपदे रूपपदे च, वस्त्राणि चतुर्भङ्गानि सप्रतिपक्षाणि=दार्ष्टान्तिकसहितानि कार्याणि, तथाहि –

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुद्ध नामैक शुद्ध परिणतम् १, शुद्धं नामैकमशुद्धपरिणतम् २, अशुद्ध नामैक शुद्धपरिणतम् ३, अशुद्ध नामैकमशुद्धपरिणतम् ४॥ इति दृष्टान्तसूत्रचतुर्भङ्गी ॥

एवं दार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रचतुर्भङ्गी । तथाहि —

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–शुद्धो नामैकः शुद्धपरिणतः

पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं शुद्ध शुद्ध १ शुद्ध अशुद्ध २ अशुद्ध शुद्ध ३ अशुद्ध अशुद्ध ४ इस पुरुष की चतुर्भङ्गी में प्रथम भङ्गवाले वे पुरुष गृहीत हुये हैं जो पहले भी जात्यादि से शुद्ध होते हैं और निर्मल ज्ञानादि गुणवाले होते है। अथवा जाति कुल की अपेक्षा से दूषण रहित होते हैं। १ द्वितीयभङ्ग वे पुरुष गृहीत हुये हैं जो जात्यादिक से शुद्ध होकर बाद में किसी निमित्त से अशुद्ध खोटी आदतवाले हो जाते हैं-२ तृतीय भङ्ग में वे पुरुष लिये गये हैं, जो जात्यादि से अशुद्ध होकर भी निमित्त मिलने पर शुद्ध ज्ञानादि से सम्पन्न हो जाते हैं, ३। चतुर्थभङ्ग में वे पुरुष गृहीत हुये हैं जो जात्यादिक से अशुद्ध होकर

પુરુષોના ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે-(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ

પહેલા ભાંગાનું સ્પષ્ટીકરણ—જે પુરુષો જાતિ આદિની અપેક્ષાએ પહેલાં પણ શુદ્ધ હોય છે અને ત્યારબાદ નિર્મળ જ્ઞાનાદિ ગુણો પણ જેમણે પ્રાપ્ત કર્યા હોય છે, તેમને 'શુદ્ધ શુદ્ધ' રૂપ પહેલા ભાંગામાં સમાવી શકાય છે. અથવા જે પુરુષો જાતિકુળની અપેક્ષાએ દૂષણ રહિત હોય છે, તેમને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે (૨) 'શુદ્ધ અશુદ્ધ' જે પુરુષો પહેલાં જાતિ આદિની અપેક્ષાએ શુદ્ધ હોય છે, પણ પાછળથી ખોટી આદતો, કુસંગ આદિને લીધે અશુદ્ધ થઈ જાય છે તેમનો બીજા પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ' જે પુરુષો જાતિ આદિની અપેક્ષાએ અશુદ્ધ હોવા છતાં પણ નિમિત્ત મળવાથી શુદ્ધ જ્ઞાનાદિથી સંપન્ન થઈ જાય છે, તેમને આ આ ત્રીજા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે (૪) 'અશુદ્ધ અશુદ્ધ' જે પુરુષો જાતિ

१, शुद्धो नामैकोऽशुद्धपरिणतः २, अशुद्धो नामैकः शुद्धपरिणतः ३, अशुद्धो नामैकोऽशुद्धपरिणतः ४॥

अथ दृष्टान्तवस्त्रसूत्रम्—

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–शुद्धं नामैकं शुद्धरूपम् १, शुद्धं नामैकमशुद्धरूपम् २, अशुद्धं नामैकं शुद्धरूपम् ३, अशुद्धं नामैकमशुद्धरूपम् ४।

अथ दार्ष्टान्तिकरूपघटितपुरुषजातसूत्रम्—

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा–शुद्धो नामैकः शुद्धरूपः १, शुद्धो नामैकोऽशुद्धरूपः २, अशुद्धो नामैकः शुद्धरूपः ३, अशुद्धो नामैकोऽशुद्धरूपः ४। इति चतुर्भङ्गी।

एषां परिणतरूपघटितदृष्टान्त–दार्ष्टान्तिकसूत्राणां व्याख्या प्राग्वद् बोध्या॥

भी अशुद्ध ही बने रहते हैं जीवन को शुद्ध नहीं बनाते हैं ४। शुद्ध शुद्धपरिणत आदि जो वस्त्र सम्बन्धी चतुर्भङ्गी कही गई है वह दार्ष्टान्तिक पुरुष में भी इस प्रकार से घटित करनी चाहिये। जैसे—शुद्ध शुद्धपरिणत १ शुद्ध अशुद्ध परिणत २ अशुद्ध शुद्ध परिणत ३ और अशुद्ध अशुद्ध परिणत ४। इसी प्रकार से दृष्टान्तभूत वस्त्र में शुद्धअशुद्ध पदके साथ रूप पदको योजित करके जो चतुर्भङ्गी बनाई गई है, वह दार्ष्टान्तिक पुरुषमें भी इसी प्रकार से घटित करनी चाहिये, जैसे—शुद्ध शुद्धरूप १, शुद्ध अशुद्धरूप २ अशुद्ध शुद्धरूप ३ और अशुद्ध अशुद्धरूप ४ परिणत और रूपघटित इन दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिकों की चतुर्भङ्गी की व्याख्या पहले ही समझ लेना चाहिये।

આદિની અપેક્ષાએ અશુદ્ધ હોય છે, અને જીવનને શુદ્ધ બનાવવાને પ્રયત્નશીલ થતા નથી, આ કારણે જેઓ કાયમ અશુદ્ધ જ રહે છે, તેમને આ ચોથા પ્રકારમા મૂકી શકાય છે.

વસ્ત્રને અનુલક્ષીને શુદ્ધ–અશુદ્ધ, આ પદો સાથે પરિણત પદને યોજવાથી નીચે પ્રમાણે ચાર ભાગા બને છે—(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ પરિણત, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ પરિણત, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ પરિણત અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ પરિણત.

દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષને અનુલક્ષીને પણ ચાર ભાંગાઓ ગ્રહણ કરવા જોઈએ. એ જ પ્રમાણે દૃષ્ટાન્તભૂત વસ્ત્રમા શુદ્ધ અશુદ્ધ પદની સાથે રૂપ પદને યોજીને જે ચાર ભાગાનુ કથન કરવામાં આવ્યુ છે, તે ચાર ભાગાનુ કથન દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષને અનુલક્ષીને પણ થવું જોઈએ જેમકે (૧) શુદ્ધ શુદ્ધ રૂપ, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ રૂપ, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ રૂપ અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ રૂપ.

પરિણત અને રૂપઘટિત આ દૃષ્ટાન્ત અને દાર્ષ્ટાન્તિકોની ચતુર્ભંગીની વ્યાખ્યા સૂત્ર બેમાં આપ્યા અનુસાર જ સમજી લેવી.

इत्थं मङ्गकरणाय रीतिं दर्शयितुमाह–"चत्तारि" इत्यादि। शुद्धः-बहिस्ताद् वचनादिना, शुद्धमनाः पुनरन्तः शुद्धः १, शुद्धो नामैकोऽशुद्धमनाः २, अशुद्धो नामैकः शुद्धमनाः ३, अशुद्धो नामैकोऽशुद्धमना ४। इति।

"एवं" इति-अनेन प्रकारेणेत्यर्थः, यथाद् यथा मनोघटित चतुर्भङ्गकः सूत्रमुक्तं, तथा, "सङ्कल्पः" इत्यादि-संकल्पपदादारभ्य पराक्रमपदपर्यन्त दृष्टान्तभूतवस्त्रसूत्रं विहाय पुरुषजातसूत्राणि षड् बोध्यानि ॥ तथाहि—

चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुद्धो नामैकः शुद्धसङ्कल्पः १, शुद्धो नामैकोऽशुद्धसङ्कल्पः २, अशुद्धो नामैकः शुद्धसंकल्पः ३, अशुद्धो नामैकोऽ शुद्धसङ्कल्पः ४। इति॥

अब भग करनेकी रीतिको दिखाने के निमित्त सूत्रकार कहते हैं—"चत्तारि" इत्यादि "शुद्ध शुद्धमना" जो व्यक्ति बाहर में वचन आदि से शुद्ध हो और अन्तरङ्गमें भी शुद्ध हो वह-"शुद्धशुद्ध मनवाला" इस प्रथम भङ्ग में परिणत किया गया है १ आगे के तीन भङ्ग-"शुद्ध अशुद्धमना" २ अशुद्धशुद्धमनाः ३ और अशुद्ध अशुद्धमना ४ इस प्रकार से हैं। जिस प्रकार से यह मनोघटित चतुर्भङ्गवाला सूत्र कहा गया है उसी प्रकार से-"सङ्कल्प" पद से लेकर "पराक्रम" तक के पुरुष जात सूत्र भी दृष्टान्तभूत वस्त्र सूत्रको छोडकर कह लेना चाहिये, जैसे -पुरुष जात चार कहे गये हैं। शुद्धशुद्ध सङ्कल्पवाला १ शुद्ध अशुद्ध सङ्कल्प

હવે મન, આદિ પરાક્રમ પર્યન્તના સાત પદોને શુદ્ધ અશુદ્ધ પદો સાથે યોજીત કરીને જે સાત ચતુર્ભંગીઓ બને છે, તેનુ સૂત્રકાર સ્પષ્ટીકરણ કરે છે

શુદ્ધ અશુદ્ધ પદો સાથે મનને યોજિત કરવાથી નીચે પ્રમાણે ચાર ભાગા બને છે-(૧) 'શુદ્ધઃ શુદ્ધ મના' જે પુરુષ બહારથી વચન આદિની અપેક્ષાએ શુદ્ધ હોય, અને જેનું અંતઃકરણ પણ શુદ્ધ હોય તેને 'શુદ્ધ શુદ્ધ મનવાળો' કહે છે એવા પુરુષને આ પહેલા પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે

બીજો ભાંગો-શુદ્ધ અશુદ્ધ મનવાળા (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ મનવાળા અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ મનવાળા જેવી રીતે શુદ્ધ અશુદ્ધ પદને મન સાથે યોજિત કરીને ચાર ભાગાવાળુ આ સૂત્ર કહેવામાં આવ્યુ છે એ જ પ્રમાણે સંકલ્પથી લઈને પરાક્રમ સુધીના ઉપર્યુક્ત પદોને પણ શુદ્ધ અશુદ્ધ પદો સાથે યોજીને ચાર ચાર ભાગાવાળા બીજા છ સૂત્રો પણ પુરુષ જાતને અનુલક્ષીને કહેવા જોઈએ. દૃષ્ટાન્તભૂત વસ્ત્રમાં મન આદિ સાતે વસ્તુનો અભાવ હોવાથી તેને અનુલક્ષીને અહીં સૂત્રો બની શકતા નથી એમ સમજવું

एवं शुद्धो नामैकः शुद्धप्रज्ञ १, शुद्धो नामैकोऽशुद्धप्रज्ञः २, अशुद्धो नामैकः शुद्धप्रज्ञः ३, अशुद्धो नामैकोऽशुद्धप्रज्ञः ४ इति ।

एव शुद्धो नामैकः शुद्धदृष्टिः१, शुद्धो नामैकोऽशुद्धदृष्टिः२, अशुद्धो नामैकः शुद्धदृष्टिः ३, अशुद्धो नामैकोऽशुद्धदृष्टिः ४ । इति ॥

एवं शुद्धो नामैकः शुद्धशीलाऽऽचारः १, शुद्धो नामैकोऽशुद्धशीलाऽऽचारः२, अशुद्धो नामैकः शुद्धशीलाऽऽचारः ३, अशुद्धो ना कोऽशुद्धशीलाऽऽचारः ४ इति॥

एवं शुद्धो नामैकः शुद्धव्यवहारः१, शुद्धो नामैकोऽशुद्ध व्यवहारः २, अशुद्धो नामैकः शुद्धव्यवहार ३, अशुद्धो नामैकोऽशुद्धव्यवहारः ४ । इति ।

वाला २ अशुद्धशुद्ध सङ्कल्पवाला ३ और अशुद्ध अशुद्ध सङ्कल्पवाला ४ इसी प्रकार से शुद्ध शुद्ध प्रज्ञावाला १, शुद्ध अशुद्धप्रज्ञावाला २ अशुद्ध शुद्ध प्रज्ञावाला ३ और अशुद्ध शुद्ध प्रज्ञावाला ४ शुद्ध-शुद्ध दृष्टिवाला १ शुद्ध अशुद्ध द्रष्टिवाला २ अशुद्ध अशुद्ध द्रष्टिवाला ३ और अशुद्ध अशुद्धद्रष्टिवाला ४ । शुद्ध शुद्धशीलाचारवाला १ शुद्ध अशुद्ध शीलाचारवाला २ अशुद्ध शुद्ध शीलाचारवाला ३ और अशुद्ध अशुद्ध शीलाचारवाला ३ शुद्ध शुद्ध व्यवहारवाला १ शुद्ध अशुद्ध व्यवहारवाला २ अशुद्ध शुद्ध व्यवहारवाला३ अशुद्धअशुद्ध व्यवहारवाला४ इसी प्रकार से शुद्ध शुद्ध पराक्रमवाला १ शुद्ध अशुद्ध पराक्रमवाला २ अशुद्ध शुद्ध

સંકલ્પ સાથે શુદ્ધ અશુદ્ધ પદને યોજવાથી નીચે પ્રમાણે પુરુષજાત વિષયક ચાર ભાંગાવાળુ સૂત્ર બનશે-(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ સ કલ્પવાળા, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ સંકલ્પવાળા, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ સંકલ્પવાળા અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ સંકલ્પવાળા. પ્રજ્ઞા પદને યોજવાથી આ ચાર ભાંગા બને છે-'(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ પ્રજ્ઞાવાળા, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ પ્રજ્ઞાવાળા, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ પ્રજ્ઞાવાળા અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ પ્રજ્ઞ વાળા દષ્ટિ પદને યોજવાથી આ ચાર ભાગા બને છે-(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ દષ્ટિવાળો, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ દૃષ્ટિવાળો, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ દષ્ટિવાળો અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ દષ્ટિવાળો શીલાચાર પદ યોજવાથી આ ચાર ભાંગા બને છે-(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ શીલાચારવાળો, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ શીલા ચારવાળો, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ શીલાચારવાળો અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ શીલા-ચારવાળો વ્યવહાર પદ યોજવાથી આ પ્રમાણે ચાર ભાંગા બને છે-(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ વ્યવહારવાળો, (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ વ્યવહારવાળો, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ વ્યવ-હારવાળો અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ વ્યવહારવાળો. પરાક્રમ પદની સાથે આ

एवं शुद्धो नामैकः शुद्धपराक्रमः १, शुद्धो नामैकोऽशुद्धपराक्रम २, अशुद्धो नामैकः शुद्धपराक्रम ३ अशुद्धो नामैकोऽशुद्धपराक्रमः ४।

एषु भङ्गेषु मनस आरभ्य पराक्रमान्तपुरुषधर्माणां वस्त्रेऽभावाद् दृष्टान्तभूत वस्त्रसूत्रभङ्गा न घटन्ते। अत-एव-" एव " मिति प्रोक्तम् ॥ सू० ४ ॥

पुरुषभेदाधिकार एवेदमाह—

मूलम्—चत्तारि सुया पण्णत्ता, त जहा-अइजाए अणु जाए अवजाए कुलिंगाले १। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा-सच्चे नाम एगे सच्चे १, सच्चे नाम एगे असच्चे चउ भगो ४।२॥ एव परिणए जाव परक्कमे११॥ चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा-सुई नाम एगे सुइ, सुई नाम एगे असुई चउभगो ४।१२॥ एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता-त जहा सुई णाम एगे सुइ चउभगो। एव जहेव सुद्धेणं वत्थेणं भणियं तहेव सुइणावि, जाव परक्कमे २६। चत्तारि कोरवा पण्णत्ता, त जहा अवपलव कोरए १, तालपलवकोरए २, वल्लिपलवकोरए ३, मेंढविसाणकोरए ४। २७ ॥ एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा अबपलवकोरवसमाणे १, तालपलवकोरवस माणे २, वल्लिपलवकोरवसमाणे ३, मेंढविसाणपलवकोरव समाणे ४।२८॥ सू० ५ ॥

पराक्रमवाला ३ अशुद्ध अशुद्ध पराक्रमवाला ४ इस मनसे लेकर परा क्रम तकके पुरुष चतुर्भङ्गी में जो वस्त्र दृष्टान्त को लागू नहीं किया गया है उसका कारण ऐसा है कि-वस्त्र में इस पुरुषधर्मोंका अभाव है। इसी लिये-" एवं " ऐसा कहा गया है ॥ सू०४॥

પ્રમાણે ચાર ભાંગા બને છે-(૧) શુદ્ધ શુદ્ધ પરાક્રમવાળો. (૨) શુદ્ધ અશુદ્ધ પરાક્રમવાળો, (૩) અશુદ્ધ શુદ્ધ પરાક્રમવાળો અને (૪) અશુદ્ધ અશુદ્ધ પરાક્રમવાળો આ મનથી લઈને પરાક્રમ પર્યન્તની ચતુર્ભંગી પુરુષ જાતને જ લાગુ પાડી શકાય છે વસ્ત્રને લાગુ પાડી નથી કારણ કે વસ્ત્રમાં આ પુરુષ ધર્મોનો અભાવ હોય છે એજ વાત સૂત્રકારે " एवं " ઇત્યાદિ કથન દ્વારા સ્પષ્ટ કરી છે ॥ સૂ ૪ ॥

छाया-चत्वारः सुताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अतिजातः (अतियातः)१, अनुजातः (अनुयातः) अपजातः३, कुलाङ्गारः ४ । १ । चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-सत्यो नामैकः सत्य १, सत्यो नामैकोऽसत्यः २, चतुर्भङ्गी २ । एवं परिणतो यावत् पराक्रमः ॥ ११ ॥ चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुचि नामैकं शुचि १, शुचि नामैकमशुचि २, चतुर्भङ्गी ४ ।१२। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुचिर्नामैकः शुचिः चतुर्भङ्गी ४ ।१३ । एवं यथैव शुद्धेन वस्त्रेण भणितं तथैव शुचिनाऽपि यावत् पराक्रमः ॥२६॥ चत्वारः कोरकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-आम्रप्रलम्बकोरकः१, तालप्रलम्बकोरकः२, वल्लीप्रलम्बकोरकः३ मेण्ढविषाणकोरकः ४ । २७। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आम्रप्रलम्बकोरकसमानः १, तालप्रलम्बकोरकसमानः २, वल्लीप्रलम्बकोरकसमानः ३, मेण्ढविषाणप्रलम्बकोरकसमानः । ४ ॥ २८ ॥

पुरुष भेदाधिकारमें ही सूत्रकारने यह कहा है ।

" चत्तारि सुया पण्णत्ता " इत्यादि ५

सूत्रार्थ-पुत्र चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-अभिजात १ (अतियात) अनुयात २ (अनुयात) अपजात ३ और कुलाङ्गार ४ चार पुरुषजात कहे गहे गये हैं, जैसे-सत्यसत्य १ सत्य असत्य २ असत्य सत्य ३ असत्य असत्य ४। वस्त्र चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-शुचि शुचि१ शुचि अशुचि २ अशुचि शुचि३ और अशुचि अशुचि ४ ।

इसी प्रकारसे पुरुष भी चार कहे गये हैं, जैसे-शुचि शुचि आदि। जैसे शुद्ध वस्त्रसे कहा गया है । उसी प्रकार से शुचि से भी कह लेना चाहिये, और पराक्रम तक कहना चाहिये ।

भात्र पुरुषोना प्रकारो બતાવવા નિમિત્તે જ આ પાચમુ સૂત્ર કહે છે—

" चत्तारि सुया पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-પુત્રના ચાર પ્રકારો કહ્યા છે—(૧) અભિજાત અથવા અતિયાત (૨) અનુજાત, (૩) અપજાત અને (૪) કુલાંગાર. પુરુષો ચાર પ્રકારના કહ્યા છે (૧) સત્ય સત્ય, (૨) સત્ય અસત્ય, (૩) અસત્ય સત્ય અને (૪) અસત્ય અસત્ય વસ્ત્ર ચાર પ્રકારના કહ્યા છે-(૧) શુચિ શુચિ, (૨) શુચિ અશુચિ, (૩) અશુચિ શુચિ અને (૪) અશુચિ અશુચિ એ જ પ્રમાણે પુરુષોના પણ ' શુચિ શુચિ ' આદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે જે રીતે શુદ્ધ વસ્ત્રનુ કથન પહેલાના સૂત્રમા કરવામા આવ્યુ છે, એવુ જ કથન ' શુચિ-અશુચિ 'ની અપેક્ષાએ થવું જોઈએ પુરુષ જાતમાં શુચિ અશુચિ સાથે મનથી લઈને પરાક્રમ પર્યન્તના સાત પદોને યોજીને ચાર ભાગાવાળા સાત સૂત્રનું કથન થવુ જોઈએ

एवं शुद्धो नामैकः शुद्धपराक्रमः १, शुद्धो नामैकोऽशुद्धपराक्रम २, अशुद्धो नामैकः शुद्धपराक्रम ३ अशुद्धो नामैकोऽशुद्धपराक्रम ४।

एषु मङ्गेषु मनस आरभ्य पराक्रमान्तपुरुषधर्माणां वस्त्रेऽभावात् दृष्टान्तभूत वस्त्रसूत्रभङ्गा न घटन्ते। अत-एव-" एवं " मिति प्रोक्तम् ॥ सू० ४ ॥

पुरुषभेदाधिकार एवेदमाह—

मूलम्—चत्तारि सुया पण्णत्ता, त जहा—अइजाए अणु जाए अवजाए कुलिंगाले १। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा-सच्चे नाम एगे सच्चे १, सच्चे नाम एगे असच्चे चउ भगो ४ ।२ ॥ एव परिणए जाव परक्कमे११॥ चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा-सुई नाम एगे सुइ, सुई नाम एगे असुई चउभगो ४। १२॥ एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता-त जहा सुई णाम एगे सुइ चउभगो। एव जहेव सुद्धेणं वत्थेणं भणियं तहेव सुइणावि, जाव परक्कमे २६। चत्तारि कोरवा पण्णत्ता, त जहा -अबपलब कोरए १, तालपलबकोरए २, वल्लिपलबकोरए ३, मेंढविसाणकोरए ४। २७ ॥ एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा अबपलबकोरवसमाणे १, तालपलबकोरवस माणे २, वल्लिपलबकोरवसमाणे ३, मेंढविसाणपलबकोरव समाणे ४। २८ ॥ सू० ५ ॥

पराक्रमवाला ३ अशुद्ध अशुद्ध पराक्रमवाला ४ इन मनसे लेकर परा क्रम तकके पुरुष चतुर्भङ्गी में जो वस्त्र दृष्टान्त को लागू नहीं किया गया है उसका कारण ऐसा है कि-वस्त्र में इस पुरुषधर्मों का अभाव है। इसी लिये-" एवं " ऐसा कहा गया है ॥ सू०४ ॥

प्रभावे यार सांजा अने छे-(१) शुद्ध शुद्ध पराक्रमवाणो (२) शुद्ध अशुद्ध पराक्रमवाणो (३) अशुद्ध शुद्ध पराक्रमवाणो अने (४) अशुद्ध अशुद्ध पर ाक्रमवाणो आ मनथी लईने पराक्रम पर्यन्तनी चतुर्भंगी पुरुष जातने ज लागु पाडी शकाय छे वस्त्रने लागु पडती नथी कारण के वस्त्रमां आ पुरुष धर्मोनो अभाव होय छे एज वात सूत्रकारे "एवं" इत्यादि कथन द्वारा स्पष्ट करी छे ॥ सू ४ ॥

छाया-चत्वारः सुताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अतिजातः (अतियातः)१, अनुजातः (अनुयातः) अपजातः३, कुलाङ्गारः ४ । १ । चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-सत्यो नामैकः सत्यः १, सत्यो नामैकोऽसत्यः २, चतुर्भङ्गी २ । एव परिणतो यावत् पराक्रमः ॥ ११ ॥ चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुचि नामैकं शुचि १, शुचि नामैकमशुचि २, चतुर्भङ्गी ४ ।१२। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुचिर्नामैकः शुचिः चतुर्भङ्गी ४ ।१३ । एवं यथैव शुद्धेन वस्त्रेण भणितं तथैव शुचिनाऽपि यावत् पराक्रमः ॥२६॥ चत्वारः कोरकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-आम्रप्रलम्बकोरकः१, तालप्रलम्बकोरकः२, वल्लीप्रलम्बकोरकः३ मेण्ढविषाणकोरकः ४ । २७। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आम्रप्रलम्बकोरकसमानः १, तालप्रलम्बकोरकसमानः २, वल्लीप्रलम्बकोरकसमानः ३, मेण्ढविषाणप्रलम्बकोरकसमानः । ४ ॥ २८ ॥

पुरुष भेदाधिकारमें ही सूत्रकारने यह कहा है ।

" चत्तारि सुया पण्णत्ता " इत्यादि ५

सूत्रार्थ-पुत्र चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-अभिजात १ (अतियात) अनुयात २ (अनुयात) अपजात ३ और कुलाङ्गार ४ चार पुरुषजात कहे गहे गये हैं, जैसे-सत्यसत्य १ सत्य असत्य २ असत्य सत्य ३ असत्य असत्य ४। वस्त्र चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-शुचि शुचि१ शुचि अशुचि २ अशुचि शुचि३ और अशुचि अशुचि ४ ।

इसी प्रकारसे पुरुष भी चार कहे गये हैं, जैसे-शुचि शुचि आदि। जैसे शुद्ध वस्त्रसे कहा गया है । उसी प्रकार से शुचि से भी कह लेना चाहिये, और पराक्रम तक कहना चाहिये ।

માત્ર પુરુષોના પ્રકારો બતાવવા નિમિત્તે જ આ પાચમુ સૂત્ર કહે છે—

" चत्तारि सुया पण्णत्ता " ઈત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-પુત્રના ચાર પ્રકારો કહ્યા છે—(૧) અભિજાત અથવા અતિયાત (૨) અનુજાત, (૩) અપજાત અને (૪) કુલાંગાર પુરુષો ચાર પ્રકારના કહ્યા છે (૧) સત્ય સત્ય, (૨) સત્ય અસત્ય, (૩) અસત્ય સત્ય અને (૪) અસત્ય અસત્ય

વસ્ત્ર ચાર પ્રકારના કહ્યા છે-(૧) શુચિ શુચિ, (૨) શુચિ અશુચિ, (૩) અશુચિ શુચિ અને (૪) અશુચિ અશુચિ. એ જ પ્રમાણે પુરુષોના પણ 'શુચિ શુચિ' આદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે. જે રીતે શુદ્ધ વસ્ત્રનુ કથન પહેલાના સૂત્રમાં કરવામાં આવ્યું છે, એવુ જ કથન 'શુચિ-અશુચિ'ની અપેક્ષાએ થવું જોઇએ પુરુષ જાતમાં શુચિ અશુચિ સાથે મનથી લઇને પરાક્રમ પર્યન્તના સાત પદોને યોજીને ચાર ભાંગાવાળા સાત સૂત્રનુ કથન થવું જોઇએ.

टीका—" चत्तारि सुया " इत्यादि–चत्वार =चतुःसंख्यकाः, सुताः=पुत्राः, प्रज्ञप्ता , तद्यथा–अतिजा (या)त –अति–पितृसम्पदमतिक्रम्य जातः–सञ्जातोऽति जात', यद्वा–पितृसम्पदमुल्लङ्घ्य यात' प्राप्तो विशिष्टतरसम्पदमित्यतियातो ऽतिशयपितसमृद्धिक इत्यर्थः १, ऋषभवत् १ ।

अनुजा (या)त'-अनु=पितुरनुरूपस्तुल्यो जातोऽनुजात , यद्वा– अनुयात ' अनुगतः=पितृविभूत्याऽनुयात इति, पितृतुल्य इत्यर्थः , महायशोवत् , आदित्ययशसा स्वपित्रा सदृशत्वान्महायशस २ ।

अपजात –अप–पितृसम्पदोऽपसदो हीनो जातोऽपजात' पित्रपेक्षया किञ्चि द्धीनगुण इत्यर्थः , आदित्ययशोवत् , भरतापेक्षया तस्यापहीनगुणत्वात् ३ ।

कुलाङ्गार –अङ्गारपदमङ्गारसदृशपरम् , तेन कुलस्य=वंशस्याङ्गार इव कुलाङ्गारः दुराचरणेन कुलदूषकत्वात् परिपीडकत्वाद्वा कुलाङ्गारायमाणः कण्डरीकवत् । ४ ।

कोरक चार कहे गये हैं, जैसे–आम्र प्रलम्ब कोरक ताल प्रलम्ब कोरक २ वल्ली प्रलम्ब कोरक३ मेण्ढ विषाणप्रलम्ब कोरक समान ४।

इस सूत्र का भावार्थ इस प्रकार से है–पुत्र जो चार प्रकार के कहे गये हैं उनमें प्रथम प्रकार का पुत्र यह है जो पिता की संपत्ति से भी अधिक सपत्तिवाला हो जाता है, जैसे भगवान् ऋषभदेव १ द्वितीय प्रकार का पुत्र यह है जो कि पिता का ही अनुरूप होता है अथवा पिता के जैसी विभूति सम्पत्तिवाला होता है जैसे महायश ये अपने पिता आदित्ययश के समान थे २ तृतीय प्रकार का पुत्र वह है जो पिता की अपेक्षा सम्पत्ति में हीन होता है अर्थात् पिता की अपेक्षा गुणों में कुछ कम होता है जैसे–आदित्ययश ये भरत की अपेक्षा गुणों में हीन थे ३ चतुर्थ प्रकार का यह पुत्र है जो अपने दुराचारों से कुल का दूषक

કોરક ચાર કહ્યા છે–(૧) આમ્રપ્રલમ્બ કોરક, (૨) તાલપ્રલમ્બ કોરક, વલ્લીપ્રલમ્બ કોરક અને મેંઢ વિષાણ પ્રલમ્બ કોરક.

હવે આ સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે–(૧) અભિજાત (અથવા અતિજાત) પુત્ર તેને કહે છે કે જે પિતા કરતાં પણ વધારે સંપત્તિવાળો હોય છે જેમકે ભગવાન ઋષભદેવ. (૨) અનુજાત પુત્ર તેને કહે છે કે જે પિતાના જેટલી જ વિભૂતિ (સંપત્તિ) વાળો હોય છે જેમકે મહાયશ. તે તેના પિતા આદિત્યયશના જેટલી જ વિભૂતિવાળો હતો. " અપજાત પુત્ર " અપજાત પુત્ર તેને કહે છે કે જે પિતા કરતાં ન્યૂન સંપત્તિવાળો હોય અથવા પિતા કરતાં ગુણોમાં હીન હોય જેમકે આદિત્યયશ તે તેના પિતા ભરત કરતાં ગુણોની અપેક્ષાએ હીન હતો. (૪) કુલાંગાર પુત્ર તેને કહે છે કે જે પોતાના અનાચારોથી

एवं शिष्योऽपि चतुर्विधो बोध्यः, सुतशब्दस्य शिष्यपरताया अपि प्रदर्शनात्। तत्रातिजातः-सिंहगिर्यपेक्षया वज्रस्वामिवत्। अनुजातः-शय्यम्भवापेक्षया यशोभद्रवत्, अपजातो-जम्बूस्वाम्यपेक्षया प्रभवस्वामिवत्, कुलाङ्गारः-कुलवालुकवद् अथवोदायिनृपमारकवदिति। १।

हो जाता है पर को पीडा देनेवाला होता है, जैसे-कण्डरीक। यहां अङ्गारपद अंगार सदृश का बोधक है। जिस तरह पुत्रों में चतुर्विधता प्रगट की गई है उसी प्रकार शिष्य में भी चतुर्विधता होती है सुत शब्द शिष्य अर्थ का भी बोधक होता है। जो शिष्य अपने गुरु की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हो जाता है वह अतिजात शिष्य है, जैसे सिंहगिरी की अपेक्षा वज्र स्वामी। जो शिष्य अपने गुरु के जैसा ही गुणी होता है वह शिष्य अनुजात शिष्य है, जैसे शय्यंभव का यशोभद्र। जो शिष्यगुरु के गुणों से हीन गुणवाला होता है वह अपजात शिष्य है, जैसे जम्बूस्वामी की अपेक्षा प्रभवस्वामी। जो शिष्य गुरु का दूषक होता है वह कुलांगार शिष्य है, जैसे कुलवालुक अथवा उदायन राजा को मारनेवाला १

"चत्तारि पुरिसजाया"

सत्य सत्य आदि के भेद से चार पुरुषजात जो कहे गये हैं उनका

કુળને કલંક લગાડે છે, પરને પીડાકારી હોય છે. જેમકે કંડરીક અહીં "અગાર" પદ "અંગાર સમાનનું" બોધક છે.

અહીં જે પ્રકારે પુત્રમા ચતુર્વિધતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે, એ જ પ્રકારે શિષ્યોમાં પણ ચતુર્વિધતા સમજવી, કારણ કે 'સુત' શબ્દ શિષ્યના અર્થનો પણ બોધક છે. (૧) જે શિષ્ય પોતાના ગુરુ કરતાં પણ અધિક પ્રભાવશાળી હોય છે તેને અતિજાત શિષ્ય કહે છે. જેમકે સિંહાગિરિ કરતાં વજ્રસ્વામી વધારે પ્રભાવશાળી હતા. (૨) જે શિષ્ય પોતાના ગુરુ સમાન ગુણી હોય છે તેને અનુજાત શિષ્ય કહે છે. જેમકે શય્યંભવનો શિષ્ય પ્રભવસ્વામી.

(૩) જે શિષ્ય ગુરુ કરતાં હીન ગુણોવાળો હોય છે તેને અપજાત શિષ્ય કહે છે, જેમકે જંબૂસ્વામી કરતાં પ્રભવસ્વામી હીન ગુણોવાળા હતા (૪) જે શિષ્ય ગુરુનો દૂષક હોય છે તેને કુલાંગાર શિષ્ય કહે છે. જેમકે કુલવાલુક અથવા ઉદાયન રાજાને મારનારો

"ચત્તારિ પુરિસજાયા" ઇત્યાદિ—

પુરુષોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે-(૧) "સત્ય સત્ય"

टीका—" चत्तारि सुया " इत्यादि–चत्वार =चतुःसंख्यकाः, सुताः=पुत्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अतिजा (या)तः–अति–पितृसम्पदमतिक्रम्य जातः–समृद्धोऽति जातः, यद्वा–पितृसम्पदमुल्लङ्घ्य यातः प्राप्तो विशिष्टतरसम्पदमित्यतियातो ऽतिशयितसमृद्धिक इत्यर्थः १, ऋषभवत् १।

अनुजा (या)त'-अनु=पितुरनुरूपस्तुल्यो जातोऽनुजातः, यद्वा–अनुयात' अनुगतः=पितृविभूत्याऽनुयात इति, पितृतुल्य इत्यर्थं, महायशोवत्, आदित्ययशसः स्वपिता सदृशत्वान्महायशसः २।

अपजात –अप–पितृसम्पदोऽपसदो हीनो जातोऽपजातः पित्रपेक्षया किञ्चिद्धीनगुण इत्यर्थ, आदित्ययशोवत्, भरतापेक्षया तस्यपक्षीनगुणत्वात् ३।

कुलाङ्गारः–अङ्गारपदमङ्गारसदृशपरम्, तेन कुलस्य=वंशस्याङ्गार इव कुलाङ्गारः दुराचरणेन कुलदूषकत्वात् परिपीडकत्वाद्वा कुलाङ्गारायमाणः, कण्डरीकवत्। ४।

कोरक चार कहे गये हैं, जैसे–आम्र प्रलम्ब कोरक ताल प्रलम्ब कोरक २ वल्ली प्रलम्ब कोरक३ मेण्ढ विषाणप्रलम्ब कोरक समान ४।

इस सूत्र का भावार्थ इस प्रकार से है–पुत्र जो चार प्रकार के कहे गये हैं उनमें प्रथम प्रकार का पुत्र वह है जो पिता की संपत्ति से भी अधिक सपत्तिवाला हो जाता है, जैसे भगवान् ऋषभदेव १ द्वितीय प्रकार का पुत्र वह है जो कि पिता का ही अनुरूप होता है अथवा पिता के जैसी विभूति सम्पत्तिवाला होता है जैसे महायश ये अपने पिता आदित्ययश के समान थे २ तृतीय प्रकार का पुत्र वह है जो पिता की अपेक्षा सम्पत्ति में हीन होता है अर्थात् पिता की अपेक्षा गुणों में कुछ कम होता है जैसे–आदित्ययश ये भरत की अपेक्षा गुणों में हीन थे ३ चतुर्थ प्रकार का वह पुत्र है जो अपने दुराचारों से कुल का दूषक

કોરક ચાર કહ્યાં છે–(૧) આમ્રપ્રલમ્બ કોરક (૨) તાલપ્રલમ્બ કોરક, વલ્લીપ્રલમ્બ કોરક અને મેંઢ વિષાણ પ્રલમ્બ કોરક

હવે આ સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે–(૧) અતિજાત (અથવા અતિયાત) પુત્ર તેને કહે છે કે જે પિતા કરતાં પણ વધારે સંપત્તિવાળો હોય છે જેમકે ભગવાન ઋષભદેવ. (૨) અનુજાત પુત્ર તેને કહે છે કે જે પિતાના જેટલી જ વિભૂતિ (સંપત્તિ) વાળો હોય છે જેમકે મહાયશ. તે તેના પિતા આદિત્યયશના જેટલી જ વિભૂતિવાળો હતો. " અપજાત પુત્ર " અપજાત પુત્ર તેને કહે છે કે જે પિતા કરતાં ન્યૂન સંપત્તિવાળો હોય અથવા પિતા કરતાં ગુણોમાં હીન હોય જેમકે આદિત્ય યશ તે તેના પિતા ભરત કરતાં ગુણોની અપેક્ષાએ હીન હતો. (૪) કુલાંગાર પુત્ર તેને કહે છે કે જે પોતાના અનાચારોથી

एवं शिष्योऽपि चतुर्विधो बोध्यः, सुतशब्दस्य शिष्यपरताया अपि प्रदर्शनात् । तत्रातिजातः-सिंहगिर्यपेक्षया वज्रस्वामिवत् । अनुजातः-शय्यम्भवापेक्षया यशोभद्रवत्, अपजातो-जम्बूस्वाम्यपेक्षया प्रभवस्वामिवत्, कुलाङ्गारः-कुलवालुकवद् अथवोदायिनृपमारकवदिति । १ ।

हो जाता है पर को पीडा देनेवाला होता है, जैसे-कण्डरीक। यहां अङ्गारपद अंगार सदृश का बोधक है। जिस तरह पुत्रों में चतुर्विधता प्रगट की गई है उसी प्रकार शिष्य में भी चतुर्विधता होती है सुत शब्द शिष्य अर्थ का भी बोधक होता है। जो शिष्य अपने गुरु की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हो जाता है वह अनिजात शिष्य है, जैसे सिंहगिरी की अपेक्षा वज्र स्वामी। जो शिष्य अपने गुरु के जैसा ही गुणी होता है वह शिष्य अनुजात शिष्य है, जैसे शय्यंभव का यशोभद्र। जो शिष्यगुरु के गुणों से हीन गुणवाला होता है वह अपजात शिष्य है, जैसे जम्बूस्वामी की अपेक्षा प्रभवस्वामी। जो शिष्य गुरु का दूषक होता है वह कुलांगार शिष्य है, जैसे कुलवालुक अथवा उदायन राजा को मारनेवाला १

"चत्तारि पुरिसजाया"

सत्य सत्य आदि के भेद से चार पुरुषजात जो कहे गये हैं उनका

કુળને કલંક લગાડે છે, પરને પીડાકારી હોય છે. જેમકે કંડરીક અહીં "અંગાર" પદ "અંગાર સમાનનું" બોધક છે.

અહીં જે પ્રકારે પુત્રમા ચતુર્વિધતા પ્રકટ કરવામા આવી છે, એ જ પ્રકારે શિષ્યોમાં પણ ચતુર્વિધતા સમજવી, કારણ કે 'સુત' શબ્દ શિષ્યના અર્થનો પણ બોધક છે. (૧) જે શિષ્ય પોતાના ગુરુ કરતાં પણ અધિક પ્રભાવશાળી હોય છે તેને અતિજાત શિષ્ય કહે છે. જેમકે સિંહાગિરિ કરતાં વજ્રસ્વામી વધારે પ્રભાવશાળી હતા. (૨) જે શિષ્ય પોતાના ગુરુ સમાન ગુણી હોય છે તેને અનુજાત શિષ્ય કહે છે. જેમકે શય્યંભવનો શિષ્ય પ્રભવસ્વામી.

(૩) જે શિષ્ય ગુરુ કરતાં હીન ગુણોવાળો હોય છે તેને અપજાત શિષ્ય કહે છે, જેમકે જમ્બૂસ્વામી કરતાં પ્રભવસ્વામી હીન ગુણોવાળા હતા. (૪) જે શિષ્ય ગુરુનો દૂષક હોય છે તેને કુલાગાર શિષ્ય કહે છે. જેમકે કુલવાલુક અથવા ઉદાયન રાજાને મારનારો

"चत्तारि पुरिसजाया" ઇત્યાદિ—

પુરુષોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે-(૧) "સત્ય સત્ય"

" चत्तारि पुरिसजाया " इत्यादि–चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा सत्य =यथावस्थितवस्तुपरिकथनात् प्रतिज्ञातानुसारेण कर्तृत्वाच्च सत्य पुरुष, स एव पुनः सत्यः=सद्भ्यो हितः=संयमधारित्वेन जगन्मित्रभूत, यद्वा–पूर्वं सत्य आसीत् पश्चादपि सत्य एवेति । १ ।

'सत्यो नामैकोऽसत्य' " इति–पूर्वं सत्यः पश्चात्कालक्रमेणासत्योऽयथाव द्वस्तुपरिकथनात् प्रतिज्ञातप्रतिकूल्य प्रवर्तनाच्च २ । शेषौ भङ्गौ यथा — असत्यो नामैकः सत्यः ३, असत्यो नामैकोऽसत्यः ४ । इति चतुर्भङ्गी ।

अभिप्राय ऐसा है, जो पुरुष यथावस्थित वस्तु का कथन करनेवाला होता है एव प्रतिज्ञात के अनुसार करनेवाला होता है, वह सत्य पुरुष कहा गया है, ऐसा वह पुरुष आगे चलकर सयम को धारण करके जगत का मित्र (भूत) बन जाता है तो वह सत्य सत्य इस प्रथम भग में परिगणित होता है। अथवा जो पहले भी सत्य हो और बाद में भी बना रहता हो, वह सत्य सत्य है। सत्य असत्य वह है जो पहले सत्य हो और बाद में कालक्रम से अयथा वस्तु के परिकथन से या प्रतिज्ञात अर्थ का उल्लंघन करने से असत्यरूप बना गया हो मिथ्याभाषी हो गया हो। यहाँ शेष दो भंग इस प्रकार से हैं–असत्य सत्य, और असत्य असत्य।

જે પુરુષ યથાવસ્થિત (જેવું હોય એવું જ) વસ્તુનું કથન કરનારો હોય છે અને પ્રતિજ્ઞા અનુસાર જ કરનારો હોય છે, એવા તે પુરુષને સત્ય પુરુષ કહ્યો છે એવો તે પુરુષ આગળ જતાં સંયમ ધારણ કરીને જગતના મિત્રરૂપ બની જાય છે એવા પુરુષને ' સત્ય સત્ય ' નામના પહેલા પ્રકારના પુરુષોમાં ગણાવી શકાય છે અથવા જે પહેલા પણ સત્યનો આરાધક હોય અને પાછળથી પણ સત્યનો આરાધક જ થાતુ રહે છે, તેને સત્ય સત્ય ' રૂપ પહેલા પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે (૨) સત્ય અસત્ય જે પુરુષ પહેલા સત્યનો પાલક હોય, પણ પાછળથી અયથાર્થ વસ્તુના પરિકથન દ્વારા અથવા પ્રતિજ્ઞાત અર્થનુ ઉલ્લંઘન કરવાને કારણે અસત્ય રૂપ બની ગયો હોય તેને સત્ય અસત્ય પુરુષ કહે છે બાકીના બે ભાંગા આ પ્રમાણે છે (૩) અસત્ય સત્ય અને (૪) અસત્ય અસત્ય. આ બન્નેનો ભાવાર્થ ઉપરના બે ભાંગાના ભાવાર્થને આધારે સમજી લેવો.

"एव" मित्यादि—एवम्-अनेन प्रकारेण, अर्थात् यथा सत्यासत्य घटित चतुर्भङ्गी कृता तथा, "परिणतः" परिणतपदादारभ्य पराक्रमपदपर्यन्तं योजयित्वा तत्तच्चतुर्भङ्गी कार्या । ११ ।

अथ दृष्टान्तभूतवस्त्रसूत्रम्—

"चत्तारि वत्था" इत्यादि— चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-"शुचि

जिस प्रकार से सत्यासत्य पद घटित यह चतुर्भंगी बनी है उसी प्रकार से इन पद के साथ परिणत आदि पदों को घटित करके पराक्रम पद तक ४-४ चतुर्भंगी बनाना चाहिये।

"चत्तारिवत्था" इत्यादि इस सूत्र द्वारा जो शुचि शुचि-शुचि अशुचि-अशुचिशुचि और अशुचि अशुचि वस्त्र के ये चार भंग कहे गये हैं, इसी प्रकार से पुरुष के भी चार प्रकार रूप भंग कहे गये हैं शुचि शुचि १ शुचि अशुचि २ अशुचि शुचि ३ और अशुचि अशुचि इसी प्रकार से इन शुचि अशुचि के साथ परिणत-रूप मन सङ्कल्प प्रज्ञा दृष्टि शीलाचार व्यवहार और पराक्रम पदों को जोडकर ४-४ चतुर्भंगी बना लेनी चाहिये। जो वस्त्र स्वभाव से पवित्र हो और आगे भी वह संस्कार से अथवा कालभेद से पवित्र बना रहा है, जैसा कि शुद्ध वस्त्र के प्रकरण में प्रगट कर दिया गया है तो ऐसा वह वस्त्र

જે પ્રકારે સત્યાસત્ય પદઘટિત આ ચતુર્ભંગી કહેવામાં આવી છે, એ જ પ્રકારે આ પદોની સાથે પરિણુત આદિ પરાક્રમ પર્યન્તના પૂર્વોક્ત પદોને યેજિત કરીને ચાર ચાર ભાંગાવાળા સૂત્રોનું કથન થવું જોઈએ

"ચત્તારિ વત્થા" ઈત્યાદિ—

આ સૂત્ર દ્વારા વસ્ત્રના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહેવામાં આવ્યા છે. (૧) શુચિ શુચિ, (૨) શુચિ અશુચિ, (૩) અશુચિ શુચિ અને (૪) અશુચિ અશુચિ. એ જ પ્રમાણે પુરુષના પણ નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે— (૧) શુચિ શુચિ, (૨) શુચિ અશુચિ, (૩) અશુચિ શુચિ અને (૪) અશુચિ અશુચિ. એ જ પ્રમાણે શુચિ અશુચિ પદની સાથે પરિણુત, રૂપ, મન, સંકલ્પ, પ્રજ્ઞા, દષ્ટિ, શીલાચાર, વ્યવહાર અને પરાક્રમ આ પદોને જોડીને ચાર ચાર ભાગાવાળા સૂત્રોનુ કથન થવું જોઇએ જે વસ્ત્ર સ્વભાવથી પવિત્ર હોય અને આગળ જતાં પણ સંસ્કારની અપેક્ષાએ અથવા કાળભેદની અપેક્ષાએ પવિત્રજ રહે છે, એવા વસ્ત્રને શુચિ શુચિ રૂપ પહેલા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે. શુદ્ધ વસ્ત્રના પ્રકરણમાં જેવું કથન કરવામા આવ્યુ છે, એવું કથન શુચિવસ્ત્ર વિષે

नामैक शुचि" ३। शुचि=स्वभावेन पवित्र, तदेव पुनः शुचि=संस्कारेण काम मर्दन वा शुचि १, शुचि=स्वाभाविकशुद्धिमत्, पुनः कालमर्दन अशुचि=मलविमम् २, एवम्-अशुचि नामैकं शुचि ३, अशुचि नामैकमशुचि ४।

इति चतुर्भङ्गी।

अथ दार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रम्—

"एवामेवे"-त्यादि-एवमेव=दृष्टा तभूतवस्त्रवदेवेत्यर्थ, चत्वारि पुरुष जातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-शुचिः=स्वभावेन पवित्रः पुरुषः, स एव पुनः शुचि= सदाचारपालकतया पवित्रः १, शुचिर्नामैकोऽशुचिः २, अशुचिर्नामैकः शुचि ३, अशुचिर्नामैकोऽशुचि ४। इति चतुर्भङ्गी ॥ १३ ॥

शुचि शुचि कहा गया है। स्वभावतः शुद्ध हुआ भी जो आगे चलकर अपवित्र हो गया हो वह शुचि अशुचि अहवाला वस्त्र कहा गया है इसी प्रकार जो वस्त्र अशुचि होकर शुचि बन जाता है और जो अशुचि बना हुआ अशुचि ही बना रहता है वह वस्त्र तृतीय और चतुर्थ भग वाला है। जिस प्रकार से यह शुचि अशुचि सम्बन्धी चतुर्भंगी वस्त्र में योजित कर प्रगट की गई है, उसी प्रकार से यही चतुर्भंगी पुरुष में भी योजित कर लेना चाहिये, और वह इस प्रकार से है-जो मनुष्य स्वभावत पवित्र हो और आगे भी सदाचार का पालन करने से पवित्र बना रहता है तो वह "शुचि शुचि" इस प्रथम भंग का अन्त र्गत है-अन्तर्भूत किया गया है। प्रथमतः पवित्र बनकर भी आगे जो वह निमित्त वशात् असदाचार पालन से अपवित्र बन जाता है तो

પણ મહણ કરવું જોઈએ. જે વસ્ત્ર સ્વભાવત. શુદ્ધ હોવા છતાં પાછળથી અપ વિત્ર થઈ જાય છે, એવા વસ્ત્રને શુચિ અશુચિ રૂપ બીજા પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે જે વસ્ત્ર અશુચિ (અપવિત્ર) હોવા છતાં પાછળથી શુચિ બની જાય છે તેને અશુચિ શુચિ રૂપ ત્રીજા પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે અને જે વસ્ત્ર અશુચિ અવસ્થામાં જ કાયમ ચાલુ રહે છે તેને અશુચિ અશુચિ રૂપ ચોથા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે વસ્ત્રને અનુલક્ષીને શુચિ અશુચિની અપેક્ષાએ જે ચાર ભાંગાનું કથન કરવામાં આવ્યું છે એવાં જ ચાર ભાંગાનું કથન પુરુષના વિષયમાં પણ થવું જોઈએ-મનુષ્ય વિષયક ચાર ભાંગા આ પ્રમાણે બનશે-(૧) જે મનુષ્ય સ્વભાવતઃ પવિત્ર હોય અને સદાચારનું પાલન કરવાને લીધે પવિત્ર જ રહે છે, તેને શુચિ શુચિ' રૂપ પહેલા ભાગામાં મૂકી શકાય છે (૨) જે પુરુષ પહેલાં પવિત્ર હોય, પણ ભવિષ્યમાં કોઈ કારણને લીધે અસદાચારી બની જાય છે એવા પુરુષને શુચિ અશુચિ" રૂપ બીજા

"एवं जहेवे"-त्यादि-एवम्=अनेन प्रकारेण, अर्थात् यथा शुच्यशुचिघटिता सदार्ष्टान्तिकदृष्टान्तवस्त्रचतुर्भङ्गी कृता तथा शुचिपूर्वपदकपरिणत-रूप-मनः-संकल्प-प्रज्ञा-दृष्टि-शीलाऽऽचार-व्यवहार-पराक्रमघटिता नत्तच्चतुर्भङ्गी कार्या। तत्र परिणत-रूपघटिततत्तच्चतुर्भङ्गीद्वयं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकसहितं कर्तव्यम् मन-आदि पराक्रमान्तसप्तकघटितं तु दृष्टान्तवर्जितमेव चतुर्भङ्गीसप्तकं करणीयम्

ऐसा वह मनुष्य द्वितीयभंग में परिगणित हुवा है इसी तरह स्वभावतः अपवित्र व्यक्ति आगे चलकर सदाचार आदि के पालन से पवित्र बन जाता है तो वह तृतीयभंग में गिना गया है, और जो अशुचि का अशुचि ही बना रहता है तो वह चतुर्थभंग में परिणत हुवा है।

"एवं जहेव इत्यादि-जिस पद्धति से यह शुचि अशुचि सम्बन्धी दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक सहित प्रगट की गई है, उसी प्रकार से शुचि अशुचि पदों के साथ परिणत, रूप, मन, सङ्कल्प आदि पूर्वोक्त पदों को जोडकर ४-४ चतुर्भगी बना लेना चाहिये। इनमें शुचि अ चि पदों के साथ परिणत और रूपपद घटितकर जो चतुर्भङ्गी बनाई जावे-उसमें वस्त्र का दृष्टान्त देकर दार्ष्टान्तिक के साथ भी वे चतुर्भङ्गी घटित कर लेना चाहिये क्यों कि इन चतुर्भगों की दोनों में समानता मिल जाती है परन्तु-मन सङ्कल्प प्रज्ञा दृष्टि शीलाचार व्यवहार और पराक्रम इन

પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે. (૩) જે પુરુષ પહેલાં અસદાચારના પાલનને લીધે અપવિત્ર હોય, પણ પાછળથી સદાચાર આદિના પાલનને કારણે પવિત્ર બની ગયો હોય, તેને "અશુચિ શુચિ" રૂપ ત્રીજા પ્રકારમાં સમાવી શકાય છે. (૪) જે પુરુષ પહેલા પણ અસદાચારના પાલનને લીધે અપવિત્ર હોય અને પછી પણ એવો જ અપવિત્ર રહે છે તેને "અશુચિ અશુચિ" રૂપ ચોથા પ્રકારમા મૂકી શકાય છે

"एवं जहेव" ઇત્યાદિ-જે પદ્ધતિથી આ શુચિ અશુચિ દૃષ્ટાન્તરૂપ વૃક્ષ અને દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષની અપેક્ષાએ પ્રકટ કરવામા આવી છે, એ જ પ્રમાણે શુચિ-અશુચિ પદોની સાથે પરિણત રૂપ, મન, સંકલ્પ આદિ પૂર્વોક્ત પદોને જોડીને ચાર ચાર ભાંગાનુ પ્રત્યેકમા કથન થવુ જોઇએ શુચિ અશુચિ પદોની સાથે 'પરિણત' અને 'રૂપ' પદને યોજવાથી દૃષ્ટાન્તભૂત વસ્ત્રની અપેક્ષાએ બે ચતુર્ભંગી બનશે અને દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષની અપેક્ષાએ પણ બે ચતુર્ભંગી

मन प्रभृतीनां पुरुषधर्माणामचेतने वस्त्रेऽसम्भवात्तिाशयेनाऽऽ—"जाव परक्कमे" इति, पराक्रमपद यावदिति तदर्थ ॥ २६ ॥

अथ दृष्टान्तभूतकोरकसूत्रम्—

"चत्तारि कोरया" इत्यादि—चत्वार कोरका प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आम्रप्रलम्बकोरकः—आम्रः प्रसिद्ध, तस्य प्रलम्ब –प्रलम्बते-वृन्तेऽवलम्बत इति प्रलम्बः=फलम्, तस्य कोरकः=कलिका, आम्रफलकलिकेत्यर्थः १,

तालप्रलम्बकोरकः=तालफलकलिका २,

वल्लीप्रलम्बकोरकः=वल्लीफलकलिका ३,

पदों की शुद्धि और अशुद्धिपदों के साथ जोडकर जो चार चार भङ्ग इनके सम्बन्ध में बनाये जाते हैं, उनमें वस्त्र का दृष्टान्त नहीं लिया गया है क्यों कि मन आदि जो पुरुषगत धर्म हैं वे अचेतन वस्त्र में नहीं पाये जाते हैं इसी आशय से "जाव परक्कमे" ऐसा पद कहा है। २६

"दृष्टान्तभूत कोरक सूत्र—"

"चत्तारि कोरया" इत्यादि-कोरक जो आम्रफलप्रलम्बकोरक आदि भेद से चार प्रकार के कहे गये हैं, उनका अभिप्राय ऐसा है आम्र के वृन्त में जो लटकता है वह आम्रप्रलम्ब है इस आम्रप्रलम्ब की जो कलिका होती है वह यहां आम्रप्रलम्बकलिका पद से गृहीत हुई है। आम्रप्रलम्ब शब्द का अर्थ है आम का फल इसी प्रकार ताल प्रलम्बकोरक का अर्थ है तालफलकलिका और वल्ली प्रलम्ब कोरक

બનશે પણ મન સંકલ્પ પ્રજ્ઞા દૃષ્ટિ, શીલાચાર વ્યવહાર અને પરાક્રમ આ સાત પદોને અનુક્રમે શુચિ અશુચિ સાથે રોજવાથી સાત પુરુષ સંબંધી સાત ચતુર્ભંગી બને છે—વસ્ત્ર સંબંધી સાત ચતુર્ભંગી બનવા શક્તી નથી કારણ કે અચેતન વસ્ત્રમાં મન આદિ પુરુષ ધર્મોનો સદ્ભાવ હોતો નથી આ વાત 'जाव परक्कमे' આ સૂત્રપાઠ દ્વારા સૂચિત થઈ છે

'દૃષ્ટાન્તભૂત કોરક સૂત્ર'

'चत्तारि कोरया" ઇત્યાદિ આમ્રફલ પ્રલમ્બ કોરક' આદિના જેવી કોરકના જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—આંબા વૃક્ષમાં જે લટકતી વસ્તુ છે તેને આમ્રપ્રલમ્બ (ફળ) આ આમ્રપ્રલમ્બની જે કલિકા હોય છે તે અહીં આમ્રપ્રલમ્બ કલિકા પદ દ્વારા ગૃહીત થયેલ છે આમ્રપ્રલમ્બ એટલે આમ્રફળ (કેરી) એજ પ્રમાણે તાલપ્રલમ્બ કોરક એટલે 'તાલ ફળ કલિકા' થાય છે, વલ્લી પ્રલમ્બ કોરક એટલે વલ્લી ફળની કલિ

मेण्ढविषाणप्रलम्बकोरकः=मेषशृङ्गतुल्यफला वनस्पतिजातिः, तस्याः प्रलम्ब कोरकः मेण्ढविषाणा फलकलिकेत्यर्थ. ४ ॥ २७ ॥

अथ दार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रम्—

"एवामेवे"—त्यादि-एवमेव=दृष्टान्तभूतकोरकवदेवेत्यर्थः, चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आम्रप्रलम्बकोरकसमानः आम्रप्रलम्बकोरकेण समानः =सदृशः, यथाऽऽम्रप्रलम्बकोरकः सेव्यमानः सन्नुचितसमये समुचितं स्वादुफलं ददाति तथा पुरुषोऽपि परिचर्यमाणउचितकाले समुचितमुपकारफलं जनयतीति स पुरुष आम्रप्रलम्बकोरकसमानो गीयते । १ ॥

तालप्रलम्बकोरकसमानः-यथा तालप्रलम्बकोरकः स्वं चिरं सेवमानस्य पुरु-

---

का अर्थ है वल्लीकलिका तथा मेण्ढविषाणप्रलम्बकोरक शब्द का अर्थ है मेण्ढविषाणाफलकलिका, । मेषशृङ्गतुल्य फलवाली वनस्पति है इसके प्रलम्ब का फल का जो कोरक होता है वह यहां मेषवृषाण प्रलम्बकोरक से लिया गया है।

अब इन चार प्रकार के कोरकों का साधर्म्य दार्ष्टान्तिकभूत पुरुषों में घटित सूत्रकार ने इस प्रकार से किया है-सेवा किया गया जो पुरुष उचित समय में समुचित उपकारफल को देता है वह पुरुष आम्र फल के कोरक के समान है, जैसे - आम्र फल का कोरक सेवित रक्षित किये जाने पर उचित समय में समुचित स्वादुवाले फल को देता है १ जो पुरुष चिरकाल तक सेवित होने पर भी कष्ट से पुष्कल उपकार के फल को देता है वह पुरुष तालप्रलम्ब कोरक

અને મેઢ વિષાણ પ્રલમ્બ કોરક શબ્દને અર્થ 'મેઢ વિષાણુ ફલ કલિકા' થાય છે ઘેટાના શિંગડાના આકારના ફલવાળી એક વનસ્પતિ થાય છે (કદાચ ખીજડા માટે આ શબ્દ વપરાતો હાય), તેના પ્રલમ્બના (ફલને) જે કોરક (શિંગ) હાય છે તેને અહીં મેષવૃષાણ પ્રલમ્બ કારક પદ દ્વારા ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે આ ચાર પ્રકારના કોરકો અને દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષો વચ્ચે શી સમાનતા છે તે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—

(૧) જેમ આમ્રફલ કોરકનુ રક્ષણ કરવામા આવે તો ઉચિત સમયે સમુચિત સ્વાદવાળા ફળ આપે છે, તેમ કેટલાક પુરુષો એવા હાય છે કે તેમની સેવા કરવામા આવે તો ઉચિત સમયે સમુચિત ઉપકાર રૂપ ફલનું પ્રદાન કરે છે, એવા પુરુષોને પહેલા પ્રકારમા ગણાવી શકાય છે. (૨) તાડ પ્રલમ્બ કારકની દીર્ઘકાળ પર્યન્ત રક્ષા કરવામા આવે, તો મહામુશ્કેલીએ ફલની પ્રાપ્તિ થાય છે, એ જ પ્રમાણે કેટલાક પુરુષો દીર્ઘકાળ પર્યન્ત સેવિત થયા

यस्य कष्टेन महत्फलं ददाति, तथा पुरुषोऽपि चिरकालसेवनात् कष्टेन पुष्कलमुपकारफलं सम्पादयतीति स पुरुषस्तत्तुल्योऽभिधीयते ।२॥

वल्लीप्रलम्बकोरकसमानः – लताफलकलिकातुल्य, यथा वल्लीप्रलम्बकोरको विनाऽपि क्लेशं शी फलं प्रयच्छति, तथा यः पुरुषोऽक्लेशेन शीघ्रमुपकारफलं ददाति स तथाभूत उदीर्यते । ३ ॥

मेण्ढकविषाणाप्रलम्बकोरकसमानः–मेण्ढविषाणाफलकलिकासदृश, यथा मेण्ढविषाणाप्रलम्बकोरको अनेन सेव्यमानोऽपि हितकरं फलं न ददाति, अस्वादफलदायकत्वात्, तथा यः पुरुषः परिचर्यमाणोऽपि मृदुवचनान्येव वक्ति न तु कञ्चनोपकारफलं करोतीति स तत्सदृश उच्यते । ४ । २८ । (सू० ५)

के समान है जैसे तालप्रलम्बकोरक चिरकाल तक अपनी रक्षा करने वाले को कष्ट से महाफल देता है। जो अक्लेश से बिना किसी क्लेश का ही शीघ्र उपकार के फल को देता है वह पुरुष–वल्ली प्रलम्बकोरक समान है, जैसे वल्ली प्रलम्ब कोरक बिना किसीक्लेश का शीघ्र ही फल देता है। तथा जो पुरुष सेवित हुवा भी अपने सेवक जन के लिये हितकर फल नहीं देता है केवल मीठी२ बातें ही बनाता है, मीठा मीठा वचन ही बोलता है उपकार का कुछ भी फल प्रदान नहीं करता है ऐसा वह पुरुष मेण्ढविषाणाप्रलम्बकोरक का समान है जैसे मेण्ढवि षाणप्रलम्बकोरक जन के द्वारा रक्षित होता हुवा भी हितकर फल नहीं देता है क्यों कि–उसका वह फल बिना स्वाद का होता है।४। २८सू०५॥

બાદ મહામુશ્કેલીએ ઉપકારનું ફલ દેનારા હોય છે તેમને બીજા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે (૩) જે પુરુષ વિના મુશ્કેલી જલ્દીમાં જલ્દી ઉપકારનો બદલો વાળી આપે છે, તેને વલ્લી પ્રલમ્બ કોરક સમાન ગણાય છે કારણ કે વલ્લી-પ્રલમ્બ કોરક થોડા સમય સુધી સેવિત થવા છતાં પણ શીઘ્રતાથી ફલપ્રદાન કરે છે (૪) જે પુરુષની સેવા કરવા છતાં પણ સેવા કરનાર પુરુષને કોઈ લાભ થતો નથી, માત્ર મીઠા મીઠાં વચન જ સંભળાવ્યા કરે છે, એવા પુરુષને મેષ વિષાણ પ્રલમ્બ કોરક સમાન કહ્યો છે મેષવિષાણ પ્રલમ્બ કોરકની રક્ષા કરવા છતાં પણ રમકને હિતકર ફળની પ્રાપ્તિ થતી નથી, કારણ કે તેનાં ફળ સ્વાદરહિત હોય છે આ પ્રમાણે ઉપકારનો બદલો ન વાળી આપનારને આ ચોથા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે । ૪ । ૨૮ ॥ સૂ. ૫ ॥

पुरुषाधिकार एव घुणदृष्टान्त दार्ष्टान्तिक सूत्रमाह —

मूलम्-चत्तारि घुणा पण्णत्ता, तं जहा-तयक्खाए १, छल्लिक्खाए २, कट्ठक्खाए ३, सारक्खाए ४। एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा तयक्खायसमाणे जाव सारक्खायसमाणे। तयक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स सारक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते, छल्लिक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स कट्ठक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते, कट्ठक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स छल्लिक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते ॥ सू० ६ ॥

छाया—चत्वारो घुणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—त्वक्खादः १, छल्लीखादः २, काष्ठखादः ३, सारखादः ४। एवमेव चत्वारो भिक्षाकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—त्वक्खादसमानः १, यावत् सारखादसमानः ४। त्वक्खादसमानस्य खलु भिक्षाकस्य सारखादसमानं तपः प्रज्ञप्तम्, सारखादसमानस्य खलु भिक्षाकस्य त्वक्खादसमानं तपः प्रज्ञप्तम्, छल्लीखादसमानस्य खलु भिक्षाकस्य काष्ठखादसमानं तपः प्रज्ञप्तम्, काष्ठखादसमानस्य खलु भिक्षाकस्य छल्लीखादसमानं तप प्रज्ञप्तम् (सू० ६)

अब सूत्रकार इस पुरुषाधिकार में ही घुण दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक सूत्र कहते हैं-" चत्तारि घुणा पण्णत्ता " इत्यादि।

सूत्रार्थ—घुण चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे-त्वक्खाद १ छल्लीखाद २ काष्ठखाद ३ और सारखाद ४ इसी तरह से चार भिक्षाक कहे गये हैं, जैसे त्वक्खादसमान यावत् सारखाद समान ४ त्वक्खाद समानभिक्षाक का सारखादसमान तप कहा गया है सारखाद समान भिक्षाकका त्वक्खाद समान तप कहा है छल्लीखादसमान भिक्षाक का काष्ठखाद समान तप कहा गया है और काष्ठखादसमान भिक्षाक का छल्लीखाद समान तप कहा गया है

હવે સૂત્રકાર ઘુણ (કીડા) ના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા ચાર પ્રકારના પુરુષોનું નિરૂપણ કરે છે-" चत्तारि घुणा पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-ઘુણ એટલે કીડા. ઘુણ ચાર પ્રકારના કહ્યા છે-જેમકે (૧) ત્વક્ ખાદ, (૨) છલ્લી ખાદ, (૩) કાષ્ઠ ખાદ અને (૪) સાર ખાદ. એજ પ્રમાણે ચાર પ્રકારના ભિક્ષાક (ભિક્ષુક) કહ્યા છે-(૧) ત્વક્ ખાદ સમાન, (૨) છલ્લી ખાદ સમાન, (૩) કાષ્ઠ ખાદ સમાન અને (૪) સાર ખાદ સમાન.

ત્વક્ખાદ સમાન ભિક્ષુકનું તપ સારખાદ સમાન કહ્યું છે. સારખાદ સમાન

टीका—' चत्तारि घुणा ' इत्यादि-स्पष्टम् नवरं तच्छ्या, घुणाः=काष्ठ भेदका कीटविशेषाः, त्वक्खाद-त्वक्खादति त्वक्खादी बाह्यत्वग्भक्षकः १, छल्लीखादः-छल्लीं खादतीति छल्लीखादः=आभ्यन्तरत्वग्भक्षी खादक: २, काष्ठखादः=काष्ठभक्षकः ३, सारखादः=काष्ठमध्यभागखादकः यज्ञ खघुण इत्यर्थः । ४ ।

अथ दार्ष्टान्तिकभिक्षाकसूत्रमाह—

"एवामेव "-इत्यादि,-एवमेव=घुणवदित्यर्थः, चत्वारो भिक्षाका -भिक्षणशीला -भिक्षुकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-त्वक्खादसमान-' मान ' इति

इस सूत्र का तात्पर्यार्थ ऐसा है काष्ठभेदक कीड़ेका नाम घुण है ये घुण जो चार प्रकार के कहे गये हैं उसका अभिप्राय ऐसा है-कि जो घुण बाहर की छल्ली का भक्षण करता है वह त्वक्खाद घुण है १ जो घुण भीतर की छल्ली को खाता है वह छल्लीखाद घुण है २ जो घुण केवल काष्ठ को खाता है वह काष्ठखाद घुण है ३ और जो काष्ठ के सार भाग को खाता है वह सारखाद घुण है ४। काष्ठ का जो मध्यभाग होता है उसका नाम सार है। सारखाद का दूसरा नाम वज्रतुण्ड घुण है अब घुण के ये चार दार्ष्टान्तिक भिक्षाक सूत्र के साथ घटित करने के लिये सूत्रकार "एवामेव" इत्यादि सूत्र कहते हैं-इससे वे ऐसा प्रगट करते हैं-कि जैसे ये घुण ४ प्रकार बतलाये गये हैं वैसे ही चार प्रकार भिक्षाक

ભિક્ષુકનું ત્વક્ખાદ સમાન તપ કહ્યું છે, છલ્લીખાદ સમાન ભિક્ષુકનું કાષ્ઠ ખાદ સમાન તપ કહ્યું છે અને કાષ્ઠખાદ સમાન ભિક્ષુકનું છલ્લીખાદ સમાન તપ કહ્યું છે આ સૂત્રના ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

કાષ્ઠભેદક કીડાને ઘુણ કહે છે તે ઘુણના ૪ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે-તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) જે ઘુણ વૃક્ષની છાલના બહારના ભાગનું ભક્ષણ કરે છે, તેને ત્વક્ખાદ ઘુણ કહે છે (૨) જે ઘુણ છાલની અંદરના ભાગનું ભક્ષણ કરે છે તેને છલ્લીખાદ ઘુણ કહે છે (૩) જે ઘુણ કાષ્ઠનું જ ભક્ષણ કરે છે તેને કાષ્ઠખાદ ઘુણ કહે છે (૪) ઘુણ કાષ્ઠના સાર ભાગનું જ ભક્ષણ કરે છે તેને સારખાદ ઘુણ કહે છે કાષ્ઠના મધ્ય ભાગને તેનો સાર ભાગ કહે છે સારખાદનું બીજું નામ વજ્રતુણ્ડ ઘુણ છે

હવે ઘુણના આ ચારે પ્રકાર દાર્ષ્ટાન્તિક ભિક્ષુક સૂત્ર (ભિક્ષુક સૂત્ર) સાથે ઘટાવવા નિમિત્તે સૂત્રકાર "એવામેવ" ઇત્યાદિ સૂત્ર કહે છે આ સૂત્ર દ્વારા એ સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે જેમ ઘુણના ચાર પ્રકાર બતાવ્યા છે, એવા ચાર પ્રકાર ભિક્ષુકના પણ પડી શકે છે ભિક્ષુને ભિક્ષાક પણ કહે છે

यावच्छब्देन "छल्लीखादसमानः २, काष्ठखादसमानः ३, सारखादसमानः ४" इति, तत्र त्वक्खादेत्यादि घुणः समान—सदृशः त्वक्खादसमान त्वक्खादसादृश्यं च भिक्षुकेऽल्पाहारत्वात् आचाम्लादितपःकरणात् १, अन्तप्रान्तरूक्षतुच्छारसविरसाद्याहारकत्वात्, छल्लीखादसमानः—आभ्यन्तर वल्कभक्षकघुणसदृशः शुष्क-नीरसाद्यलेपाऽऽहारकत्वात् २, काष्ठखादसमानः = काष्ठभक्षकतुल्यो निर्विकृतिकाऽऽहारकत्वात् ३, सारखादसमानः=काष्ठमध्यभक्षकसदृशः सर्वकामगुणाऽऽहार कत्वादिति ४॥

एषां चतुर्विधभिक्षाकाणां तपोविशेषकथनमूत्रमाह—"तयक्खायसमाणस्से" त्यादि—त्वक्खादसमानस्य—त्वक्सदृशाहारभोक्तुर्भिक्षोः, खलु सारखादकगालं—

के भी कहे गये हैं। जैसे—त्वक्खाद समान भिक्षाक १ भिक्षुक का नाम भिक्षाक है यावत् छल्लीखादसमान भिक्षाक २ काष्ठखादसमान भिक्षाक ३ और सारखादसमान भिक्षाक ४ इनमें त्वक्खाद घुण समान वह भिक्षाक है जो अत्यन्त सन्तोषी होने के कारण आचाम्ल आयंबिल (आंबिल) आदि तपस्या है, अन्त प्रान्त रूक्ष तुच्छ अरस, और—विरस आहार करता है। छल्लीखाद घुण समान वह भिक्षाक है जो शुष्क नीरस आदि अलेप आहार करता है। काष्ठखाद घुण समान वह भिक्षा है जो निर्विकृतिक (विगय) अर्थात्—दूध दही घृत तेल और मधुर रहित आहार करता है। तथा—सारखाद घुण समान वह भिक्षाक है जो सर्वकाम गुण आहार करता है वह काष्ठके मध्य भक्षक समान भिक्षाक है।

તે ભિક્ષુકના ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે-( ) ત્વક્ખાદ સમાન ભિક્ષુક, (૨) છલ્લીખાદ સમાન ભિક્ષુક, (૩) કાષ્ઠખાદ સમાન ભિક્ષુક અને (૪) સારખાદ સમાન ભિક્ષુક ત્વક્ખાદ ઘુણ સમાન ભિક્ષુક એ છે કે જે અત્યન્ત સંતોષી હોવાને કારણે આયંબિલ આદિ તપસ્યાઓ કરે છે, અને અન્ત, પ્રાન્ત, રૂક્ષ, તુચ્છ, અરસ અને વિરસ આહાર જ લે છે છલ્લીખાદ ઘુણ સમાન ભિક્ષુક એ છે કે જે શુષ્ક, નીરસ આદિ અલેપ આહાર જ કરે છે કાષ્ઠખાદ ઘુણ સમાન ભિક્ષુક એ છે કે જે નિર્વિકૃતિક (વિગય) એટલે કે દૂધ, દહીં, ઘી, તેલ અને મધુરતા રહિત આહાર કરે છે સારખાદ ઘુણ સમાન ભિક્ષુક એ છે કે જે સર્વકામ ગુણસંપન્ન આહાર કરે છે તે કાષ્ઠના મધ્ય ભાગનું ભક્ષણ કરનાર ઘુણ સમાન ગણાય છે

હવે સૂત્રકાર આ ચારે પ્રકારના ભિક્ષુકોના તપોવિશેષનું કથન કરે છે "तयक्खायसमाणस्स" ईत्यादि—

सारस्वादो वज्रमुखघुणस्तत्समान-तत्तुल्य वज्रसारमतितीव्रं तपो भवतीत्याशये नोऽऽह-' सारक्खाये "-त्यादि, वज्रसारतपश्च निःसङ्गत्वेन कर्मभेदकत्वाद् बोध्यम् । अयम्भावः-यथा सारस्वादो घुणः कठिन काष्ठमध्य भिनत्ति तथा त्वक्खादो भिक्षुरपि यथानुवन्धि कठिनतरमपि कर्म भिनत्तीति तादृशभिक्षो सार स्वादसमानं तपो भवतीति प्ररूप्य=कथितम् । १ ।

" सारक्खायसमाणस्से "-त्यादि - सारस्वादसमानस्य-काष्ठमध्यभक्षक-घुणसदृशस्य खलु भिक्षाकस्य त्वक्खादसमान = बाह्यवल्कलखादकघुणसदृश तपो भवति, अयमाशय-यथा त्वक्खादो घुण काष्ठसारभेदने समर्थो न भवति

अब सूत्रकार इन चतुर्विध भिक्षु के तपोविशेष का कथन करने के निमित्त सूत्र कहते हैं-" तयक्खाणसमाणस्स ' इत्यादि

जो भिक्षुकत्वक्के जैसे सार पदार्थका भोजन करता है उसका तप वज्र मुख घुण के समान वज्र अतितीव्र होता है, वज्रसार तप निःसङ्ग होने के कारण कर्मभेदक होता है । तात्पर्य ऐसा है जैसे सारस्वादघुण कठिन भी काठ मध्य को छिद्रित कर देता है उसे भेद देता है, उसी प्रकार त्वक्खाद भिक्षुक भी यथानुबन्धि कठिनतर भी कर्मको भेद डालता है, अतः-ऐसे भिक्षुकका तप सारस्वादके समान होता है ऐसा कहा गया है१

" सारक्खायसमाणस्स " इत्यादि, काठ मध्य भक्षक घुण की समानतावाले भिक्षु का तप "त्वक्खाद समान" बाह्य वल्कल छालको खानेवाले घुण के समान होता है । इसका आशय ऐसा है जैसे त्वक् खादघुण काठ सार को भेदने में समर्थ नहीं होता है क्यों कि वह तो

જે ભિક્ષુક ત્વક્ના સમાન સાર પદાર્થોનું ભોજન કરે છે તેનું તપ વજ્ર મુખ ઘુણના જેવું છે વજ્ર-અતિ તીવ્ર હોય છે, વજ્રસાર તપ નિઃસંગ હોવાને કારણે કર્મભેદક હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જેમ સારખાદ ઘુણ (કાષ્ઠના મધ્ય ભાગનું ભક્ષણ કરનારો કીડો) કઠણમાં કઠણ કાષ્ઠને કોરીને તેના મધ્ય ભાગમાં પહોંચી જાય છે અને તે મધ્ય ભાગનું જ ભક્ષણ કરે છે એજ પ્રમાણે ત્વક્ખાદ ઘુણ સમાન ભિક્ષુક પણ યથાનુબંધી કઠણમાં કઠણ કર્મોને પણ ભેદી નાખે છે તે કારણે એવા ભિક્ષુકના તપને સારખાદ ઘુણના તપ સાથે સરખાવ્યું છે—૧

સારક્ખાયસમાણસ્સ કાષ્ઠના મધ્યભાગનું ભક્ષણ કરનાર ઘુણની સમાનતાવાળા ભિક્ષુનું તપ "ત્વક્ખાદસમાન" છાલના બાહ્યભાગનું ભક્ષણ કરનાર ઘુણના સમાન હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ એવો છે કે ત્વક્ખાદ ઘુણ (બાહ્ય ત્વચાનું ભક્ષણ કરનાર કીડો) કાષ્ઠસારને (કાષ્ઠના મધ્ય ભાગને)

त्वक्खादकत्वादेव हेतोः, तथा तादृशस्य भिक्षुकस्य कर्मसारभेदनेऽ समर्थमेव तपो भवति, यतः सर्वकामगुणाऽऽहारकल्पः सारखादसमानो भिक्षुको भवतीति । २।

" छल्लिक्खायसमाणस्से "-इत्यादि - छल्लीखादसमानस्य=आभ्यन्तरभाग-भक्षकघुणतुल्यस्य भिक्षाकस्य काष्ठखादसमानं=काष्ठभक्षकघुणतुल्यं तपो भवति, अयं भावः-छल्लीखादसमानस्य साधोस्त्वक्खादघुणसमानसंयतापेक्षया किञ्चि-द्विशिष्टभोजित्वेन किञ्चित्ससङ्गत्वात्, सारखाद-काष्ठखाद घुणसमानसंयतापे-क्षया त्वसारभोजित्वेन निःसङ्गत्वाच्च कर्मभेदने काष्ठखाद घुणसमानं तपो भवति,

त्वक् (छाल) को ही खानेवाला होता है अतः ऐसा जो भिक्षुक होता है उस भिक्षुक तप भी कर्मसार भेदने में समर्थ नहीं होता है किन्तु-असमर्थ ही रहता है, क्यों कि-यह भिक्षुक सारखाद समान भिक्षाक सर्वकाम गुणाहारक होता है—२

" छल्लिक्खायसमाणस्स " इत्यादि जो भिक्षुक आभ्यन्तर भाग का खानेवाला घुण के समान होता है उसका तप काष्टभक्षक घुण के तुल्य होता है, । इसका भाव ऐसा है-जो भिक्षुक छल्लीखाद समान होता है, ऐसे भिक्षाक का तप त्वक्खाद घुण समान संयत की अपेक्षा किञ्चिद्विशिष्ट भोजी होने के कारण किञ्चित् ससङ्ग होने से तथा सार खाद काष्ठखादघुण समान संयत की अपेक्षा असार भोजी होने के कारण निःसङ्ग होने से कर्म के भेदनमें काष्टखाद घुण समान होता है। इसका अर्थ ऐसा है-काष्टखाद घुण जैसा मध्यम का भेदन करता है

ભેદવાને સમર્થ હોતો નથી, પણ માત્ર બાહ્ય છાલને જ ખાનારો હોય છે. એ જ પ્રમાણે ત્વક્ખાદ ભિક્ષુનુ તપ પણ કર્મસારને ભેદવાને સમર્થ બની શકતું નથી-પણ અસમર્થ જ રહે છે, કારણ કે તે સારખાદ સમાન ભિક્ષુક સર્વકામ ગુણાહારક હેય છે

" છલ્લિક્ખાયસમાણસ્સ " ઇત્યાદિ—જે ભિક્ષુક છાલના આભ્યન્તર ભાગને ખાનારા કીડા જેવો હોય છે, તેનુ તપ કાષ્ઠભક્ષક કીડાતુલ્ય હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જે ભિક્ષુ છલ્લીખાદસમાન (આભ્યન્તર છાલ ખાનાર કીડા સમાન) હોય છે, તે ભિક્ષુ ત્વક્ખાદ ઘુણ સમાન સયત કરતાં અમુક અંશે વિશિષ્ટ પ્રકારના આહારનું સેવન કરનારો હોવાથી કેટલેક અંશે સસંગ અથવા અધિક તપને કારણે અધિક કર્મભેદન કરનારો હોવાથી તથા સારખાદ ઘુણ સમાન સંયત કરતા અસારભોજી હોવાને કારણે નિઃસંગ હોવાથી, કર્મના ભેદનમા કાષ્ઠખાદ ઘુણ સમાન હોય છે એટલે કે કાષ્ઠ ખાદ

अयमर्थः—काष्ठखादो घुणो यथा मध्यमं भेदनं करोति, तथा तस्य तपो मध्यमं भवति, नातितीव्रं सारखादघुणवत्, नातिमन्दं त्वक्छल्लीखादघुणवदिति ॥३॥

"कट्ठखायसमाणस्से"—त्यादि – काष्ठखादसमानस्य=काष्ठभक्षकघुणसदृशस्य भिक्षाकस्य छल्लीखादसमानम्=आभ्यन्तरवल्कभक्षकघुणतुल्यं तपः प्रज्ञप्तम्, अयमर्थः—यथा छल्लीखादो घुणः काष्ठसारभेदने समर्थो न भवति, तथा तादृशो भिक्षुरपि कर्मभेदने समर्थो न भवति अथ भावः – काष्ठखादसमानस्य भिक्षोः सारखादघुणसमानसाध्वपेक्षयाऽसारभोजित्वेन निःसङ्गत्वात् त्वक्छल्लीखादघुणसमानसाध्वपेक्षया सारतरभोजित्वेन ससङ्गत्वाच्च छल्लीखादघुणवत् तपः

इसलिये–उसका तप मध्यम होता है, क्यों कि–सारखादघुण की तरह यह अतितीव्र नहीं होता है और त्वक् छल्लीखाद घुण की तरह यह अतिमन्द भी नहीं होता है अत –वह मध्यम होता है—३

"कट्ठखाय समाणस्स–" इत्यादि जो भिक्षुक काष्ठखाद घुण के जैसा होता है उसका तप आभ्यन्तर वल्कलके भक्षक घुण तुल्य होता है इसका अर्थ ऐसा ही है जैसे छल्लीखाद घुण काष्ठसार भेदने में समर्थ नहीं होता है। उसी प्रकार ऐसा भिक्षुक भी कर्मभेदन में समर्थ नहीं होता है इसका भाव यह है–काष्ठखाद भिक्षु का तप साधारण कहा गया है, क्यों कि–सारखाद घुण समान साधु की अपेक्षा यह असार भोजी होने के कारण नि:सङ्ग होता है और–त्वक् छल्लीखाद घुण समान साधु की अपेक्षा यह सारतर भोजी होने के कारण ससग होता है।

घुण मध्यमनो भेद्क होय छे अने ते कारणे तेनुं तप पण मध्यम होय छे, कारण के सारखाद घुणनी जेम ते अतिशय तीव्र पण होतुं नथी अने त्वक् खाद घुणनी जेम ते अतिशय मन्द पण होतुं नथी ते कारणे तेना तपने मध्यम कह्युं छे...३

"कट्ठखायसमाणस्स" इत्यादि—जे भिक्षुक काष्ठखाद घुणना जेवो होय छे, तेनुं तप आभ्यन्तर छालभक्षक घुणना जेवुं होय छे आ कथननो भावार्थ नीचे प्रमाणे छे—जेम आभ्यन्तर छालभक्षक कीडो काष्ठसारने भेद वाने असमर्थ ज होय छे एज प्रमाणे एवो भिक्षुक पण कर्मनुं भेदन करवाने समर्थ होतो नथी. एटले के काष्ठखाद भिक्षुना तपने साधारण कह्युं छे, कारण के सारखाद घुण समान साधुनी अपेक्षाए ते असारभोजी होवाने कारणे निःसङ्ग होय छे, अने बाह्य छाल (त्वक्) ना भक्षक घुणना जेवा साधुनी अपेक्षाए ते सारतरभोजी होवाने कारणे ससङ्ग होय छे ते कारणे

कर्मभेदने सारखाद-काष्ठखादघुणवन्नातिसमर्थं, त्वक्खादघुणवन्नातिमन्द किन्तु साधारणं प्रज्ञप्तमिति । एवञ्च प्रथमस्यातितीव्रं प्रधानतरं तपः १, द्वितीयस्याप्रधानतरम् २, तृतीयस्य प्रधानम् ३, चतुर्थस्य भिक्षुकस्याप्रधानमित्युपसंहारः४॥सू०६॥

पूर्वं वनस्पत्यवयवखादका घुणा निरूपिता इति वनस्पतिमेव प्ररूपयन्नाह-

मूलम्-चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा-अग्गबीया १, मूलबीया२, पोरबीया३, खंधबीया ४ ॥ सू०७ ॥

चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णेरइयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं जहा-अहुणोववण्णे नेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए १, अहुणोववन्ने णेरइए निरयलोगंसि णिरयपालेहिं भुज्जो२, अहिट्ठिज्जमाणे२ इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमाग-

इसलिये छल्लीखाद घुण के समान वह उसका तप कर्मभेदन में सारखाद काष्ठखाद घुण की तरह अति समर्थ नहीं होता है एवं त्वक्खाद घुण की तरह अतिमन्द भी नहीं होता है इसलिये इसे साधारण कहा गया है। इस तरह प्रथम का अतितीव्र प्रधानतर तप होता है १ द्वितीय का अप्रधानतर और तृतीय का प्रधान ३ तथा चतुर्थ भिक्षुक का अप्रधान तप होता है, यही उपसंहार इस कथन का है ४—सू० ६॥

છલ્લી ખાદ ઘુણુ સમાન તેનુ તે તપ કર્મનું ભેદન કરવામા કાષ્ઠખાદ ઘુણુની જેમ અતિ સમર્થ પણ નીવડતું નથી, અને ત્વક્ખાદ ઘુણુના જેવું અતિ મન્દ પણ હોતું નથી, તેથી તેના તપને સાધારણુ કહેવામાં આવ્યુ છે. આ રીતે પહેલા પ્રકારના સાધુનુ તપ અતિ તીવ્ર અથવા અતિ તીવ્ર પ્રધાનતર હોય છે, બીજા પ્રકારના સાધુનું તપ પ્રધાનતર અથવા મધ્યમ હોય છે, ત્રીજા પ્રકારના સાધુનું તપ પ્રધાન અથવા સાધારણુ હોય છે અને ચોથા પ્રકારના સાધુનુ તપ અપ્રધાન હોય છે. ॥ સૂ. ૬ ॥

अयमर्थः–काष्ठखादो घुणो यथा मध्यमं भेदनं करोति, तथा तस्य तपो मध्यमं भवति, नातितीव्रं सारखादघुणवत्, नातिमन्दं त्वक्छल्लीखादघुणावदिति ॥३॥

"कट्ठक्खायसमाणस्से'–त्यादि – काष्ठखादसमानस्य=काष्ठमक्षकघुण सदृशस्य भिक्षाकस्य छल्लीखादसमानम्=माभ्यन्तरवल्कभक्षकघुणतुल्यं तपः म प्तम्, अयमर्थः–यथा छल्लीखादो घुणः काष्ठसारभेदने समर्थो न भवति, तथा तादृशो भिक्षुरपि कर्मभेदने समर्थो न भवति अय भाव – काष्ठखादसमानस्य भिक्षोः सारखादघुणसमानसाध्वपेक्षयाऽसारभोजित्वेन निःसङ्गत्वात् त्वक्छल्ली खादघुणसमानसाध्वपेक्षया सारतरभोजित्वेन ससङ्गत्वाच्च छल्लीखादघुणवत् तपः

इसलिये–इसका तप मध्यम होता है, क्यों कि–सारखादघुण की तरह यह अतितीव्र नहीं होता है और त्वक् छल्लीखाद घुण की तरह यह अतिमन्द भी नहीं होता है अतः–यह मध्यम होता है—३

"कट्ठक्खाय समाणस्स–" इत्यादि जो भिक्षुक काष्ठखाद घुण के जैसा होता है उसका तप आभ्यन्तर वल्कल के भक्षक घुण तुल्य होता है इसका अर्थ ऐसा ही है जैसे छल्लीखाद घुण काष्ठसार भेदने में समर्थ नहीं होता है। उसी प्रकार ऐसा भिक्षुक भी कर्मभेदन में समर्थ नहीं होता है इसका भाव यह है–काष्ठखाद भिक्षु का तप साधारण कहा गया है, क्यों कि–सारखाद घुण समान साधु की अपेक्षा यह असार भोजी होने के कारण निःसङ्ग होता है और–त्वक छल्लीखादघुण समान साधु की अपेक्षा यह सारतर भोजी होने के कारण ससङ्ग होता है।

घुण मध्यमने भेदक होय छे अने ते कारणे तेनुं तप पण मध्यम होय छे कारण के सारखाद घुणनी जेम ते अतिशय तीव्र पण होतुं नथी अने त्वक् खाद घुणनी जेम ते अतिशय मंद पण होतुं नथी ते कारणे तेना तपने मध्यम कह्युं छे...३

"कट्ठक्खायसमाणस्स' इत्यादि–जे भिक्षुक काष्ठखाद घुणना जेवो होय छे, तेनुं तप आभ्यन्तर छालभक्षक घुणना जेवुं होय छे आ कथननो भावार्थ नीचे प्रमाणे छे—जेम आभ्यन्तर छालभक्षक कीडो काष्ठसारने भेद वाने असमर्थ ज होय छे एज प्रमाणे एवो भिक्षुक पण कर्मनुं भेदन करवाने समर्थ होतो नथी एटले के काष्ठखाद भिक्षुना तपने साधारण कह्युं छे, कारण के सारखाद घुण समान साधुनी अपेक्षाए ते असारभोजी होवाने कारणे निःसङ्ग होय छे अने बाह्य छाल (त्वक्) ना भक्षक घुणना जेवा साधुनी अपेक्षाए ते सारतरभोजी होवाने कारणे ससङ्ग होय छे ते कारणे

कर्मभेदने सारखाद–काष्ठखादघुणवन्नातिसमर्थ, त्वक्खादघुणवन्नातिमन्द किन्तु साधारणं प्रज्ञप्तमिति । एवञ्च प्रथमस्यातितीव्रं प्रधानतरं तपः १, द्वितीयस्याप्रधानतरम् २, तृतीयस्य प्रधानम् ३, चतुर्थस्य भिक्षुकस्याप्रधानमित्युपसंहारः४॥सू०६॥

पूर्वं वनस्पत्यवयवखादका घुणा निरूपिता इति वनस्पतिमेव प्ररूपयन्नाह–

मूलम्–चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा-अग्गबीया १, मूलबीया२, पोरबीया३, खंधबीया ४ ॥ सू०७ ॥

चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णेरइयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं जहा-अहुणोववण्णे नेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए १, अहुणोववन्ने णेरइए निरयलोगंसि णिरयपालेहिं भुज्जो२, अहिट्ठिज्जमाणे२ इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमाग-

---

इसलिये छल्लीखाद घुण के समान वह उसका तप कर्मभेदन में सारखाद काष्ठखाद घुण की तरह अति समर्थ नहीं होता है एवं त्वक्खाद घुण की तरह अतिमन्द भी नहीं होता है इसलिये इसे साधारण कहा गया है। इस तरह प्रथम का अतितीव्र प्रधानतर तप होता है १ द्वितीय का अप्रधानतर और तृतीय का प्रधान ३ तथा चतुर्थ भिक्षुक का अप्रधान तप होता है, यही उपसंहार इस कथन का है ४—सू० ६॥

છલ્લી ખાદ ઘુણુ સમાન તેનુ તે તપ કર્મનું ભેદન કરવામા કાષ્ઠખાદ ઘુણુની જેમ અતિ સમર્થ પણ નીવડતું નથી, અને ત્વક્ખાદ ઘુણુના જેવું અતિ મન્દ પણ હોતુ નથી, તેથી તેના તપને સાધારણ કહેવામાં આવ્યુ છે. આ રીતે પહેલા પ્રકારના સાધુનુ તપ અતિ તીવ્ર અથવા અતિ તીવ્ર પ્રધાનતર હોય છે, બીજા પ્રકારના સાધુનું તપ પ્રધાનતર અથવા મધ્યમ હોય છે, ત્રીજા પ્રકારના સાધુનું તપ પ્રધાન અથવા સાધારણ હોય છે અને ચોથા પ્રકારના સાધુનુ તપ અપ્રધાન હોય છે. ॥ સૂ. ૬ ॥

च्छित्तए २, अहुणोववन्ने णेरइए णिरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिन्नंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ३। एवं निरयाउयंसि कम्मंसि अक्खिणंसि जाव णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ४, इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववन्ने नेरइए जाव णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ४॥सू०७

छाया—चतुर्विधास्तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अग्रबीजाः १, मूलबीजाः २, पर्वबीजाः ३, स्कन्धबीजाः ४ (सू० ७)।

चतुर्भिः स्थानैरधुनोपपन्नो नैरयिकः नैरयिकलोके इच्छेत् मानुषं लोकं हव्यमागन्तुम्, नो चैव खलु शक्नोति हव्यमागन्तुम्, तद्यथा–अधुनोपपन्नो नैरयिको निरयलोके समुद्भूतां वेदनां वेदयमानः इच्छेत् मानुषं लोकं हव्यमागन्तुम् १,

इस प्रकार से वनस्पति स्वादक पुरुषों का निरूपण करके अब सूत्रकार वनस्पति की प्ररूपणा करते हैं–

"चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता" इत्यादि ७

सूत्रार्थ—तृण वनस्पतिकायिक चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे–अग्रबीज १ मूलबीज २ पर्वबीज ३ स्कन्धबीज ४। चार कारणों से अधुनोपपन्नक तत्काल उत्पन्न हुये नैरयिक नरक से मनुष्यलोक में आना चाहता है वे चार कारण इस प्रकार से हैं एक कारण इनमें ऐसा है कि नरक में तत्काल उत्पन्न हुआ जो नैरयिक है वह जब उस लोक में उत्पन्न वेदना को भोगता है तब वह मनुष्यलोक में आने की

આ રીતે વનસ્પતિભક્ષક જીવોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર વનસ્પતિની પ્રરૂપણા કરે છે— "चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

તૃણ વનસ્પતિકાયિકના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અગ્રબીજ (૨) મૂલબીજ, (૩) પર્વબીજ અને (૪) સ્કન્ધબીજ

અધુનોપપન્નક (તત્કાળ ઉત્પન્ન થયેલો) નારક જીવ નીચેના ચાર કાર ણોને લીધે નરકમાંથી મનુષ્યલોકમાં આવવા માટે છે–(૧) નરકમાં તત્કાળ ઉત્પન્ન થયેલો નૈરયિક (નારક જીવ) જ્યારે તે લોકમાં ઉત્પન્ન થયેલી વેદનાને ભોગવે છે ત્યારે તેને મનુષ્યલોકમાં આવવાની ઇચ્છા થાય છે (૨) જ્યારે તે

त्वक्खादकल्पादेव हेतोः, तथा तादृशस्य भिक्षुकस्य कर्मसारभेदनेऽ समर्थमेव तपो भवति, यतः सर्वकामगुणाऽऽहारकरूपः सारखादसमानो भिक्षुको भवतीति । २।

"छल्लिक्खायसमाणस्से"-त्यादि - छल्लीखादसमानस्य=आभ्यन्तरभाग-भक्षकघुणतुल्यस्य भिक्षाकस्य काष्ठखादसमानं=काष्ठभक्षकघुणतुल्यं तपो भवति, अयं भावः-छल्लीखादसमानस्य साधोस्त्वक्खादघुणसमानसंयतापेक्षया किञ्चि-द्विशिष्टभोजित्वेन किञ्चित्ससङ्गत्वात् , सारखाद-काष्ठखाद घुणसमानसंयतापे-क्षया त्वसारभोजित्वेन निःसङ्गत्वाच्च कर्मभेदने काष्ठखाद घुणसमानं तपो भवति,

त्वक् (छाल) को ही खानेवाला होता है अतः ऐसा जो भिक्षुक होता है उस भिक्षुक तप भी कर्मसार भेदने में समर्थ नहीं होता है किन्तु-असमर्थ ही रहता है, क्यों कि-यह भिक्षुक सारखाद समान भिक्षाक सर्वकाम गुणाहारक होता है—२

"छल्लिक्खायसमाणस्स" इत्यादि जो भिक्षुक आभ्यन्तर भाग का खानेवाला घुण के समान होता है उसका तप काष्ठभक्षक घुण के तुल्य होता है, । इसका भाव ऐसा है-जो भिक्षुक छल्लीखाद समान होता है, ऐसे भिक्षाक का तप त्वक्खाद घुण समान संयत की अपेक्षा किञ्चिद्विशिष्ट भोजी होने के कारण किञ्चित् ससङ्ग होने से तथा सार खाद काष्ठखादघुण समान संयत की अपेक्षा असार भोजी होने के कारण निःसङ्ग होने से कर्म के भेदनमें काष्ठखाद घुण समान होता है। इसका अर्थ ऐसा है-काष्ठखाद घुण जैसा मध्यम का भेदन करता है

ભેદવાને સમર્થ હોતો નથી, પણ માત્ર બાહ્ય છાલને જ ખાનારો હોય છે. એ જ પ્રમાણે ત્વક્ખાદ ભિક્ષુનુ તપ પણ કર્મસારને ભેદવાને સમર્થ બની શકતું નથી-પણ અસમર્થ જ રહે છે, કારણ કે તે સારખાદ સમાન ભિક્ષુક સર્વકામ ગુણાહારક હોય છે

"छल्लिक्खायसमाणस्स" ઇત્યાદિ—જે ભિક્ષુક છાલના આભ્યન્તર ભાગને ખાનારા કીડા જેવો હોય છે, તેનુ તપ કાષ્ઠભક્ષક કીડાતુલ્ય હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જે ભિક્ષુ છલ્લીખાદસમાન (આભ્યન્તર છાલ ખાનાર કીડા સમાન) હોય છે, તે ભિક્ષુ ત્વક્ખાદ ઘુણ સમાન સંયત કરતા અમુક અંશે વિશિષ્ટ પ્રકારના આહારનુ સેવન કરનારો હોવાથી કેટલેક અંશે સસંગ અથવા અધિક તપને કારણે અધિક કર્મભેદન કરનારો હોવાથી તથા સારખાદ ઘુણ સમાન સંયત કરતા અસારભોજી હોવાને કારણે નિઃસંગ હોવાથી, કર્મના ભેદનમા કાષ્ઠખાદ ઘુણ સમાન હોય છે એટલે કે કાષ્ઠ ખાદ

अयमर्थः–काष्ठखादो घुणो यथा मध्यम भेदन करोति, तथा तस्य तपो मध्यम भवति, नातितीव्र सारखादघुणवत्, नातिमन्द त्वक्छल्लीखादघुणावदिति ॥३॥

" कट्ठखायसमाणस्से "–त्यादि – काष्ठखादसमानस्य=काष्ठमक्षकघुण सदृशस्य भिक्षाकस्य छल्लीखादसमानम्=भाभ्यन्तरवल्कमक्षकघुणतुल्य तपः प्रज्ञप्तम्, अयमर्थः–यथा छल्लीखादो घुणः काष्ठसारभेदने समर्थो न भवति, तथा तादृशो भिक्षुरपि कर्मभेदने समर्थो न भवति अय भावः – काष्ठखादसमानस्य भिक्षोः सारखादघुणसमानसाध्वपेक्षयाऽसारभोजित्वेन निःसत्त्वात् त्वक्छल्लीखादघुणसमानसाध्वपेक्षया सारतरभोजित्वेन ससत्त्वाच्च छल्लीखादघुणवत् तपः

इसलिये–उसका तप मध्यम होता है, क्यों कि–सारखादघुण की तरह वह अतितीव्र नहीं होता है और त्वक् छल्लीखाद घुण की तरह वह अतिमन्द भी नहीं होता है अतः–वह मध्यम होता है—३

" कट्ठखाय समाणस्स–" इत्यादि जो भिक्षुक काठखाद घुण के जैसा होता है उसका तप भाभ्यन्तर वल्कलके भक्षक घुग तुल्य होता है इसका अर्थ ऐसा ही है जैसे छल्लीखाद घुण काठसार भेदने में समर्थ नहीं होता है। उसी प्रकार ऐसा भिक्षुक भी कर्मभेदन में समर्थ नहीं होता है इसका भाव यह है–काठखाद भिक्षु का तप साधारण कहा गया है, क्यों कि–सारखाद घुण समान साधु की अपेक्षा यह असार भोजी होने के कारण नि सत्त्व होता है और–त्वक् छल्लीखाद घुण समान साधु की अपेक्षा यह सारतर भोजी होने के कारण ससत्त्व होता है।

घुण મધ્યમને ભેદક હોય છે અને તે કારણે તેનું તપ પણ મધ્યમ હોય છે, કારણ કે સારખાદ ઘુણની જેમ તે અતિશય તીવ્ર પણ હોતું નથી અને ત્વક્ ખાદ ઘુણની જેમ તે અતિશય મંદ પણ હોતું નથી તે કારણે તેના તપને મધ્યમ કહ્યું છે...૩

' कट्ठखायसमाणस्स ' ઇત્યાદિ—જે ભિક્ષુક કાષ્ઠખાદ ઘુણના જેવો હોય છે, તેનું તપ આભ્યન્તર છાલભક્ષક ઘુણના જેવું હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જેમ આભ્યન્તર છાલભક્ષક કીડો કાષ્ઠસારને ભેદવાને અસમર્થ જ હોય છે, એ જ પ્રમાણે એવો ભિક્ષુક પણ કર્મનું ભેદન કરવાને સમર્થ હોતો નથી એટલે કે કાષ્ઠખાદ ભિક્ષુના તપને સાધારણ કહ્યું છે કારણ કે સારખાદ ઘુણ સમાન સાધુની અપેક્ષાએ તે અસારભોજી હોવાને કારણે નિઃસત્ત્વ હોય છે અને બાહ્ય છાલ (ત્વક્) ના ભક્ષક ઘુણના જેવા સાધુની અપેક્ષાએ તે સારતરભોજી હોવાને કારણે સસત્ત્વ હોય છે તે કારણે

कर्मभेदने सारखाद-काष्ठखादघुणवन्नातिसमर्थं, त्वक्खादघुणवन्नातिमन्दं किन्तु साधारणं प्रज्ञप्तमिति । एवञ्च प्रथमस्यातितीव्रं प्रधानतरं तपः १, द्वितीयस्याप्रधानतरम् २, तृतीयस्य प्रधानम् ३, चतुर्थस्य भिक्षुकस्याप्रधानमित्युपसंहारः४॥सू०६॥

पूर्वं वनस्पत्यवयवखादका घुणा निरूपिता इति वनस्पतिमेव प्ररूपयन्नाह—

मूलम्—चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा-अग्गबीया १, मूलबीया२, पोरबीया३, खंधबीया ४ ॥ सू०७ ॥

चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णेरइयलोगंसि इच्छेज्जा मानुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं जहा-अहुणोववण्णे नेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए १, अहुणोववन्ने णेरइए निरयलोगंसि णिरयपालेहिं भुज्जो२, अहिट्ठिज्जमाणे२ इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमाग-

---

इसलिये छल्लीखाद घुण के समान वह उसका तप कर्मभेदन में सारखाद काष्ठखाद घुण की तरह अति समर्थ नहीं होता है एवं त्वक्खाद घुण की तरह अतिमन्द भी नहीं होता है इसलिये इसे साधारण कहा गया है। इस तरह प्रथम का अतितीव्र प्रधानतर तप होता है १ द्वितीय का अप्रधानतर और तृतीय का प्रधान ३ तथा चतुर्थ भिक्षुक का अप्रधान तप होता है, यही उपसंहार इस कथन का है ४—सू० ६॥

છલ્લી ખાદ ઘુણુ સમાન તેનુ તે તપ કર્મનું ભેદન કરવામા કાષ્ઠખાદ ઘુણુની જેમ અતિ સમર્થ પણુ નીવડતું નથી, અને ત્વક્ખાદ ઘુણુના જેવું અતિ મન્દ પણુ હોતું નથી, તેથી તેના તપને સાધારણુ કહેવામા આવ્યુ છે. આ રીતે પહેલા પ્રકારના સાધુનુ તપ અતિ તીવ્ર અથવા અતિ તીવ્ર પ્રધાનતર હોય છે, બીજા પ્રકારના સાધુનું તપ પ્રધાનતર અથવા મધ્યમ હોય છે, ત્રીજા પ્રકારના સાધુનું તપ પ્રધાન અથવા સાધારણુ હોય છે અને ચોથા પ્રકારના સાધુનુ તપ અપ્રધાન હોય છે. ॥ સૂ. ૬ ॥

अयमर्थः-काष्ठखादो घुणो यथा मध्यम भेदन करोति, तथा तस्य तपो मध्यम भवति, नातितीव्रं सारखादघुणवत्, नातिमन्द त्वक्छल्लीखादघुणवदिति ॥३॥

"कट्ठखायसमाणस्स"-इत्यादि - काष्ठखादसमानस्य=काष्ठभक्षकघुण सदृशस्य भिक्षाकस्य छल्लीखादसमानम्=आभ्यन्तरवल्कभक्षकघुणतुल्य तपः म प्तम्, अयमर्थः-यथा छल्लीखादो घुणः काष्ठसारभेदने समर्थो न भवति, तथा तादृशो भिक्षुरपि कर्मभेदने समर्थो न भवति अय भावः - काष्ठखादसमानस्य भिक्षोः सारखादघुणसमानसाध्वपेक्षयाऽसारभोजित्वेन निःसत्त्वात् त्वक्छल्ली खादघुणसमानसाध्वपेक्षया सारतरभोजित्वेन ससत्त्वात्च छल्लीखादघुणवत् तपः

इसलिये-उसका तप मध्यम होता है, क्यों कि-सारखादघुण की तरह यह अतितीव्र नहीं होता है और त्वक् छल्लीखाद घुण की तरह यह अतिमन्द भी नहीं होता है अत -यह मध्यम होता है—३

"कट्ठकखाय समाणस्स-" इत्यादि जो भिक्षुक काष्ठखाद घुण के जैसा होता है उसका तप आभ्यन्तर वल्कलके भक्षक घुग तुल्य होता है इसका अर्थ ऐसा ही है जैसे छल्लीखाद घुण काष्ठसार भेदने में समर्थ नहीं होता है। उसी प्रकार ऐसा भिक्षुक भी कर्मभेदन में समर्थ नहीं होता है इसका भाव यह है-काष्ठखाद भिक्षु का तप साधारण कहा गया है, क्यों कि-सारखाद घुण समान साधु की अपेक्षा यह असार भोजी होने के कारण निःसत्व होता है और-त्वक् छल्लीखादघुण समान साधु की अपेक्षा यह सारतर भोजी होने के कारण ससत्व होता है।

ઘુણ મધ્યમનો ભેદક હોય છે, અને તે કારણે તેનું તપ પણ મધ્યમ હોય છે, કારણ કે સારખાદ ઘુણની જેમ તે અતિશય તીવ્ર પણ હોતું નથી અને ત્વક્ ખાદ ઘુણની જેમ તે અતિશય મંદ પણ હોતું નથી તે કારણે તેના તપને મધ્યમ કહ્યું છે.-૩

"कट्ठखायसमाणस्स" ઇત્યાદિ—જે ભિક્ષુક કાષ્ઠખાદ ઘુણના જેવો હોય છે, તેનું તપ આભ્યન્તર છાલભક્ષક ઘુણના જેવું હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જેમ આભ્યન્તર છાલભક્ષક કીડો કાષ્ઠસારને ભેદવાને અસમર્થ જ હોય છે એ જ પ્રમાણે એવો ભિક્ષુક પણ કર્મનું ભેદન કરવાને સમર્થ હોતો નથી એટલે કે કાષ્ઠખાદ ભિક્ષુના તપને સાધારણ કહ્યું છે, કારણ કે સારખાદ ઘુણ સમાન સાધુની અપેક્ષાએ તે અસારભોજી હોવાને કારણે નિઃસત્ત્વ હોય છે અને બાહ્ય છાલ (ત્વક્) ના ભક્ષક ઘુણના જેવા સાધુની અપેક્ષાએ તે સારતરભોજી હોવાને કારણે સત્ત્વ હોય છે તે કારણે

कर्मभेदने सारखाद-काष्ठखादघुणवन्नातिसमर्थं, त्वक्खादघुणवन्नातिमन्दं किन्तु साधारणं प्रज्ञप्तमिति । एवञ्च प्रथमस्यातितीव्रं प्रधानतरं तपः १, द्वितीयस्याप्रधानतरम् २, तृतीयस्य प्रधानम् ३, चतुर्थस्य भिक्षुकस्याप्रधानमित्युपसंहारः४॥सू०६॥

पूर्वं वनस्पत्यवयवखादका घुणा निरूपिता इति वनस्पतिमेव प्ररूपयन्नाह-

मूलम्-चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा-अग्गबीया १, मूलबीया२, पोरबीया३, खंधबीया ४ ॥ सू०७ ॥

चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णेरइयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं जहा-अहुणोववण्णे नेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए १, अहुणोववन्ने णेरइए निरयलोगंसि णिरयपालेहिं भुज्जो२, अहिट्ठिज्जमाणे२ इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमाग-

---

इसलिये छल्लीखाद घुण के समान वह उसका तप कर्मभेदन में सारखाद काष्ठखाद घुण की तरह अति समर्थ नहीं होता है एवं त्वक्खाद घुण की तरह अतिमन्द भी नहीं होता है इसलिये इसे साधारण कहा गया है। इस तरह प्रथम का अतितीव्र प्रधानतर तप होता है १ द्वितीय का अप्रधानतर और तृतीय का प्रधान ३ तथा चतुर्थ भिक्षुक का अप्रधान तप होता है, यही उपसंहार इस कथन का है ४—सू० ६॥

છલ્લી ખાદ ઘુણ સમાન તેનુ તે તપ કર્મનું ભેદન કરવામા કાષ્ઠખાદ ઘુણની જેમ અતિ સમર્થ પણ નીવડતુ નથી, અને ત્વક્ખાદ ઘુણના જેવું અતિ મન્દ પણ હોતુ નથી, તેથી તેના તપને સાધારણ કહેવામાં આવ્યુ છે. આ રીતે પહેલા પ્રકારના સાધુનુ તપ અતિ તીવ્ર અથવા અતિ તીવ્ર પ્રધાનતર હોય છે, બીજા પ્રકારના સાધુનું તપ પ્રધાનતર અથવા મધ્યમ હોય છે, ત્રીજા પ્રકારના સાધુનું તપ પ્રધાન અથવા સાધારણ હોય છે અને ચોથા પ્રકારના સાધુનુ તપ અપધાન હોય છે. ॥ સૂ. ૬ ॥

च्छित्तए २, अहुणोववन्ने णेरइए णिरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिन्नंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ३। एवं निरयाउयंसि कम्मंसि अक्खिणंसि जाव णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ४, इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणो ववन्ने नेरइए जाव णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ४॥सू०७

छाया—चतुर्विधास्तृणवनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा-अग्रबीजाः १, मूलबीजा २, पर्वबीजाः ३, स्कन्धबीजा ४ (सू० ७)।

चतुर्भिः स्थानैरधुनोपपन्नो नैरयिकः नैरयिकलोके इच्छेत् मानुषं लोकं हव्यमागन्तुम्, नो चैव खलु शक्नोति हव्यमागन्तुम्, तद्यथा-अधुनोपपन्नो नैरयिको निरयलोके समुद्भूतां वेदनां वेदयमान इच्छेत् मानुषं लोकं हव्यमागन्तुम् १,

इस प्रकार से वनस्पति स्वादक पुरुषों का निरूपण करके अब सूत्रकार वनस्पति की प्ररूपणा करते हैं—

"चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता" इत्यादि ७

सूत्रार्थ—तृण वनस्पतिकायिक चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे-अग्रबीज १ मूलबीज २ पर्वबीज ३ स्कन्धबीज ४। चार कारणों से अधुनोपपन्नक तत्काल उत्पन्न हुवे नैरयिक नरक से मनुष्यलोक में आना चाहता है वे चार कारण इस प्रकार से हैं एक कारण इसमें ऐसा है कि नरक में तत्काल उत्पन्न हुवा जो नैरयिक है वह जब उस लोक में उत्पन्न वेदना को भोगता है तब वह मनुष्यलोक में आने की

આ રીતે વનસ્પતિભક્ષક પુરુષોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર વનસ્પતિની પ્રરૂપણા કરે છે— "चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

તૃણ વનસ્પતિકાયિકના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અગ્રબીજ (૨) મૂલબીજ (૩) પર્વબીજ અને (૪) સ્કન્ધબીજ

અધુનોપપન્નક (તત્કાળ ઉત્પન્ન થયેલો) નારક જીવ નીચેના ચાર કારણોને લીધે નરકમાંથી મનુષ્યલોકમાં આવવા ચાહે છે-(૧) નરકમાં તત્કાળ ઉત્પન્ન થયેલો નૈરયિક (નારક જીવ) જ્યારે તે લોકમાં ઉત્પન્ન થયેલી વેદનાને ભોગવે છે, ત્યારે તેને મનુષ્યલોકમાં આવવાની ઇચ્છા થાય છે (૨) જ્યારે તે

अधुनोपपन्नो नैरयिको निरयलोके निरयपालैः भूयो भूयः अधिष्ठीयमानः २ इच्छेद् मानुषं लोकं हव्यमागन्तुम्, नो चैव खलु शक्नोति हव्यमागन्तुम् २, अधुनोपपन्नो नैरयिको निरयवेदनीये कर्मणि अक्षीणे अवेदिते अनिर्जीर्णे इच्छेत् मानुषं लोकं हव्यमागन्तुम्, नो चैव खलु शक्नोति हव्यमागन्तुम् ३, एवं निरयाऽऽयुष्के कर्मणि अक्षीणे यावत् नो चैव खलु शक्नोति हव्यमागन्तुम् ४, इत्येतैश्चतुर्भिः स्थानैरधुनोपपन्नो नैरयिकः यावत् नो चैव खलु शक्नोति हव्यमागन्तुम् ४ (सू० ८)।

कल्पन्ते निर्ग्रन्थीनां चतस्रः सङ्घाट्यो धारयितुं वा परिधर्तुम्, तद्यथा एका द्विहस्तविस्तारा १, द्वे त्रिहस्तविस्तारे ३, एका चतुर्हस्तविस्तारा ४ ।(सू० ९)।

चाहना करता है। पर वहां से आ नहीं सकता है। दूसरा कारण ऐसा है कि जब वह अधुनोपपन्नक नैरयिक उस निरयलोक में परमाधार्मिक द्वारा बार २ आक्रम्यमाण हन्यमान होता है तब वह मनुष्यलोक में आने की चाहना करता है पर वहां से आ नहीं सकता है। तृतीय कारण ऐसा है कि अधुनोपपन्नक नैरयिक निरय में ही वेदनीय वेदन करने योग्य जो कर्म है उसे वहां ही जब तक भोग नहीं लेगा, तब तक वह मनुष्यलोक में नहीं आ सकता है। चौथा कारण ऐसा है कि-जब तक निरयायुष्क पूर्ण नहीं हुवा है तब तक वह मनुष्यलोक में आने की चाहना करता हुवा भी नहीं आ सकता है, इस प्रकार से ये चार कारण ऐसे हैं जो मनुष्यलोक में उस अधुनोपपन्नक नैरयिक को आने की चाहना उत्पन्न कराते हैं परन्तु फिर भी वह मनुष्यलोक में नहीं आ सकता है ८। निर्ग्रन्थियों को चार संघाटियो (चादर) धारण करने योग्य

નૈરયિકપર પરમાધાર્મિક નામના અસુરકુમાર દેવો વારંવાર આક્રમણ કરે છે, માર મારે છે, ત્યારે પણ તેને મનુષ્યલોકમાં આવવાની ઇચ્છા થાય છે, પણ તે ત્યાંથી મનુષ્યલોકમા આવી શકતો નથી (૩) નરકમાં ભોગવવા યોગ્ય કર્મોનું જ્યાં સુધી તે અધુનોપપન્નક નારક જીવ નરકમાં જ રહીને પૂરેપૂરૂં વેદન કરી લેતો નથી ત્યા સુધી તે આ મનુષ્યલોકમાં આવી શકતો નથી (૪) જ્યાં સુધી તે નિરયાયુષ્ક (નરક ગતિ સંબંધી આયુષ્ય) પૂરેપૂરૂ ભોગવી લેતો નથી-ત્યાંની આયુસ્થિતિ પૂરી કરતો નથી-ત્યાં સુધી તે ચાહના કરવા છતા પણ મનુષ્યલોકમા આવી શકતો નથી આ પ્રકારના આ ચાર કારણોને લીધે તે અધુનોપપન્નક નારક જીવ નરકમાંથી મનુષ્યલોકમાં આવવાની ઇચ્છા થવા છતાં મનુષ્યલોકમા આવી શકતો નથી.

નિર્ગ્રંથીઓને માટે ચાર સંઘાટીઓ (વસ્ત્ર વિશેષ) ધારણ કરવા યોગ્ય કહી છે-(૧) બે હાથપ્રમાણ વિસ્તારવાળી એક સંઘાટી,-ચાદર(૨) ત્રણ હાથપ્રમાણ

टीका—" चउव्विहा " इत्यादि – चतुर्विधा =चतुष्प्रकाराः, तृणवनस्पति कायिका –तृणप्रकारा वनस्पतिकायिकास्तृणवनस्पतिकायिका =तृणरूपा वनस्प तिकायिका बादरा इत्यर्थः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-अग्रबीजाः–अग्रमेऽग्रं वा बीजं येषां ते तथाभूता व्रीह्यादयः १, मूलबीजा –मूलमेव बीजं येषां ते मूलबीजा=कमलक न्दादयः २, पर्वबीजाः–पर्वैव बीजं यषां ते तथाभूता इक्ष्वादयः ३, स्कन्धबीजाः– स्कन्धः–धुडं, स एव बीजं येषां ते तथाभूता सल्लक्यादयः ४ (सू० ७)।

पूर्वं वनस्पतिकायिकजीवानां चतुःस्थानकं मोक्तं, सम्प्रति तज्जीवत्व–प्रभ-

कही गई है, जैसे–एक संघाटी दो हाथ विस्तारवाली १ दो संघाटी तीन हाथ विस्तारवाली ३ और चार हाथ विस्तारवाली एक ९।

स्पष्टार्थ—तृणरूप जो बादर वनस्पतिकायिक वे यहां तृणवनस्पतिकायिक शब्द से गृहीत हुए हैं। ये तृणवनस्पतिकायिक जो चार प्रकार के कहे गये प्रगट किये हैं उनका अभिप्राय ऐसा है कि–जिनका आगे का भाग जिनके अग्रभाग में बीज होता है ऐसे व्रीहि आदिक तृण वनस्पतिकायिक अग्रबीज हैं जिनका मूल ही बीज होता है व मूल बीज हैं। जैसे–कमलकन्द आदि पर्व ही जिनका बीज होता है–ऐसे इक्षु आदिक पर्वबीज वनस्पतिकायिक हैं। स्कन्ध थूड वह ही जिनके बीज हैं ऐसे सल्लकी आदिक स्कन्धबीज वनस्पतिकायिक हैं ७

इस प्रकार से वनस्पतिकायिक जीवों के ये चार स्थान कहे गये,

विस्तारवाळी બે સંઘાટી અને (૪) ચાર હાથપ્રમાણુ વિસ્તારવાળી એક સંઘાટી.

આ સૂત્રનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ—તૃણુ રૂપ જે બાદર વનસ્પતિકાયિક છે તે અહીં તૃણુ વનસ્પતિકાયિક પદથી ગૃહીત થઈ છે તે તૃણુ વનસ્પતિકાયિકોના જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે, તેનું સ્પષ્ટીકરણુ હવે કરવામાં આવે છે—

(૧) અગ્રબીજ ' જેના અગ્રભાગમાં બીજ હોય છે એવાં ડાંગર આદિ તૃણુ વનસ્પતિકાયિકોને આ પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે

(૨) મૂલબીજ " જેમનાં મૂળ જ બીજરૂપ હોય છે એવા કમલકન્દ આદિને આ પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે

(૩) ' પર્વબીજ " પર્વજ જેમના બીજરૂપ હોય છે એવી શેરડી આદિને પર્વબીજ વનસ્પતિકાયિક કહે છે

(૪) સ્કન્ધબીજ જેનું થડ જ બીજરૂપ હોય છે એવી સલ્લકી આદિ વનસ્પતિને સ્કન્ધબીજ વનસ્પતિકાયિક કહે છે

આ પ્રમાણે વનસ્પતિકાયિક જીવોનાં ચાર સ્થાનનું નિરૂપણુ કરીને હવે

दधानास्तद्विराधकाश्च महाऽऽरम्भमहापरिग्रहत्वेन नरके गच्छन्तीति नारकजीवानाश्रित्य तदाह–" चउहिं " इत्यादि–चतुर्भिः=चतुःसंख्यैः, स्थानैः, अधुनोपपन्नः=तत्कालोपपन्नः, नैरयिकः–अयः–शुभं सुखं, निर्गतमयो यस्मादिति निरयो–नरकस्तत्र भवो नैरयिकः=नारकः, तस्यान्यत्र गमना–सामर्थ्यं दर्शयितुमाह–" णेरइयलोगंसी " – ति नैरयिकलोके=नारकलोके स्थितः सन् मानुषं लोकं 'हव्वं' इति वाक्यालङ्कारे, आगन्तुम् इच्छेत् किन्तु आगन्तुम् नो चैव=नैव,

अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि जो जीव इनमें जीव हैं ऐसी बात पर विश्वास नहीं करते हैं तथा–इनकी विराधना करते हैं वे जीव महारम्भ महापरिग्रहवाले होने के कारण नरक में जाते हैं। वहां जाकर वे नारक जीव इस लोक में मनुष्यलोक में किन कारणों से आने की चाहना करते हैं २ यहां मनुष्यलोक में उनके आने की चाहना का कारण ऐसा है कि–जो नया नारक जीव वहां उत्पन्न होता है वह वहां रहता हुवा जो वहां ,की अतिप्रवल रूप से उत्पन्न असातवेदनीयरूप वेदना को अनुभव करता है, तब–वह यहां मनुष्यलोक में आने की कामना करता है परन्तु–शीत उष्ण आदि तीव्र वेदना से युक्त होने के कारण वह यहां नहीं आ सकता है १ जहां से अय–शुभ–सुख निर्गत हो गया है वह निरय नरक है इस निरय में जो उत्पन्न होता है वह नैरयिक है, यहां सूत्र में " हव्य " यह पद वाक्यालङ्कार में प्रयुक्त हुवा

સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે—કેટલાક જીવો વનસ્પતિકાયિકોમાં જીવ છે, એ વાતને શ્રદ્ધાની નજરે જોતા નથી. તેઓ તેમની વિરાધના કર્યા કરે છે. એવા જીવો મહારભ અને મહાપરિગ્રહવાળા હોવાને કારણે નરકમાં જાય છે, ત્યાં ઉત્પન્ન થયા બાદ તે નારક જીવો કયા કયા કારણોને લીધે આ મનુષ્ય લોકમાં આવવાની ઇચ્છા કરે છે, તે વાત હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—

પહેલુ કારણુ આ પ્રમાણે છે–નરકમાં ઉત્પન્ન થયેલો નવો જીવ ત્યાં ઉત્પન્ન થતાની સાથે જ ત્યાંની અતિ પ્રબલ અસાતાવેદનીય રૂપ વેદનાનો અનુભવ કરે છે આ વેદના સહન નહીં થઇ શકવાને કારણે તે આ મનુષ્ય-લોકમાં આવવાની ઇચ્છા કરે છે, પરન્તુ શીત ઉષ્ણુ આદિ તીવ્ર વેદનાથી અભિભૂત હોવાને કારણે તે અહીં આવી શકતો નથી.

જ્યાંથી અય એટલે કે શુભ–સુખ નિર્ગત થઈ ગયુ હોય છે, એવા સ્થાનનું નામ નિરય (નરક) છે તે નિરયમા ઉત્પન્ન થતા જીવને નૈરયિક કહે છે. અહીં સૂત્રમા " હવ્ય " આ પદ વાકયાલકાર રૂપે વપરાયુ છે

शक्नोति=समर्थो भवति, तत्र हेतुमाह-" त यहति-तद्यथा "-अधुनोपपन्न तत्कालोत्पन्नः, नैरयिकः, निरयलोके समुद्भूतां-सम्=अतिमनस्तया, उद्भूताम् =उत्पन्नां, मनन्तासातवेदनीयरूपां, वेदयमानः=अनुभवन् मानुष लोकम् आगन्तु मिच्छेत् किन्तु आगन्तु नैव शक्नोति, शीतोष्णादितीव्रवेदनाऽभिभूतत्वात् १, तथाऽधुनोपपन्नो नैरयिको निरयलोके निरयपालै=मम्बाम्बरीषादिभिः परमाधार्मिकैर्भूयो भूयः=पुनः पुनः, अधिष्ठीयमानः=आक्रम्यमाणो हन्यमान इत्यर्थः, मानुष लोकं हव्यमागन्तुमिच्छेत्, किन्तु आगन्तु नैव शक्नोति, निरयपालैः प्रति रुध्यमानत्वात् २,

पुनर्नैरकान्मनुष्यलोके नैरयिकस्याऽऽगमनासमर्थत्वे कारणमाह-" अहुणो ववन्ने " इत्यादि-अधुनोपपन्नो नैरयिको निरयवेदनीय-यदितुं योग्यं वेदनीयं, निरये वेदनीय निरयवेदनीय=नरकानुभवनीय तस्मिन् कर्मणि, अक्षीणे=अनष्टे

है द्वितीय कारण में जो निरयपाल कहे गये हैं वम्ब अम्बरीष आदि परमाधार्मिक देव हैं और-ये असुरकुमार जाति के देव होते हैं। जब कोई नया नारक नरकलोक में उत्पन्न होता है तो ये उस पर आक्रमण करते रहते हैं मारते हैं आपस में एक दूसरे नारकों को कुत्तों की भाति लडाते हैं, अत -जब वह वहां की ऐसी स्थिति देखता है तो वह इस मनुष्यलोक में आने की कामना करता है परन्तु जो नहीं आ सकता है उसका यह दूसरा कारण है कि-उसे ये परमाधार्मिक निरयपाल रोक लेते हैं इसलिये उनके द्वारा प्रतिरुद्धमान होने से वह यहां मनुष्यलोक में चाहता हुवा भी नहीं आ पाता है २। तीसरा कारण ऐसा है कि-नरक में भोगने योग्य जिस कर्म का बन्ध जीवने उस नये नारकी ने

બીજા કારણનું નિરૂપણ-તે નરકોના અધિપતિ અમ્બ, અમ્બરીષ આદિ પરમાધાર્મિક દેવો હોય છે તેઓ અસુરકુમાર જાતિના દેવો છે જ્યારે કોઈ નવો નારક નરકમાં ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તે પરમાધાર્મિક દેવો તેના ઉપર આક્રમણ કરે છે-તેને મારે છે તેઓ કુતરાઓની જેમ નારકોને અંદરોઅંદર લડાવે છે નરકમાં આ પ્રકારની સ્થિતિ જોઈને તે અધુનોપપન્નક નારકને આ મનુષ્યલોકમાં આવવાની ઇચ્છા થાય છે પરન્તુ તે અહીં આવી શકતો નથી, તેનું કારણ એ છે કે તેને પરમાધાર્મિક નિરયપાલો પકડી રાખે છે આ રીતે તેમના દ્વારા પ્રતિરૂદ્ધમાન થવાને કારણે તે મનુષ્યલોકમાં આવવાની ઇચ્છા થવા છતાં આવી શકતો નથી.

ત્રીજા કારણનું સ્પષ્ટીકરણ—નરકમાં ભોગવવા યોગ્ય જે કર્મનો બંધ તે નવા નારકે કર્યો હોય છે તેને જ્યાં સુધી તે પૂર્ણરૂપે ભોગવીને નિર્મૂલ કરી

अवेदिते=अननुभूते अत एव अनिर्जीर्णे=जीवप्रदेशेभ्योऽपरिशटितेऽपृथक्भूते सति मानुषं लोकं हव्यमागन्तुमिच्छेत् परन्तु मानुषं लोकं हव्यमागन्तुं नैव शक्नोति, अवश्यवेदनीयनारककर्मनिगडनिबद्धत्वात् ३।

तथा "एव"-मित्यादि-एवम्=अनेन प्रकारेण, अधुनोपपन्नो नैरयिको निरयायुष्के-निरयो-नरकस्तद्योग्यमायुः=प्राणधारणावधिकालो यस्य तन्निरया-ऽऽयुष्कं तस्मिन् निरयाऽऽयुष्के कर्मणि अक्षीणेऽवेदितेऽनिर्जीर्णे च सति निर-यान्मानुषं लोकमागन्तुमिच्छति, परन्तु मानुषं लोकमागन्तुं नैव शक्नोति, स्वोपा-र्जितकर्मणोऽक्षीणत्वाननुभूत - त्वानिर्जीर्णत्वेन बद्धकर्मणोऽवश्यभोग्यत्वादिति परमार्थः ४।

"इच्चेएहिं"-इत्येतैः, चतुर्भिरनन्तरोक्तैः स्थानैः, अधुनोपपन्नो नैरयिको नैरयिकलोके स्थितः सन् मानुषं लोकं हव्यमागन्तुमिच्छेत् परन्तु नैव हव्यमा-गन्तुं शक्नोति, उक्तकारणकलापात्।

पूर्वं नारकाणां स्वरूपमुक्तं, ते च नारका असंयमजनकपरिग्रह-वशादुत्पद्यन्त इति तद्विपक्षभूतं परिग्रहविशेषं वर्जितुं साध्वीनां कल्पनीयवस्त्रविशेषं दर्शयितुमाह-

---

किया है जब तक उसे वह पूर्ण रूप से भोगकर निर्जीर्ण नहीं कर देता है तब तक वह नरकलोक से नहीं निकल सकता है, क्यों कि-वह अवश्य वेदनीय नारक कर्मरूपी निगड बेडी से जकडा रहता है। तथा चतुर्थ कारण ऐसा है कि-जो उस नये नारकी ने वहां की आयु का बन्ध किया है उसे भोगे बिना वह वहां से नहीं निकल सकता है। इस तरह बद्ध कर्म अवश्य भोग्य होने से वह वहीं रहता है वहां से बाहर नहीं आ सकता है। ८

जीव असंयम जनक परिग्रह के वश से नारक रूप से उत्पन्न होते हैं इसलिये परिग्रह रहित साध्वी का कथन सूत्रकार प्रगट करते हैं- "कप्पंती" इत्यादि—

નાખતો નથી, ત્યા સુધી તે નરકલોકમાથી નીકળી શકતો નથી, કારણ કે અવશ્ય વેદનીય નારક કર્મરૂપ બેડીથી તે જકડાયેલો રહે છે

ચોથા કારણનુ નિરૂપણ—તે નવા નારકે નરકાયુનો જે બન્ધ કર્યો હોય છે તેને ભોગવ્યા વિના તે ત્યાંથી નીકળી શકતો નથી આ રીતે બદ્ધ કર્મ અવશ્ય ભોગ્ય હોવાને લીધે તેને ત્યાંજ રહેવું પડે છે-ગમે તેટલી ઇચ્છા કરવા છતા તે અહીં આવી શકતો નથી

અસયમજનક પરિગ્રહને કારણે જીવ નારક રૂપે ઉત્પન્ન થાય છે. હવે તેનાથી વિપરીત એવી પરિગ્રહરહિત સાધ્વીનુ સૂત્રકાર કથન કરે છે—

" कप्पंती "-त्यादि-" निर्ग्रन्थीनाम् " ग्रन्था बन्धहेतु - हिरण्यसुवर्णादिर्मि थ्यात्वादिश्च तस्मान्निष्क्रान्ता निर्ग्रन्थ्य (शार्ङ्गरवादेराकृतिगणतया ङीन्) तासां निग्रन्थीनां=साध्वीनां, चतस्रः=चतु सख्याः, संघाटयः=उत्तरीयवस्त्रविशेषाः, धारयितुं कल्पन्त इत्यन्वयक्रम, ताश्चतुर्विधा संघाटीः क्रमेणोपदर्शयितुमाह- " तयथे "-त्यादि, एका=प्रथमा संघाटी, द्विहस्तविस्तारा-द्वौ हस्तौ विस्तार आयामो दैर्घ्यं यस्याः सा तथाभूता, सा कल्पते १, एवं ' दो -द्वे, " तिहत्थ वित्थारा "-त्रिहस्तविस्तारे=त्रिहस्तप्रमाणाऽऽयाम संघाट्यौ धारयितु कल्पेते इत्यर्थः ३, " एगाचउहत्थवित्थारा '-एका=अपरा चतुर्हस्तविस्तारा धारयितु कल्पते, तत्र प्रथमा द्विहस्तविस्तारा संघाटी-उपाश्रये धारणीया १, द्वितीय-तृतीये-त्रिहस्तविस्तारे द्वे कथिते तत्रैका भिक्षाटनकाले धार्या, अपरा च स्यपि

हिरण्य सुवर्ण आदिरूप बाह्य परिग्रह और-मिथ्यात्वादिरूप अन्तरंग परिग्रह इन दोनों प्रकार के परिग्रह से साध्वीजन निष्क्रान्त रहित होते हैं अतः ये निर्ग्रन्थी कहलाती हैं। साध्वीजनों को चार उत्तरीय वस्त्रविशेष चादर कल्पनीय कहे गये हैं। दो हाथ की लम्बाई चौडाई होती है ऐसा जो उत्तरीय वस्त्र-चादर है वह प्रथम संघाटी में लिया गया है। तीन हाथ की जिनकी लम्बाई चौडाई है ऐसे दो वस्त्र द्वितीय और तृतीय संघाटी में लिये गये हैं। चार हाथ जिनकी लम्बाई चौडाई होती है-ऐसा एक वस्त्र चौथी संघाटी में लिया गया है। ये चार चादर साध्वीजनों को धारण करने के योग्य कहे गये है, इनमें जो प्रथम प्रकार की संघाटी है वह तो उन्हें उपाश्रय में ही धारण करने योग्य कही गई है। द्वितीय और तृतीय प्रकार की जो संघाटी हैं इन दोनों में एक भिक्षाटन के समय मे धारण करने योग्य कही गई

कप्पंति " ઇત્યાદિ-હિરણ્ય, સુવર્ણ આદિ રૂપ બાહ્ય પરિગ્રહથી અને મિથ્યાત્વ આદિ રૂપ અન્તરંગ પરિગ્રહથી સાધ્વીઓ રહિત હોય છે, તેથી તે સાધ્વીઓને નિર્ગ્રંથીઓ કહેવામાં આવે છે તે સાધ્વીઓને ચાર ઉત્તરીય વસ્ત્ર વિશેષ (ચાદર) કલ્પે છે તેમને જે ચાર સંઘાટીઓ (ચાદરો) કલ્પે છે તેનું સૂત્રકાર હવે નિરૂપણ કરે છે—

(૧) બે હાથની લંબાઇવાળા ઉત્તરીય વસ્ત્રને (ચાદરને) પ્રથમ સંઘાટીમાં પરિગણિત કરવામાં આવ્યું છે (૨) ત્રણ હાથની લંબાઇના બે વસ્ત્રોને દ્વિતીય અને તૃતીય સંઘાટીમાં ગણાવવામાં આવેલ છે (૩) ચાર હાથની લંબાઇવાળા એક વસ્ત્રને ચોથી સંઘાટીમાં ગણાવવામાં આવેલ છે આ ચાર પ્રકારની ચાદર સાધ્વીઓને ધારણ કરવા યોગ્ય કહી છે તેમાંથી જે પહેલા પ્રકારની સંઘાટી કહી છે તે તો તેમને ઉપાશ્રયમાં જ ધારણ કરવા યોગ્ય કહી છે બીજી અને ત્રીજી પ્રકારની જે બે સંઘાટીઓ કહી છે તેમાંથી એક ભિક્ષા

लभूमिगमनकाले ३, चतुर्थी चतुर्हस्तविस्तारा समवसरणे धारणीया, तदुक्तं च—
" संघाडीओ चउरो, तत्थ दुहत्था उवसयंमि । दुन्नि तिहत्थायामा भिक्खट्ठा एग एग उच्चारे । ओसरणे चउहत्था निसण्णपच्छायणी णेया ।१। " इति, सू.८

छाया—संघाट्यश्चतस्रस्तत्र द्विहस्ता उपाश्रये । द्वे त्रिहस्ताऽऽयामे भिक्षायै एका उच्चारे चैका अवसरणे चतुर्हस्ता निषण्णप्रच्छादनी ज्ञेया ।१। " इति,

नारकत्वं ध्यानविशेषजनितं, तं जनयितुं च सङ्घाट्यादिग्रहणमिति प्रसङ्गाद्ध्यानस्वरूपमाह —

मूलम्—चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा—अट्टे झाणे १, रोद्दे झाणे२, धम्मे झाणे३, सुक्के झाणे४, अट्टे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा—अमणुन्नसंपओगसंपउत्ते तस्स विप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ १, मणुन्नसंपओगसंपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ२, आयंकसंपओगसंपउत्ते तस्स विप्पओगसइ समण्णागए यावि भवइ३, परिजुसियकामभोगसंपओगसंपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ ४। अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—कंदणया १, सोयणया२, तिप्पणया३, परिदेवणया४। रुद्दे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-हिंसाणुबंधि १, मोसाणुबंधि २, तेणाणुबंधि३, सारक्खणाणुबंधि ४। रुद्दस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—ओसण्णदोसे१, बहुदोसे २, अन्ना-

है और—दूसरी स्थण्डिलभूमि में गमन करने के समय में धारण करने योग्य कही गई है। और चौथी सङ्घाटी समवसरण में धारण करने योग्य कही गई है। उक्तञ्च—" संघाडीओ चउरो तत्थ " इत्यादि ॥ ८ ॥

टनने समये धारणु करवा योग्य कही छे अने बीजी स्थंडिलभूमिमां गमन करती वखते धारणु करवा योग्य कही छे, अने चोथी सघाटी समवसरणमा धारणु करवा योग्य कही छे कह्युं पणु छे के " संघाडीओ चउरो तत्थ " इत्यादि–सू. ८

णदोसे३, आमरणतदोसे ४ । धम्मे झाणे चउव्विहे चउप्पडो यारे पण्णत्ते, त जहा–आणाविचए १, अवायविचए२, विवा गविचए३ सठाणविचए ४ । धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा आणारुई १, निसग्गरुई२, सुत्तरुई ओगाढरुई ४ । धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता, त जहा–वायणा १, पडिपुच्छणा २, परियट्टणा३, अणुप्पेहा४। धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, त जहा –एगाणुप्पेहा १, अणिच्चाणुप्पेहा२, असरणाणुप्पेहा३, ससारा णुप्पेहा ४ । सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, तं जहा–पुहुत्तवियक्कसवियार १, एगत्तवियक्क अवियार २, सुहु मकिरिय अणियट्टी ३, समुच्छिन्नकिरिय अप्पडिवाई४। सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा – अव्वहे १, असम्मोहे २, विवेगे ३, विउस्सग्गे ४ । सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता, त जहा -खंती१, मुत्ती२, अज्जवे३, मद्दवे ४ । सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, त जहा–अणंतवत्तियाणुप्पेहा १, विप्परिणामाणु प्पेहा २, असुभाणुप्पेहा ३, अवायाणुप्पेहा ४ ॥ सू० ९ ॥

नारकत्व ध्यानविशेष से जनित होता है अतः उस ध्यानविशेष को उत्पन्न करने के सघाटी आदि में ममता मूर्च्छा रखने से होता है सो इस प्रसग को लेकर अब सूत्रकार ध्यान का स्वरूप करते हैं—

नारकत्व ध्यानविशेषथी जनित होय छे अने ते ध्यानविशेषने उत्पन्न करनार सघाटी (वस्त्रविशेष) आदिमां ममता-मूर्छा राखवाथी ते ध्याननी उत्पत्ति थाय छे आ सबंधने अनुलक्षीने हवे सूत्रकार ध्यानना स्वरूपनुं निरूपण करे छे—' चत्तारि झाणा पण्णत्ता " इत्यादि—

छाया—चत्वारि ध्यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आर्तं ध्यानं १ रौद्रं ध्यानं २, धर्म्यं ध्यानं ३, शुक्लं ध्यानम् ४। आर्तं ध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-अमनोज्ञसम्प्रयोगसंप्रयुक्तः, तस्य विप्रयोगस्मृतिसमन्वागतं चापि भवति १, मनोज्ञसंप्रयोगसम्प्रयुक्तः, तस्य अविप्रयोगस्मृतिसमन्वागतं चापि भवति २, आतङ्कसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तः, तस्य विप्रयोगस्मृतिसमन्वागतं चापि भवति ३, परिजुष्टकामभोगसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तः, तस्य अविप्रयोगस्मृतिसमन्वागतं चापि भवति ४। आर्तस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-क्रन्दनता १, शोचनता २, तेपनता ३, परिदेवनता ४। रौद्रं ध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-हिंसाऽनुबन्धि १

"चत्तारि झाणा पण्णत्ता" इत्यादि-१०

सूत्रार्थ-ध्यान चार कहे गये हैं, जैसे आर्तध्यान १ रौद्रध्यान २ धर्मध्यान ३ और शुक्लध्यान ४, इनमें आर्तध्यान चार प्रकार का कहा गया है जैसे अमनोज्ञ वस्तुओं का सम्प्रयोग सम्बन्ध होनेपर जो उसके साथ वियोग के लिये वार २ चिन्तवन होताहै वह आर्तध्यान का प्रथम भेद है १ मनोज्ञ वस्तुओंकावियोग न होनेका वार२चिन्तवन करना यह आर्तध्यान का दूसरा भेद है २। आतङ्क से युक्त होने पर उससे वियोग होने का वार २ चिन्तवन करना यह तृतीय कक्षा का आर्तध्यान है ३। प्राप्त हुवे कामभोग को अविनाश की तथा-नहीं प्राप्त हुवे पदार्थों की प्राप्ति के लिये वार २ चिन्तवन करना यह चतुर्थ भेदवाला आर्तध्यान है ४। आर्तध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं, जैसे क्रन्दनता १ शोचनता २ तेपनता ३ और परिदेवनता ४। रौद्रध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे-

સૂત્રાર્થ-ધ્યાન ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે-(૧) આર્તધ્યાન, (૨) રૌદ્રધ્યાન, (૩) ધર્મધ્યાન અને (૪) શુકલધ્યાન તેમાંથી આર્તધ્યાનના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે. (૧) અમનોજ્ઞ વસ્તુઓનો સંપ્રયોગ અથવા પ્રાપ્તિ થવાથી, તેનાથી વિયોગ થાય (તેનાથી છૂટી જવાય) એવું જે વારવાર ચિન્તવન થયા કરે છે, તે પ્રકારના આર્તધ્યાનને પહેલા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે (૨) મનોજ્ઞ વસ્તુનો કદી વિયોગ ન થાય એવુ વારંવાર ચિન્તવન કરવુ તે આર્તધ્યાનનો બીજો ભેદ છે (૩) કોઈ પણ પ્રકારના આતંક (રોગાદિ) થી યુક્ત થયેલો જીવ તેમાથી છુટવા માટે વારવાર જે ચિન્તવન કરે છે તેને આર્તધ્યાનના ત્રીજા ભેદમાં મૂકી શકાય છે (૪) પ્રાપ્ત થયેલા કામભોગોના અવિનાશ માટે અને અપ્રાપ્ત કામ ભોગોની પ્રાપ્તિ માટે વારવાર ચિન્તવન કરવુ તે આર્તધ્યાનનો ચોથો ભેદ છે આર્તધ્યાનના ચાર લક્ષણ કહ્યાં છે-(૧) ક્રન્દનતા, (૨) શોચનતા, (૩) તેપનતા અને (૪) પરિવેદનતા.

मृषाऽनुबन्धि२ स्तेयानुबन्धि३, संरक्षणानुबन्धि ४। रौद्रस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–अवसन्नदोषः १, बहुदोषः २, अज्ञानदोषः ३, आमरणान्तदोषः ४। धर्म्यं ध्यानं चतुर्विधं चतुष्प्रत्यवतारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–आज्ञाविचय १, अपायविचय २, विपाकविचय ३, संस्थानविचयम् ४। धर्म्यस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आज्ञारुचिः १, निसर्गरुचि २, सूत्ररुचि ३, अवगाढरुचि ४। धर्म्यस्य खलु ध्यानस्य चत्वार्यालम्बनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–वाचना १, परिप्रच्छना २, परिवर्तना ३ अनुप्रेक्षा ४। धर्म्यस्य खलु ध्यानस्य चतस्रोऽनुप्रेक्षाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा–एकानुप्रेक्षा १, अनित्यानुप्रेक्षा २, अशरणानुप्रेक्षा ३ संसारानुप्रेक्षा ४। शुक्लं ध्यानं चतुर्विधं चतुष्प्रत्यवतारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–पृथक्त्ववितर्कसविचारं १, एकत्ववितर्काऽविचारं २, सूक्ष्म

हिंसानुबन्धी १ मृषानुबन्धी २ स्तेनानुबन्धी ३ और संरक्षणानुबन्धी ४। इस रौद्रध्यान के चार लक्षण हैं, अवसन्नदोष १ बहुदोष २ अज्ञानदोष ३ और आमरणान्तदोष ४। धर्मध्यान के चार प्रकार कहे गये हैं, आज्ञाविचय १ अपायविचय २ विपाकविचय ३ और संस्थानविचय ४। इस धर्मध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं, जैसे–आज्ञारुचि १ निसर्गरुचि २ सूत्ररुचि ३ और–अवगाढरुचि ४। धर्मध्यान के चार अवलम्बन कहे गये हैं, जैसे–वाचना १ परिपृच्छना २ परिवर्तना ३ अनुप्रेक्षा ४। धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ कही गई हैं, जैसे–एकानुप्रेक्षा १ अनित्यानुप्रेक्षा २ अशरणानुप्रेक्षा ३ और संसारानुप्रेक्षा ४

રૌદ્રધ્યાન પણ ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે–(૧) હિંસાનુબંધી, (૨) મૃષાનુબંધી (૩) સ્તેનાનુબંધી અને (૪) સંરક્ષણાનુબંધી. આ રૌદ્રધ્યાનના ચાર લક્ષણ નીચે પ્રમાણે છે–(૧) અવસન્નદોષ, (૨) બહુદોષ (૩) અજ્ઞાનદોષ અને (૪) (૪) આમરણાન્તદોષ ધર્મધ્યાનના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) આજ્ઞાવિચય (૨) અપાયવિચય, (૩) વિપાકવિચય અને (૪) સંસ્થાનવિચય. આ ધર્મ ધ્યાનના નીચે પ્રમાણે ચાર લક્ષણ કહ્યા છે–(૧) આજ્ઞારુચિ, (૨) નિસર્ગરુચિ (૩) સૂત્રરુચિ અને ૪) અવગાઢરુચિ. ધર્મધ્યાનના ચાર અવલંબન (આધાર) કહ્યા છે–(૧) વાચના, (૨) પરિપૃચ્છના (૩) પરિવર્તના અને (૪) અનુપ્રેક્ષા. ધર્મધ્યાનની ચાર અનુપ્રેક્ષાઓ કહી છે–(૧) એકાનુપ્રેક્ષા, (૨) અનિત્યાનુપ્રેક્ષા (૩) અશરણાનુપ્રેક્ષા અને (૪) સંસારાનુપ્રેક્ષા.

શુક્લધ્યાનના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) પૃથક્ત્વ વિતર્ક સવિચાર, (૨)

क्रियाऽनिवर्ति ३, समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति ४। शुक्लस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-अव्यथम् १, असम्मोहं २, विवेकः ३, व्युत्सर्गः ४। शुक्लस्य खलु ध्यानस्य चत्वार्यालम्बनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-क्षान्तिः १, मुक्तिः २, आर्जवं ३, मार्दवम् ४। शुक्लस्य खलु ध्यानस्य चतस्रोऽनुप्रेक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अनन्तवर्तिताऽनुप्रेक्षा १, विपरिणामानुप्रेक्षा २, अशुभानुप्रेक्षा ३ अपायानुप्रेक्षा ४। (सू. १०) ॥

"चत्तारि झाणा" इत्यादि-चत्वारि=चतुःसंख्यानि, ध्यानानि ध्यायते-चिन्त्यते वस्तु यैरिति ध्यानानि=अन्तर्मुहूर्तमात्र कालं चित्तस्थिरतारूपाणि, उक्तं च-"अंतोमुहुत्तमित्तं चित्तावत्थाणमेगवत्थुम्मि। छउमत्थाणं, झाणं जोगनिरोहो जिणाणं तु।१।" इति,

---

शुक्लध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे-पृथक्त्ववितर्क सविचार १ एकत्ववितर्काविचार २ सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति ३ और समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपत्ति ४। इस शुक्लध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं, जैसे-अव्यथ १ असम्मोह २ विवेक ३ और व्युत्सर्ग ४। शुक्लध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं, जैसे-क्षान्ति १ मुक्ति २ आर्जव ३ और मार्दव ४। शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ कही गई है, जैसे-अनन्तवर्तिताऽनुप्रेक्षा १ विपरिणामाऽनुप्रेक्षा २ अशुभाऽनुप्रेक्षा ३ और अपायाऽनुप्रेक्षा ४।

विशेषार्थ—"ध्यायते वस्तु अनेनेति ध्यानं-" इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसके द्वारा वस्तु का चिन्तन किया जाता है वह ध्यान है ध्यान एक अन्तर्मुहूर्त काल तक चित्त की स्थिरतारूप रहता है। कहा भी है-अंतो मुहुत्तमित्तं इत्यादि

એકત્વ વિતર્કાવિચાર, (૩) સૂક્ષ્મક્રિયા અનિવર્તિ અને (૪) સમુછિન્ન ક્રિયા અપ્રતિપાતિ શુક્લધ્યાનના ચાર લક્ષણ નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે-(૧) અવ્યથ, (૨) અસમોહ (૩) વિવેક અને (૪) વ્યુત્સર્ગ

શુક્લધ્યાનના નીચે પ્રમાણે ચાર અવલંબન કહ્યા છે-(૧) ક્ષાન્તિ, (૨) મુક્તિ, (૩) આર્જવ અને (૪) માર્દવ શુક્લધ્યાનની ચાર અનુપ્રેક્ષાઓ કહી છે-(૧) અનતવર્તિતા અનુપ્રેક્ષા, (૨) વિપરિણામાનુપ્રેક્ષા, (૩) અશુભાનુપ્રેક્ષા અને (૪) અપાયાનુપ્રેક્ષા

વિશેષાર્થ—"ध्यायते वस्तु अनेन इति ध्यानम्" આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે જેના દ્વારા વસ્તુનું ચિન્તન કરાય છે, તેનું નામ ધ્યાન છે તે ધ્યાન એક અન્તર્મુહૂર્તકાલ સુધીની ચિત્તની સ્થિરતારૂપ હોય છે કહ્યું પણ છે કે— "अंतो मुहुत्तमित्तं" ઈત્યાદિ—

छाया—अन्तर्मुहूर्तं मात्रं चित्तावस्थानमेकवस्तुनि । छद्मस्थानां ध्यान योगनिरोधो जिनानां तु ॥१॥ ध्यानानि, तद्यथा-"अट्टे"-आर्त्तम्-ऋत-दुःखम् शरीरं मानसं च, उपचारादृदुःखनिमित्तं वा, तत्र भवमार्त्तम्, ध्यानम्-ध्येयविषये ऽविच्छिन्नतैलधारावन्निरन्तरचित्तवृत्तिप्रवाहः १, 'रोद्दे"-रोदयत्यपरानिति रुद्रो दुःखहेतुस्तेन कृतं तत्कर्म वा रौद्रं=हिंसाद्यतिक्रौर्यानुगतं ध्यानम् २,

ध्यान जो चार प्रकार का कहा गया है उसमें सर्व प्रथम जो आर्त ध्यानरूप पहला भेद बतलाया गया है उसका तात्पर्य ऐसा है कि-जो ध्यान शारीरिक या मानसिक दुःख के समय में, या शारीरिक मानसिक दुःख के निमित्त में होता है वह-आर्तध्यान है। ध्येय पदार्थ के विषय में अविच्छिन्नरूप से तैलधार की तरह जो चित्तवृत्ति का प्रवाह है, वह ध्यान है। यह ध्यान समस्त संसारी जीवों को होता है ध्यान अन्तमुहूर्त तक ही है इसके बाद चित्तवृत्ति की धारा बदल जाती है। ऋत नाम दुःख का है जिस ध्यान के होने में दुःख का उद्वेग या तीव्रता निमित्त है वह आर्तध्यान है। रौद्र नाम क्रूर परिणामों को है जो ध्यान क्रूर परिणामों के निमित्त से होता है वह रौद्रध्यान है, यही बात "रोदयति परान् इति रुद्रः दुःखहेतुः, तेन कृतं तत्कर्म वा रौद्रं" जो दूसरों को रुलाता है, वह रुद्र है दुःख का हेतु है इससे किया गया अथवा इसका जो कर्म है वह रौद्र है। ऐसा रौद्रध्यान हिंसा आदि अतिक्रूर

ध्यानना चार प्रकार कह्या छे तेमनो आर्तध्यान नामनो जे पहेलो प्रकार छे तेनुं हवे निरूपण करवामां आवे छे-जे ध्यान शारीरिक अथवा मानसिक दुःखने वखते-अथवा शारीरिक के मानसिक दुःखने निमित्त थाय छे ते ध्याननुं नाम आर्तध्यान छे ध्येय पदार्थना विषयमां अतूट तेलनी धारा जेवो जे चित्तवृत्तिनो प्रवाह छे तेने ध्यान कहे छे आ ध्याननो सद्भाव समस्त संसारी जीवोमां होय छे तेनो काळ अन्तर्मुहूर्त प्रमाणनो ज कह्यो छे, त्यारबाद चित्तवृत्तिनी धारा बदलाई जाय छे दुःखने 'ऋत' कहे छे जे ध्यान थवामां ऋत (दुःख) नो उद्वेग के तीव्रता निमित्तरूप छे, ते ध्याननुं नाम आर्तध्यान छे क्रूर परिणामोने (मनोभावोने) रौद्र कहे छे जे ध्यान क्रूर परिणामोने निमित्ते थाय छे ते ध्यानने रौद्रध्यान कहे छे एज वात टीकाना सूत्रमां प्रकट करी छे-'रोदयति परान् इति रुद्रः दुःखहेतुः, तेन कृतं तत्कर्म वा रौद्रं' जे अन्यने रडावे छे ते रुद्र छे दुःखना कारणरूप छे तेना द्वारा जे करवामां आवे छे अथवा तेनुं जे कर्म छे ते रौद्र छे एवुं रौद्रध्यान हिंसा आदि अतिक्रूर परिणामोना निमित्तने लीधे थाय छे

धर्म्यम्-धर्मादनपेतं=युक्तं धर्म्यं = श्रुतचरणादिधर्मोपेतमित्यर्थः, ध्यानम् शुक्लम्-शोधयत्यष्टप्रकारं कर्ममलं, शुचं-शोकं वा क्लमयत्यपनयतीति निरुक्त्या शुक्लं=मोक्षादिफलसाधकं ध्यानम् ४।

तत्राऽऽर्तं ध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-अमनोज्ञसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तः-अनिष्टशब्दादि सम्बन्धजनितः सम्प्रयोगः-सम्बन्धस्तेन सम्प्रयुक्तः-सहितो यः पुरुषस्तस्य यत् " विप्पओगे "-त्यादि-विप्रयोगस्मृतिसमन्वागतं-विप्रयोगः-अनिष्टशब्दादिवियोगः, तस्य स्मृतिः-चिन्ता विप्रयोगस्मृतिः, तस्याः समन्वागतं=समन्वागमनं-संप्रापणं भवति तत् " चापि " इति वाक्यालङ्कारे एवं सर्वत्र १

परिणामों के निमित्त से होता है। इस कथन द्वारा व्यक्त की गई है। जो ध्यान शुभराग और सदाचरण का पोषक होता है वह धर्मध्यान है, अर्थात्-श्रुत और चारित्र धर्म से सहित जो ध्यान है वह धर्मध्यान है मन की अत्यन्त निर्मलता होने पर जो एकाग्रता होती है वह शुक्लध्यान है " शुक्लं शोधयति अष्टप्रकार कर्ममलं शुचं शोकं वा क्लमयति अपनयति शुक्लम् " जो आठ प्रकार के कर्ममल की शुद्धि कर देता है, अथवा-शोक को दूर कर देता है वह शुक्ल है, ऐसा जो ध्यान है वह शुक्लध्यान है यह ध्यान मोक्ष आदि फल का साधक होता है। आर्तध्यान जो चार प्रकार का कहा गया है उसका वाच्यार्थ ऐसा है "अमनोज्ञ संप्रयोगसंप्रयुक्तः" इत्यादि, अमनोज्ञ अनिष्ट जो शब्दादिकका संप्रयोग सम्बन्ध इस सम्बन्ध से सम्प्रयुक्त-सहित जो पुरुष ऐसे पुरुष को दूर करने के लिये जो मन में एक प्रकार की निश्चलता का आना

જે ધ્યાન શુભરાગ અને સદાચરણનું પોષક હોય છે, તે ધ્યાનને ધર્મધ્યાન કહે છે. એટલે કે શ્રુત અને ચારિત્રધર્મથી યુક્ત જે ધ્યાન છે તેનું નામ ધર્મધ્યાન છે. મનની અત્યન્ત નિર્મળતાનો સદ્‌ભાવ હોય ત્યારે જે એકાગ્રતા થાય છે તેનું નામ શુકલધ્યાન છે " शुक्लं-शोधयति-अष्टप्रकारं कर्ममलं-शुचं शोक वा क्लमयति-अपनयति शुक्लम् " જેના દ્વારા આઠ પ્રકારના કર્મમલની શુદ્ધિ થાય છે, અથવા જેના દ્વારા શોકને દૂર કરાય છે એવા ધ્યાનનું નામ શુકલધ્યાન છે. તે ધ્યાન મોક્ષ આદિ ફલને પ્રાપ્ત કરાવનાર છે

હવે આર્તધ્યાનના ચાર પ્રકારોનુ સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

" अमनोज्ञसंप्रयोगसंप्रयुक्त " ઇત્યાદિ—

અમનોજ્ઞ (અનિષ્ટ-અણગમતા) શબ્દાદિકના સંપ્રયોગથી (સંબંધથી) યુક્ત જે પુરુષ હોય, એવા પુરુષના ચિત્તમાં તે અમનોજ્ઞ વસ્તુને દૂર કરવા

प्रथमार्थः–अमनोज्ञानां–शब्द–स्पर्श–रस–गन्धरूपाणामनिष्टानां सम्प्रयोगे–श्रोत्र–स्पर्शन–घ्राण–चक्षुरिन्द्रिये सह सम्बन्धे तद्विप्रयोगाय=अनिष्टशब्दादिविषयदूरीकरणाय यः स्मृतिसमन्वाहार –स्मर्यत इति स्मृतिर्मन, तस्या प्रणिधानरूपायाः समन्वाहार–समन्वाहरणममनोज्ञशब्दादि विषयापगमोपाये मनसो निश्चल्य व्यवस्थापन केनोपायेन शब्दाद्यनिष्टविषयेभ्यो वियोगः स्यादित्येकतानमनोनिवेशन तदार्तध्यानमिति प्रथमो भेदः १।

एव मनोज्ञसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तस्य पुरुषस्य मनोज्ञशब्दादेरविप्रयोगस्मृतिसमन्वागतरूपमार्तध्यानं विज्ञेयमिति द्वितीयो भेदः।२।

" आयङ्के "–त्यादि–आतङ्कसम्प्रयोगसम्प्रयुक्त–आतङ्क्यते कष्टेन जीव्यतेऽनेनेत्यातङ्को–रोगः, तस्य सम्प्रयोगः=वातपित्तकफजनितसम्बन्धस्तेन सम्प्रयुक्त–सहितो यः प्राणी भवति तस्य यत् " विप्रयोगस्मृतिसमन्वागत "–

होता है (यही तद्विप्रयोगस्मृतिसमन्वाहार है इसमें ऐसा ध्यान होता है) किस प्रकार से अनिष्ट शब्दादिक विषयों से मेरा सम्बन्ध छूटे, इसके लिये जो मन में एक प्रकार की एकतानता एकाग्रता आती है वही, इस आर्तध्यान का प्रथम भेद है। तात्पर्य केवल इसका ऐसा ही है कि अनिष्ट शब्दादिक का इन्द्रियादि के साथ सम्पर्क हो जाने पर उनके वियोग के लिये चिन्तासातत्य का होना यही प्रथम आर्तध्यान है मनोज्ञ शब्दादिक का वियोग हो जाने पर उनकी प्राप्ति के लिये सतत चिन्ता करते रहना यह दूसरा आर्तध्यान है। वात पित्त कफ जनित रोग से युक्त हुवे प्राणी का जो उस को दूर करने के लिये सतत

માટે એક પ્રકારની નિશ્ચલતા આવી જાય છે (એજ તદ્વિપ્રયોગ સ્મૃતિ સમન્વાહાર છે, તેમાં આ પ્રકારનું ધ્યાન થાય છે) તેના મનમાં એવો વિચાર આવ્યા કરે છે કે કેવી રીતે આ અમનોજ્ઞ શબ્દાદિકોની સાથેનો મારો સંબંધ છૂટી જાય. તેને માટે મનમાં જે એક પ્રકારની એકાગ્રતા આવી જાય છે, એજ આ આર્તધ્યાનનો પહેલો ભેદ છે આ કથનનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે—

અનિષ્ટ શબ્દાદિકોનો ઇન્દ્રિયાદિની સાથે સંપર્ક થવાથી તેમના વિયોગને માટે તેમાંથી મુક્ત થવાને માટે ચિત્તમાં એક પ્રકારની ચિન્તવના સતત ચાલ્યા કરે છે એજ આર્તધ્યાનના પ્રથમ ભેદરૂપ છે

આર્તધ્યાનનો બીજો ભેદ—મનોજ્ઞ શબ્દાદિકોનો વિયોગ થવાથી તેમની પ્રાપ્તિને માટે સતત ચિન્તવન કર્યા કરવું તે આર્તધ્યાનના બીજા ભેદરૂપ સમજવું

આર્તધ્યાનનો ત્રીજો ભેદ—વાત પિત્ત અને કફજનિત રોગથી પીડાતો જીવ તેમાંથી મુક્ત થવા માટે જે સતત ચિન્તવન કર્યા કરે છે (મારો આ

विप्रयोगः-कासश्वासाद्यातङ्कस्य परिहारः, तस्मै या स्मृतिः-" ममाऽऽतङ्कस्यायं सम्प्रयोगः कथं नश्ये-" दित्यादिरूपा चिन्ता, तस्याः समन्वागतं=सम्प्रापणं भवति, तत् तृतीयमार्तध्यानम् , अयमर्थः-कासश्वासाद्यातङ्कविषयाणां वियोजने-दूरीकरणे या स्मृतिश्चिन्ता तस्याः समन्वागतं-समन्वाहारः ' केनोपायेनानिष्टकासश्वासाद्यातङ्केभ्यो वियोगः स्या '-दित्येकतानमनोनिवेशनं तत् तृतीयमार्तध्यानमित्यर्थः ३।

" परिजुसिये "-त्यादि-तथा परिजुष्टकामभोग संप्रयोगसंप्रयुक्तः-काम्यन्ते -प्रार्थ्यन्त इति कामा=कमनीयाः शब्दादयः परिजुष्टाः=निषेविताश्च ते कामाः परिजुष्टकामास्तेषां भोगः=अनुभवस्तस्य सम्प्रयोग सम्बन्धस्तेन सम्प्रयुक्तः-सहित,ः

यद्वा—काम्येते इति कामौ-शब्दरूपे, तौ च भुज्यन्ते-घ्राणादिविषयीक्रियन्त इति भोगाः=गन्ध-रस-स्पर्शश्चेति कामभोगाः, परिजुष्टाश्च ते कामभो-

---

चिन्ता करना कि यह रोग अब मेरा कैसे नष्ट होगा यह तृतीय आर्तध्यान है तात्पर्य इसका ऐसा है-कि कास श्वास आदि आतङ्कों के आ जाने पर उनको दूर करने के लिये ऐसा विचार बार २ आता है कि यह रोग किस उपाय से शान्त होगा इस प्रकार से जो मन में एकाग्रता (एकतानता) आती है वह तृतीय आर्तध्यान है। जो पुरुषनिषेवित शब्दादिरूप कामों के अनुभव से सम्बद्ध होता है ऐसे पुरुषों की उनके अनपगम निमित्त जो बार २ विचारधारा आती है वह आर्तध्यान का चौथा भेद है, अथवा-काम शब्द से शब्द और रूप तथा भोग शब्द से गन्ध रस, और स्पर्श इनका ग्रहण हुवा है सो इस

રોગ કેવી રીતે નષ્ટ થશે, હું કયારે આ રોગમાંથી છૂટીશ ઇત્યાદિ રૂપ તેની વિચારધારા સમજવી) તેને આ ત્રીજા ભેદમાં મૂકી શકાય છે. એટલે કે, દમ, જ્વર આદિ રોગોથી પીડાતી વ્યક્તિના મનમાં એવા વિચારો વારવાર આવ્યા કરે છે કે " મારો આ રોગ કયા ઉપાયથી શાન્ત થશે ", તેના મનમાં આ પ્રકારની એકાગ્રતા આવી જાય છે મનની આ પ્રકારની એકાગ્રતાને આર્તધ્યાનના ત્રીજા ભેદરૂપે અહીં પ્રકટ કરવામા આવેલ છે

આર્તધ્યાનના ચોથો ભેદ—મનોજ્ઞ શબ્દાદિરૂપ કામભોગોથી યુક્ત પુરુષ, તે મનોજ્ઞ કામભોગોનો કદી પણ વિયોગ ન થાય-તે મનોજ્ઞ કામભોગો સાથેનો પોતાનો સબંધ હંમેશા ચાલુ જ રહે, એવું જે વારવાર ચિન્તવન કર્યા કરે છે, તેને અહીં આર્તધ્યાનના ચોથા ભેદરૂપે પ્રકટ કરવામા આવેલ છે.

અથવા—કામપદથી શબ્દ અને રૂપ ગૃહીત થયેલ છે અને ભોગ શબ્દથી ગંધ, રસ અને સ્પર્શ ગૃહીત થયેલ છે. આ પ્રકારના કામભોગોથી યુક્ત

माश्वेति परिजुष्टकाममोगास्तेषां सम्प्रयोगः परिजुष्टकाममोगसम्प्रयोगस्तेन सम्प्रयुक्तो यः स तथाभूतः पुरुषस्तस्य यत् " अविप्रयोगस्मृतिसमन्वागतम् " —अविप्रयोगः—काममोगानामनपगमः सयोग इत्यर्थः, तस्मै या स्मृतिश्चिन्ता, तस्या यत् समन्वागत—समन्वागमनमिति चतुर्थमार्तध्यानमिति चतुर्थो भेदः ४।

अथाऽऽर्तध्यानस्य लक्षणान्याह—" अट्टस्से "—त्यादि—आर्तस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि मज्ञसानि, तद्यथा—क्रन्दनता—चीत्कारः ' हा मातः ! हा तात ! ' इत्यादिरूपा, दीर्घस्वरेण विलपनमित्यर्थः १।

शोचनता—शोचतीति शोचनस्तस्य भाव शोचनता—शोककरणम् २।
तेपनता—अश्रुविमोचनम्, तिपेः क्षरणार्थत्वात् ३।
परिदेवनता—रोदनपूर्वकसमापणमिति ४।

एतानि च लक्षणानीष्टवियोगानिष्टसयोगरागवेदनाजनितशोकयुक्तस्य पुरुषस्य भवन्ति, यत आह—

" तससककंदणसोयण—परिदेवण—ताडणाइं लिंगाइं ।
इट्ठाणिट्ठवियोगावियोग वियणानिमित्ताइं ॥ १ ॥ " इति,

तरह परिजुष्ट काम और भोगों के सम्बन्ध से युक्त मनुष्य का उनसे संयोग निमित्त जो बार २ चिन्तवन करना है वह आर्तध्यान का चौथा भेद है। आर्तध्यान के ये चार लक्षण कहे गये हैं, हा मातः ! हा पितः ! इत्यादिरूप जो चीत्कार है उसका नाम क्रन्दनता है क्रन्दन में दीर्घ शब्द से विलाप होता है। शोक करना इसका नाम शोचनता है यह इसका दूसरा लक्षण है। अश्रुओं (आंसुओं) का बहाना जिसमें होता है उसका नाम तेपनता है। रोते रोते सभापण करना इसका नाम परि

મનુષ્ય, તેમના સંયોગ નિમિત્તે જે વારવાર ચિન્તવન કર્યા કરે છે, તે આર્તધ્યાનના ચોથા ભેદમાં પરિગણિત થાય છે

આર્તધ્યાનના નીચે પ્રમાણે ચાર લક્ષણ કહ્યાં છે–(૧) ' ક્રન્દનતા ' " હે મા ! હે બાપ ! ઇત્યાદિ રૂપ જે ચિત્કાર થાય છે તેનું નામ ક્રન્દનતા છે આ ક્રન્દનમાં દીર્ઘ શબ્દથી વિલાપ થતો હોય છે (૨) ' શોચનતા '–શોચનતા એટલે શોક કરવો તે આર્તધ્યાનનું બીજું લક્ષણ છે (૩) ' તેપનતા ' ' તેપના ' એટલે આંસુ સારવાની ક્રિયા. આ આંસુ સારવાની ક્રિયારૂપ તેપનતા આર્તધ્યાનનું ત્રીજું લક્ષણ છે (૪) ' પરિદેવનતા ' રોતાં રોતાં સભાષણ કરવું તેનું નામ પરિદેવના છે આ લક્ષણોનો સદ્ભાવ ઇષ્ટનો વિયોગ, અનિષ્ટનો

छाया—" तस्याऽऽक्रन्दन-शोचन-परिदेवन-ताडनानि लिङ्गानि ।
इष्टानिष्टवियोगावियोगवेदनानिमित्तानि । १ ।   इति,

अथ रौद्रध्यानं विभजते-" रोद्दे झाणे " इत्यादि-रौद्रं ध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-हिंसाऽनुबन्धि-हिंसामनुबध्नातीत्येवंशीलं हिंसाऽनुबन्धि=प्राणिपीडासततप्रवृत्तिकरणशीलं प्रणिधानमित्यर्थः, यद्वा-अनुबन्धनमनुबन्धः, हिंसाया अनुबन्धः=सम्बन्धः हिंसाऽनुबन्धः सोऽस्त्यस्मिन्निति हिंसाऽनुबन्धि रौद्रध्यानम्,

देवनता है, ये लक्षण चिह्न इष्ट वियोग तथा-अनिष्ट संयोग और रोग वेदना से जनित शोक से युक्त पुरुषको होते हैं। सो ही कहा गया है-" तस्स कंदणसोयण " इत्यादि १

रौद्रध्यान के विषय में कथन " रोद्दे झाणे " इत्यादि

रौद्रध्यान जो हिंसानुबन्धी आदि के भेद से चार प्रकार का कहा गया है सो उनका अभिप्राय ऐसा है जिस प्रकार आर्तध्यान का मुख्य आधार पीडा है यह पीडा अनिष्ट वस्तु का संयोग इष्ट वस्तु का वियोग और प्रतिकूल वेदना आदि कारणों में से किसी एक के निमित्त से हुवा करती है। इसलिये निमित्त से आर्तध्यान के चार भेद कहे गये हैं, इसी प्रकार से रौद्रध्यान का मूल आधार क्रूरता है। जिसका चित्त क्रूर कठोर होता है वह रुद्र है, ऐसा जो ध्यान है वह रौद्रध्यान है। इस क्रूरता को आत्मा में उत्पन्न करनेवाले हिंसा चोरी और विषय संरक्षण ये चार निमित्त लिये गये हैं। इसीलिये रौद्रध्यान के चार भेद हुवे हैं, जिस ध्यान में प्राणियों को पीडा देने में

સયોગ અને રાગવેદનાથી જનિત શોકયુક્ત મનુષ્યમાં હોય છે એ જ વાત " तस्सक्कंदणसोयण " ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા વ્યક્ત થઇ છે.

રૌદ્રધ્યાનનુ નિરૂપણુ—રૌદ્રધ્યાનના હિંસાનુબંધી આદિ ચાર ભેદ છે. " रोद्दे झाणे " ઇત્યાદિ-જેમ આર્તધ્યાનનો મુખ્ય આધાર પીડા છે અને તે પીડા અનિષ્ટ વસ્તુઓનો સયોગ, ઇષ્ટ વસ્તુઓનો વિયોગ, અને પ્રતિકૂળ વેદના આદિ કારણોમાંથી કોઇ એક કારણે થયા કરે છે, અને તેથી નિમિત્તભેદની અપેક્ષાએ આર્તધ્યાનના ચાર પ્રકાર કહેવામાં આવ્યા છે, એ જ પ્રમાણે રૌદ્ર ધ્યાનનો મુખ્ય આધાર ક્રૂરતા છે જેતું ચિત્ત ક્રૂર (કઠોર) હોય છે તે રૂદ્ર કહેવાય છે. અને તે પ્રકારના આત્મધ્યાનને રૌદ્રધ્યાન કહે છે આત્મામાં આ ક્રૂરતા ઉત્પન્ન કરનારા હિંસા, ચોરી, અસત્ય અને વિષય-સંરક્ષણુરૂપ ચાર નિમિત્ત બતાવ્યાં છે. તે કારણે રૌદ્રધ્યાનના ચાર ભેદ પડે છે. જે ધ્યાનમાં જીવોને પીડા પહોચાડવાનો વિચાર (પ્રણિધાન) નિરન્તર ચાલ્યા કરે છે.

उक्तञ्च—" सत्तवहवहबंधणडहणंकणमारणाइपणिहाणं ।
अइकोहग्गहत्थं णिग्घिणमणसोऽहमविवागं ॥१॥ " इति,
छाया—" सत्त्ववधवेध-बन्धन-दहनाऽङ्कन-मारणादि प्रणिधानम् ।
अतिक्रोधग्रहग्रस्तं निर्घृणमनसोऽधमविपाकम् । १ । " इति ।
" मृषाऽनुबन्धि "—मृषाऽनुबध्नातीत्येवंशील=पिशुनाऽसभ्याऽसद्भूतादिभि-र्वचनविशेषैरसत्यानुबन्धि प्रणिधानम्, तथाह च—
" पिसुणाऽसब्भासब्भूयघायाइवयणपणिहाणं ।
मायाविणोऽतिसंधणपरस्स पच्छन्नपावस्स । १ । इति ।
छाया—" पिशुनाऽसभ्याऽसद्भूतघातादि वचनप्रणिधानम् ।
मायाविनोऽतिसन्धानपरस्य प्रच्छन्नपापस्य । १ । " इति ।
" स्तेयानुबन्धि "-स्तेन -चौरस्तस्य भावः कर्म वा स्तेयम्, तदनुबध्ना तीत्येवंशीलं तथाभूतम् = तीव्रक्रोधाद्याकुलतया चौर्यानुबन्धनशीलमित्यर्थः, तथा चोक्तम्-

---

निरन्तर प्रणिधान (विचार) होता है अथवा हिंसा का अनुबन्ध सम्बन्ध जिस ध्यान में होता है, ऐसा वह ध्यान हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान है। तात्पर्य यह है कि हिंसा करने में आनन्द मानना वह-हिंसानुबन्धी आर्तध्यान है, कहा भी है—" सत्तवहवेह बंधण " इत्यादि १

पिशुन-असभ्य असद्भूत आदि वचन विशेषों द्वारा असत्यानुबन्धी जो प्रणिधान (चिन्तन) है वह मृषानुबन्धी द्वितीय आर्तध्यान है। कहा भी है-" पिसुणाऽसब्भासब्भूय " इत्यादि १

स्तेयानुबन्धी-स्तेन नाम चोर का है, इस चोर का जो भाव अथवा कर्म है वह स्तेय है इस स्तेय का अनुबन्धवाला जो प्रणिधान चिन्तन है वह स्तेयानु

અથવા જે ધ્યાનમા હિંસાનો અનુબંધ (સબંધ) સતત ચાલુ રહે છે, તે ધ્યાનને ' હિંસાનુબંધી રૌદ્રધ્યાન ' કહે છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે હિંસા કરવામાં આનંદ માનવો, તે હિંસાનુબંધી આર્તધ્યાન છે કહ્યું પણ છે કે-" सत्तवहवेहबंधण ' ઇત્યાદિ...૧ ।

પિશુન-અસભ્ય-અસદ્‌ભૂત આદિ વચનવિશેષો દ્વારા અસત્યાનુબંધી જે પ્રણિધાન (ચિન્તન) થાય છે, તેને મૃષાનુબંધી રૌદ્રધ્યાન કહે છે આ રૌદ્ર ધ્યાનનો બીજો ભેદ સમજવો કહ્યું પણ છે કે- पिसुणाऽसब्भासब्भूय ' ઇત્યાદિ-૩

(૩) સ્તેયાનુબંધી-સ્તેન એટલે ચોર. તે ચોરના કાર્યને સ્તેય કહે છે આ સ્તેય (ચોરી) ના અનુબંધવાળુ જે પ્રણિધાન (ચિન્તન) છે, તેને સ્તેયાનુબંધી રૌદ્રધ્યાન કહે છે આ ધ્યાનને રૌદ્રધ્યાનનો ત્રીજો ભેદ સમજવો. કહ્યું પણ છે કે-" तह तिव्वकोहलोहा " ઇત્યાદિ—

"तह तिव्वकोहलोहाउलस्स भूतोवघायणमणज्जं ।
परदव्वहरणचित्तं परलोगावायनिरवेक्ख । १ । इति,

छाया-" तथा तीव्रक्रोधलोभाऽऽकुलस्य भूतोपघातनमनार्यम् ।
परद्रव्यहरणचित्तं परलोकापायनिरपेक्षम् । १ ।" इति, ३

"सरक्षणानुवन्धि"-संरक्षणं-सं-सम्यक् - सर्वोपायैः रक्षणं-परित्राण, तत्र विषयसाधनधनस्यानुवन्धः संरक्षणानुवन्धः, सोऽस्त्यस्मिन्निति संरक्षणानुवन्धि रौद्रध्यानम् , तदुक्तम्-

"सद्दाइ विसयसाहणधणसंरक्खणपरायणमणिट्ठं ।
सव्वाहिसंकणपरोवघायकलुसाउल चित्तं । १ ।" इति ।

छाया-" शब्दादिविषयसाधनधनसंरक्षणपरायणमनिष्टम् ।
सर्वाभिशङ्कनपरोपघातकलुषाऽऽकुल चित्तम् । १ ।" इति ४ ।

अथ रौद्रध्यानस्य लक्षणान्याह-" रुद्दस्स णं " इत्यादि — रौद्रस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ओसन्नदोषः-'ओसन्नम्' इति प्रचुरार्थवाचको देशीयशब्दस्तेन हिंसामृषादीनामन्यतमस्मिन् प्रवृत्तेः प्राचुर्यं, तदेव

वन्धी आर्तध्यानका तृतीय भेद है। कहा भी है-"तह तिव्वकोहलोहा" इत्यादि १ तात्पर्य इसका ऐसा है कि तीव्र क्रोध मान माया एवं लोभ से आकुल हुवे पुरुष का जो चोरी करने का अनुवन्धशील प्रणिधान (परिणाम) है वह स्तेयानुवन्धी आर्तध्यान है इस आर्तध्यानवाला प्राणी चोरी करने में ही आनन्द मानता है। जिस ध्यान में विषय साधनभूत धन के संरक्षण करने का अनुवन्ध रहता है ऐसा वह ध्यान संरक्षणानुवन्धी रौद्रध्यान है। कहा भी है-"सद्दाइ विसयसाहण" इत्यादि रौद्रध्यान के लक्षण इस प्रकार से है-"ओसन्न दोषः" हिंसादिक पापों में से किसी एक में प्रवृत्ति की प्रचुरता का होना यह ओसन्न

આ સૂત્રને ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—તીવ્ર, ક્રોધ, માન, માયા અને લોભથી આકુળવ્યાકુળ થયેલા પુરુષનુ જે ચોરી કરવાના અનુબન્ધશીલ પ્રણિધાન (પરિણામ) છે, તેને સ્તેયાનુબન્ધી રૌદ્રધ્યાન કહે છે. આ રૌદ્રધ્યાનવાળો માણસ ચોરી કરવામાં જ આનદ માને છે (૪) જે ધ્યાનમાં વિષયસાધનભૂત ધનના સરક્ષણનો અનુબંધ રહે છે, તે ધ્યાનને સંરક્ષણાનુબંધી રૌદ્રધ્યાન કહે છે કહ્યુ પણ છે કે-"सद्दाइ विसयसाहण" ઈત્યાદિ—

રૌદ્રધ્યાનનાં લક્ષણો નીચે પ્રમાણે છે-"ओसन्नदोषः" હિંસાદિક પાપોમાંથી કોઈ એકમાં પ્રવૃત્તિની પ્રચુરતા હોવી, તેનુ નામ 'ઓસન્નદોષ' છે.

दोषः—पृथगम्=हिंसाद्येकतरस्मिन् प्रवृत्तिरूपो दोष इत्यर्थः १, बहुदोषः—हिंसामृषादिसर्वेषु दोषः—प्रवृत्तिरूपः स तथा २, अज्ञानदोषः—अज्ञानात्—कुशास्त्रसंस्कारात् हिंसामृषादिष्वधर्मस्वरूपेषु नरकादिकारणेषु धर्मबुद्ध्याऽभ्युदयाय प्रवृत्तिस्वरूपोऽज्ञानदोषः, यद्वा — हिंसादिप्रवृत्तिलक्षणमज्ञानमेव दोषोऽज्ञानदोषः ३, "आमरणान्तदोषः—" मरणमेवान्तो मरणान्तः, तमभिव्याप्याऽऽमरणान्तात् मरणपर्यन्तमित्यर्थः, असञ्जातपश्चात्तापस्य कालसौकरिकादेरिव या हिंसादिषु प्रवृत्तिः सैव दोष आमरणान्तदोषः ४।

अथ धर्म्यध्यानस्वरूपमाह—" धम्मे झाणे " इत्यादि—धर्म्यं ध्यानं चतुर्विधं चतुष्प्रत्यवतारं—चतुर्षु—भेदलक्षणाऽऽलम्बनाऽनुप्रेक्षारूपेषु पदार्थेषु प्रत्यव-

दोष है। " ओसन्न " यह प्रचुरतार्थ वाचक देशीय शब्द है। " बहुदोषः " हिंसादिक समस्त पापों में प्रवृत्ति का होना यह बहुदोष है, " अज्ञानदोषः " अज्ञान से कुशास्त्र के संस्कार से अधर्मरूप तथा—नरकादि गतियों के कारणभूत एसे हिंसादिक पापों में धर्म समझ कर अपने अभ्युदय के निवृत्ति प्रवृत्ति का होना यह अज्ञान दोष है, अथवा —हिंसादिकों में जो प्रवृत्ति होती है वही अज्ञानरूप दोष है।

"आमरणान्तदोषः" काल सौकरिक नामके कसाई आदि सदृश अस मुत्पन्न पश्चात्तापवालोंका मरण पर्यन्त हिंसादिकोंमें प्रवृत्तिका होते रहना यह आमरणान्तदोष है।

धर्मध्यान का स्वरूप भेद लक्षण आलम्बन और अनुप्रेक्षा इन चार पदार्थों में विचारणीयहोने से चतुष्प्रत्यवतार वाला (चार भेदरूपवाला) कहा है। इसके ये चार भेद हैं आज्ञाविचय,

'ઓસન્ન" આ પદ પ્રચુરતાના અર્થમાં ગામઠી ભાષામાં વપરાય છે 'બહુદોષ:' હિંસાદિક સમસ્ત પાપોમાં પ્રવૃત્ત થવું તેનું નામ 'બહુદોષ' છે 'અજ્ઞાનદોષ:' અજ્ઞાનને કારણે—કુશાસ્ત્રના સંસ્કારના કારણે નરકાદિ ગતિયોના કારણરૂપ હિંસાદિ પાપોને ધર્મ માનીને તેનું આચરણ કરવું—એવા અધર્મરૂપ કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત થવું તેનું નામ અજ્ઞાનદોષ છે અથવા હિંસાદિકોમાં જે પ્રવૃત્તિ થાય છે તેનું નામ જ અજ્ઞાનદોષ છે 'આમરણાન્તદોષ:" કાલસૌકરિક આદિની જેમ અસમુત્પન્ન પશ્ચાત્તાપવાળાની (જેમને હિંસાદિ કરવા માટે પશ્ચાત્તાપ જ થતો નથી એવાની) મરણ પર્યન્ત હિંસાદિકોમાં જે પ્રવૃત્તિ રહે છે તેનું નામ આમરણાન્તદોષ છે

ધર્મધ્યાનનું નિરૂપણ—ધર્મધ્યાનનું સ્વરૂપ ભેદ, લક્ષણ આલમ્બન અને અનુપ્રેક્ષા આ ચાર બાબતોની અપેક્ષાએ વિચારણીય હોવાથી તેને ચાર ભેદવાળું પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે

तारः=समवतारो विचारणीयत्वेन यस्य तत्तथोक्तं, प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–आज्ञाविचयम्=आ–अभिविधिनाऽर्था ज्ञायन्तेऽनया साऽऽज्ञा=सर्वज्ञप्रवचनं, सा विचीयते यस्मिन्नित्याज्ञाविचयं धर्मध्यानम्, "आज्ञा विजयम्" इतिच्छायापक्षे तु–आज्ञा विजीयते–अधिगमद्वारेण परिचीयते यस्मिन्निति तथाभूतम् १,

अपायविचय, विपाकविचय, और संस्थानविचय आज्ञा अपाय विपाक और संस्थान, इनकी विचारणा के निमित्त जो मन को एकाग्र करना होता है वह धर्मध्यान है इन निमित्तों के भेद से ये धर्मध्यान के ४ भेद हुवे हैं। आज्ञाविचय में आ–ज्ञा–विचय ऐसे ये तीन शब्द हैं, आ–अभिविधि अर्थ में प्रयुक्त हुवा है। जिसके द्वारा अभिविधि (विधि पूर्वक) पदार्थ जाने जाते हैं वह आज्ञा है ऐसी वह आज्ञा सर्वज्ञ प्रवचनरूप यहां गृहीत हुई है जिस ध्यान में यह सर्वज्ञ प्रवचनरूप आज्ञा विचारी जाती है ऐसा वह ध्यान आज्ञाविचय नाम का धर्मध्यान है। किसी भी पदार्थ का विचार करते समय ऐसा मनन करना कि इस विषय में जो जिनदेव की आज्ञा है वह प्रमाण है, अथवा ऐसा पता लगाने के लिये कि–वीतराग तथा सर्वज्ञ पुरुष की क्या आज्ञा है २ और कैसी होनी (भी) चाहिये इसकी परीक्षा करने के लिये जो मनोयोग दिया जावेगा वह आज्ञाविचय धर्मध्यान है। ऐसा यह अर्थ "आज्ञा-

ધર્મધ્યાનના ચાર ભેદ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) આજ્ઞાવિચય (૨) અપાયવિચય, (૩) વિપાક વિચય અને (૪) સંસ્થાન વિચય એટલે કે આજ્ઞા, અપાય, વિપાક અને સંસ્થાનની વિચારણા નિમિત્તે મનને જે એકાગ્ર કરવામાં આવે છે, તે એકાગ્રતાનું નામ જ ધર્મધ્યાન છે આ નિમિત્તોના ભેદથી તેના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે

આ + જ્ઞા + વિચય = આજ્ઞાવિચય "આ" અભિવિધિ અર્થમાં પ્રયુક્ત થયો છે 'જ્ઞા' એટલે જાણવુ જેના દ્વારા પદાર્થને વિધિપૂર્વક જાણી શકાય છે, તેનુ નામ "આજ્ઞા" છે. એવી તે આજ્ઞાને અહીં સર્વજ્ઞપ્રવચન રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે જે ધ્યાનમાં આ સર્વજ્ઞપ્રવચન રૂપ આજ્ઞાનો વિચાર કરવામાં આવે છે, એવા ધ્યાનને આજ્ઞાવિચય નામનું ધર્મધ્યાન કહે છે. અથવા–કોઈ પણ પદાર્થનો વિચાર કરતી વખતે એવું મનન કરવું કે આ વિષયમાં જિનદેવની જે આજ્ઞા છે, એ જ પ્રમાણભૂત છે, અથવા તે વિષે સર્વજ્ઞ પુરુષની શી આજ્ઞા છે અથવા શી આજ્ઞા હોવી જોઇએ તેની ખાતરી કરવા માટે મનમાં જે વિચારધારા (પ્રણિધાન) ચાલુ થાય છે તેને જ આજ્ઞા

" अपायविचयम् "-अपाया-विपदः शारीरमानसानि दुःखानीत्यर्थः, ते विचीय-ते-पर्यालोच्य-तेऽस्मिन्निति अपायविचयम् = प्राणिनां रागद्वेषादिजनितै हिकपारलौकिकानर्थविचाराऽऽश्रयीभूतम् २,

" विपाकविचयम् " -विशिष्टः पाको विपाकः-ज्ञानावरणीयादि कर्मणां फलं, स विचीयतेऽस्मिन् तथाभूतम्-कर्मफलविवेचनाऽऽश्रयीभूतमित्यर्थः ३,

विचय " इस छाया पक्ष को आश्रित करके किया गया है, शारीरिक एवं मानसिक दुःखों का नाम अपाय है ये अपाय जिसमें पर्यालोचित होते हैं एसा वह ध्यान अपायविचय धर्मध्यान है। अर्थात् इन शारीरिक एव मानसिक कष्टों से छुटकारा कैसे हो इस विचार में मनोयोग देना यह द्वितीय भेद धर्मध्यान का है। तात्पर्य इसका ऐसा है कि जीवों को जो शारीरिक एव मानसिक दुःखादि होते हैं वे केवल रागद्वेष आदि से होते हैं और ये रागद्वेष आदि सब इस जीव को इस लोक में और परलोक में अनर्थ उत्पादक होते हैं इस प्रकार का विचारवाला धर्मध्यान का द्वितीय भेद होता है। अथवा-जो सन्मार्ग पर न होकर मिथ्यामार्ग पर स्थित है उसका मिथ्यामार्ग से छुटकारा कैसे हो? इस दिशा में सतत विचार करना यह भी उपायविचय धर्मध्यान है। विशिष्ट परिशीलन (विपाक) का नाम विपाक है अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि

વિચય ધર્મધ્યાન કહે છે ' આજ્ઞા વિજય " આ પ્રકારની આજ્ઞાવિચયની સંસ્કૃત છાયાને આધારે આ અર્થ નક્કી કરવામાં આવ્યા છે

શારીરિક અને માનસિક દુઃખોનુ નામ અપાય ' છે તે અપાયનું જે ધ્યાનમાં પ્રણિધાન (ચિન્તન) કરવામાં આવે છે, તે ધ્યાનને અપાયવિચય ધર્મધ્યાન કહે છે. એટલે કે આ શારીરિક અને માનસિક દુઃખોમાંથી કેવી રીતે મુક્ત થઈ શકાય તેનો વિચાર કરવામાં ચિત્તને એકાગ્ર કરવુ તેનુ નામ અપાયવિચય ધર્મધ્યાન છે આ અપાયવિચય ધર્મધ્યાનમાં જીવને એવો વિચાર થયા કરે છે કે ' રાગદ્વેષ આદિને કારણે જ આ શારીરિક અને માનસિક દુઃખો ઉત્પન્ન થાય છે આ રાગદ્વેષ જ આલોક અને પરલોકમાં જીવનું અકલ્યાણ કરે છે તેને કારણે જ અનેક પ્રકારના અનર્થ પેદા થાય છે " આ પ્રકારનું જે ધ્યાન છે તેને પણ અપાયવિચય ધર્મધ્યાન કહે છે અથવા-જે જીવ સન્માર્ગને બદલે મિથ્યામાર્ગે ચડેલો હોય, એવો જીવ મિથ્યામાર્ગેથી છૂટવાને માટે મનમાં જે સતત વિચાર કર્યા કરે છે તેને પણ અપાયવિચય ધર્મધ્યાન કહે છે

"संस्थानविचयम्" इति-संस्थानानि-लोकस्य द्वीपसमुद्राणां चाऽऽकार-विशेषाः, तानि विचीयन्ते-चिन्त्यन्तेऽत्रेति तथाभूतं धर्म्यध्यानम् ४। उक्तं चात्र-

"आप्तवचनं प्रवचनमाज्ञाविचयस्तदर्थनिर्णयम् ।
आश्रवविकथागौरव परिषहाद्यैरपायस्तु । १ ।
अशुभशुभकर्मपाकानुचिन्तनार्थो विपाकविचयः स्यात् ।
द्रव्यक्षेत्राकृत्यनुगमनं संस्थानविचयस्तु । २ ।" इति ।

अथ धर्म्यध्यानलक्षणान्याह—"धम्मस्स इत्यादि-धर्मस्य खलु ध्यानस्य

कर्मों के फल का जिसमें विचार होता है ऐसा वह ध्यान विपाक विचय है तात्पर्य इसका ऐसा है कि अनुभव में आने वाले विपाकों में से कौन कौनसा विपाक किस किस कर्म का फल है, तथा अमुक कर्म का अमुक विपाक संभव है इस प्रकार के विचारार्थ लगाना, अथवा-द्रव्य, क्षेत्र काल भव और भाव इनकी अपेक्षा कर्म कैसे कैसे फलों को देते हैं इसका सतत विचार करना यह विपाकविचय है। संस्थानविचय लोक का और द्वीपसमुद्रों का जो आकार विशेष है उसका नाम संस्थान है ये संस्थान जिस ध्यान में सतत विचारे जाते हैं वह ध्यान संस्थान विचय नाम का धर्मध्यान है तात्पर्य यह है कि-लोक आदि का स्वरूप विचार करने में मनोयोग देना इसका नाम संस्थान विचय है। कहा भी है "आप्तवचनम्" इत्यादि, आज्ञारुचि आदि जो इसके चार लक्षण

વિશિષ્ટ પરિશીલન (ફળ) નુ નામ વિપાક છે. એટલે કે જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના ફળને જેમાં વિચાર થાય છે, એવા ધ્યાનને વિપાકવિચય ધર્મ ધ્યાન કહે છે. આ કથનને ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-જે જે વિપાકને અનુભવ કરવામાં આવે તે તે વિપાકને અનુલક્ષીને એવો વિચાર કરવો કે કયા કર્મના ફલસ્વરૂપે હુ આ વિપાક (ફલ) અનુભવી રહ્યો છું, તથા અમુક કર્મને અમુક વિપાક સંભવી શકે છે, આ પ્રકારના વિચારમાં મનને એકાગ્ર કરવું તેનું નામ વિપાકવિચય ધર્મધ્યાન છે અથવા-દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભવ અને ભાવની અપેક્ષાએ કર્મ કેવાં કેવાં ફળ આપે છે તેનો સતત વિચાર કરવો તેનું નામ વિપાકવિચય ધર્મધ્યાન છે "સંસ્થાનવિચય" લોકનો તથા દ્વીપ સમુદ્રોના જે આકારવિશેષ છે, તેનું નામ સંસ્થાન છે. જે ધ્યાનમાં તે સંસ્થાનનો સતત વિચાર કરવામાં આવે છે, તે ધ્યાનને સંસ્થાનવિચય ધર્મધ્યાન કહે છે. એટલે કે લોક આદિના સ્વરૂપનો વિચાર કરવામા મનને એકાગ્ર કરવું તેનું નામ 'સંસ્થાનવિચય' છે. કહ્યું પણ છે કે-"આપ્તવચનમ્' ઇત્યાદિ—

चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आज्ञारुचिः–आज्ञायाम्–अथ सूत्रतदुभयव्याख्यानलक्षणायां रुचिः–श्रद्धा=आज्ञारुचिः यद्वा–आज्ञया रुचिराज्ञारुचिः १।
"निसर्गरुचिः"—निसर्गेण–स्वभावेन रुचिर्निसर्गरुचि २,
"सूत्ररुचिः"–सूत्र–सर्वज्ञप्रणीत आगमस्तत्र तस्माद्वा रुचिः सूत्ररुचिः ३,
"अवगाढरुचि"—अवगाहनमवगाढ=द्वादशाङ्गावगाहन, तेन रुचिरवगाढरुचिः, यद्वा अवगाढः=साधुमत्यासन्नस्तस्य रुचि=साधूपदेशाच्छ्रद्धा अवगाढरुचिः उक्तञ्च—"आगमउवएसेणं, निसग्गओ जं जिणप्पणीयाणं।
मावाणं सद्दहणं, धम्मज्झाणस्स त लिंगं। १।" इति
छाया—"आगमोपदेशेन निसर्गतो यज्जिनप्रणीतानाम्।
भावानां श्रद्धानं धर्मध्यानस्य तल्लिङ्गम्।" इति ४।
अथ धर्मध्यानस्याऽऽलम्बनान्याह–'धम्मस्स' इत्यादि—
धर्म्यस्य खलु ध्यानस्य चत्वार्यालम्बनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–'वायना' वाचनं वाचना–विनीतशिष्याय कर्मनिर्जरणार्थं सूत्रोपदेशदानादि १,
"पडिपुच्छना"–प्रतिप्रच्छनं प्रतिप्रच्छना=पूर्वाधीते शङ्किते सूत्रादौ शङ्कि वारणाय गुरु प्रति प्रच्छनम् २,

कहे गये हैं उनका अभिप्राय ऐसा है, आज्ञा में अर्थ सूत्र और तदुभय में श्रद्धा रखना, अथवा भगवान् की आज्ञा में रुचि होना यह आज्ञा रुचि है १। स्वभावतः जो अर्थ सूत्र आदि में रुचि होती है, वह निसर्गरुचि है २। सर्वज्ञ प्रणीत आगम से, या आगम में जो रुचि होती है वह सूत्र रुचि है ३। साधु के उपदेश से जो रुचि होती है वह अवगाढ रुचि है ४। कहा भी है–"आगम उवएसेण" इत्यादि १ धर्मध्यान के आलम्बन चार हैं वाचना १ विनीत शिष्य के लिये कर्मनिर्जरार्थ सूत्रोपदेश आदि देना यह वाचना है। पूर्वाधीत सूत्र में शङ्कित स्थल

ધર્મધ્યાનના આજ્ઞા-રુચિ આદિ જે ચાર લક્ષણો કહ્યાં છે તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—(૧) અર્થ, સૂત્ર અને તદુભયમાં (તે બન્નેમાં) શ્રદ્ધા રાખવી, અથવા ભગવાનની આજ્ઞામાં રુચિ હોવી તેનું નામ આજ્ઞારુચિ છે (૨) અર્થ, સૂત્ર આદિમાં સ્વભાવતઃ જે રુચિ હોય છે તેનું નામ નિસર્ગરુચિ છે (૩) સર્વજ્ઞ પ્રણીત આગમ પ્રત્યે જે રુચિ હોય છે, તેનું નામ સૂત્રરુચિ છે (૪) સાધુના ઉપદેશ પ્રત્યે જે રુચિ હોય છે, તેનું નામ અવગાઢરુચિ છે કહ્યું પણ છે કે–"આગમઉવએસેણં" ઇત્યાદિ—

ધર્મધ્યાનના આલંબન (આધાર) ચાર છે–(૧) "વાચના" વિનીત શિષ્યને કર્મનિર્જરાર્થે સૂત્રોપદેશ આદિ દેવું તેનું નામ વાચના છે (૨) પહેલાં જેનું અધ્યયન કર્યું હોય એવા સૂત્રમાં જે જે શંકાઓ ઉદ્ભવે તે તે શંકાઓ ગુરુ પાસે પ્રશ્નરૂપે પ્રકટ કરીને તેમનું નિવારણ કરવું તેનું નામ પ્રચ્છના છે. (૩) પૂર્વાધીત સૂત્ર વિસ્મૃત થઈ ન જાય તે માટે ફરી ફરીને તેનું પાન કરતા રહેવું તેનું નામ પરિવર્તના છે (૪) સૂત્રાર્થ સંબંધી વિચારને અનુપ્રેક્ષા

" परिवर्तना "-पूर्वाधीतसूत्रादेरविस्मरणार्थमभ्यासः ३,

" अनुप्रेक्षा "-अनु-पश्चात् प्रेक्षणं प्रेक्षा=पर्यालोचनमनुप्रेक्षा=सूत्रार्थानुस्मरणम् ४।

अथानुप्रेक्षायाश्चतुरो भेदानाह-" धम्मस्स " इत्यादि-धर्म्यस्य खलु ध्यानस्य चतस्रोऽनुप्रेक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एकानुप्रेक्षा-अनन्तरोक्तरीत्याऽऽत्मन एकस्य-एकाकिनोऽसहायस्येत्यर्थः, अनुप्रेक्षा=भावना=एकानुप्रेक्षा, सा चैवम्—

" एगोऽहं नत्थिमे कोई, नाहमन्नस्स कस्सवि ।
न तं पस्सामि जस्साहं, णासू भावोति जो मम ।१। " इति,

छाया—" एकोऽहं नास्ति मे कश्चित्,-नाहमन्यस्य कस्यचित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं, नासौ भावीति यो मम । १ । " इति, १,

तथा-" अनित्यानुप्रेक्षा "-अनित्यस्य जीवितादेरनुप्रेक्षा=भावनाऽनित्यानुप्रेक्षा, सा चैवम्—

" कायः सन्निहितापायः, सम्पदः पदमापदाम् ।
समागमाः सापगमाः, सर्वमुत्पादि भङ्गुरम् ।१। " इति, २,

को गुरु से पूछना और उस शङ्का को दूर करना इसका नाम प्रच्छना है २। पूर्वाधीत सूत्र विस्मृत न हो जाय इस निमित्त से पुनः पुनः उसका अभ्यास करना परिवर्तना है (३) सूत्रार्थका पुनः पुनः विचार करते रहना इसका नाम अनुप्रेक्षा ४ है ।

इस अनुप्रेक्षा के चार भेद हैं, जैसे-एकानुप्रेक्षा आत्मा एक है असहाय ऐसी भावना रखना इसका नाम एकानुप्रेक्षा है वह एकानुप्रेक्षा इस प्रकारसे है-" एगोऽहं नत्थि मे कोई " इत्यादि संसार के जितने भी पदार्थ हैं वे सब पर्यायदृष्टि से अनित्य है ऐसी भावना का नाम अनित्यानुप्रेक्षा है ।

कहा है-" कायः सन्निहिताऽपायः " इत्यादि इस संसार में मेरे

કહે છે. તે અનુપ્રેક્ષાના પણ ચાર ભેદ છે-(૧) એકાનુપ્રેક્ષા-આત્મા એક છે, અસહાય છે એવી ભાવના રાખવી તેનું નામ એકાનુપ્રેક્ષા છે તે એકાનુપ્રેક્ષા આ પ્રકારની કહી છે-" एगोऽहं नत्थि मे कोई " ઈત્યાદિ-(૨) સંસારના જેટલા પદાર્થો છે તે બધાં પર્યાયદૃષ્ટિએ અનિત્ય છે એવી ભાવનાનું નામ અનિત્યાનુપ્રેક્ષા છે. કહ્યુ પણ છે કે-" कायः सन्निहिताऽपायः " ઈત્યાદિ. (૩)

तथा " अशरणानुप्रेक्षा "—अशरणस्य=त्राणरहितस्याऽऽत्मनोऽनुप्रेक्षा=भावनाऽशरणानुप्रेक्षा, सा चैवम्—

" जन्मजरामरणभयैरभिद्रुते व्याधिवेदनाग्रस्ते ।
जिनवरवचनाद् यत्र नास्ति शरणं क्वचिल्लोके ।१। " इति ३,

तथा=" संसारानुप्रेक्षा "—संसारः—चतसृषु गतिषु सर्वावस्थासु जीवानां सरणं—गमनं भ्रमणं, तस्यानुप्रेक्षा=भावना संसारानुप्रेक्षा, सा चैवम्—

" माता भूत्वा दुहिता भगिनी भार्या च भवति संसारे ।
व्रजति सुतः पितृतां भ्रातृतां पुनः शत्रुतां चैव ।१। " इति ४।

अथ चतुर्विधं शुक्लध्यानमाह—" सुक्के " इत्यादि—शुक्लध्यानं चतुर्विधं चतुष्प्रत्यवतारं—चतुर्षु=भेद—लक्षणा—ऽऽलम्बना—ऽनुप्रेक्षारूपेषु पदार्थेषु प्रत्यवतारः=समवतारो विचारणीयत्वेन यस्य तत्तथोक्तम्, प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—" पृथ

आत्मा का कोई भी रक्षक नहीं है ऐसा विचार करना इसका नाम अशरणानुप्रेक्षा है। कहा भी है—" जन्म जरा " इत्यादि यह जीव कर्म वश होकर चार गतिरूप इस संसार में परिभ्रमण कर रहा है ऐसा विचार करना इसका नाम संसाराऽनुप्रेक्षा है। कहा भी है—" माता भूत्वा " इत्यादि ? ४ संसारानुप्रेक्षा में ऐसा कोई भी पर्याय नहीं बचा है कि—जहां आत्मा का जन्म मरण नहीं हुआ है ऐसा विचार प्रधान रहता है यही बात इस श्लोक में कही है। भेद लक्षण आलम्बन और अनुप्रेक्षा रूप चार पदार्थो में विचारणीयरूप होने से जिसका समवतार हुआ है ऐसा यह शुक्लध्यान भी चार प्रकार का कहा गया है। उसके

આ સંસારમાં આત્માનો કોઈ રક્ષક નથી, એ પ્રકારની ભાવના રાખવી તેનું નામ અશરણાનુપ્રેક્ષા છે. કહ્યું પણ છે–" જન્મ જરા " ઇત્યાદિ (૪) આ જીવ કર્મને અધીન રહીને ચાર ગતિવાળા સંસારમાં પરિભ્રમણ કરી રહ્યો છે, એવો વિચાર કરવો તેનું નામ સંસારાનુપ્રેક્ષા છે કહ્યું પણ છે કે–' માતા ભૂત્વા " ઇત્યાદિ. " એવી કોઈ પણ પર્યાય નથી કે જ્યાં આત્માએ જન્મ-મરણ અનુભવ્યા ન હોય, " આ પ્રકારની ભાવના સંસાર અનુપ્રેક્ષામાં પ્રધાન રહે છે એ જ વાત ' માતા ભૂત્વા ' ઇત્યાદિ શ્લોકમાં પ્રકટ કરવામાં આવી છે

હવે શુક્લધ્યાનનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે–ભેદ, લક્ષણ, આલમ્બન અને અનુપ્રેક્ષારૂપ ચાર આલંબનોની અપેક્ષાએ વિચારણીય હોવાથી તેના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે શુક્લધ્યાનના પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર આદિ ચાર પ્રકારનું હવે નિરૂપણ કરવામાં આવે છે–

क्त्ववितर्कं सविचारम् " पृथक्-भिन्नम्, तस्य भावः पृथक्त्वम्-भेदोऽनेकत्वमित्यर्थः, तेन सह गतो वितर्कः=पूर्वगतश्रुताऽऽलम्बनो नानानयानुसरणरूपो विकल्पो यत्र तत् तथा, एवं च " पृथक्त्ववितर्कम् "=एकद्रव्याश्रितानामुत्पादव्ययध्रौव्यरूपपर्यायाणामनेकत्वेन विकल्पाश्रयीभूतं च तत्, " सविचारम् "-विचरणं विचारः, स चार्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिरूपः, तत्रार्थः=परमाण्वादिः, व्यञ्जन-व्यञ्जयति-अर्थं प्रकटयतीति व्यञ्जनम्=अर्थप्रकाशकं पदं, शब्दो वाचक इति पर्यायाः, योगाः-मनोवाक्कायरूपास्तेषु संक्रान्तिः-संक्रमणम् अन्यतमस्मादन्यतमस्मिन्नेकद्रव्ये गमनं, तेन सह वर्तत इति सविचारं चेति तथोक्तम् उक्तंच-

" उप्पायठिइभंगाइ पज्जयाणं जमेगदव्वंमि ।
नाणानयानुसरणं पुव्वगयसुयाणुसारेणं । १ ।

ये प्रकार ये हैं पृथक्त्व वितर्क सविचार आदि इस पृथक्त्ववितर्क सविचार में श्रुतज्ञान का आलम्बन लेकर विविध दृष्टियों से विचार किया जाता है इसलिये तो यह पृथक्त्ववितर्क हुवा है? और इसमें अर्थ व्यञ्जन तथा संक्रमण होता रहता है इसलिये यह विचार सहित हुवा इस प्रकार इस ध्यान का पूरा नाम " पृथक्त्ववितर्कसविचार " पडा है। इसी बात को टीकाकार ने पृथक् भिन्नम् तस्य भावः पृथक्त्वम्, भेदोऽनेकत्वम्, वितर्कः पूर्वगत श्रुतालम्बनः नानानयाऽनुरूपः विकल्पोयत्र तत् तथा, इत्यादि पदों द्वारा प्रगट किया है। वितर्क नाम श्रुत का है और अर्थसंक्रान्ति, व्यञ्जनसंक्रान्ति और योगसंक्रान्ति का नाम विचार है, इस प्रकार विचार और वितर्क का अर्थ समझ कर इन भेदों

આ પૃથકત્વવિતર્ક સવિચારમાં શ્રુતજ્ઞાનનો આધાર લઈને વિવિધ દૃષ્ટિઓથી વિચાર કરવામા આવે છે, તેથી તેને પૃથકત્વવિતર્ક રૂપે પ્રકટ કર્યું છે. અને તેમા અર્થ, વ્યંજન આદિની અપેક્ષાએ સંક્રમણ થતું જ રહે છે, તેથી તે 'વિચારસહિત' વિશેષણ લગાડવાને પાત્ર બન્યુ છે આ રીતે આ ધ્યાનનું પૂરૂં નામ 'પૃથકત્વવિતર્ક સવિચાર' પડયું છે. એ જ વાતને સૂત્રકારે આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે—

" पृथक्-भिन्नम् तस्य भावः पृथक्त्वम् भेदोऽनेकत्वम्, वितर्कं पूर्वगत श्रुतालम्बन नानानयाऽनुरूप-विकल्पो यत्र तत्तथा " ઇત્યાદિ.

વિતર્ક એટલે શ્રુત એટલે અર્થ સંક્રાન્તિ, વ્યજન સંક્રાન્તિ અને યોગ સંક્રાન્તિનુ નામ વિચાર છે આ પ્રમાણે વિચાર અને વિતર્કનો ભેદ સમજાવવામાં આવે તો આ ભેદોનું સ્પષ્ટીકરણ થઈ જાય છે. કહ્યું પણ છે કે—

सवियारमत्थ वञ्जण जोगंतरओ तय पढमसुक्कं ।
होइ पुहुत्तवियक्कं, सवियारमरागभावस्स । २ । " इति,
छाया—" उत्पादस्थितिभङ्गादि पर्यायाणां यदेकद्रव्ये ।
नानानयानुसरणं पूर्वगतश्रुतानुसारेण । १ ।
सविचारमर्थव्यञ्जनयोगान्तरतस्तत् प्रथमशुक्लम् ।
भवति पृथक्त्ववितर्कं सविचार मरागभावस्य । २ । " इति
इति शुक्लध्यानस्य प्रथमो भेदः

का स्पष्टीकरण हो जाता है । उक्तञ्च-" उप्पाय ठिई भंगाई " इत्यादि इस कथन का तात्पर्य यह है-कि जब उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी पर आरोहण करनेवाला कोई एक पूर्वज्ञानधारी मनुष्य श्रुतज्ञान के बल से किसी भी परमाणु आदि जड या आत्मरूप चेतनद्रव्य का चिन्तन करता है और ऐसा करते हुये वह उसका द्रव्यार्थिकदृष्टि से या पर्यायार्थिक दृष्टि से चिन्तन करता है। द्रव्यास्तिकदृष्टि से चिन्तन करता हुवा वह पुद्गलादि विविध द्रव्यों में किस दृष्टि से साम्य है और इनके अवान्तर भेद भी किस प्रकार से हो सकते हैं इत्यादि बातों का विचार करता है। पर्यायार्थिकदृष्टि से विचार करता हुवा वह उनकी वर्तमान कालिक विविध अवस्थाओं का विचार करता है। और श्रुतज्ञान के आधार से कभी वह जीव किसी एक द्रव्यरूप अर्थ पर से दूसरे द्रव्य रूप अर्थ पर एक द्रव्यरूप अर्थ पर से किसी एक पर्यायरूप अर्थ पर एक पर्यायरूप अर्थ पर से दूसरे पर्यायरूप अर्थ पर या एक पर्यायरूप

ઉપ્પાય ઠિઈ ભંગાઇ " ઇત્યાદિ—

આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-ઉપશમ શ્રેણી ક્ષપક શ્રેણીપર આરોહણ કરનારો કોઈ એક પૂર્વજ્ઞાનધારી મનુષ્ય શ્રુતજ્ઞાનને આધારે કોઈ પણ પરમાણુ આદિ જડનું અથવા આત્મારૂપ ચેતનદ્રવ્યનું ચિન્તન કરે છે અને એવું કરતો તે મનુષ્ય તેનું દ્રવ્યાર્થિક દૃષ્ટિથી કે પર્યાયાર્થિક દૃષ્ટિથી ચિન્તન કરે છે દ્રવ્યાર્થિક દૃષ્ટિએ વિચાર કરતી વખતે તે પુદ્ગલાદિ દ્રવ્યોમાં કઇ દૃષ્ટિએ સામ્ય છે અને તેમના અવાન્તર ભેદો (પ્રભેદો) પણ કઇ રીતે થઇ શકે છે, ઇત્યાદિ વાતોનો વિચાર કરે છે પર્યાયાર્થિક દૃષ્ટિએ જ્યારે તે તેમનો વિચાર કરે છે ત્યારે તે તેમની વર્તમાનકાલિક વિવિધ અવસ્થાઓનો વિચાર કરે છે અને શ્રુતજ્ઞાનને આધારે તે જીવ ક્યારેક એક દ્રવ્યરૂપ અર્થપરથી બીજા અર્થ પર, એક દ્રવ્યરૂપ અર્થપરથી કોઈ એક પર્યાયરૂપ અર્થપર, એક પર્યાયરૂપ અર્થપરથી બીજી પર્યાયરૂપ અર્થપર અથવા એક પર્યાયરૂપ અર્થપરથી કોઈ

" एगत्तवियक्क " इत्यादि–एकत्ववितर्कऽविचारम्–एकस्य भाव एकत्वं, तेनैकत्वेन=अभेदेनोत्पादव्ययध्रौव्यादि पर्यायाणामन्यतमैकपर्यायाऽऽलम्बनतया, वितर्कः=पूर्वगतश्रुताश्रयो व्यञ्जनरूपो वा यस्य तदेकत्ववितर्कं, तच्च तद् अविचारम्–अविद्यमानो विचार=अर्थव्यञ्जनयोगानामन्यतमस्मादन्यतमस्मिन् संक्रान्तिरूपो निर्वातस्थानस्थित–दीपवद् यस्मिन् तदविचारमिति तत्तथोक्तम्, उक्तं च–

अर्थ पर से किसी एक द्रव्यरूप अर्थ पर ज्ञानधारा को संक्रमित करके चिन्तन के लिये प्रवृत्त होता है। इसी प्रकार कभी अर्थ पर से व्यञ्जन –अर्थ प्रकाशक शब्द पर और शब्द पर से अर्थ पर या–किसी एक शब्द पर से दूसरे शब्द पर चिन्तन के लिये प्रवृत्त होता है तथा–ऐसा करता हुवा यह कभी मनोयोग आदि तीनों मे से किसी एक योग का आलम्बन लेताहै और–फिर उसे छोडकर अन्ययोग का आलम्बन लेताहै तब उसको होनेवाला वह ध्यान पृथक्त्ववितर्कसविचार कहा जाता है। " एगत्तवियक्क " इत्यादि जिस ध्यान में पूर्वगत श्रुत के आधार से उत्पात आदि किसी एक पर्याय को या द्रव्य का ही चिन्तवन किया जाता है और चिन्तवन करते समय वह जिस द्रव्य या–पर्याय या शब्द, या योग का आलम्बन किये रहता है वह जिसमें नहीं बदलता है ऐसा वह ध्यान एकत्ववितर्कसविचार कहा गया है। जिस प्रकार निर्वात स्थान में रखा हुवा दीपक अविचलित शिखा होता है उसी प्रकार से

એક દ્રવ્યરૂપ અર્થ પર જ્ઞાનધારાને સંક્રમિત કરીને ચિન્તનને માટે પ્રવૃત્ત થાય છે. એ જ પ્રમાણે ક્યારેક અર્થ પરથી વ્યંજન (અર્થ પ્રકાશક શબ્દ) પર, અને શબ્દપરથી અર્થપર, અથવા કોઈ એક શબ્દપરથી બીજા શબ્દ પર ચિન્તનને માટે પ્રવૃત્ત થાય છે. તથા એવું કરતો તે મનુષ્ય ક્યારેક મનોયોગ આદિ ત્રણે યોગોમાંથી કોઈ એક યોગનુ આલંબન (અવલંબન–આધાર) લે છે, વળી તેને છોડી દઈને અન્ય યોગનુ આલમ્બન લે છે, વળી તેને છોડીને બીજા કોઈ યોગનો આધાર લે છે. ત્યારે તેના દ્વારા જે સતત ચિન્તન કરવામાં આવે છે તેને ' પૃથકત્વ વિતર્ક સવિચાર ' કહે છે

" एगत्त वियक्क " ઈત્યાદિ—

જે ધ્યાનમાં પૂર્વગત શ્રુતને આધારે ઉત્પાત આદિ કોઇ એક પર્યાયનું અથવા દ્રવ્યનું જ ચિન્તવન કરવામાં આવે છે, અને તે ચિન્તવન કરતી વખતે તે જીવે જે દ્રવ્ય કે પર્યાય કે શબ્દ અથવા યોગનુ આલમ્બન લીધું હોય તે જેમાં બદલતો નથી, એવા ધ્યાનને ' એકત્વ વિતર્ક સવિચાર ' કહે છે. જેવી રીતે નિર્વાત સ્થાનમાં રાખેલા દીપકની જ્યોત અવિચલિત રહે છે, એ જ

" जं पुण सुनिप्पकंपं निवायठाणप्पईवमिव चित्तं ।
उप्पायठिइ मंगाइयाणमेगंमि पज्जाए । १ ।
अवियारमत्थवंजणजोगंतरओ तयं बिइयसुक्कं ।
पुव्वगयसुयालंबणमेगत्तवियक्कमवियारं । " इति,
छाया—" यत्पुनः सुनिष्प्रकम्पं निवातस्थानप्रदीप इव चित्तम् ।
उत्पादस्थितिभङ्गादीनामेकस्मिन् पर्याये ।१।
अविचारमर्थव्यञ्जनयोगान्तरतस्तद् द्वितीयं शुक्लम् ।
पूर्वगतश्रुताऽऽलम्बनमेकत्ववितर्कमविचारम् । " इति,
इति शुक्लध्यानस्य द्वितीयो भेदः । २ ।

तथा-" सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति "-सूक्ष्मा-कायिकयुच्छ्वासादिका क्रिया यस्मिं स्तत् सूक्ष्मक्रियम्, एतद् निर्वाणगमनकाले निरुद्धमनोवाग्योगस्यार्द्धनिरुद्धकाय

इसमें ध्यानी का ध्यान एकसी [समान] चलता है । कहा है-" जं पुण सुनिप्पकपं-" इत्यादि ?

तात्पर्य-इसका ऐसा है कि जब जीव क्षीणमोह गुणस्थान को प्राप्त होकर श्रुतरूप वितर्क के आधार से किसी एक द्रव्य या पर्याय का चिन्तन करता है और-चिन्तवन करते समय जो अर्थ, व्यञ्जन या योग का अवलम्बन लिये था उसमें संक्रमण होता नहीं है इस ध्यान के बलसे यह जीव घातिक कर्मों की शेष (सपूर्ण) प्रकृतियोंका विनाश कर केवलज्ञान प्राप्त करता है । इस प्रकार से यह द्वितीय शुक्लध्यान का स्वरूप है "सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति" जिस ध्यान में कायिकी क्रिया उच्छ्वास आदिक सूक्ष्म रहती है अर्थात् सर्वज्ञ देव योग निरोध करते

પ્રમાણે આ પ્રકારના ધ્યાનીના ધ્યાનની ધારા એક સરખી વહેતી રહે છે. કહ્યુ પણ છે કે-' जं पुण सुनिप्पकंप " ઇત્યાદિ. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જ્યારે જીવ ક્ષીણમોહ ગુણસ્થાનને પ્રાપ્ત કરીને શ્રુતરૂપ વિતર્કને આધારે કોઈ એક દ્રવ્ય અથવા પર્યાયનું ચિન્તન કરે છે, અને ચિન્તન કરતી વખતે તેણે જે અર્થ, વ્યંજન કે યોગનું અવલમ્બન લીધુ હોય તેમાંથી સંક્રમણ કરતો નથી, ત્યારે તેના તે ધ્યાનને "એકત્વ વિતર્ક શુકલ ધ્યાન" કહે છે આ ધ્યાનના પ્રભાવથી જીવ ઘાતિકર્મોની શેષ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરીને કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે. આ પ્રકારના શુકલધ્યાનનું આ બીજા પ્રકારનું સ્વરૂપ છે

" सूक्ष्मक्रिया ऽ निवर्ति-જે ધ્યાનમાં ઉચ્છ્વાસ આદિ કાયિકીક્રિયા સૂક્ષ્મ રહે છે-એટલે કે સર્વજ્ઞ દેવ યોગનિરોધ કરતી વખતે બીજા બધા યોગોનો

योगस्य केवलिनो भवति, तच्च तद् " अनिवर्ति "-निवर्तत इत्येवं शीलं निवर्ति, न निवर्ति=अनिवर्ति=प्रवर्धमानतरपरिणामादव्यावर्ति चेति तत्तथोक्तम्, उक्तं च-

" निव्वाणगमणकाले, केवलिणो दरनिरुद्धजोगस्स ।
सुहुमकिरियाऽनियट्टिं, तइयं तणुकायकिरियस्स ।१। " इति,

छाया—" निर्वाणगमनकाले, केवलिनोऽर्द्धनिरुद्धयोगस्य ।
सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति तृतीयं तनु (सूक्ष्म) कायक्रियस्य ।१। " इति,

इति शुक्लध्यानस्य तृतीयो भेदः । ३ ।

" समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति "-समुच्छिन्ना=प्रक्षीणा क्रिया = कायादिव्यापाररूपा शैलेशीकरणे निरुद्धयोगत्वेन यस्मिंस्तत् समुच्छिन्नक्रियं, तच्च तद्

हुवे दूसरे सब योगों का अभाव कर सूक्ष्म काययोग को प्राप्त होते हैं तब सूक्ष्मक्रियाअनिवर्ति ध्यान होता है, तब कायवर्गणाओं के निमित्त आत्म प्रदेशोंका अति सूक्ष्म परिस्पन्द शेष रहताहै इसलिये-इसका नाम सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति ध्यान है। यह ध्यान निर्वाणगमन काल में मन वचन योग का निरोध हो जाने पर और काययोग का अर्ध निरोध होने पर केवली जीव को होता है। यह ध्यान होकर छूटता नहीं है क्यों कि-इसमें प्रवर्द्धमानतर परिणाम होने से अव्यावर्ति यह अनिवर्तिरूप कहा गया है। उक्तं च-" निव्वाणगमणकाले-" इत्यादि " समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति " शैलेशीकरण में निरुद्ध योग होने के कारण जिस ध्यान में कायिक आदि व्यापाररूप क्रिया समुच्छिन्न बिलकुल क्षीण हो जाती है-और यह ध्यान अप्रतिपाति होता है प्रतिपतन

અભાવ કરીને માત્ર સૂક્ષ્મકાય યોગમાં જ પ્રવૃત્ત રહે છે, ત્યારે સૂક્ષ્મક્રિયા નિવર્તિધ્યાન થાય છે. ત્યારે કાયવર્ગણાઓના નિમિત્તરૂપ આત્મપ્રદેશોનો અતિ સૂક્ષ્મ પરિસ્પન્દ જ બાકી રહે છે, તેથી તેનું નામ 'સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્તિધ્યાન' પડયું છે. નિર્વાણગમન કાળે મનવચન યોગનો નિરોધ થઈ જવાથી અને કાયયોગનો અર્ધનિરોધ થઈ જવાથી કેવલીનો જીવ આ પ્રકારના ધ્યાનથી યુક્ત બને છે. આ ધ્યાનની ધારા છૂટતી નથી, કારણ કે તેમાં પ્રવર્દ્ધમાનતર પરિણામ હોવાથી તે ધ્યાન એકવાર પ્રાપ્ત થયા બાદ છૂટી જતું નથી તે ધ્યાનને અનિવર્તિરૂપ કહ્યું છે—કહ્યું પણ છે કે-" निव्वाण गमणकाले " ઈત્યાદિ—

હવે સમુચ્છિન્ન ક્રિયાતિપાતિ શુકલધ્યાનના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—શૈલેશીકરણમાં યોગોનો નિરોધ થવાને કારણે જે ધ્યાનમાં કાયિક આદિ વ્યાપારરૂપ ક્રિયા સમુચ્છિન્ન (બિલકુલ ક્ષીણ) થઈ જાય છે, તે ધ્યાનને

"अप्रतिपाति"–प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति, न प्रतिपात्यप्रतिपाति=प्रतिपतनस्वभावरहितमनुपरति स्वभावमित्यर्थः, चेति यथोक्तम्, उक्तं च—

"तस्सेव सेलेसीगयस्स सेलव्वनिप्पकंपस्स ।
वोच्छिन्नकिरियमप्पडिवाई झाणं परमसुक्कं ॥१॥" इति,

छाया—"तस्यैव शैलेशीगतस्य शैलवन्निष्प्रकम्पस्य ।
व्युच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति ध्यानं परमशुक्लम् ॥१॥" इति,

इति शुक्लध्यानस्य चतुर्थो भेदः । ४ ।

अस्मिन्नन्तिमे शुक्लध्यानभेदद्वयेऽयं क्रमः–केवली किलान्तर्मुहूर्तभाविनि परमपदे भवोपग्राहि–वेदनीयाऽऽयुर्नामगोत्राख्येषु चतुर्षु कर्मसु समुद्घाततो निसर्गेण वा समस्थितिकेषु सत्सु योगनिरोधं करोति, तत्र च क्रमः–

"पज्जत्तमेत्तसन्निस्स जत्तियाइं जहन्नजोगिस्स ।
होंति मणोदव्वाइं तव्वावारो य जम्मत्तो ॥ १ ॥
तदसंखगुणविहीणे समए समए निरुंभमाणो सो ।
मणसो सव्वनिरोहं कुणइ असंखेज्जसमएहिं ॥ २ ॥

स्वभाव से रहित होता है। सो ही कहा है–"तस्सेव सेलेसी गयस्स" इत्यादि इस ध्यान का उदय होते ही सातावेदनीय कर्म का आस्रव रुक जाता है। और अन्त में शेष सब कर्म क्षीण हो जाने से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस अन्तिम शुक्लध्यान द्वय में ऐसा क्रम है कवली भगवान् अन्तर्मुहूर्त भावी परमपद के होने पर भवोपग्राहि वेदनीय आयु नाम गोत्र इन चार कर्मों के समुद्घात से, अथवा,–निसर्ग से समस्थितिक हो जाने पर योगनिरोध करते हैं। यहां का क्रम इस प्रकार से है–"पज्जत्तमेत्तस्स मेस्स–" इत्यादि

સમુચ્છિન્ન ક્રિયાવિપાતિધ્યાન કહે છે આ ધ્યાન પ્રતિપતનના સ્વભાવથી પણ રહિત હોય છે, તેથી તેને અપ્રતિપાતિધ્યાન કહ્યું છે એ જ વાત સૂત્રકારે "તસ્સેવ સેલેસીગયસ્સ" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે

આ ધ્યાનનો ઉદય થતાની સાથે જ સાતાવેદનીય કર્મનો આસ્રવ બંધ થઈ જાય છે અને આખરે બાકીના સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થઈ જવાથી મોક્ષ પ્રાપ્ત થઈ જાય છે આ છેલ્લા બે શુક્લધ્યાનમાં એવો ક્રમ છે કે કેવલી ભગવાન અન્તર્મુહૂર્ત ભાવી પરમપદના સદ્ભાવમાં ભવોપગ્રાહિ–વેદનીય, આયુ, નામ અને ગોત્ર આ ચાર કર્મોના સમુદ્ઘાત દ્વારા અથવા નિસર્ગથી (નૈસર્ગિક રીતે) સમસ્થિતિક થઈ જાય ત્યારે યોગનિરોધ કરે છે તે ક્રમ આ પ્રમાણે છે–"પજ્જત્તમેત્ત સન્નિસ" ઇત્યાદિ–ટીકા એટલે પરત. વિશાળતા ઉઠાઈ

पज्जत्तमेत्तबिंदिय-जहन्नवइजोगपज्जया जे उ ।
तदसंखगुणविहीणे समए समए निरुंभंतो । ३ ।
सव्ववइजोगरोहं संखातीएहिं कुणइ समएहिं ।
तत्तो असुहुमपणगस्स पढमसमओववन्नस्स । ४ ।
जो किर जहन्नजोगो तदसंखेज्जगुणहीणमेक्केक्के ।
समए निरुंभमाणो देहतिभागं च मुंचंतो । ५ ।
रुंभइ स कायजोगं संखाईएहिं चेव समएहिं ।
तो कयजोगनिरोहो सेलेसीभावणामेइ । ६ ।
हस्सक्खराइं मज्झेण जेण कालेण पंच भन्नंति ।
अच्छइ सेलेसिगओ तत्तियमेत्तं तओ कालं । ७ ।
तणुरोहारंभाओ झायइ सुहुमकिरियाणियट्टिं सो ।
वोच्छिन्नकिरियमप्पडिवाइं सेलेसिकालंमि । ८ । " इति,

छाया—पर्याप्तमात्रसंज्ञिनः यावन्ति जघन्ययोगिनः ।
भवन्ति मनोद्रव्याणि तद्व्यापारश्च यावन्मात्रः । १ ।
तदसंख्यगुणविहीनानि समये समये निरुन्धन् सः ।
मनसः सर्वनिरोधं करोत्यसंख्यातसमयैः । २ ।
पर्याप्तमात्र द्वीन्द्रियस्य जघन्यवाग्योगपर्यया ये तु ।
तदसंख्यगुणविहीनान् समये समये निरुन्धन् । ३ ।
सर्ववाग्योगरोधं संख्यातीतैः करोति समयैः ।
ततश्च सूक्ष्मपनकस्य प्रथमसमयोत्पन्नस्य । ४ ।
यः किल जघन्ययोगस्तदसंख्येय गुणहीनमेकैकस्मिन् ।
समये निरुन्धन् देहत्रिभागं च मुञ्चन् । ५ ।
रुणद्धि स काययोगं संख्यातीतैश्च समयैः ।
ततः कृतयोगनिरोधः शैलेशीभावनामेति । ६ ।
येन मध्येन कालेन पञ्च ह्रस्वाक्षराणि भण्यन्ते ।
तावन्मात्रं कालं ततः शैलेशीगतस्तिष्ठति । ७ ।
तदनुरोधाऽऽरम्भाद् ध्यायति सूक्ष्मक्रियानिवर्त्ति सः ।
व्युच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति शैलेशीकाले । ८ । " इति,

शैलाः-पर्वताः, तेषाम् ईशः=स्वामी बृहत्त्वादिगुणवत्त्वात् शैलेशः-मेरुः, तस्येव यन्निष्प्रकम्पत्वं यत्र सा शैलेशी, तद्रूपा भावना-अवस्था शैलेशी भावना, ताम् एति=प्राप्नोतीति तदर्थः ।

अथ शुक्लध्यानस्य लक्षणान्याह–' सुक्कस्स " इत्यादि–शुक्लस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–" अव्ययम् "–इति–व्यथाया अभावोऽव्ययम्=देवादिकृतोपसर्गादि जनितभय–विचलनाभावः, इति प्रथमः १।

तथा–असम्मोहः–सम्मोहः=मूढता, न सम्मोहोऽसम्मोहः=देवादि–कृतमायाजनितायाः सूक्ष्मपदार्थविषया वा मूढताया अभावः, इति द्वितीयः। २।

तथा–" विवेगे " इति–विवेकः=हंसवत् क्षीरनीरन्यायेन स्वबुद्ध्या देहात्मन आत्मतः सर्वसंयोगानां वा विवेचन पृथक्करणमित्यर्थः। इति तृतीयः ३।

शैलनाम पर्वत का है बृहत्त्वादि गुण युक्त होने से जो पर्वतों का स्वामी हो वह शैलेश है ऐसा मेरु है, इस मेरु के समान जिस भावना में निष्प्रकम्पन हो वह शैलेशी भावना है शैलेशी अवस्था है योग से निरोधित सकल व्यापारवाला जीव ही इस शैलेशी अवस्था को प्राप्त करता है। शुक्लध्यान के लक्षण इस प्रकार से है–" अव्ययम् " व्यथा का अभाव हो जाना देवादिकृत जो उपसर्ग वही व्यथा है उस भय से विचलित नहीं होना शुक्लध्यान का पहला लक्षण अव्यय है–१ " असम्मोहः " मूढता का नाम सम्मोह है इसका अभाव असम्मोह है अर्थात्–देवादिकृत मायाजनित मूढता का या सूक्ष्म पदार्थ विषयक मूढता का अभाव हो जाना इसका नाम असम्मोह है २ " विवेकः " जिस प्रकार हंस पानी से दूध को अलग कर लेता है उसी प्रकार बुद्धि

આદિની અપેક્ષાએ જે સઘળા પર્વતોનો સ્વામી છે–સઘળા પર્વતોમાં શ્રેષ્ઠ છે, તેને શૈલેશ કહે છે એવો પર્વત મેરુ છે જે ભાવનામાં (અવસ્થામાં) તે મેરુ સમાન નિષ્પ્રકમ્પન હોય છે, તે ભાવનાને શૈલેશી ભાવના અથવા શૈલેશી અવસ્થા કહે છે મન, વચન અને કાયના સકળ વ્યાપારોનો જેણે નિરોધ કર્યો હોય છે એવો જીવ જ શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરી શકે છે

શુક્લધ્યાનના લક્ષણો આ પ્રમાણે છે—(૧) " અવ્યયમ્ " આ ધ્યાન વખતે ધ્યાનીની વ્યથાનો અભાવ થઈ જાય છે દેવાદિકૃત ઉપસર્ગને જ અહીં વ્યથા સમજવી જોઈએ. તે ભયથી વિચલિત ન થવું તે શુક્લધ્યાનનું પહેલું લક્ષણ છે, અહીં તે લક્ષણને 'અવ્યય" પદથી પ્રકટ કર્યું છે

(૨) 'અસમ્મોહ' મૂઢતાનું નામ સંમોહ છે, અને તેના અભાવને અસંમોહ કહે છે એટલે કે દેવાદિકૃત માયાજનિત મૂઢતાનો અથવા સૂક્ષ્મ પદાર્થ વિષયક મૂઢતાનો અભાવ થઈ જવો તેનું નામ અસંમોહ છે

" વિવેક " જેમ હંસ પાણીમાંથી દૂધને અલગ કરી નાખે છે, એ જ

तथा=" विउसग्गे " इति-व्युत्सर्गः-वि-विशेषण सर्वविषयनिःसङ्गत्वेन उत्सर्गः=देहोपधीनां त्यागो व्युत्सर्गः । इति चतुर्थः । ४ ।

अत्र गाथेयम्-" चालिज्जइ वीभेइ व धीरो न परीसहोवसग्गेहिं ।
सुहमेसु न संमुज्झइ भावेसु न देवमायासु । १ ।
देहविवित्तं पेच्छइ अप्पाणं तह य सव्वसंजोगे ३।
देहोवहिवुस्सग्गं निस्संगो सव्वहा कुणइ । २ । " इति,

छाया—" चाल्यते विभेति वा धीरो न परिषहोपसर्गैः ।
सूक्ष्मेष्वपि भावेषु न संमुह्यति न देवमायासु । १ ।
देहविविक्तं प्रेक्षते आत्मानं तथा च सर्वसंयोगान् ३ ।
देहोपधिव्युत्सर्गं निःसङ्गः सर्वथा करोति । २ । " इति,

अथ शुक्लध्यानस्याऽऽलम्बनान्याह-" सुक्कस्स " इत्यादि-शुक्लस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि आलम्बनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-" खंती " इति-क्षान्तिः=क्षमा, १, " मुक्तिः "-निर्लोभता २, " आर्जवं "-सरलता ३, " मार्दवं "-मृदुता ४। इति । अत्र गाथा—

द्वारा देह से आत्मा को एवं आत्मा से सर्व संयोगों को अलग कर रखना विवेक है ३ तथा " विउसग्गो " व्युत्सर्गः-विशेषरूप से सर्व विषयों में निसङ्ग हो जाने के कारण देह और उपधियों का त्यागना व्युत्सर्ग है-४ यहां ऐसी गाथाएँ हैं-" चालिज्जइ वीभेइ वधीरो " इत्यादि शुक्लध्यान के आलम्बन इस प्रकार से हैं-" सुक्कस्स " इत्यादि ९२॥ " खंती " क्षान्तिः क्षमा १ मुक्ति निर्लोभता २ " आर्जव " सरलता ३ और " मार्दव मृदुता ४ गाथा " अह खंति मद्दवज्जव " इत्यादि

પ્રમાણે બુદ્ધિ દ્વારા દેહથી આત્માને અલગ કરવો, અને આત્મામાંથી સર્વ સંયોગોને અલગ કરી નાખવા તેનું નામ વિવેક છે.

(૪) " विउसग्गो-વ્યુત્સર્ગ "- વિશેષ રૂપે સર્વ વિષયોમાંથી નિઃસંગ થઈ જવાને કારણે દેહ અને ઉપધિઓનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ વ્યુત્સર્ગ છે. અહીં આ પ્રકારની ગાથાઓ છે-" चालिज्जइ वीभेइव धीरो " ઇત્યાદિ.

શુકલધ્યાનના આ ચાર અવલંબનો કહ્યા છે-" सुक्कस " ઇત્યાદિ (૧) " खंती " ક્ષાન્તિ (ક્ષમા), (૨) મુક્તિ-નિર્લોભતા, (૩) આર્જવ-સરલતા અને (૪) માર્દવ-મૃદુતા એ જ વાત નીચેની ગાથા દ્વારા સૂત્રકારે પ્રકટ કરી છે-" अहखंति-मद्दव-ज्जव " ઇત્યાદિ—

" अह खंति-मद्दव-ज्जव-मुत्तीओ जिणमयप्पहाणाओ।
आलंबणाइ जेहिं उ सुक्कज्झाणं समारुहइ । १ । " इति,

छाया—अथ क्षान्ति-मार्दवा-ऽऽर्जव मुक्तय जिनमतप्रधाना ।
आलम्बनानि यैस्तु शुक्लध्यानं समारोहति । १ । " इति ।

अथ शुक्लध्यानस्यानुप्रेक्षा आह-" सुक्कस " इत्यादि—शुक्लस्य खलु ध्यानस्य चतस्रोऽनुप्रेक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अनन्तवर्तिताऽनुप्रेक्षा—अनन्तं यथा स्यात्तथा वर्तते इत्येवंशीलोऽनन्तवर्ती भवप्रवाहस्तस्य भावोऽनन्तवर्तिता, तस्या-नुप्रेक्षा=भावना=अनन्तवर्तिताऽनुप्रेक्षा,

यद्वा-'अनन्तवृत्तिताऽनुप्रेक्षा' तिच्छाया, तत्रायमर्थः-अविद्यमानोऽन्तो यस्याः साऽनन्ता, सा वृत्तिर्यस्य भवसन्तानस्य सोऽनन्तवृत्तिस्तस्य भावोऽनन्तवृत्तिता= निरवधिकवर्तनस्वभावम् , तस्या अनुप्रेक्षा=अनन्तवृत्तितानुऽप्रेक्षा जीवस्य भवभ्रमणा-नुचिन्तनमित्यर्थः, यथा—

शुक्लध्यान सम्बन्धी अनुप्रेक्षाएँ इस प्रकार हैं-अनन्तवर्तिता १ विप रिणामानुप्रेक्षा २ अशुभानुप्रेक्षा ३ और अपायानुप्रेक्षा ४ अनन्त होकर जो रहता है वह अनन्तवर्ती है ऐसा अनन्तवर्ती भवप्रवाह है इस भव प्रवाह का जो भाव है वह अनन्तवर्तिता है इस अनन्तवर्तिता की जो भावना है वह-अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा है। अथवा " अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा " इस छाया पक्ष में ऐसा अर्थ होता है जिसका अन्त अविद्यमान हो वह अनन्त है ऐसी अनन्तरूप वृत्ति जिस भवसन्तान परम्परा की है वह अनन्तवृत्ति है इसका जो भाव है वह अनन्तवृत्तिता है इस अनन्तवृ

શુક્લધ્યાન સબંધી અનુપ્રેક્ષાઓ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) અનંતવર્તિતા, (૨) વિપરિણામાનુપ્રેક્ષા, (૩) અશુભાનુપ્રેક્ષા અને (૪) અપાયાનુપ્રેક્ષા. અનંત થઈને જે રહે છે તે અનંતવર્તી છે એવો અનંતવર્તી ભવપ્રવાહ છે તે ભવ પ્રવાહનો જે ભાવ છે તે અનંતવર્તિતા છે તે અનંતવર્તિતાની જે ભાવના છે તેનું નામ જ અનંતવર્તિતા અનુપ્રેક્ષા છે અથવા ' અનન્ત વૃત્તિતાનુપ્રેક્ષા " આ પ્રકારની અનંતવર્તિતા અનુપ્રેક્ષાની સંસ્કૃત છાયાની અપેક્ષાએ તેના અર્થનો વિચાર કરવામાં આવે તો તેનો આ પ્રમાણે અર્થ થશે—

જેનો અંત અવિદ્યમાન હોય તેને અનંત કહે છે એવી અનંત રૂપ જે વૃત્તિ જે ભવસન્તાન પરંપરાની છે, તેનું નામ અનંતવૃત્તિ છે. તેનો જે ભાવ છે તેનું નામ અનંતવૃત્તિતા છે તે અનંતવૃત્તિતાની જે અનુપ્રેક્ષા છે તેનું નામ " અનંતવૃત્તિતા અનુપ્રેક્ષા " છે એટલે કે જીવના ભવભ્રમણનો વારંવાર

" एस अणाई जीवो संसारो सागरोव्व दुत्तारो ।
नारयतिरियनरामरभवेसु परीहिंडए जीवो ।१। " इति,

छाया—" एष जीवोऽनादिः सागर इव संसारो दुरुत्तारः ।
नारक-तिर्यग्-नरा-ऽमरभवेषु परिहिण्डते जीवः ।१। " इति,

इति शुक्लध्यानस्य प्रथमाऽनुप्रेक्षा । १ ॥

" विप्परिणामाणुप्पेहा " इति-परिणमनं - परिणामः = अवस्थाऽन्तरप्राप्तिः, वि-विविधः=अनेकप्रकारः परिणामो विपरिणामः, तस्यानुप्रेक्षा=भावना=विपरिणामानुप्रेक्षा=पदार्थानां प्रतिक्षणविविधपरिणामाऽनुचिन्तनमित्यर्थः । यथा-

" सव्वट्ठाणाइं असासयाइं इह चेव देवलोगे य ।
सुरअसुरनराईणं रिद्धिविसेसा सुहाइं च ।१। " इति,

छाया—" सर्वस्थानानि अशाश्वतानि इह चैव देवलोके च ।
सुरासुरनरादीनाम् ऋद्धिविशेषाः सुखानि च । १ । इति

इति द्वितीयाऽनुप्रेक्षा । २ ॥

त्तिता की जो अनुप्रेक्षा है वह अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा है। इसका तात्पर्य ऐसा है कि-जीव के भवभ्रमण का बार बार विचार करना यही अनन्तवृत्तिता, या-अनन्तवर्तिता अनुप्रेक्षा है। यथा-एस अणाई जीवो " इत्यादि यह जीव अनादि है और यह संसार दुस्तर सागर जैसा है यह जीव अनादिकाल से नारक तिर्यक्-मनुष्य और देवगतियों में चक्कर लगाता है ऐसा विचार ही अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा है।

" विप्परिणामाणुप्पेहा " अवस्थान्तर प्राप्ति का नाम परिणाम है अनेक प्रकारके जो परिणामहैं वे विपरिणामहैं इन विपरिणामोंके पदार्थों की विविध अवस्थाओं का जो कि प्रतिक्षण उनमें हो रही है बार बार विचार करना यह विपरिणामाऽनुप्रेक्षा है। जैसे-" सव्वट्ठाणाइं " इत्यादि

વિચાર કર્યા કરવો એ જ અનંતવૃત્તિતા અથવા અનંતવર્તિતા અનુપ્રેક્ષા છે. જેમકે " एस अणाई जीवो " ઈત્યાદિ-આ જીવ અનાદિ છે, અને આ સંસાર દુસ્તર સાગર જેવો છે આ જીવ અનાદિકાળથી નારક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિમાં ભ્રમણ કર્યા કરે છે, આ પ્રકારના વિચારને જ અનંતવૃત્તિતા અનુપ્રેક્ષા કહે છે. આ પ્રમાણે અનુપ્રેક્ષાના પહેલા ભેદનું કથન કરીને હવે બીજા ભેદનું નિરૂપણ કરવામા આવે છે-" विप्परिणामाणुप्पेहा " વિપરિણામાનુપ્રેક્ષા—

અવસ્થાન્તર પ્રાપ્તિનું નામ પરિણામ છે. અનેક પ્રકારના જે પરિણામ છે તેમનું નામ વિપરિણામ છે આ વિપરિણામોની અપેક્ષાએ પદાર્થોની વિવિધ અવસ્થાઓનો-(કે જે પ્રતિક્ષણ તે પદાર્થોમાં થઇ રહી હોય છે) વિચાર કરવો તેનું નામ " વિપરિણામા અનુપ્રેક્ષા " છે. જેમકે " सव्वट्ठाणाइ " ઈત્યાદિ—

" असुहाणुप्पेहा " इति-अशुभानुप्रेक्षा शुभ=समीचीन, न शुभोऽशुभः-अशुभत्वमित्यर्थः, अशुभशब्दोऽशुभत्वपरः, तस्यानुप्रेक्षाऽशुभानुप्रेक्षा=संसारस्यासमीचीनत्वभावनेत्यर्थः, यथा—

" धी संसारो अ जुयाणओ परमरूवगव्वियओ ।
मरिऊण जायइ किमी, तत्थेव कडेवरे नियए । १ ।

छाया—" धिक् संसारं यस्मिन् युवा परमरूपगर्वितः ।
मृत्वा जायते कृमिः, तत्रैव कलेवरे निजे । १ । " इति,

इति तृतीयाऽनुप्रेक्षा । ३ ॥

" अवायाणुप्पेहा " इति-अपायानुप्रेक्षा-अपायः-अपगमः, स च कायवाङ्मनोयोगलक्षणाऽऽस्रवाणां बोध्य, तस्यानुप्रेक्षा=आस्रवनिवारणभावनेत्यर्थः, अपायानां=प्राणातिपातादास्रवजनितानर्थानामनुप्रेक्षा = अनुचिन्तनमपायानुप्रेक्षा, यथा—

" कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइ पुणब्भवस्स ।१।" इति,

" असुहाणुप्पेहा " ३-शुभ नाम प्रशस्त का है जो ऐसा नहीं है वह अशुभ है यह अशुभ शब्द अशुभता का वाचक है इसकी जो अनुप्रेक्षा है वह अशुभानुप्रेक्षा है । यथा-" धी संसारो-" इत्यादि, " अवायाणुप्पेहा " ४-मनोयोग वचनयोग और काययोगरूप आस्रवों के अपगमन की जो भावना है वह अपायानुप्रेक्षा है । अथवा प्राणातिपात आदि द्वारा हुवे कर्मास्रवों के अनर्थों का बार बार जो चिन्तन है वह-अपायाऽनुप्रेक्षा है । यथा-" कोहोय माणो य " इत्यादि अर्थात्-क्रोध,

---

' असुहाणुप्पेहा " અશુભા અનુપ્રેક્ષા " નો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે પ્રશસ્તને શુભ કહે છે જે એવું પ્રશસ્ત નથી તેને અશુભ કહે છે તે અશુભ શબ્દ અશુભતાનો વાચક છે તે અશુભતાની જે અનુપ્રેક્ષા છે તેને ' અશુભા અનુપ્રેક્ષા કહે છે જેમકે धी संसारो ' ઈત્યાદિ—

હવે ચોથા પ્રકારની અનુપ્રેક્ષા પ્રકટ કરવામાં આવે છે-" अवायाणुप्पेहा " अपायानुप्रेक्षा-મનોયોગ, વચનયોગ અને કાયયોગ રૂપ આસ્રવોના અપગમનની (નિરોધની) જે ભાવના છે તે ભાવનાને ' અપાયા અનુપ્રેક્ષા ' કહે છે. અથવા-પ્રાણાતિપાત આદિ દ્વારા થયેલા કર્માસ્રવોના અનર્થોનો વારંવાર જે વિચાર કરવામાં આવે છે, તેને અપાયાનુપ્રેક્ષા કહે છે જેમકે " कोहायमाणोय "

छाया—" क्रोधश्च मानश्चानिगृहीतौ, माया च लोभश्च प्रवर्द्धमानौ ।
चत्वार एते कृत्स्नाः कषायाः, सिञ्चन्ति मूलानि पुनर्भवस्य ।१। इति,

इति चतुर्थ्यनुप्रेक्षा । ४ ॥

इति ध्यानचतुष्टयस्वरूपम् ॥ (सू० ९)

ध्यानाद् देवत्वमपि स्यादतो देवस्थितिं सभेदामाह—

मूलम्—चउव्विहा देवाणं ठिई पण्णत्ता, तं जहा—देवे णाममेगे १, देवसिणाए णाममेगे२, देवपुरोहिए णाममेगे३, देवपज्जलणे णाममेगे ४। चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, देवे णाममेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, छवी णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, छवी णाममेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा॥सू०१०॥

छाया—चतुर्विधा देवानां स्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—देवो नामैकः १, देवस्नातको नामैकः २, देवपुरोहितो नामैकः ३, देवप्रज्वलनो नामैकः ४। चतु-

मान, माया, और लोभ, ये चार कषाय पुनर्भव के मूल को सींचते हैं -४ इस प्रकार से यह ध्यान ध्यान चतुष्टय का स्वरूप है ॥ सू०९ ॥

ध्यान से देवपद की भी प्राप्ति जीव को होती है अतः—अब सूत्रकार सभेद से देवस्थिति का वर्णन करते हैं—

" चउव्विहा देवाणं ठिई पण्णत्ता " इत्यादि

सूत्रार्थ—देवोंकी स्थिति चार प्रकार की कही गईहै, जैसे—देव १ देवस्नातक २ देवपुरोहित ३ और देवप्रज्वलन ४। संवास चार प्रकार का कहा गया

ઈત્યાદિ—એટલે કે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ, આ ચાર કષાયો પુનર્ભવના મૂલનું સિંચન કરે છે, આ પ્રકારની ભાવનાનુ નામ જ અપાયાનુપ્રેક્ષા છે આ પ્રકારે સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં ચતુર્વિધ ધ્યાનનું નિરૂપણુ કર્યું છે. ॥ સૂ. ૯ ॥

ધ્યાનના પ્રભાવથી જીવને દેવપદની પણુ પ્રાપ્તિ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર દેવસ્થિતિના ભેદોનુ નિરૂપણુ કરે છે—

" ચઉવ્વિહા દેવાણ ઠિઈ પણ્ણત્તા " ઈત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—દેવોની સ્થિતિ ચાર પ્રકારની કહી છે-(૧) દેવ,(૨) દેવસ્નાતક, (૩) દેવપુરોહિત અને (૪) દેવપ્રજ્વલન.

विधः संवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-देवो नामैको देव्या सार्द्धं संवासं गच्छेत्, देवो नामैकः छव्या सार्द्धं संवासं गच्छेत्, छविर्नामैको देव्या सार्द्धं संवासं गच्छेत्, छविर्नामैकश्छव्या सार्द्धं संवासं गच्छेत् (सू० १०)।

टीका—" चउव्विहा " इत्यादि-देवानां स्थितिः=मर्यादा, चतुर्विधा प्रज्ञप्ता =कथिता, तद्यथा-' देवे ' इत्यादि-एकः=कश्चित्, देवः=सामान्यः सुरः, " नामे "-ति वाक्यालङ्कारे, एवमग्रेऽपि, १, एकः=कश्चित्, देवस्नातकः= देवश्चासौ स्नातकः=प्रधानो देवस्नातकः, यद्वा-देवानां मध्ये स्नातकः=प्रधानो देवस्नातकः २, एकः=कश्चित्, देवानां पुरोहितः=शान्तिप्रभृतिकर्मकारीति देव पुरोहितः ३, एकः=कश्चित्, देवप्रज्वलनः-प्रज्वलयति-दीपयतीति प्रज्वलनः, देवानां प्रज्वलनो देव प्रज्वलन =मागधवत् देवस्तुतिपाठकः प्रज्ञप्तः ४।

देवस्थितिप्रस्तावाद्देवविशेषसंवासमाह - " चउव्विहे " इत्यादि, देवो देव्या सार्द्ध संवासं=मैथुनार्थं सहावस्थानं गच्छेत्=प्राप्नुयात् १, एकः=कश्चित्,

है, जैसे-एक देव का एक देवी के साथ संवास १ एक देव का छवि के साथ संवास २ छवि का देवी के साथ संवास-३ और छवि का छवि के साथ संवास ४।

विशेषार्थ-यहां स्थिति शब्द से आयु का ग्रहण नहीं हुवा है किन्तु-मर्यादा का ग्रहण हुवा है देवों की यह मर्यादारूप स्थिति ४ प्रकार की कही गई है जो इस प्रकार है-कोई एक देव सामान्यसुर १ दूसरा कोई देवस्नातक प्रधानदेव २ कोई एक देवों का पुरोहित शान्ति आदि कर्मकारी देव पुरोहित ३ और कोई एक मागध की तरह देवस्तुतिपाठक देव प्रज्वलन-४। देवविशेष

સંવાસ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧) એક દેવનો એક દેવીની સાથે સંવાસ, (૨) એક દેવનો છવિની (શરીરયુક્ત નારીની) સાથે સંવાસ. (૩) છવિનો (વૈક્રિય શરીરનો) દેવીની સાથે સંવાસ અને (૪) છવિનો (વૈક્રિય શરીરનો) છવિ સાથે (વૈક્રિય શરીર સાથે) સંવાસ.

હવે આ સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—અહીં " સ્થિતિ " પદ આયુના અર્થમાં વપરાયું નથી, પણ મર્યાદાના અર્થમાં વપરાયું છે. દેવોની આ મર્યાદારૂપ સ્થિતિ ચાર પ્રકારની કહી છે (૧) કોઈ એક સામાન્ય દેવ અહીં " નામ " પદ વાક્યાલંકાર રૂપે વપરાયું છે. એ જ પ્રમાણે આગળ પણ સમજી લેવું (૨) દેવસ્નાતક એટલે પ્રધાન (મુખ્ય) દેવ. જેમકે ઇન્દ્રાદિને આ પ્રકારમાં મૂકી શકાય. (૩) કોઈક દેવ દેવોનો પુરોહિત પણ હોય છે શાન્તિ આદિ કર્મકારી દેવપુરોહિત હોય છે. (૪) દેવસ્તુતિ પાઠક દેવને દેવ પ્રજ્વલન કહે છે

देवः, छव्या=छविः=त्वक्, तद्योगादौदारिकशरीरं, शरीर-शरीरवतोरभेदोपचारा-च्छविरपि च्छविमती नारी तिरश्ची वा, तया सार्द्धं=सह, संवासं गच्छेत् २, एकः =कश्चिद्देवः, छविः=वैक्रियशक्त्यौदारिक-शरीरवान् नरस्तिर्यग्वा भूत्वा देव्या सार्द्धं संवासं गच्छेत् ३, एकः=कश्चिद्देवः, छविः=वैक्रियशक्त्या औदारिकशरीरवान्

संवास देव का देवी के साथ मैथुन कर्म करने के लिये जो सहावस्थान होता है उसका नाम संवास है, यह संवास चार प्रकार का कहा गया है, एक प्रकार को संवास पूर्वोक्तरूप से ही है, अर्थात्-किसी एक देव का देवी के साथ मैथुन आदि सेवन करने निमित्त जो सहावस्थान होता है वह-प्रथम प्रकार का संवास है १ द्वितीय प्रकार का संवास ऐसा है इस संवास में छवि शब्द से शरीर और-शरीरवालों में अभेद सम्बन्ध लेकर छविमती नारी या-तिरश्ची, ली गई है, ऐसे तो छवि शब्द का अर्थ त्वचा है परन्तु-त्वचा के योग से औदारिक शरीर का ग्रहण होता है यह औदारिक शरीर नारी और तिर्यक्स्त्रियों को होता है कोई एक देव नारी, या तिरश्ची [तिर्यग्जाति की स्त्री] के साथ संवास कर सकता है २ तृतीय प्रकार के सवास में कोई एक देव वैक्रिय शक्ति द्वारा औदारिक शरीरवान् नर, या तिर्यञ्च होकर देवी के साथ संवास कर सकता है-३ तथा चतुर्थ प्रकार के संवास में एक कोई देव वैक्रिय

દેવવિશેષના સવાસનુ નિરૂપણુ—દેવનુ દેવીની સાથે મૈથુન સેવન કરવા માટે જે સહાવસ્થાન થાય છે, તેનું નામ સંવાસ છે તે સંવાસના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) કોઇ એક દેવનું કોઈ એક દેવી સાથે મૈથુન સેવન કરવા માટે જે સહાવસ્થાન થાય છે તેને પ્રથમ પ્રકારનો સંવાસ કહે છે. હવે બીજા પ્રકારના સંવાસનુ નિરૂપણુ કરવામા આવે છે—આ સંવાસમાં “ છવિ ” પદ શરીરના અર્થમાં વપરાયું છે શરીર અને શરીરવાળાની વચ્ચે અભેદ સંબંધની અપેક્ષાએ ‘ છવિ ’ પદનો અર્થ અહીં શરીરવાળી નારી અથવા તિર્યંચિણી સમજવો જોઇએ. આમ તો ‘ છવિ ’ પદનો અર્થ ત્વચા ચામડી થાય છે, પરન્તુ ત્વચાના યોગથી અહીં ઔદારિક શરીર જ ગ્રહણુ થવું જોઇએ. આ ઔદારિક શરીરનો સદ્ભાવ સ્રી અને તિર્યંચણીમાં જ હોય છે. એટલે બીજા પ્રકારનો સંવાસ આ પ્રકારનો સમજવો—

કોઇક દેવ મનુષ્ય જાતિની સ્રી અથવા તિર્યંચિણી (તિર્યંચ જાતિની સ્રી) સાથે સંવાસ કરે છે. (૩) કોઇક દેવ પોતાથી વૈક્રિય શક્તિથી ઔદારિક શરીરધારી પુરુષ અથવા તિર્યંચનું રૂપ ધારણુ કરીને દેવીની સાથે સંવાસ કરી શકે છે. (૪) સંવાસનો ચોથો પ્રકાર—કોઈ એક દેવ વૈક્રિયશક્તિ દ્વારા ઔદા-

नरस्तिर्यग् वा भूत्वा छव्या=वैक्रियशक्त्या विकुर्वितया, तिर्यग्लोकगतया वा औदारिकशरीरवत्या नार्या तिरश्च्या वा सार्द्धं संवासं गच्छेत् ४ (सू० १०)।

इतोऽनन्तरं संवास उक्तः, स च वेदकषायमोहोदयात्कषायतः प्रसङ्गान्मोह विशेषभूतकषायं समेदं निरूपयितुमाह—

मूलम्—चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—कोहकसाए १, माणकसाए २, मायाकसाए ३, लोहकसाए ४, एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं २४, चउप्पइट्ठिए कोहे पण्णत्ते, तं जहा—आय पइट्ठिए१, परपइट्ठिए२, तदुभयपइट्ठिए३, अप्पइट्ठिए ४। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं २४, एवं जाव लोहे जाव वेमाणि याणं २४। चउहिं ठाणेहिं कोहुप्पत्ती सिया, तं जहा—खेत्तं पडुच्च, वत्थुं पडुच्च, सरीरं पडुच्च, उवहिं पडुच्च। एवं णेरइ याणं जाव वेमाणियाणं २४, एवं जाव लोहुप्पत्ती वेमाणियाणं २४, चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा अणंताणुबंधी कोहे १, अपच्चक्खाणे कोहे २, पच्चक्खाणावरणे कोहे ३, संजलणे कोहे ४। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं २४, एवं जाव लोहे जाव वेमाणियाणं २४। चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा-आभोगणि व्वत्तिए १, अणाभोगणिव्वत्तिए २, उवसंते ३, अणुवसंते ४। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं २४। एवं जाव लोहे जाव वेमाणियाणं २४ ॥ सू० ११ ॥

शक्ति द्वारा औदारिक शरीर युक्त मनुष्य या तिर्यञ्च होकर वैक्रिय शक्ति से विकुर्वित हुई के साथ, अथवा तिर्यग्लोक में गत औदारिक शरीर वाली नारी के साथ, या तिर्यञ्चनीके साथ संवास कर सकता है॥ सू १०॥

કિ શરીરવાળા મનુષ્ય અથવા તિર્યંચ રૂપ થઈને વૈક્રિયશક્તિ દ્વારા વિકુર્વિત કરેલી દેવીની સાથે, અથવા તિર્યગ્લોકમાં રહેલી ઔદારિક શરીરવાળી નારીની સાથે અથવા તિર્યંચિણી સાથે સંવાસ કરી શકે છે. ॥ સૂ ૧૦ ॥

छाया—चत्वारः कषायाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-क्रोधकषायः १, मानकषायः २, मायाकषायः ३, लोभकषायः ४। एवं नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम् २४। चतुष्प्रतिष्ठितः क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-आत्मप्रतिष्ठितः १, परप्रतिष्ठितः २, तदुभयप्रतिष्ठितः ३, अप्रतिष्ठितः ४। एवं नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम् २४। एवं यावत् लोभः यावत् वैमानिकानाम् २४। चतुर्भिः स्थानैः क्रोधोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा-क्षेत्रं प्रतीत्य, वस्तु प्रतीत्य, शरीरं प्रतीत्य, उपधिं प्रतीत्य। एवं नैरयि-

संवास जो कहा गया है वह वेदरूप मोह के उदय से होता है, अतः-अब सूत्रकार इसी प्रसङ्ग से मोह के विषयभूत कषाय का भेद सहित कथन करते हैं—" चत्तारि कसया पण्णत्ता " इत्यादि

सूत्रार्थ-कषाय चार कही गई है, जैसे-क्रोध कषाय मान कषाय माया कषाय और लोभ कषाय ये कषाय नारक से लेकर यावत्-वैमानिक तक को होती हैं। क्रोध कषाय चतुष्प्रतिष्ठित कहा गया है जैसे-आत्म प्रतिष्ठित क्रोध परप्रतिष्ठित क्रोध तदुभयप्रतिष्ठित क्रोध और अप्रष्ठित क्रोध, इसी तरह का कथन नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीवों में जानना चाहिये। इसी तरह से चतुष्प्रतिष्ठित यावत् लोभ कषाय तक कह लेनी चाहिये, और-सब की चतुष्प्रतिष्टित नारक से लेकर वैमानिक तक में है ऐसा जानना चाहिये,। क्रोध की उत्पत्ति चार कारणों से होती है, जैसे-क्षेत्र को लेकर, वस्तु को लेकर, शरीर को लेकर, और-उपधि को लेकर। इसी प्रकार क्रोध की उत्पत्ति के इन

ઉપરના સૂત્રમા જે સંવાસનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, તે વેદરૂપ ઉદયથી ઉત્પન્ન થાય છે. આ સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર મોહના વિષય-ભૂત કષાયના ભેદોનુ નિરૂપણ કરે છે—" चत्तारि कसाया पण्णत्ता " ઈત્યાદિ—

કષાયના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) ક્રોધકષાય, (૨) માનકષાય, (૩) માયા કષાય અને (૪) લોભકષાય. આ ચારે કષાયોનો સદ્ભાવ નારકથી લઇને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં હોય છે. ક્રોધકષાય ચતુષ્પ્રતિષ્ઠિત કહ્યો છે-જેમકે (૧) આત્મપ્રતિષ્ઠિત ક્રોધ, (૨) પરપ્રતિષ્ઠિત ક્રોધ, (૩) તદુભય પ્રતિષ્ઠિત ક્રોધ અને (૪) અપ્રતિષ્ઠિત ક્રોધ. એ જ પ્રકારનું કથન નારકથી લઇને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોમાં સમજી લેવું. એ જ પ્રમાણે માનકષાય, માયાકષાય અને લોભકષાયને ચતુષ્પ્રતિષ્ઠિત કહ્યા છે. નારકથી લઇને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં આ ચારે કષાયોની ચતુષ્પ્રતિષ્ઠિતતાનો સદ્ભાવ સમજી લેવો જોઈએ

ક્રોધની ઉત્પત્તિ નીચેના ચાર કારણે થાય છે-(૧) ક્ષેત્રને લઇને, (૨) વસ્તુને લીધે, (૩) શરીરને લીધે અને (૪) ઉપધિને લીધે. ક્રોધની ઉત્પત્તિના

काणां यावत् वैमानिकानाम् २४। एवं यावत् लोभोत्पत्तिः वैमानिकानाम् २४। चतुर्विधः क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अनन्तानुबन्धी क्रोधः १, अप्रत्याख्यानक्रोधः २, प्रत्याख्यानावरणः क्रोधः ३, संज्वलनः क्रोधः ४। एवं नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम् २४। एवं यावत् लोभः वैमानिकानाम्। चतुर्विधः क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आभोगनिर्वर्तितः १, अनाभोगनिर्वर्तितः २, उपशान्तः ३, अनुपशान्तः। ४। एवं नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम् २४। एवं यावत् लोभाः यावत् वैमानिकानाम् २४। (सू० ११)

चार कारणों का कथन नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीवों में कह लेना चाहिये। इसी तरह से लोभोत्पत्ति के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। यावत्-वैमानिक तक जानना चाहिये। क्रोध चार प्रकार का कहा गया है, जैसे-अनन्तानुबन्धी क्रोध १ अप्रत्याख्यानी क्रोध २ प्रत्याख्यानसम्बन्धी क्रोध-३ और संज्वलनसम्बन्धी क्रोध ४। इसी तरह क्रोध की यह चतुष्प्रकारता नैरयिक से लेकर यावत् वैमानिक तक के जीवों में भी जाननी चाहिये, तथा यावत् लोभ तक की चतुष्प्रकारता भी यावत् वैमानिक तक में जाननी चाहिये। क्रोध इस प्रकार से भी चार प्रकार का कहा गया है, जैसे-आभोगनिर्वर्तित १ अनाभोग निर्वर्तित २ उपशान्त और अनुपशान्त ४ इसी प्रकार का कथन नैरयिक से लेकर यावत् वैमानिकों तक में जानना चाहिये। इसी तरह से यावत्-लोभ के भी चार भेद हैं, और वे यावत् वैमानिक तक में हैं। ५४।

આ ચાર કારણોનું કથન નારકથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોને વિષે પણ કહેવું કરવું જોઈએ. એ જ પ્રમાણે માન, માયા અને લોભની ઉત્પત્તિનાં કારણો પણ સમજવા વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોને આ કથન લાગુ પાડી શકાય છે બીજી રીતે પણ ક્રોધ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧) અનન્તાનુબંધી ક્રોધ, (૨) અપ્રત્યાખ્યાની ક્રોધ (૩) પ્રત્યાખ્યાન સંબંધી ક્રોધ અને (૪) સંજ્વલન સંબંધી ક્રોધ એ જ પ્રમાણે માન, માયા અને લોભના પણ ચાર પ્રકાર સમજવા. ક્રોધથી લઈને માન પર્યન્તના કષાયોની આ ચતુષ્પ્રકારતાનો નારકથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોમાં સદ્ભાવ સમજવો.

ક્રોધના આ રીતે પણ ચાર પ્રકાર પડે છે-(૧) આભોગનિર્વર્તિત, (૨) અનાભોગનિર્વર્તિત (૩) ઉપશાન્ત અને (૪) અનુપશાન્ત. આ પ્રકારનું કથન નારકથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવો વિષે પણ સમજવું એ જ પ્રમાણે માન, માયા અને લોભના પણ ચાર પ્રકાર સમજવા આ ચતુષ્પ્રકારતાનો સદ્ભાવ નારકથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોમાં પણ સમજવો

टीका—" चत्तारि " इत्यादि—चत्वारः=चतुःसङ्ख्याः, ' कषायाः—कृषन्ति—विलिखन्ति कर्मक्षेत्रं सुखदुःखरूपफलयोग्य कुर्वन्ति, वा—जीवं कलुषयन्तीति निरुक्त्या कषायाः, उक्तं च—" सुहदुक्खबहुसस्सियं कम्मक्खेत्तं कसंति ते जम्हा। कलुसंति जं च जीवं तेण कसायत्ति वुच्चंति ॥१॥ "

छाया—सुखदुःखबहुसस्यितं कर्मक्षेत्रं कुर्वन्ति ते यस्मात्। कलुषयन्ति यच्च जीवं तेन कषाया इति उच्यन्ते ॥ १ ॥"

यद्वा—कषति—प्राणिनं हिनस्तीति कष कर्म भवो वा, तस्याऽऽयो लाभः कषायः क्रोधादिभेदः कर्महेतुर्भवहेतुर्वा, कर्मभवान्यतरप्राप्तिलक्षणकषायकार्यं प्रति क्रोधादीनां कारणत्वेन कार्यकारणयोरभेदोपचारात् कषायपदेन क्रोधादिर्गृह्यते, अथवा—कषः कर्म भवो वा तम् आययति प्राणिनः प्रापयन्तीति कषायाः=प्राणिनां कर्मभवप्रापकाः, ते च क्रोधादयो वक्ष्यन्ते, उक्तं च—" कम्मं कसं भवो वा कसमाओसिं जओ कसायाओ। कसमाययंति वा जओ गमयंति कसं कसायत्ति ॥१॥ "

जो कर्मरूपी क्षेत्र को सुखदुःखरूप फल के योग्य बनाती है वे कषाय हैं। अथवा—जो जीव को कलुषित मलिन बनाती हैं, वे कषाय हैं। उक्त भी है—" सुहदुक्खबहुसस्सियं " इत्यादि ? अथवा प्राणी की हत्या जो करता हैं वे कषाय हैं। अथवा—कष कर्म या भव का जिससे आय लाभ होता है वे कषाय हैं। ये कषाय क्रोध आदि भेदवाला हैं और—कर्म का, या भव का हेतु हैं। कर्म, और भव इनमें से किसी एक की प्राप्तिकारक कार्य के प्रति क्रोधादिक कारण होते हैं, इसलिये कार्य कारण में अभेदोपचार सम्बन्ध को लेकर कषाय पद से क्रोधादिक गृहीत होते हैं। अथवा—जो जीव को कष कर्म या भव की प्राप्ति करते हैं वे कषाय हैं, ये कषाय क्रोधादिकरूप हैं। कहा भी है—" कम्मं कसं भवो

વિશેષાર્થ—જે કર્મરૂપી ક્ષેત્રને સુખદુઃખ રૂપ ફલને યોગ્ય બનાવે છે, તે કષાય છે. અથવા જે જીવને કલુષિત (મલિન) બનાવે છે, તે કષાય છે. કહ્યું પણ છે કે—" સહ દુકખ વહુસસ્સિય " ઈત્યાદિ. । ૧ ।

અથવા જે પ્રાણીની હત્યા કરે છે, તે કષાય છે. અથવા " કષ " એટલે કર્મ અથવા ભવ અને " આય " એટલે લાભ, આ રીતે કર્મ અથવા ભવનો જેનાથી લાભ થાય છે તેને કષાય કહે છે તે કષાયના ક્રોધાદિ ભેદો છે અને તે કર્મ અથવા ભવના કારણરૂપ છે કર્મ અને ભવ, આ બન્નેમાંથી કોઈ પ્રાપ્તિકારક કાર્યમા ક્રોધાદિક કારણભૂત બને છે, તેથી કાર્યકારણમાં અભેદોપચાર સબધને અનુલક્ષીને કષાય પદથી ક્રોધાદિક ગૃહીત થયેલ છે અથવા જે જીવને કષ (કર્મ અથવા ભવ) ની પ્રાપ્તિ કરાવે છે, તેનું નામ કષાય છે.

इति, छाया—कर्म कषः भवो वा कषः अनयोरायः यतः कषायात्। कषमाययन्ति वा यतो गमयन्ति कष कषाया इति ।१।" इति, मइप्ताः=कथिताः, तथथा— "कोहकसाए"—क्रोधकषायः—क्रोधन क्रोधः, यद्वा—क्रुध्यत्यनेनेति "क्रोधः—क्रोध मोहनीयोदयजनितः स्वपरसन्तापको जीवस्य परिणामविशेषः, अथवा—मोहनीय-कर्मैव, क्रोधश्चासौ कषायः क्रोधकषायः १,

"माणकसाए"—मानकषायः—मनन मानः='आत्याद्विगुणवानह'—मित्यादिरूपोऽहङ्कारः, स चासौ कषायो मानकषायः=मानमोहनीयो-दयजनितोऽन्यापमाननरूप आत्मपरिणामविशेषः २,

– "मायाकसाए"—मीयतेऽनयेति माया, सा चासौ कषायः=माया कषायः, माया मोहनीयोदयजनितपरवञ्चनारूपमात्मपरिणामः ३,

वा" इत्यादि कषाय के चार भेद, क्रोध १ मान २ माया ३ और लोभ ४ ये हैं। कोप करना इसका नाम क्रोध है। अथवा—आत्मा जिसके द्वारा कोप करता है वह क्रोध है, ऐसा वह क्रोध क्रोध मोहनीय के उदय से जनित हुआ स्व पर सन्तापक जीव का एक परिणाम विशेषरूप होता है। अथवा—मोहनीय कर्म ही क्रोध कषायरूप है १। मैं जात्यादि गुण वाला हूं ऐसा जो एक प्रकार का जीव को अहङ्कार होता है वह मान है यह मानरूप कषाय मान मोहनीय कर्म के उदय से दूसरों का अप मान मूलक आत्मा का परिणाम विशेष है २। माया कषाय यह कषाय माया मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न परवञ्चनरूप (दूसरे को ठगना) आत्मा का एक प्रकार से परिणाम विशेष होता है तद्रूप है। ३ लोभ

તે કષાય ક્રોધાદિ રૂપ હોય છે કહ્યું પણ છે કે—" कर्म कष भवो वा " ઇત્યાદિ.

કષાયના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર છે—(૧) ક્રોધ, (૨) માન, (૩) માયા અને (૪) લોભ. કોપ કરવો તેનું નામ ક્રોધ છે અથવા આત્મા જેના દ્વારા કોપ કરે છે તેનું નામ ક્રોધ છે એવો તે ક્રોધ ક્રોધમોહનીયના ઉદયથી જનિત થયેલ સ્વ–પર સંતાપક (પીડક) જીવના એક પરિણામ વિશેષરૂપ હોય છે અથવા મોહનીય કર્મ જ ક્રોધકષાય રૂપ છે । ૧ ।

" હું જાતિ આદિ ગુણોથી સંપન્ન છું, " આ પ્રકારના જીવને જે અહંકાર થાય છે તેનું નામ માન છે તે માનમોહનીયના ઉદયથી જનિત એવું અન્યનું અપમાન કરનારૂં આત્માનું પરિણામવિશેષ છે । ૨ ।

માયાકષાય—તે માયામોહનીય કર્મના ઉદયથી જનિત અન્યને ઠગવારૂપ આત્માનું એક પ્રકારનું પરિણામવિશેષ છે

" लोहकसाए "–लोभनम्=अभिकाङ्क्षणं लोभः, यद्वा–लुभ्यतेऽनेनेति लोभः, स चासौ कषायो लोभकषायः=लोभमोहनीयोदयजनितो जीवस्यासन्तोषात्मकः परिणामविशेषः ४।

" एव "–मिति–अनेन प्रकारेण अर्थाद् यथा सामान्यतश्चत्वारः कषायाः प्रज्ञप्तास्तथा, ' णेरइयाणं ' इति–नैरयिकाणां=नारकाणां यावद्वैमानिकानामिति भवनपतिमारभ्य वैमानिकपर्यन्त चतुर्विंशतिदण्डकोक्तानां विज्ञेयम् २४।

" चउप्पइट्ठिए " इत्यादि–चतुष्प्रतिष्ठितः–चतुर्षु प्रतिष्ठितः–आश्रितः=चतुष्प्रतिष्ठितः, क्रोधः = क्रोधरूपः प्रथमकषायः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आत्मप्रतिष्ठितः–आत्मनि=स्वस्मिन् स्वापराधवशेनैहिकिकपारलौकिकापायप्रदर्शनादुत्पन्नतया प्रतिष्ठितः– प्रविष्टःआत्मप्रतिष्ठितः=आत्मविषय इत्यर्थः १, " परप्रतिष्ठितः "—

कषाय–यह कषाय लोभ मोहनीय कर्म के उदय से जायमान जीव का जो असन्तोषरूप परिणाम होता है तद्रूप है ४। सामान्यरूप से ये चार कषाय जिस प्रकार प्रतिपादित हैं, इसी प्रकार से इन कषायों का सम्बन्ध नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौवीस दण्डक में जानना चाहिये। क्रोधरूप जो प्रथम कषाय है वह चतुष्प्रतिष्ठित है उसका तात्पर्य ऐसा है कि यह क्रोधरूप कषाय आत्मप्रतिष्ठित तब होता है कि जब यह जीव अपने अपराध के वश से इहलोक सम्बन्धी अपायों और परलोक सम्बन्धी अपायों को देखता है तब इसे अपने कुत्सित कर्तव्यों के प्रति एक प्रकार की झुंझलाहट सी छूटती है, इस प्रकार से स्व की ओर झुंझलाहट छूटने रूप जो यह क्रोध कषाय है वह आत्मप्रतिष्ठित क्रोधकषाय है। तात्पर्य इस कथन का केवल यही है कि आत्मा जब

લોભકષાય—આ કષાય લોભમોહનીય કર્મના ઉદયથી જનિત જીવના અસંતોષ પરિણામરૂપ હોય છે. આ ચારે પ્રકારના કષાયોનો સદ્ભાવ નારકથી લઇને વૈમાનિક પર્યન્તના ૨૪ દંડકના જીવોમાં હોય છે.

ક્રોધરૂપ પ્રથમ કષાય નીચેનાં ચાર સ્થાનોમાં પ્રતિષ્ઠિત થયેલો છે—(૧) આત્મપ્રતિષ્ઠિત–જીવ જ્યારે પોતાના અપરાધને કારણે પેદા થનારા આલોક સંબંધી અપાયોને અને પરલોક સંબંધી અપાયોને સમજી શકે છે, ત્યારે તેને પોતાના દુષ્કૃત્યો પ્રત્યે એક પ્રકારનો અણગમો ઉત્પન્ન થાય છે, આ રીતે પોતાની જાત પ્રત્યે જ તિરસ્કાર થવા રૂપ, અથવા પોતાના આત્માને જ ઠપકો આપવા રૂપ જે ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે તેને આત્મપ્રતિષ્ઠિત ક્રોધ કહે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—

परेण=अन्येन शापादिनोत्पादिततया प्रतिष्ठितः=परप्रतिष्ठितः परविषय इत्यर्थः २,

"तदुभयप्रतिष्ठित" तमात्मपरौ यस्य स उभयः, समुदाय, तयोरात्म-परयोरुभयस्तदुभयस्तत्र प्रतिष्ठितस्तदुभयप्रतिष्ठितः = आत्म – परप्रतिष्ठितः = आत्मपरविषय इत्यर्थः ३,

"अप्रतिष्ठित"–आक्रोशादिकारणनिरपेक्षः क्रोधमोहनीयोदयमात्रमन्यत्र तुर्यः क्रोधो भवति। यद्यपि–अयं क्रोधस्य चतुर्थो भेदो जीवप्रतिष्ठितो भवति। तथापि आत्मादिविषयेऽनुत्पन्नत्वादप्रतिष्ठित उक्तः, न तु सर्वथा अप्रतिष्ठितः,

किसी अकृत्य कार्य की ओर झुकता है या कर देता है तब अपने आपके ऊपर जो एक प्रकार की ऐसी क्रोधभरी परिणति उत्पन्न होती है कि "मैं अब ऐसा नहीं करुगा" यह मुझे नहीं करना था "मैंने बडा अपराध किया है" इस प्रकार से अपने ऊपर एक प्रकार की क्रोध जैसी परिणति जगती है वही क्रोधकषाय आत्मप्रतिष्ठित है।

परप्रतिष्ठित क्रोधकषाय वह है जो शाप आदि द्वारा पर में उत्पन्न कराई जाती है तथा–जो क्रोधकषाय अपने में, और पर में, दोनों में प्रतिष्ठित होती है वह तदुभयप्रतिष्ठित क्रोध कषाय है–३ तथा अप्रति ष्ठित क्रोध कषाय वह है जो आक्रोश आदि कारणों से निरपेक्ष बनकर केवल क्रोध मोहनीय के उदय से जन्य होती है। यद्यपि–क्रोध का यह चतुर्थ भेद जीव में प्रतिष्ठित होता है तो भी आत्मादि विषय में अनु त्पन्न होने के कारण ही अप्रतिष्ठित कहा गया है सर्वथा रूप से अप्र तिष्ठित नहीं कहा गया है। यदि यह सर्वथा अप्रतिष्ठित होता तो–

આત્મા જ્યારે કોઈ દુષ્કૃત્ય કરવાનું વલણ બતાવે છે, અથવા કોઈ દુષ્કૃત્ય કરી નાખે છે ત્યારે જીવને પોતાની જાત પ્રત્યે જ એવી ક્રોધભરી પરિણતિ ઉત્પન્ન થાય છે કે 'મે આ શું કર્યુ ! આ પ્રકારનું કૃત્ય મને શોભતું નથી." પોતાના આત્મા પ્રત્યેજ આ પ્રકારની ક્રોધભરી પરિણતિ ઉત્પન્ન થવી એનું નામ જ આત્મપ્રતિષ્ઠિત ક્રોધ છે

પરપ્રતિષ્ઠિત ક્રોધકષાયનું નિરૂપણ–શાપ આદિ દ્વારા પરમાં જે ક્રોધકષાય ઉત્પન્ન કરાય છે તેને પરપ્રતિષ્ઠિત ક્રોધકષાય કહે છે

જે ક્રોધકષાય પોતાની અંદર અને પરની અંદર એમ સ્વ-પર બંનેમાં પ્રતિષ્ઠિત હોય છે તેને તદુભય પ્રતિષ્ઠિત ક્રોધકષાય કહે છે

જે ક્રોધકષાય આક્રોશ આદિ કારણોની અપેક્ષા રાખ્યા વિના, માત્ર ક્રોધમોહનીયના ઉદયથી જનિત હોય છે, તેને અપ્રતિષ્ઠિત ક્રોધકષાય કહે છે. જો કે ક્રોધનો આ ચતુર્થ ભેદ જીવમાં પ્રતિષ્ઠિત હોય છે, છતાં પણ આત્માદિ વિષયોમાં અનુત્પન્ન હોવાને કારણે જ તેને અપ્રતિષ્ઠિત કહ્યો છે. સર્વથા રૂપે

यदि सर्वथा अप्रतिष्ठितः स्यात्तदा " चतुष्प्रतिष्ठितः क्रोधः " इति प्रतिज्ञा-वाक्यमसङ्गतं स्यादिति । एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियाणां कोपस्याऽऽत्मादिप्रतिष्ठितत्वं पूर्वभवे क्रोधपरिणामपरिणतमरणेनोत्पन्नानामिति ।

'एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं' इति । एवम् अनेन प्रकारेण क्रोधादि चत्वारः कषाया नैरयिकादारभ्य वैमानिकपर्यन्तं विज्ञेया इति ।

" एवं जाव लोहे वेमाणियाणं " इति-एवम्=अनेन प्रकारेण यथा क्रोधश्च-तुष्प्रतिष्ठित उक्तस्तथा मान-माया-लोभा अपि चतुष्प्रतिष्ठिताः, नारकादि वैमानिकपर्यन्तचतुर्विंशतिदण्डकेषु विज्ञेयाः ।

" चतुष्प्रतिष्ठित क्रोधः " ऐसा यह कहना असंगत हो जाता है। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों के कोप में आत्मादि प्रतिष्ठितता उनको क्रोध परिणाम से परिणत हुवे मरण से उत्पन्न होने के कारण से जाननी चाहिये। इसी प्रकार से नैरयिक से लेकर यावत् वैमानिक तक के चतुर्विंशति २४ चोवीस दण्डकों मे रहने वाले जीवों के क्रोध में भी चार कारण जानना चाहिये। तथा इन सब में क्रोधादि चार कषायों का सद्भाव जानना चाहिये।

जिस प्रकार से क्रोध में चार कारण कहा है, उसी प्रकार से-" एवं जाव लोहे वेमाणियाण " मान माया और लोभ में भी चतु-ष्प्रतिष्ठितता जाननी चाहिये। और यह चतुष्प्रतिष्ठिता नारकादि वैमानिक पर्यन्त चोवीस दण्डकोंमे रहनेवाले जीवों के मानादिक कषायों में है ऐसा समझना चाहिये।

અપ્રતિષ્ઠિત કહ્યો નથી. જો તે સર્વથા અપ્રતિષ્ઠિત હોત તો " चतुष्प्रतिष्ठितः क्रोध " આ કથન અસંગત બની જાત એકેન્દ્રિય અને વિકલેન્દ્રિય જીવોમાં ક્રોધની આત્મપ્રતિષ્ઠિતતા આદિનો સદ્ભાવ ક્રોધપરિણામથી પરિણત થયેલા મરણથી ઉત્પન્ન થવાને કારણે સમજવો જોઇએ એ જ પ્રમાણે નારકથી લઇને વૈમાનિક પર્યન્તના ૨૪ દંડકના જીવોનાં ક્રોધમા પણ ચતુષ્પ્રતિષ્ઠિતતા સમજવી જોઇએ અને તેઓમા ક્રોધાદિ ચાર કષાયોનો સદ્ભાવ સમજવો જોઇએ.

" एव जाव लोहे वेमाणियाण " જે પ્રકારે ક્રોધમાં ચતુષ્પ્રતિષ્ઠિતતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે, એ જ પ્રમાણે માન, માયા અને લોભમા પણ ચતુષ્પ્રતિ-ષ્ઠિતતા સમજવી, અને નારકથી લઇને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં માન, માયા અને લોભરૂપ કષાયોની અપેક્ષાએ પણ તે ચતુષ્પ્રતિષ્ઠિતતાનો સદ્ભાવ સમજવો.

क्रोधादयः कषाया उक्तास्तत्र क्रोध किं किमाश्रित्योत्पद्यते ? इत्याह—" चउहिं " इत्यादि-चतुर्भिः स्थानैः क्रोधोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा-क्षेत्रं=नारकादीनां स्थानं=प्रतीत्य=आश्रित्य क्रोधः स्यात् १,

वस्तु=सचेतनादि पदार्थम्, प्रतीत्य क्रोधः स्यात्, यद्वा-वास्तु=गृहभूमिं प्रतीत्य क्रोधः स्यात् २, शरीर=काय दुरवस्थां प्राप्तं विरूपं वा प्रतीत्य क्रोधः स्यात् ३, उपधिम्=उपकरणं प्रतीत्य क्रोध स्यात् ४। एकेन्द्रियाणां जीवानां भवान्तरपेक्षया क्रोधोत्पत्तिः स्यात्।

" एवं णेरइयाणं " इत्यादि-अनेन प्रकारेण, नैरयिकाणामित्यारभ्य वैमानिकानामिति चतुर्विंशतिदण्डकपर्यन्तं पठनीयम्।

अथ सूत्रकार यह प्रगट करते हैं कि-क्रोध किस किस कारण को आश्रित करके उत्पन्न होता है-" चउहिं " इत्यादि, वे इस सूत्र द्वारा यह प्रगट कर रहे हैं-कि इन चार कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है वे चार कारण इस प्रकार से हैं-इनमे एक कारण है क्षेत्र नारकादिक रूप क्षेत्र को आश्रित करके क्रोध हो सकता है १ सचेतनादि पदार्थरूप, वस्तु को लेकर क्रोध हो सकता है-२ दुरवस्था को प्राप्त हुवे शरीर को लेकर या विरूपावस्था को प्राप्त हुवे शरीर का लेकर जीव को क्रोध हो सकता है ३ या उपकरण रूप उपधि को लेकर क्रोध हो सकता है ४ एकेन्द्रिय जीवों में क्रोध की उत्पत्ति भवान्तर की अपेक्षा से जाननी चाहिये। " एवं णेरइयाणं " इत्यादि, इसी प्रकार से क्रोधोत्पत्ति के कारणों का कथन नैरइक से लेकर वैमानिक तक के चतुर्विंशति दण्डकस्थ जीवों में भी जानना चाहिये।

હવે સૂત્રકાર એ વાતને પ્રકટ કરે છે કે ક્રોધ કયા કયા કારણોને લીધે ઉત્પન્ન થાય છે—" चउहिं " ઇત્યાદિ નીચેના ચાર કારણોને લીધે ક્રોધની ઉત્પત્તિ થાય છે

(૧) ક્ષેત્ર-નારકાદિ રૂપ ક્ષેત્રને કારણે ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે

(૨) સચિતનાદિ પદાર્થરૂપ વસ્તુને કારણે પણ ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે

(૩) દુરવસ્થા પામેલા શરીરને કારણે અથવા વિરૂપાવસ્થા પામેલા શરીરને કારણે પણ ક્રોધ ઉત્પન્ન થય છે

(૪) ઉપકરણ રૂપ ઉપધિને કારણે પણ ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે

એકેન્દ્રિય જીવોમાં ક્રોધની ઉત્પત્તિ ભવાન્તરની અપેક્ષાએ સમજવી જોઈએ. " एवं णेरइयाणं " ઇત્યાદિ-ક્રોધોત્પત્તિના આ ચાર કારણોનું કથન નારકથી લઈને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોના વિષયમાં પણ સમજવું જોઈએ.

" एवं जाव लोहे वेमाणियाणं " इति-अनेन प्रकारेण अर्थात् यथा क्षेत्रादिकं प्रतीत्य क्रोधोत्पत्तिः कथिता, तथा मान-माया-लोभा अपि क्षेत्रादिकमाश्रित्य समुत्पद्यन्त इति तैरपि लोभान्तं पदं योजयित्वा वैमानिकानामित्यन्तं तत्तद्दण्डकं पठनीयमित्यर्थः २४।

पुनः क्रोधादि चातुर्विध्यं निरूपयति—" चउव्विहे कोहे " इत्यादि—

चतुर्विधः क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अनन्तानुबन्धी क्रोधः—अविद्यमानोऽन्तोऽवधिर्यस्य सोऽनन्तः संसारः, तमनुबध्नातीत्येवंशीलोऽनन्तानुबन्धी, स क्रोधोऽनन्तानुबन्धी

" एवं जाव लोहे वेमाणियाणं " जिस प्रकार क्षेत्रादि को आश्रित करके क्रोध की उत्पत्ति हो सकने का कथन किया गया है उसी प्रकार से मान माया और लोभ भी क्षेत्रादिक को आश्रित करके उत्पन्न होते है इसलिये-क्षेत्र को आश्रित करके, वस्तु को आश्रित करके, शरीर को आश्रित करके, और उपधि को आश्रित करके, ऐसे पद उनके साथ जोडकर मान से लेकर लोभ तक की उत्पत्ति हो सकने का कथन कर लेना चाहिये ऐसा यह कथन नारक से लेकर वैमानिक तक के समस्त जीवों के क्रोधादिकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कर लेना चाहिये।

अब सूत्रकार पुनः क्रोधादिकों में चतुर्विधता का कथन इस प्रकार से करते हैं-" चउव्विहे कोहे " अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि " अविद्यमानोऽवधिर्यस्य सोऽनन्तः " जिसकी अवधि विद्यमान नहींहै वह अनन्त है ऐसा अनन्त संसार है ऐसे संसार का सम्बन्ध करने का जिसे स्व-

---

" एव जाव लोहे वेमाणियाणं " જે પ્રમાણે ક્ષેત્રાદિકનો આધાર લઈને ક્રોધની ઉત્પત્તિના ચાર કારણોનું કથન-કરવામાં આવ્યું છે, એ જ પ્રમાણે માન, માયા અને લોભની ઉત્પત્તિ પણ ક્ષેત્રાદિક ચાર કારણોને લીધે જ થાય છે એમ સમજવું એટલે કે માન, માયા અને લોભની ઉત્પત્તિના પણ નીચે પ્રમાણે ચાર કારણો જ સમજવા જોઈએ—(૧) નારકાદિ ક્ષેત્રરૂપ કારણ, (૨) વસ્તુરૂપ કારણ, (૩) શરીરરૂપ કારણ અને (૪) ઉપધિરૂપ કારણ આ કથન નારકથી લઈને વૈમાનિક પર્યન્તના સમસ્ત જીવોના ક્રોધાદિક કષાયોની ઉત્પત્તિના કારણો વિષે ગ્રહણ થવું જોઈએ.

હવે સૂત્રકાર ક્રોધાદિકોમાં ચતુર્વિધતાનું કથન બીજી રીતે કરે છે— " ચઉવ્વિહે કોહે " ક્રોધના બીજી રીતે પણ ચાર પ્રકાર પડે છે—

(૧) અનન્તાનુબંધી ક્રોધ—" अविद्यमानोऽवधिर्यस्य सोऽनन्तः " જેની અવધિ વિદ્યમાન નથી તેને અનંત કહે છે એવો અનંત સંસાર છે. એવા

क्रोधः यद्वा—अनन्तभवासावनुबन्धो भवपरम्परारूपोऽनन्तानुबन्ध, सोऽस्य स्यत्यनन्तानुबन्धी, स क्रोधोऽनन्तानुबन्धी क्रोध १,

"अपच्चक्खाणे कोहे" इति-अप्रत्याख्यानः क्रोधः अविद्यमान प्रत्याख्यानम्=अणुव्रतादिरूप यस्मिन् सोऽप्रत्याख्यान =देशविरत्यावारका, स क्रोधोऽप्रत्याख्यानः क्रोध २।

"पच्चक्खाणा वरणे कोहे" इति-प्रत्याख्यानाऽऽवरण-प्रत्याख्यान=सर्वविरतिरूपम्, आ-मर्यादया, वृणोति = आच्छादयतीति प्रत्याख्यानाऽऽवरणः सर्वविरतिनिरोधक, क्रोध ३

भाव होता है यह अनन्तानुबन्धी है, ऐसा अनन्तानुबन्धी जो क्रोध है वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है। अथवा-भवपरम्परारूप अनन्तानुबन्ध जिसके कारण से जीव को हो जाता है वह अनन्तानुबन्धी है ऐसा जो अनन्तानुबन्धी क्रोध है वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है "अपच्चक्खाणे कोहे" जिसमें अणुव्रतादिरूप प्रत्याख्यान अविद्यमान होता है वह अप्रत्याख्यान है, अर्थात्-जो क्रोध देशविरति का आवारक होता है वह क्रोध अप्रत्याख्यान क्रोध है। "पच्चक्खाणावरणे कोहे" इति सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान को जो आच्छादित करता है वह प्रत्याख्याना वरण क्रोध है। अर्थात् सर्वविरति का निरोध करनेवाला है। "सजलणे कोहे" जो क्रोध यथाख्यातचारित्र का निरोधक होता है वह सज्वलन

સંસારમાં ભ્રમણ કરાવવાનો જેનો સ્વભાવ છે તેને અનન્તાનુબન્ધી કહે છે એવો અનન્તાનુબન્ધી જે ક્રોધ છે તેને અનન્તાનુબન્ધી ક્રોધ કહે છે. અથવા ભવપરમ્પરા રૂપ અનન્તાનુબન્ધ જેના કારણે જીવને થઈ જાય છે તેને અનન્તાનુબન્ધી કહે છે તે અનન્તાનુબન્ધના કારણભૂત જે ક્રોધ છે તેને અનન્તાનુબન્ધી ક્રોધ કહે છે

(૨) અપચ્ચક્ખાણે કોહે" અપ્રત્યાખ્યાન ક્રોધનું નિરૂપણ—જે જીવમાં અણુવ્રતાદિ પ્રત્યાખ્યાનનો સદ્ભાવ હોતો નથી, તે જીવને અપ્રત્યાખ્યાન કહે છે એવા જીવના ક્રોધને અપ્રત્યાખ્યાન ક્રોધ કહે છે એટલે કે જે ક્રોધ દેશ વિરતિનો આવારક (નિરોધક) હોય છે તે ક્રોધને અપ્રત્યાખ્યાન ક્રોધ કહે છે

(૩) 'પચ્ચક્ખાણાવરણે કોહે' પ્રત્યાખ્યાનાવરણ ક્રોધ—સર્વવિરતિ રૂપ પ્રત્યાખ્યાનને જે આચ્છાદિત કરે છે તે પ્રત્યાખ્યાનાવરણ ક્રોધ છે એટલે કે સર્વ વિરતિનો નિરોધ કરનારો જે ક્રોધ છે તેને પ્રત્યાખ્યાનાવરણ ક્રોધ કહે છે.

" संजलणे कोहे " इति—सम्-ईषत्, ज्वलति=दीप्यत इति संज्वलनः=अल्पतरः, क्रोधः=यथाख्यातचारित्राऽऽवारकः कषायविशेष इत्यर्थः ४ ।

" एवं " इति-एवम्=अनेन प्रकारेण यत् क्रोधस्यानन्तानुवन्धिप्रभृतिभेदचतुष्टयमुक्तं तत् ' नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ' इति नैरयिकादारभ्य वैमानिकपर्यन्तचतुर्विंशति दण्डकेषु विज्ञेयम् ।

" एवं जाव लोहे वेमाणियाणं " इति-एवम्=अनेन प्रकारेण अर्थात् यथा क्रोधस्यानन्तानुवन्धिप्रभृति भेदचतुष्टयमुक्तं तथा मान–माया–लोभानामपि प्रत्येकमनन्तानुवन्ध्यादिभेदचतुष्टयं नैरयिकादि वैमानिकपर्यन्तं पठनीयमिति २४ ।

अनन्तानुवन्धिप्रभृतीनामियं निरुक्तिः—

" अनन्तान्यनुवध्नन्ति, यतो जन्मानि भूतये । अतोऽनन्तानुवन्ध्याख्या, क्रोधाद्याऽऽद्येषु दर्शिता (सञ्ज्ञा) । १ । नाल्पमप्युत्सहेद्येषां प्रत्याख्यानमिहो-

---

क्रोध है, संज्वलन शब्द का अर्थ अल्पतर है यह क्रोध यथाख्यात चारित्र को नहीं होने देता है। इस प्रकार से चार भेदोंवाले अनन्तानुवन्धी क्रोध " नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं " नैरयिक से लेकर यावत्–वैमानिक तक के चतुर्विंशति दण्डकों में जानना चाहिये, अर्थात्–ये अनन्तानुवन्धी आदि क्रोध के भेद चतुर्विंशति दण्डकस्थ समस्त जीवों में होते हैं। " एवं जाव लोहे वेमाणियाणं " जिस प्रकार से क्रोध के अनन्तानुवन्धी आदि चार भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार से मान माया और लोभ के भी चार २ भेद होते हैं, ऐसा कह लेना चाहिये और–ये प्रत्येक कषाय के अनन्तानुवन्धी आदि चार चार भेद नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीवों में हैं ऐसा जानना चाहिये—२४

---

(४) " सजलणे कोहे " સંજ્વલન ક્રોધ—જે ક્રોધ યથાખ્યાત ચારિત્રનો નિરોધક હોય છે તેને સંજ્વલન ક્રોધ કહે છે. " સંજ્વલન " એટલે " અલ્પતર " આ ક્રોધ યથાખ્યાત ચારિત્રનો સદ્‌ભાવ થવા દેતો નથી. " नेरइयाण जाव वेमाणियाण " આ પ્રકારના અનન્તાનુબંધી આદિ ચાર ભેદ વાળા ક્રોધનો સદ્‌ભાવ નારકથી લઇને વૈમાનિક પર્યન્તના ૨૪ દંડકના જીવોમાં પણ હોય છે, એમ સમજવું. " एवं जाव लोहे वेमाणियाण " જેમ ક્રોધના અનન્તાનુબંધી આદિ ચાર ભેદ કહ્યા છે, તેમ માન, માયા અને લોભના પણ અનન્તાનુબંધી આદિ ચાર ચાર ભેદો સમજવા, અને તે પ્રત્યેક કષાયના આ ચારે ભેદોનો સદ્‌ભાવ નારકથી લઇને વૈમાનિક પર્યન્તના જ દંડકોના જીવોમાં પણ હોય છે, એમ સમજવું જોઇએ.

दयात्। अप्रत्याख्यानसंज्ञास्ते द्वितीयेषु निवेशिता ।२। सर्वसावद्यविरतिः प्रत्याख्यानमुदाहृतम्। तदावरणसंज्ञाऽस्तस्तृतीयेषु निवेशिता ।३। शब्दादीन् विषयान् प्राप्य, संज्वलन्ति यतो मुहुः। अतः संज्वलनाह्वान चतुर्थानामिहोच्यते ।४।

पुनः क्रोधं विभजते—" चउव्विहे " इत्यादि – चतुर्विधः=चतुष्प्रकारः, क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आभोगनिर्वर्तितः–आभोगः=अनुभवो ज्ञानमित्यर्थः, तेन निर्वर्तितः=निष्पादितः, यं क्रोधं प्राणी जानन् करोति सः १।

" अणाभोगणिव्वत्तिए " इति–अनाभोगनिर्वर्तितः–अनाभोगोऽज्ञानम्, तेन निर्वर्तितः=अज्ञानेन कृतः, यं क्रोधमजानन् प्राणी करोति स २। " उवसंते "

अनन्तानुबन्धी आदिकों की निरुक्ति ऐसी है–" अनन्तान्यनुबन्धन्ति " इत्यादि इन श्लोकों का तात्पर्य स्पष्ट है, अर्थात्–ऊपर में इनके सम्बन्ध में जैसा कहा गया है वैसा ही है जीव जिनके उदय में अपने संसार को अनन्त कर लेता है वह अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषाय है, तथा जिसके उदय में श्रावक का देशविरतिरूप चारित्र नहीं होता है वह अप्रत्याख्यान क्रोधादिकषाय है सर्वविरतिरूप चारित्र को जो होने देता है वह प्रत्याख्यान क्रोधादिकषाय है और जो यथाख्यातचारित्र को होने से रोकता है वह संज्वलन क्रोधादि कषाय हैं।

अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि ये क्रोधादि कषाय इस प्रकार से भी चार भेदवाला है " अणाभोगणिव्वत्तिए " इति अनाभोग नाम अज्ञान का है इस अज्ञान से जो क्रोध निर्वर्तित उत्पन्न होता है वह

અનન્તાનુબંધી આદિનું સ્પષ્ટીકરણ કરતી ગાથાઓ નીચે પ્રમાણે છે—" अणन्तान्यनुबध्नन्ति " આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ ઉપર સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે છતાં અહીં તેમનો ભાવાર્થ સંક્ષિપ્તમાં આપવામાં આવે છે–જીવ જેમના ઉદયમાં પોતાના સંસારને અનન્ત કરી નાખે છે, તે અનન્તાનુબંધી ક્રોધાદિ કષાયો જ છે જેના ઉદયમાં શ્રાવકના દેશવિરતિ રૂપ ચારિત્રનો સદ્ભાવ રહેતો નથી, તેનું નામ અપ્રત્યાખ્યાન ક્રોધાદિ કષાયો છે જેને કારણે શ્રાવકના દેશ વિરતિરૂપ ચારિત્રનો સદ્ભાવ રહેતો નથી તેનું નામ પ્રત્યાખ્યાન ક્રોધાદિ કષાયો છે જેના કારણે યથાખ્યાત ચારિત્રનો સદ્ભાવ રહેતો નથી એવાં સંજ્વલન ક્રોધાદિ કષાયો છે

હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે ક્રોધાદિક કષાયોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) આભોગનિવર્તિત–" अणाभोगणिव्वत्तिए " ઇત્યાદિ—(૨) અનાભોગ નિવર્તિત ક્રોધ–અનાભોગ એટલે અજ્ઞાન. તે અજ્ઞાનને લીધે જે ક્રોધ નિવર્તિત (ઉત્પન્ન) થાય છે, તે ક્રોધને અનાભોગ નિવર્તિત ક્રોધ

इति–उपशान्तः=अनुदयावस्थः, यश्च वहिर्न प्रकाशतेऽन्तरेव तिष्ठति सः ३। "अणुवसंते" इति–अनुपशान्त.=उपशान्तोऽनुदयावस्थः, नोपशान्तोऽनुपशान्त उदयावलिका प्रविष्टः, यश्च क्रोधो वहिः प्रकाशते सः ४। एकेन्द्रियादीनां जीवानामाभोगनिर्वर्तितः क्रोधः संज्ञिपूर्वभवापेक्षया वोध्यः, अनाभोगनिर्वर्तितस्तु तद्भवापेक्षयाऽपि भवितुमर्हति ज्ञानविकलत्वात्। उपशान्तः क्रोधो नारकादीनां जीवानां विशिष्टोदयाभावात् प्रत्येतव्यः, अनुपशान्तः क्रोधो निर्विचार प्राणिष्वेव जायत इति पर्यवसितम्।

अनाभोग निर्वर्तित क्रोध है इस अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध को प्राणी नहीं जानता हुवा करता है। तात्पर्य इसका यही है कि–अज्ञान अवस्था में जो क्रोध होता है वह अनाभोग निर्वर्तितक्रोध है जो क्रोध अनुदय अवस्थावाला होता है वह क्रोध उपशान्त क्रोध है ऐसा यह क्रोध वाहर में नहीं होता है, किन्तु–भीतर में वना रहता है। जो क्रोध उदयावलिका में प्रविष्ट होता है वह अनुपशान्त क्रोध है ऐसा क्रोध वाहर प्रगट हो जाता है। एकेन्द्रिय आदि जीवों में अनाभोगनिर्वर्तितक्रोध संज्ञी पूर्वभव की अपेक्षा से जानना चाहिये तथा अनाभोग निर्वर्तित क्रोध तद्भव की अपेक्षा से जानना चाहिये। क्यों कि–वे ज्ञानविकल होते हैं। उपशान्त क्रोध नारकादि जीवों में विशिष्ट उदय के अभाव से जानना चाहिये। अनुपशान्त क्रोध विचार विहीन प्राणियों में ही होता है यह क्रोध चतुष्टय नैरयिक से लेकर वैमानिक तक में होता

કહે છે જીવ અજ્ઞાતાવસ્થામાં આ પ્રકારનો ક્રોધ કરે છે. આ રીતે અજ્ઞાતાવસ્થામાં જે ક્રોધ થાય છે તેને અનાભોગ નિવર્તિત ક્રોધ કહે છે.

જે ક્રોધ અનુદય અવસ્થાવાળો હોય છે, એવા ક્રોધને ઉપશાન્ત ક્રોધ કહે છે. એવો ક્રોધ બહાર પ્રકટ થતો નથી પણ અંદરને અંદર જ પડ્યો રહે છે.

જે ક્રોધ ઉદયાવલિકામાં પ્રવિષ્ટ થયેલો હોય છે, તે ક્રોધને અનુપશાન્ત ક્રોધ કહે છે, એવો ક્રોધ બહાર પ્રકટ થઈ જાય છે.

એકેન્દ્રિયાદિક જીવોમાં આભોગનિવર્તિત ક્રોધનો સદ્ભાવ સંજ્ઞી પૂર્વભવની અપેક્ષાએ જાણવો જોઈએ. અને અનાભોગ નિવર્તિતનો સદ્ભાવ તદ્ભવ (એજ ભવ) ની અપેક્ષાએ સમજવો જોઈએ, કારણ કે તેઓ જ્ઞાનરહિત હોય છે. નારકાદિ જીવોમાં ઉપશાન્ત ક્રોધનો સદ્ભાવ વિશિષ્ટ ઉદયના અભાવને લીધે સમજવો. અનુપશાન્ત ક્રોધનો સદ્ભાવ વિચારવિહીન પ્રાણીઓમાં જ હોય છે. આ ચારે પ્રકારના ક્રોધનો સદ્ભાવ નારકથી લઈને વૈમાનિક પર્યં-

" एवं " इति-एवं=क्रोधचतुष्टयं नैरयिकादि वैमानिकपर्यवसितम्।
" एवम् " इति, एवं=क्रोधवत् मान-माया-लोभविषय पदत्रयं संयोज्य नैरयिकादि वैमानिकपर्यन्त चतुर्विंशतिदण्डकेषु पठनीयम्॥ सू०११॥
इदानीं कषायाणामेव कालत्रयवर्तिनः फलविशेषानाह—

मूलम्--जीवा ण चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु, त जहा—कोहेण १, माणेण २, मायाए ३, लोभेण ४। एव जाव वेमाणियाण २४, एव चिणति एए दडओ, एव चिणिस्सति एस दडओ, एवमेएणं अभिलावेणं तिन्नि दडगा, एव उवचिणिसु उवचिणति उवचिणिस्सति, बधिसु ३ उदीरिसु ३ वेएसु ३ निज्जरेंसु णिज्जरेंति निज्जरिस्सति, जाव वेमाणियाणं, एवमेक्केक्के पदे तिन्नि २ दडगा भाणियव्वा, जाव निज्जरिस्सति॥ सू० १२॥

छाया—जीवाः खलु चतुर्भिः स्थानैः अष्ट कर्म प्रकृतीः अचिन्वन्, तद्यथा-क्रोधेन १, मानेन २, मायया, ३, लोभेन ४। एवं यावत् वैमानिकानाम् २४,

है। जिस प्रकार क्रोध के ये अनाभोगनिर्वर्तित आदि चार भेद प्रकट किये गयेहैं उसी प्रकार मान माया लोभ भी चार चार प्रकारके होतेहैं ऐसा जानना चाहिये, और ये अनाभोग आदि मान माया लोभ नैरयिक से लेकर वैमानिक तक समस्त जीवों में होते हैं ऐसा समझना चाहिये॥ सू०११॥

अब सूत्रकार कषायों का ही कालत्रयवर्ती जीव के फल विशेष का कथन करते हैं—" जीवाणं चउहिं ठाणेहिं-' इत्यादि—

सूत्रार्थ-जीवों ने चार कारणोंसे पहले अष्ट कर्म प्रकृतियोंका उपार्जन

न्तना જીવોમાં હોય છે જેમ ક્રોધના આભોગનિર્વર્તિત, અનાભોગનિર્વર્તિત આદિ ચાર ભેદ કહ્યા છે, એ જ પ્રમાણે માન, માયા અને લોભના પણ ચાર ચાર ભેદ પડે છે. તે આભોગ, અનાભોગ આદિ માન, માયા અને લોભનો પણ નારકથી લઈને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં સદ્ભાવ હોય છે ॥ સૂ ૧૨ ॥
હવે સૂત્રકાર કષાયોના કાલત્રયવર્તી ફલવિશેષનું નિરૂપણ કરે છે—
" जीवाणं चउहिं ठाणेहिं " ઈત્યાદિ—
જીવોએ ચાર કારણોને લીધે આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનું ઉપાર્જન કર્યું છે.

एवं चिन्वन्ति एतद् दण्डकम्, एवं चेष्यन्ति एतद् दण्डकम्, एवमेतेनाभिलापेन त्रीणि दण्डकानि, एवम् उपाचिन्वन् उपचिन्वन्ति उपचेष्यन्ति, अवध्नन् ३ उदैरयन् ३ अवेदयन् ३ निरजरयन् ३ निर्जरयन्ति निर्जरयिष्यन्ति, यावत् वैमानिकानाम्, एकमेकैकस्मिन् पदे त्रीणि त्रीणि दण्डकानि भणितव्यानि, यावत् निर्जरयिष्यन्ति ॥ सू० १३ ॥

टीका—" जीवा णं " इत्यादि-जीवाः खलु चतुर्भिः-चतुःसंख्यैः स्थानैः= क्रोधादिभि श्चतुर्भिः अष्ट कर्मप्रकृतीः-कर्मणां प्रकृतयः=ज्ञानावरणीयादिरूपाः,

---

किया है वे चार कारण इस प्रकार से हैं-क्रोध १ मान २ माया ३ और लोभ ४ इसी तरह का कथन यावद्वैमानिक जीवों तक कर लेना चाहिये, इन्हीं चार कारणों को लेकर जीव वर्तमान में भी ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्म प्रकृतियों का उपार्जन करते हैं और आगे भी करेंगे। इस तरह इन दोनों वर्तमान भविष्यत् काल सम्बन्धी दण्डकों को जानना चाहिये। इसी तरह जीव पूर्वकाल में भी इन्हीं क्रोधादि चार कारणों से ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्म प्रकृतियों का संचय कर रखा है। इसी तरह जीवों ने इन्हीं चार कारणों को लेकर पूर्व में ज्ञानावरणीयादिक आठ कर्म प्रकृतियों का बन्ध किया है, वर्तमान में भी करते हैं और आगे भी इन्हीं कारणों को लेकर इनका बन्ध करेंगे।

इसी तरह से जीवों ने इन्हीं चार कारणों को लेकर पूर्व में ज्ञानावरणादिक आठ कर्मप्रकृति की उदीरणा की है वर्तमान में भी करते हैं

તે ચાર કારણો આ પ્રમાણે છે-(૧) ક્રોધ, (૨) માન, (૩) માયા અને (૪) લોભ. આ પ્રકારનું કથન વૈમાનિક પર્યન્તના ૨૪ દંડકના જીવો વિષે સમજવું આ ચાર કારણોને લીધે જ જીવો વર્તમાનમાં પણ જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનું ઉપાર્જન કરે છે આ ચાર કારણોને લીધે જ જીવ ભવિષ્યમાં પણ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનું ઉપાર્જન કરશે. આ પ્રકારના વર્તમાન અને ભવિષ્યકાળ સંબંધી દંડકો ઉપચયના વિષયમાં પણ સમજવા. એ જ પ્રમાણે જીવે ભૂતકાળમાં પણ ક્રોધાદિક ચાર કારણોને લીધે જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનો ઉપચય કરી રાખેલો જ હોય છે.

આ ચાર કારણોને લીધે જ જીવોએ ભૂતકાળમાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનો બંધ કર્યો છે, વર્તમાનમાં પણ કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ કરશે.

એ જ પ્રમાણે આ ચાર કારણોને લીધે જીવોએ ભૂતકાળમાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓની ઉદીરણા કરી છે, વર્તમાનમાં પણ કરે છે અને

" एवं " इति-एवं=क्रोधचतुष्टय नैरयिकादि वैमानिकपर्यवसितम् ।
" एवम् " इति, एवम्=क्रोधवत् मान-माया-लोभविषय पदत्रयं संयोज्य नैरयिकादि वैमानिकपर्यन्त चतुर्विंशतिदण्डकेषु पठनीयम् ॥ सू०११ ॥
इदानीं कषायाणामेव कालत्रयवर्तिनः फलविशेषानाह—

मूलम्–जीवा ण चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु, त जहा–कोहेण १, माणेण २, मायाए ३, लोभेण ४। एव जाव वेमाणियाण २४, एव चिणति एए दडओ, एव चिणिस्सति एस दडओ, एवमेएणं अभिलावेणं तिन्नि दडगा, एव उवचिणिसु उवचिणति उवचिणिस्सति, बधिसु ३ उदीरिसु ३ वेएसु ३ निज्जरेंसु णिज्जरेंति निज्जरिस्सति, जाव वेमाणियाणं, एवमेक्केक्के पदे तिन्नि २ दडगा भाणियव्वा, जाव निज्जरिस्सति ॥ सू० १२ ॥

छाया—जीवाः खलु चतुर्भिः स्थानैः अष्ट कर्म प्रकृतीः अचिन्वन्, तद्यथा–क्रोधेन १, मानेन २, मायया, ३, लोभेन ४। एवं यावत् वैमानिकानाम् २४,

है। जिस प्रकार क्रोध के ये अनाभोगनिर्वर्तित आदि चार भेद प्रकट किये गयेहैं उसी प्रकार मान माया लोभ भी चार चार प्रकारके होतेहैं ऐसा जानना चाहिये, और ये अनाभोग आदि मान माया लोभ नैरयिक से लेकर वैमानिक तक समस्त जीवों में होते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ सू०११ ॥

अब सूत्रकार कषायों का ही कालत्रयवर्ती जीव के फल विशेष का कथन करते हैं—" जीवाणं चउहिं ठाणेहिं–' इत्यादि—

सूत्रार्थ–जीवों ने चार कारणोंसे पहले अष्ट कर्म प्रकृतियोंका उपार्जन

ન્તના જીવોમાં હોય છે જેમ કે ધના આભોગનિવર્તિત, અનાભોગનિવર્તિત આદિ ચાર ભેદ કહ્યા છે, એ જ પ્રમાણે માન, માયા અને લોભના પણ ચાર ચાર ભેદ પડે છે તે આભોગ, અનાભોગ આદિ માન, માયા અને લોભનો પણ નારકથી લઈને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં સદ્ભાવ હોય છે ॥ સૂ ૧૨ ॥

હવે સૂત્રકાર કષાયોના કાલત્રયવર્તી ફલવિશેષનું નિરૂપણ કરે છે—
" जीवाणं चउहिं ठाणेहिं " ઈત્યાદિ—
જીવોએ ચાર કારણોને લીધે આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનું ઉપાર્જન કર્યું છે

भविष्यत्कालिकं पदं योजयित्वैतद्दण्डकं पठनीयम्। "एवम्"=इत्थम्, 'एतेन' –भूत–वर्तमान–भविष्यत्कालिकपदयोजनात्रयरूपेणाभिलापेन त्रीणि=त्रिसंख्यानि दण्डकानि सम्पद्यन्ते, एवं च क्रोधादि चतुष्टयेन सह भूत–वर्तमान–भविष्यत्प्रयोगघटितदण्डकत्रयस्य चतुर्गुणीकरणेन द्वादश दण्डकानि भवन्ति। "एवं उवचिणिंसु" इत्यादि–एवं=यथा चयनसूत्रमुक्तं, तथोपचयनसूत्रमपि क्रोध–मान–माया–लोभैः सह कालत्रयविषयं दण्डकं वोध्यम्। तत्र चयनं–कषायपरिणत जीवस्य कर्मदलिकग्रहणमात्रम्। उपचयनं तु–चितस्य गृहीतकर्मदलिकस्यावा-

---

पद को घटित करके वर्तमान कालिक और भविष्यत्कालिक दण्डक कह लेना चाहिये। इस प्रकार भूत वर्तमान और भविष्यत् कालिक तीन पदों की योजनावाले आलापकों से तीन दण्डक बन जाते हैं। क्रोधादि चतुष्टय के साथ इन भूत वर्तमान और भविष्यत् प्रयोग घटित करके दण्डकत्रय को चौगुन करने से १२ दण्डक हो जाते हैं। जिस प्रकार यह चयन सूत्र कहा गया है उसी प्रकार से उपचयन सूत्र भी जानना चाहिये इस उपचयन सूत्र में भी भूत वर्तमान भविष्यवत् कालिक पद योजनात्रय से तीन दण्डक होते हैं, और क्रोधादि चतुष्टय के साथ इन्हें चौगुना करने से कालत्रय विषयक १२ दण्डक होते हैं। कषाय से परिणत हुवे जीव के द्वारा जो कर्मदलिकों का ग्रहण करना मात्र होता है वह–चयन है गृहीत हुवे कर्मदलिक का अबाधाकाल को छोडकर जो

કાલિક ક્રિયાપદનો પ્રયોગ કરીને ભવિષ્યકાલિક દંડક કહેવું જોઇએ આ પ્રમાણે ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાલિક ક્રિયાપદોનો પ્રયોગ કરવાથી ત્રણ આલાપક રૂપ ત્રણ દંડક બની જાય છે ક્રોધાદિ ચતુષ્ટય (ચાર) ની સાથે ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાળ વિષયક કુલ ૧૨ દંડક થાય છે, કારણ કે ત્રણે કાળની અપેક્ષાએ પ્રત્યેકના ત્રણ ત્રણ દંડક થતા હોવાથી ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ આ ચારના કુલ ૩×૪=૧૨ દંડક થાય છે.

જે રીતે આ ચયન સૂત્રનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, એ જ પ્રમાણે ઉપચયન સૂત્રનું પણ કથન થવું જોઇએ. આ ઉપચયન સૂત્રમાં પણ ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાળ વિષયક ક્રિયાપદ યોજવાથી ક્રોધ આદિ પ્રત્યેકના ત્રણ દંડક થાય છે. ક્રોધાદિ ચાર કષાયો વડે તેને ગુણવાથી ચારે કષાયોના કુલ બાર દંડક થાય છે

કષાયથી પરિણત થયેલા જીવ દ્વારા જે કર્મદલિકોનું માત્ર ગ્રહણ જ થાય છે, તેને ચયન કહે છે. ગૃહીત થયેલા કર્મદલિકો અબાધાકાળને છોડીને જે જ્ઞાનાવરણાદિ રૂપે પરિણત થાય છે તેને ઉપચયન કહે છે, તેનું નામ જ

ताः, अचिन्वन्=भूतकाले उपार्जयन्, तथथा-तान्येव स्थानान्याह-क्रोधेन १, मानेन २, मायया ३, लोभेन ४। एवं यावद् वैमानिकानां विषये विज्ञेयम्। एवं वर्तमाने चिन्वन्ति, भविष्यन्ति च चेष्यन्तीति।

"एवं चिणंति" इत्यादि-एवम्=अनेन प्रकारेण, अर्थात् यथा भूतकालिक 'अचिन्वन्' इति पदं घटयित्वा दण्डकमुक्तं तथा 'चिन्वन्ति' इति वर्तमानकालिकं पदं घटयित्वैतत्=अनन्तरोक्तं दण्डकं पठनीयम्, तथा-'चेष्यन्ति' इति

आगे भी करेंगे। इसी प्रकार जीवों ने इन्हीं चार कारणों को लेकर पूर्व में ज्ञानावरणीयादिक आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन किया है वर्तमान में भी करते हैं और आगे भी करेंगे। इसी प्रकार जीवों ने इन चार कारणों को लेकर इन कर्मप्रकृतियों की निर्जरा की है अब भी वे करते हैं और आगे भी करेंगे, ऐसा यह कथन यावत् वैमानिक जीवों तक में जानना चाहिये इस प्रकार एक २ पद में तीन २ दण्डक यावत् निर्जरा पद तक कहना चाहिये। विशेषार्थ-नारक से लेकर वैमानिक तक के जीवों ने क्रोध मान माया और लोभ इन चार कारणों को आश्रित करके पहले भूतकाल में उपार्जन किया है ऐसा यह भूतकालिक दण्डक है, क्यों कि-"अचिन्वन्" पद है इस भूतकालिक पद को घटित करके यह दण्डक बनाया गया है। इसी तरह से "चिन्वन्ति" वर्तमानकालिक पद को घटित करके, और "चेष्यन्ति" भविष्यत्कालिक

ભવિષ્યમાં પણ કરશે. આ ચાર કારણોને લીધે જ ભૂતકાળમાં જીવોએ જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનું વેદન કર્યું છે, વર્તમાનમાં પણ કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ કરશે. ક્રોધાદિક આ ચાર કારણોને લીધે જીવોએ જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓની ભૂતકાળમાં નિર્જરા કરી છે વર્તમાનમાં પણ કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ કરશે. આ પ્રકારનું કથન વૈમાનિક પર્યન્તના સમસ્ત જીવોમાં પણ સમજવું જોઇએ. આ પ્રકારે પ્રત્યેક પદના ત્રણ ત્રણ દંડક નિર્જરા પર્યન્તના પૂર્વોક્ત પદ સાથે સમજવા જોઇએ.

વિશેષાર્થ—"નારકથી લઇને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોએ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ ચાર કારણોને લીધે જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનું ભૂતકાળમાં ઉપાર્જન કર્યું છે," આ ભૂતકાલિક દંડક છે કારણ કે "અચિન્વન્" આ ભૂતકાલિક ક્રિયાપદનો પ્રયોગ કરીને આ દંડક બનાવવામાં આવ્યું છે એ જ પ્રમાણે 'ચિન્વન્તિ" આ વર્તમાનકાલિક ક્રિયાપદનો પ્રયોગ કરીને વર્તમાનકાલિક દંડક કહેવું જોઇએ, અને "ચેષ્યન્તિ" આ ભવિષ્ય

भविष्यत्कालिकं पदं योजयित्वैतद्दण्डकं पठनीयम्। "एवम्"=इत्थम्, 'एतेन' -भूत-वर्तमान-भविष्यत्कालिकपदयोजनात्रयरूपेणाभिलापेन त्रीणि=त्रिसंख्यानि दण्डकानि सम्पद्यन्ते, एवं च क्रोधादि चतुष्टयेन सह भूत-वर्तमान-भविष्यत्प्रयोगघटितदण्डकत्रयस्य चतुर्गुणीकरणेन द्वादश दण्डकानि भवन्ति। "एवं उवचिणिंसु" इत्यादि-एवं=यथा चयनसूत्रमुक्तं, तथोपचयनसूत्रमपि क्रोध-मान-माया-लोभैः सह कालत्रयविषयं दण्डकं बोध्यम्। तत्र चयनं-कषायपरिणत जीवस्य कर्मदलिकग्रहणमात्रम्। उपचयनं तु-चितस्य गृहीतकर्मदलिकस्याबा-

पद को घटित करके वर्तमान कालिक और भविष्यत्कालिक दण्डक कह लेना चाहिये। इस प्रकार भूत वर्तमान और भविषपत् कालिक तीन पदों की योजनावाले आलापकों से तीन दण्डक बन जाते हैं। क्रोधादि चतुष्टय के साथ इन भूत वर्तमान और भविष्यत् प्रयोग घटित करके दण्डकत्रय को चौगुन करने से १२ दण्डक हो जाते हैं। जिस प्रकार यह चयन सूत्र कहा गया है उसी प्रकार से उपचयन सूत्र भी जानना चाहिये इस उपचयन सूत्र में भी भूत वर्तमान भविष्यवत् कालिक पद योजनात्रय से तीन दण्डक होते हैं, और क्रोधादि चतुष्टय के साथ इन्हें चौगुना करने से कालत्रय विषयक १२ दण्डक होते हैं। कषाय से परिणत हुवे जीव के द्वारा जो कर्मदलिकों का ग्रहण करना मात्र होता है वह-चयन है गृहीत हुवे कर्मदलिक का अबाधाकाल को छोडकर जो

કાલિક ક્રિયાપદનો પ્રયોગ કરીને ભવિષ્યકાલિક દંડક કહેવું જોઇએ. આ પ્રમાણે ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાલિક ક્રિયાપદોનો પ્રયોગ કરવાથી ત્રણ આલાપક રૂપ ત્રણ દંડક બની જાય છે. ક્રોધાદિ ચતુષ્ટય (ચાર) ની સાથે ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાળ વિષયક કુલ ૧૨ દંડક થાય છે, કારણ કે ત્રણે કાળની અપેક્ષાએ પ્રત્યેકના ત્રણ ત્રણ દંડક થતા હોવાથી ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ આ ચારના કુલ ૩×૪=૧૨ દડક થાય છે.

જે રીતે આ ચયન સૂત્રનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, એ જ પ્રમાણે ઉપચયન સૂત્રનું પણ કથન થવું જોઇએ. આ ઉપચયન સૂત્રમાં પણ ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાળ વિષયક ક્રિયાપદ યોજવાથી ક્રોધ આદિ પ્રત્યેકના ત્રણ દંડક થાય છે. ક્રોધાદિ ચાર કષાયો વડે તેને ગુણવાથી ચારે કષાયોના કુલ બાર દંડક થાય છે

કષાયથી પરિણત થયેલા જીવ દ્વારા જે કર્મદલિકોનું માત્ર ગ્રહણ જ થાય છે, તેને ચયન કહે છે. ગૃહીત થયેલા કર્મદલિકો અબાધાકાળને છોડીને જે જ્ઞાનાવરણાદિ રૂપે પરિણત થાય છે તેને ઉપચયન કહે છે, તેનું નામ જ

भाकाङ्क्षमन्तरेण ज्ञानाऽऽवरणादितया परिणमनम् । तदेव निषेक इत्युच्यते। आद्यवस्थायां जीवा मचुरतर कर्मदलिक निषिञ्चन्ति, द्वितीयावस्थायां विशेष हीनम्, एव यावदुत्कृष्टावस्थायां विशेषहीन कर्मदलिक निषिञ्चन्ति, उक्त च- " मोत्तूण सगमबाहं पढमाइ ठिईए बहुतर दव्व । ससे विसेसहीणं जावुक्कोसंति सव्वेसिं । १ । " इति, छाया-" मुक्त्वा स्वकामबाधां प्रथमायां स्थितौ बहुतरं द्रव्यम् । शेषायां विशेषहीन यावदुत्कृष्टमिति सर्वासाम् । १ । " इति,

" चर्यिसु ३ "-' अबध्नन् बध्नन्ति भन्त्स्यन्ति ' इत्यर्थः, जीवाः क्रोधेन कर्मप्रकृतीः अबध्नन्, बध्नन्ति भंत्स्यन्ति, इति सम्बन्धः । तत्र बन्धन चितस्य कर्मणो ज्ञानावरणीयादितया निषिक्तस्य सतः पुनरपि कषाय-परिणामविशेषा न्निकाचनम्, एवं मान-माया-लोभैरपि विज्ञेयम् ।'

ज्ञानावरणादिरूप से परिणत होता है यह उपचयन है इसी का नाम निषेक है। जीव आद्य अवस्था में प्रचुरतर कर्मदलिक का निषेक करते हैं और द्वितीय अवस्था में विशेष हीन कर्मदलिक का निषेक उपचयन करते हैं। इस प्रकार वे यावत् उत्कृष्टावस्था में विशेष हीन कर्मदलिक का निषेक करते रहते है। कहा भी है-" मोत्तूण संगमबाहं " इत्यादि "चर्यिसु ३" जीवों ने पूर्वकाल में कर्मप्रकृतियों का क्रोध से बन्ध किया है, अब भी वे करते हैं और आगे भी वे करेंगे। ज्ञानावरणीयादिरूप से निषिक्त हुवे कर्म का पुनः जो कषायविशेष से निकाचन होता है वह बन्ध है, जिस प्रकार यह बन्ध क्रोध से होता है उसी प्रकार मान माया और लोभ से भी होता है ऐसा जानना चाहिये। "उदीरिंसु ३"

નિષેક છે જીવો આદ્ય અવસ્થામાં પ્રચુરતર કર્મદલિકોનો નિષેક કરે છે અને દ્વિતીય અવસ્થામાં વિશેષ હીન કર્મદલિકોનો નિષેક (ઉપચય) કરે છે આ રીતે તેઓ (યાવત્) ઉત્કૃષ્ટાવસ્થામાં વિશેષ હીન કર્મદલિકોનો નિષેક કરતાં રહે છે કહ્યું પણ છે કે-' मोत्तूण संगमबाहं ' ઈત્યાદિ—

" बंधिसु ३ " ક્રોધને કારણે જીવોએ જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિ ઓનો બંધ કર્યો છે, વર્તમાનમાં પણ કરે છે અને ભવિષ્યમાં પણ કરશે. જેમ આ બંધ ક્રોધથી થાય છે, એ જ પ્રમાણે માન, માયા અને લોભથી પણ થાય છે તેથી ક્રોધને બદલે આ ત્રણ પદોનો ક્રમશઃ પ્રયોગ કરીને ત્રણ કાળ-વિષયક આલાપક બનાવી શકાય છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ રૂપે નિષિક્ત (ઉપચિત) થયેલાં કર્મને ફરી જે કષાયવિશેષ વડે નિકાચન થાય છે, તેનું નામ બન્ધ છે.

तथा-" उदीरिंसु "-उदैरयन् उदीरयन्ति उदीरयिष्यन्ति, तत्रोदीरणम्-अनुदयावस्थस्य कर्मणः करणेनाऽऽकृष्योदयावस्थायां प्रक्षेपणम्।

तथा-" वेएंसु " ३-अवेदयन् वेदयन्ति वेदयिष्यन्तीत्यर्थः, तत्र वेदनम्-स्थितिक्षयादुदयप्राप्तस्य कर्मणोऽनुभवनम्, यद्वा-उदयप्राप्तस्य कर्मण उदीरणाकरणेनोदयावस्थां प्रापितस्य कर्मणोऽनुभवनम्।

तथा-" निज्जरेंसु " इत्यादि-निरजरयन् निर्जरयन्ति निर्जरयिष्यन्ति, तत्र निर्जरा च-आत्मप्रदेशात् कर्मणः पृथग्भवनम्, इह देशनिर्जरैव ग्राह्या, न तु सर्वनिर्जरा, सर्वनिर्जरायाश्चतुर्विंशतिदण्डकेष्वसम्भवात्।

अनुदयाऽवस्थ कर्म को करण द्वारा खींचकर उदयावस्था में प्रक्षिप्त करना इसका नाम उदीरणा है, यहां पर भी पहले जैसे ३ आलापक कालत्रय को लेकर बना देना चाहिये। " वेएंसु " ३-स्थिति के क्षय से उदय प्राप्त कर्म का अनुभवन करना वेदन है यहां पर भी ३ तीन आलापक कालत्रय को लेकर बना लेना चाहिये। वेदना का दूसरा अर्थ इस प्रकार से भी है कि-उदय प्राप्त कर्म का उदीरणा करण द्वारा उदयावस्था में प्रापित हुवे कर्म का अनुभवन करना, वेदन है। " निज्जरेसु-" इत्यादि-यहां पर भी " निरजरयन् " " निर्जरयन्ति " और " निर्जरयिष्यन्ति " ऐसे तीन आलापक कालत्रय को लेकर बना लेना चाहिये। आत्मप्रदेशोंसे कर्मका एकदेशसे पृथक् होना निर्जराहै, निर्जरा दो प्रकार की होतीहै देशनिर्जरा १ और सर्व निर्जरा २ यहां-देशनिर्जरा ही गृहीत

" उदीरिंसु ३ " અનુદય પ્રાપ્ત કર્મપુદ્ગલોને કરણ દ્વારા ખેંચીને ઉદયાવસ્થામાં પ્રક્ષિપ્ત કરવા તેનું નામ ઉદીરણા છે. ઉદીરણાના વિષયમાં પણ ત્રણે કાળની અપેક્ષાએ ઉપર કહ્યા મુજબના ત્રણ આલાપકનું કથન થવું જોઈએ.

" वेएंसु ३ " સ્થિતિના ક્ષયથી ઉદય પ્રાપ્ત થયેલા કર્મનું અનુભવન કરવું તેનું નામ વેદન છે. વેદનનો બીજો અર્થ આ પ્રમાણે પણ થાય છે ઉદયપ્રાપ્ત કર્મનું-ઉદીરણાકરણ દ્વારા ઉદયાવસ્થા જેણે પ્રાપ્ત કરી છે એવા કર્મનું અનુભવન કરવું તેનુ નામ વેદન છે. વેદનના વિષયમાં પણ કાળત્રયની અપેક્ષાએ ઉપર કહ્યા મુજબના ત્રણ આલાપક બનાવી શકાય છે.

" निज्जरेसु " ઇત્યાદિ-અહીં પણ " निरजरयन्, निर्जरयन्ति, અને निर्जरयिष्यन्ति " આ ત્રણે કાળના ક્રિયાપદના પ્રયોગથી ત્રણ આલાપક બનાવવા જોઈએ. આત્મપ્રદેશોથી કર્મનું અલગ થવું તેનુ નામ નિર્જરા છે. નિર્જરા બે પ્રકારની છે-(૧) દેશનિર્જરા અને (૨) સર્વનિર્જરા. અહીં દેશનિર્જરા જ

"जाव वेमाणियाणं" इति-वैमानिकपर्यन्तं तत्तद्दण्डकं पठनीयम्।

"एवमेक्केक्के पदे" इत्यादि-एवम्=उक्तप्रकारेण यथाऽचिन्वन्नादिपदघटितं तत्तद्दण्डकत्रयमुक्तं तथा अबध्नन्नादिपदघटितमपि तत्तद्दण्डकं पठनीयम्, एतदेव स्पष्टयति-"एक्केक्के पदे" इत्यादिना, एकैकस्मिन्=प्रत्येकम्, इत्यर्थः, अयं भावः-"अबध्नन्" इति पदे योजिते सति त्रीणि दण्डकानि, पुनः 'बध्नन्ति' इति पदे योजिते सति त्रीणि दण्डकानि। तथा 'भंत्स्यन्ति' इति पदे योजिते सति त्रीणि दण्डकानि, अनेन क्रमेण 'उदैरयन्, उदीरयन्ति उदीरयिष्यन्ति' इत्यादि भूतवर्तमानभविष्यत्कालिकतत्तत्पदयोगयोजनयैकस्मिन्नेकस्मिन् पदे त्रीणि

हुई है, सर्वनिर्जरा नहीं गृहीत हुई है। क्यों कि-चतुर्विशति दण्डकों में इस निर्जरा का असद्भाव है। "जाव वेमाणियाण' वैमानिक पर्यन्त यह दण्डक पठनीय है।" एवमेक्कैक्के पदे-' जैसे-"अचिन्वन्" आदि पदघटित दण्डकत्रय कहे गये हैं वैसे ही "अबध्नन्" आदि पदघटित भी दण्डकत्रय कल्पना से बनाना चाहिये। इसी का स्पष्टीःकरण सूत्रकार अब "एक्के क्के पदे-" इत्यादि सूत्र द्वारा करते हैं, इसमें उन्हों ने कहा है कि-"अबध्नन्" इस पद को योजित करने पर मान माया और लोभ सम्बन्धी पद के आधार पर भूतकाल को लेकर ३-३ दण्डक होते हैं। जैसे-जीवों ने मान से भूतकाल में अष्ट प्रकृतियों का बन्ध किया है १ माया से इनका भूतकाल मे बन्ध किया है २, और लोभ से इनका बन्ध भूतकाल मे किया है ३। इस प्रकार से "अब

ગૃહીત થઈ છે, સર્વનિર્જરા ગૃહીત થઈ નથી, કારણ કે ચોવીશ દંડકોના જીવોમાં સર્વનિર્જરાનો સદ્ભાવ નથી.

"जाव वेमाणियाणं" વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં આ દંડકોનું કથન થવું જોઈએ. "एवमेक्केक्के पदे" જેમકે "अचिन्वन्" આદિ પદઘટિત ત્રણ દંડક કહેવામાં આવ્યા છે, એવાં જ "अबध्नन्" આદિ પદઘટિત પણ ત્રણ ત્રણ દંડક કલ્પનાથી બનાવી લેવા જોઈએ. એ જ વાતનું સૂત્રકાર હવે "एक्के पदे" ઈત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા સ્પષ્ટીકરણ કરે છે—

આ સૂત્રપાઠ દ્વારા સૂત્રકાર એમ કહે છે કે "अबध्नन्" આ પદને યોજિત કરીને માન, માયા અને લોભ સબંધી પદને આધારે ભૂતકાળની અપેક્ષાએ ત્રણ ત્રણ દંડક થાય છે જેમકે (૧) જીવોએ માનને કારણે ભૂત કાળમાં આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનો બન્ધ કર્યો છે (૨) એ જ પ્રમાણે માયાના કારણે પણ તેમનો ભૂતકાળમાં બન્ધ કર્યો છે, અને (૩) લોભને કારણે પણ ભૂત કાળમાં તેનો બન્ધ કર્યો છે. આ પ્રમાણે "अबध्नन्" આ ભૂતકાળનું રૂપ

त्रीणि दण्डकानि भणितव्यानि । तानि च किम्पदपर्यन्तमिति दर्शयति–" जाव निज्जरिस्सन्ति " इति, " निर्जरयिष्यन्ति " इतिपदपर्यन्तं त्रीणि त्रीणि दण्डकानि प्रत्येकं पदे भणितव्यानीत्यर्थः । (सू. १३ ॥

न्नन्" पद के तीन दण्डक मान माया और लोभ कषाय को लेकर भूतकाल मे होते हैं। उसी प्रकार से " बध्नन्ति " पद को योजित करने पर मान माया और लोभ को लेकर तीन दण्डक होते हैं। अर्थात्– मान कषाय को लेकर तथा माया कषाय को लेकर एव लोभ कषाय को लेकर जीव वर्तमान मे अष्ट कर्मप्रकृतियों का बन्ध करते हैं। इस प्रकार से "बध्नन्ति" पद को योजित करने पर वर्तमानकाल सम्बन्धी ये तीन दण्डक होते हैं।

इसी तरह से " भन्त्स्यन्ति " भविष्यत् कालिक पद को योजित करके भी भविष्यत्काल सम्बन्धी तीन दण्डक हो जाते हैं इसी क्रम से "उदैरयन्–" भूतकालिक पद को योजित करने पर मान से भूतकाल में जीवों ने अष्टकर्मप्रकृतियों की उदीरणा की है, माया से उदीरणा की है, और लोभ से उनकी उदीरणा की है इस प्रकार के ये तीन दण्डक भूतकाल सम्बन्धी बन जाते हैं। " उदीरयन्ति–" इस वर्तमान कालिक

વાપરીને માન, માયા અને લોભ, આ ત્રણ કષાયોના ભૂતકાળ સંબંધી ત્રણ દંડક બને છે એ જ પ્રમાણે " बध्नन्ति." આ વર્તમાનકાળના ક્રિયાપદનું રૂપ વાપરીને માન, માયા અને લોભરૂપ કારણવાળાં ત્રણ દંડક આ પ્રમાણે બને છે. (૧) જીવો માનને કારણે અષ્ટકર્મપ્રકૃતિઓનો બંધ કરે છે, (૨) માયાના કારણે પણ જીવો અષ્ટકર્મપ્રકૃતિઓનો બંધ કરે છે. (૩) લોભને કારણે પણ જીવો અષ્ટકર્મપ્રકૃતિઓનો બંધ કરે છે. એ જ પ્રમાણે ભવિષ્યકાળ સંબંધી ત્રણ દંડક આ પ્રમાણે સમજવા–(૧) માનને કારણે જીવો ભવિષ્યમા આઠ કર્મ-પ્રકૃતિઓ બંધ કરશે, (૨) માયાને કારણે જીવો આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનો બંધ કરશે અને (૩) લોભને કારણે જીવો આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનો બંધ કરશે. ક્રોધના કારણવાળા ત્રણ દંડક તો આગળ આપવામાં આવ્યા છે. આ રીતે ચાર કષાય વિષયક ત્રણે કાળસંબંધી કુલ ૧૨ દંડક " બન્ધ " પદ સાથે બને છે.

ઉદીરણા વિષયક આલાપકો–" उदैरयन् " આ ભૂતકાલિન ક્રિયાપદના પ્રયોગથી આ પ્રમાણે ત્રણ આલાપક બનશે-(૧) ભૂતકાળમાં જીવોએ માનને કારણે આઠ કર્મપ્રકૃતિઓની ઉદીરણા કરી છે, (૨) માયાથી પણ ઉદીરણા કરી છે અને (૩) લોભથી પણ ઉદીરણા કરી છે. આ રીતે ભૂતકાળ સંબંધી ત્રણ

पूर्वं निर्जरोक्ता, सा च प्रतिमाधारणाद्विशिष्टा भवत्यतः प्रतिमाः सूत्रत्रयेण दर्शयितुमाह—

मूलम्—चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समाहिपडिमा १, उवहाण पडिमा २, विवेगपडिमा ३, विउस्सग्गपडिमा४।

चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा भद्दा १, सुभद्दा२, महाभद्दा ३, सव्वओभद्दा ४। चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा--खुड्डिया मोयपडिमा १, महल्लिया मोयपडिमा२, जवमज्झा ३, वइरमज्झा ४। सू० १४ ॥

पद को योजित करने पर तीन दण्डक वर्तमानकाल सम्बन्धी बन जाते हैं, और उदीरयिष्यन्ति इस भविष्यत्कालिक पद को योजित करने पर ३ दण्डक भविष्यकाल सम्बन्धी बन जाते हैं। इस प्रकार से ये तीन दण्डक "जाव निज्जरिस्संति" यावत् निर्जरा करेंगे यहां तक कह लेना चाहिये। इस तरह से प्रत्येक पद में ये तीनों दण्डक भणितव्य बतलाये गये हैं ॥ सू०१३ ॥

निर्जरा जो कही गई है वह प्रतिमा धारण करने से विशिष्ट होती है, अतः अब सूत्रकार प्रतिमा का कथन सूत्रत्रय से करते हैं—

"चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ" इत्यादि–१४

દંડક બની જાય છે "ઉદીરયન્તિ" "ઉદીરણા કરે છે" આ વર્તમાનકાળનું ક્રિયાપદ યોજવાથી ત્રણ દંડક વર્તમાનકાળ સંબંધી બની જશે અને "ઉદીરયિષ્યન્તિ"–"ઉદીરણા કરશે"

આ ભવિષ્યકાળ સંબંધી ક્રિયાપદ યોજવાથી ભવિષ્યકાળ સંબંધી ત્રણ દંડક બની જશે. "જાવ નિજ્જરિસ્સંતિ" આ ક્રમને અનુસરીને ચારે કષાયો સંબંધી ત્રિકાળ વિષયક ૧૨–૧૨ દંડક બનાવી શકાશે. નિર્જરા વિષયક છેલ્લા ચાર દંડક આ પ્રમાણે બનશે. જીવો (૧) ક્રોધને કારણે (૨) માનને કારણે, (૩) માયાને કારણે અને (૪) લોભને કારણે આઠ કર્મપ્રકૃતિઓની ભવિષ્યમાં પણ નિર્જરા કરશે. આ ચાર દંડક ભવિષ્યકાળની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવ્યા છે ॥સૂ ૧૩॥

પહેલાં જે નિર્જરાની વાત કરવામાં આવી, તે પ્રતિમા ધારણ કરવાથી વિશિષ્ટ થાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રતિમાની પ્રરૂપણા કરવા નિમિત્તે ત્રણ સૂત્રોનું કથન કરે છે–"ચત્તારિ પડિમાઓ પણ્ણત્તાઓ" ઇત્યાદિ—

छाया—चतस्रः प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–समाधिप्रतिमा १, उपधानप्रतिमा २, विवेकप्रतिमा ३, व्युत्सर्गप्रतिमा ४।

चतस्रः प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–भद्रा १, सुभद्रा २, महाभद्रा ३, सर्वतोभद्रा ४। चतस्रः प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–क्षुद्रिकामोकप्रतिमा १, महतिका मोकप्रतिमा २, यवमध्या ३, वज्रमध्या ४ ॥ सू० १४ ॥

टीका–"चत्तारि पडिमाओ" इत्यादि–चतस्रः प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–समाधिप्रतिमा–समाधिः–श्रुतं चरित्रं च, तद्विषया प्रतिमा=प्रतिज्ञा अभिग्रहः=समाधिप्रतिमा श्रुतचारित्रविषयकप्रतिज्ञेत्यर्थः १।

" उपप्रधानप्रतिमा "–उपधानं–तीव्रं तपः, तस्य प्रतिमोपधानप्रतिमा तिव्रतपो विषयाभिग्रह इत्यर्थः २।

सूत्रार्थ–प्रतिमा चार कही गई हैं, जैसे–समाधिप्रतिमा १ उपधानप्रतिमा २ विवेकप्रतिमा ३ और व्युत्सर्गप्रतिमा—४

इस प्रकार से भी चार प्रतिमाएं कही गई हैं, जैसे–भद्रा १ सुभद्रा २ महाभद्रा ३ और सर्वतोभद्रा—४

इस प्रकार से भी प्रतिमा चार कही गई हैं जैसे–क्षुद्रिकामोक प्रतिमा १ महतिकामोकप्रतिमा २ यवमध्या ३ और वज्रमध्या–४

विशेषार्थ—श्रुत और चारित्र का नाम समाधि है इस श्रुतचारित्ररूप समाधि विषयवाली जो प्रतिमा है अभिग्रह है वह समाधि प्रतिमा है, प्रतिमा शब्द का वाच्यार्थ यहां अभिग्रह लिया गया है। इसका तात्पर्य यही है कि श्रुत चारित्र विषयक जो प्रतिमा अभिग्रह है वही समाधि प्रतिमा है १। तीव्रतप का नाम उपधान है इस उपधान

સૂત્રાર્થ–પ્રતિમા ચાર કહી છે—(૧) સમાધિ પ્રતિમા, (૨) ઉપધાન પ્રતિમા, (૩) વિવેક પ્રતિમા અને (૪) વ્યુત્સર્ગ પ્રતિમા. પ્રતિમાના આ પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે–(૧) ભદ્રા, (૨) સુભદ્રા (૩) મહાભદ્રા અને (૪) સર્વતોભદ્રા. પ્રતિમાના આ પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ પડે છે–(૧) ક્ષુદ્રિકામોકપ્રતિમા, (૨) મહતિકામોકપ્રતિમા, (૩) યવમધ્યા અને (૪) વજ્રમધ્યા.

વિશેષાર્થ—શ્રુત અને ચારિત્રનું નામ સમાધિ છે. આ શ્રુતચારિત્ર રૂપ સમાધિ વિષયવાળી જે પ્રતિમા (અભિગ્રહ) છે, તેનું નામ સમાધિપ્રતિમા છે. અહીં " પ્રતિમા " પદનો વાચ્યાર્થ " અભિગ્રહ " ગ્રહણ કરવાનો છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે શ્રુતચારિત્ર વિષયક જે અભિગ્રહ છે, તેનું નામ સમાધિ પ્રતિમા છે. । ૧ ।

તીવ્ર તપને ઉપધાન કહે છે. તે ઉપધાનની જે પ્રતિમા છે–એટલે કે

"विवेकप्रतिमा"–विवेचनं विवेकः=शुद्धाशुद्धकल्पनीयाकल्पनीयभक्तपानवस्त्रादिमध्यादशुद्धाऽकल्पनीयपरिहारपूर्वकं शुद्धकल्पनीयग्रहणम्, तस्य प्रतिज्ञा=अभिग्रहः ३।

"व्युत्सर्गप्रतिमा"–व्युत्सर्गः – विशेषेण मनोवाङ्निरोधेनानुष्ठेयविषया-तिरिक्तात्रिविषयात् कायस्य उत्सर्गः=विमुखीकरणम्, कायोत्सर्ग इत्यर्थः, तद्विषया प्रतिमेति ४।

पुनरपि प्रतिमाचतुष्टयमाह–"चत्तारि पडिमाओ" इत्यादि–चतस्रः प्रतिमाः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–भद्रा–पूर्वादिचतुर्दिगभिमुखस्य सततस्य पूर्वादिदिक्चतुष्टये प्रत्येकं चतुरः प्रहरान् यावत् कायोत्सर्गरूपा, इयं द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां सम्पूर्णा भवति १।

की जो प्रतिमा है वह उपधान प्रतिमा है। अर्थात्–तीव्रतप विषयक जो अभिग्रह है वह–उपधान प्रतिमा है–२। शुद्ध अशुद्ध और अकल्पनीय का त्याग कर केवल शुद्ध कल्पनीय भक्त पान आदि को ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करना अभिग्रह धारण करना इसका नाम विवेक प्रतिज्ञा है ३ मनोवाक् का निरोध करते हुये अनुष्ठेय विषय से अतिरिक्त विषय सम्पर्क से काय को विमुख करना इसका नाम कायोत्सर्ग है कायोत्सर्ग विषयक जो प्रतिज्ञा है वह कायोत्सर्ग प्रतिमा है ४

प्रकारान्तर से जो भद्रा आदि प्रतिमाएं कही गई हैं, उनका अभिप्राय ऐसा है–पूर्वादि चारों दिशाओं में सतत को प्रत्येक दिशा में चार २ प्रहर तक कायोत्सर्ग करना इसका नाम भद्राप्रतिमा है। यह दो रात मे सम्पूर्ण होती है १ भद्रा प्रतिमा ही प्रवर्धमान परिणाम से

તીવ્ર તપવિષયક જે અભિગ્રહ છે તેનું નામ ઉપધાન પ્રતિમા છે । ૨ ।

શુદ્ધ–અશુદ્ધ અને અકલ્પનીયનો ત્યાગ કરીને માત્ર શુદ્ધ કલ્પનીય ભક્તપાન આદિ ગ્રહણ કરવાની જે પ્રતિજ્ઞા (અભિગ્રહ) ધારણ કરવામાં આવે છે તેનું નામ વિવેકપ્રતિમા છે । ૩ ।

મનોવાક્‌નો નિરોધ કરીને અનુષ્ઠાનના વિષય સિવાયના વિષયોના સંપર્કથી કાયાને વિમુખ રાખવી તેનું નામ કાયોત્સર્ગ છે આ કાયોત્સર્ગ વિષયક જે પ્રતિમા છે, તેને કાયોત્સર્ગ પ્રતિમા કહે છે । ૪ ।

બીજી રીતે પણ પ્રતિમાના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—

(૧) ભદ્રા પ્રતિમા—પૂર્વાદિ ચારે દિશાઓ તરફ મુખ રાખીને પ્રત્યેક દિશામાં ચાર–ચાર પ્રહર પર્યન્ત જે કાયોત્સર્ગ સતત કરવામાં આવે

"सुभद्रा"–प्रवर्धमानपरिणामेन जायमाना भद्रैवेति २।

"महाभद्रा"–पूर्वादि दिक्चतुष्टयाभिमुखस्य प्रत्येकं दिशि प्रहराष्टकं यावत् कायोत्सर्गलक्षणा, इय चतुर्भिरहोरात्रैः समाप्या भवति । ३ ।

"सर्वतोभद्रा"–दशसु दिक्षु प्रत्येकमहोरात्रप्रमाणः कायोत्सर्गः, इयं च दशभिरहोरात्रैः समाप्यते । ४ ।

पुनः प्रतिमां विभजते–"चत्तारि पडिमाओ" इत्यादि–चतस्र–प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–क्षुद्रिकामोकप्रतिमा १, महतिकामोकप्रतिमा २, अनयोर्व्याख्यानमन्यतोऽवसेयम् । यवमध्या ३, वज्रमध्या ४ चेति । अनयोर्व्याख्या द्वितीयस्थाने गतेति ॥ सू० १४ ॥

जब साधित होती है तो सुभद्राप्रतिमा कही गई है २ महाभद्रा–प्रत्येक दिशा की ओर मुंह करके प्रत्येक दिशा में आठ २ प्रहर तक कायोत्सर्ग करना सो महाभद्राप्रतिमा है। यह चार अहोरात्र दिनरात में समाप्त होती है ३ दश दिशाओं में प्रत्येक दिशा में एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना उसका नाम सर्वतोभद्रा प्रतिमा है–४ क्षुद्रिकामोकप्रतिमा आदि के भेद से जो ४ प्रतिमाएँ प्रकारान्तर से बतलाई गई हैं सो– क्षुद्रिकामोक प्रतिमा १ और महतिकाप्रतिमा–२ इन दोनों का व्याख्यान अन्य स्थानों से जानना चाहिये। तथा–यवमध्या और वज्रमध्या ये जो दो प्रतिमाएँ हैं, इसकी व्याख्या द्वितीय स्थान में की जा चुकी है, सो वहां से जान लेनी चाहिये ॥ सू१४ ॥

છે, તેનું નામ ભદ્રા પ્રતિમા છે. (૨) પ્રવર્ધમાન પરિણામ પૂર્વક જ્યારે ભદ્રા પ્રતિમાની સાધના કરવામાં આવે છે, ત્યારે તેને સુભદ્રા પ્રતિમા કહે છે.

(૩) મહાભદ્રા પ્રતિમા—પ્રત્યેક દિશા તરફ મુખ રાખીને આઠ આઠ પ્રહર પર્યન્ત જે કાયોત્સર્ગ કરવામાં આવે છે તેનું નામ મહાભદ્રા પ્રતિમા છે. આ પ્રતિમાની આરાધના કરવામાં ચાર દિનરાત જેટલો સમય લાગે છે.

(૪) સર્વતોભદ્રા પ્રતિમા—દસ દિશાઓમાંની પ્રત્યેક દિશા તરફ એક એક અહોરાત્ર (દિન–રાત) પર્યન્ત મુખ રાખીને કાયોત્સર્ગ કરવો તેનું નામ સર્વતોભદ્રા પ્રતિમા છે.

બીજી રીતે પણ પ્રતિમાના ક્ષુદ્રિકામોકપ્રતિમાઆદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે (૧) ક્ષુદ્રિકા મોકપ્રતિમા, (૨) મહતિકા મોકપ્રતિમા, આ બન્નેનું સ્પષ્ટીકરણ અન્ય સ્થાનોમાથી જાણી લેવું. 'યવમધ્યા અને 'વજ્રમધ્યા' આ બે પ્રતિમાઓનું નિરૂપણ દ્વિતીય સ્થાનમાં કરવામાં આવ્યું છે, તો ત્યાંથી તે વાંચી લેવું. ॥ સૂ. ૧૪ ॥

पूर्वं प्रतिमा प्रोक्ता, सा च जीवास्तिकाये एव सम्भवतीति तद्विपरीताजी वास्तिकायं सभेदं निरूपयति—

मूलम्—चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पण्णत्ता, तं जहा–धम्मत्थिकाए १, अधम्मत्थिकाए २, आगासत्थिकाए ३, पोग्गलत्थिकाए ४।

चत्तारि अत्थिकाया अरूविकाया पण्णत्ता, तं जहा–धम्मत्थिकाए १, अधम्मत्थिकाए २, आगासत्थिकाए ३, जीवत्थिकाए ४ ॥ सू० १५ ॥

छाया—चत्वारोऽस्तिकायाः अजीवकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–धर्मास्तिकायः १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकायः ३, पुद्गलास्तिकाय ४।

चत्वार अस्तिकायाः अरूपिकायाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकायः ३ जीवास्तिकायः ४ ॥ सू० १५ ॥

टीका—" चत्तारि अत्थिकाया " इत्यादि–" अस्ति " इति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्, तच त्रिकालवाचकम्, तेन " अस्ति " इत्यस्य " अभूवन् भवन्ति

" चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पण्णत्ता " इत्यादि १५

सूत्रार्थ–चार अस्तिकाय अजीवकाय कहे गये हैं, जैसे–धर्मास्तिकाय–१ अधर्मास्तिकाय २ आकाशास्तिकाय ३ और पुद्गलास्तिकाय–४

चार अस्तिकाय अरूपिकाय कहे गये हैं, जैसे–धर्मास्तिकाय १ अधर्मास्तिकाय २ आकाशास्तिकाय ३ और जीवास्तिकाय ४

इसमे जो हुवे हैं होते हैं और होंगे, वे अस्ति हैं ऐसा अर्थ निकलता है। प्रदेशोंकी राशिका नाम कायहै, भूतकालमें वर्तमानकालमे और भवि

" चत्तारि अत्थिकाया–अजीवकाया पण्णत्ता " ઈત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–ચાર અસ્તિકાય–અજીવકાય કહ્યાં છે—(૧) ધર્માસ્તિકાય, (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય અને (૪) પુદ્ગલાસ્તિકાય.

ચાર અસ્તિકાય અરૂપીકાય કહ્યાં છે—જેમકે (૧) ધર્માસ્તિકાય, (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય અને (૪) જીવાસ્તિકાય.

વિશેષાર્થ—" જે થયાં છે થાય છે અને થશે, તેમનુ નામ અસ્તિ છે." પ્રદેશોની રાશિનું નામ કાય છે ભૂતકાળમાં જેમાં પ્રદેશોની રાશિ થઈ છે,

भविष्यन्ति" इति विवरणम् , चीयतेऽत्रेति कायाः-राशयः, अस्ति च ते कायाश्च= प्रदेशानां राशयश्च इति अस्तिकायाः=भूतभवद्भविष्यत्प्रदेशराशय इत्यर्थः। कचित् अस्तिपदेन प्रदेशा उच्यन्ते, तत्पक्षे-अस्ति-प्रदेशानां काया अस्तिकायाः=प्रदे-शराशय इत्यर्थः, तादृशा अजीवकायाः-जीवन्ति-प्राणान् धरन्तीति जीवाः, न जीवा अजीवास्तेषां कायाः=राशयोऽजीवकायाः, चत्वारः=चतुःसंख्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-धर्मास्तिकायः १, अधर्मास्तिकायः २, आकाशास्तिकायः ३, पुद्गलास्तिकायः ४, एषां व्याख्या प्रथमस्थाने गता। सू० १५॥

ष्यत्काल में जिनमें प्रदेशों की राशि हुई है-होगी, वे अस्तिकाय हैं अर्थात्-जो बहुप्रदेशी हैं वे अस्तिकाय हैं। कहीं कहीं पर "अस्ति" पद से प्रदेश कहे गये हैं, सो उस पक्ष में प्रदेशों का जो काय है वह अस्तिकाय है। इसका भी अर्थ प्रदेशराशि है, ऐसे अस्तिकाय चार ही अजीवकाय कहे गये हैं, अजीव होते हुवे जो बहुप्रदेशी हैं वे अजीव-काय हैं। यद्यपि-जीव भी अस्तिकाय हैं, परन्तु-वह अजीव नहीं हैं, इसलिये-वह भी अजीवकाय नहीं हैं इस प्रकार अजीव होकर जिनमें कायता है वे चार हैं, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय जो प्राणों को धारण करते हैं वे जीव हैं, जो जीव नहीं हैं वे अजीव हैं अजीवों का जो काय है राशि है वह-अजीवकाय है। धर्मास्तिकाय आदि की व्याख्या प्रथम स्थान में की गई है। ये चार

વર્તમાનકાળમાં પણ જેમાં પ્રદેશોની રાશિ થાય છે અને ભવિષ્યમાં પણ જેમાં પ્રદેશોની રાશિ હશે, તેમને અસ્તિકાય કહે છે. એટલે કે જે બહુપ્રદેશી છે તેમને અસ્તિકાય કહે છે કોઇ કોઈ જગ્યાએ "અસ્તિ" પદથી "પ્રદેશ" ગૃહીત થયેલ છે આ દૃષ્ટિએ વિચારવામાં આવે તો પ્રદેશોનો જે કાય છે તેનું નામ જ અસ્તિકાય છે તેનો અર્થ પણ 'પ્રદેશરાશિ' જ થાય છે. એવા અસ્તિકાય રૂપ ચાર અજીવકાયને જ કહ્યા છે. અજીવ હોવા છતાં જે બહુ-પ્રદેશી છે, તેમને અજીવકાય કહે છે. જો કે જીવ પણ અસ્તિકાય છે, પરંતુ તે અજીવ નથી, તેથી તેને અજીવકાય કહેલ નથી આ રીતે અજીવ હોવા છતાં જેમાં કાયતાનો સદ્ભાવ છે એવાં ચાર અજીવકાય નીચે પ્રમાણે છે— (૧) ધર્માસ્તિકાય, (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩)આકાશાસ્તિકાય અને (૪) પુદ્ગલાસ્તિ-કાય. જે પ્રાણોને ધારણ કરે છે તેમને જીવ કહે છે, અને જે પ્રાણોને ધારણ કરતા નથી તેમને અજીવ કહે છે. અજીવોની જે રાશિ છે તેને અજીવકાય કહે છે. ધર્માસ્તિકાય આદિની વ્યાખ્યા પ્રથમ સ્થાનમાં આપવામા આવી છે. અરૂપી

अनन्तरं जीवास्तिकाय उक्त', तद्विशेषभूतपुरुषान् फलदृष्टान्त पूर्वक निरूपयति-

मूलम्-चत्तारि फला पण्णत्ता, तं जहा-आमे णाममेगे आममहुरे १, आमे णाममेगे पक्कमहुरे २, पक्के णाममेगे आम महुरे ३, पक्के णाममेगे पक्क महुरे ४।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-आमे णाम मेगे आममहुरफलसमाणे १, आमे णामेगे पक्कमहुरफलसमाणे २, पक्के णाममेगे आममहुरफलसमाणे ३, पक्के णाममेगे पक्क महुरफलसमाणे ४ ॥ १६ ॥

छाया-चत्वारि फलानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आमं नाम एकम् आममधुरम् १, आमं नाम एकं पक्वमधुरम् २, पक्वं नाम एकम् आममधुरम् ३, पक्वं नाम एकं पक्वमधुरम् ४।

अस्तिकाय अरूपिकाय हैं, अरूपी होकर जो काय हैं बहुप्रदेशी हैं वे अरूपिकाय हैं, यहां पुद्गलास्तिकाय को जो नहीं लिया गया है उनका कारण उसका रूपी होना है पुद्गलास्तिकाय अरूपी नहीं होता है। जीवास्तिकाय को जो अरूपिकाय में गृहीत कर लिया है यह मूलरूप में उसका अरूपी होना है। धर्मास्तिकाय आदि ये सब अरूपी हैं। इसलिये इन अस्तिकायों को अरूपीकाय में परिगणित किया गया है ॥ सू १५ ॥

अब सूत्रकार उक्त जीवास्तिकाय के विशेषभूत पुरुषों का दृष्टान्त पूर्वक निरूपण करते हैं-" चत्तारि फला पण्णत्ता " इत्यादि १६

सूत्रार्थ-फल चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-एक वह फल जो अपक्व होता हुआ आमका जैसा किञ्चित् मधुर होता है १ दूसरा वह जो अपक्व होता हुआ पके फल का जैसा अत्यन्त मधुर होता है २ तीसरा वह जो पका हुआ होकर आम जैसा किञ्चित् मधुर होता है-३ और चौथा वह फल

હોવા છતાં જે બહુપ્રદેશી છે તેમને અરૂપીકાય કહે છે એવા અરૂપીકાય ચાર કહ્યા છે-(૧) ધર્માસ્તિકાય (૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય. અહીં પુદ્ગલાસ્તિકાયને અરૂપીકાય નહીં કહેવાનું કારણ એ છે કે તે રૂપી પદાર્થ છે-અરૂપી નથી. જીવાસ્તિકાયને અરૂપીકાય કહેવાનું કારણ એ છે કે મૂળરૂપે તે અરૂપી છે ધર્માસ્તિકાય આદિ આ ચાર પદાર્થો અરૂપી જ છે. તેથી આ અસ્તિકાયોને અરૂપીકાયમાં ગણવામાં આવ્યા છે ॥ સૂ ૧૫ ॥

હવે સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત જીવાસ્તિકાયનુ-વિશેષભૂત પુરુષોના દૃષ્ટાન્તપૂર્વક નિરૂપણ કરે છે-' ચત્તારિ ફલા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-ફળોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) કાચું હોવા છતાં પણ કેરીના જેવું થોડું મધુરતાયુક્ત ફળ. (૨) કાચું હોવા છતાં પાકા ફળના

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आमो नाम एकः आममधुरफलसमानः १, आमो नामैकः पक्वमधुरफलसमानः २, पक्वो नामैकः आममधुरफलसमानः ३, पक्वो नामैकः पक्वमधुरफलसमानः ४। सू० १६ ॥

टीका—"चत्तारि फला" इत्यादि-चत्वारि=चतुः संख्यानि, फलानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आमम्=अपक्वम् सत् आममधुरम्-आममिव किञ्चिन्मधुरम् एकं=किञ्चित्फलं भवति, 'नामे' ति चतुर्ष्वपि भङ्गेषु वाक्यालङ्कारे १, तथा-आमम्=अपक्वं सत् पक्वमधुरम्=पक्वमिवात्यन्तं मधुरम्, एकं=कश्चित् फलं भवति २, तथा-पक्वं-परिपाकप्राप्तं सत् आममधुरम्=आममिव किञ्चिन्मधुरम्, एकं फलं भवति ३, तथा-पक्व=परिणतं सत् पक्वमधुर=पक्वमिवोत्कृष्टमधुरमेकं फलं भवति४।

जो पक्क जाने पर पके हुवे फल का जैसा उत्कृष्ट मधुर होता है ४ इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं, एक वह जो आम मधुर फल का समान होता है १ दूसरा वह जो पक्व मधुर फल का समान होता है-२ तीसरा वह जो पक जाने पर भी अपक्व आम फल के समान होता है ३ चौथा वह जो कि- पक्व हुवे पक्व फल का जैसा ही होता है ४ यहां-आम शब्द से अपक्व फल लिया गया है और-पक्व शब्द से पका हुवा फल लिया गया है "नाम" पद सर्वत्र वाक्यालङ्कार में प्रयुक्त हुवा है। एक फल ऐसा होता है जो आम होता हुवा आम जैसा ही मधुर होता है, अर्थात्-किञ्चित् मधुर होता है-१ एक फल ऐसा होता है जो आम होता हुवा भी पके हुवे फल जैसा अत्यन्त

જેવું અત્યન્ત મધુર હોય એવું ફળ (૩) પાકું હોવા છતાં કેરીના જેવું સહેજ મધુર ફળ. (૪) પાકીને ઉત્કૃષ્ટ રૂપે મધુર થયેલુ ફળ. એ જ પ્રમાણે પુરુષોના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અપકવ કેરીના જેવા (૨) અપકવ હોવા છતાં પકવ મધુર ફળ સમાન, (૩) પકવ હોવા છતાં અપકવ ફળ સમાન અને (૪) પકવ થઇને પકવ ફળસમાન મધુર. આ સૂત્રમાં "આમ"-"કેરી" આ પદ દ્વારા 'ફળ' ગૃહીત' થયેલ છે. 'પકવ' પદથી પાકેલું ફળ ગૃહીત થયેલ છે. હવે ફળોના ચાર પ્રકારોનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

(૧) કોઇ ફળ એવું હોય છે કે તે જ્યારે અપકવ (કાચું) હોય છે ત્યારે આમ (કેરી) જેવું જ મધુર હોય છે-એટલે કે સહેજ મધુર હોય છે.

(૨) કોઇક ફળ એવું હોય છે કે જે અપકવ હોવા છતાં પણ પકવ ફળના જેવું અત્યંત મધુર હોય છે.

॥ दार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रमाह— ॥

" एवामेवे "—त्यादि—एवम्=अनन्तरोक्तदृष्टान्तभूतफलचतुष्टयवदेवेत्यर्थः, चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आमः=अपरिपक्वः—वयः श्रुताभ्या—मव्यक्त इत्यर्थः यश्च न वयोवृद्धो न च ज्ञानवृद्धः स पुरुषः, आममधुरफल—समान —अपक्व फलवत्किञ्चिन्मधुरिमयुक्त फल तुल्यः, अयमाशयः—आममधुरफलं स्वल्पमाधुर्ययुक्तं भवति तथैकः कश्चित् पुरुषोऽपि स्वल्पमात्रो—पशमादि रूपमाधुर्ययुक्तो भवति किञ्चिदुपशमादिमान् कश्चित्पुरुषो भवतीति पर्यवसितोऽर्थः, " नामे "—ति सर्वत्र

मधुर होता है—२ एक फल ऐसा होता है जो पक आने पर भी पके हुवे फल जैसा किञ्चित् ही मधुर होतो है—३ तथा—एक फल ऐसा होता है जो पक जाने पर ही पके हुवे फल सदृश बहुत अधिक मधुर होता है ४ इस प्रकार से फल की चतुष्प्रकारता का कथन करके अब सूत्रकार इस चतुष्प्रकारता की समता पुरुषों के साथ घटाने के लिये दार्ष्टान्तिक पुरुषजात सूत्र का कथन कर रहे हैं—इसमें वे यह प्रदर्शित करते हैं कि—दृष्टान्त स्वरूप फल सदृश ही चार पुरुषजात कहे गये हैं इनमें एक वह जो आम मधुर फल का समान होता है अर्थात्—ऐसा वह पुरुष नतो वयोवृद्ध होता है और न ज्ञानवृद्ध होता है १ कोई एक आम मधुर फल अपक्व अवस्था में भी किञ्चित् मधुरिमा युक्त (स्वल्प मधुरिमा से युक्त) होता है, उसी प्रकार कोई एक पुरुष भी स्वल्पमात्रा में उप शमादिरूप माधुर्य से युक्त होता है—१ अर्थात्—कोई एक पुरुष ऐसा

(૩) કોઈક ફળ એવુ હોય છે કે જે પાકી ગયા છતાં પણ અત્યન્ત મધુર હોતુ નથી પણ સહેજ મધુર હોય છે

(૪) કોઈક ફળ એવુ હોય છે કે જે પાકુ હોય ત્યારે પાકી કેરીના જેવુ અત્યત મધુર હોય છે

આ રીતે ફળોના ચાર પ્રકારનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર આ ચતુ ષ્પ્રકારતાની સમાનતા પુરુષોની સાથે ઘટાવવા નિમિત્તે દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષ જાત વિષયક સૂત્રનુ નિરૂપણ કરે છે—

દૃષ્ટાંતરૂપ ફળ સરખા ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે.

(૧) અપક્વ સહેજ મધુર ફળસમાન પુરુષ—જે પુરુષ વયોવૃદ્ધ પણ ન હોય અને જ્ઞાનવૃદ્ધ પણ ન હોય, તેને આ પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે અથવા જેમ કોઈ ફળ (દા. ત. કેરી) અપક્વાવસ્થામાં પણ અલ્પ પ્રમાણમાં મધુરતા યુક્ત હોય છે, એ જ પ્રમાણે કોઈ કોઈ પુરુષ અલ્પ માત્રામાં ઉપશમાદિ રૂપ

भङ्गेषु वाक्यालङ्कारे १। तथा-" आम " इत्यादि-एकः=कश्चित् पुरुषः आमः-वयश्रुताभ्यामव्यक्तः सन्नेव पक्वमधुरफलसमानः-परिपक्वफलवत् प्रधानोपशमादिगुणालङ्कृ-तत्वादत्यन्तमधुरस्वभावः २, तथा-" पक्व " इत्यादि-एकः=कश्चित्पुरुषः, पक्वः=वयःश्रुताभ्यां परिणतः सन् आममधुरफलसमानः=स्वल्पमात्रोपशमादिगुणरूपमाधुर्यवान् भवति ३, तथा-" पक्वो नाम " इत्यादि-एक=कश्चित्पुरुषः पक्वः=वयःश्रुताभ्यां परिणतः पक्वमधुरफलसमानः-प्रधानोपशमादि गुणविभूषितत्वादत्यन्तमधुरस्वभावो भवति । ४।। सू० १६ ॥

होता है जो कुछ २ उपशम आदि गुणवाला होता है । एक कोई दूसरा पुरुष ऐसा होता है जो-वय और श्रुत इनसे अव्यक्त हुवा वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध नहीं हुवा भी प्रधान उपशमादि गुणों से युक्त होने के कारण अत्यन्त मधुर स्वभाववाला होता है-ऐसा वह पुरुष आम पक्व मधुर फल के समान होता है। कोई एक तीसरे प्रकार का पुरुष ऐसा होता है कि जो वय और श्रुत से परिणत होता हुवा वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध होता हुवा भी स्वल्पमात्रा में ही उपशमादि गुणरूप माधुर्यवाला होता है ऐसा वह पुरुष पक्व आम मधुर फल के समान होता है-३ और कोई एक चौथे प्रकार का पुरुष ऐसा होता है जो वयोवृद्ध और श्रुत इनसे परिणत होने पर पक्व मधुर फल के समान प्रधान उपशमादि गुण विभूषित होने के कारण अत्यन्त मधुर स्वभाववाला होताहै ४ ॥सू.१६॥

માધુર્યથી યુક્ત હોય છે એટલે કે કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે અલ્પ માત્રામાં જ ઉપશમ આદિ ગુણોથી યુક્ત હોય છે.

(૨) અપકવ હોવા છતાં અતિ મધુર ફળ સમાન પુરુષ-કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે વયોવૃદ્ધ અને જ્ઞાનવૃદ્ધ નહીં હોવા છતાં પણ ઉપશમાદિ ગુણોથી યુક્તહોવાને કારણે અત્યન્ત મધુર સ્વભાવવાળો હોય છે, એવા પુરુષને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે.

(૩) પકવ છતાં અલ્પ માત્રામાં માધુર્ય યુક્ત ફળસમાન-કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે વયોવૃદ્ધ અને જ્ઞાનવૃદ્ધ હોવા છતાં પણ અલ્પ પ્રમાણમાં ઉપશમાદિ ગુણરૂપ માધુર્યવાળો હોય છે, એવા પુરુષને આ ત્રીજા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે.

(૪) અતિશય માધુર્ય યુક્ત પકવ ફળ સમાન પુરુષ-કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે વયોવૃદ્ધ અને જ્ઞાનવૃદ્ધ (શ્રુત આદિમાં પારંગત) પણ હોય છે અને ઉપશમાદિ પ્રધાન ગુણોથી વિભૂષિત હોવાને કારણે અત્યન્ત મધુર સ્વભાવવાળો હોય છે. ॥ સૂ. ૧૬ ॥

पूर्वं पक्वमधुरउक्त, स च सत्य गुणयोगाज्जायत इति सत्यं तद्विपरीतं च मृषा तथा सत्यासत्यनिमित्त प्रणिधान च निरूपयति—

मूलम्—चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, त जहा–काउज्जुयया १, भासुज्जुयया २, भावुज्जुयया ३, अविसंवायणाजोगे ४। चउव्विहे मोसे पण्णत्ते, त जहा काय अणुज्जुयया १, भास अणुज्जुयया २, भाव अणुज्जुयया ३, विसंवायणाजोगे ४। चउव्विहे पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा–मणपणिहाणे १, वइपणिहाणे २, कायपणिहाणे ३, उवगरणपणिहाणे ४। एव णेरइयाण पचिंदियाण जाव वेमाणियाण २४। चउव्विहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा मणसुप्पणिहाणे १, वइसुप्पणिहाणे २, कायसुप्पणिहाणे ३, उवगरणसुप्पणिहाणे । एव सजयमणुस्साण वि ।

चउव्विहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा मणदुप्पणिहाणे १, वइदुप्पणिहाणे २, कायदुप्पणिहाणे ३, उवगरणदुप्पणिहाणे ४। एव णेरइयाणं पचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं ॥सू० १८ ॥

छाया—चतुर्विध सत्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–कायऋजुकता १,–भाष ऋजुकता २, भाव ऋजुकता ३, अविसंवादनायोगः ४। चतुर्विधं मृषा प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–कायानृजुकता १, भाषाऽनृजुकता २, भावाऽनृजुकता ३, विसंवादनायोगः ४।

"चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते–" इत्यादि–१७

सूत्रार्थ—सत्य चार प्रकार का कहा गया है, जैसे – कायऋजुकता १ भाषऋजुकता २ भावऋजुकता ३ और अविसंवादनायोग ४ । मृषावाद चार भेदवाला कहा गया है, जैसे कायानृजुकता १ भाषाऽनृजुकता २ भावाऽनृजुकता ३ और विसंवाद

"चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते" ईत्यादि—

सूत्रार्थ–सत्यना नीचे प्रमाणे चार प्रकार कह्या छे–(१) कायऋजुकता, (२) भाषऋजुकता, (३) भावऋजुकता अने (४) अविसंवादनायोग.

मृषावादना चार प्रकारो कह्या छे–(१) कायानृजुकता, (२) भाषा अनृजुकता, (३) भावानृजुकता अने विसंवादनायोग.

चतुर्विधं प्राणिधानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–मनःप्रणिधानं १, वाक्प्रणिधानं २, कायप्रणिधानम् ३, उपकरणप्रणिधानम् ४। एवं नैरयिकाणां पञ्चेन्द्रियाणां यावद् वैमानिकानाम् २४। चतुर्विधं सुप्रणिधानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–मनःसुप्रणिधानं १, वाक्सुप्रणिधानं २, कायसुप्रणिधानम् ३, उपकरणसुप्रणिधानम् ४। एवं संयतमनुष्याणामेव।

चतुर्विधं दुष्प्रणिधान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–मनोदुष्प्रणिधानं १, वाग्दुष्प्रणिधानं २, कायदुष्प्रणिधानम् ३, उपकरणदुष्प्रणिधानम् एवं नैरयिकाणां पञ्चेन्द्रियाणां यावद् वैमानिकानाम् २४। (सू० १८)

टीका–" चउव्विहे " इत्यादि–चतुर्विधं=चतुष्प्रकारं सत्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–कायऋजुकता–ऋजुः–सरलः स एव ऋजुकस्तस्य भावः ऋजुकता, कायस्य ऋजुकता

नायोग ४। प्रणिधान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे–मनः प्रणिधान १ वाक् प्रणिधान–२ काय प्रणिधान–३ और उपकरण प्रणिधान ४। इस प्रणिधान का होना नारक पञ्चेन्द्रिय से लेकर यावत् वैमानिक तक समान जानना चाहिये। सुप्रणिधान चार प्रकार का होता है जैसे–मनः सुप्रणिधान १ वाक् सुप्रणिधान २ काय सुप्रणिधान ३ और उपकरण सुप्रणिधान ४ यह सुप्रणिधान संयत मनुष्यों को ही होता है। दुष्प्रणिधान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे–मनोदुष्प्रणिधान १ वाग्दुष्प्रणिधान २ कायदुष्प्रणिधान ३ और–उपकरण दुष्प्रणिधान ४ यह दुष्प्रणिधान नैरयिक पञ्चेन्द्रियसे लेकर यावत् वैमानिक तकको होताहै।

सत्य कायऋजुकता आदि भेद से चार प्रकार का कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है–ऋजु नाम सरलता है ऋजु ही ऋजुक है ऋजुक

પ્રણિધાનના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) મનઃપ્રણિધાન, (૨) વાક્પ્રણિધાન, (૩) કાયપ્રણિધાન અને (૪) ઉપકરણ પ્રણિધાન. આ પ્રણિધાનને નારકથી લઈને વૈમાનિક પર્યન્તના સમસ્ત જીવોમાં સદ્‌ભાવ સમજવો.

સુપ્રણિધાનના પણ નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પડે છે–(૧) મનઃસુપ્રણિધાન, (૨) વાક્ સુપ્રણિધાન, (૩) કાય સુપ્રણિધાન અને (૪) ઉપકરણ સુપ્રણિધાન. આ સુપ્રણિધાનનો સદ્‌ભાવ સંયત મનુષ્યોમાં જ હોય છે.

દુષ્પ્રણિધાનના પણ ચાર પ્રકાર છે–(૧) મનોદુષ્પ્રણિધાન, (૨) વાગ્દુષ્પ્રણિધાન, (૩) કાયદુષ્પ્રણિધાન અને (૪) ઉપકરણ દુષ્પ્રણિધાન. આ દુષ્પ્રણિધાનનો સદ્‌ભાવ નારક પંચેન્દ્રિયથી લઈને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં હોય છે.

વિશેષાર્થ—સત્યના ચાર ભેદોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—'ઋજુ' એટલે સરલ. ઋજુને જ ઋજુક કહે છે, ઋજુકના ભાવને ઋજુકતા કહે છે, કાયાની સાથે જ જેનો સંબંધ છે એવી ઋજુકતાનું નામ કાયઋજુકતા

कायऋजुकता=कुत्सितपथान् कायस्य विमुखीकरणेन यथार्थमार्गप्रवृत्तिरिति भावः १, भाष ऋजुकता–सत्यसुभाषणप्रवृत्तिः २, भाव ऋजुकता–भाव्यते–पदार्थश्चिन्त्यतेऽनेनेति भावो मनस्तस्य ऋजुकता=सरलता तयोक्ता=मनसः शुद्धप्रवृत्तिः ३, तथा–अविसंवादनायोगः–अनाभोगादिना गवादिकमश्वादिकं यद्वदति सा विसंवादना, यद्वा–कस्मैचिज्जनाय किञ्चित्स्वीकृत्य यन्न क्रियते सा विसंवादना, न विसंवादना अविसंवादना, तस्या योगः=सम्बन्धः अविसंवादना योगः ४।

"चउव्विहे मोसे" इत्यादि–मृषा चतुर्विध प्रज्ञप्तमित्यन्वयः, तद्यथा–

का भाव ऋजुकता है काय से सम्बद्ध होना कायऋजुकता है कुटिल मार्ग से शरीर को विमुख करना और उसे यथार्थमार्ग में ले जाना इसका नाम–कायऋजुकता है १। सत्य भाषण में प्रवृत्ति का होना यह भाषाऋजुकता है–२ पदार्थों का चिन्तन जिसके निमित्त से किया जाता है उसका नाम भाव है–मन है इसकी जो ऋजुकता सरलता है वह भावऋजुकता है, यह–भावऋजुकता मन की शुद्ध प्रवृत्तिरूप होती है ३ तथा अनाभोग आदि कारण से जो गाय आदि को अश्वादि कह दिया जाय वह विसंवादना है। अथवा–जिस किसी जन के लिये कुछ करना स्वीकार करके भी जो नहीं किया जाता है वह विसंवादना है ऐसी विसंवादना का नहीं होना यह अविसंवादना है इस अविसंवादना का योग सम्बन्ध अविसंवादना ४। चार प्रकार का जो कायाऽऋजुकता आदि भेद से मृषा कही गई है, उसका तात्पर्य ऐसा है–शरीर की जो

છે ' કુટિલ માર્ગેથી શરીરને વિમુખ કરવુ અને તેને યથાર્થ માર્ગે લઈ જવુ તેનુ નામ કાયઋજુકતા છે " । ૧ ।

સત્ય ભાષામાં પ્રવૃત્ત થવુ–સત્ય બોલવુ તેનુ નામ ભાષઋજુકતા છે । ૨ ।

પદાર્થોનુ ચિન્તન જેની મદદથી કરવામાં આવે છે તેનુ નામ ભાવ (મન) છે તે ભાવ અથવા મનની જે સરલતા છે તેને ભાવઋજુકતા કહે છે, તે ભાવઋજુકતા મનની શુદ્ધ પ્રવૃત્તિરૂપ હોય છે । ૩ ।

અનાભોગ (અજ્ઞાન) આદિ કારણોને લીધે ગાય આદિને અશ્વાદિ કહી દેવામાં આવે–આ પ્રકારની વિસંવાદિતાનુ નામ વિસંવાદના છે અથવા કોઈ કાર્ય કરી આપવાનુ સ્વીકારીને, તે કાર્ય ન કરી આપવુ તેનુ નામ વિસંવાદના છે આ પ્રકારની વિસંવાદનાનો અભાવ હોવો, તેનુ નામ અવિસંવાદના છે. આ અવિસંવાદનાના યોગ (સંબંધ) ને અવિસંવાદના યોગ કહે છે । ૪ ।

कायानृजुकता-कायस्य-शरीरस्य अनृजुकता=असरलतेति कायानृजुकता=शरीरस्यायथावस्थितप्रवृत्तिः १, भाषाऽनृजुकता-वाचोऽयथार्थबोधनार्थी प्रवृत्तिः २, भावानृजुकता-मनसोऽयथार्थपदार्थचिन्तनप्रवर्तना ३, विसंवादनायोगः-प्रतिज्ञातपदार्थाऽकरणसम्बन्धः, कस्मैचित् किञ्चित्प्रतिज्ञाय 'मयेदं न प्रतिज्ञात'-मित्याकारकविसंवादनायोगः ४।

"चउव्विहे पणिहाणे" इत्यादि-प्रणिधानं-प्रणिधिः प्रयोग इत्यर्थः, तच्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-मनःप्रणिधान-मनसः=चित्तस्य प्रणिधानम्=आर्त-रौद्र-

---

अनृजुकता असरता है वह कायाऽनृजुकता है इसमें शरीर की अयथावस्थितरूप से प्रवृत्ति रहती है-१ वचन की अयथार्थ को बोधन करने में जो प्रवृत्ति होती है वह भाषाऽनृजुकता है-२ मन की प्रवृत्ति अयथार्थ पदार्थ के चिन्तन करने में जो होती तो वह भावाऽनृजुकता है-३ तथा प्रतिज्ञात अर्थ का नहीं करना यह विसंवादनायोग है "मैं तुम्हारा अमुक कार्य कर दूंगा" ऐसी प्रतिज्ञा करके भी फिर उससे ऐसा कहना कि मैंने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया (था) है इत्याकारक यह विसंवादनायोग होता है।

"चउव्विहे पणिहाणे" इत्यादि प्रणिधान शब्द का अर्थ लगाना, उस विषय में उसे जोड़ना। यह प्रणिधान चार प्रकार का जो कहा गया है उसका अभिप्राय ऐसा है-आर्त, रौद्र, धर्म्य, और शुक्ल ये

હવે મૃષાવાદના ચાર ભેદોનુ સ્પષ્ટીકરણ કરવામા આવે છે—(૧) કાયાનૃજુકતા—શરીરની જે અનૃજુકતા (અસરલતા) હોય છે તેને કાયા નૃજકતા કહે છે. કુટિલ કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત થવું અને શરીરથી અયથાર્થ પ્રવૃત્તિ કરવી તેનું નામ કાયાનૃજકતા છે. (૨) અસત્ય વચનને ભાષા અનૃજુકતા કહે છે-વચનની અયથાર્થનુ બોધન કરવાની જે પ્રવૃત્તિ થાય છે તેનુ નામ ભાષા અનૃજુકતા છે. (૩) અયથાર્થ પદાર્થનુ ચિન્તન કરવા રૂપ મનની જે પ્રવૃત્તિ થાય છે તેને ભાવ અનૃજુકતા કહે છે (૪) પ્રતિજ્ઞાત અર્થનુ પાલન ન કરવું તેનું નામ વિસવાદનાયોગ છે જેમકે "હુ તમારૂ આ કાર્ય કરી દઇશ" આ પ્રકારનું વચન આપ્યા પછી તે વચનનું પાલન ન કરવું અને "મેં એવી વાત કદી કરી જ નથી," આ પ્રમાણે કહેવુ, તે વિસવાદનાયોગ રૂપ ગણાય છે.

હવે પ્રણિધાનના ચાર પ્રકારોનુ નિરૂપણ કરવામા આવે છે—"ચઉવ્વિહે પણિહાણે" ઇત્યાદિ-પ્રણિધાન એટલે લગાડવુ-પરોવવું, અથવા અમુક વિષયમાં જોડવુ તે પ્રણિધાનના ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે—

धर्म्य-शुक्लरूपतया क्वचित् व्यापृतीकरणम् १, वाक्प्रणिधानम्-वाचः-वचनस्य प्रणिधानम्-आर्तादिरूपतया संमापणम् २, कायप्रणिधान-शरीरस्य कस्मिश्चित् विरूपतया संलग्नीकरणम् ३, उपकरणप्रणिधानम्-उपकरणस्य सामान्यविशिष्ट वस्त्रपात्रप्रभृतेः प्रणिधानं-व्यापरणम् ४।

" एवं " इति-अनेन प्रकारेणेत्यर्थः, अर्थात् यथा सामान्यतः सर्वसाधारणं प्रणिधानमुक्तं तथा, ' णेरइयाणं ' इत्यादि-नैरयिकाणां पञ्चेन्द्रियाणां चतु र्विंशतिदण्डकोक्तानां मध्ये ये पञ्चेन्द्रियाः सन्ति मनुष्यतिर्यञ्चस्तेषां मनआदिप्र णिधानं बोध्यम्। तत् किंपर्यन्तानामिति निर्दिशति-' जाव वेमाणियाणं ' इति-यावत् वैमानिकानाम्-वैमानिकपर्यन्तानाम्, एकेन्द्रियविकलेन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रि याणां तु न मनःप्रभृतिप्रणिधानं भवितुमर्हति, तेषां मनोवाक्कायोपकरणप्रणिधा नासम्भवात्।

जो चार ध्यानहैं इनमेंसे किसी एक ध्यान रूपमें मनको व्यापृत करना (लगाना) यह मनःप्रणिधान है आर्त आदिरूप से समापण करना यह वाक्यप्रणिधान है शरीर को आर्तादिरूप से किसी काम में लगाना यह कायप्रणिधान है सामान्य या विशिष्ट वस्त्र पात्र आदि का जो व्यापारित करना लगाना है वह उपकरण प्रणिधान है, यह प्रणिधान सामान्यरूप से समस्त जीवों में होता है। परन्तु मनः प्रणिधान आदि तीन प्रणिधान एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और-असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों को नहीं होते हैं। क्यों कि-मन वचन और-उपकरणों की वहां असम्भवता है नैरयिकों में पञ्चेन्द्रियों में यावत् वैमानिकों में ये सब प्रणिधान

(१) મનઃપ્રણિધાન—આર્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુક્લ, આ જે ચાર ધ્યાન છે તેમાંથી કોઈ પણ એક ધ્યાનમાં મનને લગાવવું (એકાગ્ર કરવું) તેનું નામ મનઃપ્રણિધાન છે. (૨) આર્ત આદિ રૂપે સભાષણ કરવું તેનું નામ વાક્ પ્રણિધાન છે (૩) શરીરને આર્તાદિ રૂપે કોઈ કાર્યમાં પ્રવૃત્ત કરવું તેનું નામ કાયપ્રણિધાન છે (૪) સામાન્ય અથવા વિશિષ્ટ પાત્ર આદિ ઉપકરણના પ્રણિધાનનું નામ ઉપકરણ પ્રણિધાન છે. ચારપ્રણિધાનનો સદ્ભાવ સામાન્ય રૂપે સમસ્ત જીવોમાં હોય છે પરન્તુ મનઃપ્રણિધાન આદિ બાકીના ત્રણ પ્રણિધાનનો સદ્ભાવ એકેન્દ્રિય, વિકલેન્દ્રિય અને અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોમાં હોતો નથી, કારણ કે મન, વચન અને ઉપકરણોની તે જીવોમાં સંભાવના હોતી નથી. નારકોમાં, સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિયોમાં અને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોમાં આ ચારે પ્રણિધાનોનો સદ્ભાવ હોય છે

" चतुर्विधं सुप्रणिधान "–मित्यादि–सुप्रणिधानं=शोभनप्रयोगः, चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–मनःसुप्रणिधानं–मनसः सुष्ठु प्रयोगः=चित्तस्य धर्मध्यानादिना सुचारूव्यापरणम्। एव वाकायोपकरणसुप्रणिधानानि बोध्यानि ।४।

" एवं संजयमणुस्साणवि " इति–एवम्=ईदृशं सुप्रणिधानचतुष्टयम्, संयतमनुष्याणामेव–संयताश्च ते मनुष्याः संयतमनुष्यास्तेषामेव=धृतसंयममनुष्याणामेव मनःप्रभृतिसुप्रणिधानं भवति नान्येषामित्यर्थः, सुप्रणिधानस्य चारित्रपरिणतिस्वरूपत्वात्।

" चउव्विहे दुप्पणिहाणे " इत्यादि–दुष्प्रणिधानम्=अशोभनप्रयोगः, तच्च-

---

होते हैं। " चतुर्विध सुप्रणिधानम् " इत्यादि शोभन प्रयोग का नाम सुप्रणिधान है यह सुप्रणिधानका मनः सुप्रणिधान आदि चार भेद कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है कि–चित्त को धर्मध्यान आदि द्वारा सुचारुरूप से व्यापृत करना लगाना, यह मन का सुप्रणिधान है इसी प्रकार वाक् सुप्रणिधान काय सुप्रणिधान और उपकरण सुप्रणिधान के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। " एवं संजयमणुस्साणवि–" यह सुप्रणिधान चतुष्टय संयत मनुष्यों को (संयतशीलको) ही होताहै, अन्य मनुष्यों को नहीं। क्योंकि–सुप्रणिधान चारित्र परिणतिरूप होता है।

" चउव्विहे दुप्पणिहाणे–" इत्यादि अशोभन प्रयोग का नाम दुष्प्रणिधान है यह–मनोदुष्प्रणिधान आदि भेदों से जो चार प्रकार कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है कि चित्त को आर्त रौद्र आदिरूप से परिणत करना इसका नाम–मनोदुष्प्रणिधान है, इसी प्रकार का कथन

" चतुर्विध सुप्रणिधानम् " ઈત્યાદિ—

શોભન પ્રયોગનું નામ સુપ્રણિધાન છે, તે સુપ્રણિધાનના પણ મનઃસુપ્રણિધાન આદિ ચાર ભેદ કહ્યા છે—(૧) મનઃસુપ્રણિધાન–ચિત્તને ધર્મધ્યાન આદિ શુભ પ્રવૃત્તિમાં લીન કરવુ તેનું નામ મન.સુપ્રણિધાન છે. એ જ પ્રમાણે વાક્સુપ્રણિધાન, કાયસુપ્રણિધાન અને ઉપકરણ સુપ્રણિધાનના અર્થ પણ જાતે જ સમજી શકાય એવા હોવાથી અહીં તેમનુ અધિક સ્પષ્ટીકરણ કર્યું નથી. " एवं संजयमणुस्सा वि " આ ચાર સુપ્રણિધાનનો સદ્ભાવ સંયત (સયમશીલ) મનુષ્યોમાં જ હોય છે–અન્ય અસયત મનુષ્યોમાં તેમનો સદ્ભાવ હોતો નથી, કારણ કે સુપ્રણિધાન ચારિત્ર પરિણતિ રૂપ હોય છે.

" चउव्विहे दुप्पणिहाणे " ઈત્યાદિ અશોભન પ્રયોગનુ નામ દુષ્પ્રણિધાન છે. તેના મનોદુષ્પ્રણિધાન આદિ ચાર ભેદ કહ્યા છે.

चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-मनोदुष्प्रणिधानं=चित्तस्याऽऽर्त्तरौद्रादिरूपतया प्रयोगः १, एवं वाक्कायोपकरणदुष्प्रणिधानान्यपि विज्ञेयानि ४।

"एवं"-मिति, एवम्=इत्थं मनःप्रभृतिदुष्प्रणिधानं नैरयिकाणां पञ्चेन्द्रियाणां-संज्ञिमनुष्य तिरश्चां, यावद् वैमानिकानां=वैमानिकपर्यन्तानां भवति, न त्वेकेन्द्रियविकलेन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणाम्, तेषां मनःप्रभृति प्रणिधानासम्भवात्॥सू १७॥

पुरुषाधिकारादेवान्यप्रकाराणि चतुर्दशपुरुषसूत्राण्याह—

मूलम्-चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-आवायभद्दए णाममेगे संवासभद्दए १, संवासभद्दए णाममेगे णो आवायभद्दए २, एगे आवायभद्दएवि संवासभद्दएवि ३, एगे णो आवायभद्दए णो वा संवासभद्दए ।४। १।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-अप्पणो णाममेगे वज्जं पासइ णो परस्स १, परस्स णाममेगे वज्जं पासइ णो अप्पणो २, अप्पणो णाममेगे वज्जं पासइ परस्सवि ३, अप्पणो णाममेगे वज्जं णो पासइ णो परस्सवि ।४। २।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइ णो परस्स ४। ३।

वाग्दुष्प्रणिधान-और कायदुष्प्रणिधान के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये, ऐसा यह मनोदुष्प्रणिधान आदि नैरयिकों में पञ्चेन्द्रिय मनुष्य तिर्यञ्चों में यावत् वैमानिकों में होता है। एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियों में मनोदुष्प्रणिधान वचनदुष्प्रणिधान आदि नहीं होते। क्यों कि-इनमें इनका अभाव कहा गया है ॥ सू १७ ॥

ચિત્તને આર્ત, રૌદ્ર આદિ રૂપે પરિણત કરવું તેનું નામ મનોદુષ્પ્રણિધાન છે એ જ પ્રકારનું કથન કાયદુષ્પ્રણિધાન, વાક્દુષ્પ્રણિધાન અને ઉપકરણ દુષ્પ્રણિધાનના વિષયમાં પણ સમજી લેવું આ દુષ્પ્રણિધાનોનો સદ્‌ભાવ નારકોમાં, પંચેન્દ્રિય મનુષ્ય અને તિર્યંચોમાં તથા વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં હોય છે પરન્તુ એકેન્દ્રિય વિકલેન્દ્રિય અને અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોમાં મનોદુષ્પ્રણિધાન, વચનદુષ્પ્રણિધાન આદિનો સદ્‌ભાવ હોતો નથી, કારણ કે તે જીવોમાં મન, વચન અને ઉપકરણનો અભાવ કહ્યો છે ॥ સૂ. ૧૭ ॥

अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेइ णो परस्स० ४। ४।
चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--अब्भुट्ठेइ णाममेगे णो अब्भुट्ठावेइ ४। ५।

एवं वंदइ णाममेगे णो वंदावेइ ४। ६। एवं सक्कारेइ ७, सम्माणेइ ८, पूएइ ९, वाएइ १०, पुच्छइ ११, पडिपुच्छइ १२, वागरेइ १३, सुत्तधरे णाममेगे णो अत्थधरे १, अत्थधरे णाममेगे णो सुत्तधरे २, सुत्तधरे णाममेगे अत्थधरे वि ३, णो सुत्तधरे णाममेगे णो अत्थधरे वि ४। १४। ॥ सू० १८॥

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आपातभद्रको नामैकः संवासभद्रकः १, संवासभद्रको नामैको नो आपातभद्रकः २, एक आपातभद्रकोऽपि संवासभद्रकोऽपि ३, एको नो आपातभद्रको नो वा संवासभद्रकः ४।१।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आत्मनो नामैकोऽवद्यं पश्यति नो परस्य १, परस्य नामैकोऽवद्यं पश्यति नो आत्मनः २, आत्मनो नामैकोऽवद्यं पश्यति परस्यापि ३, आत्मनो नामैकोऽवद्यं नो पश्यति नो परस्यापि ४। २।

पुरुष अधिकार को लेकर ही अब सूत्रकार अन्य प्रकार से १४ पुरुष सूत्रों का कथन करते हैं–"चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" इत्यादि–

सूत्रार्थ–पुरुषजात चार कहे गये हैं जैसे-आपातभद्रक संवासभद्रक १ संवासभद्रक नो आपातभद्रक २ आपातभद्रकभी संवासभद्रकभी ३ और–नो आपातभद्रक नो संवासभद्रक ४। (प्रथम) १ चार पुरुषजात कहे गये हैं, जो अपना अवद्य–पाप देखता है, पर का नहीं–१ जो दूसरों का अवद्य देखता है अपना नहीं–२ जो अपना भी दूसरों का भी अवद्य

પુરુષ અધિકાર ચાલુ છે, તેથી સૂત્રકાર હવે પુરુષ વિષયક ૧૪ સૂત્રોનું નિરૂપણ કરે છે—"ચત્તારિ પુરિસજાયા પણ્ણત્તા" ઈત્યાદિ—

પુરુષોના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) આપાત ભદ્રક-નો સંવાસ ભદ્રક, (૨) સંવાસ ભદ્રક–નો આપાત ભદ્રક, (૩) આપાત ભદ્રક-સંવાસ ભદ્રક અને (૪) નો આપત ભદ્રક–નો સવાસ ભદ્રક । ૧ ।

નીચે પ્રમાણે પણ ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) પોતાના અવદ્ય (પાપ) ને જોનાર–અન્યના પાપને નહીં જોનાર, (૨) અન્યનું પાપ જોનાર, પોતાનું નહીં જોનાર, (૩) પોતાનું પાપ પણ જોનાર અને અન્યનું પાપ પણ

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आत्मनो नामैकोऽवद्यमुदीरयति नो परस्य० ४। ३।

आत्मनो नामैकोऽवद्यमुपशमयति नो परस्य ४। ४।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–अभ्युत्तिष्ठते (ति) नामैको नो अभ्युत्थापयति ४। ५। एवं वन्दते नामैको नो वन्दयति ४। ६। एवं सत्कारयति ४। ७। सम्मानयति ४। ८। पूजयति ४। ९। वाचयति ४। १०। पृच्छति ४। ११। परिपृच्छति ४। १२। व्याकरोति ४। १३।

देखता है–३ और चौथा वह जो कि–अपना और दूसरों का अवद्य नहीं देखता है–४ चार पुरुषजात कहे गये हैं, जैसे–जो अपने अवद्य का उदीरण करता है पर के अवद्य को नहीं १–२–३–४। ४–एक वह पुरुष जो अपने अवद्य को उपशमित करता है पर के अवद्य को नहीं १–२–३–४। ५–चार पुरुषजात कहे गये हैं, जैसे–एक वह जो किसी कार्य उत्साह सहित होकर स्वयं प्रवृत्ति करता है दूसरे को उत्थित नहीं करता है–१–२–३–४। ६–इसी प्रकार एक पुरुष ऐसा होता है जो दूसरों को वन्दना करता है स्वयं दूसरों से वन्दित नहीं होना चाहता है १–२–३–४। ७ इसी प्रकार "सत्करोति" के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये १–२–३–४। ८ इसी तरह "समानयति" के सम्बन्ध में भी

જોનાર (૪) પોતાનુ પાપ પણ નહીં જોનાર અને અન્યનું પાપ પણ નહીં જોનાર । ૨ ।

નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) પોતાના અવદ્યનું ઉદીરણુ કરનારો–પણ પરના અવદ્યનું ઉદીરણુ નહીં કરનારો. બાકીના ત્રણ ભેદો સૂત્ર બીજામાં બતાવેલા ક્રમ પ્રમાણે સમજી લેવા । ૩ ।

નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) પોતાના અવદ્યને ઉપશમિત કરનારો પણ પરના અવદ્યને ઉપશમિત નહીં કરનારો, ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. । ૪ ।

નીચે પ્રમાણે પણ ચાર પુરુષ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ઉત્સાહપૂર્વક કોઇ કાર્યમાં જાતે જ પ્રવૃત્ત થનારો–પણ અન્યને તે માટે ઉત્સાહ નહીં પ્રેરનારો ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. । ૫ ।

પુરુષોના આ પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) બીજાને વન્દન કરનારો પણ બીજા પોતાને વન્દન કરે એવી ઇચ્છા નહીં રાખનારો, ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર અહીં ગ્રહીત થવા જોઇએ. । ૬ ।

સત્કારને અનુલક્ષીને પણ એવા જ ચાર પ્રકાર સમજવા. । ૭ ।

सूत्रधरो नामैको नो अर्थधरः १, अर्थधरो नामैको नो सूत्रधरः २, सूत्रधरो नामैकः अर्थधरोऽपि ३, नो सूत्रधरो नामैकः नो अर्थधरोऽपि ४। १४। सू० १८॥

टीका-" चत्तारि पुरिसजाया " इत्यादि-पुरुषजातानि=पुरुषप्रकाराः, चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आपातभद्रकः=आपतनमापातः=आकस्मिकसङ्गमः, तत्र भद्रकः= कल्याणकरो दर्शनाऽऽलापादिना सुखसम्पादकत्वात्, " नामे "-ति सर्वत्र वाक्यालङ्कारे, एकः-कश्चित्पुरुषो भवति, किन्तु नो संवासभद्रकः-संवासः=सह-

---

जानना चाहिये १-२-३-४। ९ ऐसे ही " वाचयति " के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिये १-२-३-४ १० पृच्छति ११ परिपृच्छति-१२ व्याकरोति इनके विषय में भी इसी उपर्युक्त प्रकार से जानना चाहिये।

चार पुरुषजात कहे गये हैं, जैसे-कोई एक ऐसा होता है जो सूत्रधर होता है अर्थधर नहीं होता है-१ दूसरा कोई एक ऐसा होता है कि-अर्थधर होता है सूत्रधर नहीं-२ तीसरा वह जो सूत्रधर भी होता है और अर्थधर भी ३ चौथा वह है जो सूत्रधर भी नहीं होता है और अर्थधर भी नहीं ४।

इन सब का स्पष्टीकरण इस प्रकार है - प्रथम सूत्र में जो पुरुषजात पुरुषप्रकार चार कहे गये हैं उनका तात्पर्य ऐसा है कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो " आपातभद्रक-" होता है आकस्मिकसङ्गम में दर्शन आलाप आदि द्वारा सुख सम्पादक होने से

સન્માનને અનુલક્ષીને પણ એવાં જ ચાર પ્રકાર સમજવા ।૮।

પૂજાસત્કારને અનુલક્ષીને પણ એવા જ ચાર પ્રકાર સમજવા ।૯।

" वाचयति " ના સંબંધમાં અથવા વાચનાના સંબંધને અનુલક્ષીને પણ પુરુષોના એવા જ ચાર પ્રકાર સમજવા. ।૧૦।

।૧૧। પૃચ્છા અને ।૧૨। પરિપૃચ્છાને અનુલક્ષીને પણ ચાર-ચાર પ્રકાર સમજવા. ।૧૩। નિર્ણયને અનુલક્ષીને પણ ચાર પ્રકારના પુરુષો સમજી લેવા. ।૧૪। પુરુષોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) કોઇ પુરુષ સૂત્રધર હોય છે પણ અર્થધર હોતો નથી, (૨) કોઈ પુરુષ અર્થધર હોય છે, પણ સૂત્રધર હોતો નથી, (૩) કોઈ સૂત્રધર પણ હોય છે અને અર્થધર પણ હોય છે. (૪) કોઈ સૂત્રધર પણ નથી હોતો અને અર્થધર પણ નથી હોતો.

વિશેષાર્થ—પહેલા સૂત્રમા પુરુષોના જે ચાર પ્રકાર બતાવ્યા છે, તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે--(૧) " આપાત ભદ્રક-નો સંવાસ ભદ્રક " આકસ્મિક સંગમમા દર્શન, આલાપ આદિ દ્વારા જે પુરુષ સુખદાયક અથવા કલ્યાણકર હોય છે તેને આપાતભદ્રક પુરુષ કહે છે. કોઇક પુરુષ આ પ્રમાણે

वासस्तत्र भद्रकः=कल्याणकारी न भवति, क्रूरत्वात् संसारकारणनियोजकत्वाद्वा १,

" सवासभद्दए " इत्यादि-संवासभद्रक -एकः-कश्चित्पुरुषो भवति सवास-
नामस्यन्तोपकारित्वात्, किन्तु आपातभद्रको न भवति, अनालापरूपाऽऽलापा
विना सुखकरो न भवतीति भावः २, एवमन्यभङ्गद्वयमपि विज्ञेयम् ४। १।

" चत्तारि " इत्यादि-पुनश्चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-एकः=
कश्चित्पुरुषः, आत्मन -स्वस्य स्वसम्बन्धीत्यर्थः, प्राकृतत्वात् ' वज्ज '-मित्यस्य
लुप्ताऽकारस्य " अवद्य "-मितिच्छाया भवितुमर्हति, अवद्य-पापं कर्म पश्यति,
यद्वा-वर्ज्य-वर्जितु योग्यं सर्वे=सर्वस्याज्यं कर्म पश्यति=दर्शनसामान्यार्थता

कल्याण करता होता है, किन्तु-नो " सवासभद्रक " सवासभद्रक
नहीं होता है, सवास मे सहवास में भद्रक कल्याणकारी नहीं होता
है। क्यों कि ऐसा वह पुरुष (प्रायः) क्रूर होता है-और ससार कारण
में नियोजक होता है-१ यहां सर्वत्र " नाम " वाक्यालङ्कार मे है।
१ " सवासभद्दए " इत्यादि कोई एक दूसरा पुरुष ऐसा होता है जो
सवास में तो भद्रक होता है पर वह आपातभद्रक नहीं होता है,
आलाप आदि द्वारा सुख सम्पादक नहीं होने से कल्याण कर नहीं
होता है-२ एसे ही अन्य दो भङ्गों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये
४। " चत्तारि ' इत्यादि इस द्वितीय सूत्र मे जो चार पुरुष प्रकार
कहे गये हैं उनका तात्पर्य इस प्रकार है कोई एक पुरुष ऐसा होता है
जो स्वसम्बन्धी पापकर्म (अवद्य) को, अथवा-सर्वस्याज्य कम को, या
-हिंसा अनृत आदि पापकर्म को देखता है जानता है। परन्तु-पर के
प्रति उदासीन होने से उसके अवद्य को नहीं देखता है नहीं जानता

આપાત ભદ્રક તો હોય છે પરન્તુ સવાસ (સહવાસ) ભદ્રક હોતો નથી
એટલે કે તેનો સહવાસ સુખદાયક કે કલ્યાણકારક નિવડતો નથી, કારણ કે
એવો પુરુષ સામાન્યતઃ ક્રૂર હોય છે અને સસાર કારણમા નિયોજક હોય છે
(૨) ' સવાસ ભદ્રક-નો આપાત ભદ્રક " કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે
સવાસ (સહવાસ) માં તો ભદ્રક (સુખદાયક) હોય છે પણ આલાપ આદિ
દ્વારા સુખસમ્પાદક નહીં હોવાથી કલ્યાણકારક હોતો નથી બાકીના બે પુરુષોનું
કથન પણ આ કથનને આધારે સરળતાથી સમજી શકાય એવુ છે

બીજા સૂત્રમાં પુરુષોના જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે તેનુ હવે સ્પષ્ટીકરણ
કરવામાં આવે છે—(૧) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના અવદ્યને
પાપકર્મને અથવા ત્યાજ્યકર્મને અથવા હિંસા, અસત્ય આદિ પાપકર્મોને દેખે

ज्जानातीत्यर्थः, किन्तु परस्य=अन्यस्याऽवद्यं वर्ज्यं वा नो पश्यति, यद्वा-वज्र-मितिच्छाया, तदर्थश्च वज्रवद् वज्रं वा गुरुत्वाद् हिंसाऽनृतादि पापं कर्मेति भवति, तत् कश्चित्पुरुषआत्मनः-स्वसम्बन्धि कलहाऽऽदौ पश्चात्तापयुक्तत्वात् पश्यति, नो

है। यहां "वज्ज" पद में प्राकृत होने के कारण "अ" का लोप हो गया है इसलिये इसकी छाया संस्कृत में "अवद्य" हो सकती है, अवद्यनाम पापकर्म का है। यद्वा-"वज्जं" की संस्कृतच्छाया वर्ज्य भी हो सकती है, अतः इस पक्ष में "वर्जितुं योग्यं वर्ज्यं" इस निरुक्ति के अनुसार जो सर्वत्याज्य होता है वह वर्ज्य है, वर्ज्य कर्म है। अथवा "वज्जं" की संस्कृतच्छाया "वज्र" भी होती है इसका अर्थ ऐसा होता है कि अनृत आदि पाप गुरु होने से वज्र जैसे होते हैं। "पश्यति" क्रियापद है इसका भी अर्थ ऐसा हो जाता है कि-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो स्वसम्बन्धी अवद्य को पापकर्म को ही देखता है परसम्बन्धी पापकर्म को नहीं देखता है। क्यों कि-वह उसके प्रति उदासीन होता है, तथा जब "वर्ज्य" सर्वत्याज्य कर्म इस पक्ष में अर्थ किया जाता है तब कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो अपने सम्बन्धी कर्म को जानता है यहां दृश धातुका अर्थ ज्ञानार्थ परक लिया गयाहै परके वर्ज्य कर्मको

છે (જાણે છે), પરંતુ અન્યના પ્રત્યે ઉદાસીન વૃત્તિવાળો હોવાથી અન્યના પાપકર્મોને દેખતો (જાણતો) નથી અહીં "वज्ज" પ્રાકૃત પદ છે. તેમાં 'अ' નો લોપ થઈ ગયો હોવાથી તેની સંસ્કૃત છાયા 'અવદ્ય' થઈ શકે છે આ અવદ્ય પદ પાપકર્મ માટે વપરાયું છે. અથવા 'वज्ज' આ પદની સંસ્કૃત છાયા 'वर्ज्य' પણ થઈ શકે છે આ દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો "वर्जितुं योग्य वर्ज्यं" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર જે સર્વત્યાજ્ય હોય છે તેને વર્જ્ય-વર્જ્યકર્મ કહે છે.

અથવા "वज्जं" આ પદની સંસ્કૃત છાયા "वज्र" પણ થાય છે તેનો અર્થ આ પ્રમાણે છે-અનૃત આદિ પાપ ગુરુ હોવાથી વજ્ર સમાન હોય છે. "पश्यति" એટલે દેખે છે કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના અવદ્યને-પાપકર્મને જ દેખે છે, પરન્તુ અન્યના પાપકર્મને દેખતો નથી-અન્યના પાપકર્મ પ્રત્યે ઉદાસીન રહે છે.

જ્યારે "वर्ज्य" એટલે સર્વત્યાજ્ય કર્મ, આ દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે છે, ત્યારે આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે-" કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના સર્વત્યાજ્ય કર્મને જાણે છે, પણ અન્યના સર્વત્યાજ્ય કર્મને જાણતો નથી. અહીં "दृश्" ધાતુનો અર્થ 'જાણવું' લીધો છે, કારણ કે

परस्य=अन्यसम्बन्धि वज्रं पश्यति परं प्रत्युदासीनत्वात् १ एकः-कश्चित्तु परस्य अवद्यं वर्ज्यं वज्रवद् वज्रं वा कर्म पश्यति, नो आत्मनः, साभिमानत्वात् इति द्वितीयो भङ्गः २। एवं शेषभङ्गद्वयमपि विज्ञेयम् ।४ २।

" चत्तारि " इत्यादि–पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–एकः कश्चित्पुरुषः, आत्मनः–स्वसम्बन्धि अवद्यं पापं कर्म, उदीरयति=अनुदीर्णं कर्म लोचतपश्चर्यादिभिरुदयावलिकायां प्रवेशयति, किन्तु परस्य=अन्यसम्बन्धि अवद्य नो उदीरयति, परं प्रत्युदासीनत्वात् १, अन्यद् भङ्गत्रयं यथा–" परस्स णाममेगे

नहीं जानता है। इसी प्रकार कोई पुरुष ऐसा होता है जो स्वसम्बन्धी वज्र (वर्जनीय कर्म) को गुरु होनेसे हिंसादिक पापकर्मको देखता है, क्यों कि वह उसके प्रति उदासीन होता है यह ऐसा प्रथम भङ्ग है–१ द्वितीय भङ्ग इस प्रकार से है कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो परके अवद्य को, या–वर्ज्य को, अथवा–वज्र जैसा वज्र कर्म को देखता है और–अपने अवद्य को, या–वर्ज्य को, या–वज्रवत् वज्र कर्म को नहीं देखता है। इसी प्रकार शेष भङ्गद्वय भी समझने योग्य है ४। २। " चत्तारि " इत्यादि रूप जो तृतीय सूत्र कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है कि–कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो अपने अवद्य पापकर्म को उदीरित करता है अनुदीर्ण हुये कर्म को लोच, तपश्चर्या आदि द्वारा उदयावलिका मे प्रविष्ट करता है। किन्तु अन्य सम्बन्धी अवद्य को परके प्रति उदासीन

અહીં તે સ્થાનાર્થે વપરાયો છે અથવા વજ્ર ' લેવામાં આવે તો આ પ્રમાણે અર્થ થશે–કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના વજ્રને (હિંસાદિક પાપ કર્મો ગુરુ હોવાથી અહીં વજ્ર રૂપે પ્રકટ કર્યાં છે) જાણે છે પણ અન્યના વજ્રને જાણતો નથી, કારણ કે અન્યના વજ્ર પ્રત્યે તો તે ઉદાસીન જ રહે છે

હવે પુરુષનો બીજો પ્રકાર પ્રકટ કરવામાં આવે છે—કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે અન્યના અવદ્યને, અથવા વર્જ્યને અથવા વજ્ર સમાન ગુરુ કર્મને દેખે છે, પણ પોતાના અવદ્યને, અથવા વર્જ્યને અથવા વજ્ર સમાન ગુરુ કર્મને દેખતો નથી–પોતાના પાપકર્મો તરફ તો તે ઉદાસીન રહે છે. એ જ પ્રમાણે બાકીના બે ભાંગાઓ પુરુષ પ્રકારોનું કથન પણ સમજી લેવું

હવે સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે–' ચત્તારિ " ઇત્યાદિ–
પુરુષોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે–(૧) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના અવદ્ય (પાપકર્મ) ને ઉદીરિત કરે છે એટલે કે અનુદીર્ણ અવસ્થાવાળા કર્મને લોચ, તપશ્ચર્યા આદિ દ્વારા ઉદયાવલિકામાં પ્રવિષ્ટ કરાવે છે, પરન્તુ અન્યના અવદ્યને ઉદીરિત કરતો નથી, કારણ કે અન્યના પાપકર્મો

वज्जं उदीरेइ णो अप्पणो २, अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइ परस्सवि ३, अप्पणो णाममेगे वज्जं णो उदीरेइ णो परस्सवि " ४।

एकः=कश्चित्पुरुषः, परस्य=अन्यसम्बन्धि अवद्यम् उदीरयति उपदेशादिना, नो आत्मनः, आत्मकल्याणभावना रहितत्वात् २, एकः-कश्चित् स्व-परयोरवद्यम् उदीरयति, स्व-परकल्याणभावनावत्त्वात् ३, एकः=अपरः पुरुष आत्म-परयोरवद्यादि नो उदीरयति विमूढत्वात् ४। ३।

" चत्तारि " इत्यादि-पुनः पुरुषजातानि चत्वारि मज्ञप्तानि, तद्यथा-एकः -कश्चित्पुरुषः, आत्मनः-स्वस्य अवद्यं-पापं कर्म उपशमयति=उपशान्तं करोति,

---

होने से उदीरित नहीं करता है १ इसमें अन्य भङ्गत्रय इसी प्रकार से उद्भावित कर लेना चाहिये "परस्स णाममेगे वज्जं उदीरेइ, णो अप्पणो" २ " अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइ परस्स वि-" ३ अप्पणो णाम मेगे वज्जं णो उदीरेइ णो परस्स वि-४। कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो दूसरों के अवद्य को उपदेश आदि द्वारा उदीरित कर देता है पर अपने कर्म को आत्मकल्याण करने की भावना से रहित होने के कारण उदीरित नहीं करता है-२ तथा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो स्व और पर दोनों के अवद्य को उदीरित करता है। क्यों कि-ऐसा पुरुष स्व और-पर दोनों का कल्याण कामुक होता है ३ एक कोई पुरुष ऐसा होता है जो न अपने अवद्य को उदीरित करता है, और न परके अवद्य को उदीरित करताहै। क्यों कि-वह विमूढ (विवेक विकल) होताहै। ४ ३। "चत्तारि" इत्यादि इस सूत्र द्वारा जो चार प्रकारके पुरुष प्रगट किये गये हैं

પ્રત્યે તે ઉદાસીનવૃત્તિ રાખતો હોય છે. એ જ પ્રમાણે વિચાર કરીને બાકીના ત્રણ પ્રકારોનું પણ અહીં કથન થવું જોઇએ.

તે ત્રણ ભાંગા (પ્રકારો) આ પ્રમાણે છે—" परस्स णाममेगे वज्जं उदीरेइ, णो अप्पणो " (૨) કોઈ પુરુષ અન્યના અવદ્યને ઉપદેશ આદિ વડે ઉદીરિત કરે છે, પણ પોતાના અવદ્યને ઉદીરિત કરતો નથી કારણ કે તેનામાં આત્મકલ્યાણની ભાવનાનો જ અભાવ હોય છે " अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइ, परस्स वि " (૩) કોઈ પોતાના અવદ્યને પણ ઉદીરિત કરે છે અને અન્યના અવદ્યને પણ ઉદીરિત કરે છે, કારણ કે તે સ્વ અને પરનુ કલ્યાણ ઇચ્છે છે. " अप्पणो णाममेगे वज्जं णो उदीरेइ, णो परस्स वि " કોઇ પુરુષ પોતાના અવદ્યને પણ ઉદીરિત કરતો નથી અને અન્યના અવદ્યને પણ ઉદીરિત કરતો કરતો નથી, કારણ કે તે વિમૂઢ હોય છે.

परस्य तद् नो उपशमयति, परं प्रत्युदासीनत्वात् १, अपरे त्रयो भङ्गा एवम्-" परस्स णाममेगे वज्जं उवसामेइ णो अप्पणो २, अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेइ परस्सवि ३, अप्पणो णाममेगे वज्जं णो उवसामेइ णो परस्सवि " ४। तत्र द्वितीयभङ्गस्यायमर्थः-एकः-कश्चित्पुरुषः परस्यावद्यं उपशमयति, नो आत्मनस्तदुपशमयति, आत्महितभावनारहितत्वात् २। एकः पुरुषः आत्मनः परस्यापि अवद्यमुपशमयति, स्वपरहिताभिलाषित्वात् ३। एकः पुरुषः आत्मनः परस्यापि अवद्य नो उपशमयति विमूढत्वात् ।४। ४।

उसका तात्पर्य ऐसा है, कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो-अपने ही अवद्य पाप को उपशान्त करता है, परके प्रति उदासीन होने से उसके अवद्य को उपशान्त नहीं करता है १ इस सम्बन्ध में-अन्य ३ भंग ऐसे हैं " परस्सणाममेगे वज्जं उवसामेइ, णो अप्पणो " २ अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेइ परस्स वि ३ " अप्पणो णाममेगे वज्जं णो उवसामेइ, णो परस्स वि-" ४ इसका अर्थ ऐसा है दूसरा भगवाला कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो उपदेश प्रदान आदि द्वारा परके अवद्य पापकर्म को तो शान्त कर देता है, पर आत्महितभावना से रहित होने के कारण अपने अवद्य को उपशमित नहीं करता है-२ तृतीय भङ्गवाला कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो स्व और परके हित का अभिलाषी होने के कारण दोनों के अवद्य पापकर्म को उपशान्त कर देता है-३ तथा-चौथे भंग का कोई पुरुष जो कि-विमूढ होने के कारण न अपने न परके अवद्य को उपशान्त करता है-४-४।

હવે ચોથા સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે-" चत्तारि " ઇત્યાદિ આ સૂત્ર દ્વારા પણ નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના જ અવદ્યને (પાપકર્મને) ઉપશાન્ત કરે છે પણ અન્યના તરફ ઉદાસીન હોવાથી અન્યના અવદ્યને ઉપશાન્ત કરતો નથી. આ સિવાયના ત્રણ ભાંગા (વિકલ્પો) નીચે પ્રમાણે છે—

परस्स णाममेगे वज्जं उवसामेइ णो अप्पणो२, अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेइ परस्स वि३, अप्पणो णाममेगे वज्जं णो उवसामेइ, णो परस्स वि४ "

બીજો ભાંગો—કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે ઉપદેશ આદિ દ્વારા પરના અવદ્યને (પાપકર્મને) ઉપશાન્ત કરી નાખે છે પણ આત્મકલ્યાણની ભાવનાથી રહિત હોવાને કારણે પોતાના અવદ્યને ઉપશાન્ત કરતો નથી.

ત્રીજો ભાંગો—કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે સ્વ અને પરના હિતની અભિલાષાવાળો હોવાથી પોતાના અને અન્યના અવદ્યને ઉપશમિત કરી નાખે છે

ચોથો ભાંગો—કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાની વિમૂઢતાને

"चत्तारि" इत्यादि-पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-"अब्भुत्तिट्ठने"-एकः-कश्चित्पुरुषः स्वयं कचित्कार्ये अभ्युत्तिष्ठते-उद्यतते सोत्साहत्वात् प्रवर्तत इत्यर्थः, किं तु परं नो उत्थापयति-न प्रवर्तयति परं प्रत्युपदासीनत्वात्, यद्वा-'अब्भुट्टेइ' इत्यस्य 'अभ्युत्तिष्ठति' इति च्छाया, तदर्थश्च -अभ्युत्थानं करोतीति, किन्तु परं नो उत्थापयति, एतादृशउत्कृष्टाऽऽचारपक्षपाती लघुपर्यायो वा भवति १, शेषास्त्रयो भङ्गा एवम्-"अब्भुट्ठावेइ णाममेगे णो अब्भुट्टेइ २, अब्भुट्टेइ णाममेगे अब्भुट्ठावेइ ३, णो अब्भुट्टेइ णाममेगे णो अब्भुट्ठावेइ ४।" इति, एषां व्याख्या-एकः-कश्चित्पुरुषः अभ्युत्थापयति शिष्या-

---

"चत्तारि" इत्यादि इस पञ्चम सूत्र द्वारा जो चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं उस सम्बन्धमें स्पष्टीकरण करते हुवे सूत्रकार कहते हैं,-कोई एक पुरुष स्वयं ही आत्महित साधक कार्यमें सोत्साह होकर प्रवृत्त होताहै पर प्रति उदासीनता से उत्साह के साथ प्रवृत्त नहीं होता है-१ यद्वा-"अब्भुट्टेइ" की छाया "अभ्युत्तिष्ठति" है, इसका अर्थ अभ्युत्थान करना है ऐसा पुरुष उत्कृष्ट आचार का पक्षपाती होता है, वा लघुपर्यायवाला होता है। शेष तीन भंग ऐसे हैं-"अब्भुट्ठावेइ णाममेगे णो अब्भुट्टेइ" २ अब्भुट्टेइ णाममेगे अब्भुट्ठावेइ ३ णो अब्भुट्टेइ णाममेगे णो अब्भुट्ठावेइ-४ इसकी व्याख्या इस प्रकार से है द्वितीय भङ्गवाला कोई एक

કારણે પોતાના પાપકર્મને પણ ઉપશમિત કરતો નથી અને પરના પાપકર્મને પણ ઉપશાન્ત કરતો નથી.

હવે પાચમાં સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આ સૂત્રમાં પુરુષોના જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે તેનુ સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—

(૧) કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે આત્મહિતસાધક કાર્યમાં ઉત્સાહપૂર્વક ભાગ લે છે, પરન્તુ અન્ય પ્રત્યે ઉદાસીન હોવાને કારણે અન્યને તે કાર્ય કરવાને ઉત્સાહિત કરતો નથી. અથવા "અબ્ભુટ્ટેઇ" ની છાયા "અભ્યુત્તિષ્ઠતિ" થાય છે. આ દૃષ્ટિએ વિચારવામા આવે તો તેનો અર્થ "અભ્યુત્થાન કરવું" થાય છે એવો પુરુષ ઉત્કૃષ્ટ આચારનો પક્ષપાતી હોય છે, અથવા લઘુ પર્યાયવાળો હોય છે આ દૃષ્ટિએ વિચારતા પહેલો ભાગો આ પ્રમાણે બને છે—કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાનુ અભ્યુત્થાન કરે છે, પણ અન્યનું અભ્યુત્થાન કરતો નથી. બાકીના ત્રણ ભાગા નીચે પ્રમાણે બને છે—

"अब्भुट्ठावेइ णाममेगे, णो अब्भुट्टेइ२, अब्भुट्टेइ णाममेगे अब्भुट्ठावेइ३, णो अब्भुट्टेइ णाममेगे णो अब्भुट्ठावेइ४"

दिकं न पुनः स्वयमभ्युत्तिष्ठति गुरुत्वात् २, एकः-कश्चित् स्वयमभ्युत्तिष्ठति परमप्यभ्युत्थापयति, उभयत्वित्वाद् तीर्थङ्करगणधरादिवत् ३, एक-कश्चित्तु रूपो न स्वयमभ्युत्तिष्ठति न परमभ्युत्थापयति, तादृशो जिनकल्पिकोऽविनीतो वा पुरुषो ज्ञेयः ४। १। एवं वन्दनादिसूत्रेष्वपि तत्तत्पुरुषा वन्दनादिविधायक विधापका बोध्या, इत्याह-"एवं वंदइ" इत्यादि-एवम्=अनन्तरोक्ताभ्युत्था नादिसूत्रवत्, "वंदइ" इत्यारभ्य 'वागरेइ' पर्यन्तान्यष्टसूत्राणि बोध्यानि। तथाहि="वन्दते नामैकः"-एकः-कश्चित् पुरुषो वन्दते-द्वादशावर्तादिना वन्दन करोति, किन्तु परेण न वन्दयति ६। तथा मत्ताः स्वयमूह्या। "एवम्"

पुरुष ऐसा होता है जो अपने शिष्य आदि को ही उठता है स्वयं गुरु होने के कारण उठता नहीं है-२ तृतीयभङ्ग का कोई एक पुरुष तीर्थङ्कर गणधर आदि जैसे स्वय भी उठता है और परको भी उठाता है-३ चौथे भग का कोई एक ऐसा होता है जो न स्वय उठता है न दूसरे को उठाता है-४ ऐसा पुरुष जिनकल्पिक या अविनीत होता है। ५ इसी तरह का भङ्ग कथन वेदनादि सूत्रों के सम्बन्ध में भी कर लेना चाहिये, अर्थात्-वन्दनादिक सूत्रों में भी तत्तत्पुरुप वन्दनादिविधायक और विधापक होते हैं। अतः-"वंदइ" सूत्र से लेकर "वागरेइ" सूत्र तक आठ सूत्रों को अनन्तरोक्त अभ्युत्थान आदि सूत्र समान जानना चाहिये। इस विषय में आलापक इस प्रकार से हैं,-"वदते नामैकः" एकः कश्चित् पुरुषो वन्दते द्वादशाऽऽवर्तादिना वन्दन करोति किन्तु

આ ત્રણ ભાંગાઓની વ્યાખ્યા નીચે પ્રમાણે સમજવી—

બીજે ભાંગો—કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના શિષ્યાદિકોનું અભ્યુત્થાન કરે છે, પરન્તુ પોતે ગુરુ (દીક્ષામાં) હોવાને કારણે પોતાનું અભ્યુત્થાન કરતો નથી.

ત્રીજો ભાંગો—કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાનું પણ ઉત્થાન કરે છે અને અન્યનું પણ ઉત્થાન કરે છે જેમકે તીર્થંકર, ગણધર વગેરે.

ચોથો ભાંગો—કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાનું પણ ઉત્થાન કરતો નથી અને પરનું પણ ઉત્થાન કરતો નથી. એવો પુરુષ જિનકલ્પિક અથવા અવિનીત હોય છે

હવે "વંદઇ" થી લઈને "વાગરેઇ" પર્યન્તના આઠ સૂત્રોનું સ્પષ્ટી કરણ કરવામાં આવે છે—

પ્રથમ સૂત્રનું સ્પષ્ટીકરણ—"વંદતે નામૈકઃ"-"એકઃ કશ્ચિત્ પુરુષો દ્વાદશાઽઽવર્તાદિના વન્દન કરોતિ, કિન્તુ પરેણ ન વન્દયતિ"

–अनेन प्रकारेण, " सक्कारेइ "–स्वयं. सत्करोति=वस्त्रपात्रादिदानेन परस्य सत्कारं करोति, किन्तु अन्येन स्वात्मानं नो सत्कारयति १, शेषा भङ्गा ऊहनीयाः ।७।

" सम्माणेइ "—' सम्माणेइ णाममेगे णो सम्माणावेइ '–एकः–कश्चित्पुरुषः परं सम्मानयति–स्तुत्यादिगुणोन्नतिकरणेन, किन्तु परेण स्वात्मानं नो सम्मानयति न सम्मानं कारयति १, शेषा भङ्गाः स्वयमूह्याः ४। ८।

" पूएइ "–' पूएइ णाममेगे णो पूयावेइ '–एकः–कश्चित्पुरुषः स्वयमन्यं पूजयति–आदरणीयत्वेन स्वीकरोति किन्तु परेण स्वात्मानं नो पूजयति १, शेषा भङ्गाः स्वयमूहनीयाः ।४। ९।

परेण न वन्दयति ६ कोई एक पुरुष द्वादश आवर्त आदि शास्त्र संकेतित विधान से वन्दना करता है, किन्तु दूसरों से अपनी वन्दना नहीं कराता है १ बाकी तीन भङ्ग अपने आप समझ लेना चाहिये ४। ऐसे ही सत्कार के सम्बन्ध में चार भङ्गों को समझ लेना चाहिये, जैसे " सक्कारेइ " कोई एक पुरुष ऐसा है जो पात्र वस्त्र आदि प्रदान पूर्वक परका सत्कार करता है किन्तु अन्य से अपना सत्कार नहीं करवाता है १ यहां बाकी के ३ भङ्गोंको बना लेना चाहिये ४–७।

८—" सम्माणेइ–सम्माणेइ णामेगे णो सम्माणावेइ " कोई एक पुरुष ऐसा होता है, जो दूसरोंका सम्मान करता है पर–दूसरोंसे अपना सम्मान नही कराता है–१ यहांभी अवशिष्ट तीन भङ्गोंकी कल्पना यथावत् कर लेनी चाहिये–४।

---

(૧) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે દ્વાદશ (બાર) આવર્ત આદિ શાસ્ત્રોક્ત વિધિપૂર્વક વંદણા કરે છે, પણ પોને બીજા પાસે પોતાને વંદણા કરાવતો નથી (૨) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતે શાસ્ત્રોક્ત વિધિપૂર્વક વંદણા કરતો નથી પણ અન્યની પાસે એવી વંદણા કરાવે છે

એ જ પ્રમાણે બાકીના બે ભાંગાઓનુ કથન પણ જાતે જ સમજી લેવું વંદણાથી લઈને " વાગરેઇ " ' નિર્ણય કરે છે ' પર્યન્તના સૂત્રોના ચાર ભાંગાઓનુ કથન પૂર્વોક્ત અભ્યુત્થાન સૂત્ર પ્રમાણે જ સમજી લેવું.

સાતમુ સૂત્ર—સત્કારના વિષયમાં પણ એવા જ ચાર ભાંગા સમજી લેવા જેમકે કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે વસ્ત્ર, પાત્ર આદિના પ્રદાનપૂર્વક અન્યનો સત્કાર કરે છે, પણ અન્યની પાસે પોતાનો સત્કાર કરાવતો નથી બાકીના ત્રણ ભાંગા જાતે જ સમજી લેવા.

આઠમું સૂત્ર—" सम्माणेइ णामेगे णो सम्माणावेइ " ઈત્યાદિ—કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે અન્યનુ સન્માન કરે છે, પણ અન્યની મારફત પોતાનું સન્માન કરાવતો નથી. બાકીના ત્રણ ભાંગાઓ પૂર્વોક્ત ક્રમ અનુસાર સમજી લેવા.

तद्विवरणम्—एकः-कश्चित्पुरुषः सूत्रादि पृच्छति=प्रश्नयति, किन्तु परेण नो पृच्छयति-१। शेषा भङ्गाः स्वयमूहनीयाः ४। ११।

"पडिपुच्छइ" इति-'पडिपुच्छइ णाममेगे णो पडिपुच्छावेइ', इति प्रथमभङ्गस्वरूपम्, एकः-कश्चित् सूत्रार्थौ प्रतिपृच्छति=पृष्टप्रश्नं करोति, नो परेण प्रतिपृच्छयति १, शेषा भङ्गाः स्वयमूह्याः ४। १२।

"वागरेइ" 'वागरेइ णाममेगे णो वागरावेइ' इति प्रथमभङ्गस्वरूपम्, अस्यायमर्थः-एकः=कश्चित्पुरुषः सूत्रादिकं स्वयं व्याकरोति=निर्णयति, किन्तु परेण नो व्याकारयति १। शेषा भङ्गाः स्वयमूह्याः ४। १३।

"सुत्तधरे" इत्यादि-एकः-कश्चित्पुरुषः सूत्रधरः-धरतीति धरः सूत्रस्य

---

३ भङ्ग अपने आप उद्भवित कर लेना चाहिये-४। "पडिपुच्छइ" पडिपुच्छइ णाममेगे, णो पडिपुच्छावेइ-पुरुष चार प्रकारके हैं जिनमें एक प्रकारका वह है जो-सूत्रार्थ को स्वयं प्रश्नित करता है पर दूसरोंसे प्रश्नित नहीं करवाता है-१ यहां पर भी आगेके ३ भङ्गोंको बना लेना चाहिये-४/१३ "वागरेइ" वागरेइ णाममेगे, णो वागरावेइ-पुरुष चार भेदके हैं, इनमें कोई एक तो ऐसा होता है जो स्वयं निर्णय करता है परसे निर्णय नहीं कराता है-१ यह पहला भङ्ग है आगेके तीन भङ्गोंको अपने आप बना लेना-४

१४ सुत्तधरे—इत्यादि पुरुष चार प्रकारके कहे गये है, इनमें कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो केवल सूत्रधर होता है अर्थधर नहीं होता

જે પોતે જ સૂત્રાદિકોનો અર્થ પૂછે છે, અન્યની પાસે પૂછાવતો નથી બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ પૂર્વોક્ત ક્રમ અનુસાર બનાવી લેવા.

હવે બારમાં સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે-"पडिपुच्छइ" ઇત્યાદિ-"पडिपुच्छइ णाममेगे णो पडिपुच्छावेइ" ચાર પ્રકારના પુરુષોમાંથી પહેલા પ્રકારનો પુરુષ એવો હોય છે કે જે સૂત્રાર્થને પોતે જ પ્રશ્નિત કરે છે, પણ બીજા લોકો પાસે પ્રશ્નિત કરાવતો નથી. અહીં પણ બાકીના ત્રણ ભાંગા પૂર્વોક્ત ક્રમાનુસાર બનાવી લેવા જોઇએ.

તેરમાં સૂત્રનું સ્પષ્ટીકરણ--"वागरेइ" ઇત્યાદિ-"वागरेइ णाममेगे णो, वागरावेइ" પુરુષના ચાર પ્રકાર છે. (૧) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતે જ નિર્ણય કરે છે, પણ અન્યની પાસે નિર્ણય કરાવતો નથી. આ પહેલો પ્રકાર છે, બાકીના ત્રણ પ્રકાર જાતે જ સમજી લેવા.

હવે ૧૪ માં સૂત્રનો ભાવાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે-"सुत्तधरे" ઇત્યાદિ-પુરુષોના ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે-(૧) કોઈ એક પુરુષ

धरः सूत्रधरो भवति, किन्तु अर्थधरो न भवति १। एक-कश्चित् अर्थधरो भवति न तु सूत्रधरः २, सूत्रधरो नामैकोऽर्थधरोऽपि ३, एको नो सूत्रधरो नो अर्थधरः ४। तृतीय-चतुर्थभङ्गयोरुदाहरणद्वय-मेधावि-जडरूप भवति ४। १४। सू० १८।

पुरुषाधिकारादेव देवविशेष-पुरुषविशेषनिरूपकाणि लोकपालादि-सूत्राण्याह-

सूत्रम्—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा—सोमे १, जमे २, वरुणे ३ वेसमणे ४। एवं बलिस्सवि-सोमे १, जमे २, वेसमणे ३, वरुणे ४। धरणस्स—कालपाले १, कोलपाले २, सेलपाले ३, संखपाले ४। एवं भूयाणंदस्स चत्तारि—कालपाले १, कोलपाले २, संखपाले ३, सेलपाले ४। वेणुदेवस्स—चित्ते १, विचित्ते २, चित्तपक्खे ३, विचित्तपक्खे ४। वेणुदालिस्स चित्ते १, विचित्ते २, विचित्तपक्खे ३, चित्तपक्खे ४। हरिकंतस्स-पभे १, सुप्पभे २, पभकंते ३, सुप्पभकंते ४। हरिसहस्स-पभे १, सुप्पभे २, सुप्पभकंते ३, पभकंते ४। अग्गिसिहस्स-तेऊ १, तेउसिहे २, तेउकंते ३, तेउप्पभे ४। अग्गिमाणवस्स तेऊ १, तेउसिहे २, तेउप्पभे ३, तेउकंते ४। पुण्णस्स रूए १, रूयंसे २, रूयकंते ३, रूयप्पभे ४।

है-१ दूसरा कोई अर्थधर होता है सूत्रधर नहीं होता है-२ कोई एक तीसरा पुरुष ऐसा है जो सूत्रधरभी होता है और अर्थधरभी होता है-३ तथा-चतुर्थ प्रकारका कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो नतो सूत्र धरही होता है न अर्थधरही होता है-४ यहां-तृतीय और चतुर्थ भङ्गके उदाहरण मेधावी और जड पुरुष होते हैं ॥ सू०१८ ॥

એવો હોય છે કે જે માત્ર સૂત્રધર જ હોય છે પણ અર્થધર હોતો નથી. (૨) કોઈ પુરુષ માત્ર અર્થધર જ હોય છે પણ સૂત્રધર હોતો નથી. (૩) કોઈ પુરુષ સૂત્રધર પણ હોય છે અને અર્થધર પણ હોય છે જેમકે કોઈ મેધાવી પુરુષ. (૪) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે સૂત્રધર પણ હોતો નથી અને અર્થધર પણ હોતો નથી જેમકે જડ પુરુષ. ॥ સૂ ૧૮ ॥

एवं विसिट्ठस्स--रूए १, रूयंसे २, रूयप्पभे ३, रूयकंते ४। जलकंतस्सजले१, जलरूए२, जलकंते३, जलप्पभे४। जलप्पहस्स-जले१, जलरूए२, जलप्पहे३, जलकंते ४। अमियगइस्स-तुरियगई १, खिप्पगई २, सीहगई ३, सीहविक्कमगई ४। अमियवाहणस्स-तुरियगई १, खिप्पगई २, सीहविक्कमगई ३ सिंहगई ४। वेलंबस्स-काले १, महाकाले २, अंजणे ३, रिट्ठे ४। पभंजणस्स-काले १, महाकाले २, रिट्ठे ३, अंजणे ४। घोसस्स-आवत्ते १, वियावत्ते २, नंदियावत्ते ३, महाणंदियावत्ते ४। महाघोसस्स-आवत्ते १, वियावत्ते २, महाणंदियावत्ते ३, णंदियावत्ते २०, ४। सक्कस्स—सोमे १, जमे ०, वरुणे ३, वेसमणे ४। ईसाणस्स-सोमे १, जमे २, वेसमणे ३, वरुणे ४। एवं-एगंतरिया जावऽच्चुयस्स ।

चउव्विहा वाउकुमारा पण्णत्ता, तं जहा-काले १, महाकाले६, वेलंबे ३, पभंजणे ४।

चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवासी १, वाणमंतरा ६, जोइसिया ६, विमाणवासी ५।।सू० १९॥

छाया—चमरस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य चत्वारो लोकपालाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सोमः १, यमः २, वरुणः ३, वैश्रवणः ४। एवं बलेरपि सोमः

पुरुषाधिकारको लेकर ही अब सूत्रकार देवविशेष—पुरुषविशेष निरूपक लोकपाल आदि सूत्रोंका कथन करते हैं—" चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो " इत्यादि—

सूत्रार्थ — असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के चार

પુરુષાધિકાર ચાલી રહ્યો છે. તેથી હવે સૂત્રકાર દેવવિશેષ—પુરુષવિશેષ નિરૂપક લોકપાલ આદિ વિષયક સૂત્રોનું કથન કરે છે—

" चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—અસુરેન્દ્ર, અસુરકુમારરાજ ચમરના ચાર લોકપાલ છે. તેમના નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) સોમ, (૨) ય[illegible]રુણ અને (૪) વૈશ્રવણ.

१, यमः २, वैश्रवणः ३, वरुणः ४। धरणस्य-कालपाल १, कोलपालः २, शैलपाल ३, शङ्खपाल ४। एवं भूतानन्दस्य चत्वारः-कालपालः १, कोलपालः २, शङ्खपाल ३, शैलपालः ४। वेणुदेवस्य-चित्रः १, विचित्रः २, चित्रपक्षः ३, विचित्रपक्ष ४। वेणुदाले-चित्रः १, विचित्रः २, विचित्रपक्षः ३, चित्रपक्षः।४ हरिकान्तस्य-प्रभः १, सुप्रभः २, प्रभकान्तः ३, सुप्रभकान्तः ४। हरिसहस्य-प्रभः १, सुप्रभः २, सुप्रभकान्तः ३, प्रभकान्तः ४। अग्निशिखस्य तेजाः १, तेजःशिख २, तेजःकान्तः ३, तेजःप्रभ ४। अग्निमाणवस्य-तेज ः १, तेजःशिखः

लोकपाल होते हैं, जैसे-१ सोम, २ यम, ३ वरुण और ४ वैश्र वण। इसी प्रकार बलिके भी सोम-यम-वरुण-और वैश्रवण ये चार लोकपाल कहे गये हैं-धरणके लोकपालोंमें कालपाल १, कोलपाल २, शैलपाल ३, और शङ्खपाल ४, ये चार कहे गये हैं। इसी तरह भूता नन्दके चार लोकपाल कहे गये है, जैसे-कालपाल-१ कोलपाल-२ शैल पाल-३ और शङ्खपाल-४। वेणुदेवके चित्र-१ विचित्र २ चित्रपक्ष-३ और विचित्रपक्ष-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। वेणुदालिके चित्र-१ विचित्र २ विचित्रपक्ष-३ और चित्रपक्ष-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। हरिकान्तके प्रभ-१ सुप्रभ-२ प्रभकान्त-३ और सुप्रभकान्त-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। हरिसहके प्रभ-१ सुप्रभ-२ सुप्रभ कान्त-३ और प्रभकान्त ४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं।

એ જ પ્રમાણે બલિના પણ સોમ યમ, વરુણ અને વૈશ્રવણ નામના ચાર લોકપાલ કહ્યા છે ધરણના ચાર લોકપાલોનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે— કાલપાલ, (૨) કોલપાલ (૩) શૈલપાલ અને (૪) શંખપાલ. એ જ પ્રમાણે ભૂતાનન્દના પણ ચાર લોકપાલ કહ્યા છે તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે— (૧) કાલપાલ (૨) કોલપાલ (૩) શૈલપાલ અને શંખપાલ.

વેણુદેવના ચિત્ર, વિચિત્ર, ચિત્રપક્ષ અને વિચિત્રપક્ષ નામના ચાર લોકપાલો કહ્યા છે વેણુદાલિના (૧) ચિત્ર, (૨) વિચિત્ર, (૩) વિચિત્રપક્ષ, અને (૪) ચિત્રપક્ષ એ નામના ચાર લોકપાલો કહ્યા છે.

હરિકાન્તના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે -(૧) પ્રભ, (૨) સુપ્રભ, (૩) પ્રભકાન્ત અને (૪) સુપ્રભકાન્ત. હરિસિંહના ચાર લોકપાલોનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે-(૧) પ્રભ, (૨) સુપ્રભ, (૩) સુપ્રભકાન્ત, અને (૪) પ્રભકાન્ત.

२, तेजःप्रभः ३, तेजःकान्तः ४। पूर्णस्य-रूपः १, रूपांशः २, रूपकान्तः ३, रूपप्रभः ४। एवं विशिष्टस्य-रूपः १, रूपांश २, रूपप्रभः ३, रूपकान्तः ४। जलकान्तस्य-जल १, जलरूपः २, जलकान्तः ३, जलप्रभः ४। जलप्रभस्य-जलः १, जलरूपः २, जलप्रभः ३, जलकान्तः ४। अमितगतेः-त्वरितगतिः १, क्षिप्रगतिः २, सिंहगतिः ३, सिंहविक्रमगतिः ४। अमितवाहनस्य-त्वरितगतिः १, क्षिप्रगतिः २, सिंहविक्रमगतिः ३, सिंहगतिः ४। वेलम्बस्य-कालः १, महा-

---

अग्निशिखके तेज-१ तेजशिख-२ तेजःकान्त-३ और तेजःप्रभ-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। अग्निमाणवकके तेजाः-१ तेजःशिख-२ तेजःप्रभ-३ और तेजःकान्त ४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। पूर्णके रूप-१ रूपांश-२ रूपकान्त-३ एवं रूपप्रभ-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। वशिष्टके रूप १, रूपांश २, रूपप्रभ ३, और रूपकांत ४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। जलकान्तके जल-१ जलरूप-२ जलकान्त-३ और जलप्रभ-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं।

जलप्रभके जल-१ जलरूप-२ जलप्रभ ३ और जलकान्त ४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। अमितगतिके त्वरितगति-१ क्षिप्रगति-२ सिंह-विक्रमगति-३ और सिंहगति-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं।

અગ્નિશિખના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે--(૧) તેજ, (૨) તેજઃ શિખ, (૩) તેજઃકાન્ત અને (૪) તેજઃપ્રભ.

અગ્નિમાણવના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે--(૧) તેજ, (૨) તેજઃશિખ, (૩) તેજઃપ્રભ અને (૪) તેજઃકાન્ત.

પૂર્ણના લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે--(૧) રૂપ, (૨) રૂપાંશ, (૩) રૂપકાન્ત અને (૪) રૂપપ્રભ વશિષ્ઠના ચાર લોકપાલોનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે-(૧) રૂપ, (૨) રૂપાંશ, (૩) રૂપપ્રભ અને રૂપકાન્ત જળકાન્તના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) જલ, (૨) જલરૂપ, (૩) જલકાન્ત અને (૪) જલપ્રભ

જલપ્રભના ચાર લોકપાલોનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે--(૧) જલ, (૨) જલરૂપ, (૩) જલપ્રભ અને (૪) જલકાન્ત.

અમિતગતિના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ત્વરિતગતિ, (૨) ક્ષિપ્રગતિ, (૩) સિંહગતિ, અને (૪) સિંહવિક્રમગતિ અમિતવાહનના ચાર લોકપાલો ત્વરિતગતિ, ક્ષિપ્રગતિ, સિંહવિક્રમગતિ અને સિંહગતિ છે.

कालः २, महाकालः ३, रिष्टः ४। प्रभञ्जनस्य—कालः १, महाकालः २, रिष्टः ३, अञ्जनः ४। घोषस्य—आवर्तः १, व्यावर्तः २, नन्दिकावर्तः ३, महानन्दिकावर्तः ४। महाघोषस्य—आवर्तः १, व्यावर्तः २, महानन्दिकावर्तः ३, नन्दिकावर्तः ४। शक्रस्य—सोमः १, यमः २, वरुणः ३, वैश्रमणः ४। ईशानस्य—सोमः १, यमः २, वैश्रमणः ३, वरुणः ४। एवम् एकान्तरिताः यावत् अच्युतस्य।

चतुर्विधा वायुकुमाराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कालः १, महाकालः २, वेलम्बः ३ प्रभञ्जनः ४।

वेलम्बके काल-१ महाकाल-२ अञ्जन-३ रिष्ट-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं।

प्रभञ्जनके काल-१ महाकाल-२ रिष्ट-३ और अञ्जन-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। घोषके आवर्त-१ व्यावर्त-२ नन्दिकावर्त-३ और महानन्दिकावर्त-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। महाघोषके आवर्त-१ व्यावर्त-२ महानन्दिकावर्त-३ नन्दिकावर्त-४ ये चार लोकपाल कहे गये हैं। शक्रके सोम-यम-वरुण-और वैश्रवण ये चार लोकपाल कहे गये हैं। ईशानके सोम, यम, वैश्रवण, वरुण लोकपालमें ये चार हैं। इसी तरहसे एकान्तरित करके यावत् अच्युत तक लोकपाल कह लेना चाहिये।

वायुकुमार चार प्रकारके कहे गये हैं—जैसे काल-१ महाकाल-२ वेलम्ब-३ और प्रभञ्जन-४। देव चार प्रकारके कहे गये हैं—भवन

વેલમ્બના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) કાલ, (૨) મહાકાલ, (૩) અંજન અને (૪) રિષ્ટ.

પ્રભંજનના ચાર લોકપાલોના નામ નીચે પ્રમાણે છે, (૧) કાલ, (૨) મહાકાલ, (૩) અંજન અને (૪) રિષ્ટ

ઘોષના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) આવર્ત (૨) વ્યાવર્ત (૩) નન્દિકાવર્ત અને (૪) મહાનન્દિકાવર્ત મહાઘોષના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) આવર્ત, (૨) વ્યાવર્ત (૩) મહાનન્દિકાવર્ત, (૪) નન્દિકાવર્ત

શક્રના સોમ, યમ, વરુણ અને વૈશ્રમણ, એ ચાર લોકપાલો છે ઈશાનના પણ સોમ, યમ, વૈશ્રમણ અને વરુણ આ નામના ચાર લોકપાલો છે એજ પ્રમાણે ક્રમશઃ એકાંતરિત કરીને અચ્યુત પર્યન્તના ઇન્દ્રોના લોકપાલોનું કથન અહીં કરવું જોઈએ.

વાયુકુમાર ચાર પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) કાલ, (૨) મહાકાલ, (૩) વેલમ્બ અને (૪) પ્રભંજન. દેવ ચાર પ્રકારના કહ્યા છે-(૧) ભવનવાસી, (૨) વાનવ્યન્તર, (૩) જ્યોતિષ્ક અને (૪) વૈમાનિક

चतुर्विधा देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-भवनवासिनः १, वानव्यन्तराः २, ज्योतिष्काः ३, विमानवासिनः ४। ।सू० १९।

टीका—"चमरस्स" इत्यादि-चमरस्य-तदाख्यस्य "खलु" इति वाक्यालङ्कारे, असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य दाक्षिणात्यासुरकुमाराधिपस्य चत्वारः=चतुःसंख्याः, लोकपालाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा--सोमः १, यमः २, वरुणः ३, वैश्रवणः४।

"एवं वलिस्सवि" इत्यादि- एवं=चमरस्येवेत्यर्थः, बलेरपि--तदाख्यस्यौदीच्यासुरकुमारराजस्यापि चत्वारो लोकपालाः प्रज्ञप्ताः इत्यर्थः, ते च क्रमात् सोमः १, यमः २, वैश्रवणः ३, वरुणः ४। इति । अत्र चमरेन्द्रस्य यश्चतुर्थो लोकपालः सोऽस्य तृतीयः, योऽस्य तृतीयः स तस्य चतुर्थ इति विशेषः । एवमग्रेऽपि सर्वत्र विज्ञेयम् ।

"धरणस्से"--त्यादि--धरणस्य -तदाख्यस्य दाक्षिणात्यनागकुमारराजस्य

वासी-१ वान व्यन्तर-२ ज्योतिष्क-३ और विमानवासी वैमानिक-४ ।

व्याख्या—असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर दक्षिणार्धका अधिपति है। इसके लोकपालोंमें सोम-यम आदिक हैं जो कि-पहलेही सूत्रार्थमें प्रकटित किये गये हैं । बलि असुरेन्द्र उत्तरार्धके अधिपति हैं । इनकेभी चार लोकपाल हैं जो-मूलार्थमें लिखे जा चुके हैं । चमरेन्द्रका चौथा यहां तिसरा लोकपाल है और—यहांका तीसरा वहांका चौथा लोकपाल है । इसी तरह आगेभी सर्वत्र जानना चाहिये ।

धरण—और भूतानन्द ये दो इन्द्र नागकुमारोंमें होते हैं, धरण दक्षिणार्धका और भूतानन्द उत्तरार्धका अधिपति हैं इनके लोकपाल वर्णित हो गये हैं । चमर और बलिके लोकपाल जैसेही इनके लोक-

---

વિશેષાર્થ—અસુરેન્દ્ર, અસુરકુમારરાજ ચમર દક્ષિણાર્ધનો અધિપતિ છે. તેના લોકપાલોનાં નામ સોમ, યમ આદિ સૂત્રાર્થમાં લખ્યાનુસાર સમજવા. બલિ અસુરેન્દ્ર ઉત્તરાર્ધનો અધિપતિ છે તેના ચાર લોકપાલોનાં નામ સૂત્રાર્થમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં છે ચમરેન્દ્રનો ચોથો લોકપાલ અહીં ત્રીજો લોકપાલ છે અને બલીન્દ્રનો ચોથો લોકપાલ ચમરેન્દ્રનો ત્રીજો લોકપાલ છે-એટલે કે બન્નેના ત્રીજા અને ચોથા લોકપાલનાં નામો ઊલટાસૂલટી સમજવાં. એ જ પ્રમાણે આગળનું કથન પણ સમજવું.

ધરણ અને ભૂતાનન્દ, આ બે નાગકુમારોના ઇન્દ્ર છે. ધરણ દક્ષિણાર્ધનો અને ભૂતાનન્દ ઉત્તરાર્ધનો અધિપતિ છે તેમના લોકપાલોનાં નામ સૂત્રાર્થમાં આપી દીધા છે. ચમર અને બલિના લોકપાલોમા જેમ ત્રીજા અને ચોથા

'चत्वारो लोकपालाः प्रज्ञप्ताः' इत्यनुवर्तते ते यथा-कालपालः १, कोलपालः ३ शैलपालः २, शङ्खपालः ४। इति।

" एवं भूयाणंदस्से "-त्यादि-एवम्=अनन्तरोक्तधरणेन्द्रस्येव, भूतानन्दस्य =उदग्स्यपर्यौदीच्यनागकुमारराजस्य, चत्वारो लोकपालाः प्रज्ञप्ता, ते यथा-कालपालः १ कोलपालः २, शङ्खपालः ३, शैलपालः ४। इति।

" वेणुदेवस्से "-त्यादि-वेणुदेवस्य-तन्नाम्नो दाक्षिणात्यसुपर्णकुमारेन्द्रस्य चत्वारो लोकपालाः प्रज्ञप्ताः ते यथा-चित्रः १, विचित्र २, चित्रपक्षः ३ विचित्रपक्षः ४। इति।

" वेणुदालिस्से " - त्यादि-वेणुदालेः-उदग्स्यपर्यौदीच्यसुवर्णकुमारेन्द्रस्य चत्वारो लोकपालाः प्रज्ञप्ता', ते यथा-चित्रः १, विचित्रः २, विचित्रपक्षः ३, चित्रपक्षः ४। इति।

" हरिकंतस्से "-त्यादि-हरिकान्तस्य-उदास्यस्य दाक्षिणात्यविद्युत्कुमारेन्द्रस्य चत्वारो लोकपालाः प्रज्ञप्ताः, ते यथा-प्रभः १, सुप्रभः २, प्रभकान्तः ३, सुप्रभकान्तः ४। इति।

पालोंमें सख्याका आगे पीछे हुआ है, धरणका तीसरा शैलपाल यहां चौथे स्थानपर है और यहांके चौथे स्थानका लोकपाल वहां तीसरे स्थानपर आया है। वेणुदेव-और वेणुदालि ये दो इन्द्र सुपर्णकुमारोंमें होते हैं, दक्षिणार्धके अधिपति वेणुदेवके लोकपालोंमें चित्र-विचित्र चित्रपक्ष-विचित्रपक्ष हैं। तथा वेणुदालि जोकि उत्तरार्धके अधिपति हैं उसके लोकपाल चित्र-विचित्र-विचित्रपक्ष चित्रपक्ष हैं यहांभी पहेलेका चौथा दूसरेका तीसरा होगया है।

हरिकान्त-और हरिसह यह दो इन्द्र विद्युत्कुमारोंमें हैं, इनके लोकपालोंके नाम प्रभ १, सुप्रभ २, सुप्रभकान्त ३ और प्रभकान्त हैं।

લોકપાલોનાં નામ ઉલટા સુલટી કરવાનુ કહ્યું છે તેમ અહીં પણ કરવું જોઈએ. એટલે કે ધરણનો ત્રીજો લોકપાલ (શૈલપાલ) ભૂતાનંદનો ચોથો લોકપાલ છે અને ધરણનો ચોથો લોકપાલ ભૂતાનંદનો ત્રીજો લોકપાલ છે વેણુદેવ અને વેણુદાલિ, આ બે સુપર્ણકુમારોના ઇન્દ્રો છે દક્ષિણાર્ધના અધિપતિ વેણુદેવના લોકપાલોનાં નામ ચિત્ર, વિચિત્ર, ચિત્રપક્ષ અને વિચિત્રપક્ષ છે અને ઉત્તરાર્ધના અધિપતિ વેણુદાલિના લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે-ચિત્ર વિચિત્ર, વિચિત્રપક્ષ અને ચિત્રપક્ષ. અહીં પણ ત્રીજા અને ચોથા લોકપાલોનાં નામ ઉપર મુજબ ઉલટા સુલટી સમજવા.

હરિકાન્ત અને હરિસહ, આ બે ઇન્દ્રો વિદ્યુત્કુમારોના છે હરિકાન્ત દક્ષિણાર્ધનો અધિપતિ છે અને હરિસહ ઉત્તરાર્ધનો અધિપતિ છે તેમનાં

"हरिस्सहस्से"-त्यादि-हरिसहस्य-तदाख्यस्य औदीच्यविद्युत्कुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारो ज्ञेयाः, ते यथा-प्रभः १, सुप्रभः २, सुप्रभकान्त ३, प्रभकान्तः ४। इति।

"अग्गिसिहस्से"-त्यादि-अग्निशिखस्य-तदाख्यस्य दाक्षिणात्याग्निकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते यथा-तेजाः १, तेजश्शिखः २, तेजः कान्तः ३, तेजःप्रभः ४। इति।

"अग्गिमाणस्से"-त्यादि - अग्निमाणवस्य-तदाख्यस्यौदीच्याग्निकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते यथा-तेजाः १, तेजःशिखः २, तेजःप्रभः ३, तेजःकान्तः ४। इति।

"पुण्णस्से"-त्यादि-पूर्णस्य-तदाख्यस्य दाक्षिणात्यद्वीपकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते यथा-रूपः १, रूपांशः२, रूपकान्तः ३, रूपप्रभः ४। इति।

हरिकान्त दक्षिणार्धका अधिपति है-और हरिसह उत्तरार्धका। हरिसहके लोकपालोंके भी येही नाम हैं परन्तु प्रभकान्त यहां चौथा है और सुप्रभकान्त तीसरा है। अग्निशिख और अग्निमाणव ये दो इन्द्र अग्निकुमारोंके हैं, इनमें अग्निशिख दक्षिणार्धका और अग्निमाणव उत्तरार्धका अधिपति होते हैं। अग्निशिखके लोकपाल तेजाः-तेजःशिख तेजःकान्त-तेजःप्रभ, येही-अग्निमाणवके भी लोकपाल हैं केवल-पहेलेके चौथे यहांका तीसरा हो जाता हैं और-वहांके तीसरा यहांका चौथा हो जाता हैं और-वहांके तीसरा यहांका चौथा होजाते हैं।

पूर्ण-और वसिष्ठ ये दो इन्द्र द्वीपकुमारोंमें हैं इनमें पहला दक्षिणार्धका, और-द्वितीय उत्तरार्धका अधिपति हैं। पूर्णके चार लोकपाल

લોકપાલોનાં નામ-(૧) પ્રભ, (૨) સુપ્રભ, (૩) સુપ્રભકાન્ત અને (૪) પ્રભકાન્ત છે. બન્નેનાં લોકપાલોનાં નામ સરખા છે. પણ ત્રીજા અને ચોથા લોકપાલનાં નામો ઉલટાસુલટી છે. હરિકાન્તના ત્રીજા લોકપાલનુ નામ પ્રભકાન્ત છે જ્યારે હરિસહના ચોથા લોકપાલનું નામ પ્રભકાન્ત છે હરિકાન્તના ચોથા લોકપાલનું નામ સુપ્રભકાન્ત છે, જ્યારે હરિસહના ત્રીજા લોકપાલનુ નામ સુપ્રભકાન્ત છે.

અગ્નિશિખ અને અગ્નિમાણવ એ અગ્નિકુમારોના ઈન્દ્રો છે. અગ્નિશિખ દક્ષિણાર્ધનો અધિપતિ છે તેના લોકપાલો (૧) તેજા. (૨) તેજ શિખ, (૩) તેજ કાન્ત અને (૪) તેજ પ્રભ છે. અગ્નિમાણવ ઉત્તરાર્ધનો અધિપતિ છે. તેના લોકપાલોનાં નામ (૧) તેજાઃ, (૨) તેજ શિખ, (૩) તેજઃપ્રભ અને (૪) તેજઃકાન્ત છે

અહીં પણ ત્રીજા અને ચોથા લોકપાલનો ક્રમાંક ફરી જાય છે. દ્વીપકુમારોના બે ઈન્દ્રોનું નામ પૂર્ણ અને વશિષ્ટ છે. દક્ષિણાર્ધનો અધિપતિ

" एवं वसिट्ठस्से "-त्यादि – एवम्=अनन्तरोक्तपूर्णस्येव, वशिष्ठस्य=उदा सपस्य औदीच्यद्वीपकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः मज्ञप्ताः ते यथा-रूप १, रूपांशः २, रूपप्रभः ३, रूपकान्तः ४। इति।

" जलकंतस्से "-त्यादि-जलकान्तस्य-तन्नामकस्य दाक्षिणात्योदधिकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः मज्ञप्ताः, ते यथा-जलः १, जलरूप २, जलकान्तः ३, जलप्रभः ४। इति।

" जलप्पहस्से "—त्यादि-जलप्रभस्य-तदाख्यस्यौदीच्योदधि-कुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः मज्ञप्ताः ते यथा-जलः १, जलरूप २, जलप्रभः ३, जल कान्तः ४। इति।

" अमियगइस्से "—त्यादि-अमितगतेः-तदाख्यस्य दाक्षिणात्यस्य दिक्कुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः मज्ञप्ताः, ते यथा-त्वरितगतिः १, क्षिप्रगतिः २, सिंहगतिः ३, सिंहविक्रमगतिः ४। इति।

इस प्रकारसे हैं—रूप १, रूपांश २, रूपकान्त ३, और रूपप्रभ ४,। येही-लोकपाल वसिष्ठके हैं, पर तीसरेमें और चौथेमें हेरफेर हुवा है। पूर्णका जो चौथा लोकपाल है वह यहां तीसरा परिगणित हुवा है। और जो तीसरा लोकपाल है वह चौथा परिगणित हुवा है। जलकान्त और जलप्रभ ये दो इन्द्र उदधिकुमारोंमें हैं। इनमें जलकान्त दक्षिणार्धका और जलप्रभ उत्तरार्धका अधिपति हैं जलकान्तके जल १, जलरूप २, जलकान्त ३, और जलप्रभ ये चार लोकपाल हैं, पर वहां जो चौथा है वही यहां तीसरा होता है और-जो वहां तीसरा है वह यहां चौथा है। अमितगति और अमितवाहन ये दो इन्द्र दिक्कुमारोंमें

પૂર્વ અને ઉત્તરાર્ધનો અધિપતિ વશિષ્ટ છે પૂર્ણના ચાર લોકપાલો આ પ્રમાણે છે—(૧) રૂપ, (૨) રૂપાંશ, (૩) રૂપકાન્ત અને (૪) રૂપપ્રભ.

વશિષ્ટના લોકપાલોનાં નામ પણ પૂર્ણના લોકપાલો જેવાં જ છે માત્ર ત્રીજા અને ચોથાનો ક્રમ ફરી જાય છે.

ઉદધિકુમારોના બે ઇન્દ્રોના નામ જલકાન્ત અને જલપ્રભ છે જલકાન્ત દક્ષિણાર્ધનો અધિપતિ છે અને જલપ્રભ ઉત્તરાર્ધનો અધિપતિ છે

જલકાન્તના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) જલ, (૨) જલરૂપ, (૩) જલકાન્ત અને (૪) જલપ્રભ. જલપ્રભના લોકપાલોના નામ પણ જલકાન્તના લોકપાલો જેવા જ છે પણ ત્રીજા અને ચોથાનો ક્રમ ફરી જાય છે

દિક્કુમારોના બે ઇન્દ્રોના નામ અમિતગતિ અને અમિતવાહન છે અમિતગતિના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ત્વરિતગતિ, (૨)

"अमियवाहणस्से"–त्यादि–अमितवाहनस्य =तदाख्यास्यौदीच्यदिक्कुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते यथा–त्वरितगतिः १, क्षिप्रगतिः २, सिंहविक्रमगतिः ३, सिंहगतिः ४। इति।

"वेलंबस्से"—त्यादि–वेलम्बस्य -तदाख्यस्य दाक्षिणात्यवायुकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते यथा–कालः१, महाकालः२, अञ्जनः३, रिष्ट.४। इति।

"पभंजणस्से"–त्यादि – प्रभञ्जनस्य=तदाख्यस्यौदीच्यवायुकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः ते यथा–कालः१, महाकालः, रिष्टः३, अञ्जनः ४।इति।

"घोसस्से"—त्यादि–घोषस्य–तदाख्यस्य दाक्षिणात्य – स्तनितकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते यथा–आवर्तः १, व्यावर्तः २, नन्दिकावर्तः ३, महानन्दिकावर्तः ४।

हैं, अमितगतिके लोकपाल त्वरितगति–क्षिप्रगति–सिंहगति और सिंहविक्रमगति हैं तथा अमितवाहनके भी येही लोकपाल हैं केवल अन्तर इतनाही है–कि वहां जो सिंहविक्रमगति चौथा है वही यहां तीसरा लोकपाल हो जाता है और वहां जो तीसरा है वह यहां चौथा बन जाता है।

वेलम्ब और प्रभञ्जन ये दो इन्द्र वायुकुमारोंमें हैं। इनमें वेलम्ब दक्षिणार्धका और प्रभञ्जन उत्तरार्धका अधिपति हैं, वेलम्बके लोकपालोंमें काल १, महाकाल २, अञ्जन ३ और रिष्ट हैं। और प्रभञ्जनके भी येही लोकपाल हैं अन्तर इतनाही है कि वेलम्बका चौथा जो रिष्ट लोकपाल है वह अञ्जनका तीसरा है। घोष और महाघोष ये दो इन्द्र स्तनितकुमारोंमें हैं इनमें घोष दक्षिणार्धका और महाघोष उत्तरार्धका अधिपति हैं, घोषके लोकपालोंमें आवर्त–व्यावर्त–नन्दिकावर्त और महा-

---

ક્ષિપ્રગતિ, (૩) સિંહગતિ અને (૪)સિંહવિક્રમગતિ. અમિતવાહનના લોકપાલોના નામ પણ એવા જ છે પણ અહીં (૩) સિંહવિક્રમગતિ ને ત્રીજો સમજવો અને (૪) સિંહગતિ ને ચોથો સમજવો. વાયુકુમારોના બે ઇન્દ્રોનાં નામ વેલમ્બ અને પ્રભંજન છે. વેલમ્બ દક્ષિણાર્ધનો અધિપતિ છે અને પ્રભંજન ઉત્તરાર્ધનો અધિપતિ છે વેલમ્બના લોકપાલોનાં નામ--(૧) કાલ, (૨) મહાકાલ, (૩) અંજન અને (૪) રિષ્ટ છે. પ્રભંજનના લોકપાલોનાં નામ પણ કાલ, મહાકાલ, રિષ્ટ અને અંજન છે. અહીં ત્રીજા અને ચોથા લોકપાલનો ક્રમ ફરી ગયો છે

સ્તનિતકુમારોના બે ઇન્દ્રોનાં નામ ઘોષ અને મહાઘોષ છે. ઘોષ દક્ષિણાર્ધનો અધિપતિ છે અને મહાઘોષ ઉત્તરાર્ધનો અધિપતિ છે. ઘોષના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) આવર્ત, (૨) વ્યાવર્ત, (૩) નન્દિકાવર્ત

"महाघोसस्स"—त्यादि-महाघोषस्य = उदधिकुमारस्यौदीच्यस्तनितकुमारेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते यथा-आवर्तः १, व्यावर्तः २, महानन्दिकावर्तः ३, नन्दिकावर्तः ४। दशभवनपतीनां दक्षिणोत्तरभेदेन विंशतेरिन्द्राणामेते लोकपाला वर्णिताः।२०। इति।

"सक्कस्से"—त्यादि-शक्रस्य-सौधर्मेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः" ते यथा-सोमः १, यमः २, वरुणः ३, वैश्रवणः ४। एत एव लोकपालाः सनत्कुमार ब्रह्मलोकमहाशुक्रप्राणतेन्द्राणामपि बोध्याः। इति।

"ईसाणस्से"—त्यादि-ईशानस्य-द्वितीयदेवलोकेन्द्रस्य लोकपालाश्चत्वारः प्रज्ञप्ता ते यथा-सोमः १, यमः २, वैश्रवण ३, वरुण ४। इति।

नन्दिकावर्त हैं महाघोषके भी येही लोकपाल होते हैं केवल अन्तर यही है कि-घोषका तीसरा लोकपाल महाघोषका चौथा बन जाता है और महाघोषका चौथा लोकपाल घोषका तीसरा गिना जाता है। इस प्रकार १०-भवनपतियोंके २० बीस इन्द्रोंके-लोकपाल कह दिये गये, अब-शक्रादिके लोकपाल कहे जाते हैं-यह शक्र सौधर्मका इन्द्र है इसके लोकपाल चार कहे गये हैं जैसे—सोम १, यम २, वरुण ३, और वैश्रवण ४। येही लोकपाल तीसरे सनत्कुमारके, ५-वें ब्रह्मलोकके, ७-वें महाशुक्रके, और १०-दशवें प्राणतेन्द्रके भी लोकपाल होते हैं ऐसा जानना चाहिये। "ईसाणस्स"—इत्यादि। ईशान नामका जो द्वितीय देवलोकेन्द्र है, उसके लोकपाल चार कहे गये हैं, जैसे-सोम १, यम २, वैश्रवण ३, वरुण ४। "एवं एगतरिया"—इत्यादि।

અને (૪) મહાન દીકાવત મહાઘોષના લોકપાલોનાં નામ, પણ ઘોષના લોકપાલો જેવા જ છે પણ મહાઘોષના ત્રીજા અને ચોથા લોકપાલનાં નામ મહાનન્દીકાવર્ત અને નન્દિકાવર્ત છે આમ ત્રીજા અને ચોથાનો ક્રમ ફરી જાય છે.

આ રીતે દસ ભવનપતિઓનાં ૨૦ ઇન્દ્રોના લોકપાલોનું કથન કરીને હવે શક્રાદિના લોકપાલોનાં નામ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

શક્ર સૌધર્મકલ્પનો ઇન્દ્ર છે. તેના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) સોમ, (૨) યમ, (૩) વરુણ અને (૪) વૈશ્રવણ.

ત્રીજા સનત્કુમારના, પાંચમાં બ્રહ્મલોકના, સાતમાં મહાશુક્રના અને ૧૦ માં પ્રાણતેન્દ્રના લોકપાલોના નામ પણ શક્રના લોકપાલો જેવા જ છે. ઈશાન નામના બીજા દેવલોકના ઈશાનેન્દ્ર નામના ઇન્દ્રના ચાર લોકપાલોનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) સોમ, યમ, (૩) વૈશ્રવણ અને (૪ વરુણ.

" एवं एगंतरिया " इत्यादि—एकान्तरिताः-अन्तरं-व्यवधानं, तज्जात-मेषा-मित्यन्तरिताः, एकेनान्तरिता एकान्तरिताः=एकव्यवहिता लोकपालाश्चत्वारश्चत्वारो ' यावद् अच्युतस्य '-अच्युतपर्यन्तानां=शक्रेशानातिरिक्तानां सनत्कुमारादारभ्याच्युतपर्यन्तानामष्टानामिन्द्राणां शक्रेशानयोः प्रत्येकं यथाक्रमात् सोम-यम-वरुण-वैश्रवणाः सोम-यम-वैश्रवण-वरुणा उक्तास्तथा प्रत्येकं बोध्याः, अर्थाद्यथा शक्रस्य तथेशानमन्तरीकृत्य सनत्कुमारस्य, यथेशानस्य तथा सनत्कुमारमन्तरीकृत्य माहेन्द्रस्य, एवमेकैकमन्तरीकृत्य शक्रेशानवदच्युतपर्यन्तेन्द्राणां चत्वारश्चत्वारो लोकपाला बोध्याः, तथा च-शक्रवत्-सनत्कुमार ब्रह्म-महाशुक्र प्राणतेन्द्रा-

शक्र—और ईशानसे अतिरिक्त सनत्कुमारसे लेकर अच्युत पर्यन्त आठ इन्द्रोंके, और शक्र, एवं-ईशानके प्रत्येकका, जैसे-क्रमसे सोम, यम, वरुण और वैश्रवण। सोम, यम, वैश्रवण और वरुण ये लोकपाल कहे गये हैं वैसेही प्रत्येकके लोकपालों को जानना चाहिये। तात्पर्य इस कथनका ऐसा है कि-शक्र के जो लोकपाल कहे गये हैं वेही लोकपाल ईशानको अन्तरित करके सनत्कुमारके हैं ऐसा कहना चाहिये। तथा-जैसे लोकपाल ईशानके कहे गये हैं वैसेही लोकपालको 'अन्तरित करके माहेन्द्रके हैं ऐसे कहे गये हैं। इस तरह एक एकको अन्तरित करके शक्र और ईशानके जैसे अच्युत पर्यन्त इन्द्रोंके चार-२ लोकपाल जानना चाहिये। तथाच—शक्रके सदृश सनत्कुमार, ब्रह्म, महाशुक्र, और प्राणत इन इन्द्रोंके लोकपाल हैं। और ईशान सदृश माहेन्द्र,

" एवं एगतरिया " ईत्यादि—

શક્ર અને ઈશાન સિવાયના સનત્કુમારથી લઈને અચ્યુત પર્યન્તના આઠ ઈન્દ્રોના લોકપાલોનાં નામો અનુક્રમે શક્ર અને 'ઈશાનના લોકપાલનાં નામો પ્રમાણે સમજવા એટલે કે ત્રીજાના (સનત્કુમારના) ચાર લોકપાલોનાં નામ સોમ, યમ, વરુણ અને વૈશ્રવણ છે, માહેન્દ્ર (ચોથા દેવલોકનો ઈન્દ્ર) ના લોકપાલો સોમ, યમ, વૈશ્રવણ અને વરુણ છે આ રીતે એક એક દેવલોકને અન્તરિત કરીને જો લોકપાલોનાં નામો આપવામાં આવે, તો તે નામો સરખાં આવે છે જેમકે શક્રની જેમ સનત્કુમાર, બ્રહ્મ, મહાશુક્ર અને પ્રાણત, આ ચાર દેવલોકના ઈન્દ્રોના લોકપાલોનાં નામ સોમ, યમ, વરુણ અને વૈશ્રવણ છે. અને માહેન્દ્ર, લાન્તક, સહસ્રાર અને અચ્યુતના ઈન્દ્રોના લોકપાલોનાં નામ

पाम्, ईशानेन्द्र-माहेन्द्र लान्तक सहस्रारच्युतेन्द्राणां लोकपाला भवन्तीति एवमुन्नेयम् ।

“ चउव्विहा वाउकुमारा ” इत्यादि—वायुकुमाराश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कालः १, महाकाल २ वेलम्ब ३, प्रभञ्जन ४। एते पातालकलशस्वामिनः सन्तीति।

“ चउव्विहा देवा ” इत्यादि—देवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-भवनवासिनः १, वानव्यन्तराः २ ज्योतिष्काः ३, विमानवासिनः ४। इति सू० १९।

पूर्वं देवानां संख्या भेदा उक्तास्तेषां प्रमाणमिति प्रसङ्गात् प्रमाण-स्वरूपं निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउव्विहे पमाणे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वप्पमाणे १, खेत्तप्पमाणे २, कालप्पमाणे ३, भावप्पमाणे ४। सू० २०।

लान्तक, सहस्रार और अच्युत इन इन्द्रोंके लोकपाल हैं ऐसा निष्कर्ष समझना चाहिये।

“ चउव्विहा वाउकुमारा ” इत्यादि—वायुकुमार जो चार प्रकारके कहे गये हैं जैसे—काल १, महाकाल २, वेलम्ब ३ और प्रभञ्जन ४, सो ये सब वायुकुमार पातालकलशोंके स्वामी हैं। भवनवासी आदिक देवोंके जो चार भेद कहे गये हैं, वे स्पष्ट हैं ॥ सू० १९ ॥

पहले जो देवोंकी संख्या कही गई है वह संख्याही प्रमाणरूप होती है। अतः इसी प्रसङ्गको लेकर सूत्रकार प्रमाणके स्वरूपका निरूपण करते हैं। “ चउव्विहे पमाणे पण्णत्ते ” इत्यादि—

[illegible]

“ ચઉવ્વિહા વાઉકુમારા ” ઇત્યાદિ –

વાયુકુમારોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) કાલ (૨) મહાકાલ, (૩) વેલંબ અને (૪) પ્રભંજન. [illegible]

[illegible] ॥ સૂ. ૧૯ ॥

[illegible] “ ચઉવ્વિહે પમાણે પણ્ણત્તે ” ઇત્યાદિ—

छाया—चतुर्विधं प्रमाणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-द्रव्यप्रमाणं १, क्षेत्रप्रमाणं २, कालप्रमाणं ३, भावप्रमाणम् ४। सू० २०।

टीका—"चउव्विहे पमाणे" इत्यादि-प्रमाणं-प्रमितिः प्रमाणम्, यद्वा-प्रमीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेति प्रमाणं, तच्चतुर्विधं-चतुष्प्रकारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-द्रव्यप्रमाणं, क्षेत्रप्रमाणं, कालप्रमाणं, भावप्रमाणम्। तत्र द्रव्यप्रमाणम्-द्रव्यमेव प्रमाणं द्रव्यप्रमाणम्, यद्वा-द्रव्येण दण्डादिना प्रमाणं परिच्छेद इति, यथा दण्डादिना द्रव्येण धनुरादिना वा शरीरादे प्रमाणं क्रियते, यद्वा-द्रव्यस्य जीवादेः प्रमाणम्, यद्वा-परमाण्वादौ द्रव्ये पर्यायाणां प्रमाणम्-द्रव्यप्रमाणाम्, तत्र द्रव्य प्रमाणं द्विविधं-प्रदेशनिष्पन्नं १, विभागनिष्पन्नं २ च, तत्राऽऽद्यं-परमाण्वाद्य-

---

सूत्रार्थ-प्रमाण चार प्रकारका कहा गयाहै, जैसे-द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भावप्रमाण।

टीकार्थ — प्रमिति (जानना) का नाम प्रमाण है अथवा-जिसके द्वारा जाना जाता है वह प्रमाण है। यह प्रमाण द्रव्य आदिके भेदसे जो चार प्रकारका कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है कि द्रव्यरूप जो प्रमाण है वह द्रव्यप्रमाण है अथवा-दण्डादि द्रव्यसे जो परिच्छेद होता है वह द्रव्यप्रमाण है जैसे दण्ड आदि द्रव्यसे, अथवा धनुष आदिसे शरीरका माप किया जाता है, अथवा-जीवादि द्रव्यका जो प्रमाण है वह द्रव्यप्रमाण है। अथवा-परमाणु आदिमें पर्यायोंके प्रमाण है वह द्रव्यप्रमाण है। प्रदेश निष्पन्न और विभाग निष्पन्नके भेदसे द्रव्यप्रमाण दो प्रकारका कहा गया है। परमाणुसे लेकर अनन्त प्रदेशवाले द्रव्य तकका जो प्रमाण है वह प्रदेश निष्पन्न द्रव्य प्रमाण है।

સૂત્રાર્થ-પ્રમાણુના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે, તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) દ્રવ્યપ્રમાણુ, (૨) ક્ષેત્રપ્રમાણુ, (૩) કાલપ્રમાણુ અને (૪) ભાવપ્રમાણુ

ટીકાર્થ-પ્રમિતિને પ્રમાણુ કહે છે 'પ્રમિતિ' એટલે જાણવું તે. જેના દ્વારા જાણી શકાય છે, તે પ્રમાણુ છે હવે તેના ચાર ભેદોનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે-દ્રવ્યરૂપ જે પ્રમાણુ છે તેને દ્રવ્યપ્રમાણુ કહે છે. અથવા દંડાદિ દ્રવ્યથી (પદાર્થથી) જે પરિચ્છેદ (જ્ઞાન-જાનકારી) થાય છે તેનુ નામ દ્રવ્ય પ્રમાણુ છે જેમકે-દંડ આદિ દ્રવ્યથી અથવા ધનુષ આદિથી શરીર આદિનુ માપ જાણી શકાય છે, તે માપ દ્રવ્યપ્રમાણુ રૂપ ગણાય છે. અથવા-જીવાદિ દ્રવ્યનું જે પ્રમાણુ છે, તે દ્રવ્યપ્રમાણુ છે અથવા પરમાણુ આદિમાં પર્યાયોનું જે પ્રમાણુ છે તે દ્રવ્યપ્રમાણુ છે પ્રદેશનિષ્પન્ન અને વિભાગ નિષ્પન્નના ભેદથી દ્રવ્યપ્રમાણુ બે પ્રકારનું કહ્યું છે. પરમાણુથી લઇને અનન્ત પર્યન્તના પ્રદેશવાળા દ્રવ્યનુ જે

न्नवप्रदेशिकान्त १, द्वितीयं पञ्चविध-मानोन्माना ऽवमान गणित प्रतिमानभेदात्, तत्र मानं-धान्यादिमान सेटिकादिरूपम् १, उन्मान-तुला कर्षादिकम् २, अव-मान-हस्तवितस्त्यादिकम् ३, गणितम्-एकादिकम् ४, प्रतिमान-गुञ्जादिकम् ५। इति द्रव्यप्रमाणम्। १।

" क्षेत्रप्रमाणम् "—क्षेत्रस्य=आकाशस्य प्रमाणं क्षेत्रप्रमाणम्, तच्च द्विविधं-प्रदेशनिष्पन्न १, विभागनिष्पन्न २ च, तत्र प्रदेशनिष्पन्नम्-एकप्रदेशावगाढाद-सङ्ख्येयप्रदेशावगाढान्तम् १, विभागनिष्पन्नम् - अङ्गुल्यादिकम् २। इति क्षेत्रप्रमाणम्। २।

विभाग निष्पन्न द्रव्य प्रमाण पांच प्रकारका है, मान उन्मान, अवमान, गणित और प्रतिमान " सेर "-आदि मापनरूपसे यह धान्य इतना है इस प्रकार निर्णायक प्रमाण होता है। तुला-कर्ष आदि उन्मान होता है। हस्त-वितस्ति आदिक अवमान होता है। एक दो आदि संख्या गणित होता है। गुंजा-(करजनी) आदि प्रतिमान होता है, इस प्रकारसे यह द्रव्यप्रमाण है—१

आकाशका जो माप (दूर तकका हिसाब) है वह क्षेत्रप्रमाण है। यह क्षेत्रप्रमाणभी प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्नके भेदसे दो प्रकारका है एक प्रदेशावगाढसे लेकर असंख्यात प्रदेशावगाढ तक जो क्षेत्र है वह प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण है। अङ्गुली आदि जो प्रमाण है वह विभागनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण है।

પ્રમાણ છે, તેનું નામ પ્રદેશ નિષ્પન્ન દ્રવ્યપ્રમાણ છે વિભાગ નિષ્પન્ન દ્રવ્ય પ્રમાણના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર છે-માન ઉમાન અવમાન, ગણિત અને પ્રતિમાન. શેર આદિ માનરૂપ દ્રવ્યપ્રમાણ છે તેની મદદથી 'આ ધાન્ય આટલું છે" આ પ્રકારનું નિર્ણાયક પ્રમાણ નીકળે છે. તુલા-કર્ષ આદિ ઉમાન રૂપ હોય છે હસ્ત, મુઠ્ઠી આદિ રૂપ અવમાન હોય છે એક બે આદિ સંખ્યા રૂપ ગણિત હોય છે ગુંજા (કરજની) આદિ રૂપ પ્રતિમાન હોય છે આકાશનું જે માપ (દૂર સુધીનો હિસાબ) છે તેને ક્ષેત્રપ્રમાણ કહે છે તે ક્ષેત્રપ્રમાણના પણ પ્રદેશ નિષ્પન્ન અને વિભાગ નિષ્પન્ન નામના બે ભેદ પડે છે એક પ્રદેશાવગાઢથી લઈને અસંખ્યાત પ્રદેશાવગાઢ પર્યન્તનું જે ક્ષેત્ર છે તેને પ્રદેશ નિષ્પન્ન ક્ષેત્રપ્રમાણ કહે છે અંગુલી (આંગળી) આદિ જે પ્રમાણ છે તેને વિભાગ નિષ્પન્ન ક્ષેત્રપ્રમાણ કહે છે

"कालप्रमाणम्"—कालस्य - समयस्य प्रमाण-मानं कालप्रमाणम्, तद्द्विविधं-प्रदेशनिष्पन्नं १ विभागनिष्पन्नं २ च, तत्राऽऽद्यम्-एकसमयस्थित्याद्यसंख्येयसमयस्थित्यन्तम् १, द्वितीयं-समयावलिकादिकम् ।

ननु द्रव्यप्रमाणमेवोच्यतां द्रव्यत्वेन क्षेत्र-कालयोरपि ग्रहणसम्भवेन तत्प्रमाणयोरप्यत्रैवान्तर्भावात् पृथक् तदुपन्यासो व्यर्थ इति चेदुच्यते-जीवादिद्रव्यविशेषकत्वेन क्षेत्र-कालयोस्तत्पर्यायत्वेन द्रव्यात् क्षेत्र-कालयोर्विशिष्टताऽस्तीति द्रव्यत्वेनैकत्वेऽपि पर्यायत्वेन तयोर्भेदं सूचयितुं क्षेत्रकालयोः प्रमाणे पृथगुपन्यस्ते । ३ । इति कालप्रमाणम् । ३ ।

समयका जो प्रमाण है वह कालप्रमाण है, यह कालप्रमाणभी दो प्रकारका है । एक प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण और दूसरा विभागनिष्पन्न कालप्रमाण है, इनमें-एक समयकी स्थितिसे लेकर जो असंख्यात समय तककी स्थिति है वह प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण है। तथा-समय आवलिका आदिक जो प्रमाण है वह विभागनिष्पन्न कालप्रमाण है ।

शङ्का—केवल एक द्रव्यप्रमाणही कहना चाहिये-२ क्योंकि-द्रव्यत्व रूपसे क्षेत्र और काल इनकाभी ग्रहण होही जायगा तो फिर इनका प्रमाणभी यहाँ पर अन्तर्भूत हो जायगा । अतः-पृथक्रूपसे इनका उपन्यास व्यर्थ है—३

उ०—क्षेत्र और काल जीवादि द्रव्योंके विशेषक होनेसे उनके पर्याय रूप होते हैं, अतः—द्रव्यसे क्षेत्रकालमें विशिष्टता है, इसलीये

સમયનું જે પ્રમાણ છે તેને કાળપ્રમાણ કહે છે તે કાળપ્રમાણ પણ બે પ્રકારનું છે-(૧) પ્રદેશ નિષ્પન્ન કાળપ્રમાણ અને (૨) વિભાગ નિષ્પન્ન કાળ પ્રમાણ. એક સમયની સ્થિતિથી લઈને જે અસંખ્યાત સમય પર્યન્તની સ્થિતિ હોય છે તેને પ્રદેશ નિષ્પન્ન કાળપ્રમાણ કહે છે તથા સમય, આવલિકા આદિ રૂપ જે કાળપ્રમાણ છે તેને વિભાગ નિષ્પન્ન કાળપ્રમાણ કહે છે.

શંકા—પ્રમાણના ચર પ્રકાર કહેવાની શી જરૂર છે માત્ર દ્રવ્યપ્રમાણ રૂપ એક જ પ્રમાણ કહેવું જોઈએ, કારણ કે દ્રવ્યત્વરૂપે ક્ષેત્ર અને કાળ પણ ગ્રહણ થઈ જાય છે, તેથી તેમનું પ્રમાણ પણ દ્રવ્યપ્રમાણમાં જ અન્તર્ભૂત થઈ જવું જોઈએ. છતાં અહીં અલગ અલગ પ્રકાર રૂપે તેમની પ્રરૂપણા શા માટે કરવામાં આવી છે?

ઉત્તર—ક્ષેત્ર અને કાળ જીવાદિ દ્રવ્યોના વિશેષક હોવાથી તેમની પર્યાય રૂપ હોય છે. તેથી દ્રવ્ય કરતાં ક્ષેત્ર અને કાળમાં વિશિષ્ટતા છે. તે કારણે

नन्तप्रदेशिकान्त १, द्वितीयं पञ्चविध-मानोन्मानाऽवमान गणित प्रतिमानभेदात्, तत्र मान-धान्यादिमान सेटिकादिरूपम् १, उन्मान-तुला कर्षादिकम् २, अवमान-हस्तवितस्त्यादिकम् ३, गणितम्-एकादिकम् ४, प्रतिमान-गुञ्जावल्लादिकम् ५। इति द्रव्यप्रमाणम्। १।

"क्षेत्रप्रमाणम्"—क्षेत्रस्य=आकाशस्य प्रमाणं क्षेत्रप्रमाणम्, तच्च द्विविधं-प्रदेशनिष्पन्नं १, विभागनिष्पन्न २ च, तत्र प्रदेशनिष्पन्नम्-एकप्रदेशावगाढाद् असंख्येयप्रदेशावगाढान्तम् १, विभागनिष्पन्नम् - अङ्गुल्यादिकम् २। इति क्षेत्रप्रमाणम्। २।

विभाग निष्पन्न द्रव्य प्रमाण पांच प्रकारका है, मान, उन्मान, अवमान, गणित और प्रतिमान "सेर"-आदि मापनरूपसे यह धान्य इतना है इस प्रकार निर्णायक प्रमाण होता है। तुला-कर्ष आदि उन्मान होता है। हस्त-वितस्ति आदिक अवमान होता है। एक दो आदि संख्या गणित होता है। गुंजा-(करजनी) आदि प्रतिमान होता है, इस प्रकारसे यह द्रव्यप्रमाण है—१

आकाशका जो माप (दूर तकका हिसाब) है वह क्षेत्रप्रमाण है। यह क्षेत्रप्रमाणभी प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्नके भेदसे दो प्रकारका है एक प्रदेशावगाढसे लेकर असंख्यात प्रदेशावगाढ तक जो क्षेत्र है वह प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण है। अङ्गुली आदि जो प्रमाण है वह विभागनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण है।

પ્રમાણ છે, તેનુ નામ પ્રદેશ નિષ્પન્ન દ્રવ્યપ્રમાણ છે વિભાગ નિષ્પન્ન દ્રવ્ય પ્રમાણના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર છે-માન, ઉન્માન, અવમાન, ગણિત અને પ્રતિમાન. શેર આદિ માનરૂપ દ્રવ્યપ્રમાણ છે, તેની મદદથી "આ ધાન્ય આટલું છે," આ પ્રકારનું નિર્ણાયક પ્રમાણ નીકળે છે તુલા-કર્ષ આદિ ઉન્માન રૂપ હોય છે હસ્ત, મુઠ્ઠી આદિ રૂપ અવમાન હોય છે. એક બે આદિ સંખ્યા રૂપ ગણિત હોય છે ગુંજા (કરજની) આદિ રૂપ પ્રતિમાન હોય છે. આકાશનું જે માપ (દૂર સુધીનો હિસાબ) છે તેને ક્ષેત્રપ્રમાણ કહે છે તે ક્ષેત્રપ્રમાણના પણ પ્રદેશ નિષ્પન્ન અને વિભાગ નિષ્પન્ન નામના બે ભેદ પડે છે એક પ્રદેશાવગાઢથી લઈને અસંખ્યાત પ્રદેશાવગાઢ પર્યન્તનું જે ક્ષેત્ર છે તેને પ્રદેશ નિષ્પન્ન ક્ષેત્રપ્રમાણ કહે છે અંગુલી (આંગળી) આદિ જે પ્રમાણ છે તેને વિભાગ નિષ્પન્ન ક્ષેત્રપ્રમાણ કહે છે

विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-चित्ता १, चित्त-कणगा २, सतेरा ३, सोत्तामणी ४। । सू० २१ ॥

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो मज्झिमपरिसाए देवाणं चत्तारि-पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । ईसाणस्स णं देविंदस्स देव-रन्नो मज्झिमपरिसाए देवीणं चत्तारिपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ सू० २२ ॥

चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा-दव्वसंसारे १, खेत्त-संसारे २, कालसंसारे ३, भावसंसारे ४ । सू० २३ ।

छाया—चतस्रो दिक्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-रूपा १, रूपांशा २, सुरूपा ३, रूपावती ४! चतस्रो विद्युत्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-चित्रा १, चित्रकनका २, शतेरा ३, सौत्रामणिः ४ । सू० २१ ।

शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यमपरिषदि देवानां चतुः-पल्योपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता । ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यमपरिषदि देवीनां चतुःपल्योपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता । सू० २२ ।

देवाधिकारको लेकर ही अब सूत्रकार दिक्कुमारि महत्तरिकाओंका निरूपण इस चार सूत्रोंसे करते हैं ।

" चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ " इत्यादि—

सूत्रार्थ-दिक्कुमारि महत्तरिकाएं चार प्रकारकी कही गईहैं। जैसे-रूपा १, रूपांशा २, सुरूपा ३ और रूपावती ४ । (२१) विद्युत्कुमारी महत्तरि-काएं चार प्रकारकी कही गई हैं । जैसे-चित्रा १, चित्रकनका २ शतेरा ३, और सौत्रामणि ४, । देवेन्द्र देवराज शक्रकी मध्यम परिषदामें देवोंकी

દેવાધિકારની અપેક્ષાએ હવે સૂત્રકાર દિક્કુમારી મહત્તરિકાઓનું નિરૂપણ આ ચાર સૂત્રો દ્વારા કરે છે—" चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ पण्ण-त्ताओ " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–દિક્કુમારિ મહત્તરિકાઓ ચાર પ્રકારની કહી છે-(૧) રૂપા, (૨) રૂપાંશા (૩) સુરૂપા અને (૪) રૂપાવતી વિદ્યુત્કુમારી મહત્તરિકાઓ પણ નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકારની કહી છે-(૧) ચિત્રા, (૨) ચિત્રકનકા, (૩) શતેરા અને (૪) સૌત્રામણિ. દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રની મધ્યમ પરિષદામાં દેવોની ચાર પલ્યોપમની

"भावप्रमाणम्"—भाव एव भावानां वा प्रमाणं भावप्रमाणम्, तच्च त्रिविधं-गुण-नय-सङ्ख्याभेदात्, तत्र गुणा -जीवस्य ज्ञान दर्शन-चारित्राणि, तत्र ज्ञानं-प्रत्यक्षा ऽनुमानो-पमाना-ऽऽगमरूप प्रमाणमिति, दर्शनं-तत्त्वश्रद्धानम्, चारित्रं-सावद्यविरतिरूपम्, नयाश्च-नैगमादयः, सङ्ख्या-एकद्वित्रिचतुरादिकेति भावप्रमाणम् ।४। सू० २० ।

देवाधिकारादेवेदं दिक्कुमारीमहत्तरिका निरूपकसूत्रचतुष्टयमाह—

मूलम्—चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-रूया १, रूयंसा २, सुरूवा ३, रूयावई ४। चत्तारि

द्रव्यत्वकी अपेक्षा एक होने पर भी पर्यायकी अपेक्षा उन दोनोंमें द्रव्यमें और पर्यायमें भेद होता है इस बातकी सूचनाके निमित्त क्षेत्र और काल (ये दोनों) पृथक् पृथक् प्रमाण कहे गये हैं।

भावरूप जो प्रमाण है वह, अथवा भावोंका जो प्रमाण है वह भाव प्रमाण है। यह भावप्रमाण तीन प्रकारका कहा गया है। गुण-नय और संख्या, इनमें गुणरूप भावप्रमाण जीवके ज्ञान-दर्शन और चारित्र हैं, प्रत्यक्ष अनुमान आगम और उपमान ये ज्ञानरूप भावप्रमाण हैं। तत्त्वोंका श्रद्धान करना यह दर्शनरूप भावप्रमाण है। सावद्य कार्योंसे विरति होना यह चारित्ररूप भावप्रमाण है। नैगमादि जो नय हैं वे नयरूप भावप्रमाण हैं। एक-दो आदि जो संख्या है वह संख्यारूप भावप्रमाण है। इस प्रकारसे यह प्रमाणका निरूपण किया ॥ सू० २०॥

દ્રવ્યની અપેક્ષાએ એક હોવા છતાં પણ પર્યાયની અપેક્ષાએ તે બન્નેમાં (દ્રવ્યમાં અને પર્યાયમાં) ભેદ હોય છે આ વાતને પ્રકટ કરવા નિમિત્તે ક્ષેત્ર અને કાળ (એ બન્ને) ને પૃથક્ પૃથક્ (જુદાં જુદાં) પ્રમાણ કહ્યાં છે ભાવરૂપ જે પ્રમાણ છે તેને અથવા ભાવોનુ જે પ્રમાણ છે તેને ભાવપ્રમાણ કહે છે તે ભાવપ્રમાણ ત્રણ પ્રકારનુ કહ્યું છે—(૧) ગુણ, (૨) નય અને (૩) સંખ્યા જીવના જ્ઞાન દર્શન અને ચારિત્ર એ ગુણરૂપ ભાવપ્રમાણ છે પ્રત્યક્ષ અનુમાન, આગમ અને ઉપમાન તે જ્ઞાનરૂપ ભાવપ્રમાણ છે તત્ત્વો પ્રત્યે શ્રદ્ધા રાખવી તે દર્શનરૂપ ભાવપ્રમાણ છે અને સાવદ્ય કાર્યોમાંથી વિરતિ થવી તેનું નામ ચારિત્રરૂપ ભાવપ્રમાણ છે નૈગમ આદિ જે નય છે તે નયરૂપ ભાવ પ્રમાણ છે એક બે આદિ જે સંખ્યા છે તે સંખ્યારૂપ ભાવપ્રમાણ છે. આ રીતે અહીં પ્રમાણનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે ॥ સૂ ૨૦ ॥

विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-चित्ता १, चित्त-कणगा २, सतेरा ३, सोत्तामणी ४। सू० २१ ॥

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो मज्झिमपरिसाए देवाणं चत्तारि-पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरन्नो मज्झिमपरिसाए देवीणं चत्तारिपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ सू० २२ ॥

चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा-दव्वसंसारे १, खेत्त-संसारे २, कालसंसारे ३, भावसंसारे ४। सू० २३।

छाया—चतस्रो दिक्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-रूपा १, रूपांशा २, सुरूपा ३, रूपावती ४। चतस्रो विद्युत्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-चित्रा १, चित्रकनका २, शतेरा ३, सौत्रामणिः ४। सू० २१।

शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यमपरिषदि देवानां चतुः-पल्योपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता। ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यमपरिषदि देवीनां चतुःपल्योपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता। सू० २२।

देवाधिकारको लेकर ही अब सूत्रकार दिक्कुमारि महत्तरिकाओंका निरूपण इस चार सूत्रोंसे करते हैं।

"चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ" इत्यादि—

सूत्रार्थ-दिक्कुमारि महत्तरिकाएं चार प्रकारकी कही गई हैं। जैसे-रूपा १, रूपांशा २, सुरूपा ३ और रूपावती ४। (२१) विद्युत्कुमारी महत्तरि-काएं चार प्रकारकी कही गई हैं। जैसे-चित्रा १, चित्रकनका २ शतेरा ३, और सौत्रामणि ४,। देवेन्द्र देवराज शक्रकी मध्यम परिषदामें देवोंकी

દેવાધિકારની અપેક્ષાએ હવે સૂત્રકાર દિક્કુમારી મહત્તરિકાઓનું નિરૂપણ આ ચાર સૂત્રો દ્વારા કરે છે—"चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ पण्ण-त्ताओ" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-દિક્કુમારિ મહત્તરિકાઓ ચાર પ્રકારની કહી છે-(૧) રૂપા, (૨) રૂપાંશા (૩) સુરૂપા અને (૪) રૂપાવતી વિદ્યુત્કુમારી મહત્તરિકાઓ પણ નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકારની કહી છે-(૧) ચિત્રા, (૨) ચિત્રકનકા, (૩) શતેરા અને (૪) સૌત્રામણિ. દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રની મધ્યમ પરિષદામાં દેવોની ચાર પલ્યોપમની

चतुर्विधः संसारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यसंसारः १, क्षेत्रसंसारः २, कालसंसारः ३, भावसंसारः ४ । सू० २३ ।

टीका—" चत्तारि दिसा० " इत्यादि—चतस्रः दिक्कुमारीमहत्तरिकाः–दिशां कुमार्यो दिक्कुमार्यस्तासु याः महत्तरिकाः=प्रधानतमाः–दिक्कुमारी महत्तरिकाः, यद्वा दिक्कुमारीणां महत्तरिका दिक्कुमारीमहत्तरिकाः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–रूपा १, रूपांशा २, सुरूपा ३, रूपावती ४। एताश्चतस्रो मध्यरुचकवास्तव्या अर्हतोजातमात्रस्य नालकर्तनादिकं कुर्वन्तीति ।

" चत्तारि विज्जु० " इत्यादि–चतस्रो विद्युत्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–चित्रा १, चित्रकनका २, शतेरा ३, सौत्रामणिः ४। एताश्चतस्रो विदिग्रुचकनिवासिन्यो भगवतः श्रीमतोऽर्हतो जातमात्रस्य चतसृष्वपि दिक्षु स्थिता दीपिकाहस्ता गायन्तीति । सू० २१ ।

चार पल्योपमकी स्थिति कही गई हैं । देवेन्द्र देवराज ईशानकी मध्यम परिषदामें देवियोंकी चार पल्योपमकी स्थिति कही गई है (२२) संसार चार प्रकारका कहा गया है, जैसे–द्रव्यसंसार १, क्षेत्रसंसार २, कालसंसार ३ और भावसंसार ४ (२३)

टीकार्थ — दिशाओंकी जो कुमारिकाएं हैं वे दिक्कुमारिका हैं, ये प्रधानतम होनेसे महत्तरिका कही गई हैं । यद्वा-दिक्कुमारियोंकी जो महत्तरिकाएं वे दिक्कुमारी महत्तरिका हैं। इनके नाम रूपा–१, रूपांशा–२ आदि हैं । ये चारों रुचकद्वीपके मध्यमें रहती हैं । जब अर्हन्त उत्पन्न होते हैं तब वे उनके नाल आदिको काटनेका काम करती हैं । चित्रा–१ चित्रकनका आदिके भेदसे जो चार विद्युत्कुमारिकाएं कही गई हैं । ये रुचकद्वीपकी विदिशाओंमें रहती हैं ।

સ્થિતિ કહી છે દેવેન્દ્ર દેવરાજ ઇશાનની મધ્યમ પરિષદમાં દેવીઓની ચાર પલ્યોપમની સ્થિતિ કહી છે ॥ સૂ. ૨૧-૨૨ ॥

સંસાર ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧) દ્રવ્યસંસાર, (૨) ક્ષેત્રસંસાર (૩) કાલસંસાર અને (૪) ભાવસંસાર ॥ સૂ. ૨૩ ॥

સૂત્ર ૨૧ અને ૨૨ નો વિશેષાર્થ—દિશાકુમારીઓને દિક્કુમારીઓ કહે છે તેઓ પ્રધાનતમ હોવાથી તેમને મહત્તરિકાઓ કહી છે અથવા દિક્કુમારીઓની જે મહત્તરિકાઓ છે તેમને દિક્કુમારી મહત્તરિકાઓ કહે છે તેમનાં નામ રૂપા રૂપાંશા, સુરૂપા અને રૂપાવતી છે તે ચારે રુચકદ્વીપની મધ્યમાં રહે છે જ્યારે અર્હન્ત ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તેમની નાલ વગેરે કાપવાનુ કામ તેઓ કરે છે ચિત્રા, ચિત્રકનકા આદિના ભેદથી જે ચાર વિદ્યુત્કુમારિકાઓ કહી છે, તેઓ રુચકદ્વીપની વિદિશાઓમાં રહે છે જ્યારે અર્હન્ત પ્રભુનો

"सक्कस्से"-त्यादि—शक्रेशानयोः सूत्रद्वयं सुगमम् । सू० २२ ।

देवाश्च संसारिण इति संसारसूत्रमाह—"चउव्विहे संसारे" इत्यादि-
संसरणं-परिभ्रमणं संसारः, स चतुर्विधः—द्रव्यसंसारः १, क्षेत्रसंसारः २, काल-
संसारः ३, भावसंसारः ४। तत्र द्रव्याणां जीवपुद्गललक्षणानां संसारः-परिभ्रमणं
द्रव्यसंसार: १। क्षेत्रसंसारः-चतुर्दशरज्ज्वात्मकः, यद्वा-यत्र क्षेत्रे संसारो व्याख्या-
यते तदेव क्षेत्रं क्षेत्ररूपाधिकरण संसाररूपाधेययो (क्षेत्र-संसारयो) रभेदोपचा
रात् संसारशब्देन व्यवह्रियते २।

जब अर्हन्त प्रभुका जन्म होता है तब ये चारों दिशाओंमें खडी होकर भगवानके पास हाथोंमें दीप लिये गीतोंको गाती हैं ॥ सू० २१ ॥

शक्र और ईशान सम्बन्धी सूत्र सुगम सुबोध हैं। देव संसारी होते हैं, अतः—इसी बातको लेकर सूत्रकारने यह संसारसूत्र कहा है। परिभ्रमणका नाम संसार हैं। यह संसार द्रव्यसंसार आदिके भेदसे जो चार प्रकारका कहा गया है-उसका अभिप्राय है कि जीव और पुद्गलोंके पारस्परिक सम्बन्धका नाम संसार है। जीव जब पुद्गलके सम्बन्धरूप बन्धनसे मुक्त हो जाता है तब वह मुक्त जीव कहा जाता है। अथवा-पुद्गलरूप कर्मके सम्बन्धसे जो जीवका चार गतियोंमें परिभ्रमण होता है वह संसार है। १४ राजू प्रमाण जो क्षेत्र है वह क्षेत्र संसार है, अथवा-जिस क्षेत्रमें संसार परिभ्रमण व्याख्यात होता है वह क्षेत्र संसार है। यहां क्षेत्ररूप अधिकरण और संसाररूप आधेयमें अभेदोपचारसे क्षेत्रको संसार शब्दसे व्यवहृत किया गया है।

જન્મ થાય છે, ત્યારે આ ચારે વિદ્યુત્કુમારીઓ હાથમાં દીપક લઈને ગીતો ગાતી ગાતી ભગવાનની પાસે ઊભી રહે છે ॥ સૂ. ૨૧ ॥

શક્ર અને ઈશાન સબંધી સૂત્ર સુગમ હોવાથી અહીં તેનો વિશેષાર્થ આપ્યો નથી. દેવ સસારી હોય છે, આ સંબધને અનુલક્ષીને સૂત્રકારે આ સંસારસૂત્રનુ કથન કર્યું છે. પરિભ્રમણનું નામ સંસાર છે, તેના દ્રવ્યસંસાર આદિ જે ચાર ભેદ કહ્યા છે, તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

જીવ અને પુદ્ગલોના પારસ્પરિક સબંધનું નામ સંસાર છે. જીવ જ્યારે પુદ્ગલોના સબંધ રૂપ બન્ધનમાથી મુક્ત થઈ જાય છે ત્યારે તેને મુક્ત જીવ કહેવાય છે. અથવા પુદ્ગલરૂપ કર્મના સબંધથી જીવને ચાર ગતિઓમાં જે ભ્રમણ કરવું પડે છે તેનુ નામ સંસાર છે. ૧૪ રાજૂપ્રમાણ જે ક્ષેત્ર છે તેને ક્ષેત્રસંસાર કહે છે. અથવા જે ક્ષેત્રમા સસાર પરિભ્રમણ વ્યાખ્યાત થાય છે તે ક્ષેત્રનું નામ ક્ષેત્રસસાર છે અહીં ક્ષેત્રરૂપ અધિકરણ અને સંસારરૂપ આધેયમાં અભેદોપચારની અપેક્ષાએ ક્ષેત્રને સ સાર શબ્દથી વ્યવહૃત કરવામાં આવેલ છે.

चतुर्विधः संसारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यसंसारः १, क्षेत्रसंसारः २, कालसंसारः ३, भावसंसारः ४ । सू० २१ ।

टीका—" चत्तारि दिसा० " इत्यादि—चतस्र, दिक्कुमारीमहत्तरिकाः–दिशां कुमार्यो दिक्कुमार्यस्ताश्च ताः महत्तरिका=प्रधानतमा–दिक्कुमारी महत्तरिकाः, यद्वा दिक्कुमारीणां महत्तरिका दिक्कुमारीमहत्तरिकाः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–रूपा १, रूपांशा २, सुरूपा ३, रूपावती ४। एताश्चतस्रो मध्यरुचकवास्तव्या अर्हतोजातमात्रस्य नालकर्त्तनादिकं कुर्वन्तीति ।

" चत्तारि विज्जु० " इत्यादि—चतस्रो विद्युत्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–चित्रा १, चित्रकनका २, शतेरा ३, सौत्रामणिः ४। एताश्चतस्रो विदिग्रुचकनिवासिन्यो भगवतः श्रीमतोऽर्हतो जातमात्रस्य चतसृष्वपि दिक्षु स्थिता दीपिकाहस्ता गायन्तीति । सू० २१ ।

चार पल्योपमकी स्थिति कही गई हैं । देवेन्द्र देवराज ईशानकी मध्यम परिषदामें देवियोंकी चार पल्योपमकी स्थिति कही गई है (२२) संसार चार प्रकारका कहा गया है, जैसे–द्रव्यसंसार १, क्षेत्रसंसार २, कालसंसार ३ और भावसंसार ४ (२१)

टीकार्थ — दिशाओंकी जो कुमारिकाएं हैं वे दिक्कुमारिका हैं, ये प्रधानतम होनेसे महत्तरिका कही गई हैं । यद्वा–दिक्कुमारियोंकी जो महत्तरिकाएं वे दिक्कुमारी महत्तरिका हैं। इनके नाम रूपा–१, रूपांशा–२ आदि हैं। ये चारों रुचकद्वीपके मध्यमें रहती हैं। जब अर्हन्त उत्पन्न होते हैं तब ये उनके नाल आदिको काटनेका काम करती हैं। चित्रा–१ चित्रकनका आदिके भेदसे जो चार विद्युत्कुमारिकाएं कही गई हैं। ये रुचकद्वीपकी विदिशाओंमें रहती है ।

સ્થિતિ કહી છે દેવેન્દ્ર દેવરાજ ઇશાનની મધ્યમ પરિષદામાં દેવીઓની ચાર પલ્યોપમની સ્થિતિ કહી છે ॥ સૂ. ૨૧–૨૨ ॥

સંસાર ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧) દ્રવ્યસંસાર, (૨) ક્ષેત્રસંસાર (૩) કાલસંસાર અને (૪) ભાવસંસાર ॥ સૂ. ૨૩ ॥

સૂત્ર ૨૧ અને ૨૨ નો વિશેષાર્થ—દિશાકુમારીઓને દિક્કુમારીઓ કહે છે તેઓ પ્રધાનતમ હોવાથી તેમને મહત્તરિકાઓ કહી છે અથવા દિક્કુમારીઓની જે મહત્તરિકાઓ છે તેમને દિક્કુમારી મહત્તરિકાઓ કહે છે તેમનાં નામ રૂપા, રૂપાંશા, સુરૂપા અને રૂપાવતી છે તે ચારે રુચકદ્વીપની મધ્યમાં રહે છે જ્યારે અહન્ત ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તેમની નાલ વગેરે કાપવાનું કામ તેઓ કરે છે ચિત્રા, ચિત્રકનકા આદિના ભેદથી જે ચાર વિદ્યુત્કુમારિકાઓ કહી છે, તેઓ રુચકદ્વીપની વિદિશાઓમાં રહે છે. જ્યારે અહન્ત પ્રભુનો

"सक्कस्से"-त्यादि—शक्रेशानयोः सूत्रद्वयं सुगमम् । सू० २२ ।

देवाश्च संसारिण इति संसारसूत्रमाह—"चउव्विहे संसारे" इत्यादि-
संसरणं-परिभ्रमणं संसारः, स चतुर्विधः—द्रव्यसंसारः १, क्षेत्रसंसारः २, काल-
संसारः ३, भावसंसारः ४। तत्र द्रव्याणां जीवपुद्गललक्षणानां संसारः-परिभ्रमणं
द्रव्यसंसारः १। क्षेत्रसंसारः-चतुर्दशरज्ज्वात्मकः, यद्वा-यत्र क्षेत्रे संसारो व्याख्या-
यते तदेव क्षेत्रं क्षेत्ररूपाधिकरण संसाररूपाधेययो (क्षेत्र-संसारयो) रभेदोपचा-
रात् संसारशब्देन व्यवह्रियते २।

जब अर्हन्त प्रभुका जन्म होता है तब ये चारों दिशाओंमें खडी होकर भगवानके पास हाथोंमें दीप लिये गीतोंको गाती हैं ॥ सू० २१ ॥

शक्र और ईशान सम्बन्धी सूत्र सुगम सुबोध हैं। देव संसारी होते हैं, अतः—इसी बातको लेकर सूत्रकारने यह संसारसूत्र कहा है। परिभ्रमणका नाम संसार हैं। यह संसार द्रव्यसंसार आदिके भेदसे जो चार प्रकारका कहा गया है-इसका अभिप्राय है कि जीव और पुद्गलोंके पारस्परिक सम्बन्धका नाम संसार है। जीव जब पुद्गलके सम्बन्धरूप बन्धनसे मुक्त हो जाता है तब वह मुक्त जीव कहा जाता है। अथवा-पुद्गलरूप कर्मके सम्बन्धसे जो जीवका चार गतियोंमें परिभ्रमण होता है वह संसार है। १४ राजू प्रमाण जो क्षेत्र है वह क्षेत्र संसार है, अथवा-जिस क्षेत्रमें संसार परिभ्रमण व्याख्यात होता है वह क्षेत्र संसार है। यहां क्षेत्ररूप अधिकरण और संसाररूप आधेयमें अभेदोपचारसे क्षेत्रको संसार शब्दसे व्यवहृत किया गया है।

જન્મ થાય છે, ત્યારે આ ચારે વિદ્યુત્કુમારીઓ હાથમાં દીપક લઈને ગીતો ગાતી ગાતી ભગવાનની પાસે ઊભી રહે છે. ॥ સૂ. ૨૧ ॥

શક્ર અને ઇશાન સબંધી સૂત્ર સુગમ હોવાથી અહીં તેનો વિશેષાર્થ આપ્યો નથી. દેવ સંસારી હોય છે, આ સંબંધને અનુલક્ષીને સૂત્રકારે આ સંસારસૂત્રનું કથન કર્યું છે. પરિભ્રમણનું નામ સંસાર છે, તેના દ્રવ્યસંસાર આદિ જે ચાર ભેદ કહ્યા છે, તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

જીવ અને પુદ્ગલોના પારસ્પરિક સંબંધનું નામ સંસાર છે. જીવ જ્યારે પુદ્ગલોના સંબંધ રૂપ બન્ધનમાંથી મુક્ત થઈ જાય છે ત્યારે તેને મુક્ત જીવ કહેવાય છે. અથવા પુદ્ગલરૂપ કર્મના સંબંધથી જીવને ચાર ગતિઓમાં જે ભ્રમણ કરવું પડે છે તેનું નામ સંસાર છે. ૧૪ રાજૂપ્રમાણ જે ક્ષેત્ર છે તેને ક્ષેત્રસંસાર કહે છે. અથવા જે ક્ષેત્રમાં સંસાર પરિભ્રમણ વ્યાખ્યાત થાય છે તે ક્ષેત્રનું નામ ક્ષેત્રસંસાર છે. અહીં ક્ષેત્રરૂપ અધિકરણ અને સંસારરૂપ આધેયમાં અભેદોપચારની અપેક્ષાએ ક્ષેત્રને સંસાર શબ્દથી વ્યવહૃત કરવામાં આવેલ છે.

'कालसंसारः'—कालस्य-समयावलिकादिलक्षणस्य संसारः-चक्रन्यायेन परिभ्रमणं, पल्योपमादिकालविशेषविशेषितं वा यद् भ्रमणं कस्यापि जीवस्य नरकादिषु स कालसंसारः, यद्वा—यस्मिन् पौरुष्यादिके काले संसारो व्याख्यायते स कोलोऽपि संसार उच्यते, अभेदात् ३।

'भावसंसार'-भावानामौदयिकादीनां वर्णादीनां वा संसारः-संसरणपरिणामो भावसंसार इति। सू० २३।

पूर्वं द्रव्यादि संसार उक्तः, स चानेकनयैर्दृष्टिवादे विविच्यत इति दृष्टिवादं सभेदं निरूपयितुमाह —

मूलम्—चउव्विहे दिट्ठिवाए पण्णत्ते, तं जहा-परिकम्मं १, सुत्ताइं २, पुव्वगए ३, अणुजोगे ४। सू० २४।

छाया—चतुर्विधो दृष्टिवादः प्रज्ञप्तः तद्यथा-परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोग ४ ॥ सू० २४ ॥

समयावलिकादि रूप कालका जो चक्र न्यायसे परिभ्रमण है वह कालसंसार है। अथवा-नरकादिकोंमें किसी जीवका पल्योपम आदि रूपकाल विशेष से विशेषित जो परिभ्रमण है वह-संसार है। अथवा-जिस पौरुषी आदिक कालमें संसार व्यवहार होता है वह कालभीअभेद उपचारसे काल कहा गया है। औदयिक (औदायिक) आदि भावोंका अथवा वर्णादि रूप गुणोंका जो परिभ्रमणरूप परिणमन है वह भावसंसार है ॥ सू० २३॥

कथित द्रव्यादि संसार अनेक नयोंसे दृष्टिवाद में विचलित हुआ है-अतः अब सूत्रकार भेद सहित उसी दृष्टिवादका निरूपण करते हैं

"चउव्विहे दिट्ठिवाए पण्णत्ते" इत्यादि—

સમય, આવલિકા આદિ રૂપ કાળનું જે ચક્ર ન્યાયથી પરિભ્રમણ છે, તે કાળસંસાર છે, અથવા નરકાદિકોમાં કોઇ જીવનું પલ્યોપમ આદિ કાળવિશેષ યુક્ત જે પરિભ્રમણ છે, તેનું નામ કાળસંસાર છે અથવા જે પ્રહર આદિ કાળથી સંસાર-વ્યવહાર ચાલે છે, તે કાળને પણ અભેદોપચારથી કાળસંસાર કહ્યો છે ઔદયિક આદિ ભાવોનું અથવા વર્ણાદિ રૂપ ગુણોનું જે પરિભ્રમણરૂપ પરિણમન છે, તે ભાવસંસાર છે. ॥ સૂ ૨૩ ॥

પહેલાના સૂત્રમાં દ્રવ્યાદિ સંસારનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, તે સંસારની અનેક નયો દ્વારા દૃષ્ટિવાદમાં વિચારણા થઇ છે, તેથી હવે સૂત્રકાર દૃષ્ટિવાદનું ભેદોસહિત નિરૂપણ કરે છે—"ચઉવ્વિહે દિટ્ઠિવાએ પણ્ણત્તે" ઇત્યાદિ—

टीका—" चउव्विहे दिट्ठिवाए " इत्यादि—दृष्टिवादः-दृष्टयो दर्शनानि-नैगमादयो नयाः, तानि उद्यन्ते-उच्यन्तेऽत्रेति दृष्टिवादः। यद्वा 'दृष्टिपात' इतिच्छाया, तत्पक्षे दर्शनानि पतन्ति-अवतरन्ति यत्रेति दृष्टिपातो-द्वादशमङ्गम्, स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-" परिकर्म "-सूत्रादिग्रहणयोग्यतासम्पादनसमर्थं कर्म परिकर्म कथ्यते, गणितादिकर्मवत्, तच्च सिद्धश्रेणिकादि।

" सूत्राणि "—ऋजुसूत्रप्रभृतीनि द्वाविंशतिः, इह सर्वद्रव्यपर्यायनयाद्यर्थ-सूचनात्सूत्राणि कथ्यन्ते।

" पूर्वगतम् "-तत्र पूर्वाणि-सर्वश्रुतात्पूर्वं क्रियमाणत्वात्पूर्वाणि, तानि चोत्पादप्रभृतीनि चतुर्दश, तत्र गतं-प्रविष्टं यत् श्रुतं तत् पूर्वगतम्, पूर्वगतशब्देन

सूत्रार्थ-दृष्टिवाद चार प्रकारका कहा गया है। जैसे-परिकर्म १, सूत्र २, पूर्वगत ३ और अनुयोग ४।

टीकार्थ — नैगमादिनयोंका नाम दृष्टि है, इन दृष्टियोंका जिसमें वर्णन है वह-दृष्टिवाद है। अथवा-" दिट्ठिवाए " की संस्कृतच्छाया दृष्टिवाद है। इस पक्षमें दर्शनोंका जिसमें स्वरूप कथन हो ऐसा १२ वां सूत्र दृष्टिपात है। यह दृष्टिवाद परिकर्म आदिके भेदसे जो चार प्रकारका कहा गया है उन प्रत्येकका तात्पर्य ऐसा है-जो कर्म गणितादि कर्मकी तरह सूत्रादि ग्रहण करनेकी योग्यताका सम्पादन करनेमें समर्थ होता है वह परिकर्म है। यह परिकर्म सिद्धश्रेणिकादि रूप है। ऋजुसूत्र आदि २२-सूत्र है। ये २२ सूत्र सर्वद्रव्य, सर्वपर्याय, नय, आदिरूप अर्थका सूचन करते है इसलिये सूत्र कहे गये हैं। " पूर्वगत "-सर्वश्रुतके पूर्व किये गये होनेसे उत्पात आदि १४ पूर्वोंको

સૂત્રાર્થ-દૃષ્ટિવાદના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) પરિકર્મ, (૨) સૂત્ર (૩) પૂર્વગત અને (૪) અનુયોગ.

ટીકાર્થ — નૈગમાદિ નયોનું નામ દૃષ્ટિ છે. તે દૃષ્ટિઓનું જેમાં વર્ણન છે તે દૃષ્ટિવાદ છે અથવા " दिट्ठिवाए " આ પદની સંસ્કૃત છાયા 'દૃષ્ટિવાદ' છે આ દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો દર્શનોના સ્વરૂપનુ જેમાં કથન થયુ છે એવુ બારમું અંગ દૃષ્ટિવાદ છે. તે દૃષ્ટિવાદને પરિકર્મ આદિના ભેદથી જે ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે, તે પ્રકારોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામા આવે છે--જે કર્મ ગણિતાદિ કર્મની જેમ સૂત્રાદિ ગ્રહણ કરવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરાવવાને સમર્થ હોય છે, તે કર્મનું નામ પરિકર્મ છે. તે પરિકર્મ સિદ્ધશ્રેણિકાદિ રૂપ છે ઋજુ સૂત્ર આદિ ૨૨ સૂત્ર છે તે ૨૨ સૂત્ર સર્વદ્રવ્ય, સર્વપર્યાય, નય આદિ રૂપ અર્થનુ સૂચન કરે છે, તેથી તેમને સૂત્ર કહેવામા આવેલ છે. " પૂર્વગત " સર્વશ્રુત કરતાં પૂર્વે (પહેલાં) કરાયેલ

पूर्वाण्यभोच्यन्ते, पूर्वमभिहितत्वात्, यथा हस्तादावङ्गमविष्टमङ्गुल्यादिकमङ्गशब्देन व्यवह्रियते ३।

"अनुयोगः"-योजनं योग, अनुकूलोऽनुरूपो वा सूत्रस्य स्वकीयार्थेन सह योग"-सम्बन्ध इत्यनुयोग ४। एषां चतुर्णां विस्तरतो विवरण नन्दीसूत्रस्य मत्कृतायां ज्ञानचन्द्रिका टीकायामवलोकनीयमिति। सू० २४।

अनन्तर पूर्वगतमुक्तं, तत्र प्रायश्चित्तप्ररूपणासत्त्वात् प्रायश्चित्त सूत्रद्वयेन निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउव्विहे पायच्छित्ते, पण्णत्ते त जहा—णाणपायच्छित्ते १, दसण पायच्छित्ते २, चरित्तपायच्छित्ते ३, वियत्ताकिच्चपायच्छित्ते४।

चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—पडिसेवणा पाय च्छित्ते १, सजोयणापायच्छित्ते २, आरोवणापायच्छित्ते ३ पलि उचणापायच्छित्ते ४। सू० २५।

पूर्व कहा गया है। इस पूर्वमें जो श्रुत प्रविष्ट है वह श्रुत पूर्वश्रुत है। पूर्वगत शब्दसे पूर्वही कहे जाते हैं क्योंकि—समस्त श्रुत पूर्वमें प्रविष्ट है, जैसे—हस्त आदि अङ्गमें अङ्गुली आदि अङ्ग शब्दसे कहे जाते हैं ३। "अनुयोग" सूत्रका अपने अर्थके साथ जो अनुरूप या—अनुकूल सम्बन्ध है वह अनुयोग है। इन चारोंका विस्तारसे वर्णन (विवरण) नन्दी सूत्रकी ज्ञानचन्द्रिका टीकामें किया है सो वहांसे देख लेना चाहिये॥सू २४॥

अनन्तर उक्त पूर्वगतमें प्रायश्चित्तकी प्ररूपणाका सद्भाव होनेसे

(રચિત) કહેવાથી ઉત્પાદ આદિ ૧૪ પૂર્વોને પૂર્વ કહે છે તે પૂર્વમાં જે શ્રુત પ્રવિષ્ટ છે તે શ્રુતને પૂર્વશ્રુત કહે છે 'પૂર્વગત' પદથી 'પૂર્વ' જ ગૃહીત થાય છે, કારણ કે સમસ્ત શ્રુત પૂર્વમાં પ્રવિષ્ટ છે જેમ હસ્તાદિ અંગમાં આંગળી આદિ અંગનો સમાવેશ થઈ જાય છે—"હસ્ત" શબ્દથી આંગળી આદિ અંગો પણ ગ્રહણ થઈ જાય છે તેમ પૂર્વગત પદથી પૂર્વ જ ગૃહીત થાય છે "અનુયોગ"—સૂત્રનો પોતાના અર્થની સાથે જે અનુરૂપ અથવા અનુકૂળ સંબંધ છે તેનું નામ અનુયોગ છે આ ચારેનું સવિસ્તર વર્ણન નંદીસૂત્રની જ્ઞાનચન્દ્રિકા ટીકામાં કરવામાં આવ્યું છે, તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ ત્યાંથી તે વાંચી લેવું ॥ સૂ ૨૪ ॥

પહેલાના સૂત્રમાં જે પૂર્વગતની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી, તે પૂર્વગતમાં

छाया—चतुर्विधं प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–ज्ञानप्रायश्चित्तं १, दर्शनप्रायश्चित्तं २, चारित्रप्रायश्चित्तं ३, व्यक्तकृत्यप्रायश्चित्तम् ४।

चतुर्विधं प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–प्रतिसेवना प्रायश्चित्तं १, संयोजना प्रायश्चित्तम् २, आरोपणा प्रायश्चित्तं ३, परिकुञ्चना प्रायश्चित्तम् ४।। सू० २५ ॥

टीका—" चउव्विहे पायच्छित्ते " इत्यादि—प्रायश्चित्तं-प्रायः–पापं, तस्य चित्तं-विशोधनमिति प्रायश्चित्तम्, " प्रायः पापं विजानीयाच्चित्तं तस्य विशोधनमि "–त्युक्तेः, यद्वा–प्रायो बाहुल्येन चित्तमन्तःकरणं स्वेन रूपेण तिष्ठत्यस्मिन् सतीति प्रायश्चित्तम्–अनुष्ठानविशेषः, तच्चतुर्विधं–चतुष्प्रकारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–ज्ञान प्रायश्चित्तं–ज्ञानविषयकातिचारसंशोधनम्, एवं दर्शन–चारित्रयोरपि विज्ञेयम्,

अब सूत्रकार दो सूत्रोंसे प्रायश्चित्तका निरूपण करते हैं।

" चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते " इत्यादि—

सूत्रार्थ–प्रायश्चित्त चार प्रकारका कहा गया है, जैसे–ज्ञान प्रायश्चित्त १, दर्शन प्रायश्चित्त २, चारित्र प्रायश्चित्त ३ और व्यक्तकृत्य प्रायश्चित्त ४। इस तरहसे भी प्रायश्चित्त चार प्रकारका कहा गया है। जैसे प्रतिसेवना प्रायश्चित्त १, संयोजना प्रायश्चित्त २, आरोपणा प्रायश्चित्त ३, और प्रतिकुञ्चना प्रायश्चित्त ४। इस सूत्रका स्पष्टार्थ इस प्रकारसे है—प्रायः—नाम पापका है और पापका जो विशोधन है वह चित्त है, तथाच–पापका विशोधन जिससे होता है वह प्रायश्चित्त है। कहा भी है—" प्रायः पापं विजानीयात्–चित्तं तस्य विशोधनम् "। अथवा–प्रायः बाहुल्यसे अन्तःकरण अपने स्वरूपसे जिसके होनेपर ठहरता है वह

પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રરૂપણાનો સદ્‌ભાવ હોવાથી હવે સૂત્રકાર બે સૂત્રો દ્વારા પ્રાયશ્ચિત્તનું નિરૂપણ કરે છે–" चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–પ્રાયશ્ચિત્તના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) જ્ઞાનપ્રાયશ્ચિત્ત, (૨) દર્શન પ્રાયશ્ચિત્ત, (૩) ચારિત્ર પ્રાયશ્ચિત્ત અને (૪) વ્યક્તકૃત્ય પ્રાયશ્ચિત્ત. પ્રાયશ્ચિત્તના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ પડે છે—(૧) પ્રતિસેવના પ્રાયશ્ચિત્ત, (૨) સંયોજના પ્રાયશ્ચિત્ત (૩) આરોપણા પ્રાયશ્ચિત્ત અને (૪) પરિકુંચના પ્રાયશ્ચિત્ત

હવે આ સૂત્રનો ભાવાર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે–" प्राय. " એટલે 'પાપ' અને પાપના વિશોધનનું નામ 'ચિત્ત' છે પાપનું વિશોધન (શુદ્ધિ) જેના દ્વારા થાય છે તેનું નામ જ પ્રાયશ્ચિત્ત છે કહ્યુ પણ છે કે–" प्राय. पापं विजानीयात्–चित्तं तस्य विशोधनम् " અથવા "જેના સદ્‌ભાવને લીધે અંતઃકરણ પોતાના મૂળ સ્વરૂપમાં સામાન્યતઃ સ્થિર રહે છે તેનું નામ પ્રાયશ્ચિત્ત છે. તે

पूर्वाण्यपोच्यन्ते, पूर्वमनिष्टत्वात्, यथा हस्ताद्यङ्गप्रविष्टमङ्गुल्यादिकमङ्ग शब्देन व्यवह्रियते ३।

"अनुयोगः"–योजनं योगः, अनुरूपोऽनुकूलो वा सूत्रस्य स्वकीयार्थेन सह योगः=सम्बन्ध इत्यनुयोग ४। एषां चतुर्णां विस्तरतो विवरणं नन्दीसूत्रस्य मत्कृतायां ज्ञानचन्द्रिका टीकायामवलोकनीयमिति। सू० २४।

अनन्तरं पूर्वगतमुक्तं, तत्र प्रायश्चित्तप्ररूपणासत्त्वात् प्रायश्चित्त सूत्रद्वयेन निरूपयितुमाह—

मूलम्–चउव्विहे पायच्छित्ते, पण्णत्ते त जहा–णाणपायच्छित्ते १, दसण पायच्छित्ते २, चरित्तपायच्छित्ते ३, वियत्ताकिच्चपायच्छित्त४।

चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा–पडिसेवणा पाय च्छित्ते १, सजोयणापायच्छित्ते २, आरोवणापायच्छित्ते ३ पलि उंचणापायच्छित्ते ४। सू० २५।

पूर्व कहा गया है। इस पूर्वमें जो श्रुत प्रविष्ट है वह श्रुत पूर्वश्रुत है। पूर्वगत शब्दसे पूर्वही कहे जाते हैं क्योंकि–समस्त श्रुत पूर्वमें प्रविष्ट है, जैसे—हस्त आदि अङ्गमें अङ्गुली आदि अङ्ग शब्दसे कहे जाते हैं ३। "अनुयोग" सूत्रका अपने अर्थके साथ जो अनुरूप या–अनुकूल सम्बन्ध है वह अनुयोग है। इन चारोंका विस्तारसे वर्णन (विवरण) नन्दी सूत्रकी ज्ञानचन्द्रिका टीकामें किया है सो वहांसे देख लेना चाहिये ॥सू २४॥

अनन्तर उक्त पूर्वगतमें प्रायश्चित्तकी प्ररूपणाका सद्भाव होनेसे

(રચિત) હોવાથી ઉત્પાદ આદિ ૧૪ પૂર્વોને પૂર્વ કહે છે તે પૂર્વમાં જે શ્રુત પ્રવિષ્ટ છે તે શ્રુતને પૂર્વશ્રુત કહે છે 'પૂર્વગત' પદથી 'પૂર્વ' જ ગૃહીત થાય છે, કારણ કે સમસ્ત શ્રુત પૂર્વમાં પ્રવિષ્ટ છે જેમ હસ્તાદિ અંગમાં આંગળી આદિ અંગનો સમાવેશ થઈ જાય છે–"હસ્ત" શબ્દથી આંગળી આદિ અંગો પણ ગ્રહણ થઈ જાય છે તેમ પૂર્વગત પદથી પૂર્વ જ ગૃહીત થાય છે "અનુયોગ"–સૂત્રનો પોતાના અર્થની સાથે જે અનુરૂપ અથવા અનુકૂળ સંબંધ છે તેનું નામ અનુયોગ છે આ ચારેનું સવિસ્તર વર્ણન નન્દીસૂત્રની જ્ઞાનચન્દ્રિકા ટીકામાં કરવામાં આવ્યું છે, તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ ત્યાંથી તે વાંચી લેવું ॥ સૂ. ૨૪ ॥

પહેલાના સૂત્રમાં જે પૂર્વગતની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી, તે પૂર્વગતમાં

"आलोयण १-पडिक्कमणे २ मीस ३-विवेगे ४ तहा विउस्सग्गे ५।
तव ६-छेय ७ मूल ८ अणवट्ठप्पा ९, पारंचिए १० चेव ।१।"
छाया—आलोचनं १ प्रतिक्रमणं २ मिश्रं ३ विवेक ४ स्तथा व्युत्सर्गः ५।
तप ६-श्छेद ७ मूला ८-ऽनवस्थाप्याति ९ पाराञ्चित्तं १० चैव ।१।"
इति प्रतिसेवनाप्रायश्चित्तम् ।१।

"संयोजनाप्रायश्चित्तम्"—संयोजनं संयोजना, सा चैकजातीया-तिचार-मीलनं, यथा-शय्यातरपिण्डो गृहीतः, सोऽपि जलार्द्रहस्तादिना, सोऽप्यभ्याहृतः, सोऽप्याधाकर्मिकस्तत्र यत् प्रायश्चित्तं तत् संयोजनाप्रायश्चित्तम् ।२।

"आरोपणा प्रायश्चित्तम्"—आरोपणम्-एकापराधप्रायश्चित्ते पुनः पुनरा-सेवनेन विजातीयप्रायश्चित्तस्यारोपणमारोपणा, यथा पञ्चाहोरात्रप्रायश्चित्तं प्राप्तः

है। इस प्रतिसेवनाको दूर करनेके लिये शास्त्रीय प्रतिक्रियाको प्रतिसेवना प्रायश्चित्त कहा है। यह प्रायश्चित्त आलोचना आदिके भेदसे १० प्रकारका होता है। जैसे—"आलोयणपडिक्कमणे" इत्यादि। "संयोजना प्रायश्चित्त" एक जातीय अतिचारोंका मिलना इसका नाम-संयोजना है, जैसे-शय्यातरका पिण्ड लिया और वह भी जलार्द्र हस्तादिसे दिया गया हो, अभ्याहृत लिया वह भी-आधाकर्मिक, यहां जो प्रायश्चित्त है वह संयोजना प्रायश्चित्त है।

"आरोपणा प्रायश्चित्त"—एक अपराधके प्रायश्चित्तमें पुनः पुनः उसीके आसेवनसे विजातीय प्रायश्चित्तका अध्यारोपण करना इसका

તે પ્રાયશ્ચિત્તના આલોચના આદિ ૧૦ પ્રકાર છે. કહ્યું પણ છે કે—

"आलोयण पडिक्कमणे" ઇત્યાદિ.

સંયોજના પ્રાયશ્ચિત્ત—એક જાતીય અતિચારોનો સંયોગ થવો તેનું નામ સંયોજના છે. જેમકે શય્યાતરપિંડ ગ્રહણ કરવામાં આવે તો અતિચાર લાગે અને એજ શય્યાતરપિંડ ભીના હાથે અપાયો હોય તો તેથી પણ અતિચાર લાગે. અભ્યાહૃત પિંડ ગ્રહણ કરવામાં આવે અને તે પણ આધાકર્મ દોષયુક્ત હોય તો ત્યાં પણ એક જાતના અતિચારોનુ સંયોજન થયું ગણાય તેની વિશુદ્ધિ નિમિત્તે જે પ્રાયશ્ચિત્ત કરવામાં આવે છે, તેને સંયોજના પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે.

"આરોપણા પ્રાયશ્ચિત્ત" એક જ જાતના અપરાધનું વારંવાર આસેવન થવાથી વિજાતીય પ્રાયશ્ચિત્તનું અધ્યારોપણ કરવું તેનું નામ આરોપણા પ્રાયશ્ચિત્ત છે. એટલે કે દોષ માટે પહેલાં અમુક પ્રકારનુ પ્રાયશ્ચિત્ત આપવામાં આવે, અને ફરીથી એ જ દોષનું આસેવન કરવામાં આવે તો બીજી જાતનુ પ્રાયશ્ચિત્ત

" वियत्तकिच्चपायच्छित्त " इति—व्यक्तकृत्यप्रायश्चित्तं—व्यक्तकृत्य—व्यक्तस्य—भावतो गीतार्थस्य कृत्यं—करणीय व्यक्तकृत्यं, तदेव प्रायश्चित्तम्, गीतार्थो हि गुरुलाघवपर्यालोचनेन यत् किञ्चनप्रायश्चित्त ददाति तत्सर्वं पापविशोधकमेव भवतीति । ४ ।

पुनश्चतुर्विध प्रायश्चित्तमाह—" चउव्विहे " इत्यादि—चतुर्विध प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रतिसेवनाप्रायश्चित्तम्—प्रतिसेवन प्रतिसेवना—भकृत्यस्याऽऽसेवनमित्यर्थ, तस्या प्रायश्चित्त प्रतिसेवना प्रायश्चित्तं, तदालोचनादिक दशविधं तथाहि—

प्रायश्चित्त है । यह प्रायश्चित्त अनुष्ठान विशेषरूप होता है, इसे जो ज्ञानप्रायश्चित्त आदिके भेदसे चार प्रकारका कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है—ज्ञान सम्बन्धी अतिचारोंका सशोधन करना यह ज्ञान प्रायश्चित्त है । दर्शन सम्बन्धी अतिचारोंका सशोधन करना दर्शन प्रायश्चित्त है । तथा चारित्र सम्बन्धी अतिचारोंका सशोधन करना यह चारित्र प्रायश्चित्त है ।

" वियत्तकिच्चपायच्छित्तं " इत्यादि—

गीतार्थ गुरुलाघवकी पर्यालोचना कर जो कुछ प्रायश्चित्त देते हैं वह सब पाप विशोधकही होता है । ऐसा यह प्रायश्चित्त व्यक्तकृत्य प्रायश्चित्त है क्योंकि—व्यक्त नाम गीतार्थका है, इनके द्वारा जो करणीय होता है वह—कृत्य है । इस व्यक्तकृत्य रूप जो प्रायश्चित्त है वह व्यक्त कृत्य प्रायश्चित्त है । ४ अकृत्यका सेवन करना इनका नाम प्रतिसेवना

પ્રાયશ્ચિત્ત અનુષ્ઠાન વિશેષરૂપ હોય છે હવે તેના ચાર ભેદોનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—જ્ઞાન સબંધી અતિચારોનુ વિશોધન કરવું તેનુ નામ જ્ઞાન પ્રાયશ્ચિત્ત છે દર્શન સબંધી અતિચારોનુ વિશોધન કરવું તેનુ નામ દર્શનપ્રાયશ્ચિત્ત છે ચારિત્રવિષયક અતિચારોનુ વિશોધન કરવું તેનુ નામ ચારિત્ર પ્રાયશ્ચિત્ત છે

" વિયત્તકિચ્ચપાયચ્છિત્ત " ઇત્યાદિ—ગીતાર્થ ગુરુલાઘવની પર્યાલોચના કરીને જે કોઇ પ્રાયશ્ચિત્ત દે છે તે પાપવિશોધક જ હોય છે એવું તે પ્રાયશ્ચિત્ત વ્યક્તકૃત્ય પ્રાયશ્ચિત્ત છે કારણ કે વ્યક્ત નામ ગીતાર્થનુ છે તેમના દ્વારા જે કરણીય હોય છે તેનું નામ કૃત્ય છે આ વ્યક્તકૃત્ય રૂપ જે પ્રાયશ્ચિત્ત છે તેને વ્યક્તકૃત્ય પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે

અકૃત્યનું સેવન કરવું તેનું નામ પ્રતિસેવના છે તે પ્રતિસેવનાને દૂર કરવા માટેની જે શાસ્ત્રીય પ્રતિક્રિયા છે તેનું નામ પ્રતિસેવના પ્રાયશ્ચિત્ત છે

" दव्वे खेत्ते काले भावे पलिउंचणा चउवियप्पा " इति,

छाया—" द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे परिकुञ्चना चतुर्विकल्पा । " इति,

तथाहि—सच्चित्ते अचित्तं १ जणवयपडिसेवियं च अद्धाणे २।
सुभिक्खे य दुब्भिक्खे ३ हट्ठेण तहा गिलाणेणं ।१। " इति,

छाया—" सचित्तमचित्तं जनपदप्रतिसेवितं चाध्वनि ।
सुभिक्षे दुर्भिक्षे च हृष्टेन तथा ग्लानेन ।१। " इति,

सचित्तादि विषये मायाभिरचित्तादिरूपेण कथनम्, तस्याः प्रायश्चित्तं परिकुञ्चना प्रायश्चित्तम् ।४। सू० २५ ।

प्रायश्चित्तं च कालापेक्षया दीयत इति कालं निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउव्विहे काले पण्णत्ते, तं जहा--पमाणकाले १, अहाउयनिव्वत्तिकाले २, मरणकाले ३, अद्धाकाले ४। सू० २६।

छाया—चतुर्विधः कालः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रमाणकालः १, यथाऽऽयुष्कनिर्वृत्तिकालः २, मरणकालः ३, अद्धाकालः ४ । सू० २६ ।

माया है। कहा भी है—" दव्वे खेत्ते काले भावे " इत्यादि। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें जो परिकुञ्चना चार प्रकारकी कही गई है वह इस प्रकार है। " सच्चित्ते अचित्तं " इत्यादि। सचित्तादिके विषयमें मायाचारिसे अचित्तादि रूपसे कथन करना यह सब परिकुञ्चना है, इसका जो प्रायश्चित्त है वह परिकुञ्चना प्रायश्चित्त है ॥ सू० २५ ॥

कथित प्रायश्चित्त कालकी अपेक्षासे दिया जाता है। इस विषयको लेकर अब सूत्रकार कालकी प्ररूपणा करते हैं। " चउव्विहे काले पण्णत्ते " इत्यादि—

" પરિકુંચના પ્રાયશ્ચિત્ત " પરિકુંચન એટલે માયા. એટલે કે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવસંબંધી અપરાધોને છુપાવવા–જે અપરાધો કર્યા હોય તેમને અન્ય રૂપે પ્રકટ કરવા તેનું નામ માયા છે કહ્યું પણ છે કે " दव्वे खेत्ते काले भावे " ઈત્યાદિ–દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ પરિકુંચનાના જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે તેનુ સ્પષ્ટીકરણુ આ પ્રમાણે છે–" सच्चित्ते अचित्तं " ઈત્યાદિ–સચિત્તાદિના વિષયમાં માયાચારીથી અચિત્તાદિ રૂપે કથન કરવું તેનુ નામ પરિકુંચના છે. તેનું જે પ્રાયશ્ચિત્ત છે, તેને પરિકુંચના પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે. ॥ સૂ. ૨૫ ॥

પૂર્વોક્ત પ્રાયશ્ચિત્તકાળની અપેક્ષાએ આપવામાં આવે છે. આ સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર કાળની પ્રરૂપણા કરે છે—" चउव्विहे काले पण्णत्ते " ઈત્યાદિ.

पुनस्तत्सेवने दशाहोरात्रान्, पुन पञ्चदशाहोरात्रानेवं षण्मासीं यावत् प्रायश्चित्तं दातव्यं भवति, ततोऽधिक तपोदेय न भवति, महावीरशासने तपसः षण्मासान्त त्वादिति, उक्त च—

" पंचाईयारोवण, नेयव्वा जाव होंति छम्मासा ।
तेण परमासियाण छण्हुवरिं झोसणं कुज्जा ।१। " इति,

छाया—" पञ्चादिकारोपणा ज्ञातव्या यावत् भवन्ति षण्मासा ।
ततः परं मासानां षण्णामुपरि झोषणां कुर्यात् ।१। " इति,

तथा प्रायश्चित्तमारोपणाप्रायश्चित्तमिति ।३।

तथा—" परिकुञ्चनाप्रायश्चित्तम् "—परिकुञ्चनं परिकुञ्चना-माया, अप राधानां द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसम्बन्धिनां गोपनम्-अन्यथा विद्यमानानामन्यथा कथनम्, उक्तञ्च—

नाम आरोपणा है। जैसे कोई साधु पंच अहोरात्रका प्रायश्चित्त लेता है अब वह पुनः वह उसी दोषका आसेवन करने लगता है, तब वह उसको दश अहोरात्र प्रायश्चित्त ले लेता है। पुनः वह पन्द्रह दिनका प्रायश्चित्त ले लेता है ऐसे वह छह मास तकका प्रायश्चित्त लेता रहता है इसके बाद उसे तप नहीं दिया जाता है। क्योंकि महावीरके शासनमें तपकी अन्तिम सीमा छह मास तककी है। कहा भी है कि-" पंचाईयारोवण" इत्यादि। इस तरहकी अरोपणासे जो प्रायश्चित्त दिया जाय वह-आरो पणा प्रायश्चित्त है। तथा-" परिकुञ्चना प्रायश्चित्त "-परिकुञ्चन नाम मायाका है। अर्थात्—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सम्बन्धी अपराधोंका गोपन करना, किये गये अपराधोंको अन्यरूपसे कहना इसका नाम

આપવામાં આવે, તો તેનુ નામ આરોપણા પ્રાયશ્ચિત્ત સમજવું જેમકે કોઈ સાધુને અમુક દોષને માટે પાંચ દિનરાતનુ પ્રાયશ્ચિત્ત આપવામાં આવે છે. એ જ સાધુ બીજીવાર તે દોષનુ આસેવન કરે તો તેને દસ દિનરાતનુ પ્રાયશ્ચિત્ત આપવામાં આવે છે ત્રીજી વખત એ દોષનુ આસેવન કરવા માટે ૧૫ દિનરાતનુ પ્રાયશ્ચિત્ત અપાય છે. આ પ્રમાણે છ માસ સુધીનુ પ્રાયશ્ચિત્ત તે લઈ શકે છે ત્યારબાદ વધુ સમયનુ પ્રાયશ્ચિત્ત (પ્રાયશ્ચિત્ત નિમિત્તક તપ) તેને અપાતું નથી. કારણ કે મહાવીર પ્રભુના શાસનમાં તપની આ સીમ સીમા છ માસ સુધીની જ કહી છે કહ્યું પણ છે કે-' પંચાઇયારોવણ " ઇત્યાદિ. આ પ્રકારની આરોપણાથી જે પ્રાયશ્ચિત્ત દેવામાં આવે તેનુ નામ આરોપણા પ્રાયશ્ચિત્ત છે

यथाऽऽयुष्कनिर्वृत्तिकाल', यद्वा-यथाऽऽयुषो निर्वृत्तिस्तथा यः कालो नारकादि-भवेऽस्थानं स यथाऽऽयुष्कनिर्वृत्तिकालः, आयुष्कर्मानुभवविशिष्टः, सकलसंसारि जीवानां वर्तनादिरूप इति, उक्तं च—

" आउयमेत्तविसिट्ठो स एव जीवाण वत्तणादिमओ ।
भन्नइ अहाउकालो वत्तइ जो जच्चिरं जेणं ।१। " इति,

छाया—" आयुर्मात्रविशिष्टः स एव जीवानां वर्तनादिमयः ।
भण्यते यथाऽऽयुष्कालो वर्तते यो यच्चिरं येन ।१। " इति,

तथा-" मरणकालः "-मरणस्य-मृत्योः कालः-समयो मरणकालः, यद्वा-मरणविशिष्टः कालो मरणकालः । अथवा-मरणमेव कालो मरणकालः, मरणपर्यायत्वादिति, उक्तं च—

" कालोत्ति मयं मरणं जहेह मरणं गओत्ति कालगओ ।
तम्हा स कालकालो जो जस्स गओ मरणकालो ।१। "

छाया—" काल इति मतं मरणं यथेह मरणं गत इति कालगतः ।
तस्मात् स कालकालो यो यस्य गतो मरणकालः ।१। " इति,

यथायुष्क निर्वृतिकाल है । अथवा-जितनी जहांकी आयुका बन्ध जिस जीवको हुवा है उसीके प्रमाणमें उन नारकादि भवोंमें जीवोंका जो वहां अवस्थान है वह यथायुष्क निर्वृतिकाल है । तात्पर्य इस कथनका यह है कि जितनी जीस जीवने जिस पर्यायकी आयुका बन्ध किया है उस जीवका उतने समय तक उस पर्यायमें बने रहना यही यथायुष्क निर्वृत्तिकाल है । कहाभी है—" आउयमेत्तविसिट्ठो ' इत्यादि । " मरणकाल "-मृत्युका जो काल है वह मरणकाल है । अथवा मरण-रूप जो काल है वह मरणकाल है । कहाभी है-" कालोत्ति मयंमरणं "

જે સ્થિતિ છે, તેને યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિકાળ કહે છે અથવા-જે જીવે જે ગતિના જેટલા આયુનો બંધ કર્યો હોય તેટલા પ્રમાણમાં તે નારકાદિ ગતિમાં જીવનું જે અવસ્થાન થાય છે તે અવસ્થાન કાળને (તે ભવસબંધી આયુસ્થિતિને) યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિકાળ કહે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે— જીવે જે પર્યાયના જેટલા આયુનો બંધ કર્યો હોય, તે પર્યાયમાં એટલા સમય સુધી જીવને જે રહેવું પડે છે, તેનું નામ જ યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિકાળ છે. કહ્યું પણ છે કે-" आउयमेत्तविसिट्ठो " ઇત્યાદિ.

" મરણકાળ " મૃત્યુનો જે કાળ છે તેનું નામ મરણકાળ છે. અથવા મરણ-વિશિષ્ટ જે કાળ છે તે મરણકાળ છે અથવા મરણરૂપ જે કાળ છે તે મરણકાળ છે. કહ્યું પણ છે કે-" कालो त्ति मय मरणं " ઇત્યાદિ.

टीका–" चउव्विहे काले " इत्यादि–कालः–वर्तनालक्षण स, चतुर्विधः प्रज्ञप्तः तद्यथा –प्रमाणकालः – प्रमीयते–परिच्छिद्यतेऽनेन वर्षशतपल्योपमादिकमिति, प्रमाणं, तदेव काल प्रमाणकाल, स च दिवसादिलक्षणो मनुष्यक्षेत्रान्तर्वर्तीति, उक्तं च—

" दुविहो पमाणकालो, दिवसपमाणं च होइ राई य ।
चउपोरिसिओ दिवसो, राई चउपोरिसी चेव । १ । " इति,

छाया–" द्विविधः प्रमाणकालो दिवसप्रमाणो भवति रात्रिश्च ।
चतुष्पौरुषिको दिवसो रात्रिश्चतुष्पौरुषी चैव । १ । "

" यथाऽऽयुष्कनिर्वृत्तिकाल " यथा–यत्प्रकारं नारकादिभेदेनाऽऽयुष्कमंचि क्षेपो यथाऽऽयुः, तदेव यथाऽऽयुष्क, तस्य रौद्रादिध्यानादिना निर्वृत्तिः–च वर्न यथाऽऽयुष्कनिर्वृत्तिः, तस्या सकाशाद्यः कालो नारकादित्वन भोगानां स्थितिः स

सूत्रार्थ–काल चार प्रकारका कहा गया है, जैसे–प्रमाणकाल१, यथायुष्क निर्वृतिकाल २, मरणकाल ३ और अद्धाकाल ४ ।

टीकार्थ — कालका लक्षण वर्तना कहा है, कहामी है - " दव्वपरिवट्टरूवो " इत्यादि । वर्तना लक्षणवाला ऐसा काल चार प्रकारका कहा गया है, जैसे–प्रमाणकाल आदि। जिस कालसे वर्षशत पल्योपम आदिक जाना जाता है वह प्रमाणकाल है, यह प्रमाणकाल दिवस आदि रूप होता है और मनुष्यक्षेत्रवर्ती होता है । कहामी है–" दुविहो पमाणकालो " इत्यादि । यथायुष्क निर्वृति काल नारक आदि पर्यायोंकी जीतनी आयु है वह यथायुष्क है। रौद्रध्यान आदि द्वारा इस आयुका बांधना वह–यथायुष्क निर्वृति है। इस यथायुष्कके अनुसार जो नारकादि रूपसे जीवोंकी स्थिति है, वह

સૂત્રાર્થ–કાળ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે, તે ચાર પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—
(૧) પ્રમાણકાળ, (૨) યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિકાળ, (૩) મરણકાળ અને (૪) અદ્ધાકાળ.

ટીકાર્થ–કાળનું લક્ષણ "વર્તના" કહ્યું છે કહ્યું પણ છે કે–"દવ્વપરિવટ્ટરૂવો" ઇત્યાદિ વર્તના લક્ષણવાળા તે કાળના પ્રમાણકાળ આદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે જે કાળની મદદથી વર્ષશત, પલ્યોપમ આદિ જાણી શકાય છે તે કાળનું નામ પ્રમાણકાળ છે તે પ્રમાણકાળ દિવસ આદિ રૂપ હોય છે, અને મનુષ્ય ક્ષેત્રમાં જ તેનું અસ્તિત્વ હોય છે કહ્યું પણ છે કે- દુવિહો પમાણકાલો" ઇત્યાદિ.

' યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિકાળ "—નારક આદિ પર્યાયોનું જેટલું આયુષ્ય છે, તેટલા આયુષ્યનું નામ યથાયુષ્ક છે રૌદ્રધ્યાન આદિ દ્વારા તે આયુ બાંધવું તેનું નામ યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિ છે. આ યથાયુષ્ક અનુસાર નારકાદિ રૂપે જીવોની

यथाऽऽयुष्कनिर्वृत्तिकालः, यद्वा—यथाऽऽयुषो निर्वृत्तिस्तथा यः कालो नारकादि-भवेऽस्थानं स यथाऽऽयुष्कनिर्वृत्तिकालः, आयुष्कर्मानुभवविशिष्टः, सकलसंसारि जीवानां वर्तनादिरूप इति, उक्तं च—

" आउयमेत्तविसिट्ठो स एव जीवाण वत्तणादिमओ ।
भन्नइ अहाउकालो वत्तइ जो जच्चिरं जेणं ।१। " इति,

छाया—" आयुर्मात्रविशिष्टः स एव जीवानां वर्तनादिमयः ।
भण्यते यथाऽऽयुष्कालो वर्तते यो यच्चिरं येन ।१। " इति,

तथा—" मरणकालः "—मरणस्य—मृत्योः कालः—समयो मरणकालः, यद्वा—मरणविशिष्टः कालो मरणकालः । अथवा—मरणमेव कालो मरणकालः, मरणपर्यायत्वादिति, उक्तं च—

" कालोत्ति मयं मरणं जहेह मरणं गओत्ति कालगओ ।
तम्हा स कालकालो जो जस्स गओ मरणकालो ।१। "

छाया—" काल इति मतं मरणं यथेह मरणं गत इति कालगतः ।
तस्मात् स कालकालो यो यस्य गतो मरणकालः ।१। " इति,

यथायुष्क निर्वृतिकाल है । अथवा—जितनी जहांकी आयुका बन्ध जिस जीवको हुवा है उसीके प्रमाणमें उन नारकादि भवोंमें जीवोंका जो वहां अवस्थान है वह यथायुष्क निर्वृतिकाल है । तात्पर्य इस कथनका यह है कि जितनी जीस जीवने जिस पर्यायकी आयुका बन्ध किया है उस जीवका उतने समय तक उस पर्यायमें बने रहना यही यथायुष्क निर्वृत्तिकाल है । कहाभी है—" आउयमेत्तविसिट्ठो ' इत्यादि ।
" मरणकाल "—मृत्युका जो काल है वह मरणकाल है । अथवा मरण-रूप जो काल है वह मरणकाल है । कहाभी है—" कालोत्ति मयंमरणं "

જે સ્થિતિ છે, તેને યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિકાળ કહે છે અથવા—જે જીવે જે ગતિના જેટલા આયુનો બંધ કર્યો હોય તેટલા પ્રમાણમાં તે નારકાદિ ગતિમાં જીવનું જે અવસ્થાન થાય છે તે અવસ્થાન કાળને (તે ભવસબંધી આયુસ્થિતિને) યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિકાળ કહે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—જીવે જે પર્યાયના જેટલા આયુનો બંધ કર્યો હોય, તે પર્યાયમાં એટલા સમય સુધી જીવને જે રહેવું પડે છે, તેનું નામ જ યથાયુષ્ક નિર્વૃત્તિકાળ છે. કહ્યુ પણ છે કે—" आउयमेत्तविसिट्ठो " ઈત્યાદિ.

" મરણકાળ " મૃત્યુનો જે કાળ છે તેનુ નામ મરણકાળ છે. અથવા મરણ—વિશિષ્ટ જે કાળ છે તે મરણકાળ છે અથવા મરણરૂપ જે કાળ છે તે મરણકાળ છે. કહ્યુ પણ છે કે—" कालो त्ति मय मरणं " ઈત્યાદિ.

तथा—" अद्धाकाल " अद्धा-समयावलिकादि कालविशेषः, तद्रूप कालो-ऽद्धाकालः, कालो हि वर्णप्रमाणकालादिष्वपि वर्तते, तस्मात् सोऽद्धाशब्देन विशिष्यते। अयं च सूर्यक्रियाविशिष्टो मनुष्यक्षेत्रान्तर्वर्ती दिवसादिसमयरूपो ज्ञेयः। उक्तं च—

" सूरकिरियाविसिट्ठो गोदोहाइकिरियासु निरवेक्खो ।
अद्धाकालो भण्णइ समयक्खेत्तंमि समयाई ।१।
समयावलियमुहुत्ता दिवसमहोरत्तपक्खमासा य ।
संवच्छरजुगपलिया सागर ओसप्पिपरियट्टा ।२।"

छाया—" सूर्यक्रियाविशिष्टो गोदोहादिक्रियासु निरपेक्षः ।
अद्धाकालो भण्यते समयक्षेत्रे समयादिः ।१।
समयावलिकामुहूर्ताः दिवसाहोरात्र पक्षमासाश्च ।
संवत्सरयुगपल्याः सागरोत्सर्पिणीपरावर्ताः ।२।" इति,

सर्वोऽपि कालोऽद्धाकालविशेषएव, किन्त्वत्र चतुःस्थानानुरोधात् शिष्य बुद्धिवैशद्यार्थं वा चतुर्विधः प्रोक्तः ।

इति कालनिरूपणम् । (सू० २९)

इत्यादि । तथा-" अद्धाकाल " समय आवलिका आदिरूप जो काल है वह अद्धाकाल है। कालका विशेषण जो अद्धा रक्खा है वह वर्ण परि णाममें आगत कालरूप वर्णकी व्यावृत्तिके लिये रक्खा गया है। यह अद्धाकाल सूर्यकी क्रियासे जाना जाता है और ढाइ द्वीपमें ही इसका सद्भाव कहा गया है, यह दिवसादिरूप होता है। कहाभी है— " सूरकिरियाविसिट्ठो " इत्यादि । जितनाभी काल है वह अद्धाकाल विशेषरूप ही है, किन्तु-यहाँ चतुःस्थानके अनुरोधसे वा-शिष्य बुद्धिके वैशद्यके लिये उसे चार प्रकारका कहा गया है॥ सू० २९ ॥

" અદ્ધાકાલ "—સમય, આવલિકા આદિ રૂપ જે કાળ છે તેનું નામ અદ્ધાકાળ છે અહીં કાળનું વિશેષણ અદ્ધા રાખવાનું કારણ એ છે કે વર્ણ પરિણામમાં જે કાલરૂપ (કાળા) વર્ણ આવે છે તેની વ્યાવૃત્તિ (નિવારણ) ને નિમિત્તે આ વિશેષણ કાળ સાથે જોડવામાં આવ્યું છે આ અદ્ધાકાળ સૂર્યની ક્રિયાથી જાણી શકાય છે, અને અઢી દ્વીપમાં જ તેનો સદ્ભાવ હોય છે તે દિવસ આદિ રૂપ હોય છે કહ્યું પણ છે કે-' सूरकिरिया विसिट्ठो " ઈત્યાદિ. જેટલા કાળ છે તે અદ્ધાકાળ વિશેષરૂપ જ છે, પણ અહીં ચાર સ્થાનકોનો અધિકાર આવતો હોવાથી અથવા શિષ્યબુદ્ધિના વૈશદ્યને માટે તેને ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે ॥ સૂ ૨૯ ॥

पूर्वं द्रव्यपर्यायभूतस्य कालस्य चतुःस्थानकमुक्तम्, अधुना पर्यायाधिकारात् पुद्गलानां पर्यायभूतस्य परिणामस्य चतुःस्थानकमाह—

मूलम्—चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा--वन्नपरिणामे १, गन्धपरिणामे २, रसपरिणामे ३, फासपरिणामे ४॥सू०२७॥

छाया—चतुर्विधः पुद्गलपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—वर्णपरिणामः १, गन्धपरिणामः २, रसपरिणामः ३, स्पर्शपरिणामः ।४। ।सू० २७।

टीका—"चउव्विहे पोग्गल०" इत्यादि—पुद्गलपरिणामः—पुद्गलानां—पूरणगलनधर्माणां स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दमूर्तस्वभावकानां परिणामः—अवस्थातोऽवस्थान्तरगमनं पुद्गलपरिणामः, उक्तं च—

"परिणामो ह्यर्थान्तरगमनं न तु सर्वथा व्यवस्थानम् ।
न च सर्वथा विनाशः परिणामस्तद्विदामिष्टः ।१।" इति,

"इस प्रकारसे द्रव्य पर्यायरूप कालमें चतुःस्थानकता का कथन करके अब सूत्रकार पर्यायाधिकारको लेकर पुद्गलोंके पर्यायरूप परिणाम की चतुःस्थानकताका कथन करते हैं ।

"चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते" इत्यादि—

सूत्रार्थ—पुद्गल परिणाम चार प्रकारका कहा गया है। जैसे—वर्ण परिणाम१ गन्ध परिणाम २, रस परिणाम ३ और स्पर्श परिणाम ४ ।

टीकार्थ—पुद्गल—पूरण गलन स्वभाववाले होते हैं और—रूप, रस, और गन्ध, वर्ण एव स्पर्शवाले होते हैं । अतः—ये मूर्त कहे गये हैं। इनका एक अवस्थासे जो अवस्थान्तरमें गमन होना है वही परिणाम है। कहाभी है—"परिणामो ह्यर्थान्तर गमनम्" इत्यादि । पुद्गलपरिणाम चार प्रकारका जो कहा गया है उसका अभिप्राय ऐसा है ।

આ પ્રમાણે દ્રવ્યપર્યાયરૂપ કાળમા ચતુર્વિધતાનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર પર્યાયાધિકારના સંબંધને અનુલક્ષીને પુદ્ગલોના પર્યાયરૂપ પરિણામની ચતુર્વિધતાનું કથન કરે છે—'चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—પુદ્ગલ પરિણામ ચાર પ્રકારનું કહ્યુ છે (૧) વર્ણ પરિણામ, (૨) ગન્ધ પરિણામ, (૩) રસ પરિણામ અને (૪) સ્પર્શ પરિણામ

ટીકાર્થ—પુદ્ગલ પૂરણ અને ગલન સ્વભાવવાળાં હોય છે, અને રૂપ, રસ, ગન્ધ, વર્ણ અને સ્પર્શવાળા હોય છે, તેથી તેમને મૂર્ત કહેવામાં આવ્યાં છે. તેમનું એક અવસ્થામાથી બીજી અવસ્થામાં જે ગમન થાય છે, તેનું નામ જ પરિણામ છે કહ્યું પણ છે કે—"परिणामो ह्यर्थान्तरगमनम्" ઇત્યાદિ. હવે પુદ્ગલ પરિણામના જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે તેનુ સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે.

स चतुर्विध =चतुष्प्रकार, मज्ञप्त, तद्यथा–वर्णपरिणाम – वर्णस्य कालादेः परिणामः–अन्यथाभवन वर्णपरिणामः १। एव–गन्धपरिणाम –गन्धस्य–परिणामः–परिवर्तन सुरभेर्दुरभीभवनं, दुरभ सुरभीभवनमित्यर्थः ।२। " रसपरिणाम "–रसस्य–मधुरादिरूपस्य परिणाम'=कटुकादिरूपण परिणमन रसपरिणाम' ।३। " स्पर्शपरिणाम "–स्पर्शस्य–शीतादिरूपस्य परिणामः–उष्णादिरूपेण परिणमन स्पर्शपरिणामः १४। ॥ सू० २७ ॥

इति परिणामनिरूपणम् ।

पूर्वमजीवद्रव्यपरिणाम उक्तः, सम्प्रति तु जीव द्रव्यपरिणामान् निरूपयितुमाह–

सूत्रम्–भरहेरवएसु णं वासेसु पुरिमपच्छिमवज्जा मज्झिमगा बावीस अरहंता भगवंतो चाउज्जाम धम्म पण्णवेंति, त जहा–सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमण, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमण १। सव्वेसु णं महाविदेहेसु अरहंता भगवंतो चाउज्जाम धम्म पण्णवेंति, त जहा–सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण, जाव सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं ॥ सू० २८ ॥

कालादिकृत पांच प्रकारके वर्णोंका जो अन्यथा होजाना परिणाम है। यह–वर्णरूप परिणाम है, गन्ध गुणमें जो परिणमन है। जैसे—सुरभि गन्धका दुरभि गन्ध रूपसे परिणमन होना, दुरभि गन्धका सुरभि गन्ध रूपसे परिणमन होना। यह सब गन्ध और गुणका परिवर्तन गन्ध परिणमन है। मधुरादि रसोंका जो परिणमन है–जैसे मधुर रसका कटुक रसमें परिवर्तन हो जाना। कटुक रसका मधुर रसमें परिणमन आदि सब रस परिणाम है। तथा–शीतादि स्पर्शोंका जो उष्णादि रूपसे परिणमन होता है, वह स्पर्श परिणाम है ॥ सू० २७ ॥

કાળો આદિ પાંચ વર્ણ કાળા છે કેઈ વર્ણ જે વર્ણનું અન્ય વર્ણ રૂપે પરિણમન થઇ જવું તેનું નામ વર્ણરૂપ પરિણામ છે ગંધ ગુણના પરિણમનને ગંધ પરિણામ કહે છે જેમકે સુરભિગંધનું દુરભિગંધ (દુર્ગંધ) રૂપે અથવા દુરભિગંધનું સુરભિ ગંધ રૂપે પરિણમન થવું તેનું નામ ગંધ પરિણામ છે મધુરાદિ રસોનું કડવા આદિ રસ રૂપે પરિણમન થવું અથવા કટુક રસનું મધુરાદિ રસ રૂપે પરિણમન થવું તેનું નામ રસ પરિણામ છે શીતાદિ સ્પર્શોનું ઉષ્ણાદિ સ્પર્શ રૂપે પરિણમન થવું તેનું નામ સ્પર્શ પરિણામ છે ॥સૂ. ૨૭॥

छाया—भरतैरवतयोः खलु वर्षयोः पूर्वपश्चिमवर्जा मध्यमका द्वाविंशतिरर्हन्तो भगवन्तश्चातुर्याम धर्मं प्रज्ञापयन्ति, तद्यथा-सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणम्, सर्वस्मात् मृषावादाद् विरमणम्, सर्वस्माद् अदत्तादानाद् विरमणम्, सर्वस्माद् बहिर्द्धादानाद् विरमणम् १। सर्वेषु खलु महाविदेहेषु अर्हन्तो भगवन्तः चातुर्यामं धर्मं प्रज्ञापयन्ति, तद्यथा-सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणम्, यावत् सर्वस्माद् बहिर्द्धादानाद् विरमणम्। सू. २८ ॥

टीका—" भरहेरवएसु " इत्यादि-भरतैरवतयो=एतदाख्ययोः 'खलु' वाक्यालङ्कारे, वर्षयो=क्षेत्रयोर्मध्ये पूर्वपश्चिमवर्जाः-पूर्वपश्चिमवर्तिनौ विहाय मध्यमकाः-मध्ये भवा मध्यमास्त एव मध्यमका=मध्यवर्तिनः, द्वाविंशतिः=द्वाविंशतिसंख्यकाः अर्हन्तः=तीर्थङ्कराः, चातुर्यामं-यमाः-सावद्यविरतिलक्षणाः, त एव

अजीव द्रव्यका परिणाम कहकर अब सूत्रकार जीव द्रव्यके परिणामोंका कथन करते हैं—" भरहेरवएसुणं वासेसु पुरिमपच्छिमवज्जा " इत्यादि—

सूत्रार्थ-भरत-ऐरवत क्षेत्रमें पूर्व-पश्चिमके तीर्थंकरोंको छोडकर बीचके २२तीर्थङ्करोंने चातुर्याम धर्मकी प्रज्ञापना की है। वह चातुर्याम धर्म इस प्रकारसे है-समस्त प्राणातिपातसे विरमण-१, समस्त मृषावादसे विरमण-२, समस्त अदत्तादानसे विरमण-३, एव-धर्मोपकरणके सिवाय समस्त परिग्रहसे विरमण-४। समस्त महाविदेहोंमें अर्हन्त-भगवन्तोंने जो चातुर्याम धर्मकी प्रज्ञापना की है वह चातुर्याम धर्म पूर्वोक्त समस्त प्राणातिपात आदिसे विरमण रूपही है।

टीकार्थ—यहां-" णं " पद वाक्यालङ्कारमें प्रयुक्त है। पूर्व-पश्चि-

અજીવ દ્રવ્યના પરિણામનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર જીવ દ્રવ્યના પરિણામનુ નિરૂપણ કરે છે "भरहेरवएसुण वासेसु पुरिमपच्छिमवज्जा" ઈત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-ભરત અને ઐરવત ક્ષેત્રમા પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરો સિવાયના તીર્થંકરોએ એટલે કે વચ્ચેના ૨૨ તીર્થંકરોએ ચાતુર્યામ ધર્મની પ્રજ્ઞાપના કરી છે તે ચાતુર્યામ ધર્મનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનુ છે—(૧) સમસ્ત પ્રાણાતિપાતથી વિરમણ, (૨) સમસ્ત મૃષાવાદથી વિરમણ, (૩) સમસ્ત અદત્તાદાનથી વિરમણ અને (૪) ધર્મોપકરણ સિવાયના સમસ્ત પરિગ્રહથી વિરમણ સમસ્ત મહાવિદેહોમા અર્હંત ભગવન્તોએ જે ચાતુર્યામ ધર્મની પ્રજ્ઞાપના કરી છે તે ચાતુર્યામ ધર્મ પૂર્વોક્ત સમસ્ત પ્રાણાતિપાત આદિથી વિરમણ રૂપ જ છે.

ટીકાર્થ-અહી "णं" પદ વાકયાલંકારમા વપરાયુ છે. 'પૂર્વ' અને પશ્ચિમ'પદો દ્વારા અહીં પ્રથમ તીર્થંકર આદિનાથ અને છેલ્લા તીર્થંકર મહાવીર પ્રભુ

यामाः, चत्वारो यामा यस्मिन् स चतुर्याम स एव चातुर्यामस्तं चातुर्यामं-चतुर्महाव्रतरूपं, धर्म-दुर्गतिगर्तनिपतज्जन्तुजातत्राणदानसमलक्षणं, प्रज्ञपयन्ति-उपदिशन्ति, तद्यथा-सर्वस्मात् प्राणातिपातात् विरमणं-निवृत्तिः, सर्वस्मात् मृषावादात्, विरमणम्, सर्वस्माद् अदत्तादानाद्-अदत्तग्रहणाद्, विरमणम् सर्वस्माद् बहिर्द्धादानाद् विरमणम्-आदीयत इत्यादान-परिग्राह्य वस्तु तच्च धर्मोपकरणमपि भवतीत्यत आह-' बहिद्धे '-त्यादि-बहिस्तात्-धर्मोपकरणाद् बहिर्भूतं यद् आदानं तद् बहिर्द्धाऽऽदान-धर्मोपकरणातिरिक्तवस्तुग्रहणं, तस्माद् विरमणमित्यर्थः। इह च मैथुनं परिग्रहेऽन्तर्भवति, यतोऽपरिगृहीता स्त्री न भुज्यत इति स्त्रिया अपि धर्मोपकरणातिरिक्तत्वेन प्रत्याख्येयत्वे सिद्धे तत्प्रत्याख्यानाय विशेषतः प्रयासकरणात्प्रत्याख्येयस्य प्राणातिपातप्रभृतेश्चातुर्विध्याद्धर्मस्य चातुर्यामत्वम्।

मसे यहां प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ और अन्तिम तीर्थङ्करमहावीर गृहीत हुये हैं। दुर्गतिमें पतित होनेसे जीवोंको जो बचाता है वह-धर्म है। सावद्य कर्मोंसे [कार्योंसे] विरति होना यह-यम है, यमही याम है। चार याम जिसमें हो वह चातुर्याम है। चार महाव्रत रूप यमही चातुर्याम है ऐसा जो ग्रहण किया जाता है वह-आदान है। ऐसा आदान परिग्राह्य-ग्रहण करने योग्य पदार्थ है। इस तरहसे धर्मोपकरणभी आदानमें आजाता है, अतः-आदानमें यह परिगृहीत (गृहा हुवा) न हो इसलिये " बहिर्द्ध " पद दिया गया है। धर्मोपकरणसे बहिर्भूत पदार्थोंका जो आदान है वह बहिर्द्धादान है। मैथुनको परिग्रहमें अन्तर्भूत कर लिया गया है। क्योंकि--अपरिगृहीत स्त्री भोग्य नहीं होती है इसलिये स्त्रीभी धर्मोपकरणसे अतिरिक्त होनेसे छोडने योग्य कही गई है अतः उसमें प्रत्याख्येयता सिद्ध होने पर उसका

ગૃહીત થયા છે જીવોને દુર્ગતિમાં પડતાં જે બચાવે છે તે ધર્મ છે.

સાવદ્ય કર્મોથી (પાપયુક્ત કાર્યોથી) વિરતિ થવી તેનું નામ 'યમ' છે, તે યમનું નામ જ 'યામ' છે જેમાં ચાર યામ હોય તેને ચાતુર્યામ કહે છે ચાર મહાવ્રત રૂપ યામ જ ચાતુર્યામ છે એવું જે ગ્રહણ કરવામાં આવે છે તેનું નામ આદાન છે એવું આદાન પરિગ્રાહ્ય (ગ્રહણ કરવા યોગ્ય) પદાર્થ છે આ રીતે ધર્મોપકરણ પણ આદાનમાં આવી જાય છે તેથી આદાનમાં તેને પરિગૃહીત નહીં કરવાને માટે જ 'બહિર્દ્ધ' પદ મૂકવામાં આવ્યું છે ધર્મોપકરણ સિવાયના પદાર્થોનું જે આદાન છે તેને "બહિર્દ્ધાદાન" બહિર્દ્ધાદાન કહે છે તેના ગ્રહણનો ચતુર્યામ ધર્મમાં નિષેધ કર્યો છે મૈથુનને પરિગ્રહમાં જ સમાવી લીધુ છે કારણ કે અપરિગૃહીત સ્ત્રી ભોગ્ય હોતી નથી, તેથી સ્ત્રીનો પણ ધર્મોપકરણ સિવાયની વસ્તુઓમાં સમાવેશ થાય છે તે કારણે

"सव्वेसु" इत्यादि–सर्वेषु 'खलु' वाक्यालङ्कारे, महाविदेहेषु भगवन्तोऽर्हन्तश्चातुर्यामं धर्मं प्रज्ञपयन्ति–प्ररूपयन्ति, तद्यथा–'सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरणम्' इत्यारभ्य 'बहिर्द्धाऽऽदानाद्विरणम्' इति पर्यन्तम्।

अत्रायं विचारः–द्वाविंशतितीर्थङ्कराणां, महाविदेहकानां च चातुर्यामधर्मस्य, पूर्व–पश्चिमतीर्थङ्करयोस्तु पञ्चयामधर्मस्य प्ररूपणा, सा च शिष्यापेक्षा भवति, वस्तुतस्तु सर्वेषामपि पञ्चयामस्यैव धर्मस्य प्ररूपणा, यतः प्रथमतीर्थङ्करस्य साधव ऋजुजडाः, चरमस्य तु वक्रजडा भवन्तीति।

प्रत्याख्यान करनेके लिये स्वतन्त्र प्रयास नहीं किया जाता है। क्योंकि वह प्रत्याख्येय प्राणातिपात आदिके भीतर आगत परिग्रहमें अन्तर्भूत होजानेसे प्रत्याख्येय स्वतः होजाती है। इस तरह प्राणातिपात विरमण आदिकी चतुर्विधतासे धर्ममें चातुर्यामता है।

"सव्वेसु" इत्यादि—यहां "खलु" शब्द वाक्यालङ्कारमें प्रयुक्त है। समस्त महाविदेहोंमें भगवान् अर्हन्तने इसी चातुर्याम धर्मकी प्ररूपणा की है। इसी वातको "सर्वस्मात्प्रातिपाताद् विरमणम्–" से लेकर "बहिर्द्धादानाद्विरमणम्" पद तक पुनः प्रकट किया है। यहां ऐसा विचार है—द्वाविंशति तीर्थङ्करोंकी और महावीदेहके तीर्थङ्करोंको चातुर्याम धर्मकी तथा पूर्व पश्चिम तीर्थङ्करोंकी पञ्चयाम धर्मकी प्ररूपणा है। यह ऐसी जो प्ररूपणा है वह शिष्यकी अपेक्षासे है ऐसा

ओने पण छोडवा योग्य कही छे आ रीते तेमां प्रत्याख्येयता सिद्ध थती होवाथी तेना प्रत्याख्यान करवाना स्वतंत्र प्रयासनी आवश्यकता रहेती नथी, कारण के प्राणातिपात विरमण आदि चार यामोमां जे परिग्रह विरमण नामनुं चोथुं व्रत छे तेमां मैथुन विरमणनो पण समावेश थाय छे. आ रीते प्राणातिपात विरमण आदिनी चतुर्विधताने लीधे धर्ममां चतुर्यामता ज छे. "सव्वेसु" इत्यादि अहीं 'खलु' शब्द वाकयालंकारमां वपरायो छे समस्त महाविदेहोमां अर्हन्त भगवन्तोए आ चतुर्याम धर्मनी ज प्ररूपणा करी छे, ए ज वात "सर्वस्मात्प्राणातिपाताद् विरमणम्" थी लईने "बहिर्द्धादनाद्विरमणम" अहीं सुधीना सूत्रपाठ द्वारा फरी प्रकट करी छे. पहेला अने छेल्ला तिर्थंकरो सिवायना बावीस तिर्थंकरोए अने महाविदेहना तीर्थंकरोए चातुर्याम धर्मनी प्ररूपणा करी छे, परन्तु पहेला तीर्थंकर आदिनाथ अने छेल्ला तीर्थंकर महावीर प्रभुए पंचयाम धर्मनी प्ररूपणा करी छे. एवी आ जे प्ररूपणा छे ते शिष्यनी अपेक्षाए समजवी जोईए. वास्तवमां

तथाहि—प्रथमस्य जिनस्य साधव ऋजुजडा इति प्रकृत्या ऋजवो भद्राः, बुद्धया तु जडा -मन्दा इति तेषां धर्मस्यावबोधो दुर्लभः। चरमजिनस्य तु वक्रजडाः, प्रकृत्या वक्रा, बुद्धया तु जडा इति तेषां धर्मस्य पालन दुष्करम्। अजितादिद्वाविंशतिजिनानां साधव ऋजुप्राज्ञाः, प्रकृत्या ऋजवः बुद्धया प्राज्ञा इति तेषां धर्मस्यावबोध पालनं च द्वयमपि सुकर भवतीति धर्मो द्विविध प्रोक्तः। तदुक्तं च-

"पुरिमा उज्जुजडा उ वक्कजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ तेण धम्मे दुहा कए। १।
पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु सुविसुज्झो सुपालओ।२।"

छाया—" पूर्वा ऋजुजडास्तु वक्रजडाश्च पश्चिमा।
मध्यमा ऋजुप्राज्ञास्तु तेन धर्मो द्विधा कृतः।१।
पूर्वेषां दुर्विशोध्यस्तु, चरमाणां दुरनुपालकः।
कल्पो मध्यमकानां तु सुविशोध्य सुपालकः।२।" इति, ।सू २८।

जानना चाहिये, वास्तवमें तो सबही तीर्थङ्करोने पञ्चयामही धर्मकी प्ररूपणाकी है। क्योंकि-प्रथम तीर्थङ्करके साधु ऋजु जड थे, इसका भाव यह है कि वे प्रकृतिसे ऋजु-भद्र थे और बुद्धिसे जड थे, मन्द थे, इसलिये उनको धर्मका अवबोध दुर्लभ था, तथा चरम जिनके साधु प्रकृतिसे वक्र थे और बुद्धिसे जड थे, अतः उन्हें धर्मका पालन दुष्कर था। २२ तीर्थङ्करोंके अजितादि भगवन्तोंके साधु ऋजु-प्राज्ञ थे, प्रकृतिसे ऋजु और बुद्धिसे प्राज्ञ निपुण थे, इसलिये उनको धर्मका ज्ञान और उसका पालन ये दोनोंभी सुकर थे। इसलिये धर्म दो प्रकारका कहा गया है। कहाभी है—" पुरिमा उज्जु जडाउ " इत्यादि। सू० २८॥

તો સઘળા તીર્થંકરોએ પંચયામ ધર્મની જ પ્રરૂપણા કરી છે કારણ કે પહેલા તીર્થંકરના સાધુ ઋજુ જડ હતા, એટલે કે તેઓ પ્રકૃતિની અપેક્ષાએ ઋજુ (ભદ્ર-સરળ) હતા પણ બુદ્ધિની અપેક્ષાએ જડ (મંદ બુદ્ધિવાળા) હતા, તે કારણે તેમને ધર્મનો અવબોધ થવો દુર્લભ હતો અન્તિમ તીર્થંકરના સાધુઓ પ્રકૃતિની અપેક્ષાએ વક્ર અને બુદ્ધિની અપેક્ષાએ જડ હતા, તેથી તેમને માટે પણ ધર્મપાલન દુષ્કર હતું પરંતુ વચ્ચેના અજિતાદિ ૨૨ તીર્થંકર ભગવન્તોના સાધુઓ ઋજુ પ્રકૃતિવાળા અને તીવ્ર બુદ્ધિવાળા એટલે કે ઋજુ પ્રાજ્ઞ હતા. તેથી તેમને માટે ધર્મનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનું કાર્ય તથા ધર્મ પાલનનું કાર્ય સુલભ હતું તેથી જ ધર્મના બે પ્રકાર પણ કહ્યા છે-(૧) ચતુર્યામ ધર્મ અને (૨) પંચયામ ધર્મ કહ્યું પણ છે કે- "પુરિમા ઉજ્જુ જડાઉ" ઇત્યાદિ॥ સૂ. ૨૮॥

अनन्तरोक्त प्राणातिपातादिभ्योऽनुपरतोपरतानां दुर्गतिः सुगतिश्च भवति, तद्वन्तश्च ते दुर्गताः सुगताश्च भवन्तीति दुर्गतिसुगत्यात्मकपरिणामयोर्दुर्गतसुगतानां च भेदान् निरूपयितु सूत्रचतुष्टयमाह—

मूलम्—चत्तारि दुग्गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा--णेरइयदुग्गई १, तिरिक्खजोणियदुग्गई २, मणुस्सदुग्गई ३, देवदुग्गई ४, १।

चत्तारि सुग्गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा--सिद्धसुग्गई १, देवसुग्गई २, मणुयसुग्गई ३, सुकुलपच्चायाई ४, २।

चत्तारि दुग्गया पण्णत्ता, तं जहा--णेरइयदुग्गया १, तिरिक्खजोणियदुग्गया २, मणुस्सदुग्गया ३, देवदुग्गया ४, ३।

चत्तारि सुग्गया पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धसुग्गया १, जाव सुकुलपच्चायाया ४। सू० २९।

छाया--चतस्रो दुर्गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकदुर्गतिः १, तिर्यग्योनिकदुर्गतिः २, मनुष्यदुर्गतिः ३, देवदुर्गतिः ४, १।

अनन्तरोक्त प्राणातिपात आदिकोंसे उपरत हुवे मनुष्योंकी सुगति होती है और नहीं उपरत हुवे मनुष्योंकी दुर्गति होती है, इस सुगतिवाले जीव सुगत और दुर्गति वाले जीव दुर्गत कहलाते हैं। इसलिये अब सूत्रकार दुर्गति और सुगति रूप परिणामोंके एवं–दुर्गत और सुगतोंके भेदोंका निरूपण चार सूत्रोंसे करते हैं। " चत्तारि दुग्गईओ पण्णत्ताओ " इत्यादि।

सूत्रार्थ–दुर्गतियाँ चार कही गई हैं, जैसे नैरयिक दुर्गति १, तिर्यग्योनिक दुर्गति २, मनुष्य दुर्गति ३, और देव दुर्गति ४।

પ્રાણાતિપાત આદિનો પરિત્યાગ કરનાર મનુષ્યો દુર્ગતિમાં જાય છે, તેથી સુગતિવાળા જીવને સુગત અને દુર્ગતિવાળા જીવને દુર્ગત કહે છે તેથી હવે સૂત્રકાર દુર્ગતિ અને સુગતિ રૂપ પરિણામોના ભેદોનું અને દુર્ગત અને સુગતના ભેદોનુ નિરૂપણુ ચાર સૂત્રો દ્વારા કરે છે

" चत्तारि दुग्गईओ पण्णत्ताओ " ઈત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—દુર્ગતિ ચાર કહી છે—(૧) નૈરયિક દુર્ગતિ, (૨) તિર્યગ્યોનિક દુર્ગતિ, (૩) મનુષ્ય દુર્ગતિ, અને (૪) દેવ દુર્ગતિ.

तथाहि—प्रथमस्य जिनस्य साधव ऋजुजडा इति प्रकृत्या ऋजवो मता:, बुद्धया तु जडा -मन्दा इति तेषां धर्मस्यावबोधो दुर्लभः । चरमजिनस्य तु वक्रजडाः, प्रकृत्या वक्रा , बुद्धया तु जडा इति तेषां धर्मस्य पालनं दुष्करम् । अजितादिद्वाविंशतिजिनानां साधव ऋजुप्राज्ञाः, प्रकृत्या ऋजवः बुद्धया प्राज्ञा इति तेषां धर्मस्यावबोध पालन च द्वयमपि सुकर भवतीति धर्मो द्विविध प्रोक्तः । तदुक्तं च-

"पुरिमा उज्जुजडा उ वक्कजडा य पच्छिमा ।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ तेण धम्मे दुहा कए । १ ।
पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु सुविसुज्झो सुपालओ ।२।"

छाया—" पूर्वा ऋजुजडास्तु वक्रजडाश्च पश्चिमा ।
मध्यमा ऋजुप्राज्ञास्तु तेन धर्मो द्विधा कृत ।१।
पूर्वेषां दुर्विशोध्यस्तु, चरमाणां दुरनुपालकः ।
कल्पो मध्यमकानां तु सुविशोध्य सुपालकः ।२।" इति, ।सू २८।

जानना चाहिये, वास्तवमें तो सबही तीर्थङ्करोने पञ्चयामही धर्मकी प्ररूपणाकी है । क्योंकि-प्रथम तीर्थङ्करके साधु ऋजु जड थे, इसका भाव यह है कि वे प्रकृतिसे ऋजु-सरल थे और बुद्धिसे जड थे, मन्द थे, इसलिये उनको धर्मका अवबोध दुर्लभ था, तथा चरम जिनके साधु प्रकृतिसे वक्र थे और बुद्धिसे जड थे, अतः उन्हें धर्मका पालन दुष्कर था । २२ तीर्थङ्करोंके अजितादि भगवन्तोंके साधु ऋजु-प्राज्ञ थे, प्रकृतिसे ऋजु और बुद्धिसे प्राज्ञ निपुण थे, इसलिये उनको धर्मका ज्ञान और उसका पालन ये दोनोंभी सुकर थे । इसलिये धर्म दो प्रकारका कहा गया है । कहाभी है—" पुरिमा उज्जु जडाउ " इत्यादि । सू० २८ ॥

તો સઘળા તીર્થંકરોએ પંચયામ ધર્મની જ પ્રરૂપણા કરી છે. કારણ કે પહેલા તીર્થંકરના સાધુ ઋજુ જડ હતા એટલે કે તેઓ પ્રકૃતિની અપેક્ષાએ ઋજુ (ભદ્ર-સરળ) હતા પણ બુદ્ધિની અપેક્ષાએ જડ (મંદ બુદ્ધિવાળા) હતા, તે કારણે તેમને ધર્મનો અવબોધ થવો દુર્લભ હતો. અન્તિમ તીર્થંકરના સાધુઓ પ્રકૃતિની અપેક્ષાએ વક્ર અને બુદ્ધિની અપેક્ષાએ જડ હતા તેથી તેમને માટે પણ ધર્મપાલન દુષ્કર હતું પરન્તુ વચ્ચેના અજિતાદિ ૨૨ તીર્થંકર ભગવન્તોના સાધુઓ ઋજુ પ્રકૃતિવાળા અને તીવ્ર બુદ્ધિવાળા એટલે કે ઋજુ પ્રાજ્ઞ હતા. તેથી તેમને માટે ધર્મનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનું કામ તથા ધર્મ પાલનનું કાર્ય સુગમ હતું તેથી જ ધર્મના બે પ્રકાર પણ કહ્યા છે-(૧) ચતુર્યામ ધર્મ અને (૨) પંચયામ ધર્મ કહ્યું પણ છે કે- પુરિમા ઉજ્જુ જડાઉ ' ઇત્યાદિ ॥ સૂ. ૨૮ ॥

अनन्तरोक्त प्राणातिपातादिभ्योऽनुपरतोपरतानां दुर्गतिः सुगतिश्च भवति, तद्वन्तश्च ते दुर्गताः सुगताश्च भवन्तीति दुर्गतिसुगत्यात्मकपरिणामयोर्दुर्गतसुगतानां च भेदान् निरूपयितुं सूत्रचतुष्टयमाह—

मूलम्—चत्तारि दुग्गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा-णेरइयदुग्गई १, तिरिक्खजोणियदुग्गई २, मणुस्सदुग्गई ३, देवदुग्गई ४, १।

चत्तारि सुग्गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा--सिद्धसुग्गई १, देवसुग्गई २, मणुयसुग्गई ३, सुकुलपच्चायाई ४, २।

चत्तारि दुग्गया पण्णत्ता, तं जहा--णेरइयदुग्गया १, तिरिक्खजोणियदुग्गया २, मणुस्सदुग्गया ३, देवदुग्गया ४, ३।

चत्तारि सुग्गया पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धसुग्गया १, जाव सुकुलपच्चायाया ४। सू० २९।

छाया--चतस्रो दुर्गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकदुर्गतिः १, तिर्यग्योनिकदुर्गतिः २, मनुष्यदुर्गतिः ३, देवदुर्गतिः ४, १।

अनन्तरोक्त प्राणातिपात आदिकोंसे उपरत हुवे मनुष्योंकी सुगति होती है और नहीं उपरत हुवे मनुष्योंकी दुर्गति होती है, इस सुगतिवाले जीव सुगत और दुर्गति वाले जीव दुर्गत कहलाते हैं। इसलिये अब सूत्रकार दुर्गति और सुगति रूप परिणामोंके एवं-दुर्गत और सुगतोंके भेदोंका निरूपण चार सूत्रोंसे करते हैं। " चत्तारि दुग्गईओ पण्णत्ताओ " इत्यादि।

सूत्रार्थ—दुर्गतियां चार कही गई हैं, जैसे नैरयिक दुर्गति १, तिर्यग्योनिक दुर्गति २, मनुष्य दुर्गति ३, और देव दुर्गति ४।

પ્રાણાતિપાત આદિનો પરિત્યાગ કરનાર મનુષ્યો દુર્ગતિમાં જાય છે, તેથી સુગતિવાળા જીવને સુગત અને દુર્ગતિવાળા જીવને દુર્ગત કહે છે તેથી હવે સૂત્રકાર દુર્ગતિ અને સુગતિ રૂપ પરિણામોના ભેદોનું અને દુર્ગત અને સુગતના ભેદોનુ નિરૂપણ ચાર સૂત્રો દ્વારા કરે છે.

" चत्तारि दुग्गईओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—દુર્ગતિ ચાર કહી છે—(૧) નૈરયિક દુર્ગતિ, (૨) તિર્યગ્યોનિક દુર્ગતિ, (૩) મનુષ્ય દુર્ગતિ, અને (૪) દેવ દુર્ગતિ.

चतस्रः सुगतयः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-सिद्ध सुगति १, देवसुगतिः २, मनुष्य सुगतिः ३, सुकुलप्रत्यायातिः ४, २।

चत्वारो दुर्गताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-नैरयिकदुर्गताः १, तिर्यग्योनिकदुर्गताः २, मनुष्यदुर्गताः ३, देवदुर्गताः ४ ३।

चत्वारः सुगताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सिद्धसुगताः १, यावत् सुकुलप्रत्यायाताः ४, ४। सू० २९।

टीका-" चत्तारि दुग्गईओ " इत्यादि, सुगमं, नवरं दुष्टाः-निन्दिता गतयो दुर्गतय, ताश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-नैरयिकदुर्गतिः=निरये-नरके भवा नैरयिका जीवाः तत्सम्बन्धिनी दुर्गति । १, " तिर्यग्योनिकदुर्गतिः "-सूकरादियोनिजन्मापेक्षया विज्ञेया २। " मनुष्यदुर्गतिः-कुमनुष्यापेक्षया बोध्या ३, " देवदुर्गतिः "-किल्बिषिकादिदेवापेक्षया बोध्या ४, १।

सुगतियां चार कही गई हैं, जैसे-सिद्ध सुगति १, देव सुगति २, मनुष्य सुगति ३, और सुकुल प्रत्यायाति ४-२

चार दुर्गत कहे गये हैं, जैसे-नैरयिक दुर्गत १, तिर्यग्योनिक दुर्गत २ मनुष्य दुर्गत ३, और देव दुर्गत ४।

चार सुगत कहे गये हैं, जैसे-सिद्ध सुगत १, यावत् सुकुल प्रत्यायात ४-४।

विशेषार्थ-निन्दित जो गतियां है वे दुर्गतियां है, इनमें नैरयिक सम्बन्धिनी जो गति है वह नैरयिक दुर्गति है। सूकर आदि योनिमें जन्म धारण करनेकी अपेक्षा तिर्यग्योनिक दुर्गति है। मनुष्यकी अपेक्षासे मनुष्य दुर्गति है, तथा-किल्बिषिकादि देवोंकी अपेक्षासे देव

ચાર સુગતિ કહી છે—(૧) સિદ્ધ સુગતિ, (૨) દેવ સુગતિ (૩) મનુષ્ય સુગતિ અને (૪) સુકુલ પ્રત્યાયાતિ.

ચાર દુર્ગત કહ્યા છે—(૧) નૈરયિક દુર્ગત, (૨) તિર્યંચયોનિક દુર્ગત, (૩) મનુષ્ય દુર્ગત અને (૪) દેવ દુર્ગત

ચાર સુગત કહ્યા છે—(૧) સિદ્ધ સુગત (૨) દેવ સુગત (૩) મનુષ્ય સુગત અને (૪) સુકુલ પ્રત્યાયાત સુગત

વિશેષાર્થ—જે ગતિઓ નિન્દિત છે તેમને દુર્ગતિ કહે છે. નૈરયિક સંબંધી જે ગતિ છે તેને નૈરયિક દુર્ગતિ કહે છે સૂકર (સૂવર) આદિ યોનિમાં જન્મ ધારણ કરવાની અપેક્ષાએ તિર્યંચયોનિને દુર્ગતિરૂપ કહી છે અકર્મભૂમિ આદિમાં જન્મની અપેક્ષાએ મનુષ્યગતિને પણ દુર્ગતિરૂપ કહી છે કિલ્બિષિકાદિ દેવોમાં જન્મની અપેક્ષાએ દેવગતિને પણ દુર્ગતિરૂપ કહી છે

" चत्तारि सुग्गईओ " इत्यादि–सुष्ठु–प्रशस्ता गतयः सुगतयस्ताश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–सिद्धसुगतिः–सिद्धपदप्राप्तिरूपा सुगतिः १, " देवसुगतिः "= इन्द्रत्वादिप्राप्तिरूपा सुगतिः २, " मनुष्यसुगतिः "–कर्मभूम्यार्यदेशभवमनुजत्व-प्राप्तिलक्षणा सुगतिः ३, सुकुलप्रत्यायातिः–सु–सुष्ठु–प्रशस्तं च तत् कुलं च सुकुलम्–इक्ष्वाकुप्रभृतिवंशस्तत्र देवलोकादितः प्रत्यायातिः–मनुष्यरूपेण प्रत्या-गमनम्, ननु मनुष्यसुगतिरेवोच्यतां तत्रैव सुकुलप्रत्यायातेरपि मनुष्यसुगतित्वे नान्तर्भावः स्यादेव सुकुलप्रत्यायातेः पृथगुपादानं किमर्थमिति चेदत्रोच्यते–मनु-ष्यसुगतिश्च कर्मभूम्यार्यदेशभवमनुजत्वरूपा, सा च साधारणजीवानामपि भवति,

---

दुर्गति है ४–१। प्रशस्त गतियोंका नाम सुगतियां है। जैसे–सिद्ध सुगति आदि सिद्धपद प्राप्तिरूप जो गति है वह सिद्ध सुगति है। इन्द्रत्वादि पद प्राप्तिरूप जो गति है वह देव सुगति है २। कर्मभूमिमें अवतरित होकर आर्य देशमें मनुष्यभवकी प्राप्ति होना यह मनुष्य सुगति है। इक्ष्वकु आदि वंशमें देवलोकसे अवतरित होकर जो मनुष्यरूपसे जन्म प्राप्त होता है वह–सुकुल प्रत्यायाति है।

शङ्का—मनुष्य सुगतिमें ही सुकुल प्रत्यायातिका अन्तर्भाव होजाता है, क्योंकि–सुकुल प्रत्यायाति मनुष्य सुगति रूपही होता है, अतः इसका पृथक् कथन क्यों किया ३–९।

उ०—इस शङ्काका समाधान ऐसा है कि मनुष्य सुगति कर्मभूमिके आर्य देशमें मनुष्यभव ग्रहण करने रूप है, अतः–यह मनुष्य सुगति साधारण जीवोंको भी होती है। किन्तु–सुकुलप्रत्यायाति तीर्थङ्कर

પ્રશસ્ત ગતિઓનુ નામ સુગતિ છે, તેના ચાર પ્રકારોનું સ્પષ્ટીકરણ— સિદ્ધપદ પ્રાપ્તિરૂપ જે ગતિ છે, તેનું નામ સિદ્ધ સુગતિ છે ઇન્દ્રત્વ પદ પ્રાપ્તિરૂપ જે ગતિ છે તેનું નામ દેવ સુગતિ છે કર્મભૂમિમાં અવતરિત થઈને આર્ય દેશમાં મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ થવી તેનુ નામ મનુષ્ય સુગતિ છે દેવલોકમાથી ચ્યવીને ઈક્ષ્વાકુ આદિ ઉત્તમ વંશમા મનુષ્ય રૂપે જે જન્મ પ્રાપ્ત થાય છે તેને સુકુલ પ્રત્યાયાતિ કહે છે

શંકા—સુકુલ પ્રત્યાયાતિનો મનુષ્ય સુગતિમાં સમાવેશ થઈ જાય છે, કારણ કે સુકુલ પ્રત્યાયાતિ મનુષ્ય સુગતિ રૂપ જ હોય છે છતાં અહીં તેમને અલગ અલગ સુગતિરૂપ શા માટે કહેલ છે?

ઉત્તર—મનુષ્ય સુગતિ કર્મભૂમિના આર્ય દેશમાં મનુષ્યભવ ગ્રહણ કરવા રૂપ હોય છે, તેથી સાધારણ જીવો પણ તેની પ્રાપ્તિ કરી શકે છે પરન્તુ

सुकुलप्रत्यायातिस्तु विशिष्टपुरुषाणां तीर्थङ्करप्रभृतीनामेव भवति न साधारणाना मिति मनुष्यसुगतितः सुकुलप्रत्यायातिर्भिन्नेति प्रत्येतव्यम् ।४। २।

' चत्तारि दुग्गया "— दुर्गतिरस्त्येषामिति दुर्गताः=दुर्गतिमन्त इत्यर्थः, ते चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नैरयिकदुर्गताः–नैरयिकरूपेण दुर्गता नरकजीवा इत्यर्थः १, तिर्यग्योनिकदुर्गताः–शूकरादियोनिगताः २, मनुजदुर्गताः–रोगादि ग्रस्तत्वाद् नीचकुलोत्पन्नत्वाद्वा ३, देवदुर्गताः=किल्बिषिकादिरूपत्वात् ४। ३।

" चत्तारि सुगया " इत्यादि— सुगता –सुगतिप्राप्ताः सुस्था वा, ते चत्वारः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–सिद्धसुगतरूपेण सुगताः १। इत्यादय

आदि जस विशिष्ट जीवोंको ही होता है, साधारण जीवों को नहीं, इस तरह सुकुल प्रत्यायाति मनुष्य सुगतिसे भिन्न है ऐसा जानना चाहिये ४– ।

" चत्तारि दुग्गया " इत्यादि —दुर्गति है जिन जीवोंको वे दुर्गत हैं, अर्थात्-दुर्गतिवाले जो जीव हैं व दुर्गत हैं । ये दुर्गत नैरयिक दुर्गत आदिके भेदसे जो चार प्रकारके कहे गये हैं उनका तात्पर्य ऐसा है जो जीव नैरयिक रूपसे दुर्गतिवाले हैं वे नैरयिक दुर्गत हैं । शूकर आदि रहे हुये जीव–तिर्यग्यो नक दुर्गत हैं । रोगादिसे ग्रस्त होनेके कारण अथवा —नीच कुलमें उत्पन्न होनेके कारण मनुष्य जीव मनुष्य दुर्गत हैं । किल्बिषिक आदि पर्यायमें रहे हुये जीव देव दुर्गत हैं ।

' चत्तारि सुग्गया ' इत्यादि—सुगति प्राप्त अथवा सुस्थ जो जीव हैं वे सुगत हैं, जैसे-सिद्ध सुगत आदि । इनमें जो सिद्धरूपसे सुग तिको प्राप्त हैं वे सिद्ध सुगत हैं, यहां यावत् पदसे देव सुगत–मनुष्य

સુકુલ પ્રત્યાયાતિની સદ્‌ભાવ તો તીર્થંકર આદિ વિશિષ્ટ જીવોમાં જ સંભવી શકે છે સાધારણ જીવોમાં સંભવી શકતો નથી. આ રીતે સુકુલ પ્રત્યાયાતિ અને મનુષ્ય સુગતિમાં ભિન્નતા સમજવી. ચત્તારિ દુગ્ગયા " ઇત્યાદિ—

દુર્ગતિવાળા જે જીવો છે તેમને દુર્ગત કહે છે તેના નૈરયિક દુર્ગત આદિ જે ચાર ભેદ કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે જે જીવ નૈરયિક રૂપ દુર્ગતિવાળો છે તેને નૈરયિક દુર્ગત કહે છે સુવર આદિ તિર્યંચયોનિક દુર્ગતિવાળા જીવને તિર્યંચયોનિક દુર્ગત કહે છે. રોગાદિથી ગ્રસ્ત થવાને કારણે અથવા નીચ કુળમાં ઉત્પન્ન થવાને કારણે મનુષ્ય જીવ પણ મનુષ્ય દુર્ગત હોઈ શકે છે. કિલ્બિષિક આદિ પર્યાયમાં રહેલા દેવોને દેવ દુર્ગત કહે છે.

' ચત્તારિ સુગ્ગયા ' ઇત્યાદિ– સુગતિમાં ગયેલા જીવોને સુગત કહે છે તેના સિદ્ધ સુગત આદિ ચાર પ્રકાર છે સિદ્ધરૂપ સુગતિ જેમણે પ્રાપ્ત કરી

"जाव सुकुलपच्चायाया" इति—'यावत् सुकुलप्रत्यायाताः' इत्यन्त पठनीयम् तथा च-देवसुगताः २, मनुजसुगताः ३ सुकुलप्रत्यायाताः ४, एषां व्याख्या सुबोधेति । सू० २९ ॥

अनन्तरं सिद्धसुगता उक्ताः, ते चाष्टविधकर्मक्षयाद्भवन्तीति क्षयपरिणामस्य क्रमं निरूपयितुमाह--

मूलम्-पढमसमयजिणस्स णं चत्तारि कम्मंसा खीणा भवंति--णाणावरणिज्जं १, दंसणावरणिज्जं २, मोहणिज्जं ३, अंतराइयं ४। १।

उप्पण्णणाणदंसणधरे णं अरहाजिणे केवली चत्तारि कम्मंसे वेदेइ, तं जहा--वेयणिज्जं १, आउयं २, णामं ३, गोत्तं ४, २।

पढमसमयसिद्धस्स णं चत्तारि कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा--वेयणिज्जं १, आउयं २, णामं ३, गोत्तं ४। ३। । सू० ३० ॥

छाया--प्रथमसमयजिनस्य खलु चत्वारः कर्मांशाः क्षीणाः भवन्ति ज्ञानाऽऽवरणीयं १, दर्शनाऽऽवरणीय २, मोहनीयम् ३, आन्तरायिकम् ४ १

सुगत इन दोनों सुगतोंका ग्रहण हुवा है। इन दोकी और-सुकुल प्रत्यायात इसकी व्याख्या सुगम है ॥ सू० २९ ॥

कथित सिद्ध सुगत अष्टविध कर्मके क्षयसेही होते हैं, अतः-अब सूत्रकार क्षय परिणामका क्रम निरूपण करते हैं।

"पढमसमयजिणस्स णं चत्तारि कम्मंसा" इत्यादि—

प्रथम समय जिनके चार कर्मांश क्षीण होते हैं, जो इस प्रकारसे हैं।

છે, તેમને સિદ્ધ સુગત કહે છે અહીં "યાવત્" પદથી દેવ સુગત અને મનુષ્ય સુગત ગ્રહણ કરવા જોઈએ આ બન્ને પદનો તથા સુકુલ પ્રત્યયાતનો ભાવાર્થ સુગમ હોવાથી અહીં તેમનુ વધુ વિવેચન કર્યું નથી ॥ સૂ ૨૯ ॥

ઉપરના સૂત્રમા સિદ્ધ સુગતની વાત કરવામા આવી છે આઠે પ્રકારના કર્મોના ક્ષયથી જ જીવ સિદ્ધ સુગત બની શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર ક્ષય પરિણામના ક્રમનું નિરૂપણ કરે છે—'पढमसमयजिणस्स ण चत्तारि कम्मंसा" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-પ્રથમ સમય જિનના ચાર કર્માંશો ક્ષીણ થાય છે. તે ચાર કર્માંશોના

उत्पन्नज्ञानदर्शनधर खलु अर्हन् जिनः केवली चतुरः कर्मांशान् वेदयति, तद्यथा-वेदनीयम् १, आयुष्कं २ नाम ३, गोत्रम् ४। २।

प्रथमसमयसिद्धस्य खलु चत्वारः कर्मांशाः युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा-वेदनीयम् १, आयुष्कं २, नाम ३, गोत्रम् ४। सू० ३ ॥

टीका—" पढमसमयजिणस्स "-इत्यादि-प्रथमः समयो यस्यासौ प्रथमसमयः, स चासौ जिनश्चेति प्रथमसमयजिन-सयोगिकेवली, तस्य प्रथमसमयजिनस्य चत्वारः=चतुष्प्रकाराः-ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीयान्तराय रूपाः कर्मांशाः-कर्मणः-सामान्यस्य अंशाः-भेदा इति कर्मांशाः, क्षीणा भवन्ति।

" उत्पन्नज्ञाने "- इत्यादि उत्पन्ने-आवरणक्षयात्प्रकटीभूते च ते ज्ञान-दर्शने चेत्युत्पन्नज्ञानदर्शने तयोर्धरः धारक इति तथाभूतः=विशेषसामान्य बोध-लक्षणज्ञानदर्शनधारकः, अर्हन्, जिन केवली चतुरः कर्मांशान् वेदयति-अनु

ज्ञानावरणीय १, दर्शनावरणीय २, मोहनीय ३ और अन्तरायिक ४। उत्पन्न हुवे ज्ञान और दर्शनको धारण करनेवाला अर्हन्त जीन केवली चार कर्मांशोंका वेदन करता है। जैसे-वेदनीय १, आयुष्क २, नाम ३ और गोत्र ४-२।

टीकार्थ—प्रथम समय सिद्धके चार कर्मांश एक साथ क्षीण होते हैं, जसे-वेदनीय, आयुष्क, नाम और गोत्र-४ प्रथम समय है जिसका ऐसा जो जिन है वह प्रथम समय जिन है ऐसा वह संयोगी केवली होता है। इस प्रथम समय जिनके चार प्रकारके कर्मांश क्षीण होते हैं जैसे-ज्ञानावरणीय १, दर्शनावरणीय २ मोहनीय ३, आन्तरायिक ४। सामान्य कर्मके जो भेद हैं वे कर्मांश हैं। आवरणके क्षयसे प्रकटीभूत जो ज्ञान और दर्शन हैं, इनका धारक अर्हन्त केवली जिन

નામ ક્ષય કરાવે છે—(૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય, (૩) મોહનીય અને (૪) અન્તરાયિક ઉત્પન્ન થયેલા જ્ઞાન અને દર્શનને ધારણ કરનાર અર્હંત જિન કેવલી નીચેના ચાર કર્માંશોનું વેદન કરે છે-(૧) વેદનીય, (૨) આયુક, નામ અને (૪) ગોત્ર પ્રથમ સમય સિદ્ધના નીચેના ચાર કર્માંશો એક સાથે ક્ષીણ થાય છે—(૧) વેદનીય (૨) આયુક, (૩) નામ અને (૪) ગોત્ર

વિશેષાર્થ—જિનપદની પ્રાપ્તિનો પ્રથમ સમય જેને છે એવા જિનને પ્રથમ સમય જિન કહે છે સયોગી કેવલી એવા પ્રકારમાં ગણી શકાય છે, તે પ્રથમ સમય જિનના આ ચાર પ્રકારના કર્માંશોનો ક્ષય થાય છે—(૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય (૩) મોહનીય અને (૪) આન્તરાયિક સામાન્ય કર્મના જે ભેદ છે તેમનું નામ કર્માંશ છે આવરણના ક્ષયને કારણે પ્રકટ થયેલા જ્ઞાન અને દર્શનના ધારક અર્હંત જિન કેવલી નીચેના ચાર

भवति, तद्यथा-वेदनीयम्-वेद्यते यत्तथा १, आयुष्कम् २, नाम-परं प्रति
पदार्थबोधनाय संज्ञा, तच्च कार्यं, तस्य कारणं कर्मेति कार्य-कारणयोरभेदोपचा-
रात्नामापि कर्म ३, तथा-'गोत्रम्" इक्ष्वाकुसम्बन्ध्यादिकुलं, तच्च कार्यं, तस्य
कारणं कर्मेति कार्य कारणयोरत्राप्यभेदोपचाराद् गोत्रं कर्म भवति ।४।२।

"प्रथमसमयसिद्धस्ये"—इत्यादि-प्रथमसमयसिद्धस्य युगपत् चत्वारि पूर्वो
क्तानि कर्माणि क्षीयन्ते=क्षयं यान्ति, यस्मिन् समये सिद्धता भवति तस्मिन्नेव
समये कर्मक्षयोऽपि भवतीति सिद्धत्व-कर्मक्षययोर्यौगपद्यसम्भवादिति ।३। सू०३०।

चार कर्मांशोंका वेदन करता है । अनुभव करता है, जैसे-वेदनीय आदि
जो वेदन किया जाता है, वह वेदनीय है । अर्थात्—
जिससे जीवोंको सुख दुःखका अनुभव होता है वह कर्म वेदनीय कर्म
है । जिससे भव धारण होता है वह आयुष्क है । दूसरोंको पदार्थ
समझानेके लिये जो संज्ञा की जाती है वह नाम कर्म है । यहां नामको
कर्म कहा है, कार्य कारणमें अभेदके उपचारसे हैं, तात्पर्य ऐसा है कि
विशिष्ट गति-जाति आदिकी प्राप्ति जिससे जीवको होती है वह नाम-
कर्म है । इक्ष्वाकु सम्बधी आदि जो कुल हैं, ये कुल जिसके कार्य हैं
इसका जो कारण कर्म है वह कार्यकारणमें अभेद उपचारसे कहा है
४-२ । प्रथमसमयसिद्धस्य-इत्यादि । प्रथम समय सिद्धके (एक)
साथ चार पूर्वोक्त कर्म नष्ट होते हैं, ऐसा कहनेका तात्पर्य है । जिस

કર્માંશોનુ વેદન કરે છે--(૧) વેદનીય, (૨) આયુષ્ક, (૩) નામ અને (૪) ગોત્ર
જેનાથી જીવોને સુખદુખનો અનુભવ થાય છે તે કર્મનું નામ વેદનીય કર્મ
છે. જે કર્મને લીધે ભવધારણ કરવો પડે છે તે કર્મને આયુષ્ક કર્મ કહે છે.
અન્યને કોઇ પદાર્થ સમજાવવા નિમિત્તે જે સંજ્ઞા કરાય છે તેનું નામ નામ
કર્મ છે. અહીં કાર્ય કારણમાં અભેદોપચારની અપેક્ષાએ નામને કર્મ કહ્યું છે.
એટલે કે વિશિષ્ટ ગતિ-જાતિ આદિની પ્રાપ્તિ જેના દ્વારા જીવને થાય
છે, તે કર્મને નામ કર્મ કહે છે ઇક્ષ્વાકુ આદિ કુળની પ્રાપ્તિ થવાના કારણભૂત
જે કર્મ છે તેને ગોત્ર કર્મ કહે છે કાર્યકારણમાં અભેદોપચારની અપેક્ષાએ
અહીં તેને ગોત્રકર્મ રૂપે પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યુ છે.

"प्रथमसमयसिद्धस्स" ઇત્યાદિ—

પ્રથમ સમય સિદ્ધના ઉપર્યુક્ત ચાર કર્માંશો એક સાથે નષ્ટ થાય છે,
એટલે કે જે સમયે સિદ્ધત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે એ જ સમયે કર્મક્ષય પણ

उक्ताः सिद्धाः, तद्विपरीता असिद्धाः, तेषां हास्यादयो विकारा भवन्तीति हास्यकारणानि निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती सिया, तं जहा—पासित्ता १, भासेत्ता २, सुणेत्ता ३, संभरेत्ता ४। । सू० ३१ ॥

छाया—चतुर्भिः स्थानैः हासोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—दृष्ट्वा १, भाषित्वा २, श्रुत्वा ३, स्मृत्वा ४। सू० ३१ ॥

टीका—"चउहिं" इत्यादि—चतुर्भिः—चतुःसंख्यैः स्थानैः हासोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—दृष्ट्वा—हास्यजनकभाण्डविदूषकप्रभृतिचेष्टां निरीक्ष्य हास्योत्पत्तिर्भवति १। तथा—भाषित्वा—हास्यजनकं स्वपरवचनमुक्त्वा हास्योत्पत्तिः स्यात् २। तथा—श्रुत्वा—परोदितं हास्यजनकं वचनं कर्णगोचरीकृत्य हास्योत्पत्तिः स्यात् ३। तथा—स्मृत्वा—विदूषकादिचेष्टावाक्यप्रभृति चिन्तयित्वा हास्योत्पत्तिः स्यादिति। एवं च दर्शन—भाषण श्रवण स्मरणानि हास्यकारणानि भवन्तीति पर्यवसितोऽर्थः ४ ।सू०३१।

समयमें सिद्धता होती है उसी समयमें कर्मक्षय भी होता है, इससे सिद्धत्व और कर्मक्षयमें यौगपद्य सम्भव होता है ॥ सू०३० ॥

सिद्धोंसे विपरीत असिद्ध होते हैं और इनको हास्यादि विकार होते हैं, अतः—अब सूत्रकार इन हास्यादिक विकारोंके कारणोंका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं। "चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती" इत्यादि—

चार कारणोंसे हास्यकी उत्पत्ति होती है, जैसे—हास्यजनक भाण्ड विदूषक आदि जनोंकी चेष्टाको देखकर—१ हास्यजनक भाषाका प्रयोग कर—२ दूसरोंके द्वारा कथित हास्यजनक वचनको सुनकर—३ और विदूषक आदिकोंकी चेष्टाओंको या—उनके वाक्योंको याद कर हास्यकी

થાય છે આ રીતે સિદ્ધત્વ અને કર્મક્ષયમાં યુગપત્તા (એકી સાથે) બન્ને એક સાથે થવાને માન્યો સંભવી શકે છે ॥ સૂ ૩૦ ॥

સિદ્ધ કરતાં વિપરીત હોય એવાં જીવને અસિદ્ધ કહે છે અસિદ્ધ જીવોમાં હાસ્યાદિ વિકારોનો સદ્ભાવ હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર તે હાસ્યાદિ વિકારોનાં કારણોનું નિરૂપણ કરવા માટે "चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती" ઇત્યાદિ સૂત્રનું કથન કરે છે—નીચેના ચાર કારણોને લીધે હાસ્યની ઉત્પત્તિ થાય છે—(૧) વિદૂષક આદિની હાસ્યજનક ચેષ્ટાઓ જોવાથી, (૨) હાસ્યજનક ભાષાનો પ્રયોગ કરવાથી, (૩) અન્યના દ્વારા કથિત હાસ્યજનક વચનોનું શ્રવણ કરવાથી અને (૪) વિદૂષક આદિની ચેષ્ટાઓને કે તેમનાં વાક્યોને યાદ

दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकप्रदर्शनपूर्वकमन्तरसूत्रमाह–

मूलम्––चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा–कट्ठंतरे १, पम्हंतरे २ लोहंतरे ३, पत्थरंतरे ४। एवामेव पुरिसस्स वा इत्थिए वा चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा–कट्ठंतरसमाणे १, पम्हंतरसमाणे २, लोहंतरसमाणे ३, पत्थंतरसमाणे ४। सू० ३२।

छाया––चतुर्विधमन्तरं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–काष्ठान्तरं १, पक्ष्मान्तरं २, लोहान्तरं ३, प्रस्तरान्तरम् ४। एवमेव पुरुषस्य वा स्त्रिया वा चतुर्विधमन्तरं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–काष्ठान्तरसमानः १, पक्ष्मान्तरसमानः २, लोहान्तरसमानः ३, प्रस्तरान्तरसमानः। सू० ३२॥

टीका––"चउव्विहे अंतरे" इत्यादि–चतुर्विधमन्तरं–भेदः, प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–काष्ठान्तरं–काष्ठयोरन्तरं–यथा–एकं चन्दनादिरूपम् अन्यद् बर्बुरादिरूपम् १, पक्ष्मान्तरं–यथा–एकं पक्ष्म–अर्कतूलादिरूपमपरमुष्ट्राजादि पक्ष्म (रोम) रूपम्

उत्पत्ति होती है, इस तरह दर्शन भाषण श्रवण स्मरण ये हास्य कारण होते हैं॥ सू० ३१॥

अब सूत्रकार दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक प्रदर्शक अन्तर सूत्रका कथन करते हैं।

"चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते" इत्यादि–

अन्तर चार प्रकारका कहा गया है। जैसे–काष्ठान्तर १, पक्ष्मान्तर २, लोहान्तर ३, और प्रस्तरान्तर ४। भेदका नाम अन्तर है। दो काष्ठोंके बीचका जो अन्तर है वह काष्ठान्तर है, जैसे–एक बबूल वगैरहका काष्ठ और चन्दन आदि वृक्षका अन्तर ही काष्ठान्तरसे यहां गृहित हुवा है १। पक्ष्म–

કરવાથી આ રીતે દર્શન, ભાષણ, શ્રવણ અને સ્મરણરૂપ ચાર કારણોથી હાસ્ય ઉત્પન્ન થાય છે. ॥ સૂ. ૩૧ ॥

હવે સૂત્રકાર દૃષ્ટાન્ત અને દાર્ષ્ટાન્તિકના પ્રદર્શનપૂર્વક અન્તરસૂત્રનું કથન કરે છે. "चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते" ઇત્યાદિ–

અંતરના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) કાષ્ઠાન્તર, (૨) પક્ષ્માન્તર, (૩) લોહાન્તર અને (૪) પ્રસ્તરાન્તર ભેદનું નામ અંતર છે બે કાષ્ઠો વચ્ચેનું જે અંતર છે તેને કાષ્ઠાન્તર કહે છે જેમકે બાવળ આદિ વૃક્ષના અને ચન્દનાદિ વૃક્ષના બે કાષ્ઠો વચ્ચેના અંતરને અહીં ..... ર કહેવામા

२, लोहान्तर=यथा-एको लोहः खड्गादिरूपोऽन्यः किट्टरूपः ३, प्रस्तरान्तर-यथा -एकः प्रस्तरः स्पर्शमण्यादिरूपः, अपर ऊपर प्रस्तररूपः ।४।

अथ दृष्टान्तसूत्रमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकसूत्रमाह-

" एवामेव " इत्यादि-एवमेव-अनेनैव प्रकारेण पुरुषस्य वा स्त्रिया वा चतुर्विधमन्तरं मन्तव्यं, तद्यथा-काष्ठान्तरसमानः-अन्यत्काष्ठं काष्ठान्तरं तेन समानस्तुल्यः काष्ठान्तरसमानः=बर्बुरादिविभिन्नचन्दनसमानः सत्पुरुषः, चन्दनादि भिन्नबर्बुरसमानः कापुरुषादिं यथा-एकः कश्चित् पुरुष औदार्यगाम्भीर्यादिगुण सम्पन्नत्वेन च न्दनादिसमान, अन्यः परपीडनादिदुर्गुणवत्वेन बर्बुरादिसदृशः १,

रोमको लेकर जो अन्तर आता है वह पक्ष्मान्तर है, जैसे-अकतूल आदिके रेशोमें और बच्चू अजा आदिके रोमोंमें जो अन्तर है वह पक्ष्मान्तर है २। एक लोहा खड्गादिरूप होता है, दूसरा किट्टरूप होता है ऐसा लोहेका जो परस्परमें अन्तर है वह लोहान्तर है ३। प्रस्तरान्तर-पत्थरोमें जो अन्तर है वह प्रस्तरान्तर है, जैसे-एक प्रस्तर स्पर्श मण्यादि रूप होता है और दूसरा उपर प्रस्तररूप होता है ४।

इस प्रकारसे दृष्टान्तसूत्र कहकर अब सूत्रकार दार्ष्टान्तिक सूत्र कहते हैं। " एवामेव " इत्यादि-इसी प्रकारसे पुरुषका और स्त्रीका अन्तर चार प्रकारका है। जैसे-जो सत्पुरुष है वह बबूल आदिसे भिन्न चन्दनके समान है, तथा-जो कापुरुष-कायर है वह चन्दनादिसे भिन्न

આવ્યું છે પક્ષ્મ (રુવાંટી) વચ્ચેના અંતરને પક્ષ્માન્તર કહે છે જેમકે આકડા આદિના રેસા અને ઊંટ, બકરી આદિની રુવાંટી વચ્ચે જે અંતર હોય છે તેને પક્ષ્માન્તર કહે છે

" લોહાન્તર " એક લોઢુ ખડગરૂપ હોય છે અને બીજુ લોઢુ કટારરૂપ હોય છે, આ પ્રકારના લોઢાનુ જે પરસ્પરનું વચ્ચેનુ જે અંતર છે તેને લોહાન્તર કહે છે

" પ્રસ્તરાન્તર " પત્થરો (પાષાણ) વચ્ચેનુ જે અંતર છે તેને પ્રસ્તરાન્તર કહે છે જેમકે જમીનનુ એક પ્રસ્તર સ્પર્શમણિ આદિરૂપ હોય છે તો બીજુ પ્રસ્તર ઉપર પ્રસ્તરરૂપ હોય છે

આ પ્રમાણે દૃષ્ટાન્ત સૂત્રનુ કથન કરીને હવે સૂત્રકાર દાર્ષ્ટાન્તિક સૂત્રનુ કથન કરે છે- ' एवामेव ' ઇત્યાદિ-

એ જ પ્રમાણે પુરુષનુ અને સ્ત્રીનુ અંતર પણ ચાર પ્રકારનુ હોય છે (૧) જે સત્પુરુષ હોય છે તે બાવળ આદિથી ભિન્ન એવાં ચંદન સમાન હોય છે અને જે કાપુરુષ હોય છે (કાયર પુરુષ) હોય છે તે ચંદનાદિથી ભિન્ન

पक्ष्मान्तरसमानः पुरुषो यथा–एकः कश्चित् परमकारुण्यादिगुणत्वेनार्कतूलादिसदृशः, अपरः कर्कशकठोरप्रकृतिकत्वेनोष्ट्राजादिपक्ष्मसदृशः २, लोहान्तरसमानः पुरुषो यथा–एकः कश्चित् पुरुषः परीषहोपसर्गादिसहिष्णुत्वेन खड्गादिलोहसदृशः अपरोभयकातरत्वादिमत्त्वेन किट्टलोहसदृश ३,

प्रस्तरान्तरसमानः पुरुषो यथा–एकः कश्चित् पुरुष आमर्शौषध्यादि–लब्धिमत्त्वेन स्पर्शमणिसदृशः, अपरो दैन्यदारिद्र्यादिमत्त्वेनोपरप्रस्तरसदृशः ४। एवं स्त्रिया अपि स्त्र्यन्तरमपेक्ष्यान्तरं बोध्यम् । सू० ३२ ॥

बबूलके समान है, तथा कोई एक पुरुष जो औदार्य आदि गुणोंसे सम्पन्न होता है वह चन्दनादिके समान है, और जो पीडनादि दुर्गुणोंवाला होता है वह बबूल आदिके जैसा होता है, इसलिये इन्हें काष्ठांतर समान कहा गया है । १ यह एक पुरुषका दूसरे पुरुषसे अन्तर कहा है, इसी प्रकारसे आगेभी जानना चाहिये ।

"पक्ष्मान्तर समान"–वह पुरुष कहा गया है जो परम कारुण्यादि गुणवाला होता है ऐसा वह पुरुष अर्कतूलादि सदृश है, तथा–जो कर्कश कठोर प्रकृतिवाला होता है वह–उष्ट्र अजा आदिका पक्ष्म जैसा होता है २ । लोहान्तर समान वह पुरुष है जो परीषह और उपसर्ग आदिको सहनेमें सहिष्णु होता है ऐसा वह पुरुष खड्गादि लोहका जैसा होता है, दूसरा भयसे कातर आदि प्रकृतिवाला होता है ऐसा वह पुरुष किट्ट लोह सदृश होता है ३ । प्रस्तरान्तर समान वह पुरुष है,

---

એવાં બાવળ સમાન હોય છે તથા કોઇ એક પુરુષ જે ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી યુક્ત હોય છે, તે ચંદન સમાન હોય છે, પણ જે પરપીડનાદિ દુર્ગુણોથી યુક્ત હોય છે તે બાવળાદિના જેવો હોય છે આ રીતે આ બન્ને પુરુષ વચ્ચેના અંતરને કાષ્ઠાન્તર સમાન કહેવામાં આવ્યુ છે આ રીતે એક પુરુષનું બીજા પુરુષથી અંતર (બન્ને વચ્ચેનો તફાવત) પ્રકટ કરવામાં આવ્યુ છે "પક્ષ્માન્તર સમાન પુરુષ" જે પુરુષ કરુણા આદિ ગુણોવાળો હોય છે તે અર્કતૂલાદિ સમાન ગણાય છે–એટલે કે આકડા વગેરેના રેસા સમાન ગણાય છે, પણ જે પુરુષ કઠોર હોય છે તેને ઊંટ, બકરી આદિના પક્ષ્મ (રોમ–રુંવાટી) સમાન ગણાય છે.

"લોહાન્તર સમાન પુરુષ"—જે પુરુષ પરીષહ અને ઉપસર્ગ આદિ સહન કરવામાં સહિષ્ણુ હોય છે, એવા પુરુષને ખડગાદિ લોહ સમાન કહ્યો છે. જે પુરુષ પરીષહ, ઉપસર્ગ આદિ સહન કરવાને સમર્થ હોતો નથી, એવા કાયર સ્વભાવના પુરુષને કિટ્ટ લોહ સમાન કહ્યો છે.

मनन्तरमन्तर निरूपितम्, अधुना पुरुषविशेषान्तर निरूपयितुं भृतकं समेद निरूपयितुमाह–

मूलम्—चत्तारि भयगा पण्णत्ता, त जहा–दिवसभयए १, जत्ताभयए २, उच्चत्तभयए ३, कब्बालभयए ४। सू० ३२ ॥

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा–सपागडपडिसेवी णाममेगे णो पच्छन्नपडिसेवी १, पच्छन्नपडिसेवी णाममेगे णो सपागडपरिसेवी २, एगे सपागडपडिसेवीवि पच्छन्नपडिसेवीवि ३, एगे णो सपागडपडिसेवी णो पच्छन्नपडिसेवी । सू० ३३ ॥

छाया—चत्वारो भृतकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–दिवसभृतकः १, यात्राभृतकः २, उच्चताभृतकः ३, कब्बाडभृतकः ४। सू० ३२ ।

जो आमर्षौ औषधि आदि लब्धियोंसे युक्त होता है ऐसा वह पुरुष स्पर्शमणि जैसा होता है, तथा–जो पुरुष दैन्य दारिद्र्य आदिवाला होता है वह उपर प्रस्तर जैसा है ४ । इसी तरहसे एक स्त्रीका एक दूसरी स्त्रीसे भी अन्तर समझ लेना ॥ सू० २ ॥

अब सूत्रकार पुरुष विशेषका अन्तर निरूपित करनेके लिये भेद सहित भृतकका निरूपण करते हैं । " चत्तारि भयगा पण्णत्ता " इत्यादि—

चार भृतक कहे गये हैं, जैसे–दिवस भृतक १, यात्रा भृतक २, उच्चता भृतक ३, और कब्बाड भृतक ४ । चार प्रकारके पुरुष कहे गये हैं, जैसे–संप्रकट प्रतिसेवी नो प्रच्छन्न प्रतिसेवी १, प्रच्छन्न प्रतिसेवी नो

"પ્રસ્તરાન્તર સમાન પુરુષ"—જે પુરુષ આમર્ષ ઔષધિ આદિ લબ્ધિ ઓથી યુક્ત હોય છે તેને સ્પર્શમણિ પ્રસ્તર સમાન કહે છે, પણ દીનતા, દારિદ્ર્ય, આદિથી યુક્ત હોય એવા મનુષ્યને ઉપર પત્થર સમાન કહ્યો છે એજ પ્રમાણે એક સ્ત્રી અને બીજી સ્ત્રી વચ્ચેનું અ ત૨ પણ સમજવું ॥ સૂ ૩૨ ॥

હવે પુરુષ વિશેષના અન્તરનું નિરૂપણ કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર ભૃતકના ચાર ભેદોનુ નિરૂપણ કરે છે ' ચત્તારિ ભયગા પણ્ણત્તા ' ઇત્યાદિ—

ભૃતક (નોકર) ના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—દિવસ ભૃતક, (૨) યાત્રા ભૃતક (૩) ઉચ્ચતા ભૃતક અને (૪) કબ્બાડ ભૃતક ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે, (૧) સંપ્રકટ પ્રતિસેવી, નો પ્રચ્છન્ન પ્રતિસેવી, (૨) પ્રચ્છન્ન પ્રતિસેવી, નો સંપ્રકટ

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–संप्रकटप्रतिसेवी नामैको नो प्रच्छन्नप्रतिसेवी १, प्रच्छन्नप्रतिसेवी नामैको नो संप्रकटप्रतिसेवी २, एकः संप्रकटप्रतिसेव्यपि प्रच्छन्नप्रतिसेव्यपि ३, एको नो संप्रकटप्रतिसेवी नो प्रच्छन्नप्रतिसेवी ४। ॥ सू० ३३ ॥

टीका—" चत्तारि भयगा " इत्यादि–भ्रियन्ते–पोष्यन्त इति भृतास्त एव भृतका--कर्मकरा इत्यर्थः, ते चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते के चत्वारः ? इति प्रदर्शयति ' तद्यथे '--त्यादिना, ते यथा--दिवसभृतकः--दिवसे--दिने दिने भृतक इति दिवसभृतकः=प्रतिदिनं नियतजीविकादानेन यः कर्म कर्तुं गृह्यमाणः सः १,

यात्राभृतकः—परदेशगमनतदवधिकस्वदेशाऽऽगमनरूपयात्रायां सहायतया यो वेतनेन पोष्यमाणः सः २, उच्चताभृतकः–उच्चः–अपरापेक्षया श्रेष्ठस्तस्य भाव उच्चता, तया भृतकः–वेतन-समयौ नियमय्य निश्चितोचितावसरे कर्मणि यो नियुक्तः

संप्रकटप्रतिसेवी २, संप्रकटप्रतिसेवीभी प्रच्छन्न प्रतिसेवीभी ३, नो संप्रकट प्रतिसेवी नो प्रच्छन्न प्रतिसेवी ४ ।

"भ्रियन्ते" इति भृतकाः जो पोष्य होतेहैं, कर्मकर होते हैं वे भृतक होते हैं। ये भृतक जो चार प्रकारके कहे गये हैं, उनका तात्पर्य ऐसा है–

दिवस भृतक—प्रतिदिनका पारिश्रमिक लेकर जो काम करनेके लिये रखा जाता है वह दिवस भृतक है, यह दिवस भृतक केवल दिनमें ही काम करता है। इसलिये इसे दिवस भृतक कहा गया है १। यात्रा भृतक–वह है जो परदेश जाने तक और फिर वहांसे अपने देशमें लौट आने तकके लिये जो नोकर रखा जाता हैं वह यात्रा भृतक है २। उच्चता भृतक–वह है जो वेतन और अमुक समय तक काम करनेका

प्रतिसेवी, (૩) સંપ્રકટ પ્રતિસેવી, પ્રચ્છન્ન પ્રતિસેવી (૪) ના સંપ્રકટ પ્રતિસેવી ના પ્રચ્છન્ન પ્રતિસેવી

વિશેષાર્થ—" भ्रियन्ते इति भृतकाः " જેઓ પોષ્ય હોય છે, કર્મકર હોય છે તેમને ભૃતક કહે છે ભૃતકના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—

(૧) દિવસ ભૃતક—દરરોજનુ મહેનતાણું (રોજી) નક્કી કરીને કામ કરવાને માટે જે નોકર રાખવામાં આવે છે તેને દિવસ ભૃતક કહે છે. તે માત્ર દિવસે જ કામ કરે છે, તે કારણે તેને દિવસ ભૃતક કહે છે

(૨) યાત્રા ભૃતક—પરદેશની યાત્રા વખતે જે નોકરને યાત્રાસમય સુધી નોકરીએ રાખવામાં આવે છે તેને યાત્રાભૃતક કહે છે પરદેશ જાય ત્યારથી સ્વદેશમા પાછા ફરે ત્યાં સુધીના સમય સુધી જ આ નોકર રાખવામા આવે છે.

(૩) ઉચ્ચતા ભૃતક—અમુક સમયને માટે જ અમુક પગાર નક્કી કરીને જે નોકર રાખવામા આવે છે તેને ઉચ્ચતા ભૃતક કહે છે.

सः ३, कव्वाडभृतकः-कव्वाडो देशीयः शब्दः स च नियतशब्दमये मूल्ये यावतीं नियमस्य परिमितभूमिखानकवाची, स चासौ भृतकः=' इयती भूमिस्त्वया इयता कालेन खनितव्या इयत् तन्मूल्यं दास्यामीति नियमेन नियोजित कर्मकर इति पर्यवसितोऽर्थः ४। उक्त च—

दिवसभयओ उ घेप्पइ छिन्नेण धणेण दिवसदेवसियं।
जत्ताउ होइ गमणं उभयं वा एत्तियधणेणं। १।
कव्वाड ओडमाई हत्थमियं कम्म एत्तियधणेण।
एत्तिरकालुच्चत्ते कायव्वं कम्म म बेंति। २। "

छाया—" दिवसभृतकस्तु गृह्यते छिन्नेन धनेन दिवसदैवसिकः।
यात्रा तु भवति गमनम् उभयं वा (गमनाऽऽगमनरूपं) इयता धनेन।१।
कव्वाड ओडादिः हस्तमितं कर्म इयता धनेन।
इयत्कालमुच्चत्वे कर्तव्यं कर्म यद् ब्रवीति।२। " इति, (सू० १२)

पूर्वं लौकिकपुरुषविशेषस्यान्तरं निरूपितम्, अधुना लोकोत्तरपुरुषस्यान्तरं निरूपयितुमाह—

निश्चय करके रक्खा जाता है ३। कव्वाड भृतक-वह है जो " तू इतनी जमीन खोद लेगा इतने समयमें तो मैं तुझे इतना पारिश्रमिक इसका दूंगा " ऐसी बोली करके कामपर नियुक्त किया जाता है ४।

कहामी है-" दिवसभयओ उघेप्पइ " इत्यादि—

" कव्वाड " यह देशीय शब्द है और यह नियत समयमें मूल्यकी इयत्ताका (मर्यादा) निर्धारण करके परिमित भूमिको खोदनेवालेका वाचक है, इस प्रकारसे लौकिक पुरुष विशेषका अन्तर निरूपण करके अब सूत्रकार लोकोत्तर पुरुषका अन्तर निरूपित करने के लिये कहते हैं।

" चत्तारि पुरिसजाया " इत्यादि—

(૪) કવ્વાડ ભૃતક— જે તું આટલા સમયમાં આટલી જમીન ખોદી આપીશ, તો તને આટલું મહેનતાણું આપીશ " આ પ્રકારની શરત કરીને જેને કામે લગાડવામાં આવે છે એવા નોકરને કવ્વાડ ભૃતક કહે છે

કહ્યું પણ છે કે— દિવસભયઓ ઉ ઘેપ્પઇ ઇત્યાદિ—

કવ્વાડ આ શબ્દ ગામઠી ભાષામાં વપરાય છે. ' નિયત સમયમાં નિયત વેતન લઈને નિયત પ્રમાણવાળી ભૂમિને ખોદી આપનારનો તે વાચક છે " આ રીતે લૌકિક પુરુષ વિશેષના અન્તરનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર લોકોત્તર પુરુષોના અન્તરનું નિરૂપણ કરે છે—

"चत्तारि पुरिसजाया" इत्यादि—पुरुषजातानि–पुरुषप्रकाराः, चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एकः-कश्चित् संप्रकटप्रतिसेवी—साध्वादिसमक्षकल्प्यभक्तपानादिकं प्रतिसेवितुं–भोक्तुं शीलमस्येति संप्रकटप्रतिसेवी–दूषितभक्तपानादिप्रकटसेवी भवति, किन्तु प्रच्छन्नप्रतिसेवी न भवति, उभयलोकभयवर्जितत्वात् ।१। एकः-कश्चित् प्रच्छन्नप्रतिसेवी भवति, किन्तु सम्प्रकटप्रतिसेवी नो भवति ।२। एकः-कश्चित् संप्रकटप्रतिसेव्यपि प्रच्छन्नप्रतिसेव्यपि भवति ।३। एकः-कश्चित् नो सम्प्रकटप्रतिसेवी, नापि च प्रच्छन्नप्रतिसेवी भवति, आत्मार्थित्वात् ।४। एषु चतुर्थोभङ्गः शुद्धः । सू० ३३ ॥

इस सूत्र द्वारा जो पुरुष प्रकार चार कहे गये हैं, उनका तात्पर्य ऐसा है-संप्रकटप्रतिसेवी नो प्रच्छन्नप्रतिसेवी १ वह है जो साधु आदिके समक्ष अकल्प्य भक्त पानादिक सेवन करनेका स्वभाववाला होता है, परन्तु प्रच्छन्न रूपसे उसका प्रतिसेवी नहीं होता है। क्योंकि ऐसा पुरुष उभय लोकके भयसे वर्जित होता है यह प्रथम विकल्प है। तथा–कोई एक दूसरा ऐसा होता है जो प्रच्छन्न प्रतिसेवी होता है। किन्तु प्रकटमें प्रतिसेवी नहीं होता है, यह–द्वितीय विकल्प है। तथा कोई एक तीसरा पुरुष ऐसा है कि प्रकटमेंभी अकल्प्य भक्तपानादिकका प्रतिसेवी होता हैं और प्रच्छ रूपमेंभी, यह तृतीय विकल्प भङ्ग है ३ कोई एक चौथा ऐसाहै जो न प्रगटमें अकल्प्य भक्त पानादिकका प्रतिसेवी

"चत्तारि पुरिसजाया" ઈત્યાદિ–આ સૂત્ર દ્વારા જે ચાર પુરુષ પ્રકારો કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે છે—

(૧) "संप्रकटप्रतिसेवी–नो प्रच्छन्नप्रतिसेवी"—જે પ્રકટ રીતે–સાધુ આદિની સમક્ષ અકલ્પ્ય ભક્તપાનાદિકનું સેવન કરનારો હોય છે, પણ પ્રચ્છન્ન (છૂપી) રીતે તેનું પ્રતિસેવન કરનારો હોતો નથી, એવા પુરુષને આ પહેલા પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે, એવો પુરુષ ઉભયલોકના ભયથી વિહીન હોય છે. કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પ્રચ્છન્નરૂપે અકલ્પ્ય આહારાદિનું પ્રતિસેવન કરનારો હોય છે, પણ પ્રકટમાં તેનું સેવન કરતો નથી, આ બીજો વિકલ્પ છે. (૩) કોઇ પુરુષ એવો હોય છે જે પ્રકટ રૂપે પણ અકલ્પ્ય આહારાદિનું સેવન કરે છે અને પ્રચ્છન્ન રૂપે પણ તેનું પ્રતિસેવન કરે છે. આ પ્રકારના પુરુષને ત્રીજા પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે. (૪) કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પ્રકટ રૂપે પણ અકલ્પ્ય આહારાદિનુ પ્રતિસેવન કરતો નથી અને પ્રચ્છન્ન રૂપે

पूर्वोक्तचतुर्थभङ्गपालको देवत्वं प्राप्नोतीति देवचक्तव्यतामाह—

मूलम्—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो सोमस्स महारन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा-कणगा १, कणगलया २, चित्तगुत्ता ३, वसुहरा ४। एव जमस्स, वरुणस्स, वेसमणस्स,

बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो सोमस्स महा रन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा-सित्तगा १, सुभद्दा२, विज्जुत्ता३, असणी ४। एव जमस्स, वेसमणस्स, वरुणस्स,

धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स णागकुमाररन्नो कालवालस्स महारन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा असोगा १, विमला २, सुप्पभा ३, सुदसणा ४। एव जाव सखवालस्स।

भूयाणदस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररन्नो कालवालस्स महारन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा-सुणदा १, सुभद्दा २ सुजाया ३, सुमणा ४। एव जाव सेलवालस्स जहा धरणस्स। एव सव्वेर्सि दाहिणिंदलोगवालाण जाव घोसस्स, जहा भूयाणदस्स, एव जाव महाघोसस्स लोगवालाणं,

कालस्स णं पिसाइंदस्स पिसायरन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा-कमला १, कमलप्पभा २, उप्पला ३, सुदसणा ४। एवं महाकालस्सवि। सुरूवस्स णं भूइंदस्स भूयरन्नो

होता है न मच्छमें ही क्योंकि-ऐसा पुरुष आत्मार्थी होता है। इन भङ्गोंमें यह चौथा भङ्ग शुद्ध है ॥ सू० २२ ॥

પણ તેનુ સેવન કરતો નથી કારણ કે એવો પુરુષ આત્માર્થી હોય છે આ ચારે ભાંગાઓમાંથી ચોથો ભાંગો શુદ્ધ છે. ॥ સૂ ૨૨ ॥

चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-रूववई १, बहुरूवा २, सुरूवा३, सुभगा४। एवं पडिरूवस्सवि। पुण्णभद्दस्स णं जक्खिदस्स जक्खरन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ, पण्णत्ताओ तं जहा-पुत्ता १, बहुपुत्तिया २, उत्तमा ३, तारगा ४। एवं माणिभद्दस्सवि।

भीमस्स रक्खसिंदस्स रक्खसरन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-पउमा १, वसुमई २, कणगा ३, रयणप्पभा ४। एवं महाभीमस्सवि। किंनरस्स णं किंनारिंदस्स किन्नररन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा--वडेंसा १, केउमई २, रइसेणा ३, रइप्पभा ४। एवं किंपुरिसस्सवि। सप्पुरिसस्स णं किंपुरिसिंदस्स किंपुरिसरन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-रोहिणी १, णवमिया २, हिरी ३, पुप्फवई ४। एवं महापुरिसस्सवि।

अइकायस्स णं महोरगिंदस्स महोरगरन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-भुयगा १, भुयगवई २, महाकच्छा ३, फुडा ४। एवं महाकायस्सवि,

गीयरइस्स णं गंधव्विंदस्स गंधव्वरन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-सुघोसा १, विमला २, सुस्सरा ३, सरस्सई ४। एवं गीयजसस्सवि। चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-चंदप्पभा १, दोसिणाभा २, अच्चिमाली ३, पभंकरा ४। एवं सूरस्सवि, णवरं सूरप्पभा १, दोसिणाभा २, अच्चिमाली ३, पभंकरा ४।

इंगालस्स णं महागहस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा विजया १, वेजयती २, जयती ३, अपराजिया ४। एवं सव्वेसिं महागहाणं जाव भावकेउस्स,

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पणत्ताओ, तं जहा रोहिणी १, मयणा २, चित्ता ३, सोमा ४। एवं जाव वेसमणस्स,

ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो चत्तारि अग्गमहिसीओ पणत्ताओ, तं जहा पुढवी १, राई २, रयणी ३, विज्जू ४। एवं जाव वरुणस्स ॥ सू० ३४ ॥

छाया—चमरस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कनका १, कनकलता २, चित्रगुप्ता ३, वसुन्धरा ४। एवं यमस्य, वरुणस्य, वैश्रमणस्य ॥

इस उक्त चतुर्थ भङ्गका पालक देवत्व पदको प्राप्त करता है। अतः—अब सूत्रकार इसी सम्बन्धको लेकर देव वक्तव्यताके विषयमें सूत्र कहते हैं—"चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो" इत्यादि।

सूत्रार्थ-असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरके जो लोकपाल सोमराज हैं उनकी चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, जैसे-कनका १, कनकलता २, चित्रगुप्ता ३ और वसुन्धरा ४। इस तरहका कथन चमरके लोकपाल जो यम वैश्रवण और वरुण हैं, उनकी अग्र महिषियोंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके लोकपाल जो सोमराज

પૂર્વોક્ત ચોથા ભાંગાનો પાલક પુરુષ દેવત્વને પ્રાપ્ત કરે છે આ સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર દેવવક્તવ્યતા વિષયક સૂત્રોનું કથન કરે છે

" ચમરસ્સ ણં અસુરિંદસ્સ અસુરકુમારરન્નો " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—અસુરેન્દ્ર અસુરકુમારરાજ ચમરના સોમ નામના લોકપાલને ચાર અગ્ર મહિષીઓ છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) કનકા, (૨) કનકલતા, (૩) ચિત્રગુપ્તા અને (૪) વસુંધરા. ચમરના યમ, વૈશ્રવણ અને વરુણ નામના બીજા ત્રણ લોકપાલોની અગ્રમહિષીઓના વિષયમાં પણ એવું જ કથન સમજવું.

बलेः खलु वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–मित्रगा १, सुभद्रा २, विद्युत् ३, अशनी ४। एवं यमस्य, वैश्रवणस्य, वरुणस्य,

धरणस्य खलु नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य कालपालस्य महाराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अशोका १, विमला २, सुप्रभा ३, सुदर्शना ४। एवं यावत् शङ्खपालस्य।

भूतानन्दस्य खलु नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य कालपालस्य महाराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–सुनन्दा १, सुभद्रा २, सुजाता ३, सुमनाः ४। एवं यावत् शैलपालस्य यथा धरणस्य, एवं सर्वेषां दक्षिणेन्द्रलोकपालानां यावद् घोषस्य, यथा भूतानन्दस्य, एवं यावत् महाघोषस्य लोकपालानाम्।

हैं उनकी अग्र महिषियां कही गई हैं, उनके नाम इस प्रकारसे है। मित्रगा १, सुभद्रा २, विद्युत ३ और अशनी ४। ऐसेही इनके लोकपाल जो यम वैश्रवण और वरुण हैं,–उनकी अग्र महिषियोंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज जो धारण हैं उनके लोकपाल जो कालपाल महाराज हैं। उनकी चार अग्र महिषियां कही गई हैं, जैसे–अशोका १, विमला २, सुप्रभा ३, और सुदर्शना ४। इस तरह का कथन यावत् शङ्खपालकी अग्र महिषियोंके सम्बन्धमेंभी जानना चाहिये। नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्दके लोकपाल महाराज कालपालहैं। उनकी अग्र महिषियांहै, सुनन्दा १, सुभद्रा २, सुजाता ३ और सुमना ४।ऐसाही कथन इनके यावत्-जो शैलपालहैं, उनके

रोचनेन्द्र वैरोचनराय બલિના સોમ નામના લોકપાલને ચાર અગ્રમહિષીઓ છે, તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે–(૧) મિત્રગા, (૨) સુભદ્રા, (૩) વિદ્યુત્ અને (૪) અશની બલિના યમ, વૈશ્રવણ અને વરુણ નામના બીજા ત્રણ લોકપાલોની અગ્રમહિષીઓના વિષયમાં પણ એવું જ કથન સમજવું.

નાગકુમારેન્દ્ર નાગકુમારરાય ધરણના લોકપાલ કાલપાલ મહારાજને ચાર અગ્રમહિષીઓ છે. તેમના નામ આ પ્રમાણે છે–(૧) અશોકા, (૨) વિમલા, (૩) સુપ્રભા અને (૪) સુદર્શના ધરણના શંખપાલ પર્યન્તના બીજા ત્રણ લોકપાલોની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ આ પ્રકારનું જ કથન સમજી લેવું

નાગકુમારેન્દ્ર નાગકુમારરાય ભૂતાનન્દના કાલપાલ નામના લોકપાલની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે–(૧) સુનન્દા, (૨) સુભદ્રા, (૩) સુજાતા અને (૪) સુમના. ભૂતાનન્દના શૈલપાલ પર્યન્તના બીજા ત્રણ લોક

कालस्य खलु पिशाचेन्द्रस्य पिशाचराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कमला १, कमलप्रभा २, उत्पला ३, सुदर्शना ४। एवं महाकालस्यापि।

सुरूपस्य खलु भूतेन्द्रस्य भूतराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–रूपवती १, बहुरूपा २, सुरूपा ३, सुभगा ४। एवं प्रतिरूपस्यापि,

पूर्णभद्रस्य खलु यक्षेन्द्रस्य यक्षराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पुत्रा १, बहुपुत्रिका २, उत्तमा ३, तारका ४। एवं माणिभद्रस्यापि,

अग्र महिषियोंके सम्बन्धमेंभी जानना चाहिये। यहां यावत् शब्दसे कोलपाल और शङ्खपाल इन दोनों लोकपालोंका ग्रहण हुवा है। इस तरह–समस्त दक्षिणेन्द्रके लोकपालोंकी अग्र महिषियोंके सम्बन्धमें यावत्–दक्षिणेन्द्र घोषके लोकपालोंकी अग्र महिषी तक समझ लेना चाहिये। इस तरहसे उत्तरार्धके अधिपति जो यावत् महाघोष हैं उनके लोकपालोंकी अग्र महिषियोंके सम्बन्धमेंभी जानना चाहिये। पिशाचेन्द्र पिशाचराजकालकी अग्रमहिषियां ये चार हैं, कमला १, कमलप्रभा २, उत्पला ३ और सुदर्शना ४। इसी तरहसे महाकालकी अग्रमहिषियोंके सम्बन्धमेंभी जानना चाहिये। भूतेन्द्र–भूतराज सुरूपकीभी चार अग्र महिषियां हैं, जैसे–रूपावती १, बहुरूपा २, सुरूपा ३ और सुभगा ४। ऐसेही प्रतिरूपकी अग्रमहिषियोंके सम्बन्धमें जानना।

यक्षेन्द्र–यक्षराज पूर्णभद्रकी चार अग्रमहिषियां जैसे–पुत्रा १, बहुपुत्रिका २, उत्तमा ३, तारका ४ ये हैं। इसी तरहसे माणिभद्रकी

પાલોની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ એ જ પ્રમાણે કથન સમજવું અહીં 'યવન્ત' પદથી કોલપાલ અને શંખપાલ નામના બે લોકપાલો ગ્રહણ કરવા જોઇએ.

એ જ પ્રમાણે ઘોષ પર્યન્તના સમસ્ત દક્ષિણેન્દ્રોના લોકપાલોની અગ્ર મહિષીઓનું કથન અહીં કરવું જોઇએ. એ જ પ્રમાણે મહાઘોષ પર્યન્તના ઉત્તરાર્ધના ઇન્દ્રોના લોકપાલોની અગ્રમહિષીઓનું કથન પણ અહીં કરવું જોઇએ.

પિશાચેન્દ્ર પિશાચરાજ કાળની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) કમલા, (૨) કમલપ્રભા, (૩) ઉત્પલા અને (૪) સુદર્શના એ જ પ્રમાણે મહાકાળની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ સમજવું ભૂતેન્દ્ર ભૂતરાજ સુરૂપની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) રૂપવતી (૨) બહુરૂપા (૩) સુરૂપા અને (૪) સુભગા પ્રતિરૂપની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ એવું જ કથન સમજવું યક્ષેન્દ્ર યક્ષરાજ પૂર્ણભદ્રની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) પુત્રા (૨) બહુપુત્રિકા (૩) ઉત્તમા અને (૪) તારકા એ જ પ્રકારનું કથન માણિભદ્રની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ સમજવું

भीमस्य खलु राक्षसेन्द्रस्य राक्षसराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पद्मा १, वसुमती २, कनका ३, रत्नप्रभा ४। एवं महाभीमस्यापि, किन्नरस्य खलु किन्नरेन्द्रस्य किन्नरराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अवतंसा १, केतुमती २, रतिसेना ३, रतिप्रभा ४। एवं किंपुरुषस्यापि,

सत्पुरुषस्य खलु किंपुरुषेन्द्रस्य किंपुरुषराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-रोहिणी १, नवमिका २, ह्रीः ३, पुष्पावती ४। एवं महापुरुषस्यापि। अतिकायस्य खलु महोरगेन्द्रस्य महोरगराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-भुजगा १, भुजगावती २, महाकच्छा ३, स्फुटा ४। एवं महाकायस्यापि।

अग्रमहिषियोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये। राक्षसेन्द्र - राक्षसराज भीमकी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे-पद्मा, वसुमती, कनका, रत्नप्रभा ४। इसी तरह महाभीमकी अग्रमहिषियोंको जानना चाहिये। किन्नरेन्द्र-किन्नरराज किन्नरकी महिषियां अवतंसा १, केतुमती २, रतिसेना ३, रतिप्रभा ४ चार कही गई हैं। ऐसेही किम्पुरुषकी चार अग्रमहिषियोंको जानना चाहिये। किंपुरुषेन्द्र-किंपुरुषराज सत्पुरुषकी रोहिणी १, नवमिका २, ह्री ३, और पुष्पावती ४ ये चार अग्रमहिषियां हैं। इसी तरह महापुरुषकीभी अग्रमहिषियोंको जानना चाहिये। महोरगेन्द्र -महोरगराज अतिकायकी चार अग्रमहिषियांहैं, भुजगा १, भुजगावती २, महाकच्छा ३ और स्फुटा ४। इसी तरहसे महाकायकी अग्रमहिषियोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये। गन्धर्वेन्द्र-गन्धर्वराज

રાક્ષસેન્દ્ર રાક્ષસરાજ ભીમની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે--(૧) પદ્મા, (૨) વસુમતી, (૩) કનકા અને (૪) રત્નપ્રભા. મહાભીમની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ એવું જ કથન સમજવુ

કિન્નરેન્દ્ર કિન્નરરાય કિન્નરની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે (૧) અવતંસા, (૨) કેતુમતી, (૩) રતિસેના અને (૪) રતિપ્રભા એવાં જ કિમ્પુરુષની ચાર અગ્રમહિષીઓના નામો પણ સમજવા.

કિંપુરુષેન્દ્ર કિંપુરુષરાય સત્પુરુષની ચાર અગ્રમહિષીઓના નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) રોહિણી, (૨) નવમિકા, (૩) હ્રી, અને (૪) પુષ્પાવતી મહાપુરુષની અગ્રમહિષીઓનાં પણ એ જ પ્રમાણે નામો સમજવા

મહોરગેન્દ્ર મહોરગરાય અતિકાયની ચાર અગ્રમહિષીઓના નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) ભુજગા, (૨) ભુજગાવતી, (૩)મહાકચ્છા, અને (૪) સ્ફુટા એ જ પ્રમાણે મહાકાયની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ સમજવ

गीतरतेः खलु गन्धर्वेन्द्रस्य गन्धर्वराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-सुघोषा १, विमला २, सुस्वरा ३, सरस्वती ४। एवं गीतयशसोऽपि। चन्द्रस्य खलु ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-चन्द्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्माली ३, प्रभङ्करा ४। एवं सूरस्यापि, नवरं सूरप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्माली ३, प्रभङ्करा ४। अङ्गारस्य खलु महाग्रहस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-विजया, १, वैजयन्ती २, जयन्ती ३, अपराजिता ४। एवं सर्वेषां महाग्रहाणां यावत् भावकेतोः।

शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-रोहिणी १, मदना २, चित्रा ३, सोमा ४। एवं यावत् वैश्रवणस्य।

गीतरतिके अग्रमहिषियोंमें सुघोषा १, विमला २, सुस्वरा ३ और सरस्वती ४ ये चार हैं। इसी प्रकारसे गीतयशकी अग्रमहिषियोंके विषयमें भी जानना चाहिये।

ज्योतिषेन्द्र-ज्योतिषराज चन्द्रकी चार अग्रमहिषियां चन्द्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्माली ३, प्रभङ्करा ४ हैं। अङ्गारक नामक महाग्रहकी चार अग्रमहिषियां हैं। विजया १, वैजयन्ती २, जयन्ती ३, अपराजिता ४। ऐसाही कथन भावकेतुके समस्त महाग्रहोंकी अग्र महिषियोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये। देवेन्द्र-देवराज शक्रके लोक पाल सोम महाराजकी अग्रमहिषियां चार हैं, रोहिणी १, मदना २, चित्रा ३, सोमा ४। इसी प्रकार वैश्रवण लोकपालकी अग्र महिषियोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये। देवेन्द्र देवराज ईशानके लोकपाल सोम महा

ગંધર્વેન્દ્ર ગંધર્વરાય ગીતરતિની ચાર અગ્રમહિષીઓના નામ નીચે પ્રમાણે છે-(૧) સુઘોષા (૨) વિમલા, (૩) સુસ્વરા અને (૪) સરસ્વતી. એજ પ્રમાણે ગીતયશની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ સમજવું

જ્યોતિષેન્દ્ર જ્યોતિષરાજ ચન્દ્રની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) ચન્દ્રપ્રભા (૨) જ્યોત્સ્નાભા, (૩) અર્ચિમાલી અને (૪) પ્રભંકરા. અંગારક (મંગલ) નામના મહાગ્રહની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે (૧) વિજયા (૨) વૈજયન્તી, (૩) જયન્તી અને (૪) અપરાજિતા એવું જ કથન ભાવકેતુ આદિ સમસ્ત મહાગ્રહોની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ સમજવું

દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રના લોકપાલ સોમ મહારાજની ચાર અગ્રમહિષીઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે- ૧) રોહિણી, (૨) મદના (૩) ચિત્રા, અને (૪) સોમા એ જ પ્રમાણે વૈશ્રમણ પર્યન્તના એ લોકપાલની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ સમજવું દેવેન્દ્ર દેવરાજ ઈશાનના લોકપાલ સોમ મહારાજની ચાર

ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पृथिवी १, रात्री २, रजनी ३, विद्युत् ४। यावद् वरुणस्य।सू० ३४॥

टीका—" चमरस्से "—त्यादि-चमरस्य-तदाख्यस्य, 'खलु' वाक्यालङ्कारे, असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य-तत्सम्बन्धिनः सोमस्य-तदाख्यलोकपालस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कनका १, कनकलता २, चित्रगुप्ता ३, वसुन्धरा ४। एवं-सोमवत्, यमस्य वरुणस्य वैश्रवणस्य च प्रत्येकं चतस्रोऽग्रमहिष्यो बोध्याः। एवं सर्वत्रेशानपर्यन्तानां सर्वेषामिन्द्राणां-तत्तल्लोकपालाना प्रत्येकं तत्तन्नाम्न्योऽग्रमहिष्यो बोध्याः। सू० ३४।

पूर्वं देववक्तव्यता प्रोक्ता, देवत्वं च विकृतित्यागाद्भवतीति सूत्रत्रयेण विकृतिस्वरूपमाह—

मूलम्—चत्तारि गोरसविगईओ पण्णत्ताओ, तं जहा-खीरं १, दहिं २, सप्पि ३, णवणीयं ४। १।

चत्तारि सिणेहविगईओ पण्णत्ताओ, तं जहा-तेल्लं १, घयं २, वसा ३, णवणीयं ४। २।

चत्तारि महाविगईओ पण्णत्ताओ, तं जहा-महुं १, मंसं २, मज्जं ३, णवणीयं ४। ३। सू० ३५ ॥

राजकी चार अग्रमहिषियाँ पृथिवी १ रात्री २, रजनी ३, विद्युत् ४ हैं। ऐसे इनके लोकपाल वरुण तक प्रत्येककी चार चार अग्र महिषियोंको जानना चाहिये ॥ सू० ३४ ॥

कथित देवत्व विकृतिके त्यागसे होता है। अतः-अब सूत्रकार विकृतिका स्वरूप तीन सूत्रोंसे प्रगट करते हैं।

" चत्तारि गोरसविगईओ पण्णत्ताओ " इत्यादि—

અગ્રમહિષીઓ છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) પૃથિવી, (૨) રાત્રી, (૩) રજની અને (૪) વિદ્યુત તેમના વરુણ પર્યન્તના બીજા ત્રણ લોકપાલોની અગ્રમહિષીઓ વિષે પણ એવું જ કથન સમજવું. ॥ સૂ. ૩૪ ॥

ઉપર્યુક્ત દેવત્વની પ્રાપ્તિ વિકૃતિના ત્યાગથી થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ત્રણ સૂત્રો દ્વારા વિકૃતિનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે

" चत्तारि गोरसविगईओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ—

छाया—चतस्रो गोरसविकृतयः मज्ञप्ताः, तद्यथा–क्षीरं १, दधि २, सर्पिः ३, नवनीतम् ४। १। चतस्रः स्नेहविकृतयः मज्ञप्ताः, तद्यथा–तैलं १, घृतं २, वसा ३, नवनीतम् ।४। २। चतस्रो महाविकृतयः मज्ञप्ताः, तद्यथा–मधु १, मांसं २, मद्यं ३, नवनीतम् ४।३॥ सू० ३५ ॥

टीका—" चत्तारि " इत्यादि—गोरसशब्दो रूढ्या गोमहिष्यादिदुग्धमभृतिरसवाचकः, गवां रस इति व्युत्पत्त्या योगार्थो नात्र स्वीकृतः, तद्रूपा विकृतयो गोरसविकृतयः ताश्चतस्रः मज्ञप्ताः, तद्यथा–क्षीरं–दुग्धं १, दधि २, सर्पिः–घृतम् ३, नवनीतं–' मक्खन ' इति प्रसिद्धम् ।४। १ ॥

" चत्तारि सिणेह " इत्यादि—चतस्रः स्नेहविकृतयः, मज्ञप्ताः, तद्यथा–तैलं १, घृतं २, वसा–' चर्वी ' इति भाषाप्रसिद्धा ३, नवनीतम् ४। २।

" चत्तारि महे "—त्यादि–चतस्रो महाविकृतयः मज्ञप्ताः तद्यथा–मधु १, मांसं २, मद्यं ३, नवनीतं चेति ४ । ३ । सू० ३५ ।

गोरस विकृतिया चार कही गई हैं, दूध–दही–घी मक्खन ४ ।
स्नेह विकृतियां चार हैं–तेल–घी–वसा–नवनीत ४ ।
चार महाविकृतियां हैं, मधु–मांस–मद्य–मक्खन ४ ।

" गवांरसः "—गायका जो रस है वह गोरस है, ऐसी व्युत्पत्ति योगार्थ यहां नहीं लिया गया है । गोरस रूप जो विकृति है वह गोरस विकृति है । ये गोरस विकृतियां क्षीर–दूध आदिक रूप है । स्नेह विकृतियोंमें जो वसा विकृति आई है उसका अर्थ चर्वी है ॥ सू ३५ ॥

अब सूत्रकार कूटागारको और कूटागारशालाको दृष्टान्त रूपसे तथा पुरुष एवं स्त्रीको दार्ष्टान्तिक रूपसे कहनेकी इच्छासे चार सूत्रोंका

ગોરસ વિકૃતિયો ચાર કહી છે–દૂધ, દહીં, ઘી અને માખણ

સ્નેહ વિકૃતિયો પણ ચાર કહી છે–તેલ, ઘી, વસા (ચર્બી) અને નવનીત (માખણ)

ચાર મહાવિકૃતિયો કહી છે–મધ, માંસ, મદ્ય અને માખણ.

ગોરસ શબ્દ રૂઢિગત રૂપે ગાય, ભેંસ આદિના દુગ્ધાદિ રસનો વાચક છે " ગવાંરસઃ " " ગાયનો જે રસ તેનું નામ ગોરસ " એવી વ્યુત્પત્તિ દ્વારા પ્રાપ્ત થતો અર્થ અહીં લેવાનો નથી ગોરસ રૂપ જે વિકૃતિ છે તેનું નામ ગોરસ વિકૃતિ છે તે ગોરસ વિકૃતિયો દૂધ આદિ રૂપ છે સ્નેહ વિકૃતિયોના પ્રકારમાં જ 'વસા" શબ્દ પડ આ યુ છે તેનો અર્થ ચર્બી' થાય છે । સૂ ૩૫ ।

હવે સૂત્રકાર કૂટાગારને અને કૂટાગારશાલાને દૃષ્ટાન્ત રૂપે અને પુરુષ તથા સ્ત્રીને દાર્ષ્ટાન્તિક રૂપે પ્રકટ કરવાના હેતુથી ચાર સૂત્રોનું કથન કરે છે

कूटागारं कूटागारशालां च दृष्टान्ततया पुंस्त्रियौ च दार्ष्टान्तिकतया वक्तु-कामः सूत्रचतुष्टयमाह—

मूलम्—चत्तारि कूडागारा पण्णत्ता, तं जहा-गुत्ते णाममेगे गुत्ते १, गुत्ते णाममेगे अगुत्ते २, अगुत्ते णाममेगे गुत्ते ३, अगुत्ते णाममेगे अगुत्ते ।४। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-गुत्ते णाममेगे गुत्ते १, गुत्ते णाममेगे अगुत्ते २, अगुत्ते णाममेगे गुत्ते ३, अगुत्ते णाममेगे अगुत्ते ४।

चत्तारि कूडागारसालाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-गुत्ताणाम-मेगा गुत्तदुवारा १, गुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा २, अगुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा ३, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा ४। एवा-मेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-गुत्ता णाममेगे गुत्तिंदिया १, गुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया २, अगुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया ३, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया ४ ॥ सू० ३६ ॥

छाया—चत्वारि कूटागाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—गुप्तं नामैकं गुप्तम् १, गुप्तं नामैकमगुप्तम् २, अगुप्तं नामैकं गुप्तम् ३, अगुप्तं नामैकमगुप्तम् ४। एव-

कथन करते हैं। "चत्तारि कूडागारा पण्णत्ता" इत्यादि—

सूत्रार्थ—चार कूटागार कहे गयेहैं, एक कूटागार ऐसा होताहै जो प्राकार आदिसे वेष्टित होता है और—द्वार आदिभी जिसके बन्द रहते हैं १। एक कूटागार ऐसा होता है जो प्राकार आदिसे वेष्टित होता है, पर द्वार आदि जिसके बन्द नहीं होताहै, कोई कूटागार ऐसा होता है कि जो प्राकार आदि से वेष्टित नहीं होता है, परन्तु—द्वार आदि जिसके बन्द

"चत्तारि कूडगारा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—કૂટાગારના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) કોઈ કૂટાગાર એવું હોય છે કે જે પ્રાકાર (કોટ) આદિથી વેષ્ટિત હોય છે અને જેના દ્વારાદિ પણ બંધ રહે છે (૨) કોઇ કૂટાગાર એવુ હોય છે કે જે પ્રાકાર આદિથી વેષ્ટિત હોય છે પણ તેના દ્વારાદિ બંધ હોતાં નથી. (૩) કોઈ કૂટાગાર એવું હોય છે કે જે પ્રાકાર આદિથી વેષ્ટિત હોતું નથી પણ તેનાં દ્વારાદિ બંધ હોય છે. (૪) કોઈ

मेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-गुप्तो नामैको गुप्त १, गुप्तो नामैकोऽगुप्त २, अगुप्तो नामैको गुप्तः ३, अगुप्तो नामैकोऽगुप्तः ४।

चतस्रः कूटाऽऽकारशालाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-गुप्ता नामैका गुप्तद्वारा १, गुप्ता नामैकाऽगुप्तद्वारा २, अगुप्ता नामैका गुप्तद्वारा ३, अगुप्ता नामैकाऽगुप्तद्वारा ४।

एवमेव चतस्रः स्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-गुप्ता नामैका गुप्तेन्द्रिया १, गुप्ता नामैकाऽगुप्तेन्द्रिया २, अगुप्ता नामैका गुप्तेन्द्रिया ३, अगुप्ता नामैकाऽगुप्तेन्द्रिया ४। सू० १९।

टीका—" चत्तारि कूडागारा " इत्यादि—चत्वारि कूटागाराणि-शिखरयुक्तगृहाणि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-गुप्त-प्राकारप्रभृतिना वेष्टितं कोषगृहादिकं तदेव पुनर्गुप्तं-पिहितद्वारतया, एकं भवति, ' नामे ' ति वाक्यालङ्कारे एवमग्रेऽपि। इत्यमेवावशिष्टास्त्रयो भङ्गा विज्ञेयाः ।४ इति दृष्टान्तभूतकूटागारसूत्रम् ॥

रहते हैं ३। तथा चौथा कूटागार ऐसा होता है कि जो न तो प्राकार आदिसे वेष्टित होता है और न तो द्वार आदि ही उसके बन्द रहते हैं ४। इसी तरहसे चार पुरुषजात कहे गये हैं। जैसे-गुप्त गुप्त, गुप्त अगुप्त, अगुप्त गुप्त और अगुप्त अगुप्त ४। चार कूटागारशालाएं कही गई हैं, गुप्ता गुप्तद्वारा, गुप्ता अगुप्तद्वारा, अगुप्ता गुप्तद्वारा, अगुप्ता अगुप्त द्वारा ४। शिखरयुक्त गृहका नाम कूटागार है। जिसका कोषगृह आदि प्राकार आदिसे वेष्टित होता है। तथा स्वयंभी जो पिहित द्वारवाला होता है, ऐसा वह कूटागार गुप्त है। इसी तरह आगे भी जानना चाहिये। अवशिष्ट और तीन भङ्गभी स्वयं उत्प्रेक्षित कर लेना चाहिये।

येचार कूटागार जैसे कहे गये हैं-उसी प्रकारसे पुरुष जातभी चार कहे गये हैं। उनमें कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो वस्त्रादिसे आच्छा-

---

કૂટાગાર એવું હોય છે કે જે પ્રાકારાદિથી વેષ્ટિત પણ હોતું નથી અને તેના દ્વારાદિ પણ બંધ હોતાં નથી ।

એ જ પ્રમાણે ચાર પુરુષજાત કહી છે-(૧) ગુપ્ત ગુપ્ત, (૨) ગુપ્ત અગુપ્ત, (૩) અગુપ્ત ગુપ્ત અને (૪) અગુપ્ત અગુપ્ત

ચાર કૂટાગારશાલાઓ કહી છે-(૧) ગુપ્તા ગુપ્તદ્વારા, (૨) ગુપ્તા અગુપ્ત દ્વારા, (૩) અગુપ્તા ગુપ્તદ્વારા અને (૪) અગુપ્તા અગુપ્તદ્વારા.

શિખરયુક્ત ગૃહનું નામ કૂટાગાર છે જે કૂટાગાર પ્રાકાર (કોટ) આદિથી પરિવેષ્ટિત હોય છે અને જેનાં દ્વાર પણ બંધ હોય છે એવા તે કૂટાગારને ગુપ્ત ગુપ્ત રૂપ પહેલા પ્રકારમાં મૂકી શકાય છે એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગાઓ પણ જાતે જ સમજી શકાય એવાં છે

अथ दार्ष्टान्तिकपुरुषजातसूत्रम्—

"एवामेव"—इत्यादि-एवमेव-कूटागारवदेव, पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-एकः कश्चित् पुरुषः, गुप्तः-वस्त्रादिनाऽऽच्छादितः स एव पुनः गुप्तः-जितेन्द्रियतया कृताऽऽत्मरक्षो भवति, यद्वा-कालापेक्षया पूर्वं गुप्तो-गुप्तेन्द्रियोऽधुनाऽपि पुनर्गुप्तः १, एवमपरेऽपि भङ्गा ऊहनीयाः ।४। इति,

अथ दृष्टान्तभूतकूटाऽऽकारशालासूत्रम्—

"चत्तारि कूडागारे"—इत्यादि-कूटस्य-शिखरस्याऽऽकार इव आकारो यासां स्ताः कूटाऽऽकाराः ताश्चताः शालाः कूटाऽऽकारशालाऽशिखराऽऽकारगृहविशेषः, ताः, चतस्रः-चतुःसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः, अत्र दार्ष्टान्तिकस्त्रीविवक्षया तत्साधर्म्यप्रदर्शनाय 'कूटाऽऽकारशाले'-त्यस्य स्त्रीत्वेन निर्देशः । तद्यथा-गुप्ता-प्राकारादिना वृता, सैव पुनर्गुप्ता-पिहितद्वारतया, एका-काचित् कूटाऽऽकारशाला भवति, एवमपरेऽपि भङ्गा विवेचनीयाः ४।

दित होता हुवाभी जितेन्द्रिय होकर आत्मरक्षावाला होता है, अथवा जो कालकी अपेक्षा पहले गुप्त-गुप्तेन्द्रियवाला होता है और अबभी गुप्त है। यहां और जो तीन भङ्ग है वे स्वयं ऊहसे जानना चाहिये।

"चत्तारि कूडागारे" इत्यादि। शिखरके आकार जैसा आकार जिन शालाओंका होता है वे कूटागारशालाएं हैं, ऐसी कूटागारशालाएं शिखरोंके आकार जैसे गृहविशेष रूप होती हैं। कूटागार सदृश स्त्रियांभी चार प्रकारकी होती हैं, अर्थात्-जैसे कोई एक कूटागारशाला प्राकार आदिसे वेष्टित होती है और पिहितद्वारवाली होती है, उसी प्रकारसे कोई एक स्त्रीभी ऐसी होती है जो परिवार आदिसे

કૂટાગારનાં જેવા ચાર પ્રકાર કહ્યા છે, એવાં જ ચાર પ્રકારના પુરુષો પણ હોય છે (૧) કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે વસ્ત્રાદિથી આચ્છાદિત હોવા છતાં પણ જિતેન્દ્રિય હોવાથી આત્મરક્ષક હોય છે. અથવા કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે કાળની અપેક્ષાએ પહેલાં પણ ગુપ્ત (ગુપ્તેન્દ્રિયવાળો) હોય છે અને હાલમા પણ ગુપ્ત હોય છે બાકીના ત્રણ ભાગાઓનું કથન પણ આ પ્રથમ ભાગાને આધારે સમજી શકાય એવુ છે

"चत्तारि कूडगारे" ઇત્યાદિ શિખરના જેવો જે શાલાઓનો આકાર હોય છે તેને કૂટાગાર શાલાઓ કહે છે એવી કૂટાગાર શાલાઓ શિખરોના આકાર જેવા ગૃહવિશેષ રૂપ હોય છે. કૂટાગાર શાલાઓની જેમ સ્ત્રીઓ પણ ચાર પ્રકારની હોય છે. એટલે કે જેમ કોઈ એક કૂટાગારશાલા પ્રાકાર આદિથી

अथ दार्ष्टान्तिकस्त्रीसूत्रम्—

" एवामेव चत्तारि इत्थीओ " इत्यादि— एवमेव-कूटाऽऽकारशालावदेव, स्त्रियः चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-गुप्ता-परिवारवेष्टिता गेहमध्यगता वस्त्राऽऽच्छादिताङ्गी गूढस्वभावा वा, सैव पुनर्गुप्तेन्द्रिया-अनुचिताऽऽचरणान्निवर्तितेन्द्रिया, एका-काचित् स्त्री भवति, शेषभङ्गत्रयमेवमेव यथावदर्थः स्वयमूह्यः । सू० १६ ।

अनन्तरं गुप्तेन्द्रियत्वमुक्तं, तत्रेन्द्रियाणि चावगाहनाऽऽश्रयाणीत्यवगाहनां निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता, तं जहा-दव्वोगाहणा १, खेत्तोगाहणा २, कालोगाहणा ३, भावोगाहणा ४। सू० ३७।

छाया—चतुर्विधा अवगाहना प्रज्ञप्ता, तद्यथा-द्रव्यावगाहना १, क्षेत्रावगाहना २, कालावगाहना ३, भावावगाहना ४। सू० ३७ ।

वेष्टित होती है, या-घरके भीतर रहती है, या अच्छे-२ वस्त्रोंसे आच्छादित रहती है अथवा-गूढ स्वभाववाली होती है । ऐसी वह स्त्री गुप्ता स्त्री है और वह स्त्री अनुचित आचरणसे निवर्तित इन्द्रियवाली होती हुई गुप्तेन्द्रिया कही गई है । यह प्रथम भङ्ग है, बाकी तीन भङ्ग उद्भावित कर लेना चाहिये । जैसे-गुप्ता अगुप्तेन्द्रिया २, अगुप्ता गुप्तेन्द्रिया ३ अगुप्ता अगुप्तेन्द्रिया ४ ॥ सू० ३६ ॥

इन्द्रिया अवगाहनावाली होती हैं, अतः—अब सूत्रकार अवगाहना का निरूपण करते हैं । " चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता " इत्यादि ।

પરિવેષ્ટિત પણ હોય છે અને બંધ દ્વારવાળી પણ હોય છે તેમ કોઇ સ્ત્રી એવી હોય છે કે જે પરિવાર આદિથી વેષ્ટિત હોય છે, અથવા ઘરની અંદર રહે છે, અથવા સુંદર સુંદર વસ્ત્રોથી આચ્છાદિત રહે છે અથવા ગૂઢ સ્વભાવવાળી હોય છે એવી તે સ્ત્રી ગુપ્તા સ્ત્રી કહેવાય છે, અને તે સ્ત્રી અનુચિત આચરણ દ્વારા નિવર્તિત ઇન્દ્રિયોવાળી પણ બનેલી હોય તો તેને ગુપ્તેન્દ્રિયા પણ કહી શકાય છે આ ગુપ્તા ગુપ્તરૂપ પહેલો વિકલ્પ સમજવો, બાકીના જે ત્રણ ભાંગાઓ છે તેમનો ભાવાર્થ પણ આ પ્રથમ ભાંગાને આધારે સમજી લેવો બીજો ભાંગો-ગુપ્તા અગુપ્તેન્દ્રિયા, ત્રીજો ભાંગો-અગુપ્તા ગુપ્તેન્દ્રિયા અને ચોથો ભાંગો-અગુપ્તા અગુપ્તેન્દ્રિયા ॥ સૂ. ૩૬ ॥

ઇન્દ્રિયો અવગાહનાવાળી હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર અવગાહનાનું નિરૂપણ કરે છે " ચઉવ્વિહા ઓગાહણા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

टीका—" चउव्विहा ओगाहणा " इत्यादि — अवगाहना – अवगाहन्ते-आसते यत्र, अथवा-अवगाहन्ते-आश्रयन्ति जीवा यां सा अवगाहना-शरीरम्, सा अवगाहना चतुर्विधा, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-द्रव्यावगाहना-द्रव्यतोऽवगाहना-अनन्तद्रव्यरूपा १, क्षेत्रावगाहना-क्षेत्रतोऽवगाहनाऽसंख्येयप्रदेशावगाढा २, कालावगाहना-कालतोऽवगाहनाऽसंख्येयसमयस्थितिका ३, भावावगाहना-भावतोऽवगाहना वर्णाद्यनन्तगुणरूपा ४ । सू० ३७ ॥

सूत्रार्थ-अवगाहना चार प्रकारकी कही गईहै, जैसे-द्रव्याऽवगाहना१, क्षेत्राऽवगाहना २, कालाऽवगाहना ३, भावाऽवगाहना ४ ।

टीकार्थ-जीवोंका जिसमें रहना होताहै, अथवा जीव जिसका आश्रय करते हैं, वह अवगाहनाहै । अवगाहनाका तात्पर्य शरीर है । यह अवगाहना द्रव्यावगाहनादि भेदोंसे चार प्रकारसे विभक्त है। उसका सारांश ऐसा है कि द्रव्यको आश्रित करके जो अवगाहना है वह द्रव्यावगाहना है १ । क्षेत्रको लेकर जो अवगाहना है वह क्षेत्रावगाहना है २। कालको आश्रित करके जो अवगाहना है वह कालावगाहना है ३। और भावको आश्रित करके जो अवगाहना है वह भावाऽवगाहना है ४ । द्रव्याऽवगाहना अनन्त द्रव्यरूप होतीहै, क्षेत्रावगाहना-असंख्यात प्रदेशाऽवगाढ रूप होती है । कालावगाहना-असंख्यात समयकी स्थितिरूप है, और भावावगाहना-वर्णादि अनन्त गुणरूप होती है ॥ सू० ३७ ॥

સૂત્રાર્થ-અવગાહના ચાર પ્રકારની કહી છે—(૧) દ્રવ્યાવગાહના, (૨) ક્ષેત્રાવગાહના, (૩) કાલાવગાહના અને (૪) ભાવાવગાહના

ટીકાર્થ—જીવોનુ જેમાં રહેવાનુ થાય છે અથવા જીવો જેના આશ્રય કરે છે તે અવગાહના છે અવગાહનાના ભાવાર્થ શરીર છે. તે અવગાહનાના દ્રવ્યાવગાહના આદિ જે ચાર ભેદ કહ્યા છે તેમનુ હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—દ્રવ્યને આશ્રિત કરીને જે અવગાહના થાય છે તેને દ્રવ્યાવગાહના કહે છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ જે અવગાહના થાય છે તેને ક્ષેત્રાવગાહના કહે છે. કાળની અપેક્ષાએ જે અવગાહના થાય છે તેને કાલાવગાહના કહે છે અને ભાવની અપેક્ષાએ જે અવગાહના થાય છે તેને ભાવાવગાહના કહે છે. દ્રવ્યાવગાહના અનન્ત દ્રવ્યરૂપ હોય છે, કાલાવગાહના અસખ્યાત સમયની સ્થિતિ રૂપ હોય છે ક્ષેત્રાવગાહના અસંખ્યાત પ્રદેશાવગાઢ રૂપ હોય છે, અને ભાવાવગાહના વર્ણાદિ અનન્ત ગુણરૂપ હોય છે. ॥ સૂ. ૩૭ ॥

पूर्वमवगाहना निरूपिता, सा च प्रज्ञप्तिषु भवतीति प्रज्ञप्तिस्थानकचतुष्टयं निरूपयितुमाह—

मूलम्—चत्तारि पण्णत्तीओ अंगबाहिरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा चंदपण्णत्ती १, सूरपण्णत्ती २, जंबुद्दीवपण्णत्ती ३, दीवसागरपण्णत्ती ४। सू० ३८ ॥

छाया—चतस्रः प्रज्ञप्तयोऽङ्गबाह्याः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-चन्द्रप्रज्ञप्तिः १, सूरप्रज्ञप्तिः २, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ३, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः ४ ॥ सू० ३८ ॥

टीका—" चत्तारि पण्णत्तिओ " इत्यादि-अङ्गबाह्या -अङ्गानि-आचाराङ्गादीनि, तेभ्यो बहिर्भवा बाह्याः-अङ्गबाह्याः-आचाराङ्गादि पृथग्भूता, प्रज्ञप्तयः-प्रज्ञाप्यन्ते-प्रकर्षेण बोध्यन्ते ऽर्था यत्रेति प्रज्ञप्तयः, यद्वा ज्ञप्तिः-अर्थानां बोधः, प्रकृष्टा ज्ञप्तिर्यत्र ताः प्रज्ञप्तयः, ताश्चतस्रः=चतुःसंख्यका प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-चन्द्रप्रज्ञप्तिः-कालिकश्रुतरूपा १, ' सूरप्रज्ञप्तिः, तथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ' इमे प्रकीर्णा-

---

निरूपित यह अवगाहना प्रज्ञप्तियोंमें होती है। इसलीये अब सूत्रकार चार प्रज्ञप्तियोंका निरूपण करते हैं। ' चत्तारि पण्णत्तीओ " इत्यादि।

सूत्रार्थ—चार प्रज्ञप्तियां अङ्गबाह्य कही गई हैं, जैसे-चन्द्र प्रज्ञप्ति १, सूर प्रज्ञप्ति २, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ३ और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति ४।

टीकार्थ अङ्गबाह्यका तात्पर्य है जो आचाराङ्गादिसे बाहिर हो-वे, ये प्रज्ञप्तियां आचाराङ्गादि पृथग्भूत कही गई हैं। प्रकर्ष रूपसे अर्थ-पदार्थ जहां जाने जाते हैं, वे प्रज्ञप्तियां हैं। अथवा-प्रकृष्ट रूपसे अर्थोंका बोध जहांपरसे हो जाता है वह प्रज्ञप्ति है, ऐसी प्रज्ञप्तियां चार जो कही गई हैं उनमेंसे चन्द्रप्रज्ञप्ति कालिक श्रुतरूप है १ तथा—सूर प्रज्ञप्ति प्रकीर्ण रूप है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

આ અવગાહનાનું પ્રજ્ઞપ્તિમાં નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે તેથી હવે સૂત્રકાર ચાર પ્રજ્ઞપ્તિઓનું નિરૂપણ કરે છે ' ચત્તારિ પણ્ણત્તીઓ " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—આ ચાર પ્રજ્ઞપ્તિઓને અંગબાહ્ય કહી છે જેમકે (૧) ચન્દ્ર પ્રજ્ઞપ્તિ, (૨) સૂર પ્રજ્ઞપ્તિ, (૩) જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ અને (૪) દ્વીપસાગરપ્રજ્ઞપ્તિ.

ટીકાર્થ—"અંગબાહ્ય આ પદનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—આચારાંગ આદિ અંગોમાં જેમનો સમાવેશ થતો નથી એવી પ્રજ્ઞપ્તિઓને અંગબાહ્ય પ્રજ્ઞપ્તિઓ કહી છે ચન્દ્ર પ્રજ્ઞપ્તિ આદિ ચારને આચારાંગાદિથી પૃથક્ભૂત કહી છે અથવા અર્થ-પદાર્થનો બોધ જ્યાંથી પ્રકર્ષ રૂપે થાય છે તેનું નામ પ્રજ્ઞપ્તિ છે અહીં જે ચાર પ્રજ્ઞપ્તિઓ કહી છે તેમાંથી ચન્દ્રપ્રજ્ઞપ્તિ કાલિકશ્રુત રૂપ છે, તથા

चतुर्थ्यौ पञ्चम-षष्ठाङ्गयोरुपाङ्गभूते स्तः, अपरे द्वे तु प्रकीर्णरूपे ३, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः ।४। व्याख्याप्रज्ञप्तिः पञ्चमी विद्यते, सा चाङ्गप्रविष्टा, तेनात्र नोपात्तेति । सू० ३८ ॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदश भाषाकलितललितकलापालापक-प्रविशुद्ध गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्रीशाहूछत्रपति कोल्हापुर राजप्रदत्त 'जैन शास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि- जैनाचार्य -- जैनधर्मदिवाकर--पूज्यश्री -- घासीलाल व्रतिविरचितायां स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां व्याख्यायाम् चतुर्थ स्थानस्य प्रथमोद्देशः समाप्त ॥४-१॥

और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ये दो प्रज्ञप्तियां पांचवें और छठें अङ्गके (अङ्ग अर्थात्) उपाङ्ग हैं ।

यद्यपि-व्याख्याप्रज्ञप्तिभी पांचवी है, पर वह अङ्गप्रविष्ट है, इसलिये-उसका यहां ग्रहण नहीं हुवा है । प्रथम प्रज्ञप्ति-और द्वितीय प्रज्ञप्ति ये दो प्रज्ञप्तियां प्रकीर्ण हैं । और तीसरी तथा चौथी प्रज्ञप्तियां पांचवे-छठे अङ्गके उपाङ्ग रूप हैं ॥ सू० ३८ ॥

श्री जैनाचार्य- जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलाल व्रतिविरचित स्थानाङ्गसूत्रकी सुधानामक टीकार्थके चौथे स्थान का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥ ४ -१ ॥

સૂરપ્રજ્ઞપ્તિ પ્રકીર્ણરૂપ છે જબૂદ્રીપ પ્રજ્ઞપ્તિ અને દ્વીપસાગર પ્રજ્ઞપ્તિ, એ બન્ને પ્રજ્ઞપ્તિયો પાંચમાં અને છઠ્ઠા અંગના ઉપાંગરૂપ છે.

જો કે વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞપ્તિ પણ પાચમી છે, પણ તે અંગપ્રવિષ્ટ છે, તેથી અહીં તેને ગ્રહણ કરવામાં આવી નથી. પ્રથમપ્રજ્ઞપ્તિ અને દ્વિતીયપ્રજ્ઞપ્તિ, એ બે પ્રજ્ઞપ્તિઓ પ્રકીર્ણ છે ત્રીજી અને ચોથી પ્રજ્ઞપ્તિ પાંચમા અને છઠ્ઠા અગના ઉપાંગરૂપ છે. ॥ સૂ. ૩૮ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય-જૈન ધર્મ દિવાકર-પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલ મુનિ વિરચિત સ્થાનાંગ સૂત્રની ટીકાર્થના ચોથા સ્થાનકનો પહેલો ઉદ્દેશો સમાપ્ત ॥ ૪-૧ ॥

अथ द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते

पूर्वं चतुःस्थानकस्य प्रथमोद्देशो व्याख्यातः, साम्प्रतं द्वितीयोद्देशो व्याख्या तुमारभ्यते, तत्र पूर्वोद्देशेन सहास्याय सम्बन्धः—अनन्तरोक्तोद्देशे जीवादि द्रव्य पर्यायाणां चतुःस्थानकमभिहितमत्रापि तेषामेव तदेवाभिधीयते, तत्र पूर्वसूत्रेणा स्यायं सम्बन्धः—अनन्तरसूत्रे प्रज्ञप्तय उक्ताः, ताश्च प्रतिसंलीनैरेव ज्ञायन्त इति प्रतिसंलीनोऽप्रतिसंलीनाऽप्रतिसंलीनांश्च निरूपयितुं सूत्रचतुष्टयमाह—

सूत्रम्—चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा-कोहपडिसंलीणे १, माणपडिसंलीणे २, मायापडिसंलीणे ३, लोभपडिसंलीणे४॥१॥

—: चौथे स्थानकका दूसरा-उद्देशक :—

इस प्रकार चतुःस्थानकका प्रथम उद्देशक कहा। अब द्वितीय उद्देशक प्रारम्भ होता है। इसका पूर्व उद्देशकके साथ ऐसा सम्बन्ध है। अनन्तर उद्देशकमें जीवादिद्रव्य और उनकी पर्यायोंका चतुःस्थानक कहा गया है सो यहां पर भी उन्हींका वही कहा जावेगा। पूर्व सूत्रके साथ यहां ऐसा सम्बन्ध है कि-अनन्तर सूत्रमें जो प्रज्ञप्तियां कही गई हैं, वे प्रतिसंलीनों द्वारा जानी जाती हैं। अतः-अब सूत्रकार प्रतिसंलीनोंका और उनसे विपरीत अप्रतिसंलीनोंका निरूपण चार सूत्रोंसे करते हैं। "चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता" इत्यादि—

ચોથા સ્થાનકનો બીજો ઉદ્દેશક—

ચતુઃસ્થાનના પહેલા ઉદ્દેશાની પ્રરૂપણા પૂરી થઈ હવે સૂત્રકાર બીજા ઉદ્દેશાની પ્રરૂપણાનો પ્રારંભ કરે છે પહેલા ઉદ્દેશા સાથે આ ઉદ્દેશાનો આ પ્રકારનો સંબંધ છે-પહેલા ઉદ્દેશામાં જીવાદિ દ્રવ્ય અને તેમની પર્યાયોનું ચાર સ્થાનકોની અપેક્ષાએ નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે આ ઉદ્દેશામાં પણ તેમનુ જ ચાર ચાર સ્થાનકોને આધારે નિરૂપણ કરવામાં આવશે પૂર્વ સૂત્ર સાથે અહીં આ પ્રકારનો સંબંધ છે-પહેલા સૂત્રમાં પ્રજ્ઞપ્તિઓનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું તે પ્રજ્ઞપ્તિઓ પ્રતિસંલીનો દ્વારા જાણી શકાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રતિસંલીનોનું તથા તેમનાથી વિપરીત એવાં અપ્રતિસંલીનોનુ ચાર સૂત્રો દ્વારા નિરૂપણ કરે છે "ચત્તારિ પડિસંલીણા પણ્ણત્તા" ઈત્યાદિ—

चत्तारि अपडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा-कोहअपडिसंलीणे जाव लोभअपडिसंलीणे । २ ॥

चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा-मणपडिसंलीणे १, वाइपडिसंलीणे२, कायपडिसंलीणे ३, इंदियपडिसंलीणे ४।३॥

चत्तारि अपडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा-मणअपडिसंलीणे १, जाव इंदियअपडिसंलीणे ४। ४। ॥ सू० ३९ ॥

छाया—चत्वारः प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्रोधप्रतिसंलीनः १, मान-प्रतिसंलीनः २, मायाप्रतिसंलीनः ३, लोभप्रतिसंलीनः ४ । १ ।

चत्वारोऽप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्रोधाप्रतिसंलीनः यावत् लोभा प्रतिसंलीनः ४ । २ ।

चत्वारः प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनःप्रतिसंलीनः १, वाक्प्रतिसंलीनः २, कायप्रतिसंलीनः ३, इन्द्रियप्रतिसंलीनः । ४ । ३ ।

चत्वारोऽप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोऽप्रतिसंलीनः यावत् इन्द्रिया-प्रतिसंलीनः ४ । ४ । सू० ३९ ।

सूत्रार्थ—चार प्रतिसंलीन कहे गये हैं, जैसे—क्रोध प्रतिसंलीन१, मान प्रनिसंलीन २, माया प्रतिसंलीन ३, और लोभ प्रतिसंलीन ४ ।

चार अप्रतिसंलीन कहे गये हैं, जैसे—क्रोध अप्रतिसंलीन १ यावत् लोभ अप्रतिसंलीन ४ । इस प्रकारसे भी चार प्रतिसंलीन कहे गये हैं, जैसे—मनः प्रतिसंलीन १, वचन प्रतिसंलीन २, काय प्रतिसंलीन ३, और इन्द्रिय प्रतिसंलीन ४ । चार इस प्रकारसे भी अप्रतिसंलीन कहे हैं, जैसे—मनोऽप्रतिसलीन १, यावत् इन्द्रिय अप्रतिसंलीन ४ ।

ચાર પ્રકારના પ્રતિસંલીનો કહ્યા છે—(૧) ક્રોધ પ્રતિસલીન, (૨) માન પ્રતિસલીન, (૩) માયા પ્રતિસલીન અને (૪) લોભ પ્રતિસલીન એ જ પ્રમાણે ચાર પ્રકારના અપ્રતિસંલીનો કહ્યા છે-(૧) ક્રોધ અપ્રતિસલીન, (૨) માન અપ્રતિસલીન, (૩) માયા અપ્રતિસલીન અને (૪) લોભ અપ્રતિસંલીન. આ પ્રકારે પણ ચાર પ્રતિસલીન કહ્યા છે-(૧) મન પ્રતિસંલીન, (૨) વાક્ પ્રતિ-સલીન, (૩) કાય પ્રતિસંલીન અને (૪) ઇન્દ્રિય પ્રતિસલીન એ જ પ્રમાણે ચાર પ્રકારના અસંલીન નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે-(૧) મન અપ્રતિસંલીન આદિ ઇન્દ્રિય અપ્રતિ[illegible]

टीका—" चत्तारि पडिसंलीणा " इत्यादि—प्रतिसंलीनाः-प्रति-वस्तु वस्तु प्रतिसंलीना =आत्मसंगोपकाः प्रतिसंलीनाः, ते चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-क्रोधप्रतिसंलीन -क्रोधं प्रति उदयनिरोधेनोदितविफलीकरणेन च प्रतिसंलीनः क्रोधप्रतिसंलीन उक्तं च—

" उदयस्सेव निरोहो उदयपत्ताण वाऽफलीकरणं ।
एवं एत्थ कसायाणं कसायसंलीणया एसा । १ । "

छाया—" उदयस्यैव निरोध उदयप्राप्तानां वाऽफलीकरणम् ।
यदत्र कषायाणां कषायसंलीनतैषा । १ "

एवं मानादिष्वपि विज्ञेयम् ।

" चत्तारि अपडिसंलीणा " इत्यादि — अप्रतिसंलीनाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-क्रोधाप्रतिसंलीनः-क्रोधं प्रति अप्रतिसंलीनः-सम्यङ्निरोधरहितः १, एवं मानादिष्वपि विज्ञेयम् । २ ।

टीकार्थ-हर एक वस्तुके प्रति जो आत्मसंगोपक होतेहैं, वे प्रतिसंलीन हैं। ये प्रतिसंलीन जो क्रोध प्रतिसंलीन आदिके भेदसे चार कहे गये हैं उनका अभिप्राय ऐसा है-जो उदित हुवे क्रोधको विफल कर देते हैं या उसके उदयका निरोध कर देते हैं, वे क्रोध प्रतिसंलीन हैं। कहाभी है

" उदयस्सेवनिरोहो " इत्यादि ।

कषायोंके उदयका निरोध करना अथवा-उदय प्राप्त कषायोंको विफल करना यह कषाय संलीनता है। इस तरहका कथन मान आदिकोंमें भी समझ लेना चाहिये । चत्तारि अपडिसंलीणा-इत्यादि । क्रोध अप्रतिसंलीन आदिके भेदसे जो अप्रतिसंलीन चार प्रकारके कहे गये हैं, उनका तात्पर्य ऐसा है-ये क्रोध अप्रतिसंलीन हैं, इसी तरहका कथन मान आदिकोंमें भी जानना चाहिये ।

ટીકાર્થ—એક વસ્તુ પ્રત્યેથી આત્માને વાળી લેનારને પ્રતિસંલીન કહે છે જે ઉદયમાં આવેલા ક્રોધને વિફલ કરી નાખે છે અથવા તેના ઉદયનો નિરોધ કરી નાખે છે તેને ક્રોધ પ્રતિસંલીન કહે છે કહ્યું પણ છે કે—
" उदयस्सेवनिरोहो इत्यादि—કષાયોના ઉદયનો નિરોધ કરવો અથવા ઉદય પ્રાપ્ત કષાયોને વિફલ કરવા તેનું નામ કષાય સંલીનતા છે આ પ્રકારનું કથન માન, માયા અને લોભ વિષે પણ સમજવું

" चत्तारि अपडिसंलीणा " ઇત્યાદિ. અપ્રતિસંલીનના-ક્રોધ અપ્રતિસંલીન આદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે ઉદય પ્રાપ્ત ક્રોધનો નિરોધ નહીં કરનારને ક્રોધ અપ્રતિસંલીન કહે છે એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ અપ્રતિસંલીનનો ભાવાર્થ પણ જાતે જ સમજી લેવો.

"चत्तारि पडिसंलीणा" इत्यादि—पुनः प्रतिसंलीनाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-मनःप्रतिसंलीनः-कुशलमनस उदीरणेन अकुशलमनसो निग्रहेण च प्रतिसंलीनं-संनिरुद्धं मनः-चित्तं यस्य स तथा। एवं वाक्काययोरपि बोध्यम्। तथा-इन्द्रियप्रतिसंलीनो-मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिविषयेषु रागद्वेषनिवारकः, उक्तं च—

"अपसत्थाण निरोहो जोगाणमुदीरणं च कुसलाणं।
कज्जंमि य विही गमणं जोगे संलीणया भणिया। १।"
सद्देसु य भद्दयपावएसु सोयविसमुवागएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सया न होयव्वं॥ २॥"

छाया—"अप्रशस्तानां निरोधो योगानामुदीरणं च कुशलानाम्।
कार्ये च विधिना गमनं योगे संलीनता भणिता। १।
शब्देषु भद्रकपापकेषु श्रोत्रविषयमुपगतेषु।
तुष्टेन वा रुष्टेन वा श्रमणेन सदा न भवितव्यम्। २।" इति,
३। एवं शेषेन्द्रियेष्वपि प्रतिसंलीनता बोध्या।

"चत्तारि पडिसंलीणा" इत्यादि—

पुनः प्रतिसंलीन जो मनः प्रतिसंलीन आदिके भेदसे चार कहे गये हैं, उनका अभिप्राय ऐसा है कि कुशल मनके उदीरणसे और अकुशल मनके निग्रहसे जिसने अपने मनको प्रतिसंलीन कर लिया (रोकदिया) है वह "प्रतिसंलीन मनाः" है। इसी तरहसे वचन और कायके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। तथा इन्द्रियसंलीन वह है जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादि विषयोंमें राग-द्वेषका निवारक होता है। कहाभी है "अपसत्थाग निरोहो" इत्यादि। इसी प्रकारसे शेष इन्द्रियोंमें भी प्रतिसंलीनताकी व्याख्या कर लेनी चाहिये।

'चत्तारि पडिसलीणा" ઈત્યાદિ—પ્રતિસલીનના મન. પ્રતિસલીન આદિ જે ચાર ભેદ કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ-કુશલ મનના ઉદીરણથી અને અકુશલ મનના નિગ્રહથી જેણે પોતાના મનને પ્રતિસંલીન કરી દીધું છે, તેને 'પ્રતિસંલીનમનાઃ કહે છે. એ જ પ્રમાણે વચન અને કાયને વિષે પણ સમજવું ઈન્દ્રિય પ્રતિસલીન એ છે કે જે મનોજ્ઞ અને અમનોજ્ઞ શબ્દાદિ વિષયોમાં રાગ દ્વેષનો નિવારક હોય છે કહ્યુ પણ છે કે-"अपसत्थाणनिरोहो" ઈત્યાદિ.

એ જ પ્રમાણે બાકીની ઇન્દ્રિયોમાં પણ પ્રતિસંલીનતાની ......

स

"चत्तारि अपडिसलीणा" इत्यादि—अप्रतिसंलीनाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—मनोऽप्रतिसंलीनः—मनःसम्यङ्निरोधरहितः । एवं वाक्कायेन्द्रियेष्वपि बोध्यम् ।
॥ सू० ३९ ॥

पूर्वमप्रतिसंलीनः प्रोक्तः, स तु दीन एव भवतीति दीनं चतुर्भङ्गया निरूपयन् सप्तदशसूत्रीमाह—

मूलम्—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाम मेगे दीणे १, दीणे णाममेगे अदीणे २, अदीणे णाममेगे दीणे ३, अदीणे णाममेगे अदीणे ४ । १ ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीण परिणते १, दीणे णाममेगे अदीणपरिणते २, अदीणे णाममेगे दीणपरिणते ३, अदीणे णाममेगे अदीणपरिणते । ४। २।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीण रूवे १, ह ।४। ३। एवं दीणमणे ४, ४, दीणसंकप्पे ४, ५, दीण पन्ने ४, ६, दीणदिट्ठी ४, ७, दीणसीलायारे ४, ८, दीणववहारे ४, ९।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-दीणे णाममेगे दीण

"चत्तारि अपडिसलीणा" इत्यादि। यहां जो पुनः मनो प्रतिसलीन आदि के भेदसे चार अप्रतिसलीन कहे गये हैं। उनका तात्पर्य ऐसा है जो मनको सम्यक् प्रकारसे निरोध करनेसे रहित है, वह मनः अप्रति सलीन है इसी तरहका कथन वाक्–काय एवं इन्द्रियोंके निरोध सम्बन्धमें भी कर लेना चाहिये ॥ सू० ३९ ॥

ટીકા. " चत्तारि अपडिसंलीणा " ઇત્યાદિ–અપ્રતિસંલીનના મનઃ અપ્રતિસંલીન આદિ ચાર ભેદ કહ્યા છે, તે ચાર ભેદોનું સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે છે—

જે મનનો સમ્યક્ પ્રકારે નિરોધ (નિગ્રહ) કરવાથી રહિત હોય છે, તેને મનઃ અપ્રતિસંલીન કહે છે એ જ પ્રકારનું કથન વાક્ કાય અને ઇન્દ્રિયોના નિરોધ વિષે પણ સમજી લેવું જોઇએ. ॥ સૂ ૩૯ ॥

परक्कमे, दीणे णाममेगे अदीण० ह्व ।४। १०, एवं सव्वेसिं चउभंगो भाणियव्वो,

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा दीणे णाममेगे दीणवित्ती ४, ११, एवं दीणजाई १२, दीणभासी १३, दीणोभासी१४,

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणसेवी ह्व ।४। १५, दीणे णाममेगे दीणपरियाए १६, दीणे णाममेगे दीण परियाले ह्व ।४। १७ सव्वत्थ चउभंगो ॥सू ४०॥

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-दीनो नामैको दीनः १, दीनो नामैकोऽदीनः २, अदीनो नामैको दीनः ३, अदीनो नामैकोऽदीनः ४,१।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-दीनो नामैको दीनपरिणतः १, दीनो नामैकोऽदीनपरिणतः २, अदीनो नामैको दीनपरिणतः ३, अदीनो नामैकोऽदीनपरिणतः ४। २।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—दीनो नामैको दीनरूपः ह्व (४) ३,

---

जो अप्रतिसंलीन कहा गया है, वह तो दीनही होता है अतः अब सूत्रकार चतुर्भङ्गी द्वारा दीनका निरूपण करने निमित्त १७ सूत्रोंका कथन करते हैं। "चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" इत्यादि—

सूत्रार्थ-पुरुष चार कहे गयेहैं। दीन दीन१, दीन अदीन२, अदीन दीन३, और अदीन अदीन ४-१। पुरुषजात चार हैं। दीन दीनपरिणत १, दीन अदीनपरिणत २, अदीन दीनपरिणत ३, अदीन अदीनपरिणत ४ २। पुरुषजात चार कहे गये हैं। दीन दीनरूप १, दीन अदीनरूप २, अदीन

પહેલાના સૂત્રમા જે અપ્રતિસંલીન કહેવામા આવ્યા, તે તો દીન જ હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ચતુર્ભંગી દ્વારા દીનનું નિરૂપણ કરવા માટે ૧૭ સૂત્રોનું કથન કરે છે. "चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે-(૧) દીન દીન, (૨) દીન અદીન, (૩) અદીન દીન અને (૪) અદીન અદીન । ૧ । ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે—(૧) દીન દીન પરિણત, (૨) દીન અદીન પરિણત, (૩) અદીન દીન પરિણત અને (૪) અદીન અદીન પરિણત. । ૨ ।

एव दीनमनाः ४, ४, दीनसङ्कल्पः ४, ५, दीनप्रज्ञः ४, ६, दीनदृष्टिः ४, ७, दीनशीलाऽऽचारः ४, ८, दीनव्यवहारः ४, ९,

दीनरूप ३ और अदीन अदीनरूप ४ ३। चार पुरुषजात हैं-दीन दीनमन वाला १, दीन अदीन मनवाला २, अदीन दीन मनवाला ३ और अदीन अदीन मनवाला ४-४। पुरुषजात चार हैं। दीन दीन सङ्कल्पवाला १, दीन अदीन सङ्कल्पवाला २, अदीन दीन सङ्कल्पवाला ३ और अदीन अदीन सङ्कल्पवाला ४-५। पुरुषजात चार हैं। दीन दीन प्रज्ञावाला १, दीन अदीन प्रज्ञावाला २, अदीन दीन प्रज्ञावाला ३ और अदीन अदीन प्रज्ञावाला ४-६। पुरुषजात चार कहे गये हैं। दीन दीन दृष्टिवाला १, दीन अदीन दृष्टिवाला २, अदीन दीन दृष्टिवाला ३ और अदीन अदीन दृष्टिवाला ४-७। पुरुषजात चार कहे गये हैं। दीन दीन शीलाचार वाला १, दीन अदीन शीलाचारवाला २, अदीन दीन शीलाचारवाला ३, और अदीन अदीन शीलाचारवाला ४-८। पुरुषजात चार कहे गये हैं। दीन दीन व्यवहारवाला १ दीन अदीन व्यवहारवाला २, अदीन दीन व्यवहारवाला ३ और अदीन अदीन व्यवहारवाला ४-९। पुरुषजात चार कहे गये हैं। दीन दीन पराक्रमवाला १, दीन अदीन पराक्रमवाला

પુરુષજાત ચાર પ્રકારની કહી છે—(૧) દીન દીનરૂપ, (૨) દીન અદીનરૂપ, (૩) અદીન દીનરૂપ અને (૪) અદીન અદીનરૂપ । ૩ । પુરુષજાત ચાર કહી છે-(૧) દીન દીન મનવાળો, (૨) દીન અદીન મનવાળો, (૩) અદીન દીન મનવાળો અને (૪) અદીન અદીન મનવાળો । ૪ ।

ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે—દીન દીન સંકલ્પવાળો, (૨) દીન અદીન સંકલ્પવાળો, (૩) અદીન દીન સંકલ્પવાળો અને (૪) અદીન અદીન સંકલ્પ વાળો । ૫ । ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે-(૧) દીન દીન પ્રજ્ઞાવાળો, (૨) દીન અદીન પ્રજ્ઞાવાળો, (૩) અદીન દીન પ્રજ્ઞાવાળો અને (૪) અદીન અદીન પ્રજ્ઞાવાળો । ૬ । ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે-(૧) દીન દીન દૃષ્ટિવાળો, (૨) દીન અદીન દૃષ્ટિવાળો, (૩) અદીન દીન દૃષ્ટિવાળો અને (૪) અદીન અદીન દૃષ્ટિવાળો । ૭ । ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે-(૧) દીન દીન શીલાચારવાળો, (૨) દીન અદીન શીલાચારવાળો, (૩) અદીન દીન શીલાચારવાળો અને (૪) અદીન અદીન શીલાચારવાળો । ૮ । ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે (૧) દીન દીન વ્યવહારવાળો, (૨) દીન અદીન વ્યવહારવાળો, (૩) અદીન દીન વ્યવહારવાળો અને (૪) અદીન અદીન વ્યવહારવાળો । ૯ । ચાર પ્રકારના

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-दीनो नामैको दीनपराक्रमः, दीनो नामैकोऽदीनपराक्रमः ह्व (४) १०, एवं सर्वेषां चतुर्भङ्गी भणितव्या,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-दीनो नामैको दीनवृत्तिः ४, ११, एवं दीनजातिः १२, दीनभाषी १३, दीनावभासी (षी) १४,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-दीनो नामैको दीनसेवी ह्व (४) १५, एवं दीनो नामैको दीनपर्यायः १६, दीनो नामैको दीनपरिवारः ह्व (४) १७ सर्वत्र चतुर्भङ्गी । सू० ४० ।

२, अदीन दीन पराक्रमवाला ३ और अदीन अदीन पराक्रमवाला ४ १० पुरुषजात चार कहे गये हैं । दीन दीन वृत्तिवाला १, दीन अदीन वृत्ति वाला २, अदीन दीन वृत्तिवाला ३ और अदीन अदीन वृत्तिवाला ४-११ पुरुषजात चार हैं । दीन दीन जातिवाला १, दीन अदीन जातिवाला २, अदीन दीन जातिवाला ३ और अदीन अदीन जातिवाला ४-१२ । पुरुषजात चार कहे गये हैं । दीन दीनभाषी १, दीन अदीनभाषी २, अदीन दीनभाषी ३ और अदीन अदीनभाषी ४-१३ । पुरुषजात चार कहे गये हैं—दीन दीनाऽवभाषी-१ दीन अदीनावभाषी-२ अदीन दीनाऽवभाषी-३ और अदीन अदीनाऽवभाषी-४-१४ पुरुषजात चार कहे गये हैं—दीन दीनसेवी-१ दीन अदीनसेवी-२ अदीन दीनसेवी-३ और अदीन अदीनसेवी-४, १५, पुरुष जाति चार कहे गये हैं—

પુરુષ કહ્યા છે-(૧) હીન હીન પરાક્રમવાળો, (૨) હીન અહીન પરાક્રમવાળો, (૩) અહીન હીન પરાક્રમવાળો, (૪) અહીન હીન પરાક્રમવાળો અને (૪) અહીન અહીન પરાક્રમવાળો । ૧૦ ।

ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે—(૧) હીન હીન વૃત્તિવાળો, (૨) હીન અહીન વૃત્તિવાળો, (૩) અહીન હીન વૃત્તિવાળો, અને (૪) અહીન અહીન વૃત્તિવાળો । ૧૧ । ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે-(૧) હીન હીન જાતિવાળો, (૨) હીન અહીન જાતિવાળો, (૩)-અહીન હીન જાતિવાળો અને (૪) અહીન અહીન જાતિવાળો । ૧૨ । ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે-(૧) હીન હીન ભાષી, (૨) હીન અહીન ભાષી, (૩) અહીન હીન ભાષી અને (૪) અહીન અહીન ભાષી । ૧૩ । ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે-(૧) હીન હીનાવભાષી, (૨) હીન અહીનાવભાષી, (૩) અહીન હીનાવભાષી અને (૪) અહીન અહીનાવભાષી । ૧૪ ।

ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે—(૧) હીન હીન સેવી, (૨) હીન અહીન સેવી, (૩) અહીન હીન સેવી અને (૪) અહીન અહીન સેવી । ૧૫ ।

टीका—" चत्तारि पुरिसजाया " इत्यादि–चत्वारि पुरुषजातानि–पुरुषप्रकाराः, प्रज्ञप्ता, तद्यथा–एकः–कश्चित् पुरुषो हीन–पूर्वं देयवान्, उपार्जितधनादेः क्षीणत्वात् पश्चादपि दीनः, पुनर्धनाद्यागमाभावात्, यद्वा–दीनो बहिर्वृत्त्या निस्तेजशरीरत्वात्, स पुनर्दीनोऽन्तर्वृत्त्या कलुषितचित्तवृत्तिकत्वात्, इति प्रथमो भङ्गः १।

दीन दीन पर्याय–१ दीन अदीन पर्याय–२ अदीन दीन पर्याय–३ अदीन अदीन पर्याय–४, १६ पुरुष जात चार कहे गये हैं—दीन दीन परिवार–१ दीन अदीन परिवार–२ अदीन दीन परिवार–३ और—अदीन अदीन परिवार–४, १६ यह चालीसवां सूत्र है इसके अन्तर्गत ये–१७ सूत्र हैं, इनके द्वारा जो सत्रह चतुर्भङ्गी प्रतिपादित की गई है उस–प्रत्येक का भाव इस प्रकारसे है—

पुरुष जात का तात्पर्य पुरुष प्रकारसे है, इस प्रकार में कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो पहिले के उपार्जित धन के क्षय से दीन हो जाता है और–पश्चात् भी धनादि के अभाव से दीन ही बना रहता है अथवा—निस्तेज शरीर वाला होने के कारण कोई एक पुरुष ऐसा होता है—जो बहिर्वृत्ति से भी दीन होता है और–अन्तर्वृत्ति से भी कलुषित चित्त वृत्तिवाला होने के कारण दीन बना रहता है, ऐसा यह–१ भङ्ग है। तथा–कोई एक दूसरा पुरुष ऐसा भी होता है जो

ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે—(૧) દીન દીન પર્યાય, (૨) દીન અદીન પર્યાય, (૩) અદીન દીન પર્યાય અને (૪) અદીન અદીન પર્યાય । ૧૬ ।

ચાર પ્રકારના પુરુષ કહ્યા છે—(૧) દીન દીન પરિવાર, (૨) દીન અદીન પરિવાર, (૩) અદીન દીન પરિવાર અને (૪) અદીન અદીન પરિવાર । ૧૭ ।

આ ૪૦ માં સૂત્રમાં જે ૧૭ સૂત્રો આપ્યાં છે, તેમાં ૧૭ ચતુર્ભંગી આપી છે તેમનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવી છે—

પુરુષજાત એટલે પુરુષના પ્રકારો તે પ્રકારો અહીં ૧૭ સૂત્રો અને ૧૭ ચતુર્ભંગીઓ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે (૧) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે ઉપાર્જિત ધનના ક્ષયથી દીન થઈ ગયો હોય છે, અને ત્યાર બાદ પણ ધનાદિના અભાવે દીન દશામાં જ રહે છે અથવા–નિસ્તેજ શરીર વાળો હોવાને કારણે કોઈ માણસ બહિર્વૃત્તિની અપેક્ષાએ પણ દીન હોય છે અને કલુષિત ચિત્તવાળો હોવાને કારણે અન્તર્વૃત્તિની અપેક્ષાએ પણ દીન હોય છે

तथा-एकः-कश्चित् पूर्वं दीनः, जन्मनो दरिद्रत्वात् पश्चाद् अदीनः, समुपार्जितसम्पत्तिकत्वात्, यद्वा-दीनः, वहिर्वृत्त्या म्लानमुखयुक्तत्वात् अदीनः अन्तर्वृत्त्या औदार्यादिगुणवत्त्वात्, इति द्वितीयो भङ्गः । २ ।

तथा-एकः-अपरः पुरुषः पूर्वम् अदीनः, सम्पत्त्यादिशालित्वात्, पश्चाद् दीनो विनष्टसम्पत्त्यादित्वात्, यद्वा-दीनः, वहिर्वृत्त्या सुन्दराऽऽकारत्वात्, दीनः, अन्तर्वृत्त्या कलुषितचित्तत्वात्, इति तृतीयो भङ्गः । ३ ।

तथा-एकः-कश्चित् पुरुषः पूर्वम् अदीनः, धनादिसम्पन्नत्वात्, पश्चादपि अदीनः, तद्वृद्धिमत्त्वात्, यद्वा-अदीनः, वहिर्वृत्त्या हृष्टपुष्टशरीरत्वात्, पुनरप्यदीनः अन्तर्वृत्त्या प्रशस्तभाववत्त्वात्, इति चतुर्थो भङ्गः ४।१।

जन्म से दरिद्र होने के कारण पहले तो-दीन होता है पश्चात् अपने पुरुषार्थ से अर्जित सम्पत्ति वाला हो जाने से दीन नहीं रहता है, अथवा-म्लान मुख से युक्त होने के कारण कोई एक मनुष्य वहिर्वृत्ति से तो दीन होताहै, और औदार्य आदि गुणोंसे युक्त होनेके कारण अन्तर्वृत्ति से अदीन होता है. ऐसा यह-द्वितीय भङ्ग है । तथा-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो-सम्पत्ति आदि से युक्त होने के कारण पहले अदीन होता है और-पश्चात् विनष्ट सम्पत्तिवाला हो जाने से दीन हो जाता है, अथवा—बाहर में सुन्दराकार वाला होने से कोई एक पुरुष पहले अदीन होता है और बाद में कलुषित चित्तवृत्तिवाला होने के कारण अन्तरङ्ग से दीन होता है ऐसा यह तृतीय भङ्ग है-३ । तथा-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो-पहले भी धनादि सम्पन्न होने के

બીજો ભાગો—કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે જન્મથી દરિદ્ર હોવાને કારણે પહેલાં તો દીન હોય છે, પણ પાછળથી પુરુષાર્થ દ્વારા ધનોપાર્જન કરવાને કારણે દીન રહેતો નથી અથવા મ્લાન મુખાકૃતિથી યુક્ત હોવાને કારણે કોઈ એક પુરુષ બાહ્યવૃત્તિથી તો દીન લાગતો હોય છે, પણ ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી યુક્ત હોવાને લીધે અન્તર્વૃત્તિથી અદીન હોય છે

ત્રીજો ભાંગો—કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે સંપત્તિશાળી હોવાને કારણે પહેલાં તો અદીન હોય છે, પણ પાછળથી તેની સંપત્તિનો નાશ થઈ જવાથી દીન અવસ્થાવાળો થઈ ગયો હોય છે. અથવા સુંદર મુખાકૃતિ આદિને કારણે કોઈ માણસ બાહ્યદૃષ્ટિએ જોતાં તો અદીન લાગે છે, પણ કલુષિત ચિત્તવાળો હોવાને લીધે અન્તર્વૃત્તિથી દીન હોય છે

ચોથો ભાગો—કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પહેલાં પણ ધનાદિથી સંપન્ન હોવાને કારણે અદીન હોય છે અને ત્યારબાદ ધનાદિની

"चत्वारि" इत्यादि-चत्वारि पुरुषजातानि-चत्वारः पुरुषप्रकाराः, भङ्गस्थानि, तद्यथा-दीनो नामैको दीनपरिणतः, दीनो जात्यादिहीनः, दीनपरिणतः-दीनत्वेन परिणतः हिंसादिकर्मकारित्वात्, इति प्रथमो भङ्गः। एवं चतुर्भङ्गी विज्ञेया।४।

अनया रीत्या रूप मनः सङ्कल्प प्रज्ञा दृष्टि शीलाऽऽचार व्यवहार-पराक्रम-वृत्ति-जाति भाष्य-अवभासि सेवि पर्याय परिवारेतिशब्दानां दीनशब्देन सयोजनेन प्रत्येकं चतुर्भङ्गी योज्या। एषां व्याख्याऽस्यैव चतुर्थस्थानस्य प्रथमोद्देशे द्वितीयसूत्रे विलोकनीया। सू० ४०।

कारण अदीन होता है और-पश्चात् भी धनादि की वृद्धि हो जाने के कारण अदीन बना रहता है-४ ऐसा यह चौथा भङ्ग है। यह प्रथम सूत्रगत भङ्ग चतुष्टय का भाव है—द्वितीय सूत्रगत जो-भङ्ग चतुष्टय है उसका भाव इस प्रकार से है—कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो-जात्यादि से पहले से ही दीन दीन होता है और बाद में भी हिंस्र कार्यकारी हो जाने से दीनता से परिणत हो जाता है ऐसा यह-प्रथम भङ्ग है-१ इसी प्रकार से इस सूत्र के अवशिष्ट तीन भङ्ग भी अपने आप समझना चाहिये-४। इसी रीति से रूप-मन-सङ्कल्प-प्रज्ञा-दृष्टि-शीलाचार-व्यवहार-पराक्रम-वृत्ति – जाति–भाषी – अवभापी-सेवी–पर्याय और–परिवार इन शब्दों को दीन शब्द के साथ जोड

વૃદ્ધિ થવાને કારણે અદીન જ રહે છે અથવા સુંદર મુખાકૃતિ આદિને કારણે બાહ્યવૃત્તિથી પણ અદીન હોય છે અને ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી યુક્ત હોવાને કારણે અન્તર્વૃત્તિથી પણ અદીન જ હોય છે આ રીતે પહેલા સૂત્રના ચાર વિકલ્પોનો ભાવાર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે.

બીજા સૂત્રના ચાર ભાંગાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

(૧) "દીન દીન પરિણત" કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે જાતિ આદિની અપેક્ષાએ પહેલાં પણ દીન હોય છે અને ત્યારબાદ હિંસ પ્રવૃત્તિમાં પડી જવાને કારણે દીનતા પરિણત થઈ ગયો હોય છે, એવો આ પહેલો ભાગો સમજવો. એ જ પ્રમાણે આ સૂત્રના બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ જાતે જ સમજી લેવા. એ જ પ્રમાણે રૂપ, મન સંકલ્પ પ્રજ્ઞા, દૃષ્ટિ શીલાચાર, વ્યવહાર, પરાક્રમ, વૃત્તિ જાતિ, ભાષી અવભાષી સેવી પર્યાય અને પરિવાર આ શબ્દોને દીન શબ્દ સાથે ઉપરના ક્રમ પ્રમાણે જોડીને જે ચતુર્ભંગીઓ બનાવવામાં આવી છે, તેમનો ભાવાર્થ પણ પહેલા અને બીજા સૂત્રમાં કરેલા

पुरुषजाताधिकारादेवाष्टादशसूत्रीमाह—

मूलम्—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जे ४, १,

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-अज्जे णाममेगे अज्ज-परिणए ४, २। एवं अज्जरूवे ३, अज्जमणे ४, अज्जसंकप्पे ५, अज्ज-पन्ने ६, अज्जदिट्ठी ७, अज्जसीलायारे ८, अज्जववहारे ९, अज्जपर-क्कमे १०, अज्जवित्ती ११, अज्जजाई १२, अज्जभासी १३, अज्जओ-भासी १४, अज्जसेवी १५, एवं अज्जपरियाए १६, अज्जपरियाले १७ एवं सत्तर आलावगा १७ जहा दीणेणं भणिया, तहा अज्जेणावि भाणियव्वा,

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--अज्जे णाममेगे अज्ज-भावे १, अज्जे णाममेगे अणज्जभावे २, अणज्जे णाममेगे अज्ज-भावे ३, अणज्जे णाममेगे अणज्जभावे ४, १८ । सू० ४१ ।

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आर्यो नामैक आर्यः ४,१, चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आर्यो नामैक आर्यपरिणतः ४, २।

कर प्रत्येक की चतुर्भङ्गी बना लेना चाहिये। इन पदों की व्याख्या इसी चतुर्थ स्थानके प्रथम उद्देशक में द्वितीय सूत्र में देख लेना चाहिये॥४०

पुरुषजात के अधिकार को लेकर अब सूत्रकार अष्टादश सूत्रीका कथन करते हैं—" चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता "—इत्यादि—४१

સ્પષ્ટીકરણને આધારે સમજી લેવો. આ પદોની વ્યાખ્યા ચતુર્થ સ્થાનના પહેલા ઉદ્દેશાના બીજા સૂત્રમાં આપવામાં આવી છે, તો ત્યાંથી વાંચી લેવી ॥સૂ ૪૦॥

પુરુષ જાતનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે, તે સંબંધને અનુલક્ષીને સૂત્રકાર ૧૮ સૂત્રો દ્વારા પુરુષ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

' चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

" चत्तारि " इत्यादि–चत्तारि पुरुषजातानि–चत्वारः पुरुषप्रकाराः, मङ्गस्थानि, तद्यथा–दीनो नामैको दीनपरिणतः, दीनो जात्यादिहीनः, दीनपरिणतः–दीनत्वेन परिणतः हिंसादिकर्मकारित्वात्, इति प्रथमो भङ्गः। एवं चतुर्भङ्गी विज्ञेया।४।

अनया रीत्या रूप मनः सङ्कल्प प्रज्ञा दृष्टि शीलाऽऽचार व्यवहार-पराक्रम-वृत्ति जाति भाष्य-अवभासि सेवि पर्याय परिवारैविशेषकदानां दीनशब्देन संयोजनेन प्रत्येकं चतुर्भङ्गी बोध्या। एषां व्याख्याऽस्यैव चतुर्थस्थानस्य प्रथमोद्देशे द्वितीयसूत्रे विलोकनीया। सू० ४०।

कारण अदीन होता है और–स्मात् भी धनादि की वृद्धि हो जाने के कारण अदीन बना रहता है–४ ऐसा यह चौथा भङ्ग है। यह प्रथम सूत्रगत भङ्ग चतुष्टय का भाव है—द्वितीय सूत्रगत जो–भङ्ग चतुष्टय है उसका भाव इस प्रकार से है—कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो–जात्यादि से पहले से ही हीन दीन होता है और बाद में भी हिंस कार्यकारी हो जाने से दीनता से परिणत हो जाता है ऐसा यह–प्रथम भङ्ग है–१ इसी प्रकार से इस सूत्र के अवशिष्ठ तीन भङ्ग भी अपने आप समझना चाहिये–४। इसी रीति से रूप–मन–सङ्कल्प–प्रज्ञा–दृष्टि–शीलाचार–व्यवहार–पराक्रम–वृत्ति – जाति–भाषी – अवभाषी–सेवी–पर्याय और–परिवार इन शब्दों को दीन शब्द के साथ जोड़

વૃદ્ધિ થવાને કારણે અદીન જ રહે છે અથવા સુંદર મુખાકૃતિ આદિને કારણે આકારવૃત્તિથી પણ અદીન હોય છે અને ઔદાર્ય આદિ ગુણોથી યુક્ત હોવાને કારણે અન્તવૃત્તિથી પણ અદીન જ હોય છે આ રીતે પહેલા સૂત્રના ચાર વિકલ્પોનો ભાવાર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે.

બીજા સૂત્રના ચાર ભાંગાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

(૧) " દીન દીન પરિણત " કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે જાતિ આદિની અપેક્ષાએ પહેલાં પણ દીન હોય છે અને ત્યારબાદ હિંસા પ્રવૃત્તિમાં પડી જવાને કારણે દીનતા પરિણત થઈ ગયો હોય છે, એવો આ પહેલો ભાંગો સમજવો. એ જ પ્રમાણે આ સૂત્રના બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ જાતે જ સમજી લેવા. એ જ પ્રમાણે રૂપ, મન, સંકલ્પ પ્રજ્ઞા દૃષ્ટિ શીલાચાર, વ્યવહાર, પરાક્રમ, વૃત્તિ જાતિ, ભાષી અવભાષી, સેવી, પર્યાય અને પરિવાર આ શબ્દોને દીન શબ્દ સાથે ઉપરના ક્રમ પ્રમાણે જોડીને જે ચતુર્ભંગીઓ બનાવવામાં આવી છે, તેમનો ભાવાર્થ પણ પહેલા અને બીજા સૂત્રમાં કરેલા

पुरुषजाताधिकारादेवाष्टादशसूत्रीमाह—

मूलम्—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जे ४, १,

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-अज्जे णाममेगे अज्जपरिणए ४, २। एवं अज्जरूवे ३, अज्जमणे ४, अज्जसंकप्पे ५, अज्जपन्ने ६, अज्जदिट्ठी ७, अज्जसीलायारे ८, अज्जववहारे ९, अज्जपरक्कमे १०, अज्जवित्ती ११, अज्जजाई १२, अज्जभासी १३, अज्जओभासी १४, अज्जसेवी १५, एवं अज्जपरियाए १६, अज्जपरियाले १७ एवं सत्तर आलावगा १७ जहा दीणेणं भणिया, तहा अज्जेणवि भाणियव्वा,

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--अज्जे णाममेगे अज्जभावे १, अज्जे णाममेगे अणज्जभावे २, अणज्जे णाममेगे अज्जभावे ३, अणज्जे णाममेगे अणज्जभावे ४, १८। सू० ४१।

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आर्यो नामैक आर्यः ४,१, चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आर्यो नामैक आर्यपरिणतः ४, २।

कर प्रत्येक की चतुर्भङ्गी बना लेना चाहिये। इन पदों की व्याख्या इसी चतुर्थ स्थानके प्रथम उद्देशक में द्वितीय सूत्र में देख लेना चाहिये॥४०

पुरुषजात के अधिकार को लेकर अब सूत्रकार अष्टादश सूत्रीका कथन करते हैं—" चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता "–इत्यादि—४१

સ્પષ્ટીકરણને આધારે સમજી લેવો. આ પદોની વ્યાખ્યા ચતુર્થ સ્થાનના પહેલા ઉદ્દેશાના બીજા સૂત્રમાં આપવામાં આવી છે, તો ત્યાંથી વાંચી લેવી ॥સૂ ૪૦॥

પુરુષ જાતનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે, તે સંબંધને અનુલક્ષીને સૂત્રકાર ૧૮ સૂત્રો દ્વારા પુરુષ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

' ચત્તારિ પુરિસજાયા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

पत्रमार्यरूप ३, आर्यमनाः ४, आर्यसङ्कल्प ५, आर्यप्रज्ञ ६, आर्यदृष्टिः ७, आर्यशीलाऽऽचारः ८, आर्यव्यवहारः ९ आर्यपराक्रमः १० आर्यवृत्तिः ११, आर्यजाति १२, आर्यभाषी १३, आर्याविभासी १४ आर्यसेवी १५, एवमार्यपर्यायः १६, आर्यपरिवारः १७, एवं सप्तदशालाऽऽलापकाः १७ यथा दीनेन भणिता, तथाऽऽर्येणापि भणितव्या,

चत्वारि पुरुषजातानि,प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आर्यो नामैक आर्यभावः १, आर्यो नामैकोऽनार्यभावः २, अनार्यो नामैक आर्यभावः ३, अनार्यो नामैकोऽनार्यभावः ४, १८ । सू० ४१ ।

चार प्रकारके पुरुष कहे है ये इस प्रकार से है,

आर्य नाम वाला है और आर्य है ४-१

चार प्रकार के पुरुष कहे हैं—आर्य नामवाला आर्य परिणत है ४-२, इसी तरह से आर्य रूप वाला ३, आर्य मनवाला ४, आर्य सङ्कल्प वाला ५, आर्य प्रज्ञावाला ६, आर्य दृष्टि वाला ७, आर्य शील वाला ८, आर्य व्यवहार वाला ९, आर्य पराक्रम वाला १०, आर्य वृत्ति वाला ११, आर्य जाति वाला १२, आर्य भाषा वाला १३, आर्याविभाषी १४, आर्यसेवी १५, आर्य पर्यायवाला १६, आर्य परिवार वाला १७, इस प्रकार के सत्रह आलापक होते हैं जैसे दीनके साथ के आलापक कहे हैं वैसे ही आर्य के साथ भी कहना चाहिये

पुरुषजात चार कहे गये हैं जैसे—आर्य आर्य भाववाला–१ आर्य अनार्य भाववाला–२ अनार्य आर्य भाववाला–३ और–अनार्य अनार्य

ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે, જેવી રીતે કે આર્ય નામવાળા છે અને આર્ય છે ૪-૧.

ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે–આર્ય નામવાળા છે અને આર્ય પરિણત છે ૪-૨ એજ રીતે આર્ય રૂપવાળા ૩ આર્ય મનવાળા ૪, આર્ય સંકલ્પવાળા ૫, આર્ય પ્રજ્ઞાવાળા ૬ આર્ય દૃષ્ટિવાળા ૭, આર્ય શીલવાળા ૮ આર્ય વ્યવહારવાળા ૯, આર્ય પરાક્રમવાળા ૧૦, આર્ય વૃત્તિવાળા ૧૧, આર્ય જાતિ વાળા ૧૨ આર્ય ભાષાવાળા ૧૩, આર્યવિભાષી ૧૪, આર્ય સેવી ૧૫, આર્ય પર્યાયવાળા ૧૬, આર્ય પરિવારવાળા ૧૭ એ રીતે સત્તર આલાપકો બને છે જેવી રીતે દીનની સાથેના આલાપકો કહ્યા છે તેવી જ રીતે આર્યની સાથેના આલાપકો પણ કહેવા જોઈએ

ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) આર્ય આર્યભાવયુક્ત, (૨) આર્ય અનાર્ય ભાવયુક્ત, (૩) અનાર્ય આર્ય ભાવયુક્ત અને (૪) અનાર્ય અનાર્ય

टीका—" चत्तारि पुरिसजाया " इत्यादि—तत्राऽऽर्यो नवविधः, यदाह—

" खेत्ते जाईकुलकम्मसिप्पभासाइ नाणचरणे य ।
दंसण आरिय णवहा मिच्छा सगजवणखसमाई ।१। " इति,

छाया—" क्षेत्रे जातिकुलकर्मशिल्पभाषे ज्ञानचरणे च ।
दर्शने आर्यो नवधा म्लेच्छाः शक-यवन-खसादयः ।२। "

तत्र क्षेत्राऽऽर्यः-पापकर्मरहितो विशुद्ध इत्यर्थः, तथा-आर्यभावः-क्षायिकादि-ज्ञानादिगुणसम्पन्नः, अनार्यभावश्च-क्रोधादिकलुषित इति । शेषं सुगमम् । सू०४१।

भाववाला-४ इस सूत्र में जो आर्य कहा गया है, वह नौ प्रकारका कहा गया है-खेत्ते, जाई, कुल, कम्म, इत्यादि. क्षेत्रार्य-१ जात्यार्य-२कुलार्य-३ कर्मार्य-४शिलार्य-५ भाषार्य-६ ज्ञानार्य-७ चारित्रार्य-८और-दर्शनार्य-९।तथा, म्लेच्छ, शक, यवन, और खस आदि ये अनार्य कहे गयेहैं। जो क्षेत्र आर्य होता है. वह-पाप रहित होता है: विशुद्ध होता है, तथा—क्षायिक आदि ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न होता है. और—अनार्य भाव जो, क्रोधादिक है उनसे भी कलुषित होता है। बाकी का सब कथन सुगम है तात्पर्य इस कथन का ऐसा है कि-जो क्षायादि ज्ञानादि भावों से युक्त होता है वह-" आर्यभाव " से, और-जो क्रोध आदि से कलुषित होता है वह—" अनार्यभाव " से लिया गया है इस तरह इन शब्दों को समझ कर ये-आर्य-अनार्य आदि चारों भङ्ग सुगम रीति से समझे जा सकते हैं ॥ सू०४१ ॥

ભાવયુક્ત આ સૂત્રમા જે આર્ય કહેવામા આવેલ છે, તે નવ પ્રકારના સમજવા. જેમકે-खेत्ते-जाई-कुल-कम्म " ઈત્યાદિ--(૧) ક્ષેત્રાર્ય, (૨) જાત્યાર્ય, (૩) કુલાર્ય, (૪) કર્માર્ય, (૫) શિલ્પાર્ય, (૬) ભાષાર્ય, (૭) જ્ઞાનાર્ય, (૮) ચારિત્રાર્ય અને (૯) દર્શનાર્ય. એ રીતે દર્શનશાસ્ત્રમાં આર્ય નવ પ્રકારનાં કહ્યા છે. શક, યવન અને ખસ આદિને મ્લેચ્છ, અનાર્ય કહ્યા છે જે ક્ષેત્રાર્ય હોય છે તે પાપ રહિત (વિશુદ્ધ) હોય છે અને ક્ષાયિક આદિ જ્ઞાનાદિ ગુણોથી યુક્ત હોય છે, અને ક્રોધાદિક જે અનાર્યભાવ છે તેનાથી પણ કલુષિત હોય છે, બાકીનું કથન સુગમ છે. આ કથનનો સંક્ષિપ્ત ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-ક્ષાયિક આદિ જ્ઞાનાદિ ભાવોથી યુક્ત પુરુષને આર્યભાવ યુક્ત કહ્યો છે, અને ક્રોધાદિથી કલુષિત ભાવયુક્ત પુરુષને અનાર્ય ભાવયુક્ત કહ્યો છે. આ રીતે આ શબ્દોને સમજવાથી આર્ય-અનાર્ય આદિ ચારે ભાંગા સરળતાથી સમજી શકાય છે. ॥ સૂ. ૪૧ ॥

दार्ष्टान्तिकभूतपुरुषमात्तमेव वृषभसूत्रा येन निरूपयितुमाह—

सूत्रम्—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जाइसपन्ने १, कुलसपन्ने २, बलसंपन्ने ३, रूवसुपन्ने ४।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जाइसपन्ने १, जाव रूवसंपन्ने ४। १।

चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जाइसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे १, कुलसपन्ने णाममेगे णो जाइसपण्णे २, एगे जाइसपण्णे वि कुलसपण्णे वि ३, एगे णो जाइसपण्णे णो कुलसपण्णे ४।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा जाइसपण्णे णाममेगे ४, २।

चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जाइसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे ४,

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा जाइ सपण्णे ४, ३।

चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जाइसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे ४,

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जाइसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, ४, ४।

चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे ४, ५,

चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा-कुलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-कुल० ४, ६,

चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा-बलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-बलसंपण्णे णाममेगे ४, ७। सू० ४२।

छाया—चत्वार ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-जातिसम्पन्नः १, कुलसम्पन्नः २, बलसम्पन्नः ३, रूपसम्पन्नः ४।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-जातिसम्पन्नो यावद् रूपसम्पन्नः ४, १।

चत्वार ऋषभा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-जातिसम्पन्नो नामैको नो कुलसम्पन्नः १, कुलसम्पन्नो नामैको नो जातिसम्पन्न २, एको जातिसम्पन्नोऽपि कुलसम्पन्नोऽपि ३, एको नो जातिसम्पन्नो नो कुलसम्पन्न ४,

---

अब सूत्रकार दार्ष्टान्तिक भूत पुरुष जात को ही वृषभ दृष्टान्त से निरूपित-करते हैं—"चत्तारि उसभा पण्णत्ता"—इत्यादि ॥४२॥

सूत्रार्थ-वृषभ चार प्रकार के कहे गये हैं—जाति सम्पन्न-१ कुलसम्पन्न-२ बल सम्पन्न-३ और-रूप सम्पन्न-४ इसी प्रकार से पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं-जाति सम्पन्न, यावत् रूप सम्पन्न-४, १। पुनः-बैल चार प्रकार के कहे गये हैं, जाति सम्पन्न नो कुलसम्पन्न, १ कुल सम्पन्न नो जातिसम्पन्न, २ जाति सम्पन्न भी कुलसम्पन्न भी, ३ और

હવે સૂત્રકાર વૃષભના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષજાતોનું નિરૂપણ કરે છે.

"चत्तारि उसभा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-વૃષભ (બળદ) ચાર પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) જાતિ સંપન્ન, (૨) કુલ સંપન્ન, (૩) બલ સંપન્ન, (૪) રૂપ સંપન્ન. એ જ પ્રમાણે પુરુષના પણ જાતિ સંપન્ન આદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે.

વૃષભના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે—(૧) જાતિ સંપન્ન, ને કુલ સંપન્ન, (૨) કુલ સંપન્ન ને જાતિ સંપન્ન, (૩) જાતિ સંપન્ન-કુલ

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–जातिसम्पन्नो नामैकः ४,२।

चत्वार ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–जातिसम्पन्नो नामैको नो बलसम्पन्न ४, एवं चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–जातिसम्पन्नः ४, ३,

चत्वार ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–जातिसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्न ४, एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–जातिसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्नः, ४, ४।

चत्वार ऋषभाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा–कुलसम्पन्नो नामैको नो बलसम्पन्नः ४, एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–कुलसम्पन्नो नामैको नो बल सम्पन्नः ४, ५।

नो जातिसम्पन्न नो कुलसम्पन्न, ४ इसी प्रकार से पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं–जाति सम्पन्न नो कुलसम्पन्न, १ यावत् नो जाति सम्पन्न नो कुल सम्पन्न, ४। पुनश्च–बैल चार प्रकार के कहे गये हैं–जाति सम्पन्न नो बलसम्पन्न, १ बलसम्पन्न नो जातिसम्पन्न, २ जाति सम्पन्न भी बल सम्पन्न भी, ३ तथा–नो जातिसम्पन्न नो बलसम्पन्न, ४। पुनः–बैल चार प्रकारके कहे गये हैं, जातिसम्पन्न नो रूपसम्पन्न, १ रूप सम्पन्न नो जातिसम्पन्न, २ जाति सम्पन्न भी रूप सम्पन्न भी, ३ नो जाति सम्पन्न नो रूप सम्पन्न, ४ इसी प्रकार से पुरुष भी चार प्रकार के कहे गयेहैं, जाति सम्पन्न नो रूप सम्पन्न–१ यावत्–नो जातिसम्पन्न नो रूपसम्पन्न–४। पुनश्च—बैल चार प्रकारके कहे गये हैं, कुलसम्पन्न नो बलसम्पन्न, १ बल सम्पन्न नो कुलसम्पन्न, २ कुलसम्पन्न भी बलसम्पन्न भी, ३ तथा–नो कुलसम्पन्न नो बलसम्पन्न, ४ इसी

संपन्न (४) नो जाति संपन्न–नो कुल संपन्न એજ પ્રમાણે પુરુષના પણ (૧) જાતિ સંપન્ન નો કુલ સંપન્ન, વગેરે ચાર પ્રકાર સમજવા

બીજી રીતે પણ વૃષભના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) જાતિ સંપન્ન નો બલ સંપન્ન (૨) બલ સંપન્ન નો જાતિ સંપન્ન, (૩) જાતિ સંપન્ન બલ સંપન્ન (૪) નો જાતિ સંપન્ન નો બલ સંપન્ન. એજ પ્રમાણે પુરુષના પણ ચાર પ્રકાર સમજવા વૃષભના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ પડે છે–(૧) જાતિ સંપન્ન નો રૂપ સંપન્ન, (૨) રૂપ સંપન્ન નો જાતિ સંપન્ન, (૩) જાતિ સંપન્ન અને રૂપ સંપન્ન, (૪) નો જાતિ સંપન્ન નો રૂપ સંપન્ન. પુરુષના પણ એવાજ ચાર પ્રકાર સમજવા. વૃષભના પણ નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) કુલ સંપન્ન નો બલ સંપન્ન, (૨) બલ સંપન્ન નો કુલ સંપન્ન, (૩) કુલ સંપન્ન અને બલ સંપન્ન, (૪) કુલ સંપન્ન નો બલ સંપન્ન. ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર

चत्वार ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कुलसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्नः ४, एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-कुल० ४, ६।

चत्वार ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-बलसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्नः ४, एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-बलसम्पन्नो नामैकः ४,७सू.४२।

टीका—"चत्तारि उसभा" इत्यादि—ऋषभाः-बलीवर्दाः चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-जातिसम्पन्नाः-जातिः-गुणवन्मातृकता, तया सम्पन्न-युक्तः १, कुलसम्पन्नः-कुलं-गुणवत्पितृकत्वं, तेन सम्पन्नः २, बलसम्पन्न-बलं-भारवहनादिसामर्थ्यं, तेन सम्पन्नः ३, रूपसम्पन्नः-रूपं-शरीरसौन्दर्यं, तेन सम्पन्नः ४।

प्रकार से पुरुष भी चार प्रकारके कहे गयेहैं, जैसे-कुल सम्पन्न नो बल सम्पन्न, १ आदि-४। पुनश्च-बैल चार प्रकारके कहे गये हैं, बल सम्पन्न नो रूप सम्पन्न-१ इत्यादि-४ इसी प्रकार से पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं-बल सम्पन्न नो रूपसम्पन्न-१ आदि-४, ७

टीकार्थ-वृषभसूत्रमें जो चार प्रकारके बलीवर्द प्रगट किये गयेहैं उनका तात्पर्य ऐसाहै--जाति सम्पन्न आदि -मातृ पक्षका नाम जातिहै, पितृ पक्षका नाम कुल है. जिस बैल की जाति गुणयुक्त मातावालीहै, ऐसी गुणयुक्त माता की जाति से जो युक्त होता है वह-बैल जाति सम्पन्न कहा गया है, तथा-गुणवान् पिताका जिसका कुल है ऐसा वह बैल कुल सम्पन्न कहा जाता है। भारवहन शक्ति का नाम बल है. जो-बैल इस बल से सम्पन्न होता है वह बैल बल सम्पन्न कहा जाता है। शारीरिक सौन्दर्य का नाम रूप है. इस रूप से जो बैल सम्पन्न होता है वह-बैल रूप सम्पन्न कहा जाता है। इसी तरह से पुरुष भी चार प्रकार के कहे

ઉપર મુજબ સમજવા બળદના પણ નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે. (૧) બલ સંપન્ન-નો રૂપ સંપન્ન, ઈત્યાદિ ચાર પ્રકાર સમજી લેવા પુરુષના પણ બલ સંપન્ન-નો રૂપ સંપન્ન આદિ ચાર પ્રકાર સમજવા.

ટીકાર્થ-વૃષભ સૂત્રમાં જે ચાર પ્રકારના બળદ કહ્યા છે તે ચાર પ્રકારોનું સ્પષ્ટીકરણ—માતૃપક્ષનુ નામ જાતિ છે, પિતૃપક્ષનુ નામ કુળ છે જે બળદની માતા ગુણસંપન્ન હોય છે તે બળદને જાતિસંપન્ન કહે છે. જે બળદનો પિતા ગુણસંપન્ન છે, તે બળદને કુલસંપન્ન કહે છે. ભારવહન કરવાની શક્તિનું નામ બળ છે જે બળદ ભારવહન કરવાની શક્તિવાળો હોય છે તેને બળસંપન્ન કહે છે. શારીરિક સૌંદર્યને રૂપ કહે છે, આ રૂપથી જે બળદયુક્ત હોય છે, તેને રૂપસંપન્ન કહે છે. એ જ પ્રમાણે પુરુષ પણ ચાર પ્રકારના હોય છે-વિશુદ્ધ

" एवामेवे "-इत्यादि-एवमेव - ऋषभवदेव, पुरुषजातानि चत्वारि मज्ञप्तानि, तद्यथा-पुरुषो जातिसम्पन्नः-विशुद्धमातृवंशयुक्तो भवति, एवं कुलबलरूपेष्वपि भङ्गा योध्याः । इद दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकरूपं सामान्यसूत्रम् १ ।

" चत्तारि उसमा " इत्यादि—ऋषभाश्चत्वारः मज्ञप्ताः, तद्यथा-एकः-कश्चिद् ऋषभो जातिसम्पन्नो भवति, किन्तु कुलसम्पन्नो नो भवति १, शेष भङ्गत्रय सुगमम् ।

गये हैं-विशुद्ध मातृवंश से जो पुरुष युक्त होता है वह-पुरुष जाति सम्पन्न कहा गया है । विशुद्ध पितृवंश से जो पुरुष युक्त होता है वह-कुल सम्पन्न कहा गया है । भारवहन आदि करनेकी शक्ति से जो युक्त होता है वह-पुरुष बल सम्पन्न कहा गया है,। तथा शारीरिक सौन्दर्य से जो युक्त होता है वह-रूप सम्पन्न कहा गया है, यह दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक रूप सूत्र सामान्य है । चार प्रकार के बैल जो-" जाति संपन्न नो कुल सम्पन्न "-इत्यादि रूप से प्रकट किये गये हैं उनका भाव ऐसा है कि-कोई एक बैल ऐसा होता है जो गुणवती माताकी जाति में तो होता है किन्तु-कुल-गुणवान् पिता के वंश का नहीं होता है इस प्रकार का यह प्रथम भग है-१ इसी प्रकारसे शेष भङ्ग त्रय भी समझ लेना चाहिये। जिस प्रकार से ये बैल सम्बन्धी चार प्रकार कहे गये हैं उसी प्रकार से पुरुषों के भी चार

માતૃવંશથી જે પુરુષ યુક્ત હોય છે તેને જાતિસંપન્ન કહે છે વિશુદ્ધ પિતૃવંશથી જે પુરુષ યુક્ત હોય છે તેને કુલસંપન્ન કહે છે ભારવહન આદિ કરવાની શક્તિથી જે પુરુષયુક્ત હોય છે તેને બલસંપન્ન કહે છે તથા શારીરિક સૌન્દર્યથી જે પુરુષયુક્ત હોય છે તેને રૂપસંપન્ન કહે છે આ દૃષ્ટાન્ત અને દાર્ષ્ટાન્તિક રૂપ સામાન્ય સૂત્ર છે

બળદના " જાતિ સંપન્ન-નો કુલ સંપન્ન " ઇત્યાદિ જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ—

પહેલો ભાંગો—કોઈ વૃષભ એવો હોય છે કે જે ગુણવતી માતાની અપેક્ષાએ તો જાતિસંપન્ન હોય છે પણ ગુણવાન પિતાના વંશમાં જન્મ નહીં થવાને કારણે કુલસંપન્ન હોતો નથી. એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણે ભાંગા પણ સમજી લેવા. જેવી રીતે બળદના આ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે, એ જ પ્રમાણે

"एवामेवे"—त्यादि-एवमेव-ऋषभदेव, पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-एकः-कश्चित् पुरुष', जातिसम्पन्नो भवति किन्तु कुल सम्पन्नो नो भवति, शेषं भङ्गत्रयं सुगमम्, इत्थमेवाग्रिमदृष्टान्तसूत्राणि सदार्ष्टान्तिकानि पञ्च योध्यानि। तत्र जातिकुलसंयुक्तसूत्रवत् जातिबल-जातिरूपसंयोगेन सूत्रद्वयम् २। तथा-कुल-बल कुलरूपसंयोगेन सूत्रद्वयम् ४। पुनश्च-बलरूपसंयोगेनैकं सूत्रमिति पञ्च ५। एवं सामान्यसूत्र-जातिकुलसंयुक्तसूत्रसंमेलनेन सप्त सूत्राणि ७ जातानि। सू० ४२।

प्रकार कहे गये है। इन में कोई एक पुरुष ऐसा होता है माता की विशुद्ध जाति वाला तो होता है पर-विशुद्ध पिता के वंश वाला नहीं होता है. यह-प्रथम भङ्ग है, इसी प्रकार से शेष तीन भङ्गों को भी जान लेना चाहिये: क्योंकि-वे सुगम हैं। इसी प्रकार से आगे के दृष्टान्त सूत्र ५-भी दार्ष्टान्तिक सूत्रों के साथ घटा लेना चाहिये। जाति-और कुल इनके संयुक्त सूत्रों की तरह जाति-बल, जाति-रूप के संयोग से भङ्ग बनाने के लिये २-दो सूत्र हैं, पुनः-कुल बल-कुल-रूप इनके संयोग से २-दो सूत्र हैं. पुनः-बल-रूप, के संयोग से एक सूत्र हैं, इस प्रकार से ये ५-सूत्र हैं। इसी तरह से सामान्य सामान्य सूत्र जाति-कुल-संयुक्त सूत्रों को सम्मिलित हो जाने से ये-७ सात सूत्र हो जाते हैं। सू४२।

પુરુષના પણ "જાતિસંપન્ન-નો કુલસંપન્ન" ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે માતાની અપેક્ષાએ તો વિશુદ્ધ જાતિવાળો હોય છે, પણ પિતાની અપેક્ષાએ વિશુદ્ધ જાતિવાળો હોતો નથી આ પહેલો વિકલ્પ છે, બાકીના ત્રણ વિકલ્પોનો ભાવાર્થ પણ એ જ પ્રમાણે સમજી લેવો એ જ પ્રમાણે પછીના પાંચ દૃષ્ટાન્તસૂત્રોને પણ દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષ સાથે ઘટાવી લેવા જાતિ અને કુલના યોગથી ચાર ભાંગા બને છે જાતિ અને બળના યોગથી ચાર ભાંગા બને છે અને જાતિ અને રૂપના યોગથી ચાર ભાંગા બને છે. આ રીતે જાતિ સાથે અનુક્રમે કુલ, બળ અને રૂપના યોગવાળા ત્રણ સૂત્ર છે એ જ પ્રમાણે કુળ અને બળના યોગથી તથા કુળ અને રૂપના યોગથી ચાર ચાર ભાગાવાળા બે સૂત્ર બને છે અને બલ અને રૂપના સંયોગથી ચાર ભાંગાવાળું એક સૂત્ર બને છે આ રીતે ૧ સામાન્ય સૂત્ર, જાતિ સાથે કુળ, બલ અને રૂપના યોગવાળાં ૩ સૂત્ર, કુળ સાથે બળ અને રૂપના યોગવાળાં બે સૂત્ર અને બળ સાથે રૂપના યોગવાળું ૧ સૂત્ર મળીને કુલ ૭ સૂત્ર થાય છે. આ વાત ટીકામા આપેલ કોઠામાં સમજાવી છે—

જાતિ, કુળ, બળ અને રૂપ આ પ્રત્યેકના એક એક ભાંગાવાળું સામાન્ય સૂત્ર, તેનો ક્રમાંક પહેલો સમજવો. ॥ સૂ. ૪૨ ॥

सूत्रपदकस्थापना यथा—

भङ्ग	सूत्रसंख्या	सामान्य—	
जाति–कुल	४–१	कुल–बल	४–१
जाति–बल	४–१	कुल–रूप	४–१
जाति–रूप	४–१	बल–रूप	४–१

जात्यादि चतुष्टययुक्तं सामान्य सूत्रम् १ सङ्कमितसूत्राणि सप्त ७
अथ हस्तिदृष्टान्तेन माह —

सूत्रम्–चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा–भद्दे १, मंदे २, मिए ३, संकिण्णे ४।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–भद्दे १, मंदे २, मिए ३, संकिण्णे ४। ।१।

चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा–भद्दे णाममेगे भद्दमणे १, भद्दे णाममेगे मंदमणे २, भद्दे णाममेगे मियमणे ३, भद्दे णाम मेगे संकिण्णमणे ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–भद्दे णाममेगे भद्दमणे १, भद्दे णाममेगे मंदमणे २, भद्दे णाममेगे मियमणे ३, भद्दे णाममेगे संकिण्णमणे ४, ।२।

चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा–मंदे णाममेगे भद्दमणे १, मंदे णाममेगे मंदमणे २, मंदे णाममेगे मियमणे ३, मंदे णाम मेगे संकिण्णमणे ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–मंदे णाममेगे भद्दमणे, तं चेव। । ३ ।

चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—मिए णाममेगे भद्दमणे १, मिए णाममेगे मंदमणे २, मिए णाममेगे मियमणे ३, मिए णाममेगे संकिण्णमणे ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मिए णाममेगे भद्दमणे तं चेव ।। ४ ।

चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—संकिण्णे णाममेगे भद्दमणे १, संकिण्णे णाममेगे मंदमणे २, संकिण्णे णाममेगे मियमणे ३, संकिण्णे णाममेगे संकिण्णमणे ४, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—संकिण्णे णाममेगे भद्दमणे तं चेव जाव संकिण्णे णामेगे संकिण्णमणे,—। ५ ।

गाहाओ —

मधुगुलियपिंगलक्खो, अणुपुव्वसुजायदीहणंगूलो ।
पुरओ उदग्गधीरो, सव्वंगसमाहिओ भद्दो । १ ।
चलबहलविसमचम्मो, थूलसिरो थूलएण पेएण ।
थूलणहदंतवालो, हरिपिंगललोयणो मंदो । २ ।
तणुओ तणुयग्गीवो, तणुयतओ तणुयदंतणहवालो ।
भीरू तत्थुव्विग्गो, तासी य भवे मिए णामं । ३ ।
एएसिं हत्थीणं, थोवं थोवं तु जो हरइ हत्थी ।
रूवेण व सीलेण व, सो संकिण्णोत्ति णायव्वो । ४ ।
भद्दो मज्जइ सरए, मंदो उण मज्जए वसंतंमि ।
मिउ मज्जइ हेमंते, संकिण्णो सव्वकालंमि ।५। सू० ४३ ।

छाया—चत्वारो हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा भद्रः१, मन्द २, मृग ३, सङ्कीर्णः४।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भद्रः १, मन्दः २, मृगः ३ सङ्कीर्णः ४। (१)

चत्वारो हस्तिनः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—भद्रो नामैको भद्रमना १, भद्रो नामैको मन्दमनाः २, भद्रो नामैको मृगमनाः ३, भद्रो नामैकः सङ्कीर्णमनाः ४, एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भद्रो नामैको भद्रमना १, भद्रो नामैको मन्दमनाः २, भद्रो नामैको मृगमनाः ३, भद्रो नामैकः सङ्कीर्णमना' ४, (२)

चत्वारो हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मन्दो नामैको भद्रमना १, मन्दो नामैको मन्दमना' २, मन्दो नामैको मृगमनाः ३, मन्दो नामैकः सङ्कीर्णमनाः ४, एव

अब सूत्रकार हाथी के दृष्टान्त से पुरुषों की चतुष्प्रकारताका कथन करते हैं—" चत्तारि हत्थी पण्णत्ता "—इत्यादि। ४२॥

सूत्रार्थ—हाथी चार प्रकारके कहे गये हैं जैसे भद्र १ मन्द-२ मृग-३और सङ्कीर्ण-४ इसी प्रकार से पुरुष प्रकार भी चार कहे गये हैं जैसे, भद्र, मन्द, मृग, सङ्कीर्ण-१ पुनश्च—हाथी चार प्रकारके कहे गये हैं जैसे-एक भद्र भद्र मनवाला,१ भद्र मन्द मनवाला, २ भद्र मृग मन वाला, ३ और-भद्र सङ्कीर्ण मन वाला-४ इसी तरह से चार पुरुष जात कहे गये हैं जैसे—कोई एक भद्र भद्र मनवाला पुरुष-१ भद्र मन्द मन वाला कोई दूसरा पुरुष-२ भद्र मृग मनवाला कोई एक तीसरा पुरुष-३ तथा-भद्र और सङ्कीर्ण मन वाला कोई एक चौथा पुरुष-४

पुनश्च-चार प्रकार के हाथी कहे गये हैं जैसे—कोई एक मन्द-और भद्र मनवाला-१ मन्द और मन्द मनवाला २ मन्द और मृग मनवाला ३

હવે સૂત્રકાર હાથીના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા પુરુષની ચતુર્વિધતાનું નિરૂપણ કરે છે
" चत्तारि हत्थी पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—હાથીના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ભદ્ર, (૨) મન્દ, (૩) મૃગ અને (૪) સંકીર્ણ એ જ પ્રમાણે પુરુષના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ભદ્ર, (૨) મન્દ, (૩) મૃગ અને (૪) સંકીર્ણ ।૧।

હાથીના આ પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે-(૧) ભદ્ર ભદ્રમનવાળો, (૨) (૨) ભદ્ર મન્દ મનવાળો, (૩) ભદ્ર મૃગ મનવાળો અને (૪) ભદ્ર સંકીર્ણ મનવાળો. એ જ પ્રમાણે પુરુષના પણ નીચે મુજબ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ભદ્ર ભદ્ર મનવાળો, (૨) ભદ્ર મન્દ મનવાળો, (૩) ભદ્ર મૃગ મનવાળો અને (૪) ભદ્ર સંકીર્ણ મનવાળો ।૨।

હાથીના આ પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે-(૧) મન્દ અને ભદ્ર મનવાળો (૨) મન્દ અને મન્દ મનવાળો, (૩) મન્દ અને મૃગ મનવાળો અને (૪)

मेव चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-मन्दो नामैको भद्रमनाः, तदेव (३)

चत्वारो हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-मृगो नामैको भद्रमनाः १, मृगो नामैको मन्दमनाः २, मृगो नामैको मृगमनाः ३, मृगो नामैकः सङ्कीर्णमनाः ४। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-मृगो नामैको भद्रमनाः, तदेव (४)

चत्वारो हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सङ्कीर्णो नामैको भद्रमनाः १, सङ्कीर्णो नामैको मन्दमनाः २, सङ्कीर्णो नामैको मृगमनाः ३, सङ्कीर्णो नामैकः सङ्कीर्णमनाः ४, एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-सङ्कीर्णो नामैको भद्रमनाः, तदेव यावत् सङ्कीर्णो नामैकः सङ्कीर्णमनाः ४, (५)

तथा-मन्द और सङ्कीर्ण मन वाला-४ इसी प्रकार से पुरुष जात चार कहे गये हैं, जैसे-कोई एक मन्द-और भद्र मनवाला पुरुष-१ आदि आदि ३-भङ्ग जो अवशिष्ट हैं पूर्वोक्त रूप से ही हैं-३ पुनश्च-हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे-मृग और भद्र मनवाला-१ मृग और मन्द मनवाला-२ मृग और मृग मनवाला-३ तथा-मृग और सङ्कीर्ण मनवाला-४ इसी तरहसे पुरुष जात भी चार कहे गयेहैं, जैसे-मृग और भद्र मनवाला-१ अवशिष्ट ३ भङ्ग पूर्वोक्त रूपसे हीहै-४-।४।

पुनश्च-हाथी चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-सङ्कीर्ण और भद्र मनवाला-१ सङ्कीर्ण और मन्द मनवाला-२ सङ्कीर्ण और मृगमनवाला -३ तथा-सङ्कीर्ण और सङ्कीर्ण मनवाला-४ इसी तरह से पुरुष जात चार कहे गये हैं, जैसे-कोई एक सङ्कीर्ण और भद्र मनवाला पुरुष-१ यावत् सङ्कीर्ण और सङ्कीर्ण मनवाला पुरुष-४-।५। गाथा-"मधु

મન્દ અને સંકીર્ણુ મનવાળો. એ જ પ્રમાણે પુરુષના ચાર પ્રકાર પડે છે—(૧) કોઈ પુરુષ મન્દ અને ભદ્ર મનવાળો હોય છે, ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર ઉપર મુજબ જ બની શકે છે. । ૩ ।

એ જ પ્રમાણે હાથીના આ ચાર પ્રકાર પણુ પડે છે—(૧) મૃગ અને ભદ્ર મનવાળો, (૨) મૃગ અને મન્દ મનવાળો, (૩) મૃગ અને મૃગ મનવાળો અને (૪) મૃગ અને સંકીર્ણુ મનવાળો એ જ પ્રમાણે પુરુષના પણુ "મૃગ અને ભદ્ર મનવાળો" ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર સમજી લેવા. । ૪ ।

હાથીના આ પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પડે છે—(૧) સંકીર્ણુ અને ભદ્ર મનવાળો, (૨) સંકીર્ણુ અને મન્દ મનવાળો, (૩) સંકીર્ણુ અને મૃગ મનવાળો અને (૪) સંકીર્ણુ અને સંકીર્ણુ મનવાળો. એ જ પ્રમાણે પુરુષના પણુ "સંકીર્ણુ અને ભદ્ર મનવાળો" ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર પડે છે. । ૫ ।

गाथाः—मधुगुटिकापिङ्गलाक्षः, आनुपूर्व्यसुजातदीर्घलाङ्गूलः ।
पुरत उदग्रधीरः सर्वाङ्गसमाहितो भद्रः । १ ।
चलबहलविषमचर्मा, स्थूलशिराः स्थूलकेन पेचकेन ।
स्थूलनखदन्तवालो, हरिपिङ्गललोचनो मन्दः । २ ।
तनुकस्तनुकग्रीव, स्तनुकत्वक् तनुकदन्तनखवाल ।
भीरुस्त्रस्तोद्विग्न, स्त्रासी च भवेद् मृगो नाम । ३ ।
एतेषां च हस्तिनां, स्तोकं स्तोकं तु यो हरति हस्ती ।
रूपम वा शीलेन वा, सङ्कीर्ण इति ज्ञातव्यः । ४ ।
भद्रो माद्यति शरदि मन्दः पुनर्माद्यति वसन्ते ।
मृगो माद्यति हेमन्ते सङ्कीर्णः सर्वकाले । ५ । सू० ४३ ।

टीका—" चत्तारि हत्थी " इत्यादि—हस्तिनः चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-भद्र १, मन्द २, मृगः ३, सङ्कीर्ण ४, तत्र भद्रो हस्ती भद्र एव धैर्यशौर्यादिगुणसम्पन्नत्वात् १, मन्दो मन्द एव मन्दीभूत धैर्यशौर्यादिगुणवत्त्वात् २, मृगः-मृगसदृशः, तत्सादृश्य च कृशत्वभीरुत्वादिधर्मेण ३ सङ्कीर्णः – किञ्चिद्‌भद्रादिगुणसम्पन्नत्वात् सङ्कीर्ण एव ४ । इति दृष्टान्तहस्तिसूत्रम् ।

गुटिका पिङ्गलाक्ष "—इत्यादि—हस्ति सूत्र के दृष्टान्त में चार प्रकार के हाथी कहे गये हैं उनका तात्पर्य ऐसा है—जो हाथी धैर्य—शौर्य आदि गुणों से विभूषित होता है वह भद्र हाथी कहा गया है-१ मन्दीभूत धैर्य शौर्य आदि गुणों से जो युक्त होता है वह हाथी मन्द कहा गया है-२ मृग जैसा जो हाथी कृशता एवं—भीरुता आदि धर्म वाला होता है वह हाथी मृग का जैसा मृग कहा गया है-३ तथा—जो हाथी कुछ कुछ भद्रादि गुणों से सम्पन्न—युक्त होता है वह—सङ्कीर्ण कहा गया है तो जैसे ये हाथी के चार प्रकार कहे गये हैं ऐसे ही प्रकार वाले मनुष्य

ગાથા—" મધુગુટિકા પિંગલાક્ષ " ઇત્યાદિ

હાથીના દૃષ્ટાન્તસૂત્રમાં ચાર પ્રકારના હાથી કહ્યા છે તે ચારે પ્રકારનું સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે છે—જે હાથી ધૈર્ય, શૌર્ય આદિ ગુણોથી યુક્ત હોય છે, તેને ભદ્ર હાથી કહે છે મંદીભૂત ધૈર્ય, શૌર્ય આદિથી જે યુક્ત હોય છે તેને મન્દ હાથી કહે છે જે હાથી મૃગના જેવી કૃશતા, ભીરુતા આદિ ધર્મોથી સંપન્ન હોય છે તે હાથીને મૃગ હાથી કહે છે. જે હાથી થોડા થોડા ભદ્રાદિ ગુણોથી સંપન્ન હોય છે તેને સંકીર્ણ કહે છે. જેમ હાથીના આ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે, એ જ પ્રમાણે મનુષ્યના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે (૧) કેટલાક

" एवामेवे "-त्यादि-एवमेव-हस्तिवदेव पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-भद्रः १, मन्दः २, मृगः ३, सङ्कीर्णश्च ४। एषां विवरणं हस्तिसूत्रवद् वोध्यम् । १ । अग्रे वक्ष्यमाणानि चत्वारि सूत्राणि तु सदार्ष्टान्तिकानि भद्रादिपदचतुष्टययोजनेन " भद्रो नामैको भद्रमनाः " इत्यादि-रीत्या प्रत्येकं भङ्गचतुष्टयं कृत्वा वोध्यानि । तत्र भद्रो नाम प्रशस्तो जात्याऽऽकारेण च, भद्रमनाः-प्रशस्तचित्तः, यद्वा-भद्रस्य मन इव मनो यस्य स भद्रमनाः-धीर इत्यर्थः, मन्दमनाः-

भी होते हैं, कितने मनुष्य ऐसे होते हैं जो-आपत्ति आदि के समय में भी धैर्य-शौर्य आदि गुणों से विभूषित बने रहते हैं ऐसे मनुष्य भद्र कहलाते हैं। कितनेक मनुष्य तो ऐसे होते हैं जो-आपत्ति-विपत्ति के समय में (अवसर पर) मन्दीभूत धैर्य-शौर्य आदि गुणवाले हो जाते हैं ऐसे मनुष्य मन्द कहाते हैं। कितनेक मनुष्य ऐसे होते हैं जो-शारीरिक कृशता एवं भीरुता से युक्त होते हैं ऐसे मनुष्य मृग के जैसे मृग कहाते हैं, तथा-कुछ कुछ भद्रादि गुणों से युक्त जो मनुष्य होते हैं वे सङ्कीर्ण कहाते हैं। तथा-दार्ष्टान्तिक सूत्रों सहित सूत्र हैं उनका अभिप्राय ऐसा है-" भद्र भद्र मनवाला "-जाति-और आकार से जो प्रशस्त होता है वह-भद्र है। तथा-प्रशस्त जिस का चित्त होता है, अथवा-भद्र मनका जैसा जिसका मन होता है वह भद्र

માણુસો એવાં હોય છે કે જેઓ આપત્તિ કાળે ધૈર્યાદિ ગુણોનો ત્યાગ કરતા નથી, એવાં મનુષ્યોને ' ભદ્ર ' કહે છે. (૨) કેટલાક માણુસો એવાં હોય છે કે જેઓ આપત્તિ-વિપત્તિના સમયે ધૈર્ય-શૌર્ય આદિ ગુણો બતાવી શકતા નથી. આ ગુણોની અપેક્ષાએ તેઓ મન્દ હોવાથી તેમને ' મન્દ ' કહે છે (૩) કેટલાક માણુસો શારીરિક કૃશતાથી યુક્ત હોય છે અને મૃગ સમાન ડરપોક હોય છે, તેથી તેમને મૃગ સમાન કહ્યા છે. (૪) કેટલાક મનુષ્યો થોડા થોડા પ્રમાણુમાં ભદ્રાદિ ગુણોથી યુક્ત હોય છે, તેથી તેમને સંકીર્ણ કહે છે. આ પહેલુ સામાન્ય સૂત્ર છે.

બીજા સૂત્રનો ભાવાર્થ—આ દૃષ્ટાન્તસૂત્રમાં હાથીના " ભદ્ર-ભદ્ર મનવાળો " ઇત્યાદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે જાતિ અને આકૃતિની અપેક્ષાએ પ્રશસ્ત હોય એવા હાથીને ભદ્ર કહે છે, અને જેનું ચિત્ત પ્રશસ્ત હોય અથવા ભદ્ર (ધીર) જેનુ મન હોય એવા હાથીને ' ભદ્ર ભદ્રમનવાળો ' કહે

मन्दीभूतमिवा, यद्वा-मन्दजनमनस्तुल्यमनाः-नात्यन्तधीर, एवं मृगमना-मृगस्य मन इव मनो यस्य स मृगमनाः=मृगमन स्सदृशमनाः-भीरु, मृगस्य मनश्च चञ्चल भवतीति पुरुषस्यापि कस्यचिदेव तदिति दृष्टान्तसाधर्म्यमत्र बोध्यम्,

सङ्कीर्णमनाः-भद्रादिकिञ्चिल्लक्षणसम्पन्नमनाः-विचित्रमना इत्यर्थः, पुरुषास्तु वक्ष्यमाणभद्रादिलक्षणमनुसृत्य प्रशस्ताप्रशस्तरूपा बोध्याः।

मनवाला-धीर है। कितनेक मनुष्य ऐसे होते हैं जो जाति एवं-आकार से भी प्रशस्त होते हैं और-मनसे प्रशस्त-धीर होते हैं ऐसा यह प्रथम भङ्ग का अर्थ है। जिसका चित्त मन्दीभूत होता है अथवा मन्द जनके मन जैसा जिस का मन होता है वह-" मन्दमनाः " है यह मनुष्य अत्यन्त धीर नहीं होता है। तथा-मृग के मन जैसा जिसका मन होता है वह मनुष्य " मृगमना " है, ऐसा मनुष्य भीरु स्वभाव का होता है, अर्थात्-मृगका मन चञ्चल होता है इसी तरह से किसी मनुष्य का मन भी चञ्चल होता है इस तरह से मनुष्यों में इन दृष्टान्तों की साधर्म्यता घटती है। जिसका मन भद्रादि के कुछ कुछ लक्षणोंवाला होता है अर्थात्-जो विचित्र मन वाला होता है वह-" सङ्कीर्णमनाः " -पुरुष है। इन भद्रादिकों के कथित लक्षण अनुसार पुरुषों में प्रशस्तता और अप्रशस्तता जाननी चाहिये। भद्रादिकों के लक्षण गाथा चतुष्टय से इस प्रकार कहे गये हैं-भद्र लक्षण, मधुगुटिका, इत्यादि जिसके नेत्र

છે. દાર્ષ્ટાન્તિક સૂત્રમાં તેનો આ પ્રમાણે અર્થ ઘટાવી શકાય-કેટલાક માણસો એવાં હોય છે કે જેઓ જાતિ અને આકારની અપેક્ષાએ પણ પ્રશસ્ત હોય છે અને ધીર મનવાળા હોય છે, એવાં મનુષ્યોને 'ભદ્ર-ભદ્રમનવાળા' કહે છે

બીજા ભાંગાનો ભાવાર્થ—કેટલાક મનુષ્યો મન્દીભૂત ચિત્તવાળા (ધૈર્ય આદિ ગુણોથી રહિત) હોય છે, તેમને મન્દમનવાળા કહે છે, એવા મનુષ્યો અત્યન્ત ધીર હોતા નથી. જે માણસનું મન મૃગના જેવું ભીરુ અને ચપળ હોય છે એવા માણસને મૃગમના કહેવામાં આવે છે એવો મનુષ્ય ડરપોક અને ચપળ વૃત્તિવાળો હોય છે આ રીતે મનુષ્યમાં આ દૃષ્ટાન્તોની સાધર્મ્યતા ઘટાવી શકાય છે જે માણસનું મન ભદ્રાદિક લક્ષણોથી થોડા થોડા પ્રમાણમાં યુક્ત હોય છે તે માણસને 'સંકીર્ણ મનવાળો' કહે છે એટલે કે જે વિચિત્ર મનવાળો હોય છે તેને આ પ્રકારમાં મૂકવામાં આવે છે આ ભદ્રાદિકોના કથિત લક્ષણો અનુસાર પુરુષોમાં પ્રશસ્તતા અને અપ્રશસ્તતા સમજવી. ભદ્રાદિકોનાં લક્ષણ ચાર ગાથા દ્વારા આ પ્રમાણે કહ્યા છે—

पूर्वोक्तभद्रादिलक्षणं गथाचतुष्टयेनाऽऽह-तत्र भद्रलक्षणम्-" मधुगुलिय " इत्यादि-मधुगुटिकापिङ्गलाक्षः-मधुनः-गुटिका-वटिका मधुगुटिका, तद्वत् पिङ्गले-पिङ्गलवर्णे अक्षिणी-नेत्रे यस्य स मधुगुटिका पिङ्गलाक्षः, आनुपूर्व्यसुजातदीर्घलाङ्गूलः-आनुपूर्व्येण-स्थूलसूक्ष्मसूक्ष्मतररूपक्रमेण सुजातं-सौन्दर्येण संस्थितं दीर्घं-बृहत् लाङ्गूलं-पुच्छं यस्य स तथा भूतः, पुरतः-अग्रे-अग्रभागे उदग्रः-उन्नतः-अग्रदेशावच्छेदेनोन्नतः-उन्नताग्रभाग इति यावत्, धीरः-धैर्यवान् क्षोभरहितः, सर्वाङ्गसमाहितः-सर्वाणि अङ्गानि सम्-सम्यक् प्रमाणलक्षणसम्पन्नत्वेन आहितानि-व्यवस्थितानि यस्य स तथाभूतो गजः भद्रः-भद्रपदवाच्यो भवति । १ । इति,

इति भद्रलक्षणम् । १ ।

अथ मन्दलक्षणम् २—

" चलवहले "—इत्यादि-चलबहलविषमचर्मा-चलं बहलं विषमं चर्म यस्य स तथाभूतः-श्लथस्थूलवालयुक्तचर्मवान्, स्थूलशिराः-विशालललाटः-बृहत्कुम्भस्थल इत्यर्थः, स्थूलकेन-स्थूलेन पेचकेन-पुच्छमूलेन सहितः स्थूलनखदन्तवालः-स्थूला नखदन्तवाला यस्य स तथाभूतः, हरिपिङ्गललोचनः-हरेः-सिंहस्य पिङ्गले-श्वेतरक्तवर्णे लोचने इव लोचने यस्य स तथाभूतो गजो मन्दः-मन्दपदवाच्योभवति २।

इति मन्दलक्षणम् । २ ।

मधु (शहद) गुटिका जैसे पीले (जाईवाले) होतेहैं, स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर रूप से क्रमशः जिसकी पूंछ दीर्घ दीर्घतर तथा-सुन्दरता भरी होती है. तथा-जिसके समस्त अङ्ग अपने प्रमाण लक्षण से युक्त होते हैं ऐसा वह गज भद्र कहा गया है—१

मन्दलक्षण—" चलवहुले "—इत्यादि. बहुत बडे चञ्चल मोटे बालों से जिसकी चमडी युक्त होती है. कुम्भस्थल जिसका विशाल होता है पुच्छ का मूल भाग जिसका स्थूल होता है. नख-दांत और बाल जिसके स्थूल होते हैं. और आंखे जिसकी सिंह की आंखों जैसी श्वेत-रक्तवाली होती है ऐसा वह हाथी मन्द कहा गया है-२।

भद्रलक्षणु-" मधुगुटिका " ઈત્યાદિ-જેનાં નેત્ર મધુગુટિકા સમાન પીળા વર્ણના હોય છે, સ્થૂળ, સૂક્ષ્મ અને સૂક્ષ્મતર રૂપે જેની પૂંછડી દીર્ઘ, દીર્ઘતર તથા સુંદરતાભરી હોય છે, તથા જેનાં સમસ્ત અંગ સપ્રમાણ હોય છે એવા હાથીને ભદ્રગજ કહે છે.

મન્દ લક્ષણ-" चलवहुले " ઈત્યાદિ-ઘણાં ચંચળ અને જાડા વાળથી યુક્ત ત્વચાવાળા, વિશાળ કુમ્ભસ્થળવાળા, જેની પૂંછડીનો મૂળ ભાગ સ્થૂલ હોય

मन्दीभूतचित्ताः, यद्वा-मन्दजनमनस्तुल्यमना -नात्यन्तधीरः, एवं मृगमनाः-मृगस्य मन इव मनो यस्य स मृगमना =मृगमनस्तुल्यमना -भीरु, मृगस्य मनश्च चलं भवतीति पुरुषस्यापि कस्यचिदेवं तदिति दृष्टान्तसाधर्म्यमत्र बोध्यम्,

सङ्कीर्णमनाः-भद्रादिकिञ्चिल्लक्षणसम्पन्नमनाः-विचित्रमना इत्यर्थः, पुरुषाश्च वक्ष्यमाणभद्रादिलक्षणमनुसृत्य प्रशस्ताप्रशस्तरूपा बोध्याः।

मनवाला-धीर है। कितनेक मनुष्य ऐसे होते हैं जो जाति एवं-आचार से भी प्रशस्त होते हैं और-मनसे प्रशस्त-धीर होते हैं ऐसा यह प्रथम भङ्ग का अर्थ है। जिसका चित्त मन्दीभूत होता है अथवा मन्द जनके मन जैसा जिस का मन होता है वह-" मन्दमनाः " है यह मनुष्य अत्यन्त धीर नहीं होता है। तथा-मृग के मन जैसा जिसका मन होता है वह मनुष्य " मृगमना " है, ऐसा मनुष्य भीरु स्वभाव का होता है, अर्थात्-मृगका मन चञ्चल होता है इसी तरह से किसी मनुष्य का मन भी चञ्चल होता है इस तरह से मनुष्यों में इन दृष्टान्तों की साधर्म्यता घटती है। जिसका मन भद्रादि के कुछ कुछ लक्षणोंवाला होता है अर्थात्-जो विचित्र मन वाला होता है वह-" सङ्कीर्णमनाः " -पुरुष है। इन भद्रादिकों के कथित लक्षण अनुसार पुरुषों में प्रशस्तता और अप्रशस्तता जाननी चाहिये। भद्रादिकों के लक्षण गाथा चतुष्टय से इस प्रकार कहे गये हैं-भद्र लक्षण, मधुगुटिका, इत्यादि जिसके नेत्र

છે દાર્ષ્ટાન્તિક સૂત્રમાં તેનો આ પ્રમાણે અર્થ઼ ઘટાવી શકાય-કેટલાક માણુસો એવાં હોય છે કે જેઓ જાતિ અને આચારની અપેક્ષાએ પણ પ્રશસ્ત હોય છે અને ધીર મનવાળા હોય છે, એવાં મનુષ્યોને ' ભદ્ર-ભદ્રમનવાળા ' કહે છે

બીજા ભાંગાનો ભાવાર્થ—કેટલાક માણુસો મન્દીભૂત ચિત્તવાળા (ધૈર્ય આદિ ગુણોથી રહિત) હોય છે, તેમને મન્દ મનવાળા કહે છે એવા મનુષ્યો અત્યન્ત ધીર હોતા નથી જે માણુસનું મન મૃગના જેવું ભીરુ અને ચપળ હોય છે એવા માણુસને મૃગમના કહેવામાં આવે છે એવો મનુષ્ય ડરપોક અને ચપળ વૃત્તિવાળો હોય છે આ રીતે મનુષ્યમાં આ દૃષ્ટાન્તોની સાધર્મ્યતા ઘટાવી શકાય છે જે માણુસનું મન ભદ્રાદિક લક્ષણોથી થોડા થોડા પ્રમાણુમાં યુક્ત હોય છે તે માણુસને ' સંકીર્ણ મનવાળો ' કહે છે એટલે કે જે વિચિત્ર મનવાળો હોય છે તેને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે આ ભદ્રાદિકોના કથિત લક્ષણો અનુસાર પુરુષોમાં પ્રશસ્તતા અને અપ્રશસ્તતા સમજવી. ભદ્રાદિકોનાં લક્ષણ ચાર ગાથા દ્વારા આ પ્રમાણે કહ્યા છે—

पूर्वोक्तभद्रादिलक्षणं गथाचतुष्टयेनाऽऽह–तत्र भद्रलक्षणम्–" मधुगुलिय " इत्यादि–मधुगुटिकापिङ्गलाक्षः–मधुनः–गुटिका–वटिका मधुगुटिका, तद्वत् पिङ्गले–पिङ्गलवर्णे अक्षिणी–नेत्रे यस्य स मधुगुटिका पिङ्गलाक्षः, आनुपूर्व्यसुजातदीर्घलाङ्गूलः–आनुपूर्व्येण–स्थूलसूक्ष्मसूक्ष्मतररूपक्रमेण सुजातं–सौन्दर्येण संस्थितं दीर्घं–बृहत् लाङ्गूलं–पुच्छं यस्य स तथा भूतः, पुरतः–अग्रे–अग्रभागे उदग्रः–उन्नतः–अग्रदेशावच्छेदेनोन्नतः–उन्नताग्रभाग इति यावत्, धीरः–धैर्यवान् क्षोभरहितः, सर्वाङ्गसमाहितः–सर्वाणि अङ्गानि सम्–सम्यक् प्रमाणलक्षणसम्पन्नत्वेन आहितानि–व्यवस्थितानि यस्य स तथाभूतो गजः भद्रः–भद्रपदवाच्यो भवति । १ । इति,

इति भद्रलक्षणम् । १ ।

अथ मन्दलक्षणम् २—

" चलवहले "—इत्यादि–चलवहलविषमचर्मा–चलं वहलं विषमं चर्म यस्य स तथाभूतः–श्लथस्थूलवालयुक्तचर्मवान्, स्थूलशिराः–विशालललाटः–बृहत्कुम्भस्थल इत्यर्थः, स्थूलकेन–स्थूलेन पेचकेन–पुच्छमूलेन सहितः स्थूलनखदन्तवालः–स्थूला नखदन्तबाला यस्य स तथाभूतः, हरिपिङ्गललोचनः–हरेः–सिंहस्य पिङ्गले–श्वेतरक्तवर्णे लोचने इव लोचने यस्य स तथाभूतो गजो मन्दः–मन्दपदवाच्योभवति २।

इति मन्दलक्षणम् । २ ।

मधु (शहद) गुटिका जैसे पीले (जाईवाले) होतेहैं, स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर रूप से क्रमशः जिसकी पूंछ दीर्घ दीर्घतर तथा–सुन्दरता भरी होती है. तथा–जिसके समस्त अङ्ग अपने प्रमाण लक्षण से युक्त होते हैं ऐसा वह गज भद्र कहा गया है—१

मन्दलक्षण—" चलवहुले "–इत्यादि. बहुत बडे चञ्चल मोटे बालों से जिसकी चमडी युक्त होती है. कुम्भस्थल जिसका विशाल होता है पुच्छ का मूल भाग जिसका स्थूल होता है. नख–दांत और बाल जिसके स्थूल होते हैं. और आंखे जिसकी सिंह की आंखों जैसी श्वेत–रक्तवाली होती है ऐसा वह हाथी मन्द कहा गया है–२ ।

ભદ્રલક્ષણુ–" મધુગુટિકા " ઈત્યાદિ–જેનાં નેત્ર મધુગુટિકા સમાન પીળા વર્ણુના હોય છે, સ્થૂલ, સૂક્ષ્મ અને સૂક્ષ્મતર રૂપે જેની પૂછડી દીર્ઘ, દીર્ઘતર તથા સુંદરતાભરી હોય છે, તથા જેનાં સમસ્ત અંગ સપ્રમાણુ હોય છે એવા હાથીને ભદ્રગજ કહે છે.

મન્દ લક્ષણુ–" ચલવહુલે " ઈત્યાદિ–ઘણું ચંચળ અને જાડા વાળથી યુક્ત ત્વચાવાળા, વિશાળ કુમ્ભસ્થળવાળા, જેની પૂંછડીનો મૂળ ભાગ સ્થૂલ હોય

अथ मृगलक्षणम् ३—

"तनुओ" इत्यादि—तनुक—तनुः—कृश स एव तनुकः, तनुकग्रीवः—कृशकण्ठः, तनुकत्वक्—कृशचर्मा, तनुकदन्तनखवालः—कृशदन्तनखकेशः, भीरु—भयशीलः, स्वभावतः, भयहेतुवशात् स्तब्धकर्णकरणादिलक्षणयुक्तो भीत एव त्रस—कष्टविचारणादौ उद्विग्न—उद्वेगवान् त्रासी—त्रसनस्वभावः, यो गजः स मृगा—मृगपदवाच्यो भवति ।३।

इति मृगलक्षणम् ३

अथ सङ्कीर्णलक्षणम् ४—

"एएसिं" इत्यादि—यस्तु एतेषां—भद्र मन्द मृगरूपाणां हस्तिनां स्तोकं स्तोक—स्वल्प स्वल्पं भद्रत्वादिगुण हरति—धारयति, तथा रूपेण—शरीराऽऽकृत्या

मृग लक्षण—"तनुको"—इत्यादि जो शरीरसे पतला होताहै, कण्ठ जिसका कृश होता है, चमडा जिसका पतला होता है, दांत, नख, केश भी जिसके कृश—पतले होते हैं स्वभावतः जो भीरु—डरपोक होता है त्रस्त—भय के कारणों से जो जल्दी डर जाता है, अर्थात्—जिसके कान स्तब्ध स्थिर हो जाते हैं जो—अपने कानों को स्तब्ध स्थिर करने रूप लक्षणों से युक्त होता है कष्ट विचारणा आदि में उद्वेग वाला बन जाता है तथा—त्रासी त्रसन स्वभाव वाला होता है ऐसा वह गज मृगपद वाच्य होता है—३। सङ्कीर्ण लक्षण "एएसिं"—इत्यादि जिस हाथी में भद्र—मन्द और मृग हाथी के थोडे—२ लक्षण मिलते हैं, अर्थात्—जो भद्रादि हाथियों के भद्रत्वादि गुणों को थोडे

એવા, જેના નખ દાંત અને વાળ સ્થૂલ હોય એવો, અને સિંહના સમાન શ્વેત-રક્તવાળી આંખોવાળો જે હાથી હોય છે તેને 'મંદગજ' કહે છે.

મૃગ લક્ષણ- 'તનુકો'-ઇત્યાદિ જેનું શરીર પાતળું હોય છે, જેનો કંઠ કૃશ હોય છે, જેની ત્વચા પાતળી હોય છે જેના દાંત નખ અને વાળ પાતળા (કૃશ) હોય છે જે સ્વભાવે ભીરુ (ડરપોક) હોય છે, ત્રસ્ત—ભયને કારણે જે જલ્દી ડરી જાય છે-એટલે કે ભયને કારણે જેના કાન સ્તબ્ધ (સ્થિર) થઈ જાય છે, જે પોતાના કાનોને સ્તબ્ધ સ્થિર કરવાના લક્ષણોથી યુક્ત હોય છે જે કષ્ટ વિચારવા આદિમાં ઉદ્વેગયુક્ત થઈ જાય છે તથા જે ત્રાસી (ત્રસન ગુણથી યુક્ત) હોય છે એવા હાથીને મૃગગજ (મૃગ સમાન ગજ) કહે છે.

સંકીર્ણ લક્ષણ— 'एएसिं" ઇત્યાદિ-જે હાથીમાં ભદ્ર, મન્દ અને મૃગગજના થોડાં થોડાં લક્ષણોનો સદ્ભાવ હોય છે, એટલે કે જે ભદ્રાદિ હાથીઓના ભદ્રત્વ આદિ ગુણોને થોડા થોડા પ્રમાણમાં ધારણ કરનારો હોય

शीलेन-स्वभावेन च सङ्कीर्णः-भद्र मन्दमृगस्वभावमिश्रो भवति स गजः 'सङ्कीर्णः'-सङ्कीर्णपदवाच्यो भवतीति ज्ञातव्यः-बोध्यः ४।

अथ भद्रादीनां मदसमयमाह—

"भद्दो मज्जइ" इत्यादि-भद्र-प्रागुक्तो गजः, शरदि-शरदृतौ, माद्यति-मदोन्मत्तो भवति। मन्दः पुनर्वसन्ते माद्यति। मृगो हेमन्ते माद्यति। सङ्कीर्णः-सर्वकाले-ऋतुषट्के माद्यति। ५

तत्र भद्रादीनां प्रहरणप्रकारो यथा—

"दंतेहिं हणइ भद्दो, मंदो हत्थेण आहणइ हत्थी।
गत्ताधरेहि य मिओ, संकिण्णो सव्वओ हणइ।१।" इति,

छाया—"दन्तैर्हन्ति भद्रो, मन्दो हस्तेनाऽऽहन्ति हस्ती।
गात्राधराभ्यां मृगः, सङ्कीर्णः सर्वैर्हन्ति।१। सू० ४३।

पूर्वं 'सङ्कीर्णः सङ्कीर्णमनाः' इत्यत्र मनःस्वरूपमुक्तम्, अथ वाचः स्वरूपं निरूपयितुं विकथाकथां प्रकरते—

मूलम्—चत्तारि विकहाओ पणत्ताओ, तं जहा-इत्थिकहा १, भत्तकहा २, देसकहा ३, रायकहा ४।१। इत्थिकहा चउव्विहा

-२ रूपमें अपने में धारण करता है. तथा-रूप शरीराकृति से एवं शील स्वभाव से जो सङ्कीर्ण होता है भद्र-मन्द और मृगके स्वभाव से मिलता है ऐसा वह गज सङ्कीर्ण कहा गया है। भद्र हाथी शरद ऋतुमें मदोन्मत्त (मदमस्त) होता है, मन्द हाथी वसन्त में, मृग हाथी हेमन्त में, और सङ्कीर्ण हाथी छ वो ऋतुवों में मदोन्मत्त होता है।

"दंतेहिं हणइ भद्दो इत्यादि

भद्र हाथी दांतो से, मन्द हाथी सूढ से, मृग हाथी शरीर-और अधरोष्ठ से, सङ्कीर्ण हाथी अपने समस्त अङ्गोंसे प्रहार करता है-॥४३॥

છે, તથા શરીરાકૃતિ અને શીલ સ્વભાવની અપેક્ષાએ સંકીર્ણ હોય છે, ભદ્ર, મન્દ અને મૃગના સ્વભાવ સાથે જેનો સ્વભાવ મળતો આવે છે, એવા હાથીને 'સંકીર્ણગજ' કહે છે ભદ્ર હાથી શરદ ઋતુમાં મદોન્મત્ત થાય છે, મન્દ હાથી વસન્તમાં, મૃગ હાથી હેમન્તમાં અને સંકીર્ણ હાથી છએ ઋતુમાં મદોન્મત્ત થાય છે

"દંતેહિ હણઇ ભદ્દો, ઇત્યાદિ

ભદ્ર હાથી પોતાના દંતશૂળોથી, મન્દ હાથી પોતાની સૂંઢથી, મૃગ હાથી શરીર અને અધરોષ્ઠથી અને સંકીર્ણ હાથી પોતાના સમસ્ત અંગોથી પ્રહાર કરે છે ॥ સૂ. ૪૩ ॥

पण्णत्ता, त जहा--इत्थीणं जाइकहा १, इत्थीणं कुलकहा २, इत्थीण रूवकहा ३, इत्थीण णेवत्थकहा ४ ॥२॥ भत्तकहा चउ व्विहा पण्णत्ता, त जहा--भत्तस्स आवावकहा १, भत्तस्स णिवा वकहा २, भत्तस्स आरभकहा ३, भत्तस्स णिट्ठाणकहा ४। ।३। देसकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा--देसविहिकहा १, देसविक प्पकहा २, देसच्छदकहा ३, देसणेवत्थकहा ४ ॥४॥

रायकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा-रन्नो अइयाणकहा १, रन्नो निज्जाणकहा २, रन्नो बलवाहणकहा ३, रन्नो कोस कोट्ठागारकहा ४ । ॥ ५ ॥

चउव्विहा धम्मकहा पण्णत्ता, त जहा--अक्खेवणी १, विक्खे वणी २, सवेयणी ३, णिव्वेयणी ४ ।१। अक्खेवणीकहा चउ व्विहा पण्णत्ता, त जहा आयार अक्खेवणी १, ववहार अक्ख वणी २, पण्णत्ति अक्खेवणी ३, दिट्ठिवाय अक्खेवणी ४ ॥२॥ विक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा--ससमय कहेइ, ससमय कहित्ता परसमय कहेइ १, परसमय कहित्ता ससमय ठावयित्ता भवइ २, सम्मावाय कहेइ, सम्मावाय कहित्ता मिच्छा वाय कहेइ ३, मिच्छावाय कहित्ता सम्मावाय ठावइत्ता भवइ ४। ३ । सवेयणी कहा चउव्विहा--पण्णत्ता, तं जहा -इहलोग संवेयणी १, परलोगसंवेयणी २ आयसरीरसवेयणी ३, परसरीर सवेयणी ४। ४ ॥

निव्वेयणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा--इहलोए दुच्चिन्ना कम्मा इहलोए दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति १, इहलोए दुच्चिन्ना कम्मा परलोए दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति २, परलोए दुच्चिन्ना कम्मा इहलोए दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति परलोए दुच्चिन्ना कम्मा परलोए दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति४।

इहलोए सुचिन्ना कम्मा इहलोए सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति १, इहलोए सुचिन्ना कम्मा परलोए सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति २, एवं चउभंगो ४ ॥ सू० ४४ ॥

छाया—चतस्रो विकथाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रीकथा १, भक्तकथा २, देशकथा ३, राजकथा ४। ।१। स्त्रीकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रीणां जातिकथा १, स्त्रीणां कुलकथा २, स्त्रीणा रूपकथा ३, स्त्रीणां नेपथ्यकथा ४। ।२। भक्तकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—भक्तस्याऽऽवापकथा, १, भक्तस्य निर्वापकथा २, भक्तस्याऽऽरम्भकथा ३, भक्तस्य निष्ठानकथा ४। ३॥

देशकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—देशविधि कथा १, देशविकल्पकथा २, देशच्छन्दःकथा ३, देशनेपथ्यकथा ४। ।४। राजकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—राज्ञोऽतियानकथा १, राज्ञो निर्याणकथा २, राज्ञो बलवाहनकथा ३, राज्ञः कोशकोष्ठागारकथा ४। ।५।

चतुर्विधा धर्मकथा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आक्षेपणी १, विक्षेपणी २, संवेदनी ३, निर्वेदनी ४। ।१। आक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आचाराऽऽक्षेपणी १ व्यवहाराऽऽक्षेपणी २ प्रज्ञप्त्याक्षेपणी ३ दृष्टिवादाऽऽक्षेपणी ४। ।२। विक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्वसमयं कथयति, स्वसमयं कथयित्वा परसमयं कथयति १, परसमयं कथयित्वा स्वसमयं स्थापयिता भवति २, सम्यग्वादं कथयति, सम्यग्वादं कथयित्वा मिथ्यावादं कथयति ३, मिथ्यावादं कथयित्वा सम्यग्वादं स्थापयिता भवति ४। ।३। संवेदनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—इहलोकसंवेदनी १, परलोकसंवेदनी २, आत्मशरीरसंवेदनी ३, परशरीरसंवेदनी ४।४।

निर्वेदनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति १, इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके

पण्णत्ता, त जहा-इत्थीणं जाइकहा १, इत्थीणं कुलकहा २, इत्थीण रूवकहा ३, इत्थीण णेवत्थकहा ४ ॥२॥ भत्तकहा चउ विहा पण्णत्ता, त जहा--भत्तस्स आवावकहा १, भत्तस्स णिव्वा वकहा २, भत्तस्स आरभकहा ३, भत्तस्स णिट्ठाणकहा ४। ।३। देसकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा--देसविहिकहा १, देसविक प्पकहा २, देसच्छदकहा ३, देसणेवत्थकहा ४ ॥४॥

रायकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा -रन्नो अइयाणकहा १, रन्नो निज्जाणकहा २, रन्नो बलवाहणकहा ३, रन्नो कोस कोट्ठागारकहा ४। ॥ ५ ॥

चउव्विहा धम्मकहा पण्णत्ता, त जहा अक्खेवणी १, विक्खे वणी २, सवेयणी ३, णिव्वेयणी ४ ।१। अक्खेवणीकहा चउ व्विहा पण्णत्ता, त जहा आयार अक्खेवणी १, ववहार अक्खे वणी २, पण्णत्ति अक्खेवणी ३, दिट्ठिवाय अक्खेवणी ४ ॥२॥ विक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा--ससमय कहेइ, ससमय कहित्ता परसमय कहेइ १, परसमय कहित्ता ससमय ठावयित्ता भवइ २, सम्मावाय कहेइ, सम्मावाय कहित्ता मिच्छा वाय कहेइ ३, मिच्छावाय कहित्ता सम्मावाय ठावइत्ता भवइ ४। ३। सवेयणी कहा चउव्विहा--पण्णत्ता, त जहा इहलोग सवेयणी १, परलोगसवेयणी २ आयसरीरसवेयणी ३, परसरीर संवेयणी ४। ४ ॥

"इत्थिकहा" चउव्विहा" इत्यादि—स्त्रीकथा चतुर्विधा जात्यादिभेदेन, तत्र स्त्रीणां जातिकथा—जात्या जातेर्वा कथा—ब्राह्मणीप्रभृतीनामन्यतमायाः प्रशंसा निन्दा वा १, एवं स्त्रीणां कुलकथा—उत्कृष्टापकृष्टकुलजातानां स्त्रीणां कस्याश्चित् स्त्रियाः प्रशंसा कस्याश्चिन्निन्दा वा २, तथा स्त्रीणां रूपकथा-आन्ध्रीप्रभृतीनां मध्ये कस्याश्चिद् रूपस्य प्रशंसा निन्दा वा ३, तथा—स्त्रीणां नेपथ्यकथा—महाराष्ट्रीप्रभृतीनां स्त्रीणां कस्याश्चित् कच्छबन्धनादिवेषस्य प्रशंसा निन्दा वा ४।

स्त्रीकथायां चैते दोषाः—" आयपरमोहुदीरणं उड्डाहो सुत्तमाइ परिहाणी।
बंभवयस्स अगुत्ती पसंगदोसा य गमणादी। १।"

देश सम्बन्धी कथाका नाम -देश कथा है और राजसम्बन्धी कथा का नाम राजकथा है। "इत्थिकहा चउव्विहा"—इत्यादि, स्त्री कथा चार प्रकारकी हैं--जैसे- स्त्रियों की जाति की कथा, १ स्त्रियों के कुल की कथा, २ स्त्रियों के रूप की कथा, ३ और -स्त्रियों के नेपथ्यकी कथा, ४। ब्राह्मणी आदि किसी एक की प्रशंसा, अथवा,-निन्दा करना यह - स्त्री कथाका प्रथम भेद है, १। उत्कृष्ट-अपकृष्ट कुल में उत्पन्न हुई स्त्रियों में से किसी एक की प्रशंसा-या-निन्दा करना यह-स्त्री कथाका द्वितीय भेद है। आन्ध्री (आन्ध्र प्रदेशमें जन्मी हुई) स्त्रियों में से किसी एक स्त्री के रूपकी प्रशंसा--अथवा निन्दा करना यह- स्त्री कथाका तीसरा भेद है--३ तथा- महाराष्ट्री आदिक स्त्रियों में से किसी एक स्त्रीके कच्छ बन्धनादि वेष की प्रशंसा करना अथवा किसी के वेष की निन्दा करना यह- स्त्री कथा का चतुर्थ भेद है -४। स्त्री कथा में -ये दोष है—" आय परमोहुदीरणं "—इत्यादि—

અને રાજા વિષેની કથાને રાજકથા કહે છે. "इत्थिकहा चउव्विहा" ઈત્યાદિ. સ્રીકથા ચાર પ્રકારની કહી છે—(૧) સ્ત્રીઓની જાતિની કથા, (૨) સ્ત્રીઓના કુળની કથા, (૩) સ્ત્રીઓના રૂપની કથા અને (૪) સ્ત્રીઓના નેપથ્યની કથા.

બ્રાહ્મણી આદિ એક જાતિની સ્ત્રીની પ્રશસા અથવા નિન્દા કરવી તેનુ નામ સ્ત્રીવિષયક જાતિકથા છે. ઉત્તમ અથવા નીચ કુળની વાત કરીને કોઈ કુળમાં જન્મેલી સ્ત્રીની પ્રશસા કરવી અને કોઇ કુળમા જન્મેલી સ્ત્રીની નિન્દા કરવી, તેને સ્ત્રીવિષયક કુળકથા કહે છે સ્ત્રીના રૂપની પ્રશસા અથવા નિન્દા કરવી તેનુ નામ રૂપકથા છે. (૪) મહારાષ્ટ્રિય આદિ સ્ત્રીઓની વેષભૂષાની પ્રશસા કરવી અને કોઈ બીજી સ્ત્રીના વેષની નિન્દા કરવી તેનું નામ નેપથ્ય કથા છે સ્ત્રીકથામા જે દોષો છે તે આ ગાથામા પ્રકટ કર્યા છે—

" आय परमोहुदीरण " ઈત્યાદિ—

दु खफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति २ परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दुःख फलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ३, परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दुःखफल विपाकसंयुक्तानि भवन्ति ४।

इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि इहलोके सुखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति १, *इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि परलोके सुखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति* २, एवं चतुर्भङ्गी ४ ।२। सू० । ४४।

टीका—" चत्तारि विकहाओ " इत्यादि—विकथा –विरुद्धाः–संयमबाधकतया प्रतिपक्षीभूताः, कथा–वचनपद्धतय इति विकथाः, ताश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तथथा–स्त्रीकथा–स्त्रीणां स्त्रीषु वा कथा स्त्रीकथा, स्त्रीकथायां विकथात्वं च संयम परिपन्थित्वाद्बोध्यम् १।

एवं भक्तकथा–भक्त–भोजनं तस्य कथा २, देशकथा-३ राजकथा-४।

" सङ्कीर्ण–सङ्कीर्णमनाः "—इस पाठ में मनका स्वरूप कह दिया है इसलिये अब सूत्रकार वचन का स्वरूप प्रकट करने के लिये विकथाका कथन करते हैं—" चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ "—इत्यादि—४४

टीकार्थ–चार विकथाएं कही गई हैं, जैसे–स्त्री कथा,१ भक्त कथा,२ देश कथा, ३ और राजकथा ४, । संयम में बाधक होने के कारण जो उसका प्रतिपक्ष होती है ऐसी वचन पद्धतियां विकथा हैं। स्त्रियों की कथा करना या स्त्रियों में बैठ कर कथा करना ही स्त्री कथा है। स्त्री कथा को विकथा कहने का कारण यह है कि–यह संयम का परिपन्थी विपक्ष है। भक्त नाम भोजन का है, भोजन की कथाका नाम भक्त कथा है।

' સંકીર્ણ–સંકીર્ણમનાઃ " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા મનનું સ્વરૂપ પ્રકટ કર્યું છે હવે સૂત્રકાર વચનનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવા નિમિત્તે વિકથા–કથાનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે ' चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ–ચાર વિકથાઓ કહી છે—(૧) સ્ત્રીકથા (૨) ભક્તકથા, (૩) દેશકથા અને (૪) રાજકથા આ ચારે પ્રકારની કથાઓ સંયમના પાલનમાં બાધકરૂપ હોવાને કારણે તેમને વિકથાઓ કહી છે સ્ત્રીઓ વિષે વાતો કરવી અથવા સ્ત્રીઓ વચ્ચે બેસીને વાતો કરવી તેનું નામ સ્ત્રીકથા છે સ્ત્રીકથાને વિકથા કહેવાનું કારણ એ છે કે તે સંયમની પરિપન્થી (વિપક્ષભૂત) છે ' ભક્ત ' એટલે ભોજન–ભોજન સંબંધી વાતોને ભક્તકથા કહે છે દેશ વિષેની કથાને

संपद्यन्ते नाल्पवह्नितापेनेत्यादिरूपा ३, भक्तस्य निष्ठानकथा-निष्ठानं शतसहस्र-प्रभृति द्रव्यं तस्य कथा "अमुकभोजने एतावद् द्रव्यमुपयुज्यते' इत्येवंरूपा निष्ठान कथेति ४। अत्र चैते दोषाः-

"आहारमंतरेणवि गेहीओ जाइए सईगालं।
अजिइंदिय ओदरियावाओ उ अणुन्नदोसाय। १।"

छाया--"आहारमन्तरेणापि गृद्धया जायते साङ्गारम्
अजितेन्द्रियता औदरिकवादस्तु अनुज्ञादोषाश्च ।१। इति, ४।

"देसकहा चउव्विहा" इत्यादि-देशस्य मगधादेः कथा देशकथा, सा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-देशविधिकथा-देशे-मगधप्रभृतौ विधिः-विरचना-भोजनमणिमयभूमिकादीनां निर्माणं, तस्य कथा तथा १,

---

ताप से अच्छी बनती हैं, और-अल्प अग्नि ताप से अच्छी नहीं बनती है इत्यादि, यह भोजन कथाका तृतीय भेद है-३। शत-सहस्र आदि द्रव्यका नाम निष्ठान है, इस द्रव्य की कथा करना कि अमुक भोजनमें इतना द्रव्य खर्चा जाय (खर्च किया जाय) तभी वह ठीक-२ बनता है, यह भक्तका चौथा भेद है-४ इस भक्त कथा में इतने दोष हैं--"आहारमंतरेण वि"--इत्यादि। देस कहा चउव्विहा-" इत्यादि-- मगध आदि देश की कथा करना, यह-देशकथा है, जो कि चार प्रकार कही गई है, जैसे--देशविकथा-१ देशविकल्प कथा-२ देश-च्छन्द कथा-३ और देशनेपथ्य कथा-४। मगध आदि देश में भोजन-मणिमय भूमि आदि का निर्माण अच्छा होता है, या-बुरा होता है

વસ્તુઓ આટલી અગ્નિના તાપથી સારી બને છે-ઓછાં તાપથી સારી બનતી નથી, આ પ્રકારની કથાને ત્રીજા ભેદમાં ગણાવી શકાય છે

ભોજનના નિષ્ઠાનની કથા—શત, સહસ્ર આદિ દ્રવ્યનું નામ નિષ્ઠાન છે. અમુક ભોજનમાં આટલું દ્રવ્ય ખર્ચ કરવામાં આવે, તો જ તે ભોજન સારૂ બને છે, અથવા અમુક માણસે અમુક ભોજન સમારંભમાં આટલું દ્રવ્ય વાપર્યું, આ પ્રકારની કથાને આ ચોથા ભેદમાં મૂકી શકાય છે.

આ ભક્તકથામાં આટલા દોષ છે-"आहारमंतरेण वि" ઈત્યાદિ.

"देसकहा चउव्विहा" ઈત્યાદિ—મગધ દેશની કથા કરવી તેનું નામ દેશકથા છે દેશકથાના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) દેશ વિધિ કથા, (૨) દેશ વિકલ્પ કથા, (૩) દેશ છન્દ કથા, અને (૪) દેશ નેપથ્ય કથા.

(૧) મગધ આદિ દેશમા ભોજન, મણિમય ભૂમિ આદિનું નિર્માણ સારૂં થાય છે કે નરસુ થાય છે, એવી જે વાત કરાય છે તેને દેશ વિધિ

छाया—" आत्मपरमोहोदीरणा उद्गमः सूत्रादिपरिहानिः ।
प्रथमव्रतस्यागुप्तिः प्रसङ्गदोषाश्च गमनादयः ।।१।। " इति,

" भत्तकहा चउव्विहा " इत्यादि–भक्तकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–भक्तस्य–आवापकथा–आवापः–शाकघृतादिः, तस्य कथा–अमुकरसवत्यामियन्ति शाकघृतादीन्युपयुज्यन्त इत्येवं रूपा कथा १, भक्तस्य निर्वापकथा–निर्वापः–पक्वा पक्व आहारः, तस्य कथा–अमुकरसवत्यामेतावन्तः पक्वापक्वान्नव्यञ्जनविशेषा उपयुज्यन्त इत्येवलक्षणा कथा २, भक्तस्य आरम्भकथा–आरम्भः–अग्न्याद्यारम्भः तस्य कथा–एतावता वह्नितापेन संयावादिवस्तूनि (हलुआदि प्रसिद्धः) पच्यन्ते

" भत्त कहा चउव्विहा "—इत्यादि, भक्तकथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे भक्त के आवापकी कथा, १ भक्त के निर्वापकी कथा, २ भक्त के आरम्भ की कथा, ३ और भक्त के निष्ठान की कथा, ४ । शाक घृत आदि का नाम आवाप है, भक्त सम्बन्धी शाक घृतादि की कथा करना कि–अमुक रसवन्ती में (रसोई में) इतने शाक या ऐसे २ शाक घृतादि उपभोग में लाये जाते हैं, ऐसी कथा भक्त कथा का प्रथम भेद है । पक्वाऽपक्व आहारका नाम निर्वाप है, इस भोजन सम्बन्धी निर्वाप की कथा करना कि–अमुक " रसवन्ती " में इतने पक्वान्न और–इतने अपक्वान्न उपयुक्त होते हैं ऐसी कथा भोजन कथा का द्वितीय भेद है । भोजन के विषय में अग्नि आदिक के आरम्भ की कथा करना कि—संयाव–" हलुआ " आदि वस्तुएं इतने अग्नि के

' भत्तकहा चउव्विहा " ઇત્યાદિ—ભક્ત કથાના પણ ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે–(૧) ભક્તના આવાપની કથા, (૨) ભક્તના નિર્વાપની કથા, (૩) ભક્તના આરમ્ભની કથા અને (૪) ભક્તના નિષ્ઠાનની કથા

" ભક્તના આવાપની કથા "—શાક ઘી આદિનું નામ ' આવાપ ' છે અમુક ભોજનમાં આટલાં શાક, આટલા ઘૃતાદિ ઉપયોગમાં લીધાં હતાં આ પ્રકારની ભોજનના વિષયમાં જે વાતો કરવામાં આવે છે, તેને ભોજનના આવાપની કથા કહે છે

(૨) ' ભોજનના નિર્વાપની કથા "—પક્વાપક્વ આહારને નિર્વાપ કહે છે અમુક ભોજન સમારંભમાં આટલા પકવાન અને આટલાં અપકવાન ઉપયોગમાં લેવાય છે અથવા લેવામાં આ વ્યા હતા, આ પ્રકારની કથાને આ બીજા ભેદમાં મૂકી શકાય છે.

(૪) ભોજનના આરંભની કથા—ભોજનના વિષયમાં અગ્નિ આદિના આરંભની વાત કરવી તેનું નામ આરંભની કથા છે જેમકે શીરા આદિ

संपद्यन्ते नाल्पवह्नितापेनेत्यादिरूपा ३, भक्तस्य निष्ठानकथा-निष्ठानं शतसहस्र-प्रभृति द्रव्यं तस्य कथा " अमुकभोजने एतावद् द्रव्यमुपयुज्यते ' इत्येवंरूपा निष्ठान कथेति ४। अत्र चैते दोषाः-

" आहारमंतरेणवि गेहीओ जाइए सईगालं।
अजिइंदिय ओदरियावाओ उ अणुन्नदोसाय। १। "

छाया--" आहारमन्तरेणापि गृद्धया जायते साङ्गारम्
अजितेन्द्रियता औदरिकवादस्तु अनुज्ञादोषाश्च।१। इति, ४।

" देसकहा चउव्विहा " इत्यादि-देशस्य मगधादेः कथा देशकथा, सा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-देशविधिकथा-देशे-मगधप्रभृतौ विधिः-विरचना-भोजनमणिमयभूमिकादीनां निर्माणं, तस्य कथा तथा १,

---

ताप से अच्छी बनती हैं, और-अल्प अग्नि ताप से अच्छी नहीं बनती है इत्यादि, यह भोजन कथाका तृतीय भेद है-३। शत-सहस्र आदि द्रव्यका नाम निष्ठान है, इस द्रव्य की कथा करना कि अमुक भोजनमें इतना द्रव्य खर्चा जाय (खर्च किया जाय) तभी वह ठीक-२ बनता है, यह भक्तका चौथा भेद है-४ इस भक्त कथा में इतने दोष हैं— " आहारमंतरेण वि "—इत्यादि। देस कहा चउव्विहा-" इत्यादि-- मगध आदि देश की कथा करना, यह-देशकथा है, जो कि चार प्रकार कही गई है, जैसे—देशविकथा-१ देशविकल्प कथा-२ देशच्छन्द कथा-३ और देशनेपथ्य कथा-४। मगध आदि देश में भोजन-मणिमय भूमि आदि का निर्माण अच्छा होता है, या-बुरा होता है

વસ્તુઓ આટલી અગ્નિના તાપથી સારી બને છે-ઓછાં તાપથી સારી બનતી નથી, આ પ્રકારની કથાને ત્રીજા ભેદમાં ગણાવી શકાય છે

ભોજનના નિષ્ઠાનની કથા—શત, સહસ્ર આદિ દ્રવ્યનું નામ નિષ્ઠાન છે. અમુક ભોજનમાં આટલુ દ્રવ્ય ખર્ચ કરવામાં આવે, તો જ તે ભોજન સારૂં બને છે, અથવા અમુક માણસે અમુક ભોજન સમારંભમાં આટલું દ્રવ્ય વાપર્યું, આ પ્રકારની કથાને આ ચોથા ભેદમાં મૂકી શકાય છે.

આ ભક્તકથામા આટલા દોષ છે-" आहारमंतरेण वि " ઈત્યાદિ.

" देसकहा चउव्विहा " ઈત્યાદિ—મગધ દેશની કથા કરવી તેનુ નામ દેશકથા છે દેશકથાના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) દેશ વિધિ કથા, (૨) દેશ વિકલ્પ કથા, (૩) દેશ છન્દ કથા, અને (૪) દેશ નેપથ્ય કથા.

(૧) મગધ આદિ દેશમા ભોજન, મણિમય ભૂમિ આદિનું નિર્માણ સારૂં થાય છે કે નરસુ થાય છે, એવી જે વાત કરાય છે તેને દેશ વિધિ

देशविकल्पकथा–देशे विकल्पाः–सस्यादिनिष्पत्ति, वप्रकूपतडागभवनमभृति निर्माणलक्षणश्च देशविकल्पः, तस्य कथा २,

देशच्छन्द कथा–देशे छन्द –गम्यागम्यविभाग, यथा 'लाट' देशे मातुल कन्या गम्या क्वचिन्मातुलभगिनी च, तदन्यदेशेऽगम्या सेति देशच्छन्दः, तस्य कथा देशच्छन्दःकथा ३।

देशनेपथ्यकथा–देशे नेपथ्यस्य स्त्रीपुरुषाणां स्वाभाविकस्य वेषस्य तथाऽलङ्कारचितस्य च कथा देशनेपथ्यकथा ४। इह चैते दोषाः–

" रागदोसुप्पत्ती सपक्खपरपक्खमो य अहिगरणं।

बहुगुण इमोत्ति देसो सोउ गमणं च अन्नेसिं। १। " इति,

छाया—" रागद्वेषोत्पत्तिः स्वपक्ष–परपक्षाभ्यामधिकरणम्।

बहुगुण एष इति देशः श्रुत्वा गमन चान्येषाम्। १। "

ऐसी कथा करने का नाम–देशविकथा है–१ मगधादि देश में धान्य उत्पादन विधान की कथा, एवं—वप्र कूप तडाग भवन आदि के निर्माण की कथा करना यह देशविकथा है–२ देशच्छन्द कथा—देशादि को लेकर गम्याऽगम्य आदि की कथा करना, जैसे-लाट देश में मामा की कन्या गम्य होती है, कहीं मामाकी बहन गम्य सेवनीय होती है, और—इससे विभिन्न देश में अगम्या होती है–३ देशनपथ्य कथा—देशको लेकर स्त्री पुरुषों के स्वाभाविक वेष भूषा आदि की कथा करना, जैसे—अमुक देशमें स्त्री पुरुषो की वेष विभूषा इस प्रकार की होती है, अमुक देश में इस प्रकार की–४ इस कथा में ऐसे दोष हैं–" रागदोसुप्पत्ती "—इत्यादि। " रायकहा चउ

કથા કહે છે (૨) મગધ આદિ દેશમાં અનાજ વગેરેના ઉત્પાદનની કથા તથા કૂવા, વાવ તળાવ, ભવન આદિના નિર્માણની કથાને દેશ વિકલ્પ કથા કહે છે. (૩) દેશાદિની અપેક્ષાએ ગમ્ય–અગમ્ય આદિની કથા કરવી તેનું નામ દેશ છંદ કથા છે. " ગમ્ય " એટલે સેવનીય અને ' અગમ્ય ' એટલે અસેવનીય. જેમકે " લાટાદિ દેશમાં મામાની દીકરી ગમ્ય (સેવનીય) હોય છે, અને અન્ય દેશોમાં મામાની દીકરી અગમ્ય હોય છે, " આ પ્રકારની કથાને દેશ છન્દ કથા કહે છે (૪) અમુક દેશમાં સ્ત્રી–પુરુષોની વેષભૂષા આ પ્રકારની હોય છે આ પ્રકારની કોઇ દેશના સ્ત્રીપુરુષોના સ્વાભાવિક વેષભૂષાની કથાને દેશ નેપથ્ય કથા કહે છે આ દેશકથાના દોષો આ ગાથામાં પ્રકટ કર્યા છે ' રાગદોસુપ્પત્તી " ઇત્યાદિ—

" रायकहा चउव्विहा " इत्यादि-राजकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-राज्ञोऽतियानकथा-राज्ञः-अतियानं-नगरादौ प्रवेशः, तस्य कथा अतियानकथा १, तथा-राज्ञो निर्याणकथा-निर्याणं-नगराद् निःसरण, तस्य कथा निर्याणकथा २, राज्ञो बलवाहनकथा-बलं हस्त्यादि, वाहनं-वेसरादि, तदुभयकथा बलवाहनकथा३, राज्ञः कोशकोष्ठागारकथा-कोश -निधिः-सुवर्णादिभाण्डागार, कोष्ठं कुसूलादि, तद्रूपमगारं धान्यागारमित्यर्थः, तदुभयकथा कोशकोष्ठागारकथा ४। इह चारकचोरादिशङ्कारूपा अनेके दोषा भवन्ति, उक्तं च—

" हियत्थस्स भवे चोरो, मारियस्स णु हिंसगो ।
रहस्सभेदगो वेमो, इइ संका पजायए । १ । "

छाया-" हृतार्थस्य भवेच्चोरो, मारितस्य तु हिंसकः ।
रहस्यभेदको वाऽय-मिति शङ्का प्रजायते ।१। " इति ।

व्विहा "-इत्यादि-राजकथा चार प्रकार की कही गई है-जैसे-राजा की अतियान कथा-१ राजा की निर्याण कथा-२ राजा की बलवाहन कथा-३ राजा की कोष्ठागार कोष कथा-४ इन में राजा के नगर आदि में प्रवेश करने की जो-कथा है वह-राजा की अतियान कथा है-१ राजा के नगर से बाहर निकलते समय की जो कथा है वह-राजा की निर्याण कथा है-२ राजा के बल-सैन्य-की वाहन-हस्त्यादि की, तथा-दोनों बल-वाहनों की कथा करना यह राजा की बल वाहन कथा है-३ राजा के सुवर्णादि भाण्डारकी एवं-धान्यागारकी कथा तथा इन दोनों की कथा करना सो यह-राजा की कोष्ठागार कथा है-४। यहाँ-चारक चोर आदि शङ्का रूप अनेक दोष होते हैं। उक्तञ्च—" हियत्थस्स भवे चोरो "—इत्यादि। " धम्मकहा चउव्विहा "—

" रायकहा चउव्विहा " ઇત્યાદિ—રાજકથા ચાર પ્રકારની કહી છે-(૧) રાજાની અતિયાન કથા, (૨) રાજાની નિર્યાણ કથા, (૩) રાજાની બલવાહન કથા, (૪) રાજાની કોષ્ઠાગાર કોષ કથા (૧) રાજાના નગર પ્રવેશ વિષયક કથાને ' રાજાની અતિયાન કથા ' કહે છે. (૨) રાજા નગરની બહાર વિજયાદિ નિમિત્તે જે પ્રયાણ કરે છે તેની કથાને ' રાજાની નિર્યાણ કથા ' કહે છે (૩) રાજાના સૈન્ય, હાથી, ઘોડા આદિ વાહન અથવા બન્નેની (બલ વાહનોની) કથા કરવી તેનું નામ ' બલવાહન કથા ' છે (૪) રાજાના સુવર્ણાદિ કોષની ધાન્ય ભંડારની કથાને ' કોષ્ઠાગાર કોષ કથા ' કહે છે. અહીં ચારક (ચોર) આદિ શંકારૂપ અનેક દોષ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે—

" हियत्थस्स भवे चोरो " ઇત્યાદિ—

अथ धर्मकथा-

" चउव्विहा धम्मकहा " इत्यादि-धर्मकथा - धरति-भवजलधौ निमज्जद् भव्यजनान् धारयति-प्लव इव तारयति शुभस्थानं प्रापयतीति धर्मः, तस्य कथा-भगवद्देशनालक्षणो वाक्यप्रबन्धो धर्मकथा। यद्वा - शुभाशुभकर्मविपाकोपदर्शनं धर्मकथा। सा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आक्षेपणी-आक्षिप्यते-मोहं निराकृत्य तत्त्वं चारित्रं वा प्रति समाकृष्यते श्रोताऽनयेति आक्षेपणी। उक्तं च-

" स्थाप्यते सत्पथे श्रोता, यथा साऽऽक्षेपणी कथा।

यथेषुकारं कमला-वती धर्मे न्यतिष्ठिपत्। १। इति, १।

तथा-विक्षेपणी-विक्षिप्यते=सम्यग्वादगुणोत्कर्षप्रदर्शनेन मिथ्यावादात्पराङ्मुखीक्रियते श्रोताऽनयेति विक्षेपणी, उक्तं च-

इत्यादि-जो भव जलधि में डूबते हुवे प्राणियों को उससे नौका की तरह पार लगा देता है-शुभस्थान में पहुंचा देता है उसका नाम-धर्म है, इस धर्मकी जो-कथा है वह-धर्म कथा है। अर्थात्—भगवान्‌की देशनारूप जो वाक्य प्रबन्ध है वह-धर्मकथा है, अथवा-शुभाऽशुभ कर्म के विपाक फल को उपदर्शन कराने वाली जो कथा है वह-धर्म कथा है। यह धर्मकथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे-आक्षेपणी-१ विक्षेपणी-२ संवेदनी-३ और निर्वेदनी-४। इनमें-जिस कथा से श्रोता जीव मोह से दूर करा कर तत्त्व के प्रति, अथवा-चारित्र के प्रति आकृष्ट किया जाता है वह-कथा आक्षेपणी है। कहा भी —

" स्थाप्यते सत्पथे श्रोता "-इत्यादि। " विक्षेपणी "-सम्यग्वाद गुण के उत्कर्ष के प्रदर्शन से श्रोता जिस कथा द्वारा मिथ्यावाद से

" धम्मकहा चउव्विहा " ઈત્યાદિ-ધર્મકથા ચાર પ્રકારની કહી છે ભવ સાગરમાં ડૂબતા જીવોને જે નૌકાની જેમ પાર કરાવી દે છે શુભ સ્થાનમાં પહોંચાડી દે છે, તેનું નામ ધર્મ છે તે ધર્મ વિષયક જે કથા છે તેને ધર્મ કથા કહે છે એટલે કે ભગવાનની દેશના રૂપ જે વાકયપ્રબંધ છે, તેને ધર્મ કથા કહે છે અથવા શુભાશુભ કર્મના વિપાક ફળનું ઉપદર્શન કરાવનારી જે કથા છે તેને ધર્મકથા કહે છે તેના ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે-(૧) આક્ષેપણી, (૨) વિક્ષેપણી (૩) સંવેદની અને (૪) નિર્વેદની

જે કથા દ્વારા શ્રોતાના આત્માને મોહથી દૂર કરીને તત્ત્વ પ્રત્યે અથવા ચારિત્ર પ્રત્યે આકૃષ્ટ કરવામાં આવે છે તે કથાને આક્ષેપણી કથા કહે છે કહ્યું પણ છે કે " સ્થાપ્યતે સત્પથે શ્રોતા " ઈત્યાદિ—

" सम्यग्वादप्रकर्षेण मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।
यया विक्षेपणी सैव, यथा केशी प्रदेशिनम् ।२। इति, २।

तथा-संवेदनी-संवेद्यते-संसारासारताप्रदर्शनेन मोक्षाभिलाप उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदनी, उक्तं च-

" यस्याः श्रवणमात्रेण मुक्तिवाञ्छा प्रजायते ।
सवेदनी यथा मल्ली, षड् नृपान् प्रत्यबोधयत् ।३। " इति, ३।

तथा-निर्वेदनी-निर्वेद्यते=विपयेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी,
उक्तंच-" यदाकर्णनमात्रेण वैराग्यमुपजायते ।
निर्वेदनी यथा शालि-भद्रो वीरेण वोधितः ।४। इति,

अत्रत्य दृष्टान्तचतुष्टयमस्मत्कृतायामाचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां विशेपजिज्ञासुभिरवलोकनीयम् । ४ ।

अथाऽऽक्षेपणी-

" अक्खेवणी कहा चउव्विहा " इत्यादि-आक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आचाराऽऽक्षेपणी-आचारः-लोचाऽस्नानादिः, स अक्षिप्यते,-प्रकाशितः सन् स्थाप्यतेऽनयेत्याचाराऽऽक्षेपणी १ ।

दूर किया जाता है वह विक्षेपणी कथा है । कहा भी है-" सम्यग्वाद्-प्रकर्षेण "-इत्यादि. जो कथा श्रोताको संसार की असारता दिखाती हुई मोक्ष की अभिलाषा उत्पन्न कराती है वह-संवेदनी है । कहाभी है-" यस्याःश्रवणमात्रेण "-इत्यादि, जो-कथा श्रोता के विषयानुराग को ध्वस्त (नष्ट) करती हुई उन उन विषयोंसे उसे विरक्त वना देतीहै वह-कथा निर्वेदिनी है । कहा भी है- " यदा करणमात्रेण "--इत्यादि ।

आक्खेवणी कहा चउव्विहा, इत्यादि, आक्षेपणी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे — आचाराक्षेपणी, १ व्यवहा-

---

" વિક્ષેપણી " સમ્યગ્વાદ ગુણના ઉત્કર્ષના પ્રદર્શનથી શ્રોતા જે કથા દ્વારા મિથ્યાવાદનો ત્યાગ કરી નાખે છે, તે કથાને વિક્ષેપણી કથા કહે છે. કહ્યું પણ છે કે " सम्यग्वादप्रकर्षेण " ઇત્યાદિ—

જે કથા શ્રોતાને સંસારની અસારતા બતાવીને તેને મોક્ષાભિલાષી બનાવે છે, તે કથાને ' સંવેદની કથા ' કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે " यस्याः श्रवणमात्रेण " ઇત્યાદિ—

જે કથા શ્રોતાના વિષયાનુરાગનો ધ્વંસ (નાશ) કરીને, તે વિષયોથી તેને વિરક્ત કરી નાખે છે, એવી કથાને ' નિર્વેદિની કથા ' કહે છે. કહ્યું પણ છે કે-" यदा करण मात्रेण " ઇત્યાદિ—

" आक्खेवणी कहा चउव्विहा " ઇત્યાદિ. આક્ષેપણી કથાના નીચે પ્રમાણે

अथ धर्मकथा-

"चउव्विहा धम्मकहा" इत्यादि-धर्मकथा - धरति-भवजलधौ निपतन्तं प्राणिजातं धारयति=प्लव इव तारयति शुभस्थानं प्रापयतीति धर्मः, तस्य कथा-भगवद्देशनालक्षणो वाक्यप्रबन्धो धर्मकथा। यद्वा - शुभाशुभकर्मविपाकोपदर्शनं धर्मकथा। सा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आक्षेपणी-आक्षिप्यते-मोहं निराकृत्य तत्त्वं चारित्रं वा प्रति समाकृष्यते श्रोताऽनयेति आक्षेपणी। उक्तं च-

"स्थाप्यते सत्पथे श्रोता, यया साऽऽक्षेपणी कथा।

यथेषुकारं कमला-वती धर्मे न्यविविश्त्(?)।१। इति, १।

तथा-विक्षेपणी-विक्षिप्यते=सम्यग्वादगुणोत्कर्षप्रदर्शनेन मिथ्यावादादपसार्यते श्रोताऽनयेति विक्षेपणी, उक्तं च-

इत्यादि-जो भव जलधि में डूबते हुवे प्राणियों को उससे नौका की तरह पार लगा देता है-शुभस्थान में पहुंचा देता है उसका नाम-धर्म है, इस धर्मकी जो-कथा है वह-धर्म कथा है। अर्थात्—भगवान्‌की देशनारूप जो वाक्य प्रबन्ध है वह-धर्मकथा है, अथवा-शुभाऽशुभ कर्म के विपाक फल को उपदर्शन कराने वाली जो कथा है वह-धर्म कथा है। यह धर्मकथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे-आक्षेपणी-१ विक्षेपणी-२ संवेदनी-३ और निर्वेदनी-४। इनमें-जिस कथा से श्रोता जीव मोह से दूर करा कर तत्त्व के प्रति, अथवा-चारित्र के प्रति आकृष्ट किया जाता है वह-कथा आक्षेपणी है। कहा भी —

"स्थाप्यते सत्पथे श्रोता"-इत्यादि। "विक्षेपणी"-सम्यग्वाद गुण के उत्कर्ष के प्रदर्शन से श्रोता जिस कथा द्वारा मिथ्यावाद से

"धम्मकहा चउव्विहा" ઇત્યાદિ-ધર્મકથા ચાર પ્રકારની કહી છે ભવ સાગરમાં ડૂબતા જીવોને જે નૌકાની જેમ પાર કરાવી દે છે શુભ સ્થાનમાં પહોંચાડી દે છે, તેનું નામ ધર્મ છે તે ધર્મ વિષયક જે કથા છે તેને ધર્મ કથા કહે છે એટલે કે ભગવાનની દેશના રૂપ જે વાક્યપ્રબન્ધ છે, તેને ધર્મ કથા કહે છે. અથવા શુભાશુભ કર્મના વિપાક ફળનું ઉપદર્શન કરાવનારી જે કથા છે તેને ધર્મકથા કહે છે. તેના ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે-(૧) આક્ષેપણી, (૨) વિક્ષેપણી, (૩) સંવેદની અને (૪) નિર્વેદની.

જે કથા દ્વારા શ્રોતાના આત્માને મોહથી દૂર કરીને તત્ત્વ પ્રત્યે અથવા ચારિત્ર પ્રત્યે આકૃષ્ટ કરવામાં આવે છે તે કથાને આક્ષેપણી કથા કહે છે કહ્યું પણ છે કે "સ્થાપ્યતે સત્પથે શ્રોતા" ઇત્યાદિ—

" सम्यग्वादप्रकर्षेण मिथ्यावादस्य खण्डनम्।
यया विक्षेपणी सैव, यथा केशी प्रदेशिनम् ।२। इति, २।

तथा-संवेदनी-संवेद्यते-संसारासारताप्रदर्शनेन मोक्षाभिलाप उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदनी, उक्तं च-

" यस्याः श्रवणमात्रेण मुक्तिवाञ्छा प्रजायते।
सवेदनी यथा मल्ली, षड् नृपान् प्रत्यबोधयत् ।३। " इति, ३।

तथा-निर्वेदनी-निर्वेद्यते=विषयेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी, उक्तंच-" यदाकर्णनमात्रेण वैराग्यमुपजायते।
निर्वेदनी यथा शालि-भद्रो वीरेण बोधितः ।४। इति,

अत्रत्य दृष्टान्तचतुष्टयमस्मत्कृतायामाचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां विशेषजिज्ञासुभिरवलोकनीयम् । ४ ।

अथाऽऽक्षेपणी-

" अक्खेवणी कहा चउव्विहा " इत्यादि-आक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आचाराऽऽक्षेपणी-आचारः-लोचाऽस्नानादिः, स अक्षिप्यते,-प्रकाशितः सन् स्थाप्यतेऽनयेत्याचाराऽऽक्षेपणी १ ।

दूर किया जाता है वह विक्षेपणी कथा है। कहा भी है-" सम्यग्वाद-प्रकर्षेण "-इत्यादि. जो कथा श्रोताको संसार की असारता दिखाती हुई मोक्ष की अभिलाषा उत्पन्न कराती है वह-संवेदनी है। कहाभी है-" यस्याःश्रवणमात्रेण "-इत्यादि, जो-कथा श्रोता के विषयानुराग को ध्वस्त (नष्ट) करती हुई उन उन विषयोंसे उसे विरक्त बना देतीहै वह-कथा निर्वेदिनी है। कहा भी है- " यदा करणमात्रेण "--इत्यादि।

आक्खेवणी कहा चउव्विहा, इत्यादि, आक्षेपणी कथा च्यार प्रकार की कही गई है, जैसे — आचाराक्षेपणी, १ व्यवहा-

---

" વિક્ષેપણી " સમ્યગ્વાદ ગુણના ઉત્કર્ષના પ્રદર્શનથી શ્રોતા જે કથા દ્વારા મિથ્યાવાદનો ત્યાગ કરી નાખે છે, તે કથાને વિક્ષેપણી કથા કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે " सम्यग्वादप्रकर्षेण " ઇત્યાદિ—

જે કથા શ્રોતાને સંસારની અસારતા બતાવીને તેને મોક્ષાભિલાષી બનાવે છે, તે કથાને ' સંવેદની કથા ' કહે છે. કહ્યુ પણ છે કે " यस्याः श्रवणमात्रेण " ઇત્યાદિ—

જે કથા શ્રોતાના વિષયાનુરાગનો ધ્વંસ (નાશ) કરીને, તે વિષયોથી તેને વિરક્ત કરી નાખે છે, એવી કથાને ' નિર્વેદિની કથા ' કહે છે. કહ્યું પણ છે કે-" यदा करण मात्रेण " ઇત્યાદિ—

" आक्खेवणी कहा चउव्विहा " ઇત્યાદિ. આક્ષેપણી કથાના નીચે પ્રમાણે

व्यवहाराऽऽक्षेपणी-व्यवहार'-कथञ्चिदागत दोष दूरीकरणाय प्रायश्चित रूप, स आक्षिप्यतेऽनयेति व्यवहाराऽऽक्षेपणी २।

प्रज्ञप्त्याक्षेपणी-प्रज्ञप्ति -संशयवतः श्रोतुः प्रियवचनैः प्रबोधन, साऽऽक्षिप्यतेऽनयति प्रज्ञप्त्याक्षेपणी ३।

दृष्टिवादाऽऽक्षेपणी-दृष्टिवादः-श्रोतारमुद्दिश्य नयाननुसृत्य सूक्ष्मजीवादिभावप्रतिपादनम्, आक्षेपण्याश्चायं रसः-

" विज्जाचरण च तवो, पुरिसक्कारो य समिइगुत्तीओ ।
उवइस्सइ खलु जं सो, कहाए अक्खेवणीयइरसो ।१। "

छाया—" विद्याचरण च तप पुरुषाकारश्च समितिगुप्तयः ।
उपदिश्यते खलु यत् स कथाया आक्षेपण्या रसः । १ । " इति ४।

इत्याक्षेपणी ।

राक्षेपणी, २ प्रज्ञप्त्याक्षेपणी, ३ और दृष्टिवादाक्षेपणी, ४ जिस कथा के द्वारा लोच आदि का करना, और स्नान आदि नहीं करना यह विषय प्रदर्शित होता हुवा स्थापित किया जाता है वह कथा ' आक्षेपणी ' है, १ कथञ्चित् आगत दोष को दूर करने के लिये प्राय श्चित्त रूप जिस कथा के द्वारा प्रकाशित किया जाता है वह-कथा व्यव हाराक्षेपणी है, २ संशयशाली पुरुष, संशयवान् श्रोताको प्रिय वचनो द्वारा बोध देनेवाली जिस कथा के द्वारा प्रकाशित की जाती है ऐसी वह कथा, प्रज्ञप्त्याक्षेपणी है, ३ श्रोताके अनुसार नयों को लेकर, नयों का आश्रय करके, जो सूक्ष्म जीव आदि पदार्थों के भावों का प्रतिपादन जिस कथा से किया जाता है वह कथा दृष्टिवादाक्षेपणी है, ४। आक्षेपणी कथाका यह रस है—"विज्जाचरणं च तवो"—इत्यादि ।

ચાર પ્રકાર કથા છે-(૧) આચારાક્ષેપણી, (૨) વ્યવહારાક્ષેપણી, (૩) પ્રજ્ઞપ્ત્યાક્ષેપણી, અને (૪) દૃષ્ટિવાદાક્ષેપણી.

જે કથા દ્વારા લોચ આદિ કરવાનું અને સ્નાન આદિ નહીં કરવાનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે તે કથાને આચારાક્ષેપણી કથા કહે છે કોઈ પણ પ્રકારે થઈ ગયેલા દોષને દૂર કરવા માટેના પ્રાયશ્ચિત્ત આદિનું જે કથા દ્વારા પ્રકાશન થાય છે તે કથાને વ્યવહારાક્ષેપણી કથા કહે છે સંશયયુક્ત શ્રોતાને પ્રિયવચનો દ્વારા પ્રબોધન રૂપ પ્રજ્ઞપ્તિનું જે કથા દ્વારા પ્રદર્શન થાય છે તે કથાને પ્રજ્ઞપ્તિ આક્ષેપણી કથા કહે છે નયોનો આશ્રય લઈને સૂક્ષ્મ જીવાદિ પદાર્થોના ભાવોનું પ્રતિપાદન જે કથા દ્વારા કરવામાં આવે છે તે કથાને દૃષ્ટિવાદાક્ષેપણી કથા કહે છે આક્ષેપણી કથાના રસને આ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે " विज्जाचरणं च तवो " ઇત્યાદિ.

" विक्खेवणी कहा " इत्यादि–विक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–स्वसमयं–स्वस्य समयः–सिद्धान्तः स्वसमयः, तं स्वसमयं कथयति=वर्णयति–तद्गुणान् प्रकाशयति प्राक्, ततः स्वसमयं कथयित्वा परसमयम्=अन्यसिद्धान्तं कथयति–परकीयसिद्धान्तदोषप्रदर्शनपूर्वकं प्रतिपादयतीत्यर्थः । १ ।

इति प्रथमा विक्षेपणी कथा १ ।

परसमयं–परकीयसिद्धान्त कथयित्वा–तद्दोषप्रदर्शनपुरस्सरं प्रतिपाद्य स्वसमय–स्वकीयसिद्धान्तं–तद्गुणप्रदर्शनपुरस्सरं स्थापयिता–स्वसिद्धान्तस्य स्थापनाशीलो भवति २। इति द्वितियाविक्षेपणी कथा । २ ।

सम्यग्वादं–परसिद्धान्तेष्वपि घुणाक्षरन्यायेन यो यावान् जिनागमतत्त्ववादसमानतया सम्यक्–समीचीनोऽविरोधितत्त्वानां वादः सम्यग्वादः, तं सम्यग्वादं कथयति, सम्यग्वादं कथयित्वा मिथ्यावादं–जिनोक्ततत्त्वविरुद्धरूपं कथयति–तद्दोषप्रदर्शनपूर्वकं प्रतिपादयति, इति तृतीयाविक्षेपणी कथा ३।

" विक्खेवणी कहा चउव्विहा "—इत्यादि, विक्षेपणी कथा चार प्रकारकी कही गई है, जो कथा पहिले स्व समय को, अपने सिद्धान्त गुणों को दिखाते हुवे अन्य सिद्धान्त को, उसके दोषों को प्रगट करते हुवे कही जाती है वह कथा विक्षेपणी कथा है, और यह पहले प्रकार की विक्षेपणी कथा है। जो कथा पर सिद्धान्त गत दोषों को प्रगट करते हुवे अपने सिद्धान्त के गुणों को प्रकाशित करते हुवे कही जाती है वह–द्वितीय प्रकार की विक्षेपणी कथा है। जो कथा पर सिद्धान्तों में भी घुणाक्षर न्याय से जितना सम्यग्वाद है जिनागमन के तात्त्विक विवेचन से मिलता हुवा कथन है, उसे प्रकट करती है, और जितना उस में मिथ्यावाद है जिनोक्ततत्त्व से विपरीत कथन है उसे प्रकट करती है इस ढङ्ग से जो कथा कही जाती है वह तृतीय प्रकार की

" विक्खेवणी कहा चउव्विहा " ઇત્યાદિ વિક્ષેપણી કથા ચાર કહી છે–જે કથામા પહેલાં સ્વસમયના (જૈન સિદ્ધાન્તના) ગુણોને પ્રકટ કરવામાં આવે છે, અને ત્યારબાદ અન્ય સિદ્ધાન્તોના દોષો પ્રકટ કરવામા આવે છે, તે કથાને પહેલા પ્રકારની વિક્ષેપણી કથા કહે છે

જે કથામાં પહેલા પર સિદ્ધાન્તગત દોષોને પ્રકટ કરીને સ્વસિદ્ધાન્તના ગુણોને પ્રકાશિત કરવામા આવે છે, તે કથાને બીજા પ્રકારની વિક્ષેપણી કહે છે.

જે કથા પર સિદ્ધાન્તોમાં જેટલો સમ્યગ્વાદ છે–જિનાગમના તાત્ત્વિક વિવેચન સાથે મળતું આવે એવું કથન છે–તેને પણ પ્રકટ કરે છે અને તેમાં જેટલો મિથ્યાવાદ–જિનોક્ત તત્ત્વ કરતા વિપરીત કથન છે, તેને પણ પ્રકાશિત કરે છે, તે કથાને ત્રીજા પ્રકારની વિક્ષેપણી કથા કહે છે.

व्यवहाराऽऽक्षेपणी-व्यवहार'-कथञ्चिदागत। दोष दूरीकरणाय मायश्चित्त-रूपः, स आक्षिप्यतेऽनयेति व्यवहाराऽऽक्षेपणी २।

प्रज्ञप्त्याक्षेपणी-प्रज्ञप्ति -संशयवतः श्रोतु प्रियवचनैः प्रबोधन, साऽऽक्षिप्य-तेऽनयति प्रज्ञप्त्याक्षेपणी ३।

दृष्टिवादाऽऽक्षेपणी-दृष्टिवादः-श्रोतारमुद्दिश्य नयानुसृत्य सूक्ष्मजीवपदार्थवि-भावप्रतिपादनम्, आक्षेपण्याश्च रसः-

" विज्जाचरण च तवो, पुरिसक्कारो य समिइगुत्तीओ ।
उवइस्सइ खलु जं सो, कहाए अक्खेवणीयइरसो ।१। "

छाया-" विद्याचरण च तप पुरुषाकारश्च समितिगुप्तयः ।
उपदिश्यते खलु यत् स कथाया आक्षेपण्या रसः ।१। " इति ४।
इत्याक्षेपणी।

राक्षेपणी, २ प्रज्ञप्त्याक्षेपणी, ३ और दृष्टिवादाक्षेपणी, ४ जिस कथा के द्वारा लोच आदि का करना, और स्नान आदि नहीं करना यह विषय प्रदर्शित होता हुआ स्थापित किया जाता है वह कथा 'आक्षेपणी' है, १ कथञ्चित् आगत दोष को दूर करने के लिये प्राय श्चित्त रूप जिस कथा के द्वारा प्रकाशित किया जाता है वह-कथा व्यव हाराक्षेपणी है, २ संशयशाली पुरुष, संशयवान् श्रोताको प्रिय वचनों द्वारा बोध देनेवाली जिस कथा के द्वारा प्रकाशित की जाती है ऐसी वह कथा, प्रज्ञप्त्याक्षेपणी है, ३ श्रोताके अनुसार नयों को लेकर, नयों का आश्रय करके, जो सूक्ष्म जीव आदि पदार्थों के भावों का प्रतिपादन जिस कथा से किया जाता है वह कथा दृष्टिवादाक्षेपणी है, ४। आक्षेपणी कथाका यह रस है-"विज्जाचरणय तवो'-इत्यादि।

ચાર પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) આચારાક્ષેપણી, (૨) વ્યવહારાક્ષેપણી, (૩) પ્રજ્ઞપ્ત્યાક્ષેપણી, અને (૪) દૃષ્ટિવાદાક્ષેપણી.

જે કથા દ્વારા લોચ આદિ કરવાનું અને સ્નાન આદિ નહીં કરવાનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે તે કથાને આચારાક્ષેપણી કથા કહે છે કોઈ પણ પ્રકારે થઈ ગયેલા દોષને દૂર કરવા માટેના પ્રાયશ્ચિત્ત આદિનું જે કથા દ્વારા પ્રકાશન થાય છે તે કથાને વ્યવહારાક્ષેપણી કથા કહે છે સંશયયુક્ત શ્રોતાને પ્રિયવચનો દ્વારા પ્રબોધન રૂપ પ્રજ્ઞપ્તિનું જે કથા દ્વારા પ્રદર્શન થાય છે તે કથાને પ્રજ્ઞપ્તિ આક્ષેપણી કથા કહે છે નયોનો આશ્રય લઈને સૂક્ષ્મ જીવાદિ પદાર્થોનાં ભાવોનું પ્રતિપાદન જે કથા દ્વારા કરવામાં આવે છે તે કથાને દૃષ્ટિવાદાક્ષેપણી કથા કહે છે આક્ષેપણી કથાના રસને આ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે "विज्जाचरणं च तवो " ઇત્યાદિ.

परलोकसंवेदनी—परलोकः-देवादिभवः, तस्य स्वभावस्य संवेदनी-ख्यापनी तथा, यथा-' देवा अप्यसूयेर्ष्यास्पर्धा भयवियोग क्रोधशोक मोहकाममदादिजनित-दुःखाभिभूताः सन्ति किं पुनस्तिर्यगादयः ' इत्येवंरूपा २।

आत्मशरीरसंवेदनी—आत्मनः-स्वस्य शरीरं-कायः-आत्मशरीरं तस्य अशुचिनिमित्तोत्पन्नत्व-स्रवन्मलद्वाराऽऽकुलत्वाशुचिद्वारनिःसृतत्वेऽपि पुरुषार्थसाधनेऽतिवन्धकत्वादिस्वरूपस्य संवेदनी-ख्यापनी तथा।

एवं परशरीरसंवेदनी-इयं चाऽऽत्मशरीरसंवेदनीमनुसृत्य बोध्या ।४।

इति सवेदनी।

परलोक संवेदनी—परलोक से यहां देवादिकों का भव लिया गया इस परलोक के स्वभाव को ख्यापन करने वाली जो कथा है, जैसे—देव भी असूया, ईर्ष्या स्पर्धा, भय, वियोग, क्रोध, शोक, मोह, मद, आदि दुःखों से अभिभूत हैं, तो फिर-तिर्यगादि कों की कथा ही क्या, २ ऐसी कथा परलोक संवेदनी है। आत्मशरीर संवेदनी—जो आत्म-स्व शरीर की अशुचिता के निमित्त को प्रकट करती हो बहते हुवे नवमल द्वारों से जो घिनावनी हुई है वह-अशुचि द्वार से निकला है, अत—स्वयं अपवित्र है ऐसा कथन जो करती हो, और-यह पुरुषार्थ साधन में जीवको शिथिल बनाये हुवे-प्रमाद पतित हुवे हैं इत्यादि बातों को समझाती हो ऐसी वह कथा आत्मशरीर संवेदनी है। तात्पर्य यही है कि यह देह हर तरह से अपवित्र-अशुचि और

પરલોકસંવેદની—પરલોકથી અહીં દેવભવ આદિ ગૃહીત થયેલ છે. આ પરલોકના સ્વરૂપને પ્રકટ કરનારી જે કથા છે તેને ' પરલોકસંવેદની કથા ' કહે છે. જેમકે " દેવો પણ અસૂયા, ઇર્ષ્યા, સ્પર્ધા, ભય, વિયોગ, ક્રોધ, શોક, મોહ, મદ આદિ દુખોથી અભિભૂત છે, તો તિર્યંગાદિના દુખની તો વાત જ શી કરવી ! " આ પ્રકારની કથાને પરલોક સંવેદની કથા કહે છે.

આત્મશરીર સંવેદની—જે કથા આત્મશરીરની (સ્વ શરીરની) અશુચિતાના નિમિત્તોને પ્રકટ કરતી હોય તે કથાને આત્મશરીર સંવેદની કહે છે " વહેલા નવમળ દ્વારોથી જે અશુચિ વધારે ઘાડી બની છે, અશુચિ દ્વાર-માંથી આ શરીર ઉત્પન્ન થયેલું છે, તેથી તે પોતે જ અપવિત્ર છે, " એવું કથન જે કથામા થાય છે તેને ' આત્મશરીર સંવેદની ' કથા કહે છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે આ દેહ દરેક રીતે અપવિત્ર-અશુચિ અને કલુષિત

मिथ्यावादं – परसमयेष्वेव जिनोक्ततत्त्वविरुद्धरूप मिथ्यावादं कथयित्वा सम्यग्वादं स्थापयिता भवति। यद्वा–नास्तिकवादिसमयं कथयित्वा आस्तिकवादिसमयं कथयतीति चतुर्थी विक्षेपणी कथा बोध्या ४।

इति चतुर्थी विक्षेपणी कथा। इति विक्षेपणी कथा। २

अथ संवेदनी—

" संवेयणी कहा चउव्विहा " इत्यादि—संवेदनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तथथा-इहलोकसंवेदनी-इहलोका-मनुष्यलोका, परत्वम लक्षणया मनुष्यजन्म गृह्यते, तस्य स्वरूपज्ञापनया संवेदनी-संबोधनी, यथा-' इदं मानुषत्वमसार मनित्यं मेघमण्डलसमिम'मित्यादिरूपा। १।

विक्षेपणी कथा है, पर समयों में ही जिनोक्त तत्त्व विरुद्ध रूप मिथ्यावाद कर के सम्यग्वाद की स्थापक होती है, अथवा–नास्तिकवादी के समय को कह कर के आस्तिकवादी के सिद्धान्त को स्थापित करती है यह चौथे प्रकार की विक्षेपणी कथा है।

" संवेयणी कहा चउव्विहा "—इत्यादि, संवेदनी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे–इहलोक संवेदनी, १ परलोक संवेदनी, २ आत्म शरीर संवेदनी, ३ और परशरीर संवेदनी, ४ जो कथा इस लोक के लक्षण से मनुष्य जन्म के स्वरूप पर प्रकाश डालती है, जैसे—यह मनुष्य जन्म असार है, अनित्य है, मेघमण्डल के जैसा देखते देखते विलीन हो जाता है, इत्यादि,

---

જે કથા પર સમયોમાં (સિદ્ધાન્તોમાં) જે મિથ્યાત્વ છે તેને પ્રકટ કરીને સમ્યગ્વાદનું પ્રતિપાદન કરે છે તેને ચોથા પ્રકારની વિક્ષેપણી કથા કહે છે અથવા જે કથા નાસ્તિકવાદીના સિદ્ધાન્તોનું ખંડન કરીને આસ્તિકવાદના સિદ્ધાન્તોનું પ્રતિપાદન કરે છે, તે કથાને ચોથા પ્રકારની વિક્ષેપણી કથા કહે છે.

' સંવેયણી કહા ચઉવ્વિહા " ઇત્યાદિ-સંવેદની કથા ચાર પ્રકારની કહી છે (૧) ઇહલોકસંવેદની, (૨) પરલોક સંવેદની, (૩) આત્મશરીર સંવેદની અને (૪) પરશરીર સંવેદની

જે કથા આ લોકના લક્ષણ દ્વારા મનુષ્ય જન્મના સ્વરૂપપર પ્રકાશ નાખે છે, એવી કથાને ' ઇહલોક સંવેદની કથા ' કહે છે જેમકે " આ મનુષ્ય જન્મ અસાર છે, અનિત્ય છે મેઘમંડળની જેમ જોતજોતામાં વિલીન થઈ જાય એવો છે " આ પ્રકારની કથાને ઇહલોક સંવેદની કથા કહે છે

परलोकसंवेदनी—परलोकः—देवादिभवः, तस्य स्वभावस्य संवेदनी—ख्यापनी तथा, यथा—' देवा अप्यसूयेर्ष्यास्पर्धा भयवियोग क्रोधशोक मोहकाममदादिजनित-दुःखाभिभूताः सन्ति किं पुनस्तिर्यगादयः ' इत्येवंरूपा ३।

आत्मशरीरसंवेदनी—आत्मनः—स्वस्य शरीरं—कायः—आत्मशरीरं तस्य अशु-चिनिमित्तोत्पन्नत्व—स्रवन्मलद्वाराऽऽकुलत्वाशुचिद्वारनिःसृतत्वेऽपि पुरुषार्थसाधनेऽ-तिवन्धकत्वादिस्वरूपस्य संवेदनी—ख्यापनी तथा।

एवं परशरीरसंवेदनी—इयं चाऽऽत्मशरीरसंवेदनीमनुसृत्य बोध्या।४।

इति संवेदनी।

परलोक संवेदनी—परलोक से यहां देवादिकों का भव लिया गया इस परलोक के स्वभाव को ख्यापन करने वाली जो कथा है, जैसे—देव भी असूया, ईर्ष्या स्पर्धा, भय, वियोग, क्रोध, शोक, मोह, मद, आदि दुःखों से अभिभूत हैं, तो फिर—तिर्यगादि कों की कथा ही क्या, ३ ऐसी कथा परलोक संवेदनी है। आत्मशरीर संवेदनी—जो आत्म-स्व शरीर की अशुचिता के निमित्त को प्रकट करती हो वहते हुवे नवमल द्वारों से जो घिनावनी हुई है वह-अशुचि द्वार से निकला अत—स्वयं अपवित्र है ऐसा कथन जो करती हो, और—यह रुषार्थ साधन में जीवको शिथिल बनाये हुवे-प्रमाद पतित हुवे हैं त्यादि वातों को समझाती हो ऐसी वह कथा आत्मशरीर संवेदनी है। तात्पर्य यही है कि यह देह हर तरह से अपवित्र-अशुचि और

પરલોકસંવેદની—પરલોકથી અહીં દેવભવ આદિ ગૃહીત થયેલ છે. આ પરલોકના સ્વરૂપને પ્રકટ કરનારી જે કથા છે તેને ' પરલોકસંવેદની કથા ' કહે છે. જેમકે " દેવો પણ અસૂયા, ઇર્ષ્યા, સ્પર્ધા, ભય, વિયોગ, ક્રોધ, શોક, મોહ, મદ આદિ દુઃખોથી અભિભૂત છે, તો તિર્યંગાદિના દુઃખની તો વાત જ શી કરવી ! " આ પ્રકારની કથાને પરલોક સંવેદની કથા કહે છે.

આત્મશરીર સંવેદની—જે કથા આત્મશરીરની (સ્વ શરીરની) અશુ-ચિતાના નિમિત્તોને પ્રકટ કરતી હોય તે કથાને આત્મશરીર સંવેદની કહે છે " વહેલા નવમળ દ્વારોથી જે અશુચિ વધારે ઘાડી બની છે, અશુચિ દ્વાર-માંથી આ શરીર ઉત્પન્ન થયેલું છે, તેથી તે પોતે જ અપવિત્ર છે, " એવું કથન જે કથામાં થાય છે તેને ' આત્મશરીર સંવેદની ' કથા કહે છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે આ દેહ દરેક રીતે અપવિત્ર-અશુચિ અને કલુષિત

अथ निर्वेदनी—

"णिव्वेयणी कहा चउव्विहा" इत्यादि—निर्वेदनी कथा चतुर्विधा मज्ञप्ता, तद्यथा-इहलोके-मनुष्यभवे दुश्चीर्णानि-दु -दुष्टु-निन्दितानि चीर्णानि-कृतानि दुश्चीर्णानि-दुष्कृतानि स्तेयपरस्त्रीणि पापानि, कर्माणि-क्रियाः, इहलोके-मनु

घिना वने स्वरूपवाला है, इसकी उत्पत्ति के जो कारण कलाप हैं वे स्वय अशुचि विनावने और अपवित्र हैं माताके अपवित्र योनि द्वारसे यह निकलता है, अत -ऐसे अपवित्र शरीर के मोह में पडकर जो जीव पुरुषार्थ साधन से मोक्ष साधन भूत सम्यग्दर्शनादिकों के सेवन से वञ्चित बन जाते हैं उनकी यह बडी भारी भूल है, इस प्रकार आत्मा को देहका स्वरूप देखनेवाली जो कथा है वह-आत्मशरीर सवेदनी कथा है। इसी प्रकार से परशरीर परसवेदनी कथा के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये, यह कथा आत्मसवेदनी का अनुसरण करती है, अर्थात्—जिस प्रकार से हमें प्रतिकूल व्यवहार से अशान्ति होती है उसी प्रकार से पर शरीर के साथ किये गये प्रतिकूल व्यवहार से उसे भी अशान्ति होती है, इसी बात को स्थापन करने वाली कथा पर शरीर सवेदनी कथा है। अथवा-जिस तरह से वह आत्म कथा शरीर है, उसी प्रकार से परशरीर भी है इस बात को स्थापन करने वाली कथा परशरीर सवेदनी कथा है-४।

"णिव्वेयणी चउव्विहा"—इत्यादि। निर्वेदनी कथा चार प्रकारकी कही गई है, जैसे-जो-स्तेय आदिक पापकर्म जीव इस मनुष्य

બનેલા સ્વરૂપવાળો છે તેની ઉત્પત્તિના જે કારણો છે તે કારણો જ અશુચિ યુક્ત અને અપવિત્ર છે માતાના અપવિત્ર યોનિદ્વારમાંથી તે નીકળે છે એવા અપવિત્ર શરીરના મોહમાં પડીને જે જીવ પુરુષાર્થ સાધનો દ્વારા મોક્ષ સાધનભૂત સમ્યગ્દર્શનાદિકોના સેવનથી વંચિત જ રહે છે તે મોટી ભૂલ કરતો હોય છે આ પ્રકારે આત્માને દેહનું સ્વરૂપ બતાવનારી જે કથા છે તેને આત્મશરીર સંવેદની કથા કહે છે

એ જ પ્રમાણે પરશરીર સંવેદની' કથા વિષે પણ સમજવું 'જેમ આપણાં શરીર સાથે થયેલાં પ્રતિકૂળ વ્યવહારથી આપણને અશાન્તિ થાય છે, એ જ પ્રમાણે અન્યના શરીર સાથે પ્રતિકૂળ વ્યવહારથી તેને પણ અશાન્તિ થાય છે" આ પ્રકારની વાતનું પ્રતિપાદન કરનારી કથાને પરશરીર સંવેદની કથા કહે છે "णिव्वेयणी चउव्विहा' ઈત્યાદિ—

નિર્વેદની કથા ચાર પ્રકારની કહી છે, જેમકે ચોરી આદિ જે પાપ કર્મ જીવ આલોકમાં કરે છે, તેનું ફળ આ લોકમાં પણ પ્રાપ્ત કરે છે અને

ष्यभवे दुःखफलविपाकसंयुक्तानि-दुखं-कष्टं, तदेव फलं कर्मतरुजन्यं, तस्य विपाकः-विपचनं विपाकः-अनुभवो दुःखफलविपाकः, तेन संयुक्तानि-दुःखफल-विपाकसंयुक्तानि-कष्टरूपफलानुभववन्ति भवन्ति, चोरादीनामिव । १ ॥ एवम्-इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके-नरकादिलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति नारकादीनामिव । २ ।

तथा परलोके-देवादिभवे दुश्चीर्णानि-दुष्कृतानि भोगेर्ष्यारूपाणि कर्माणि इहलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति आजन्मव्याधिदारिद्र्यादि पीडितमनुष्यतिरश्चामिव । ३ ।

लोक में करता है, वह उसका फल इस भव में तो पाता ही है, क्योंकि-ये स्वयंही दुःखरूप विपाक फलवाले होते हैं, अतः—इन्हें जो मनुष्य सेवन करता है वह नियमसे चोर आदिकोंकी तरह नाना प्रकारके कष्टोंको तो भोगताही है तथा परभवमेंभी, नरकादि लोकमेंभी, नारकादि जीवोंकी तरह वह इनके दुःखरूप आदि अनेक फलोंको भोगता है। तात्पर्य यही है कि-हिंसादिक अधर्म कर्म जीवको इसलोकमेंभी और परलोकमेंभी दोनों लोकोंमें विविध प्रकारके कष्टादि फलोंके प्रदाता होते हैं। तथा-जिन दुश्चीर्ण दुष्कृतोंको असूय ईर्ष्या आदिरूप पाप कर्मोंको यह जीव परलोकमें देवादिक भवोमें अर्जित करता है वे कर्म दुःख फलरूप विपाक संयुक्त इसलोकमें होते हैं। जैसे इस मनुष्य-लोकमें आजन्मव्याधि दारिद्र्य आदिसे पीडित हुवे मनुष्योंके और तिर्यञ्चोंके कर्म दुःख फलरूप विपाकसे संयुक्त देखे जाते हैं ३। तथा

પરલોકમાં પણ પ્રાપ્ત કરે છે, કારણ કે તેનુ સેવન કરનાર માણસ ચોરાદિની જેમ આ ભવમાં પણ વિવિધ પ્રકારના દુઃખો સહન કરે છે અને નારકાદિ ગતિમાં ઉત્પન્ન થઇને તે ગતિના વિવિધ કષ્ટો પણ સહન કરે છે

આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે હિંસા, ચોરી આદિ પાપકૃત્યોનો ફલ વિપાક જીવને આલોકમા પણ ભોગવવો પડે છે અને પરલોકમાં પણ ભોગ-વવો પડે છે. આ પાપકૃત્યોના વિપાક રૂપે તેમને ઉભય લોકના કષ્ટો સહન કરવા પડે છે.

તથા જે દુશ્ચિર્ણ દુષ્કૃત્યોનુ, અસૂયા, ઇર્ષ્યા આદિ રૂપ પાપકર્મોનું જીવ પરલોકમાં (દેવાદિક ભવોમા) ઉપાર્જન કરે છે, તે કર્મોનો દુ ખફલરૂપ વિપાક જીવને આલોકમાં ભોગવવો પડે છે. જેમકે આ મનુષ્યલોકમા આજન્મ વ્યાધિ, દારિદ્ર આદિથી પીડાતા મનુષ્યો અને તિર્યંચો જોવા મળે છે. તેઓ પરભવકૃત પાપકર્મોનો દુઃખફલરૂપ વિપાક જ ભોગવી રહ્યા હોય છે.

परलोके-तिर्यगादिभवे दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके-मनुष्यादिभवं कृत्वा पुनस्तिर्यगादिभव एव दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति, मनुष्यादिभवे तत्कर्मणा मुदयावलिकायामननुप्रविष्टत्वात् । ४ ।

इहलोके सुचीर्णानि—सुकृतानि दानादीनि षष्ठाष्टमादीनि च कर्माणि इहलोके सुखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति, तीर्थंकरादिसुपात्रदानेन वसुधारादिवृष्टिवत्, षष्ठाष्टमादिभिः-आमर्शौषध्यादिलब्धिप्राप्तिवत् । २ । एवं शेषभङ्गद्वयं विवेचनीयम्

परलोकमें तिर्यगादि भवमें दुश्चीर्ण कर्म तिर्यगादि भवमेंही दुःख फल विपाक संयुक्त होते हैं, मनुष्यादि भवमें नहीं। क्योंकि वे कर्म मनुष्यादि भवमें उदयावलिकामें अननुप्रविष्ट होते हैं ४। तथा इस लोकमें सुचीर्ण-अच्छी तरहसे किये गये दानादिक कर्म षष्ठ अष्टम आदि तपश्चरूप कर्म इहलोकमें सुखफल विपाक संयुक्त होते हैं। जैसे-तीर्थङ्कर आदिरूप सुपात्र दानसे वसुधारा आदिकी वृष्टि होती है। तथा-षष्ठ अष्टम आदिकी तपस्यासे आमर्शौषधि आदि लब्धिकी प्राप्ति होती है। इसी तरहसे शेष भङ्गभी विवेचित करलेना चाहिये। यहां-प्रथम भङ्ग तथा द्वितीय भङ्ग ये दो भङ्गही कहे गये हैं।

द्वितीय भङ्ग इस प्रकारसे है, इसलोकमें सुचीर्ण कर्म परलोकमें सुख फलरूप विपाकसे संयुक्त होते हैं। जैसे-साधु श्रावक आदि द्वारा कृत सुचीर्ण कर्म-शेष दो भङ्ग इस प्रकारसे हैं-परलोक सुचीर्ण कर्म

તથા-પરલોકમાં તિર્યચ આદિ ભવમાં દુશ્ચીર્ણ દુષ્કૃત્યોનું દુઃખવિપાક રૂપ ફળ તિર્યંચઆદિ ભવમાં જ ભોગવવું પડે છે મનુષ્યાદિ ભવમાં ભોગવવું પડતું નથી, કારણ કે તે કર્મો મનુષ્યાદિ ભવમાં ઉદયાવલિકામાં પ્રવિષ્ટ થતાં નથી

તથા આલોકમાં સારી રીતે જેની આરાધના થઈ હોય એવાં દાનાદિ કર્મ અને છટ્ઠ-અટ્ઠમ તપસ્યારૂપ કર્મ આ લોકમાં જ સુખ વિપાકરૂપ ફળ આપનારાં હોય છે જેમકે તીર્થંકર આદિરૂપ સુપાત્રને દાન દેવાથી વસુધરા (ધન) ની વૃષ્ટિ થાય છે તથા છટ્ઠ-અટ્ઠમ આદિ તપસ્યાઓથી આમર્ષ ઔષધિ આદિ લબ્ધિની પ્રાપ્તિ થાય છે એ જ પ્રમાણે બાકીના વિકલ્પોનું વિવેચન પણ સમજી લેવું અહીં પહેલો અને બીજો ભેદ જ કહેવામાં આવ્યો છે

બીજો ભેદ આ પ્રમાણે છે—આલોકમાં સુચીર્ણ કર્મ (ઉપાર્જિત કર્મો) પરલોકમાં પણ સુખરૂપ વિપાકવાળાં હોય છે જેમકે સાધુ, શ્રાવક આદિ દ્વારા કૃત સુચીર્ણ કર્મ

४। अत्र प्रथमभङ्गः प्रोक्तः १। द्वितीयभङ्गे साधुश्रावकादिः २। तृतीये भङ्गे तीर्थंकरः ३। चतुर्थभङ्गे बद्धतीर्थंकर नामगोत्रकर्मा देवभवस्थस्तीर्थङ्करः ४। सू० ४४॥

पूर्वं कथारूपो वाग्विशेष उक्तः, साम्प्रतं पुरुषजातप्रधानतया कायविशेषमाह–

मूलम्–चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–किसे णाममेगे किसे १, किसे णाममेगे दढे २, दढे णाममेगे किसे ३, दढे णाममेगे दढे ४ ।१॥

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--किसे णाममेगे किससरीरे १, किसे णाममेगे दढसरीरे २, दढे णाममेगे किससरीरे ३, दढे णाममेगे दढसरीरे ४ ।२। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–किससरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ णो दढसरीरस्स १, दढसरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ णो किससरीरस्स २, एगस्स किससरीरस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ दढसरीरस्सवि ३, एगस्स णो किससरीरस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ णो दढसरीरस्स ४ । सू० ४५ ॥

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–कृशो नामैकः कृश १, कृशो नामैको दृढः २, दृढो नामैकः कृशः ३, दृढो नामैको दृढ. ४। १।

इहलोकमें सुख फलरूप विपाकसे संयुक्त होते हैं, जैसे तीर्थङ्कर नाम कर्म ३, तथा परलोकमें सुचीर्णकर्म परलोकमें सुख फलरूप विपाकसे संयुक्त होतेहैं, जैसे–बद्ध तीर्थङ्कर गोत्र कर्मवाला देव भवस्थ तीर्थङ्कर ॥सू०४४॥

“ इस प्रकारसे कथारूप वाग् विशेष कहकर अब सूत्रकार पुरुष जातकी प्रधानतासे कायविशेषका कथन करते हैं ।

त्रीजो भागो—परलोकमां सुचीर्ण कर्म आलोकमां सुखफ्लरूप विपाकथी युक्त होय छे. जेमके तीर्थंकर नाम कर्म.

चोथो भागो—परलोकना सुचीर्ण कर्म परलोकमां सुखफ्लरूप विपाकथी युक्त होय छे जेमके बद्ध तीर्थंकर गोत्र कर्मवाळो देव भवस्थ तीर्थंकर. ॥सू. ४४॥

आ रीते कथारूप वाग्‌विशेषनुं निरूपण करीने हवे सूत्रकार पुरुषजातनी प्रधानतानी अपेक्षाओ कायविशेषनुं कथन करे छे.

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—कृशो नामैकः कृशशरीरः १ कृशो नामैको दृढशरीरः २, दृढो नामैकः कृशशरीरः ३, दृढो नामैको दृढशरीरः ४।१। चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—कृशशरीरस्य नामैकस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते नो दृढशरीरस्य १, दृढशरीरस्य नामैकस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते नो कृशशरीरस्य २, एकस्य कृशशरीरस्यापि ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते दृढशरीरस्यापि ३, एकस्य नो कृशशरीरस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते नो दृढशरीरस्य ॥ २। सू० ॥४५॥

"चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" इत्यादि—

सूत्रार्थ—चार पुरुषजात कहे गये हैं, जैसे—कृश कृश १, कृश दृढ २, दृढ कृश ३ और दृढ दृढ ४। पुनश्च—चार पुरुषजात कहे गये हैं, जैसे—कृश कृश शरीरवाला १, कृश दृढ शरीरवाला २, दृढ कृश शरीरवाला ३, तथा दृढ दृढ शरीरवाला ४। पुनश्च—चार पुरुषजात कहे गये हैं, जैसे कृश शरीरवाले किसी एक पुरुषको ज्ञानदर्शन उत्पन्न होते हैं, दृढ शरीरवाले पुरुषको नहीं १। दृढ शरीरवाले किसी एक पुरुषको ज्ञानदर्शन उत्पन्न होते हैं, कृश शरीरवाले पुरुषको नहीं २। किसी एक कृश शरीरवाले पुरुषकोभी ज्ञानदर्शन उत्पन्न होते हैं तथा दृढ शरीरवाले पुरुषोकोभी ज्ञानदर्शन उत्पन्न होते हैं ३। तथा जो कृश शरीरवाला पुरुष है उसकोभी ज्ञानदर्शन उत्पन्न नहीं होते हैं और जो दृढ शरीरवाला है उसकोभी ज्ञानदर्शन उत्पन्न नहीं होते हैं ४।

"चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) કૃશ કૃશ, (૨) કૃશ દૃઢ, (૩) દૃઢ કૃશ અને (૪) દૃઢ દૃઢ બીજી રીતે પણ ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) કૃશ કૃશ શરીર યુક્ત, (૨) કૃશ દૃઢ શરીર યુક્ત, (૩) દૃઢ કૃશ શરીર યુક્ત તથા (૪) દૃઢ દૃઢ શરીર યુક્ત

વળી આ પ્રમાણે પણ ચાર પુરુષ પ્રકારો કહ્યા છે—(૧) કૃશ શરીરવાળા કોઈ એક પુરુષને જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થાય છે જ્યારે દૃઢ શરીરવાળા કોઈ એક પુરુષને જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થતાં નથી. (૨) દૃઢ શરીરવાળા કોઈ એક પુરુષને જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થાય છે, જ્યારે કૃશ શરીરવાળા કોઈ એક પુરુષને જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થતાં નથી. (૩) કોઈ એક કૃશ શરીરવાળા પુરુષને પણ જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થાય છે અને કોઈ એક દૃઢ શરીરવાળા પુરુષને પણ જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થાય છે (૪) કોઈ એક કૃશ શરીરવાળા પુરુષને પણ જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થતાં નથી અને કોઈ એક દૃઢ શરીરવાળાને પણ જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થતાં નથી.

टीका-"चत्तारि" इत्यादि-पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-पूर्वं केवलं भावमाश्रित्य चतुर्थभङ्गीमाह-एकः-कश्चित् पुरुषः कृशः-भावतः पूर्वं कृशः, तुच्छ-प्रकृतित्वात्, स पश्चादपि कृशः तादृशभावस्यैव सद्भावात् १, तथा एकः-कश्चित् पूर्वं कृशः पश्चाद् दृढः, संजातस्थिरपरिणामत्वात् २, एवं शेषभङ्गद्वयं बोध्यम् ।४।

अथ केवलं शरीरमाश्रित्य चतुर्भङ्गीमाह—एकः-कश्चित् पुरुषः कृशो जन्म-जातशरीरेण दुर्बलः, स पश्चादपि कृशः रोगादिग्रस्तत्वात् १, एकः-कश्चित् पूर्वं कृशः, पश्चाद् दृढः, रोगाभावेन पुष्टशरीरत्वात्, एवमत्रापि शेषभङ्गद्वयं संयोज्यम् ।४।१।

इस कथनका तात्पर्य ऐसा है-यहां जो कृश कृश आदिरूपसे चतुर्भङ्गी कही गई है वह भावको आश्रित करके कही गई है। जैसे कोई पुरुष पहलेभी भावकी अपेक्षा कृश होता है, तुच्छ प्रवृत्तिवाला होता है। वह बादमें भी ऐसेही भावके सद्भाव रहनेके कारण कृश तुच्छ प्रवृत्तिवाला बना रहता है १। कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो पहले तो कृश तुच्छ प्रवृत्तिवाला होता है और बादमें निमित्तादिके मिलनेसे उस प्रकृतिका त्याग कर देनेके कारण दृढ-स्थिर परिणामरूप अतुच्छ प्रकृतिवाला होता है २, दृढ कृश ३ और दृढ दृढ ऐसे ये दो भङ्ग सहजज्ञेय (जानने योग्य) हैं ४।

अब केवल शरीरको आश्रित करके सूत्रकार चतुर्भङ्गीका कथन करते हैं, जैसे-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो जन्मजात शरीरसे

વિશેષાર્થ—આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે--અહીં જે 'કૃશ કૃશ' આદિ રૂપ ચતુર્ભંગી કહી છે તે ભાવને આશ્રિત કરીને કહેવામાં આવી છે. એટલે કે કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પહેલાં પણ ભાવની અપેક્ષાએ કૃશ (તુચ્છ પ્રવૃત્તિવાળો) હોય છે, અને પાછળથી પણ એ જ પ્રકારના ભાવનો સદ્ભાવ રહેવાથી કૃશ (તુચ્છ પ્રવૃત્તિવાળો) જ રહે છે. (૨) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પહેલા તુચ્છ પ્રવૃત્તિવાળો હોય છે, પણ ત્યારબાદ કોઈ પણ નિમિત્તાદિના સદ્ભાવે કરીને તે પ્રવૃત્તિનો ત્યાગ કરી દેવાને કારણે દૃઢ-સ્થિર પરિણામ રૂપ અતુચ્છ પ્રકૃતિવાળો બને છે.

(૩) દૃઢ-કૃશ અને (૪) દૃઢ-દૃઢ આ બન્ને ભાંગાનો ભાવાર્થ પહેલા તથા બીજા ભાગાને આધારે સમજી શકાય એવો છે

હવે કેવળ શરીરનો આધાર લઇને સૂત્રકાર ચતુર્ભંગીનું કથન કરે છે—

(૧) "કૃશ-કૃશ શરીરવાળા"—કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે જન્મથી કૃશ શરીરવાળો હોય છે અને ત્યારબાદ રોગાદિને કારણે કૃશ શરી-

"चत्तारि" इत्यादि—चत्वारि पुरुषजातानि मज्ञप्तानि, तद्यथा—कृशो नामैकः कृश शरीरः–एकः–कश्चित् पुरुष कृशो भावतो दुर्बल, कृशशरीरः–शरीरतोऽपि कृशो दुर्बलः १। एकः–कश्चित् भावतः कृश, दृढशरीर –शरीरतो दृढ, सबलशरीरत्वात्, एवं शेषभङ्गद्वयं बोध्यम् । ४।

ज्ञानदर्शनोत्पत्ति चतुर्भङ्गयाऽऽह — "चत्तारि पुरिसजाया" इत्यादि स्पष्टम्। कृशशरीरस्य–कृशं–दुष्करतपसा दुर्बल शरीर यस्य स कृशशरीर–स्तस्य

कृश दुर्बल रहता है और पश्चात् भी रोगाक्रान्त होजानेसे कृशही बना रहता है १। तथा कोई पुरुष ऐसा होता है जो पहेले तो कृश होता है और पश्चात् रोगाभाव होजानेसे पुष्ट शरीरवाला होजाता है २। अवशिष्ट भङ्गद्वयभी इसी रीतिसे विवेचित किये जा सकते हैं १।

पुनश्च—पुरुष जात जो कृश कृश शरीर आदिरूपसे चार कहे गये हैं, उनका भाव ऐसा है, कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो भावकी अपेक्षा भी दुर्बल होता है और शरीरकी अपेक्षाभी दुर्बल कमजोर होता है १। तथा–कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो भावसे तो कृश होता है, परन्तु शरीरसे दृढ मजबूत होता है २। इसी प्रकारसे अवशिष्ट भङ्गद्वय भी समझ लेना चाहिये ४।

अब सूत्रकार ज्ञानदर्शनोत्पत्तिरूप चतुर्भङ्गीसे पुरुष जातके प्रकारोंका कथन करते हैं, जैसे–कोई एक पुरुष ऐसा होता है कि जिसका शरीर दुष्कर कठिन तपसे दुर्बल होता है। परन्तु उस पुरुषको शुभ

રવાળો જ બની રહે છે (૨) "કૃશ–દૃઢ શરીરવાળો"–કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જન્મથી કૃશ શરીરવાળો હોય છે પણ રોગાદિના અભાવ વગેરે કારણોને લીધે પાછળથી પુષ્ટ શરીરવાળો થઈ જાય છે બાકીના બે ભાંગાનો ભાવાર્થ પણ આ બે ભાંગાને આધારે સમજી લેવો

વળી "કૃશ કૃશ શરીરયુક્ત" આદિ ચાર પ્રકારોનું આ પ્રમાણે પણ સ્પષ્ટીકરણ થઈ શકે છે–(૧) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે ભાવની અપેક્ષાએ પણ કમજોર હોય છે અને શરીરની અપેક્ષાએ પણ કમજોર (દુર્બળ) હોય છે (૨) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે ભાવની અપેક્ષાએ કૃશ હોય છે પણ શરીરની અપેક્ષાએ દૃઢ (મજબૂત) હોય છે એ જ પ્રમાણે બાકીના બે વિકલ્પનો ભાવાર્થ પણ જાતે જ સમજી લેવો.

હવે સૂત્રકાર જ્ઞાન અને દર્શનની ઉત્પત્તિની અપેક્ષાએ ચાર પ્રકારના પુરુષોનું નિરૂપણ કરે છે—પહેલા ભાંગાનું સ્પષ્ટીકરણ—કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જેનું શરીર કઠિન તપને કારણે કૃશ (દુબળ) હોય છે, પણ એવા તે પુરુષમાં

शुभपरिणामसम्भवेन ज्ञान दर्शनाऽऽवरणक्षयक्षयोपशमादिसत्त्वात् ज्ञानदर्शनं-ज्ञानं च दर्शनं चानयोः समाहारस्तत् समुत्पद्यते-संजायते, किन्तु दृढशरीरस्य-तपो विमुखतया दृढं-सबलं शरीरं यस्य स दृढशरीरस्तस्य पुरुषस्य पुष्कलमोहतया ज्ञानदर्शनजनकशुभपरिणामाभावेन ज्ञानदर्शनाऽऽवरणक्षयक्षयोपशमादि विरहाज्ज्ञानदर्शनं नो समुत्पद्यते १। तथा-एकस्य-कस्यचिद् दृढशरीरस्य-वज्रऋषभनाराच-संहननधरस्य शिथिलमोहस्य पुरुषस्य ज्ञानदर्शनं स्वस्थशरीरत्वेन मनस्स्वास्थ्यसद्भावेन ज्ञानदर्शनजनकशुभपरिणामोदयात् तदावरणक्षयक्षयोपशमादिसत्त्वात् समुत्पद्यते-संजायते । २ ।

परिणामके होनेसे ज्ञान और दर्शनका आवरण क्षय होजाता है। क्षयोपशमादिवाला होजाता है। इस कारण उसको ज्ञान और दर्शन उत्पन्न होजाते हैं, तथा-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो दृढ शरीरवाला होता है, ऐसे उस पुरुषको पुष्कल मोह होनेके कारण ज्ञानदर्शन जनक शुभ परिणामके अभावसे ज्ञानदर्शनका आवरण क्षय-क्षयोपशमादि विशिष्ट नहीं होता है। अतः-उसके विरहसे ज्ञानदर्शन उत्पन्न नहीं होते हैं १। तथा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो दृढ शरीरवाला होता है-वज्र ऋषभनाराच संहननका धारी होता है। ऐसे उस पुरुष के मोहकी शिथिलता होनेपर स्वस्थ शरीरके सद्भावसे और मनः स्वास्थ्यके सद्भावसे ज्ञानदर्शनजनक शुभ परिणामका उदय हो जाता है, इससे ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मका क्षय क्षयोपशमादि होजानेसे ज्ञान और दर्शन उत्पन्न होजाते हैं २। तथा-किसी कृश

શુભ પરિણામનો સદ્‌ભાવ હોવાથી તેના જ્ઞાનાવરણીય અને દર્શનાવરણીય કર્મોનો ક્ષય થઈ જવાથી તેને જ્ઞાન અને દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે, પણ કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે દૃઢ શરીરવાળો હોય છે, પણ પુષ્કળ મોહના સદ્‌ભાવને લીધે જ્ઞાનદર્શનજનક શુભ પરિણામના અભાવને કારણે તેના જ્ઞાનાવરણીય અને દર્શનાવરણીય કર્મોનો ક્ષય કે ક્ષયોપશમ થતો નથી તે કારણે તેને જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થતાં નથી. (૨) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે દૃઢ શરીરવાળો હોય છે, વજ્ર ઋષભનારાચ સંહનનને ધારણ કરનારો હોય છે. એવા તે પુરુષના મોહની શિથિલતા થઈ જવાને લીધે સ્વસ્થ શરીર અને સ્વસ્થ મનના સદ્‌ભાવને લીધે જ્ઞાનદર્શનજનક શુભ પરિણામનો ઉદય થઈ જાય છે તે કારણે જ્ઞાનાવરણીય અને દર્શનાવરણીય કર્મનો ક્ષય ક્ષયોપશમ આદિ થઈ જવાને લીધે તેને જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે જ્યારે કોઈ

तथा–एकस्य=कस्यचित् कृशशरीरस्यापि दृढशरीरस्यापि पुरुषस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते, विशिष्टसंहननस्य स्वल्पमोहस्योभयथाऽपि शुभपरिणामोदयात् शरीर कार्श्यदार्ढ्यसत्त्वेऽपि ज्ञानदर्शनोत्पत्तौ तदपक्षाऽभावेन तदावरणक्षयक्षयोपशमादि सम्भवात् तज्जायते ।३। तथा–एकस्य–कस्यचित् कृशशरीरस्य दृढशरीरस्येति द्वयस्यापि ज्ञानदर्शनं नोत्पद्यते, तयोर्विशिष्टसंहननाभावतया तथाविधशुभपरिणामाभावा दिति चतुर्थो भङ्गः ।४। सू० ४५ ॥

पूर्वं ज्ञान–दर्शनयोरुत्पत्तिरुक्ता, साम्प्रत तद्व्याघातमाह—

मूलम्–चउहिं ठाणेहिं निग्गथाण वा निग्गथीण वा अस्सिं समयंसि अइसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामवि न समुप्पज्जेज्जा,

शरीरवाले पुरुषकोभी और दृढ शरीरवाले पुरुषकोभी ज्ञान दर्शन उत्पन्न होजाते हैं। क्योंकि–विशिष्ट संहननवाला जीव यदि स्वल्प मोहवाला होता है, तो चाहे उसमें कृशता या दृढता क्यों न हो, फिरभी शुभ परिणामके सद्भावसे उसको तदावरण कर्मके क्षय क्षयोपशमादिसे ज्ञान और दर्शन उत्पन्न होजाते हैं ३। तथा–चाहे कोई कृश शरीरवालाभी हो, या दृढ शरीरवालाभी हो। कोई–२ जीव ऐसाभी होता है कि जिसको विशिष्ट संहनन होनेके कारण तथाविध शुभ परिणामोके अभावसे ज्ञानावरणादिकका क्षय क्षयोपशमादि नहीं हो सकनेसे ज्ञान और दर्शन उत्पन्न नहीं होते हैं। इस प्रकारसे यह चतुर्भङ्गी है ॥ सू० ४५ ॥

એક કૃશ શરીરવાળા પુરુષને જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થતાં નથી, તેનું કારણ પહેલા ભાંગામાં બતાવ્યા પ્રમાણે સમજવું (૩) કોઈ કૃશ શરીરવાળા અને દઢ શરીર વાળા પુરુષને પણ જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—વિશિષ્ટ સંહનનવાળો પુરુષ જો સ્વલ્પ મોહવાળો હોય તો શુભ પરિણામના સદ્‌ભાવને લીધે જ્ઞાનાવરણીય અને દર્શનાવરણીય કર્મના ક્ષય અને ક્ષયોપશમાદિથી જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન કરી શકે છે તેમાં શરીરની કૃશતા કે દઢતા બાધક નિવડતી નથી. (૪) જીવ ભલે કૃશ શરીરવાળો હોય કે દઢ શરીરવાળો હોય પણ કોઈ કોઈ જીવ એવો પણ હોય છે કે જે વિશિષ્ટ સંહનનવાળો હોવાને કારણે તે પ્રકારના શુભ પરિણામોના અભાવને લીધે જ્ઞાનાવરણાદિકનો ક્ષય ક્ષયોપશમાદિ કરી શકતો નથી, તે કારણે એવા પુરુષોને જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થતાં નથી આ પ્રકારની આ ચતુર્ભંગી સમજવી ॥ સૂ ૪૫ ॥

तं जहा--अभिक्खणं अभिक्खणमित्थिकहं १ भत्तकहं २ देसकहं ३ रायकहं ४ कहेत्ता भवइ १, विवेगेण विउस्सग्गेणं णो सम्ममप्पाणं भाविता भवइ २, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि णो धम्मजागरियं जागरित्ता भवइ ३, फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स णो सम्मं गवेसिया भवइ ४। इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा जाव णो समुप्पज्जेज्जा।

चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अइसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे समुप्पज्जेज्जा, तं जहा-इत्थिकहं १ भत्तकहं २ देसकहं ३ रायकहं ४ णो कहेता भवइ १, विवेगेण विउस्सग्गेणं सम्ममप्पाणं भावेत्ता भवइ २, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरिता भवइ ३, फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स गवेसिया भवइ ४। इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा जाव समुप्पज्जेज्जा ।सू० ४६॥

छाया—चतुर्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा अस्मिन् समये अतिशेषं ज्ञान-दर्शनं समुत्पत्तुकाममपि न समुत्पद्यते, तद्यथा-अभीक्ष्णमभीक्ष्णं स्त्रीकथां

इस प्रकारसे ज्ञानदर्शनकी उत्पत्तिका कथनकर अब सूत्रकार इनके व्याघातोंका कथन करतेहैं।"चउहिं ठाणेहिं निग्गंथाणवा" इत्यादि—

चार कारणोंसे निर्ग्रन्थों वा निर्ग्रन्थियोंको इस समयमें अतिशेष ज्ञान दर्शन उत्पत्ति होनेके योग्य होने परभी उत्पन्न नहीं होते हैं, वे चार कारण इस प्रकारसे हैं। ये निर्ग्रन्थ आदि बार-२ निरन्तर स्त्री कथाको-भक्त कथाको-देशकथाको और राज कथाको करते

આ રીતે જ્ઞાનદર્શનની ઉત્પત્તિનુ કથન કરીને હવે સૂત્રકાર તેમના વ્યાઘાતોનુ કથન કરે છે " चउहिं ठाणेहिं निग्गंथाण वा " ઈત્યાદિ—

નીચેના ચાર કારણોથી નિર્ગ્રંથો અથવા નિર્ગ્રંથીઓને આ સમયમાં, ઉત્પત્તિને યોગ્ય હોવા છતાં પણ અતિશેષ જ્ઞાનદર્શનની ઉત્પત્તિ થતી નથી. (૧) તે નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓ

अपि–मतिक्रान्त – सर्वावबोधप्रभृतिगुणैर्वत् तदविशेषम्–अतिशयशालि, केवल मित्यर्थः, ज्ञानदर्शन मेत्युभयं समुत्पत्तुकाममपि–उत्पत्तुमिच्छदपि–ज्ञानावरणीया पायाभावादुत्पत्तुमपीत्यर्थः, न समुत्पद्यते–न संजायते, तानि चत्वारि स्थानान्याह– ' तद्यथे '–त्यादि–अभीक्ष्णमभीक्ष्णम्–पुनः पुनः, स्त्रीकथां, तथा–भक्तकथा, तथा–देशकथा, तथा–राजकथां च–पूर्वव्याख्यानरूपां, यो मनः कथयिता तत्कथाकथ नशीलो भवति, तस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पत्तुकाममपि नो समुत्पद्यत इति पूर्वेण सम्बन्धः १।

तथा ' विवेगेणे "–त्यादि विवेकेन–शुद्धाशुद्धमध्याद् नीर क्षीरन्यायतोऽ शुद्धाऽऽहारादिपरित्यागेन, तथा–व्युत्सर्गेण–कायोत्सर्गेण योजन आत्मानं सम्यक् कूर्म इवेन्द्रियाणि संयम्य भावयिता नो भवति २।

मनुष्योंको भी जो पञ्चम आरकके समयमें उत्पन्न होने योग्य अतिशेष केवलज्ञान एवं केवलदर्शन उत्पन्न नहीं होते हैं, उसका कारण एक तो यह है कि वे निरन्तर पुनः पुनः स्त्रीकथा करनेमें लगे रहते हैं। भक्त कथासे लगे रहते हैं, देशकथा और राजकथाओंमें निरत रहते हैं। अतः–अतिशेष केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पादक भावके अभाव होनेके कारण उत्पन्न नहीं होने पाते १। क्षीर नीर विवेचन न्याय जैसा शुद्धा शुद्ध आहारपानमेंसे अशुद्धाहार त्याग करना और कायोत्सर्गसे कूर्मकी तरह अपने इन्द्रियोंको संयमित करना क्रमशः विवेक व्युत्सर्ग है। इस विवेक और व्युत्सर्गसे अपने आपको वे सम्यक् रूपसे भावित (युक्त) नहीं करते हैं–२। इस कारणसे भी वे अतिशेष ज्ञानदर्शनसे वञ्चित रहते हैं। " पुब्बरत्त " इत्यादि—रात्रिके प्रथम प्रहरको पूर्व

જન્મેલા મનુષ્યોને પણ જે પાંચમાં આરામાં ઉત્પન્ન થવા યોગ્ય છે એવું કેવળ જ્ઞાન અને કેવળદર્શન ઉત્પન્ન થતું નથી. તે ઉત્પન્ન ન થવાના કારણો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) તેઓ નિરંતર સ્ત્રીકથામાં નિરત રહે છે, વારંવાર ભક્ત (ભોજનની) કથામાં લીન રહે છે, દેશકથા અને રાજકથામાં પણ નિરત રહે છે. તે કારણે અતિશેષ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન ઉત્પાદક ભાવનો તેમનામાં અભાવ રહે છે તે કારણે તેઓ તેમને ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી. (૨) ક્ષીર નીર ન્યાયનો તેમનામાં અભાવ હોય છે-શુદ્ધાશુદ્ધ આહારમાંથી અશુદ્ધાહારનો ત્યાગ કરવા રૂપ વિવેકનો તેમનામાં અભાવ હોય છે કાયોત્સર્ગથી કૂર્મ (કાચબા) ની જેમ પોતાની ઇન્દ્રિયોને સંયમિત કરવી તેનું નામ વ્યુત્સર્ગ છે તેઓ આ વિવેક અને વ્યુત્સર્ગથી પોતાના આત્માને સમ્યક્ રીતે ભાવિત (યુક્ત) કરતા નથી તે કારણે પણ તેઓ અતિશેષ જ્ઞાનદર્શનથી વંચિત રહે છે

तथा—" पुव्वरत्ते "-त्यादि-पूर्वरात्रापररात्रकालसमये-पूर्वरात्रः-रात्रेः पूर्वः-प्रथमभागः पूर्वरात्रः, अपररात्रः-रात्रेः पश्चिमभागः-चतुर्थप्रहरलक्षणः, तावेव कालः स एव समयः-अवसरः पूर्वरात्रापररात्रकालसमयस्तस्मिन्-रात्रेः पश्चिमभागे इत्यर्थः, मूले रलोप आर्षत्वात् । धर्मजागरिकां-धर्मप्रधाना जागरिका-जागर्तिः-निद्राक्षयेण प्रबोधो धर्मजागरिका-कुटुम्बादि चिन्तापरित्यागेन धर्मचिन्तनरूपा भावप्रत्युपेक्षेत्यर्थः, तां जागरिता-कर्ता न भवति । तत्र भावप्रत्युपेक्षा यथा—

" कडं मए किं नरदेहभाया, सेसं च किं मे करणिज्जमत्थि ।
तवामि णाहं समये सुजोग्गे, बुद्धस्स भावप्पडिलेहणेयं ।१। "

छाया—" कृतं मया किं नरदेहभाजा, शेष च किं मे करणीयमस्ति ।
तपामि नाहं समये सुयोग्ये, बुद्धस्य भावप्रतिलेखनेयम् ।१। " इति,

अथवा—

" कालोऽत्थि मे कोऽस्स च किं च जोग्गं, असारभूया विसया समत्ता ।
विणाससीला विरसावसाणा, मच्चू सया संनिहिओऽत्थि घोरो ।२। "

छाया—" कालोऽस्ति मे कोऽस्य च किं च योग्यम्, असारभूता विषयाः समस्ताः।
विनाशशीला विरसावसाना, मृत्युः सदा संनिहितोऽस्ति घोरः ।२।" इति,

रात्र और चतुर्थ प्रहरको अपररात्र कहा है। इस पूर्वरात्रमें और अपररात्रमें जो धर्मप्रधान जागरिकासे कुटुम्ब आदिकी चिन्ताका परित्याग नहीं करते हैं, कुटुम्ब आदिकी चिन्ताका परित्यागकर वे धर्मचिन्तारूप भाव प्रत्युप्रेक्षाका कर्त्ता नहीं होते हैं, इस कारण वे केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप अतिशेषको उत्पन्न करनेवाले शुभ भावके अभावसे उन्हें प्राप्त नहीं करपाते है। भावानुप्रेक्षाका स्वरूप इस प्रकारसे है " कडं मए किं नरदेहभाया " इत्यादि अथवा-" कालोऽत्थि मे कोऽस्स च " इत्यादि. तथा " फासुयस्स " इत्यादि

(3) " पुव्वरत्त " ઇત્યાદિ—રાત્રિના પ્રથમ પ્રહરને પૂર્વરાત્રિ કહે છે અને ચોથા પ્રહરને અપરરાત્રિ કહે છે તે પૂર્વરાત્રિની પછીની અપરરાત્રિમાં અર્થાત્ રાત્રિના પાછલા ભાગમાં જેઓ ધર્મજાગરણ દ્વારા કુટુંબાદિની ચિન્તાનો પરિત્યાગ કરતા નથી એટલે કે કુટુંબ વિષયક ચિન્તાનો પરિત્યાગ કરીને જેઓ ધર્મ ચિન્તા રૂપ ભાવપ્રત્યુપ્રેક્ષાના કર્ત્તા બનતા નથી, તેઓ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન રૂપ અતિશેષોને ઉત્પન્ન કરનારા શુભ ભાવના અભાવને લીધે જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી. ભાવાનુપ્રેક્ષાનુ સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—" कडं मए किं नरदेहभाया " ઈત્યાદિ અથવા " कालोऽत्थि मे कोस्स च " ઈત્યાદિ તથા " फासुयस्स " ઈત્યાદિ,

१ भक्तकथां २ देशकथां ३ राजकथां ४ कथयिता भवति १, विवेकेन व्युत्सर्गेण नो सम्यगात्मानं भावयिता भवति २, पूर्वरात्रापररात्रकालसमये नो धर्मजागरिकां जागरिता भवति ३, प्रासुकस्य एषणीयस्य उञ्छस्य सामुदानिकस्य नो सम्यग् गवेषयिता भवति ४।

इत्येतैश्चतुर्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा यावत् नो समुत्पद्यते।

चतुर्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पत्तुकाम समुत्पद्यते, तद्यथा—स्त्रीकथां १ भक्तकथां २ देशकथां ३ राजकथां ४ नो कथयिता भवति १, विवेकेन व्युत्सर्गेण सम्यगात्मानं भावयिता भवति २, पूर्वरात्रापररात्रकालसमये धर्मजागरिकां जागरिता भवति ३, प्रासुकस्य एषणीयस्य

रहते हैं १। विवेक एवं व्युत्सर्गसे वे अच्छी रीतिसे अपने आत्माका भावयिता नहीं होते हैं २। पूर्वरात्र और अपररात्रके कालमें [समयमें] वे धर्मजागरणा नहीं करते हैं ३। प्रासुक, एषणीय, उञ्छ जोकि अनेक घरोंसे गृहीत होता है। उसका सम्यक् गवेषयिता नहीं होते हैं ४।

पुनश्च—इन चार कारणोंसे निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थियोंको (ही) अतिशेष ज्ञान दर्शन उत्पत्तिके योग्य होते हैं। अतः-वे उत्पन्न होते हैं, ऐसे निर्ग्रन्थ आदि (साधु) जन स्त्रीकथाको, भक्त कथाको, देश कथाको और राजकथाको नहीं करते हैं १ विवेक और व्युत्सर्गसे सम्यक् रूपमें अपने आत्माका भावयिता होते हैं २ पूर्वरात्र और अपर रात्रके समयमें वे धर्मजागरिकाको करते हैं ३ तथा प्रासुक, एषणीय,

રાજકથા કરતા રહે છે (૨) તેઓ પોતાના આત્માને વિવેક અને વ્યુત્સર્ગથી સારી રીતે ભાવિત કરતા નથી. (૩) પૂર્વરાત્રિ અને અપરરાત્રિના સમયે તેઓ ધર્મજાગરણ કરતા નથી (૪) પ્રાસુક-એષણીય અને ઉંછ આહાર કે જે અનેક ઘરોમાંથી ગ્રહણ કરવામાં આવે છે, તેના સમ્યક્ ગવેષયિતા તેઓ હોતા નથી

નીચેના ચાર કારણોથી નિર્ગ્રન્થ અથવા નિર્ગ્રન્થીઓ અતિશેષ જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન કરવાને પાત્ર બને છે અને તેથી તેઓ તેને પ્રાપ્ત કરે છે
તે ચાર કારણો આ પ્રમાણે છે—(૧) એવાં નિર્ગ્રન્થો સ્ત્રીકથા, ભક્તકથા, દેશકથા અને રાજકથા કરતા નથી. (૨) તેઓ વિવેક અને વ્યુત્સર્ગથી પોતાના આત્માને સારી રીતે ભાવિત કરે છે (૩) તેઓ પૂર્વરાત્રિ અને અપરરાત્રિને સમયે ધર્મજાગરણ કરે છે પ્રાસુક, એષણીય અને ઉંછ આહાર

उञ्छस्य सामुदानिकस्य गवेषयिता भवति ४। इत्येतैश्चतुर्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा यावत् समुत्पद्यते । सू० ४६ ॥

टीका—" चउहिं ठाणेहिं " इत्यादि–चतुर्भिः–चतुःसंख्यैः स्थानैः–अनुपदं वक्ष्यमाणैः स्त्र्यादि कथाचतुष्टयरूपकारणैः, निर्ग्रन्थानां–साधूनां वा, निर्ग्रन्थीनां वा–साध्वीनां वा, अस्मिन्–चतुर्थारकलक्षणे उपलक्षणाच्चतुर्थारकजन्मवतां पञ्चमारकलक्षणेऽपि च समये, अतिशेषं–शेषाणि–मतिप्रभृति चक्षुर्दर्शनादीनि,

उञ्छ जोकि अनेक घरोंसे संगृहीत होता है उसका सम्यक् गवेषयिता होते हैं ४ । इस प्रकारके इन चार कारणोंसे निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थियोंको ज्ञानदर्शन उत्पन्न होते हैं ।

टीकार्थ--यहाँ चार स्थानरूप कारण स्त्रीकथा आदि लिये गये हैं " इस समय " पदसे आरकका समय और चौथे आरकमें उत्पन्न हुवे मनुष्योंका समय पञ्चम आरकका लिया गया है जो ज्ञानदर्शन सर्वोऽवबोध आदि गुणों द्वारा मति आदि ज्ञानोंसे, तथा–चक्षु दर्शन आदि दर्शनोंसे विशिष्ट होता है । वह अतिशेषपदसे गृहीत हुवा है, ऐसा वह अतिशेष ज्ञान दर्शन और केवल दर्शनरूप होता है । " समुत्पत्तुकामम् " ऐसा जो पद यहाँ आया है उसका तात्पर्य उत्पन्न होनेकी इच्छावाला होता है । परन्तु ज्ञानादिकोंमें अभिलाषाका अभाव रहता है । अतः–इस पदसे उत्पत्तिके योग्य होते हुवे ऐसा अर्थ लिया गया है, तथाच चतुर्थ आरकके समयमें और उपलक्षणसे चतुर्थ आरकमें जन्मे हुवे

કે જે અનેક ઘરોમાથી ગ્રહણ કરવામાં આવે છે તેના તેઓ સમ્યક્ ગવેષયિતા હોય છે

ટીકાર્થ—નિર્ગ્રંથાદિમાં જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન ન થવાના સ્ત્રીકથા આદિ કારણો બતાવ્યાં છે " આ સમય " પદ દ્વારા આરાનો સમય તથા ચોથા આરામાં ઉત્પન્ન થયેલા અને પાંચમાં આરામા પણ હૈયાતિ (અસ્તિત્વ) ધરાવતા માણસનો સમય ગૃહીત થયો છે જે જ્ઞાનદર્શન સર્વ અવબોધ આદિ ગુણો દ્વારા મતિજ્ઞાન આદિ જ્ઞાનોથી અને ચક્ષુદર્શન આદિ દર્શનોથી જુદું પડે છે એવા જ્ઞાનને ' અતિશેષ ' પદ દ્વારા ગ્રહણ કરવામા આવ્યું છે. એવું તે અતિશેષ જ્ઞાનદર્શન કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન રૂપ હોય છે. " સમુત્પત્તુકામમ્ " આ જે સૂત્રપાઠ અહીં આવ્યો છે તેનો અર્થ " ઉત્પન્ન થવાની ઈચ્છાવાળો " થાય છે પરંતુ જ્ઞાનાદિકોમાં અભિલાષાનો અભાવ હોય છે, તે કારણે તેનો અર્થ " ઉત્પત્તિને યોગ્ય હોવા છતાં " લેવામા આવેલ છે. ચોથા આરાના સમયમાં અને ઉપલક્ષણની અપેક્ષાએ ચોથા આરામાં

अति-भतिक्रान्तं – सर्वावबोधप्रभृतिगुणैर्येत् तदतिशेषम्-अतिशयप्राप्ति, केवल मित्यर्थं, ज्ञानदर्शनं चेत्युभय समुत्पत्तुकाममपि-उत्पत्तुमिच्छदपि-ज्ञानादेरमिला पामाभावादुत्पत्त्यर्हमपीत्यर्थः, न समुत्पद्यते-न संजायते, तानि चत्वारि स्थानान्याह- 'तद्यथे'-त्यादि-अभीक्ष्णमभीक्ष्णम्-पुनः पुनः, स्त्रीकथां, तथा-भक्तकथां, तथा-देशकथां, तथा-राजकथां च-पूर्वव्याख्यानरूपां, यो जनः कथयिता-तर्कवाकय नथीको भवति, तस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पत्त्यर्हमपि नो समुत्पद्यत इति पूर्वेण सम्बन्धः।१।

तथा 'विवेगेणे"-त्यादि विवेकेन-शुद्धाशुद्धमध्यात् नीर क्षीरन्यायतोऽ शुद्धाऽऽहारादिपरित्यागेन, तथा-व्युत्सर्गेण-कायोत्सर्गेण योजन आत्मानं सम्यक् कूर्म इवेन्द्रियाणि संयम्य भावयिता नो भवति २।

मनुष्योंको भी जो पञ्चम आरकके समयमें उत्पन्न होने योग्य अतिशेष केवलज्ञान एवं केवलदर्शन उत्पन्न नहीं होते हैं, उसका कारण एक तो यह है कि वे निरन्तर पुनः पुनः स्त्रीकथा करनेमें लगे रहते हैं। भक्त कथासे लगे रहते हैं, देशकथा और राजकथाओंमें निरत रहते हैं। अतः-अतिशेष केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पादक भावके अभाव होनेके कारण उत्पन्न नहीं होने पाते १। क्षीर नीर विवेचन न्याय जैसा शुद्धा शुद्ध आहारपानमेंसे अशुद्धाहार त्याग करना और कायोत्सर्गसे कूर्मकी तरह अपने इन्द्रियोंको संयमित करना क्रमशः विवेक व्युत्सर्ग है। इस विवेक और व्युत्सर्गसे अपने आपको वे सम्यक् रूपसे भावित (युक्त) नहीं करते हैं-२। इस कारणसे भी वे अतिशेष ज्ञानदर्शनसे वञ्चित रहते हैं। "पुव्वरत्त" इत्यादि—रात्रिके प्रथम प्रहरको पूर्व

જન્મેલા મનુષ્યોને પણ જે પાંચમાં આરામાં ઉત્પન્ન થવા યોગ્ય છે એવું કેવળ જ્ઞાન અને કેવળદર્શન ઉત્પન્ન થતું નથી. તે ઉત્પન્ન ન થવાના કારણો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) તેઓ નિરંતર સ્ત્રીકથામાં નિરત રહે છે, વારંવાર ભક્ત (ભોજનની) કથામાં લીન રહે છે દેશકથા અને રાજકથામાં પણ નિરત રહે છે તે કારણે અતિશેષ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન ઉત્પાદક ભાવનો તેમનામાં અભાવ રહે છે તે કારણે તેઓ તેમને ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી. (૨) ક્ષીર નીર ન્યાયનો તેમનામાં અભાવ હોય છે-શુદ્ધાશુદ્ધ આહારમાંથી અશુદ્ધાહારનો ત્યાગ કરવા રૂપ વિવેકનો તેમનામાં અભાવ હોય છે કાયોત્સર્ગથી કૂર્મ (કાચબા) ની જેમ પોતાની ઇન્દ્રિયોને સંયમિત કરવી તેનું નામ વ્યુત્સર્ગ છે તેઓ આ વિવેક અને વ્યુત્સર્ગથી પોતાના આત્માને સમ્યક્ રીતે ભાવિત (યુક્ત) કરતા નથી તે કારણે પણ તેઓ અતિશેષ જ્ઞાનદર્શનથી વંચિત રહે છે

तथा—" पुव्वरत्ते "-इत्यादि-पूर्वरात्रापररात्रकालसमये-पूर्वरात्रः-रात्रेः पूर्वः-प्रथमभागः पूर्वरात्र', अपररात्रः-रात्रेः पश्चिमभागः-चतुर्थप्रहरलक्षणः, तावेव कालः स एव समय'-अवसरः पूर्वरात्रापररात्रकालसमयस्तस्मिन्-रात्रेः पश्चिमभागे इत्यर्थः, मूले रलोप आर्षत्वात् । धर्मजागरिकां-धर्मप्रधाना जागरिका-जागर्तिः-निद्राक्षयेण प्रबोधो धर्मजागरिका-कुटुम्बादि चिन्तापरित्यागेन धर्मचिन्तनरूपा भावप्रत्युपेक्षेत्यर्थः, तां जागरिता-कर्ता न भवति । तत्र भावप्रत्युपेक्षा यथा—

" कडं मए किं नरदेहभाया, सेसं च किं मे करणिज्जमत्थि ।
तवामि णाहं समये सुजोग्गे, बुद्धस्स भावप्पडिलेहणेयं ।१। "

छाया—" कृतं मया किं नरदेहभाजा, शेषं च किं मे करणीयमस्ति ।
तपामि नाहं समये सुयोग्ये, बुद्धस्य भावप्रतिलेखनेयम् ।१। " इति,

अथवा—

" कालोऽत्थि मे कोऽस्स च किं च जोग्गं, असारभूया विसया समत्ता ।
विणाससीला विरसावसाणा, मच्चू सया संनिहिओऽत्थि घोरो ।२। "

छाया—" कालोऽस्ति मे कोऽस्य च किं च योग्यम्, असारभूता विषयाः समस्ताः।
विनाशशीला विरसावसाना, मृत्युः सदा संनिहितोऽस्ति घोरः ।२।" इति,

---

रात्र और चतुर्थ प्रहरको अपररात्र कहा है। इस पूर्वरात्रमें और अपररात्रमें जो धर्मप्रधान जागरिकासे कुटुम्ब आदिकी चिन्ताका परित्याग नहीं करते हैं, कुटुम्ब आदिकी चिन्ताका परित्यागकर वे धर्मचिन्तारूप भाव प्रत्युपेक्षाका कर्त्ता नहीं होते हैं, इस कारण वे केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप अतिशेषको उत्पन्न करनेवाले शुभ भावके अभावसे उन्हें प्राप्त नहीं करपाते है। भावानुप्रेक्षाका स्वरूप इस प्रकारसे है " कडं मए किं नरदेहभाया " इत्यादि अथवा-" कालोऽत्थि मे कोऽस्स च " इत्यादि. तथा " फासुयस्स " इत्यादि

---

(૩) " पुव्वरत्त " ઇત્યાદિ—રાત્રિના પ્રથમ પ્રહરને પૂર્વરાત્રિ કહે છે અને ચોથા પ્રહરને અપરરાત્રિ કહે છે તે પૂર્વરાત્રિની પછીની અપરરાત્રિમાં અર્થાત્ રાત્રિના પાછલા ભાગમાં જેઓ ધર્મજાગરણ દ્વારા કુટુંબાદિની ચિન્તાનો પરિત્યાગ કરતા નથી એટલે કે કુટુંબ વિષયક ચિન્તાનો પરિત્યાગ કરીને જેઓ ધર્મ ચિન્તા રૂપ ભાવપ્રત્યુપ્રેક્ષાના કર્તા બનતા નથી, તેઓ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન રૂપ અતિ શેષોને ઉત્પન્ન કરનારા શુભ ભાવના અભાવને લીધે જ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી. ભાવાનુપ્રેક્ષાનુ સ્વરૂપ આ પ્રકારનુ છે-" कडं मए किं नरदेहभाया " ઇત્યાદિ અથવા " कालोऽत्थि मे कोस्स च " ઇત્યાદિ તથા " फासुयस्स " ઇત્યાદિ.

तथा—"फासुयस्से"-त्यादि प्रासुकस्य अचित्तस्य, एषणीयस्य एष्यते गवेष्यत उद्गमादिदोषवर्जितत्वेनेत्येषणीयः-कल्प्यस्तस्य, तथा-उञ्छस्य-उञ्छय ते-अल्पाल्पतया गृह्यत इत्युञ्छ -भक्तपानादिचतुर्विधाऽऽहारस्तस्य, कीदृशस्ये त्याह-"सामुदानिकस्य"-अनेकगृहगृहीतस्य सम्यक्-सविधि गवेषयिता-अन्वे षयिता नो भवति ४।

"इच्चेएहिं" इत्यादि—इत्येतैः-अनन्तरोक्तैः, चतुर्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा 'यावत्' नो समुत्पद्यते' इतिपर्यन्तं वाच्यम्।

"चउहिं ठाणेहिं" इत्यादि विपर्ययसूत्रं स्पष्टम्। सूत्रे निर्ग्रन्थीपदोपादानात् स्त्रीमोक्षाभावप्रतिपादकं मतं निरस्तम्। सू० ४६ ॥

प्रासुक—अचित्त उद्गमादि दोष वर्जित होनेसे एषणीय-कल्पनीय ऐसे अल्प अल्पमात्रामें गृहीत किये गये अनेक घरोंसे आनीत आहा-रको वेसविधि गवेषणा नहीं करते हैं। इस कारणसे भी वे अतिशेष केवलज्ञान और केवलदर्शनको प्राप्त करने नहीं पाते हैं ४।

इस प्रकारके इन चार कारणोंको लेकर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियोंको उत्पत्ति योग्य भी अतिशेष केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होने नहीं पाते हैं। "चउहिं ठाणेहिं" इत्यादि—सूत्रसे यह प्रकटित किया गया है कि इन पूर्वोक्त कारणोंसे विपरीत कारणोंको लेकर निर्ग्रन्थ-निग्रन्थियोंको केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न कर लेते हैं। यहां "निर्ग्रन्थी" पदके उपादानसे स्त्रीको मुक्ति नहीं माननेवालोंका मत निरस्त किया गया है ॥ सू० ४६ ॥

---

(४) પ્રાસુક અચિત્ત, ઉદ્ગમાદિ દોષથી રહિત હોવાને કારણે એષણીય (કલ્પ્ય) એવા અલ્પ અલ્પ માત્રામાં અનેક ઘરોમાંથી ગ્રહણ કરાયેલા આહા રની તેઓ વિધિસહિત ગવેષણા કરતા નથી, તે કારણે પણ તેઓ અતિશેષ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શનને પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી. આ પ્રકારના આ ચાર કારણોને લીધે નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓ ઉત્પત્તિ યોગ્ય એવા અતિશેષ કેવળ જ્ઞાન અને કેવળદર્શનને ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી.

"चउहिं ठाणेहिं" ઇત્યાદિ—ઉપર જે કારણો પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં છે તે કારણો કરતાં વિપરીત કારણોને લીધે નિર્ગ્રંથો અને નિર્ગ્રંથીઓ અતિશેષ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન ઉત્પન્ન કરી શકે છે અહીં 'નિર્ગ્રંથી' આ પદના પ્રયોગ દ્વારા 'સ્ત્રીને મુક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી" આ પ્રકારની માન્યતા ધરાવનારના મતનું ખંડન કરીને એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે સ્ત્રીને પણ મુક્તિ મળી શકે છે ॥ સૂ ૪૬ ॥

निर्ग्रन्थप्रस्तावात्स्वाध्यायस्याकर्तव्यकर्तव्यविषयकं सूत्रत्रयमाह—

मूलम्-नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं महापडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए १, इंदमहपाडिवए २, कत्तियपाडिवए ३, सुगिम्हपाडिवए ४। णो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं संझाहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—पढमाए १, पच्छिमाए २, मज्झण्हे ३, अड्ढरत्ते ४। कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चाउक्कालं सज्झायं करित्तए, तं जहा-पुव्वण्हे १, अवरण्हे २, पओसे ३, पच्चूसे ४।सू०४७॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा चतसृषु महाप्रतिपत्सु स्वाध्यायं कर्तुम्, तद्यथा—आषाढप्रतिपत् १, इन्द्रमहप्रतिपत् २, कार्तिकप्रतिपत् ३, सुग्रीष्मप्रतिपत् ४। नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा चतसृषु सन्ध्यासु स्वाध्यायं कर्तुम्, तद्यथा—प्रथमायाम् १, पश्चिमायाम् २, मध्याह्ने ३,

---

निर्ग्रन्थके प्रकरणसे अब सूत्रकार स्वाध्यायमें कर्तव्यता—अकर्तव्यता विषयक्त सूत्रत्रयका कथन करते हैं।

"नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा" इत्यादि—

सूत्रार्थ-चार महाप्रतिपदाओंमें (एकममें) निर्ग्रन्थ—निर्ग्रन्थियोंको स्वाध्याय करना योग्य नहीं है, जैसे—आषाढकी प्रतिपदामें १, इन्द्रमहकी प्रतिपदामें २, कातिककी प्रतिपदामें ३ और सुग्रीष्मकी प्रतिपदामें ४१।

चार सन्ध्याओंमें निर्ग्रन्थ—निर्ग्रन्थियोंको स्वाध्याय करना योग्य नहीं है। जैसे—प्रथम सन्ध्यामें १, पश्चिम सन्ध्यामें २, मध्याह्नमें ३, और अर्धरात्रमें।४—२

નિર્ગ્રંથોનો અધિકાર ચાલુ હોવાથી હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે નિર્ગ્રંથ–નિર્ગ્રંથીઓએ ક્યારે સ્વાધ્યાય કરવો જોઈએ અને ક્યારે ન કરવો જોઈએ "नो कप्पई निगगथाण वा निग्गंथीण वा" ઇત્યાદિ—

ચાર મહાપ્રતિપદાઓમાં (વદ એકમે) નિર્ગ્રંથ અને નિર્ગ્રંથીઓએ સ્વાધ્યાય કરવો જોઈએ નહીં (૧) અષાઢી પડવે, (૨) આસો માસના પડવે, (૩) કાર્તક માસના પડવે અને સુગ્રીષ્મના–ચૈત્રના પડવે.

ચાર સંધ્યાઓમાં નિર્ગ્રંથ–નિર્ગ્રંથીઓએ સ્વાધ્યાય કરવો જોઈએ નહીં. (૧) પ્રથમ સંધ્યામાં, (૨) છેલ્લી સંધ્યામાં, (૩) મધ્યાહ્નને અને (૪) અર્ધરાત્રે

अर्धरात्रे ४। २। कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा चतुष्काले स्वाध्यायं कर्तुम्, तद्यथा–पूर्वाह्णे १, अपराह्णे २, प्रदोषे ३, प्रत्यूषे ४।२। सू० ४७॥

टीका—"नो कप्पइ" इत्यादि–चतसृषु महाप्रतिपत्सु–महोत्सवानन्तरवर्तिन्नोत्सवानुवृत्त्याऽनशिष्टप्रतिपद्धर्मविलक्षणतया महत्यश्च ताः प्रतिपदो महाप्रतिपदस्तासु महाप्रतिपत्सु, स्वाध्यायम्–आचाराङ्गादि सूत्रपाठपठनरूपं, कर्तुं निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा नो कल्पते, उत्सवानुवृत्त्या स्वाध्यायपरिघ्नसंभवात्' ताश्चेमा आह–"आषाढ'–ति–आषाढ प्रतिपत्–आषाढस्य पौर्णमास्या अनन्तरा प्रतिपत् १ इन्द्रमहप्रतिपत्–इन्द्रमहः–आश्वयुजपौर्णमासी, तस्यानन्तरा प्रतिपत् इन्द्रमहप्रतिपत् २, कार्तिकप्रतिपत्–कार्तिकपौर्णमास्यनन्तरप्रतिपत् ३। सुग्रीष्मप्रतिपत्–सुग्रीष्म –चैत्रपौर्णमासी तस्या अनन्तरा प्रतिपत् सुग्रीष्मप्रतिपत् ४।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियोंको चारकालमें स्वाध्याय करना योग्य है। जैसे–पूर्वाह्नमें १, अपराह्नमें २, प्रदोषमें ३ और प्रत्यूषमें ४ है।

टीकार्थ–चार प्रतिपद्–तिथिमें स्वाध्याय निषिद्ध करनेका कारण यह है कि उत्सवमें प्रायः विघ्न सम्भावना बनी रहती है। आचाराङ्गादिकोंका मूल पाठको स्वाध्याय शब्दसे लिया है। इन प्रतिपदाओंको "महा" शब्दसे विशेषित किया गया है।

आषाढी पूर्णिमाके बाद जो पडिया तिथि आती है। यह प्रतिपदा उसी मासके कृष्णपक्षमें आती है, इसे कृष्णपक्षकी एकम तिथि कहते हैं। आश्विन मासकी पूर्णिमाके अनन्तर जो उसी मासकी कृष्णपक्षकी एकम तिथि है यह इन्द्रमहकी प्रतिपत् है। कार्तिक पूर्णिमा के बाद जो प्रतिपद तिथि आती है यह कार्तिक प्रतिपद है। और सुग्रीष्म

નિર્ગ્રંથ અને નિર્ગ્રંથીઓને ચાર કાળમાં સ્વાધ્યાય કરવાનું કલ્પે છે—(૧) પૂર્વાહ્ન (૨) અપરાહ્ન (૩) પ્રદોષ અને (૪) પ્રત્યૂષ.

ટીકાર્થ—ચાર પ્રતિપદા (પડવો) તિથિઓમાં સ્વાધ્યાય કરવાનો નિષેધ કરવાનું કારણ એ છે કે તે તિથિઓમાં ઉત્સવ નિમિત્તે વિઘ્ન આવવાનો સંભવ રહે છે. સ્વાધ્યાય પદ દ્વારા આચારાંગ આદિ સૂત્રોના પાઠ ગ્રહણ કરવા જોઈએ. આ ચારે પ્રતિપદાઓને મહાપ્રતિપદા કહી છે.

અષાઢી પૂર્ણિમા પછી જે તિથિ આવે છે તેને અષાઢ પ્રતિપદા કહે છે. "ઇન્દ્રમહ પ્રતિપદા" આસો માસની પૂર્ણિમા પછી જે આસો માસની વદ એકમ આવે છે તેને ઇન્દ્રમહ પ્રતિપદા કહે છે. કારતક માસની પૂર્ણિમા પછી જે માગશર માસની તિથિ આવે છે તેને કાર્તિક પ્રતિપદા કહે છે.

"नो कप्पइ" इत्यादि, नो कल्पते निर्ग्रन्थानां निग्रन्थीनां चतसृषु सन्ध्यासु स्वाध्यायं कर्तुम्। तद्यथा-प्रथमायाम्-प्रथमा-अनुदिते सूर्येऽर्धमुहूर्त्तपूर्वं या सन्ध्या भवति सा प्रथमा, तस्याम्, उदितेऽप्यर्द्धमुहूर्तपर्यन्तमिति भावः १।

तथा—पश्चिमायाम्-पश्चाद् भवा पश्चिमा-अस्तं गते सूर्ये या सन्ध्या भवति सा, तस्याम्, सूर्यास्तात्प्रागर्द्धमुहूर्तादारभ्य यावद् दिगरुणिमानं भजते तावदितिभावः २। तथा मध्याह्ने-अह्नोमध्यो मध्याह्नस्तस्मिन्-पूर्वाह्णपराह्नयोः सन्धिभाग इत्यर्थः, पूर्वाह्णस्यान्त्यार्धमुहूर्तम्, अपराह्णस्य चाऽऽद्यार्धमुहूर्तमिति मुहूर्तमेकं यावदिति भावः ३। तथा- अर्धरात्रे-रात्रेरर्द्धमर्धरात्रस्तस्मिन्- अत्रापि मध्याह्नवत्

चैत्र पूर्णिमाके अनन्तर जो प्रतिपत् तिथि आती है वह सुग्रीष्म प्रतिपत् हैं। इसी प्रकार चार सन्ध्याओंमें स्वाध्यायका जो निषेध किया है वहभी केवल विघ्न आनेकी सम्भावनासे है, यहां प्रथम सन्ध्यासे वह समयलिया गया है जो सूर्योदयसे पहले आधे मुहूर्त्तका रहता है। अर्थात्-सूर्योदय होजाने परभी अर्धमुहूर्त तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। पश्चिमासन्ध्या वह है जो सूर्यके अस्तङ्गत होने पर होती है, सूर्य अस्त होंगे उससे पहले के अर्ध मुहूर्तसे लेकर जब तक दिशाएं लाल बनी रहती है तब तकका वह समय पश्चिम सन्ध्या है तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। पूर्वाह्ण-और अपराह्णका सन्धि भाग मध्याह्न है। पूर्वाह्णके अन्तका आधामुहूर्त और अपराह्ण के आदि का आधा मुहूर्त इस प्रकार इस एक मुहूर्त्त तक स्वाध्याय नही करना

ચૈત્રી પૂર્ણિમા પછી જે વદ એકમની તિથિ આવે છે, તેને 'સુગ્રીષ્મ પ્રતિપદા' કહે છે. આ ચારે પ્રતિપદાની તિથિઓમાં સ્વાધ્યાયનો નિષેધ છે

એ જ પ્રમાણે ચાર સંધ્યાઓમાં સ્વાધ્યાયનો જે નિષેધ કર્યો છે, તે પણ વિઘ્ન આવવાની સંભાવનાથી જ કર્યો છે. પ્રથમ સંધ્યા એટલે સૂર્યોદય પહેલાં અર્ધા મુહૂર્તનો અને સૂર્યોદય બાદ અર્ધા મુહૂર્તનો સમય પશ્ચિમ સંધ્યા એટલે સૂર્યાસ્ત પહેલાનો અર્ધો મુહૂર્તનો સમય તથા સૂર્યાસ્ત બાદ જ્યાં સુધી દિશાઓ લાલીમા યુક્ત રહે છે ત્યાં સુધીનો સમય આ બન્ને સંધ્યામાં સ્વાધ્યાય કરવો જોઈએ નહીં પૂર્વાહ્ણ અને અપરાહ્ણના સંધિકાળને મધ્યાહ્ણ કહે છે પૂર્વાહ્ણના અન્તે અર્ધા મુહૂર્ત સુધી અને અપરાહ્ણની શરૂઆતના અર્ધા મુહૂર્ત સુધીના કાળમાં પણ સ્વાધ્યાય કરવો જોઈએ નહીં. રાત્રિનો પણ એ જ પ્રકારનો જે મધ્ય ભાગ છે, તે મધ્યરાત્રિ રૂપ કાળમાં

कालपरिमाणं बोध्यम् ४। आसु सन्ध्यासु स्वाध्यायं कर्तुं न कल्पते। मध्याह्नार्धरात्रयोः सन्ध्यात्वं चार्थत्वरूपसन्ध्यपेक्षया बोध्यम् ।२।

अथ स्वाध्यायकरणकालमाह—" कप्पइ " इत्यादि—चातुष्कालं-चतुर्णां कालानां समाहारश्चतुष्कालं, तत्र भवो यः स तथा तं स्वाध्यायं कर्तुं निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा कल्पते, तद्यथा-पूर्वाह्णे-अह्नः पूर्वः पूर्वाह्न -दिनाऽऽद्यप्रहरः, तस्मिन् १, अपराह्णः-अह्नोऽपरः-मपराह्णः-दिनचरमप्रहरः, तस्मिन् २, प्रदोषे-रात्रेः प्रथमप्रहरे ३, प्रत्यूषे-रात्रेश्चरमप्रहरे ४। ३। सू० ४७ ॥

पूर्वं स्वाध्यायकाल उक्तः, इदानीं स्वाध्यायप्रवृत्तस्य लोकस्थितिपरिज्ञानं भवतीति तां प्रतिपादयन्नाह—

मूलम्—चउव्विहा लोगट्ठिई पण्णत्ता, त जहा–आगासपइट्ठिए वाए १, वायपइट्ठिए उदही २, उदहिपइट्ठिया पुढवी ३, पुढविपइट्ठिया तसा थावरा पाणा ।४ ॥४८॥

चाहिये। तथा रात्रिका जो अर्धभाग है उसमें भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। यहां मध्याह्नका जैसाही समयका परिमाण जानना चाहिये। इन चार सन्ध्याओंमें स्वाध्याय वर्जित है। मध्याह्नमें और अर्धरात्रमें सन्ध्याका व्यवहार सन्धिकी अपेक्षासे जानना चाहिये २। सूत्रकारने स्वाध्याय करनेका जो पूर्वाह्न आदिकाल कहा है, उसका भाव ऐसा है—दिनका आद्य प्रहर पूर्वाह्न है, दिनका अन्तिम प्रहर अपराह्न है एवं रात्रिका प्रथम प्रहर प्रदोषकालहै और चरम प्रहर प्रत्यूषकाल है। सू० ४७

स्वाध्यायकाल कहकर अब सूत्रकार स्वाध्यायमें प्रवृत्त हुवे साधु

પણ સ્વાધ્યાય કરવો જોઈએ નહીં અહીં પણ મધ્યાહ્નના જેવું જ તે કાળનું પ્રમાણ સમજવું આ રીતે આ ચાર સન્ધ્યાઓમાં સ્વાધ્યાયનો નિષેધ ફરમાવ્યો છે મધ્યાહ્ન અને મધ્ય રાત્રિમાં જે સંધ્યાનો વ્યવહાર થયો છે, તે સંધિ કાળની અપેક્ષાએ થયો છે

સૂત્રકારે સ્વાધ્યાય કરવાને યોગ્ય જે પૂર્વાહ્ણ આદિ કાળ બતાવ્યા છે, તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

દિવસના પહેલા પ્રહરને પૂર્વાહ્ણ કહે છે દિવસના છેલ્લા પ્રહરને અપરાહ્ણ કહે છે. રાત્રિના પ્રથમ પ્રહરને પ્રદોષકાળ કહે છે, અને રાત્રિના છેલ્લા પ્રહરને પ્રત્યૂષ કહે છે આ ચારે કાળને સ્વાધ્યાય કરવા માટેના યોગ્ય સમય અહીં કહ્યા છે. ॥ સૂ ૪૭ ॥

સ્વાધ્યાયના કાળનું નિરૂપણ કરીને સ્વાધ્યાયમાં પ્રવૃત્ત થયેલાં સાધુ આદિ

छाया-चतुर्विधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आकाशप्रतिष्ठितो वातः १, वातप्रतिष्ठित उदधिः उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी पृथिवीप्रतिष्ठिता-त्रसाः स्थावराः प्राणाः ४। । सू० ४८ ॥

टीका—" चउव्विहा लोगट्ठिई " इत्यादि—लोकस्य-क्षेत्ररूपस्य स्थितिः-व्यवस्था लोकस्थितिः, सा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आकाशप्रतिष्ठितः-आकाशे-प्रतिष्ठितः-व्यवस्थित आकाशप्रतिष्ठितः, वातः-तनुवातघनवातरूपः पवनः १, तथा वातप्रतिष्ठितः-वायुप्रतिष्ठितः, उदधिः-समुद्रः घनोदधिरूपः २, उदधिप्रतिष्ठिता-घनोदधिव्यवस्थिता पृथिवी-रत्नप्रभादिका, पृथिवीप्रतिष्ठिताः त्रसाः-

---

आदिको जो लोकस्थितिका परिज्ञान होता है, इस बातको प्रकट करते हैं, अर्थात्-कालस्थितिका कथन करते हैं।

" चउव्विहा लोगट्ठिई पण्णत्ता " इत्यादि—

सूत्रार्थ- लोकस्थिति चार प्रकारकी कही गईहै, जैसे-आकाश प्रतिष्ठितवात १, वातप्रतिष्ठित उदधि २, उदधि प्रतिष्ठित पृथिवी, ३, पृथिवी प्रतिष्ठित त्रस स्थावरजीव ४।

टीकार्थ-क्षेत्ररूप लोककी व्यवस्थाका नाम लोकस्थिति है, यह लोकस्थिति भी चार प्रकार कही गई है, उसका भाव ऐसा है—आकाशमें-तनुवात और घनवातरूप जो पवन प्रतिष्ठित है, वह आकाश प्रतिष्ठितवात है। घनोदधिरूप समुद्र जो वायुप्रतिष्ठित है, वह वात प्रतिष्ठित उदधि है, तथा-घनोदधि व्यवस्थित जो रत्नप्रभा आदिक पृथिवियां हैं वे उदधि प्रतिष्ठित पृथिवी है। तथा पृथिवी प्रतिष्ठित जो एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रियादिक जीव हैं वे पृथिवी प्रतिष्ठित त्रस स्थावर

કોને લોકસ્થિતિનુ પરિજ્ઞાન હોય છે આ સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર લોકસ્થિતિનું કથન કરે છે " ચઉવ્વિહા લોગટ્ઠિઈ પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-લોકસ્થિતિ ચાર પ્રકારની કહી છે. જેમકે-(૧) આકાશ પ્રતિષ્ઠિતવાત, (૨) વાતપ્રતિષ્ઠિત ઉદધિ, (૩) ઉદધિ પ્રતિષ્ઠિત પૃથ્વી અને (૪) પૃથ્વી પ્રતિષ્ઠિત ત્રસ સ્થાવરજીવ

ટીકાર્થ-ક્ષેત્રરૂપ લોકની વ્યવસ્થાનુ નામ લોકસ્થિતિ છે. તે લોકસ્થિતિ પણ ચાર પ્રકારની કહી છે, તેનુ સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે છે—

(૧) આકાશમાં તનુવાત અને ઘનવાત રૂપ જે વાયુપ્રતિષ્ઠિત છે, તેનું નામ આકાશ પ્રતિષ્ઠિતવાત છે (૨) ઘનોદધિ રૂપ સમુદ્ર જે વાયુપ્રતિષ્ઠિત છે, તેનુ નામ વાતપ્રતિષ્ઠિત ઉદધિ છે (૩) ઘનોદધિ વ્યવસ્થિત જે રત્નપ્રભા આદિ પૃથ્વીઓ છે, તેમને ઉદધિ પ્રતિષ્ઠિત પૃથ્વી કહે છે. (૪) પૃથ્વી પ્રતિષ્ઠિત

त्रीन्द्रियप्रभृतय, ये पुनस्त्रीन्द्रियादयो रत्नप्रभादि पृथिवीष्वप्रतिष्ठितास्तेऽपि पर्वतविमानादिरूपपृथिवीप्रतिष्ठितत्वात्पृथिवी प्रतिष्ठिता एव सन्ति। विमान पृथिवीनां चाऽऽकाशप्रतिष्ठितत्वं यथासम्भव बोध्यम्।

यद्वा—विमानगतदेवादिप्रसानामिहाविवक्षेति। स्थावरा इह बादरवनस्पत्यादयो बोध्याः, सूक्ष्माणां तु सर्वलोकप्रतिष्ठितत्वात्, प्राणाः-जीवा। लोकस्थितेर्विशेषव्याख्याऽस्यैव तृतीयस्थाने द्वितीयोद्देशे एकोनचत्वारिंशत्तमसूत्रे द्रष्टव्येति॥ सू० ४८।

अनन्तर प्रसाः प्राणा उक्ताः, सम्प्रति त्रसप्राणविशेषस्य स्वरूपं दर्शयितुं चतुर्भङ्गीसूत्रचतुष्टयमाह—

मूलम्—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा-तहे णाममेगे १, णो तहे णाममेगे २, सोवत्थिए णाममेगे ३, पहाणे णाममेगे ४॥१॥

जीव हैं। तथा-जो त्रीन्द्रियादिक जीव रत्नप्रभा आदि पृथिवियोंमें अप्रतिष्ठित [ऐसे] हैं वे भी पर्वत विमान आदिरूपसे पृथिवियोंमें प्रतिष्ठित होनेके कारणसे पृथिवी प्रतिष्ठितही हैं। विमान-एवं पृथिवी आदिकोंमें आकाश प्रतिष्ठितता यथासम्भव जाननी चाहिये। विमान गत देवादिप्रसोंकी यहां विवक्षा नहीं हुई है, स्थावर शब्दसे यहां बादर वनस्पति आदिक समझना चाहिये, क्योंकि-जो सूक्ष्मजीव हैं वे सर्व लोकमें प्रतिष्ठित हैं। लोकस्थिति सम्बन्धिनी व्याख्या इसी सूत्रके तृतीय स्थानगत द्वितीय उद्देशोंमें ३९ वे सूत्रमें विशेषरूपसे देख लेनी चाहिये॥ सू० ४८॥

જે એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય આદિક જીવ છે તેમનું નામ પૃથ્વી પ્રતિષ્ઠિત સ્થાવર જીવ છે તથા જે ત્રીન્દ્રિયાદિક જીવો રત્નપ્રભા આદિ પૃથ્વીઓમાં અપ્રતિષ્ઠિત જેવાં છે, તેઓ પણ વિમાનાદિ રૂપ પૃથ્વીઓમાં પ્રતિષ્ઠિત હોવાને કારણે પૃથ્વી પ્રતિષ્ઠિત જ છે વિમાન અને પૃથ્વી આદિકોમાં આકાશ પ્રતિષ્ઠિતતા યથાસંભવ સમજવી જોઈએ. વિમાનગત દેવાદિ ત્રસોની વાત અહીં કરી નથી. સ્થાવર પદથી અહીં બાદર વનસ્પતિકાયિક આદિ સમજવા જોઈએ, કારણ કે જે જીવો સૂક્ષ્મ છે, તે તો સર્વલોકમાં પ્રતિષ્ઠિત છે લોકસ્થિતિની સવિસ્તર પ્રરૂપણા ત્રીજા સ્થાનના બીજા ઉદ્દેશાના ૩૯ માં સૂત્રમાં કરવામાં આવી છે તો ત્યાંથી વાંચી લેવી. ॥ સૂ ૪૮ ॥

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–आयंतकरे णाममेगे णो परंतकरे १, परंतकरे णाममेगे णो आयंतकरे २, एगे आयंतकरेवि परंतकरेवि ३, एगे णो आयंतकरे णो परंतकरे ४ ।२।

चत्तारि पुरिसजाया पणात्ता, तं जहा--आयंतमे णाममेगे णो परंतमे १, परंतमे ४. ।३।

चत्तारि पुरिसजाया पणात्ता, तं जहा--आयंदमे णाममेगे णो परंदमे० ४, ।४। सू० ४९ ॥

छाया— चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–तथो नामैकः १, नोतथो नामैकः २, सौवस्तिको नामैकः ३, प्रधानो नामैकः ४, (१)

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आत्मान्तकरो नामैको नो परान्तकरः १, परान्तकरो नामैको नो आत्मान्तकरः २, एक आत्मान्तकरोऽपि परान्तकरोऽपि ३, एको नो आत्मान्तकरो नो परान्तकरः ४। २।

चत्वारि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आत्मतमो नामैको नो परतमः १, परतम० ४, ।३।

अब सूत्रकार त्रस प्राणविशेषका स्वरूप दिखानेके लिये चतुर्भङ्गी रूप चार सूत्रसे कथन करते हैं । "चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" इत्यादि—

पुरुष जात चार कहे गये हैं । जैसे–कोई एक तथा १, कोई एक नो तथा २, कोई एक सौवस्तिक ३ और कोई एक प्रधान ४ ।

पुनश्च—पुरुष जात चार कहे गये हैं, जैसे–एक आत्मान्तकर नो परान्तकर १, कोई एक परान्तकर नो आत्मान्तकर २, कोई एक आत्मान्तकरभी और परान्तकरभी ३, तथा कोई एक नो आत्मान्तकर नो परान्तकर ४ । पुनश्च—पुरुष जात चार कहे गये हैं, जैसे–कोई एक

હવે સૂત્રકાર ત્રસ પ્રાણુવિશેષના સ્વરૂપનું ચતુર્ભંગીયુક્ત ચાર સૂત્રો દ્વારા નિરૂપણુ કરે છે " चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता " ઇત્યાદિ—

પુરુષના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) તથા પુરુષ (આજ્ઞાકારી), (૨) નો તથા (આજ્ઞા ઉથાપનાર) (૩) સૌવસ્તિક (સ્તુતિ કરનાર) (૪) પ્રધાન પુરુષ । ૧ ।

આ રીતે પણુ ચાર પુરુષ કહ્યા છે—(૧) આત્માન્તકર નો પરાન્તકર, (૨) પરાન્તકર નો આત્માન્તકર, (૩) આત્માન્તકર અને પરાન્તકર. (૪) નો આત્માન્તકર નો પરાન્તકર. । ૨ ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आत्मदमो नामैको नो परदमः ४, । सू० ४९॥

टीका—" चत्तारि पुरिसजाया" इत्यादि-पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-तथा-सेवकः सन् यथैवाऽऽज्ञाप्यते तथैव यः कर्मणि प्रवर्तते स तथाइत्युच्यते, तादृश एकः-कश्चित् पुरुषो भवति, स्वाम्याज्ञाकारक इत्यर्थः १,

एकः-अपरः पुरुषो नोतथ -सेवकः सन् यथाऽऽदिश्यते तथा यो न प्रवर्तते स पुरुषो नोतथः कथ्यते-स्वाम्याज्ञापरिवर्तीत्यर्थ २,

एकः-कश्चित्पुरुषः सौवस्तिक-स्वस्तीति कल्याणवाचकं शब्दं भणति यहा

आत्मतम नो परतम १, कोई एक परतम नो आत्मतम २, इत्यादि रूप ३-४ । पुनश्च—पुरुष जात चार कहे गये हैं, जैसे-कोई एक आत्म दम नो परदम १ इत्यादि ।

यहाँ प्रथम सूत्र के प्रथम भङ्गमें " तथा " शब्द उस सेवक पुरुष का वाचक है कि जो जैसा काम करनेको कहा जाता है, वैसाही काम करता है । अर्थात्-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो अपने स्वामीकी आज्ञाका पालक होता है १, कोई एक ऐसा होता है जो उससे जैसा काम करनेको कहा जाता है वह वैसा काम नहीं करता है, अर्थात्-अपने स्वामीकी आज्ञाका परिवर्ती होता है २, तीसरा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो अपने स्वामीकी स्तुति करता

આ રીતે પણ ચાર પુરુષ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) આત્મતમ નો પરતમ, (૨) પરતમ નો આત્મતમ (૩) આત્મતમ અને પરતમ, (૪) નો આત્મતમ નો પરતમ. । ૩ ।

આ રીતે પણ ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) આત્મદમ નો પરદમ, (૨) પરદમ નો આત્મદમ, (૩) આત્મદમ અને પરદમ, (૪) નો આત્મદમ નો પરદમ. । ૪ ।

વિશેષાર્થ—પહેલા સૂત્રના પહેલા ભાંગામાં ' તથા " પદ એવા સેવક પુરુષનું વાચક છે કે જેને જે કામ કરવાનું કહેવામાં આવે તે કામ કરે છે એટલે કે કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના સ્વામીની આજ્ઞાનું પાલન કરનારો હોય છે

(૨) " નો તથા " બીજા ભાંગાનું ' નો તથા ' પદ એ પ્રકટ કરે છે કે કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના સ્વામીની આજ્ઞાનો પાલક હોતો નથી, તેને જેવું કામ કરવાનું કહેવામાં આવે તેવું કામ કરતો નથી

कल्याणं समाचरति स सौवस्तिकः, एतादृशो माङ्गलिकवक्ता मागधप्रभृतिर्भवति ३, एकः-कश्चित् पुरुषः प्रधानः-मुख्यः स्वामीत्यर्थः सेवकप्रभृतिजनाऽऽराधकत्वात् भवति ४। १।

"चत्तारि पुरिसजाया" इत्यादि-स्पष्टम्, नवरम्-आत्मान्तकरः-अत्र 'आत्म' शब्देन आत्मकर्म गृह्यते, आत्मनोऽन्ताभावात्, तेन-आत्मनः-आत्मकर्मणोऽन्तम्-अवसानं करोतीत्येवंशील आत्मान्तकरः-स्वकीयकर्मक्षयकरो भवति किन्तु नो परान्तकरः-परकीयकर्मक्षयकरो नो भवति धर्मदेशनादिरहितः प्रत्येकबुद्धप्रभृतिरिव ।१।

तथा-एकः-कश्चित् पुरुषः अपरान्तकरो भवति किन्तु आत्मान्तकरो नो

है, मङ्गलवाचक होता है, जैसे-मागध आदि पुरुष ३ (स्तुतिपाठक) तथा कोई एक चौथा पुरुष ऐसा होता है जो प्रधान स्वामी होता है, सेवक आदि जन जिसकी आराधना-सेवा आदि करते हैं ४।

पुनश्च—द्वितीय सूत्रमें जो पुरुषजात चार कहे गये हैं, उसका अभिप्राय ऐसा है। कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो आत्मान्तकर होता है; यहां आत्म शब्दसे अपना कृतकर्म लिया गया है। क्योंकि आत्म द्रव्यका अभाव नहीं होता है। ऐसा पुरुष वह होता है जो प्रत्येक बुद्धकी तरह अपनेही कर्मोंका नाशक-क्षयकर्त्ता होता है, परके कर्मोंका नहीं क्योंकि-वह धर्मदेशना आदिसे रहित होता है १। कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो परान्तकर होता है आत्मान्तकर नहीं होता है, ऐसा वह पुरुष द्रव्यलिङ्गी मुनिकी तरह अथवा-अचरम शरी-

---

(૩) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના સ્વામીની સ્તુતિ કરનારો હોય છે, મંગલવાચક હોય છે, જેમકે માગધ આદિ પુરુષ.

(૪) કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પ્રધાન સ્વામી હોય છે. એટલે કે સેવક આદિજન તેની સેવા કરતા હોય છે.

બીજા સૂત્રનો ભાવાર્થ-પહેલા ભાંગાનો ભાવાર્થ—કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે આત્માન્તકર હોય છે અહીં 'આત્મ' પદથી પોતાના કૃતકર્મ ગૃહીત થયેલ છે, કારણ કે આત્મદ્રવ્યનો અભાવ હોતો નથી આત્માન્તકર પુરુષ તેને કહે છે કે જે પ્રત્યેકબુદ્ધની જેમ પોતાના જ કર્મોનો ક્ષયકર્ત્તા હોય છે, પરના કર્મોનો ક્ષયકર્ત્તા હોતો નથી, કારણ કે તે ધર્મદેશનાદિથી રહિત હોય છે

બીજા ભાંગાનું સ્પષ્ટીકરણ—કોઇ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પરાન્તકર હોય છે પણ આત્માન્તકર હોતો નથી. દ્રવ્યલિંગી મુનિ અને અચરમ શરીર-

भवति, भवरमशरीर आचार्यादिरिव ।२।

तथा-एकः-कश्चित् पुरुषः आत्मान्तकरोऽपि भवति परान्तकरोऽपि भवति तीर्थकरादिरिव ।३।

तथा-एकः-कश्चित् पुरुषः आत्मान्तकरो नो भवति परान्तकरोऽपि नो भवति जिनाज्ञाविरुद्धप्ररूपकाऽऽचार्य इव ।४।

रवाले आचार्यकी तरह होता है क्योंकि-इसकी धर्मदेशनासे दूसरे जीव अपने कर्मोंका नाशक होजाते हैं-पर यह स्वयं अपने कर्मोंका नाशक नहीं होते हैं २। तथा-कोई एक पुरुष ऐसा भी होता है जो आत्मान्तकरभी और परान्तकरभी होता है ३। ऐसा पुरुष तीर्थङ्कर जैसे होते हैं क्योंकि-इनकी धर्मदेशनासे अन्य श्रोता पुरुष अपने २ अर्जित कर्मोंका क्षय कर देते हैं-और ये स्वयभी अपने कर्मोंका क्षपकर्ता बनते हैं। तथा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो आत्मान्तकर नहीं होता है और न परान्तकरही होता है। ऐसा पुरुष यह होता है जो जिनाज्ञा विरुद्ध प्ररूपणा करनेवाले आचार्यकी तरह अपनी इच्छानुसार प्ररूपणा करता है, पदार्थ स्वरूपका वह यथार्थ विवेचक नहीं होता है। यद्वा-आत्मान्तकर शब्द जो अपने पर्यायका विनाशक होता है ऐसे आत्मघाती पुरुषका वाचक है।

વાળા આચાર્યને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે કારણ કે તેમની દેશનાથી અન્ય જીવો પોતાના કર્મોનો ક્ષય કરે છે પણ તેઓ પોતે પોતાનાં કર્મોના ક્ષયકર્તા બનતા નથી.

ત્રીજા ભાંગાનું સ્પષ્ટીકરણ—કોઈ પુરુષ આત્માન્તકર (પોતાના કર્મોનો ક્ષય કરનારો) પણ હોય છે અને પરાન્તકર (અન્યના કર્મોનો ક્ષય કરનારો) પણ હોય છે જેમકે તીર્થંકરો. તેઓ પોતે પણ પોતાના કર્મોનો ક્ષય કરી નાખે છે અને તેમની દેશનાના પ્રભાવથી અન્ય પુરુષો પણ પોતાના કર્મોનો ક્ષય કરી નાખે છે

ચોથા ભાંગાનું સ્પષ્ટીકરણ—કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે આત્માન્તકર પણ હોતો નથી અને પરાન્તકર પણ હોતો નથી. જિનાજ્ઞા વિરૂદ્ધની પ્રરૂપણા કરનાર આચાર્યને આ ભાંગામાં મૂકી શકાય છે, કારણ કે તે પોતાની ઇચ્છાનુસાર પ્રરૂપણા કરતો હોવાથી પદાર્થના સ્વરૂપનું યથાર્થ પ્રતિપાદન કરનારો હોતો નથી. તેથી તે પોતે પણ પોતાના કર્મોનો ક્ષય કરી શકતો નથી અને શ્રોતાઓના કર્મોનો ક્ષય પણ કરાવી શકતો નથી.

यद्वा-आत्मान्तकरः-आत्मनः-स्वस्यान्तं-मरणं करोतीत्येवंशील आत्मान्तकरः-आत्मघाती, तथा-नो परान्तकरः-नो परघातीति प्रथमः १।

द्वितीयस्तु परवधकः, तृतीय आत्म परवधकः, चतुर्थस्तु नो आत्मवधको नो परवधक इत्यर्थो वोध्यः ४। ॥२॥

" चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता " इति स्पष्टम् । नवरम्-एकः-कश्चित् आत्मतमः-आत्मानं तमयति-खेदयतीत्यात्मतमः, किन्तु नो परतमः-परं शिष्यादिकं तमयतीति परतमः नो भवति १। एवं शेषभङ्गत्रयं बोध्यम् ४।

अतः—कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो आत्मघाती होता है परघाती नहीं होता है । तथा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो आत्मघाती न होकर परघाती होता है, जैसे-शिकारी पुरुष । तथा-कोई एक तीसरा पुरुष ऐसा होना है जो अपनाभी घात करता है और परकाभी घात करता है । कोई एक चौथा पुरुष ऐसा होता है जो न अपना घात करता है और न परका घात करता है २ ।

" चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता " यहां जो आत्मतम आदिरूपसे पुरुषजात चार प्रगट किये गये हैं, उनका तात्पर्य ऐसा कि-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो अपने आपकोही खेदयुक्त करता है, शिष्यादिरूप परको नहीं १ । इसी प्रकारसे और तीन भङ्गोंकोभी समझ लेना चाहिये । पुनश्च—जो आत्मदम आदि प्रकारसे पुरुष कहे गये हैं ।

અથવા—" આત્માન્તકર " પદ પોતાની પર્યાયના વિચ્છેદકનુ–આત્મઘાતીનું વાચક છે. આ દૃષ્ટિએ વિચારવામાં આવે તો પહેલા ભાંગાનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે થશે—કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે આત્મઘાતી હોય છે, પણ પરઘાતી હોતો નથી. (૨) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પરઘાતી હોય છે, પણ આત્મઘાતી હોતો નથી. (૩) કોઇ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાનો પણ ઘાતક હોય છે અને પરનો પણ ઘાતક હોય છે. (૪) કોઇ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાનો પણ ઘાતક હોતો નથી અને પરનો પણ ઘાતક હોતો નથી. । ૨ ।

ત્રીજા સૂત્રનો ભાવાર્થ—" चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता " ઇત્યાદિ. આત્મતમ આદિ રૂપે પુરુષના જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ—(૧) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના મનને જ ખેદયુક્ત કરે છે, શિષ્યાદિ રૂપ પરને ખેદયુક્ત કરતો નથી. એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગાનો ભાવાર્થ પણ સમજી લેવો. । ૩ ।

"चत्तारि" इत्यादि स्पष्टम्। नवरम्-एकः-कश्चित् पुरुषः आत्मदमः-आत्मानं-स्वं दमयति-दमनन्तं करोतीत्यात्मदमो भवति, किन्तु परदमो ऽन्यदमको न भवति १, एवं शेषभङ्गत्रिकेऽपि विवरणमूह्यम्, अत्र परशब्देन शिष्यतुरगादिर्गृह्यते ।४। ।४। सू० ४९ ॥

पूर्वं दम उक्तः, स च गर्हणीयगर्हातो भवतीति गर्हां निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउव्विहा गरहा पण्णत्ता, तं जहा उवसंपज्जामि त्तेगा गरहा १, वितिगिच्छामि त्तेगा गरहा २, जं किंचिमिच्छा मि त्तेगा गरहा ३, एवंवि पन्नत्तेगा गरहा ४। सू० ५०।

छाया—चतुर्विधा गर्हा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-उपसंपद्ये इत्येका गर्हा १, विचिकित्सामि इत्येका गर्हा २, यत्किञ्चित् मिथ्या मे इत्येका गर्हा ३, एवमपि प्रज्ञप्त्येका गर्हा ४। सू० ४९।

टीका—"चउव्विहा गरहा" इत्यादि-गर्हा-गुरुसाक्षिका आत्मनो निन्दा, सा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-उपसंपद्ये-गुरुमाश्रयामि स्वदोषं निवेदयितुं, मुझामि

उनका तात्पर्य ऐसा है कि कोई एक पुरुष ऐसा है जो स्वयको दमवाला करता है, दपाता है, वशमें करता है, परशिष्य आदिको नहीं १ इसी तरहसे अवशिष्ट तीन भङ्ग और समझ लेना चाहिये। यहां परशब्दसे शिष्य अथवा तुरग-घोडा आदिका ग्रहण हुआ है ॥ सू० ४९ ॥

दमके विषयमें जो कहा गया है सो यह गर्हणीयकी गर्हासे होता है। अतः-अब सूत्रकार गर्हाका निरूपण करते हैं।

"चउव्विहा गरहा पण्णत्ता" इत्यादि—

टीकार्थ-गर्हा चार प्रकारकी होती है, गुरु साक्षिक आत्मनिन्दाका नाम गर्हा है। इनमें एक गर्हा ऐसी होती है 'जो अपने दोषको निवेदन करनेके

ચોથા સૂત્રમાં આત્મદમ આદિ જે ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ—(૧) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાને જ દમે છે, વશમાં રાખે છે, અન્યને દમતો વશમાં રાખતો નથી. એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગાનો ભાવાર્થ પણ જાતે જ સમજી લેવો. ॥ સૂ ૪૯ ॥

પહેલા સૂત્રને અન્તે જે દમનું કથન કર્યું તે ગર્હણીયની ગર્હાથી જ સંભવી શકે છે તેથી હવે સૂત્રકાર ગર્હાનું નિરૂપણ કરે છે—

"ચઉવ્વિહા ગરહા પણ્ણત્તા" ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-ગર્હા ચાર પ્રકારની કહી છે. ગુરુની સમક્ષ અથવા ગુરુસાક્ષિક આત્મનિંદાને ગર્હા કહે છે. એક ગર્હા એવી હોય છે કે જે આ પ્રકારના આત્મ-

वा समुचितं प्रायश्चित्तम्, इत्येवं प्रकारः परिणामः, एका-प्रथमा गर्हा भवति। यद्यपि 'उपसंपद्ये' इति गर्हायाः कारणभूत आत्मनः परिणामस्तथापि कारण-भूते तस्मिन्नात्मपरिणामे कार्यभूता गर्हा आरोप्यत इति कारणे कार्योपचारादुप-संपत्तिरूप आत्मपरिणामोऽपि गर्हा, गर्हासमानफलत्वाद् वा य आत्मपरिणामो गर्हेति। गर्हासंपन्नस्य तथाविधात्मपरिणामसंपन्नस्य चेत्युभयोरप्याराधकत्वं समा-नम्। तत्र गर्हासम्पन्नस्याराधकत्वं 'गरहणयाएणं भंते' इत्यादिना उत्तराध्यय-नसूत्रस्यैकोनत्रिंशदध्ययनोक्तवचनेनाऽनन्तघातिपर्यवक्षपकत्वात् प्रसिद्धमेव।

लिये मैं गुरुके पास जाता हूं, अथवा उनसे समुचित समुचित प्रायश्चित्त लेता हूं' इस प्रकारके परिणामरूपिणी होती है। यद्यपि-"उपसंपद्ये" इस क्रियापदसे वह प्रगट किया गया है कि गर्हाका कारणभूत आत्माका परिणाम होता है। फिरभी यहां जो उस परिणामको गर्हा कहा गया है सो उस परिणाममें कार्यभूत गर्हाका आरोप किया गया है। इस-लिये कारणमें कार्यका उपचार (करने) से उपसंपत्तिरूप आत्मपरि-णामभी गर्हा कह दिया गया है। अथवा-यह परिणाम गर्हाका जैसा फलवाला होता है इसलियेभी उसे गर्हा कह दिया गया है, जो गर्हासे संपन्न होता है। उसमें, और गर्हाका परिणामवाला होता है, उसमें आराधकता समान होती है।

गर्हा संपन्नमें आराधकता "गरहणयाएणं भंते? इत्यादि।

जो यह सूत्ररूप वचन उत्तराध्ययन सूत्रके २९ वें अध्ययनमें कहा गयाहै उससे प्रसिद्धहीहै। क्योंकि-गर्हा सम्पन्न प्राणी अनन्त आत्मगुण-

---

પરિણામરૂપ હોય છે-"હું મારા દોષોને પ્રકટ કરવા માટે ગુરુની પાસે જઉં છું અને યોગ્ય પ્રાયશ્ચિત લઉં છું." જો કે "उपसंपद्ये" આ ક્રિયાપદથી એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યુ છે કે આત્માનું પરિણામ ગર્હાના કારણભૂત હોય છે, છતાં અહીં તે પરિણામને જે ગર્હારૂપે પ્રકટ કરવામાં આવ્યુ છે તે આ પરિણામમાં કાર્યભૂત ગર્હાના આરોપણની અપેક્ષાએ કરવામાં આવ્યું છે. કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને ઉપસંપત્તિ રૂપ આત્મપરિણામને પણ ગર્હા રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે. અથવા તે પરિણામ ગર્હાના જેવા ફળવાળું હોય છે તેથી પણ તેને ગર્હા રૂપ કહેવામાં આવ્યુ છે. જે ગર્હાથી સંપન્ન હોય છે તેમાં અને જે ગર્હાના પરિણામવાળો હોય છે તેમાં આરાધકતા સમાન હોય છે. "गरहणयाएणं भंते" ઇત્યાદિ જે સૂત્રપાઠ ઉત્તરાધ્યાયન સૂત્રના ૨૯ માં અધ્યયનમાં આપવામાં આવ્યો છે, તેના દ્વારા ગર્હા સંપન્નમાં આરા-ધકતાનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યુ છે, કારણ કે ગર્હાસંપન્ન જીવ અનન્ત

तयाविधात्मपरिणामसपत्नस्य तु आराधकत्वं भगवतीसूत्रे प्रोक्तम्, तथाहि— " निग्गथेण य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविट्ठेण अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवइ—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि, पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, विउट्टामि, विसोहेमि अकरणयाए अब्भुट्ठेमि, आहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जामि, तओ पच्छा थेराणं अंतियं आलोएस्सामि जाव तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि। से य संपट्ठिए असंपत्ते थेरा य पुव्वामेव अमुहा सिया, से णं भंते! किं आराहए विराहए?, गोयमा! आराहए नो विराहए " १। इत्यादि (भगवती० श० ८ उ० ६ सू०३)

छाया—निर्ग्रन्थेन च गाथापतिकुलं पिण्डपातप्रतिज्ञया प्रविष्टेन अन्यतरद् अकृत्यस्थानं प्रतिसेवितं, तस्य खल्वेवं भवति—इहैव तावदहमेतस्य स्थानस्य

घातिक कर्मोंका नाश करनेवाला होता है। तथा-जहाँ परिणामसे सपत्नप्राणीमें आराधकता भगवती सूत्रमें कही गई है वहांका वह पाठ इस प्रकारसे है। "निग्गथेण य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविट्ठेणं अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए तस्सणं एवं भवइ। इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि-पडिक्कमामि-निंदामि-गरिहामि-विउट्टामि विसोहेमि अकरणयाए अब्भुट्ठेमि आहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि। सेय संपट्ठिए असंपत्ते थेराय पुव्वामेव अमुहा सिया सेणं भंते ?, किं आराहए विराहए ?, गोयमा ?, आराहए नो विराहए ? इत्यादि (भगवती श ८ उ ६ सू०३)

इस भगवतीके पाठसे यह प्रतिपादित किया गया है कि-किसी गृहस्थके यहाँ आहार ग्रहण करनेके लिये प्रविष्ट हुवे साधु द्वारा यदि

આત્મગુણઘાતિક કર્મોનો નાશ કરનારો હોય છે તથા જ્યાં પરિણામથી સપત્ન જીવમાં આરાધકતાનુ પ્રતિપાદન ભગવતી સૂત્રમાં કરવામાં આવ્યું છે, ત્યાં આ પ્રકારનો સૂત્રપાઠ આપ્યો છે—" निग्गथेण य गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविट्ठेणं अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवइ-इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, विउट्टामि, विसोहेमि अकरणयाए अब्भुट्ठेमि, आहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि। सेय संपट्ठिए असंपत्ते थेराय पुव्वामेव अमुहा सिया। सेणं भंते! किं आराहए विराहए ?गोयमा! आराहए नो विराहए ' ઇત્યાદિ. (ભગવતી સૂ. શ. ૮ ઉ. ૬ સૂ. ૩)

ભગવતી સૂત્રના આ સૂત્રપાઠનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે- ' હે ભગવન્! કોઈ એક ગૃહસ્થને ત્યાં આહાર ગ્રહણ કરવા નિમિત્તે ગયેલા સાધુ વડે કોઈ

आलोचयामि, प्रतिक्रमामि, निन्दामि, गर्हे, वित्रोटयामि, विशोधयामि, अकरणतयाऽभ्युत्तिष्ठे, यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्ये, ततः पश्चात् स्थविराणामन्तिके आलोचयिष्यामि यावत् तपःकर्म प्रतिपत्स्ये। स च संप्रस्थितः असंप्राप्तः स्थविराश्च पूर्वमेव अमुखाः स्युः, स खलु भदन्त! किमाराधको विराधकः?, गौतम! आराधको नो विराधकः।१।

स्थविराः-अमुखाः-निर्वाचः-वातादिव्याधिना मूकत्वं प्राप्ता इत्यर्थः। एवं स्थविरामुखवत् स्वामुख-स्वमरण-स्थविरमरण-स्वस्थविरोभयमरण-रूपाऽऽलापक

किसी अकृत्य स्थानका सेवन होजाता है तो वह ऐसा शोचता है कि मैं इस अकृत्य स्थानकी आलोचना करता हूं, निन्दा करता हूं। इसके वाद "मैं स्थविरोंके पास आलोचना आदि कर लूगा" इस प्रकारको विचारकर वह वहांसे चल देता है। उसके आनेसे पहलेही वे स्थविर (जिनके पास आरहा है) वातादि व्याधिके कारण यदि मूक होजावें तो ऐसी स्थितिमें वह आराधक है ? या विराधक है ?। उत्तरमें प्रभु कहते हैं-हे गौतम ! वह आराधक है विराधक नहीं है इत्यादि।

स्थविरामुख स्थविर अमुख हो जावे अर्थात् वातादि व्याधिसे मूक हो जावे, इसी प्रकार यदि स्थविरके पास जानेवाला मुनि स्वयं अमुख हो जावे १, मर जावे २, अथवा स्थविरका मृत्यु हो जावे ३, अथवा अपने

અકૃત્ય સ્થાનનું (અતિચારનું) સેવન થઈ જાય છે. તે સાધુ એવો વિચાર કરે છે કે "હુ આ અકૃત્ય સ્થાનની આલોચના કરૂ છું, નિંદા, ગર્હા આદિ કરૂં છું, ત્યારબાદ હુ સ્થવિરો પાસે આલોચના આદિ કરી લઇશ." આ પ્રકારનો વિચાર કરીને તે ત્યાંથી નીકળી પડે છે. પણ તે સ્થવિરની પાસે પહોંચે તે પહેલાં તો તે સ્થવિર વાતાદિને કારણે નિર્વાક (મૂક) થઈ જાય છે. તો આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં તે સાધુને આરાધક ગણવો કે વિરાધક ?

મહાવીર પ્રભુનો ઉત્તર—"હે ગૌતમ! તે આરાધક જ ગણાય, વિરાધક નહીં" ઈત્યાદિ.

સ્થવિર મુખ, સ્થવિર અમુખ થઈ જાય અર્થાત્ વાતાદિ વ્યાધિથી મૂંગા થઈ જાય, તેવી જ રીતે સ્થવિરની પાસે આવનાર મુનિ પોતે જ અમુખ (મૂગા) થઇ જાય ૧, મરી જાય ૨, અગર સ્થવિરનુ મરણ થઇ જાય ૩, અથવા પોતાવું અને સ્થવિરનુ એમ બન્નેનું મરણ થઇ જાય, એ ચાર આલાપકો પણ અહીં સમજી લેવા જોઇએ. આ પૂર્વોક્ત પાંચે આલાપકોમાં તથા-

चतुष्टय विशेषम् । एतेषु पञ्चस्वप्यालापकेषु तथाविधात्मपरिणामसम्पन्नस्याऽऽरा धकत्वमेव भगवता भगवतीसूत्रेऽष्टमशतके षष्ठोद्देशे प्रतिपादितमिति ।

तथा-विचिकित्सामि-वि-विशेषेण विविधप्रकारैर्वा चिकित्सामि प्रतिक रोमि-दूरीकरोमि गर्हणीयान् दोषानित्येवं विचाररूपा एका-अपरा द्वितीया गर्हा भवति २ ।

तथा-यत्किञ्चित्-अनुचित-संयमविरुद्धमतिचारादिकं कृतं मिथ्या निष्फलं भवतु मे मम, इत्येवं विचारलक्षणा एका-अन्या तृतीया गर्हा भवति ३।

तथा-एवमपि-एवंजातीयेन अन्येनापि सेवितदोषपश्चात्तापकरणरूप-गर्हणहे तुभूतात्मपरिणामप्रकारेण एका-अन्या चतुर्थी गर्हा प्रज्ञप्ता-कथिता जिनैः। अयमपि प्रकारो गर्हाहेतुत्वाद् गर्हेति । सू० ५० ।

और स्थविर दोनोंको मृत्यु हो जावे ४ । ये चार आलापक भी यहां जान लेना चाहिये । इन पूर्वोक्त पांचों आलापकों में तथाविध-शुद्ध आत्मपरिणति संपन्न मुनिको भगवानने भगवती सूत्रके आठवे शतक के छट्ठे उद्देशे में आराधक ही कहा है, विराधक नहीं ।

तथा-" विचिकित्सामि " में विशेष रूपसे, अथवा-विविध प्रका रोंसे गर्हणीय दोषोंको दूर करता हू ऐसा विचार स्वरूप द्वितीय गर्हा होती है २ । तथा-जो मैंने संयम विरुद्ध अतिचार आदि किये हैं 'वे सबके सब मिथ्या निष्फल हो जाय ' ऐसी विचारधारावाली तीसरी गर्हा है ३ । तथा-सेवित दोषोंके प्रति पश्चात्ताप करना ऐसा आत्म परिणामही चतुर्थी गर्हा है ॥ सू० ५० ॥

विध शुद्ध आत्मपरिणति संपन्न मुनिने भगवाने भगवती सूत्रना आठमा शतकना छठ्ठा उद्देशामां आराधक ज कह्या छे, विराधक नहीं

(२) तथा " विचिकित्सामि " हुं विशेष रूपे अथवा विविध प्रकारे गर्हणीय दोषोने दूर करुं छुं, आ प्रकारना विचारस्वरूप द्वितीय गर्हा होय छे

(३) ' मे जे संयम विरुद्धना अतिचारोनुं सेवन कर्युं छे ते बधां मिथ्या निष्फल बनी जाओ, " आ प्रकारनी विचारधारावाळी त्रीजी गर्हा छे

(४) सेवित दोषोने माटे पश्चात्ताप करवो, आ प्रकारनुं जे आत्म परिणाम छे तेने गर्हानो चोथो प्रकार कहे छे ॥ सू. ५० ॥

पूर्वं गर्हा प्रोक्ता, सा च दोषत्यागिन एव सम्यग् भवति नान्यस्येति दोष-त्यागि जीवस्वरूपं निरूपयितुं सप्तदश चतुर्भङ्गीसूत्राण्याह—

मूलम्—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--अप्पणो णाम-मेगे अलमंथू भवइ णो परस्स १, परस्स णाममेगे अलमंथू भवइ णो अप्पणो २, एगे अप्पणोवि अलमंथू भवइ परस्सवि ३, एगे णो अप्पणो अलमंथू भवइ णो परस्स ।४। १।

चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा-उज्जू णाममेगे उज्जू १, उज्जू णाममेगे वंके २, वंके णाममेगे उज्जू ३, वंके णाममेगे वंके ४। ।२। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा--उज्जू णाममेगे उज्जू० ४ ।३।

चत्तारि मग्गा पण्णात्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमे १, खेमे णाममेगे अखेमे० ।४। ।४। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे० ।४। ।५।

चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमरूवे० ४, ।६। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमरूवे० ४ ।७।

चत्तारि संबुक्का पण्णत्ता, तं जहा--वामे णाममेगे वामावत्ते १, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते २, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते ३, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते ४, । ८। एवामेव चत्तारि पुरिस-जाया पण्णत्ता, तं जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते० ।४। ।९।

चत्तारि धूमसिहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—वामा णाम-

मेगा वामावत्ता ४, ।१०। एवामेव चत्तारित्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता० ।११।

चत्तारि अग्गिसिहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—वामा णाम मेगा वामावत्ता ४, ।१२। एवामेव चत्तारित्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा वामा णाममेगा वामावत्ता० ४, ।१३॥

चत्तारि वायमंडलिया पण्णत्ताओ, त जहा—वामा णाम मेगा वामावत्ता० ४, ।१४। एवामेव चत्तारित्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता० ४, ।१५।

चत्तारि वणसडा पण्णत्ता, त जहा वामे णाममेगे वामा वत्ते० ४ ।१६। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते० ४, ।१७॥ सू० ५१॥

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आत्मनो नामैकोऽक्षमस्तु भवति नो परस्य १, परस्य नामैकोऽक्षमस्तु भवति नो आत्मनः २, एक आत्मनोऽपि अक्षमस्तु भवति परस्यापि ३, एको नो आत्मनोऽक्षमस्तु भवति नो परस्य । । १ ।

चत्वारो मार्गाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ऋजुर्नामैक ऋजुः १, ऋजुर्नामैको वक्रः २, वक्रो नामैक ऋजुः ३, वक्रो नामैको वक्रः ४ ।२। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ऋजुर्नामैक ऋजुः ४, । ३ ।

चत्वारो मार्गाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्षेमो नामैकः क्षेमः १, क्षेमो नामैकोऽक्षेमः ४, ।४।, एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—क्षेमो नामैकः क्षेमः ४,।५।

चत्वारो मार्गाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्षेमो नामैकः क्षेमरूपः, क्षेमो नामैकोऽक्षेम रूपः ४, ।६। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—क्षेमो नामैकः क्षेमरूपः ४, ।७।

चत्वारः शम्बूकाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—वामो नामैको वामाऽऽवर्त्तः १, वामो नामैको दक्षिणाऽऽवर्त्तः २, दक्षिणो नामैको वामाऽऽवर्त्तः ३, दक्षिणो नामैको दक्षिणाऽऽवर्त्तः ४, ।८। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—वामो नामैको वामाऽऽवर्त्तः० ४, ।९।

चतस्रो धूमशिखाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-वामा नामैका वामाऽऽवर्ता० ४, ।१०। एवमेव चतस्रः स्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-वामा नामैका वामाऽऽवर्ता० ४, ।११।

चतस्रोऽग्निशिखाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-वामा नामैका वामाऽऽवर्ता० ४, ।१२। एवमेव चतस्रः स्त्रियः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-वामा नामैका वामाऽऽवर्ता० ४, १३।

चतस्रो वातमण्डलिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-वामा नामैका वामाऽऽवर्ता०, ४, १४। एवमेव चतस्रः स्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-वामा नामैका वामाऽऽवर्ता० ४,।१५।

चत्वारो वनखण्डाः प्रज्ञप्ता तद्यथा-वामो नामैको वामाऽऽवर्त० ४, (१६) एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-वामो नामैको वामाऽऽवर्तः० ४ (१७) सू० ५१

टीका-"चत्तारि पुरिसजाया" इत्यादि=स्पष्टम्-नवरम् एकः-कश्चित् पुरुषः आत्मनः-स्वस्य दुर्नयेषु प्रवर्तमानस्य अलमस्तु=निषेधको भवति । यद्वा-समयपरिभाषया-'अलमत्थु' इति शब्दः समर्थार्थकः, ततश्चायमर्थः-एकः-कश्चित् पुरुषः आत्मनः-स्वस्य निग्रहे समर्थः-कुशलो भवति, किन्तु परस्य अन्यस्य अल-

---

यह गर्हा दोषत्यागी को ही समीचीन होती है अन्यको नहीं, इसके लिये अब सूत्रकार दोषत्यागी जीव स्वरूपका निरूपण चतुर्भङ्गीवाले १७ सूत्रोंको कहते हैं । "चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" इत्यादि--

टीकार्थ-पुरुष जात चार कहे गयेहैं जैसे-कोई एक पुरुष ऐसा होताहै जो दुर्नयमें प्रवृत्त अपने आपका "अलमस्तु" निषेधक होता है, अथवा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो अपने आपका निग्रह करनेमें कुशल समर्थ होता है । यहां-"अलमस्तु" शब्दका अर्थ समय भाषाके अनुसार समर्थ होता है, कुशल होता है, किन्तु-"णो परस्स" परका निषेधक वा उसका निग्रह करनेमें समर्थ नहीं होता है १, ऐसा पुरुष

આ ગર્હા દોષત્યાગીને જ સમીચીન થાય છે-અન્યને નહીં તે કારણે હવે સૂત્રકાર ચતુર્ભંગીવાળા ૧૭ સૂત્ર દ્વારા દોષત્યાગી જીવનુ સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે. "चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) કોઇ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે દુર્નયમાં પ્રવૃત્ત પોતાની જાતને "अलमत्थु" રોકવાને સમર્થ હોય છે, અથવા કોઇ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પોતાના આત્માનો અથવા ઇન્દ્રિયોનો નિગ્રહ કરવાને સમર્થ હોય છે, પણ "णो परस्स" પરનો નિષેધક હોતો નથી, અથવા પરનો નિગ્રહ કરવાને સમર્થ હોતો નથી (અહીં 'अलम्' પદનો અર્થ સમય પરિભાષા અનુસાર 'સમર્થ-કુશળ' થાય છે) એવો પુરુષ મૌનવ્રતી સાધુરૂપ હોય છે.

मस्तु-निषेधका समर्थो वा न भवति । एतज्जातीयः पुरुषो मौनव्रतिसाधुप्रभृति । एवं शेषमङ्गत्रिक विवरणीयम् ४ । १ ।

मौनव्रती साधुरूप होता है । " परस्स णाम मेगे अलमथू भवइ, णो अप्पणो २ " तथा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो परका दुर्नयमें प्रवर्तमान दूसरे पुरुषका निषेधक होता है, अथवा-उसके निग्रह करनेमें समर्थ, या कुशल होता है, अपने आपका निग्रह करनेमें समर्थ या कुशल नहीं होता है ।

" एगे अप्पणो वि अलमथू भवइ परस्सवि ३ " कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो दुर्नयादिमें प्रवर्तमान अपने आपकाभी निषेधक होता है । या अपने आपका भी निग्रह करनेमें समर्थ-कुशल होता है और दूसरेकाभी निषेधक होता है, या उसके निग्रह करनेमेंभी कुशल होता है ३ । " एगे णो अप्पणो अलमंथू भवइ णो परस्स ४ " तथा-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो दुर्नयमें प्रवर्तमान अपने आपकाभी निषेधक नहीं होता है, या निग्रह करनेमें समर्थ नहीं होता है और दूसरेकाभी निषेधक नहीं होता है, या निग्रह करनेमें समर्थ नहीं होता है । इस प्रकारसे ये पुरुषजात चार होते हैं ।

(२) ' परस्स णाममेगे अलमंथू भवइ, णो अप्पणो " કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે દુર્નયમાં પ્રવૃત્તમાન એવા અન્ય પુરુષનો નિષેધક હોય છે અથવા અન્યનો નિગ્રહ કરવામાં કુશળ અથવા સમર્થ હોય છે, પણ પોતાનો નિગ્રહ કરવાને સમર્થ અથવા કુશળ હોતો નથી.

(૩) " एगे अप्पणो वि अलमंथू भवइ परस्स वि " કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે દુર્નયાદિમાં પ્રવૃત્તમાન પોતાના આત્માનો પણ નિષેધક હોય છે, અને પરનો નિષેધક હોય છે અથવા પોતાના આત્માનો નિગ્રહ કરવામાં પણ સમર્થ અથવા કુશળ હોય છે અને પરનો નિગ્રહ કરવામાં પણ સમર્થ અથવા કુશળ હોય છે

(૪) " एगे णो अप्पणो अलमंथू भवइ, णो परस्स " કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે દુર્નયમાં વર્તમાન એવા પોતાના આત્માનો નિષેધક હોતો નથી અથવા નિગ્રહ કરવાને સમર્થ હોતો નથી, અને પરનો નિષેધક પણ હોતો નથી, અથવા નિગ્રહ કરવાને સમર્થ હોતો નથી. આ પ્રમાણે ચાર પુરુષ પ્રકાર કહ્યા છે । ૧ ।

" चत्तारि मग्गा " इत्यादि–मार्गाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एकः–कश्चिन्मार्गः ऋजुः–आदितोऽनन्तश्चापि ऋजुः–सरलः, यद्वा–दृष्टौ ऋजुः प्रतिभाति यथार्थरूपपरिचयेनापि ऋजुरेव=सरल एव भवति । शेषं भङ्गत्रय सुबोधम् । २

" एवामेवे "–त्यादि–एवमेव=मार्गवदेव, पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–एकः–कश्चित् पुरुषः पूर्वमृजुः पश्चादपि ऋजुरिति कालमपेक्ष्य व्याख्येयम् । यद्वा–एकः पुरुषः आन्तरतोऽपि ऋजुः वाह्यतोऽपि च ऋजुर्भवतीति व्याख्येयम् । शेषभङ्गत्रिकं सुगमम् । ३

" चत्तारि मग्गा पण्णत्ता " चार मार्ग कहे गये हैं, जैसे–ऋजु ऋजु १, ऋजु वक्र २, वक्र ऋजु ३ और वक्र वक्र ४ । इसमें जो मार्ग आदिसे अन्त तक सरल होता है, अथवा जो देखनेमें सरल लगता है यथार्थरूपसे परिचयमेंभी सरलही होता है, वह ऋजु ऋजु मार्ग है । जो मार्ग ऋजु दिखने परभी या सरल होने परभी वादमें वक्र टेढामेढा हो जाता है वह ऋजु वक्र मार्ग है २ । जो मार्ग पहले वक्र हो वादमें ऋजु हो तो ऐसा वह मार्ग वक्र ऋजु कहा जाना है, तथा पहलेही से जो मार्ग वक्र हो और वादमें भी वह वक्र वक्र मार्ग कहा जाता है २ ।

" एवामेव " इत्यादि. इसी तरहसे इस मार्गकी तरहसे ही पुरुष जात चार कहे गये हैं, जैसे–कोई एक पुरुष पहले ऋजु प्रकृतिसे सरल होता है और बादमें भी वह सरलका सरलही बना रहता है, यह कालकी

" चत्तारि मग्गा पण्णत्ता " ઈત્યાદિ ચાર પ્રકારના માર્ગ કહ્યા છે—(૧) ઋજુ ઋજુ, (૨) ઋજુ વક્ર, (૩) વક્ર ઋજુ અને (૪) વક્ર વક્ર. જે માર્ગ આદિથી અંત સુધી સરળ હોય છે, અથવા જે દેખાવમાં પણ સરળ લાગે છે અને યથાર્થ રૂપ પરિચયમાં પણ સરલ જ જણાય છે, તેને ' ઋજુ ઋજુ માર્ગ કહે છે. (૨) જે માર્ગ શરૂઆતમાં સરલ દેખાતો હોવા છતાં પણ પાછળથી વક્ર (વાંકો ચૂંકો–ખાડા ટેકરાવાળો) લાગે છે, તે માર્ગને ઋજુ વક્ર માર્ગ કહે છે. (૩) જે માર્ગ પહેલાં વક્ર લાગતો હોય પણ પછી સરલ બની જાય છે, તે માર્ગને વક્ર ઋજુ માર્ગ કહે છે (૪) જે માર્ગ પહેલાં પણ વક્ર હોય અને પછી પણ વક્ર જ હોય, તે માર્ગને વક્ર વક્ર માર્ગ કહે છે. ।૨।

" एवामेव " ઈત્યાદિ. એ જ પ્રમાણે પુરુષો પણ ચાર પ્રકારના કહ્યા છે.

(૧) કોઇ એક પુરુષ પહેલાં ઋજુ પ્રકૃતિને લીધે સરલ હોય છે અને પછી પણ તે સરલ જ રહે છે. કાળની અપેક્ષાએ આ પહેલો ભાંગો બને છે. અથવા કોઈ એક પુરુષ આન્તરિક રીતે પણ સરલ હોય છે અને બહારથી

"चत्तारि मग्गा" इत्यादि–मार्गाश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एक –कश्चित् मार्गः आदौ निरुपद्रवतया क्षेम –कल्याणकरो भवति पुनरन्ते च क्षेमो भवति, यद्वा–लोकप्रख्यातो क्षेमः पुनस्तत्त्वतोऽपि क्षेमो भवतीति व्याख्येयम् । एवं शेषभङ्गत्रिकं बोध्यम् । ४ ।

"एवामेवे" इत्यादि–एवमेव मार्गवदेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–एकः कश्चित्पुरुषः क्रोधाद्युपद्रवरहितत्वेन क्षेम स एव पुनः पश्चादपि क्षेमः शेषं भङ्गत्रयं सुगमम् । ५ ।

अपेक्षा करके प्रथम भङ्ग है । यद्वा–कोई एक पुरुष अन्तरङ्गकी अपेक्षा भी इसी तरहसे व्याख्यात कर लेना चाहिये । ३ ॥

"चत्तारि मग्गा" पुनश्च–मार्ग चार कहे गये हैं, जैसे–क्षेम क्षेम १, क्षेम अक्षेम २, अक्षेम क्षेम ३ और अक्षेम अक्षेम ४ । जो मार्ग पहलेभी निरुपद्रव होनेसे कल्याणकर होता है । पुनः–अन्तमेंभी वह निरुपद्रव होनेसे कल्याणकर होता है, ऐसा मार्ग क्षेम क्षेम इस प्रथम भंगमें परिगणित हुवा है । यद्वा–जैसा वह परलोकमें प्रख्यात होताहै वैसाही वह वास्तवमेंभी होताहै, इस तरहसेभी वह क्षेम क्षेम रूप होता है । अवशिष्ट तीन भंग भी इसी प्रकारसे समझ लेना चाहिये ।

इसी प्रकारसे पुरुष जात भी चार कहे गये हैं, जैसे–कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो क्रोधादिरूप उपद्रवसे रहित होनेके कारण क्षेमरूप

પણ સરલ જ હોય છે એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ ઘટે જ સમજી શકાય એવા છે. । ૩ ।

"चत्तारि मग्गा" ઇત્યાદિ માર્ગના આ પ્રમાણે પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) ક્ષેમ ક્ષેમ, (૨) ક્ષેમ અક્ષેમ, (૩) અક્ષેમ ક્ષેમ (૪) અક્ષેમ અક્ષેમ. જે માર્ગ શરૂઆતમાં પણ ઉપદ્રવ રહિત હોવાને લીધે કલ્યાણકારક હોય છે અને આગળ જતાં પણ ઉપદ્રવ રહિત જ હોય છે એવા માર્ગને ક્ષેમ ક્ષેમ માર્ગ કહે છે અથવા તે માર્ગની ઉપદ્રવ રહિત માર્ગ તરીકેની જેવી ખ્યાતિ હોય છે, એવો જ ઉપદ્રવ રહિત તે વાસ્તવમાં પણ હોય છે તે કારણે પણ તેને ક્ષેમ ક્ષેમરૂપ માર્ગ કહે છે એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગાનો ભાવાર્થ પણ સમજવો । ૪ ।

એ જ પ્રમાણે પુરુષોના પણ 'ક્ષેમ ક્ષેમ' આદિ ચાર પ્રકાર પડે છે. તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે–(૧) કોઇ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે ક્રોધાદિ રૂપ ઉપદ્રવથી રહિત હોવાથી ક્ષેમરૂપ હોય છે, અને આગળ જતાં

" चत्तारि मग्गा " इत्यादि-स्पष्टम् । एको मार्गो भावतोऽनुपद्रवत्वेन क्षेमः स एव द्रव्यत आकृत्या क्षेमरूपः-सुन्दरो भवति । शेषं भङ्गत्रिकं सुबोधम् ।६।

" एवामेवे " त्यादि-एवमेव-मार्गवदेव पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-एकः पुरुषः प्रथमं क्रोधाद्युपद्रवरहिततया क्षेमः स एव पश्चादपि आकारेणापि क्षेमरूपः-सुन्दरः, भावद्रव्यलिङ्गयुक्तः साधुः । इति प्रथमो भङ्गः १ ।

एकः पुरुषो भावतः क्षेमः, द्रव्यतस्तु अक्षेमः राजादिकारणवशाद् द्रव्यलिङ्गरहितः साधुरिति द्वितीयः २ । एकः-कश्चित्पुरुषो भावतोऽक्षेमः, द्रव्यतः क्षेमः

होता है, वही पुनः आगे चलकरभी क्षेमरूपही बना रहता है । इसी प्रकारसे शेष तीन भङ्गभी समझ लेना चाहिये ५ ।

पुनश्च—" चत्तारि मग्गा " इत्यादि मार्ग चार रूप कहे गये हैं, जैसे-क्षेम क्षेमरूप १, क्षेम अक्षेमरूप २, अक्षेम क्षेमरूप ३ और अक्षेम अक्षेमरूप ४ । कोई मार्ग ऐसा होता है जो भावतः अनुपद्रव रूपसे क्षेमरूप होता है और वही द्रव्यसे आकृतिसेभी क्षेमरूप सुन्दर होता है १ बाकीके तीन भङ्ग सुबोध हैं ।

" एवामेव " इत्यादि—इसी प्रकारसे पुरुषजात-पुरुष प्रकारभी चार कहे गये हैं, जैसे-कोई एक पुरुष पहलेसे भी क्रोधादिरूप उपद्रवसे रहित होनेसे भावद्रव्य लिङ्गसे युक्त साधुकी तरह क्षेमरूप होता है और पश्चात्भी आकारसे क्षेमरूप सुन्दर होता है, यह प्रथम भङ्ग है । कोई एक पुरुष भावकी अपेक्षा क्षेमरूप होता है पर द्रव्यकी अपेक्षा

પણ ક્ષેમરૂપ જ ચાલુ રહે છે. એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ જાતે જ સમજી લેવા. । ૫ ।

વળી માર્ગના આ પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે—(૧) ક્ષેમ ક્ષેમરૂપ, (૨) ક્ષેમ અક્ષેમરૂપ, (૩) અક્ષેમ ક્ષેમરૂપ, (૪) અક્ષેમ અક્ષેમરૂપ.

આ સૂત્રનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે—(૧) કોઇ માર્ગ ભાવની અપેક્ષાએ ઉપદ્રવ રહિત હોવાથી ક્ષેમરૂપ હોય છે અને એ જ માર્ગ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ આકૃતિ (સ્વરૂપ) ની અપેક્ષાએ પણ ક્ષેમરૂપ જ હોય છે. બાકીના ત્રણ ભાંગાનો અર્થ પણ પહેલા ભાંગાને આધારે સમજી લેવો. । ૬ ।

" एवामेव " ઈત્યાદિ એ જ પ્રમાણે પુરુષ પ્રકાર પણ ચાર કહ્યા છે—(૧) કોઇ એક પુરુષ પહેલા પણ ક્રોધાદિ રૂપ ઉપદ્રવથી રહિત હોવાને કારણે ભાવ દ્રવ્યલિંગથી યુક્ત સાધુની જેમ ક્ષેમરૂપ હોય છે અને પાછળથી પણ આકારની અપેક્ષાએ ક્ષેમરૂપ જ સુંદર હોય છે (૨) કોઈ એક પુરુષ ભાવની અપેક્ષાએ ક્ષેમરૂપ હોય છે પણ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે રાજાદિક કારણોને લીધે અર્થાત

साधुवेषधारी निह्नवः । इति तृतीय ३ । तथा–एकः पुरुषो भावतोऽप्यक्षेमोद्रव्यतोऽप्यक्षेम, अन्यतीर्थिको गृहस्थोवेति चतुर्थः । ४ ।

"चत्तारि संबुका," इत्यादि शम्बूका–शङ्खाः चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एकः–कश्चित् शम्बूकः (शङ्खः) वाम –वामपार्श्वव्यवस्थितत्वात् प्रतिकूलगुणत्वाद्वा, स एव पुनर्वामाऽऽवर्तोभवति १, एकः शङ्खो वामः सन् दक्षिणाऽऽवर्तो भवति२, एकः शङ्खो दक्षिणः दक्षिणपार्श्वनियुक्तत्वादनुकूलगुणत्वाद्वासन् वामाऽऽवर्तो भवति ३ । तथा – एकः शङ्खो दक्षिणो दक्षिणाऽऽवर्तो भवति ४ ।

यह राजादि कारणवशसे अर्थात् मिथ्यात्वी राजा के कारण द्रव्यलिङ्ग रहित साधुकी तरह अक्षेमरूप हो जाता है २, कोई पुरुष ऐसा होता है जो भावकी अपेक्षा अक्षेमरूप होता है और द्रव्यकी अपेक्षा क्षेमरूप होता है। जैसे–साधु वेषधारी निह्नव ३ तथा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो भावसेभी अक्षेमरूप होता है और द्रव्यसेभी अक्षेमरूप होता है जैसे अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थजन ४

"चत्तारि संबुका" शङ्ख चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे–कोई एक शङ्ख वाम पार्श्वमें व्यवस्थित होनेसे अथवा प्रतिकूल गुणवाला होनेसे वाम होता है वही पुनः–वाम आवर्तवाला होता है, यह "वामवामावर्त" ऐसा पहला भङ्ग है। कोई एक शङ्ख ऐसा होता है जो वाम होता हुवा दक्षिणावर्तवाला होता है २ कोई एक शङ्ख ऐसा होता है जो दक्षिण पार्श्वमें नियुक्त होनेसे अथवा–अनुकूल गुणवाला

મિથ્યાત્વી રાજાને કારણે દ્રવ્યલિંગ રહિત સાધુની જેમ અક્ષેમરૂપ થઈ જાય છે (૩) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે ભાવની અપેક્ષાએ અક્ષેમરૂપ હોય છે, પણ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ક્ષેમરૂપ હોય છે જેમકે સાધુ વેષધારી નિહ્નવ. (૪) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે ભાવની અપેક્ષાએ પણ અક્ષેમરૂપ હોય છે અને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પણ અક્ષેમરૂપ જ હોય છે જેમકે અન્ય તીર્થિક અથવા ગૃહસ્થજન. । ૭ ।

'ચત્તારિ સંબુકા" ઇત્યાદિ શંખ ચાર પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) "વામ વામાવર્ત' કોઈ એક શંખ વામપાર્શ્વમાં વ્યવસ્થિત હોવાથી અથવા પ્રતિકૂળ ગુણવાળો હોવાથી 'વામ' હોય છે એ જ શંખ વળી વામ આવર્તવાળો હોવાથી 'વામ વામાવર્ત' રૂપ પહેલા પ્રકારનો હોય છે (૨) "વામ દક્ષિણાવર્ત"–કોઈ એક શંખ એવો હોય છે કે જે વામ હોવા છતાં પણ દક્ષિણાવર્તવાળો હોય છે (૩) 'દક્ષિણ વામાવર્ત' કોઈ એક શંખ એવો હોય છે કે જે દક્ષિણપાર્શ્વમાં નિયુક્ત હોવાથી અનુકૂળ ગુણવાળો હોય છે, પણ વામ આવર્તવાળો હોવાથી તેને 'દક્ષિણ વામાવર્ત' રૂપ ત્રીજા પ્રકારમાં

"एवामेवे"-त्यादि-एवमेव-शम्बूकवदेव, पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-एकः कश्चित्पुरुषो नाम्ना वामः स एव प्रतिकूलस्वभावत्वाद् वामाऽऽवर्तः-विपरीतप्रवृत्तिकारको भवति १। तथा एकः कश्चित्पुरुषो नाम्ना वामः स एवानुकूलस्वभावत्वाद् दक्षिणाऽऽवर्तः-अनुकूलप्रवृत्तिकारको भवति २। एकः-अन्यः पुरुषो नाम्ना दक्षिणः, स एव प्रतिकूलस्वभावत्वाद् वामाऽऽवर्तः-विपरीतप्रवृत्तिकारको भवति ३। एकः कश्चित्पुरुषो नाम्ना दक्षिणः स एवानुकूलस्वभावत्वाद् दक्षिणाऽऽवर्तः-अनुकूलप्रवृत्तिकारको भवति ४।९।

होनेसे वाम आवर्तवाला होता है ३ तथा-कोई एक शङ्ख ऐसा होता है जो दक्षिण होता हुवा दक्षिण आवर्तवाला होता है ४।

"एवामेव" इत्यादि—इसी तरहसे पुरुषजात चार कहे गये हैं, कोई एक पुरुष नामसे वाम होता है। वही प्रतिकूल स्वभाववाला होनेसे वामावर्त विपरीत प्रवृत्तिकारक होता है १, तथा-कोई एक पुरुष नामसे वाम होता है वही अनुकूल स्वभाववाला होनेसे दक्षिणावर्त अनुकूल प्रवृत्तिकारक होता है २, कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो नामसे दक्षिण होता है वही प्रतिकूल स्वभाववाला होनेसे वामावर्त विपरीत प्रवृत्तिकारक होता है ३, तथा कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो नामसे दक्षिण होता है वही अनुकूल स्वभाववाला होनेसे दक्षिणावर्त अनुकूल प्रवृत्तिकारक होता है ४-९

ગણ્યાં છે (૪) દક્ષિણ દક્ષિણાવર્ત-કોઇ એક શખ દક્ષિણપાર્શ્વમાં (જમણી બાજુ) નિયુક્ત હોય છે અને દક્ષિણાવર્તવાળો હોય છે. । ૮ ।

"एवामेव" ઇત્યાદિ એ જ પ્રમાણે પુરુષ પ્રકાર પણ ચાર કહ્યા છે—(૧) કોઇ એક પુરુષ નામની અપેક્ષાએ વામ હોય છે. અને પ્રતિકૂળ સ્વભાવવાળો પણ હોવાથી વામાવર્ત-વિપરીત પ્રવૃત્તિકારક પણ હોય છે.

(૨) કોઈ એક પુરુષ નામની અપેક્ષાએ વામ હોય છે, પણ અનુકૂળ સ્વભાવવાળો હોવાને કારણે દક્ષિણાવર્ત-અનુકૂળ પ્રવૃત્તિકારક હોય છે (૩) કોઇ એક પુરુષ નામની અપેક્ષાએ દક્ષિણ હોય છે પણ પ્રતિકૂળ સ્વભાવવાળો હોવાથી વામાવર્ત-વિપરીત પ્રકૃતિવાળો હોય છે (૪) કોઈ પુરુષ નામની અપેક્ષાએ દક્ષિણ હોય છે અને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિવાળો હોવાને કારણે દક્ષિણાવર્ત-અનુકૂળ પ્રવૃત્તિવાળો હોય છે. (અહીં 'વામ' અશુભ નામ સૂચક અને 'દક્ષિણ' શુભ નામ સૂચક છે)

" चत्तारि धूमसिहाओ " इत्यादि–धूमशिखाः – धूमश्रेणयः, ताश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एका–काचिद् धूमशिखा वामा–वामभागस्था सती पुनः वामाऽऽवर्ता वामपार्श्ववर्तित्वेन प्रतिकूलत्वेन वा वामतो वलनाद् वामत एवावर्तत इति वामाऽऽवर्ता, तादृशी भवति, एवमेव शेषं भङ्गत्रयं शङ्खवद् व्याख्येयम् ४, १०

" एवामेवे " त्यादि एवमेव–धूमशिखावदेव स्त्रियश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–एका काचित् स्त्री नाम्ना वामा सा एव प्रतिकूलस्वभावतया वामाऽऽवर्ता–विपरीताऽऽचरणशीला भवति, एवं शेष भङ्गत्रय पुरुषवद् व्याख्येयम् । ४ । शम्बूक दृष्टान्ते सत्यपि धूमशिखादृष्टान्तस्य पृथगुपादानं दार्ष्टान्तिकभूतायाः स्त्रियो लिङ्गसाधर्म्यप्रदर्शनार्थमिति ॥ ११ ॥

" चत्तारि धूमसिहाओ "—इत्यादि, धूमशिखाएं धूमश्रेणियां चार प्रकारकी कही गई हैं, जैसे—कोई एक धूमशिखा ऐसी होती है जो वामभागस्थ होती हुई पुनः–वामाऽऽवर्त्ता, वामपार्श्ववर्तिनी होने से, अथवा प्रतिकूल होनेसे वामावर्त्त, बांई ओर ही मुडनेवाली होती है, १ इसी प्रकारसे शेष तीन भङ्ग भी शङ्ख के जैसे जान लेना चाहिये ४।१०

" एवामेव " इत्यादि, धूमशिखा की तरह ही चार स्त्रियां कही गई हैं जैसे कोई एक स्त्री ऐसी होती है जो नामसे वामा होती है वही प्रतिकूल स्वभाववाली होने से वामावर्त्ता–विपरीताचरणा होती है, १ इसी तरहसे शेष तीन भङ्ग भी पुरुष की तरह जान लेना चाहिये। शम्बूक–शङ्ख दृष्टान्त के होने पर भी जो धूमशिखा दृष्टान्त का पृथक् उपादान किया गया है वह दार्ष्टान्तिक रूपमें स्त्रियों के लक्षण

'चत्तारि धूमसिहाओ' ઇત્યાદિ–ધૂમશિખાઓ–ધૂમ્ર શ્રેણિઓ ચાર પ્રકારની કહી છે " વામ વામાવર્તા " ઇત્યાદિ ચાર ભાંગા શંખ પ્રમાણે જ સમજવા (૧) કોઇ એક ધૂમશિખા એવી હોય છે કે જે–વામપાર્શ્વવર્તિની હોવાથી અથવા પ્રતિકૂળ હોવાથી વામ ભાગસ્થ હોય છે અને વામાવર્ત પણ હોય છે. એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ સમજી લેવા. । ૧૦ ।

'एवामेव' ઇત્યાદિ. ધૂમશિખાની જેમ સ્ત્રીઓ પણ ચાર પ્રકારની કહી છે—(૧) 'વામા વામાવર્તા' કોઇ એક સ્ત્રી નામની અપેક્ષાએ પણ વામા હોય છે અને પ્રતિકૂળ સ્વભાવવાળી હોવાથી વામાવર્તા–વિપરીત આચરણવાળી પણ હોય છે એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ શંખ દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષ પ્રમાણે સમજી લેવા શંખનું દૃષ્ટાન્ત આપ્યા પછી ધૂમશિખાનું અલગ દૃષ્ટાન્ત આપવાનું કારણ એ છે કે અહીં દાર્ષ્ટાન્તિક રૂપે સ્ત્રીઓના લક્ષણની

"चत्तारि अग्गिसिहाओ" इत्यादि। एतत्सूत्रं धूमशिखासूत्रवद् व्याख्येयम्। एवं दार्ष्टान्तिकस्त्रीसूत्रमपि। (१२, १३)

"चत्तारि वायमंडलिया" इत्यादि। वातमण्डलिकाः-मण्डल्यः-समूहाः, ता एव मण्डलिकाः, वातानां-वायूनां मण्डलिका वातमण्डलिकाः-मण्डलेनोर्ध्वप्रवृत्ता वायवः, ताश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एका-काचिद् वातमण्डलिका वामा=वामाऽऽवर्ता च भवति, शेषं च धूमशिखावत्। एवं दार्ष्टान्तिकस्त्रीसूत्रमपि। इह च स्त्रियो मालिन्योपतापचापल्यस्वभावा भवन्तीत्यभिप्रायेण स्त्रीषु धूमशिखावातमण्डलिकेति स्त्रीलिङ्गदृष्टान्तत्रयमुपन्यस्तम्।

की समानता को दिखाने के लिये किया गया है। "चत्तारि अग्गिसिहाओ"-इत्यादि अग्निशिखा चार कहीहैं धूमशिखा सूत्रकी तरह व्याख्यात कर लेना चाहिये। तथा इसी तरहसे दार्ष्टान्तिक सूत्र भी व्याख्यात कर लेना चाहिये। "चत्तारि वाय मंडलिया"—इत्यादि वायु मण्डलिका चार प्रकारकी कही गई हैं, मण्डलाकाररूपमें—गोलरूपमें जो वायु ऊपर की ओर जाती है ऐसी वह वायुमण्डलिका कोई एक ऐसी होती है जो वामा—और वामावर्ता होती है। यहां अवशिष्ट तीन अङ्ग धूमशिखा जैसा जान लेना चाहिये। तथा—दार्ष्टान्तिक सूत्र भी इसी तरह जान लेना चाहिये, स्त्रियां मलिन स्वभाववाली—उपताप स्वभाववाली और चपल स्वभाववाली होती हैं। इसी अभिप्राय से यहां स्त्रियोंके विषयमें धूमशिखा—अग्निशिखा और वातमण्डलिका ये तीन स्त्रीलक्षणवाले दृष्टान्त दिये गयेहैं। कहा भीहै-"जहा धूमसिहा गेहं-" इत्यादि। जैसे धूम-

---

સમાનતા પ્રકટ કરવા માટે નારી જાતિના દૃષ્ટાન્તનો ઉપયોગ થવો જોઇએ. ।૧૧।

"चत्तारि अग्गिसिहाओ" ઇત્યાદિ.–ધૂમશિખાના જેવાં જ અગ્નિશિખાના પણ ચાર ભાંગા સમજવા ।૧૨।

એ જ પ્રમાણે દાર્ષ્ટાન્તિક સ્ત્રી સૂત્રનાં ભાંગાઓ અને તેમનો ભાવાર્થ સમજી લેવો. ।૧૩।

"चत्तारि वायमंडलिया" ઇત્યાદિ. વાયમંડલિકા ચાર પ્રકારની કહી છે ચક્કર ચક્કર ફરતો જે વંટોળિયો ચડે છે તેને વાયુમંડલિકા કહે છે કોઈ એક વાયુમંડલિકા વામા અને વામાવર્તા હોય છે. બાકીના ત્રણ (ભંગ) ધૂમશિખા જેવાં સમજવા. ।૧૪।

દાર્ષ્ટાન્તિક સૂત્રમાં પણ આ પ્રકારના જ ચાર ભાંગા સમજવા. ।૧૫।

સ્ત્રીઓ મલિન સ્વભાવવાળી, ઉપતાપ (ઉત્પાત) સ્વભાવવાળી અને અને ચંચળ વૃત્તિવાળી હોય છે, તેથી જ અહીં ધૂમશિખા, અગ્નિશિખા અને વાયુમંડલિકા, આ ત્રણ સ્ત્રી લક્ષણવાળાં દૃષ્ટાન્તો આપવામાં આવ્યાં છે.

"चत्तारि धूमसिहाओ" इत्यादि–धूमशिखाः – धूमश्रेणयः, ताश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एका–काचित् धूमशिखा वामा–वामभागस्था सती पुनः वामाऽऽवर्ता वामपार्श्ववर्तित्वेन प्रतिकूलत्वेन वा वामतो वलनात् वामस एवावर्तत इति वामाऽऽवर्ता, तादृशी भवति, एवमेव शेषं भङ्गत्रयं शङ्खवत् व्याख्ययम् ४, १०

"एवामेव" त्यादि एवमेव–धूमशिखावदेव स्त्रियश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–एका काचित् स्त्री नाम्ना वामा सा एव प्रतिकूलस्वभावतया वामाऽऽवर्ता=विपरीताऽऽचरणशीला भवति, एवं शेषं भङ्गत्रयं पुरुषवत् व्याख्येयम् । ४ । शम्बूकदृष्टान्ते सत्यपि धूमशिखादृष्टान्तस्य पृथगुपादानं दार्ष्टान्तिकभूतायाः स्त्रियो लिङ्गसाधर्म्यप्रदर्शनार्थमिति ॥ ११ ॥

"चत्तारि धूमसिहाओ"–इत्यादि, धूमशिखाएं धूमश्रेणियां चार प्रकारकी कही गई हैं, जैसे—कोई एक धूमशिखा ऐसी होती है जो वामभागस्थ होती हुई पुनः–वामाऽऽवर्त्ता, वामपार्श्ववर्तिनी होने से, अथवा प्रतिकूल होनेसे वामावर्त्त, बांई ओर ही मुडनेवाली होती है, १ इसी प्रकारसे शेष तीन भङ्ग भी शङ्ख के जैसे जान लेना चाहिये ४।१०

"एवामेव" इत्यादि, धूमशिखा की तरह ही चार स्त्रियां कही गई हैं जैसे कोई एक स्त्री ऐसी होती है जो नामसे वामा होती है वही प्रतिकूल स्वभाववाली होने से वामावर्त्ता–विपरीताचरणा होती है, १ इसी तरहसे शेष तीन भङ्ग भी पुरुष की तरह जान लेना चाहिये। शम्बूक–शङ्ख दृष्टान्त के होने पर भी जो धूमशिखा दृष्टान्त का पृथक् उपादान किया गया है वह दार्ष्टान्तिक रूपमें स्त्रियों के लक्षण

'चत्तारि धूमसिहाओ' ઈત્યાદિ–ધૂમશિખાઓ–ધૂમ્ર શ્રેણિઓ ચાર પ્રકારની કહી છે 'વામ વામાવર્તા" ઈત્યાદિ ચાર ભાંગા શંખ પ્રમાણે જ સમજવા. (૧) કોઇ એક ધૂમશિખા એવી હોય છે કે જે–વામપાર્શ્વવર્તિની હોવાથી અથવા પ્રતિકૂળ હોવાથી વામ ભાગસ્થ હોય છે અને વામાવર્ત પણ હોય છે. એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ સમજી લેવા. । ૧૦ ।

'एवामेव" ઈત્યાદિ. ધૂમશિખાની જેમ સ્ત્રીઓ પણ ચાર પ્રકારની કહી છે—(૧) 'વામા વામાવર્તા' કોઇ એક સ્ત્રી નામની અપેક્ષાએ પણ વામા હોય છે અને પ્રતિકૂળ સ્વભાવવાળી હોવાથી વામાવર્તા-વિપરીત આચરણવાળી પણ હોય છે એ જ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભાંગા પણ શંખ દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષ પ્રમાણે સમજી લેવા. શંખનું દૃષ્ટાન્ત આપ્યા પછી ધૂમશિખાનું અલગ દૃષ્ટાન્ત આપવાનું કારણ એ છે કે અહીં દાર્ષ્ટાન્તિક રૂપે સ્ત્રીઓના લક્ષણની

वा २, असणं वा पाणं खाइमं वा साइमं वा दलेमाणे वा ३, दलावमाणे वा ४ ॥ सू० ५२ ॥

छाया—चतुर्भिःस्थानैः निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीमालपन् वा संलपन् वा नातिक्रामति, तद्यथा-पन्थानं पृच्छन् वा १, पन्थानं देशयन् वा २, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददद् वा ३, दापयद् वा ४ ॥ सू० ५२ ॥

टीका—" चउहिं ठाणेहिं " इत्यादि—

चतुर्भिः—चतुःसंख्यैः अनुपदं वक्ष्यमाणैः स्थानैः निर्ग्रन्थः—साधुः, निर्ग्रन्थीं—साध्वीम्, आलपन्—निर्ग्रन्थ्या सहैकवारं वार्तालापं कुर्वन् संलपन्—अनेकवारं वार्तालापं कुर्वन् वा नातिक्रामति—नोल्लङ्घयति जिनाऽऽज्ञाम्। तद्यथा-पन्थानं-मार्गं पृच्छन् निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामतीत्यन्वयः तत्र प्रष्टव्यसाधर्मिक गृहस्थ पुरुषादीनामभावे आर्यिकासत्त्वे तां प्रति—' हे आर्ये। मयाऽमुकग्रामे केन मार्गेण

पुरुष-अनुकूल स्वभाववाले और-अनुकूल प्रवृत्तिवाले होते हैं। ऐसा कहा गया है, सो अब सूत्रकार यह प्रगट करते हैं-कि जो ऐसा निर्ग्रन्थ कारणवश निर्ग्रन्थी के साथ बातचीत करता है तो वह जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है-" चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं-" इत्यादि-५२

टीकार्थ-चार कारणों को लेकर यदि निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी साध्वी के साथ एक बार बातचीत करता है तो वह जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है। वे चार कारण ये हैं, यदि प्रष्टव्य साधर्मिक गृहस्थ पुरुष आदिक न हों और आर्यिका ही हों तो वह (पथिक) उस आर्यिका से ऐसा पूछ सकता है, हे आर्ये! मुझे अमुक ग्राम जाना है किस रास्ते

અનુકૂળ સ્વભાવ અને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિવાળા પુરુષો પણ હોય છે. એવા અનુકૂળ સ્વભાવ અને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિવાળો કોઈ નિર્ગ્રંથ જો કોઇ નિર્ગ્રંથી સાથે કોઇ ઉચિત કારણે વાતચીત કરે તો તે જિનાજ્ઞાનું અતિક્રમણ કરતો નથી હવે સૂત્રકાર એવા ચાર કારણોનું નિરૂપણ કરે છે.

" ચઉહિં ઠાણેહિં ણિગ્ગંથે ણિગ્ગંથી " ઈત્યાદિ—

ટીકાર્થ-નીચે દર્શાવેલાં ચાર કારણોને લીધે જો નિર્ગ્રંથ (સાધુ) નિર્ગ્રંથી (સાધ્વી) સાથે એક વાર અથવા વારંવાર વાતચીત કરે છે, તો તે જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરતો નથી. (૧) કોઇ માર્ગે વિહાર કરતી વખતે કોઈ સાધર્મિક ગૃહસ્થ આદિ પુરુષ રસ્તાપર ન મળે અને તે કારણે કોઇ ગામ તરફ જવાનો રસ્તો જાણવાની જરૂર પડે, તો કોઈ નિર્ગ્રંથીને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવે કે ' હે આર્યે! મારે અમુક ગામ જવું છે, તો કયા રસ્તેથી

उक्तं च— " जहा धूमसिहा गेहं, मलिणीकुणए सया ।
घणिया वि तहा लोए, नराणं, निम्मलं मणं ॥ १ ॥
पसंतवरयं संतं, संतावेइ य देहिणं ।
लोगेऽणलसिहव्वित्थी, दढधम्मरुईणवि ॥२॥
जहा रुक्खाण साहग्गं, वाओली अहिकंपइ ।
तहेव झाणमेरुं थी, अहिकंपेइ सव्वहा ॥ ३ ॥ "

छाया—यथा धूमशिखा गेहं मलिनी कुरुते सदा ।
वनिताऽपि तथा लोके, नराणां निर्मलं मनः ॥ १ ॥
प्रशान्तवरकं स्वान्तं, सन्तापयति च देहिनाम् ।
लोकेऽनलशिखेव स्त्री, दृढधर्म रुचीनामपि ॥ २ ॥
यथा वृक्षाणां शाखाग्रं, वातालीं अधिकम्पयति ।
तथैव ध्यानमेरुं स्त्री, अधिकम्पयति सर्वथा ॥३॥ इति । १४-१५ ।

" चत्तारि वणसंडा " इत्यादि—शिलासूत्रवदिदं सूत्रं व्याख्येयम्, अत्र केवलं वामाऽऽवर्त—वामवलनेन जातत्वात् वायुना वामतः प्रकम्प्यमानत्वाद्वा वामाऽऽवर्तो भवति । इति, (१६) पुरुषस्तु प्राग्वत् (१७) ॥ सू० ५१ ॥

इतः पूर्वं पुरुषोऽनुकूलस्वभावोऽननुकूलस्वभावश्च निरूपितः तादृशश्च निर्ग्रन्थः कारणे सति निर्ग्रन्थ्या सह संलपन्नपि जिनाज्ञां नातिक्रामतीति दर्शयन्नाह—

मूलम्—चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं आलवमाणे वा संलवमाणे वा णाइक्कमइ, तं जहा पंथं पुच्छमाणे वा १, पंथं देसमाणे

शिलाका घर "चत्तारि वणसंडा" इत्यादि चार वनषण्ड हैं शिलासूत्र जैसे इस सूत्रका व्याख्यान करना चाहिये, जैसा कि—कोई एक वनषण्ड ऐसा होताहै जो—वाम टेढा मेढा होताहै और वायुद्वारा बांई ओर कपाया गया—हिलाया गया होने से वामावर्तवाला होता है ।१। १६ इसी प्रकार से पुरुषजात भी चार होते हैं ॥ ५१ ॥

" चत्तारि वणसंडा " ઇત્યાદિ-શિખાસૂત્રના જેવું જ આ સૂત્રનું પણ વિવેચન થવું જોઈએ. જેમકે કોઈ એક વનખંડ (વનખંડ) એવો હોય છે કે જે વામ (વાંકુંચૂકું) હોય છે, અને પવન દ્વારા ડાબી તરફ ઝુકેલો હોવાથી વામ આવર્તવાળો પણ હોય છે. બાકીના ત્રણ ભાંગા જાતે સમજી લેવા. । ૧૬ । એજ પ્રમાણે દાર્ષ્ટાન્તિક પુરુષના પણ ચાર પ્રકાર સમજવા । ૧૭ । સૂ. ૫૧ ॥

वा २, असणं वा पाणं खाइमं वा साइमं वा दलेमाणे वा ३, दलावमाणे वा ४ ॥ सू० ५२ ॥

छाया—चतुर्भिःस्थानै निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीमालपन् वा संलपन् वा नातिक्रामति, तद्यथा-पन्थानं पृच्छन् वा १, पन्थानं देशयन् वा २, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददद् वा ३, दापयद् वा ४ ॥ सू० ५२ ॥

टीका—" चउहिं ठाणेहिं " इत्यादि—

चतुर्भिः-चतुःसंख्यैः अनुपदं वक्ष्यमाणैः स्थानैः निर्ग्रन्थः-साधुः, निर्ग्रन्थीं-साध्वीम्, आलपन्-निर्ग्रन्थ्या सहैकवारं वार्तालापं कुर्वन् संलपन्-अनेकवारं वार्तालापं कुर्वन् वा नातिक्रामति-नोल्लङ्घयति जिनाऽऽज्ञाम्। तद्यथा-पन्थानं-मार्गं पृच्छन् निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामतीत्यन्वयः तत्र प्रष्टव्यसाधर्मिक गृहस्थ पुरुषादीनामभावे आर्यिकासत्त्वे तां मति-' हे आर्ये। मयाऽमुकग्रामे केन मार्गेण

पुरुष-अनुकूल स्वभाववाले और-अनुकूल प्रवृत्तिवाले होते हैं। ऐसा कहा गया है, सो अब सूत्रकार यह प्रगट करते हैं-कि जो ऐसा निर्ग्रन्थ कारणवश निर्ग्रन्थी के साथ वातचीत करता है तो वह जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है-" चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं-" इत्यादि-५२

टीकार्थ-चार कारणों को लेकर यदि निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी साध्वी के साथ एक बार वातचीत करता है तो वह जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है। वे चार कारण ये हैं, यदि प्रष्टव्य साधर्मिक गृहस्थ पुरुष आदिक न हों और आर्यिका ही हों तो वह (पथिक) उस आर्यिका से ऐसा पूछ सकता है, हे आर्ये! मुझे अमुक ग्राम जाना है किस रास्ते

અનુકૂળ સ્વભાવ અને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિવાળા પુરુષો પણ હોય છે. એવા અનુકૂળ સ્વભાવ અને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિવાળો કોઈ નિર્ગ્રંથ જો કોઇ નિર્ગ્રંથી સાથે કોઇ ઉચિત કારણે વાતચીત કરે તો તે જિનાજ્ઞાનુ અતિક્રમણ કરતો નથી હવે સૂત્રકાર એવા ચાર કારણોનું નિરૂપણ કરે છે.

" ચઉહિં ઠાણેહિં ણિગંથે ણિગથી " ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-નીચે દર્શાવેલાં ચાર કારણોને લીધે જો નિર્ગ્રંથ (સાધુ) નિર્ગ્રંથી (સાધ્વી) સાથે એક વાર અથવા વારંવાર વાતચીત કરે છે, તો તે જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરતો નથી (૧) કોઇ માર્ગે વિહાર કરતી વખતે કોઈ સાધર્મિક ગૃહસ્થ આદિ પુરુષ રસ્તાપર ન મળે અને તે કારણે કોઇ ગામ તરફ જવાનો રસ્તો જાણવાની જરૂર પડે, તો કોઈ નિર્ગ્રંથીને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવે કે ' હે આર્યે ! મારે અમુક ગામ જવું છે, તો કયા રસ્તેથી

गन्तव्यम्' इति मार्गमश्ने निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नोल्लङ्घयतीति पर्यवसितोऽर्थः ।१। इति प्रथमं स्थानम् ।१। तथा-पन्थानं दर्शयन्-आर्यो मार्गं निर्दिशन्, इति द्वितीयं स्थानम् २ । तथा-अशन-पान-खाद्य स्वाद्यं वा ददत्, इति तृतीयं स्थानम् ३ । तथा—दापयन्-अमुकस्मात् गृहादेवतुर्विधाऽऽहारं दापयन् निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नाऽतिक्रामतीत्यर्थः ४ । इति चतुर्थं स्थानम् ४ ॥ सू० ५२ ॥

तथा-निर्ग्रन्थः 'तमस्कायं तम' इति वदन् भाषासमितिं नातिक्रामतीत्याह—

मूलम्-तमुक्कायस्स णं चत्तारि नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा-तमिइ वा तमुक्काएइ वा अंधकारेइ वा महंधकारेइ वा ।

तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता तं जहा—लोगंधगारेइ वा लोगतमसेइ वा देवंधगारेइ वा देवतमसेइ वा ।

तमुक्कायस्स णं चत्तारि नामधेज्जा, तं जहा-वायफलिहेइ वा वायफलिहखोभेइ वा देवरन्नेइ वा देववूहेइ वा ।

तमुक्काए णं चत्तारि कप्पे आवरित्ता चिट्ठइ, तं जहा-सोहम्मीसाण सणकुमारमाहिंदं ॥ सू० ५३ ॥

होकर जाऊं १ इस प्रकारसे पूछने पर वह जिनाज्ञा का उल्लंघन करनेवाला नहीं होता है । इस तरह वह साधु यदि आर्या को मार्ग बता देता है (तो भी) जिनाज्ञा का उल्लंघनकर्ता नहीं होता है । तथा वह आर्यिका के लिये अशन पान-खाद्य-स्वाद्यरूप आहार दे देता है, तथा अमुक गृहस्थसे दिला देता है, तो भी वह जिनाज्ञा का उल्लंघनकर्ता नहीं होताहै ॥सू०५२॥

જઉં " આ પ્રકારના પ્રશ્ન સાધ્વીને પૂછનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરતો નથી (૨) એ જ પ્રકારની પરિસ્થિતિ સાધ્વીને માટે ઊભી થઈ હોય ત્યારે સાધ્વીજીને માર્ગ બતાવવા માટે વાતચીત કરવામાં પણ જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન થતું નથી. (૩) તે સાધ્વીજીને કોઈક તેવું કારણ હોય તો અશન, પાન, ખાદ્ય અને સ્વાદ્યરૂપ આહાર આપી દેવામાં, અને (૪) કોઈ ગૃહસ્થ પાસે અપાવી દેવામાં પણ તે જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘનકર્તા થતો નથી. ॥ સૂ ૫૨ ॥

छाया—तमस्कायस्य खलु चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-तम इति वा तमस्काय इति वा अन्धकार इति वा महान्धकार इति वा।

तमस्कायस्य खलु चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-लोकान्धकार इति वा लोकतम इति वा देवान्धकार इति वा देवतम इति वा।

तमस्कायस्य खलु चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा वातपरिघ इति वा वातपरिघ क्षोभ इति वा देवारण्यम् इति वा देवव्यूह इति वा।

तमस्कायः चतुरः कल्पान् आवृत्य तिष्ठति, तद्यथा-सौधर्मेशानं सनत्कुमार-माहेन्द्रम् ॥ सू० ५३ ।

टीका—" तमुक्कायस्स " इत्यादि

तमः—अप्कायपरिणामलक्षणोऽन्धकारः, तस्य कायः-समूहः, तमस्कायः। सोऽस्माद् मध्यजम्बूद्वीपाद् वहिस्तिर्यग् असंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्य

अब सूत्रकार यह प्रगट करते हैं कि-निर्ग्रन्थ साधु तमस्काय को " तम " ऐसा यदि कह देता है तो वह भाषासमिति का उल्लंघन नहीं करता है। " तमुक्कायस्स णं चत्तारि नामधेज्जा " इत्यादि ५३

सूत्रार्थ—"तमस्कायके चार नाम कहे गयेहैं, जैसे- तम १ तमस्काय २ अन्धकार ३ और महान्धकार ४। पुनश्च तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं, लोकान्धकार १ लोकतम २ देवान्धकार ३ और देवतम ४। पुनश्च तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं, वातपरिघ १ वातपरिघक्षोभ २ देवारण्य ३ और देवव्यूह ४। तमस्काय चार कल्पों को आवृत कर के ठहरता है, जैसे-सौधर्म १ ईशान २ सनत्कुमार ३ माहेन्द्र ४

भावार्थ—इस सबका खुलासा अर्थ इस प्रकारसे है। अप्कायका परिणामरूप

હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે કોઇ નિર્ગ્રંથ સાધુ જો તમસ્કાયને " તમ " કહે છે, તો તેના દ્વારા ભાષા સમિતિનું ઉલ્લંઘન થયું ગણાતું નથી. " તમુક્કાયસ્સ ણ ચત્તારિ નામધેજ્જા " ઇત્યાદિ—

તમસ્કાયના આ પ્રમાણે ચાર નામ છે—(૧) તમ, (૨) તમસ્કાય, (૩) અંધકાર અને (૪) મહાન્ધકાર. તમસ્કાયના આ પ્રમાણે ચાર નામ પણ કહ્યાં છે—(૧) લોકાન્ધકાર, (૨) લોકતમ, (૩) દેવાન્ધકાર અને (૪) દેવતમ. તમસ્કાયના આ પ્રમાણે ચાર નામ પણ કહ્યાં છે--(૧) વાતપરિઘ, (૨) વાત પરિઘ ક્ષોભ, (૩) દેવારણ્ય અને (૪) દેવવ્યૂહ તમસ્કાય ચાર કલ્પોને આવૃત કરીને (ઘેરીને) રહેલો છે-(૧) સૌધર્મને, (૨) ઇશાનને, (૩) સનત્કુમારને અને (૪) માહેન્દ્રને

આ સૂત્રનો ભાવાર્થ હવે સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—અપ્કાયના પરિણામ રૂપ જે અંધકાર છે તેનું નામ ' તમ ' છે, તે તમના સમૂહને તમસ્કાય

'अरुणवर' द्वीपोऽस्ति। तस्य बाह्यवेदिकायाः पर्यन्तभागाद् द्विचत्वारिंशद् योजनसहस्राण्यरुणवरसमुद्रमवगाह्य जलोपरितनतलादूर्ध्वमेकविंशत्यधिकानि सप्तदशयोजनशतानि यावत्समभित्त्याकारतया गत्वा वलयाकारस्तिर्यक् प्रसरन् सौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रान् चतुरोऽपि कल्पानावृत्य ऊर्ध्वमपि च यावद् ब्रह्मलोके कल्पे तृतीयमरिष्टविमानप्रस्तटं संप्राप्तः। तस्य चत्वारि नामधेयानि-नामानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-तम इति—'तम' इत्याकारकं प्रथमं नाम तमोरूपत्वात्, अत्र 'इति' शब्दः शब्दस्वरूपनिर्देशनार्थः, 'वा' शब्दो विकल्पार्थः, एवमग्रेऽपि।१।

जो अन्धकार है उसका नाम तम है, इस तम का समूह तमस्काय है। यह तमस्काय इस मध्य जम्बूद्वीप से बाहिर तिर्यग् असंख्यात द्वीपसमुद्रोंको पार करके वर्तमान अरुणवरद्वीपकी बाह्यवेदिका के पर्यन्त भागसे ४२ हजार योजन तक अरुणवरसमुद्रको अवगाह कर उसके उपरितन तलसे ऊंचे १७२१ सतरहसौ इक्कीस योजन तक समभित्ति के आकारमें जाकर वलयाकार तिर्यक् फैला हुआ है। तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, और माहेन्द्र इन चारों भी कल्पों को आवृत करके ब्रह्मलोक कल्प में तृतीय अरिष्ट विमान प्रस्तर तक फैला हुआ है। इस अन्धकार रूप तमस्काय के जो चार नाम कहे गये हैं उनका तात्पर्य ऐसा है। तम ऐसा नाम तमरूप होने से है।

इसी प्रकारसे आगे भी जानना चाहिये१ इस प्रकारसे तम तमस्काय अन्धकार और महान्धकार ये चार नाम तमस्कायकी तमो मात्ररूपता के

કહે છે. આ તમસ્કાય આ મધ્ય જમ્બૂદ્વીપની બહારના તિર્યગ્ (તિરછીબાજુવર્તી) અસંખ્યાત દ્વીપ સમુદ્રોને પાર કરવાથી જે અરુણવર દ્વીપ આવે છે તેની બાહ્ય વેદિકા સુધીના ભાગથી ૪૨ હજાર યોજન પર્યન્ત અરુણવર સમુદ્રને અવગાહિત કરીને જળની ઉપરીતન સપાટીથી ૧૭૨૧ સત્તરસો એકવીસ યોજન સુધી સમ ભિત્તિના આકારના આસ લઈને વલયાકારે તિર્યક્ ફેલાયેલો છે તથા સૌધર્મ, ઈશાન, સનત્કુમાર અને માહેન્દ્ર આ ચારે કલ્પોને આવૃત્ત (આચ્છાદિત) કરીને બ્રહ્મલોક કલ્પના ત્રીજા અરિષ્ટ વિમાન પ્રસ્તર સુધી ફેલાયેલો છે

આ અન્ધકાર રૂપ તમના જે ચાર પ્રકાર બતાવવામાં આવ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—"તમ" આ નામ તમોરૂપ હોવાને કારણે પડ્યું છે. એ જ પ્રમાણે આગળ પણ સમજવું

આ પ્રકારે તમ તમસ્કાય, અન્ધકાર અને મહાન્ધકાર આ ચાર નામ તમસ્કાયની તમો માત્ર રૂપતાના જ પ્રતિપાદક છે તથા લોકાન્ધકાર આદિ જે

तमस्काय इति वा २, अन्धकार इति वा ३, महान्धकार इति वा ४। एवं च तमः, तमस्कायः, अन्धकारः, महान्धकारः ' इति चत्वारि नामानि तमस्कायस्य तमोमात्ररूपता प्रतिपादकानि। तथाऽपराणि चत्वारि नामानि लोकान्धकार लोकतमो–देवान्धकार देवतमोरूपाणि तु तमस्कायस्य प्रगाढतमोरूपता प्रतिपादकानि। तत्र लोकान्धकारः–लोके लोकान्धकार एवास्ति नापरस्तादृश इति लोकान्धकारः, लोकतम इति – लोके तमः – लोकतमः देवान्धकार इति, देवानामन्धकारो देवान्धकारः, तथाविधेऽन्धकारे देवानामपि शरीरप्रभायाः प्रसर्तुमसमर्थत्वाद्देवान्धकार इत्युच्यते, अत एव देवा बलवतो देवस्य भयेन तत्र तमस्काये तिरोहिता भवन्तीति वृद्धा इति। एवं देवानां तमो देवतम इति चतुर्थं नाम ४।

तथा-तमस्कायस्येतराणि चत्वारि नामानि कार्याश्रयाणि, यथा–वातपरिघ १ वातपरिघक्षोभ २ देवारण्यम् ३, देवव्यूह इति, तत्र वातपरिघः–वातस्य–पवनस्य

प्रतिपादक हैं। तथा अन्य जो लोकान्धकार आदि चार नामहैं वे तमस्काय की प्रगाढ तमोरूपता के प्रतिपादक हैं। लोक में जो अन्धकार है वह लोकान्धकार है वैसा दूसरा कोई नहीं है। लोक में जो तम है वह लोकतम है, देवों का जो अन्धकार है वह देवान्धकार है। ऐसे अन्धकारों में देवों की भी शरीरप्रभा फैलनेमें असमर्थ रहती है। इसी कारण ऐसे तमस्काय को देवान्धकार कहा गया है। वृद्ध जन ऐसा कहते हैं कि इस देवान्धकार में बलवान् देवके भयसे अन्य देव तिरोहित (छुप) जाते हैं। इस प्रकार से देवतम है। तमस्काय के ये वातपरिघ आदि चार नाम कार्याश्रय से हैं। इन से तमस्काय का जो वातपरिघ नाम हुआ है उसका कारण ऐसा है कि यह तमस्काय वातको–पवन को

ચાર નામ કહ્યાં છે, તે તમસ્કાયની પ્રગાઢ તમોરૂપતાના પ્રતિપાદક છે લોકમાં જે અન્ધકાર છે તેને લોકાન્ધકાર કહે છે, એવો બીજો કોઈ અધકાર નથી. લોકમાં જે તમ છે તેનું નામ લોકતમ છે દેવલોકમા જે અન્ધકાર છે તેનું નામ દેવાન્ધકાર છે એવા અન્ધકારમાં દેવોની શરીર પ્રભા પણ ફેલાઈ શકતી નથી, તે કારણે એવા તમસ્કાયને દેવાન્ધકાર કહ્યો છે.

વૃદ્ધો એવું કહે છે કે આ દેવાન્ધકાર વ્યાપે ત્યારે બળવાન દેવોના ભયથી અન્ય દેવો છુપાઈ જાય છે, એ જ પ્રકારનો દેવતમ પણ હોય છે.

તમસ્કાયના વાતપરિઘ આદિ જે ચાર નામ કહ્યાં છે તે કાર્યને આધારે કહ્યાં છે તમસ્કાયનુ જે [illegible] ણુ નીચે પ્રમાણે છે.

परिहननात् परिघः-अर्गला स्वरूपः, अथवा-परिघ -लोहपिण्डः, 'घण' इति भाषाप्रसिद्धः, स एव परिघ, वातस्य परिघो वातपरिघ -पवनप्रतिरोधक इत्यर्थ इति प्रथम १। तथा-वातपरिघक्षोभः-वात वायु परिघवत् क्षोभयति-मार्गपरि स्खलितं करोतीति वातपरिघक्षोभ। इति द्वितीयः २॥

तथा—देवार न्ने 'ति-देवानामरण्यमिव बलवद्भयेन तिरोधानस्थानत्वात् यः स देवारण्य तमस्काय इति तृतीयः ३। तथा—' देवव्यूह ' इति देवानां व्यूहः-चक्रशकटादि साङ्ग्रामिक व्यूह इव यो दुरधिगमत्वात् स देवव्यूहतमस्कायः, इति चतुर्थः। ४।

तमस्कायो यावत्क्षेत्रमावृणोति तदाह—" तमुक्काएणं " इत्यादि तमस्कायः खलु चतुरः कल्पान्-वक्ष्यमाणान् आवृत्य-व्याप्य तिष्ठति-वर्तते, तद्यथा—

अर्गला स्वरूप है, अथवा लोहपिण्ड-परणा स्वरूप है इस तरह से यह पवनका प्रतिरोधक है। अतः इसका नाम वातपरिघ है। परिघ शब्दका अर्थ यहाँ अर्गला या लोहपिण्डरूप परण ऐसा है। तथा " वातपरिघ क्षोभ" ऐसा जो इसका नाम है वह यह वायुको परिघकी तरह अपने मार्गसे स्खलित कर देता है इस कारण है। "देवारण्य" जो ऐसा इसका नाम है उसका कारण ऐसा है कि बलवान् देवों से डरे हुवे देवों का यह अरण्य की तरह तिरोधान (छिपनेका) का स्थान है। तथा "देवव्यूह" ऐसा जो यह चौथा नाम है उसका कारण ऐसा है कि देवोंको रथचक्र शकट आदि साङ्ग्रामिक व्यूह की तरह यह दुरधिगम्य होता है। यह तमस्काय जितने क्षेत्र को आवरण करता है अब उस बातको सूत्रकार

તે તમસ્કાય વાતને માટે અમલા (આગળિયા) સમાન છે અથવા લોહપિંડ એરણ સમાન છે આ પ્રકારે તે પવનનો પ્રતિરોધક હોવાથી તેનું નામ વાતપરિઘ પણ પડયુ છે પરિઘ શબ્દનો અર્થ અહીં અર્ગલા સમજવો. તથા તેનુ 'વાતપરિઘક્ષોભ' નામ આ કારણે પડયુ છે કે તે વાયુને પરિઘરૂપ પોતાના માર્ગથી સ્ખલિત કરી દે છે તેનું દેવા રણ્ય નામ પડવાનુ કારણ આ પ્રમાણે છે—બળવાન દેવોથી ભયભીત થયેલા દેવોને માટે તે અરણ્યની જેમ છુપાઈ જવાના સ્થાનની ગરજ સારે છે, તેથી તેને દેવઅરણ્ય પણ કહે છે તેનુ ચોથુ નામ દેવવ્યૂહ પડવાનુ કારણ-રથ, ચક્ર, શકટ, આદિ સંગ્રામની વ્યૂહ રચનાને ભેદીને આગળ વધવાનુ કામ જેવું મુશ્કેલ છે એવું જ આ અંધકારને ભેદવાનુ પણ મુશ્કેલ છે આ રીતે દેવોને માટે દુરધિગમ્ય હોવાથી તેને દેવવ્યૂહ કહ્યો છે

सौधर्मेशानं २ सनत्कुमारमाहेन्द्रं ४। सौधर्मे-शान सनत्कुमार माहेन्द्रेति चतुरः कल्पानावृत्य तमस्कायस्तिष्ठतीति पर्यवसितोऽर्थः। स तमस्कायः अधोभागे मल्लकमूलसंस्थानसंस्थितः ऊर्ध्वभागे च कुक्कुटपञ्जरसंस्थानसंस्थितः प्रतिपादितः,

उक्तश्च—" तमुक्काएणं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?, गोयमा! अहे मल्लग-मूलसंठिए उप्पिं कुक्कुडपंजरसंठिए पण्णत्ते " त्ति।

छाया—तमस्कायो भदन्त! किं संस्थितः प्रज्ञप्तः?, गौतम! अधो मल्लक-मूलसंस्थितः उपरि कुक्कुटपञ्जरसंस्थितः। इति, मल्लकं मृत्तिकापात्रं तस्य मूलं बुध्नः ग्रीवा तद्वत् संस्थितिर्यस्य सः, तत्संस्थानसंस्थित इत्यर्थः॥ सू० ५३॥

अनन्तरं वचनपर्यायैस्तमस्कायः प्रोक्तः, सम्प्रत्यर्थपर्यायैः पुरुषं निरूपयितुमाह।

मूलम्—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-संपागडपडि-सेवी णाममेगे १, पच्छन्नपडिसेवी णाममेगे २, पडुपन्ननंदी णाममेगे ३, निस्सरणणंदी णाममेगे ४,॥ १॥

चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जइत्ता णाममेगा णो पराजिणित्ता १, पराजिणित्ता णाममेगा णो जइत्ता २, एगा

बताते हुवे कहते हैं "तमुक्काएणं" इत्यादि यह तमस्काय सौधर्म ईशान सनत्कुमार और माहेन्द्र इन चार कल्पों को व्याप्त करके ठहरा हुवा है। यह तमस्काय अधोभागमें मल्लकके मूलका आकार जैसा है और ऊर्ध्वभागमें कुक्कुट के पञ्जर का आकार जैसा है। उक्तश्च-"तमुकाएणं भंते १, किं संठिए पण्णत्ते२ गोयमा १ अहे मल्लगमूलसंठाण संठिए उप्पिं कुक्कुडपंजरसंठिए" त्ति। मल्लक यह मिट्टीका पात्र होता है इसका मूल-बुध्न ग्रीवा का जैसा आकार होता है वैसा ही आकार इसका है॥ ५२॥

હવે સૂત્રકાર એ વાતને પ્રકટ કરે છે કે આ તમસ્કાય કેટલા ક્ષેત્રને આવૃત કરે છે 'तमुकाए णं" ઇત્યાદિ–આ તમસ્કાય સૌધર્મ, ઈશાન, સનત્કુમાર અને માહેન્દ્ર, આ ચાર કલ્પોને આવૃત (દેવલોક)કરીને રહેલો છે. તે તમસ્કાય અધોભાગમાં મલ્લકના મૂળના જેવા આકારનો છે અને ઊર્ધ્વભાગમાં કૂકડાના પિંજરાના જેવા આકારના છે. કહ્યુ પણ છે કે-तमुकाए ण भंते! किं संठिए पण्णत्ते?" गोयमा! अहे मल्लग-मूलसठाण संठिए, उप्पिं कुक्कुडपंजरसठिए त्ति" મલ્લક એક માટીનુ પાત્ર વિશેષ છે. તેના મૂળનો (તળિયાનો) જેવો આકાર હોય છે, એવો જ તમસ્કાયનો આકાર કહ્યો છે. ॥ સૂ. ૫૩ ॥

जइतावि पराजिणितावि ३, एगा णो जइता णो पराजिणिता ४, ॥२॥ एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा--जइता णाममेगे णो पराजिणिता० ४ ॥३॥

चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, त जहा जइता णाममेगा जयइ० १, जइता णाममेगा पराजिणइ२, पराजिणिता णाम मेगा जयइ ३, पराजिणिता णाममेगा पराजिणइ० ४, ॥४॥ एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा जइता णाममेगे जयइ ॥५४॥

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-सम्प्रकटप्रतिसेवी नामैकः १, प्रच्छन्नप्रतिसेवी नामैकः २, प्रत्युत्पन्ननन्दी नामैकः३, निःसरणनन्दी नामैकः४ ।१।

चतस्रः सेनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा जेत्री नामैका नो पराजेत्री १, पराजेत्री नामैका नो जेत्री २, एका जेत्र्यपि पराजेत्र्यपि ३, एका नो जेत्री नो पराजेत्री ४, ।२।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा जेता नामैको नो पराजेता० ४, ।३।

तमस्काय का यह कथनरूप पर्यायसे किया गया है अब सूत्रकार अर्थपर्यायोंसे पुरुषकानिरूपण करते हैं—"चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता" इत्यादि ।

पुरुषजात चार कहे गये हैं । जैसे कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो सम्प्रकट प्रतिसेवी होता है १ कोई और इनमें ऐसा होता है जो प्रच्छन्न प्रतिसेवी होता है२ तथा कोई एक ऐसा होता है जो प्रत्युत्पन्ननन्दी होता है ३ एव कोई एक ऐसा होता है जो निःसरणनन्दी होता है ४ । सेना चार कही गई है जैसे एकजेत्री नो पराजेत्री १ दूसरी पराजेत्री नोजेत्रीर तीसरी जेत्री भी और पराजेत्री भी ३ चौथी नो जेत्री नो परा

તમસ્કાયનું ઉપયુક્ત કથન વચનરૂપ પર્યાયની અપેક્ષાએ કરવામાં આવ્યું છે આ સબધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર અર્થપર્યાયો દ્વારા પુરુષોનું નિરૂપણ કરવા નીચેના સૂત્રોનું કથન કરે છે ' ચત્તારિ પુરિસજાયા પણ્ણત્તા " ઇત્યાદિ—

પુરુષોના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) કોઈક પુરુષ સંપ્રકટ પ્રતિસેવી હોય છે (૨) કોઈક પુરુષ પ્રચ્છન્ન પ્રતિસેવી હોય છે (૩) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પ્રત્યુત્પન્નનંદી હોય છે (૪) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે નિઃસરણાનંદી હોય છે । ૧ ।

ચાર પ્રકારની સેના કહી છે—(૧) જેત્રી–નો પરાજેત્રી, (૨) પરાજેત્રી નો જેત્રી, (૩) જેત્રી અને પરાજેત્રી, (૪) નો જેત્રી–નો પરાજેત્રી । ૨ ।

चतस्रः सेनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा जेत्री नामैका जयति १, जेत्री नामैका पराजयति२, पराजेत्री नामैका जयति३, पराजेत्री नामैका पराजयति४, ।४। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा जेता नामैको जयति० ४ ।५। सू० ५४॥

टीका-" चत्तारि " इत्यादि । सुगमम् , नवरम् एकः कश्चित् पुरुषः साधुः संप्रकटप्रतिसेवी गुर्वादिसमक्षमकल्प्यभक्तपानादि संप्रकटसेवनशीलो भवति १, एकः-कश्चिद्गच्छवासी साधुः प्रच्छन्नप्रतिसेवी प्रच्छन्नं गुप्तं यथा स्यात्तथा अकल्प्यभक्तपानादि प्रतिसेवत इत्येवंशीलः २, एकः अपरः पुरुषस्तु प्रत्युत्पन्ननन्दी प्रत्युत्पन्नेन लब्धेन वस्त्रपात्रशिष्यादिना नन्दति हृष्यतीत्येवंशीलः=वस्त्रादि लाभे आनन्दितो भवतीत्यर्थः । ३ ।

तथा एकः कश्चित् पुरुषः निःसरणनन्दी-निःसरणं प्राघुणशिष्यादीनां स्वस्य वा गच्छादितो निर्गमनं, तेन नन्दति-हृष्यतीत्येवंशीलस्तथाभूतो भवति ४। १॥

जेत्री ४। इसी तरह चार पुरुष जात कहे गये हैं। जैसे जेता नो पराजेता १ इत्यादि ४ (३ पुनश्च-"सेना चार कही गई है, जैसे इनमें एक जेत्री जयति १ जेत्री पराजयति २ पराजेत्री जयति ३ पराजेत्री पराजयति ४ इस तरह से चार पुरुषजात होते हैं, जैसे एक जेताजयति० ४।

इस सूत्रका भावार्थ ऐसा है कोई एक साधु पुरुष ऐसा होता है जो प्रतिसेवी गुरु आदिके समक्ष अकल्प्य भक्तपानादिक का सेवनशील होता है १ कोई एक साधुपुरुष ऐसा होता है जो गच्छमें रह कर प्रच्छन्न प्रतिसेवी होता है-गुप्त रूपसे अकल्प्य भक्तपानादिकका सेवन करता है २ कोई एक साधुपुरुष ऐसा होता है जो लब्ध वस्त्र पात्र शिष्य आदिसे हर्षशील होता है, अर्थात्-वस्त्रादि लाभमें आनन्दित होता है ३।

ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે-(૧) જેતા-ને પરાજેતા, ઈત્યાદિ ચાર પ્રમાણે ચાર પ્રકાર સમજવા. । ૩ ।

આ પ્રમાણે પણ ચાર પ્રકારની સેના કહી છે—(૧) जेत्री जयति, (२) जेत्री पराजयति, (३) पराजेत्री जयति, (४) पराजेत्री पराजयति । ४ । એ જ પ્રમાણે " जेता जयति " વગેરે ચાર પ્રકારના પુરુષો હોય છે । ૫ ।

ભાવાર્થ—પહેલા સૂત્રના ચાર ભાંગાનો ભાવાર્થ—(૧) કોઈ એક સાધુ એવો હોય છે કે જે ગુરુની સમક્ષ અકલ્પ્ય આહારાદિનુ સેવન કરનારો હોય છે. (૨) કોઈ એક સાધુ એવો હોય છે કે જે ગચ્છમાં રહેવા છતાં પ્રચ્છન્ન પ્રતિસેવી હોય છે. ગુપ્ત રીતે અકલ્પ્ય આહારાદિનુ સેવન કરનારો હોય છે. (૩) કોઈ એક સાધુ એવો હોય છે કે જે વસ્ત્ર, પાત્ર, શિષ્યાદિની પ્રાપ્તિ

"चत्तारि सेणाओ" इत्यादि–सेनाश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एका–काचित् सेना जेत्री–जयशीला जयनशीला जेत्री शत्रुबलपराभवशीला भवति, किन्तु नो परा जेत्री शत्रुबलात् पराजयं प्राप्नोति–नो भग्ना भवतीत्यर्थः, अत्र पराजीयत इत्येवंशीला पराजेत्रीति कर्मणि शीलार्थे तृन् बाहुलकाद् बोध्य १।

एका–अपरा सेना पराजेत्री–परेभ्यः पराजयप्राप्तिशीला भवति, किन्तु नो जेत्री–नो जयशीला भवति । २ । एका–अन्या तु जेत्र्यपि पराजेत्र्यपीत्युभय स्वभावा भवति ३। एका–अपरा काचित् नो जेत्री नो पराजेत्री–जय–पराजय भावर्जितेत्यर्थः ४।।२।।

तथा–कोई साधुपुरुष ऐसा होता है जो गच्छ आदिसे शिष्यादिकों के या अपने निर्गमन से हर्षित होता है ४ "चत्तारि सेणाओ" इत्यादि सूत्र द्वारा सेनाएँ चार हैं, उनका अभिप्राय ऐसा है–जो सेना शत्रुके बलको परा भव करती है वह जेत्री है, और शत्रुबलसे पराजित नहीं होती है वह पराजेत्री है तथा च कोई एक सेना ऐसी होती है जो शत्रुबल को पराजित करने का स्वभाववाली होती है किन्तु शत्रुबलसे अपना पराभव करनेवाली नहीं होती है ऐसी सेना प्रथम भङ्गमें परिगणित है १ तात्पर्य यही है कि शत्रुबलको जीत लेती है किन्तु–शत्रुको पीठ नहीं दिखाती है । दूसरी सेना ऐसी है जो पराजेत्री-शत्रुसे पराजय प्राप्त करनेवाली होती है जयशील नहीं होती है–२ तीसरी सेना ऐसी होती है जो–उभय स्वभाववाली होती है । कभी जीतनी-तो कभी हारती है ३ चौथी सेना ऐसी होती है जो नतो शत्रुको जीतती है न उससे हारती है–४

થવાથી આનન્દિત થાય છે (૪) કોઈ એક સાધુ એવો હોય છે કે જે ગચ્છ આદિમાંથી શિષ્યાદિકોનું અથવા પોતાનું નિર્ગમન થવાથી હર્ષિત થનારો હોય છે.

'चत्तारि सेणाओ' ઇત્યાદિ–

આ સૂત્રમાં જે ચાર પ્રકારની સેના કહી છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ—જેત્રી એટલે વિજય પ્રાપ્ત કરનારી પરાજેત્રી એટલે પરાજિત થનારી. (૧) જે સેના શત્રુસૈન્યને પરાજિત કરે છે પણ શત્રુસૈન્ય દ્વારા પરાજિત થતી નથી એવી સેનાને 'જેત્રી–નો પરાજેત્રી' કહે છે (૨) કોઈ સેના એવી હોય છે કે જે શત્રુઓ સામે પરાજય પ્રાપ્ત કરનારી હોય છે, વિજય પ્રાપ્ત કરનારી હોતી નથી. (૩) ત્રીજી સેના એવી હોય છે કે જે ઉભય સ્વભાવવાળી હોય છે એટલે કોઈવાર વિજય પણ પ્રાપ્ત કરે છે અને કોઈવાર પરાજય પણ પામે છે (૪) ચોથા પ્રકારની સેના એવી હોય છે કે જે શત્રુસૈન્યને પરાજિત પણ કરતી નથી અને શત્રુસેના દ્વારા પરાજય પણ પ્રાપ્ત કરતી નથી.

एवमेव-सेनावदेव पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-एकः-कश्चित् पुरुषः जेता-परीषहाणामिन्द्रियनोइन्द्रियाणां वा जयशीलो भवति, किन्तु नो पराजेता--परीषहादिना नो पराजितो भवति, श्री महावीरप्रभुवत् १, एकः--अपरः पुरुषः पराजेता -परीषहादिना पराजितो भवति, किन्तु नो जेता नो परीषहादिजयशीलो भवति कण्डरीकवत् २।

तृतीयः पुरुषः कदाचिज्जेता--परीषहादिजयनशीलः कदाचित्त स्वकर्मवशात् पराजेता- परीषहादिना पराजितो भवति, शैलकराजर्षिवत् । ३ ।

चतुर्थः पुरुषस्तु- नो जेता नो पराजेता -नो परीषहादीनां जेता भवति, नापि च परीषहादिना पराजितो भवति -अनुत्पन्नपरीषहादिरित्यर्थः ४, ।३।

इसी तरह पुरुषजात चार कहे गये हैं उसका स्पष्टीकरण यों है— जैसे-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो परीषहों को अथवा –इन्द्रियों को जीतता है लेकिन–उससे स्वयं नहीं जीता जाता है उदाहरण प्रभु महावीरस्वामी १ कोई एक ऐसा होता है जो परीषह आदिसे स्वयं पराजित हो जाता है लेकिन उनको नहीं जीत पाता है २ उदाहरण में कण्डरीक जिनका वर्णन ज्ञातासूत्रमें हैं। कोई ऐसा होता है जो कदाचित् परीषह आदिकों को जीत लेता है। कदाचित्–परीषह आदि द्वारा स्वयं जीत लिया जाताहै ३। उदाहरण शैलकराजर्षि जिनका वर्णन ज्ञातासूत्र में हैं। चौथा कोई एक ऐसा होता है जो—परीषह आदिको न जीतता है न उनके द्वारा जीता जाता है ४ । " चत्तारि सेणाओ "

એજ પ્રમાણે જે ચાર પુરુષ પ્રકાર કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે છે—(૧) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પરીષહોને તથા ઇન્દ્રિયોને જીતનારો હોય છે, પણ પોતે તેમના દ્વારા પરાજિત થતો નથી. જેમકે મહાવીર પ્રભુ.

(૨) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે પરીષહ આદિ દ્વારા પરાજિત થાય છે, પણ પોતે તેમનાપર વિજય પ્રાપ્ત કરતો નથી. દાખલા તરીકે કંડરીક. કે જેમનું વર્ણન જ્ઞાતા સૂત્ર

(૩) કોઈ પુરુષ એવો હોય છે કે કોઈ કોઈવાર પરીષહાદિકોને જીતી લે છે અને કોઈ કોઈવાર પરીષહાદિકો દ્વારા પોતે જ પરાજિત પણ થતો હોય છે જેમકે શૈલક રાજર્ષિ.

(૪) કોઇ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પરિષહાદિકોને જીતતો પણ નથી અને પરીષહાદિકો દ્વારા જીતાતો પણ નથી.

तथा-" चत्तारि सेणाओ " इत्यादि-सुगमम्, एका सेना एकदा शत्रुबलं जित्वा पुनरपि जयति । इति प्रथमो भङ्गः १। एका-अपरा तु परबलं जित्वा पराजीयते परबलेन पराजिता भवति । इति द्वितीयः २। एका-अन्या पराजित्य शत्रुबलेन पराजयं प्राप्यापि पुनः शत्रुञ्जयति । इति तृतीयः ३। चतुर्थी तु पराजित्य-एकदा पराजय प्राप्य पुनः पराजीयते-पराजिता भवति । इति चतुर्थो भङ्गः ४। इति सेनासूत्रम् । एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि बोध्यानि । तत्र-एकः पुरुषः परीषहादीन् एकवारं जित्वा पुनरपि जयति । इति प्रथमो भङ्गः १। एकः पुरुषः परीषहादीञ्जित्वा पराजीयते परिषहादिभिः पराजितो भवति इति द्वितीयः २ एकः

इत्यादि सूत्रद्वारा पुनः सेना चार कही गई है, जैसे—एक सेना ऐसी होती है जो शत्रुबलको जीत कर पुन उसे जीत लेती है १, दूसरी सेना ऐसी होती है जो परके बलको जीत कर दूसरे किसी बलसे जीत ली जाती है २। तीसरी ऐसी होती है कि जो शत्रुबलसे पराजित हो कर भी पुन शत्रुओं को जीतती है ३। चौथी सेना ऐसी होती है जो एक बार हार कर भी पुनः हार जाती है ४। इस सूत्रके जैसे ही पुरुष जात चार कहे गये हैं, इनमें कोई ऐक पुरुष ऐसा होता है जो परीषह आदिकों को एक बार जीत कर पुनः उन्हे जीतता रहता हैं १, कोई पुरुष ऐसा होता है जो परीषह आदिकों को जीत कर पुनः उनसे जीत

" चत्तारि सेणाओ " ઇત્યાદિ—

આ સૂત્ર દ્વારા બીજી રીતે પણ સેના ચાર પ્રકારની કહી છે તે ચારે પ્રકારનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

(૧) " जेत्ती जयति " કોઈ એક સેના એવી હોય છે કે જે એક શત્રુ સૈન્યને પરાભવ કરીને ફરીથી પણ શત્રુસૈન્યને પરાજિત કરનારી હોય છે (૨) કોઈ એક સેના એવી હોય છે કે જે કોઈ એક શત્રુસૈન્યને પરાજિત કરનારી હોય છે પણ અન્ય શત્રુસૈન્ય દ્વારા પરાજિત પણ થનારી હોય છે. (૩) કોઈ એક સેના એવી હોય છે કે જે કોઈ શત્રુસૈન્યથી પરાજિત થઈને અન્ય શત્રુસૈન્યને પરાજિત કરનારી હોય છે (૪) કોઈ એક સૈન્ય એવું હોય છે કે જે એક શત્રુસૈન્ય સામે પણ પરાભવ પામે છે અને બીજા શત્રુસૈન્ય સામે પણ પરાભવ પામે છે

એ જ પ્રમાણે પુરુષોના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પરીષહ આદિ પર એકવાર વિજય પ્રાપ્ત કરે છે છે અને ફરીથી પણ તેના પર વિજય પ્રાપ્ત કરતો રહે છે (૨) કોઈ એક પુરુષ

पुरुषः पराजित्य=परीषहादिभिः पराजयं प्राप्यापि पुनः परीषहादीञ्ज-यति । इति तृतीयः ३। तथा-एकः पुरुषः पराजित्य-एकदा पराजयं प्राप्य पुनः पराजीयते=पराजितो भवति । इति चतुर्थो भङ्गः ४ । सू० ५४ ।

पूर्वं जय उक्तः, स च तत्त्वतः कषायाणामेव कर्तव्य इति तत्स्वरूपं निरूपयति--

मूलम्---चत्तारि राईओ पण्णत्ताओ, तं जहा--पव्वयराई १, पुढवीराई २, वालुयराई ३, उदगराई ४। एवामेव चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा--पव्वयराइसमाणे १, पुढविराइसमाणे वालुयराइसमाणे ३, उदगराइसमाणे ४ ।

पव्वयराइसमाणं कोहं अणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ णेरइएसु उपवज्जइ १ पुढवीराइसमाणं कोहं अणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ २, वालुयराइसमाणं कोहमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ ३, उदगराइसमाणं कोहमणुप्प-विट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ ४--१ ।

चत्तारि थंभा पण्णत्ता, तं जहा--सेलथंभे १, अट्ठिथंभे २, दारुथंभे ३, तिणिसलयाथंभे ४। एवामेव चउव्विहे माणे पण्णत्ते,

---

लिया जाता है २ । तृतीय एक ऐसा होता है जो परीषहादिकों से परा-जित हो जाने पर भी पुनः उन्हें पराजित कर देता है ३ चौथा एक साधुपुरुष ऐसा होता है जो परिषहादिकों के एक बार पराजित होकर बारबार पराजय पाता रहता है ४ ॥ ५४ ॥

એવો હોય છે કે જે પરીષહાદિકો પર એકવાર વિજય પ્રાપ્ત કરીને તેમના દ્વારા પુન પરાજિત થનારો હોય છે (૩) કોઈ એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે એક વાર તો પરીષહાદિ દ્વારા પરાજિત થાય છે પણ પુનઃ તેમને પરાજિત કરી નાખે છે (૩) કોઈ એક સાધુ એવો હોય છે કે જે પરીષહાદિકો દ્વારા એક વાર પણ પરાજિત થાય છે અને વારંવાર પણ પરાજિત થતો રહે છે. સૂ. ૫૪

त जहा-सेलथमसमाणे जाव तिणिसलयाथमसमाणे ४,॥

सेलथभसमाण माण अणुप्पविट्टे जीवे काल करेइ णेरइ एसु उववज्जइ १, एव जाव तिणिसलयाथमसमाणं माणं अणु प्पविट्ठ जीवे काल करेइ देवेसु उववज्जइ ४ । २ ।

चत्तारि केयणा पण्णत्ता, त जहा वसीमूलकेयणे १, मेंढ विसाणकेयणे२, गोमुत्तियाकेयणे ३, अवलेहणियाकेयणे ४ । एवामेव चतुव्विहा माया पण्णत्ता, त जहा वसीमूलकेयणस माणा जाव अवलेहणियाकेयणसमाणा ॥४॥

वसीमूलकेयणसमाणं माय अणुप्पविट्ठे जीवे काल करेइ णेरइएसु उववज्जइ१, मेंढविसाणकेयणसमाणं मायमणुप्पविट्टे जीवे काल करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ२, गोमुत्तियाकेय यणसमाणं माय अणुप्पविट्ठे जीवे काल करेइ मणुस्सेसु उवव ज्जइ३, अवलेहणियाकेयणसमाणं मायमणुप्पविट्ठे जीवे काल करेइ देवेसु उववज्जइ । ४-२ ।

चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा-किमिरागरत्ते १, कद्दम रागरत्ते २, खजणरागरत्ते३, हलिद्दरागरत्ते४ । एवामेव चउव्विहे लोहे पण्णत्ते, त जहा-किमिरागरत्तवत्थसमाणे१, कद्दमरागरत्तव त्थसमाणे२, खजणरागरत्तवत्थसमाणे३, हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणे।

किमिरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुप्पविट्ठे जीवे काल करेइ णेरइएसु उववज्जइ १, तहेव जाव हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणं लोभ मणुप्पविट्ठे जीवे काल करेइ देवेसु उववज्जइ ४, २। सू०५५

छाया—चतस्रो राजयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पर्वतराजिः १, पृथिवीराजिः २, वालुकाराजिः ३, उदकराजिः ४। एवमेव चतुर्विधः क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–पर्वतराजिसमानः १, पृथिवीराजिसमानः २, वालुकाराजिसमानः ३, उदकराजिसमानः ४।

पर्वतराजिसमानं क्रोधमनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति नैरयिकेषूपपद्यते १, पृथिवीराजिसमानं क्रोधमनुप्रविष्टो जीव कालं करोति तिर्यग्योनिकेषूपपद्यते २, वालुकाराजिसमानं क्रोधमनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति मनुष्येषूपपद्यते ३, उदकराजिसमानं क्रोधमनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति देवेषूपपद्यते ४ ।१।

चत्वारः स्तम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–शैलस्तम्भः १, अस्थिस्तम्भः २, दारुस्तम्भः ३, तिनिशलतास्तम्भः ४। एवमेव चतुर्विधो मानः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–शैलस्तम्भसमानः यावत् तिनिशलतास्तम्भसमानः ।४।

शैलस्तम्भसमानं मानमनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति नैरयिकेषूपपद्यते (१) एवं यावत् तिनिशलतास्तम्भसमानं मानमनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति देवेषूपपद्यते ।४। ॥ २ ॥।

चत्वारि केतनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–वंशीमूलकेतनं १, मेढ्रविषाणकेतनं २, गोमूत्रिकाकेतनम् ३, अवलेखनिकाकेतनम् ४। एवमेव चतुर्विधा माया प्रज्ञप्ता, तद्यथा–वंशीमूलकेतनसमाना यावत् अवलेखनिकाकेतनसमाना ।४।,

वंशीमूलकेतनसमानां मायामनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति नैरयिकेषूपपद्यते १, मेढ्रविषाणकेतनसमानां मायामनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति तिर्यग्योनिकेषूपपद्यते २, गोमूत्रिकाकेतनसमानां मायामनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति मनुष्येषूपपद्यते ३, अवलेखनिकाकेतनसमानां मायामनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति देवेषूपपद्यते ४, ।३। ।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–कृमिरागरक्तं १, कर्दमरागरक्तं २, खञ्जनरागरक्तं ३, हरिद्रारागरक्तम् ४। एवमेव चतुर्विधो लोभः प्रज्ञप्त, तद्यथा–कृमिरागरक्तवस्त्रसमानः १, कर्दमरागरक्तवस्त्रसमानः २, खञ्जनरागरक्तवस्त्रसमानः हरिद्रारागरक्तवस्त्रसमानः ४।

कृमिरागरक्तवस्त्रसमानं लोभमनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति नैरयिकेषूपपद्यते १, तथैव यावत् हरिद्रारागरक्तवस्त्रसमान लोभमनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति देवेषूपपद्यते ४, ।४। सू० ५५ ॥

इस प्रकार से जय के संबंध में कह कर अब सूत्रकार यह कहते हैं कि—जीवको जय वास्तव में कषायों का ही करना चाहिये अतः

આ પ્રકારે જયનુ પ્રતિપાદન કરીને સૂત્રકાર હવે એ વાતનુ નિરૂપણ કરે છે કે જીવોએ ખરી રીતે તો કષાયો પર વિજય મેળવવો જોઈએ.

टीका—" चत्तारि राईओ " इत्यादि–राजयः–रेखाः, चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पर्वतराजिः–पर्वते राजि –पर्वतोल्लिखिता रेखेत्यर्थः १, पृथिवीराजिः–पृथिव्यामुल्लिखिता रेखा २, वालुकाराजिः–वालुकायां विलिखिता रेखा ३, उदकराजिः–उदके–जले कृता रेखा ४। इत्य दृष्टान्तमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकमाह—" एवामेव " इत्यादि—एवमेव–पर्वतादिराजिनिदर्शनेन, क्रोधः – कषायविशेषः, चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–पर्वतराजिसमानः–पर्वतोल्लिखितरेखा तुल्यः क्रोधो भवति, यथा पर्वतोल्लिखिता रेखा दुरुस्थादनपायिनी भवति, तथा तत्सदृशः क्रोधोऽपि दुरनुव चस्त्वादनपायो भवति। अयं चानन्तानुबन्धिस्वरूपो भवतीति १। तथा–पृथिवीराजिसमान क्रोधः, यथा–पृथिव्यामुल्लिखिता रेखा हीनत्वादल्प-

कषाय का स्वरूप कहा जाता है—" चत्तारि राईओ पण्णत्ताओ त जहा " इत्यादि। ५५

टीकार्थ-राजियाँ (लकीर) चार कही गईहैं। जैसे पर्वतराजि१, पृथिवीराजि२, वालुकाराजि ३, उदकराजि ४। इसी प्रकार से अनन्तानुबन्धी १, अप्रत्याख्यान २, प्रत्याख्यान ३, और संज्वलन सम्बन्धी क्रोध भी चार प्रकार का कहा गया है, जैसे अनन्ताऽनुबन्धी क्रोध १, पर्वतराजी के समान होता है, अप्रत्याख्यानी क्रोध २, पृथिवीराजीके समान होता है, प्रत्याख्यानी क्रोध ३, वालुकारेखा के समान होता है, सज्वलन अनन्तानुबन्धी क्रोध ४। जलरेखा समान होता है।

" पव्वई राइसमाणं कोह अणु० " इत्यादि।

पर्वतराजी के समान अनन्तानुबन्धी क्रोधमें प्रविष्ट हुवा जीव यदि मरता है तो वह नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है, द्वीतीय पृथिवीराजी के समान अप्रत्याख्यान क्रोधमें प्रविष्ट हुवा जीव यदि मरता है तो

તેથી હવે સૂત્રકાર કષાયોના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે
" ચત્તારિ રાઈઓ પણ્ણત્તાઓ–તંજહા " ઇત્યાદિ—
ટીકાર્થ–ચાર પ્રકારની રાજિઓ કહી છે તે ચાર પ્રકારો આ પ્રમાણે છે– (૧) પર્વતરાજિ, (૨) પૃથ્વીરાજિ, (૩) વાલુકારાજિ અને (૪) ઉદકરાજિ
એ જ પ્રમાણે ક્રોધના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અનન્તાનુબંધી, (૨) અપ્રત્યાખ્યાન, (૩) પ્રત્યાખ્યાન અને (૪) સંજવલન
અનન્તાનુબંધી ક્રોધ પર્વતરાજિ સમાન છે, અપ્રત્યાખ્યાની ક્રોધ પૃથ્વી રાજિ સમાન છે પ્રત્યાખ્યાની ક્રોધ વાલુકારેખા સમાન છે, અને સંજવલન સંબંધી ક્રોધ જલરેખા સમાન છે
" પવ્વઈ રાઈ સમાણં કોહં અણુ૦ " ઇત્યાદિ—પર્વતરાજિ સમાન અનન્તાનુબંધી ક્રોધમાં પ્રવિષ્ટ થયેલો જીવ જો મરણ (મરી) જાય છે, તો નરક-

ऽऽयासेनैवापनीयते, तथैव यः क्रोधो हीनानुबन्धत्वादपनीयते स पृथिवीराजिस मानः क्रोधः, अयं चाऽऽप्रत्याख्यानरूपो भवतीति २। तथा वालुकाराजिसमानः

वह तिर्यञ्चगतिमें उत्पन्न होता है, तीसरा वालुकाराजी के समान प्रत्याख्यान क्रोधमें प्रविष्ट हुवा जीव यदि मरता हैं वह मनुष्यगतिमें उत्पन्न होता है, और चौथा उदकराजी के समान संज्वलन क्रोध में प्रविष्ट हुवा जीव यदि मरजाता है तो वह देवगति में उत्पन्न होता है, यहां राजी रेखाका वाचक शब्द है, जिस प्रकार पर्वत के ऊपर उत्कीर्ण (उकेरी गई) रेखा दृढ होकर मिटती नहीं है, चिरकाल तक स्थायी रहती है वैसे ही जो क्रोध दृढानुबन्धवाला होता है वह जल्दी शान्त नहीं होता है, किन्तु चिरकाल तक स्थायी रहता है दीर्घ संसार का कारण होता है। इसलिये ऐसे क्रोधको पर्वतरेखाके समान प्रगट किया गया है, द्वितीय क्रोध को पृथिवीरेखाके समान कहा गया है उसका कारण ऐसा है कि पृथिवी पर की गई रेखा पर्वत पर की गई रेखा हीन होती है वह दीर्घकाल तक स्थायी नहीं रह सकती है धीरे २ अल्प प्रयास से मिटाई जा सकती है। इसी प्रकार द्वितीय क्रोध भी हीनानुबन्ध होने से दूर किया जा सकता है २, तृतीय प्रकार का क्रोध

ગતિમા ઉત્પન્ન થાય છે અપ્રત્યાખ્યાની ક્રોધમાં પ્રવિષ્ટ થયેલો જીવ જો મરી જાય તો તિર્યગ્ગતિમાં ઉત્પન્ન થાય છે. પ્રત્યાખ્યાની ક્રોધમા પ્રવિષ્ટ થયેલો જીવ જો મૃત્યુ પમે તો મનુષ્યાદિમાં ઉત્પન્ન થાય છે. સંજ્વલન ક્રોધમાં પ્રવિષ્ટ થયેલો જીવ જો મૃત્યુ પામે તો દેવગતિમાં ઉત્પન્ન થાય છે અહીં "રાજિ" પદ રેખાનું વાચક છે જેમ પર્વત પર ઉત્કીર્ણ થયેલી રેખા લાંબા સમય સુધી નષ્ટ થતી નથી, એ જ પ્રમાણે જે ક્રોધ દૃઢાનુબન્ધવાળો હોય છે, તે જલ્દી શાન્ત થતો નથી, પણ દીર્ઘકાળ પર્યન્ત સ્થાયી રહે છે, દીર્ઘ સંસારનું કારણ બને છે, તે કારણે એવા ક્રોધને શૈલરેખા સમાન કહ્યો છે. બીજા ક્રોધને (અપ્રત્યાખ્યાની ક્રોધને) પૃથ્વી પર કરેલી રેખાસમાન કહ્યો છે, કારણ કે પૃથ્વી પર કરવામાં આવેલી રેખા શૈલરેખા જેટલા દીર્ઘકાળ પર્યન્ત ટકી શકતી નથી–તેને ધીરે ધીરે અલ્પ પ્રયાસથી પણ નષ્ટ કરી શકાય છે. એ જ પ્રમાણે અપ્રત્યાખ્યાની ક્રોધ પણ હીનાનુબન્ધવાળો હોવાને કારણે દૂર કરી શકાય એવો હોય છે. ત્રીજા પ્રકારનો ક્રોધ રેતીપર કરેલી રેખા

क्रोध, यथा-वालुकायां कृता रेखा हीनतरत्वादक्षस्मादुत्थितैः पवनादिभिरपनी यते, तथैव यः क्रोधो हीनतरानुबन्धत्वादपनीतो भवति, स क्रोधो वालुकाराजि समानः। अयं क्रोध प्रत्याख्यानावरणरूपो भवति ३। तथा-उदकराजिस मानः क्रोधः। यथा-उदके कृता रेखा हीनतमत्वात् स्वयमेवापनीता भवति, तथैव यः क्रोधो हीनतमानुबन्धत्वात् स्वयमेवापयाति स क्रोध उदकराजिसमानो भवति अयं च सञ्ज्वलनरूपो भवतीति।

इत्थं क्रोधस्य चतुरो भेदानुपदर्श्य सम्प्रति तत्र प्रविष्टा जीवाः कां गतिं लभन्त इत्याह-" पुढविराइसमाणं कोहं " इत्यादि। तत्र प्रथम भङ्गानुप्रविष्टो जीवः कालं करोति स नैरयिकेषूत्पद्यते १, द्वितीय तिर्यग्योनिकेषु २, तृतीय मनुष्येषु ३, चतुर्थे तु देवेषु ४॥

इति क्रोधचतुष्टयानुप्रविष्टजीवस्य गतिचतुष्टयनिरूपणम् ।१।

वालुकाके ऊपर की गई रेखा समान होता है, जैसे-वालुका में की गई रेखा पृथिवी के ऊपर की गई रेखा के समान अपेक्षाकृत हीनतर हल्की होती है, अधिक समय तक स्थायी नहीं रहती है अकस्मात्-उत्थित वायु आदि कारणों से वह दूर की जाती है, उसी प्रकार तृतीय क्रोध भी हीनतरानुबन्ध होने से शीघ्र दूर किया जा सकता है, इसी कारण इसे वालुकाराजि (रेखा-लकीर) कहा गया है, तथा चौथा क्रोध जो कि जलरेखा समान कहा गया है उसका तात्पर्य ऐसा है कि यह अपने आप मिट जाता है इसे हटाने में प्रयास नहीं करना पड़ता है, जल रेखा धूली में की गई रेखासे हीनतम-हल्की होती है, अतः यह हीन तम अनुबन्धवाली होता है इसी कारण शैलगत रेखा जैसे क्रोध को अनन्तानुबन्धी स्वरूप, और पृथिवीगत रेखा जैसे क्रोधको अप्रत्याख्यान

સમાન હોય છે જેમ રેતી પર કરેલી રેખા પૃથ્વીપર કરેલી રેખા કરતા હીન તર હોય છે અધિક સમય સુધી સ્થાયી રહે એવી હોતી નથી અકસ્માત કોઈ વાયુ આદિનો જ્યારે આવે તો પણ તે નષ્ટ થઈ જાય એવી હોય છે એજ પ્રમાણે પ્રત્યાખ્યાની ક્રોધ પણ હીનતરાનુબન્ધવાળો હોવાથી શીઘ્ર દૂર કરી શકાય એવો છે, તેથી તેને વાલુકારાજિ સમાન કહ્યો છે ચોથાક્રોધને જલરેખા સમાન કહેવાનું કારણ નીચે બતાવ્યું છે—

આ ક્રોધ પોતાની મેળે જ શાન્ત થઈ જાય છે-તેને દૂર કરવાનો પ્રયત્ન કરવો પડતો નથી. જળરેખા વાલુકારેખા કરતાં પણ હીનતમ-હલકી હોય છે. તે કારણે તે હીનતમ અનુબન્ધવાળી હોય છે આ રીતે પર્વત પર રેખા જેવા ક્રોધને અનન્તાનુબન્ધી સ્વરૂપ, પૃથ્વીગત રેખા સમાન ક્રોધને અપ્રત્યાખ્યાન રૂપ

अथ मानप्ररूपणा—

"चत्तारि थंभा" इत्यादि—स्तम्भाः-प्रसिद्धाः, ते चत्वारः प्रज्ञप्ताः, शैलस्तम्भः-शैल-शिलाया विकारः शैलः-पाषाणमयः, स चासौ स्तम्भश्च शैलस्तम्भः १, अस्थिस्तम्भः-अस्थि-प्रसिद्धं, तद्रूपस्तम्भः २, दारुस्तम्भः-दारु-काष्ठं, तद्रूपस्तम्भः ३, तिनिशलतास्तम्भः-तिनिशः-तदाख्यवृक्षविशेषः 'वञ्जुल' इति तत्पर्यायः, तस्य लता तिनिशलता, सा चात्यन्तमृद्वी भवति, तद्रूपस्तम्भः ४।

"एवामेवे"—त्यादि-एवमेव-स्तम्भवदेव मानश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-'शैलस्तम्भसमान' इत्यारभ्य 'यावत्' तिनिशलतास्तम्भसमान इतिपर्यन्तो मानो बोध्यः, एवं च-शैलस्तम्भसमानः १, अस्थिस्तम्भसमानः २, दारुस्तम्भ-

---

रूप, धूलिगत रेखा जैसे क्रोध को प्रत्याख्यातरूप, एवं जलगत रेखा जैसे क्रोध को संज्वलनरूप कहा गया है।

"चत्तारिथंभा पण्णत्ता" इत्यादि। मानकषाय की प्ररूपणा करने के लिये चार स्तम्भो की प्ररूपणा सूत्रकार करते हैं—स्तम्भ चार कहे गये हैं, जैसे-शैलस्तम्भ १, अस्थिस्तम्भ २, दारुस्तम्भ ३ और तिनिशलता (तृण) स्तम्भ ४। इसी प्रकार से चार प्रकार का मान कहा गया है, जैसे—शैलस्तम्भ समान मान१, यावत्—तिनिशलतास्तम्भ समान मान ४ तात्पर्य इस कथन का ऐसा है-पत्थर से बनाया गया जो स्तम्भ होता है वह शैलस्तम्भ है, यह शैलस्तम्भ चाहे भले टूट जाय लेकिन झुकता नहीं, इसी प्रकार जो जीव शैलस्तम्भ समान मानकषायवाला होता

વાલુકારેખા સમાન ક્રોધને પ્રત્યાખ્યાત રૂપ અને જલરેખા સમાન ક્રોધને સંજ્વલન રૂપ કહ્યો છે

"चत्तारि थभा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

માનકષાયની પ્રરૂપણા કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર ચાર પ્રકારના સ્તંભોની પ્રરૂપણા કરે છે. સ્તભના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) શૈલસ્તંભ (૨) અસ્થિસ્તભ, (૩) દારૂસ્તંભ અને (૪) તિનિશલતા સ્તંભ એ જ પ્રમાણે માનના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) શૈલસ્તભ સમાન માન ઇત્યાદિ "તિનિશલતા સ્તભ સમાન માન" પર્યન્તના ચાર પ્રકાર સમજવા.

આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—પત્થરમાંથી બનાવેલા સ્તંભને શૈલસ્તંભ કહે છે. આ શૈલસ્તભ ભલે તૂટી જાય પણ ઝૂકતો નથી એ જ પ્રમાણે જે મનુષ્ય શૈલસ્તભ સમાન માન કષાયવાળો હોય છે, તે કોઇ પણ

समान ३, तिनिशलतास्तम्भसमानम ४ मानो भवति। क्रोधवन्मानोऽप्यनन्तानु बन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानाऽऽवरणसञ्ज्वलनरूपः क्रमेण ज्ञेयः। तत्र शैलादिस्त

है वह कभी भी किसीभी हालत में झुकता नहीं है उसका सर्वनाश ही क्यों न हो जाय। अस्थिस्तम्भ समान जो मान होता है वह-शैल-निर्मित स्तम्भ की अपेक्षा कम कडा होता है अधिकतम आयास से कदाचित् झुकाया भी जा सकता है, इसी प्रकार जो मान अस्थिनिर्मित स्तम्भ जैसा होता है वह अधिकाऽधिक आयास से विनम्र किया भी जा सकता है २। दारु-लकडी का जो स्तम्भ होता है वह अस्थि निर्मित स्तम्भ की अपेक्षा कडाई में अधिक हीन होता है वह अल्प प्रयास से विनम्र कर दिया जाता है। इसी प्रकार जो मान काष्ठनिर्मित शैलका जैसा होता है वह भी अल्प प्रयाससे ही विनम्र हो जाता है। और जो तिनिशवृक्ष की लतासे निर्मित स्तम्भ होता है वह काष्ठ निर्मित स्तम्भ की अपेक्षा कडाई में बिलकुल ही हीन होता है अतः इसे झुकाने में नगण्य जैसा प्रयास करना पडता है वह बहुत जल्दी झुक जाता है। इसी प्रकार जो मान तिनिशवृक्षलता निर्मित स्तम्भ जैसा होता है वह बहुत ही शीघ्र प्रयाससे झुका दिया जाताहै। शैल

પરિસ્થિતિમાં ઝૂકતો નથી, તેનો સર્વનાશ થઈ જાય તો પણ તે માનભાવનો ત્યાગ કરતો નથી. અસ્થિસ્તંભ સમાન જે માન હોય છે, તે શૈલ નિર્મિત સ્તંભ કરતાં ન્યૂનતર ચીકાશવાળુ હોય છે અસ્થિ સ્તંભને અધિકતમ પ્રયત્નો વડે કયારેક ઝુકાવી પણ શકાય છે, એજ પ્રમાણે જે માન અસ્થિ સ્તંભ સમાન હોય છે, તેને અધિક અધિક પ્રયાસો દ્વારા વિનમ્ર પણ કરી શકાય છે કાષ્ઠ નિર્મિત સ્તંભને દારૂસ્તંભ કહે છે તે સ્તંભ અસ્થિનિર્મિત સ્તંભ કરતાં પણ કઠિનતાની અપેક્ષાએ અધિક હીન હોય છે જેમ કાષ્ઠનિર્મિત સ્તંભને અલ્પ પ્રયાસથી પણ ઝૂકાવી શકાય છે એ જ પ્રમાણે કાષ્ઠનિર્મિત સ્તંભ જેવા માનને પણ અલ્પ પ્રયાસથી વિનમ્ર કરી શકાય છે. તિનિશ વૃક્ષની લતામાંથી બનાવેલા સ્તંભને તિનિશલતા સ્તંભ કહે છે તે કાષ્ઠ નિર્મિત સ્તંભ કરતાં પણ ન્યૂનતમ કઠિનતાવાળો હોય છે જેમ તેને ઝુકાવવા માટે નહીં જેવા પ્રયાસની જ જરૂર પડે છે, તેમ તિનિશલતા સમાન માનને પણ બહુ જ ન્યૂન પ્રયાસથી પણ ઝુકાવી શકાય છે

અનન્તાનુબન્ધી માનને શૈલ સ્તંભ સમાન, અપ્રત્યાખ્યાની માનને અસ્થિ નિર્મિત સ્તંભ સમાન, પ્રત્યાખ્યાની માનને કાષ્ઠ નિર્મિત સ્તંભ સમાન અને સંજ્વલન માનને તિનિશ વૃક્ષલતા નિર્મિત સ્તંભ સમાન કહ્યું છે.

म्भसमानमानोदयवर्तिजीवस्य फलानि दर्शयति-" सेलथंभसमाणं माणं " इत्यादिना। एतद्विवरणं क्रोधोदयवर्तिजीवफलसूत्रवद् बोध्यम्। ।२।

" चत्तारि केयणा " इत्यादि—केतनानि-सामान्येन वक्राणि वस्तूनि, यद्वा-पुष्पकरण्डस्य वंशादिदलकनिर्मितमुष्टिग्रहणस्थानानि, तानि च वक्राणि भवन्ति, परन्त्वत्र केतनपदेन सामान्येन वक्राणि वस्तूनि गृह्यन्ते, तानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-वंशीमूलकेतनं-वंशी-वंशः तस्या मूलं वंशीमूलं, तच्च तत्के-

निर्मित स्तम्भ जैसा अनन्तानुबन्धीमान अस्थिनिर्मित स्तम्भ जैसा अप्रत्याख्यानीमान काष्ठनिर्मित शैल जैसा प्रत्याख्यानीमान, और तिनिशवृक्षलता जैसा संज्वलनमान होता है। तिनिशवृक्षका पर्याय 'वञ्जुल' ऐसा भी है इसकी लता मृद्वी-अति कोमल होती है-जल्दी झुक जाती है। शैलनिर्मित स्तम्भ जैसा मानवाला जीव मर कर नरकगति में, अस्थिनिर्मित स्तम्भ जैसा मानयुक्त जीव मरकर तिर्यञ्चगति में, काष्ठनिर्मित स्तम्भ जैसा मानशाली जीव मरकर मनुष्यगतिमें, और तिनिश वृक्षलता निर्मित स्तम्भ जैसा मानसंयुक्त जीव मरकर देवगतिमें जाता है।और अवशिष्ट कथन क्रोधोदयवर्ती जीव फलसूत्र जैसा जानना चाहिये।

" चत्तारि केयणाणि " इत्यादि । चार वक्र-टेढी वस्तुयें कही गई है, यहां-" केतन " शब्द सामान्य रूपसे वक्रता का वाचक है। इससे जो वक्र वस्तुयें हैं वे गृहीत की गई हैं। अथवा-पुष्पकरण्डक (साजी) को उठाने में जो बांश की डण्टी लगी है वही वक्रताकेतन

તિનિશ વૃક્ષને વજ્જુલ પણ કહે છે તેની લતા મૃદ્વી અતિ કોમળ હોય છે, તેથી તે જલ્દી નમી જાય એવી હોય છે. શૈલનિર્મિત સ્તંભ સમાન માનવાળો જીવ મરીને નરકગતિમાં, અસ્થિનિર્મિત સ્તંભ સમાન માનવાળો મનુષ્ય મરીને તિર્યંગ્ ગતિમાં, કાષ્ઠ નિર્મિત સ્તભ સમાન માનવાળો પુરુષ મરીને મનુષ્ય ગતિમાં અને તિનિશ વૃક્ષલતા નિર્મિત સ્તંભ સમાન માનવાળો પુરુષ મરીને દેવગતિમાં જાય છે બાકીનું સમસ્ત કથન ક્રોધોદયવર્તી જીવફલ સૂત્ર અનુસાર સમજવું " चत्तारि केयणाणि " ઇત્યાદિ—

ચાર પ્રકારની વક્ર વસ્તુઓ કહી છે. અહીં " केतन " પદ સામાન્ય રૂપે વક્રતાનું વાચક છે તેના દ્વારા અહીં વક્ર વસ્તુઓ ગ્રહણ કરવામાં આવી છે, અથવા કરંડકને-ટોપલીને બનાવવામાં જે વાંસની ચીપો વપરાય છે તેમને અહીં ' વક્રતાકેતન ' પદ દ્વારા ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે ચાર પ્રકારની

तन च वंशीमूलकेतनं-वंशीमूलरूपवक्रमित्यर्थः १, तथा-मेढूविषाणकेतनं-मेढूः-मेषः, तस्य विषाणं-शृङ्गं मेढूविषाण, तच्च तत्केतनं च तथा २, गोमूत्रिकाकेतन गोमूत्रिका-प्रसिद्धा, तद्रूप केतनम् ३, अवलेखनिकाकेतनम्-अवलेखनिका-पाट्यमानवंशशलाकामसृतेः सूक्ष्मतरा (मवन्वी) त्वक् तद्रूप केतनम् ४।

" एवामेवे "—स्यादि-एवमेव-केतनवदेव, माया-कषायविशेषः, चतुर्विधा मज्ञप्ता, तद्यथा-वंशीमूलकेतनसमाना-वंशीमूलकेतनसदृशी माया भवति, तत्र तत्सादृश्यं च मायायां तद्वत्सामनार्जवमेदात् । तथाहि-यथा वंशीमूलमतिगुप्तवक्र भवति, तथा मायाविनां मायाऽपि वक्रवक्रा भवति १, ' यावत् ' वंशीमूलकेतन समानेत्यारम्य ' अवलेखनिकाकेतनसमानेतिपर्यन्ता माया बोध्या, एव च-मेढू

शब्द से यहां गृहीत है । वक्र चार कहे गये हैं, जैसे-वंशीमूलकेतन-(वांसकी जडरूप वक्रता) १ मेषविषाणकेतन (मेषसींगरूप वक्रता) २ गोमूत्रिका केतन (गोमूत्रकी रेखारूप वक्रता) ३ और अवलेखनिका केतन (वांसकी शलाका) पेंचको छोलते समय जो उसका ऊपर-नीचेका छोलन निकलता है वह निकलते ही वक्र होता है ऐसा जो केतन है वह अवलेखनिका केतन है ४ । जैसे ये केतन चार कहे गये हैं, इसी प्रकार मायारूपकषाय विशेष भी चार कहा गया है । इनमें एक माया ऐसी होती है जो वंशीमूल केतन जैसी होती है । वांसका मूल भाग बहुत अधिक अनार्जवतावाला (वक्र) होता है । अत -अतिगुप्त वक्रतावाला होने से उसकी वक्रता कटती नहीं है, उसी प्रकार मायावियों की भी जिस माया कटती नहीं है ऐसी वह वक्र वक्रमाया वंशीमूलकेतन जैसी कही गई है । मेढूविषाण केतन के स-

વક્ર વસ્તુઓ કહી છે-જેમકે (૧) વંશીમૂલકેતન (વાંસની જડરૂપ વક્રતા) (૨) મેંઢ વિષાણ કેતન (ઘેટાના સીંગ સમાન વક્રતા) (૩) ગોમૂત્રિકા કેતન (ગોમૂત્રની રેખા રૂપ વક્રતા) (૪) અવલેખનિકા કેતન (વાંસની સળીઓને છોલતી વખતે તેનો જે છોલ પડે છે તે વક્ર જ હોય છે એવી તે વક્રતાને અવલેખનિકાકેતન કહે છે આ કેતનના જેવા ચાર પ્રકાર કહ્યા છે, એવા જ ચાર પ્રકાર માયારૂપ કષાય વિશેષના પણ કહ્યા છે

(૧) "વાંસમૂલ કેતન સમાન માયા"—વાંસનો મૂળ ભાગ ખૂબ જ અનાર્જવતાવાળો હોય છે તે કારણે તે અતિગુપ્ત વક્રતાવાળો હોય છે, તેથી તેની વક્રતાની ખબર પણ પડતી નથી. એ જ પ્રમાણે માયાવી પુરુષોની માયાને જાણી શકાતી નથી એવી તે વક્ર-વક્ર માયાને વાંસમૂલ કેતન જેવી

विषाणकेतनसमाना २, गोमूत्रिकाकेतनसमाना ३, अवलेखनिकाकेतनसमाना च माया भवतीति पर्यवसितम् । तत्र मेढ्रविषाणकेतनसमाना मायिनां माया वक्रा भवति २, गोमूत्रिकाकेतनसमाना मायाऽल्पवक्रा भवति ३, अवलेखनिकाकेतनसमाना माया तु अल्पतरवक्रा भवति ४। इयं च क्रमेणानन्तानुबन्ध्य १ प्रत्याख्यान २ प्रत्याख्यानाऽऽवरण ३ संज्वलन ४ रूपा बोध्या अपरे तु प्रत्येकं मायाऽनन्तानुबन्ध्यादिरूपाऽस्तीत्याहुः, अत एवानन्तानुबन्धिन्या मायाया उदयेऽपि देवत्वादिप्राप्तिर्न विरुध्यते। तत्र क्रमेण वंशीमूलकेतनसमानादि–मायाचतुष्टयानुप्रविष्टजीवस्य गतिं दर्शयति–" वंशीमूलकेतनसमाणं मायं " इत्यादिना, तत्राऽऽद्यां मायामनुप्रविष्टो मायोदयवर्ती जीवः कालं करोति चेद् नैरयिकेषु–नारके-

मान वह माया है जो केवल वक्र होती है। तथा गोमूत्रिकाकेतन समान वह माया है, एवं अवलेखनिका केतन समान वह माया है जो अल्पतर वक्रतावाली होती है। वंशीमूल केतन जैसी जो माया होती है वह अनन्तानुबन्ध सम्बन्धी होती है। मेढ़विषाण केतन जैसी माया अप्रत्याख्यान कषाय सम्बन्धिनी होती हैं। गोमूत्रिका केतन जैसी माया प्रत्याख्यान कषाय सम्बन्धिनी होती है और अवलेखनिका केतन जैसी माया संज्वलन कषाय सम्बन्धिनी होती है। कोई एक ऐसा कहते हैं कि–प्रत्येक माया अनन्तानुबन्धी आदिरूप है। इसीलिये अनन्तानुबन्धिनी माया के उदय में देवत्वादि पद प्राप्ति विरुद्ध नहीं होती है। " वंशीमूलकेतनसमाणं मायं " इत्यादि । जो जीव वंशीमूलकेतन समान मायामें प्रविष्ट होता है मायोदयवाला होता है ऐसा वह जीव यदि कालवश हो जाता है तो वह नरकों में उत्पन्न होता है १ द्वितीय

કહી છે. (૨) " મેષ વિષાણુ કેતન સમાન માયા "–જે માયા કેવળ વક્ર જ હોય છે તેને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે. (૩) " ગોમૂત્રિકા કેતન સમાન માયા " જે માયા અલ્પ વક્રતાવાળી હોય છે તેને ગોમૂત્રિકા કેતન સમાન માયા કહે છે (૪) " અવલેખનિકા કેતન સમાન માયા "–આ માયા અલ્પતર વક્રતાવાળી હોય છે અનન્તાનુબંધી માયાને વાંસમૂલ કેતન સમાન, અપ્રત્યાખ્યાન સંબંધી માયાને મેષ વિષાણુ કેતન સમાન, પ્રાયાખ્યાત કષાય સંબંધી માયાને ગોમૂત્રિકા કેતન સમાન અને સંજવલન કષાય સંબંધી માયાને અવલેખનિકા કેતન સમાન કહી છે. કોઈ કોઇ સિદ્ધાતકારો એવું કહે છે કે પ્રત્યેક માયા અનન્તાનુબન્ધી આદિ રૂપ છે. તેથી અનન્તાનુબન્ધિની માયાના ઉદયમાં પણ દેવત્વ આદિનો સદ્‌ભાવ સંભવી શકે છે. " વંશીમૂલકેતન સમાણં માયં " વાસનામૂલ કેતન સમાન માયામાં પ્રવિષ્ટ થયેલ જીવ (માયાના ઉદયવાળો જીવ) જો મૃત્યુ પામે છે, તો નરકગતિમા ઉત્પન્ન થાય છે. બીજા

पूत्पद्यते १, द्वितीयमायानुप्रविष्टोजीवस्तिर्यक्षु २ तृतीयमायाऽनुप्रविष्टो मनुष्येषु ३, चतुर्थमायाऽनुप्रविष्टो देवेषूत्पद्यते ४। इति मायाचतुष्टयानुप्रविष्ट जीवस्य गतिचतुष्टयनिरूपणम् ।

" चत्तारि वत्था " इत्यादि–वस्त्राणि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–कृमिरागरक्तं–कृमिरागसूत्रविषये इत्थं जनश्रुतिः–क्वचिद्देशे मनुष्यादिशोणितं गृहीत्वा केनापि योगेन योजयित्वा भाजने स्थाप्यते। तस्मिन् प्रचुराः कृमयः समुत्पद्यन्ते। तेन पवनाभिलाषिणो भाजनच्छिद्रेभ्यो निर्गत्य तदासन्न पर्यटन्तो लालामा

माया में अनुप्रविष्ट हुवा जीव यदि कालवश होता है तो वह तिर्यञ्च गतिमें उत्पन्न होता है २ तृतीय मायामें प्रविष्ट हुवा जीव यदि काल वश हो जाताहै तो वह मनुष्यगतिमें उत्पन्न हो जाताहै, और चौथी माया में अनुप्रविष्ट जीव यदि कालवश होताहै तो वह देवोंमें उत्पन्न होताहै४।

" चत्तारि वत्था " इत्यादि। वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे कोई एक वस्त्र ऐसा होता है जो कृमिराग से रगा हुवा होता है, इस कृमिराग सूत्रके विषय में ऐसी जनश्रुति सुनने में आती है कि– किसी देशमें मनुष्य आदिके शोणितको लेकर उसमें किसी (एक पदार्थ) को योगकर किसी पात्रमें उसे रखा जाता है, उसमें धीरे धीरे कृमियाँ(कीडे)उत्पन्न हो जातेहैं वे जब पवनाऽभिलापी होकर छिद्रों द्वारा उसमें से बाहर निकल आते हैं तब वे उसके आसपासमें घूमने फिरने

પ્રકારની માયાવાળો જીવ જો મૃત્યુ પામે છે તો તિર્યંચગતિમાં ઉત્પન્ન થાય છે ત્રીજા પ્રકારની માયામાં પ્રવિષ્ટ થયેલો જીવ જો મરણ પામે છે તો મનુષ્યગતિમાં ઉત્પન્ન થાય છે અને ચોથા પ્રકારની માયામાં પ્રવિષ્ટ થયેલો જીવ જો મરણ પામે છે, તો દેવગતિમાં ઉત્પન્ન થાય છે

" चत्तारि वत्था " ઇત્યાદિ–

વસ્ત્રના ચાર પ્રકાર કહ્યાં છે તે ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે–(૧) કૃમિ રાગથી (રંગથી) રંગેલું વસ્ત્ર, (૨) કર્દમ રાગથી રંગેલું વસ્ત્ર (૩) ખંજન રાગથી રંગેલું વસ્ત્ર અને (૪) હળદી–હળદર રંગથી રંગેલું વસ્ત્ર.

કૃમિરાગ સૂત્રના વિષયમાં એવી જનશ્રુતિ (દંતકથા) પ્રચલિત છે કે કોઈ એક દેશમાં મનુષ્ય આદિનું લોહી લઈને તેમાં કોઈ એક પદાર્થનું મિશ્રણ કરીને તેને કોઈ પાત્રમાં રાખી મૂકવામાં આવે છે તેની અંદર ધીમે ધીમે કૃમીઓ ઉત્પન્ન થવા માંડે છે. તેઓ જ્યારે પવનાભિલાષી થઈને છિદ્રો દ્વારા બહાર નીકળી આવે છે ત્યારે તેની આસપાસ જ ભમ્યા કરે છે અને પોતાની

मुञ्चन्ति। ताश्च कीलकेषु लग्नाः परिगृह्यन्ते। तत् कृमिरागं पट्टसूत्रमुच्यते। तच्च रक्तवर्णकृमिसमुत्पन्नत्वात् स्वभावत एव रक्तं भवतीति कृमिरागरक्तम् १, तथा–कर्दमरागरक्तं–कर्दमः–गोमार्गादिपङ्कः, तस्य रागः–रञ्जकरसः कर्दमरागः, तेन रक्तम् २, तथा–खञ्जनरागरक्तं ' खञ्जनमि '-ति देशीयः शब्दः कज्जलवाचकः, तस्य रागः खञ्जनरागस्तेन रक्तम् ३, तथा–हरिद्रा प्रसिद्धा, तस्या रागो हरिद्रारागस्तेन रक्त हरिद्रारागरक्तम् ४,

लगते हैं और अपनी लार छोडने लगते हैं। इस तरह वह लाला–लार कीलकों में लग जाती है जो कि बादमें उठा ली जाती है। ऐसा कृमिरागवाला पट्टसूत्र कहा जाता है यह पट्टसूत्र रक्तवर्णवाले कृमियों से समुत्पन्न होनेके कारण स्वभावतः ही लाल होता है।

तथा—कोई एक वस्त्र ऐसा होता है जो कर्दमरागसे रक्त होता है। गाय आदि जीव जिस रास्तेसे निकलते हैं उस मार्गका जो पङ्क है वह यहां कर्दम शब्दसे गृहीत हुवा है। इस कर्दमका जो रञ्जकरस है वह कर्दमराग है, इससे रंगा हुवा जो वस्त्र है वह–कर्दमरागरक्त वस्त्रहै। तथा कोई एक वस्त्र ऐसा होता है जो खञ्जनराग से रक्त होता है। यहां-" खञ्जन " शब्द देशीय है, इसका अर्थ कज्जलके रागसे रंगा हुवा जो वस्त्र है वह खञ्जनरागरक्त वस्त्र है। तथा–कोई एक ऐसा वस्त्र होता है जो हल्दीके रंगसे रंगा हुवा होता है। तो इसी तरह लोभ

લાળ તેના પર છોડવા માંડે છે આ લાળ તે છિદ્રો પર જામી જાય છે. તેને ત્યારબાદ એકઠી કરી લેવામાં આવે છે. એવા કૃમી રંગથી રંગેલા વસ્ત્રને કૃમિ રાગવાળું વસ્ત્ર કહે છે આ વસ્ત્ર લાલ રંગવાળા કૃમીઓના લાળરસ વડે રંગેલુ હોવાથી સ્વાભાવિક રીતે જ લાલ હોય છે. (૨) કોઇ એક વસ્ત્ર એવું હોય છે કે જે કર્દમ રાગથી રક્ત ધૂળથી ખરડાયેલું હોય છે. ગાય આદિ પ્રાણીઓ જે માર્ગેથી પસાર થતા હોય છે તે માર્ગનો જે પંક એટલે કે કાદવ છે તેને અહીં કર્દમ પદ દ્વારા ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. આ કર્દમનો જે રંજક રસ છે તેનુ નામ કર્દમ રાગ છે, તેનાથી રંગાયેલા વસ્ત્રને કર્દમ રાગ રક્ત વસ્ત્ર કહે છે. (૩) કોઈ એક વસ્ત્ર એવું હોય છે કે જે ખંજન રાગથી રક્ત હોય છે ખંજન એટલે કાજળ. તે કાજળના રંગથી રંગેલા વસ્ત્રને ખંજન રાગ રક્ત વસ્ત્ર કહે છે. (૪) કોઈ એક વસ્ત્ર એવું હોય છે કે જે હળદરના રંગથી રંગેલું હોય છે.

" एवामेव "—त्यादि–एवमत्र कृमिरागादिरक्तवस्त्रवदेव, लोभश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–कृमिरागरक्तवस्त्रसमान इत्यादि। तत्र कृमिरागरक्तवस्त्रसमानो लोभो दृढानुबन्धत्वादनन्तानुबन्धी भवति। कर्दमरागरक्तवस्त्रसमानो लोभो हीनानुबन्धत्वात् अप्रत्याख्यानो भवति। खञ्जनरागरक्तवस्त्रसमानो लोभो हीनतरानुबन्धत्वात् प्रत्याख्यानावरणो भवति। हरिद्रारागरक्तवस्त्रसमानश्च लोभो हीनतमानुबन्धत्वात् सञ्ज्वलनो भवति। तथाहि–यथा–कृमिरागरक्तं वस्त्रं दग्धमपि रागानुबन्धं न त्यजति, तद्भस्मनोऽपि रक्तत्वात् प्रवालभस्मवत्, तथा यो जीवो मृतोऽपि लोभानुबन्धं न त्यजति तस्य लोभः कृमिरागरक्तवत् दृढोऽनन्तानुबन्धी च

भी चार प्रकारका होता है इनमें–जो लोभ कृमिरागरक्त वस्त्रके समान होता है वह–दृढानुबन्धवाला होने से अनन्तानुबन्ध कषाय सम्बन्धी होता है। कर्दमरागरक्त वस्त्रके समान जो लोभ है वह हीनानुबन्धवाला होनेसे अप्रत्याख्यान कषाय सम्बन्धी होता है। खञ्जन रागरक्त वस्त्रके समान जो लोभ होता है वह हीनतर अनुबन्धवाला होनेसे प्रत्याख्यान कषाय सम्बन्धी होता है। तथा–हरिद्रारागसे रक्त वस्त्र जैसा जो लोभ होता है वह सञ्ज्वलनकषाय सम्बन्धी होता है। तात्पर्य ऐसा है—कि कृमिरागवस्त्र चाहे जल भी जाय तो भी अपने रागानुबन्धको जैसे नहीं छोडता है। क्यों कि–उसकी भस्म भी प्रवाल सी लाल ही लाल रहती है। इसी तरह जो जीव मर जाने पर भी लोभानुबन्ध को नहीं छोडता है उसका वह कृमिरागरक्त की तरह दृढ होने से अनन्तानुबन्ध सबंधी होता है। इसी तरहसे तीनों लोभके विषयमें भी समझ लेना चाहिये इसके

એ જ પ્રમાણે લોભ પણ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે— (૧) કૃમિરાગ રક્ત વસ્ત્ર સમાન લોભ–અનન્તાનુબન્ધિ કષાય સંબંધી જે લોભ છે તેને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે (૨) કર્દમરાગ રક્ત વસ્ત્ર સમાન લોભ–અપ્રત્યાખ્યાન કષાય સંબંધી જે લોભ છે તેને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે (૩) ખંજન રાગ રક્ત વસ્ત્ર સમાન લોભ–પ્રત્યાખ્યાન કષાય સંબંધી લોભને આ પ્રકારનો લોભ કહે છે (૪) હળદર રાગરક્ત વસ્ત્ર સમાન લોભ–સંજ્વલન કષાય સંબંધી લોભને આ પ્રકારનો લોભ કહે છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જેમ કૃમિરાગરક્ત વસ્ત્ર બળી જાય તો પણ પોતાનો રંગ છોડતું નથી તેની રાખ પણ લાલ રંગની જ હોય છે, એ જ પ્રમાણે જે જીવ પોતાનું મૃત્યુ થઈ જાય તો પણ લોભાનુબંધને છોડતો નથી તેનો તે લોભ કૃમિરાગ રક્ત વસ્ત્રની જેમ દૃઢ હોવાથી અનન્તાનુબંધી જ હોય છે. એ જ પ્રમાણે

भवतीति। एवं लोभविशेषत्रयेऽपि विभावनीयम्। एतत्फलनिरूपकसूत्र क्रोध फलसूत्रवद् बोध्यम्। इह कषायप्ररूपणा—

गाथाः—" पव्वओ पुढवी रेणु, दगं चेव चउत्थयं।
एसिं राइनिभो कोहो, वुत्तोऽसिंसि जिणसासणे। १।
सेलो अट्ठी य कट्ठं च, तिणिसस्स लया तहा।
एसिं थंभसमाणो हि, माणो वुत्तो जिणागमे। २।
वंसीमूलं मिंढसिंग, गोमुत्ती अवलेहिया।
एसिं केयणतुल्लं तु, मायमाहु जिणिस्सरा। ३।
किमी पंकोऽजणं चावि, हालिद्दा रागदव्वया।
एएहिं रंजियपटी-तुल्लो लोहो विआहिओ। ४।
जावज्जीवं वरिसं, चाउम्मासं च पक्खयं।
कमा जीवाणुगामीमे, नारगत्तादि साहगा। ५।"

छाया—" पर्वतः पृथिवी रेणु-रुदकं चैव चतुर्थकम्।
एषां राजिनिभः क्रोध, उक्तोऽस्मिञ्जिनशासने। १।
शैलः अस्थि च काष्ठं च, तिनिशस्य लता तथा।
एषां स्तम्भसमानो हि, मान उक्तो जिनागमे। २।
वंशीमूलं मेढ्रशृङ्ग, गोमूत्री अवलेखिका।
एषां केतनतुल्यां तु, मायामाहुर्जिनेश्वरा। ३।
कृमिः पङ्कोऽञ्जनं चापि, हरिद्रा रागद्रव्यकाणि।
एतै रञ्जितपटी-तुल्यो लोभो व्याख्यातः। ४।
यावज्जीवं च वर्षं, चतुर्मासं च पक्षकम्।
क्रमाज्जीवानुगामिन इमे, नारकत्वादि साधकाः।५।" इति।सू०५५॥

फलका निरूपक सूत्र क्रोधफल निरूपक सूत्रकी तरहसे जानना चाहिये। कषायप्ररूपणा गाथाएं—" पव्वओ पुढवी रेणू " इत्यादि।

इस जिनशासनने अनन्तानुबंधी क्रोधको पर्वतकी राजी दरार-तड के समान कहा है, इस प्रकार अप्रत्याख्यानी क्रोधको पृथिवी अर्थात् तलाव की पृथिवी की दरार-तडके समान प्रत्याख्यानी क्रोधके रेणु

લોભના બાકીના ત્રણ પ્રકારો વિષે પણ સમજી લેવું તેના ફળનું નિરૂપણ કરનારૂ સૂત્ર પણ ક્રોધફલ નિરૂપક સૂત્ર સમાન જ સમજવું કષાયની પ્રરૂપણા કરતી ગાથાઓ—" पव्वओ पुढवी रेणू " ઇત્યાદિ.

આ જીન શાસનમાં અનન્તાનુબંધી ક્રોધને પર્વતની રાજી-તડની માફક કહી છે, એજ રીતે અપ્રત્યાખ્યાન ક્રોધને પૃથ્વિી અર્થાત્ તળાવની પૃથ્વિની

"एवामेव"—इत्यादि—एवमेव कृमिरागादिरक्तवस्त्रवदेव, लोभश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—कृमिरागरक्तवस्त्रसमान इत्यादि। तत्र कृमिरागरक्तवस्त्रसमानो लोभो दृढानुबन्धत्वादनन्तानुबन्धी भवति। कर्दमरागरक्तवस्त्रसमानो लोभो हीनानुबन्धत्वाद् अप्रत्याख्यानो भवति। खञ्जनरागरक्तवस्त्रसमानो लोभो हीनतरानुबन्धत्वात् प्रत्याख्यानावरणो भवति। हरिद्रारागरक्तवस्त्रसमानश्च लोभो हीनतमानुबन्धत्वात् संज्वलनो भवति। तथाहि—यथा—कृमिरागरक्तं वस्त्रं दग्धमपि रागानुबन्धं न त्यजति, तद्भस्मनोऽपि रक्तत्वात् प्रवालभस्मवत्, तथा यो जीवो मृतोऽपि लोभानुबन्धं न त्यजति तस्य लोभः कृमिरागरक्तवद् दृढोऽनन्तानुबन्धी च

भी चार प्रकारका होता है इनमें—जो लोभ कृमिरागरक्त वस्त्रके समान होता है वह—दृढानुबन्धवाला होने से अनन्तानुबन्ध कषाय सम्बन्धी होता है। कर्दमरागरक्त वस्त्रके समान जो लोभ है वह हीनानुबन्धवाला होनेसे अप्रत्याख्यान कषाय सम्बन्धी होता है। खञ्जन रागरक्त वस्त्रके समान जो लोभ होता है वह हीनतर अनुबन्धवाला होनेसे प्रत्याख्यान कषाय सम्बन्धी होता है। तथा—हरिद्रारागसे रक्त वस्त्र जैसा जो लोभ होता है वह संज्वलनकषाय सम्बन्धी होता है। तात्पर्य ऐसा है—कि कृमिरागवस्त्र चाहे जल भी जाय तो भी अपने रागानुबन्धको जैसे नहीं छोडता है। क्यों कि—उसकी भस्म भी प्रवाल सी लाल ही लाल रहती है। इसी तरह जो जीव मर जाने पर भी लोभानुबन्ध को नहीं छोडता है उसका वह कृमिरागरक्त की तरह दृढ होने से अनन्तानुबन्ध संबंधी होताहै। इसी तरहसे तीनों लोभके विषयमें भी समझ लेना चाहिये इसके

એ જ પ્રમાણે લોભ પણ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે— (૧) કૃમિરાગ રક્ત વસ્ત્ર સમાન લોભ—અનન્તાનુબંધિ કષાય સંબંધી જે લોભ છે તેને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે (૨) કર્દમરાગ રક્ત વસ્ત્ર સમાન લોભ—અપ્રત્યાખ્યાન કષાય સંબંધી જે લોભ છે તેને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય છે (૩) ખંજન રાગ રક્ત વસ્ત્ર સમાન લોભ—પ્રત્યાખ્યાન કષાય સંબંધી લોભને આ પ્રકારનો લોભ કહે છે (૪) હળદર રાગરક્ત વસ્ત્ર સમાન લોભ—સંજ્વલન કષાય સંબંધી લોભને આ પ્રકારનો લોભ કહે છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જેમ કૃમિરાગરક્ત વસ્ત્ર બળી જાય તો પણ પોતાનો રંગ છોડતું નથી તેની રાખ પણ લાલ રંગની જ હોય છે, એ જ પ્રમાણે જે જીવ પોતાનું મૃત્યુ થઈ જાય તો પણ લોભાનુબંધને છોડતો નથી, તેનો તે લોભ કૃમિરાગ રક્ત વસ્ત્રની જેમ દૃઢ હોવાથી અનન્તાનુબંધી જ હોય છે એ જ પ્રમાણે

अनन्तरं कषायाः प्ररूपिताः तैरेव जीवानां संसारो भवतीति संसारस्वरूपं निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा—णेरइयसंसारे जाव देव संसारो ४। चउव्विहे आउए पण्णत्ते तं जहा—णेरइयआउए जाव देवाउए ४। चउव्विहे भवे पण्णत्ते, तं जहा-णेरइयभवे जाव देवभवे४ ॥५६॥

छाया—चतुर्विधः संसारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—नैरयिक संसारः यावत् देवसंसारः ४।

क्रोधादिमें प्रथमभेद यावज्जीव तक साथ रहनेवाला दूसरा भेद एक वर्षतक, तीसरा भेद चार महीने तक, चौथा भेद एक पक्ष तक जीवके साथ रहनेवाला कहा है।

यहां जो ये पांचवीं गाथा है उससे सूत्रकारने इन क्रोधादिकों का वासनाकाल प्रकट किया है जीवन पर्यन्त तक अनन्तानुबन्धी क्रोध का, अनन्तानुबन्धी मानका, अनन्तानुबन्धी माया का, और अनन्तानुबन्धी लोभका वासनाकाल कहा गया है, इसी तरहसे अप्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोधादिकोंका एक वर्षका, प्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोधादिकों का चार मासका और संज्वलन सम्बन्धी क्रोधादिकोंका एक पक्षका वासनाकाल कहा गया है॥ सू० ५५ ॥

इन प्ररूपित कषायों से ही जीवोंका संसार प्राप्त होता है, अतः—अब सूत्रकार संसारस्वरूप की निरूपणा करनेके निमित्त कहते हैं—

ક્રોધાદિમાં પહેલા ભેદ યાવજ્જીવ પર્યન્ત સાથે રહેવાવાળો, બીજા ભેદને એક વર્ષ સુધી, ત્રીજા ભેદને ચાર મહીના સુધી, ચોથા ભેદને એક પખવાડીયા સુધી જીવની સાથે રહેવાવાળો કહ્યો છે.

અહીં જે પાંચમી ગાથા છે તેના દ્વારા સૂત્રકારે આ ક્રોધાદિકોનો વાસનાકાળ (સ્થાયી રહેવાનો કાળ) પ્રકટ કર્યો છે. અનન્તાનુબન્ધી ક્રોધનો, અનન્તાનુબન્ધી માનનો, અનન્તાનુબન્ધી માયાનો અને અનન્તાનુબન્ધી લોભનો વાસનાકાળ જીવન પર્યન્તનો કહ્યો છે અપ્રત્યાખ્યાન સંબંધી ક્રોધાદિકનો એક વર્ષનો વાસનાકાળ કહ્યો છે. પ્રત્યાખ્યાન સંબંધી ક્રોધાદિકનો ચાર માસનો અને સંજવલન સંબંધી ક્રોધાદિકનો એક પક્ષનો (પખવાડિયાનો) વાસનાકાળ કહ્યો છે ॥ સૂ. ૫૫ ॥

પહેલાના સૂત્રમાં કષાયોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી તે કષાયોને કારણે જ જીવોને સંસારમાં ભ્રમણ કરવું પડે છે. આ સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર

अर्थात् बालुकाकी लकीरके समान और संज्वलन क्रोधको उदक पानी की लकीरके समान कहा है ॥ १ ॥

इसी प्रकार प्रथम भेदवाले मानको पत्थरके स्तम्भ के समान दूसरे को हड्डीके स्तम्भ समान, तीसरे को काष्ठके स्तम्भके समान और चौथे को तिनिश (बेंत) के स्तम्भ समान कहा है ॥ २ ॥

इसी प्रकार प्रथम भेदवाली मायाको बांसकी जडके समान टेढी कही है, दूसरे भेदवाली मायाको मिंढाके सींगके समान, तीसरे भेद वाली मायाके गोमूत्रिका-चलते हुये बैलके मूत्रकी लकीरके समान, और चौथे भेदवाली माया अवलेखिका अर्थात् बांसके छिलके समान टेढी कही है।

इसी प्रकार प्रथम भेदवाले लोभको कृमि-किरमिचरंगके समान रंगवाला कहा है एवं दूसरे भेदवाले लोभको कर्दम कीचडके समान रंगवाला, तीसरे भेदवाले लोभको अंजन (कज्जल) के रंगके समान रंगवाला, और चौथे भेदवाले लोभको हरिद्रा के रंगके समान रंगवाला कहा है।

ये सब चारों कषाय क्रमपूर्वक एकसे दूसरे उत्तरोत्तर मंद मंदतर मंदतम मंदातिमन्द कहे हैं।

તડની માફક, પ્રત્યાખ્યાની ક્રોધને રેણુ અર્થાત્ રેતીની લીટીની સરખી અને સંજ્વલન ક્રોધને ઉદક-પાણીની લીટી બરાબર કહી છે ॥ ૧ ॥

એ જ રીતે પહેલા ભેદવાળા માનને પત્થરના સ્તમ્ભ સરખો, બીજાને હાડકાના સ્તમ્ભ સરખો, ત્રીજાને લાકડાના સ્તમ્ભ સરખો અને ચોથાને તિનિશ (નેતર) ના સ્તમ્ભ સરખો કહ્યો છે ॥ ૨ ॥

એ જ રીતે પહેલા ભેદવાળી માયાને વાંસના મૂળ સરખી વાંકી કહી છે, બીજા ભેદવાળી માયાને ઘેટાના શીંગડા જેવી કહી છે. ત્રીજા ભેદવાળી માયાને ગોમૂત્રિકા-ચાલતા બળદના મૂત્રની લીટી સરખી, અને ચોથા ભેદવાળી માયાને અવલેખિકા અર્થાત્ વાંસના છોતાની માફક વાંકી કહી છે

એ જ રીતે પહેલા ભેદવાળા લોભને કૃમિ-કિરમજી રંગના જેવો કહ્યો છે અને બીજા ભેદવાળા લોભને કર્દમ-કાદવના રંગ સરખો, ત્રીજા ભેદવાળા લોભને અંજન (કાજળ) ના રંગ જેવા રંગવાળો અને ચોથા ભેદવાળા લોભને હળદરના રંગ જેવા રંગવાળો કહ્યો છે

આ તમામ ચારે કષાય ક્રમપૂર્વક એક એકથી બીજા ઉત્તરોત્તર મંદ, મંદતર, મંદતમ અને મંદાતિમંદ કહેલ છે.

नैरयिकः खलु भदन्त ! नैरयिकेषु उपपद्यते अनैरयिको नैरयिकेषु उपपद्यते ?, गौतम ! नैरयिको नैरयिकेषूपपद्यते नो अनैरयिको नैरयिकेषूपपद्यते " इति, तस्य संसार –उत्पत्तिदेशगमनम्, यद्वाऽवस्थान्तरगमन नैरयिकसंसारः, एवं तिर्यग्मनुष्यदेव-संसारा अपि बोध्याः इति संसारचतुष्टयम् ॥

उक्तस्वरूपश्च संसार आयुषि सत्येव भवतीत्यायुर्निरूपयति–'चउव्विहे आउए" इत्यादिना, तत्राऽऽयुः–एति–गच्छति प्रतिक्षणमित्यायुः=कर्मविशेषः, तच्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–" नैरयिकायुः ' इत्यारभ्य ' यावत् ' देवाऽऽयुः पर्यन्तं बोध्यम्

ज्जइ " इस नैरइकका जो संसार है–उत्पत्तिस्थान पर गमन है वह— नैरयिक संसार है, अथवा—अवस्थान्तर प्राप्तिरूप नैरयिक संसार है। तात्पर्य ऐसा है कि नैरयिक में उत्पन्न होने योग्य आयुकर्मका बन्ध जिस जीवको हो गया है वह जीव नैरयिक कहनेयोग्य हो जाता है, अतः ऐसा ही जीव जब अवस्थान्तररूप नैरयिक पर्याय से युक्त हो जाता है तब वह नैरयिक पर्याय की प्राप्तिकारक नैरयिक संसार है। इसी प्रकारका कथन तिर्यङ् मनुष्य और देव इन संसारों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। ऐसा यह संसार आयुकर्म का उदय होने पर ही होता है अतः इसी सम्बन्ध को लेकर सूत्रकार अब आयुका निरूपण करनेके लिये " चउव्विहे आउए " ऐसा सूत्र कह रहे हैं–जो प्रतिक्षण व्यतीत होती रहती है वह–आयु है, यह–आयु कर्म विशेष है नैरयिक आयु तिर्यगायु–मनुष्यायु–देवायु इस प्रकार से इसके भेद चार कहे

સસાર છે–ઉત્પત્તિ સ્થાનપર ગમન છે, તે નૈરયિક સંસાર છે. અથવા અવસ્થાન્તર પ્રાપ્તિરૂપ નૈરયિક સંસાર છે. એટલે કે નૈરયિકમાં ઉત્પન્ન થવાને યોગ્ય આયુકર્મનો જે બન્ધ જે જીવે કરી દીધો હોય તે જીવ નૈરયિક કહેવા યોગ્ય બની જાય છે. તેથી એવો જ જીવ જ્યારે અવસ્થાન્તર રૂપ નૈરયિક પર્યાયથી યુક્ત થઈ જાય છે, ત્યારે તે નૈરયિક પર્યાયની પ્રાપ્તિકારક નૈરયિક સંસારનો જીવ કહેવાય છે આ પ્રકારનુ કથન તિર્યગ્, મનુષ્ય અને દેવ, આ ત્રણે સસારો વિષે પણ સમજવું એવા તે સંસારનો સદ્ભાવ આયુકર્મના ઉદયથી જ સંભવી શકે છે, આ સંબધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર આયુનું નિરૂપણ કરે છે. " चउव्विहे आउए " ઈત્યાદિ—

જે પ્રતિક્ષણ વ્યતીત થતું રહે છે તે આયુ છે. તે આયુ કર્મવિશેષ છે. નૈરયિક આયુ, તિર્યગાયુ, મનુષ્યાયુ અને દેવાયુ, આ પ્રકારે તેના ચાર ભેદ

चतुर्विधमायु प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–नैरयिकायुः यावत् देवायुः ४।

चतुर्विधो भवः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–नैरयिकभवः यावत् देवभवः ४। सू ५६।

टीका–" चउव्विहे संसारे " इत्यादि–संसार –संसरणं संसारः–मनुष्यादिपर्यायान्नारकादिपर्यायगमनं, स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–नैरयिकसंसारो यावत् देवसंसारः–यावत्पदेन–तिर्यक्संसारो मनुष्यसंसारश्च ग्राह्यः। तत्र नैरयिकसंसारो–नैरयिकायुर्नामगोत्र प्रभृतिकर्मोदये सति जीवो नैरयिको व्यवह्रियते, उक्तं च–" णेरइए णं भंते ! णेरइएसु उववज्जइ, अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ ?, गोयमा ! णेरइए णेरइएसु उववज्जइ णो अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ। " छाया–

" चउव्विहे संसारे पण्णत्ते " इत्यादि ५५

सूत्रार्थ–संसार चार प्रकारका कहा गयाहै, नैरयिक संसार १, यावत्–देवसंसार ४। चार प्रकारका आयु कर्म कहा गया है, नैरयिक आयु–यावत्–देवायु ४ भव चार कहा गया है, नैरयिकभव १ यावत्–देवभव४

टीकार्थ–परिभ्रमण करनेका नाम संसारहै मनुष्यादि पर्यायसे नारकादि पर्यायोंमें जाना रूप जो संसार है वह नैरयिक संसार आदि भेदोंसे चार प्रकारका कहा गयाहै उसका तात्पर्य ऐसाहै नैरयिक योग्य आयु-नाम-गोत्र आदि कर्मों के उदय होने से यह जीव नैरयिक है ऐसा जो व्यवहार होता है वह नैरयिक है।

उक्तञ्च– ' णेरइएणं भंते ! णेरइएसु उववज्जइ, अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ गोयमा ! णेरइए णेरइएसु उववज्जइ णो अणेरइए णेरइएसु उवव

સંસારના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે ' चउव्विहे संसारे पण्णत्ते "ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–સંસારના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે–(૧) નૈરયિક સંસાર (૨) તિર્યગ્યોનિક સંસાર, (૩) મનુષ્ય સંસાર અને (૪) દેવ સંસાર ચાર પ્રકારના આયુકર્મ કહ્યાં છે—(૧) નૈરયિક આયુથી લઇને દેવાયુ પર્યન્તના ચાર પ્રકાર અહીં સમજવા. ભવ ચાર કહ્યા છે— નૈરયિક ભવથી લઇને દેવભવ પર્યન્તના ચાર ભવ અહીં ગ્રહણ કરવા

વિશેષાર્થ—જુદી જુદી ગતિમાં ભ્રમણ કરવું તેનું નામ સંસાર છે મનુષ્યાદિ પર્યાયમાંથી નારકાદિ પર્યાયમાં જવા રૂપ સંસારના નૈરયિક સંસાર આદિ જે ચાર ભેદ કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે–નૈરયિકને યોગ્ય આયુ, નામ, ગોત્ર આદિ કર્મોનો ઉદય થવાથી " આ જીવ નૈરયિક છે " એવો જે વ્યવહાર થાય છે તેનું નામ નૈરયિક છે કહ્યું પણ છે કે— " णेरइएणं भंते ! णेरइएसु उववज्जइ, अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ गोयमा ! णेरइए णेरइएसु उववज्जइ णो अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ " આ નૈરયિકનો જે

नैरयिकः खलु भदन्त ! नैरयिकेषु उपपद्यते अनैरयिको नैरयिकेषु उपपद्यते ?, गौतम ! नैरयिको नैरयिकेषूपपद्यते नो अनैरयिको नैरयिकेषूपपद्यते " इति, तस्य संसार —उत्पत्तिदेशगमनम्, यद्वाऽवस्थान्तरगमनं नैरयिकसंसारः, एवं तिर्यग्मनुष्यदेव-संसारा अपि बोध्याः इति संसारचतुष्टयम् ॥

उक्तरूपश्च संसार आयुषि सत्येव भवतीत्यायुर्निरूपयति—'चउव्विहे आउए" इत्यादिना, तत्राऽऽयुः—एति—गच्छति प्रतिक्षणमित्यायुः=कर्मविशेषः, तच्चतुर्विधं मज्ञप्तम्, तद्यथा—" नैरयिकायुः ' इत्यारभ्य ' यावत् ' देवाऽऽयुः पर्यन्तं बोध्यम्

ज्जइ " इस नैरइकका जो संसार है—उत्पत्तिस्थान पर गमन है वह—नैरयिक संसार है, अथवा—अवस्थान्तर प्राप्तिरूप नैरयिक संसार है। तात्पर्य ऐसा है कि नैरयिक में उत्पन्न होने योग्य आयुकर्मका बन्ध जिस जीवको हो गया है वह जीव नैरयिक कहनेयोग्य हो जाता है, अतः ऐसा ही जीव जब अवस्थान्तररूप नैरयिक पर्याय से युक्त हो जाता है तब वह नैरयिक पर्याय की प्राप्तिकारक नैरयिक संसार है। इसी प्रकारका कथन तिर्यङ् मनुष्य और देव इन संसारों के सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। ऐसा यह संसार आयुकर्म का उदय होने पर ही होता है अतः इसी सम्बन्ध को लेकर सूत्रकार अब आयुका निरूपण करनेके लिये " चउव्विहे आउए " ऐसा सूत्र कह रहे हैं—जो प्रतिक्षण व्यतीत होती रहती है वह—आयु है, यह—आयु कर्म विशेष है नैरयिक आयु तिर्यञ्चायु—मनुष्यायु—देवायु इस प्रकार से इसके भेद चार कहे

સંસાર છે—ઉત્પત્તિ સ્થાનપર ગમન છે, તે નૈરયિક સંસાર છે. અથવા અવ-સ્થાન્તર પ્રાપ્તિરૂપ નૈરયિક સંસાર છે. એટલે કે નૈરયિકમાં ઉત્પન્ન થવાને યોગ્ય આયુકર્મનો જે બન્ધ જે જીવે કરી દીધો હોય તે જીવ નૈરયિક કહેવા યોગ્ય બની જાય છે તેથી એવો જ જીવ જ્યારે અવસ્થાન્તર રૂપ નૈરયિક પર્યાયથી યુક્ત થઈ જાય છે, ત્યારે તે નૈરયિક પર્યાયની પ્રાપ્તિકારક નૈરયિક સંસારનો જીવ કહેવાય છે આ પ્રકારનું કથન તિર્યગ્, મનુષ્ય અને દેવ, આ ત્રણે સંસારો વિષે પણ સમજવું એવા તે સંસારનો સદ્‌ભાવ આયુકર્મના ઉદયથી જ સંભવી શકે છે, આ સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર આયુનું નિરૂપણ કરે છે. " चउव्विहे आउए " ઇત્યાદિ—

જે પ્રતિક્ષણ વ્યતીત થતું રહે છે તે આયુ છે. તે આયુ કર્મવિશેષ છે. નૈરયિક આયુ, તિર્યંચાયુ, મનુષ્યાયુ અને દેવાયુ [illegible] તેના ચાર ભેદ

एवं च-नैरयिकाऽऽयुः १, तिर्यगायुः , मनुष्याऽऽयुः३, देवाऽऽयुः४, इतिचतुर्विधम्, तत्र येन निरयभवे प्राणी निधीयते तद् नैरयिकाऽऽयुः। एवं शेषत्रयमपि बोध्यम्।

उक्तरूपमायुर्जीवान् भवे स्थापयति, ततो भवं निरूपयति-" चउव्विहे भवे" इत्यादिना, तत्र भवः-भवनं भवः-उत्पत्तिः, स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-नैरयिकभव इत्यारभ्य ' यावत् '—देवभवपर्यन्तो भवो बोध्यः, तत्र नैरयिकभव — निरये-नरके भवो नैरयिकस्तत्र भवः। एवं शेषत्रयमपि बोध्यम् ॥ सू० ५६॥

पूर्वं भव उक्तः, तेषु सर्वेष्वाहारवन्तो जीवा भवन्तीत्याहारं निरूपयितुमाह-

मूलम्-चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा-असणे१, पाणे २, खाइमे३, साइमे ४। चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा-उवक्खरसपन्ने १, उवक्खडसपन्ने२, सभावसपन्ने३, परिजुसियसपन्ने ४ ॥ सू० ५७ ॥

छाया—चतुर्विध आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अशनं १, पानं २, खादिमं ३, स्वादिमम् ४।चतुर्विध आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-उपस्करसंपन्नः १, उपस्कृतसंपन्नः २,

गये हैं। जो जीवको निरयभवमें रखता है वह निरयायु कर्म है इसी प्रकारसे अन्य तीन आयुओं के सम्बन्धमें भी कथन जानना चाहिये। उक्त आयु जीवों को विवक्षित भवमें स्थापित करता है, इससे सूत्रकारने " चउव्विहे भवे " ऐसा सूत्र कहा है, भव नाम उत्पत्ति का है नैरयिक रूपसे जो जीवका भव है वह नैरयिक भव है। इसी प्रकार से शेष भवत्रय भी समझना चाहिये ॥ सू० ५६ ॥

इन समस्त भवोंमें आहारवाले जीव होते हैं, अतः अब सूत्रकार आहार की प्ररूपणा करते हैं—" चउव्विहे आहारे पण्णत्ते ' इत्यादि

છે જે જીવોને નિરયભવમાં રાખે છે તે કર્મને નિરયાયુ કર્મ કહે છે. એજ પ્રમાણે આયુના બાકીના ત્રણ ભેદોનું પણ કથન સમજી લેવું ઉક્ત આયુ જીવને અમુક ભવમાં સ્થાપિત કરે છે, તેથી હવે સૂત્રકાર " चउव्विहे भवे ' ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા ભવનું નિરૂપણ કરે છે ભવ એટલે ઉત્પત્તિ. નૈરયિક રૂપે જીવનો જે ભવ છે તેને નૈરયિક ભવ કહે છે એજ પ્રમાણે બાકીના ત્રણ ભવ વિષેનું કથન પણ જાતે જ સમજી લેવું ॥ સૂ. ૫૬ ॥

આ સમસ્ત જીવોમાં આહારવાળા જીવો હોય છે આ સમબન્ધને લઈને હવે સૂત્રકાર આહારની પ્રરૂપણા કરે છે "चउव्विहे आहारे पण्णत्ते ' ઇત્યાદિ—

स्वभावसंपन्नः३, पर्युषितसंपन्नः ४ ॥ सू० ५७ ॥

टीका—" चउव्विहे आहारे " इत्यादि—आहारः—आह्रियत इत्याहारः, स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अशनम्—अश्यते—भुज्यत इत्यशनं—भक्तप्रभृति १, पान—पीयत इति पानं—तन्दुलादि धावनजलम् २, खादिमं—खादनं खादस्तेन निर्वृत्तं खादिमं—द्राक्षादिकम् ३, स्वादिमं – स्वादेन निर्वृत्तं स्वादिमं—लवङ्गचूर्णादिकं मुखवासरूपम् ४।

" चउव्विहे आहारे " पुनराहारश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—उपस्करसंपन्नः—उपस्क्रियते—सुवास्यतेऽनेनेत्युपस्करो—हिंग्वादिः, तेन संपन्नः- युक्त उपस्करसपन्नः =मुद्गसूपादिः, इति प्रथमः १। तथा उपस्कृतः—पाकस्तेन संपन्नः उपस्कृतसंपन्नः—ओदन—कृशरा—करपट्टिकाप्रभृतिः, इति द्वितीयः २। तथा—स्वभावसम्पन्नः—

सूत्रार्थ—आहार चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—अशन १, पान २, खादिम ३ और स्वादिम ४। पुनश्च—आहार चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—उपस्कार सम्पन्न १ उपस्कृत सम्पन्न २, स्वभाव सम्पन्न ३ और पर्युशित सम्पन्न ४।

टीकार्थ—जीवद्वारा जो आहृत होता है वह—आहार है, यह आहार अशन आदिके भेदसे जो चार प्रकारका कहा गया है उसका भाव ऐसा है—जो खाया जाता है वह भक्त वगैरह अशन है। जो पीया जाता है ऐसा ताण्डुलादि धावन जलपान है, द्राक्षादिक खादिम है, और मुखवास लवङ्गादि चूर्ण स्वादिम है। पुनश्च—उपस्कर संपन्न आहार का तात्पर्य ऐसा है—आहार जिस विशिष्ट द्रव्यसे सुवासित किया जाय वह—हिङ्गु (हींग) आदि उपस्कर है, इस उपस्करसे जो युक्त होता

સૂત્રાર્થ—આહારના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અશન, (૨) પાન, (૩) ખાદિમ અને (૪) સ્વાદિમ બીજી રીતે પણ આહારના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ઉપસ્કર સંપન્ન, (૨) ઉપસ્કૃત સંપન્ન, (૩) સ્વભાવ સંપન્ન અને (૪) પર્યુષિત સંપન્ન.

વિશેષાર્થ—જીવ દ્વારા જે આહૃત થાય છે, તે આહાર છે તેના અશન આદિ જે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે, તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—જે ખાવામાં આવે છે તે ભોજનને અશન કહે છે જે પીવામાં આવે છે તે ભાત આદિના ધોવણ જળ વગેરેને પાન કહે છે દ્રાક્ષાદિકને ખાદિમ કહે છે, એલાઇચી, લવીંગ, સોપારી, ધાણાદાળ, ચૂર્ણ વગેરેને સ્વાદિમ કહે છે.

આહારના ઉપસ્કર સંપન્ન આદિ ચાર પ્રકારોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—આહારને જે વિશિષ્ટ દ્રવ્યોથી સુવાસિત કરવામાં આવે છે, એવા હિંગાદિ દ્રવ્યને ઉપસ્કર કહે છે. તે ઉપસ્કરથી યુક્ત મગની દાલ વગેરે આહા-

स्वभावेन-प्रकृत्या पाकमन्तरा सम्पन्नः सिद्धः पक्व इत्यर्थः, आम्रखर्जूरादिः । इति तृतीयः ३ । पर्युषितसम्पन्नः-पर्युषितं-रात्रिपरिवसनं, तेन सम्पन्न -पर्युषित सम्पन्नः 'अछेरी' इति भाषा प्रसिद्धः कुष्माण्डाकारमधुरादिः । यद्वा-पर्युषित सम्पन्नः-काञ्जिकस्थाऽऽम्रफलादिरिति ४ ॥ सू० ५७ ॥

एवं संसारमत्राऽऽहारा उक्ता, ते च बद्धकर्मणां जीवानां भवन्तीति कर्मत न्यादि निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—पगइबंधे१, ठिइबंधे२, अणुभावबंधे ३, पएसबंधे ४ ।

चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा बंधणोवक्कमे१, उदीरणोवक्कमे २, उवसमणोवक्कमे३, विप्परिणामोवक्कमे ४ ।

बंधणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगइबंधणोवक्कमे१, ठिइबंधणोवक्कमे२ अणुभावबंधणोवक्कमे३, पएसबंधणोवक्कमे४।

है ऐसा मुद्गकी दाल आदि उपस्कार आदि उपस्कार आहार है। पाकसे संपन्न जो आहार होता है ऐसा ओदन, कृशरा-खिचड़ी, करपट्टिका रोटी आदि उपस्कृत सपन्न आहार है । जो स्वभावसे विना पाकसे सपन्न होता है ऐसा पक्व-आम-खर्जूर आदि स्वभाव सम्पन्न आहार है ३ रातमें वसाने से जो आहार निष्पन्न होता है। वह पर्युषित सम्पन्न (वासी) आहार है जैसे-जलेबी आदि । यद्वा—काञ्जिक आदिमें रखे हुवे आमफल आदि पर्युषितसम्पन्न आहार है ॥ सू० ५७ ॥

રને ઉપસ્કાર સપન્ન આહાર કહે છે પકવીને (રાંધીને) તૈયાર કરેલા ભાત, ખીચડી, રોટલી આદિ આહારને ઉપસ્કૃત સપન્ન આહાર કહે છે જે આહા રને પકવ્યા વિના જ લેવામાં આવે છે-જે આહાર કુદરતી રીતે જ પાકે હોય છે તેને સ્વભાવસપન્ન આહાર કહે છે જેમકે પકી કેરી, ખજૂર, કેળાં વગેરે (૪) રાત્રિ પર્યન્ત આથી આથવા દઇને જે આહાર તૈયાર થાય છે તેને પર્યુષિત સંપન્ન કહે છે જેમકે જલેબી. અથવા કાંજી આદિમાં રાખેલી કેરીને, કંજામાં પાક કરેલી અનનાસ વગેરેની ચીજોને પણ પર્યુષિત સપન્ન આહાર કહે છે ॥ સૂ ૫૭ ॥

उदीरणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-पगइउदीरणोवक्कमे१ ठिइउदीरणोवक्कमे२, अणुभावउदीरणोवक्कमे३, पएसउदीरणोवक्कमे । ४ ।

उवसमणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा--पगइउवसमणोवक्कमे १, ठिइउवसमणोवक्कमे २, अणुभावुवसमणोवक्कमे ३, पएसुवसमणोवक्कमे ४ ।

विप्परिणामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-पगइविप्परिणामणोविक्कमे १, ठिइविप्परिणामणोवक्कमे२, अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे ३, पएसविप्परिणामणोवक्कमे ४ ।

चउव्विहे अप्पाबहुए पण्णत्ते, तं जहा-पगइअप्पाबहुए१, ठिइअप्पाबहुए२, अणुभावअप्पाबहुए ३, पएसअप्पाबहुए४ ।

चउव्विहे संकमे पण्णत्ते, तं जहा-पगइसंकमे१, ठिइसंकमे २, अणुभावसंकमे ३, पएससंकमे ४ ।

चउव्विहे णिधत्ते पण्णत्ते, तं जहा-पगइणिधत्ते १, ठिइणिधत्ते २, अणुभावणिधत्ते ३, पएसणिधत्ते ४ ।

चउव्विहे णिकायिए पण्णत्ते, तं जहा-पगइणिकायिए १, ठिइणिकायिए २, अणुभावणिकायिए३, पएसणिकायिए४।५८।

छाया—चतुर्विधो बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-प्रकृतिबन्धः १, स्थितिबन्धः २, अनुभावबन्धः ३, प्रदेशबन्धः ४ ।

उक्त संसार भव आहार आदि बद्धकर्मा जीवोंको होताहै, अतः सूत्रकार कर्मबन्ध आदिका निरूपण करते हैं-" चउव्विहे बंधे पण्णत्ते " इत्यादि॥

સંસાર, ભવ અને આહાર આદિનો સદ્ભાવ બદ્ધકર્મા જીવોમાં હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર કર્મબન્ધ આદિનું નિરૂપણ કરે છે.

स्वभावेन-प्रकृत्या पाकमन्तरा सम्पन्नः सिद्धः पक्व इत्यर्थः, आम्रखर्जूरादिः। इति तृतीयः ३। पर्युषितसम्पन्नः-पर्युषितं-रात्रिपरिवसनं, तेन सम्पन्न-पर्युषित सम्पन्नः 'अलेवी' इति भाषा प्रसिद्धः कुम्भकाकारमधुरादिः। यद्वा-पर्युषित सम्पन्नः-काञ्जिकस्याऽऽम्रफलादिरिति ४॥ सू० ५७॥

एष संसारभवाऽऽहारा उक्ता, ते च बद्धकर्मणां जीवानां भवन्तीति कर्मण्यादि निरूपयितुमाह—

मूलम्—चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—पगइबंधे १, ठिइबंधे २, अणुभावबंधे ३, पएसबंधे ४।

चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा बंधणोवक्कमे १, उदीरणोवक्कमे २, उवसमणोवक्कमे ३, विप्परिणामोवक्कमे ४।

बंधणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगइबंधणोवक्कमे १, ठिइबंधणोवक्कमे २ अणुभावबंधणोवक्कमे ३, पएसबंधणोवक्कमे ४।

है ऐसा मुद्गकी दाल आदि उपस्कार आदि उपस्कार आहार है। पाकसे संपन्न जो आहार होता है ऐसा ओदन, कृशरा-खिचडी, करपट्टिका रोटी आदि उपस्कृत संपन्न आहार है। जो स्वभावसे बिना पाकसे सपन्न होता है ऐसा पक्व-आम-खर्जूर आदि स्वभाव सम्पन्न आहार है ३ रातमें बसाने से जो आहार निष्पन्न होता है। वह पर्युषित सम्पन्न (बासी) आहार है जैसे-अलेवी आदि। यद्वा—काञ्जिक आदिमें रखे हुये आमफल आदि पर्युषितसम्पन्न आहार है॥ सू० ५७॥

રને ઉપસ્કર સંપન્ન આહાર કહે છે પકવીને (રાંધીને) તૈયાર કરેલા ભાત, ખીચડી, રોટલી આદિ આહારને ઉપસ્કૃત સંપન્ન આહાર કહે છે જે આહા રને પકવ્યા વિના જ લેવામાં આવે છે-જે આહાર કુદરતી રીતે જ પાકે હોય છે તેને સ્વભાવસંપન્ન આહાર કહે છે જેમકે પકી કેરી, ખજૂર, કેળાં વગેરે (૪) રાત્રિ પર્યન્ત આથો આવવા દઈને જે આહાર તૈયાર થાય છે તેને પર્યુષિત સંપન્ન કહે છે, જેમકે જલેબી. અથવા ખાટકી આદિમાં નાખેલી કેરીને, કળ્ગામાં પેક કરેલી અનનાસ વગેરેની ચીરીને પણ પર્યુષિત સંપન્ન આહાર કહે છે ॥ સૂ. ૫૭ ॥

विपरिणामनोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रकृतिविपरिणामनोपक्रमः १, स्थितिविपरिणामनोपक्रमः२, अनुभावविपरिणामनोप्रक्रमः ३, प्रदेशविपरिणामनोपक्रमः ४।

चतुर्विधमल्पबहुत्वं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–प्रकृत्यल्पबहुत्वं१, स्थित्यल्पबहुत्वम्२, अनुभावाल्पबहुत्वं ३, प्रदेशाल्पबहुत्वम् ४।

चतुर्विधः संक्रमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रकृतिसंक्रमः १, स्थितिसंक्रमः २, अनुभावसंक्रमः ३, प्रदेशसंक्रमः ४।

चतुर्विध निधत्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–प्रकृतिनिधत्तं १, स्थितिनिधत्तम् २, अनुभावनिधत्त ३, प्रदेशनिधत्तम् ४।

चतुर्विधं निकाचितं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–प्रकृतिनिकाचितं १, स्थितिनिकाचितम् २, अनुभावनिकाचितं ३, प्रदेशनिकाचितम् ४॥ सू० ५८॥

प्रकृति विपरिणामोपक्रन१ स्थिति विपरिणामोपक्रम२ अनुभावविपरिणामोपक्रम ३ और प्रदेशविपरिणामोपक्रम ४। अल्पबहुत्व चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—प्रकृत्यल्पबहुत्व १, स्थित्यल्पबहुत्व २, अनुभावाल्पबहुत्व ३, और प्रदेशाल्पबहुत्व ४। संक्रम चार कहा गया है, प्रकृति संक्रम १, स्थितिसंक्रम २, अनुभावसंक्रम३, और प्रदेशसंक्रम ४। निधत्त चार प्रकारका कहा गया है, जैसे–प्रकृतिनिधत्त १, स्थिति निधत्त २, अनुभावनिधत्त ३, और प्रदेशनिधत्त ४। निकाचित चार प्रकारका कहा गया है, प्रकृति निकाचित १, स्थिति निकाचित २, अनुभाव निकाचित ३, और प्रदेश निकाचित ४।

મોપક્રમ, (૨) સ્થિતિ વિપરિણામોપક્રમ, (૩) અનુભાવ વિપરિણામોપક્રમ અને (૪) પ્રદેશ વિપરિણામોપક્રમ

અલ્પબહુત્વ ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે--(૧) પ્રકૃત્યલ્પ બહુત્વ, (૨) સ્થિત્યલ્પ બહુત્વ, (૩) અનુભાવાલ્પ બહુત્વ અને (૪) પ્રદેશાલ્પ બહુત્વ

સંક્રમ ચાર કહ્યા છે—(૧) પ્રકૃતિ સંક્રમ, (૨) સ્થિતિ સંક્રમ, (૩) અનુભાવ સક્રમ અને (૪) પ્રદેશ સક્રમ.

નિધત્તના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) પ્રકૃતિ નિધત્ત, (૨) સ્થિતિ નિધત્ત, (૩) અનુભાવ નિધત્ત અને (૪) પ્રદેશ નિધત્ત

નિકાચિતના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પ્રકૃતિ નિકાચિત, (૨) સ્થિતિ નિકાચિત, (૩) અનુભાવ નિકાચિત અને (૪) પ્રદેશ નિકાચિત.

चतुर्विध उपक्रमः प्रज्ञप्त, तद्यथा–बन्धनोपक्रमः १, उदीरणोपक्रमः २, उपशमनोपक्रम ३, विपरिणामोपक्रमः ४।

बन्धनोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रकृतिबन्धनोपक्रम १, स्थितिबन्धनोपक्रमः २, अनुभावबन्धनोपक्रमः ३, प्रदेशबन्धनोपक्रमः ४।

उदीरणोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रकृत्युदीरणोपक्रमः १, स्थित्युदीरणोपक्रमः २, अनुभावोदीरणोपक्रमः ३, प्रदेशोदीरणोपक्रमः ४।

उपशमनोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रकृत्युपशमनोपक्रमः १, स्थित्युपशमनोपक्रमः २, अनुभावोपशमनोपक्रमः ३, प्रदेशोपशमनोपक्रमः ४।

सूत्रार्थ–बन्ध चार प्रकारका कहा गयाहै जैसे–प्रकृतिबन्ध १, स्थितिबन्ध २ अनुभावबन्ध ३ और प्रदेशबन्ध ४। उपक्रम चार कहा गया है, जैसे बन्धोपक्रम १, उदीरणोपक्रम २, उपशमनोपक्रम ३, और परिणामोपक्रम ४। बन्धनोपक्रम चार प्रकारका कहा गया है, प्रकृतिबन्धनोपक्रम १, स्थितिबन्धनोपक्रम २, अनुभावबन्धनोपक्रम ३ और–प्रदेशबन्धनोपक्रम ४। उदीरणोपक्रम चार प्रकारका है, प्रकृत्युदीरणोपक्रम १, स्थित्युदीरणोपक्रम २ अनुभावोदीरणोपक्रम ३ और प्रदेशोदीरणोपक्रम ४। उपशमनोपक्रम चार प्रकारका कहा गया है। प्रकृत्युपशमनोपक्रम १, स्थित्युपशमनोपक्रम २ अनुभावोपशमनोपक्रम ३ और–प्रदेशोपशमनोपक्रम ४। विपरिणामोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है।

"चउव्विहे बंधे पण्णत्ते" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–બંધના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પ્રકૃતિ બંધ, (૨) (૨) સ્થિતિ બંધ, (૩) અનુભાવ બંધ અને (૪) પ્રદેશ બંધ

ઉપક્રમના પણ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) બંધોપક્રમ, (૨) ઉદીરણોપક્રમ, (૩) ઉપશમનોપક્રમ અને (૪) પરિણામોપક્રમ.

બંધનોપક્રમ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧) પ્રકૃતિબંધનોપક્રમ, (૨) સ્થિતિ બંધનોપક્રમ, (૩) અનુભાવ બંધનોપક્રમ અને (૪) પ્રદેશ બંધનોપક્રમ.

ઉદીરણોપક્રમ પણ ચાર પ્રકારનો છે—(૧) પ્રકૃત્યુદીરણોપક્રમ, (૨) સ્થિત્યુદીરણોપક્રમ (૩) અનુભાવોદીરણોપક્રમ અને (૪) પ્રદેશોદીરણોપક્રમ.

ઉપશમનોપક્રમ પણ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧) પ્રકૃત્યુપશમનોપક્રમ (૨) સ્થિત્યુપશમનોપક્રમ, (૩) અનુભાવોપશમનોપક્રમ અને (૪) પ્રદેશોપશમનોપક્રમ.

વિપરિણામોપક્રમ પણ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧)પ્રકૃતિવિપરિણા

टीका—" चउव्विहे बंधे " इत्यादि—

बन्धः—आस्रवनिमित्तेन गृहीतानां कर्मप्रायोग्यपुद्गलानामात्मना सह प्रकृत्यादिविशेषितः सम्बन्धः, स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—प्रकृतिबन्धः—प्रकृतयः—ज्ञानाऽऽवरणीयप्रभृतयोऽष्टौ कर्मभेदाः, तासां बन्धः, यद्वा—प्रकृतिः—प्रकरणं प्रकृतिः—अविशेषितं कर्म, तस्या बन्धः प्रकृतिबन्धः १, तथा—स्थितिर्ज्ञानाऽऽवरणीयादिकर्मभेदाष्टकस्य जघन्यादि भेदरूपेणावस्थानं, तस्या बन्धः—स्थितिबन्धः २, तथा अनुभावबन्धः—अनुभावः—अनुभवनमनुभावः—शुभाशुभकर्मप्रकृतीनां प्रयोगकर्मोपात्तानां प्रकृतिस्थितिप्रदेशसलक्षणानां तीव्रमन्दादिरूपेणाऽऽस्वादनं तस्य बन्धोऽनुभावबन्धः ३, तथा—प्रदेशबन्धः—प्रदेशाः—जीवप्रदेशाः, तेष्वनन्तानन्तकर्मप्रदेशानामेकैकप्रकृतौ प्रतिनियतपरिमाणानां बन्धः—प्रदेशबन्धः। अल्पपरिमाणगुडादि

इस सूत्रका सार इस प्रकार है—आस्रवके निमित्तसे गृहीत कर्मों के प्रायोग्य पुद्गलों का आत्मा के साथ प्रकृति स्थिति आदि रूपसे जो सम्बन्ध है वह बन्ध है, वह बन्ध प्रकृतिबन्ध आदि भेदसे चार प्रकारका कहा गया है। ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मभेदों का जो बन्ध है वह प्रकृतिबन्ध है, अथवा ज्ञानाऽऽवरणादि रूपसे अविशेषित सामान्य कर्मका जो बन्ध है, वह प्रकृतिबन्ध है। ज्ञानावरणीय आदि भेदसे आठ प्रकार के कर्मों का जघन्य आदि भेदसे जो रहनेकी मर्यादाका बन्ध है वह स्थितिबन्ध है। प्रकृति–स्थिति और प्रदेशरूप शुभाशुभ कर्म प्रकृतियों का जो तीव्र मंद आदि रूपसे आस्वादन भोगने का जो बन्ध होता है वह अनुभावबन्ध है। जीवके प्रत्येक प्रदेश पर जो अनन्तानन्त कर्म पुद्गलों का सम्बन्ध

વિશેષાર્થ—આસ્રવના નિમિત્તથી ગૃહીત કર્મોના પ્રાયોગ્ય પુદ્ગલોનો આત્માની સાથે પ્રકૃતિ, સ્થિતિ આદિ રૂપે જે સંબંધ છે તેને બંધ કહે છે તે બંધના પ્રકૃતિબંધ આદિ ચાર પ્રકાર છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મ ભેદોનો જે બંધ છે તેને પ્રકૃતિબન્ધ કહે છે અથવા—જ્ઞાનાવરણાદિ રૂપે અવિશેષિત સામાન્ય કર્મનો જે બંધ છે તેને પ્રકૃતિબંધ કહે છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોની જઘન્ય ભેદથી જે રહેવાની મર્યાદાનો બંધ છે તેને સ્થિતિબંધ કહે છે પ્રકૃતિ, સ્થિતિ અને પ્રદેશરૂપ શુભાશુભ પ્રકૃતિઓનું જે મન્દ, તીવ્ર આદિ રૂપે આસ્વાદન (અનુભવન) કરવા રૂપ જે બંધ છે તેને અનુભાવ બંધ કહે છે જીવના પ્રત્યેક પ્રદેશપર જે અનન્તાનન્ત કર્મપુદ્ગલોનો સંબંધ છે તેનું નામ પ્રદેશબંધ છે એટલે કે પ્રદત્ત કરાયા

है वह प्रदेशबन्ध है, अर्थात् ग्रहण किये जाने पर भिन्न २ स्वभावमें परिणत होनेवाली कर्मपुद्गलराशि स्वभावानुसार अमुक-अमुक परिणामों में जो बट जाती है ऐसा यह परिणाम विभाग ही प्रदेशबन्ध है। इस कथनका सारांश ऐसा है कि—कर्मपुद्गल जीव द्वारा ग्रहण किये जाने पर कर्मरूप परिणाम को प्राप्त होते हैं। अर्थात्—उनमें उसी समय चार अंशोका निर्माण होता है ये अंश ही बन्ध के प्रकार हैं प्रकृतिबन्ध-स्थितिबन्ध अनुभावबन्ध और प्रदेशबन्ध रूप हैं। कर्मपुद्गलों में ज्ञानको रोकने का दर्शनको रोकनेका सुख-दुःख आदिका जो स्वभाव बनता है वही प्रकृतिबन्ध है। स्वभावनिर्माण के साथ ही उस स्वभाव से अमुक समय तक अलग न होनेकी मर्यादा भी पुद्गलों में निर्मित होती है कालमर्यादा का निर्माण ही स्थितिबन्ध है। स्वभावनिर्माण के साथ ही उसमें तीव्रता-मन्दता आदि रूपमें फलानुभव करानेवाली विशेषताएँ बंधती हैं। ऐसी विशे-षता ही अनुभावबन्ध है। ग्रहण किये जाने पर भिन्न भिन्न स्वभावमें परिणत होनेवाली कर्मपुद्गलराशिका अमुक अमुक विभागमें बट जाना प्रदेशबन्ध है, यही बात टीकाकारने वृद्धोक्त मोदक के दृष्टान्त से स्पष्ट

બાદ ભિન્ન ભિન્ન સ્વભાવે પરિણત થનારી કર્મપુદ્ગલ રાશિ સ્વભાવાનુસાર અમુક અમુક પરિણામોમાં જે વહેંચાઈ જાય છે, તે પરિણામ વિભાગને જ પ્રદેશબન્ધ કહે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

કર્મપુદ્ગલ જ્યારે જીવ દ્વારા ગ્રહણ કરાય છે ત્યારે કર્મરૂપ પરિણામને પ્રાપ્ત કરે છે એટલે કે તેમાં એ જ સમયે ચાર અંશોનું નિર્માણ થાય છે. તે અંશો જ બન્ધના પ્રકાર રૂપ-પ્રકૃતિબન્ધ, સ્થિતિબન્ધ આદિ રૂપ છે. કર્મ પુદ્ગલોમાં જ્ઞાનને રોકવાનો, દર્શનને રોકવાનો, સુખદુઃખાદિનો અનુભવ કરા-વવાનો આદિ જે સ્વભાવ બને છે, એ જ પ્રકૃતિબન્ધ રૂપ છે. સ્વભાવનું નિર્માણ થવાની સાથે જ તે સ્વભાવમાં જ અમુક કાળની મર્યાદા સુધી રહેવાનું પણ તે કર્મ પુદ્ગલોને માટે નિર્મિત થાય છે. આ કાળમર્યાદાનું નિર્માણ જ સ્થિતિબન્ધ છે. સ્વભાવ નિર્માણની સાથે સાથે જ તેમાં તીવ્રતા, મન્દતા, આદિ રૂપે ફલાનુભવન કરાવનારી વિશેષતાઓનું પણ નિર્માણ થાય છે, એવી વિશે-ષતા જ અનુભાવબન્ધ રૂપ છે. ગ્રહણ થયા બાદ જુદા જુદા સ્વભાવમાં પરિણત થનારી કર્મપુદ્ગલ રાશિનું અમુક અમુક વિભાગમાં વિભક્ત થઈ જવું, તેનું નામ પ્રદેશબન્ધ છે

टीका—" चउव्विहे बंधे " इत्यादि—

बन्धः-आस्रवनिमित्ते गृहीतानां कर्मप्रायोग्यपुद्गलानामात्मना सह प्रकृत्या दिविशेषितः सम्बन्धः, स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-प्रकृतिबन्धः-प्रकृतयः-ज्ञाना-ऽऽवरणीयप्रभृतयोऽष्टौ कर्मभेदाः, तासां बन्धः, यद्वा-प्रकृति -प्रकरणं प्रकृतिः-अविशेषितं कर्म, तस्या बन्धः प्रकृतिबन्धः १, तथा-स्थितिर्ज्ञानाऽऽवरणीयादि कर्मभेदाष्टकस्य जघन्यादि भेदरूपेणावस्थानं, तस्या बन्धः-स्थितिबन्धः २, तथा अनुभावबन्धः-अनुभावः-अनुभवनमनुभावः-शुभाशुभकर्मप्रकृतीनां प्रयोगकर्मोपाचानां प्रकृतिस्थितिप्रदेशलक्षणानां तीव्रमन्दादिरूपेणाऽऽस्वादनं तस्य बन्धोऽनुभावबन्धः ३, तथा-प्रदेशबन्धः-प्रदेशाः-जीवप्रदेशाः, तेष्वनन्तानन्तकर्मप्रदेशानामेकैकप्रकृतौ प्रतिनियतपरिमाणानां बन्धः-प्रदेशबन्धः। अल्पपरिमाणगुडादि

इस सूत्रका सार इस प्रकार है—आस्रवके निमित्तसे गृहीत कर्मो के प्रायोग्य पुद्गलों का आत्मा के साथ प्रकृति स्थिति आदि रूपसे जो सम्बन्ध है वह बन्ध है, यह बन्ध प्रकृतिबन्ध आदि भेदसे चार प्रकारका कहा गया है। ज्ञाना वरणीय आदि आठ कर्मभेदों का जो बन्ध है वह प्रकृतिबन्ध है, अथवा ज्ञानाऽऽवरणादि रूपसे अविशेषित सामान्य कर्मका जो बन्ध है, वह प्रकृतिबन्ध है। ज्ञानावरणीय आदि भेदसे आठ प्रकार के कर्मो का जघन्य आदि भेदसे जो रहनेकी मर्यादाका बन्ध है वह स्थितिबन्ध है। प्रकृति-स्थिति और प्रदेशरूप शुभाशुभ कर्म प्रकृतियों का जो तीव्र मंद आदि रूपसे आस्वादन भोगने का जो बन्ध होता है वह अनुभावबन्ध है। जीवके प्रत्येक प्रदेश पर जो अनन्तानन्त कर्म पुद्गलों का सम्बन्ध

વિશેષાર્થ—આસ્રવના નિમિત્તથી ગૃહીત કર્મોના પ્રાયોગ્ય પુદ્ગલોનો આત્માની સાથે પ્રકૃતિ, સ્થિતિ આદિ રૂપે જે સંબંધ છે તેને બંધ કહે છે તે બંધના પ્રકૃતિબંધ આદિ ચાર પ્રકાર છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મ ભેદોનો જે બંધ છે તેને પ્રકૃતિબંધ કહે છે અથવા—જ્ઞાનાવરણાદિ રૂપે અવિશેષિત સામાન્ય કર્મનો જે બંધ છે તેને પ્રકૃતિબંધ કહે છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોની જઘન્ય ભેદથી જે રહેવાની મર્યાદાનો બંધ છે તેને સ્થિતિબંધ કહે છે પ્રકૃતિ, સ્થિતિ અને પ્રદેશરૂપ શુભાશુભ પ્રકૃતિઓનું જે મન્દ, તીવ્ર આદિ રૂપે આસ્વાદન (અનુભવન) કરવા રૂપે જે બંધ છે તેને અનુભાવ બંધ કહે છે જીવના પ્રત્યેક પ્રદેશપર જે અનન્તા નન્ત કર્મપુદ્ગલોનો સંબંધ છે તેનું નામ પ્રદેશબંધ છે એટલે કે પ્રત્યેક કરાયા

शुभाशुभतीव्रमन्दादिरनुभावबन्धः। तथा तस्यैव मोदकस्य यथा-कणिक्कादि द्रव्याणां परिमाणवत्वं तथा कर्मणोऽपि पुद्गलानां प्रतिनियतप्रमाणता प्रदेशबन्ध इति४

' चउव्विहे उवक्कमे "—इत्यादि-उपक्रमः - उपक्रम्यते - क्रियतेऽनेनेत्युपक्रमः-जीवशक्तिविशेषः, स च कर्मणो बन्धनोदीरणोपशमनविपरिणामनारूपेण परिणमने हेतुभूतः, स एव जीवशक्तिविशेषोऽन्यत्र करणशब्देन रूढः। यद्वा-उपक्रमः-उपक्रमणमुपक्रमः - बन्धनप्रभृतीनां चतुर्णामारम्भः इत्यर्थः, उक्तं च— " स्यादारम्भ उपक्रमः " इति।

तीव्र रूपसे मन्दरूपसे जो उसका फल प्राप्त होता है वह-अनुभावबन्ध है। तथा जिस प्रकार से उस मोदक में आटा आदि द्रव्यों का प्रमाण होता है उसी प्रकारसे कर्मों में जो पुद्गलों का प्रतिनियत प्रमाण होता है वह प्रदेशबन्ध है।

" चउव्विहे उवक्कमे " जीवका जो शक्ति विशेष है वह उपक्रम है, यह शक्ति विशेषरूप उपक्रम कर्मों के बन्धमें उदीरणमें उपशमनमें और विपरिणाम रूपसे परिणमन में हेतुभूत होता है। यही जीव का शक्ति विशेषरूप उपक्रम अन्यत्र करण शब्दसे रूढ हुवा है। अथवा— कर्मों में प्रकृतिबन्ध आदि चार रूपसे जो परिणमन होने का प्रारम्भ होता है वह उपक्रम है।

उक्तञ्च—" स्यादारम्भ उपक्रमः " आरम्भका नाम उपक्रम है

કર્મમાં પણ દેશઘાતી, સર્વઘાતી રૂપ રસ હોય છે, તથા તીવ્ર, મન્દ આદિ રૂપ તેનુ જે ફલ પ્રાપ્ત થાય છે, તેનુ નામ અનુભાવબન્ધ છે. તથા જેમ તે લાડુમાં લોટ, ઘી આદિનું અમુક નિયત પ્રમાણુ હોય છે, એ જ પ્રમાણે કર્મોમાં પુદ્ગલોનું જ પ્રતિનિયત પ્રમાણુ હોય છે, તેનું નામ જ પ્રદેશબન્ધ છે.

" ચઉવ્વિહે ઉવક્કમે " ઇત્યાદિ—

જીવની જે શક્તિવિશેષ હોય છે, તેનું નામ ઉપક્રમ છે. તે શક્તિવિશેષ રૂપ ઉપક્રમ કર્મોના બન્ધમાં, ઉદીરણામાં, ઉપશમનમાં અને વિપરિણામ રૂપે પરિણમનમાં કારણભૂત હોય છે જીવના શક્તિવિશેષ રૂપ ઉપક્રમને અન્યત્ર કારણ રૂપે પણ ઓળખેલ છે અથવા કર્મોમાં પ્રકૃતિબન્ધ આદિ ચાર રૂપે જે પરિણમન થવાનો પ્રારભ થાય છે, તેનુ નામ જ ઉપક્રમ છે. કહ્યુ પણ છે કે " स्यादारम्भ उपक्रमः " આરમ્ભ કરે તેનુ નામ ઉપક્રમ છે. અથવા ઉપક્રમ વસ્તુપરિકર્મ (વસ્તુના સંસ્કાર) રૂપ હોય છે. જો કે

मोदकवदिति। अत्रैव दृष्टान्तो मोदकदृष्टान्तोऽस्ति—यथा—मोदको कणिका गुडघृत-कटु माण्डादिद्रव्यसद्भावसन् कोऽपि पित्तहरः, कोऽपि कफहरः, कोऽपि माणहर कोऽपि बुद्धिकरः, कोऽपि व्यामोहकरः, तथा—कर्मप्रकृतिः काचिज्ज्ञानमावृणोति काचिद्दर्शनं, काचित् सुखदुःखादि वेदनामुत्पादयति। तथा तस्यैव मोदकस्य यथा अविनाशभावेन कालनियमरूपा स्थितिर्भवति, तथा कर्मणोऽपि अविनाश-भावेन नियतकालावस्थाने स्थितिबन्धो भवति, तथा—तस्यैव मोदकस्य यथा-स्निग्धमधुरादिरेकगुणद्विगुणादिभावेन रसो भवति, तथा कर्मणोऽपि देशघाति

की है, जैसे—आटा-गुड-घृत और कटु आदि द्रव्यको मिलाकर बांधा गया कोई एक मोदक वातहर होता है, कोई एक पित्तहर होताहै, कोई एक कफहर होताहै, कोईएक प्राणहर होताहै, कोईएक बुद्धिहर होताहै, और कोईएक व्यामोहकर (मूर्च्छाकरनेवाला) होताहै उसी प्रकारसे जीवद्वारा गृहीत कर्मपुद्गल कर्मभावसे परिणमित होकर कोईएक कर्मप्रकृति ज्ञान को आवृत करती है कोईएक दर्शनको आवृत करती है, कोईएक प्रकृति सुखदुःख आदिक वेदनको उत्पन्न करती है, कर्मोंका जो स्वभावहै वही प्रकृतिबन्ध है। तथा उस मोदककी जिस प्रकार से अविनाश भावको लेकर अमुक काल तक रहनेकी मर्यादा होती है वैसे ही कर्मोंकी भी नियत काल तक जो रहनेकी मर्यादा है वही स्थितिबन्ध है। तथा जिस प्रकारसे मोदक लड्डूमें एकगुणा-दोगुना आदि रूपसे रस होता है उसी प्रकारसे कर्म में भी जो देशघाती-सर्वघाती रूपसे रस होता है तथा

એ જ વાતનું ટીકાકારે પૂર્વોક્ત મોદક (લાડુ) ના દૃષ્ટાન્તથી પ્રતિપાદન કર્યું છે જેમકે લોટ, ઘી ગોળ અને કડવા મરી આદિ દ્રવ્યના મિશ્રણથી બનાવેલો કોઈ એક લાડુ વાતહર હોય છે, કોઇ એક લાડુ પિત્તહર હોય છે, કોઈ એક લાડુ કફનું શમન કરનારો હોય છે, કોઈ એક પ્રાણહર હોય છે, કોઈ એક બુદ્ધિહર હોય છે, અને કોઇ એક વ્યામોહકર હોય છે, એજ પ્રમાણે જીવ દ્વારા ગૃહીત કર્મપુદ્ગલ કર્મરૂપે પરિણમિત થાય છે ત્યારબાદ કોઇ એક કર્મપ્રકૃતિ જ્ઞાનને આવૃત કરે છે કોઈ એક કર્મપ્રકૃતિ દર્શનને આવૃત કરે છે અને કોઇ એક પ્રકૃતિ સુખદુઃખાદિ રૂપ વેદનને ઉત્પન્ન કરે છે આ પ્રકારના કર્મના જે સ્વભાવ છે એ જ પ્રકૃતિબંધ છે જેમ તે લાડુની અવિનાશભાવની અપેક્ષાએ અમુક કાળ સુધી રહેવાની મર્યાદા હોય છે, તેમ કર્મોની પણ નિયત કાળ સુધી રહેવાની જે મર્યાદા હોય છે તેને સ્થિતિબન્ધ કહે છે જેમ લાડુમાં એક ગણો, બે ગણો આદિ રૂપ રસ હોય છે, તેમ

तथा—उदीरणोपक्रमः–उदीरणा–अप्राप्तकालफलानां कर्मणामुदयावलिकायां प्रवेशनम्, उक्तं च—

" जं करणेणोकड्ढिय, उदए दिज्जइ उदीरणा एसा।
पगइठिई अणुभावप्पएसमूलुत्तरविभागा॥ १॥ "

छाया—यत् करणेनावकृष्योदये दीयत उदीरणैषा।
प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशमूलोत्तरविभागाः॥ १॥ इति।

तस्या उपक्रमः तद्रूपो वा उपक्रम इति। २।

तथा—उपशमनोपक्रमः–उपशमना – उदयोदीरणानिधत्तनिकाचनाकरणायोग्यतया कर्मणोऽवस्थापना, तस्या उपक्रमः उपशमनोपक्रमः उपशमनायां त्रीणि करणानि भवन्ति, उक्तश्च—

जो परस्पर में सम्बन्धनरूप बन्धन है उसका उपक्रम होता है। अर्थात् आरम्भ होता है। तथा वस्तुपरिकर्म रूप तृतीयार्थ पक्षमें उपक्रम का ऐसा अर्थ होना है, कि–गृहीत कर्मवर्गणाओं का बद्धावस्थारूपमें करना सो–बन्धनोपक्रम है। उदीरणोपक्रम–जिन कर्मों का फल देनेका जो समय नहीं है उनको उस कालमें फल देनेयोग्य बनाना इसका नाम उदीरणा है, उदीरणासे कर्मो को हठात् उदयावलिकामें खींचा जाता है।

उक्तश्च—" जं करणेणोकड्ढिय " इत्यादि कर्म को खींच कर उदयावलिका में लाना। इस उदीरणा का जो उपक्रम है, या—उदीरणारूप जो उपक्रम है वह उदीरणोपक्रम है २ उदय होनेमें कर्मोको अयोग्य करना, उदीरणाको अयोग्य करना निधत्त को अयोग्य करना निकाचना को अयोग्य करना इसका नाम उपशमना

જે પરસ્પરના સબંધન (સંયોજન) રૂપ બન્ધન છે, તેનો ઉપક્રમ (આરંભ) થાય છે. જો ઉપક્રમનો વસ્તુપરિકર્મ રૂપ અર્થ લેવામાં આવે, તો બન્ધનો. પક્રમનો આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે–ગૃહીત કર્મવર્ગણાઓને બદ્ધાવસ્થા રૂપ કરવી તેનુ નામ બન્ધનોપક્રમ છે.

ઉદીરણોપક્રમનો ભાવાર્થ—જે કર્મોનો ફલ દેવાનો જે સમય ન હોય, તે સમયે તેને ફલ દેવા યોગ્ય બનાવવું તેનું નામ ઉદીરણા છે. ઉદીરણા દ્વારા કર્મોને બળજબરીથી ઉદયાવલિકામાં ખેંચી લેવામાં આવેછે. કહ્યુ પણ છે કે— " जंकरणेणो कड्ढिय " ઇત્યાદિ—તે ઉદીરણાનો જે ઉપક્રમ છે અથવા ઉદીરણારૂપ જે ઉપક્રમ છે તેનુ નામ ઉદીરણોપક્રમ છે.

ઉપશમનોપક્રમનો ભાવાર્થ—કર્મોને ઉદયાવલિકામાં ન આવે એવા કરવા, ઉદીરણાને માટે અયોગ્ય કરવા, નિધત્તને માટે અયોગ્ય કરવા અને નિકાચનને માટે પણ અયોગ્ય કરવા તેનુ નામ ઉપશમના છે. તે ઉપશમનાનો જે ઉપક્રમ

अथवा—उपक्रमः—वस्तुपरिकर्मरूपः, यद्यप्यन्यत्र उपक्रमशब्देन वस्तुपरिकर्म वस्तुविनाशो प्रोक्तौ, तथाप्यत्र वस्तुपरिकर्मरूप एवार्थो गृह्यते। स चतुर्विधः प्रज्ञप्त, तद्यथा—बन्धनोपक्रम, उपक्रमस्य जीवशक्तिविशेषरूपार्थपक्षे बन्धनोपक्रमस्यायमर्थः—तथाहि—बन्धन—कर्मपुद्गलानां जीवप्रदेशानां च परस्परं सम्बन्धनम्, एतद्बन्धनं च सूत्रबद्धलोहशलाकासम्बन्धवद् बोध्यम्, तस्य उपक्रमः=परिणामनहेतुभूतो जीवशक्तिविशेषो बन्धनोपक्रमः। उपक्रमस्य आरम्भार्थपक्षेतु—पूर्वोक्तार्थकस्य बन्धनस्य उपक्रमः=आरम्भः। वस्तुपरिकर्मेति तृतीयार्थपक्षेतु—गृहीतकर्मवर्गणाया बद्धावस्थीकरणं बन्धनम्, तद्रूप उपक्रम =वस्तुपरिकर्मरूप इति ॥१॥

अथवा – उपक्रम वस्तु परिकर्म वस्तु का संस्कार करने रूप होता है। यद्यपि–अन्यत्र उपक्रम शब्दसे वस्तु परिकर्म और वस्तु विनाश ये दो कहे गये हैं तो भी यहाँ पर उपक्रम शब्दका वस्तु परिकर्म रूप ही अर्थगृहीत हुवा है। यह उपक्रम चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—बन्धनोपक्रम आदि। जब उपक्रम शब्द का अर्थ जीव का शक्तिविशेष परक है–इस पक्षमें बन्धनोपक्रम का ऐसा अर्थ होता है–जीवप्रदेशों का और कर्मपुद्गलों का परस्पर में सम्बन्ध होता है इसका नाम बन्धन है। जैसे — सूत्रबद्ध लोहशालाकाओं का परस्परमें सम्बन्ध (सम्बद्ध) होता है, अतः–यह बन्धन सूत्रबद्ध लोहशलाकाओंके सम्बन्धकी नाई होता है ऐसा जानना चाहिये। इस बन्धन का जो उपक्रम है, अर्थात् इस बन्धनके परिणमनका हेतुभूत जो जीवका शक्तिविशेष है वह बन्धनोपक्रम है। तथा—जब उपक्रम शब्द आरम्भार्थ परक लिया जाता है, तब इसका अर्थ ऐसा होता है कि जीवप्रदेशों का और कर्मपुद्गलोंका

અન્યત્ર ઉપક્રમ શબ્દ દ્વારા વસ્તુપરિકર્મ અને વસ્તુ વિનાશ, આ બે અર્થ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે, છતાં અહીં તો વસ્તુપરિકર્મ રૂપ અર્થ જ ગૃહીત થયો છે તે ઉપક્રમના બન્ધનોપક્રમ આદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે જો ઉપક્રમનો શક્તિવિશેષ રૂપ અર્થ ગ્રહણ કરવામાં આવે–શક્તિવિશેષ રૂપ ઉપક્રમને ગ્રહણ કરવામાં આવે, તો બન્ધનોપક્રમનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે—

જીવપ્રદેશોનું અને પુદ્ગલોનું પરસ્પરની સાથે જે સંબંધન (સંયોજન) થાય છે, તેનું નામ બન્ધન છે દોરી વડે બદ્ધ એવી લોઢાની સળીઓનો પરસ્પરમાં જેવો સંબંધ હોય છે એવો જ આ સંબંધ હોય છે એમ સમજવું આ બન્ધનનો જે ઉપક્રમ છે, એટલે કે આ બન્ધનના પરિણમનના કારણરૂપ જીવની શક્તિવિશેષ રૂપ જે ઉપક્રમ છે તેને બન્ધનોપક્રમ કહે છે

જો ઉપક્રમ શબ્દનો આરંભ અર્થ અહીં ગ્રહણ કરવામાં આવે તો બન્ધનોપક્રમનો આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે—જીવપ્રદેશોનું અને કર્મપુદ્ગલોનું

विविधैः प्रकारैः कर्मणां करणविशेषेण परिणामनाऽवस्थान्तरप्रापणा सा तस्या उपक्रमो विपरिणामनोपक्रमः, यद्यपि विपरिणामना बन्धनोदीरणोपशमनासु तथा-तदन्यासूदयोदीरणानिधत्तनिकाचनास्वपि वर्तते तथापीह सामान्यरूपत्वात् पृथगुक्ता।४।

"बंधणोवक्कमे चउव्विहे" इत्यादि—बन्धनोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्त, तद्यथा-प्रकृतिबन्धनोपक्रमः १, स्थितिबन्धनोपक्रमः २, अनुभागबन्धनोपक्रमः ३, प्रदेशबन्धनोपक्रमश्चेति ४, तत्र प्रकृतिबन्धन-ज्ञानावरणीयादिकर्मभेदाष्टकनिर्वर्तनं, तस्य उपक्रम -योगलक्षणो जीवपरिणाम, तस्य प्रकृतिबन्धहेतुत्वात् १। तथा-स्थितिबन्धनोपक्रम-स्थितिबन्धनम्-अत्रैव सूत्रे प्रागुक्तं, तस्योपक्रमः स्थितिव-

कर्मों की विविध प्रकारसे परिणामना-अवस्थान्तर प्रापणा होती है वह विपरिणामना है. इस विपरिणामनाका जो उपक्रम है-वह विपरिणामनोपक्रम है। यद्यपि - विपरिणामना बन्धन-उदीरणा, उपशमना इनमें, तथा-इनसे अन्य उदय, उदीरणा निधत्त, और निकाचना इनमें भी रहती है तो भी यहां सामान्य रूप होनेसे वह पृथक् कही गई है। ४।

"बंधणोवक्कमे चउव्विहे" इत्यादि। बन्धनोपक्रम चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—प्रकृति बन्धनोपक्रम१ इत्यादि-ज्ञानावरणीय आदि भेदोंसे कर्मों की आठ प्रकृतियां है, इन आठ प्रकृतिरूप कर्मका बन्धन होना यह प्रकृतिबन्धन है। इस प्रकृतिबन्धनाका जो उपक्रम वह-प्रकृति बन्धनोपक्रम है, यह—प्रकृतिबन्धनोपक्रम जीवका परिणाम विशेष योगरूप है, क्योंकि—योग ही प्रकृतिबन्धका हेतु होता है। स्थिति-

ક્ષેત્રાદિ અનુસાર જે પરિણામના (અન્ય અવસ્થાની પ્રાપ્તિ) થાય છે તેને અથવા કારણ વિશેષની અપેક્ષાએ કર્મોનું વિવિધ પ્રકારે જે પરિણમન (અવસ્થાન્તર પ્રાપણા) થાય છે, તેને વિપરિણામના કહે છે તે વિપરિણામનાનો જે ઉપક્રમ છે તેને વિપરિણામનોપક્રમ કહે છે. જો કે વિપરિણામનાનો બન્ધન, ઉદીરણા અને ઉપશમનામા સદ્ભાવ હોય છે, તથા તે સિવાયના ઉદય, નિધત્ત અને નિકાચનામાં પણ વિપરિણામના રહેલી હોય છે, છતાં પણ સામાન્ય રૂપ હોવાથી અહીં તેનું અલગ રીતે પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યુ છે

"बंधणोवक्कमे चउव्विहे" ઇત્યાદિ—

બન્ધનોપક્રમના પ્રકૃતિ બન્ધનોપક્રમ આદિ ચાર પ્રકાર છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ ભેદથી કર્મની આઠ પ્રકૃતિઓ કહી છે તે આઠ પ્રકૃતિઓ રૂપ કર્મનું બન્ધન થવું તેનું નામ પ્રકૃતિબન્ધ છે તે પ્રકૃતિબન્ધનો જે ઉપક્રમ છે તેને પ્રકૃતિબન્ધનોપક્રમ કહે છે તે પ્રકૃતિબન્ધનોપક્રમ જીવના પરિણામ વિશેષ યોગરૂપ છે, કારણ કે યોગ જ પ્રકૃતિબન્ધમાં હેતભૂત (કારણરૂપ) હોય છે

" ओवट्टण-उव्वट्टण-संकमणाइ य तिन्नि करणाइ "

छाया— अपवर्तनोद्वर्तनसंक्रमणानि च त्रीणि करणानि " इति । एतानि त्रीणि करणानि देशोपशमनायां भवन्ति, न तु सर्वोपशमनायां, सर्वोपशमनाया मोहनीय एव सद्भावात् । शेषाणां सप्तानां कर्मणां सर्वोपशमना न भवति, देशोपशमना तु सर्वेषां कर्मणां भवतीति पर्यवसितोऽर्थः । तथा-विपरिणामनोपक्रमा-वीति-विविधैः प्रकारैः-कर्मणां सत्तोदयक्षयोपशमापवर्तनोद्वर्तनादिभि' एतद् रूपतयेत्यर्थ , परिणामना-अवस्थान्तरमापणा विपरिणामना, यद्वा-विविधैः प्रकारैः गिरिसरि दुपलन्यायेन द्रव्यक्षेत्रादिभिः कर्मणां परिणामना-अवस्थान्तरमापणा । अथवा-

है इस उपशमना का जो उपक्रम है वह उपशमनोपक्रम है। उपशमना में तीन करण होते हैं । उक्त भी है-" ओवट्टण-उव्वट्टण-संकमणाइ य तिन्नि करणाइ " अपवर्तन-उद्वर्तन और सक्रमण ये तीन करण देशोपशमना में होते हैं-सर्वोपशमनामें नहीं । मोहनीयमें ही सर्वोप शमनाका सद्भाव होता है । बाकी के जो सात कर्म हैं-उनमें सर्वोपश मना नहीं होती है । देशोपशमना ही होती है । तथा-मोहनीय में दोनों प्रकारकी उपशमना होती है-देशोपशमना भी होती है और सर्वोपश मना भी होती है । विपरिणामनोपक्रम-कर्मों की वि-विविध प्रकारों से सत्ता, उदय, क्षयोपशम, अपवर्तन, उद्वर्तन आदि रूपसे जो परि णामना-अवस्थान्तर प्रापणा है, वह अथवा-विविध प्रकारसे जो-गिरि सरिदुपघोलन न्याय से द्रव्य क्षेत्रादिके अनुसार कर्मोंकी परिणामना-अवस्थान्तर प्रापणा होती है वह, अथवा-कारणविशेषको लेकर जो

છે તેનું નામ ઉપશમનોપક્રમ છે ઉપશમનામાં ત્રણ કરણ હોય છે કહ્યું પણ છે કે-" ओवट्टण-उव्वट्टण-संकमणाइ य तिन्नि करणाइ " અપવર્તન ઉદ્વર્તન અને સંક્રમણ આ ત્રણ કરણોનો સદ્ભાવ દેશોપશમનામાં હોય છે સર્વોપશ મનામાં હોતો નથી મોહનીયમાં જ સર્વોપશમનાનો સદ્ભાવ હોય છે બાકીના સાત કર્મોમાં સર્વોપશમનાનો સદ્ભાવ હોતો નથી પણ દેશોપશમનાનો જ સદ્ભાવ હોય છે તથા મોહનીયમાં બન્ને પ્રકારની ઉપશમનાનો સદ્ભાવ છે એટલે કે સર્વોપશમનાનો પણ સદ્ભાવ હોય છે અને દેશોપશમનાનો પણ સદ્ભાવ હોય છે

વિપરિણામોપક્રમનો ભાવાર્થ—કર્મોની જે વિવિધ પ્રકારે સત્તા, ઉદય, ક્ષયોપશમ અપવર્તન, ઉદ્વર્તન આદિ રૂપે જે પરિણામના (અવસ્થાન્તર પ્રાપ્તિ) થાય છે, તેને અથવા વિવિધ પ્રકારે જે-ગિરિ સરિ દુપઘોલન ન્યાયે

विविधैः प्रकारैः कर्मणां करणविशेषेण परिणामनाऽवस्थान्तरप्रापणा सा, तस्या उपक्रमो विपरिणामनोपक्रमः, यद्यपि विपरिणामना बन्धनोदीरणोपशमनासु तथा-तदन्यासूदयोदीरणानिधत्तनिकाचनास्वपि वर्तते तथापीह सामान्यरूपत्वात् पृथगुक्ता।४।

"बंधणोवक्कमे चउव्विहे" इत्यादि—बन्धनोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-प्रकृतिबन्धनोपक्रमः १, स्थितिबन्धनोपक्रमः २, अनुभागबन्धनोपक्रमः ३, प्रदेशबन्धनोपक्रमश्चेति ४, तत्र प्रकृतिबन्धन-ज्ञानावरणीयादिकर्मभेदाष्टकनिर्वर्तनं, तस्य उपक्रम -योगलक्षणो जीवपरिणामः, तस्य प्रकृतिबन्धहेतुत्वात् १। तथा-स्थितिबन्धनोपक्रमः-स्थितिबन्धनम्-अत्रैव सूत्रे प्रागुक्तं, तस्योपक्रमः स्थितिब-

---

कर्मों की विविध प्रकारसे परिणामना-अवस्थान्तर प्रापणा होती है वह विपरिणामना है. इस विपरिणामनाका जो उपक्रम है-वह विपरिणामनोपक्रम है। यद्यपि - विपरिणामना बन्धन-उदीरणा, उपशमना. इनमें, तथा-इनसे अन्य उदय, उदीरणा निधत्त, और निकाचना इनमें भी रहती है तो भी यहां सामान्य रूप होनेसे वह पृथक् कही गई है। ४।

"बंधणोवक्कमे चउव्विहे" इत्यादि। बन्धनोपक्रम चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—प्रकृति बन्धनोपक्रम१ इत्यादि-ज्ञानावरणीय आदि भेदोंसे कर्मों की आठ प्रकृतियां है, इन आठ प्रकृतिरूप कर्मका बन्धन होना यह प्रकृतिबन्धन है। इस प्रकृतिबन्धनाका जो उपक्रम वह-प्रकृति बन्धनोपक्रम है, यह—प्रकृतिबन्धनोपक्रम जीवका परिणाम विशेष योगरूप है, क्योंकि—योग ही प्रकृतिबन्धका हेतु होता है। स्थिति-

---

क्षेत्रादि अनुसार જે પરિણામના (અન્ય અવસ્થાની પ્રાપ્તિ) થાય છે તેને અથવા કારણ વિશેષની અપેક્ષાએ કર્મોનુ વિવિધ પ્રકારે જે પરિણમન (અવસ્થાન્તર પ્રાપણા) થાય છે, તેને વિપરિણામના કહે છે તે વિપરિણામનાનો જે ઉપક્રમ છે તેને વિપરિણામનોપક્રમ કહે છે. જો કે વિપરિણામનાનો બન્ધન, ઉદીરણા અને ઉપશમનામા સદ્ભાવ હોય છે, તથા તે સિવાયના ઉદય, નિધત્ત અને નિકાચનામાં પણ વિપરિણામના રહેલી હોય છે, છતાં પણ સામાન્ય રૂપ હોવાથી અહીં તેનુ અલગ રીતે પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યુ છે

"बंधणोवक्कमे चउव्विहे" ઈત્યાદિ—

બન્ધનોપક્રમના પ્રકૃતિ બન્ધનોપક્રમ આદિ ચાર પ્રકાર છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ ભેદથી કર્મની આઠ પ્રકૃતિઓ કહી છે તે આઠ પ્રકૃતિઓ રૂપ કર્મનું બન્ધન થવુ તેનું નામ પ્રકૃતિબન્ધ છે તે પ્રકૃતિબન્ધનો જે ઉપક્રમ છે તેને પ્રકૃતિબન્ધનોપક્રમ કહે છે તે પ્રકૃતિબન્ધનોપક્રમ જીવના પરિણામ વિશેષ યોગરૂપ છે, કારણ કે યોગ જ પ્રકૃતિબન્ધમા હેતભૂત (કારણરૂપ) હોય છે

न्धनोपक्रमः, स च कषायरूपो जीवपरिणामः, स्थितेःकषायहेतुकत्वात् २। तथा-अनुभावबन्धनोपक्रम -अनुभावबन्धनस्य-प्रागुक्तस्य उपक्रमः, अयमपि कषायरूप ३। तथा-प्रदेशबन्धनोपक्रम-प्रागुक्तस्य प्रदेशबन्धनस्योपक्रम -योगरूपोजीवप रिणाम , यत उक्तम्—

" जोगा पयडिपएस ठिइ अणुभागं कसायओ कुणइ "

छाया—योगात् प्रकृति-प्रदेशौ स्थित्यनुभावौ कषायतः करोति " इति, यद्वा-प्रकृतिप्रभृति बन्धनानामुपक्रमाः-आरम्भाः प्रकृत्यादिबन्धनोपक्रमा बोध्याः। एवमन्यत्रापि । ४ ।

बन्धनोपक्रम " इसी सूत्रमें पहले स्थितिबन्ध कहा जा चुका है सो इसका जो उपक्रम है वहा-स्थितिबन्धनोपक्रम है । यह जीव का परि णाम विशेष जो कषाय है तद्रूप है । क्यों कि-स्थितिबन्धका कारण-कषाय है प्रागुक्त लक्षणवाला अनुभावबन्धन का जो उपक्रम है वह-अनुभाव बन्धनोपक्रम है यह-अनुभाव बन्धनोपक्रम भी कषायरूप ही है । तथा-पहले कथित प्रदेशबन्धनका जो उपक्रम है वह-प्रदेशबन्ध नोपक्रम है यह—प्रदेशबन्धनोपक्रम भी योगरूप जीव परिणाम विशेष रूप होता है ।

उक्त भी है-" जोगा पयडिपएस ठिइ अणुभावं कसायओ कुणइ " जीव योगसे प्रकृति और प्रदेशबन्ध इन दोनों बन्धोंको करता है, अर्थात—प्रकृतिबन्ध और प्रदेश कोबयोगसे होते हैं, और स्थितिबन्ध और अनुभावबन्ध कषाय से होते हैं । अथवा-प्रकृति आदि बन्धनोंका

સ્થિતિ બંધનોપક્રમ—આ સૂત્રમાં જ સ્થિતિબંધનો આશય પહેલા બતાવવામાં આવ્યો છે તે સ્થિતિબંધનનો જે ઉપક્રમ છે તેને સ્થિતિ બંધનો પક્રમ કહે છે તે જીવના કષાય સ્વરૂપ પરિણામ વિશેષરૂપ છે કારણ કે સ્થિતિબંધનુ કારણ કષાય છે

પહેલા અનુભાવબંધનો ભાવાર્થ બતાવ્યો છે તે અનુભાવ બન્ધનનો જે ઉપક્રમ છે તેને ' અનુભાવ બંધનોપક્રમ ' કહે છે તે અનુભાવબંધનો પક્રમ પણ કષાય રૂપ જ છે પૂર્વોક્ત લક્ષણવાળા પ્રદેશબંધનનો જે ઉપક્રમ છે તેનુ નામ પ્રદેશબંધનોપક્રમ ' છે તે પ્રદેશબંધનોપક્રમ પણ યોગરૂપ જીવ પરિણામ વિશેષરૂપ હોય છે કહ્યુ પણ છે કે-' जोगापयडिपएसठिइ अणुभाव कसायओ कुणइ " જીવ યોગ વડે પ્રકૃતિબન્ધ અને પ્રદેશબંધ કરે છે એટલે કે પ્રકૃતિબંધ અને પ્રદેશબંધ એ બન્ને બંધ યોગોથી થાય છે અને સ્થિતિબંધ અને અનુભાવબંધ કષાયને કારણે થાય છે અથવા પ્રકૃતિ આદિ બંધનોનો જે ઉપક્રમ-પ્રારંભ છે તેને પ્રકૃતિ આદિ બંધનોપક્રમ કહે છે એ જ પ્રમાણે અન્યત્ર પણ સમજવું

"उदीरणोवक्कमे चउव्विहे' इत्यादि — उदीरणोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–प्रकृत्युदीरणोपक्रमः–यद्वा मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां वा दलिकं सामर्थ्यविशेषेणाऽऽकृष्योदयावलिकायां प्रवेश्यते सा प्रकृत्युदीरणा, तस्या उपक्रमः १। तथा–स्थित्युदीरणोपक्रमः–आत्मवीर्यादेवोदितया स्थित्या सार्द्धमप्राप्तोदयस्थितेरनुभवनं स्थित्युदीरणा, तस्या उपक्रमस्तथाभूतः २। तथा–अनुभावोदीरणोपक्रमः–वीर्यविशेषादेवोदितेनानुभावेन सहानुदितो योऽनुभावो वेद्यते साऽनुभावोदीरणा, तस्या उपक्रमः ३। तथा–प्रदेशोदीरणोपक्रमः–प्रदेशोदीरणाप्राप्तोदयैर्नियतपरिमाणकर्मप्रदेशैः सहाऽप्राप्तोदयानां नियतपरिमाणानां कर्मप्रदेशानां वेदनम्, तस्या उपक्रमः। इहाऽपि उपक्रमः–कषाययोगरूपो जीवपरिणाम आरम्भो वा ग्राह्यः।४।

जो उपक्रम–प्रारम्भ है वह प्रकृति आदि बन्धनोपक्रम है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये ४। "उदीरणोवक्कमे चउव्विहे" उदीरणोपक्रम चार प्रकारका है, जैसे—प्रकृत्युदीरणोपक्रम इत्यादि। तपोविशेष आदिसे खींच कर उदयावलिका में मूल प्रकृति का अथवा उत्तर प्रकृतिका दलिकामें प्रवेश कराना प्रकृत्युदीरणा है, इस प्रकृत्युदीरणा का जो उपक्रम वह प्रकृत्युदीरणोपक्रम है। आत्मवीर्य से ही उदितस्थितिके साथ अप्राप्तोदयवाली स्थितिका अनुभवन करना यह–स्थित्युदीरणा है. इस स्थित्युदीरणा का जो उपक्रम वह–स्थित्युदीरणोपक्रम है। वीर्यविशेष से ही उदित अनुभावके साथ अनुदित अनुभावका जो वेदनहै वह–अनुभावोदीरणा है, इस अनुभावोदीरणाका जो उपक्रम है वह अनुभावोदीरणोपक्रम है। तथा—प्रदेशोदीरणा से प्राप्त है उदयजिनका ऐसे नियत परिणामवाले कर्मप्रदेशोंके साथ अप्राप्त उदयवाले नियत परि-

---

"उदीरणोवक्कमे चउव्विहे" ઉદીરણોપક્રમના પ્રકૃત્યુદીરણોપક્રમ આદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે. તપોવિશેષ દ્વારા ખેંચીને મૂલપ્રકૃતિ અથવા ઉત્તરપ્રકૃતિના દલિકનો ઉદયાવલિકામા પ્રવેશ કરાવવો તેનુ નામ પ્રકૃત્યુદીરણા છે. તે પ્રકૃત્યુદીરણાનો જે ઉપક્રમ છે તેને પ્રકૃત્યુદીરણોપક્રમ કહે છે આત્મવીર્યથી જ ઉદિત સ્થિતિની સાથે અપ્રાપ્તોદયવાળી સ્થિતિનુ અનુભવન કરવુ તેનુ નામ સ્થિત્યુદીરણા છે તે સ્થિત્યુદીરણાનો જે ઉપક્રમ છે તેને સ્થિત્યુદીરણોપક્રમ કહે છે. વીર્યવિશેષથી જ ઉદિત અનુભાવની સાથે અનુદિત અનુભાવનુ જે વેદન થાય છે, તેને અનુભાવોદીરણા કહે છે આ અનુભાવોદીરણાનો જે ઉપક્રમ છે તેને નિયત પરિણામવાળા કર્મપ્રદેશોની સાથે અપ્રાપ્ત ઉદયવાળા નિયત પરિણામવાળા કર્મપ્રદેશોનુ જે વેદન છે તેનુ નામ પ્રદેશોદીરણા છે. તે પ્રદેશોદીરણાનો જે

'उवसमणोवक्कमे' इत्यादि—उपशमनोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—प्रकृत्युपशमनोपक्रमः १, स्थित्युपशमनोपक्रमः २, अनुभावोपशमनोपक्रमः ३, प्रदेशोपशमनोपक्रमः ४, इति। उपक्रमस्त्विह पुद्गलानां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपेण परिणमनसमर्थमात्मवीर्यमिति। "विप्परिणामणोवक्कमे" इत्यादि—विपरिणामनोपक्रमश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—प्रकृतिविपरिणामनोपक्रम इत्यादि। उपक्रम शब्दस्यार्थोऽनन्तरसूत्रोक्तवद् बोध्यः इति।

णाम विशिष्ट कर्मप्रदेशोंका जो वेदन है, वह प्रदेशोदीरणा है इस प्रदेशोदीरणाका जो उपक्रम है, वह प्रदेशोदीरणोपक्रम है। यहांपर भी उपक्रमको जीवका परिणामविशेष जो कषाय और योग है तद्रूप लेना चाहिये, या आरम्भार्थवाला लेना चाहिये। "उवसमोवक्कमे" इत्यादि—

उपशमनोपक्रम चार प्रकारका कहा गया है, जैसे प्रकृत्योपशमनोपक्रम इत्यादि पुद्गलोंको प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश इन चार रूपसे परिणमन करानेमें समर्थ जो आत्माका वीर्य है वह उपक्रम शब्दसे यहां लिया गया है, आरम्भ अर्थवाला उपक्रम नहीं लिया गया है।

"विप्परिणामणोवक्कमे" इत्यादि—विपरिणामनोपक्रम चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—प्रकृति विपरिणामनोपक्रम इत्यादि यहां परभी उपक्रम शब्दका अर्थ पूर्व सूत्र जैसाही जानना चाहिये—अन्य अर्थ नहीं। "चउव्विहे अप्पाबहुए" इत्यादि अल्प और बहुका जो भाव

ઉપક્રમ છે તેને પ્રદેશોદીરણોપક્રમ કહે છે અહીં પણ ઉપક્રમને કષાય અને યોગરૂપ જીવના પરિણામ વિશેષરૂપ સમજવો જોઈએ અથવા આરંભ અર્થવાળો સમજવો જોઈએ.

ઉવસમોવક્કમે' ઈત્યાદિ—ઉપશમનોપક્રમ ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે જેમકે પ્રકૃત્યોપશમનોપક્રમ આદિ ચાર પ્રકાર અહીં સમજવા. પુદ્ગલોનું પ્રકૃતિ સ્થિતિ, અનુભાવ અને પ્રદેશ આ ચાર રૂપે પરિણમન કરાવવાને સમર્થ એવું જે આત્મવીર્ય છે તે અહીં ઉપક્રમ શબ્દથી ગૃહીત થયુ છે આરંભ અર્થવાળો ઉપક્રમ અહીં ગ્રહણ થયેલ નથી

વિપ્પરિણામણોવક્કમે ઈત્યાદિ—વિપરિણામનોપક્રમના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—પ્રકૃતિ વિપરિણામનોપક્રમ આદિ ચાર પૂર્વોક્ત પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા. અહીં પણ ઉપક્રમ શબ્દનો અર્થ પૂર્વ સૂત્રમાં કથાનુસાર સમજવો. અન્ય અર્થ અહીં ગ્રહણ કરવો જોઈએ નહીં.

"चउव्विहे अप्पाबहुए" इत्यादि—अल्प च बहुचानयोः समाहारोऽल्पबहु, तस्य भावोऽल्पबहुत्वम्, तच्चतुर्विध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–प्रकृत्यल्पबहुत्वं १, स्थित्यल्पबहुत्वम् २, अनुभावाल्पबहुत्वं ३, प्रदेशाल्पबहुत्वं ४ चेति तत्र प्रकृत्यल्पबहुत्वं–प्रकृतीनां – प्रागुक्तानामल्पतरं च, तच्चाल्पबहुत्वं बन्धस्थित्यनुभावप्रदेशापेक्षया बोध्यम् तत्र बन्धापेक्षया यथा–उपशान्तमोहादिः सर्वस्तोकप्रकृतिबन्धको भवति, तस्य शातावेदनीयरूपैकविधबन्धकत्वात्। तस्माद् उपशमकादिसूक्ष्मसम्परायो बहुतरबन्धको भवति, तस्य वेदनीयायुर्वर्जशेष षड्विधबन्धकत्वात्, तस्माद् बहुतरबन्धकः सप्तविधबन्धकस्तस्माच्च बहुतरबन्धकोऽष्टविधबन्धक इति।१।

है वह अल्पबहुत्व है, यह अल्पबहुत्व चार प्रकारका कहा गया है। उसका भाव ऐसा है–पूर्वोक्त प्रकृतियोंमें बंधकी, स्थितिकी, अनुभावकी और प्रदेशकी अपेक्षा जो अल्पबहुत्व है वही अल्पबहुत्व रूपसे यहां कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये। जैसे–उपशान्त मोह आदिवाला जीव सबसे कम प्रकृतियोंका बन्धक होता है, क्योंकि–वह एकविध बन्धक होता है। अर्थात्–एक प्रकारसेही कर्मका सातावेदनीयका बंध करनेवाला होता है। इससे नीचेका जो उपशमकादि सूक्ष्म सम्परायवाला जीव होता है वह बहुतर बन्धक होता है, क्योंकि वह छह प्रकारसे कर्मका बन्ध करनेवाला होता है, अर्थात वेदनीय और आयुकर्मको छोडकर शेष छह कर्मों का बन्धक होता है। इससे बहुतर बंधक वह है जो सात प्रकारसे कर्मोका बन्धक होता है।

इससेभी बहुतर बन्धक वह है जो आठ प्रकारसे कर्मोंका बन्धन करनेवाला होता है १। स्थितिकी अपेक्षा अल्पबहुत्व इस प्रकारसे है,

---

"चउव्विहे अप्पाबहुए" ઇત્યાદિ—અલ્પ અને બહુનો જે ભાવ છે તેનુ નામ અલ્પબહુત્વ છે, તે અલ્પબહુત્વ ચાર પ્રકારનુ કહ્યું છે. આ ચાર પ્રકારનુ હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામા આવે છે—પૂર્વોક્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓમાં બન્ધ, સ્થિતિ, અનુભાવ અને પ્રદેશની અપેક્ષાએ જે અલ્પબહુત્વ છે, તેને જ અહીં અલ્પબહુત્વ રૂપે પ્રકટ કરવામા આવેલ છે, એમ સમજવું. જેમકે ઉપશાન્ત મોહ આદિવાળો જીવ ઓછામાં ઓછી કર્મ પ્રકૃતિઓનો બંધક હોય છે, કારણ કે તે એકવિધ બન્ધક જ હોય છે એટલે કે તે એક પ્રકારે જ કર્મનો–સાતાવેદનીયનો બન્ધક જ હોય છે. તેના કરતાં નીચા ગુણસ્થાનવાળો, ઉપશમકાદિ સૂક્ષ્મ સંપરાયવાળો જે જીવ હોય છે તે અધિક કર્મ પ્રકૃતિઓનો બન્ધક હોય છે, કારણ કે તે છ પ્રકારના કર્મનો બન્ધ કરતો હોય છે અર્થાત્ વેદનીય અને આયુકર્મને છોડીને બાકીના છ કર્મોનો બન્ધક થાય છે. તેના કરતા પણ બહુતર કર્મબન્ધક એ છે કે જે સાત પ્રકારના કર્મોનો બન્ધક હોય છે. અને તેના કરતા પણ બહુતર કર્મબન્ધક [illegible] એ

सूत्रे ' अप्पा ' इत्यत्राकारः, ' बहुए ' इत्यत्रासयुक्तस्य च प्राकृतत्वात् । तथा-स्थित्य ल्पबहुत्व-स्थितेरल्पत्व बहुत्व च, तद्यथा-' स व्वत्योवो सजयस्स जघन्नमा ठिइबंधो ।

एगिंदियबायरपज्जत्तगस्स जघन्नओ ठिइबंधो असंखेज्जगुणो । "

छाया-" सर्वस्तोक सयतस्य जघन्यतः स्थितिबन्धः ।

एकेन्द्रियबादरपर्याप्तकस्य जघन्यतः स्थितिबन्धोऽसख्येयगुण ।" इति तथा-अनुभावाल्पबहुत्वम्-अनुभावस्याल्पत्वं बहुत्व च, तद्यथा —

" सव्वत्थोवाइ अणतगुणवुड्ढिट्ठाणाणि, असंखेज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असखे ज्जगुणाणि, संखिज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असखिज्जगुणाणि जाव अणतभागवुड्ढिट्ठा णाणि असखेज्जगुणाणि " ।

छाया—' सर्वस्तोकानि अनन्तगुणवृद्धिस्थानानि, असख्येयगुणवृद्धिस्था

जैसे-' सव्वत्थोवो सजयस्स जहन्नओ ठिइबंधो, एगिंदिय बायर पज्जत्तगस्स जहन्नओ ठिइबंधो असंखेज्जगुणो "

सयत जीवको सर्वस्तोक जघन्य स्थितिबंध होता है और एकेन्द्रिय बादर पर्याप्तक जीवका जघन्य स्थितिबंध असख्यातगुणित होता है । तथा अनुभावकी अपेक्षा अल्पबहुत्व इस प्रकार है ।

जैसे-" सव्वत्थोवाइ अणंतगुणवुड्ढिट्ठाणाणि, असंखेज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि, सखिज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असंखिज्जगुणाणि जाव अणतभागवुड्ढिट्ठाणाणि असखेज्जगुणाणि "

इस कथनानुसार अनंत गुणवृद्धिका स्थान सर्वस्तोक है । असख्यात गुणवृद्धिका स्थान इससे अनत संख्यातगुणित होता है । संख्यात गुण

છે કે જે આ પ્રકારના કર્મોનો બન્ધ કરતો હોય છે સ્થિતિની અપેક્ષાએ અલ્પબહુત્વ નીચે પ્રમાણે સમજવું ' सव्वत्थोवो संजयस्स जहन्नओ ठिइबंधो एगिंदिय बायरपज्जत्तगस्स जहन्नओ ठिइबंधो असखेज्जगुणो ' સયત જીવનો જઘન્ય સ્થિતિબંધ સર્વસ્તોક (સૌથી અલ્પકાળની મર્યાદાવાળો) હોય છે, અને એકેન્દ્રિય બાદર પર્યાપ્તક જીવનો જઘન્ય સ્થિતિબંધ તેના કરતાં અસખ્યાતગણો (અસખ્યાતગણા કાળની મર્યાદાવાળો) હોય છે અનુભાવની અપેક્ષાએ અલ્પબહુત્વ આ પ્રમાણે સમજવું

" सव्वत्थोवाइ अणंतगुणवुड्ढिट्ठाणाणि, असंखेज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि संखिज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असखिज्जगुणाणि जाव अणंत भागवुड्ढिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि

આ કથન અનુસાર અનતગણી વૃદ્ધિનું સ્થાન સર્વસ્તોક (સૌથી અલ્પ) છે, અસખ્યાતગણી વૃદ્ધિનું સ્થાન તેના કરતાં અનત સખ્યાતગણુ છે સખ્યાતગણી

नानि. असंख्येयगुणानि, संख्येयगुणवृद्धिस्थानानि, असंख्येयगुणानि, यावद् अनन्तभागवृद्धिस्थानान्यसंख्येयगुणानि, इति ।

तथा—प्रदेशाल्पबहुत्वं-प्रदेशानामल्पत्वं बहुत्वं च, तद्यथा-" अट्ठविहबंधगस्स य आउयभागो थोवो नामगोयाणं तुल्लो विसेसाहिओ नाणदंसणावरणंतरायाणं तुल्लो विसेसाहिओ, मोहस्स विसेसाहिओ, वेयणीयस्स विसेसाहिओ "
छाया-अष्टविधबन्धकस्याऽऽयुर्भागः स्तोको नाम – गोत्रयोस्तुल्यो विशेषाधिको ज्ञानदर्शनाऽऽवरणान्तरायाणां तुल्यो विशेषाधिको मोहस्य विशेषाधिको वेदनीयस्य विशेषाधिकः " इति ।४।

" चउव्विहे संकमे " इत्यादि-संक्रमः-जीवो यां प्रकृतिं बध्नाति तदनुभावेन-तदाकारेण प्रकृत्यन्तरस्थदलिकस्य वीर्यविशेषेण परिणमनम्, उक्तं च—

वृद्धिका स्थान इससे असंख्यातगुणित है, यावत् अनंत भागवृद्धिका स्थान असंख्यातगुणित हैं। प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व इस प्रकार है जैसे-अट्ठविधबंधगस्सय आउयभागो थोवो, नामगोयाणं तुल्लो, विसेसाहिओ, नाणदंसणावरणंतरायाणंतुल्लो विसेसाहिओ मोहस्स विसेसाहिओ, वेयणीयस्स विसेसाहिओ " इस कथनानुसार आठ प्रकारसे बन्धक जीवका आयुका भागस्तोक होता है। नाम-गोत्रका भागतुल्य होता है, परन्तु विशेषाधिक होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका भागतुल्य होताहै पर वह विशेषाधिक होताहै मोहनीय कर्म विशेषाधिक होता है और वेदनीय कर्मका भाग विशेषाधिक होता है। " चउव्विहे संकमे " इत्यादि. जीव जीस प्रकृतिका बन्ध

વૃદ્ધિનુ સ્થાન તેના કરતા અસખ્યાતગુણિત છે, (યાવત્) અનંત ભાગ વૃદ્ધિનું સ્થાન અસખ્યાતગુણિત છે

પ્રદેશોની અપેક્ષાએ અલ્પબહુત્વ આ પ્રમાણે સમજવું—" अट्ठविधबंधगस्स य आउयभागो थोवो, नामगोयाण तुल्लो, विसेसाहिओ, नाणदंसणावरणं तरायाणं तुल्लो विसेसाहिओ मोहस्स विसेसाहिओ, वेयणीयस्स विसेसाहिओ " આ કથનાનુસાર આઠ પ્રકારના કર્મના બન્ધક જીવનો આયુનો ભાગ સ્તોક (અલ્પ) હોય છે, નામ-ગોત્રનો ભાગ તુલ્ય હોય છે, પણ આયુના ભાગ કરતા વિશેષાધિક હોય છે જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ અને અન્તરાયનો ભાગ તુલ્ય હોય છે, પરન્તુ નામ-ગોત્રના ભાગ કરતા વિશેષાધિક હોય છે. મોહનીયનો તેના કરતા પણ વિશેષાધિક હોય છે અને વેદનીયનો મોહનીય કરતાં પણ વિશેષાધિક હોય છે " चउव्विहे संकमे " ઇત્યાદિ—

सूत्रे 'अप्पा' इत्यभाकारः, 'बहुए' इत्यभासयुक्तत्वं च प्राकृतत्वात्। तथा-स्थित्य ल्पबहुत्व-स्थितेरल्पत्वं बहुत्वं च, तद्यथा-'सव्वत्थोवो संजयस्स जघन्नओ ठिइबंधो।
एगिंदियबायरपज्जत्तगस्स जघन्नओ ठिइबंधो असंखेज्जगुणो।"
छाया-" सर्वस्तोकः संयतस्य जघन्यतः स्थितिबन्धः।
एकेन्द्रियबादरपर्याप्तकस्य जघन्यतः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः।" इति
तथा-अनुभावाल्पबहुत्वम्-अनुभावस्याल्पत्वं बहुत्वं च, तद्यथा—
"सव्वत्थोवाइं अणंतगुणवुड्ढिट्ठाणाणि, असंखेज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असंखे ज्जगुणाणि, संखिज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असंखिज्जगुणाणि जाव अणंतभागवुड्ढिट्ठा णाणि असंखेज्जगुणाणि"।
छाया—' सर्वस्तोकानि अनन्तगुणवृद्धिस्थानानि, असंख्येयगुणवृद्धिस्था

जैसे-' सव्वत्थोवो संजयस्स जहन्नओ ठिइबंधो, एगिंदिय बायर पज्जत्तगस्स जहन्नओ ठिइबंधो असंखेज्जगुणो "
संयत जीवको सर्वस्तोक जघन्य स्थितिबंध होता है और एकेन्द्रिय बादर पर्याप्तक जीवका जघन्य स्थितिबंध असंख्यातगुणित होता है। तथा अनुभावकी अपेक्षा अल्पबहुत्व इस प्रकार है।
जैसे-" सव्वत्थोवाइं अणंतगुणवुड्ढिट्ठाणाणि, असंखेज्जगुणवुड्ढि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि, संखिज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असंखिज्जगु णाणि जाव अणंतभागवुड्ढिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि "
इस कथनानुसार अनंत गुणवृद्धिका स्थान सर्वस्तोक है। असंख्यात गुणवृद्धिका स्थान इससे अनंत संख्यातगुणित होता है। संख्यात गुण

છે કે જે આ પ્રકારના કર્મોનો બંધ કરતો હોય છે સ્થિતિની અપેક્ષાએ અલ્પબહુત્વ નીચે પ્રમાણે સમજવું ' सव्वत्थोवो संजयस्स जहन्नओ ठिइबंधो एगिंदिय बायरपज्जत्तगस्स जहन्नओ ठिइबंधो असंखेज्जगुणो ' સંયત જીવનો જઘન્ય સ્થિતિબંધ સર્વસ્તોક (સૌથી અલ્પકાળની મર્યાદાવાળો) હોય છે, અને એકેન્દ્રિય બાદર પર્યાપ્તક જીવનો જઘન્ય સ્થિતિબંધ તેના કરતાં અસંખ્યાતગણો (અસંખ્યાતગણા કાળની મર્યાદાવાળો) હોય છે અનુભાવની અપેક્ષાએ અલ્પબહુત્વ આ પ્રમાણે સમજવું
" सव्वत्थोवाइं अणंतगुणवुड्ढिट्ठाणाणि, असंखेज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि संखिज्जगुणवुड्ढिट्ठाणाणि असंखिज्जगुणाणि जाव अणंत भागवुड्ढिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि
આ કથન અનુસાર અનંતગણી વૃદ્ધિનું સ્થાન સર્વસ્તોક (સૌથી અલ્પ) છે, અસંખ્યાતગણી વૃદ્ધિનું સ્થાન તેના કરતાં અનંત સંખ્યાતગણું છે સંખ્યાતગણી

नानि. असंख्येयगुणानि, संख्येयगुणवृद्धिस्थानानि, असंख्येयगुणानि, यावद् अनन्तभागवृद्धिस्थानान्यसंख्येयगुणानि. इति ।

तथा—प्रदेशाल्पबहुत्वं-प्रदेशानामल्पत्वं बहुत्वं च, तद्यथा-" अट्ठविहबंधगस्स य आउयभागो थोवो नामगोयाणं तुल्लो विसेसाहिओ नाणदंसणावरणंतरायाणं तुल्लो विसेसाहिओ, मोहस्स विसेसाहिओ, वेयणीयस्स विसेसाहिओ "

छाया-अष्टविधबन्धकस्याऽऽयुर्भाग. स्तोको नाम - गोत्रयोस्तुल्यो विशेषाधिको ज्ञानदर्शनाऽऽवरणान्तरायाणां तुल्यो विशेषाधिको मोहस्य विशेषाधिको वेदनीयस्य विशेषाधिकः " इति ।४।

" चउव्विहे संकमे " इत्यादि-संक्रमः-जीवो यां प्रकृतिं बध्नाति तदनुभावेन-तदाकारेण प्रकृत्यन्तरस्थदलिकस्य वीर्यविशेषेण परिणमनम्, उक्तं च—

वृद्धिका स्थान इससे असंख्यातगुणित है, यावत् अनंत भागवृद्धिका स्थान असंख्यातगुणित है। प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व इस प्रकार है जैसे-अट्ठविधबंधगस्स आउयभागो थोवो, नामगोयाणं तुल्लो, विसेसाहिओ, नाणदंसणावरणंतरायाणंतुल्लो विसेसाहिओ मोहस्स विसेसाहिओ, वेयणीयस्स विसेसाहिओ " इस कथनानुसार आठ प्रकारसे बन्धक जीवका आयुका भागस्तोक होता है। नाम-गोत्रका भागतुल्य होता है, परन्तु विशेषाधिक होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका भागतुल्य होताहै पर वह विशेषाधिक होताहै मोहनीय कर्म विशेषाधिक होता है और वेदनीय कर्मका भाग विशेषाधिक होता है। " चउव्विहे संकमे " इत्यादि. जीव जीस प्रकृतिका बन्ध

વૃદ્ધિનુ સ્થાન તેના કરતા અસખ્યાતગુણિત છે, (યાવત્) અનંત ભાગ વૃદ્ધિનું સ્થાન અસખ્યાતગુણિત છે

પ્રદેશોની અપેક્ષાએ અલ્પબહુત્વ આ પ્રમાણે સમજવું—" अट्ठविधबंधगस्स य आउयभागो थोवो, नामगोयाणं तुल्लो, विसेसाहिओ, नाणदंसणावरणं तणायाण तुल्लो विसेसाहिओ मोहस्स विसेसाहिओ, वेयणीयस्स विसेसाहिओ " આ કથનાનુસાર આઠ પ્રકારના કર્મના બન્ધક જીવનો આયુનો ભાગ સ્તોક (અલ્પ) હોય છે, નામ-ગોત્રનો ભાગ તુલ્ય હોય છે, પણ આયુના ભાગ કરતા વિશેષાધિક હોય છે જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ અને અન્તરાયનો ભાગ તુલ્ય હોય છે, પરન્તુ નામ-ગોત્રના ભાગ કરતા વિશેષાધિક હોય છે. મોહનીયનો તેના કરતા પણ વિશેષાધિક હોય છે અને વેદનીયનો મોહનીય કરતાં પણ વિશેષાધિક હોય છે " चउव्विहे संकमे " ઇત્યાદિ—

" सो संकमोत्ति भण्णइ, ज बंधणपरिणओ पओगेण।
पयडयंतरत्थदलियं परिणामइ तदणुभावे ज ॥ १॥ "

छाया—" स संक्रम इति भण्यते यद् बन्धनपरिणत प्रयोगेण।
प्रकृत्यन्तरस्थदलिकं परिणमयति तदनुभावे (तदाकारं) यत् ॥१॥" इति

स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तथथा—प्रकृतिसंक्रमः—संक्रमस्य सामान्यलक्षणमनुसृत्य बोध्यः १, स्थितिसंक्रमः—मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां वा स्थितेरुत्कर्षणमपकर्षणं वा, यद्वा—मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां वा प्रकृत्यन्तरस्थितौ प्रापणम्, उक्तं च—

" ठिइ संकमोत्ति वुच्चइ, मूलुत्तरपगईण उ जा हि ठिई।
उव्वट्टिया व ओवट्टिया व पगइणियाऽन्नं ॥ १॥

छाया—स्थितिसंक्रम इत्युच्यते मूलोत्तरप्रकृतीनां तु या हि स्थितिः।
उद्वर्तिता वा अपवर्तिता वा प्रकृतिं नीता वाऽन्याम् ॥१॥ इति

करता है उस प्रकृतिके आकारमें प्रकृत्यन्तरके दलिकको परिणमा देना यह संक्रम है कहा भी है " सो संकमोत्ति भणिजो " इत्यादि यह संक्रम चार प्रकारका कहा गया है जैसे—प्रकृति संक्रम आदि प्रकृति संक्रमका स्वरूप—" सो संकमोत्ति " इत्यादि—इत्यादि गाथा द्वारा जैसा कहा गया है वैसाही है। मूल प्रकृतियोंकी या उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितिको उत्कर्षण रूपमें करना या अपकर्षण रूपमें करना अथवा मूलप्रकृतियोंको या उत्तर प्रकृतियोंको प्रकृत्यन्तरकी स्थितिमें लाकर प्राप्त करा देना यह स्थिति संक्रम है। कहाभी है—"ठिइ संकमोत्ति वुच्चइ " इत्यादि इसी प्रकारका कथन अनुभाव संक्रमके सम्बन्धमें

જીવ જે કર્મપ્રકૃતિનો બંધ કરે છે તે કર્મ પ્રકૃતિના આકારમાં પ્રકૃત્યન્તર (અન્ય પ્રકૃતિના) દલિકોને પરિણમિત કરી નાખવા તેનું નામ સંક્રમ છે કહ્યું પણ છે કે— सो संकमोत्ति भणिओ ઇત્યાદિ—

આ સંક્રમ ચાર પ્રકારનો છે—(૧) પ્રકૃતિ સંક્રમ, (૨) સ્થિતિ સંક્રમ (૩) અનુભાવ સંક્રમ અને (૪) પ્રદેશ સંક્રમ. પ્રકૃતિ સંક્રમનું સ્વરૂપ " सो संकमोत्ति " ઇત્યાદિ ગાથામાં કહ્યા પ્રમાણે જ સમજવું મૂળ પ્રકૃતિઓની અથવા ઉત્તર પ્રકૃતિઓની સ્થિતિનું ઉત્કર્ષણ અપકર્ષણ કરવું અથવા મૂળ પ્રકૃતિઓને અથવા ઉત્તર પ્રકૃતિઓને પ્રકૃત્યન્તરની (અન્ય કોઈ પ્રકૃતિની) સ્થિતિ પ્રાપ્ત કરાવી દેવી તેનું નામ સ્થિતિસંક્રમ છે કહ્યું પણ છે કે— " ठिइ संकमो त्ति वुच्चइ ઇત્યાદિ એજ પ્રકારનું કથન અનુભાવ સંક્રમ

एवमनुभावसंक्रमोऽपि ज्ञेयः, यदाह—
" जंसि संकमणे उव्वट्टियओवट्टिया व अणुभागा।
अनुभावसंकमो मो अन्नं पगइं व णीया वि ।१। "
छाया—यस्मिन् संक्रमणे उद्वर्तिता अपवर्तिता वा अनुभागाः।
अनुभावसंक्रम एषोऽन्यां प्रकृतिं नीता अपि ॥१॥ " इति।
प्रदेशसंक्रमः—अन्यप्रकृतिस्वभावेन परिणम्यमानं कर्मद्रव्यम्, उक्तं च—
" जं दलियमन्नपगइं णिज्जइ सो संकमो पएसस्स "
छाया—यद्दलिकमन्यप्रकृतिं नीयते स संक्रम प्रदेशस्य " इति ४।

" चउव्विहे णिधत्ते " इत्यादि–निधत्त–निधान निहितं वा, भावे कर्मणि वा क्तप्रत्यये निपातनादयं शब्दः, तत्–उद्वर्तनाऽपवर्तनारहितानां शेषकरणानामनर्हत्वेन कर्मणोऽवस्थापनम्। तच्चतुर्विध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–प्रकृतिनिधत्तं १, स्थितिनिधत्तम् २, अनुभावनिधत्तं ३ प्रदेशनिधत्तम् ४, इति। एतानि सामान्यलक्षणानुसारेण बोध्यानि। ४।

भी करना चाहिये। जैसाकि कहा गया है–" जंसि संकमणे उव्वट्टिय " अन्य प्रकृतिके स्वभावसे परिणमता हुवा जो कर्मद्रव्य है वह प्रदेश संक्रम है। कहाभी है–" जं दलियमन्नपगइं " इत्यादि।

" चउव्विहे णिधत्ते " इत्यादि—निधत–निधान अथवा निहित ये एकार्थक शब्द हैं। निधत्त–शब्द भावमें अथवा कर्ममें " क्त " प्रत्यय करने पर निपातसे बना है। निधत्त बन्ध वह है जो कर्मउद्बन्धना और अपवर्तनासे रहित शेष करणोंका अयोग्य होना है। यह प्रकृति निधत्त आदिके भेदसे चार प्रकारका कहा गया है सो इन्हें सामान्य लक्षणके अनुसारही जानना चाहिये।

વિષે પણ સમજવું અનુભાવ સંક્રમનું સ્વરૂપ " जंसि संकमणे उवट्टिय " ઈત્યાદિ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કર્યું છે અન્ય પ્રકૃતિના સ્વભાવે પરિણમન પામતું જે કર્મદ્રવ્ય છે, તેનુ નામ પ્રદેશ સંક્રમ છે કહ્યુ પણ છે કે—

" जं दलियमन्नपगइं " ઈત્યાદિ—

" चउव्विहे णिधत्ते " ઈત્યાદિ નિધત્ત, નિધાન અથવા નિહિત, એ ત્રણે એકાર્થક શબ્દો છે નિધત્ત-શબ્દ ભાવમાં અથવા કર્મમાં " क्त " પ્રત્યય લગાડવાથી નિધાતમાથી બન્યો છે નિધત્તબન્ધ એ છે કે જે કર્મઉદ્બન્ધના અને અપવર્તના સિવાયના કારણોને માટે અયોગ્ય હોય છે તેના પ્રકૃતિ નિધત્ત આદિ ચાર પ્રકાર કહ્યા છે. તે પ્રકારોને સામાન્ય લક્ષણ અનુસારજ સમજવા જોઇએ

" चउव्विहे णिकाइए " इत्यादि—

निकाचितं-नितरां बन्धनं सर्वकरणानामनर्हत्वेन कर्मणोऽवस्थापनम्। तच्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-प्रकृतिनिकाचितं १, स्थितिनिकाचितम् २, अनुभावनिकाचितं ३, प्रदेशनिकाचितं ४। च एतान्यपि सामान्यलक्षणमनुसृत्य ग्राह्याणि।
उक्तं चोभयविषये—

" उव्वट्टण ओवट्टण, करणदुग केवल निहत्तम्मि ।
अन्नकरणाणऽभावो निकाइए सव्वकरणाणं ॥१॥

छाया—उद्वर्तनापवर्तनकरणद्विकं केवलं निधत्ते ।
अन्यकरणानामभावो निकाचिते सर्वकरणानाम् (अभावः) ॥१॥

यद्वा-पूर्वबद्धानां कर्मणां तप्तसमीलितसूचीकलापसमानं निधत्तम्, अत्र कर्मणां न्यूनाधिककरणसामर्थ्यं विद्यते। तप्तसमीलितसकुट्टितसूचीकलापसमानं निका

' चउव्विहे णिकाइए ' निकाचित बन्ध चार प्रकारका कहा गया है। जो बन्ध सर्व करणोंका अयोग्य होता है वह निकाचित बन्ध है। वह प्रकृति निकाचित, स्थिति निकाचित, अनुभाव निकाचित और प्रदेश निकाचितके भेदसे चार प्रकारका कहा गया है। इन्हें भी सामान्य लक्षणके अनुसार समझना चाहिये, दोनोंके विषयमें निधत्त निकाचके विषयमें ऐसा कहा गया है " उव्वट्टण ओवट्टण " इत्यादि—

निधत्तमें उद्वर्तना और अपवर्तना ये दो करण होते हैं, बाकीके अन्य करण नहीं होते हैं परन्तु निकाचितमें तो कोईभी करण नहीं होता है, समस्त करणोंका अभाव रहता है। यद्वा-पूर्वबद्धकर्मोंको तपाकर मिलाये गये सूचिकलापके समान निधत्त होता है। निधत्तमें कर्मोंको न्यूनाधिक करनेकी शक्ति है। तथा तपाकर मिलाकर कूटे गये

" चउव्विहे णिकाइए निकाचितबंध ચાર પ્રકારનો કહ્યો છે જે બંધ સવ કરણોની અપેક્ષાએ અયોગ્ય હોય છે જે બંધમાં એક પણ કરણનો સદ્ભાવ હોતો નથી તે બંધને નિકાચિત બંધ કહે છે તેના ચાર ભેદ નીચે પ્રમાણે છે—પ્રકૃતિ નિકાચિત સ્થિતિ નિકાચિત અનુભાવ નિકાચિત અને પ્રદેશ નિકાચિત. તેમને પણ સામાન્ય લક્ષણાનુસાર સમજવા જોઈએ. નિધત્ત અને નિકાચિતનો તફાવત આ પ્રમાણે છે-' ઉવ્વટ્ટણ ઓવટ્ટણ ' ઇત્યાદિ નિધત્ત બંધમાં ઉદ્વર્તના અને અપવર્તના આ બે કરણનો સદ્ભાવ હોય છે બાકીના કોઈ કરણનો સદ્ભાવ હોતો નથી, પરન્તુ નિકાચિત બંધમાં કોઈ પણ કરણનો સદ્ભાવ હોતો નથી તેમાં સમસ્ત કરણોનો અભાવ જ રહે છે અથવા તપાવીને એકત્ર કરેલા સચીકલાપના (સોયના જથ્થાના) જેવો નિધત્ત હોય છે નિધત્તમાં

चितम्, अत्र कर्मणां पिण्डीभूतत्वेन न्यूनाधिककरणासम्भवः। विशेषतो बन्धप्रभृतिस्वरूपं जिज्ञासुना कर्मप्रकृतिसंग्रहणिरवलोकनीयेति ४॥ ५८

पूर्वमल्पबहुत्वमभिहितं, तत्रात्यन्तमल्पमेकसंख्यं तदतिरिक्तं त्वपेक्षया बहुत्ववाचकान् एक-कति-सर्वशब्दान् द्रव्यादिभिः सह चतुर्भिः स्थानकैराह—

मूलम्—चत्तारि एक्कगा पण्णत्ता, तं जहा-दविय एक्कए १, माउय एक्कए २, पज्जय एक्कए ३, संगह एक्कए४ ।१।

चत्तारि कई पण्णत्ता, तं जहा--दवियकई १, माउयकई२, पज्जवकई३, संगहकई ४ । २ ।

चत्तारि सव्वा पण्णत्ता, तं जहा-नामसव्वए१, ठवणसव्वए २, आदेससव्वए३, निरवसेससव्वए ४ ।३॥सू० ५९॥

छाया—चत्वारि एककानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—द्रव्यैकक १, मातृकैककं २, पर्यायैककः ३, सङ्ग्रहैकक. ४ ।१।

सूचीकलापके समान निकाचित होता है। यहाँ कर्मोंको पिण्डीभूत हो जानेसे उनमें न्यूनाऽधिकता करना असम्भव है। विशेष रूपसे बन्ध आदिके स्वरूपको जाननेवालेके लिये कर्मप्रकृति संग्रहणी देखना चाहिये ॥सू०५८॥

कहे गये अल्प-बहुत्वमें जो अत्यन्त अल्प है वह एक संख्यावाला होता है, और इससे जो अधिक होता है वह अपेक्षासे बहु होता है। अब सूत्रकार अल्प और बहुत्व एक-कति और सर्व शब्दोंको द्रव्यादिकोंके साथ लेकर चार स्थानका कथन करते हैं।

"चत्तारि एक्कगा पण्णत्ता" इत्यादि—

ભારા) કર્મોને ન્યૂનાધિક કરવાની શક્તિ હોય છે તથા તપાવીને એકત્ર કર્યા બાદ ટીપવામાં આવેલા સૂચીકલાપ સમાન નિકાચિત હોય છે. અહીં કર્મો પિંડીભૂત થઇ જવાને કારણે તેમાં ન્યૂનાધિકતા કરવાનુ અસભવિત બને છે. બન્ધ આદિના સ્વરૂપનુ વિસ્તારપૂર્વકનું કથન કર્મપ્રકૃતિ સગ્રહણીમાથી વાંચી લેવુ. ॥ સૂ. ૫૮ ॥

આગલા સૂત્રમાં જે અલ્પબહુત્વનુ નિરૂપણ કર્યું, તેમા જે અત્યંત અલ્પ છે તે એક સંખ્યાવાળું હોય છે, અને તેના કરતાં જે અધિક હોય છે, તે તેની અપેક્ષાએ બહુ હોય છે હવે સૂત્રકાર અલ્પ-બહુત્વ દર્શક એક કતિ (કેટલાક) અને સર્વ શબ્દોને દ્રવ્યાદિકોની સાથે લઇને ચાર સ્થાનકનું કથન કરે છે "चत्तारि एक्कगा पण्णत्ता" ઇત્યાદિ—

चत्वारि कति प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–द्रव्यकति १, मातृकाकति २, पर्यायकति ३, सङ्ग्रहकति ४ ।२।

चत्वारि सर्वाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–नामसर्वकं १, स्थापनासर्वकम् २, आदेशसर्वकं ३, निरवशेषसर्वकम् ४ ॥३॥ ५९ ॥

टीका—" चत्तारि एक्कगा " इत्यादि—एककानि–एकान्येवैककानि, स्वार्थे कन्प्रत्ययोऽत्र बोध्यः, चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–द्रव्यैककं द्रव्यमेवैककं द्रव्यैककं–सचित्ताचित्तमिश्ररूपम् । तत्र–सचित्तमेकं पुरुषद्रव्यम्, अचित्तमेकं स्वर्णपिण्डादिद्रव्यं, मिश्रं–कटककुण्डलादिभूषितमेकं पुरुषद्रव्यम् ।१।

तथा—मातृकैकक–मातृकाशब्दोऽत्र मातृकापदपर, तेन मातृकापदमेवैककं, मातृकैककम्–एकं मातृकापदमित्यर्थः, यद्वा–मध्यमपदलोपिसमासः शाकपार्थिवा

चार प्रकारके एकक कहे गये हैं, जैसे–द्रव्य एकक१, मातृका एकक२, पर्याय एकक ३, और सग्रह एकक ४ । कई–बहु चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे–द्रव्य कई १, मातृका कई २, पर्याय कई ३, और सग्रह कई ४ । चार प्रकारके सर्व कहे गये हैं, जैसे–नाम सर्वक १, स्थापना सर्वक २, आदेश सर्वक ३ और निरवशेष सर्वक ४ ।

इस सूत्रका स्पष्टीकरण इस प्रकारसे है—यह द्रव्य एकक आदिके भेदसे चार प्रकारका कहा गया है उसका भाव ऐसा है–द्रव्यरूप जो एकक है वह द्रव्य एकक है, यह सचित्त अचित्त और मिश्ररूप होता है । द्रव्यरूप पुरुष सचित्त एककहै १, स्वर्ण पिण्डादिरूप अचित्त एककहै २ और कटककुण्डल आदिसे विभूषित द्रव्यरूप पुरुष मिश्र एककहै ३।

" मातृकैककम् "—यहां मातृका शब्द मातृका पद परक है । अतः

સૂત્રાર્થ–ચાર પ્રકારના એકક કહ્યા છે—(૧) દ્રવ્ય એકક (૨) માતૃકા એકક, (૩) પર્યાય એકક અને (૪) સંગ્રહ એકક ચાર પ્રકારના કતિ (कई) કહ્યા છે—(૧) દ્રવ્ય કતિ, (૨) માતૃકા કતિ, (૩) પર્યાય કતિ અને (૪) સંગ્રહ કતિ. ચાર પ્રકારના સર્વ કહ્યા છે—(૧) નામ સર્વક (૨) સ્થાપના સર્વક, (૩) આદેશ સર્વક અને (૪) નિરવશેષ સર્વક

આ સૂત્રનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—તેના દ્રવ્ય એકક આદિ ચાર ભેદ કહ્યા છે દ્રવ્યરૂપ જે એકક છે તેને દ્રવ્ય એકક કહે છે તે સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્રરૂપ હોય છે દ્રવ્યરૂપ પુરુષ સચિત્ત એકક છે સુવર્ણ પિંડાદિ રૂપ અચિત્ત એકક છે અને કુંડળ આદિથી વિભૂષિત દ્રવ્યરૂપ પુરુષ મિશ્ર એકક છે

' मातृकैककम् " અહીં માતૃકા શબ્દ માતૃકા પદપરક છે તેથી માતૃકા પદ

दित्वात्, तद्यथा-" उप्पन्नेइ वे "-त्यादि, इह प्रवचने दृष्टिवादे सकलनयवाद-मूलभूतानि मातृकापदानि भवन्ति, यथा-" उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइवेत्ति, अमूनि च मातृकापदानीव 'अ. आ' इत्येवमादीनि सकलशब्दशास्त्रार्थव्यापार व्यापकत्वान्मातृका पदानी "-ति ।२।

तथा-पर्यायैककः-पर्यायो धर्मः, स एवैककः पर्यायैककः-एकः पर्यायः, स चाऽऽदिष्टानादिष्टभेदेन द्विविधः, तत्राऽऽदिष्टः कृष्णादिः, अनादिष्टो वर्णादिः। 'पर्यायो विशेषो धर्मः' इत्येते समानार्थाः ।३।

मातृका पद रूप जो एकक है वह मातृका एकक है। अथवा-" एकं मातृकापदं " इति मातृकैककम्-यहां शाकपार्थिवादि जैसा मध्यमपद लोपी समास है। जैसे-शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः में मध्यम पद प्रियका लोप करके शाकपार्थिवः बनता है, उसी प्रकारसे यहांभी मध्यम पद " पद " का लोप करके " मातृकैककम् " बना है। प्रवचनमें दृष्टि-वादमें जैसे-" उप्पन्नेइवा, विगमेइवा, धुवेइवा, ये मातृकापद है, उसी प्रकार अ-आ आदि वर्ण ' मातृकापद ' है। क्योंकि ये मातृकापदोंकी तरह सकल शास्त्रोंके अर्थका व्यापारमें व्यापक हैं २।

" पर्यायैकक "—पर्याय नाम धर्मका है। पर्यायरूप जो एकक है, वह पर्यायैककहै, यह पर्यायैकक एक पर्यायरूप है। आदिष्ट अनादिष्टके भेदसे यह दो प्रकारका है। कृष्णादिपर्याय आदिष्ट, और वर्णादि पर्याय अनादिष्ट है। पर्याय विशेष और धर्म ये समानार्थक हैं ३।

---

३५ જે એકક છે, તે માતૃકા એકક છે

વર્ણાક્ષર રૂપ એકકને માતૃકા એકક કહે છે અથવા " एक मातृकापदं इति मातृकैककम् " એવો પણ માતૃકા એકક શબ્દનો વિગ્રહ થાય છે. અહીં શાકપાર્થિવાદી જેવો મધ્યમપદ લોપી સમાસ છે જેમકે " शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः " શાકપાર્થિવમાં પ્રિય પદનો લોપ કરીને આ સમાસ આવ્યો છે શાક જેને પ્રિય છે એવો પાર્થિવ, તે શાકપાર્થિવ એ જ પ્રમાણે અહીં પણ મધ્યમ પદ " પદ " નો લોપ કરીને " मातृकैककम् " શબ્દ બન્યો છે પ્રવચનમાં-દૃષ્ટિવાદમાં જેવી રીતે " उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा, धुवेइवा " એ માતૃકા પદ રૂપ છે, એ જ પ્રમાણે ' અ ', ' આ ' આદિ વર્ણ ' માતૃકા પદ ' છે કારણ કે તેઓ માતૃકાપદોની જેમ સકલ શાસ્ત્રોના અર્થના વ્યાપારમાં વ્યાપક છે

" पर्यायैककः " પર્યાય એટલે ધર્મ પર્યાયરૂપ જે એકક છે તેને પર્યાયૈકક કહે છે તે પર્યાયૈકક એક પર્યાયરૂપ છે આદિષ્ટ અને અનાદિષ્ટના ભેદથી તે બે પ્રકારનુ છે કૃષ્ણાદિ પર્યાય આદિષ્ટ છે અને વર્ણાદિ પર્યાય અનાદિષ્ટ છે. પર્યાય, વિશેષ અને ધર્મ એ સમાનાર્થક છે.

तथा—सङ्ग्रहैकका—सङ्ग्रहण सङ्ग्रहः—समुदायः, स एवैकक सङ्ग्रहैककः—एकःसङ्ग्रह इत्यर्थः, यथा—एकः शालिरिति, शालिसमुदायाऽऽश्रयणेनैक-वचनान्तशालिशब्दोऽत्र प्रवर्तते, तथा—नैकोऽपि शालिः शालिरित्युच्यते, बहवोऽपि शालयः शालिरित्युच्यते, लोके तथाव्यवहारदर्शनात्, लोके सम्पन्नः शालिरिति कथनेन शालयः सम्पन्ना इत्यर्थः स्फुरति ।४।

"संग्रहैकक"—संग्रह नाम समुदायका है, संग्रहरूप जो एकक है वह संग्रहैकक है जैसे 'एकःशाली "—कहनेसे शालि समुदायके आश्रयसे एक वचनान्त शालि शब्दका प्रयोग होता है। तथापि—एकभी शालि शालि कहलाता है और अनेकभी क्योंकि लोकमें ऐसा व्यवहार देखा जाता है। ऐसाभी अर्थ स्फुट होता है ४।

तात्पर्य यह है कि—द्रव्य, अ—आ आदि अक्षर, मनुष्य आदि पर्याय और समुदाय ये सब अनेक हैं। जीव अजीव आदि द्रव्य हैं, अ—आ आदि वर्णमालाके अक्षर हैं १ मनुष्य आदि पर्याय हैं २, और अनाज आदि अनेक वस्तु हैं ३। परन्तु जीव अजीव आदि एक द्रव्य हैं। इस लिये एक एकद्रव्यकी अपेक्षासे होता है, अतः वह द्रव्यैकक है। दूसरा एक मातृकापदकी अपेक्षासे होता है। क्योंकि जितनेभी वर्ण हैं, मातृकापदके अन्तर्गत हैं, अतः—वह मातृकापदरूप एकक है। तीसरा एक,

સંગ્રહૈકક —સંગ્રહ એટલે સમુદાય. તે સંગ્રહરૂપ જે એકક છે તેને સંગ્રહૈકક કહે છે જેમકે "एक शालि" આ પ્રમાણે કહેવાથી શાલિ (ચોખાની એક જાત) સમુદાયને આધારે એકવચનાન્ત શાલિ શબ્દનો પ્રયોગ થાય છે. અથવા એક શાલીને પણ શાલિ કહે છે અને અને શાલિને—શાલિના જથ્થાને પણ શાલિ જ કહે છે, કારણ કે લોકોમાં આ પ્રકારનો વ્યવહાર જોવામાં આવે છે લોકોમાં "सम्पन्नः शालि" આ પ્રમાણે કહેવાથી 'सम्पन्ना शालयः" આ પ્રકારનો અર્થ પણ સ્ફુટ (પ્રકટ) થાય છે આ સમસ્ત કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે દ્રવ્ય અ—આ આદિ અક્ષર, મનુષ્ય આદિ પર્યાય અને સમુદાય એ બધાં અનેક છે જીવ—અજીવ આદિ દ્રવ્ય છે અ—આ આદિ વર્ણમાળાના અક્ષરો છે મનુષ્ય આદિ પર્યાય છે અને અનાજ આદિ અનેક વસ્તુ છે, છે, પરન્તુ જીવ—અજીવ આદિ એક દ્રવ્ય છે તેથી જે એકક થાય છે તે એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ થાય છે તે કારણે તેને દ્રવ્યૈકક કહે છે બીજું એકક માતૃકાપદની અપેક્ષાએ થાય છે કારણ કે અ—આ આદિ જેટલાં વર્ણ છે, તેમનો માતૃકાપદમાં સમાવેશ થઈ જાય છે તેથી તેને માતૃકાપદ રૂપ એકક

"चत्तारि कइ" इत्यादि—कतिशब्दः संख्यापरिमाणविशेषविषयप्रश्नविषयकपदार्थवाचको बहुवचनान्तः, स च सामान्यतया नपुंसके प्रयुक्तः, तानि कति चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—द्रव्यकति—द्रव्याण्येव द्रव्यकति—कति द्रव्याणीत्यर्थः, यद्वा—द्रव्यविषयः कतिशब्दो द्रव्यकतिः, एवं मातृकादिष्वपि बोध्यम्। नवरं—सङ्ग्रहाः—शालियवगोधूमाः, त एव कति सङ्ग्रहकति। ४।

पर्यायकी अपेक्षासे होता है, क्योंकि पर्याय सामान्यकी अपेक्षा समस्त पर्याय एक है, अतः वह पर्यायैकक है। तथा चतुर्थ एक संग्रहकी अपेक्षासे होता है अतः वह संग्रहैकक है, यद्यपि—सत्की अपेक्षा 'सदैक' इस रूपसे एकही एक हो सकता है परन्तु यहां चतुःस्थानके अनुरोधसे इसका ग्रहण नहीं हुवा है।

"चत्तारि कइ" इत्यादि—कति शब्द सदा बहुवचनान्त है और यह संख्या एवं परिमाणविशेष विषयक प्रश्न सम्बन्धी पदार्थका वाचक होता है, यहां यह सामान्यरूप होनेसे नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त हुवा है। वैसे तो कति शब्द व्याकरणमें पुंलिङ्गमें निर्दिष्ट हुवा है, ये कति चार कहे गये हैं। जैसे—द्रव्य कति आदि, द्रव्यरूप जो कति शब्द है वह द्रव्यकति है। जैसे—कति द्रव्याणि, यहां द्रव्योंकोही कतिरूप मान लिया गया है, अथवा—द्रव्यको विषय करनेवाला जो कति शब्द है वह द्रव्यकति है। इसी तरहसे मातृका आदि पदोमें समझ लेना चाहिये,

---

કહે છે ત્રીજુ એકક પર્યાયની અપેક્ષાએ થાય છે, કારણ કે પર્યાય સામાન્યની અપેક્ષાએ સમસ્ત પર્યાય એક છે, તેથી તે એકકને પર્યાયૈકક કહે છે. તથા ચોથુ એકક સંગ્રહ (સમૂહ) ની અપેક્ષાએ થાય છે, તેથી તેને સંગ્રહૈકક કહે છે જો કે સતની અપેક્ષાએ 'સદૈક' આ રૂપે એક જ હોઇ શકે છે, પરન્તુ અહીં ચાર સ્થાનનુ પ્રકરણ ચાલતુ હોવાથી તેને ગ્રહણ કરેલ નથી

"चत्तारि कइ" ઇત્યાદિ—'કતિ' શબ્દ હંમેશા બહુવચનમાં વપરાય છે તે સંખ્યા અને પરિણામ વિષયક પ્રશ્ન સંબંધી પદાર્થનો વાચક હોય છે. અહીં સામાન્ય રૂપે તેનો પ્રયોગ થયેલો હોવાથી તેને નપુંસકલિંગ (નાન્યતર જાતિ) માં વાપરવામાં આવેલ છે—આમ તો કતિ પદ વ્યાકરણમાં પુલ્લિંગ (નર જાતિ) નુ કહ્યુ છે તે કતિ (બહુ) ચાર પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) દ્રવ્ય કતિ, (૨) માતૃકા કતિ, (૩) પર્યાય કતિ, (૪) સંગ્રહ કતિ દ્રવ્યરૂપ જે કતિ શબ્દ છે તેને દ્રવ્યકતિ કહે છે. જેમકે "कति द्रव्याणि" અહીં દ્રવ્યોને જ કતિરૂપ માની લેવામા આવેલ છે અથવા દ્રવ્યોનુ પ્રતિપાદન કરનારો જે કતિ શબ્દ છે તેનુ નામ દ્રવ્યકતિ છે એ જ પ્રમાણે માતૃકા આદિ પદોમાં પણ સમજી લેવું.

तथा—सङ्ग्रहैकक:—सङ्ग्रहण सङ्ग्रह:-समुदाय:, स एवैकक: सङ्ग्रहैकक:-एक:सङ्ग्रह इत्यर्थः, यथा-एकः शालिरिति, शालिसमुदायाऽऽश्रयणेनैक-वचनान्तशालिशब्दोऽत्र प्रवर्तते, तथा-नैकोऽपि शालि: शालिरित्युच्यते, बहवोऽपि शालय: शालिरित्युच्यते, लोके तथाव्यवहारदर्शनात्, लोके सम्पन्न: शालिरिति कथनेन शालय: सम्पन्ना इत्यर्थः स्फुरति ।४।

" संग्रहैकक "—संग्रह नाम समुदायका है, संग्रहरूप जो एकक है वह संग्रहैकक है जैसे ' एकःशालीः "—कहनेसे शालि समुदायके आश्रयसे एक वचनान्त शालि शब्दका प्रयोग होता है। तथाच-एकभी शालि शालि कहलाता है और अनेकभी क्योंकि लोकमें ऐसा व्यवहार देखा जाता है। ऐसाभी अर्थ स्फुट होता है ४।

तात्पर्य यह है कि-द्रव्य, अ-आ आदि अक्षर, मनुष्य आदि पर्याय और समुदाय ये सब अनेक हैं। जीव अजीव आदि द्रव्य हैं, अ-आ आदि वर्णमालाके अक्षर हैं १ मनुष्य आदि पर्याय हैं २, और अनाज आदि अनेक वस्तु हैं ३। परन्तु जीव अजीव आदि एक द्रव्य हैं। इस लिये एक एकद्रव्यकी अपेक्षासे होता है, अतः यह द्रव्यैकक है। दूसरा एक मातृकापदकी अपेक्षासे होता है। क्योंकि जितनेभी वर्ण हैं, मातृकापदके अन्तर्गत हैं, अतः-यह मातृकापदरूप एकक है। तीसरा एक,

---

संग्रहैकक "—संग्रह એ તે સમુદાય. તે સંગ્રહરૂપ જે એકક છે તેને સંગ્રહૈકક કહે છે જેમકે ' एकः शालिः " આ પ્રમાણે કહેવાથી શાલિ (ચોખાની એક જાત) સમુદાયને આધારે એકવચનાન્ત શાલિ શબ્દનો પ્રયોગ થાય છે અથવા એક શાલીને પણ શાલિ કહે છે અને અને શાલિને-શાલિના જથ્થાને પણ શાલિ જ કહે છે, કારણ કે લોકોમાં આ પ્રકારનો વ્યવહાર જોવામાં આવે છે લોકોમાં " सम्पन्नः शालिः " આ પ્રમાણે કહેવાથી ' सम्पन्नाः शालयः " આ પ્રકારનો અર્થ પણ સ્ફુટ (પ્રકટ) થાય છે આ સમસ્ત કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે દ્રવ્ય, અ-આ આદિ અક્ષર, મનુષ્ય આદિ પર્યાય અને સમુદાય એ બધાં અનેક છે જીવ-અજીવ આદિ દ્રવ્ય છે અ-આ આદિ વર્ણમાળાના અક્ષરો છે મનુષ્ય આદિ પર્યાય છે અને અનાજ આદિ અનેક વસ્તુ છે, છે, પરન્તુ જીવ-અજીવ આદિ એક દ્રવ્ય છે તેથી જે એકક થાય છે તે એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ થાય છે તે કારણે તેને દ્રવ્યૈકક કહે છે બીજું એકક માતૃકાપદની અપેક્ષાએ થાય છે કારણ કે અ-આ આદિ જેટલાં વર્ણ છે, તેમનો માતૃકાપદમાં સમાવેશ થઈ જાય છે તેથી તેને માતૃકાપદ રૂપ એકક

"चत्तारि कइ" इत्यादि—कतिशब्दः संख्यापरिमाणविशेषविषयप्रश्नविषयकपदार्थवाचको बहुवचनान्तः, स च सामान्यतया नपुंसके प्रयुक्तः, तानि कति चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-द्रव्यकति-द्रव्याण्येव द्रव्यकति-कति द्रव्याणीत्यर्थः, यद्वा-द्रव्यविषयः कतिशब्दो द्रव्यकतिः, एवं मातृकादिष्वपि बोध्यम्। नवरं-सङ्ग्रहाः-शालियवगोधूमाः, त एव कति सङ्ग्रहकति । ४ ।

पर्यायकी अपेक्षासे होता है, क्योंकि पर्याय सामान्यकी अपेक्षा समस्त पर्याय एक है, अतः वह पर्यायैकक है। तथा चतुर्थ एक संग्रहकी अपेक्षासे होता है अतः वह संग्रहैकक है, यद्यपि-सत्‌की अपेक्षा 'सदैक' इस रूपसे एकही एक हो सकता है परन्तु यहां चतुःस्थानके अनुरोधसे इसका ग्रहण नहीं हुवा है।

"चत्तारि कइ" इत्यादि—कति शब्द सदा बहुवचनान्त है और यह संख्या एवं परिमाणविशेष विषयक प्रश्न सम्बन्धी पदार्थका वाचक होता है, यहां यह सामान्यरूप होनेसे नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त हुवा है। वैसे तो कति शब्द व्याकरणमें पुंलिङ्गमें निर्दिष्ट हुवा है, ये कति चार कहे गये हैं। जैसे-द्रव्य कति आदि, द्रव्यरूप जो कति शब्द है वह द्रव्यकति है। जैसे-कति द्रव्याणि, यहां द्रव्योंकोही कतिरूप मान लिया गया है, अथवा-द्रव्यको विषय करनेवाला जो कति शब्द है वह द्रव्यकति है। इसी तरहसे मातृका आदि पदोमें समझ लेना चाहिये,

કહે છે ત્રીજુ એકક પર્યાયની અપેક્ષાએ થાય છે, કારણ કે પર્યાય સામાન્યની અપેક્ષાએ સમસ્ત પર્યાય એક છે, તેથી તે એકકને પર્યાયૈકક કહે છે તથા ચોથુ એકક સંગ્રહ (સમૂહ) ની અપેક્ષાએ થાય છે, તેથી તેને સંગ્રહૈકક કહે છે જો કે સત્‌ની અપેક્ષાએ 'સદૈક' આ રૂપે એક જ હોઇ શકે છે, પરન્તુ અહીં ચાર સ્થાનનું પ્રકરણ ચાલતુ હોવાથી તેને ગ્રહણ કરેલ નથી

"ચત્તારિ કઇ" ઇત્યાદિ—'કતિ' શબ્દ હંમેશા બહુવચનમાં વપરાય છે તે સંખ્યા અને પરિણામ વિષયક પ્રશ્ન સંબંધી પદાર્થનો વાચક હોય છે. અહીં સામાન્ય રૂપે તેનો પ્રયોગ થયેલો હોવાથી તેને નપુંસકલિંગ (નાન્યતર જાતિ) માં વાપરવામા આવેલ છે-આમ તો કતિ પદ વ્યાકરણમાં પુલ્લિંગ (નર જાતિ) નુ કહ્યુ છે તે કતિ (બહુ) ચાર પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) દ્રવ્ય કતિ, (૨) માતૃકા કતિ, (૩) પર્યાય કતિ, (૪) સંગ્રહ કતિ દ્રવ્યરૂપ જે કતિ શબ્દ છે તેને દ્રવ્યકતિ કહે છે. જેમકે "कति द्रव्याणि" અહીં દ્રવ્યોને જ કતિરૂપ માની લેવામાં આવેલ છે અથવા દ્રવ્યોનુ પ્રતિપાદન કરનારો જે કતિ શબ્દ છે તેનું નામ દ્રવ્યકતિ છે એ જ પ્રમાણે માતૃકા આદિ પદોમા પણ સમજી લેવું.

" चत्तारि सव्वा " इत्यादि—सर्वाणि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-नामस र्वक-नाम च तत् सर्वं च नाम सर्वक-सर्वं नामेत्यर्थः, यद्वा-सचेतनादेर्यस्य वस्तुन सर्वमिति नाम तत् नामसर्वकमिति, यद्वा-नाम्ना सर्वक नामसर्वकम् ।१।

विशेष--शालि, यव, गोधूम-गेहू आदि यहां संग्रह शब्दसे लिये गये हैं, इन सग्रहरूप जो कति है वह संग्रहकति है। तात्पर्य ऐसा है कि कति शब्द बहुवचनान्त होनेसे बहुत्वार्थका वाचक होता है। मन्त्र ग्रन्थोंको अनेक होनेसे इनकीही बहुताका साधर्म्य वाचक कति शब्द कह दिया गया है। इसी तरह मातृका पदोंमेंभी अनेकता बहुत्व होनेसे उन्हें कति मान लिया गया है। पर्यायोंकोभी इसी हेतुसे कतिरूप मान लिया गया है। तथा-संग्रह समुदायभी भिन्न-२ होते हैं, अतः-अने कताके साधर्म्यसे सग्रहरूप समुदायकोभी कतिरूप मान लिया गया है।

" चत्तारि सव्वा "--सर्वभी चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-नाम सर्व आदि इनमें नाम रूप जो सर्व है वह नामसर्वक है, अर्थात् सर्व ऐसा जो नाम है वह नामसर्वक है। भाव यह है कि सचेतन आदि वस्तुका " सर्वम् " ऐसा लोकव्यवहार चलानेके लिये नाम रख लिया जाता है वह नामसर्वक है। यही भाव=यद्वा नाम्ना सर्वकम् इस कथ-

વિશેષ—શાલિ જવ ઘઉં આદિ અહીં સગ્રહ શબ્દથી ગૃહીત થયેલ છે એ સગ્રહરૂપ જે કતિ છે તેને ' સંગ્રહ કતિ ' કહે છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે કતિ શબ્દ બહુવચનનું પદ હોવાથી બહુત્વારક હોય છે ગ્રન્થોમાં અનેકતા હોવાથી તેમની જ બહુતાના સાધર્મ્ય વાચક કતિ શબ્દને કહેવામાં આવ્યો છે એ જ પ્રમાણે માતૃકાપદોમાં (વર્ણાક્ષરોમાં) પણ અનેકતાનો સદ્ભાવ હોવાથી તેમને પણ કતિ (બહુ) માની લેવામાં આવેલ છે પર્યાયોને પણ એ જ કારણે કતિરૂપ માનવામાં આવેલ છે તથા સગ્રહ સમુદાય પણ ભિન્ન ભિન્ન હોય છે તેથી અનેકતાના સાધર્મ્યથી સગ્રહ રૂપ સમુદાયને પણ કતિ રૂપ માની લેવામાં આવ્યો છે

" ચત્તારિ સવ્વા ' સર્વ પણ ચાર પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) નામ સર્વક (૨) સ્થાપના સર્વક (૩) આદેશ સર્વક અને (૪) નિરવશેષ સર્વક નામરૂપ જે સર્વ છે તેને નામસર્વક કહે છે એટલે કે સર્વ ' એવું જે નામ છે તે નામસર્વક છે આ કથનનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે—લોકવ્યવહાર ચલાવવા માટે સચેતનાદિ વસ્તુનું " સર્વમ્ " એવું નામ રાખવામાં આવે છે તેને નામ સર્વક કહે છે ' યદ્વા નામ્ના સર્વકમ્ આ કથનનો પણ એ જ ભાવ છે

स्थापनासर्वकं-स्थापनया - सर्वमेतदिति कल्पनया सर्वं स्थापनासर्वकम्-अक्षादि सर्वं द्रव्यम् । २ ।

आदेशसर्वकम्-आदेशनमादेशः-व्यवहारः, तस्मात् सर्वं तदेव, व्यवहारसर्वमित्यर्थः, आदेशसर्वता च बहुतरे प्रधाने वा भवति, दृश्यते च लोके यथा-परिगृहीतभक्तमध्याद् बहुतरे भुक्तेऽल्पे चावशिष्टे सर्वभक्तं भुक्तमिति, ग्रामप्रधानेषु पुरुषेषु गतेषु अप्रधानेषु चावस्थितेषु 'सर्वो ग्रामो गत' इति च व्यवहारः । ३ ।

नकाभी है । " स्थापना सर्वकम् " जिस किसी पदार्थमें " सर्व " ऐसी जो स्थापना आरोप कर ली जाती है वह स्थापना सर्वक है, जैसे-अक्षादिकोंमें " सर्व " ऐसी स्थापना करली जाती है ।

" आदेश सर्वक "--आदेश नाम व्यवहारका है, इस व्यवहारसे जो सर्व मान लिया जाता है वह आदेशसर्वक है । यह आदेश सर्वता बहुतरमें, या प्रधानमें होतीहै । जैसे-लोकमें जब कि भोज्यपङ्क्तिमें अधिक आदमी जीम जाते हैं और थोडेसे बचे रहते हैं, तब लोग कह दिया करते हैं कि सब जीम गये । अथवा--जितना भोजन तैयार किया गया है उसमेंसे जब अधिकतर भोजन खरच लिया जाता है और थोडा बाकी बचा रहता है । तो ऐसा व्यवहार देखा जाता है कि सब भोजन खा लिया गया है यह आदेशकी अपेक्षा सर्वता है ।

ऐसे ही जब ग्रामके प्रधान पुरुष चले जाते हैं और अप्रधान पुरुष रहभी जाते हैं, तोभी सब ग्राम चला गया ऐसा व्यवहार होता है, यह प्रधानकी अपेक्षा सर्वता है ३ ।

" स्थापनासर्वकम् " જે કોઈ પદાર્થમા " સર્વ ' એવી જે સ્થાપના આરોપણુ કરવામાં આવે છે, તેને ' સ્થાપના સર્વક ' કહે છે જેમકે અક્ષાદિકોમા ' સર્વ ' એવી સ્થાપના કરવામાં આવે છે " આદેશસર્વક " આદેશ એટલે વ્યવહાર તે વ્યવહારની અપેક્ષાએ જેને ' સર્વ ' માની લેવામાં આવે છે તેને ' આદેશ સર્વક કહે છે આ આદેશસર્વતા બહુતરમા અથવા પ્રધાન (મુખ્ય) મા હોય છે જેમકે કોઇ ભોજન સમારંભમાં અધિક માણસોએ જમી લીધુ હોય અને થોડાને જ જમવાનું બાકી હોય ત્યારે એવું કહેવામા આવે છે કે સર્વ લોકો જમી ગયા છે અથવા જેટલુ ભોજન તૈયાર કરાવ્યુ હોય તેનો અધિકતર ભાગ વપરાઇ ગયો હોય અને ઘણો થોડો ભાગ વધ્યો હેય, ત્યારે એમ કહેવામાં આવે છે કે બધળી રસોઇ ખવાઇ ગઇ છે આ પ્રકારની સર્વતાને આદેશની અપેક્ષાએ સર્વતા કહે છે એ જ પ્રમાણે કોઇ સભામાથી મુખ્ય મુખ્ય માણુસો ચાલ્યા જાય અને સામાન્ય માણુસો જ બાકી રહે ત્યારે પણ એવુ કહેવામાં આવે છે કે " સૌ ચાલ્યા ગયા " આ પ્રધાનની અપેક્ષાએ (સર્વત) છે

निरवशेपसर्वकम्-अवशेषः-शेषः, तस्मान्निर्गत निरवशेषं, तच सर्वं च निर वशेषसर्वं, तदेव निरवशेषसर्वकम्-अवशिष्टव्यक्तिमनाभित्य सर्वम्, यथा-' सर्वे देवा अनिमिषाः ' अत्र निमेषराहित्यं सर्वेषु देवेषु न तु कामपि देवव्यक्तिं विहाय तविष्ठतीति । सर्वेषु भङ्गेषु स्वार्थिक ककारो बोध्यः ।४। सू० ५९ ॥

पूर्वं सर्वे निरूपित, तत्प्रस्तावात्साम्प्रतं सर्वमनुष्यक्षेत्रपर्यन्तगते पर्वते पूर्वादिषु दिक्षु कूटानि निरूपयितुमाह—

मूलम्—माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिं चत्तारि कूडा पण्णत्ता, त जहा-रयणे१, रयणुच्चए२, सव्वरयणे३, रयणसंचये४। ॥ सू० ६० ॥

" निरवशेष सर्वकम् "—जो किसी भी एक व्यक्तिमें रहनेसे बाकी न बचे, अर्थात् समस्त व्यक्तियोंमें रहे वह निरवशेष सर्व है। जैसे " सर्वे देवाः-अनिमिषाः " समस्त देव निमेष रहित हैं यहां निमेष राहित्य किसीभी देव व्यक्तिको छोडकर नहीं रहता है । अथवा-समस्त पदार्थ सत् स्वरूप हैं, यहां सत्रूपता किसीभी पदार्थको छोडकर नहीं रहती है, इस प्रकारसे यह निरवशेषसर्वक है । यहां सर्वत्र भङ्गोंमें स्वार्थिक ककार हुआ है ॥ सू० ५९ ॥

सर्वका निरूपण करके अब सूत्रकार सर्वके प्रस्तावको लेकर सर्व मनुष्यक्षेत्रपर्यन्तगतपर्वतके पूर्वादि दिशाओंमें कूटोंकी निरूपणा करते हैं। " माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिं चत्तारि " इत्यादि

આદેશ સર્વતાનું દૃષ્ટાન્ત છે " निरवशेषसर्वकम् ' જે સઘળી વ્યક્તિઓને લાગૂ પડી શકે-એક પણ વ્યક્તિનો અપવાદ ન રહે એવા સર્વને નિરવશેષ સર્વક ' કહે છે જેમકે " सर्वे देवाः अनिमिषाः ' સર્વે (બધા) દેવો અનિમિષ (મટકુ) હોય છે અહીં નિમેષ રહિતતાનો ગુણ દરેક દેવને લાગૂ પડે છે-એક પણ દેવ તેમાં અપવાદરૂપ નથી. અથવા સમસ્ત પદાર્થ ' સત્ " રૂપ છે. અહીં સત્રૂપતાનો એક પણ પદાર્થમાં અભાવ નથી, એમ સમજી શકાય છે નિરવશેષ સર્વકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે અહીં ભાગાઓમાં સર્વત્ર સ્વાર્થિક ' क ' લાગ્યો છે ॥ સૂ ૫૯ ॥

સર્વનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર સર્વ મનુષ્ય ક્ષેત્રગત પર્વતોના પૂર્વાદિ દિશાઓના કૂટોનું નિરૂપણ કરે છે—

' माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिं चत्तारि " ઇત્યાદિ—

छाया—मानुषोत्तरस्य खलु पर्वतस्य चतुर्दिशि चत्वारि कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-रत्नं १, रत्नोच्चयं २, सर्वरत्नं ३, रत्नसंचयम् ४। सू० ६० ॥

टीका—" माणुसुत्तरस्से " त्यादि—

मानुषोत्तरस्य खलु पर्वतस्य चतुर्दिशि चतसृणां दिशां समाहारश्चतुर्दिक् तस्मिंश्चतुर्दिशि, सूत्रे प्राकृतत्वादनुस्वारः चतसृषु दक्षिणपूर्वादिषु दिक्षु चत्वारि कूटानि-शिखराणि प्रज्ञप्तानि, इह दिग्ग्रहणे विदिशां ग्रहणं, चतुर्षु कोणेष्वित्यर्थः। तानि कूटानि दक्षिणपूर्वादिदिक्क्रमेण निरूपयन्नाह-तद्यथेति, रत्नं तदाख्यं कूटं रत्नकूटमित्यर्थः, तच्च दक्षिणपूर्वस्यां दिशि-अग्निकोणे दक्षिणदिग्वर्ति सुपर्णकुमारेन्द्रस्य वेणुदेवस्य निवासस्थानम् १,

तथा—दक्षिणपश्चिमदिगन्तराले-नैर्ऋतकोणे रत्नोच्चयं-तदाख्यं कूटं रत्नोच्चयकूटमित्यर्थः, तच्च वेलम्बं सुखदमिति नामान्तरमपि भजते, तत्कूटं वेलम्बस्य दक्षिणदिग्वर्ति वायुकुमारेन्द्रस्य वर्तते २,

तथा—पूर्वोत्तरस्यां दिशि-ईशानकोणे-सर्वरत्नं-सर्वरत्नकूटं, तच्च उत्तरदिग्वर्त्तिनो वेणुदालिनामकसुपर्णकुमारेन्द्रस्य बोध्यम् ३,

टीकार्थ-पुष्करार्द्धक्षेत्रमें मानुषोत्तर पर्वतके चारों दिशाओंमें चार कूटहैं, यहां दिशापदसे पूर्वादि चार दिशाएं भी ली गई हैं। इसी तरहसे चारों दिशाओं और विदिशाओंमें ये चार कूट फैले हुवे हैं। रत्नकूट दक्षिण पूर्वदिशामें अग्निकोणमें है। यह दक्षिण दिग्वर्ती सुपर्णकुमारेन्द्र वेणुदेवका निवासस्थान है १, तथा दक्षिण-पश्चिममें-नैर्ऋतकोणमें रत्नोच्चय कूट है। इसका-" वेलम्बसुखद " भी नाम है, यह कूट दक्षिण दिग्वर्ती वायुकुमारेन्द्र वेलम्बका है २, तथा-पूर्वोत्तरमें-ईशानकोणमें सर्वरत्न कूट है, यह उत्तरदिग्वर्ती वेणुदालिक सुपर्णकुमारेन्द्रका है ३, पश्चिमो-

ટીકાર્થ-પુષ્કરાર્ધ ક્ષેત્રમાં માનુષોત્તર પર્વતની ચારે દિશાઓમાં ચાર કૂટ છે. અહીં દિશાપદ દ્વારા પૂર્વાદિ ચાર દિશાઓ અને વિદિશાઓ પણ ગૃહીત થઇ છે આ રીતે ચાર દિશાઓ અને વિદિશાઓમાં તે ચાર કૂટ ફેલાયેલા છે દક્ષિણ-પૂર્વ દિશામાં (અગ્નિકોણમાં) રત્નકૂટ આવેલુ છે તે દક્ષિણ દિશાવર્તી સુપર્ણકુમારેન્દ્ર વેણુદેવનુ નિવાસસ્થાન છે દક્ષિણ-પશ્ચિમમા (નૈઋત્યકોણમાં) રત્નોચ્ચય કૂટ આવેલું છે તેનુ બીજુ નામ " વેલમ્બસુખદ " છે. આ કૂટ દક્ષિણ દિશાવર્તી વાયુકુમારેન્દ્ર વેલમ્બનુ નિવાસસ્થાન છે પૂર્વોત્તરમાં (ઇશાન કોણમાં) સર્વરત્નકૂટ આવેલુ છે. તે ઉત્તરદિગ્વર્તી વેણુદાલિક નામના સુપર્ણકુમારેન્દ્રનુ નિવાસસ્થાન છે. પશ્ચિમોત્તરે (વાયવ્યકોણમા) રત્નસંચય કૂટ

तथा—पश्चिमोत्तरस्यां दिशि-वायुकोणे रत्नसंचय-रत्नसंचयकूट, तच्च 'प्रभञ्जन' नाम्नाऽपि प्रसिद्ध, तत्कूटमुत्तरदिग्वर्त्तिनः प्रभञ्जननामकवायुकुमारेन्द्रस्य बोध्यम् । उक्तञ्च—

" दक्खिणपुव्वेण रयण,-कूड गरुडस्स वेणुदेवस्स ।
दक्खिणपच्छिम रयणु,-चय च वेलंबदेवस्स ॥ १ ॥
पुव्वुत्तरेण सव्व,-रयणं देवस्स वेणुदालिस्स ।
पच्छिम उत्तर रयण,-संचय कूड पभजस्स ॥ २ ॥

छाया—दक्षिणपूर्वे रत्नकूटं गरुडस्य वेणुदेवस्य ।
दक्षिण पश्चिमे रत्नोचय च वेलम्बदेवस्य ॥ १ ॥
पूर्वोत्तरे सर्वरत्नं देवस्य वेणुदालेः ।
पश्चिमोत्तरे रत्नसंचयकूट प्रभञ्जस्य (प्रभञ्जनस्य) ॥ २ ॥

इह चतु स्थानकानुरोधेन कूटचतुष्टयमेवोक्तम् , तदतिरिक्तान्यपि द्वादश कूटानि सन्ति, तत्र त्रीणि त्रीणि पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरासु द्वादशाप्येकैकदेवाधिष्ठितानि सन्ति, ।

उक्त च —

" पुव्वेण तिन्नि कूडा दाहिणओ तिण्णि तिण्णि अवरेण ।
उत्तरओ तिन्नि भवे चउद्दिसिं माणुसनगस्स ॥ १ ॥ "

छाया—पूर्वस्यां (दिशि) त्रीणि कूटानि दक्षिणतः त्रीणि त्रीण्यपरेण।
उत्तरतस्त्रीणि भवेयुश्चतुर्दिक्षु मानुषनगस्य ॥ १ ॥ इति,

एवं दिग्विदिगाश्रयण तु सर्वाणि षोडश कूटानि भवन्तीति ॥ सू० ६० ॥

त्तर वायुकोणमें रत्नसंचयकूट है । यह प्रभञ्जनभी कहा जाता है, यह उत्तरदिग्वर्त्ती प्रभञ्जन वायुकुमारेन्द्रका निवासस्थान है ४ । कहाभी है- " दक्खिणपुव्वेण रयणकूड " इत्यादि यहां चतुःस्थानके अनुरोधसे चार कहे गये हैं, इनसे अतिरिक्त औरभी बारह कूट हैं । ये कूट पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तरमें तीन तीन हैं और प्रत्येक एक एक देवाधिष्ठित हैं । कहाभी है-पुव्वेण तिन्नि कूडा " इत्यादि । यों दिशा विदिशाके आश्रयसे सब कूट सोलह होते हैं ॥ ६० ॥

આવેલુ છે, તેને પ્રભજન પણ કહે છે તે ઉત્તરદિગ્વર્તી પ્રભંજન નામના વાયુકુમારેન્દ્રનુ નિવાસસ્થાન છે કહ્યું પણ છે કે- દક્ખિણપુવ્વેણ રયણકૂડ " ઈત્યાદિ. અહીં ચાર સ્થાનનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી ચાર કૂટની જ વાત કરી છે પણ એ સિવાય બીજા બાર કૂટ પણ છે તે કૂટ પૂર્વ-દક્ષિણ-પશ્ચિમ અને ઉત્તરમાં ત્રણ ત્રણ છે અને પ્રત્યેક કૂટપર એક એક દેવ વસે છે કહ્યું પણ છે કે-" પુવ્વેણ તિન્નિ કૂડા " ઈત્યાદિ આ રીતે દિશાઓ અને વિદિશાઓમાં કુલ ૧૬ કૂટ છે ॥ સૂ ૬૦ ॥

पूर्वं मानुषोत्तरे पर्वते कूटानि निरूपितानि, सम्प्रति तेनाऽऽवृतक्षेत्राणि निरूपयितुमाह —

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो हुत्था, जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो हुत्था जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो भविस्सइ ॥ सू० ६१ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोर्वर्षयोरतीतायामुत्सर्पिण्यां सुसमसुषमायां समायां चतस्रः सागरोपमकोटाकोटयः कालोऽभूत्, जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोर्वर्षयोरस्यामवसर्पिण्यां सुषमसुषमायां समायां चतस्रः सागरोपमकोटाकोटयः

अब सूत्रकार इन कूटोंसे आवृत्त क्षेत्रोंकी प्ररूपणा सूत्र कहते हैं "जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु" इत्यादि—

सूत्रार्थ–जम्बूद्वीपमें भरत और ऐरवत क्षेत्रोंमें अतीत उत्सर्पिणीमें सुषम सुषमाकालमें चार सागरोपम कोडाकोडीका काल था। जम्बूद्वीपमें भरत और ऐरवतक्षेत्रमें इस वर्तमान अवसर्पिणीमें सुषम सुषमाकालमें आरकमें चार कोटाकोटि सागरोपम काल हुवा था। इस जम्बूद्वीप

હવે સૂત્રકાર એ કૂટોવડે આવૃત ક્ષેત્રોની પ્રરૂપણા કરે છે.

"જંબુદ્દીવે દીવે ભરહેરવએસુ" ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–જંબૂદ્વીપના ભરત અને ઐરવત ક્ષેત્રોમાં અતીત ઉત્સર્પિણીમાં સુષમ સુષમાકાળમા ચાર સાગરોપમ કોડાકોડીનો કાળ હતો.

જંબૂદ્વીપના ભરત અને ઐરવત ક્ષેત્રમાં વર્તમાન અવસર્પિણીમાં પણ સુષમ સુષમા આરો ચાર કોટાકોટી સાગરોપમ પ્રમાણકાળનો હતો. આ જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપના ભરત અને ઐરવત ક્ષેત્રમાં ભવિષ્યની ઉત્સર્પિણીમાં

कालोऽभूत् जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयोरागमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां सुषमसुषमायां समायां चतस्रः सागरोपमकोटाकोटयः कालो भविष्यति । सू० ६१ ।

टीका—" जंबुद्दीवे " इत्यादि-व्याख्या स्पष्टा । सू० ६१ ॥

क्षेत्रनिरूपणप्रसङ्गात् क्षेत्रविशेषनिरूपणमाह—

मूलम्—जंबुद्दीवे दीवे देवकुरु उत्तरकुरु वज्जाओ चत्तारि अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवए१, एरण्णवए २, हरिवासे३, रम्मगवासे ४,

चत्तारि वट्टवेयड्ढपव्वआ पण्णत्ता, तं जहा—सद्दावाई १, वियडावाई२, गन्धावाई३, मालवंतपरियाए४।१ तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—साई १, पभासे२, अरुणे३, पउमे ४ ।

जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहवासे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा पुव्वविदेहे१, अवरविदेहे२, देवकुरा३, उत्तरकुरा ४ ।

सव्वेऽवि णं णिसढणीलवंतवासहरपव्वया चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता ।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महा नईए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा चित्त कूडे १, पम्हकूडे२, णलिणकूडे३, एगसेले ४ ।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महा नईए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—तिकूडे१, वेसमणकूडे२, अंजणे३, मायंजणे४ ।

नामके द्वीपमें स्थित भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्रमें आगामी उत्सर्पिणीमें सुषम सुषमा चार कोटाकोटि सागरोपमका काल होगा, सूत्रकी व्याख्या स्पष्ट है ॥ सू० ६१ ॥

चतु सुषम सुषमा आरानो काळ चार कोटाकोटी सागरोपमनो हशे. ॥सू. ५१॥

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महानईए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा–अंकावई१, पम्हावई२, आसिविसे३, सुहावहे४।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा–चंदपव्वए१, सूरपव्वए२, देवपव्वए३, णागपव्वए ४।-

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स चउसु विदिसासु चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा–सोमणसे१, विज्जुप्पभे२, गन्धमायणे ३, मालवंते ४।

जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे जहन्नपए चत्तारि अरहंता चत्तारि चक्कवट्टी चत्तारि बलदेवा चत्तारि वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वए चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा-भद्दसालवणे१, नंदणवणे२, सोमणसवणे३, पंडगवणे४।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए पंडगवणे चत्तारि अभिसेगासिलाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पंडुकंबलसिला१, अइपंडुकंबलसिला २, रत्तकंबलासिला३, अइरत्तकंबलसिला ४।

मंदरचूलिया णं उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। एवं धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धेवि कालं आदिं करेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति। एवं जाव पुक्खरवरदीवपच्चत्थिमद्धे जाव मंदरचूलियत्ति–जंबुद्दीवगआवस्सगं तु कालाओ चूलिया जाव। धायइसंडे पुक्खरवरे य पुव्वावरे पासे ।१॥सू० ६२॥

छाया–जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरूत्तरकुरुवर्जाश्चतस्रः अकर्मभूमयः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-हैमवतम् १, एरण्यवतं २, हरिवर्षं ३, रम्यकवर्षम् ४।

चत्वारो वृत्तवैताढ्यपर्वता प्रज्ञप्ता, तद्यथा–शब्दापाती १, विकटापाती २ गन्धापाती ३, माल्यवत्पर्यायः४। तत्र खलु चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत् पल्यो पमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा–स्वातिः १, प्रभासः २, अरुणः ३, पद्मः ४।

जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहवर्षं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–पूर्वविदेहः १ अपर विदेहः २, देवकुरवः ३, उत्तरकुरवः ४,

सर्वेऽपि खलु निषधनीलवद्वर्षधरपर्वताश्चत्वारि योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन चत्वारि गव्यूतशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः,

---

क्षेत्र निरूपणके प्रसङ्गसे सूत्रकार अब क्षेत्र विशेषकी निरूपणा करते हैं। " जंबुद्दीवे दीवे देवकुरु उत्तरकुरु वज्जाओ " इत्यादि—

सूत्रार्थ–जम्बूद्वीप नामके इस द्वीपमें देवकुरु और उत्तरकुरुको छोडकर चार अकर्म भूमियां कही गई हैं, जैसे—हेमवत १, ऐरण्यवत २, हरि वर्ष ३, और रम्यकवर्ष ४। चार वृत्तवैताढ्य पर्वत कहे गये हैं, जैसे-शब्दापाती १, विकटापाती २, गन्धापाती ३, माल्यवत्पर्याय ४। वहां चार महर्द्धिक देव यावत् पल्योपमकी स्थितिवाले स्वाती १, प्रभास २, अरुण ३ और पद्म ४ रहतेहैं। जम्बूद्वीपमें महाविदेह क्षेत्र चार प्रकारका कहा गया है, पूर्वविदेह १, अपरविदेह २, देवकुरु ३, उत्तरकुरु ४। समस्त निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत चारसो योजन ऊंचे हैं और उद्वेधसे भूमिमें चारसो गव्यूतिप्रमाण हैं। जम्बूद्वीपमें जो मन्दर

क्षेत्रनिरूपणना संબंधनी અપેક્ષાએ હવે સૂત્રકાર ક્ષેત્રવિશેષની પ્રરૂપણા કરે છે ' जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरुवज्जाओ ' ઈત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ–જમ્બૂદ્વીપ નામના આ દ્વીપમાં દેવકુરુ અને ઉત્તરકુરુ સિવાયના આ ચાર ક્ષેત્રે ને અકર્મભૂમિઓ કહી છે, તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) હેમવત (૨) ઐરણ્યવત, (૩) હરિવર્ષ અને (૪) રમ્યકવર્ષ

ચાર વૃત્તવૈતાઢ્ય પર્વત કહ્યાં છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) શબ્દાપાતી, (૨) વિકટાપાતી (૩) ગન્ધાપાતી અને (૪) માલ્યવત્પર્યાય ત્યાં પલ્યોપમની સ્થિતિવાળા ચાર મહર્દ્ધિક આદિ વિશેષણોવાળા દેવો રહે છે તે દેવોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) સ્વાતી, (૨) પ્રભાસ, (૩) અરુણ અને (૪) પદ્મ. જમ્બૂદ્વીપમાં મહાવિદેહ ક્ષેત્ર ચાર પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) પૂર્વ વિદેહ, (૨) અપર વિદેહ (૩) દેવકુરુ અને (૪) ઉત્તરકુરુ સમસ્ત નિષધ અને નીલવન્ત વર્ષધર પર્વત ચારસો યોજન ઊંચા છે, અને તેમનો ઉદ્વેધ

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्येन शीताया महानद्या उत्तरे कूले चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–चित्रकूटः १, पक्ष्मकूटः २, नलिनकूटः ३, एकशैलः ४।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीताया महानद्या दक्षिणकूले चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–त्रिकूटः १, वैश्रवणकूटः २, अञ्जनः ३, मातञ्जनः ४।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या दक्षिणकूले चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अङ्कावती १, पक्ष्मावती २, आशीविषः ३, सुखावहः ४।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या उत्तरकूले चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–चन्द्रपर्वतः १, सूर्यपर्वतः २, देवपर्वतः ३, नागपर्वतः ४।

पर्वत है, उसकी पूर्व दिशामें स्थित सीमा महा नदीके उत्तरकूलपर चार वक्षस्कार पर्वत हैं जैसे–चित्रकूट १, पक्ष्मकूट २, नलिनकूट ३ एकशैल ४

जम्बूद्वीपमें मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें शीता महा नदीके दक्षिण तटपर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं, त्रिकूट १, वैश्रवणकूट २, अंजन ३, मातञ्जन ४। जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें शीतोदा महानदीके तटपर चार वक्षस्कार पर्वत हैं, अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविष और सुखावह४। इसी शीतोदा महानदीके उत्तर तटपर चार वक्षस्कार पर्वत हैं उनके नम–चन्द्र पर्वत १, सूर्य पर्वत २, देव पर्वत३, नाग पर्वत ४ हैं। जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी चारों विदिशामें चार

(ભૂમિગત વિસ્તાર) ચારસો ગવ્યૂતિ (કોસ) પ્રમાણ છે જંબૂદ્વીપમાં જે મન્દર પર્વત છે તેની પૂર્વ દિશામાં આવેલી શીતા નદીને ઉત્તર કિનારે ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો છે, તેમના નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ચિત્રકૂટ, (૨) પક્ષ્મકૂટ, (૩) નલિનકૂટ અને (૪) એક શૈલ જંબૂદ્વીપમા મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામા શીતા મહાનદીના દક્ષિણ કિનારા પર આ ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો છે—(૧) ત્રિકૂટ, (૨) વૈશ્રવણ કૂટ, (૩) અંજન અને (૪) માતંજન જંબૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામાં જે શીતોદા નામની મહાનદી છે તેના દક્ષિણ તટપર ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે—(૧) અંકાવતી, (૨) પક્ષ્માવતી, (૩) આશીવિષ અને (૪) સુખાવહ એ જ શીતોદા નદીના ઉત્તર તટપર નીચે પ્રમાણે ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો છે તેના નામો—(૧) ચન્દ્ર પર્વત, (૨) સૂર્ય પર્વત, (૩) દેવ પર્વત

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य चतसृषु विदिक्षु चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौमनसः १ विद्युत्प्रभः २, गन्धमादनः ३, माल्यवान् ४।

जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे जघन्यपदे चत्वारोऽर्हन्तः, चत्वारश्चक्रवर्तिनः, चत्वारो बलदेवाः, चत्वारो वासुदेवाः उदपद्यन्त वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरपर्वते चत्वारि वनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भद्रशालवनं १, नन्दनवनं २, सौमनसवनं ३, पण्डकवनम् ४।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते पण्डकवने चतस्रोऽभिषेकशिलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पाण्डुकम्बलशिला १, अतिपाण्डुकम्बलशिला २, रक्तकम्बलशिला, ३, अतिरक्तकम्बलशिला ४।

मन्दरचूलिका खलु उपरि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता, एवं धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्यार्द्धेऽपि कालमादिं कृत्वा यावत् मन्दरचूलिकेति। एवं यावत्

वक्षस्कार पर्वत सौमनस १, विद्युत्प्रभ २, गन्धमादन ३, माल्यवान हैं ४। जम्बूद्वीपमें महाविदेह क्षेत्रमें जघन्य पदमें चार अर्हन्त, चार चक्रवर्ती, चार-बलदेव, चार वासुदेव उत्पन्न होते हैं और आगेभी उत्पन्न होंगे। जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतपर चार वन हैं, भद्रशालवन १, नन्दनवन २, सौमनसवन ३, पण्डकवन ४। जम्बूद्वीपमें मन्दर पर्वतपर स्थित पण्डकवनमें चार अभिषेक शिलाएं हैं। पाण्डु कम्बलशिला १, अति पाण्डुकम्बलशिला २, रक्त कम्बलशिला ३, अतिरक्तकम्बलशिला ४। मन्दरकी चूलिका विष्कम्भसे ऊपरमें चार योजनकी कही गई है। इसी तरहसे धातकी खण्ड द्वीपके पौरस्त्यार्धमें भी कालसे लेकर यावत् मन्दरचूलिका तकका सब पाठ कहना चाहिये, इसी तरह यावत् पुष्करवर द्वीपके पाश्चात्यार्धमें भी जम्बूद्वीपकाव्रतव्यक्त कालसे लेकर चूलिका तक

અને (૪) નામ પર્વત જમ્બૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની ચાર વિદિશાઓમાં સૌમનસ, વિદ્યુત્પ્રભ, ગન્ધમાદન અને માલ્યવાન્ નામના ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો છે

જમ્બૂદ્વીપના મહાવિદેહ ક્ષેત્રમાં જઘન્યની અપેક્ષાએ ચાર અર્હંત ચાર ચક્રવર્તી, ચાર બળદેવ અને ચાર વાસુદેવ ઉત્પન્ન થાય છે અને ભવિષ્યમાં પણ ઉત્પન્ન થશે જમ્બૂદ્વીપમા મન્દર પર્વત પર ચાર વન છે— (૧) ભદ્રશાલ વન (૨) નન્દનવન (૩) સૌમનસવન અને (૪) પંડકવન. જમ્બૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વત પર આવેલા પંડકવનમાં ચાર અભિષેક શિલાઓ છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે (૧) પાંડુકમ્બલશિલા (૨) અતિપાંડુકમ્બલશિલા, (૩) રક્તકમ્બલશિલા અને (૪) અતિરક્તકમ્બલશિલા એ જ પ્રમાણે પુષ્કરવરદ્વીપના અપરાર્ધ પર્યન્તના વિષયમાં પણ જમ્બૂદ્વીપના જેવું જ કાળથી લઈને ચૂલિકા પર્યન્તનું

पुष्करवरद्वीपपाश्चात्यार्द्धे यावत् मन्दरचूलिकेति—

जम्बूद्वीपकावश्यकं तु कालात् चूलिकां यावत् ।

धातकीखण्डे पुष्करवरे च पूर्वापरे पार्श्वे । १ । सू० ६२ ।

टीका—" जंबुद्दीवे दीवे " इत्यादि—जम्बूद्वीपनामके द्वीपे देवकुरूत्तर-कुरुवर्जाः=देवकुरूत्तरकुरून् वर्जयित्वा चतस्रः अकर्मभूमयः—कर्माणि—कृषिवाणि-ज्यादीनि तानि न सन्ति यासु तथाभूता भूमयः, प्रज्ञप्ताः=कथिताः, तद्यथा—हैमवतमित्यादि ।

का कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि धातकीखण्डमें पुष्करवरार्धमें और इनके पूर्व अपर पार्श्वमें भी पूर्वोक्त सब कथन कह लेना चाहिये ।

टीकार्थ—कृषि—वाणिज्य आदि कर्म जिन भूमियोंमें हो, वे कर्मभूमियां हैं और इनसे भिन्न भूमि अकर्मभूमि है । भरत—हैमवत—हरिवर्ष—विदेह, रम्यक—ऐरण्यवत—ऐरवत इन सात क्षेत्रोमेंसे हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक ये तीन अकर्मभूमि क्षेत्र हैं । इन सात क्षेत्रोंमें भरतक्षेत्र दक्षिणकी ओर अवस्थितहै । भरतसे उत्तरमें हैमवत, इसके उत्तरमें हरिवर्ष, इससे उत्त-रमें विदेह, इसके उत्तरमें रम्यक, इसके उत्तरमें ऐरण्यवत, इसके उत्तरमें ऐरवत क्षेत्र है । व्यवहार सिद्धि दिशाके नियमानुसार मेरु पर्वत सातों क्षेत्रोंके उत्तर भागमें अवस्थित है ।

देवकुरु और उत्तरकुरुको छोडकर जो अकर्मभूमिके क्षेत्र चार कहे गये हैं उसका कारण यह है कि ये दो क्षेत्र महाविदेहके ही

કથન સમજવું એટલે કે ધાતકીખંડમાં, પુષ્કરવરાર્ધમાં અને તેના પૂર્વ અને પશ્ચિમ વિભાગોમાં પણ ઉપર મુજબનું સમસ્ત કથન થવું જોઈએ.

ટીકાર્થ—કૃષિ, વાણિજ્ય આદિ કર્મનો જે ભૂમિઓમાં સદ્‌ભાવ હોય છે, તે ભૂમિઓને કર્મભૂમિઓ કહે છે, પણ જ્યાં તેમનો અભાવ છે એવી ભૂમિઓને અકર્મભૂમિઓ કહે છે ભરત, હૈમવત, હરિવર્ષ, વિદેહ, રમ્યક, ઐરણ્યવત, અને ઐરવત, આ સાત ક્ષેત્રોમાંથી હૈમવત, હરિવર્ષ અને રમ્યક, આ ત્રણ અકર્મભૂમિક્ષેત્રો છે. આ સાત ક્ષેત્રોમાંનું ભરતક્ષેત્ર દક્ષિણમાં અવસ્થિત છે ભરતની ઉત્તરે હૈમવત, હૈમવતની ઉત્તરે હરિવર્ષ, હરિવર્ષની ઉત્તરે વિદેહ, વિદેહની ઉત્તરે રમ્યક, રમ્યકની ઉત્તરે ઐરણ્યવત અને ઐરણ્યવતની ઉત્તરે ઐરવત ક્ષેત્ર છે વ્યવહાર સિદ્ધ દિશાના નિયમાનુસાર મેરુ પર્વત સાતે ક્ષેત્રોના ઉત્તર ભાગમાં આવેલો છે અકર્મભૂમિના ચાર ક્ષેત્ર કહ્યા છે તેમાં દેવકુરુ અને ઉત્તરકુરુનો સમાવેશ નહીં કરવાનું કારણ એ છે કે—તે બંને મહાવિદે-

तथा—वृत्तवैताढ्यपर्वताः—वर्तुलाऽऽकारवैताढ्यनामका गिरयः शब्दापाति-विकटापाति - गन्धापाति-माल्यवत्पर्यायाभिधेयाश्चत्वारः सन्ति । तत्रैकैकस्मिन् पर्वते क्रमेण स्वाति-प्रभास-ऽरुण-पद्मनामकाश्चत्वारो देवाः सन्ति । ते च महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका बोध्याः ।

तथा—जम्बूद्वीपान्तर्गतं यन्महाविदेहक्षेत्रं तत्र पूर्वविदेहापरविदेह-देवकुरूत्तरकुरुनामकानि चत्वारि वर्षाणि-क्षेत्राणि विज्ञेयानि । तथा-निषधनामको नीलवन्नामकश्च ये वर्षधरपर्वताः सन्ति ते सर्वेऽपि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन चतुर्योजनशतप्रमाणाः, उद्वेधेन भूमौ च चतुर्गव्यूतशतप्रमाणा विज्ञेयाः । अत्र गव्यूतशब्दः क्रोशवाचकः ।

भाग हैं, परन्तु इनमें भी युगलिकोंकी वस्ती है, इसलिये-सात क्षेत्रोंमें इसकी स्वतन्त्र रूपसे गणना नहीं की गई है। अथवा चतुःस्थानके अनुरोधसे यहां इन्हें नहीं लिया गया है।

वर्तुल आकारवाले होनेसे विकटापाति-गन्धापाति आदि पर्वतोंको वृत्तवैताढ्य पर्वत कहा गया है। इन चार वृत्तवैताढ्य पर्वतोंमें क्रमशः एक-२ वृत्तवैताढ्य पर्वत पर एक २ महर्द्धिक स्वाती, प्रभास आदि नामवाले देव रहते हैं, इन प्रत्येककी एक पल्योपम स्थिति है। जम्बूद्वीपके अन्तर्गत जो महाविदेह क्षेत्र है, उसमें पूर्वविदेह, अपर विदेह, देवकुरु, और उत्तरकुरु ये चार क्षेत्र हैं। विदेहक्षेत्रमें-निषध, नील ये दो पर्वत हैं। इनसे ही उत्तरकुरु और देवकुरुकी सीमा निश्चित होती है। इन दोनों पर्वतोंकी ऊंचाई चारसौ योजनकी है तथा उद्वेध भूमिके अन्दर चारसौ कोस तक है। यहां गव्यूति शब्दसे १ कोस लिया गया है।

કેના જ ભાગો છે પરન્તુ તે ભાગોમાં પણ યુગલિકોની વસ્તી છે તેથી સાત ક્ષેત્રોમાં પણ તેમની સ્વતંત્ર રૂપે ગણના કરી નથી અથવા ચાર સ્થાનનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી તેમને અહીં ગણાવવામાં આવેલ નથી.

વિકટાપાતી ગન્ધાપાતી આદિ પર્વતો વર્તુલાકારવાળા હોવાથી તેમને વૃત્તવૈતાઢ્ય પર્વતો કહ્યા છે તે પ્રત્યેક વૃત્તવૈતાઢ્ય પર્વત પર એક એક મહર્દ્ધિક આદિ વિશેષણોવાળો અને એક એક પલ્યોપમની સ્થિતિવાળો દેવ વસે છે તેમનાં નામ સ્વાતિ, પ્રભાસ, અરુણ અને પદ્મ છે જંબૂદ્વીપમાં જે મહાવિદેહ ક્ષેત્ર છે તેમાં પૂર્વવિદેહ અપર વિદેહ, દેવકુરુ અને ઉત્તરકુરુ આ ચાર ક્ષેત્ર છે વિદેહ ક્ષેત્રમાં નિષધ અને નીલ નામના બે પર્વત છે તે પર્વતોની મારફત જ ઉત્તર કુરુ અને દેવકુરુની સીમા નિશ્ચિત થાય છે આ બન્ને પર્વતોની ઊંચાઈ ચારસો યોજનની છે તથા ઉદ્વેધ-ભૂમિની અંદરનો તેમનો વિસ્તાર ૪૦૦ ગવ્યૂતિપ્રમાણ કહ્યો છે અહીં ગવ્યૂતિ પદનો અર્થ એક કોસ (ગાઉ) થાય છે

सम्प्रति जम्बूद्वीपस्थ मन्दरपर्वतस्य पूर्वपश्चिमदिशोर्विदिक्षु च यावन्तो यन्नाम काश्च वक्षस्कारपर्वताः सन्ति तानाह—"जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स" इत्यादिना। अस्य सन्दर्भस्यायमभिप्रायः—जम्बूद्वीपस्थ मन्दरपर्वतस्य पूर्वस्यां दिशि शीताया महानद्या उत्तरे तटे चित्रकूट–पक्ष्मकूट–नलिनकूटै–कशैलनाम-काश्चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः सन्ति। तथा–मन्दरपर्वतस्य पूर्वस्यां दिशि शीतोदा महानद्या दक्षिणे तटे चित्रकूट-वैश्रवणकूटाऽञ्जन मातञ्जननामकाश्चत्वारो वक्षस्कार-पर्वताः सन्ति। तथा–मन्दरपर्वतस्य पश्चिमाया दिशि शीतोदामहानद्या दक्षिणे तटे–अङ्कावती–पक्ष्मावत्याशीविष – सुखावहनामकाश्चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः सन्ति। तथा–मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमायां दिशि शीतोदा महानद्या उत्तरे तटे–चन्द्रपर्वत–सूर्यपर्वत–देवपर्वत – नागपर्वत नामकाश्चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः सन्ति। तथा–मन्दरपर्वतस्य ऐशान्यादिषु चतसृषु विदिक्षु–कोणेषु–क्रमेण सौम-नस–विद्युत्प्रभ–गन्धमादन – माल्यवदभिधेयाश्चत्वारो वक्षस्कारपर्वताः सन्ति।

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी पूर्व दिशामें शीता महानदीके उत्तर तटपर चित्रकूट आदि वक्षस्कार पर्वत चार हैं। दक्षिण तटपर चित्रकूट वैश्रवण, अञ्जन, मातञ्जन ये चार वक्षस्कार पर्वत हैं। तथा–मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें शीतोदा महानदीके दक्षिण तटपर अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविष और सुखावह नामके चार वक्षस्कार पर्वत हैं।

तथा–उत्तर तटपर चन्द्र पर्वत, सूर्य पर्वत देव पर्वत, नाग पर्वत ये चार वक्षस्कार पर्वत हैं। तथा–मन्दर पर्वतकी ईशान आदि चारों दिशाओंमें क्रमशः–सौमन, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन, माल्यवान् ये चार वक्षस्कार पर्वत हैं। तात्पर्य ऐसा है–मन्दर पर्वतकी पूर्व दिशामें शीता नदीके उत्तर तटपर चार, दक्षिण तटपर भी चार, मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें शीतोदा

જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં શીતા નામની મહાનદીના ઉત્તર તટપર ચિત્રકૂટ આદિ ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે, અને દક્ષિણ તટપર ચિત્રકૂટ, વૈશ્રવણકૂટ, અંજન અને માતંજન, એ ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો છે. મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામા શીતોદા મહાનદીના દક્ષિણ તટપર અંકાવતી, પદ્માવતી, આશીવિષ અને સુખાવહ નામના ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો છે, તથા ઉત્તર તટપર (૧) ચંદ્ર પર્વત, (૨) સૂર્ય પર્વત, (૩) દેવ પર્વત અને (૪) નાગ પર્વત, એ ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો છે મન્દર પર્વતની ઈશાનાદિ ચાર વિદિશાઓમા અનુક્રમે સૌમન, વિદ્યુત્પ્રભ, ગન્ધમાદન અને માલ્યવાન્, એ ચાર વક્ષસ્કાર પર્વતો છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે મન્દર

अयं भावः —

मन्दरपर्वतस्य पूर्वस्यां दिशि शीतामहानद्या उत्तरतटे चत्वार ४ एव दक्षिणतटेऽपि चत्वार ४। मन्दरपर्वतस्य पश्चिमायां दिशि शीतोदा महानद्या दक्षिणतट चत्वारः ४। एवमुत्तरतटेऽपि चत्वार ४। मन्दरपर्वतस्य ऐशान्यादिषु चतुर्षु कोणेषु प्रत्येकमेकैकत्वेन चत्वारः ४।

तथा—जम्बूद्वीपस्य महाविदेहवर्षे जघन्यपदे-पद्यत=गम्यते इति पद= सङ्ख्यास्थानं, जघन्यम्-सर्वहीनं च यत् पद तत् जघन्यपदं तस्मिन्, = नातिन्यून संख्यायां चत्वारोऽर्हन्तः चत्वारश्चक्रवर्तिनः, चत्वारो बलदेवा, चत्वारो वासुदे वाश्च उत्पन्ना, उत्पद्यन्ते, उत्पत्स्यन्ते वेति।

तथा—जम्बूद्वीपस्य मन्दरपर्वते भद्रशालवन-नन्दनवन-सौमनसवन-पण्ड कवनाभिधेयानि चत्वारि वनानि सन्ति। तत्र भद्रशालवनं भूमौ, नन्दनवन-सौम नसवने मेखला युगले, पण्डकवनं च शिखरे। उक्तञ्चात्र गाथाः—

महा नदीके उत्तर तटपर ४ दक्षिण तटपर भी ४, मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें शीतोदा महानदीके दक्षिण तटपर ४, उत्तर तटपरभी चार, और मन्दर पर्वतकी ईशान आदि चार कोणोंपर प्रत्येक कोणमें एक-२ इस प्रकारसे ४ वक्षस्कार हैं।

जम्बूद्वीपके महाविदेह वर्षमें जघन्यपदमें न्यूनाऽतिन्यून सङ्ख्यामें कमसे कम चार अर्हन्त, चार चक्रवर्ती, चार वासुदेव हुवे हैं, और होंगे। तथा-जम्बूद्वीपमें मन्दर पर्वतपर भद्रशालवन, नन्दनवन, सौम नसवन, और पण्डकवन ये चार वन हैं। इनमें भद्रशालवन जमीनपर नन्दनवन और सौमनसवन मेखला युगलपर एव पण्डकवन शिखरपर हैं। यहां इस प्रकारसे गाथाए कही गई हैं।

પર્વતની પૂર્વ દિશામાં વહેતી શીતા નદીના ઉત્તર તટપર ૪, દક્ષિણ તટપર પણ ૪ મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામાં શીતોદા નામની મહાનદીના ઉત્તર તટપર ચાર અને દક્ષિણ તટપર પણ ૪ વક્ષસ્કાર પર્વતો છે મન્દર પર્વતની ઇશાન, અગ્નિ, નૈઋત્ય અને વાયવ્યમાં એક એક એટલે કે ચારે ખૂણાઓમાં કુલ ૪ વક્ષસ્કાર પર્વતો છે

જમ્બૂદ્વીપના મહાવિદેહ ક્ષેત્રમા જઘન્યની અપેક્ષાએ-ન્યૂનાતિન્યૂન સંખ્યામાં ઓછામા ઓછા ચાર અર્હંત ચાર ચક્રવર્તી અને ચાર વાસુદેવ ઉત્પન્ન થયા છે અને ઉત્પન્ન થશે પણ ખરા તથા જમ્બૂદ્વીપમા મન્દર પર્વત પર ભદ્રશાલવન, નન્દનવન, સૌમનસવન અને પંડકવન, એ ચાર વન છે તેમાંનું ભદ્રશાલવન ભૂતલ પામે, નન્દનવન અને સૌમનસવન મેખલા યુગલ પર અને પંડકવન શિખરપર છે અહીં આ પ્રમાણે ગાથાઓ કહી છે—

" बावीस सहस्साइं, पुव्वावरमेरुभद्दमालवणं ।
अड्ढाइज्जसया उण, दाहिणपासे य उत्तरओ ॥ १ ॥
पंचेव जोयणसए, उड्ढं गंतूण पंचसयपिहुलं ।
नंदणवणं सुमेरु, परिक्खिवित्ता ठियं रम्मं । २ ॥
बासट्ठि सहस्साइं पंचेव सयाइं नंदणवणाओ ।
उड्ढं गंतूण वणं, सोमणस नंदणवणसरिच्छं ॥ ३ ॥
सोमणसाओ तीसं, छच्च सहस्से विलग्गिऊण गिरिं ।
विमलजलकुंडगहणं, हवइ वणं पंडयं सिहरे ॥ ४ ॥
चत्तारि जोयणसया चउणउया चक्कवालओ रुंदं ।
इगतीस जोयणसया बासट्ठी परिरओ तस्स ॥ ५ ॥ "

छाया—द्वाविंशतिसहस्राणि पूर्वापरमेरौ भद्रशालवनम् ।
अर्द्धतृतीयशतानि पुनः दक्षिणपार्श्वे च उत्तरतः ॥१॥
पञ्चैव योजनशतानि ऊर्ध्वं गत्वा पञ्चशतपृथुलमुत ।
नन्दनवनं सुमेरुं परिक्षिप्य स्थितं रम्यम् ॥ २ ॥
द्वाषष्टिसहस्राणि पञ्चैव शतानि नन्दनवनात् ।
ऊर्ध्वं गत्वा वनं सौमनसं नन्दनवनसदृशम् ॥ ३ ॥
सौमनसात् त्रिंशत् षट् च सहस्राणि विलङ्घ्यगिरिम् ।
विमलजलकुण्डगहनं भवति वन पण्डकं शिखरे ॥४॥
चत्वारि योजनशतानि चतुर्नवति चक्रवालतो विस्तारः ।
एकत्रिंशद्योजनशतानि द्विषष्टिं परिरयस्तस्य ॥ ५ ॥ इति

तथा—जम्बूद्वीपगतमन्दरपर्वतस्य पण्डकवने अभिषेकशिला'—तीर्थङ्कराणामभिषेकार्थाः शिला अभिषेकशिलाः, यत्र तीर्थङ्कराणामभिषेको भवति, ताश्चतस्रः-पाण्डुकम्बलादयः शिला मन्दरचूलिकायाः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरासु दिक्षु क्रमेण

" बावीससहस्साइं " इत्यादि । तथा—जम्बूद्वीपगत मन्दर पर्वत पर जो पण्डकवन है उसमें जिनपर तिर्थङ्करोंका शुभाभिषेक होता है ऐसी चार शिलाएंहैं। इनके नाम–पाण्डुकम्बल आदिहैं। ये शिलाएं मन्दर चूलिकाकी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें क्रमशः हैं। मन्दर-

" बावीससहस्साइं " ઈત્યાદિ
જમ્બૂદ્વીપના મન્દર પર્વત પર જે પંડકવન છે તેમાં ચાર અભિષેક શિલાઓ છે, જે શિલાઓ પર તિર્થંકરોનો શુભાભિષેક થાય છે. તે અભિષેક શિલાઓનાં નામ આ પ્રમાણે છે—પાંડુકમ્બલ શિલા આદિ ચાર નામ સૂત્રા

बोध्याः । मन्दरचूलिका-मन्दरगिरिशिखर तस्य उपरि अग्रे विष्कम्भेण विस्तारेण चत्वारि योजनानि-चतुर्योजनविस्तीर्णोपरितनभागाः प्रज्ञप्ता ।

इत्थं जम्बूद्वीपस्य वस्तुजातमभिधाय सम्प्रति धातकीखण्डद्वीप-पुष्करवर द्वीपयोः प्रत्यर्क पौरस्त्यार्द्धपाश्चात्यार्द्धयो वैस्तुजातमभिधातुमाह—' एवं धाय संडदीवपुरत्थिमद्धे वि ' इत्यादि ।

एवम्—अनेन प्रकारेण-जम्बूद्वीपालापकप्रकारेण धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्या र्द्धेऽपि कालम्= तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए ' इति पूर्वोक्तं कालम् आदिं कृत्वा=आरभ्य यावत् मन्दरचूलिकेति=' मंदरचूलियाण उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेण पण्णत्ता ' इत्यन्ताः सर्वं आलापका वाच्याः । अथ भाष –' धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे भरहेरवएसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसम सुसमाए समाए ' इत्यारभ्य ' मंदरचूलियाणं उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्ख-

गिरिके शिखरका नाम मन्दरचूलिका है । इसके आगे भागका विस्तार चार योजनका है, अर्थात् इसका जो उपरितन भाग है वह चार योजन विस्तृत है । इस प्रकारसे जम्बूद्वीपमें वस्तु जातका कथन करके अब सूत्रकार धातकीखण्ड, एव पुष्करवर द्वीपके पौरस्त्यार्ध और पाश्चा त्यार्धमें वस्तुजातका कथन करनेके लिये " एवं धायइसंडदीवपुरत्थि मद्धे वि " इत्यादि रूपसे कथन करते हैं, वे कहते हैं कि जैसा यह आलाप प्रकार जम्बूद्वीपके सम्बन्धमें कहा गया है, वैसाही आलाप प्रकार धातकीखण्ड द्वीपके पौरस्त्यार्द्धमें भी कालसे लगाकर मन्दर चूलिका तकका कह लेना चाहिये । अर्थात्-" धायइसंडदीवपुरत्थि मद्धे भरहे रवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए "

મેરુ આપ્યા અનુસાર સમજવા તે શિખાઓ અનુક્રમે મંદર પર્વતની પૂર્વ દક્ષિણ પશ્ચિમ અને ઉત્તર દિશામાં છે મંદર પર્વતના શિખરનું નામ મંદર ચૂલિકા છે તેના સૌથી ઉપરના ભાગનો વિસ્તાર ચાર યોજનનો છે આ પ્રમાણે જ બૂદ્વીપના પદાર્થોનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર ધાતકીખંડ દ્વીપ અને પુષ્કરવર દ્વીપના પૂર્વાર્ધ અને પશ્ચિમાર્ધના પદાર્થોનું ચાર સ્થાનને અનુલક્ષીને કથન કરે છે ' एव धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे वि ' ઇત્યાદિ—

આ સૂત્રપાઠ દ્વારા સૂત્રકાર એવું સૂચન કરે છે કે કાળથી લઈને મન્દર ચૂલિકા પર્યન્તનું જેવું કથન જ બૂદ્વીપના વિષયમાં કરવામાં આવ્યું છે એવું જ કથન ધાતકીખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધ વિષે પણ સમજી લેવું એ તે કે—' धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसम सुसमाए समाए " અહીંથી શરૂ કરીને " मंदरचूलियाण उवरिं चत्तारि जोय-

भेणं पण्णत्ता ' इत्यन्ता आलापकाः अत्र बोध्या इति । एवम्=अनेन प्रकारेणैव ' जाव '-यावत्पदेन-धातकीखण्डद्वीपपाश्चात्त्यार्द्ध - पुष्करवरद्वीपपौरस्त्यार्द्धयो-र्ग्रहणम् । ततश्च-धातकीखण्डद्वीपपाश्चात्त्यार्द्धे-पुष्करवरद्वीपपौरस्त्यार्द्धे पुष्करवर-द्वीपपाश्चात्त्यार्द्धे च उक्त वा तदनन्तर प्रत्येकत्र ' भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए ' इत्येवं प्रकारेण यावत् मन्दरचूलिकेति= ' मंदरचूलियाणं उवरिंचत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता ' इत्यन्ता आलापका वक्तव्या इति ।

अमुमेवार्थं द्रढयितुं संग्रहगाथामुपन्यस्यति-" जंबुद्दीवग ' इत्यादि जम्बूद्वी-पावश्यकं-जम्बूद्वीपस्येदं जम्बूद्वीपकं तच्च तदावश्यकम् अवश्यंभावित्वाद्वाऽवश्यंवा-

---

यहांसे लगाकर " मंदरचूलियाणं उवरि चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता " यहां तकका कथन यहां कहा गया है, इसी प्रकार यावत्पदग्राह्य धातकीखण्ड द्वीप पाश्चात्यर्द्ध-एवं पुष्करवर द्वीप पौरस्त्यार्द्ध, और पुष्करवर द्वीप पाश्चात्यार्द्धमें भी कथन करना चाहिये। और इसके बाद वहांके भरतक्षेत्र, एवं ऐरवत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणीके सुषम सुषमा आरामें ४ कोटाकोटि सागरोपमका काल था। इत्यादि पूर्वोक्त सब पाठ-मंदरचूलियाणं उवरि चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता) इस पाठान्त तक कथन यहां भी कहा गया है। ऐसा समज लेना चाहिए तात्पर्य केवल यही है कि जम्बूद्वीपके भरत और ऐरवत क्षेत्रकी जैसी व्यवस्था सिद्धान्त शास्त्रमें प्रगटकी गईहै वैसी ही व्यवस्था धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीपमेंभी है।

इसी अर्थको दृढ करनेके लिये इस " जंबुद्दीवग " गाथाका उल्लेख किया गया है, इस गाथामें यह पुष्ट किया गया है कि-जम्बूद्वीपाऽवश्यक

णाइं विक्खंभेण पण्णत्ता " આ સૂત્રપાઠ પર્યન્તનું કથન ધાતકીખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધ વિષે પણ સમજવું, એવું જ કથન ધાતકીખંડ દ્વીપના પશ્ચિમાર્ધ, પુષ્કરવરદ્વીપના પૂર્વાર્ધ અને પુષ્કરવર દ્વીપના અપરાર્ધ વિષે પણ સમજી લેવું એટલે કે ત્યાંના ભરતક્ષેત્ર, અને ઐરવતક્ષેત્રમાં અતીત (ભૂતકાળની) ઉત્સર્પિણીનો સુષમસુષમા આરો ૪ કોટાકોટિ સાગરોપમકાળનો હતો, ઇત્યાદિ સંપૂર્ણ સૂત્રપાઠ અહીં પણ ગ્રહણ થવો જોઇએ " મંદર ચૂલિકાનો સૌથી ઉપરનો ભાગ ચાર યોજનના વિસ્તારનો છે " આ સૂત્રપાઠ પર્યન્તનુ કથન અહીં પણ સમજી લેવુ આ કથનનુ તાત્પર્ય એટલુ જ છે કે જંબૂદ્વીપના ભરત અને ઐરવતના જેવી જ વ્યવસ્થા ધાતકીખંડ અને પુષ્કરાર્ધ દ્વીપમાં પણ હોય છે એ જ વાતનું સમર્થન કરવા માટે " जंबुद्दीवग " ઇત્યાદિ ગાથા આપવામા આવેલ છે તે ગાથામા એ વાતને પ્રતિપાદન કરવામા આવી છે કે જંબૂદ્વીપાવશ્યક (જંબૂદ્વીપમાં જેનુ કથન કરાયું છે તે) સમસ્ત વસ્તુ-

भेणं पण्णत्ता ' इत्यन्ता आलापकाः अत्र बोध्या इति । एवम्=अनेन प्रकारेणैव ' जाव '–यावत्पदेन–धातकीखण्डद्वीपपाश्चात्त्यार्द्ध – पुष्करवरद्वीपपौरस्त्यार्द्धयोर्ग्रहणम् । ततश्च–धातकीखण्डद्वीपपाश्चात्त्यार्द्धे–पुष्करवरद्वीपपौरस्त्यार्द्धे पुष्करवरद्वीपपाश्चात्त्यार्द्धे च उक्त या तदनन्तर प्रत्येकत्र ' भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए ' इत्येवं प्रकारेण यावत् मन्दरचूलिकेति= ' मंदरचूलियाणं उवरिंचत्तारि जोयणाइ विक्खंभेणं पण्णत्ता ' इत्यन्ता आलापका वक्तव्या इति ।

अमुमेवार्थं द्रढयितुं संग्रहगाथामुपन्यस्यति–" जंबुदीवग ' इत्यादि जम्बूद्वीपावश्यकं–जम्बूद्वीपस्येदं जम्बूद्वीपकं तच्च तदावश्यकम् अवश्यंभावित्वाद्वाऽवश्यंवा-

---

यहांसे लगाकर " मंदरचूलियाणं उवरि चत्तारि जोयणाइ विक्खंभेणं पण्णत्ता " यहां तकका कथन यहां कहा गया है, इसी प्रकार यावत्पदग्राह्य धातकीखण्ड द्वीप पाश्चात्यर्द्ध–एवं पुष्करवर द्वीप पौरस्त्यार्द्ध, और पुष्करवर द्वीप पाश्चात्यार्द्धमें भी कथन करना चाहिये। और इसके बाद वहांके भरतक्षेत्र, एवं ऐरवत क्षेत्रमें अतीत उत्सर्पिणीके सुषम सुषमा आरामें ४ कोटाकोटि सागरोपमका काल था। इत्यादि पूर्वोक्त सब पाठ–मंदरचूलियाणं उवरि चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता) इस पाठान्त तक कथन यहां भी कहा गया है। ऐसा समज लेना चाहिए तात्पर्य केवल यही है कि जम्बूद्वीपके भरत और ऐरवत क्षेत्रकी जैसी व्यवस्था सिद्धान्त शास्त्रमें प्रगटकी गईहै वैसी ही व्यवस्था धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीपमेंभी है।

इसी अर्थको दृढ करनेके लिये इस " जंबुदीवग " गाथाका उल्लेख किया गया है, इस गाथामें यह पुष्ट किया गया है कि–जम्बूद्वीपाऽवश्यक

णाइं विक्खंभेण पण्णत्ता " આ સૂત્રપાઠ પર્યન્તનું કથન ધાતકીખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધ વિષે પણ સમજવું, એવું જ કથન ધાતકીખંડ દ્વીપના પશ્ચિમાર્ધ, પુષ્કરવરદ્વીપના પૂર્વાર્ધ અને પુષ્કરવર દ્વીપના અપરાર્ધ વિષે પણ સમજી લેવું એટલે કે ત્યાંના ભરતક્ષેત્ર, અને ઐરવતક્ષેત્રમાં અતીત (ભૂતકાળની) ઉત્સર્પિણીનો સુષમસુષમા આરો ૪ કોટાકોટિ સાગરોપમકાળનો હતો, ઈત્યાદિ સંપૂર્ણ સૂત્રપાઠ અહીં પણ ગ્રહણ થવો જોઈએ " મંદર ચૂલિકાનો સૌથી ઉપરનો ભાગ ચાર યોજનના વિસ્તારનો છે " આ સૂત્રપાઠ પર્યન્તનુ કથન અહીં પણ સમજી લેવું આ કથનનુ તાત્પર્ય એટલુ જ છે કે જંબૂદ્વીપના ભરત અને ઐરવતના જેવી જ વ્યવસ્થા ધાતકીખંડ અને પુષ્કરાર્ધ દ્વીપમાં પણ હોય છે. એજ વાતનુ સમર્થન કરવા માટે " जंबुद्दीवग " ઈત્યાદિ ગાથા આપવામાં આવેલ છે તે ગાથામાં એ વાતને પ્રતિપાદન કરવામાં આવી છે કે જંબૂદ્વીપાવશ્યક (જંબૂદ્વીપમાં જેનુ કથન કરાયું છે તે) સમસ્ત વસ્તુ

त्यस्मात्, इति जम्बूद्वीपावश्यकम्, यद्वा-'जम्बूद्दीवगआवस्सगं' इत्यस्य 'जम्बूद्वीपगावश्यकमि'-तिच्छाया, तत्पक्षे-जम्बूद्वीपं गच्छतीति जम्बूद्वीपग-जम्बूद्वीपगतं, तद्गतत्वावश्यकं वस्तुजातं जम्बूद्वीपगावश्यकमित्यर्थः, इह तु शब्दः पादपूरणार्थः, कुत आरभ्य कियत्पर्यन्तं जम्बूद्वीपका (गा) वश्यकं मननीयमित्यपेक्षायामाह-"कालाओ चूलिया जाव"-ति-कालादारभ्य चूलिका यावत्-सुषमसुषमारूपकालालापकादारभ्य चूलिका-मन्दरचूलिकालापकपर्यन्तं यद्वस्तुजातमुक्तं तत् धातकीखण्डे पुष्करवरे च द्वीपे "पुव्वावरे" पूर्वापरे-पूर्वञ्चापरञ्चेत्यनयोः समाहारः पूर्वापरं तस्मिन् पूर्वापरे पूर्वे पश्चिमे च 'पासे' पार्श्वे-भागे, यद्वा-धातकीखण्ड-पुष्करवरद्वीपयोः प्रत्येकं पूर्वापरेषु पौरस्त्यपाश्चात्येषु पार्श्वेषु वा क्षेत्रेषु समस्तवस्तुकं बोध्यं न तु न्यूनाधिकमिति भावः ॥ सू० ६२ ॥

पूर्वं जम्बूद्वीपे कूटाऽऽवृतक्षेत्राणि निरूपितानि, सम्प्रति जम्बूद्वीपस्य द्वाराणि निरूपयितुमाह—

मूलम्—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा-विजये १, वेजयंते २, जयंते ३, अपराजिए ४। ते णं दारा चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं पण्णत्ता। तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइआ परिवसंति-विजए १, वेजयंते २, जयंते ३, अपराजिए ४ ॥सू०६३॥

छाया—जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-विजयं १, वैजयन्तं २, जयन्तम् ३, अपराजितम् ४। तानि खलु द्वाराणि चत्वारि

जम्बूद्वीपमें कथित समस्त वस्तुजात जो कि यहां सुषम सुषमा कालसे लेकर मन्दरचूलिका तक प्रगट किया गया है, धातकीखण्डके पूर्वार्धमें और पश्चिमार्धमें, और पुष्करार्धके पूर्वार्ध एवं पश्चिमार्धमें यथावत् कहना चाहिये ॥ सू० ६० ॥

"जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता" इत्यादि—

जम्बूद्वीपके चार द्वार कहे गये हैं। विजय १, वैजयन्त २,

જાતનો એટલે કે સુષમ સુષમાકાળથી લઈને મંદર ચૂલિકા પર્યન્તના ઉપર્યુક્ત કથનમાં જેનો જેનો નિર્દેશ થયો છે તે વસ્તુઓનો-ધાતકીખંડના પૂર્વાર્ધમાં અને પશ્ચિમાર્ધમાં તથા પુષ્કરવર દ્વીપાર્ધના પૂર્વાર્ધ અને પશ્ચિમાર્ધમાં પણ સદ્ભાવ છે એમ સમજવું ॥ સૂ ૬૦ ॥

જમ્બૂદ્વીપમાં કૂટયુક્ત ક્ષેત્રોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર જમ્બૂદ્વીપના

योजनानि विष्कम्भेण तावन्त्येव प्रवेशेन प्रज्ञप्तानि। तत्र खलु चत्वारो देवा महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति–विजयः १, वैजयन्तः २, जयन्तः ३, अपराजितः ४ ॥ सू० ६३ ॥

टीका—'जंबूद्दीवस्स णं' इत्यादि—जम्बूद्वीपस्य विजय–वैजयन्त–जयन्तापराजितनामकानि चत्वारि द्वाराणि सन्ति। तानि च द्वाराणि विष्कम्भेण–द्वारोभयभागस्थितकुडयान्तरालभागविस्तारेण चत्वारि योजनानि तथा–प्रवेशेन=प्रवेशस्थानप्रमाणेन–कुडयस्थौल्येन तावन्त्येव=चत्वारि योजनान्येव प्रज्ञप्तानि। उच्चत्वं चाष्ट योजनानीति, उक्तञ्च–" चउजोयणवित्थिन्ना, अट्ठेव य जोयणाणि उव्विद्धा "–छाया–चतुर्योजनविस्तीर्णानि अष्टैव च योजनानि उद्विद्धानि–उच्चानि ॥ इति। तथा–तत्र–तेषु विजयादिषु द्वारेषु चत्वारो देवाः महर्द्धिकाः=विशालकऋद्धिशालिनः ' ' जाव ' यावत्–अत्र यावच्छब्देन–महाद्युतिकाः, महाबलाः, महायशसः, महासौख्याः, इति ग्राह्यम् अर्थः स्पष्ट एव। पल्योपम-

जयन्त ३, अपराजित ४। ये द्वार विष्कम्भकी अपेक्षा चार योजन प्रमाण और प्रवेशकी अपेक्षा भी इतनेही कहे गये हैं। इनमें चार महर्द्धिक देव यावत् एक पल्योपम स्थितिवाले रहते हैं।

द्वारकी दोनों ओरकी दोनों दीवालों के अन्तरालों का विष्कम्भ [विस्तार] चार योजनका है, तथा–भीतोंकी स्थूलतारूप जो प्रवेश है वहभी चार योजनप्रमाण है। कहाभी है—" चउजोयणवित्थिन्ना " चार योजनके विस्तार इत्यादि

तथा—आठ योजन तक ये ऊंचे हैं। " महर्द्धिका यावत् पल्योपम स्थितिकाः " में जो यावत् पद आया है उससे यहां " महाद्युतिकाः,

દ્વારોની પ્રરૂપણા કરે છે—" जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता " ઈત્યાદિ—

જંબૂ નામના દ્વીપને ચાર દ્વાર કહ્યાં છે, તેમના નામ આ પ્રમાણે છે. (૧) વિજય, (૨) વૈજયન્ત, (૩) જયન્ત અને (૪) અપરાજિત. તે દ્વારોનો વિષ્કંભ (પહોળાઈ) ચાર યોજનપ્રમાણ છે અને પ્રવેશની અપેક્ષાએ પણ તેમને ચાર યોજનપ્રમાણ જ કહ્યા છે તેમાં મહર્દ્ધિક આદિ વિશેષણવાળા ચાર દેવ રહે છે, તેમની એક પલ્યોપમની સ્થિતિ કહી છે દ્વારની બન્ને તરફની દીવાલોના અન્તરાલનો વિષ્કભ (વિસ્તાર) ચાર યોજનનો છે તથા દીવાલોની સ્થૂલતા રૂપ જે પ્રવેશ છે તે પણ ચાર યોજનપ્રમાણ છે કહ્યુ પણ છે કે–' चउजोयणवित्थिन्ना " ઈત્યાદિ ચાર યોજનના વિસ્તારવાળા તે દ્વારો આઠ યોજન પર્યંત ઊંચા છે " महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका " આ સૂત્રપાઠમા જે " यावत् " પદ છે, તેના દ્વારા મહાદ્યુતિ સંપન્ન, મહાબલ સંપન્ન, મહાયશ સંપન્ન અને મહાસુખ

स्थितिका =पल्योपमकालपर्यन्तस्थायिनो द्वारनामसदृशनामकाः परिवसन्ति, तेच विजयः १, वैजयन्तः २, जयन्तः ३, अपराजितः ४, इति,
उक्तं च–" पलिओवमट्ठिइया, सुरगणपरिवारिया सदेवीया।
एएसु दारनामा, वसंति देवा महिड्ढीया ॥ १ ॥"
छाया–" पल्योपमस्थितिकाः सुरगणपरिवृताः सदेवीका ।
एतेषु द्वारनामानो वसन्ति देवा महर्द्धिकाः ॥१॥" इति । सू० ६१

अनन्तरं जम्बूद्वीपस्य द्वाराणि निरूपितानि, सम्प्रति जम्बूद्वीपस्यान् अन्तर द्वीपान् निरूपयितुमाह—

सूत्रम्—जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवतस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्द तिन्नि तिन्नि जोयणसयाइ ओगाहित्ता एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा–एगूरुयदीवे१, आभासियदीवे२, वेसाणियदीवे ३, णंगोलियदीवे४। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, त जहा–एगूरुआ१, आभासिआ२, वेसाणिया३, णंगोलिया४। तेसिणं दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द चत्तारि२, जोयणसयाइ ओगाहेत्ता एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त

महाबलाः, महायशसाः, महासौख्याः" इसपाठका संग्रह हुवाहै। इन चार द्वारोंपर जो चार देव रहते हैं उनके नाम द्वारके नामानुसार हैं। इस तरह उन देवोंके नाम क्रमशः विजय–वैजयन्त–जयन्त और अपराजित हैं। कहामी है–" पलिओवमट्ठिइया" इत्यादि, ये देव पल्योपमकी स्थिति वाले हैं द्वारमें रहने वाला प्रत्येक देव सुरगणोंसे सदा परिवृत रहता है और अपनी–२ देवियोंसे युक्त बना रहताहै ॥सू०६१॥

सबल આ ચાર વિશેષણો ગ્રહણ કરવા જોઇએ. તે ચાર દ્વાર પર જે ચાર દેવો રહે છે તેમનાં નામ પણ દ્વારોનાં નામાનુસાર છે જેમકે કે વિજય, વૈજય ત, જયન્ત અને અપરાજિત છે કહ્યું પણ છે કે ' પલિઓવમટ્ઠિઇયા" ઇત્યાદિ એક પલ્યોપમની સ્થિતિ છે તે દેવો સદા સુરગણો અને દેવીઓના પરિવારથી પરિવૃત રહે છે ॥ સૂ ૬૩ ॥

जहा-हयकन्नदीवे१, गयकन्नदीवे२, गोकन्नदीवे३, संकुलिकन्नदीवे४। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा-हयकन्ना १, गयकन्ना २, गोकन्ना ३, संकुलिकन्ना ४। तेसिणं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं पंच २, जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—आयंसमुहदीवे १, मेंढमुहदीवे२, अओमुहदीवे ३, गोमुहदीवे४। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा। तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं छछजोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा-आसमुहदीवे १, हत्थिमुहदीवे २, सीहमुहदीवे३, वग्घमुहदीवे ४। तेसु णं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा। तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं सत्त सत्त जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा-आसकन्नदीवे १, हत्थिकन्नदीवे २, अकन्नदीवे ३, कन्नपाउरणदीवे ४। तेसु णं दीवेसु मणुया भाणियव्वा। तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं अट्ठ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा-उक्कामुहदीवे१, मेहमुहदीवे२, विज्जुमुहदीवे३, विज्जुदंतदीवे४। तेसु णं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा। तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं णव णव जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा-घणदंतदीवे१, लट्ठदंतदीवे२, गूढदंतदीवे३,

सुद्धदंतदीवे४। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा–घणदंता१, लट्ठदंता२, गूढदंता३, सुद्धदंता४,

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वास हरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिन्नि तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा–एगूरुयदीवे, सेसं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव सुद्धदंता॥सू०६४

छाया–जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन क्षुद्रहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं त्रीणि त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारो ऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एकोरुकद्वीपः १, आभाषिकद्वीपः २, वैषाणिकद्वीपः ३, लाङ्गूलिकद्वीपः ४। तेषु खलु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्याः परिवसन्ति तद्यथा–एकोरुकाः १, आभाषिकाः २, वैषाणिकाः ३, लाङ्गूलिकाः ४। तेषां खलु

इस तरह जम्बूद्वीपके द्वारोंका निरूपण करके अब सूत्रकार जम्बूद्वीपस्थ अन्तरद्वीपोंका निरूपण करते हैं।

"जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स" इत्यादि–

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें सुमेरु पर्वतकी दक्षिण दिशामें क्षुद्रहिमवान् नामका वर्षधर पर्वत है। इसकी चारों विदिशाओंमें लवण समुद्रको तीन तीन सौ योजन तक अवगाहित करके चार अन्तरद्वीप कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकारसे हैं। एकोरुक द्वीप, आभाषिक द्वीप, वैषाणिक द्वीप और लाङ्गूलिक द्वीप, इन द्वीपोंमें चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं। जैसे—एक उरुवाले एकोरुक १, आभाषिक २, वैषाणिक ३ और

આ રીતે જમ્બૂદ્વીપના દ્વારોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર જમ્બૂદ્વીપસ્થ અંતરદ્વીપોનું નિરૂપણ કરે છે—

"जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स" ઈત્યાદિ—

જમ્બૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં સુમેરુ (મંદર) પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં ક્ષુદ્રહિમવાન્ નામનો વર્ષધર પર્વત છે તેની ચારે દિશાઓમાં લવણ સમુદ્રને ૩૦૦-૩૦૦ યોજન પાર કરવાથી ચાર અન્તરદ્વીપ આવે છે તેમના નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) એકોરુક દ્વીપ, (૨) આભાષિક દ્વીપ (૩) વૈષાણિક દ્વીપ અને (૪) લાંગૂલિક દ્વીપ તે દ્વીપોમાં ચાર પ્રકારના મનુષ્યો રહે છે જેમ

द्वीपानां चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं चत्वारि योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—हयकर्णद्वीपः १, गजकर्णद्वीपः २, गोकर्णद्वीप ३, शष्कुलिकर्णद्वीपः ४। तेषु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्याः परिवसन्ति, तद्यथा—हयकर्णाः १, गजकर्णाः २, गोकर्णाः ३, शष्कुलिकर्णाः ४। तेषां खलु द्वीपानां चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं पञ्च २ योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आदर्शमुखद्वीपः १, मेढ्रमुखद्वीपः २, अयोमुखद्वीपः ३, गोमुखद्वीपः ४। तेषु खलु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्या भणितव्याः। तेषां खलु द्वीपानां

लाङ्गूलिक ४, इन द्वीपोंकी चारों विदिशाओंमें लवण समुद्रको चार-२ सौ योजन तक अवगाहित करके दूसरे और चार अन्तरद्वीप कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—हयकर्ण द्वीप, गजकर्ण द्वीप, गोकर्ण द्वीप और शष्कुलिकर्ण द्वीप ४। इन द्वीपोंमें चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं, हयकर्ण १ गजकर्ण २ गोकर्ण ३ शष्कुलिकर्ण ४। इन द्वीपोंकी चारों विदिशाओंमें लवणसमुद्रको पांच पांचसौ योजन तक अवगाहित करके और चार द्वीप हैं।

आदर्श मुखद्वीप १, मेढ्र मुखद्वीप २, आयोमुख द्वीप ३, और गोमुख द्वीप, इनमें चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं जैसे-आदर्शमुख १, मेढ्रमुख २, अयोमुख ३ गोमुख ४। उन द्वीपोंकी चारों विदिशाओंमें भी लवण समुद्रको अवगाहन करके छहसौ छहसौ - योजन तक और चार अन्तरद्वीप हैं। उनके नाम इस प्रकारके है—अश्वमुख १, हस्तिमुख २, सिंहमुख ३, व्याघ्रमुख द्वीप ४। इनमें इन

કે. એક ઉરુવાળા એકોરુક, આભાષિક, વૈષાણિક અને લાગલિક તે દ્વીપોની ચારે વિદિશાઓમા લવણુ સમુદ્રને ચારસો- ચારસો યોજન અવગાહિત (પાર) કરવાથી બીજા ચાર અન્તરદ્વીપો આવે છે. તેમના નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) હયકર્ણુ દ્વીપ, (૨) ગજકર્ણુ દ્વીપ, (૩) ગોકર્ણુ દ્વીપ અને (૪) શષ્કુલિ કર્ણુ દ્વીપ. તે દ્વીપોમાં ચાર પ્રકારના મનુષ્યો રહે છે—(૧) હયકર્ણુ, (૨) ગજકર્ણુ, (૩) ગોકર્ણુ અને (૪) શષ્કુલીકર્ણુ. તે દ્વીપોની ચારે વિદિશાઓમાં, લવણુ સમુદ્રને ૫૦૦-૫૦૦ યોજન અવગાહિત કરવાથી બીજા ચાર દ્વીપો આવે છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) આદર્શમુખ દ્વીપ, (૨) મેઢ્રમુખ દ્વીપ, (૩) અયોમુખ દ્વીપ અને (૪) ગોમુખ દ્વીપ તેમાં ચાર પ્રકારના મનુષ્યો રહે છે—(૧) આદર્શમુખ, (૨) મેઢ્રમુખ, (૩) અયસમુખ અને (૪) ગોમુખ

તે દ્વીપોની ચારે વિદિશાઓમા લવણુ સમુદ્રને ૬૦૦-૬૦૦ યોજન અવગાહિત કરવાથી બીજા ચાર અન્તરદ્વીપો આવે છે, તેમનાં નામ આ આ પ્રમાણે છે—(૧) અશ્વમુખ, (૨) હસ્તિમુખ, (૩) સિંહમુખ અને (૪)

सुद्धदतदीवे४ । तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा-घणदंता१, लट्ठदंता२, गूढदंता३, सुद्धदंता४,

जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वास हरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिन्नि तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा-एगूरुयदीवे, सेसं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव सुद्धदंता ॥सू०६४

छाया-जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन क्षुद्रहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं त्रीणि त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारो ऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एकोरुकद्वीपः १, आभासिकद्वीपः २, वैषाणिकद्वीपः ३, लाङ्गूलिकद्वीपः ४। तेषु खलु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्याः परिवसन्ति तद्यथा-एकोरुकाः १, आभासिकाः २, वैषाणिकाः ३, लाङ्गूलिकाः ४। तेषां खलु

इस तरह जम्बूद्वीपके द्वारोंका निरूपण करके अब सूत्रकार जम्बूद्वीपस्थ अन्तरद्वीपोंका निरूपण करते हैं।

" जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स " इत्यादि—

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें सुमेरु पर्वतकी दक्षिण दिशामें क्षुद्रहिमवान् नामका वर्षधर पर्वत है। उसकी चारों विदिशाओंमें लवण समुद्रको तीन तीन सौ योजन तक अवगाहित करके चार अन्तरद्वीप कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकारसे हैं। एकोरुक द्वीप, आभासिक द्वीप, वैषाणिक द्वीप और लाङ्गूलिक द्वीप, इन द्वीपोंमें चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं। जैसे—एक उरूवाले एकोरुक १, आभासिक २, वैषाणिक ३ और

આ રીતે જમ્બૂદ્વીપના દ્વારોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર જમ્બૂદ્વીપસ્થ અન્તરદ્વીપોનું નિરૂપણ કરે છે—

" जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स " ઇત્યાદિ—

જમ્બૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં સુમેરુ (મંદર) પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં ક્ષુદ્રહિમવાન્ નામનો વર્ષધર પર્વત છે તેની ચારે દિશાઓમાં લવણ સમુદ્રને ૩૦૦-૩૦૦ યોજન પાર કરવાથી ચાર અન્તરદ્વીપ આવે છે તેમના નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) એકોરુક દ્વીપ (૨) આભાસિક દ્વીપ (૩) વૈષાણિક દ્વીપ અને (૪) લાંગૂલિક દ્વીપ. તે દ્વીપોમાં ચાર પ્રકારના મનુષ્યો રહે છે જેમ

द्वीपानां चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं चत्वारि योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-हयकर्णद्वीपः १, गजकर्णद्वीपः २, गोकर्णद्वीपः ३, शष्कुलिकर्णद्वीपः ४। तेषु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्याः परिवसन्ति, तद्यथा-हयकर्णाः १, गजकर्णाः २, गोकर्णाः ३, शष्कुलिकर्णाः ४। तेषां खलु द्वीपानां चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं पञ्च २ योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-आदर्शमुखद्वीपः १, मेढ्रमुखद्वीपः २, अयोमुखद्वीपः ३, गोमुखद्वीपः ४। तेषु खलु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्या भणितव्याः। तेषां खलु द्वीपानां

लाङ्गूलिक ४, इन द्वीपोंकी चारों विदिशाओंमें लवण समुद्रको चार-२ सौ योजन तक अवगाहित करके दूसरे और चार अन्तरद्वीप कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं-हयकर्ण द्वीप, गजकर्ण द्वीप, गोकर्ण द्वीप और शष्कुलिकर्ण द्वीप ४। इन द्वीपोंमें चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं, हयकर्ण १ गजकर्ण २ गोकर्ण ३ शष्कुलिकर्ण ४। इन द्वीपोंकी चारों विदिशाओंमें लवणसमुद्रको पांच पांचसौ योजन तक अवगाहित करके और चार द्वीप हैं।

आदर्श मुखद्वीप १, मेढ्र मुखद्वीप २, आयोमुख द्वीप ३, और गोमुख द्वीप, इनमें चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं जैसे-आदर्शमुख १, मेढ्रमुख २, अयोमुख ३ गोमुख ४। उन द्वीपोंकी चारों विदिशाओंमें भी लवण समुद्रको अवगाहन करके छहसौ छहसौ - योजन तक और चार अन्तरद्वीप हैं। उनके नाम इस प्रकारके है—अश्वमुख १, हस्तिमुख २, सिंहमुख ३, व्याघ्रमुख द्वीप ४। इनमें इन

કે. એક ઉરુવાળા એકોરુક, આભાષિક, વૈષાણિક અને લાગલિક તે દ્વીપોની ચારે વિદિશાઓમા લવણ સમુદ્રને ચારસો- ચારસો યોજન અવગાહિત (પાર) કરવાથી બીજા ચાર અન્તરદ્વીપો આવે છે. તેમના નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) હયકર્ણ દ્વીપ, (૨) ગજકર્ણ દ્વીપ, (૩) ગોકર્ણ દ્વીપ અને (૪) શષ્કુલિકર્ણ દ્વીપ તે દ્વીપોમાં ચાર પ્રકારના મનુષ્યો રહે છે—(૧) હયકર્ણ, (૨) ગજકર્ણ, (૩) ગોકર્ણ અને (૪) શષ્કુલીકર્ણ. તે દ્વીપોની ચારે વિદિશાઓમા, લવણ સમુદ્રને ૫૦૦-૫૦૦ યોજન અવગાહિત કરવાથી બીજા ચાર દ્વીપો આવે છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) આદર્શમુખ દ્વીપ, (૨) મેઢ્રમુખ દ્વીપ, (૩) અયોમુખ દ્વીપ અને (૪) ગોમુખ દ્વીપ તેમાં ચાર પ્રકારના મનુષ્યો રહે છે—(૧) આદર્શમુખ, (૨) મેઢ્રમુખ, (૩) અયસમુખ અને (૪) ગોમુખ.

તે દ્વીપોની ચારે વિદિશાઓમા લવણ સમુદ્રને ૬૦૦-૬૦૦ યોજન અવગાહિત કરવાથી બીજા ચાર અન્તરદ્વીપો આવે છે, તેમનાં નામ આ આ પ્રમાણે છે—(૧) અશ્વમુખ, (૨) હસ્તિમુખ, (૩) સિંહમુખ અને (૪)

चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं षट्षट् योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तर द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अश्वमुखद्वीप १, हस्तिमुखद्वीप २, सिंहमुखद्वीपः ३, व्याघ्रमुखद्वीपः ४। तेषु खलु द्वीपेषु मनुष्या भणितव्याः। तेषां खलु द्वीपानां चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं सप्त सप्त योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा–अश्वकर्णद्वीपः १, हस्तिकर्णद्वीपः २, अकर्णद्वीपः ३, कर्णप्रावरणद्वीप ४ तेषु खलु द्वीपेषु मनुष्या भणितव्या'। तेषां खलु द्वीपानां चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रमष्टाष्टयोजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तर द्वीपा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–उल्कामुखद्वीप १, मेघमुखद्वीपः २, विद्युन्मुखद्वीपः ३,

---

प्रत्येक द्वीप के नामानुगुणवाले मनुष्य रहा करते हैं। उन द्वीपोंकी भी चारों विदिशाओंमें सात–सातसौ योजन तक लवण समुद्रको अवगाहन करके और चार अन्तरद्वीप हैं। अश्वकर्ण १, हस्तिकर्ण २, अकर्ण ३, कर्णप्रावरण द्वीप ४ हैं। यहांभी द्वीपके नाम जैसे गुणवाले मनुष्य बसते हैं। इन द्वीपोंकी चार विदिशाओंमें लवण समुद्रको आठसौ आठसौ योजन तक अवगाहन करके चार अन्तरद्वीप और कहे गये है—ये चारके नाम इस प्रकार है उल्कामुख द्वीप, मेघमुख द्वीप, विद्युन्मुख द्वीप, विद्युद्दन्त द्वीप ४ इनमें मनुष्य कह लेना चाहिये। इन द्वीपोंकी चारोंही विदिशाओंमें लवणसमुद्रको नौसौ नौसौ योजन तक अवगाहन करके चार अन्तरद्वीप और हैं। जैसे–घनदन्त द्वीप १, लष्टदन्त द्वीप २ गूढदन्त द्वीप ३ और चौथा शुद्धदन्त ४। इन द्वीपोंमें चार प्रकारके मनुष्य होतेहैं। घनदन्त१ लष्टदन्त२, गूढ

વ્યાઘ્રમુખ દ્વીપ તે પ્રત્યેક દ્વીપમાં તેમનાં નામ પ્રમાણે ગુણવાળા મનુષ્યો રહે છે તે ચારે દ્વીપોની વિદિશાઓમાં લવણ સમુદ્રને ૭૦૦–૭૦૦ યોજન અવ ગાહિત કરવાથી બીજા ચાર અન્તરદ્વીપો આવે છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) અશ્વકર્ણ (૨) હસ્તિકર્ણ, (૩) અકર્ણ અને (૪) કર્ણ પ્રવરણ દ્વીપ. તે ચારે દ્વીપોમાં પણ તે દ્વીપના નામ પ્રમાણે ગુણવાળા મનુષ્યો રહે છે. તે ચારે દ્વીપોની વિદિશાઓમાં લવણ સમુદ્રને ૮૦૦–૮૦૦ યોજન અવગાહિત કરવાથી બીજા ચાર અન્તરદ્વીપો આવે છે—(૧) ઉલ્કામુખ દ્વીપ, (૨) મેઘમુખ દ્વીપ (૩) વિદ્યુન્મુખ દ્વીપ અને (૪) વિદ્યુદ્દન્ત દ્વીપ તેમાં પણ મનુષ્યોનું ઉપર મુજબ કથન સમજવું તે ચારે અન્તરદ્વીપોની ચાર વિદિશાઓમાં, લવણ સમુદ્રને ૯૦૦–૯૦૦ યોજન અવગાહિત કરવાથી બીજા ચાર અન્તરદ્વીપ આવે છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ઘનદન્ત દ્વીપ, (૨) લષ્ટદન્ત દ્વીપ

विद्युद्दन्तद्वीपः ४, तेषु खलु द्वीपेषु मनुष्या भणितव्याः। तेषां खलु द्वीपानां चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं नव नव योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–घनदन्तद्वीपः १, लष्टदन्तद्वीपः २, गूढदन्तद्वीपः ३, शुद्धदन्तद्वीपः ४। तेषु खलु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्याः परिवसन्ति, तद्यथा–घनदन्ताः १, लष्टदन्ताः २, गूढदन्ताः ३, शुद्धदन्ताः ४।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरेण शिखरिणो वर्षधरपर्वतस्य चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं त्रीणि त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु चत्वारोऽन्तरद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एकोरुकद्वीपः शेषं तथैव निरवशेषं भणितव्यं यावत् शुद्धदन्ताः। सू० ६३।

टीका—" जंबूदीवे २ " इत्यादि—स्पष्टम्, नवरं–चुल्लहिमवंतस्य वासहरपव्वयस्से–" ति–क्षुद्रहिमवतो–महाहिमवदपेक्षया लघुहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य, तस्य हि पूर्वभाग–पश्चिमभागयोः प्रत्येकं शाखाद्वयं विद्यत इति वृद्धाः।

दन्त३, शुद्धदन्त ४। जम्बूद्वीपनामके द्वीपमें मन्दर पर्वतकी उत्तर दिशामें वर्तमान शिखरी वर्षधर पर्वतकी चार विदिशाओंमें लवणसमुद्रको अवगाहन करके तीनसौ तीनसौ योजन तक चार अन्तरद्वीप कहे गये हैं जैसे–एकोरुक द्वीप१ आदि बाकीका और सब कथन शुद्धदन्त तक ऊपर का जैसा जानना चाहिये।

टीकार्थ––हिमवान्में महाहिमवान्की अपेक्षासे ' क्षुद्र ' विशेषण हैं। यह–क्षुद्रहिमवान् पर्वत भरतक्षेत्रकी सीमापर है, इसके दोनों छोर पूर्व–पश्चिम लवण समुद्रमें फैले हैं। ऐसे ही ऐरवत क्षेत्रकी सीमापर स्थित शिखरी पर्वतके दोनों छोर भी लवण समुद्रमें फैले हुवे है।

---

(૪) ગૂઢદન્ત દ્વીપ અને (૪) શુદ્ધદન્ત દ્વીપ તે દ્વીપોમા ક્રમશઃ ચાર પ્રકારના મનુષ્યો વસે છે—(૧) ઘનદન્ત, (૨) લષ્ટદન્ત, (૩) ગૂઢદન્ત, અને (૪) શુદ્ધદન્ત.

જબૂદ્વીપ નામના દ્વીપના મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં જે શિખરિ વર્ષધર પર્વત આવેલો છે, તેની ચારે વિદિશાઓમાં લવણ સમુદ્રને ૩૦૦–૩૦૦ યોજન પાર કરવાથી ચાર અન્તરદ્વીપો આવે છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) એકોરુક દ્વીપ, આદિ બાકીનું સમસ્ત કથન એટલે કે શુદ્ધદન્ત પર્યન્તનુ કથન ઉપર મુજબ જ સમજવુ.

વિશેષાર્થ—મહાહિમવાન્ કરતાં નાનો હોવાને કારણે ક્ષુદ્રહિમવાનને ક્ષુદ્ર વિશેષણ લગાડયું છે તે ક્ષુદ્રહિમવાન્ પર્વત ભરતક્ષેત્રની સીમાપર છે, તેના બન્ને છેડા પૂર્વ–પશ્ચિમ લવણ સમુદ્ર સુધી વિસ્તરેલા છે. એ જ પ્રમાણે ઐરવત ક્ષેત્ર સીમાપર આવેલા શિખરી પર્વતના બન્ને છેડા પણ લવણ સમુદ્ર

"चउसु विदिसासु" इत्यादि—चतसृषु विदिक्षु पूर्वोत्तरादिषु लवणसमुद्रे त्रीणि त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य-अतिक्रम्य ये शाखाविभागाः सन्ति, 'एत्थ' इति-अत्र-शाखाविभागेषु खलु चत्वारः अन्तरद्वीपाः-अन्तर-मध्ये द्वीपा अन्तरद्वीपाः-समुद्रमध्यवर्तिद्वीपाः, प्रज्ञप्ताः-कथिताः, यद्वा 'अन्तरद्वीपाः' इत्यस्यायमर्थः-अन्तरं-परस्परविभागः, तत्प्रधाना द्वीपा अन्तरद्वीपाः, मध्यमपदलोपिसमासोऽत्राश्रयः। तत्र पूर्वोत्तरदिशि ईशानकोणे एकोरुकनामा योजनशतत्रयाऽऽयामविष्कम्भोऽन्तरद्वीपोऽस्ति। अनेन प्रकारेण आग्नेयी-नैर्ऋती-वायव्यासु विदिक्षु क्रमेणाऽऽभाषिकवैषाणिक-लाङ्गूलिकाख्यास्त्रयोऽन्तरद्वीपा अपि बोध्याः।

प्रत्येक छोर भी दो भागोंमें विभक्त है, ये दोनोंके आठों भाग लवण समुद्रमें फैले हैं। यही बात यहां-"पूर्वभाग-पश्चिमभागयोः प्रत्येक शाखाद्वयं दिव्यते" इतिसूत्र-पूर्वभाग और पश्चिम भाग में प्रत्येक में दो दो शाखा हैं इस बातसे प्रदर्शित की गई है।

"चउसु विदिसासु" इत्यादि—

तीनसौ तीनसौ योजनप्रमाण लवण समुद्रका उल्लंघन करके पूर्वोत्तर विदिशाओंकी ओर जो शाखाविभाग-छोर-है, उन शाखाविभागोंपर चार अन्तरद्वीप हैं, समुद्रके मध्यमें जो द्वीप हैं वे अन्तरद्वीप हैं, अथवा परस्परमें विभागप्रधानद्वीप अन्तरद्वीप हैं। ईशान कोणमें तीनसौ योजन प्रमाण आयाम विष्कम्भवाला एकोरुक है नामका अन्तरद्वीप है, इसी प्रकारसे आग्नेयी-नैर्ऋती और वायवी विदिशाओंमें क्रमसे आभाषिक वैषाणिक लाङ्गूलिक नामकेतीन अन्तरद्वीप औरभीहै। ऐसे

સુધી વિસ્તરેલા છે પ્રત્યેક છેડા બબ્બે ભાગોમાં વિભક્ત થયેલા હોવાથી બન્ને બાજુના મળીને કુલ આઠ ભાગો (છેડાઓ) લવણ સમુદ્ર સુધી વ્યાપેલા છે એજ વાત અહીં સૂત્રપાઠ દ્વારા વ્યક્ત થઈ છે "पूर्वभाग-पश्चिम भागयोः प्रत्येकं शाखाद्वयं दिव्यते इतिसूत्र" પૂર્વ ભાગ અને પશ્ચિમ ભાગમાં દરેકમાં બબ્બે શાખાઓ છે

"चउसु विदिसासु" ઇત્યાદિ—લવણ સમુદ્રમાં ૩૦૦-૩૦૦ યોજન પ્રમાણ અંતર ઓળંગવાથી, ઈશાન આદિ ચારે વિદિશાઓમાં જે શાખાવિભાગ રૂપ છેડા છે તે શાખાવિભાગ રૂપ છેડા પર ચાર અંતરદ્વીપો છે (સમુદ્રની મધ્યમાં હોય એવા દ્વીપોને અંતરદ્વીપો કહે છે અથવા પરસ્પરમાં વિભાગ પ્રધાન દ્વીપને અંતરદ્વીપ કહે છે) ઈશાન કોણમાં ૩૦૦ યોજન પ્રમાણ લંબાઈ પહોળાઈવાળો એકોરુક નામનો અંતરદ્વીપ છે એજ પ્રમાણે અગ્નિ, નૈઋત્ય અને વાયવ્યકોણમાં અનુક્રમે આભાષિક, વૈષાણિક અને લાંગૂલિક

इत्थं क्षुद्रहिमवतश्चतसृषु विदिक्षु एकोरुकादयश्चत्वारोऽन्तरद्वीपा भवन्ति, इति। तेषु चतुर्विधा मनुष्या वसन्ति, सूत्रे 'चतुर्विधा' इति बहुवचनेन निर्देशस्तु द्वीपसमुदायगतबहुत्वापेक्षया न तु प्रतिद्वीपमपेक्ष्येति, अतः क्रमेण तेऽन्तरद्वीपेषु योजनीयाः, तत्रस्था मनुष्या एकोरुकादिद्वीपसमानामान एव भवन्ति। ते च पुरुषा दर्शने स्वरूपतो मनोहराः सुन्दराङ्गोपाङ्गा भवन्ति ।१।

इति प्रथमद्वीपनिरूपणा १।

अथ द्वितीयद्वीपनिरूपणा २—

"तेसि णं दीवाणं" इत्यादि—तेषाम्—एकोरुकादीनां द्वीपानां चतसृषु विदिक्षु—ऐशान्याग्नेयीनैऋतीवायव्यासु प्रतिविदिक्षु लवणसमुद्रं चत्वारि योजनशतान्युल्लङ्घ्य चतुर्योजनशताऽऽयामविस्तारा हयकर्णादयश्चत्वारोऽन्तरद्वीपास्तन्नामान एव तत्र मनुष्या अपि परिवसन्ति, इति बोध्यम्। एवं येषां द्वीपानां यात्र-

ये चार अन्तरद्वीप हिमवान् पर्वतकी चार विदिशाओंमें हैं। इन अन्तरद्वीपोंमें चार प्रकारके मनुष्य रहते हैं।

यहां जिन जिन नामोंके अन्तरद्वीप कहे गये हैं। वहां उन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध मनुष्य रहते हैं, ये देखनेमें मनोहर होते हैं और रूपसेभी मनोहर होते हैं। इनके अङ्ग–उपाङ्ग सुन्दर होते हैं १ इन एकोरुक आदि द्वीपोंकी चारों विदिशाओंमें ईशान, अग्नि, नैर्ऋती, वायव्या कोन इनमेंसे प्रत्येक विदिशामें लवण समुद्रको चारसौ योजन उलंघन करके चारसौ योजनके आयाम विस्तारवाले हयकर्ण आदिक चार अन्तरद्वीप हैं, इनमें–इन्हींके जैसे नामवाले मनुष्य रहते हैं। इस प्रकारसे द्वितीय

નામના બીજા ત્રણ અંતરદ્વીપો છે. એવા તે ચાર અંતરદ્વીપો હિમવાન્ પર્વતની ચાર વિદિશાઓમાં (ઈશાનાદિ ખૂણાઓમાં) છે. તે અંતરદ્વીપોમાં ચાર પ્રકારના મનુષ્યો વસે છે. "चतुर्विधा" આ બહુવચનનું પદ પ્રત્યેક દ્વીપગત મનુષ્યોની અપેક્ષાએ વપરાયું નથી, પણ ચારે દ્વીપોના સમુદાયના મનુષ્યો માટે વપરાયું છે. ત્યાં જે નામના દ્વીપો કહ્યા છે, એ જ નામથી ઓળખાતા મનુષ્યો રહે છે તેમનો દેખાવ મનોહર હોય છે, તેઓ મનોહર રૂપસંપન્ન અને અંગોપાંગની સુંદરતાવાળા હોય છે

એકોરુક આદિ ચાર અંતરદ્વીપોની વિદિશાઓમાં ઈશાન, અગ્નિ, નૈઋત્ય અને વાયવ્યમાં, લવણ સમુદ્રને ૪૦૦–૪૦૦ યોજન પાર કરીને આગળ જવાથી ૪૦૦–૪૦૦ યોજનની લંબાઈ પહોળાઈવાળા હયકર્ણ આદિ ચાર અંતરદ્વીપો આવે છે. તે અંતરદ્વીપોમાં તેમના જેવા જ નામવાળા મનુષ્યો રહે છે. આ

दन्तरं तेषां तावदेवाऽऽयामविस्तारप्रमाणं यावत्सप्तमानां नवशतान्यन्तरं तावदेव च तत्प्रमाणमिति, एते सकलिताः सर्वेऽप्यष्टाविंशतिर्द्वीपा भवन्ति। अत्र मनुष्यास्तु युग्मजाताः पल्योपमासंख्येयभागाऽऽयुषोऽष्टधनुःशतोच्छ्रिताः। तथा ऐरवतक्षेत्रविभाजकस्य शिखरिपर्वतस्याप्येवमेव पूर्वोत्तरादिविदिक्षु क्रमेणैवनामका एवान्तरद्वीपा अष्टाविंशतिर्बोध्याः,

प्रकारके चार अन्तरद्वीपोंका यह वर्णन है। तात्पर्य ऐसा है कि पहले जो हिमवान् और शिखरी पर्वतके आठों छोर लवण समुद्रमें फैले हुवे कहे गये हैं, उनमें एक एक छोर पर ७-७ अन्तरद्वीप हैं, इस प्रकार कुल अन्तरद्वीप ५६ हैं। इनमें प्रथम और द्वितीय नम्बरके अन्तर द्वीपोंका यह वर्णन पूर्वोक्त प्रकारसे ऐसा किया गयाहै, इससे हम जानते हैं कि जिन द्वीपोंका जितना अन्तर है उतनाही उनका आयाम (लम्बाई) और विस्तार है। ऐसे सातवे नम्बरके जो चार अन्तरद्वीप हैं, उनका अन्तर नौसौ योजनका है, और उतनाही उनका आयाम और विस्तार है, इस तरह ये अन्तरद्वीप २८ हैं। यहां मनुष्य युग्मजात हैं, इनकी आयु पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण होती है तथा-८०० धनुष प्रमाण शारीरिक ऊँचाई इनकी होती है तथा ऐरवत क्षेत्रका विभाग करनेवाला शिखरी पर्वतकी विदिशाओंमें भी इसी नामके अन्तरद्वीप

રીતે બીજા નંબરના ચાર અંતરદ્વીપોનું આ વર્ણન થયું છે આ કથનનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—પહેલાં એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે હિમવાન્ અને શિખરી પર્વતના આઠે છેડા લવણ સમુદ્રમાં વિસ્તરેલા છે તે પ્રત્યેક છેડાપર સાત સાત અંતરદ્વીપ છે આ રીતે કુલ ૫૬ અંતરદ્વીપ છે તેમાંથી પહેલા અને બીજા નંબરના ચાર ચાર અંતરદ્વીપોનું વર્ણન તો ઉપર મુજબ સમજવું જોઈએ જે દ્વીપોનું જેટલું અંતર છે એટલો જ તેમનો આયામ અને વિષ્કંભ છે, આ વાત આગળ પણ પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે આ રીતે સાતમાં નંબરના જે ચાર અંતરદ્વીપો છે, તેમનું છઠ્ઠા નંબરના દ્વીપોથી ૯૦૦-૯૦૦ યોજનનું અંતર છે અને તેમની લંબાઈ-પહોળાઈ પણ ૯૦૦-૯૦૦ યોજનપ્રમાણ જ છે ક્ષુલ્લહિમવાનની વિદિશાઓમાં કુલ ૨૮ અંતરદ્વીપો છે ત્યાં યુગલિક વસે છે. તેમના શરીરની ઊંચાઈ ૮૦૦ યોજનપ્રમાણ હોય છે, અને તેમનું આયુષ્ય પલ્યોપમના અસંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ છે તથા ઐરવતક્ષેત્રના વિભાગ કરનારા શિખરી પર્વતની વિદિશાઓમાં પણ એ જ ક્રમે અને એ જ નામવાળા

अन्तरद्वीपस्फुटीकरणार्थं सङ्ग्रहगाथाः—

" चुल्लहिमवंतपुव्वावरेण विदिसासु सागरं तिसए।
गंतूणंतरदीवा, तिन्नि सए होंति विच्छिन्ना। १।
अउणावन्न नवसए, किंचूणे परिहि तेसिमे नामा।
एगूरुग आभासिय,–वेसाणी चेव नंगूली। २।
एएसिं दीवाणं, परओ चत्तारि जोयणसयाइं।
ओगाहूणं लवणं, सपडिदिसिं चउसयपमाणा। ३।
चत्तारंतरदीवा, हयगयगोकन्नसंकुलीकण्णा।
एवं पंचसयाइं, छसत्तअट्ठेव नव चेव। ४।
ओगाहिऊण लवणं, विक्खंभोगाहसरिसया भणिया।
चउरोचउरो दीवा, इमेहि णामेहिं णेयव्वा। ५।
आयंसगमेंढमुहा, अओमुहा गोमुहा य चउरेते।
अस्समुहा हत्थिमुहा, सीहमुहा चेव वग्घमुहा। ६।
तओ अ अस्सकन्ना, हत्थिकन्ना अ कन्नपाउरणा।
उक्कामुहमेहमुहा, विज्जुमुहा विज्जुदंता य। ७।
घणदंतलट्ठदंता, निगूढदंता य सुद्धदंता य।
वासहरे सिहरिंमिवि, एवं चिय अट्ठवीसावि। ८।
अंतरदीवेसु नरा, धणुसय अट्ठूसिया सुइया।
पालिंति मिहुणधम्मं, पल्लस्स असंखभागाऊ। ९।
चउसट्ठि पिट्ठिकरंडयाणि मणुयाणऽवच्चपालया।
अउणासीइ तु दिणा, चउत्थभत्तेण आहारो। १।" इति,

छाया—" क्षुल्लहिमवत्पूर्वापरयोर्विदिक्षु सागरं त्रिशतीम्।
गत्वाऽन्तरद्वीपास्त्रीणि शतानि भवन्ति विस्तीर्णाः। १।
एकोनपञ्चाशन्नवशतं किञ्चिदूनं परिधिस्तेषामिमानि नामानि।
एकोरुक आभाषिको विषाणी चैव लाङ्गूली। २।
एतेषां द्वीपानां परतश्चत्वारि योजनशतानि।
अवगाह्य लवणं सप्रतिदिक्षु चतुःशतप्रमाणाः। ३।

हैं और वे भी २८ हैं। अन्तरद्वीपोंको स्पष्ट करनेके लिये ये संग्रह-गाथाएं हैं। " चुल्लहिमवंत " इत्यादि १० ॥ सू० ६४ ॥

---

२८ અંતરદ્વીપો આવેલા છે અંતરદ્વીપોની સ્પષ્ટતા કરનારી સંગ્રહગાથા આ પ્રમાણે છે–" चुल्लहिमवंत " ઈત્યાદિ. ॥ સૂ. ૬૪ ॥

चत्वारोऽन्तरद्वीपा हयगजगोकर्णसष्कुलीकर्णाः ।
एवं पञ्चशतानि षट्शतानि नव चैव । ४ ।
अवगाह्य-लवणं विष्कम्भावगाहसदृशा भणिताः ।
चत्वारश्चत्वारो द्वीपा एभिर्नामभिर्ज्ञातव्याः । ५ ।
आदर्शकमेण्ढमुखा अयोमुखा गोमुखाश्च चत्वार एते ।
अश्वमुखा हस्तिमुखाः सिंहमुखाश्चैव व्याघ्रमुखाः । ६ ।
ततश्चाश्वकर्णा हस्तिकर्णाश्च कर्णप्रावरणाः ।
उल्कामुखमेघमुखा विद्युन्मुखा विद्युद्दन्ताश्च । ७ ।
घनदन्त-लष्टदन्ता निगूढदन्ताश्च शुद्धदन्ताश्च ।
वर्षधरे शिखरिण्यपि एवमेव महाविभागैरपि । ८ ।
अन्तरद्वीपेषु नरा धनुःशताष्टकोच्छ्रिताः सदा मुदिताः ।
पालयन्ति मिथुनधर्मं पल्यस्य असंख्येयभागायुषः । ९ ।
चतुःषष्टिपृष्ठकरण्डकानि मनुष्याणामपत्यपालनता ।
एकोनाशीतिं तु दिनानि चतुर्थभक्तेन आहारः ।१०।" इति सूत्र २७॥

अनन्तरसूत्रे जम्बूद्वीपमन्दरदक्षिणादि दिगाश्रयणेन लवणसमुद्रावगाहनया ऽन्तरद्वीपा उक्ताः सम्प्रति जम्बूद्वीपस्य बाह्यवेदिकामाश्रित्य लवणसमुद्रावगाहनया महापातालादीस्तत्स्थान् देवांश्च तथा लवणस्य प्रस्तुतत्वात्तमवभासिनश्चन्द्रांस्तु सावितः सूर्यांश्च, तस्य लवणसमुद्रस्य द्वाराणि द्वारस्थान् देवांश्च प्ररूपयितुमाह-

मूलम्—जम्बूदीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता एत्थ णं महइमहालया महालिंजरसंठाणसंठिया चत्तारि महा पायाला, पण्णत्ता, तं जहा—वलयामुहे १, केउए २, जूवए ३,

इस प्रकार अन्तरद्वीपोंका और अन्तरद्वीपस्थ मनुष्योंका वर्णन करके अब सूत्रकार जम्बूद्वीपकी बाह्यवेदिकाको लेकर लवण समुद्रको कहाँ तक उल्लंघन करके पातालकलश कहा है, इस बातका तथा पाताल-कलशस्थदेवोंका और लवणसमुद्रको प्रभासित करने वाले चन्द्रोंको

આ પ્રમાણે અન્તરદ્વીપોનું અને અન્તરદ્વીપસ્થ મનુષ્યોનું કથન પૂરું થયું હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે જમ્બૂદ્વીપની બાહ્યવેદિકાથી શરૂ કરીને લવણ સમુદ્રને કયાં સુધી ઓળંગવાથી પાતાળકલશ આવે છે તથા પાતાળ કલશસ્થ દેવોનું, લવણ સમુદ્રને પ્રકાશિત કરનારા ચન્દ્રોનું, અને તેમાં તપનારા

ईसरे४। एत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—काले१, महाकाले२, वेलंबे३, पभंजणे४।

जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्द बायालीसं २, जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चउण्हं वेलंधरनागराईणं चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता तं, जहा—गोथूभे१, उदयभासे२, संखे३, दगसीमे४। तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा—गोथूभे१, सिवए२, संखे ३, मणोसिलए ४।

जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं बायालीसं २ जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता अत्थ णं चउण्हं अणुवेलंधरणागराईणं चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—कक्कोडए१, विज्जुप्पभे२, केलासे३, अरुणप्पभे ४। तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तं जहा--कक्कोडए १, कद्दमए २, केलासे ३, अरुणप्पभे४। लवणे णं समुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। चत्तारि सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा चत्तारि कत्तियाओ जाव चत्तारि भरणीओ, चत्तारि अग्गी जाव चत्तारि जमा, चत्तारि अंगारा जाव चत्तारि भावकेऊ।

लवणस्स णं समुद्दस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए १, वेजयंते २, जयंते ३, अपराजिए ४। ते णं दारा चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइया चेव पवेसेणं पण्णत्ता।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिव सति–विजए १, वेजयंते २, जयंते ३, अपराजिए ४॥ सू०६५॥

छाया–जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य बाह्यात् वेदिकान्ताच्चतुर्दिशि लवणसमुद्रं पञ्चनवतिं २ योजनसहस्राणि अवगाह्य अत्र खलु महाविमहान्तो महालिञ्जरसंस्थानसंस्थिताश्चत्वारो महापातालाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–वडवामुखः १, केतुकः २, यूपकः ३, ईश्वरः ४। अत्र खलु चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा–कालः १, महाकालः २, वेलम्बः ३, प्रभञ्जनः ४,

जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य बाह्यात् वेदिकान्ताच्चतुर्दिशि लवणसमुद्रं द्विचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अवगाह्य अत्र खलु चतुर्णां वेलन्धरनागराजानां चत्वार आवासपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–गोस्तूपः १, उदकभासः २, शङ्खः ३, दकसीमा ४। तत्र खलु चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा–गोस्तूप १, शिवकः २, शङ्खः ३, मनःशिलकः ४,

जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य बाह्यात् वेदिकान्ताच्चतसृषु विदिक्षु लवणसमुद्रं द्विचत्वारिंशद् २ योजनसहस्राणि अवगाह्य अत्र खलु चतुर्णामनुवेलन्धरनागराजानां चत्वार आवासपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कर्कोटक १, विद्युत्प्रभ २, कैलासः ३, अरुणप्रभः ४। तत्र खलु चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति तद्यथा–कर्कोटकः १, कर्दमकः २, कैलास ३, अरुणप्रभः ४।

लवणे खलु समुद्रे चत्वारश्चन्द्राः प्राभासन्त वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते वा। चत्वारः सूर्या अतपन् वा तपन्ति वा तप्स्यन्ति वा । चतस्रः कृत्तिकाः यावत् चतस्रो भरण्यः, चत्वारोऽग्नयः यावत् चत्वारो यमाः, चत्वारोऽङ्गाराः यावत् चत्वारो भावकेतवः ।

लवणस्य खलु समुद्रस्य चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–विजय १, वैजयन्तं २, जयन्तम् ३, अपराजितम् ४, तानि खलु द्वाराणि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण, तावन्त्येव प्रवेशेन प्रज्ञप्तानि । तत्र खलु चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति–विजय १, वैजयन्तः २, जयन्तः ३, अपराजितः ४ ॥ सू० ६५ ॥

तापित करनेवाले सूर्यों का लवण समुद्रके द्वारोंका और द्वारस्थदेवोंका प्ररूपण करते हैं । " जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ " इत्यादि—

सूर्योनुं, लवण समुद्रनां द्वारोनुं अने द्वारस्थ देवोनुं पण हवे सूत्रकार निरूपण करे छे—' जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ " इत्यादि—

टीका—' जंबूदीवस्स णं " इत्यादि-स्पष्टम्,

" एत्थ णं " इति-अत्र-मध्यमेषु दशसु योजनसहस्रेषु चत्वारः-चतुःसंख्यकाः महातिमहान्तः-महाविशालाः महाऽलिञ्जरसंस्थानसंस्थिताः-महांश्चासौ अलिञ्जरो-जलघटो महाऽलिञ्जरो=बृहज्जलघटः, तस्य संस्थानेन-आकारेण संस्थिताः महाऽलिञ्जरसंस्थानसंस्थिताः=महाजलकुम्भाऽऽकाराः महापातालाः – पातालवदगाधत्वात् पातालव्यवस्थितत्वाद्वा पातालाः, महान्तश्च ते पातालाश्चेति तथा, पातालकलशाः चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-वडवामुखः १, केतुकः २, यूपकः ३, ईश्वरः ४, श्चेति। एते क्रमेण पूर्वादिदिक्चतुष्टये बोध्याः। मुखे-मूले चैते दशयोजनसहस्राणि विस्तीर्णाः, मध्ये च लक्षयोजनपरिमाणाः, एषामुपरितनभागे केवलं जलं, मध्यभागे पवनजलोभयम्, मूले वायुरेव, एतेषु वायुकुमाराः कालप्रभृतयो देवा निवसन्ति, अत्र गाथाः—

" पणनउइ सहस्साइं, ओगाहित्ताण चउदिसिं लवणं।
चउरोऽलिंजरसंठाणसंठिया होंति पायाला। १।

टीकार्थ—जम्बूद्वीप नामके द्वीपकी बाह्यवेदिकान्तसे चारों दिशाओंमें लवण समुद्रको ९५-९५ हजार योजन प्रमाण लांघकर आगत स्थानपर अधिकाधिक चार पातालकलश हैं, ये पातालकलश एक बहुविस्तृत घडेके जैसे आकारवाले हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—वडवामुख १, केतुक २, यूपक ३ और ईश्वर ४। ये चार पातालकलश क्रमशः पूर्वादि चार दिशाओंमें हैं। इनका मुख और मूल भागका विस्तार दस हजार योजनका है, मध्य भागका विस्तार एक लाख योजनका है। इनके ऊपरके भागमें केवल जल है, मध्य भाग में पवन और जल ये दोनों हैं। मूल भागमें केवल वायुही हैं। इनमें काल प्रभृति वायुकुमारदेव रहते हैं। उक्त भी है—" पणनउइ सहस्साइं " इत्यादि.

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપની બાહ્યવેદિકાના અન્ત ભાગથી ચારે દિશાઓમાં લવણ સમુદ્રને ૯૫-૯૫ હજાર યોજનપ્રમાણ ઉલ્લંઘિત (પાર) કરવાથી જે સ્થાન આવે છે. તે સ્થાનપર ચાર ખૂબ જ વિશાળ પાતળકળશ છે તેમનો આકાર વિસ્તૃત ઘડાના આકાર જેવો છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) વડવામુખ, (૨) કેતુક, (૩) યૂપક અને (૪) ઈશ્વર તે ચાર કળશ અનુક્રમે પૂર્વાદિ ચાર દિશાઓમાં છે. તેમના મુખ અને મૂળભાગનો વિસ્તાર દશ હજાર યોજનનો છે, અને મધ્યભાગનો વિસ્તાર એક લાખ યોજનનો છે. તેમના મૂળભાગમાં માત્ર વાયુ જ છે. તેમાં કાલપ્રભૃતિ વાયુકુમાર દેવોનો નિવાસ છે, કહ્યું પણ છે કે " પણનઉઇ સહસ્સાઇં " ઇત્યાદિ—

वळयामुह केऊए, जूयग तह ईसरे य बोद्धव्वे ।
सव्ववइरामया णे कुड्डा एएसि दससइया । २ ।
जोयणसहस्सदसग मूले उवरिं च होंति विस्थिण्णा ।
मज्झे य सयसहस्सं, तत्तियमत्त च ओगाहा । ३ ।
पलिओवमट्ठिइया, एएसिं अहिवई सुरा इणमो ।
काले य महाकाले, वेलव पभंजणे चेव । ४ ।
अन्नेवि य पायाला, खुड्डालिंजरसंठिया लवणे ।
अट्ठसया चुलसीया, सच सहस्सा य सव्वेवि । ५ ।
जोयणसयवित्थिण्णा मूलुवरिं दस सयाणि मज्झमि ।
ओगाढा य सहस्सं, दस जोयणिया य सिं कुड्डा । ६ ।
पायालाण विभागा, सव्वाणवि तिन्नि तिन्नि बोद्धव्वा ।
हेट्ठिमभागे वाऊ, मज्झे वाऊ य उदयं च । ७ ।
उवरिं उदग भणियं, पढमगबीएसु वाउ संखुभिओ ।
वामे उदगं तेण य, परिवड्ढइ जलनिही खुहिओ । ८ ।
परिसंठियमि पवणे, पुणरवि उदय तमेव संठाणं ।
वच्चेइ तेण उदही परिहायइ अणुक्कमेणेव । ९ । " इति,

छाया—" पञ्चनवति सहस्राणि अवगाह्य चतुर्दिशि लवणम् ।
चत्वारोऽलिञ्जरसंस्थानसंस्थिताः भवन्ति पातालाः । १ ।
वडवामुखः केतुकः यूपकस्तथा ईश्वरश्च बोद्धव्यः ।
सर्वे वज्रमयाः खलु कुड्यानि एतेषां दशशतानि । २ ।
योजनसहस्रदशकं मूले उपरि च भवन्ति विस्तीर्णाः ।
मध्ये च शतसहस्रं तावन्मात्रं चावगाढाः । ३ ।
पल्योपमस्थितिका एतेषामधिपतयः सुरा इमे ।
कालश्च महाकालो वेलम्बः प्रभञ्जनश्चैव । ४ ।
अन्येऽपि च पातालाः क्षुद्रालिञ्जरसंस्थिता लवणे ।
अष्टशतानि चतुरशीति सप्त सहस्राणि च सर्वेऽपि । ५ ।
योजनशतविस्तीर्णा मूलोपरि दश शतानि मध्ये ।
अवगाढाश्च सहस्रं दश योजनानि चैषां कुड्यानि । ६ ।
पातालानां विभागाः सर्वेषामपि त्रयस्त्रयो बोध्याः ।
अधस्तनभागे वायुः मध्ये वायुश्च उदकं च । ७ ।
उपरि उदकं भणितं प्रथमक-द्वितीययोः वायुः संक्षुभितः ।
वमति उदकं तेन च परिवर्धते जलनिधिः क्षुब्धः । ८ ।

परिसंस्थिते पवने पुनरपि उदकं तदेव संस्थानम् ।
व्रजति तेन उदधिः परिहीयतेऽनुक्रमेणैवम् ।९।" इति,

आसां गाथानामयमर्थः—

लवणसमुद्रं चतुर्दिशि पञ्चनवतिसहस्राणि पञ्चनवतिसहस्राणि योजनानि अवगाह्य मध्ये अलिञ्जरसंस्थानसंस्थिताश्चत्वारः पातालाः=पातालकलशा भवन्ति ।१। एतेषां पातालकलशानां नामानि वडवामुखः केतुकः यूपक ईश्वरश्चेति बोध्यानि। एते च क्रमेण पूर्वादिदिक्चतुष्टये भवन्ति । एते सर्वेऽपि वज्रमया बोध्याः । एतेषां कुड्यानि=भित्तयश्च दशशतयोजनप्रमाणानि भवन्ति ॥ २ ॥ एते पातालकलशा मूलभागे उपरिभागे च दशसहस्रयोजनानि विस्तीर्णा भवन्ति, मध्यभागे तु शतसहस्रयोजनानि=लक्षयोजनानि विस्तीर्णा भवन्ति । तथा चैते लक्षयोजनानि अवगाढाः लक्षयोजनावगाढाः समतलादधोभागे भवन्ति ।३। एतेषां वडवामुखादीनाम् अधिपतिसुराः पल्योपमस्थितिका भवन्ति । ते चेमे बोध्याः, तथाहि—कालो १ महाकालो २ वेलम्बः ३ प्रभञ्जनः ४, इति ॥ ४ ॥ पूर्वोक्ताः पातालकलशा

इस गाथाओंका अर्थ इस प्रकारसे है—चारों दिशाओंकी ओर लवण समुद्रमें ९५–९५ हजार योजन आगे जाकर बीचमें घटके जैसे आकारवाले चार पातालकलश हैं। इनके नाम—वलयमुख, केतुक, यूपक, ईश्वर हैं, ये क्रमशः पूर्वादि चार दिशाओंमें हैं। ये सब वज्रमय हैं, इनकी दिवालें एक हजार योजनप्रमाण हैं। ये पातालकलश मूल भागमें और ऊपरके भागमें दश दश हजार योजन विस्तृत हैं। मध्यभागमें इनका विस्तार एक २ लाख योजनका है, और अवगाहना भी एक लाख २ योजन है। इन कलशों के अधिपति देव १–१ पल्योपम की स्थितिवाले होते हैं। इन देवोंके नाम—काल, महाकाल, वेलम्ब, और प्रभञ्जन हैं, ये पूर्वोक्त

આ ગાથાઓનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—જંબૂદ્વીપના બાહ્યવેદિકાન્તથી ચારે દિશા તરફ લવણ સમુદ્રમાં ૯૫–૯૫ હજાર યોજનનું અંતર કાપવાથી લવણ સમુદ્રની વચ્ચે ઘડાના જેવા આકારના ચાર પાતાળકળશ આવે છે. તેમનાં નામ—વલયમુખ, કેતુક, યૂપક અને ઇશ્વર છે. તેઓ ક્રમશઃ પૂર્વ, દક્ષિણ, પશ્ચિમ અને ઉત્તરમા છે તેઓ વજ્રનિર્મિત છે. તેમની દિવાલો એક હજાર યોજનપ્રમાણ ઊંચી છે. તે પાતાળકળશોના મૂળભાગ (તળિયું) અને મુખભાગનો વિસ્તાર ૧૦–૧૦ હજાર યોજનનો છે અને મધ્યભાગનો વિસ્તાર એક લાખ યોજનનો છે, અને અવગાહના પણ એક એક લાખ યોજનની છે તે કળશોના અધિપતિ દેવોનાં નામ કાળ, મહાકાળ, વેલમ્બ અને પ્રભંજન છે. તેમની સ્થિતિ એક પલ્યોપમની છે. આ પાતાળ કળશો ખૂબ જ વિસ્તાર-

महालिञ्जरसंस्थानसंस्थिताः । ततोऽन्येऽपि क्षुद्रालिञ्जरसंस्थानसंस्थिताः पातालकलशा लवणसमुद्रे बोध्याः । एते सर्वे तु सप्तसहस्राणि अष्टशतानि चतुरशीतिश्च संख्यया बोध्याः ॥ ५ ॥ मूलभागे उपरिभागे चैते शतयोजनानि विस्तीर्णाः, मध्ये च सहस्रयोजनानि विस्तीर्णाः, अवगाढाश्चैते सहस्रयोजनानि । दशयोजनप्रमाणानि तेषां कुड्यानि विज्ञेयानि ॥ ६ ॥ सर्वेषां पातालानां त्रयस्त्रयो विभागा बोद्धव्याः । तत्राधस्तने भागे वायुस्तिष्ठति, मध्ये वायुरुदकं च तिष्ठति । ॥७॥ उपरिभागे पुनरुदकं तिष्ठति । अथ प्रथम-द्वितीयभागयोः संक्षुभितो वायुरुदकं वमति । तेनोदकवमनेन च क्षुब्धो जलनिधिः परिवर्धते=वृद्धिं याति ॥८॥ तत्र पवने परिसंस्थिते=क्षोभावस्थां परित्यज्य पूर्वस्थितिं गते सति उदकमपि पुनः तदेव संस्थानं=स्वपूर्वस्थितिं व्रजति=गच्छति । तेन हेतुना उदधिः एवम् अनुक्रमेण परिहीयते=हानिं गच्छतीति ॥ ९ ॥

पातालकलश विशाल आकारवाले हैं । यहां इनसे अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे कलशके जैसे आकारवाले पातालकलश हैं । ये सब ७ हजार ८ सौ चौरासी हैं । मूल भागमें और ऊपरके भागमें सौ योजन विस्तार वाले ये हैं । मध्यमें एक हजार योजन विस्तार वाले हैं ।

इनकी अवगाहना एक हजार योजनकी है, तथा दश योजन प्रमाणकी दीवालें हैं । समस्त पातालोंके तीन तीन विभाग हैं । नीचेके भागमें वायु रहता है, मध्यभागमें वायु और उदक दोनों रहते हैं, और ऊपरके भागमें उदक रहता है । प्रथम द्वितीय भाग में संक्षुभित वायु उदकको उछालता है, इस उदकके उछलनेसे क्षुब्ध जलधि वृद्धिको प्राप्त होता है, तथा जब वायु अपनी क्षुब्ध अवस्थाका परित्यागकर पूर्व

વાળા છે. ત્યાં આ ચાર મહાકાલશો ઉપરાંત બીજા પણ ૭૮૦૦ નાના મોટા પાતાલકલશો છે તેમના મૂળ ભાગ અને મુખભાગનો વિસ્તાર ૧૦૦૦ યોજનનો છે તેમની અવગાહના પણ ૧૦૦૦ યોજનની છે અને તેમની દીવાલ ૧૦ યોજન પ્રમાણ ઊંચી છે બધાં પાતાલકલશોના ત્રણ-ત્રણ વિભાગ પડે છે નીચેના ભાગમાં વાયુ રહે છે વચ્ચેના ભાગમાં વાયુ અને પાણી રહે છ નીચેના અને મધ્યના ભાગમાં રહેલો ક્ષુબ્ધ વાયુ પાણીને ઉછાળે છે, આ રીતે પાણી ઉછળવાથી ક્ષુબ્ધ થયેલા સાગરના પાણીની વૃદ્ધિ થાય છે, અને જ્યારે વાયુ ક્ષુબ્ધાવસ્થાનો પરિત્યાગ કરીને પોતાની પૂર્વસ્થિતિમાં આવી જાય છે,

"एत्थ णं चउण्हं वेलंधरनागराईणं" इत्यादि—अत्र खलु चतुर्णां वेलन्धर-नागराजानां—वेलां—लवणसमुद्रशिखामन्तः प्रविशन्तीं बहिर्वा निःसरन्तीमग्रशिखां च धारयन्तीति वेलन्धराः 'संज्ञात्वादयं साधुः, ते च ते नागराजाश्च वेलन्धर-नागराजाः=वेलन्धरनागकुमारा इत्यर्थः, तेषाम् आवासपर्वताः—निवासस्थानरूपाः पर्वताः चत्वारः प्रज्ञप्ताः, ते यथा—गोस्तूपः १, उदकभासः २, शङ्खः ३, उदक-सीमा ४, एते क्रमेण पूर्वादिदिक्चतुष्टये बोध्याः। तत्र क्रमेण गोस्तूप-शिवक-शङ्ख मनः शिलक नामानो महर्द्धिका यावत्पल्योपमस्थितिकाश्चत्वारो देवा वसन्तीति।

स्थितिमें आजाता है—तब जल भी अपनी पूर्वस्थितिमें आजाता है, इस कारण उदधिमें ज्वार—भाटा शान्त होजाता है ॥ १ । ९ ॥

"एत्थणं चउण्हं" इत्यादि—

लवण समुद्रकी शिखाको, भीतर—बाहिर निकलती हुई अग्रशि-खाको जो धारण करते हैं वे वेलन्धर हैं। यहां-इस व्युत्पत्तिके अनुसार "वेलान्धर" ऐसा पद होना चाहिये था पर ऐसा न होकर जो वेलन्धर ऐसा प्रयोग हुवा है उसका कारण इसका शब्दहोना है। ये वेलन्धर नागराज हैं। ऐसे इन वेलन्धर नागकुमारोंके आवास पर्वत निवास स्थानरूप पर्वत चार कहे गये हैं, जैसे—गोस्तूप १, उदकभास २, शङ्ख ३ और उदकसीमा४ ये चारों आवास पर्वत क्रमशः पूर्वादि चार दिशामें हैं इन आवास पर्वतोंपर क्रमशः—गोस्तूप, शिवक, शङ्ख और मनःशि-लक, इन नामोंके चार महर्द्धिक यावत् पल्योपम स्थितिवाले देव रहते

ત્યારે પાણી પણ પોતાની પૂર્વસ્થિતિમાં આવી જાય છે. તે કારણે સમુદ્રમાં આવેલી ભરતી શમી જાય છે. ॥ સૂ ૧ થી ૯ ।

"એત્થણં ચઉણ્હં" ઈત્યાદિ—

લવણ સમુદ્રની અંદર અને બહાર નીકળતી એવી વેલાને (અગ્રશિખાને) જેઓ ધારણ કરે છે, તેમને વેલન્ધર કહે છે. આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર "વેલાન્ધર" પદ બનવું જોઈએ, પણ એવું ન થતાં જે 'વેલન્ધર' પદ બન્યું છે, તેનું કારણ એ છે કે તેમનું નામ જ વેલન્ધર છે

તે વેલન્ધર નાગરાજ છે એવાં તે વેલન્ધર નાગકુમારોના નિવાસસ્થાન રૂપ આવાસ પર્વતો ચાર કહ્યા છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ગોસ્તૂપ, (૨) ઉદકભાસ, (૩) શંખ અને (૪) ઉદકસીમા તે ચારે આવાસ પર્વતો અનુક્રમે પૂર્વાદિ દિશાઓમાં છે તે આવાસપર્વતો પર અનુક્રમે ગોસ્તૂપ, શિવક, શંખ અને મન શિલક નામના ચાર મહર્દ્ધિક આદિ વિશેષણોવાળા અને એક પલ્યોપમની સ્થિતિવાળા દેવો રહે છે.

महाकालिञ्जरसंस्थानसंस्थिताः । ततोऽन्येऽपि क्षुद्रालिञ्जरसंस्थानसंस्थिताः पातालकलशा लवणसमुद्रे बोध्याः । एते सर्वे तु सप्तसहस्राणि अष्टशतानि चतुरशीतिश्च संख्यया बोध्याः ॥ ५ ॥ मूलभागे उपरिभागे चैते शतयोजनानि विस्तीर्णाः, मध्ये च दशशतयोजनानि विस्तीर्णाः, अवगाहे च सहस्रयोजनानि । दशयोजनप्रमाणानि त्वेषां कुड्यानि विज्ञेयानि ॥ ६ ॥ सर्वेषां पातालानां प्रत्येकं त्रिभागा बोद्धव्याः । तत्राधस्तने भागे वायुस्तिष्ठति, मध्ये वायुरुदकं च तिष्ठति ॥७॥ उपरिभागे पुनरुदकं तिष्ठति । तत्र प्रथम-द्वितीयभागयोः संक्षुभितो वायुरुदकं वमति । तेनोदकवमनेन च क्षुब्धो जलनिधिः परिवर्ततेऽवृद्धिं याति ॥८॥ तत्र पवने परिसंस्थिते=स्वाभाविक्यां परित्यज्य पूर्वस्थितिं गते सति उदकमपि पुन तदेव तत्स्थाने=स्वपूर्वस्थितिं प्रगति=गच्छति । येन हेतुना उदधि क्रमम् अनुक्रमेण परिहीयते=हानिं गच्छतीति ॥ ९ ॥

पातालकलश विशाल आकारवाले हैं । यहां इनसे अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे कलशके जैसे आकारवाले पातालकलश हैं। ये सब ७ हजार ८ सौ चौरासी हैं । मूल भागमें और ऊपरके भागमें सौ योजन विस्तार वाले ये हैं । मध्यमें एक हजार योजन विस्तार वाले हैं ।

इनकी अवगाहना एक हजार योजनकी है, तथा दश योजन प्रमाण भींत वाले हैं । समस्त पातालोंके तीन तीन विभाग हैं । नीचेके भागमें वायु रहता है, मध्यभागमें वायु और उदक दोनों रहते हैं, और ऊपरके भागमें उदक रहता है । प्रथम द्वितीय भाग में संक्षुभित वायु उदकका उद्वमन करता है, इस उदकके उद्वमनसे क्षुब्ध जलनिधि वृद्धिको प्राप्त होता है, तथा जब वायु अपनी क्षुब्ध अवस्थाका परित्यागकर पूर्व

પાતાલ કળશો આ પ્રકાર મહાકાય છે [illegible] ૭૮૮૪ [illegible] કળશો છે તેમના મૂળ ભાગ અને ઉપરના ભાગનો વિસ્તાર ૧૦૦૦ યોજનનો છે તેમની અવગાહના પણ ૧૦૦૦ યોજનની છે અને તેમની દીવાલ ૧૦ યોજન પ્રમાણ જાડી છે તથા પાતાલ કળશોના ત્રણ ત્રણ વિભાગ છે [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पुव्वाइअणुक्कमसो, गोथुभदगभाससंखदगसीमा ।
गोथुम-सिवए-संखे मणोसिले नागरायाणो । ५ ।

छाया—" दशयोजनसहस्राणि लवणशिखा चक्रवालतो विस्तीर्णा ।
षोडशसहस्रोच्चा सहस्रमेकं त्ववगाढाः । १ ।
देशोनमर्द्धयोजनं लवणशिखोपरि दकं तु कालद्विके ।
अतिरेकमतिरेकं परिवर्धते हीयते वाऽपि । २ ।
आभ्यन्तरिकीं वेलां धारयन्ति लवणोदधेः नागानाम् ।
द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वासप्ततिसहस्राणि बाह्याम् । ३ ।
षष्टिर्नागसहस्राणि धारयन्त्यग्रोदकं समुद्रस्य ।
वेलन्धराऽऽवासा लवणे च चतुर्दिशि चत्वारः । ४ ।
पूर्वाद्यनुक्रमशः गोस्तूप-दकभास-शङ्ख-दकसीमाः ।
गोस्तूपः शिवकः शङ्खो मनःशिलो नागराजाः । ५ । " इति,

अयमर्थः–लवणशिखा–लवणसमुद्रस्य अग्रभागः चक्रवालतो मण्डलाकारेण दशसहस्रयोजनानि विस्तीर्णा, षोडशसहस्रयोजनोच्चा, समभूमिभागापेक्षया, एक-सहस्रयोजनप्रमाणाऽवगाढा च बोध्या । १ । लवणशिखाया उपरि कालद्विके= दिवसे रात्रौ च देशोनार्द्धयोजनप्रमाणं दकं–जलम् अतिरेकम् अतिरेकम्=अधिक-मधिकं परिवर्धते हीयतेऽपि वा । २ । नागकुमाराणां द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि लव-णोदधेः आभ्यन्तरिकीम्=अन्तर्विशन्तीं वेलां धारयन्ति, तथा–तेषां नागकुमा-राणां द्विसप्तति सहस्राणि बाह्यां=बहिर्गच्छन्तीं वेलां धारयन्ति । ३ । षष्टिसहस्र-संख्यका नागकुमाराः समुद्रस्य=लवणसमुद्रस्य अग्रोदकं=शिखाग्रं धारयन्ति । तत्र

योजन ऊंचा है तथा समतलसे एक हजार योजन अवगाहनवाला है। जलशि-खाके ऊपर दिन रात कुछ कम अर्धयोजन प्रमाणसे जल बढता घटता रहता है । लवणोदधिकी आभ्यन्तर वेलाको ४२ हजार नागकुमार और बाह्य वेलाको ७२ हजार नागकुमार धारण करते हैं, एवं ६० हजार नाग-कुमार लवणसमुद्र शिखाके अग्रभागको धारण करते हैं । उस लवण

મંડલાકારે દસ હજાર યોજનની છે, ૧૬ હજાર યોજન ઊંચી છે, તથા સમ-તલથી હજાર યોજનની અવગાહનાવાળી છે જલશિખા પર (સપાટી પર) દિવસે અને રાત્રે અર્ધયોજન કરતાં કંઈક ન્યૂન પ્રમાણમાં પાણીની સપાટીમાં વૃદ્ધિ અને હાનિ થતી રહે છે

લવણ-સમુદ્રની આભ્યન્તર વેલાને (પાણીની વૃદ્ધિને) ૪૨ હજાર નાગકુમારો અને બાહ્યવેલાને ૭૨ હજાર નાગકુમારો ધારણ કરે છે, અને ૬૦ હજાર નાગકુમારો લવણસમુદ્ર શિખાના (વેલાને) અગ્રભાગને ધારણ કરે

"जम्बूद्वीपस्स णं" इत्यादि—स्पष्टम्, नवरं-विदिसु-ऐशान्यादिकोणेषु अनुवेलन्धरनागराजानां-वेलन्धराणां पश्चात्स्थायिनोऽनुनायकत्वेन ये सन्ति तेऽनुवेलन्धराः, ते च ते नागराजाश्च, तथाभूतानाम्, वेलन्धरवक्तव्यतागाथाः—

"दसजोयणसहस्सा, लवणसिहा चक्कवालओ रुंदा।
सोलससहस्सउच्चा, सहस्समेगं तु ओगाढा। १।
देसूणमद्धजोयण, लवणसिहोवरि दगं तु कालदुगे।
अइरेग अइरेगं, परिवड्ढइ हायए वावि। २।
अब्भिंतरियं वेलं, धरेति लवणोदहिस्स नागाणं।
बायालीससहस्सा, दुसयरि सहस्स बाहिरियं। ३।"
सट्ठि नागसहस्सा, धरिंति अग्गोदगं समुद्दस्स।
वेलंधरआवासा, लवणे य चउद्दिसिं चउरो। ४।

हैं। 'जम्बुद्दीवस्स णं" इत्यादि स्पष्ट है, अर्थात् जम्बूद्वीपकी पाद्मवेदिकाके अन्तसे चारों विदिशाओंमें ४२-४२ हजार योजन लवणसमुद्रको उल्लंघन करके आगत स्थानपर चार अनुवेलन्धर नागराजोंके कर्कोटक१ विद्युत्प्रभ २, कैलास ३ और अरुणप्रभ ४ नामके चार आवास पर्वत हैं। इनमें चार महर्द्धिकदेव यावत् २ पल्योपमकी स्थितिवाले रहते हैं। उनके नाम इस प्रकारसे हैं—कर्कोटक १ कर्दमक २, कैलास ३, और अरुणप्रभ ४-ये अनुवेलन्धर नागराज वेलन्धरनागराजों के पीछे रहते हैं इसलिये अनुनायकके रूपमें होनेके कारण अनुवेलन्धर कहे गये हैं। वेलन्धर वक्तव्यता गाथाएं यों हैं—

"दस जोयणसहस्सा" आदि इन गाथाओंका अर्थ—लवणसमुद्रका अग्रभाग मण्डलाकारसे दस हजार योजनका विस्तारवाला है, १६ हजार

"जंबुद्दीवस्स णं" ઇત્યાદિ—જંબૂદ્વીપની બાહ્યવેદિકાના અન્તભાગથી ચારે વિદિશાઓમાં ૪૨-૪૨ હજાર યોજનપ્રમાણ અંતર લવણ સમુદ્રમાં ઉલ્લંઘન વાથી જે સ્થાન આવે છે ત્યાં ચાર અનુવેલંધર નાગરાજોના (૧) કર્કોટક, (૨) વિદ્યુત્પ્રભ, (૩) કૈલાસ અને (૪) અરુણપ્રભ નામના ચાર આવાસ પર્વતો છે તેમાં એક પલ્યોપમની સ્થિતિવાળા અને મહર્દ્ધિક આદિ કર્કોટક કર્દમક, કૈલાસ અને અરુણપ્રભ નામના ચાર દેવો નિવાસ કરે છે અનુનાયક હોવાને કારણે જ અનુવેલન્ધર નાગરાજો વેલન્ધર નાગરાજોની પાછળ રહે છે

વેલંધરનું પ્રતિપાદન કરતી ગાથાઓ આ પ્રમાણે છે—'દસ જોયણ સહસ્સા" ઇત્યાદિ તેમનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—લવણ સમુદ્રની અગ્રભાગ

विद्युत्प्रभ-कैलासाऽरुणप्रभनामानश्चत्वारोऽनुवेलन्धरावासाः सन्ति ।१। तेषु क्रमेण कर्कोटक-कर्दमक-कैलासाऽरुणप्रभनामानश्चत्वारो नागराजा निवसन्ति। एते सर्वेऽप्यावासा लवणसमुद्रे द्विचत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानि गत्वा सन्ति ।२। तत्र चैते चत्वारि योजनशतानि त्रिंशतं क्रोशांश्चाभिव्याप्य भूमिम् उद्गताः= भूमौ व्यवस्थिताः। तथा-ते सर्वे एकविंशत्यधिकसप्तदशशतयोजनानि उच्छ्रिताः= उच्चा बोध्याः। ३। इति।

" लवणे समुद्दे णं " इत्यदि—लवणे समुद्रे चत्वारश्चन्द्राः प्राभासन्त वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते। तथा-लवणसमुद्रे चत्वारः सूर्या अतपन् वा तपन्ति वा तप्स्यन्ति वा, चन्द्राणां शीतलकिरणत्वेन सौम्यदीप्तिकत्वाद् वस्तुप्रभासनं प्रोक्तं सूर्याणां तु प्रचण्डकिरणत्वान्नसौम्यदीप्तिकत्वमिति तेषां न तदुक्तम्,

चन्द्राणां चतुष्ट्वे तत्परिवारस्यापि नक्षत्रादेश्चतुष्ट्वमेवेत्याह-चत्तारि कत्तियाओ " इत्यादि-चतस्रः कृत्तिकाः, अत्र चतुष्ट्वं च नक्षत्रापेक्षया नतु तारकापे-

---

आदिविदिशाओंमें क्रमसे कर्कोटक, विद्युत्प्रभ, कैलास, अरुणप्रभ ये अनुवेलन्धर आवास हैं, इनमें कर्कोटक १, कर्दम २, कैलास ३, अरुणप्रभ ४ नामा चार नागराज रहतेहैं। ये आवास पर्वत लवण समुद्रमें ४२ हजार योजन जा करके हैं। ये ४०० योजन और ३० कोशतक भूमिको घेर कर स्थित हैं। १७२१ योजन ऊंचे हैं। लवण समुद्रमें चार चन्द्रमा हैं, वे लवण समुद्रमें प्रकाशित हुवे हैं होते है और होंगे।

तथा-चार सूर्य वहां तपें है अब भी तपतेहैं और आगे आगे तपेंगे। चन्द्र शीतल, और सूर्यप्रखर किरणेवाले होते हैं। इसलिये यहां वे चन्द्र वस्तुका प्रकाशन करते हैं, ऐसा कहा है तथा-सूर्य प्रचण्ड किरणके कारण तपते हैं ऐसा कहा गया है। चन्द्र चतुष्टयके परिवार नक्षत्रादि भी यहां चार रूपमें हैं, इसी बातको सूत्रकारने " चत्तारि कत्तियाओ "

લવણ સમુદ્રમા ઇશાન આદિ વિદિશાઓમાં અનુક્રમે કર્કોટક, વિદ્યુત્પ્રભ, કૈલાસ અને અરુણપ્રભ નામના નાગરાજ રહે છે. તે આવાસ પર્વતો લવણ સમુદ્રમાં ૪૨ હજાર યોજન દૂર જવાથી આવે છે. તેઓ ૪૦૦ યોજન અને ૩૦ કોસ જેટલી ભૂમિને ઘેરીને ઊભા છે તેમની ઊંચાઇ ૧૭૨૧ યોજન છે.

લવણસમુદ્રમાં ચાર ચન્દ્રમા છે તેઓ ભૂતકાળમાં તેને પ્રકાશ દેતા હતા, વર્તમાનમાં પણ દે છે અને ભવિષ્યમાં પણ દેશે. ત્યાં ચાર સૂર્ય તપતાં હતાં, તપે છે અને તપશે ચન્દ્ર શીતલ કિરણોવાળો અને સૂર્ય ઉષ્ણ કિરણોવાળો હોય છે. તેથી અહીં એવું કહ્યુ છે કે ચન્દ્રો પ્રકાશ આપે છે અને સૂર્યો પ્રચંડ કિરણોને કારણે તાપ આપે છે. ચાર ચન્દ્રના પરિવાર રૂપ નક્ષત્રાદિ

लवणसमुद्रे चतुर्दिक्षु चत्वारो वेलन्धराऽऽवासाः सन्ति । ४ । ते हि पूर्वाद्यनुक्रमशः=पूर्वादिदिगनुक्रमेण गोस्तूप-दकभास - शङ्ख - दकसीमनामानो बोध्याः । तेषु क्रमेण गोस्तूप शिवक शङ्ख मनःशिलनामानश्चत्वारो वेलन्धरराजा वसन्तीति॥५॥

" जंबुद्दीवस्स णं ' इत्यादि—स्पष्टम् । नवरं विदिक्षु=ऐशान्यादिकोणेषु अनुवेलन्धरनागराजानः=वेलन्धराणां पश्चात्स्थायिनोऽनुनायकत्वेन ये सन्ति तेऽनुवेलन्धरा, ते च ते नागराजाश्च तेषां तथाभूतानामिति ॥

अनुवेलन्धरनागराजवक्तव्यतागाथास्तु—

" अणुवेलंधरवासा, लवणे विदिसासु संठिया चउरो ।
ककोडे विज्जुप्पभे, केलासेऽरुणप्पभ चेव । १ ।
ककोड य कद्दमए, केलासऽरुणप्पभे य रायाणो ।
बायालीससहस्से, गतु उदहिंमि सव्वे वि । २ ।
चत्तारि जोयणसए, तीसे कोसे य उग्गया भूमिं ।
सत्तरसजोयणसए, इगवीसे ऊसिया सव्व । ३ ।"

छाया—" अनुवेलन्धरवासा लवणे विदिक्षु संस्थिताश्चत्वारः ।
कर्कोटो विद्युत्प्रभः कैलासोऽरुणप्रभश्चैव । १ ।
कर्कोटकः कर्दमकः कैलासोऽरुणप्रभश्च राजानः ।
द्विचत्वारिंशत् सहस्राणि गत्वा उदधौ सर्वेऽपि । २ ।
चत्वारि योजनशतानि त्रिंशत् क्रोशांश्च उद्गताभूमिम् ।
सप्तदश योजनशतानि एकविंशत्युच्छ्रिताः सर्वे ।३। " इति

अयमर्थः—लवणसमुद्रे विदिक्षु=ऐशान्यादिषु क्रमशः संस्थिताः कर्कोटक-

---

समुद्रमें चारों दिशाओंमें पूर्वादि क्रमसे चार वेलन्धरावास गोस्तूप १, दकभास २ शङ्ख ३, दकसीम ४ हैं, जिनमें-गोस्तूप, शिवक, शङ्ख मन शिल चार नामके वेलन्धरराज रहते हैं-५ ।

अनुवेलन्धर नागराज वक्तव्यता विषयिणी गाथाएं—" अणुवेलन्धरवासा " इत्यादि इन गाथाओंके अर्थ—लवण समुद्रमें ईशान

છે આ લવણ સમુદ્રની ચારે દિશાઓમાં પૂર્વાદિ ક્રમથી ચાર વેલન્ધરાવાસ આવેલા છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) ગોસ્તૂપ (૨) દકભાસ, (૩) શંખ અને (૪) દકસીમ. તેમાં અનુક્રમે ગોસ્તૂપ શિવક શંખ અને મનઃશિલ નામના વેલન્ધરરાજ નિવાસ કરે છે અનુવેલન્ધર નાગરાજની વક્તવ્યતાનું નિરૂપણ કરતી ગાથાઓ-' અણુવેલંધરવાસા " ઇત્યાદિ—આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

विद्युत्प्रभ-कैलासा-ऽरुणप्रभनामानश्चत्वारोऽनुवेलन्धरावासाः सन्ति ।१। तेषु क्रमेण कर्कोटक-कर्दम-कैलासाऽरुणप्रभनामानश्चत्वारो नागराजा निवसन्ति। एते सर्वेऽप्यावासा लवणसमुद्रे द्विचत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानि गत्वा सन्ति ।२। तत्र चैते चत्वारि योजनशतानि त्रिंशतं क्रोशांश्चाभिव्याप्य भूमिम् उद्गताः= भूमौ व्यवस्थिताः । तथा-ते सर्वे एकविंशत्यधिकसप्तदशशतयोजनानि उच्छ्रिताः= उच्चा बोध्याः । ३ । इति ।

"लवणे समुद्दे णं" इत्यादि—लवणे समुद्रे चत्वारश्चन्द्राः प्राभासन्त वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते । तथा-लवणसमुद्रे चत्वारः सूर्या अतपन् वा तपन्ति वा तप्स्यन्ति वा, चन्द्राणां शीतलकिरणत्वेन सौम्यदीप्तिकत्वाद् वस्तुप्रभासनं प्रोक्तं सूर्याणां तु प्रचण्डकिरणत्वान्नसौम्यदीप्तिकत्वमिति तेषां न तदुक्तम्,

चन्द्राणां चतुष्ट्वे तत्परिवारस्यापि नक्षत्रादेश्चतुष्ट्वमेवेत्याह—चत्तारि कत्तियाओ" इत्यादि—चतस्रः कृत्तिकाः, अत्र चतुष्ट्वं च नक्षत्रापेक्षया नतु तारकापे-

आदिविदिशाओंमें क्रमसे कर्कोटक, विद्युत्प्रभ, कैलास, अरुणप्रभ ये अनुवेलन्धर आवास हैं, इनमें कर्कोटक १, कर्दम २, कैलास ३, अरुणप्रभ ४ नामा चार नागराज रहतेहैं । ये आवास पर्वत लवण समुद्रमें ४२ हजार योजन जा करके हैं । ये ४०० योजन और ३० कोशतक भूमिको घेर कर स्थित हैं । १७२१ योजन ऊंचे हैं । लवण समुद्रमें चार चन्द्रमा हैं, वे लवण समुद्रमें प्रकाशित हुवे हैं होते है और होंगे ।

तथा-चार सूर्य वहां तपे हे अब भी तपतेहैं और आगे आगे तपेगे । चन्द्र शीतल, और सूर्यप्रखर किरणेवाले होते हैं । इसलिये यहां वे चन्द्र वस्तुका प्रकाशन करते हैं, ऐसा कहा है तथा-सूर्य प्रचण्ड किरणके कारण तपते हैं ऐसा कहा गया है । चन्द्र चतुष्टयके परिवार नक्षत्रादि भी यहां चार रूपमें हैं, इसी बातको सूत्रकारने " चत्तारि कत्तियाओ "

લવણ સમુદ્રમા ઈશાન આદિ વિદિશાઓમાં અનુક્રમે કર્કોટક, વિદ્યુત્પ્રભ, કૈલાસ અને અરુણપ્રભ નામના નાગરાજ રહે છે તે આવાસ પર્વતો લવણ સમુદ્રમા ૪૨ હજાર યોજન દૂર જવાથી આવે છે. તેઓ ૪૦૦ યોજન અને ૩૦ કોસ જેટલી ભૂમિને ઘેરીને ઊભા છે તેમની ઊંચાઈ ૧૭૨૧ યોજન છે.

લવણસમુદ્રમાં ચાર ચન્દ્રમા છે તેઓ ભૂતકાળમાં તેને પ્રકાશ દેતા હતા, વર્તમાનમાં પણ દે છે અને ભવિષ્યમા પણ દેશે ત્યાં ચાર સૂર્ય તપતાં હતાં, તપે છે અને તપશે ચન્દ્ર શીતલ કિરણોવાળો અને સૂર્ય ઉષ્ણ કિરણોવાળો હોય છે. તેથી અહી એવું કહ્યુ છે કે ચન્દ્રો પ્રકાશ આપે છે અને સૂર્યો પ્રચડ કિરણોને કારણે તાપ આપે છે. ચાર ચન્દ્રના પરિવાર રૂપ નક્ષત્રાદિ

सपेक्षि, एवं रोहिण्यादि भरण्यन्तानामपि नक्षत्रापेक्षयैव चतुष्ट्वं विज्ञेयम्, 'यावत्' -पदेन रोहिण्यादि भरण्यन्तानि अष्टाविंशति नक्षत्राणि ग्राह्याणि ।

" चत्तारि अग्गी " इत्यादि-कृत्तिकादि भरण्यन्तानामष्टाविंशतिनक्षत्राणां देवताः क्रमेण अग्निमारभ्य यमपर्यन्ता अष्टाविंशतिसंख्यका बोध्याः । तासु प्रत्येक देवता चतु स्थानकानुरोधेन चतुर्विधा बोध्या ।

सम्प्रति लवणसमुद्राकाशस्थितानां ग्रहाणां मध्ये एकैकस्या-चतुष्टत्वमपि सूत्राह-" चत्तारि अंगारा " इत्यादि । तत्र अङ्गारः प्रथमो ग्रहः, भावकेतुस्तु अष्टाशीतितमः । नक्षत्र देवताग्रहाणां नामानि द्वितीयस्थानकस्य चतुस्त्रिंशत्तमे सूत्रेऽवलोकनीयानि ।

इत्यादि सूत्र द्वारा प्रगट किया है-यहां चार २ कृत्तिकाएं हैं, यहां जो चतुष्टयता है वह नक्षत्रोंकी अपेक्षासे है, नारकोंकी अपेक्षासे नहीं। इसी तरह-रोहिणीसे भरणीतकमें नक्षत्रोंकी अपेक्षासेही चारचार जानना चाहिये ।

यहां यावत् पदसे रोहिणीसे लेकर भरणी तकके २८ नक्षत्र ग्रहण कहे गये हैं । " चत्तारि अग्गी " इत्यादि—

कृत्तिकासे लेकर भरणी तकके जो २८ नक्षत्र हैं, उनके देवता क्रमशः अग्निसे लेकर यम तक २८ हैं। इनमें प्रत्येक देवता चतु स्थानकके अनुरोधसे चार प्रकारके हैं ऐसा समझना चाहिये ।

अब सूत्रकार लवण समुद्रके आकाशमें स्थित ग्रहोंके मध्यमें एक एक ग्रहमें चारचार प्रकार दिखानेके लिये "चत्तारि अंगारा" इत्यादि सूत्र कहते हैं। इनमें अङ्गार प्रथम ग्रह है और भावकेतु ८८ वा ग्रह है । नक्षत्र, देवता,

यहु त्या यार यार इप छे ओ ज वात सूत्रकारे " चत्तारि कत्तियाओ " ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કરી છે તથા જે ચતુષ્ટયતા છે તે નક્ષત્રોની અપેક્ષાએ છે, નારકોની અપેક્ષાએ નથી. એમકે ત્યાં ચાર કૃત્તિકાઓ છે, એજ પ્રમાણે રોહિણીથી લઈને ભરણી પર્યન્તનાં નક્ષત્રોમાં પણ ચતુષ્ટયતા સમજવી. અહીં યાવત્ (પર્યન્ત) પદથી રોહિણીથી લઈને ભરણી સુધીના ૨૮ નક્ષત્રો ગ્રહણ કરવામાં આવ્યાં છે

" चत्तारि अग्गी " ઇત્યાદિ—કૃત્તિકાથી શરૂ કરીને ભરણી સુધીના ૨૮ નક્ષત્રો છે અનુક્રમે અગ્નિથી લઈને યમ પર્યન્તના તેમના ૨૮ દેવતાઓ છે તેમાંના પ્રત્યેકનો દેવતા ચતુ સ્થાનકના અનુરોધથી ચાર પ્રકારનો છે, એમ સમજવું હવે સૂત્રકાર લવણ સમુદ્રના આકાશમાં જે જે ગ્રહો રહેલા છે, તે પ્રત્યેક ગ્રહમાં ચતુષ્ટયતાનું પ્રતિપાદન કરવા નિમિત્તે " चत्तारि अंगारा " ઇત્યાદિ સૂત્ર કહે છે—અંગારક (મંગળ) પહેલો ગ્રહ છે અને ભાવકેતુ ૮૮

"लवणस्स णं समुद्दस्स" इत्यादि-लवणस्य समुद्रस्य चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा-विजयादीनि ४, इत्यादि सर्वं जम्बूद्वीपद्वारादिवदवसेयमिति । सू० ६५ ॥

द्वीपप्रकरणाद् धातकीखण्डद्वीपस्य वलयप्रमाणादि निरूपयितुमाह—

मूलम्--धायइसंडे दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिया चत्तारि भरहाइं, चत्तारि एरवयाइं, एवं जहा--सद्दुदेसए तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव चत्तारि मंदरा चत्तारि मंदरचूलियाओ ।सू०६६॥

छाया—धातकीखण्डो द्वीपश्चत्वारि योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः, जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य वहिः चत्वारि भरतानि, चत्वारि ऐरवतानि, एवं यथा शब्दोद्देशके तथैव निरवशेषं भणितव्यं यावत् चत्वारो मन्दराः, चतस्रो मन्दरचूलिकाः । सू० ६६ ॥

टीका—"धायइसंड" इत्यादि—चक्रवालविष्कम्भेण-चक्रवालः=मण्डलः

ग्रह इनके नाम द्वितीय स्थानकके ३४ वे सूत्रमें कहे गयेहैं, अतः-वहांसे देख लेना चाहिये । "लवणस्स णं समुद्दस्स" इत्यादि लवण समुद्रके द्वार चार कहे गये हैं जैसे-विजय २, वैजयन्त २, जयन्त ३ और अपरजित ४। द्वार सम्बन्धी और सब कथन जम्बूद्वीप द्वारोंकी तरह जानना। सू. ६५

द्वीपप्रकरणको लेकर अब सूत्रकार धातकीखण्ड द्वीपके वलय प्रमाण आदि वक्तव्यताका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं।

"धायइसंडे दीवे चत्तारि" इत्यादि—

धातकीखण्ड द्वीप चक्रवाल विष्कम्भकी अपेक्षा चार लाख योज-

ગ્રહ છે નક્ષત્ર, દેવતા અને ગ્રહોનાં નામ દ્વિતીય સ્થાનકના ૩૪ માં સૂત્રમાં આપ્યાં છે, તો ત્યાંથી વાંચી લેવા.

"लवणस्स णं समुद्दस्स" ઇત્યાદિ—

લવણ સમુદ્રના ચાર દ્વાર છે—(૧) વિજય, (૨) વૈજયન્ત, (૩) જયન્ત અને (૪) અપરાજિત દ્વાર વિષેનું બાકીનુ સમસ્ત કથન જંબૂદ્વીપના દ્વારોના કથન અનુસાર સમજવું. ॥ સૂ. ૬૫ ॥

દ્વીપ પ્રકરણના સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર ધાતકીખંડ દ્વીપના વલયપ્રમાણ આદિનુ નિરૂપણ કરે છે. "धायइसडे दीवे चत्तारि" ઇત્યાદિ—

वलय इत्यर्थः, तस्य विष्कम्भः-विस्तारश्चक्रवालविष्कम्भस्तेन चत्वारि योजन-शतसहस्राणि-चतुर्लक्षयोजनपरिमितो धातकीखण्डनामा द्वीपः प्रज्ञप्तः।

" जंबूदीवस्स णं " इत्यादि-जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य बहिः-बहिःप्रदेशे स्थितयो - धातकीखण्ड-पुष्करार्धयोर्द्वीपयोश्चत्वारि भरतानि ऐरवतानि च सन्तीति बोध्यम्। " एवं जहे "-इत्यादि-एवम्-अनेन प्रकारेण, यथा-यया रीत्या, शब्दोद्देशके-शब्दोपलक्षितः=भरतैरवतादिशब्दोपलक्षितः उद्देशकः शब्दो देशकः=द्वितीयस्थानकस्य तृतीयोद्देशकः, तत्र भरतैरवतादि-मन्दरचूलिकान्तानां द्विस्थानकत्वेन वर्णनं कृत, तथैव-भरतादिमन्दरचूलिकान्तं निरवशेषं-सर्वं चतुः स्थानकत्वेन भणितव्यम्। तत् कियद्वधि वक्तव्यमित्याह सूत्रकारः-" जाव चत्तारि मदरा " इत्यादि-" चत्वारो मन्दराश्चतस्रो मन्दरचूलिका " इतिपर्यन्तमित्यर्थः। सू० १६।

नका विस्तारवाला कहा गया है। यह जम्बूद्वीपके बाहर प्रदेशमें स्थित है, अर्थात्-सबसे प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप है, इसको चारों ओरसे लवण समुद्र वेष्टित कर रक्खा है। जम्बूद्वीपसे दुगुना विस्तार लवण समुद्रका और लवणसमुद्रसे दुगुना धातकीखण्ड द्वीप है, इसके चारों ओर समुद्र है। इसके बाद पुष्करवरद्वीप है। जम्बूद्वीपमें एक भरतक्षेत्र, एक ऐरवत क्षेत्र आदि क्षेत्र हैं। धातकीखण्डमें दो-भरत दो ऐरवत आदि क्षेत्र हैं, इसी प्रकार पुष्करार्धमें दो भरत आदि क्षेत्र हैं। इस तरह जैसा कथन भरत, ऐरवत आदिका द्वितीय स्थानकके तृतीय उद्देशेमें मन्दरचूलिका तक है, वैसाही चतुःस्थान रूपसे यहां कहना

धातकीखंड द्वीपनो चक्रवाल विष्कंभ (परिध-परिमित) चार लाख योजननो कह्यो छे ते जम्बूद्वीपनी बहारना प्रदेशमां आवेलो छे एटले के सौथी पहेलो जम्बूद्वीप छे तेनी चारे तरफ वींटळाईने रहेलो लवण समुद्र छे जम्बूद्वीप करतां लवण समुद्रनो विस्तार बमणो छे अने लवणसमुद्र करतां धातकीखंडद्वीपनो विस्तार बमणो छे तेनी चारे बाजु पण समुद्र आवेलो छे त्यारबाद पुष्करवरद्वीप आवे छे जम्बूद्वीपमां भरत ऐरवत आदि क्षेत्र एक एक छे, पण धातकी खंडमां भरत, ऐरवत आदि क्षेत्रो बब्बे छे एज प्रमाणे पुष्करार्धमां पण भरत आदि क्षेत्रो बब्बे छे बीजा स्थानकना त्रीजा उद्देशामां भरत, ऐरवत आदि क्षेत्रोनुं मन्दर चूलिका पर्यन्तनु जेवुं कथन करवामां आव्युं छे, एवुं ज कथन चतुःस्थान रूपे अहीं पण थवुं

पूर्वं मनुष्यक्षेत्रवस्तूनां चतुःस्थानकत्वमुक्तं, साम्प्रतं क्षेत्रसाधर्म्यान्नन्दीश्वरद्वीपवस्तूनि चतुःस्थानकत्वेन निरूपयितुमाह—

॥ अथ नन्दीश्वरद्वीपविचारः ॥

मूलम्--णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगपव्वया पण्णत्ता, तं जहा--पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए, दाहिणिल्ले अंजणगपव्वए, पच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए ४। ते णं अंजणगपव्वया चउरासीइं चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दस दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं। तयणंतरं च णं मायाए २ परिहायमाणा २ उवरिभेगं एगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं। मूले इक्कतीसं २ जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं उपरिं तिन्नि २ जोयणसहस्साइं एगं च छावट्ठं एगं च छावट्ठं जोयणसयं परिक्खेवेणं। मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्वंजणमया अच्छा सण्हा सण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समरीइया सउज्जोया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा। तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जभूमिभागा पण्णत्ता। तेसि णं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागाणं बहुमज्जदेसभागे चत्तारि सिद्धायथणा पण्णत्ता, ते णं सिद्धाययणा एगं

चाहिये। यही बात–" जाव चत्तारि मंदरा " इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा व्यक्त है। इसका टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू० ६६ ॥

જોઈએ. એજ વાત " जाव चत्तारि मंदरा ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા વ્યક્ત થઈ છે. આ સૂત્ર સુગમ હોવાથી વિશેષાર્થ આપ્યો નથી. સૂ ૬૬ ॥

जोयणसय आयामेणं पण्णत्ता, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं। तेसिं सिद्धाययणाणं चउ द्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता, त जहा देवदारे १, असुरदारे २, णागदारे ३, सुवण्णदारे ४, तेसु णं दारेसु चउव्विहा देवा परि वसंति, त जहा-देवा १ असुरा २ नागा ३ सुवण्णा ४। तेसिं णं दाराणं पुरओ चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता। तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता। तेसि णं पेच्छाघरमंडवाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता। तेसिण वइरामयाण अक्खाडगाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणि पेढियाओ पण्णत्ताओ। तासि ण मणिपेढियाण उवरिं चत्तारि सीहासणा पणत्ता। तेसि ण सीहासणाण उवरि चत्तारि विजय दूसगा पण्णत्ता। तेसिण विजयदूसगाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पण्णत्ता। तेसु ण वइरामएसु अंकुसेसु चत्तारि कुंभिका मुत्तादामा पण्णत्ताओ। ते ण कुंभिका मुत्तादामा पत्तेय २ अन्नेहिं तदद्धउच्चत्तपमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिकेहिं मुत्ता दामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। तेसि ण पेच्छाघरमंड-वाण पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, तासि ण मणि पेढियाण उवरिं चत्तारि २ चेइयथूभा पण्णत्ता। तेसि ण चेइय-थूभाण पत्तेय २ चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। तासि ण मणिपेढिआण उवरि चत्तारि जिणपडिमाओ सव्व रयणामईओ सपलियंकणिसण्णाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठंति त जहा-रिसभा १, वद्धमाणा २, चंदाणणा ३, वारिसेणा ४,

तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ। तासि णं मणिपेढिआणं उवरिं चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता। तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ। तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि महिंदज्झया पण्णत्ता। तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ। तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं २ चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा--पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं--

" पुव्वेणं असोगवणं दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं।
अवरेणं चंपगवणं चूयवणं उत्तरे पासे। १।। ६७।।

छाया–नन्दीश्वरवरस्य खलु द्वीपस्य चक्रवालविष्कम्भस्य बहुमध्यदेशभागे चतुर्दिशि चत्वारोऽञ्जनकपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पौरस्त्यः अञ्जनकपर्वतः दाक्षिणात्यः अञ्जनकपर्वतः २, पाश्चात्य अञ्जनकपर्वतः ३, औत्तराहः अञ्जनकपर्वतः ४। ते खलु अञ्जनकपर्वताः चतुरशीति चतुरशीति योजनसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, एकमेकं योजनसहस्रमुद्वेधेन, मूले दश दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण। तदनन्तर च खलु मात्रया २ परिहीयमाणा २ उपरि एकमेकं योजनसहस्रं विष्कम्भेण मूले एकत्रिंशदेकत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट्च त्रयोविंशतिं षट् च त्रयोविंशतिं योजनशतानि परिक्षेपेण, उपरि त्रीणि २ योजनसहस्राणि एकच षट्षष्टिम् एकच षट्षष्टिम् योजनशतानि परिक्षेपेण। मूले विस्तीर्णा मध्ये संक्षिप्ताः, उपरि तनुकाः गोपुच्छसंस्थानसंस्थिताः सर्वाञ्जनमयाः अच्छाः श्लक्ष्णाः श्लक्ष्णाः घृष्टाः मृष्टाः नीरजसः निष्पङ्काः निष्कङ्कटच्छायाः सप्रभाः समरीचिकाः सोद्द्योताः प्रासादीयाः दर्शनीया अभिरूपाः प्रतिरूपाः। तेषां खलु अञ्जनकपर्वतानामुपरि बहुसमरमणीयभूमिभागाः प्रज्ञप्ताः, तेषां खलु बहुसमरमणीयभूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे चत्वारि सिद्धायतनानि प्रज्ञप्तानि, तानि खलु सिद्धायतनानि एकं योजनशतम् आयामेन प्रज्ञप्तानि,

पञ्चाशत् योजनानि विष्कम्भेण, द्वासप्ततिं योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, तेषां सिद्धायतनानां चतुर्दिशि चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-देवद्वारम् १, असुरद्वार २ नागद्वारं ३, सुवर्णद्वारम् ४। तेषु खलु द्वारेषु चतुर्विधा देवाः परिवसन्ति, तद्यथा-देवाः १, असुराः २, नागाः ३, सुवर्णाः ४। तेषां खलु द्वाराणां पुरतः चत्वारो मुखमण्डपाः प्रज्ञप्ता । तेषां खलु मुखमण्डपानां पुरतः चत्वारः प्रेक्षागृहमण्डपाः प्रज्ञप्ता । तेषां खलु प्रेक्षागृहमण्डपानां बहुमध्यदेशभागे चत्वारो वज्रमया अक्षवाटकाः प्रज्ञप्ताः । तेषां खलु वज्रमयानामक्षवाटकानां बहुमध्यदेशभागे चतस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः। तासां खलु मणिपीठिकानामुपरि चत्वारि सिंहासनानि प्रज्ञप्तानि। तेषां खलु सिंहासनानामुपरि चत्वारि विजयदूष्याणि प्रज्ञप्तानि। तेषां खलु विजयदूष्यकाणां बहुमध्यदेशभागे चत्वारो वज्रमया अङ्कुशा प्रज्ञप्ता । तेषां खलु वज्रमयेषु अङ्कुशेषु चत्वारि कुम्भिकानि मुक्तादामानि प्रज्ञप्तानि, तानि खलु कुम्भिकानि मुक्तादामानि प्रत्येकं प्रत्येकमन्यैस्तद् र्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैश्चतुर्भिरर्द्धकुम्भिकैर्मुक्तादामभिः सर्वतः समन्तात् सपरिक्षिप्तानि। तेषां खलु प्रेक्षागृहमण्डपानां पुरतश्चतस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः। तेषां खलु मणिपीठिकानामुपरि चत्वारश्चत्वारश्चैत्यस्तूपा प्रज्ञप्ताः। तेषां खलु चैत्यस्तूपानां प्रत्येकं २ चतुर्दिशि चतस्रो मणिपिठिकाः प्रज्ञप्ता । तासां खलु मणिपीठिकानामुपरि चतस्रो जिनप्रतिमा सर्वरत्नमय्यः संपर्यङ्कनिषण्णाः स्तूपाभिमुख्यस्तिष्ठन्ति, तद्यथा ऋषभा १, वर्द्धमाना २ चन्द्रानना ३, वारिषेणा ४, तेषां खलु चैत्यस्तूपानां पुरतश्चतस्रो मणिपाठिकाः प्रज्ञप्ता । तासां खलु मणिपीठिकानामुपरि चत्वारश्चैत्यवृक्षाः प्रज्ञप्ता । तेषां खलु चैत्यवृक्षाणां पुरतश्चतस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ता । तासां खलु मणिपीठिकानामुपरि चत्वारो महेन्द्रध्वजाः प्रज्ञप्ता । तेषां खलु महेन्द्रध्वजानां पुरतश्चतस्रो नन्दा पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः। तासां खलु पुष्करिणीनां प्रत्येकं चतुर्दिशि चत्वारो वनखण्डाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पौरस्त्ये १, दाक्षिणात्ये २, पाश्चात्ये ३ उत्तर—

" पूर्वेण-अशोकवनं, दक्षिणतो-भवति सप्तपर्णवनम् ।
अपरेण चम्पकवनं, चूतवनमुत्तरे पार्श्वे ॥ १ ॥ इति ॥ सू० ६७ ॥

इस प्रकार मनुष्य क्षेत्रगत वस्तुओंमें चतुःस्थानकता कहकर अब सूत्रकार क्षेत्र सामर्थ्यको लेकर आठवें नन्दीश्वर द्वीपके वस्तुओंकी

આ રીતે મનુષ્ય ક્ષેત્રગત વસ્તુઓમાં ચતુઃસ્થાનકતાનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર ક્ષેત્રસાધર્મ્યની અપેક્ષાએ આઠમાં નંદીશ્વર દ્વીપની વસ્તુઓનું ચતુઃ

टीका-" णंदीसरवरस्स णं " इत्यादि—

द्वीपसमुद्राणां क्रमस्त्वेवमुक्तः, तथाहि—

" जंबुद्दीवे लवणो, धायइ कालोयपुक्खरे वरुणे ।
खीर-घय-खोअ-नंदी-अरुणवरे कुंडले रुयगे ॥१॥ इति ।

छाया—जम्बूद्वीपो लवणो धातकी कालोदः पुष्करः वरुणः ।
क्षीर-घृत-क्षोद-नन्दी-अरुणवरः कुण्डलो रुचकः ॥१॥ " इति,

चतुःस्थानकताका निरूपण करते हैं ।

" णंदीसरवरस्सणं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स " इत्यादि—

चक्रवाल विष्कम्भवाले नन्दीश्वर द्वीपके बीच चार दिशाओंमें चार अञ्जनगिरि पर्वत हैं, जैसे—पौरस्त्य अञ्जनक पर्वत १, दाक्षिणात्य अञ्जनक पर्वत २, पाश्चात्य अञ्जनक पर्वत ३, और औदीच्य अञ्जनक पर्वत ४ । ये चारों ८४-८४ हजार ऊँचाईवाले हैं । उनका उद्वेध एक हजार योजन है, मूलमें इनका विष्कम्भ दस हजार योजन है, तथा मात्रा मात्रासे घटते-२ ऊपरमें इनका विष्कम्भ एक हजार योजनका है ।

द्वीप समुद्रोंका क्रम—" जंबुद्दीवे लवणे " इत्यादि । सब द्वीप समुद्रोंके मध्यमें पहला जम्बूद्वीप है, यह लवण समुद्रसे वेष्टित है १ । इसके बाद धातकीखण्ड द्वीप जो कि चारों ओर कालोदसमुद्रसे घिरा है २ । इसके बाद-पुष्करद्वीप, पुष्कर समुद्रसे घिरा है ३ । इसके बाद

સ્થાનકતાની અપેક્ષાએ નિરૂપણ કરે છે—

' णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स " ઈત્યાદિ—

ચક્રવાલ વિષ્કંભવાળા નંદીશ્વર દ્વીપમાં ચાર દિશામાં ચાર અંજનગિરિ આવેલા છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે—પૂર્વનો અંજનક પર્વત, દક્ષિણનો અંજનક પર્વત, પશ્ચિમનો અંજનક પર્વત અને ઉત્તરનો અંજનક પર્વત. તે પ્રત્યેકની ઊંચાઈ ૮૪-૮૪ હજાર યોજનની છે અને તેમનો ઉદ્વેધ (ઊંડાઈ) એક હજાર યોજનનો છે મૂળ ભાગમાં તેમનો વિસ્તાર દસ હજાર યોજનનો છે, અને જેમ ઊંચે જઈએ તેમ તે વિસ્તાર ઘટતો ઘટતો એક હજાર યોજન થઈ જાય છે

દ્વીપ સમુદ્રોનો ક્રમઃ " जंबुद्दीवे लवणे " ઈત્યાદિ—બધાં દ્વીપ સમુદ્રોની વચ્ચે જંબૂદ્વીપ આવેલો છે. તે લવણસમુદ્રથી વીંટળાયેલો છે. ા ૧ ા ત્યાર બાદ ધાતકીખંડ દ્વીપ છે તે કાલોદ સમુદ્રથી ઘેરાયેલો છે ા૨ા ત્યારબાદ પુષ્કરદ્વીપ છે, તે પુષ્કર સમુદ્રથી ઘેરાયેલો છે. ા ૩ ા ત્યારબાદ વરુણદ્વીપ અને વરુણ

अत्र नन्दीश्वरो मध्यजम्बूद्वीपापेक्षयाऽष्टमत्वेन पठितः, सोऽयं नन्दीश्वरो द्वीपोऽन्यद्वीपापेक्षया मधुररमणीयत्वेन, उत्सवादिकारणवशाद्देवानां समीचीनसद्भावेन च वरः श्रेष्ठः। तस्यैवास्य चक्रवालविष्कम्भमस्य=चतुरशीति लक्षाधिकत्रिषष्ट्यधिकैकशतकोटि (१६३८४०००००) योजनप्रमाणचक्रवालविस्तारस्य, उक्तञ्च तत्प्रमाणम्—

वरुणद्वीप और वरुण समुद्र ४। इत्यादि रूपसे द्वीप और द्वीपोंको घेरे हुवे समुद्र हैं। अन्तमें-स्वयम्भूरमण द्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्र है। यहां ग्यारह द्वीपोंके नाम प्रकट किये गये हैं। पुष्करद्वीपके बाद क्षीरद्वीप-क्षीरसमुद्र ५, घृतद्वीप-घृतसमुद्र ६, क्षोदद्वीप-इक्षु समुद्र ७, नन्दीश्वर द्वीप-नन्दीश्वर समुद्र ८, अरुणवर द्वीप-अरुणवर समुद्र ९, कुण्डल द्वीप-कुण्डल समुद्र १० और रुचक द्वीप-रुचक समुद्र ११

इस तरहसे द्वीप और समुद्र हैं। सूत्रकारने जो यहां लवण समुद्र और कालोद समुद्र इन दोही समुद्रोंका नाम इस गाथामें प्रकट किया है। उसका कारण ढाई द्वीपमें ये दोही समुद्र हैं, यह समझानेके लिये किया है। यहां नन्दीश्वर द्वीप मध्य जम्बूद्वीपकी अपेक्षा आठवां है, इसके साथ जो 'वर' विशेषण दिया गया है, उसका कारण ऐसा है कि यह द्वीप अन्य द्वीपोंकी अपेक्षा मधुर रूपमें रमणीय है, तथा तीर्थकरों के जन्म उत्सवादि कारणोंसे यहां देवोंका संमिलन होता रहता है। इसका चक्रवाल विस्तार १६३८४००००० एक अरब तिरसठ करोड चौरासी लाख योजनका है। कहा भी है " तेसट्ठकोडिसयं " इत्यादि—

સમુદ્ર છે ।૪। ત્યારબાદ ક્ષીર દ્વીપ અને ક્ષીર સમુદ્ર છે ।૫। ત્યારબાદ ઘૃતદ્વીપ અને ઘૃતસમુદ્ર ।૬। ક્ષોદ દ્વીપ અને ઇક્ષુ સમુદ્ર ।૭। નન્દીશ્વર દ્વીપ અને નન્દીશ્વર સમુદ્ર ।૮। અરુણવર દ્વીપ અને અરુણવર સમુદ્ર ।૯। કુંડલ દ્વીપ અને કુંડલ સમુદ્ર ।૧૦। રુચક દ્વીપ અને રુચક સમુદ્ર છે ।૧૧। ઇત્યાદિ રૂપે દ્વીપ અને દ્વીપને ઘેરાયેલા સમુદ્ર છે, છેવટે સ્વયંભૂરમણ દ્વીપ અને સ્વયંભૂરમણ સમુદ્ર છે

સૂત્રકારે અહીં ગાથામાં લવણ સમુદ્ર અને કાલોદ સમુદ્ર આ બે સમુદ્રોનાં નામ જ પ્રકટ કર્યાં છે તેનું કારણ એ છે કે અઢી દ્વીપમાં એ બે જ સમુદ્ર છે મધ્ય જમ્બૂદ્વીપથી નન્દીશ્વર દ્વીપ આઠમો દ્વીપ છે. તેને જે "વર' વિશેષણ લગાડ્યું છે તેનું કારણ એ છે કે અન્ય દ્વીપો કરતાં આ દ્વીપ વધારે રમણીય છે, ઉત્સવાદિ કારણોને લીધે ત્યાં દેવોનું આગમન થતું રહે છે તેનો ચક્રવાલ વિષ્કંભ (પરિધિ) ૧૬૩૮૪૦ ૦૦૦ (એક અબજ ત્રેસઠ કરોડ અને ૮૪ લાખ) યોજનનો છે કહ્યું પણ છે કે "તેસટ્ઠ કોડિસય' ઇત્યાદિ.

" तेसट्ठं कोडिसयं, चउरासीइं च सयसहस्साइं ।
नंदीसरवरदीवे, विक्खंभो चक्कवालेणं ॥१॥ " इति ।

छाया—त्रिषष्टिं कोटिशतं चतुरशीतिं च शतसहस्राणि ।
नन्दीश्वरवरद्वीपे विष्कम्भश्चक्रवालेन ॥ १ ॥

एवंविधप्रमाणस्य तस्य बहुमध्यदेशभागे चतुर्दिशि=चतसृषु दिक्षु पौरस्त्य–दाक्षिणात्य–पाश्चात्यो–त्तराहभेदेन चत्वारोऽञ्जनकपर्वताः–अञ्जनकनामानः कृष्णवर्णाः पर्वताः प्रज्ञप्ताः । तेषु अञ्जनकपर्वतेषु प्रत्येकं पर्वत उच्चत्वेन चतुरशीति सहस्रयोजनप्रमाणः, उद्वेधेन–भूम्यन्तः स्थितभागत्वेनैकसहस्रयोजनप्रमाणः, मूलप्रदेशविष्कम्भेण च दशसहस्रयोजनप्रमाणः । तदनन्तरं च खलु मात्रया मात्रया परिहीयमाणेषु एतेषु पर्वतेषु प्रत्येकं पर्वत उपरितनभागे विष्कम्भेण एकसहस्रयोजनप्रमाणः । तथा–मूलप्रदेशे परिक्षेपेण=परिधिना त्रयोविंशत्यधिकषट्शताधिकैकत्रिंशद् (३१६२३) योजनसहस्रप्रमाणः । उपरिप्रदेशे पुनरयं परिधिना षट्षष्ट्यधिकैकशताधिकत्रिसहस्र (३१६६) योजनप्रमाणः । तथा

इस नन्दीश्वर द्वीपके बहु मध्यभागमें एक एक अञ्जनक पर्वत हैं । इस तरहसे ये चार अञ्जनक पर्वत हैं, अञ्जनका काला वर्ण होनेसे अञ्जनक पर्वतमें प्रत्येक अञ्जनक पर्वत ८४–८४ हजार योजन ऊंचा है । भूमिके भीतर इनका प्रत्येक मूल भाग एक एक हजार योजनहै तथा इन सबके प्रत्येक मूल भागका विष्कम्भ १० हजार योजनका है, सो यह सब विषय ऊपरमें प्रकट कर दिया है । प्रत्येक पर्वत उपरितन भागमें मात्रासे घटता हुवा एक हजार योजनका विष्कम्भवाला हो गया है, मूल प्रदेशमें प्रत्येक पर्वत परिधिका विस्तार ३१६२३ योजनका है । तथा ऊपरी भागमें प्रत्येककी परिधि ३१६६ योजन प्रमाणहै, इस तरह ये

તે નન્દીશ્વર દ્વીપના બરાબર મધ્ય ભાગમાં, ચારે દિશાઓમા એક એક અંજનક પર્વત છે તે ચારે અંજનક પર્વતો આંજણ (અંજન) ના જેવાં કાળા વર્ણના હોવાથી તેમને અંજનક પર્વતો કહે છે. તે પ્રત્યેક અંજનક પર્વતની ૮૪ હજાર યોજનની ઊંચાઈ છે તે પ્રત્યેકનો ઉદ્વેધ (જમીનની અંદરનો વિસ્તાર) એક હજાર યોજનનો છે અને મૂળ ભાગનો વિસ્તાર દસ હજાર યોજનનો અને ટોચનો વિસ્તાર એક હજાર યોજનનો છે તે પ્રત્યેક અજનક પર્વતના મૂળ ભાગનો પરિધ ૩૧૬૨૩ યોજન પ્રમાણ અને ઉપરના ભાગનો પરિધ ૩૧૬૬ યોજન પ્રમાણ કહ્યો છે. આ રીતે આ

अत्र नन्दीश्वरो मध्यजम्बूद्वीपापेक्षयाऽष्टमत्वेन पठित, सोऽयं नन्दीश्वरो द्वीपोऽन्यद्वीपापेक्षया मधुररमणीयत्वेन, तत्तत्कल्याणादिकारणवशाद्देवानां समीलन सद्भावेन च वरः श्रेष्ठः। तस्यैवंविधस्य चक्रवालविष्कम्भस्य=चतुरशीति लक्षा धिकत्रिषष्टयधिकैकशतकोटि (१६३८४०००००) योजनप्रमाणचक्रवालविस्तारस्य, उक्तञ्च तत्प्रमाणम्—

वरुणद्वीप और वरुण समुद्र ४। इत्यादि रूपसे द्वीप और द्वीपोंको घेरे हुवे समुद्र हैं। अन्तमें–स्वयम्भूरमण द्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्र है। यहाँ ग्यारह द्वीपोंके नाम प्रकट किये गये हैं। पुष्करद्वीपके बाद क्षीरद्वीप–क्षीरसमुद्र ५, घृतद्वीप–घृतसमुद्र ६, क्षोदद्वीप–इक्षु समुद्र ७, नन्दीश्वर द्वीप–नन्दीश्वर समुद्र ८, अरुणवर द्वीप–अरुणवर समुद्र ९, कुण्डल द्वीप–कुण्डल समुद्र १० और रुचक द्वीप–रुचक समुद्र ११

इस तरहसे द्वीप और समुद्र हैं। सूत्रकारने जो यहाँ लवण समुद्र और कालोद समुद्र इन दोही समुद्रोंका नाम इस गाथामें प्रकट किया है। उसका कारण ढाई द्वीपमें ये दोही समुद्र हैं, यह समझानेके लिये किया है। यहाँ नन्दीश्वर द्वीप मध्य जम्बूद्वीपकी अपेक्षा आठवाँ है, इसके साथ जो 'वर' विशेषण दिया गया है, उसका कारण ऐसा है कि यह द्वीप अन्य द्वीपोंकी अपेक्षा मधुर रूपमें रमणीय है, तथा तीर्थंकरों के जन्म उत्सवादि कारणोंसे यहाँ देवोंका समिलन होता रहता है। इसका चक्रवाल विस्तार १६३८४००००० एक अरब तिरसठ करोड चौरासी लाख योजनका है। कहा भी है " तेसट्ठकोडिसयं " इत्यादि—

સમુદ્ર છે । ૪ । ત્યારબાદ ક્ષીર દ્વીપ અને ક્ષીર સમુદ્ર છે । ૫ । ત્યારબાદ ઘૃતદ્વીપ અને ઘૃતસમુદ્ર । ૬ । ક્ષોદ દ્વીપ અને ઇક્ષુ સમુદ્ર । ૭ । નદીશ્વર દ્વીપ અને નદીશ્વર સમુદ્ર । ૮ । અરુણવર દ્વીપ અને અરુણવર સમુદ્ર । ૯ । કુંડલ દ્વીપ અને કુંડલ સમુદ્ર । ૧૦ । રુચક દ્વીપ અને રુચક સમુદ્ર છે ।૧૧। ઇત્યાદિ રૂપે દ્વીપ અને દ્વીપને વીંટળાયેલા સમુદ્ર છે, છેવટે સ્વયભૂરમણ દ્વીપ અને સ્વયભૂરમણ સમુદ્ર છે

સૂત્રકારે અહીં ગાથામાં લવણ સમુદ્ર અને કાલોદ સમુદ્ર આ બે સમુદ્રોનાં નામ જ પ્રકટ કર્યા છે તેનું કારણ એ છે કે અઢી દ્વીપમાં બે જ સમુદ્ર છે મધ્ય જમ્બૂદ્વીપથી નન્દીશ્વર દ્વીપ આઠમો દ્વીપ છે. તેને જે ' વર ' વિશેષણ લગાડયું છે તેનું કારણ એ છે કે અન્ય દ્વીપો કરતાં આ દ્વીપ વધારે રમણીય છે, ઉત્સવાદિ કારણોને લીધે ત્યાં દેવોનું આગમન થતું રહે છે તેનો ચક્રવાલ વિષ્કંભ (પરિધ) ૧૬૩૮૪૦ ૦૦૦ (એક અબજ, ત્રેસઠ કરોડ અને ૮૪ લાખ) યોજનનો છે કહ્યું પણ છે કે " તેસટ્ઠ કોડિસય " ઇત્યાદિ.

घुण्टितपटवत् चिक्कणाः, तथा-घृष्टाः=घृष्टा इव घृष्टाः खरतर-शाणया घृष्टशिलावत्, तथा-मृष्टाः-कृतसम्मार्जना इव कोमलशाणया परिशोधितशिलावत्, यद्वा-मृष्टाः प्रमार्जनिकया शोधिता इव कचवरादि रहिताः, अत एव-नीरजसः-धूलिरहिताः-निर्मला इत्यर्थः, कठिनमलाभावात् धौतवस्त्रवद्वा, तथा-निष्पङ्काः-पङ्करहिताः आर्द्रमलाभावात् यद्वा-कलङ्करहिताः, तथा-निष्कङ्कटच्छायाः-कङ्कटं-कवचम्-आवरणमुपचारात् तस्मान्निष्क्रान्ता निष्कङ्कटा निरावरणा सा छाया-शोभा येषां ते तथा, निष्कलङ्क शोभा इत्यर्थः, तथा-सप्रभा=देवानन्दजनकप्रभावसम्पन्नाः, यद्वा-स्वप्रभाः=स्वतःप्रभासनशीला न परतः, तथा-समरीचिकाः-किरणयुक्ताः, अतएव-सोद्द्योताः-परप्रकाशकाः, प्रासादीयाः=दर्शकानां चित्तप्रसादजनकत्वात्प्रमोदजनकाः, अभिरूपाः=मनोज्ञाऽऽकृतिकाः प्रतिरूपाः-अपूर्वच-

जैसा पालीसदार चमकीले हैं, एव-खरतरशाणसे घृष्ट शिला जैसा हैं, मृष्टाः-कोमलशाणसे परिशोधित, संमार्जित शिला जैसा हैं, अथवा प्रमार्जनिकासे शोधित जगहसा कूडाकरकटसे रहितहैं, एवं-'नीरजसः' धूली रहीत निर्मल हैं, कठोर मलवाला वस्त्रसा स्वच्छ हैं। एवं-आर्द्रमलके अभावसे पङ्करहित हैं। यद्वा कलङ्करहित हैं, "निष्कङ्कटच्छाया" आवरण रहित शोभावाले हैं। "सप्रभा" देवोंके आनन्दजनक प्रभा संपन्न हैं, अथवा स्वतः प्रकाशनशील हैं, परतः प्रभासमान नहीं हैं। "समरीचिकाः" किरणयुक्त हैं, अतएव "सोद्द्योताः" परप्रकाशक हैं, "प्रासादीयाः" दर्शकजनोंके चित्तमें प्रसाद-प्रमोदोत्पादक हैं, "अभिरूपाः" मनोज्ञ आकृतिवाले हैं, "प्रतिरूपाः" अपूर्व चमत्कारी एवं स्वाभाविक रमणीय अद्वितीय रूपवाले हैं। "तेसिणं" इत्यादि।

"श्लक्ष्णा." घुटित વસ્ત્ર સમાન પાલીસદાર અને ચળકતાં છે, કઠણમાં કઠણ શાણ (સરાણ) વડે ઘસેલી શીલા સમાન છે, "मृष्टाः" કોમલ સરાણથી પરિશોધિત (સંમાર્જિત) શિલાસમાન છે અથવા સાવરણી વડે વાળીઝૂડીને સારૂ કરેલી જગ્યા જેવા નિર્મળ છે, "नीरजस" ધૂળથી રહિત છે, કઠોર મળ રહિત વસ્ત્ર સમાન સ્વચ્છ છે, અને આર્દ્ર મળનો અભાવ હોવાથી કાદવ રહિત છે-અથવા કલંક રહિત છે, "निष्कङ्कटच्छाया" આવરણ રહિત શોભાવાળાં છે, "सप्रभा." દેવોને આનંદજનક પ્રભાસપન્ન છે અથવા તેઓ સ્વપ્રકાશિત છે, પરપ્રકાશિત નથી. "समरीचिका" તેઓ કિરણોથી યુક્ત છે, "सोद्द्योताः" અને તે કારણે અન્યને પ્રકાશિત કરનારા છે, "प्रासादीया" દર્શનીય છે, દર્શકોના ચિત્તમાં પ્રમોદજનક છે, "अभिरूवा" મનોજ્ઞ આકૃતિ-વાળા છે, "प्रतिरूवाः" અપૂર્વ ચમત્કારી અને સ્વાભાવિક રમણીય-અનુપમ

चैते पर्वता मूले विस्तीर्णाः=विस्तारवन्त , मध्ये संक्षिप्ता , उपरिभागे च तनुकाः= मतकाः अत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थिताः यथा गोपुच्छो मूले स्थूलः, अन्तेच तनुकस्तथा तेऽप्यञ्जनकपर्वता मूले स्थूलाः शिखरे तनुका इति गोपुच्छसंस्थान- संस्थिताः=गोपुच्छाऽऽकारवदवस्थिताः, सर्वाञ्जनमया —अञ्जन—कृष्णरत्नविशेषः तदेव तन्मया अञ्जनमयाः, सर्वप्रधानन्यमयत्वेन सर्वथैवाञ्जनमयाः सर्वाञ्जनमयाः= परमकृष्णवर्णा इति भावः, उक्तं च—

" भिंगगरुल कज्जल अंजणधाउसरिसा विरायंति ।
गगणतलमणुलिहंता अंजणगा पव्वया रम्मा ॥१॥ "

छाया—भृङ्गरुचिरकज्जलाञ्जनधातु सदृशा विराजन्ते ।
गगनतलमनुलिखन्तोऽञ्जनका पर्वता रम्याः ।१॥ " इति,

कृष्णवर्णत्वेन भृङ्गा सदृशा रुचिरकज्जलसदृशा अञ्जनधातुसदृशामेते रम णीयाः अञ्जनकपर्वता उच्चत्वेनाऽऽकाश स्पृशन्तो विराजन्ते । इति भावः । १ । पुनस्तेकीदृशा इत्याह—' अच्छा '—स्वच्छाः आकाशस्फटिकवत् तथा—श्लक्ष्णाः= श्लक्ष्णपरमाणुस्कन्धनिर्मिताः श्लक्ष्णसूत्रनिर्मितवस्त्रवत् तथा श्लक्ष्णाः

पर्वत मूलमें विस्तीर्ण मध्यमें संक्षिप्त, और ऊपरमें तनुक (पतले) हैं। अत एव गोपुच्छाऽऽकार जैसे प्रतीत होते हैं। जैसे कि गोपुच्छ मूलमें मोटी, अन्तमें पतली, मध्यमें समवर्तुल संक्षिप्त हुवा करती है वैसा इन्हें जानना, इसीसे इनको लक्ष्यकर " गोपुच्छाऽऽकारवद्वाऽवस्थिता " गोपुच्छा कारसंस्थानवाला ऐसा कहा है ये सब पर्वत सर्वभावसे कृष्णरत्न विशेषसा अञ्जनमय हैं। कहाभी है । " भिंगगरुल कज्जल " इत्यादि । कृष्णतासे भृङ्गाङ्ग (भमरके अंग) सदृश, रुचिर कज्जल सदृश, अञ्जनपुञ्ज धातु सदृश हैं, फिरभी रमणीय हैं। ये ऊचा ईसे गगनचुम्बी, अच्छाः आकाशस्फटिक हैं, श्लक्ष्णाः-चुटीत हुवे वस्त्र

પર્વતો મૂળ ભાગમાં વિસ્તીર્ણ, મધ્ય ભાગે સંક્ષિપ્ત અને ટોચ પાસે તનુક (અતિ સંક્ષિપ્ત) છે તે કારણે તેમનો આકાર ગાયના પૂછડા જેવો લાગે છે જેમ ગાયનું પૂછડું મૂળ ભાગમાં જાડું છેડે પાતળું અને મધ્યમાં સમ વર્તુળ સંક્ષિપ્ત હોય છે એવો જ આ પર્વતોનો આકાર સમજવો.

એ જ વાત સૂત્રકારે " गोपुच्छाऽऽकारवदवस्थिताः " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે આ પર્વતો કૃષ્ણરત્ન (મહારત્ન છે) વિશેષ સમાન અંજનાત્મક છે કહ્યું પણ છે કે—" भिंगगरुलकज्जल ઇત્યાદિ તે પર્વતોનો વર્ણ ભૃંગાંગ સમાન (ભમરાઓનાં અંગો સમાન) રુચિર કાજળ સમાન, અને અંજન પુંજ ધાતુ સમાન શ્યામ હોવા છતાં પણ તેઓ રમણીય લાગે છે તેઓ ઊંચાઈની અપેક્ષાએ ગગનચુમ્બી લાગે છે ' अच्छा ' આકાશ સમાન સ્વચ્છ

योजनानि। तेषां सिद्धायतनानां चतुर्दिशि=पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु चत्वारि द्वाराणि, तद्यथा–देवद्वारं १, असुरद्वारं २, नागद्वारं ३, सुपर्णद्वारं च, एतानि सार्थकनामानि। तेषु खलु द्वारेषु चतुर्विधाः=चतुष्प्रकाराः देवाः परिवसन्ति, तद्यथा–क्रमेण देवाः १, असुराः २, नागाः ३, सुपर्णाश्च ४। तेषां खलु द्वाराणां पुरतः अग्रे चत्वारो मुखमण्डपाः मुखे–अग्रिमद्वारे मण्डपाः तेषां। तेषां खलु मण्डपानां पुरतः अग्रे चत्वारः प्रेक्षागृहमण्डपाः––प्रेक्षायै–प्रेक्षणाय–दर्शनाय गृहमण्डपाः गृहाण्येव मण्डपास्तथा प्रज्ञप्ताः, तेषां प्रेक्षागृहमण्डपानां बहुमध्यदेशभागे चत्वारो वज्रमया अक्षवाटकाः=' अखाढा ' इति भाषा प्रसिद्धाः सन्ति। तेषां खलु बहुमध्यदेशभागे चतस्रो मणिपीठिकाः मणिवेदिकाः सन्ति। तासां खलु मणिपीठिकानामुपरि चत्वारि सिंहासनानि। तेषां खलु सिंहासनानामुपरि चत्वारि विजयदूष्याणि–वितानरूपाणि वस्त्राणि तेषां खलु बहुमध्यभागे चत्वारो वज्रमया अङ्कुशाः, अवलम्बनार्थं कीलकानि। तेषु खलु चत्वारि कुम्भिकमुक्तादामानि, कुम्भिकानि मुक्तापरिमाणविशेषाः तत्परिमिता मुक्ताः–मौक्तिकानि

द्वार २, नागद्वार ३, सुपर्णद्वार ४ ये सार्थक हैं। इन द्वारोंके प्रथम द्वारमें देव, द्वितीयमें असुर, तृतीयमें नाग, चतुर्थमें सुपर्ण ये चार प्रकारके देव रहते हैं। इन द्वारोके सामने–आगे चार मुखमण्डप हैं, इन मण्डपोंके आगे चार प्रेक्षागृह मण्डप हैं। इनमें बैठकर देव यहांकी वस्तुओंको देखते हैं। इन प्रेक्षागृहोंके बहु मध्यदेश भागमें चार मणिपीठिकाएं हैं, उनके ऊपर चार सिंहासन हैं, उनके ऊपर चार विजयदूष्य हैं–वितान रूप वस्त्र हैं। उनके बहुमध्यदेश चार अंकुश लटकानेके लिये वज्रमय कीलिकाएं हैं, उनमें चार कुम्भिक मुक्ताओंकी मालाएं लटकती हैं, कुम्भिक मुक्ताओंका एक प्रकार परिमाण विशेष होता है, इस परिमाण

દ્વારોનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) દેવદ્વાર, (૨) અસુરદ્વાર, (૩) નાગદ્વાર અને સુપર્ણદ્વાર. આ ચારે નામો સાર્થક છે પ્રથમ દ્વારમાં દેવો, બીજામાં અસુરો, ત્રીજામાં નાગકુમારો અને ચોથામાં સુપર્ણકુમારો રહે છે તે દ્વારોની સામે આગળના ભાગમાં ચાર મુખમંડપ છે, તે મંડપોની આગળ ચાર પ્રેક્ષાગૃહ મંડપ છે તેમાં બેસીને દેવો ત્યાંની વસ્તુઓને નિહાળે છે તે પ્રેક્ષાગૃહોના બહુમધ્યપ્રદેશ ભાગમાં ચાર મણિપીઠિકાઓ છે, તેમના ઉપર ચાર સિંહાસન છે, તેમના ઉપર ચાર વિજયદૂષ્ય (આચ્છાદિત વસ્ત્ર) છે તેમના બહુ મધ્યદેશ ભાગમાં ચાર અંકુશ લટકાવવાને માટે વજ્રમય ખીલીઓ છે, તેમાં કુંભિક મોતીઓની ચાર માળાઓ લટકે છે. કુંભિક મોતીઓનો એક

मस्तकरम्याकृतिरमणीयत्वनाद्वितीयरूपाय । 'तेसि णं' इत्यादि-तेषां खलु अञ्जनपर्वतानाम् उपरि=ऊर्ध्वं बहुसमरमणीयभूमिभागाः बहव:=प्रभूता अति शयिता समा:=निम्नोन्नतत्वरहितत्वेन तुल्या रमणीया सुन्दराश्च भूमिभागा महान्तः, तेषां खलु बहुसमरमणीयभूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे चत्वारि सिद्धायतनानि सिद्धानां-देवविशेषाणामायतनानि-स्थानानि, उक्तं च हैमे—

" सिद्धा व्यासादिके देवयोनौ निष्पन्न-मुक्तयो । नित्य प्रसिद्धे " इति, यद्वा सिद्धानि-नित्यानि शाश्वतानि च तान्यायतनानि-स्थानानि च यथा अत्र प्रागुक्त प्रमाणम् । तानि खलु सिद्धायतनानि एकयोजनशतमायामेन महान्ति, विष्कम्भेण=विस्तारेण तु पञ्चाशत योजनानि ५०, ऊर्ध्वमुच्चत्वेन तु द्वासप्तति ७

इन अञ्जनक पर्वतोंके ऊपर बहुसमरमणीयभूमिभाग कहे गये हैं । बहुसमरमणीय-इसलिये कहे गये हैं कि ये अतिशयित हैं, तथा निम्नता च्च-उन्नमासे रहित होनेसे तुल्य हैं और सुन्दर होनेसे रमणीय हैं । इन बहुसमरमणीयभूमिभागोंके बहु मध्यदेशमें चार सिद्धायतन कहे गये हैं । देवविशेषोंके स्थान कहे गये हैं, हेमकोशमें " सिद्धशब्द " देव विशेषवाचक कहा गया है, जैसे-" सिद्धो व्यासा दिके देवयोनौ निष्पन्न मुक्तयो । नित्ये प्रसिद्धे• इत्यादि

अथवा—" सिद्धानि नित्यानि च-शाश्वतानि, तान्यायतनानि " इस विग्रहके अनुसार नित्य आयतनही सिद्धायतन कहे गये हैं । ये सिद्धायतन आयामकी अपेक्षा एक सौ योजन लम्बे हैं और विष्कम्भ की अपेक्षा ५० योजन चौडे हैं । ७२ योजन ऊंचे हैं । इन सिद्धायतनों के चारों दिशाओंमें चार चार द्वार हैं इनके नाम-१ देवद्वार २, असुर

सत्तपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता। सत्तपएसोगाढा पोग्गला जाव सत्तगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ॥ सू० ५३ ॥

॥ सत्तम ठाणं समत्तं ॥

छाया--जीवाः खलु सप्तस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचिन्वन् वा, चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा-नैरयिकनिर्वर्तितान् यावत् देवनिर्वर्तितान्। एवं चयो यावन्निर्जरा चैव। सप्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः -अनन्ताः प्रज्ञप्ताः सप्तप्रदेशावगाढाः पुद्गला यावत् सप्त गुण रूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः॥ सू०५३ ॥

जीव त्रीन्द्रियादिक पर्यायवाले कर्मपुद्गल चयादि होने पर ही होते हैं अतः अब सूत्रकार चयादिका "जीवाणं सत्तट्ठाण" इत्यादि सूत्र द्वारा कथन करते हैं—

जीवोंने सात स्थानोंसे निर्वर्तित पुद्गलोंका पापकर्म रूपसे चय किया है, चय करते हैं और चय करेगे-जैसे-नैरयिक रूप स्थानसे निर्वर्तित हुए यावत् देवस्थानसे निर्वर्तित हुए पुद्गलोंका उन्होंने पाप कर्म रूपसे चय किया है, वर्तमानमें वे उनका उस रूपसे चय करते हैं, और आगे भी वे उनका उस रूपसे चय करेगे चयकी तरह यावत् निर्जराका भी त्रिकाल रूपसे कथन कर लेना चाहिये।

सात प्रदेशोंवाले स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं, सात प्रदेशोंमें अव गाढ हुए पुद्गल यावत् सात स्थान इस प्रकारसे हैं—

કર્મપુદ્ગલોનો ચયાદિક થાય ત્યારે જ જીવ ત્રીન્દ્રિયાદિક પર્યાયવાળો થાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર 'जीवाणं सत्तट्ठाण" ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા ચયાદિકનું કથન કરે છે—'जीवाणं सत्तट्ठाण" ઇત્યાદિ—સૂ ૫૩)

જીવોએ સાત સ્થાનોમાંથી નિર્વર્તિત પુદ્ગલોનો પાપકર્મ રૂપે ચય કર્યો છે ચય કરે છે અને ચય કરશે જેમ કે નૈરયિક રૂપ સ્થાનમાંથી નિર્વર્તિત થયેલા પુદ્ગલોનો તેમજ દેવસ્થાન પર્યન્તના સ્થાનોમાં નિર્વર્તિત થયેલા પુદ્ગલોનો તેમણે પાપકર્મ રૂપે ભૂતકાળમાં ચય કર્યો છે વર્તમાન કાળે તેઓ તેમનો તે રૂપે ચય કરશે ચયની જેમ જ નિર્જરા પર્યન્તના વિષયોનું પણ ત્રણે કાળની અપેક્ષાએ ઉપર પ્રમાણે જ કથન કરવું જોઈએ

સાત પ્રદેશોવાળા સ્કન્ધ અનંત કહ્યા છે સાત સ્થાનમાં અવગાહિત થયેલા પુદ્ગલો અનંત છે તે સ્થાન નીચે પ્રમાણે છે—(૧) નારક, (૨)

टीका--' जीवाणं ' इत्यादि--

व्याख्या पूर्ववद् बोध्या । नवरं-सप्तस्थाननिर्वर्त्तितान्-सप्तसु स्थानेषु-नारक-तिर्यक्-तिरश्ची-मनुष्य-मानुषी-देव-देवी रूपेषु मिथ्यात्वादिभिर्ये निर्वर्त्तिताः-सामान्येनोपार्जिता वक्ष्यमाणस्थानषट्कयोग्यीकृताः, तान्, यद्वा-सप्तसु पूर्वोक्तेषु स्थानेषु निर्वृत्तिर्येषां ते तथा तान् सप्तस्थाननिर्वृत्तिकान्, इति ॥ सू० ५३ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलितललितकलापालापक प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्री शाहू छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पदभूषित-कोल्हापुर राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य -जैनधर्मदिवाकर-पूज्य श्री घासीलालव्रति-विरचितायां स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां व्याख्यायां सप्तमं स्थान सम्पूर्णम् ॥ ७ ॥

नारक १, तिर्यञ्च २, तिरश्ची ३, मनुष्य ४, मानुषी ५, देव ६, एवं देवी ७, इन स्थानोंमें जीवोंने रहकर मिथ्यात्व आदि द्वारा जिन कर्म पुद्गलोंका सामान्य रूपसे उपार्जन किया है-वक्ष्यमाण स्थानषट्कके योग्य किया है-यद्वा-इन उक्त सात स्थानोंमें जिनकी निवृत्ति हुई है, ऐसे उन कर्मपुद्गलोंका जीवोंने पाप कर्म रूपसे त्रिकाल संबन्धी चयादि किया है । इस सूत्रकी व्याख्या पूर्वके समान जाननी चाहिये ॥सू०५३॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराज कृत " स्थानाङ्ग सूत्र " की सुधा नामकी व्याख्या के सातवां स्थान समाप्त ॥ ७ ॥

તિર્યંચ, (૩) તિર્યંચણી, (૪) મનુષ્ય (૫) મનુષ્ય જાતિની સ્ત્રી, (૬) દેવ અને (૭) દેવી આ સ્થાનોમાં રહીને જીવોએ મિથ્યાત્વ આદિ દ્વારા જે કર્મપુદ્ગલોનું સામાન્ય રીતે ઉપાર્જન કર્યું છે-ચય, ઉપચય આદિ નિર્જરા પર્યન્તના ૬ સ્થાનને યોગ્ય કરેલ છે અથવા—ઉપયુક્ત સાત સ્થાનમાં જેમની નિવૃત્તિ થઈ છે એવાં તે કર્મપુદ્ગલોનો જીવોએ પાપકર્મ રૂપે ત્રિકાળ સંબંધી ચયાદિ કર્યો છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા પૂર્વ સ્થાનમાં આપ્યા પ્રમાણે સમજવી. ॥ સૂ ૫૩ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મ દિવાકર પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત "સ્થાનાગ સૂત્ર" ની સુધા નામની વ્યાખ્યાનું સાતમું સ્થાન સમાપ્ત ॥ ૭ ॥